

जीववचन

जिनवचनामृतमहोदधिजन्य

धुरंधर सुविदित गीतार्थज्ञ पूर्वाचार्य वचन तरंग विङ्गरूप
गिरिवासा १९३३

श्री मुंवापुरीमध्ये

शा० नीमसिंह माणक नामारव्य श्रावके

ज्ञान सृष्ट्यर्थे

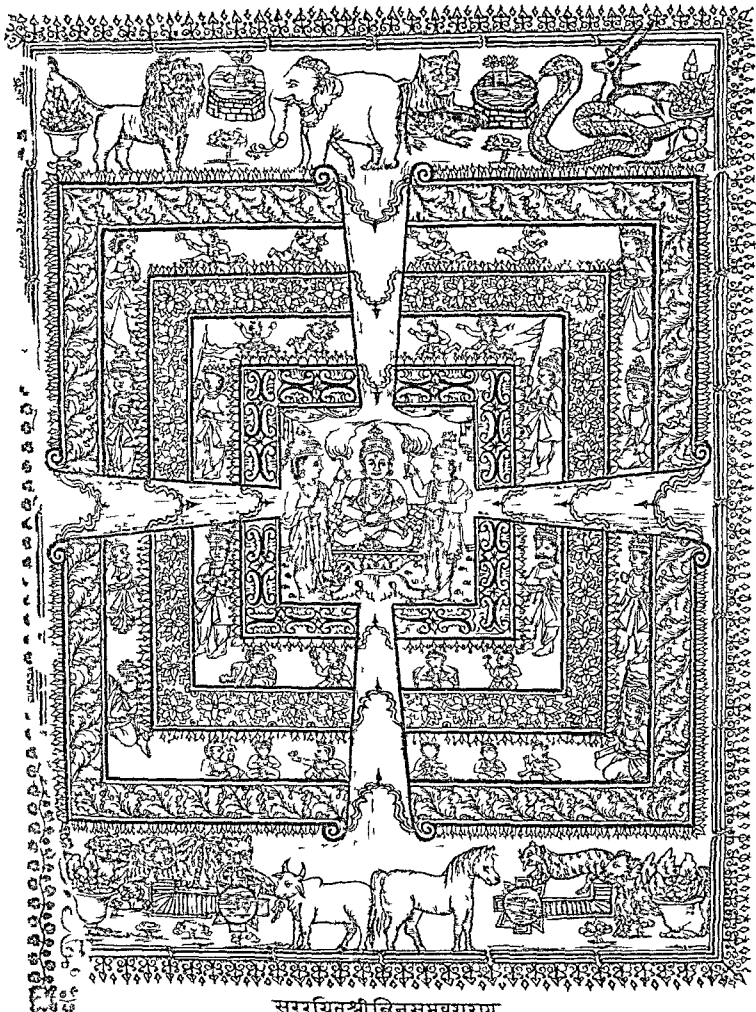
या पुस्तक उपावी प्रसिद्ध करणुं वे.

सन् १९२८ सन् १९३३

पीप शुद्ध १ सोमवार ता०८ दिजमबर सने १८७६

१९३३ १९३३ १९३३ १ ३ ३

आ पुस्तकनो सर्वप्रकार सरकारना धाराप्रमाणे हक माग्के स्वाधीन राखोडे



सुररयित्श्रीलिनसभपराग

प्रस्तावना.



आ पंचमकाल समाप्तिना अक्सरे ठेला दूप्पसहनामा आचार्य अग्ने. तेमना नि वीणसुधी जिनधर्मरूप मानससरोवरना साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका ए चतुर्विध सघरूप चार आरा खुला रहेवा जोयेठे. एवुं परमेश्वरनु वचन ठे. कदाचित काल ना प्रवल प्रजावथी कोई समये कोई आरो न्यूनता पाम्या जेवुं थाय तोपण बाकीना चालु रहेला बीजा आराने प्रजावे समय पाम्याथी ते आरो पण सुधरी जाय ठे.

आ समयमां पूर्वना समयना करतां घणी न्यूनता थई गएली दीगामां आवेठे. चतुर्विधसंघमां साधु तथा साध्वी तो कचित्तज दीगामां आवेठे अने श्रावक तथा श्राविकाथो तुं पण अल्प अस्तित्व ठे. तेथोनी कपरज धर्मवृद्धि आधार राखे ठे. धर्म वृद्धि ज्ञाननी वृद्धिथी थायठे. माटे ज्ञान वृद्धि अवश्य करवी जोयेठे. ज्ञाननी वृद्धि ज्ञानना साधनोनी वृद्धि कपर आधार राखेठे. ज्ञाननां साधनो पूर्वाचार्य कृत ग्रंथोनो जीर्णोद्धार तथा अवलोकन, विद्यान्यास, उत्सुकता, धर्मप्रीति, अनिरुचि, तथा उद्योग प्रमुख ठे.

पूर्वाचार्योक्त ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कखाथी ते समयना पंढितोतुं पाण्डित्य जाण्णा मां आवेठे; मनुष्योनी धर्मकपर केवी रुचि हती ते जणायठे. नूत कालथी ते आ वर्तमान कालसुधी वचगालामां धर्म तथा विद्वत्ता प्रमुखनी केटली अधिक न्यूनता थई ठे ते दीगामां आवेठे. पूर्वाचार्यो अति श्रम वेठी विद्यान्यास करी मोटा मोटा ग्रंथोनी रचना करता हता तेनो हेतु मात्र धर्मवृद्धि अथवा ज्ञानवृद्धि विना बीजो कांई हतो के शु ते वात स्पष्ट देखाई आवेठे. ग्रंथोनी रचना कखामां केवल परोपकार विना बीजो कांई पण स्वार्थ होयठे के शु ? ते कलाय ठे. पूर्व कालना करतां हालना वखतमां विद्यान्यासनो उद्योग केटलो अधिक अथवा न्यून थयोठे ? ते जणाई आवेठे इत्यादि क बीजा पण घणा हेतुउं दीगामां आवेठे माटे अवश्य प्राचीन ग्रंथोनो जीर्णोद्धार करवो जोयेठे. केमके, ए ज्ञानवृद्धितुं मुख्य साधन ठे. जो पुरातन ग्रंथोनो जीर्णोद्धार नही थाय, तो कालांतरे विष्टेद थई जवानो संजव ठे. अने तेवुं थएलुं हाल दीगामां आवेठे, जुवो के हरिजिस्वरिए चौढ शे ने चुमालीश ग्रंथो कखा ठे, ते बधानो जीर्णोद्धार नही थयाथी तेउंमाना केटलाएक ग्रंथोनो हाल पत्तो पण मलतो नथी, एवा बीजा पण अनेक सुविहित आचार्योना करेला ग्रंथोनो शोध मली शकतो नथी तेवुं कारण पण एज ठे. ते केटलुं लखिये! यद्यपि मारुं एम कहेवुं नथी के आज दिवससुधी को ईए ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कखोज नथी, मोटा राजाउं तथा सद्गुकारो वगैरे घणा ज्ञान

चंदारा करी गयाठे ते अद्यापि विद्यमान ठे; अने तेथीज हाल केटलाएक पुरातन ग्रंथोतुं आपणने दर्शन आयठे. तथापि मात्र दर्शन करवाथीज कांई वलवानुं नथी, पण योग्यरीते उपयोग कखाथी कार्यसिद्धि थवानो संजवठे जेम पूर्व धर्मानिमांनी राजा वगैराउंए ज्ञान चंदारा कखाठे तेम पाठल थयु नथो ए मोटी दिलगोरीनी वात ठे जो एवो चालज पडी गयो होत तो एके ग्रंथ विभेद गयो न होत अने आटली ज्ञाननी न्यूनता पण थई न होत. जुवोके, देरासरनो जीणोंंवार करवानो चाल पडी गयोठे तो तेनी सतति विभेद गएली देखाती नथी तेमज ग्रंथोविषे चाल पडवो जोयेठे केमके ग्रंथोनो जीणोंंवार तो ज्ञाननी वृद्धिंतुं एक मुख्य कारण ठे

हालना समयमा ग्रंथोनो जीणोंंवार करवाना जेवा साधनो मली आवेठे तेवां थ्याज कोई वखते पण नहोतां पहेला प्रथम ग्रंथोनो जीणोंंवार तालपत्र ऊपर थएलो देखायठे, ने ल्यार पढी कागज ऊपर थयो ठे ते अद्यापि सिद्ध ठे परंतु ते हस्तक्रिया विना यंत्रादिकनी सहायताथी थएलो नथी ने हाल तो मुझायंत्रनी अति उत्कृष्ट सहायता मली आवेठे, तेनो उपयोग करवानुं मूकी दर्शने आजस करी वेशी रहेछुं तो ग्रंथो केम कायम रहेजो ? हाल विद्यान्यास करीने नवा नवा ग्रंथोनी रचना करवी तो एक कोरे रही, पण ठतीशक्तिये पुरातन ग्रंथोनी रक्षा करवानो यत्न नही करछुं तो आपणोज ज्ञानना विरोधी ठरछुं. केमके जे जेनी रक्षा करे नही ते तेनो विरोधी अथवा अहितकर होयठे. ए साधारण नियम आपणी ऊपर लायु पडजो

आवक जाईयो, पुरातन ग्रंथोनो जीणोंंवार कखाथी ते ग्रंथोतुं अवलोकन थजो, प्रयाशविना केटलोएक विद्यान्यास थजो, रस उत्पन्न थईने ज्ञान संपादन करवानी अंत.करणमां उत्कंठा थजो. शुद्ध धर्म ऊपर प्रीति वधजो, अजिरुचि एट जे पुन.पुन ज्ञान मेलववानी इह्वा थजो, अने उद्योग प्रमुख सर्व ज्ञाननां साधनोनो सहज प्राप्त थजो उद्योग ए सर्व पदार्थ मेलववानुं अथवा वृद्धि करवानुं मुख्य साधन ठे, परंतु अमस्ता उद्यमथीज कांई थई शकतु नथी तेनी साथे इव्यनी पण सहायता जोयेठे इव्य जे ठे ते सर्वोपयोगी पदार्थ ठे माटे इव्यवान पुरुपोए अथ इथ ए काम ऊपर लक्ष देवो जोयेठे केमके, तेउनी ए फरज ठे के, जेम वने तेम ज्ञाननी वृद्धि करवी जोयेठे ते आप्रमाणे - सारा सारा पंढितोनी मारफते प्राचीन ग्रंथो सुंधारी लखावी अथवा ठपावीने प्रसिद्ध करवा तेनो जाविक लोकोने अन्यास कराववो इत्यादिक शास्त्रोमा कहा प्रमाणे सर्व प्रकारे ज्ञाननी वृद्धि करवी एवा हेतुथीज मे आ ग्रंथो ठपाववानु काम हाथमा लीधुं ठे, परंतु कोईनी सहायता विना स्वतंत्र मारी मरजी प्रमाणे हुं ग्रंथो ठपावी शकुं एवी मारीपाजो इव्यनी शक्ति नही

होवाने लीधे आ 'प्रकरण रत्नाकर' नामतुं मोडुं पुस्तक कहामवानी आगमज मारा स्व धर्मी जाइयोनी मने मवत लेवी पडीठे सारा जाग्यजोगे योग्य रीते मवत पण मली आवी, तेथी आ पुस्तकनो प्रथम जाग समाप्त करी ते गया जेष्ट मासमां प्रसिद्ध कखो अने आ बीजो जाग पण हमणा पूर्ण थयो ठे तेथी हुं मने कतकल्य समजुं तुं.

आ ग्रंथ प्रसिद्ध करवाने मुख्य मदत करनार शेट. केशवजी नायकठे.

हरेक पदार्थने सम योग्यतावान वा अधिक योग्यतावान रक्षण करी शकेठे एवुं बहुधा दीगमा आवेठे. जेम ग्रीष्म ऋतुना तापथी तप्त थएला पर्वतने मेघज रक्षण करेठे, तेम ज्ञानतुं रक्षण ते उत्तम योग्यतावान पुरुपथीज थई शकेठे. यद्यपि सकल चतुर्विध संघने ज्ञाननी रक्षा करवानो अधिकार ठे, तथापि सर्वने तेवुं सामर्थ्य होतुं नथी. माटे योग्यतावानज रक्षण करी शके ठे. तेवी योग्यता कोई विरलानेज होय ठे, केमके, बाह्य सर्व लक्ष्म्यादि समृद्धि ठतां अंतरनेविपे जिन वचन श्रद्धानरूप समृद्धि पण जोये ठे. तेमांनी बाह्य समृद्धि तो घणाओने होयठे तेम ठतां जिनवचन श्रद्धान होतु नथी तो तेनाथी कोई पण एवुं छुज कल्य थई शकतुं नथी तेथी बाह्य संपत्ति सहित प्रवचनश्रद्धान पण जोये ठे. बाह्य उत्तम संपदा अने अंतर स्वधर्म निष्ठा ए उच्छ्रष्ट पुण्यानुबंधीपुण्यतुं फल ठे तेवुं कोईएकनेज होय ठे. एतुं प्रत्यक्ष उ गहरण आ वर्त्तमान द्विशतकरूप कालनेविपे श्रेष्ठ केशवजी नायक ठे केमके, एवी योग्यतावान बीजो कोई पुरुष हाल दीगमा आवतो नथी एओ बाह्य लक्ष्म्यादि संपत्तियुक्त ठतां आतर धर्म सम्यक्त्व श्रद्धानरूप अत्युत्तम संपत्तिए करीने पण युक्त ठे. जेनेविपे पच प्रकृतिरूप अंतराय कर्मनो क्षयोपशम आधुनिक सर्व संघ जनोना कर्त्ताअधिक दीगमां आवेठे, एमना जेवुं आतप नाम कर्म तो कोई नूपने पण कचित् उदय थयलुं दृष्टि गोचर थरो! तेमज आदेय नामकर्म, अंगोपांग नाम कर्म, यशः कीर्त्तिनाम कर्म, प्रमुख छुज प्रकृतियोंतुं एमणे एवो तो उच्छ्रष्टबंध कखोठे के, तेवो हाल दक्षिणजरत्ता ईमां कोई बीजानेविपे कचित् दीगमा आवसे एवा पुरुषने छुं अशक्य होय ? अने कीयुं कार्य करवाने समर्थ न थाय ! अर्थात् सर्व कार्य करवाने शक्तिमान ठे. पूर्वं थईगएला सं प्रति राजा तथा वस्तुपाल तेजपाज अने कुमारपाल प्रमुख महत् प्रनाविक पुरुषोनी पठे एमणे पण वर्त्तमान कालानुसार धर्म दीपनार्थ तथा स्वश्रद्धान दर्शिनार्थ श्री अर्द्धदेवा लयो तथा अर्जन शलाका प्रमुख उत्तम धर्म कल्यो कखां ठे, ते वधाओथी पण अ

तद्युक्तम ज्ञानवृद्धिनी उत्कंठा पूर्वक तद्व्युक्त पुरुषोने अतिशय आश्रय दियेठे; माटे नि श्रव्ये करी एमने पूर्वज्ञत यर्मे श्रद्धावान कुमारपाल राजा प्रमुखनी पंक्तिमा शासार्ह न गणाय किंतु तेमनी तुलना करे तेवाज ठे आ लखाणमा कोईए अतिशयोक्ति स मज्जवी नही, पण निर्पक्षपात बुद्धिथी विचार करी जोडु के, श्रेष्ठ केशवजी नायक ए सर्व उपमाने योग्य ठे के नही। जुवो के अमे अंकित करवाने आरज्न करेला आ ए क लक्ष सख्याक महत् चतुर्जागात्मक पुस्तकना अंकनीय खर्चनेविपे एवी युक्तिथी आश्रय आप्योठे के जेथकी केटलाएक समयोद्धरित पूर्व गीतार्थोए करी रचित प्रकर णोतुं सुखरूप पुन जीर्णोद्धार थईशकरो माटे एमने जेटली उपमादैये तेटली थोडीठे.

राजवहादूर बाबुसाहेब लक्ष्मीपति सिद्धजी ठत्रपति सिद्धजी.

श्रेष्ठ केशवजी नायकविपे लखता आ प्रसंगे श्रीमच्छुद्धावाद निवासी स्वप्रांत नूप समान, लक्ष्म्यादि बाह्य अमित समृद्धि युक्त, उत्तम यश कीर्त्ति नाम कर्मोदयवान, ज्ञान वृद्धयुक्तंतावान अतिगय, प्रतापी, स्वधर्म दीपक, पूर्वोक्त पंक्ति अनिराजनीय, सर्व संघ तिलक नूत तथा श्रावक गुण सहित्यादि अपूर्व कल्याणकार नूपित राजवहादुर नूपतिदत्त पदक धारक बाबुसाहेब लक्ष्मीपति सिद्धजी ठत्रपति सिद्धजी पोताना नाम प्रमाणेज योग्यतावान होवार्थी अधुना अनुपमेयज ठे.

जस्टिस् ऑव् धि पीसाख्य नूपतिदत्त पदक धारक श्रेष्ठ केशवजी नायक तथा रा उवहाडुराख्य नूपतिदत्त पदक धारक श्रेष्ठ लक्ष्मीपतिसिद्धजी ठत्रपतिसिद्धजी जेवा प्रजा विक धर्म दीपक पुरुषो श्रावक ममलनेविपे हमेश उत्पन्नयता रहो, अने आवा ज्ञान वृद्धिरूप धर्मकृत्यो कर्त्ता रहो एवो अमारो अंत करण पूर्वक आशिर्वाद ठे

आ ज्ञानवृद्धिक उत्तम कृत्यने सारो आश्रय आपनार प्रजाविक पुरुषोनी पंक्तिमां शोणित, अपेक्षा तथा उपेक्षा रहित, सारासार ग्राहक, परम रहस्यज्ञ, परोपकार म तिमान, करुणा, दया, रुपा तथा शीजादि छुनगुण युक्त, श्री वीतरागपद कमल मक रद लालसाय भ्रमरायमान्, महात्मा सदृश मुनी महिमा सागरजी तथा सुमति सागर जी; एमनो अत्यंत प्रार्थना पूर्वक अत्युपकार युक्त नाम स्मरण अत्र गुथित करुं तुं श्री सुंवाईना श्रावक मंजलमाना श्रेष्ठ हरजम नरसिंह, श्रेष्ठ घेला जाई पदमसी, श्रेष्ठ वर्द्धमान पुनसी, श्रेष्ठ जोजरज देसल, एमणे ज्ञान वृद्धि विषयक पोतानी सारी उदारता दर्शावी ठे माटे तेमना उपकार पूर्वक हुं नाम गुथित करुं हुं.

श्रीमच्छंभुदावाद निवासी परम ज्ञान प्रसारोद्युक्त मतिमान स्वज्येष्ठ त्राता तुल्य लक्ष्मी तथा गुण युक्त नृप दत्तक रायवाहादूर पद धारक बाबुसाहेव धनपति सिंहजी ठत्रपति सिंहजी एमने पण पोतानी उत्कृष्ट ज्ञान वृद्धि करवने सारी उदारता दर्शावी ठे तेथी तथा बीजो पण ज्ञान वृद्धिने अर्थे पुस्तक अंकित करवानो हमेश उद्योग चालुं राखेठे तेथी अति सत्कार पूर्वक तथा मान्यता युक्त नामस्मरण गुंथित करंहुं.

श्री मुंबईना श्रावक मंडलमांना शेठ परवत लधा, शेठ मूलजी देवजी, शेठ जादव जी परवत, सा. नोजराज नरपाल, तथा शेठ कीकानाई फूलचंद तथा शा. गकरसी देवजी एथोए पण यथाश्रदान प्रमाणे आ ज्ञानवृद्धिना करवने आश्रय आप्योठे तेथी तेथोतुं उपकार सहित नामस्मरण गुंथित करं हुं.

श्री अहमदावाटना श्रावक मंडल माहेला शेठ दलपत चाई नगुंजाई, तथा शेठ मयानाई प्रेमानाई, एउनी ज्ञाननी प्रशस्ति थवानेविषे अति उत्कंठा जोईने मोटा आजार सहित नामस्मरण गुंथित करं हुं ;

श्री साणदवाला शेठ साकलचंद हुकमचद तथा श्री नरूचवाला शेठ अनूपचंद मलु कचद, एथोए पोतानी धर्मप्रजावना अधिक दर्शावने अर्थे ज्ञाननी वृद्धि थवा सारु जे उत्सुकता वतावी ठे ते जोईने मोटा उपकार साथे नामस्मरण गुंथित करं हुं

श्री कड मुदराना रहेवाशी शेठ कस्तुरचंद सिंधजी पारेख एमनी अद्भुत धर्म प्री ति, वैराग्यता तथा ज्ञानवृद्धिनी अतिशय चाहना जोईने मोटा आदर पूर्वक आ पुस्तकनी साथे नाम गुंथित करं हुं.

साधुमंडल मार्गमार्गित संवेगी साधु वर्य, अति विवेकी, ज्ञान पीयूष बुद्धिसुक जिनप्रवचन श्रवण श्रद्धावान श्रावक जन मन कर्णने परमामृत रहस्य पान कराव नार, साधु गुण नूपणालंकृत, ज्ञानवृद्धि कर्ता पुरुषरूप वृद्धोने मेघवृष्टि समान अत्युत्कृष्ट साधन नूत, महाराज श्री मूलचंदजी तथा जवेर सागरजीना, नामस्मरण प्रेम पूर्वक गुंथित करं हुं.

साधु मंडलमां साधु गुण संपन्न, ज्ञानरूप सूर्यना प्रकाशने आवरण करनारा जे नाना प्रकारना संशयो, कुतर्की, द्वेष, मान, ईर्ष्या तथा कुसंग प्रमुख वादल समूहरूप घनघटानो सम्यक् प्रकारे विध्वंस करवाने बलवान पवन समान ; धर्म तथा धर्मीग ज्ञानादिकनी वृद्धि करवाने पूर्वना अत्युत्तम सुविहित शास्त्रपारंग आचार्यादि आर्य जन तुल स्यादाद सैलीना जाण बहुधा पंजावारव्य देश निवाशी संवेगी साधु श्री आत्माराम समान आत्मारामजी एमतुं अति जावपूर्वक नामस्मरण गुंथित करंहुं.

संवेगी साधु श्री नितीविजयजी महाराज एतनो ज्ञान वृद्धि अर्थे सारो उद्योग
 होवाची प्रथम जागनी पठे नामस्मरण गुंथित करुं तुं,

सवेगी साधु साध्य वस्तु साधनोद्युक्त युक्त मतिमान, जिनवचन समुद्रमांथी जलद
 त ग्रहीत धर्माकाशस्थित जलवृष्टि वत् ज्ञान वृद्धि कर्ता, संवेगी साधु शुद्ध सम्यक्त्व
 दातारथ, परम सुविहित सुसाधु मंगल माल प्रोहीत, ज्ञानादि शुद्ध जिनधर्मगवृद्धि
 यत्नवान. श्री शांति सागरजी महाराजतुं नामस्मरण गुंथित करुं तुं,

जन वृद्ध वद्य अचल गङ्गाचार्य नट्टारक श्रीविवेक सागर सूरि, एमंतुं पूर्वजागनी
 गठे नाम स्मरण गुंथित करुं तुं,

मनुष्य पुज पूज्य तप गङ्गाधिपति नट्टारक श्री धरणेंद्रसूरि, एमंतुं नाम स्मरण
 गुंथित करुं तुं,

श्री दुकमचड्जी महाराजतुं में प्रथम जागमां नाम स्मरण गुंथन कखुं ठे तेमज
 अत्रे पण गुंथित करुं तुं

प्रवचन रहस्य ज्ञाता, कोविद मतिमान, अद्भुत चपल वक्तृत्वशक्तियुक्त, स्वरूपसा
 गरवित् श्रीरूपसागरजीतुं नाम स्मरण गुंथित करुं तुं,

शुद्ध वीतराग परुषित, जिनधर्म विनूति युक्त श्रीअहमदावाद नगर निवाशी
 सर्व श्रावक मंगल जन नूप समान अत्यंत लक्ष्मि सपत्तिवान पूर्वज परपरा
 श्रेणि आगत श्रीमान उत्तम अज्ञान सद्बर्त्तमान तथा धर्मदीपक श्रेष्ठ मयाजाई प्रे
 मानाईतुं नामस्मरण पुन. गुंथित करुं तुं.

बीजा पण जे जे सद्बुद्धिमान पुरुषोए धर्म प्रजावना दर्शाववा निमित्ते स्वसामर्थ्या
 तुस्तार ज्ञानवृद्धि हेतुची जे उदारता दर्शावी ठे तेज्यानां नामस्मरणार्थ पुस्तकना अंत
 नेविषे गुंथित असे

द्विमापना

प्रथम जाग मध्ये मतिदोषची तत्वानुबोध नामनो ग्रंथ जे पृष्ठ ७३१ थी ७५६
 सुधीमा नाखवामा आख्युं ठे ते स्थानकवासी रतनचंदनो करेलो ठता लाखेली प्रतमां
 तेबु न जणायाची नूलथी ठपाई गयो ठे एटला माटे हुं सर्व सुबुद्धिवान वाचको पाशे
 थी द्दमा मागुं तुं के अकित ग्रथना मुख पृष्ठमा सुविहित गीतार्थ रचित ग्रंथो
 ज नाखवानी मे प्रतिज्ञा करेली ठे तेने कोई दूषण आपशो नही केम के, हरेक

काम जूलथी थाय ते क्लमा करवा योग्य ठे हुंढिया यद्यपि जिनधर्मी नामधरावना रां तो ठे पण जाते मूर्खज होय ठे तेथी तेज जिनोक्त मार्गनी विपरीत परुपणा कर ता दरता नथी एवात सर्व सुद्ध जनोने सम्मत ठे माटे ते मूर्ख होवाथी गीतार्थ कहेवा य नही तेथी ए ग्रंथ अथय जैन सैलीथी विपरीतजणे एवुं जाणी - त्याग करवा थो ग्य ठे; कोईए सुविहित गीतार्थकृत जाणीने वाचवो नणवो नही- ए वात हुं श्री ना वनगरमां साधु श्री आत्मारामजी महाराजने मलवा गयो हतो त्यारे-तेमणे, मारी पात्रे कही ए रतनचद थानकवासी साथे आत्मारामजी महाराजनो मलाप थयलो हतो इत्यादिक बहुवातो मे एमना मुखथी सांजलीने तेथी में घणो पश्चात्ताप कखो पण पठी थाय छुं? माटे मूलथी मारी प्रतिज्ञामा में जूल कीथी तेनी मुनि श्री आत्माराम जी महाराजना उपकार सहित सर्व सक्कनो पात्रेथी क्लमापना मागुं हुं

शा. नीमसिंह माणक.

विनती.

समस्त जैन धर्म रागी, नाना ग्रंथ विचार बुछुत्सुक, जिनवचन पीयूषपान कर्ता, श रल चित्तवाला जनोने अति प्रार्थना पूर्वक विनति करुं हुं के, जेम जननी अथवा जनक स्वपुत्रना दोषविषे रंचमात्र विचार न करतां मात्र गुणनुंज ग्रहण करते. तेम आ अंकित पुस्तकनेविषे कोईने काई दोष दृष्टिगोचर थाय तो मऊ ऊपर रंचमात्र रोष कर वो नही केमके, सर्व प्रकारे निर्दोषता एक केवलीविना बीजा कोईनेविषे पण संजवे नही एटला माटेज पूर्वे थई गयला महत् आचार्य प्रमुख श्रुतज्ञान पारग अत्युक्त ए पंढितो पण स्वरचित ग्रंथोमां बुद्धि दोषनेविषे क्लमा मागी गयला दीगामां आवेठे; त्यारे आधुनिक साधारण जननी वात छुं कहेवी? आ पुस्तकतुं शोधन करतां मति दोष अथवा दृष्टिदोष अथय दीगामा आवशे; ते जोईने रोष न करतां क्लमा करवी. केमके, वांचता अथवा लखतां जूल थायज ठे एवो नियम ठे. एविषे जे गर्व करे ते मूर्ख कहेवाय. माटे ए विषे हुं सर्व सत्पुरुषोनो विनय करुं हुं के, आपनी हंसना चंचू जेवी मतिथी सारासार विचार पूर्वक जलरूप दोषतुं निवारण करीने पयरूप गुणतुं ग्रहण करुं. अने असत् पुरुषोनो पण अधिक विनय करुं हुं के, आपनी काकना चंचू जेवी मतिवडे गुण तजोने दोषतुं ग्रहण करीने ते सुखेथी प्रसिद्ध करवो; तेथी हुं

मोटो उपकार मानीश ? केमके, जो दोष दर्शावनार नही मले तो दोष दीगामां केम आवे ? गुणग्राहकनी क्रमरूप अमृत धाराथी यद्यपि गुणनी पुष्टी थायठे, तथापि दोष ग्राहकनी कुमतिरूप कुठार धाराथी बुद्धि ठिन्न निन्न थइने तेने अदोषता करवाविपे घणा प्रयत्नमा प्रवृत्ति थायठे, तेथी तेनो पण उपकार मानवा योग्य ठे. माटे सर्व सज्जन तथा छष्ट पुरुषोनी विनति करुं हुं के, यथा स्वमति अनुसार गुणदोष विचार करीने क्रमादिक करवु

शा० नीमसिंह माणक.

प्रार्थना.



आ पुस्तक वांचनारा अने नणनारा प्रमुख सर्व ज्ञानना रागी अने विवेकी सुज्ञ जनोने अति नम्रतापूर्वक हुं याचना करुंहुं के, आ प्रकरण रत्नाकरमाना कोई प्रकरणमां अंतरवृत्तिजन्य दोषथी, बाह्यदृष्टि दोषथी अथवा अज्ञान प्रक्रियाने लीधे कांई जैननी सैलीथी विपरीतता अथवा सांशयिक दीगामां आवे तो तेविपे कोप न करतां सर्व लखी लईने ते मने मोकलावी देवु, के जेथी ते सुधारीने कोई प्रसंगे विरोधनो परिहार करवामां आवे जेम के, प्रथम जागमां नाखेला उपमितिजवप्रपंचनी कथा मां अनुसुंदरने अवधिज्ञान उत्पन्न थया पठी अनंत काल निगोदमा रही आब्यो ठ तां ते सर्व वात स्मरणमां आवी ठे ए साशयिक वक्ति ठे; इत्यादिकनी पठे ज्यां ज्यां दीगामा आवे त्यां त्यांथी लखी लईने जो बने तो तेना विवेचनसुद्धां अथवा एमज मने सूचना करवी एवी हुं तेमनी प्रार्थना करुंहुं, अने एम कखाथी मोटो उपकार मान्यामां आवेशे.

शा० नीमसिंह माणक

॥ श्री ॥

प्रकरणरत्नाकर नामारख्य पुस्तकना बीजाजाग माहेला ग्रंथोनी
स्थूल विषयानुक्रमणिका प्रारंभः

ग्रंथोलं नाम.	पृष्ठ.
१ श्री रत्नशेखरसूरिकृत श्रीरूपच स्तुति गर्जित महिम्नस्तोत्र	१
२ श्री कृष्णकल्याणजीकृत विविधकाव्यचातुर्य युक्त चतुर्विंशतिजिनस्तुति	४
३ श्रीमुनिसुंदरसूरिकृत अध्यात्मकल्पद्रुमनामाग्रंथनी अनुक्रमणिका.	ए

अधिकार.

पद्य पृष्ठ.

१ साम्योपदेशारख्यःप्रथमोधिकार ..	३४—	११
२ स्त्रीममत्वमोचनोनामद्वितीयोधिकार.	८—	१९
३ पुत्रममत्वमोचनारख्यस्तृतीयोधिकार	४—	२१
४ धनममत्व मोचनोनामचतुर्थोधिकार	७—	२३
५ देहममत्वमोचनारख्य पंचमोधिकार ..	८—	२५
६ विषयावशतोपदेश नामारख्य षष्ठोधिकार	९—	२७
७ विषयकपायद्यवशतारख्य. सप्तमोधिकार	२१—	३०
८ शास्त्रागुणाधिकारोऽष्टम तदंतरगत चतुर्गत्याश्रितोधिकार	१६—	३६
९ चित्तदमनानिधानो नामनवमोधिकार	१७—	४१
१० वैराग्योपदेशारख्योदशमोधिकार	२६—	४६
११ धर्मद्युद्धिउपदेशारख्य एकादशोधिकार	१४—	५६
१२ देवशुरुधर्मद्युद्धिनारख्यो द्वादशोधिकार	१७—	६०
१३ यतिशिद्धानिधानोनाम त्रयोदशोधिकार	५९—	६६
१४ मिष्यात्वादिसंवरोपदेशारख्यश्चतुर्दशोधिकार	२२—	८२
१५ छत्रप्रवृत्तिशिद्ध्योपदेशारख्य पंचदशोधिकार	१०—	८९
१६ साम्यसर्वस्वनामा षोडशोधिकार ..	८—	९३

४ श्री गीतलनाथाष्टक दुतविलंबितारव्य वृत्त चतुर्पादावृत्ति युक्त
मञ्जूकचङ् रचित

७— ए६

श्री जिनस्तोत्र संग्रह, श्री कल्याणसागर सूरिकृत.

- ५ श्री माणिक्य स्वामि स्तोत्र विविध पद्यरचनात्मक १७— ए४
- ६ सूर्यपुरीय श्रीसंनव जिनस्तोत्र वसंत तिलकारव्य वृत्त गुणित च
तुर्थी विनक्तयंत पद ब६ ११— ए७
- ७ श्री सुविधि जिनस्तवन दुतविलंबित वृत्तब६ प्रत्येक पद सुविधि
नाम युक्त ६— ए७
- ८ श्री शांतिनाथ स्तोत्र दुतविलंबितवृत्तब६ द्वितीया विनक्तयंत पद युक्त ३— ए९
- ९ श्री शांतिजिनस्तोत्र विविध पद्यब६ सबोधन पर्यंत अष्टविनक्ति
दर्शक १९— ए९
- १० श्री अंतरिक्ष पार्श्वस्तोत्र इड्वज्जा वृत्त ब६ चतुर्थी पादावृत्ति युक्त ९— १०१
- ११ श्री गौडिक पार्श्वीष्टक शादूलविक्रीडित वृत्त ब६ चतुर्थी पादा
वृत्ति युक्त ११— १०१
- १२ श्री गौडि पार्श्वनाथस्तोत्र नानारव्यवृत्त ब६ अद्भुत चमत्कृतियुक्त १२— १०२
- १३ श्री दादा पार्श्वनाथ स्तोत्र इड्वज्जावृत्त ब६ चतुर्थी पादावृत्ति युक्त ९— १०३
- १४ श्री कलिकुम पार्श्वीष्टक वृत्त ब६ चतुर्थी पादा वृत्ति युक्त ९— १०४
- १५ श्री रावण पार्श्वीष्टक इड्वज्जावृत्त ब६ चतुर्थी पादावृत्ति युक्त ९— १०४
- १६ श्री गोडिपुर पार्श्व जिनस्तोत्र गायन पद्य ब६ रमणीय राग युक्त १४— १०५
- १७ श्री पार्श्व जिन स्तोत्र तोटक वृत्तब६ द्वितीया विनक्तयंत पदयुक्त १०— १०५
- १८ श्री महुर पार्श्वस्तोत्र दुतविलंबित वृत्तब६ चतुर्थी पादावृत्ति युक्त १०— १०६
- १९ श्री सत्यपुरीय महावीर स्तोत्र दुतविलंबित वृत्त ब६ युग्मबद्ध
प्रथमैक वचन द्वितीय पुरुष अस् धातु वर्त्तमान काल दर्शक. २५— १०६
- २० " " " " वृत्तब६ युग्मबद्ध शब्द चतुर्थी
क वचन द्वितीय पुरुष नम् धातु एक वचन वर्त्तमान काल दर्शक ९— १०७
- २१ श्री लोडण पार्श्वनाथ स्तोत्र अतुष्टुपवृत्त ब६ द्वितीय विनक्तिदर्शक १३— १०७
- २२ श्री सेरीश पार्श्वनाथ स्तोत्र उपजाति वृत्तब६ चतुर्थी पादावृत्ति युक्त ९— १०९

- २३ श्री संज्ञवनाथ स्तोत्र उपजाति वृत्त ब-६ चतुर्थे पादावृत्ति युक्त. ९—१०९
- २४ श्री सूक्त मुक्तावली केशरविमलरुत मालिनी प्रचृति वृत्त ब-६
 १ धर्म पदार्थ वर्ग ७७—११०
 २ अर्थ पदार्थ वर्ग ३५—११६
 ३ काम पदार्थ वर्ग २३—११९
 ४ मोक्ष पदार्थ वर्ग ४३—१२१
- २५ श्री शांतसुधारस ग्रंथ श्रीविनय विजय उपाध्यायजीकृत विविध
 गायनीधराग रचित पद्य ब-६ अनित्यादि षादश ज्ञावना
 तथा मैत्रादिचार, ज्ञावना मली शोल ज्ञावना विषय
 काव्यचमत्कृति युक्तः २३७—१२४
- २६ चतुर्विंशति जिनस्तोत्र जिनप्रज्ञसूरिकृत वृत्तब-६ काव्य चमत्कृति युक्त २९—१७५
- २७ आस्तिक तथा नास्तिक मति संवाद कर्ता नाम लुप्त विविध प्र
 शोत्तर युक्त गुर्जर ज्ञापा गद्यब-६. ०—१७७
- २८ सम्यक्त्वना सडसठ बोलनी सझाय श्रीयशो विजयजी उपाध्या
 यकृत गुर्जर ज्ञापा गायनीय विविध ढालरूप पद्यब-६ ६९—२१२
- २९ शृंगार वैराग्य तरंगिणी, सोमप्रज्ञाचार्य विरचित नूतन काव्य च
 मत्कृति उपजात्यादि अनेक विध वृत्तारव्य पद्यब-६ स्त्री
 शृंगार वर्णन मित्रो वैराग्य दर्शक. ४५—२१७

विविधविषयिकस्तोत्र, जिनप्रज्ञाचार्यकृत.

- ३० श्री वीरजिनस्तोत्र आर्यावृत्तब-६ पंच वर्ग परिहारक काव्य चातुर्थयुक्त २६—२४२
- ३१ श्री गौतम स्तोत्र उपजात्यादि वृत्तब-६ पांढिल्य युक्त २१—२४३
- ३२ श्री नेमिजिनस्तोत्र आर्या प्रचृति विविध जातीय वृत्तब-६ अमि
 त चातुर्थ क्रियालुप्त २०—२४४
- ३३ श्रीवर्द्धमान जिनस्तोत्र इंडवज्जा प्रमुख विविध वृत्त नाम श्लेषा
 र्थे गणित काव्य पांढिल्य सूचक २५—२४५
- ३४ श्री चतुर्विंशति जिनस्तोत्र हुतविलंबित वृत्त चतुर्थे पादातरगत
 सदृश वर्णावृत्तिरूप यमक नामक शब्दालंकार श्लेषादि गणित २९—२४७

- ३७ श्री पंचकव्याणिकमय महावीरजिनस्तोत्र वृत्त ब-६ लाटानुप्रासा
द्यनेक काव्य कलायुक्त २६—२४९
- ३६ श्रीमंत्र स्तोत्र अनुष्टुप् वृत्त ब-६ परम रहस्यार्थं गर्जित मत्ररूप ५—२५१
- ३७ श्रीवर्द्धमानजिनस्तोत्र उपजातिवृत्तब-६ विविधालंरुत शब्द लालित्ययुक्त ९—२५१
- ३८ श्री पार्श्वजिनस्तोत्र उपजाति वृत्त ब-६ प्रतिपद पचाक्षर पुनरा
वृत्ति रूप सिंहावलोकन युक्त ९—२५१
- ३९ श्री पार्श्वजिनस्तोत्र उपजाति वृत्त ब-६ पादांत समचतुरक्षर पुन
रावृत्तिरूप यमकालंकार युक्त ८—२५२
- ४० श्री नर्दाश्वर कल्प अनुष्टुप् वृत्त ब-६ काव्यसरलत्व अर्थ गौरवयुक्त ४८—२५२
- ४१ श्री शारदास्तोत्र उपजातिवृत्त ब-६ क्वचित् समपाद पुनरावृत्ति
क्वचित् विषमपाद पुनरावृत्तिरूप एक चतुर्पादरूप यम
कालंकारयुक्त १३—२५४
- ४२ श्री जिनसिंहसूरिस्तोत्र उपजाति वृत्त ब-६ क्वचित् समपाद
पुनरावृत्ति क्वचित् विषम पाद पुनरावृत्ति एक चतुर्पादरूप
यमकालकार युक्त १३—२५५
- ४३ श्री पंच नमस्कृति स्तोत्र अनुष्टुप् वृत्त ब-६ अद्भुत आशय युक्त ३३—२५६
- ४४ श्री वीरस्तोत्र अनुष्टुप् वृत्त ब-६ प्रत्येक पद्ये सम समपाद पुनरावृत्ति
रूप यमकालकार युक्त १३—२५७
- ४५ श्री आदि जिनादि स्तोत्र अनुष्टुप् वृत्त ब-६ प्रत्येक पद्ये सम स
मपाद पुनरावृत्तिरूप यमकालंकार युक्त २८—२५८
- ४६ श्री पार्श्वप्रातिहार्य स्तोत्र स्वागता वृत्त ब-६ प्रत्येक पद्ये समसम
पाद पुनरावृत्तिरूप यमकालंकार युक्त १०—२५९
- ४७ श्री कव्याण पचक स्तोत्र वशस्थ वृत्त ब-६ साधारण काव्य रचना युक्त ८—२६०
- ४८ श्रीवीर जिनस्तोत्र लक्षण प्रयोगमय उपजाति वृत्त ब-६ व्याकर
णना प्रयोगना मिगे नगवतना लक्षण उक्ति युक्त १७—२६०
- ४९ श्री वीतराग स्तोत्र उपजाति वृत्त ब-६ क्वचित् पादातगत क्वचित्
पादातस्थले द्यादि अक्षरावृत्तिरूप यमकालंकार युक्त १६—२६१
- ५० श्रीचङ्प्रनस्वामि स्तोत्र अनुष्टुप् वृत्त ब-६ सम समपाद पुनरावृ
त्तिरूप यमकालकार युक्त ४—२६२
- ५१ श्रीरूपनदेव स्तोत्र आर्यादि वृत्त ब-६ विविध जापा रचना चम

वृत्ति युक्त तथा संस्कृत, प्राकृत, मागधी, पेशाची, चूलिका
पेशाची, शौरसेनी, समसंस्कृत ने अपभ्रंश निन्न निन्न अने
मिश्र कविनाम गर्न चक्र युक्त

४०—२६३

५२ श्री महावीरस्तोत्र विविध वृत्तबद्ध अत्युत्तम चित्रादि काव्य चम
वृत्ति युक्त यथा प्रतिलोमानुलोमपाद, अनुलोम प्रतिलोम,
अर्ध प्रतिलोमानु लोम, अर्धत्रम, मुरजबंध, गोमूत्रिका, सर्व
तो नड, रथपद, वधहरपाद, एकाहरपाद, एकाहरश्लोक,
असंयोग, दान्यां खड्ड संदानितकं, मुसल, त्रिगूल, हल, धनु
प्य, शर, शक्ति, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल, स्तुत्यना
मगर्न बीजपूर. हर, कविकाव्य नामक चक्र, तथा चामरबंध.

२६—२६५

५३ श्री जीरापद्धिपार्श्वस्तोत्र स्वागतावृत्तबद्ध विषम पदांत समपदाद्य
त्र्यह्वर पुनरावृत्तिरूप सिंहावलोक काव्ययुक्त

१५—२६६

५४ श्री फलवर्द्धि जिनस्तोत्र आर्यावृत्तबद्ध प्रत्येक पद्याई चतुरह्वरा
रमक त्रयावृत्तिरूप यमकालंकारयुक्त

१२—२६७

५५ श्री चंडप्रज्ञ स्वामिस्तोत्र मौक्तिक दामादिवृत्तबद्ध पट्टनाषा रच
ना चमवृत्ति युक्त यथा संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी,
पेशाचिक, चूलिका पेशाचिक, अपभ्रंश

१३—२६८

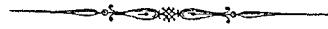
५६ श्री वर्द्धमान निर्वाण कव्याणक स्तोत्र स्वागतावृत्तबद्ध सर्वोत्कृष्ट
वर्णन युक्त

१९—२६९

५७ श्री अरनाथस्तोत्र पंचदश केवलाहर पद्यबद्ध अद्भुत रचना युक्त

१४—२७३

५८ आध्यात्म मतपरिह्वानाम ग्रंथनी स्थूलविषयानुक्रमणिका. २७३



आध्यात्मना चार प्रकार देखाढीने तेमां मात्र नाम अध्यात्मिजे
दिगम्बर लोकठे तेमना मतनुं निवारण करतां जावाध्यात्मनुं,
स्वरूप दर्शावतां तथा साधुने वस्त्र पात्र उपधिप्रमुख ते सिद्ध
ताना हेतुठे एवु अनेक दृष्टांतो सहीत प्रश्नोत्तररूपे सिद्धांतै
लियें प्रतिपाद्युंठे तेने प्रसंगे ध्याननुं स्वरूप स्थविरकल्प
जिनकल्प तथा अपवाद उत्तर्ग इत्यादि

२७३

उत्कृष्ट अध्यात्मनी प्राप्ति यवाना कारणो निश्चय व्यवहार न यना वाद सहित मध्यस्थपणे प्रमाण वादीनुं मत लावी	
उत्कृष्ट अध्यात्मनी प्राप्ति दर्शावीठे	३९०
केवली कवलाहार अवश्य करे एवी स्थापना युक्तिपूर्वक सि द्धात सैलिये बतावी ठे	३०२
केवली कवलाहार करता ठता कृतकृत्यज ठे	३२१
पट्कारकनुं स्वरूप	३३२
सिद्धना पन्नर जेद	३३३
स्त्रीलिंगें सिद्धता दिगम्बरीउं नथी मानता तेने दूषण	३३३
ग्रंथनुं परम रहस्य	३३९

५९ श्री समयसार नाटक नामाख्य ग्रंथनी स्थूल विषयानुक्रमणिका. ३४५

—♦♦♦—	
श्री पार्श्वनाथ, सिद्ध जगवान, साधु, अने सम्यक्दृष्टीनी स्तुति, मिथ्यादृष्टि वर्णन, मंगलाचरण, आत्मद्वय वर्णन, ग्रंथगौ रवता, कवीनुं साम्यर्थ, ग्रंथ महिमा, अनुभव लक्षण, तथा महिमा, पद्द्वय नव तत्व वर्णन, नाम माला, आ ग्रंथमां क हेवा लायक द्वादश धारना नाम, ग्रंथारजनो मंगलाचरणरूप नमस्कार, आत्म वर्णन, जगवाननी वाणीने नमस्कार	३४५
१ जीवधार वर्णन	८६—३६३
२ अजीव धार अधिकार	१४—३७९
३ करता क्रिया कर्मनो धार	३५—३८४
४ पुन्य पाप एकत्री कथन चतुर्थधार	१६—४००
५ अध्यात्मना अधिकार सहित आश्रवधार	१६—४०७
६ संवर धार	११—४१२
७ निर्झरा धार	६१—४१६
८ बंध तत्वना धारना प्रबंधनो अधिकार	६८—४३८
९ मोक्षधार	५३—४६२
१० सर्व विद्युद्धिधार	२८—४७९
११ स्याद्वादनामा धारनी अंतर्गत ग्रंथमहिमा तथा नवरस	

वर्णन अने चतुर्दश नय इत्यादिक अनेक विषययुक्त	४१—५१३
१२ साध्य वस्तु अने साधक वस्तुना स्वरूपनो धार	५२—५२७
कवी अमृतचंद्र आचार्यनी आलोचना तथा बनारसी दासें जिन प्रतिमानी स्तुति करी तथा वणारसीदासनी पोतानी कथनी.	९—५४४
चवद गुणस्थानक स्वरूप तेमा चोथा गुणस्थानकमाह्वायिकादि सम्यक्त्वनो स्वरूप तथा पांचमा गुणस्थानकमांश्रावकनी एकादश प्रतिमानुं लक्षण	८—५४६
६० सम्यक्त्वस्वरूप स्तवग्रंथनी स्थूलविषयानुक्रमणिका	५७७

१ सूत्रकारनी गाथा तथा सम्यक्त्वप्राप्तिनी अगाठ जेवी जीवनी अवस्था होय तेनो विवरो .	५७७
२ सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय	५८५
३ ग्रंथि जेदवानी रीत	५८८
४ अनिवृत्ति करणे गयो थको जीव जे कर्तव्य करे ते कर्तव्य	५९०
५ सम्यक्त्वना जेदनो विवरो	५९३
६ कारकादि सम्यक्त्वना लक्षण	५९६
७ कर्म ग्रंथनी सैलिये उपशम सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय	६०१
८ पाच सम्यक्त्वनो काल	६०९
९ दश प्रकारनी रुचिरूप सम्यक्त्व	६१३
१० सम्यक्त्वना सडसठ जेद विद्युद्ध व्यवहारथी	६१८
६१ पष्ठीशतक नामक ग्रंथ नेमीचड चंमारीकृत ए ग्रंथ छुद्ध मार्गानुसारीअने जणवा वांचवा तथा साजलवा लायक विचित्र उपदेशे करी युक्त ठे	६२६
६२ संयमश्रेणीतुं स्तवन पंमित उत्तम विजयजीकृत	६९९
६३ लोकनाल द्वात्रिंशिका	७२०
६४ सम्यक्त्व विचारगर्जित महावीरजिन स्तवन.	

उपशमादिक सम्यक्त्वना जेद सविस्तरपणे तथा सम्यक्त्व पामवा नो उपाय अने यथा प्रवृत्त्यादिक त्रण करणतुं स्वरूप इत्यादि.

पांचसम्यक्त्वना स्थितिकालमानादिक तथा गुणगणा .	७५४
उपशम श्रेणी तथा कृपकश्रेणीतुं स्वरूप .	७५४
आठ जेदे पुज्ज परावर्त्त	७७४
काय स्थितिविचार	७७७
सप्तजंगीतुं स्वरूप	७८२

६५ पड्ज्व्य विचार नामाग्रंथ चर्चकरूपे.	७९०
--	-----



सिद्धना पन्नर जेद तेमां दिगम्बरीथोना मत खंमन पूर्वक स्त्री लिंगनी सिद्धता बतावीते	७९०
अजीव ड्व्य विचार तेमा दिगम्बरोनी चर्चा पूर्वक पुज्ज ड्व्यनो विचार सिद्ध कखुंते	७९६
चार प्रकारना अज्ञाव	८०७
नय निक्षेप स्वरूप	८१०
मोहू प्राप्तिंतुं क्रम	८११
आत्म प्राप्ति विधि	८१२
सम्यक्त्वीना आठगुण	८१४
सम्यक्त्वी सोहं बीजध्यावे तेनो अर्थ	८१५

॥ अथ श्री महिम्नस्तोत्रप्रारंभः ॥

महिम्नः पार ते परमलजमाना अपि विज्ञो जवति स्तोतारः समवसृतिचूमो तसु
दित्ताः ॥ यद्विज्ञाद्यास्त्वा तज्जिनवृषजन्तया स्तवयतो ममाप्येष स्तोत्रे हरनिरप
वाद परिकर ॥ १ ॥ स्वरूपं चिद्रूपं किमपि तदरूपं जगवत् श्रुतूपा ब्राह्मी
यदि गदितुमीष्टे न जवतः ॥ ततः कस्य स्तुत्यं किमुपममिदं कस्य विषयः पदे
त्वर्वाचीने पतति न मन कस्य न वचः ॥ २ ॥ यद्वा ॥ पदं शैव केचित्परमम
नपेद्वाह्यसुखं स्तुवति त्वां राज्यादिकपदकृते मंदमतय ॥ जवेद्वा तत्त्वार्थे रतिर
तितरां नैव जवत् पदे त्वर्वाचीने पतति न मन कस्य न वचः ॥ ३ ॥ गुणाना
मानं व्यादविषयतया वाङ्मनसयो न शक्या तत्वज्ञे रपि तव विधातुं स्तुतिरियम् ॥
जवन्नामोच्चारत्पुनरपि ममैतां निजगिर पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यव
सिता ॥ ४ ॥ यद्वा ॥ जटालंकारालंभतमथ वृषां च जगवन् पुनानं विषयं त्वां
प्रथमजिन मत्वा किमु तत ॥ जटां धृत्वा श्रित्वा वृषमहमपि द्वातलमिदं पु
नामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥ ५ ॥ न कोपस्याटोप स्वरिपुपु न च स्वे
ष्वपि तथा प्रशान्तिर्नां कातादिकपरिकरः कश्चिदिति ते ॥ त्रिजोम्यामालोक्याप्यह
ह परमां प्रारंभमा विहंतु व्याक्रोशा विदधत ऽहैके जडधियः ॥ ६ ॥ ध्रुव कश्चि
त्कर्त्ता निखिलजुवनस्यापि स पुन विञ्चुर्नित्यश्चैकः सतनुरतनुर्वा स्ववशतः ॥ स्वयं
सिद्ध्यन्त्यस्मिन्स्तव मतमनाप्तान् हतधिय कुतर्कोयं कश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः
॥ ७ ॥ विगुप्तैरागाद्यैरपि जवति किं सर्वविदहो विना वा सर्वज्ञं ननु जिन किमाप्तो
पि स च किम् ॥ त्वदन्योपि कापि त्रिजगति वताप्तस्वविषये यतोमदास्त्वा प्रत्यमर
वर सज्ञेरत इमे ॥ ८ ॥ त्वमेवाहं न बुद्धो जगति परमेष्ठी च पुरुषो तमोलङ्घ्या चा
स्वान्विबुधगुरुरादीश्वर इति ॥ विज्ञो नानाहानिः समविषममार्गेषु चरता नृणामे
कोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ९ ॥ प्रसादात्ते पुत्रा विषयसुखतान्नाज्यमन्नजन
न के वा सेवातस्तव नयनवामृद्धिमगमन् ॥ तृणो र्क्षणे स्वर्णे हृषदि च सद्दहः पु
नरहो न हि स्वात्माराम विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ १० ॥ जवन्तचाहृहातिगय
महिमेद्वावगर्समुद्भ्रङ्गकिव्यक्त्या रणरणकितात करणत ॥ अर्धीरप्युद्युक्तोखिलजग
दशक्यं स्तवमपि स्तुवन् जिन्हेमि त्वा न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ११ ॥ न श
स्या कस्यास्ता नमिदिनमिपत्तो जिनपते त्वदेकस्वामित्वाक्रमकमलसेवासु रसिको ॥
प्रसादात्ते विद्याधरपतितति र्यत्सविनय स्वयं तस्ये तान्या तव किमनुवृत्तिर्न फल
ति ॥ १२ ॥ तवा विद्या प्राप्य ध्रुवमखिलविद्याधरमहा स्वयं प्राडुर्भाव्य प्रथमम

थ वैताड्यविभ्रताम् ॥ यदेतो इस्साथ्यौ सुरनरवराणामजजतां स्थिरायास्त्वद्भकेस्त्रि
 पुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ १३ ॥ अथावातैश्वर्यं मदनमदविध्वसि च महाव्रतित्वं
 सर्वज्ञत्वमसमविभ्रुतिश्च परित ॥ शिवासगश्रंग. सततमिति नो कस्य कृतिन स्थि
 रायास्त्वद्भकेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ १४ ॥ विवाहादी नेतुर्भुद्गुरुपकृतो विप्र
 तिचव त्वया पारपर्योगतपरिचयान्मोहचरट ॥ तथा दूर नष्ट क्वचिदपि यथाकेव
 लकलाप्रतिष्ठा त्वग्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुद्यति खल ॥ १५ ॥ निजर्था स्पर्धाकुर्नरत
 विभ्ररासीन्मधवता यदाऽपत्तस्यार्धासनमथ सुखं केवलरमाम् ॥ तदेतस्मिन्सर्वं तव
 पदविनये समुचित न कस्याप्युन्नत्यै चवति शिरसस्त्वग्यवनति ॥ १६ ॥ निनंसा
 यां पूर्वं क्लृणमजगणस्वा नरतराद् समं चक्रेणाहो तदिह विपयाणा विपमता ॥ यदे
 तस्यार्चात्र प्रमितफलदैवाशिवसुखं न कस्याप्युन्नत्यै चवति शिरसस्त्वग्यवनति
 ॥ १७ ॥ प्रनो त्वत्पुत्रस्यातुलबलवतो बाहुबलिनस्तपस्तीव्रं तादृक् शरदवधिमानाद
 पि कृतं ॥ निदान ज्ञानस्य ध्रुवमनवदाश्रयमथवा विकारोपि श्लान्प्यो सुवनजयजग
 व्यसनिन ॥ १८ ॥ न सुत्रामा यत्र प्रनवति विधातापि न विभ्रु स वैकुण्ठं कुंठ
 किमपि न जवश्चानवदलम् ॥ जिगीषु स त्वामप्यपरसुरमहुर्मतिरचूत स्मर स्म
 र्त्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्य परिचव ॥ १९ ॥ प्रयुजान् स्वामिन्स्वयमखिलशि
 त्पान्यमुमता कला पुसा स्त्रीणामपि च सकला क्ष्मापतिरपि ॥ कुजालादीस्तास्ता
 न् क्लृणमपि नयन् शिक्लृणवियौ जगद्द्वयै त्वं नटसि ननु वामैव विभ्रुता ॥ २० ॥
 प्रनो तैस्तै सारैरणुनिरखिलैश्चामरवरै रुत रूपं सर्वोत्तमसुखगमगुष्टकमितम् ॥
 त्वदगुष्टस्याग्रे शुनति किल नागारकड्वेत्यनेनैवोन्नैयं धृतमहिमदिव्यं तव वपु
 ॥ २१ ॥ प्रजा प्राज्यं राज्यं स्थविरजननी स्वस्य तनुजास्तपस्यन्नासत्तावपि च विहरन्वा
 हुबलिन ॥ उपेक्षिष्ठा आत्तव्रतनृपसदस्त्राश्च चतुरो विधेये कीडंत्यो न खलु परतत्रा
 प्रभुधिय ॥ २२ ॥ यदा नो रत्नाना त्रयमखिलदौर्गत्यहरण निदानं सपत्नेस्त्रिभुवनज
 नानामनुदिनम् ॥ जवान् योगक्षेमावपि विरचयन्मन्मथजये त्रयाणा रक्षायै त्रिपुर
 हर जागर्त्ति जगताम् ॥ २३ ॥ यथा पूर्वं मुग्धास्तवसङ्गपदेशायुगलिन. सदा स्वामि
 न्नीशाजनिपित सदाचारचतुरा ॥ तथा कस्क संप्रत्यपि न विशदेषु त्वद्भुदितश्रुतौ श्र
 द्वा वध्वा दृढपरिकर कर्मसु जन ॥ २४ ॥ तपस्तीव्रं ब्रह्मव्रतनियमनिष्ठा बहुवि
 धा क्रियाकष्टास्त्रिष्ठा अपि जिनप इष्टाशयतया ॥ त्वदाज्ञावज्ञाया नियतमहितायै
 व जविनां ध्रुवं कर्तुं श्रद्धाविधुरमनिचाराय हि मखा ॥ २५ ॥ क्लृमानृन्मुख्या के
 नियतमधिमात्रानपि सदा स्वयंस्थान् शास्त्रौघान्नदधतितरां यस्य हतये ॥ अविभ्रं तं

निघ्नन्नसमसमयस्तामसमृगं त्रसंतं ते ऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरजस ॥ १६ ॥
 परित्राम्य क्लेशार्जितमपि सहस्रेण शरदा मदाश्रिष्टाजलं सपदि मरुदेव्यं तदपि चेत् ॥
 प्रजो निस्नेहं सा व्रतसमयसर्वावगणनादवैति त्वाम-क्षा वत वरद सुधा युवतय
 ॥ १७ ॥ महानंदे यद्यप्यसि जिन दवीयस्यपि पठे न रुष्टस्तुष्टश्च त्रिभुवनजनेषु क
 चिदपि ॥ जवन्नाम स्वामिन्स्वमनसि महामंत्रमनिशं तथापि स्मर्तृणां वरद परमं
 मंगलमसि ॥ १८ ॥ प्रजो प्राणायामान्यसनरसिकत्वान्निजमन. समाधावाधाया
 खिलविषयतोक्ताणि युगपत् ॥ इतं प्रत्याह्वय स्थिरनिहितनासाग्रनयना दधत्यंत
 स्तलं किमपि यमिनस्तत्किल जवान् ॥ १९ ॥ सुरदु खः कुंजस्त्रिदशसुरजिस्त्वं सुरम
 णि. पिता माता भ्राता विचुरपि सुहृत्त्वं च सुगुरु ॥ परात्मा ब्रह्मापि त्वमसि पर
 मं देवतमतो न विद्वस्तत्त्वं द्यमिहहि यत्त्वं न जवति ॥ २० ॥ अकाराद्यैर्वैणै
 स्त्वयि परिणतान् पंच परमेष्ठिनः स्पष्टं पंचाक्षररचनया नामिनिगदन् ॥ कलाना
 दव्यक्तं किमपि परमब्रह्मविषयं समस्तं व्यस्तं त्वा शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥ २१ ॥
 न रागाद्यैर्यस्तो न पुनरनुकंप्यो मदपर रुपास्तु स्त्वचो न्यो न जगति न तेन्य पुनरजम् ॥
 स्वयं तैरत्यार्त्तैः किमित्तरसुरैश्चेति विमृशन् प्रियायास्मैधात्रे प्रविद्धतनमस्योस्मि
 जवते ॥ २२ ॥ नमो नासक्ताय क्वचिदपि विरक्ताय च नमो नम. संबु-क्षाय प्रशमद
 मरु-क्षाय च नमः ॥ नमः सर्वज्ञाय स्मरणपरतद्भाय च नमोनमः सर्वस्मै ते तदि
 दमितिशर्वाय च नमः ॥ २३ ॥ दलितरजसे शश्वद्विश्वाचिताय नमोनमः प्रहृततम
 से श्रीसर्वज्ञाधिपाय नमोनम ॥ जनहितरुते तुच्यं सत्त्वाधिकाय नमोनमः प्रमहसि
 पदे निस्त्रिगुण्ये शिवाय नमोनमः ॥ २४ ॥ कुसुमबटुरिवाहं तद्भुतो किचनार्हं कृतिनि
 रुरसि कवे वा गुणत्वादधार्यम् ॥ जिनवर जिनहर्षोत्कर्षतोकार्पमेव वरद चरणयोस्ते
 वाक्यपुष्पोपहारं ॥ २५ ॥ प्राणुश्रीसोमवज्ञोऽजनिपत मुनयोमौक्तिकानीव शु-क्षास्ते
 प्वप्येकावली च प्रगुणगुणवती श्रीमदाचार्यपंक्ति ॥ जीयाद्वाज्यं यदूनामिव गुरुज
 यचक्षब्ह्यश्रीमुनी ऽस्तस्यामप्येप चिंतामणिरुचिररुचिर्नार्यकः कृष्णदेव ॥ २६ ॥
 निहितचरमपादं श्रीमहिन्नः स्तवस्य त्रिभुवनमहितस्य श्रीयुगादीश्वरस्य ॥ प्रमरइव
 सदा तत्पादपद्मोपजीवी रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेत दधत्त ॥ २७ ॥ एव शारदस्तो
 मसुंदरयश.स्तोमं युगादीश्वर चेतोनूजयचड्मालिनिरिष्टुल्यान्वहं योगिनि. ॥ ज्ञानं
 प्राप्य विशाजराजसदृशब्हादं समाश्रीपते मुक्त्यै मूर्धनि रत्नशेखररमा ब्रह्मैकतेजो
 मयी ॥ २८ ॥ इतिश्रीयुगादिदेवमहिन्नः स्तोत्रं संपूर्णम् ॥

॥ अथ क्लृमाकल्याणजीकृत चतुर्विंशतिजिनस्तुतिप्रारंभः ॥

शार्दूल विक्रीडितवदं ॥ अथ रूपजस्तुति प्रारंभः ॥ सङ्गत्या नतमौलिनिर्जरवरत्राजि
 क्षुमौलिप्रजा समिश्रारुणदीप्तिशोनिचरणानोज ह्य सर्वदा ॥ सर्वज्ञ पुरुपोत्तम सुच
 रितो यमार्थिना प्राणिना न्यूनाङ्गूरिविचूतये मुनिपति श्रीनानिस्रनुजिन ॥ १ ॥ सद्बो
 धोपचिता मदैव दधताप्रौढप्रतापश्रियो येनाज्ञानतमोवितानमखिलं विक्रिसमत
 कृण ॥ श्रीशत्रुंजयपूर्वशैलशिखरं नास्वानिवोद्भासयन् नव्याजोजहित स एष जयतु
 श्रीमारुदेवप्रभु ॥ २ ॥ योविज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुर्य सर्वलोकाश्रिता सिद्धिर्येन वृता स
 मस्तजनता यस्मै नतितन्वते ॥ यस्मान्मोहमतिर्गता मतिनृतांयस्यैव सेव्यं वचो यस्मि
 न्विश्वगुणास्तमेव सुतरा वदे युगादीश्वर ॥ ३ ॥ अथ अजितस्तुति प्रारंभ ॥ मालिनीवदं ॥
 सकलसुखसमृद्धिर्यस्य पादारविदे विलसति गुणरक्ता नक्षराजीव नित्यं ॥ त्रिभुवनज
 नमान्य शातशुद्धानिरम्यः स जयति जिनराजस्तुंगतारगतीर्थे ॥ १ ॥ प्रभवति किल नव्यो
 यस्यनिर्वर्णनेन व्यपगतदुरितोव प्राप्तमोदप्रपंच ॥ निजबलजितरागद्वेषविद्वेषिवर्ग
 तमजितवरगोत्रं तीर्थनाथं नमामि ॥ २ ॥ नरपतिजितगत्रोर्वशरत्नाकरेडु सुरपतिय
 तिसु ख्यैर्नेकिदद्वै समर्थ ॥ दिनपतिरिव लोकेऽपास्तमोहांयकारो जिनपतिरजितेश
 पातुमां पुण्यमूर्ति ॥ ३ ॥ अथ सचवस्तुति ॥ स्वर्धरावदं ॥ यज्ञत्या सक्तचित्ता प्रचु
 रतरजवत्रातिमुक्ता मनुष्याः सजाताः साधुजावोद्भसितनिजगुणान्वेषिण सद्यएवा ॥ स
 श्रीमान्सचवेश प्रशमरसमयोविश्व विश्वोपकर्ता सद्गर्ता दिव्यदीप्ति परमपदकृते से
 व्यता नव्यलोका ॥ १ ॥ शुक्लव्यानोदकेनोज्वलमतिशयितस्वञ्जावाद्भतेन स्वस्मादा
 दृश्य वृत्तं शिवपदनिगम कर्मपकप्रपच ॥ नीरधं दूरयित्वा प्रकृतिमुपगतोनिर्विकल्पस्वरू
 प सेव्यस्ताद्धैव्यजोसो जगति जिनपतिर्वातराग सदैव ॥ २ ॥ वादौ विद्योतिरत्नप्रकर
 इव परित्राजते सर्वकाले यस्मिन्नि शेषदोषव्यपगमविशदे श्रीजितारेस्तनूजे ॥ ३ ॥ इ प्रा
 पो इष्टसत्त्वे स्फुटगुणनिकर शुद्धबुद्धिक्लृमादि कल्याणश्रीनिवास स जवतिवद
 ताऽन्यर्चनीयो न केषा ॥ ३ ॥ अथ अजिनदनस्तुतिप्रारंभ ॥ इतविलंबितवदं ॥ विश
 दशारवसोमसमानन कमलकोमलचारुविलोचन ॥ शुचिगुण सुतरामजिनदन ज
 य सुनिर्मलताचितनूधन ॥ १ ॥ जगति कांतहरीश्वरलाठितक्रमसरोरुह कामरूपा
 निधे ॥ मम समोहितसिद्धिविधायकं त्वदपर किमपीह न तर्कये ॥ २ ॥ प्रवरसंवर स
 वरनूपतेस्तनय नीतिविचक्षण ते पदं ॥ शरणमस्तु जिनेश निरतर रुचिरनक्तिसुयुक्तिनृ
 तो मम ॥ ३ ॥ अथ सुमतिस्तुति प्रारंभ ॥ उपेड्वज्जावदं ॥ सुवर्णवर्णो हरिणासव

षो मनुवनं मे सुमतिर्बलीयान् ॥ गतस्ततो डष्टकुट्टिरागद्विपेड नैव स्थितिरत्र कार्या
 ॥ १ ॥ जिनेश्वरो मेघनरेडस्रनुर्वनोपमो गर्जति मानसे मे ॥ अहो गुरुद्वेषदुताशन त्वा म
 सेो शमं नेष्यति सद्यएव ॥ २ ॥ इत् सुदूरं ब्रज डष्टबुद्धे समं डुरात्मीयपरिह्वेन ॥ सु
 बुद्धिर्नर्चा सुमतिर्जिनेशो मनोरमः स्वातमितो मदीयं ॥ ३ ॥ अथ पद्मस्तुतिप्रारंभः
 बुजगप्रयातबंदः ॥ उदारप्रज्ञामंडलैर्जासमानः कृताख्यंतडुर्दांतदोषापमानः ॥ सुसी
 मांगजश्रीपतिर्देवदेव स्सदा मे मुदान्यर्चनीयस्त्वमेव ॥ १ ॥ यदीयं मनःपंकजनिव्य
 मेव त्वयालंरुत ध्येयरूपेण देव ॥ प्रधानस्वरूपं तमेवातिपुण्यं जगन्नाथ जानामि लो
 के सुधन्यं ॥ २ ॥ अतो धीशपद्मप्रज्ञानंदधाम स्मरामि प्रकामं तवैवाग नाम ॥ मनो
 वाढितार्थप्रदं योगिगम्यं यथा चक्रवाको रवे र्दाम रम्यं ॥ ३ ॥ अथ सुपार्श्वजिनस्तुतिप्रा
 रंभ तोटकबंदः ॥ जयवतमनंतगुणैर्निनृत पृथिवीसुतमद्भुतरूपचृतं ॥ निजवीर्य
 विनिर्जितकर्मबलं सुरकोटिसमाश्रितपत्कमलं ॥ १ ॥ निरुपाधिकनिर्मलसौरव्यनि
 धिं परिवर्जितविश्वडुरतविधिं नववारिनिधेः परपारमिम परमोज्वलचेतनयोन्मिलितं
 ॥ कल यौतसुवर्णशरीरधर शुजपाशर्वसुपाशर्वजिनप्रवरम् ॥ विनयावनत प्रणमामि
 सदा हृदयोद्भवन्नरितरप्रमुदा ॥ ३ ॥ अथ चडप्रज्ञाजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ वशस्थबंदः ॥
 अर्नंतकातिप्रकरेण चारुणा कलाधिपेनाश्रितमात्मसाम्यत ॥ जिनेड चडप्रज्ञ देवमुच
 मं नवतमेवात्महित विजावये ॥ १ ॥ उदारचारित्रनिधे जगत्प्रज्ञो तवाननांजोजविलोक
 नेन मे ॥ व्यथा समस्तास्तमितोदित सुखं यथा तमिस्त्रादिवचमर्कतेजसा ॥ २ ॥ सदैव संसे
 वनतत्परे जने नवति सर्वेपि सुरा सुदृष्टयः ॥ समग्रलोके समचित्तवृत्तिना त्वयैव संजा
 तमनोनमोस्तु ते ॥ ३ ॥ अथ सुविधिजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ वसततिलकाबंदः ॥ विश्वाचिव
 द्यमकरांकितपादपद्म सुग्रीवजात जिनपुगव शातिसद्म ॥ नव्यात्मतारणपरोत्तमपानपा
 त्र मा तारयस्व नववाटिनिधेर्विरूपात् ॥ १ ॥ निःशेषदोषविगमोज्ज्वलमोक्षमार्गं न
 व्या श्रयंति नवदाश्रयतो मुर्नाड ॥ संसेवित सुरमणिर्बहुधा जनाना किनाम नोजव
 ति कामितसिद्धिकारी ॥ २ ॥ विद्धं रूपारसनिधिं सुविधे स्वयंनूर्मेत्वा नवतमिति विद्धप
 यामि तावत् ॥ देवाधिदेव तव दर्शनवल्लजोह शश्वद्भवामि शुवनेश तथा विधेहि ॥ ३ ॥
 अथ गीतलजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ शार्दूलविक्रीडितबंदः ॥ कल्याणांकुरवर्द्धने जलधर सर्वा
 गिसंपत्कर विश्वव्यापियशः कलापकलित कैवल्यलीलाश्रित ॥ नंदाकुहिसमुद्भव दृ
 ढरथद्वोष्णीपतेर्नंदनं श्रीमत्सूरतविदरे जिनवर वदे प्रह्वं शीतलां ॥ १ ॥ विश्वाज्ञानविद्यु
 ष्टिसिद्धिपदवीहेतुप्रबोध दधद्भव्याना वरजकिरकमनसा चेतः सुमुह्यासयन् नित्यान
 दमयप्रसिद्धसमय सद्भूतसौरव्याश्रयो डुष्टानिष्टतमः प्रणाशतरणिर्जीयाङ्गिनः शीत

ल ॥ १ ॥ सङ्गत्तया त्रिदशेश्वरैः कृतनुतिर्जास्विजुषालं कृतिः सत्कव्याणसमद्युतिः शृणु
 मति कव्याणकृतसगति ॥ श्रीवत्सांकसमन्वितस्त्रिभुवनत्राणे गृहीतत्रतो नूयाङ्गकि
 नृता सवेष्टवरद श्रीशीतलस्त्यैरुत् ॥ ३ ॥ अथ श्रेयासजिनस्तुतिप्रारज ॥ हरिणी
 वद ॥ चिरपरिचितागाढव्यासा सुबुद्धिपराद्मुखी निजबलपरिस्फूर्त्योदया समग्रतया
 मम ॥ व्यपगतवती दूर छुटा स्वनिष्टकुट्टिता अपचितसहा सद्योचूत्वा यदीयसुदृष्टित ?
 निरुपमसुखश्रेणीहेतुर्निराकृतदुर्दशा श्रुचितरगुणग्रामावासो निसर्गमहोज्वला ॥ हृदय
 कमले प्राङ्गुता सुतत्वरुचिर्मम विदलितनवत्रातिर्यस्याप्यजस्त्रमनुस्मृते ॥ १ ॥ उपक
 तिमतिर्दाने दहो निरस्तजगद्वय समुचितकृतिर्विज्ञानाद्युप्रकाशितसत्पथ ॥ नृपगण
 गुरोर्विभोर्वशे प्रजाकरसन्निज स नवतु मम श्रेयासेन प्रबोधसमृद्धये ॥ ३ ॥ अथ वासुपू
 ज्यस्तुतिप्रारज ॥ रथोऽताठं ॥ पूर्णचङ्कमनीयदीधिति त्राजमानसुखमद्भुतश्रि
 या ॥ शातदृष्टिमनिरामचेष्टित शिष्टजंतुपरिवेष्टितं परं ॥ १ ॥ नष्टदृष्टमतिनिर्धमीश्वर संस्मर
 त्तिरिह नूरिर्निर्नृनि ॥ ह्रीणमोहसमयादनतरा प्रापि सत्यपरमात्मरूपता ॥ १ ॥ पार्थिवे
 शवसुपूज्यवेशमनि प्राप्तपुण्यजनुपं जगत्प्रभु ॥ वासुपूज्यपरमेष्ठिन विश के स्मरति नहि
 त विपश्चित ॥ ३ ॥ अथ विमलजिनस्तुतिप्रारज ॥ मदाकाताठं ॥ संसारेस्मिन्महतिम
 हिमामेयमानंदिरूपं त्वा सर्वज्ञं सकलसुकृतिश्रेणिससेव्यमानं ॥ दृष्ट्वा सम्यग्विमलसद
 सज्ज्ञानयाम प्रधान सप्राप्तोह प्रशमसुखदां संनृतानदवीचि ॥ १ ॥ येतु स्वामिन् कुमति
 पिहितस्फारसद्वोधमूढा सौम्याकारां प्रतिकृतिमपि प्रह्यते विश्वपूज्या ॥ ६ ॥ पोडूते कबु
 धितमनोवृत्तय स्यु प्रकाम मन्ये तेषा गतशृणदृशा का गतिर्जाविनीति ॥ १ ॥ इयामा
 सूनो प्रतिदिनमनुस्मृत्य विज्ञानिवाक्य हित्वानार्थं कुमतिवचनं ये शुवि प्राणजाज ॥ पू
 णानंदोद्भसितहृदयास्त्वां समाराधयंति श्लाघ्याचारा प्रकृतिमुजगा संति धन्या स्तए
 वा ॥ ३ ॥ अथ अनतस्तुतिप्रारज ॥ स्रग्विणीठं ॥ यस्य जव्यात्मनो दिव्यचेतोगृहे सर्वदा
 ऽनतचित्तामणिर्योतते ॥ याति दूरे स्वतस्तस्य छुष्टापदो विश्वविज्ञानविचं नवेदक्या ॥ १
 यस्तु सर्वज्ञरूप स्वरूपस्थित वीक्ष्यसद्भावत सिहसेनात्मज ॥ अज्ञुतामोदसंदोहसपूरि
 तोमन्यते धन्यमात्मीयनेत्र ॥ १ ॥ सोपवर्गानुगामिस्वजावोज्ज्वला व्यूढमिष्यात्ववि
 डावणे तत्परा बंधुरात्माऽनुनूतिप्रकाशोद्यतां श्रुऽसम्यक्त्वसंपत्तिमालंबते ॥ ३ ॥ यु
 ग्मं ॥ अथ धर्मस्तुतिप्रारज ॥ कामक्रीडाठं ॥ नास्वज्ञान श्रुऽत्मान धर्मेशान स
 दधान शक्त्यायुक्तं दोषोन्मुक्तं तत्त्वासक्तं सङ्गत् ॥ शश्वष्टांतं कीर्त्या कांतं ध्वस्तध्वातं वि
 श्राम ह्मिषावेगं सत्यादेश श्रीधर्मेश वदध्वा ॥ १ ॥ नि शोपार्थप्राङ्मुक्ता सिधेर्नर्त्ता संसर्त्ता
 डुर्त्तावाना दूरेहर्त्ता दीनोऽर्त्ता सस्मर्त्ता ॥ सङ्गकेन्योमुक्तेर्दाता विश्वत्राता निर्वाता सुख्यो

नक्तया वाचोयुक्तया चेतोवृत्त्या ध्येयात्मा ॥ १ ॥ सम्यग्दृग्निः साक्षात्दृष्टो मोहास्पृष्टो ना
 कृष्ट. स्रोतोग्रामैः संपज्येषुः साधुश्रेष्ठः सत्प्रेष्ठ ॥ श्रद्धायुक्तस्वार्तिर्जुष्टो नित्यं तुष्टो निर्दुष्ट
 स्याज्यो नैव श्रीवज्रांको नष्टातको नि शंक ॥ ३ ॥ युग्म ॥ अथ शातिजिनस्तुतिप्रारंभः ॥
 दुतविलंबितबंदः ॥ विपुलनिर्मलकीर्त्तिरान्वितोजयति निर्जरनाथनमस्कृत ॥ जय
 विनिर्जितमोहधराधिपो जगति य. प्रच्युशातिजिनाधिपः ॥ १ ॥ विहितशातसुधारसमङ्ग
 नं निखिलज्जयदोपविर्जित ॥ परमपुण्यवतां नजनीयतां गतमनंतगुणैः सहित सतां
 ॥ २ ॥ तमचिरात्मजमीशमनीश्वरं नविकपद्मविबोधदिनेश्वरं ॥ महिमधाम नजामि जग
 त्रये वरमनुत्तरसिद्धिसमृद्धये ॥ ३ ॥ त्रिनिर्विशेषकं ॥ अथ कुंभुजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ गी
 तपद्मिमाह ॥ जयजय कुंभुजिनोत्तमसत्तम तत्त्वनिधान धर्मजो ज्वलमानसमानस
 हंससमान ॥ ज्ञानाहादकमुख्यमहोदतकर्मविमुक्त विपमविपयपरिभोगविरक्त शुभाश
 ययुक्तः ॥ १ ॥ जयजय विश्वजनीन मुनिव्रजमान्य विद्युद् चेतन चारुचरित्रपवित्रितलोक
 विद्युद् निरुपममेरुमहीधरधीर निरंतरमेव गर्वविर्जितसर्वसुपर्वविनिर्भितसेव ॥ २ ॥
 जयजय सूरनरेश्वर नंदनचदनकल्प वासक विश्वविनाशविनाशक वीतविकल्प ॥ नि
 र्मलकेवलबोधविलोकितलोकालोक प्राङ्मूतमहोदयनिर्वृतिनित्यविशोक ॥ ३ ॥ अ
 थारजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ रामगिरिरागेण गीयते ॥ दिव्यगुणधारकं नव्यजनतारकं
 डुरितमतिवारकं सुकृतिकांत ॥ जिनविषमसायकं सर्वसुखदायकं जगति जिननायकं
 परमशांत दि० ॥ १ ॥ स्वगुणपर्यायसंमीलित व्याहृत विगतपरजावपरिणतिमखंडं ॥ सर्व
 संयोगविस्तारपारंगत प्राप्तपरमात्मरूपं प्रचंडं ॥ २ ॥ दि० ॥ साधुदर्शनवृत्तं जाविकै
 प्रस्तुत ॥ प्रातिहार्याष्टकोज्ञासमानं ॥ सततमुक्तिप्रदं सर्वदा पूजितं ॥ शिवमपरसार्वभौ
 मप्रधानं ॥ ३ ॥ अथ महिस्तुतिप्रारंभः ॥ कुंभसमुद्भव संमदाकर सगुणवरहेमद्विजि
 नोत्तम देव जयजय विश्वपते ? कृत्याकृत्यविवेकिता जिनसमुचिता हे त्वयि जागर्ति जि
 नेश ज० ॥ १ ॥ नित्यानंदप्रकाशिका त्रमनाशिका हे तव शुभदृष्टिरनीश ज० ॥ ३ ॥ शुद्धिनि
 बंधनसन्निधे सजुणनिधे हे वर्जितसर्वविकार ज० ॥ ४ ॥ निजिनरुपाधिकसंपदा शो
 जित सदा हे निर्मलधर्मधुरीण ॥ ५ ॥ १ ए ॥ अथ मुनिमुव्रतस्तुति प्रारंभः ॥ अथान्या
 गेयपद्मि ॥ उत्तमचेतनधर्मसमृद्धजगत्पते ॥ नित्यानित्यपदार्थनिचयविलसन्मते ॥ नि
 जविक्रमजितमोहमहोद्भटन्नूपते ॥ श्रीपद्मातनुजात सुजातहरिद्युते ॥ १ ॥ श्रीमुनिसु
 त सुव्रतवेशक सङ्गानां कृतसजुरुद्युनवाक्यसुधारसमङ्गानाः हे प्रणमंति नवतमनंतसु
 खाश्रितं ॥ केवलमुज्वलजावमखंडमनिर्दितं ॥ २ ॥ तेनि.संशयमेव जगन्नयवदिता ॥
 सज्ञावेन नवति सुदृष्टयानंदिता ॥ कृत्यं स्वोचितमेव यतः किल कारणां जनयति नात्म

विरुद्धमिहासाधारण ॥ ३ ॥ अथ नमिजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ पचचामरठंड ॥ नमीश
 निर्मलात्मचूप सत्यरूप शाश्वत परा-ईर्षसिद्धिसोधमूर्ध्वसत्स्वजावत स्थित ॥ विद्या
 य मानसाच्चकोशदेशमध्यवर्तिन स्मरामि सर्वदा जवतमेव सर्वदर्शिन ॥ १ ॥ प्रफुल्लकाव
 लाठन प्रनूततेजसो य ते दिवाकरस्य वा महेश्वरानिदर्शनेन मे ॥ प्रमादवर्द्धिनी सुदुर्म
 तिर्निजोव दुर्नगा गता प्रणाशमाशु हृत्कजे विनिद्धिता जवत् ॥ २ ॥ निरस्तदोपडुष्ट
 कष्टकार्यमर्थसस्तवो जवे जवे जवत्पदाबुजैकसेवक प्रनो ॥ जवेयमीदृश नृश म
 दीयचित्तचितित तव प्रसादतो जवत्त्ववध्यमेव सत्वरं ॥ ३ ॥ अथ नेमिजिनस्तुतिप्रारंभ ॥
 उपजातिठंड ॥ विद्युद्धविज्ञाननृता वरेण शिवात्मजेन प्रशमाकरेण ॥ येन प्रयासे
 न विनैव कामं विजित्य विक्रातवर प्रकाम ॥ १ ॥ विहाय राज्यं चपलस्वजाव राजीम
 ति राजकुमारिका च ॥ गत्वा सलीजं गिरिनारशैलं जेजे व्रतं केवलमुक्तियुक्तं ॥ २ ॥ नि
 शेषयोगीश्वरमालिरत्नं जिनद्वियत्वं विहितप्रयत्नं ॥ तमुत्तमानंदनिधानमेक नमामि ने
 मि विलसद्विवेक ॥ ३ ॥ अथ पार्श्वजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ पचचामरठंड ॥ अयाम त जि
 न सदा मुदा प्रमादवर्जित स्वकीयवाग्विलासतो जितोरुमेधगर्जितम् ॥ जगत्प्रकामका
 मितप्रदानदह्मदहत पद दधानमुच्चकैरकेतवोपलक्षित ॥ १ ॥ सतामवयजेदकं प्र
 नूतसपदा पद बलद्वयपदद्वयजापतीक्षणक्षणप्रद ॥ सदैव यस्य दर्शनं विशाविर्मेदि
 तेनसा ॥ निहंत्वशातजातमात्मनकिरक्तचेतसा ॥ २ ॥ युग्मा ॥ अवाप्य यत्प्रसादमादित
 पुरुश्रियो नरा जवति मुक्तिगामिनस्तत प्रजाप्रजास्वरा ॥ नजेयमाश्वसेनिदेवदेवमेवस
 त्पद तमुच्चमानसेन शुद्धबोधवृद्धिजातदं ॥ ३ ॥ अथ वीरजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ पृथ्वी
 ठंड ॥ वरेण्यगुणवारिवि परमनिर्वृत सर्वदा समस्तकमलानिवि सुरनरेड
 कोटिश्रित ॥ तथापि युणवर्जितो विगतनावरौख्यो धन सुमुक्तजनसंगमस्त्वम
 सि वर्द्धमान प्रनो ॥ १ ॥ जिनेड जवतोद्भुत मुखमुदारविवस्थित विकारपरिव
 र्जितं परमशातमुष्कित ॥ निरीद्वय मुदितेक्षण क्षणमितोस्मि यद्भावना सदैव जग
 दीश्वरोद्भवत सैव मे सर्वदा ॥ २ ॥ विवेकिजिनवद्वज्ज समदुरात्मना उद्ध्वज डुरतडुरि
 तव्यथाचरनिवारणे तत्पर ॥ तवाग पदपद्मयोर्धुगमनिचवीरप्रनो प्रनूतसुखसिद्धये
 मम चिराय सपद्यता ॥ ३ ॥ इत्थं चतुर्विंशतिसख्ययैव प्रसिद्धिजाजा वरतीर्थराजा ॥ श्री
 जैनवाक्यानुसृतप्रबंधा वृत्तैरहीना प्रणुतिर्नवीना ॥ ७५ ॥ गणाधिपश्रीजिनलानसूरिप्रभु
 प्रसादेनविनिर्मितेय ॥ जिनप्रणीतामृतधर्मसेविह्मादिकल्याणबुधात्मबुधैः ॥ ७६ ॥ यु
 ग्मा ॥ यस्या प्रसादात्परिपूर्णजाव नूत सुनिर्विघ्नतया स्तवोय ॥ जगद्भयोजतुहितैकनिष्ठा
 वाग्देवता सा जयतादजस्य ॥ ७७ ॥ इति श्रीमच्चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः समाप्ता ॥

॥ श्रीसर्वज्ञायनमोनम. ॥

अथश्री मुनिसुंदरसूरिकृत अध्यात्मकल्पद्रुमो
बालावबोधसहितः प्रारज्यते

॥ प्रथम अर्थकर्तानुं मंगलाचरण ॥

श्रीशंखेश्वरपार्श्वेशं प्रणताञ्जीष्टदायकं ॥
प्रणमामि परमप्रेम्णा सर्वाञ्जीप्सितसिद्धये ॥ १ ॥
सर्वज्ञं सर्वज्ञापान्निः सर्वसंसत्प्रबोधकं ॥
सर्वसत्वहितं वंदे वर्धमानजिनेश्वरं ॥ २ ॥

अध्यात्मकल्पद्रुमसंज्ञकस्य शास्त्रस्य संविज्ञाहितावहस्य ॥
वार्त्ताञ्जिरप्रौढमतिप्रतुष्ट्यै बालावबोधा विदधे विवृत्ति ॥ ३ ॥

ह्वेग्रंथनेत्रादि ग्रंथकार प्रथमस्थापनानुं सूत्रकहेते
अथायंश्रीमान् शांतनामा रसाधिराज. सकलागमादि
सुशास्त्रार्णवोपनिपद्भूतसुधारसायमान ऐहिकामुष्मिका
नंतानंदसंदोहसाधनतया पारमार्थिकोपदेश्यतया सर्वरस
सारज्ञूतत्वाच्च शांतरसज्ञावनात्माध्यात्मकल्पद्रुमान्निधा
नग्रंथांतरग्रंथननिपुणेन पद्यसंदर्भेण जाव्यते ॥

अर्थ ॥ पूर्वश्री मुनिसुंदरसूरिरे त्रिदशतरंगिणी शुर्वावली प्रमुख ग्रंथकीया ते
वारपठी आग्रंथकीयो तेनणीइहां अथशब्दाण्यो तेमाटे अथकहेतां एटलायकी
अनंतर जेजेनशासननेविषे प्रत्यह् शांतनामाजे रसाधिराज रसजे १ शृंगार २ हा
स्य ३ करुणा ४ रौड ५ वीर ६ जयानक ७ बीजत्स ८ अद्भुत ९ शांत एनवमथ्येअ
धिराजके ० शिरोमणी तेहुं मुनिसुंदरसूरि पदके ० काव्यतेहनो संदर्भजेरचना तेपोकरी
ने जाव्यतेके ० विचारुंहुं एटलेपूर्वमनमांधखोळे तेकाव्यबंधे प्रगटकरीकहुंहुं के
हेवोढेते रसाधिराज श्रीके ० मोक्षरूपिणीलक्ष्मी तेढे फलजेहुं एहवो वलीकेहेवोढे

आगमजे श्रीजिनेश्वरप्रणीत सिद्धांत तेऽद्यादेऽने सकलजे सुशास्त्रकहेता धर्मशा
स्त्र तैरूपीउ अर्णवजे समुद्र तेहनुं उपनिषद्भूतके० सारनूत एह्वो सुधारसायमा
नके० अमृतसरसुव्यते ह्वेअन्यशृंगारादिक रसतज्जिने केवलशातरसनेज शावास्तेजा
वबु तेहनोहेतुकहेठे एकतोऐहिकामुष्मिकके० इहलोकसंबंधी अने आमुष्मिकके०
परलोकसंबंधी जेअनतअ्यानदनो सदोहके० समूह तेनुंसाधनठे तेहेतुयेकरीने वली
बीजोहेतुकहेठे परमार्थिकजे मोहार्थ तेहनाजेजाणनार तेहनेउपदेशदेवायोग्यठेए
टलेमोहार्थनाउपदेशकजे तीर्थकर गणधरादिक तेआशांतरसनोज उपदेशकरे तेऐक
रीने वलीबीजोहेतुकहेठे जेआशांतरसते सर्वरसनेविपे सारनूतठे तेहेतुथकी ह्वे
पद्यसंदर्भकहेबुंठे तेकेहेठे शातरसजावनास्वरूप अध्यात्मकल्पद्रुम एह्वेनामेजेग्रंथ
विशेष तेहनुं ग्रंथनजेरचना तेहेनेविपे निपुणठे मनइच्छित अध्यात्मज्ञान आपवा
ने कल्पवृक्षनीपेठेसमर्थ तेमाटेआग्रंथनुंनाम अध्यात्मकल्पद्रुम जाणवु

जयश्रीरांतरारीणां लेजे येन प्रशातित ॥

तं श्रीवीरजिनं नत्वा रसं शांतो विज्ञायते॥१॥

अर्थ ॥ ह्वेग्रंथनेआदे अथकर्त्ता मंगलाचरणकहेठे जेऐप्रशातितके० उल्लृष्टशां
तरसथी क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष ए ठए अतरगशत्रुठे तेअनेजीतीने जय
जङ्घापामीठे एह्वाते श्रीवीरजिनप्रते दुंमुनिमुंदरसरि नमस्कारकरीने शांतनामाजे
रस तेने जावुंठुं एटले समुचितेष्टदेवताने नमस्कारजङ्घण ग्रंथारजेमंगलिककद्यु ॥१॥

सर्वमगलनिधौ हृदि यस्मिन् संगते निरुपमं सुखमेति ॥

मुक्तिशर्म च वशीभवति जाक् त बुधा नजत शांतरसेजं॥२॥

अर्थ ॥ ह्वेशांतरसनुं महात्म्यकहेठे बुधाके० हेविवेकीजनो तमे आ सर्वमांग
व्यनुं निधान एह्वोजे शातनामारसाधिराज तेप्रतेनजो केमके एशातरस जेनाशुद
यमाआव्यो तेप्राणी अनुपम सर्वार्थसिध्यादिकनाजेसुख तेप्रतेपामें वलीजे रुदयमां
आवेथके जेमोहुरुखतेपण डाग्के० तत्काल थोडाकालमाज वशथाय ॥ २ ॥

समतैकलीनचित्तो ललनापत्यस्वदेहममतामुक् ॥ विप

यकपायाद्यवशः शास्त्रगुणैर्दयितचेतस्कः ॥ ३ ॥ वैरा

ग्यशुद्धधर्मा देवादिसतत्वविधिरतिधारी ॥ संवरवान्

शुचवृत्तिः साम्यरहस्य नज शिवायिन् ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे साम्योपदेशयोग पुरुपनाविज्ञेपण द्वारैकरीने ग्रंथकर्ता ग्रंथमध्येक हेवाना सोल द्वारकहेते हेमोद्धारिपुरुपतुं साम्यरहस्यजे समतानुसार तेप्रतेज तेकहेवोयइनेनज जे एकतो समतासाथे लीनचित्तकरीने एटलेएपहेलुं द्वारपण कष्ट वली वीजुं ललनाजे स्त्रीनीममतामोचन द्वार व्रीजुं अपत्यजे पुत्रादिकसंततिनी ममतामोचन द्वार चोथुं स्वके० धननीममतामोचन द्वार पांचमुं देह तेहनीममतार्थे र हितयको एटलेपांचमुं देहममतामोचन द्वार ठुतुं विपयजे शब्दादिकनोनिग्रहकरवो सातमुं कषायजे क्रोधादिक तेनोनिग्रहकरवो इहां आदिशब्दथी राग द्वेष प्रमादादि क तेदुने अवश्यके० आधीननही एहवोथकोरहे तथा शास्त्रजे जेनागम तेहना गुणजे हेयोपादेयादिक तेणेकरीने दस्युंतेचित्तजेणे एटलेशास्त्रगुणते आठमुं द्वार अनेचित्तदमननामे नवमुं द्वार वली वैरागेंकरीने शुद्धनिर्दोषते धर्मजेहनुं एमांदस मुं वैराग्य द्वार अने इग्यारमुं शुद्धधर्मनामा द्वार तथा देवजेथ्रीअरिहंत गुरुजेसु साधु अनेकेवलप्रणीतधर्म एत्रण तलनो जाणथयीने एटले ए देवादिकस्वरूपनाज्ञा नतुं वारमुं द्वार तथा विरतिजे पंचाश्रवतुं विरमण तेहनुं धारकथको एतेरमुं विरति धारी नामा द्वार वली संवरजेसत्तावनजेदे आश्रवनिरोधरूप तेणेकरीसहित तेचउद मुं संवर द्वार अने शुनउत्तम वृत्तिके० आचरणाठेजेहनी एहवोथको तुसाम्यरहस्य नेनज एटलेइहा शुनवृत्तिनामापन्नरमुं द्वारथयुं अनेसोलमुं साम्यरहस्यनामा द्वार अग्रंथमाकहेवानासोल द्वारना नामवेश्लोकेकरीकहा ॥ ३४ ॥

इति षोडशाधिकारे शास्त्रोपदेशपदसंग्रहो यथा

चित्तवालक मात्याह्नी रजस्रं जावनौपधी. ॥

यत्वां दुर्ध्यानचूता न गलयंति गलान्विपः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथम समताना अधिकारंआथ्री उपदेशकहेते हेचित्तरूपीयावाल क तु सदाय जावनाजे अनित्यादिकवार तथामैत्र्यादिकचार तेरूपणीआपधीप्रतें ठां नीतनही केमकेएजावनाने नठांफवाथी शोगुणथायठे तेकहेते जेथकीताहराठलना जोनाराजे आर्त्तरीडादिदुर्ध्यान तेरूपीया नृतपिशाचते तुजनेठलकरीशकजेनही॥५

यदिंजियाथैः सकलैः सुखं स्यान्नरेंद्रचक्रिन्द्रिदशाधिपानां ॥

तद्विदवत्येव पुरोहि साम्यसुधांबुधेस्तेन तमाजियस्व ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेएणुनजावना ते समताविना नहोय तेकहेते सयला इंजियाथैजे शब्द रूप रस गंध अनेस्पर्श तेणेकरीने राजाचक्रवर्ती अनेत्रिदशाधिपकहेतां इंद्र

तेहनेजेसुखहोय तेसर्वसुख समतारूपीयुंजे सुधांबुधिकहेतां अमृतसमुद्रते तेआ गज विडुवरावरदेखाय एटलेसंसारिकसुख सघळुंमलोने बिडुतुय्ये अनेसमतातुं सुखतेते समुद्रतुय्ये तेमाटेमोहार्थिजीवते समतारूपीआ सुधासमुद्रनेआदरे॥६॥

अदृष्टवैचित्र्यवशाज्जगज्जने विचित्रकर्माशयवाग्विसंस्थुले ॥

उदासवृत्तिस्थितचित्तवृत्तयः सुखं नजते यतयः कृतार्तयः॥७॥

अर्थ ॥ हवेसमताआदखातुं फलकहेठे जगतजे त्रिचुवनतेमा जनजे देवमनु प्यादि तेमध्येयतीजेनिग्रंथ तेजसुखीयाठे तेजगतजनकहेवाठे तेकहेठे अदृष्टजेपूर्वक तकर्म तेहनुविचित्रजे नानारूपपणुं तेहनावशयकी नानाविधकर्मना विपाकथी सं सारीजीवना मननोअनिप्राय तथावचन अनेकायानीचेष्टापण नानाविधते तेषेकरी व्याकुलते हवेयतीकहेवाठे उदासवृत्तिजे लाजालाज सुखडु.ख अने प्रियअप्रिय तेने विपेसमानवृत्तिठे तथाजेनी चित्तवृत्ति स्थितरहीठे वलीजेनीसर्वचिता कृयपामीठे ॥७॥

विश्वजंतुपु यदि क्वाणमेकं साम्यतो नजसि मानस मैत्रां ॥

तत्सुखं परममत्र परत्राप्यश्रुषे न यदन्नूतव जातु ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीसमतातुं विशेषफलकहेठे हेचिच जोतु समतायेकरीने सर्वजीवने विपे एककृणमात्रपण मैत्रिता चिन्तवेतो तु पूर्वेसंसारमांत्रमणकरता कोश्वखतपा म्योनथी एवा इहलोक अने परलोकमापण परमउत्कृष्टसुखप्रतेंपामें ॥ ८ ॥

न यस्य मित्रं न च कोपि शत्रुं निजः परो वापि न कश्चनास्ते ॥

न चेद्दियार्थेषु रमेत चेतः कपायमुक्तं परमः स योगी ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेएसमताने योग्यजीवकोणहोय तेकहेठे जेहनेकोइमित्रनथी तथा कोशत्रुपणनथी तेमजजेहने पोतातु तथापारकुंकाइनथी वलीजेहनुं चिच कपाय रहितथको इदियार्थजे शब्दादिविषय तेनेविपे रमेनही तेप्राणीपरमयोगवतहोय एटले ते समतावतजाणवो ॥ ९ ॥

नजस्व मैत्रां जगदगिराशिपु प्रमोदमाल्मन् गुणिपु त्वशोपत ॥

नवार्तिदीनेपु कृपारसं सदाऽप्युदासवृत्तिं खलु निर्गुणेष्वपि ॥१०॥

अर्थ ॥ हवेसमताआव्याना कारणउपदेशेठे हेजीव जगतना अंगीके०जेजीवते हनीराशिकहेतां समूहनेविपे एटलेसामान्यथकीसर्वजीवनेविपे मैत्रिताप्रत्यं नजस्वके० आदरीने वलीसमस्तप्रकारे जेकोइ ज्ञानादिकयुण्युक्तहोय तेहनेविपे प्रमोदप्रत्यं नजि

अनुमोदनाकर तथाजवके० संसारनी आर्त्तिजेपीडा तेणेकरीदीनके० ५ खितप्राणिने विषेकृपारसप्रतेंनज वली निश्चैनिर्गुण प्राणीनेविषेपण उदासवृत्तिप्रतेजज ॥ १० ॥

मैत्री परस्मिन् हितधीः समग्रे जवेत्प्रमीदो गुणपक्षपातः ॥

कृपा जवात्तें प्रतिकर्तुमीहोपेक्षा च माध्यस्थ्यमवार्यदोषे ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेएसैच्यादि चारेजावनातुं स्वरूपकहेते समस्तपोताथी व्यतिरिक्तजेवी जाजीव तेनेविषेजे हितचितववानीबुद्धि तेनेमैत्रीकहिये तथागुणीजे ज्ञानादिकगुण वत तेहनापक्षपातजे प्रशांसा तेहनेप्रमोदकहिये तथाजवात्थिजे जन्ममरणादिकसं सारनाडु.ख प्रतिकारकरवानीवांढा कोइअज्ञानीजीवने पापथकीनिवर्त्ताववानेअर्थे प्र तिबोधदेवो तेनेकृपाकहिये जेमश्रीवीरस्वामीथें शूलपाणीयक्ष् चमकोशिकसर्पप्रतें अपराधउपरपण कृपाकीधी वलीजेप्राणीअवार्यदोषकहेता वारतांथकापण दोषनेन ठांने तथावारवायोग्यपणनहोय एहवोदोषवंत जेपुरुष तेनेविषे मध्यमजावें रागद्वेष रहितपणे समजावेंरहेवुं तेउपेक्षाजावनाकहियें ॥ ११ ॥

तथाचोक्तं तुर्यपोडशके॥परहितचिता मैत्री परडु.खनिवारिणी तथा करुणा ॥ परसुखतुष्टिर्मुदिता परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ तेमजवलीकळुं श्रीहरिजडसूरिये चोथापोडशकमध्ये जे परनेहितचित ववुंतेमैत्री तथापरनाडु:खने निवारणकरवानीजावना तेकरुणा अनेपरनुंसुखजे सम तादिरूप तेदेखीने संतोषपामवो ते मुदिताके० प्रमोदजावना कहिये अने परनादोष देखी उवेखवुं उदास रहेवुं तेनेउपेक्षाजावना कहियें ॥ १२ ॥

तथाच योगशास्त्रे ॥ माकार्पात्कोपि पापानि मा चाचूत्कोपि डुः खितः ॥ मुच्यतां जगदप्येषां मतिमैत्री निगद्यते ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ वलीयोगशास्त्रमध्येपण श्रीहेमचंद्रसरियेकळुंठे के कोइपापमकरो कोइ डुःखीयाओमा तथाजगतसर्व कर्मथीमुकाओ एवीजेमतितेने मैत्रीकहिये ॥ १३ ॥

अपास्ताशेषटोपाणां वस्तुतत्वावलोकितानां ॥ गुणेषु पक्षपातो यः स प्रमोदः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ सकलदोषरहित तथा वस्तुतत्वजे स्वजाव अने परजाव तथा इव्य गुण पर्यायनाजाण एवाजेगुणवत तथाउपलक्षणथकी सामान्यपणेपण जेगुणवतहोय तेहना गुणनेविषे जेपक्षपात तेनेप्रमोदजावनाकहिये ॥ १४ ॥

दीनेष्वार्त्तेषु नीतेषु याचमानेषु जीवितं ॥ प्रती
कारपराबुद्धिः कारुण्यमजिधीयते ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ वलीदीन असमर्थे अनेअर्त्तपीडावत तथा जयेंकरी आकुल अनेजी वितव्यनेयाचतां एवाप्राणिनेविपेजे प्रतिकारकहेता इ ख निवारवानीबुद्धि राखवी तेने कारुण्यके० करुणानाचना कहियें ॥ १५ ॥

क्रूरकर्मसु निःशंकं देवतागुरुनिदिषु ॥ आ
त्मशंसिषु योपेक्षा तन्माध्यस्थ्यमुदीरितं ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ तथा शंकारहित क्रूरकर्मनाकरनार अने देवगुरुनानिंदक पोतानीप्रशं
सानाकरनार एवाअधमपुरुषनेविपेजे उपेक्षा तेमध्यस्थनाचनाकहिये ॥ १६ ॥

चेतनेतरगतेष्वखिलेषु स्पर्शरूपरसगंधरसेषु साम्यमे ॥
ति यदा तव चेतः पाणिगं शिवसुखं हि तदात्मन् ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेवली मूलसूत्रकार समताआदरवाची मोहनी सुलजताकहेते हेआ
त्मन् जेवारे ताहारुंचित अखिलके० समग्रचेतनजे अनुकर्म स्त्री देह स्त्रीकटाह
कोकिलनाद कस्तुरी पद्ममांसप्रमुख तथाइतरजे अचेतनपदार्थ अनुकर्म शय्या
आनरणधरेणादिक कर्पूर वीणा शर्कराप्रमुख तेसबंधी जेस्पर्श रूप रसके० श
ब्द गंध रस तेहनेविपेतु साम्यताके० इष्टानिष्टनेविपे समतृप्तिप्रतपामज्ञे तेवारेज नि
श्चेकरीने मुक्तिमुखते ताहरेहस्तगतथाज्ञे ॥ १७ ॥

के गुणास्तव यतः स्तुतिमिच्छस्यन्नत किमकृत्या मदवान् यत् ॥
कैर्गता नरैकज्ञीः सुकृतैस्ते किं जितं पितृपतिर्यदचित ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माजे स्तुतिनेवांढेढे तेनोमदनिवारवाने कहेढे हेअत्माआदार्य धे
र्य गान्धीर्य दान शील तप नाचना उपशमादिक जेयुणढे तेमाहेजाताहरामां श्यायुण
ढे केजेहने माटेतु स्तुतिकहेता लोकनामुखें पोतानीप्रशंसा कराववावाढेढे तथावली
तेंछंसाधुआश्रीने राज्यादिमहादिकनेप्रतिबोध अथवासर्वशास्त्रप्रवीणता उग्रतप
युगप्रधानपण इत्यादिक अथवाश्रावकआश्रीने जीर्णोद्धार विवप्रतिष्ठा सघपतिपणं
अमारपडह इत्यादिक अद्भुतके० आश्चर्यकारी कार्यश्याकीया केजेनाथी तूं मद
वतथायढे तथा कयासुकुतेकरी ताहारीनरकनीबीकगइ अथवापितृपतिजे यम तेछ

तेजियो जेमाटेतुअचितकहेतां निश्चितथकोरहेठे. एटले स्तुतिनीवांग मदकरवो
अने निश्चितरहेवु एतने युक्तनथी ॥ १८ ॥

गुणस्तवैर्यो गुणिनां परेषा माक्रोशनिंदादिजिरात्मनश्च ॥

मनःसमं शीलति मोदतेवा खिद्येत च व्यत्ययतः स वेत्ता ॥ १९ ॥

अर्थ ॥ हवेजेवेचापणुते शांतरसतुंकारणठे एमकहेठे जेप्राणी परके० अन्यजेगुण
वतपुरुपहोय तेनागुणस्तवजे गुणवर्णन अनेआत्मनःकहेतां पोतानाआक्रोशजे गा
लप्रमुख तथानिंदादिक सांचलीने पोतानुंमन समपरिणामेराखे पण अमर्षधरेनही
उजठो मोदतेकहेतां हर्षपामे अनेएमविचारेजे गुणवतना गुणस्तववाजघटेठे तथा
हेआत्मातुं निर्गुणठो माटे निंदानेजयोग्यठो एमप्रमोदधरे तथाव्यत्ययकहेतां उ
परकह्याथीविपरीतजे बीजागुणवतपुरुपना आक्रोशके० निंदासांचलीअनेपोतानी
प्रशंसादिकसांचलीने खेदपामे जेएवागुणवतपुरुपनी निंदाकांकरेठे तथामाहारामां
तोगुणनथी तेमठतांएगुंकरहेठे एमचितवे तेहनेवेत्ताके० ज्ञानीकहिये ॥ १९ ॥

न वेत्सि शत्रून् सुहृदश्च नैव हिताहिते स्वं न परं च जंतो ॥ २० ॥

खं द्विपन् वांगसि शर्मचैत न्निदानमूढः कथमाप्स्यसीष्टा ॥ २० ॥

अर्थ ॥ हवेयथार्थने नहीजाणनारजीवतुं मूढपणुंकरहेठे हेजीव तुंशत्रूजेरागादिक
तथाभिन्नजेउपशमादिक तेहनेनथीजाणतो तथाहितजेसंवरादिक अने अहितजेआ
श्रवादिक तथावलीस्वभावजे ज्ञानदर्शनादिक अनेपरभावजे मिथ्यात्वरागादिक तेहने
नथीओलखतो वली दु खजेपरिसहादिक तेहथीउजग्योठे अनेशर्मजे इहलोकतथा
परलोकादिकतुंसुख तेनेवाठेठे तेवारे तु एसुखतुं निदानजे कारण तेहनुं तो मूढके०
अजाणठो तेमठतां शरीरेंवांगित पदार्थप्रतेंपामीश एटलेसुखतुंमूल निदानते सं
यमठे तेविनाइष्टसुखनी प्राप्तिनथाय ॥ २० ॥

कृती हि सर्व परिणामरम्यं विचार्य गृह्णाति चिरस्थितीह ॥

नवांतरे ऽनंतसुखाप्तये तदात्मन्किमाचारमिमं जहासि ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ हवेजाणपणानुं फलदेखाडीने उपदेशेठे कृतीजेमाह्योपुरुपहोय तेतोस
र्ववस्तुमांजे वस्तुपरिणामेरम्य तथासुखदाइहोय अनेचिरस्थितिकहेतां घणोकाजर
हे एतुंविचारकरीने तेवस्तुनेतेग्रहणकरे तोहेआत्मा नवांतरेअनंतसुख आपवाने
समर्थ एवाजेज्ञानादिक चारपदार्थे तेनेतुंकेमत्यजेठे एचारेंवस्तुपरिणामेरम्यठे अने
चिरस्थितिठे एटलेघणाकालसुधी रहेएवीठे माटेतेतुंजनेत्यजवीघटेनही ॥ २१ ॥

निजः परो वेति कृतो विजागो रागादिजिस्ते त्वरय स्ववात्मन् ॥

चतुर्गतिक्लेशविधानतस्त त्प्रमाणयन्नस्यरिनिर्मितः किं ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्मा रागादिकने वशथको पोतातुंअने पारकुंलेखे तेआश्रीउपदे शेठे हेआत्मा निजकहेता स्वजन कलत्र पुत्रादिक अथवा परजेशत्रुप्रमुख एवोवि जागजे नेदकरीजाणवो तेजेदसर्वरागादिकतुं करेलुंठे माटेताहरे जेप्राणीताथे राग ठे तेहनेतु स्वजनकरीजाणेठे अनेजेनाथीदिपठे तेनेशत्रुकरीजाणेठे पणतेरागादिक तो चारगतिनाक्लेश कष्टनाकरनार ताराशत्रुठे तोअरिनिर्मितके० तेशत्रुतुंजनीपजा व्युं जेजेद तेने गुंप्रमाणकरेठे एटलेराग देपनावशथी निजपराविजागकरबुतेजुठे

अनादिरात्मा न निजः परो वा कस्यापि कश्चिन्न रिपु सुहृदा ॥

स्थिरा न देहाकृतयोणवश्च तथापि साम्य किमुपैपि नेपु ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ हवेसर्ववस्तुनी अनित्यतादेखादी आत्मानेसमतानी प्रेरणाकरेठे हेआत्मा तुंआदिरहितठो अनेकोइनेकोइ पोतातुं तथापारकुनथी वलीकोइकोइशत्रु अ नेमित्रपणनथी वलीहेआत्मन् देहजेपुरुष म्त्रीआदिकतुंशरीर तेआकारेपरिणाम्या एवाअणुकहेतां पुज्ज तेपणस्थिरनथी केमके कृणकृणप्रत्ये उपचयके० गुनअष्ट जादिक अवस्थापालटेठे तेमठता हेआत्मा आदेहाकारजे पुज्जतेनेविपे तुंकेम साम्यताकहेता रागदेपरहिततापण नथीपामतो हेआत्मा तुतोअनादीठे अनेएदेहाकृती तो अस्थिरठे माटेसमतानेआदर ॥ १३ ॥

यथा विदां लेप्यमया न तत्रा त्सुखाय मातापितृपुत्रदाराः ॥

तथा परेपीद् विशीर्णतत्तदा कारमेतद्दि समं समग्र ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ वलीएजअर्थे दृढकरेठे आसंसारमाजेम लेपमयकहेता चित्रादिलिखित जे माता पिता पुत्र दारा कलत्रहोय ते तत्वथकी विचारीजोतां विवेकीपुरुपने सुखदाइ नहोय एटलेतेहने देखीविवेकीसुखमानेनही तेम अपरेके० वीजापणजे साक्षातदृश्य मान माता पिता पुत्र कलत्रादिक तेपणतत्वथकी विवेकीने सुखदाइनथाय केम के तेना तेतेआकारनागाथकी ते लिप्यमय जेचित्रितपुतला तथाप्रत्यक्षदृश्यमानजे मातापितादिक तेसर्वसरखाथाय माटेतेनेविपे ममत्वकरबु तेमिथ्याठे ॥ १४ ॥

जानंति कामान्निखिलाः ससंज्ञा अर्थ नराः कर्म च केपि धर्मः ॥

जैनं च केचिद् गुरुदेवशुद्धं केचित् शिवं केपि च केपि साम्यं ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ ह्वेसमताना धरनारप्राणियोडाहोय तेकहेते संसारमां समग्रसंज्ञाधार क जीवमात्र तेकामकहेतां शब्दादिकविषयजाणेते एटले कामनाअर्थी सर्वजीवने तेसर्वमनुष्य अर्थकहेतां धनउपार्जन तथाकर्मकहेतांकाम एवेपदार्थजाणेते केमके मनुष्यना कामनोगते धननेआधीनते तेमांवलीकोइकमनुष्यते सामान्यथकी मिथ्या दृष्ट्यादिक धर्मेनेजाणेते वलीतेमांपणकोइकज जैनधर्मेनेजाणेते वलीतेमापण को इकविरलाज शुद्ध अष्टादशदोपरहितदेव तथागुरु सुविहितसुसाधु एवोजैनधर्मजा णेते वलीतेमापण शिवजेमोहार्थ तेहनेतोकोइकज जाणेते वलीतेमापणसमताना जाणतो कोइकविरलाजते एटले ए सर्वथीअधिक तेसमताना जाणनेकह्यो ॥ ३५ ॥

स्निहंति तावद्भि निजानिजेपु पश्यंति यावन्निजमर्थमेच्यः ॥

इमां चवेऽत्रापि समीक्ष्य रीति स्वार्थे न कः प्रेत्य हिते यतेत ॥३६॥

अर्थ ॥ ह्वेस्वजनना संबंधते केवलस्वार्थनिष्ठितते तेदेखाडेते निश्चयथी निजके ० पोतानास्त्रीपुत्रादिकतेसद्दु निजके ० पोताना पतितादिक स्वजननेविपेतिहा लगें स्नेह धरे जिहां लगें ते स्वजनथी पोतानुंअर्थ जे नरण पोपणादिक थतुदेखे तिहांलगें स्नेह धरेते एम प्रत्यक्षअज्ञवनेविपेपण स्वजनादिकनी एरीतते तेजोऽने प्रेत्यके ० परलोक नेविपे हितकारी एवोस्वार्थजे अत्मारथ संघमादिक तेहनेविपे कोणउद्यमनकरे ॥ ३६ ॥

स्वप्नेऽजालादिपुयद्दासै रोपश्च तोपश्च मुदा पदार्थैः ॥

तथा चवेऽस्मिन् विषये समस्तैरेवं विज्ञाव्यात्मलयेऽवधेहि ॥३७॥

अर्थ ॥ ह्वेजेरागदेषधरवो तेफोगटते एमदेखाडेते जेमस्वप्न तथाऽजालादिक विपे पाम्याजे अशुच तथा शुचपदार्थ तेणेकरिने रोपकहेतादेष अने तोपकहेता दर्शकरवो ते मुधाके ० निरर्थकते एटले जेमस्वप्न ऽजालादिकना पदार्थोथी अर्थसि दिकाऽनथी तेमचवमापण अशुचतथा शुचविषयेकरिने रोपअनेतोपकरवो तेमुधाते एमविचारिने हेआत्मातु आत्मममाधिनेविपे अवधेहिके ० सावधानरहे ॥ ३७ ॥

एष मे जनयिता जननीय बंधव पुनरिमे स्वजनाश्च ॥

उच्यमेतदिति जातममत्नो नैव पश्यसि कृतांतवशत्वा ॥३८॥

नोधनैः परिजनैः स्वजनैर्वा दैवतैः परिचितैरपि मत्रै ॥

रहतेऽत्र खलु कापि कृतांतान्नो विज्ञावयसि मूढ किमेवा ॥३९॥

अर्थ ॥ ह्वेवेकाव्यमां जीवने मृत्युनुं आधीनपणुं देखाडेते हेआत्मा आमाह

रोपिता आमाहरीमाता आस्वजन आड्य एम ममत्वमां मग्रथयोथकोतु स्वकहे
तापोतेज यमनेवशपड्युं नथीवेखतोढतो ॥ ३८ ॥ तोहेमूढ एसंसारनेविपे निश्च
येकरीने धनतथापरिजन सेवकादिक तथा स्वजन पुत्र कलत्रादिक बजिदेवता त
था परिचितकहेता विधिथीउपाज्यां जेमत्रतेणोसर्वमजीनेपण रुतांतजेमृत्यु तैथी
कोइप्राणीरखायनही एबुहेसूर्खतु केमविचारतोनथी ॥ ३९ ॥

तैर्नवेपि यदहो सुखमिच्च स्तस्य साधनतया प्रतिजाते. ॥ मुह्य
सि प्रतिकलं विपयेषु प्रीतिमेषु न तु साम्यसतत्वे ॥ ३० ॥

अर्थ ॥ अहोआत्मा जेमाटेतुसंसारमापण तैपूर्वोक्तजेधनादिक तैणेकरीने सु
खवाढतो ढतो समयसमयविपे विपयमा मोहपामेढे पणतेवनादिक कहेवाढे तेतुज
नेसुख साधन तथाके० कारणपणे प्रतिजाम्याढे पणतेप्रनादिक तोसुखनाकार
एनथी मात्रतने एमनास्याढे जे ए सुखनासाधनढे तैथी तु समताना सतत्वस्वरू
पनेविपे प्रीतिनथीपामतु ॥ ३० ॥

अर्थतोयुग्मं ॥ कि कपाय कलुपं कुरुपे स्व केषु चित्रनु मनोरिधि
याऽत्मन् ॥ तैपि ते हि जनकादिकरूपैरिष्टां दधुरनतज्वेषु ॥३१॥

अर्थ ॥ हवेस्वजनादिकतुं अनेकातिकरुपणु देस्वामेढे निश्चयथकी हेआत्मा कोइ
कप्राणीनेविपे अरिधियाकहेता एमाहाराशत्रुढे एवीबुद्धेकरी पोतानुंमन कपायेकरीक
लुपितशुंकरेढे केमके तैप्राणीपण ताहारा पिता मातादिकस्वरूपैकरीने अनता नवमा
अनतासगपणोने धरताहवा तेमाटेतेआने केवल शत्रुकरीजाणबु तेमिष्याढे ॥३१॥

यांश्च शोचसि गता किमिमेमे स्नेहला इति धिया विधुरात्मा ॥

तैर्नवेपु निहतस्त्वमनंतेष्वेव तैरि निहता नवता च ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ हवे जे स्वजनढे तेजशत्रुढे एबुढेखाढेढे हेआत्मातु एमाहारी स्नेहवत
स्वजन किहागयो एवीबुद्धिये विधुरात्माके० इ खेव्याकुजथको मुवागयाजेस्वज
नादिक तैप्रत्येशोचेढे एमजेहनो शोककरेढे तेजस्वजनादिके तुजनेअनतानवनेवि
पेहएयोढे बजीतेपण तेहनेअनतानवनेविपे हएयाढे तेटलामाटे स्वजनबुद्धियेजे खे
हराखबु तेपणमिष्याढे ॥ ३२ ॥

त्रातु न शक्या नवडु खतो ये त्वया न ये त्वामपि पातुमीशा ॥

ममत्वमेतेषु दधत् मुधात्मन् पटेपदे किं शुचमेपि मूढ ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ हवेकोइकोइने राखवासमर्थनथी एवुंदेखाडेठे नवके० संसारनाडुखथ की जेप्राणीने तुं राखीगक्योनही अनेतेपण नवडु खथीतुजने राखीशक्यानही तो जेनवडु खथी राखवानेसमर्थनथी तेवारेहेमूर्खअत्मा स्वजनादिकनेविषे सुधाके० फो कटममत्वकरतोथको पगेपगेशुंशोकपामेठे माटेशोकतजीने समतानेनज ॥ ३३ ॥

सचेतना. पुज्जलापिडजीवा अर्थाः परे चाणुमया दयेपि ॥

दधत्यनंतान् परिणामज्ञवान् तत्तेषु कस्त्वर्हति रागरोपौ॥३४॥

अर्थ ॥ हवेजीवना पुज्जसाथे नानाविध परिणामठे तेकहेठे पुज्जपिडके० पुज्ज लनो समूहजेदेहलक्षण तेहनेआश्रीनेरह्या एवाजे सचेतनके० चेतनाधारक सर्व जीव अथवा अणुमयाके० पुज्जमयजे बीजा अचेतन अर्थके० पदार्थ एटलेशरी रधारकजीव अने पुज्ज एवेपण अनंतागमे परिणामज्ञावके० पर्यायप्रत्येधरेठे तोते जीवअनेपुज्जलनेविषे रागअनेरोपकरवाने कोणयोग्य थाय निपुणपुरुषें तेउपर राग रोपकरवो युक्तनथी॥३४॥ इतिश्रीअध्यात्मकल्पडुमे साम्योपदेशाख्य प्रथमोधिकार,

अथस्त्रिय ॥ मुह्यसि प्रणयचारुगिरासु प्रीतितः प्रणयिनीषु कृतिन् किं ॥ किं न वेत्सि पततां नववाधै तानृणां खलु शिलागलवद्वा ॥ १ ॥

चर्म्मास्थिमक्लांत्रवसास्त्रमांसामेध्याद्यशुच्यस्थिरपुज्जलानां ॥ स्त्री देहपिडाकृतिसंस्थितेषु स्कधेषु किं पश्यसि रम्यमात्मन् ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेबीजाअधिकारमां स्त्रीओनोममत्व त्यजवाआश्री उपदेशआपेठे हेकृ तिन् प्रणयचारुके० स्नेहेकरीमनोहरठे गिराके० वाणीजेहनी एहवी प्रणयिनीके० स्त्री ओनेविषें प्रेमेकरीने सुंमोहपामेठे पण एमकानथीजाणतोजे नववाधैके० सं सारसमुद्गमा पडतापुरुषनागलामां स्त्रीओते शिलाउंवाधेठे ॥ १ ॥ हवेएस्त्रीओना शरीरुं अपवित्रपणुंकेहेठे हेअत्मन् चामडी हाम चरवी आंत्रर्मा पांसली मेद रुधिर मांस विष्टा तथा आदिशब्दथी मूत्र कफ श्लेष्मादिक एहवाअपवित्र अने अस्थिरके० कृणविनाशिक जे पुज्ज तेहना स्कंधके० समूहथी बन्यो जेस्त्रीनुंशरी र तेहनी पिंमाकृतिके० सांङ् सुघटआकार तेरूपेसंस्थितरह्याठे तेमां सुंतुमनोहर पणुंदेवने एटलेएसर्व अपवित्र अस्थिरपुज्जनो पिंमठे तेमोकांस्तारनथी ॥ २ ॥

विलोक्य दूररथममेध्यमव्यं जुगुप्ससे मोटितनासिकरत्नं ॥

चृतेषु तेनैव विमूढयोपावपुष्पु तत्किं कुरुषेऽन्जिलापं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेठे हेआत्मन् अल्पके० थोरुकपण अमेध्यके० विष्टादि कदेखीने मोटितनासिकाके० नाकमचकोडीनेतुं जुगुप्ससेके० डुगडाकरेठे तोहे मूर्ख विष्टादिकेजन्मचा एहवाजे स्त्रीओनाशरीर तेहनेविषे सुं अनिजापकरेठे ॥ ३ ॥

अमेध्यमांसास्त्रवसात्मकानि नारीशरीराणि निषेवमाणाः ॥

इहाप्यपत्यडविणादिचितातापान् परत्रेप्रतिडुर्गतीश्र्वा ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेएस्त्रीओनाशरीरते इहलोके अने परलोकेपण डु खदायीठे तेकहेठे अमेव्यजे विष्टादिक ते मांस रुधिर मेद तेथीजबनेला तन्मय एहवाजे स्त्रीओनाशरीर तेहने सेवनाराजेपुरुष तेइहलोकेपण अपत्यके० सतानपुत्रादिक तथा डविणके० धनइत्यादिकनी चितानासतापप्रतें पामेठे अने परलोकेपण डुर्गतिप्रतेंपामेठे॥

अंगेषु येषु परिमुह्यसि कामिनीनां चेतः प्रसीद विश
च क्लृणमंतरेषा ॥ सम्यक् समीक्ष्य विरमाशुचिपिडके
न्यस्तेन्यश्च शुच्यशुचिवस्तुविचारमिञ्जत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ वलीस्त्रीनादेहनी अपवित्रताकहेठे चितनीप्रसन्नतायेंकरीनेजे स्त्रीओनाअंगनेविषे मोहपामेठे तेहनेकहियेठेये जे तु तेमाएकक्लृणमात्र प्रवेशकरी एटखेसूक्काट्टीयेंकरी तेहनुंसम्यक्प्रकारे स्वरूपविचारीने पवित्र अने अपवित्र एवेवस्तुनाविचारने वाठतुथको होयतो जेजे स्त्रीनाअगळे तेतेसर्व अपवित्रतानाज पिमके० ढगलाठे तेहथीतु विरमके० रागत्यजीने अलगोरहे ॥ ५ ॥

विमुह्यसि स्मेरदृश सुमुख्या मुखेक्षणादीन्यजिबीक्षमाणाः ॥

समीक्षसे नो नरकेषु तेषु मोहोऽज्ञवा जाविकदर्थनास्ताः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेस्त्रीनाअंगनिरीक्षण तथाजोगतुंफलकहेठे हेआत्मातु सुं मुखीके० च डमुखी तथास्मेरके० विकसितठेनेत्रजेहुना एहवीस्त्रीओनामुख तथाईक्षणजेनेत्र आदिशब्धी स्तन जघादिक तेहनाउपर सरागपणेजोतोथको मोहपामेठे पणजे महाडु खमयनरक तेहुनेविषे तथाविध मोहथकी उपनीओ एहवी जाविके० आगामिककदर्थनाजे महापीडाओ तेप्रतंतुकेमविचारतोनथी ॥ ६ ॥

अमेध्यजस्त्रावहुरंध्रनिर्यन्मलाविलोद्यत्कृमिजालकीर्णाः ॥

चापल्यमायानृतवंचिका स्त्री संस्कारमोहान्नरकाय च्चुक्ताः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेठे विष्टादिकेजरीयकी जस्त्राके० धमणीसरिखी तथाघ

एारंभजे वारेदर तेहधीनिकलता मलके० विष्टामूत्रश्लेष्मादिक तेणेकरी आवि
लके० मलिन तथा उद्यतके० उपजता कृमिजे योनीमाहेला सूक्ष्मजीव तेहना
जालके० समूह तेणेकरी कीर्णके० व्याप्त वली चपलपणुं तथा कपटाइपणुं अने
अनृतके० असत्यवचन तेणेकरी वचिकाके० पुरुषनेवगनारी एहवीजेखी तेसंस्कार
जे जन्मातरनोसंबंध तेहनावशयकी अथवा संस्कारजे स्नान तिलक आचरणादिक
तेहधी उपनोजेमोह तेहनावशेकरी जोगवीथकी नरकायके० नरकनीदेवावाजीथाय०

निर्भूमिर्विपकंदली गतदरी व्याघ्री निराव्हो महाव्या
धिर्मृत्युरकारणश्च ललनाऽनश्चा च वजाशनिः ॥ वधु
स्नेहविघातसाहसमृपावादादिसंतापनू प्रत्यक्षापि च
राक्षसीति विरुद्धैः ख्याताऽऽगमे त्यज्यतां ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ वलीपणखीनुंज त्यजवुंकहेते श्रीसिद्धांतमां खीनेएहवे विरुद्धेकरीवरवा
णीने तेमाटेखीनेत्यजवी तेकिहाकिहांविरुद्धेत्यजवी तेविरुदोनानामकहेते एखीतेचू
मिदिना विपनी कंदलीके० नवाअंकुरनीसीखाते तथा कंदरीजेयुंफाधीरहितथकीपण
वाघणसरिखीने वलीकोइ नामविनापण महारोगरूपते वली अकारणके० अपथ्य
सेवन अजीर्णादिक कारणोविनाज मृत्युके० मरणतुल्यते वली अत्रवादजरहितते
वज्रसरिखी वीजलीने अने बंधुके० स्वजननो स्नेह तेहनो विघातके० नाशकरनारी
ते तथा साहसके० अविचारितकार्यनुंकरवुं असत्यबोलवुं वली आदिशब्दधी अदत्त
अत्रह्य परिग्रहादिक तेसंबंधी संतापनो नूके० उत्पत्तिनोस्थानकते वली प्रत्यक्ष
साक्षात् राक्षसीपणजाणवी एरीते एसर्वखीना एहवा अशुच विरुद्धजाणीने विवेकी
पुरुषने खीसंबंधी ममत्वत्यजवु ॥ ७ ॥ इतिश्रीअथ्यात्मकव्युत्पत्ते स्त्रीममत्वमोचनो
नाम षतीथो ऽधिकार संपूर्णः ॥

अथापत्याधिकारः ॥ माचूरपत्यान्यवलोकमानो मुटाकुलो मोहनृपारि
णा यत् ॥ चिह्निप्सया नारकचारकेऽस्मिन् दृढं निवशो निगडैरमीजि ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेत्रीजाअधिकारे पुत्रादिकवुं ममत्वमुकवाआश्री उपदेशकहेते तेमां
प्रथम संतानउपरे मोहकरवुनही तेकहेते हेआत्मातुं अपत्यजेपुत्रपुत्रीप्रमुख तेने
जोतोथको मुदाके० हर्षआकुलथाइस केमके मोहराजारूप शत्रुये नरकरूपजे वा
रकके० वंदीखालुं तिहां चिह्निप्साके० घालवानीइहाये अपत्यरूप निगडके० विदिये
दृढकरीने तुजने बांध्योते ॥ १ ॥

आजीवित जीव नवातरेपि वा शल्यान्यपत्यानि न वेत्सि कि हृदि ॥

चलाचलैर्यैर्विधार्तिदानतोऽनिश निहन्येत समाधिरात्मन ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवे उपमानंतरं करी सताननुं ड्रुखदाऽपणुं देग्वाडेते हे आत्मा आजव
मा जाव जीव लगे तथा नवांतरे पर नवेपण अपत्यजे सतानते शयके० शलरूप
ते एमतुता हारा रुदयमा केमन श्रीजाणतो जे स्वपायुपवत सतानादिक ते शोकरूप
पीडा आपेते अने दीर्घायुपवतजे अपत्यते लग्नादिक ड्रुव्यव्यय प्रसुख विविध प्रकारनी
पीडा आपेते तथा नरणपोपणादिकनी चिता रूपजे आर्चिं तेहने उपजावे करीने अह
निशके० निरतर हे आत्मा ताहरी समाधी सुस्थताने हन्येतके० हणीते ॥ १ ॥

कुहौ युवत्या कृमयो विचित्रा अप्यस्रशुक्रप्रजवा जवंति ॥

न तेषु तस्या न हि तल्पतेश्च रागस्ततोऽय किमपत्यकेषु

॥ ३ ॥ त्राणाशक्तेरापदि संबंधानं त्यतो मिथोऽगवतां ॥

सदेहाच्चापकृतेर्माऽपत्येषु स्निहो जीव ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ वलीते ही जकहेते स्त्रीनी कुखने विषे अस्त्रजे स्त्रीनी योनी नुरक्त अने शुक्रजे
पुरुपनुं वीर्य तेहनासयोग्धी उपना एहवाक्रमीजे वेड्डियादिक जीव तेषण विचित्र प्र
कारनाथायते यडुक्तं इड्डीणजोणिमझे हवति वेदियाउ जे जीवा ॥ इहोयदोवति न्निव
लरूप दुत्त च उक्कोसा ॥ १ ॥ तथासंभूडिम अने गर्जजपचेडीमनुष्यपणथायते तो
ते स्त्री तथा नत्तार वेदुने किनिश्रये स्युके० ते क्रमी जीवने विषे केमरागस्नेहन श्रीहोतु अ
ने अपत्यजे पुत्रपुत्रादिक तेहनाउपर रागकेम उपजेते केमके एकजस्थानकना उपना
ते क्रमी अने अपत्य ते वेदुबरावरते ॥ २ ॥ हवे अपत्यथकी काऽपणस्वार्थसिद्धिनी
आशा राखवी जूतीते देखाडेते हे आत्मा तु अपत्यउपर स्नेह करीसनही शाहेतुमाटेके
आपदाजे मरणरोगादिक आवेथके जे अपत्यते त्राणके० राखवाने समर्थ नथी तथाव
लीपरस्पर प्राणीने संबंधनुं अनित्यते कारणके नाना प्रकारना संबंधते माटे उपकारचो
पणसदेहते केमके जो पुत्रादिक साथे वैरानुबंधी संबंध होयतो तेथकी उपकारके मथा
य श्रेणीक अने कोणी राजानी परे ते माटे स्नेहनुं धरतु ते फोकटते ॥ ४ ॥ इति श्री अध्या
त्मकल्पद्रुमे पुत्रममत्वमोचनाख्य स्तृतीयोऽधिकार समाप्त ॥

अथ धनाधिकार ॥ या सुखोपकृतिकृत्वधिया त्वं मेलयन्नसि रमा

ममताजाक् ॥ पाप्मनोधिकरणलत एता हेतवो ददति संसृतिपातं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ ह्वेचोथाअधिकारे धननीममत्वमूकवाअश्री उपदेशआपेठे तिहांपहेजुं धनथी सुखतथाउपकार नथाय तेकहेठे हेजीवतु ममत्वने नजतथको एममानेठे जे एलक्ष्मी ते मने तथामहाराकुटुंबने सुखकारीथासे तथा दिनादिकनो उपकारकरवा ने कामआवजे एहवीबुद्धियेजे रमाके० लक्ष्मीनेमेजवेठे तेएलक्ष्मीतोकर्मादानादिक सावद्यव्यापारने करवेकरी अधिकरणपणाथकी पाप्मन के० पापनीजहेतुठे तेमाटे संसृतिपातजे संसारमांज्रमणकरबुं तेप्रतेजआपे एहवीठे तेनणी लक्ष्मीथकी सुख तथा उपकारनीवांठाते फोकटठे ॥ १ ॥

यानि द्विपामप्युपकारकाणि सप्पोंडुरादिष्वपि यैर्गतिश्च ॥

शक्या च नापन्मरणामयाद्या हंतुं धनेष्वेपु क एव मोह ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ ह्वेधनथकी अनर्थनीपरपराथाय तेकहेठे जेधनते द्विपाके० शत्रुनेपण उपयोगीथाय एटलेधनना संचयकरनारने हणीनेज शत्रुबलवतथाय अनेतेहना धननेज नोगवे वली जेधननेसंच्याथका उंदिरइत्यादिकनीगतिप्राप्तथाय केमके धन नोलोनीजीव धननीमूर्च्छियेमरीने तेधनउपरे सर्प तथा उंदिर इत्यादिकथयी अतरे वलीजे धनेकरीमरण तथारोगइत्यादिक आपदाओतेपण सुखमचक्रवर्तिप्रसुखनी परे निवारीशकायनही तोएहवाधननेविषे मोहतेगीकरवी ॥ २ ॥

ममत्वमात्रेण मनःप्रसादः सुखं धनैरल्पकमल्पकालं ॥

आरंजपापैः सुचिरं तु दुःखं रयादुर्गतौ दारुणमित्यवेहि ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ ह्वेएधनथकीसुखथोहुंठे अने दुःखगुंठे तेकहेठे केमके धनेकरी केव लममत्वना जन्मनोज प्रसादथाय कारणके महारापाजेंधनठे एमचितवीचितवी ने धननोलोनिप्राणी हर्षपामेठे पणतेधनेकरी सुखतो अल्पकाल लेशमात्र थोडा काललगेजहोय पणतेहना अतिनिमित्तक आरंजनापापेकरीने दुर्गतनेविषे दारुणके० कठिणदुःखहोयज एहवु नवनंदराजाने दृष्टाते अवेहिके० जाण ॥ ३ ॥

इव्यस्तवात्मा धनसाधनो न धर्मोपि सारंजतया तिशुद्धः ॥

निःसंगतात्मा त्वतिगुद्वियोगा न्मुक्तिश्रियं यत्तति तन्नवेपि ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ ह्वेधनविना इव्यस्तरूपधर्मनथाय तेमाटेधनउपार्जबुं एहवुंविचारपण निश्चयकी जोता अयुक्तठे तेदेखाडेठे धननेसाधिये एहवुइव्यस्तवात्माके० इव्य स्तरूप जिनसुवन विवप्रतिष्ठा दानशालादिक जेधर्मकरणीठे तेपण सारंजके०

इव्यारंजसहितपणेकरीने अतिनिर्मलनथी पणमात्रस्वर्गादिकगतिनाहेतुळे माटेतेध
र्मनेपण मुक्तिनुं परपरा कारणजाणवुंनही अने नि संगतारूपजे धर्मते अतिशुद्धके०
निर्मलता निरवद्यतानायोगथी तेहिजनवमापण मोक्षरूप लक्ष्मीने आपे ॥ ४ ॥

क्षेत्रवास्तुधनधान्यगवाश्वैर्मेळितैः सनिधिन्निस्तनुजाजा ॥

क्षेत्रपापनरकाज्यधिक स्यात् को गुणो यदि न धर्मनियोग ॥५॥

अर्थ ॥ हवेघणुंपरिग्रहते पापनुंमूलजे तेकहेजे क्षेत्र क्यारडाप्रमुख तथावस्तुते
घरप्रमुख धनधान्य गायो अश्वइत्यादिक तथानिधिजे जमारतेणेतहित एहवोपरि
ग्रहमेलेवथकेपण जो एक धर्मनियोगके० जिनविंबादिक शातक्षेत्रमा ववरायन
ही तो तेवारे तेपरिग्रहथकी क्षेत्र पाप अने नरक एत्रणविना अन्यधिकके० व्यति
रेकबीजोशोणुणहोय एटले परिग्रहथकी अनुक्रमे कष्ट पाप अने नरक एत्रणवा
नाजथाय पणबीजोशुणकोइनथाय ॥ ५ ॥

आरंजैर्जरितो निमज्जति यत प्राणी जवाज्जोनिधावीहंते कुनृपादय
श्च पुरुषा येन गलाद्वाधितुं ॥ चिताव्याकुलताकृतेश्च हरते यो धर्म
कर्मस्मृति विज्ञा चूरि परिग्रह त्यजत त चोग्य परैः प्रायशः ॥६॥

अर्थ ॥ हवेपरिग्रहथकी इहलोके तथा परलोके इ स्वथायतेकहेजे जेपरिग्रहमे
लेववाथकी प्राणी आरंजेके० आरंजेनखुथको ससारसमुद्रमाबुडेजे वलीतेपरिग्रहेकरी
इष्टराजा तथाआदिशब्थी मंत्रीप्रमुख अधिकारीओ अनेचोरादिक तेपुरुषने गले
करी बाधितुके० पीडवानेवाढेजे केमकेबहुधनवत उपरखोटोपण गुनाहूनो ध्यारोप
करीनेदमकरे वलीपरिग्रहनी चिताये व्याकुलताने करवेकरीने धर्मकर्मस्मृतिके०
धर्मकार्यनुं सजाजबु तेहनेहूरणकरीलिये माटेहेविवेकीजोनो एधनते प्रायेबाहुल
ताये परनाजजोगमाआवे एटले एकेसच्योहोय अनेबीजोजोगवे एहवोजेए चूरिके०
घणुपरिग्रहतेहने व्यजो ठामो यदुक्तं कीटिकासंचितधान्य मक्षिकासंचितमधु ॥ कृप
णै संचितवित्तं परैरैवोपच्युज्यते ॥१॥ जेमयोगिये घणाकष्टेकरी सिद्धिनारसनो संग्रह
कखो अने वजनिपूरमा राकाशेठनाजोगमाआव्यो तेमकोइनुंसंच्युधन कोइकजोगवे इ
क्षेत्रेपु नो वपसि यत्सदपि स्वमेतद्यातासि तत्परजवे किमिद गृहीत्वा ॥

तस्यार्जनादिजनिताघचयार्जितात्ते जावी कथ नरकइ खचराच्च मोक्षः ७

अर्थ ॥ हवेअर्थांतरकहीने सातखेत्रे धनवावखानुं उपदेशकहेजे हेधनवत जे
तु ठतुंपोतानुंसके० धन तेहनेसातक्षेत्रनेविषे नथीवावरतुतो एधननेतुसुं परंजवेसां

थेलेइज्जनारठे एटलेहमणातोतुं लोचनावश्यकी धननेसुमार्गं खगचतोनथी पणते धन परचवेताहरीसाथे नइज्जआवे वलीतेधनना उपाजनकरवाथी उपतुंजे अघ के० पापनो चयके० समूह तेथी अजितके० उपजाव्यो एहवोजे नरकसंबंधीड.ख तेहनो जरके० नारतेहथी मोहके० तूटवुंतेकेमथाशे ॥ ७ ॥ इति श्रीअध्यात्मकव्य द्रुमे धनममत्वमोचनोनामचतुर्थाधिकारः समाप्त ॥

अथ देहाधिकारः॥पुण्णसि यं देहमघान्यचित्तयं स्तवोपकारं कमयं विधा स्यति॥ कर्माणि कुर्वन्नितिचितयायति जगंत्ययं वंचयते हि धूर्तराट् ॥१॥

अर्थ ॥ हवेपांचमेअधिकारे शरीरआश्रयी ममत्वमूकवो तेकहेठे तेमांप्रथम पा पकरीने देहंतुंपोपणकरवुंनही तेकहेठे हेआत्मातु अघके० पापने अणविचारतोथ कोवेहने पुमासिके० पोखेते ते आ देह तुजने सुंउपकारकरशे वली आयतिके० आ वताकालनी चिताचितवी हिसादिककर्मकरतोथकोप्रवर्त्तनारो एहवोजेताहरोदेहते यूत्तोनोराजाठे सर्वजगतने वचयतेके० ठगेठे तोतुपापकरीनेदेहने पुटकरेठेपण एदे हतेआखरतुजनेठगसे ठेहदेहीजाशे ॥ १ ॥

कारागृहाद्बहुविधाशुचितादिदु खा त्रिगंतुमिञ्चति जडोपि हि तद्विचित्र्य॥
द्विस्तनतोधिकतरे वपुपि स्वकर्मव्रातेन तद्वदयितुं यतसे किमात्मन्॥१॥

अर्थ ॥ हवेएशरीरते काराग्रहथीपणछुंनोठे तेदेखाडेठे हेआत्माजेप्राणी जड के० मूर्खहोय तेपण काराग्रहजे बंदीखानुं जेमा बहुविध अशुचिता अपवित्रता आदि शब्दथी क्रुधा तृपा वध वधनादिड.खहोय एहवाकाराग्रहने चेढी खात्रादिकपाडी ने नीकलवावाठेठे तोतुजने स्वके० पोतानाकर्मने समूहें तेकाराग्रहथीअधिकुएह वुंजे वपुके० शरीररूपबंदीखानु तेमाघाल्योठे तोएहवाकाराग्रह सरिखोजे ताहारो देहतेहने दृढकरवानेज सुंउचयमकरेठे केमके काराग्रहनुं बंधनतोथोसुंठे पणदेहनुं बंधनतो जावजीवसुधी तथापरलोकेपणहोय तेमाटेदेहनुंबंधन अधिकजाणवु ॥१॥

चेदांभसीदमवितुं परलोकडःखचीत्या ततो न कुरुपे किमु पुण्यमेवा॥शक्यं न रक्षितुमिदं हि न ड खचीति पुण्यं विना क्षयमुपैति च वज्रिणोपि ॥३॥

अर्थ ॥ हवेपरचवनाड खथी बीहीतोथको घणुजीववानेअर्थजे देहनेपोपेठे तेने कहेठे हेआत्माजोतुं आगरीरने परलोकसंबंधीड.खनाबीकेकरी अचितुके०राखवावां ठेठे तोतुपुण्यउपाजन केमनथीकरतो केमकेपुण्येकरी एशरीरड खनाजयथकी रखा यनही एमतोकाश्नथी, एटलेशरीरने ड खनाजयथी राखवानेपण पुण्यजसमर्थेठे

अनेवलीपुण्यविनाशु तो वज्रिजेऽंइ तेहनुंशरीरपण नाशपामेठे तेमाटेजोपरलोके
डु.खशीबीहेतेतो तुपुण्यकर ॥ ३ ॥

देहे विमुह्य कुरुपे किमघं न वेत्सि देहस्य एव नजसे नवडु.खजाळं ॥

लोहाश्रितोहि सहते घनघातमग्निर्वाधा न तेस्य च नजोवदनाश्रयत्वो॥४

अर्थ ॥ हवेजेशरीररुंजेतुपोपणकरेठे तेशरीरमारह्योथकोज तुडु खपामेठे एहदु
वेखाडेठे किनवेत्सिके० हेआत्मातु देहनेविपे मोहपामिने पापकरेठे अनेतेदेहमा
रह्योथकोज नवडु खना समूहप्रतेपामेठे तेकेमनशीजाणतो एतोनिश्चयकी लोह
नेआश्रीत मळ्युंजेअग्नि तेजेम घणा घणोना प्रदारोनेसहनकरेठे तेमतुजने तथा ए
शरीररूप अग्निनेपण नजवत्के० आकाशनीपरे अनाश्रयत्वेके० निरालवपणुकरेतो
बाधाके० पीडानहोय एटलेलोहाश्रित अग्नीनीपरे तुपणदेहाश्रितथको डु खपामेठे

डुष्ट. कर्मविपाकनूपतिवश कायाव्हयः कर्मकृतं बध्वा कर्मगुणैर्हपी
कचपकै. पीतप्रमादासवं ॥ कृत्वा नारकचारकापडुचितं त्वा प्राप्य
चाशु उल गंतैति स्वहिताय सयमचरं तं वाह्याल्पं ददत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेदेहकर्मकरनुं उपमानकहेठे हेआत्मा एडुष्ट निर्दय एहवोदेहनामे क
र्मकरके ० राजसेवक तेतुजने कर्मरूप घणाबंधनेबाधीने नरकरूप बंदिवाना सवं
धीआपदानो उचितयोगएहवोकरी पळेढलताकीने उतावलोजतोरहसे एकर्मकरक
हेवुठेके कर्मविपाकनामाजेराजा तेहनोवशवर्चिते एटलेकर्मविपाकराजाये एहनेप्रे
खोठे माटेहेजीव ते रूपीकजे इडियतेरूप चषकजे मद्यपाननापात्र त्रणोकरी पा
चविधप्रमादरूप आश्रवनामामद्य पीयुंठे एहवोजाणीनेतु पोतानाहितनेअर्थे तेकर्म
करजे शरीरतेहने थोडुंपणअहार दोपरहितआपीने सयमरूपनारवहरावके जेथ
कीताहरा आत्मानि सिद्धिाय ॥ ५ ॥

यत शुचीन्यप्यशुचीनवंति कृम्याकुलात् काकशुनादिजहयात् ॥

जाग्नाविनो नस्मतया ततोऽगात् मासादिपिडात्स्वहितं गृह्णाण॥६॥

अर्थ ॥ हवेएअशुचिवेहथी बीजापदार्थपण अपवित्रथाय तेकहेठे शुचिके० प
वित्रजेवस्तु एहवाखीरखामप्रमुख तेपण एशरीरनासगथी अपवित्रथाय तेमाटेएश
रीरकहेवुठे तेकहेठेकमिजे उदरप्रमुखनाजीव तेणोकरीआकुलके० व्याप्त तथा का
गडा कुतरा इत्यादिकजीवने नक्षवायोग्य अने प्राणगयापठि तत्काल नस्मथयी

राखथनारठे वली मांसादिकतुं पिंमठे एहवाए असारशरीरथकीतो जे स्वहितके०
आत्मानेहितकारकएहवा संयमादिकतेप्रतेजेइने आत्मसाधनकर ॥ ६ ॥

परोपकारोस्ति तपो जपो वा विनश्वराद्यस्य फलं न देहात् ॥
सञ्जाटकादल्पदिनासगेहमृत्पिंममूढः फलमश्रुतेकि ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ वलीयुक्तिविशेषे देहसुं सफलकरबुंकहेठे जेपुरुपने एविनाशशील एहबुं
जेदेह तेथकी परोपकार तथा तप जप प्रमुखनथाय तोतेपुरुप जाडेराखेलुं थोडा
दिवससुधिपाम्युं एहबुंजेघर तेसरिखो एमाटीनापिंमरूप देहउपरमूढबतो शोफ
लपामें जेमजाडातुंघरते वापरियेतोजशारुं नहिकांजेजाडुंखरचियेते व्यर्थजाय
अनेवली आखरपोतातुंपण तेघरथायनही तेमएदेहनेपण अहारादिकजाडुंआपिने
पोष्युंथको तपजपादिकेकरी वावरीये तोजसफलथाय नहिकांनिःफलजाणबुं ॥७॥

मृत्पिंडरूपेण विनश्वरेण जुगुप्सनीयिन गदालयेन ॥

देहेन चेदात्महितं सुसाधं धर्मान्नकि तद्यतसेऽत्रमूढ ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेठे जेमाटीनापिंमसरिखुं विनाशीआचारवत तथाडुगंडा
करवायोग्य अनेरोगनुं आलथके० घर एहवोजेदेह तेणेकरीने धर्मकरवाथी आ
त्महितसाधबुं तुजनेसुलजठे तोहेमुखे अत्महितसाधवाने केमउद्यमकरतोतथी
माटे असारचूतदेहथी सारचूतआत्मानो हितसाधवाने सर्वथाउद्यमकरबुं ॥ ८ ॥
इतिश्री अध्यात्मकल्पडुमेदेह ममत्वमोचनानामें पांचमोअधिकारसंपूर्णथयो.

अत्यल्पकल्पितसुखाय किंमिडियाथै स्वं मुह्यसि प्रतिपदं प्रचुरप्रमादः॥

एते क्षिपंति गहने ज्वचीमकद्वे जंतून्न यत्र सुलजाशिवमार्गदृष्टिः ॥१॥

अर्थ॥पूर्वेकद्युजेदेहनियहकरबुंतेकांइ विषयनीममतामूकवासीवाय यतुंनथी मा
टेहवेठछेअधिकारें विषयप्रमाद त्यजवा आश्रयी उपदेशेठे तिहां प्रथम इडियार्थनुं मो
हल्यजबुं तेकहेठे हेआत्मातु घणुजप्रमादवतथको पण अतिशयेकरी अल्पके०थो
हुंपणकल्पनामात्र जेसुखतेपण परमार्थथीतोड खजठे पणतेसुखकरीमान्युं एहबुं
जेसुख तेहनाअर्थ प्रतिपदके० तामेठामें इडियार्थजे शब्द रूप रस गंध स्पर्श तेणेक
री सुंमुंजायठे एइडियार्थते जतुके० प्राणीने गहनके० अपार एहवोसंसाररूपजे नी
मके० रौंइ कदके० अटवीतेमा क्षिपंतीके० घालेठे बलात्कारे तेमां प्रवेशकरावेठे
जिहां शिवके० मुक्तिमार्गनुं दृष्टिदर्शनतेजीवने सुलजननथी जेमकोइवीजोपण गह
नवनहोयतोतेंमाहें शिवके० निरूपइव्यमार्गनुं जेदर्शनते डलजहोय तेनीपरेजा

एतुं ॥ १ ॥ इहाप्रमादना पाचप्रकार तथा आठप्रकारनी गाथाकहेते मझं विषय
कषाया निहाविकहाय पचमीजणिया ॥ एए पच पमाया जिव पाडंति संसारे ॥ १ ॥
तथाआठप्रकार कहेते पमाजयमुण्णिदीही जणित अठनेयउं ॥ अन्नाण संसक चेषा ॥
मिहानाण तहेवया ॥ १ ॥ रागो दोसो मझंसो धम्ममिय अणायरो ॥ जोगाण डुप्पलि
हाण ॥ अठहावक्कियवउं ॥ २ ॥

आपातरम्ये परिणामडु खे सुखे कथं वैपयिके रतोसि ॥ जमो
पि कार्यं रचयन् हितार्थी करोति विघ्नं यडुर्कतर्क ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेससारिकसुखते प्रथमतोसुखदायीते पण परिणामेडु खदायीते
तेकहेते हेचतुरआत्मातु आपातके० तत्कालमात्रतो रम्यमनोहरते पणपरिणाम
के० विपाककाले महाडु खदाइरूप एहवा विषयसबंधी सुखमा सुराच्योठो केमके
पोतानाहितने वाठनार एहवोजे जडके० मूर्खप्राणीहोय तेपण कोइकार्यकरतो
उदकके० जेआगामिककालतुंफल तेहतुं तर्कके० विचार करीने परिणामे अहितका
रीहोयतेने त्यजेते तोतुचतुरवता परिणामे डु खदायी एहवाजे विपयाविक तेप्रतें
केमआचरेते एआचरवा तुजने योग्यनथी ॥ २ ॥

यदिजियार्थैरिह शर्मविटवद्यदर्णवत्स्व शिवग परत्र च ॥ तयो
मिथोस्ति प्रतिपहता कृतिन् विशेषदृष्ट्यान्यतरजृहाण तत् ॥३॥

अर्थ ॥ हवेससारिकसुखनी अल्पतादेखाहेते हेचतुरआत्मा इहलोकनेविषे इ
डियार्थजे शब्दादिक तेणेकरीने वेच्यजे तुच्चसुख अनेवलीजे परलोके अर्णवके०स
मुडसरिखु स्व गिवगंके० देवलोफ अनेमुक्तिसबंधीजेसुख तेसुखने मिथ के० भा
होमाहे प्रतिपहता एटलेशत्रुनावते केमके जिहाइडियार्थतुंसुखते तिहामुक्तिसुख
नथी अनेजिहा मुक्तिसुखतेतिहा इडियार्थसुखनथी तेमाटेविगोपदृष्टियेकरी तेवेडुभां
जेहनेतुंरुडोजाणे तेहने ग्रहणकर ॥ ३ ॥

चुक्ते कथं नारकतिर्यगादि दुःखानिदेहीत्यवधेहि शास्त्रैः ॥

निवर्तते ते विषयेषु तृष्णा विज्ञेपि पापप्रचयाच्च येन ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेतेहिजविगोपें देखाहेते हेआत्मा देहवतप्राणी नरकतिर्यचगतीनाडु
ख केवाप्रकारेजोगवेते एटलुंतु शास्त्रमाथी जोइने अवधेहिके० निश्चयकर तोतुजने
निश्चंथकी विषयनेविषे तृष्णानीनिवर्तियासे अनेपापना सचवाथकीतुवीहेतोरदिश

गर्ज्जवासनरकादिवेदना पश्यतोनवरतं श्रुतेक्षणैः ॥

नो कपायविषयेषु मानसं श्लिष्यते बुध विचितयेति ताः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ बलीतेहीजकहेते हेपंमितप्राणी अनवरतंके० निरंतर श्रुतजे शाम्बतेरू पी ईक्षणके० नेत्रेकरीनेगर्जावास तथानरक आदिशब्दथी निगोठ एकेडियादिक तेसं बंधीवेदनाउप्रतंजोता थकां ताहरं मानसके० चितते कपाय तथा विषयनेविषे नो श्लिष्यतेके० अशक्तनथाय एहेतुमाटे पूर्वोक्तवेदनाउने सम्यकरीतेविचारीसतो ता हरंचित विषयकपायथकी किचितमात्र उद्दिग्रनथाय ॥ ५ ॥

वधस्य चोरस्य यथा पशोर्वा संप्राप्यमाणस्य पदं वधस्य ॥

शनैःशनैरेति मृतिः समीपं तथाखिलस्येति कथं प्रमादः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ बलीमृत्युनयदेखामी प्रमादत्यजवानुं प्रतिबोधकरेते जेमवधकरवाने का ढ्या एहवाजे चोरतथा वोकडाप्रमुखजेपद्य तेहनेवधनास्थानके लइजतां जेमजेमव धना स्थानकतरफ पगलानरे तेमतेमथोडेथोडे मृत्युपणनजीकआवे तेहनीपरं स र्वप्राणीओने थोडेथोडे घडी पहोर दिवस मास वर्षादिकने जावेकरी मृत्युढुकडो आवेते तेकारणमाटे आत्मानाहितसाधननेविषे विजंबकेमकरिये अर्थात् प्रमादत्य जीने सर्वथाधर्मनेविषे तत्परथातुं ॥ ६ ॥

विज्ञेपि जंतो यदिऽ खराशो स्तदिडियार्थेपु रतिं कृथा मा ॥

तडुष्यं नश्यति शर्म यजाक् नाशो च तस्य ध्रुवमेव डुःखं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेसुखनो शीघ्रके० तुरतनाशपणुंदेखाडीने जीवनेप्रतिबोधकरेते हेजी वजोतु डु खनासमूहथकी बीहेते तो इडियार्थेजे शब्दादितेहनेविषे रतिके० रागकेमक रेते केमकेइडियार्थयीउपनुंजे शर्मके० सुखतेडागके० उतावलोज नाशपामेते अनेते हनानाशपठि डु खतो ध्रुवके० निश्चल चिरकालजगे निश्चितते जेमप्रकाशनेअंते अंध कार निश्चयकीहोय तेमंसुखनेअंते डु.खपणनिश्चयकीजहोय ॥ ७ ॥

मृतः किमु प्रेतपतिर्हरामया गताः ह्य किं नरकाश्च मुञ्जिता ॥

ध्रुवाः किमायुर्धनदेहबंधवः सकौतुको यद्विषयैर्विमुह्यसि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ बलीप्रकारांतरेजीवने सुखनाप्रतिबंधकदेखाडेते हेआत्मा प्रेतपतिजे यममृत्युजक्षण तेसुंमुद्यो के जतोरह्यो तथाडुष्टकारी आमयके० रोग यडुक्तं रो गाणं कांडीउ हवति पंचेव लक्ष्म्यडसही ॥ नवनवइसहस्ताइ ठसतयाचेव पणयाली

१५६८९५६४५ खासे सासे जरे दाहे कुम्बिसूजे जगंदरे ॥ अरसा अजीर्ण दीहि
मुहसूजे अरोयए ॥ १ ॥ अन्विवेयण कंठु अकणवाधाजजोयरे ॥ कुडे एमाइवा रो
गा पीलयति सरीरिण ॥ २ ॥ एसोलरोग महोटाकह्याठे तेदेहनेआश्रयीजरह्याठे ते
सुंद्दयपाम्या तथासातनरक तेहनावारणातेसुं मुडिताके० टंकाणा बंधथया तथा
आयुप धन देह अनेस्वजनजे बंधुतेसुं ध्रुवके० निश्चलशाश्वताठे जेमाटेतुं सकौतु
कके० सहर्षवतथको विपयनेविपे मोहपामेठे एटलेमृत्यु रोग अने नरक एत्रण
जयतो विद्यमानठे अने आयु धन देह स्वजन एतोअस्थिरठे तोतुसहर्षपणुते शा
कारणथीवरेठे तेकाइसमजातुनथी ॥ ८ ॥

विमोह्यसे कि विपयप्रमादै ध्रमात्सुखस्यायतिइ खराशे ॥

तज्जर्धमुक्तस्य हि यत्सुखं ते गतोपमं चायतिमुक्तिदं तत् ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेविषयसुखते निदानइ खरूपठे तेकही जीवनेप्रतिबोधेठे हेआत्मातुजने
विपयनेप्रमादैमिलीने निदान इ खराशिके० इ खनासमूह तेहने सुखनात्रमंथकी वि
मोह्यसेके० मोहपमाडेठे एटलेइ खनासमूहनेविपे सुखनीत्रातिथे जेतुंमोहपामेठे
तेमात्र विपयप्रमादना वशथकीजपामेठे एजावार्थेठे तेमाटे गर्हमुक्तके० तृष्णारहित
त एहवोथकोतुजने उपशमलक्षणरूप गतोपमके० अनुपमसुखते आयतिके० नि
दानमुक्तिनुदातारठे तेमाटे तृष्णारहित निरिहतासुखनेआदर ए इतिश्रीअध्यात्मकल्प
द्रुमे विपयावशतोपदेश पटोधिकार ॥ ९ ॥

अथ कपया० ॥ रे जीव सेहित्य सहिष्यसि च व्यथास्ता स्त्वं
नारकादि पु पराजवजू. कपायै. ॥ मुग्धोदितै. कुवचनादि
निरप्य त कि क्रोधान्निहसि निजपुण्यधन डुराप ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेसातमेअधिकारे कपायादिक त्यजवाआश्री उपदेशकरेठे त्यांप्रथम
कपायनुफलकहेठे हेजीवतुं कपायजे क्रोधादिकतेनाहेतुथी नरकादिकनेविपे पराजव
जेपीडा तेहनो जाजन थको ते माहा इ सह वेदनाओ सहनकरी अनेवलीपण
सहीश तेमाटेमुग्धजे अजाणलोकनाकहेला जे कुवचन गालप्रमुख इत्यादिकतुठकार
णोनेवास्ते डुर्जनएवुजेपोतानु पुण्यरूपीपुधन तेनेक्रोधथीशुहणेठे एटलेअत्पकारण
माटे कपायकरीने डुर्जनजेपुण्यरूप धनतेनेहरेठे तेमाटेकपायनकरवु ॥ १ ॥

पराञ्जिज्ञता यदि मानमुक्ति स्ततस्तपोखंडमत शिवं च ॥
 मानादृतिर्द्वचनदिञ्चिश्च तप ह्यरतन्नरकादिदुःखं ॥ ५ ॥
 वैरादियात्रेति विचार्य लाजालाजौ कृतिन्नाचवसंज्ञविन्यां ॥
 तपोऽथवा मानमवाञ्जिज्ञताविहास्ति नूनं हि गतिर्दिधैव ॥३॥ युग्मं ॥

अर्थ ॥ ह्वेमानमुकवानु अनेराखवानुं फलकहेठे हेआत्मा परजेअन्यजनतेथी
 अञ्जिज्ञतिके ० अपमान आक्रोशादिकउपजेथके मानजेअहंकार तेनेमुकीआप जेणे
 करीअखंमतपथी मोहप्राप्तियाय अनेदुरवचनादिकेकरी जोमानआदरीशतो तपनो
 ह्यथाय तैतपह्यथके नरकादिकडु खथाज्ञो तथाआलोकेपण वैर धनहानि मरणा
 दिकडु खथासे माटेहेनिपुणआत्मा एमपूर्वोक्तप्रकारे मानमुक्याथीजानठे अनेमान
 आदखाथीअजानठे एवेवातोविचारीने आजनके ० एकजवसंबंधिनी अञ्जिज्ञतिजेपरा
 जव तेउपजेठतेपण तपनेराख अथवामाननेराख केमकेएकार्यमा वेजउपायठे पण
 तेमाअञ्जिज्ञतितुंतो एकजजवतु दु.खठे अनेमानकखाथीतो तपह्यथाज्ञो तेवारे जवो
 नवेडु खठे तेमाटेमानत्यजीने तपनेराख एवेकाव्यनोअर्थेएकगठे ॥ २ ॥ ३ ॥

श्रुत्वा कोशान् यो मुदा पूरितः स्यात् लौष्टार्थैश्चाहृतो लोमहर्षी ॥
 य प्राणातिप्यन्यदोषं न पश्यत्येप श्रेयो जाग्लजेतेव योगी ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ ह्वेकपायतज्याथी मुक्तिफलठे तेकहेठे जेयोगीसाधु आक्रोश गाल प्रमुख
 सांजलीने आनंदपामी विचारेजे एगालितुं अनिधेय मैअनंतितवार अनुजव्युंठे एमचित
 वी वलीजेलोह पापाणादिके हणायोथकोपणजेतुं रोमांचित हर्षितथाय अनेएम
 चितवेजे आजमाहरे विशेषनिर्जराथइ एमजाणी वलीजेसाधुप्राणांतेपण अन्यना
 दोष तथाअवयुणनदेखे पणपोतानोजदोषदेखे एहवोजेयोगीश्वर मन वचन अने का
 याथीशुचयोगवत तेउतावलोज श्रेयजेमोह तेनेपामे ॥ ४ ॥

को गुणस्तव कदा च कपायै निर्ममे नजसि नित्यमिमान् यत् ॥

कि न पश्यसि च दोषममीपां तापमत्र नरकं च परत्र ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ ह्वेशुक्तियेकरी कपायमां गुणनोअजाव देखाडेठे हेआत्मा कपायजेकोधा
 दिक तेणेतुजेनेकोइवारे कोइपणयुणकस्योठेके जेथकीतुंएकपायने नित्यप्रत्येसेवेठे व
 लीआलोकेसंताप अनेपरलोके नरकनाडु खआपनार एवोजे कपायनोदोष तेनेतुन
 थीदेखतोतुं जे तुंनिश्चितथको कपायनेसेवेठे ॥ ५ ॥

यत्कपायजनितं तव सौख्यं यत्कपायपरिहाणि भवंति ॥
तद्विशेषमथवैतद्दुर्कं संविज्ञाव्य न ज धीर विशिष्टं ॥ ६ ॥

अर्थ॥वलीप्रकारातरे कपायत्यजतुं उपदेशेते हेआत्मा तुजनेकपायथी उपतुंजेसु
ख अनेकपायना परित्यागथी उपतुंजेसुख एवेतुविज्ञेपजे अधिकपणुं तथा उदकके०
निदानो विपाकजेफल तेसम्यक प्रकारे विचारीने पठे हेधीरपफित एमाजेतुजने विशि
ष्टउत्तमजाणवामाआवे तेनेतुंआदरअगीकारकर ॥ ६ ॥

सुखेन साध्या तपसा प्रवृत्ति र्यथातथा नैव तु मानमुक्ति ॥
आद्या न दत्तेपि शिवं परा तु निदर्शनाद्बाहुबलवले प्रदत्ते॥७॥
सम्यग् विचार्येति विहाय मानं रक्षन् झुरापाणि तपासि यत्नात्॥
मुदा मनीषी सहतेऽञ्जिन्तुती शूर क्षमायामपिनीचजाति ॥८॥

अर्थ॥हवैतपकरवाथी मानत्यागनी दुष्करता देखाडेते हेआत्मा जेम तपनीप्रवृ
त्तितेसुखेसाव्यते तेममानमुक्तिजे मानतुल्यजतु तेसुखेसाव्यनथी तो आद्याके० पहेली
कहीजे तपप्रवृत्तितेमुक्तिआपवा समर्थनथी अने बीजीजेमानमुक्ति तेयद्यपिदु साव्यते
तोपणते मुक्तिआपवाने समर्थते बाहुबलनेदृष्टाते जेमबाहुबलने मानमुक्तिविना मात्र
तपथकीज केवलज्ञान उपतुंनहीअनेमानमुक्त्युं तेवारे तत्कालज्ञानउपतुं एतुसम्यग्
विचारीने मानत्यजीनेयत्ने करीदुर्जन एहवोजेतप तेनेराखतोथको क्षमानेविषे शूर
एवोजे मनीषीके० पफित ते नीच जननो करेलो अञ्जिन्तुति जेपरानव तेनेपण मुदा
के० हर्षेकरिनेसहेते ॥ ७ ॥ ८ ॥ एवेकाव्यनोअर्थेकगेते

परान्जिन्तुत्याटिपकयापि कुप्यस्यघेरपीमा प्रतिकर्तुमिच्छन् ॥
न वेत्सि तिर्यङ्नरकादिकेषु तास्तेरनंतास्त्वतुला न्वित्रिणी ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ वलीएपरिसह सहेवाआश्रीज उपदेशेते हेआत्मातु थोडीपण परनीकरे
लीजे अञ्जिन्तुति पीडादिक तेणेकरि अञ्जिन्तुतिना करनारजे पुरुपतेउपर कोपेते अने
वली पापकरीने तेहना प्रतिकारने वाठेते एटले पूर्वजन्मांतरना पापविपाकथकी प
रानवपामेते अनेवलीतेहनो प्रतिकारपण पापेकरीनेज वाठेते परतुतेपापेकरीने तु
अञ्जिन्तुतिजेपीडाओ तेतिर्यचनरकादिक गतिनेविषे अनततथाअतुल मोहोटी एवि
न्वित्रिणीकहेता पीडाथागे एतुकांनथीजाणतो ॥ ९ ॥

धत्से कृतिन् यद्यपकारकेषु क्रोधं ततो धेह्यरिपट्टएव ॥

अथोपकारिष्वपि तन्नवार्तिकृतकर्महन्मित्रवर्हिर्दिपत्सु ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेक्रोधकरवो तेवैरीनेज विद्युत्कठे तेकहेठे हेपंनितआत्मा जोतुं अपकारक शत्रुनेविपे क्रोधधरेठेतो तेनेवदखेताहारा अंतरगनाजे क्रोध मान माया लोच राग अनेदेष मलीठगत्रुठे तेहनेविपेज क्रोधधर केमकेएठशत्रुथी वीजोकोइ तुजने वधारेडु.खदाइनथी अथवा उपकारक मित्रनेविपे जोतुक्रोधधरतोनथी तेवारेतुं सं सारमां अर्तिकारी एह्याज्ञानावर्णादिक कर्म तेनोहरणकरनाराजे उपसर्गादिकना करनार शत्रु तेनाउपसर्गनेकरवेकरी बाह्यदृष्टियेंतोते ताहारागत्रुठे पणकर्मक्यकर वामां अनेपरलोकना अनेतसुखनीप्राप्तिकरवामां साह्यकारीथया माटे तत्वदृष्टियें जोता अच्यंतरपणे तेमित्रनावेल परिणम्या तेथी उपसर्गकारकशत्रुने तत्वदृष्टीये मित्रतुल्य जोशने तेमित्रनेविपे क्रोधनधरवो एजावार्थेठे ॥ १० ॥

अधीत्यनुष्ठानतपःशमाद्यान् धर्मान् विचित्रान् विदधत्समायान् ॥

न लप्स्यसे तत्फलमात्मदेहक्लेशाधिकं तांश्च नवांतरेषु ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेमायात्यजवा आश्रीउपदेशेठे हेअत्मातु अधीतिके० नणणुं तथाअनुष्ठानजे क्रियाआवश्यकदिक तथातपउपशमादिक नानाविधधर्म ते मायाके० कपटसहित करतोथको मात्रतुं पोतानादेहने कष्टजआपेठे पणतेथी व्यतिरिक्तके० बीजूफलकांइ नवांतरनेविपे पामीसनही वली नवांतरनेविपे तेधर्मनेपणपामीसन ही केमकेमायावीने बोधीपामवीडुर्लनहोय ॥ ११ ॥

सुखाय धत्से यदि लोचमात्मनो ज्ञानादिरत्नत्रितये विधेहि तत् ॥

दुःखाय चेदत्र परत्र वा कृतिन् परिग्रहे तद्वहिरांतरेपि च ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ हवेलोचनत्यजवाआश्री उपदेशकरेठे हेआत्माजोतु पोतानासुखनेअ ये लोचकरेठे तोज्ञानादिक जे ज्ञानदर्शनअनेचारित्र एत्रणरत्ननेविपे लोचकर वी जीपनधान्यादिक असारवस्तुथी कांहिसुखनथाय माटेहेचतुरआत्मा तुआलोके डु खनेअर्थे बाह्यथीधनधान्यादिक अने अंतरगथी क्रोधमानादिक परिग्रहनेविपे लोच करिसनही ॥ १२ ॥

करोपि यत्प्रेत्य हिताय किंचित्कदाचिदल्पं सुकृतं कथंचित् ॥

माजीहरस्तन्मदमत्सराद्यैर्विना च तन्मा नरकातिथिर्नू ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ हवेजीवने सुकृतराखवाआश्रयी उपदेशेठे हेआत्मातु कोइकाले कथंचित् न

एकंकेकरीने काइएक अल्पके० थोहुंपणसुकृत जेदानादिक तथातपसंयमादिकते प्रेत्यके० परलोकना हितनेअर्थेकरेठे तेसुकृतनेमद मत्सर क्रोध लोभादिके करीने हारिसनही अनेवली तेसुकृतविना सातनरकनो अतिधिके० परोणो अइशनही एटले तेसुकृत खोयाथी नरकगतिथशे तेमाटे मदमत्सरादिकने निवारीनेसुकृतराखजे ॥१३

पुरापि पापै पतितोसि ससूतौ दधासि रे कि गुणिमत्सरं पुन ॥

न वेत्सि कि घोरजले निपात्यसे नियंत्र्यसे शृंखलया च सर्वतः ॥१४॥

अर्थ॥वली मत्सरत्यजवाआश्री उपदेशेठे हेआत्मानु पूर्वपण पापैकरीने संसारमां पडयोठे अनेवलीगुणवतने विपे शुभमत्सरधरेठे एमकांनथीजाणतोजे एमत्सरतोमु जने घोरके० अगाधडु खरूपियुं जेमा जलठे एहवा संसाररूपीया समुद्रमानांखेठे अनेवली ताह्रा सर्वांगने निकाचित कर्मरूप सांकलेकरीबांधेठे ॥ १४ ॥

कष्टेन धर्मो लवशो मिलत्ययं क्षयं कपायैर्युगपत्प्रयाति च ॥

अतिप्रपन्नार्जितमर्जुनं तत किमद्वा ही हारयसे नञस्वता ॥१५॥

अर्थ॥हवेआत्माने कष्टेउपार्जितधर्म राखवानो उपदेशकहेठे हेआत्मानुं धर्मनुं एकल वलेशमात्रपण कष्टेकरीने सचयकर केजेथकीताहरो कपायेकरीने युगपतके० समकाले घणाकालनो संचित करेलुजेक्लेशते एकवारेज कृपयामे तेमाटेहेमुखे घणाउद्यमे उपा ज्युंएहवुं अर्जुनजे सुवर्ण ते वायुएकरीने दाइतिखेठे शुद्धारी जायठे एटलेसुवर्णरस वायुये हाखानीपरे कष्टेउपाज्योर्जेधर्म तेनेकपायरूपवायुये हरावेठेतेयुक्तनथी ॥१५

शत्रून्जवंति सुहृद कलुपीजवंति धर्मा यशांसि नि

चिता यशांसीजवंति ॥ स्निह्यंति नैव पितरोपि च बांध

वाश्च लोकद्वयेपि विपदो जविनां कपायैः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥हवेकपायथी श्याश्याअवगुणथायठे तेकहेठे ससारीजीवने कपायैकरी ने मित्रतेशत्रूथाय वलीधर्मजे तपदानादिक तेमेलाथाय वलीचिरकाजनोसंचेलोयश तेपण अपयशसरखोथाय वलीमातापिता तथा बीजाखजनादिक तेपणकोइ स्नेह नकरे तेमाटेप्राणीने कपायेकरी आलोके अनेपरलोकेपण आपदाथाय. ॥ १६ ॥

रूपलान्जकुलविक्रमविद्या श्रीतपोवितरणप्रचुताद्यैः ॥

कि मदं वहसि वेत्सि न मूढानंतश स्वप्नशलाघवडुखं ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेजीवने मदनिवारवाआश्री उपदेशकहेठे हेआत्मानुं रूप लान कु ल पराक्रम विद्या लक्ष्मी तप दान ऐश्वर्य तथाआदिशब्दथी जाति परिवार स्त्री मं

द्विर इत्यादिकें करीने मद् अहंकार शृं वहेते? हेमूर्खअनंतिवार पोताना अतिशये जायवपणानुजे दुःख तेकेमनथी विचारतो? तुंपोतेंज अनंतिवार कुरूप जाजरहित हीनकुल निर्बल मूर्ख दरिडी तपकरवाने अशक्त रूपण दास किकर एहवो अवतलो हतो त्यांपणसर्ववातें हीनपणं अनुजय्युं तोआजइहां शृंमदकरेते ॥ १ ॥

विना कषायान्नचवार्तिराशि नवेचवे देव च तेषु सत्सु ॥ मूलं हि संसारतरः कषायास्तत्तान् विहायैव सुखी भवात्मन् ॥ १ ॥

अर्थ ॥ वलीफरीने कषायनुंल्यजवुंज वहेते. हेआत्मासंसारमां कषायविना संसार संबंधीनी आर्त्तिनोसमूह होयजनही अनेतेकषायेकरी विद्यमानठते नवार्त्तिनीराशि होयज केमके संसाररूपीयां वृहनुमूल तेकषायजे. माटेतेकषायनेठांमीनेसुखीथा. शांतिमुखनेपाम. ॥ १ ॥

समीक्ष्य तिर्यङ्नरकादिवेदनाः श्रुतेक्षणैर्धर्मद्वारापतां तथा ॥

प्रमादसे यद्विषयैः सकौतुकैस्ततस्तवात्मन् विफलैव चेतना ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेजेविषयने ल्यजीशक्तोनथी तेप्राणीने शास्त्रजण्यो तेपणअफलठे ते आश्रीकहेते हेआत्मा श्रुतजेसिद्धांत तेनेजोवेकरीने तिर्यंच नरक प्रमुखनी वेदनाने तथासर्वज्ञापित धर्मनुंहुर्लजपणुंते एमतेंसम्यक्प्रकारेजाणीने पणजोतु कौतुकस हितथको विषयमांराचेते तेवारे ताहारो चेतनाजे ज्ञानदृष्टि तेनिस्फलठे केमके तुन रकादिकनाडु खने जाणतोठतोपण हुर्लजधर्मपामिने धर्मकरतोनथी ॥ १ ॥

चौरैस्तथा कर्मकरैर्गृहीते दुष्टैः स्वमात्रेप्युपतप्यसे त्वं ॥ पुष्टैः

प्रमादैस्तनुजिश्च पुण्यधनं न किंचित्स्यसि लुठयमानं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेधर्मरूपधन तेजुटातुंनथी तेआश्रीजीवने उपदेशकहेते हेआत्माचोर लोको तथा दुष्टकुलरूपकर्मकर जेदासादिकतेणे स्वमात्रके० मात्रवाह्यधनने अप हखाठतां तुपरितापकरेते पणपोतानापोष्या एवाजेप्रमाद तथा तनुके० शरीर तेणेचो रनीपेठें लुटयुं एहवुंजे ताहरुं पुण्यरूप धन तेसर्वजुंटाइजायते माटेतेहनी रक्षाकर केजेथीतु नवांतरेसुखीथाय ॥ १ ॥

मृत्योः कोपि न रक्षितो न जगतो दारिद्र्यमुत्रासितं रोगांस्तेनृपादि

जा न च जियोनिर्णाशिताः षोडशः विध्यस्ता नरका न नापि सुखिता

धर्मैस्त्रिलोकी सदा तत्कोनाम गुणो मदश्च विच्युता का ते स्तुतीष्ठा च का १ ॥

अर्थ ॥ वलीआत्माने गुणरहितपणुदेखाडी मदनांवा उपदेशकरेहे हेआत्मा जोतें मृत्युनामुखथी कोऽप्राणिराख्योनथी तथा जगतजेविश्वतेतुं दारिद्रनाशपमां वचुंनथी वलीसोलेरोगजे कासादिक तथाराजाअने चोरप्रमुखनाचय तेनाशपमाडधानथी वलीसातजेनरक तेपणनिवाख्यानथी तथाधर्मकरीने त्रिचुवनने सदासुखीकीधुनथी इत्यादिकगुणमाहेलो एकगुणजोताहरामानथी तेवारेताहारोगुणतेम्यो, अनेतेगुणविना मदतेश्यो, तथा विच्युताके० मोहोटाइतेशी, तथास्तुति प्रशसानीवांठा तेपणशी, एटलेपूर्वोक्त तथाविध कोऽगुणजोताहरामाहोयतो मदकरवोपणघटेने पणतेविना तोजेमदकरवोतेसर्वे निर्थकठे तेमाटे मदमत्सरादिकत्यजवा ३१ इतिथी अध्यात्मकल्पद्रुमेविषयकपायाद्यवशताधिकार सप्तम सपूर्णम्म. ॥

अथशास्त्राण्याजित्योपदेशः॥शिलातलाजे हृदि ते वदंति विशति सिद्धांतरसा न चांत॥यदत्र नो जीवदयार्द्धता ते न जावनांकूरततिश्च लज्या॥२॥

अर्थ ॥ हवेआठमेंअधिकारे शास्त्रगुणकेहेहे त्यांप्रथमउपमानेशिक्कातरेचित्तनुक विणपणुदेखाडेने हेआत्माशिलाना तलियासरखा ताहराहृदयमां सिद्धातरूपिया रसवहेने पणतेथीतारोअंत.करण लिंगारेजेदातोनथी केमकेएहृदयमा जीवदया रूपणीकोमलता तथाजावनाजे अनित्यत्वादिक तेरूपीयाअकूरनी श्रेणी देखाती नथी कोमलपृथ्वी जेम जलप्रवाहनेयोगें आर्द्धतापामे तथात्या अनेकअंकुरादिप्रगटे तेमआसनसिद्धिकजीवने सिद्धांतनायोगथी हृदयमा कोमलताथाय तथाजावनाप्रमुख गुणपरिणामपणउपजे अनेडुरसिद्धिकजीवने तोए शिलातलनुंदृष्टांतजाणवु.

यस्यागमांचोदरसैर्न धौत प्रमादपंक स कथं शिवेचु ॥

रसायनैर्यस्य गदा कृता नो सुडुर्लजं जीवितमस्य नूनं ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेवक्तिविज्ञेपेकरी सिद्धांतनुं माहात्म्यकहेहे जेप्राणिने आगमजेसिद्धांत तेरूपीया मेघनेरसेकरी प्रमादरूपीयो पंकजेकचरो तेधोवाणोनथी तेवाप्राणिमुक्ति छंवाठेने एटले जेने सिद्धांतजाणवाथीपण प्रमादमटधोनही तेप्राणिपठे श्याथीप्रमादरहितथइ मुक्तिपामज्ञे केमके सिद्धांतथीअधिक बीजोकोऽ प्रमाद परिहारनो उपायनथी तेउपरदृष्टातकहेहे जेपुरुषने रसायनजेपारदादिक तेथीपण रोगकृयन पाम्यो तेनेजिवतव्य तेगणुजडुर्लजने एमइहांपणजे सिद्धांतजाणीने प्रमादरहितनथाय तोतेनेमुक्तिपामवी घणीज डुर्लजने ॥ ९ ॥

अधीतिनोर्चादिकृते जिनागमः प्रमादिनो दुर्गतिपापतेर्मुधा ॥

ज्योतिर्विमूढस्य हि दीपपातिनो गुणाय कस्मै शलजस्य चक्षुषी ॥३॥

अर्थ ॥ ह्वेजेपुरुषसिद्धांतनणिनेपण प्रमादवतठे तोतेहनुंजणवुं वृथाठेते कहे ठे जेपुरुषप्रमादवत सर्वथा दुर्गतिनोपंडनार तेअर्चादिके० केवलपूजासत्कारादिक नेजअर्थे सिद्धांतनणे एवोहोयतेहनु जण्युं मुधाके० निष्फलजाणवु तेउपर दृष्टां तकहेठे ज्योतिके० प्रकाशंकरिनेज मुंजाणोयकोदीवामांजइपडे एवोजे शलजके० पतंग तेहनाच हूजेनेत्र तेकेवागुणनाअर्थेहोय एतोउलटाअवगुणकारीजथाय तेमप्र मादिजीवरूपजे पतंगते अर्चासत्कारादिक ज्योतिमां मुंजाणोयको दुर्गतिरूप दीप ज्वालामांपडेठे त्यांसिद्धांतरूपचकृतेकांईकामनआवे सामोमोहकारीधाय ॥ ३ ॥

मोदंते बहुतर्कतर्कणचणाः केचिजयाद्यादिनां काव्यैः केचन कटिप
तार्थघटनैस्तुष्टाः कविख्यातितः ॥ ज्योतिर्नाटकनीतिलक्षणधनुर्वे
दादिशास्त्रैः परे ब्रूम. प्रेत्य हिते तु कर्मणि जडान् कुहंभरीनिव तान् ॥४॥

अर्थ ॥ ह्वेतत्वज्ञानविना घणुंजण्योपण व्यर्थेठे तेदेखाडेठे केटलाएकपुरुष घ णातर्कजेप्रमाण प्रमेयादिन्याय तेहनातर्कविचारनेविषे चणके० प्रतिष्ठित एवाढतां प रवादिने जीपवाथकी हर्षपामेठे तथावलीकेटलाक चितव्याअर्थनी रचनाएरच्यां एह्वेकाव्येकरिने कवीपणानीप्रसिद्धियकी संतोषपामेठे वलीकेटलाएक ज्योतिप नाट कनीतिके० व्यवहार शास्त्र लक्षणके० सामुद्रिक तथाअथ गजलक्षणादिक धनुर्वे दके०आयुध अन्यासनांशास्त्र आदिशब्दथी शकुन गारुडि इत्यादिक शास्त्रेकरिने सं तोषपामेठे पणपरलोकनेविषे हितकारीएवाजे संयमादिककर्मतेहनेविषेजो जडके० अज्ञानठेतोतेसर्वेने अत्यात्मशास्त्रने अनुसारे अमपेटजरा कहिये ठैये एटलेअथा त्मशास्त्रनेमूकीबीजासर्वजे पापश्रुतादिशास्त्र तेपेटजराइनाजठे ॥ ४ ॥

कि मोदसे पंडितनाममात्रात् शास्त्रेष्वधीती जनरंजकेपु ॥ तत्कि

चनाधीष्व कुरुष्व चाशु न ते नवेद्येन जवाब्धिपातः ॥५॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजहठेठे हेपंमिततुं जनके० लोकनेरजनना करनार एहवाजे शृंगार नाटककाव्यादिशास्त्र तेहनेविषेप्रवीणथको नाममात्रपंमितपणाथी शुहर्षपा मेठे एलोकरंजकशास्त्रथी कांइअत्यात्मार्थनीसिद्धिनथी पणतुंशास्त्रनेजाणिने शीघ्रपणे कांइकएहवीकरणीकर केजेएकरिने तुजनेसंसार समुद्रमां बुमबुंनथाय एटलेजिनाग मजणिने. तेहनेअनुसारे संयमआराध ॥ ५ ॥

बंधोऽनिश वाहनताडनानि क्लृप्तदुःखरामातपश्रीतवाताः ॥

निजान्यजातीयजयापमृत्यु इःखानि तिर्यद्विवति इःसहानि ॥३॥

अर्थ ॥ हवेतिर्यग्गतिआश्री इःखदेखाडेठे अनिशके० नित्यबंधन तथा वाहन के० नारनुउपाडवु तथापराणादिकना प्रहारेकरी ताडन वली कृधा तृषा डरामके० डुष्टरोग आतप तडको तथाटाढव वायुइत्यादिक तथावलीस्वजातीनोनय जेम म ह्मिने महिपनोनय तथाह्मिने ह्मिनोनय तथाअन्यजातीयनय ते जेम मृगादि कने व्याघ्रादिकनोनय तथाअपमृत्युजे कुमरण खद्गप्रहारथी तथाआहेडीप्रमुख थी तथाजल दावानल विपमादिकयोगथी कृधातृयादिक गाढवेदना आक्रांतपणे अकालमृत्यु इत्यादिकप्रकारे तिर्यग्गतिमा जयकरकरीन इ खहोयठे ॥ ३ ॥

सुधान्यदास्याञ्जिनवान्यसूया जियोतगर्जस्थितडुर्गतीनां ॥

एव सुरेष्वप्यसुखानि नित्यं कितत्सुखैर्वा परिणामइ खै ॥४॥

अर्थ ॥ हवेदेवगतिआश्रीइ खकहेठे नित्यप्रते मुयाके० फोकट अन्यके० पारकी सेवा करवी केमकेमनुष्यतो धननालोजे तथाआजीविकादिक कारणथी परनीसेवा करे अनेवेचतानेतो तेवोकोऽनिमित्तनथी तोपणसदाकाले इडादिकनीसेवाकरवी तथाआजवेवज्रप्रहारादिकनी पीडा अने अनिसूयाके० परस्पर ईर्ष्या वैपादिकमा बलि अंतके० चवननुंनय केमके सरवार्थसिद्धिना देवतानेपण चवननुनयठे तथागर्जा वासनुनय वलीडुर्गतिजे चांभालादिककुलें अथवातिर्यचनुंअवतारलेवु तेसबंधीनय इत्यादिक प्रकारे देवतानाजवमापण घणाप्रकारे असुखठे तेमाटेपरिणामे इ खकारी एहवाजे देवतासंबंधीसुख तो तेसुखेनुंथाय माटेतेसुखनेपण असुखकरीजाणवा ॥४॥

सप्तनीत्यञ्जिनवेष्टविह्वानिष्टयोगगददु सुतादिचिः ॥

स्याच्चिरं विरसता नृजन्मनः पुण्यतः सरसतां तदानय ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेमनुष्यगतिआश्री इ खकहेठे धुंवके० निश्चेंकरीने सातनीतिजे १ इह लोक २ परलोक ३ आदान ४ आकस्मिक ५ आजीविका ६ मरण ७ अपयश एसातनय तथा अञ्जिनवके० राजा चोर डुर्जनादिकथी पराजव तथा इष्टजे वद्व नजन स्त्री पुत्रादिकनोवियोग शत्रुप्रमुखनो योगके० संबंघ तथा गदके० रोग वली इ सुतके० कुपुत्र आदिशब्दथी कुनार्याप्रमुख इत्यादिकप्रकारेकरीने मनुष्यजन्मनु पण विरसपणुथाय तेकारणमाटे-पुष्पेकरीने मनुष्यजन्मनु सुंरसपणुकरवु ॥ ५ ॥

इति चतुर्गतिदुःखततीः कृतिन्नतिजयास्त्वमनंतमनेहसं ॥ हृदि

विज्ञाव्य जिनोक्तकृतांततः कुरु तथा न यथास्युरिमास्तव ॥६॥

अर्थ ॥ हवे उपसंहारकहेठे हेर्पमितआत्मा एप्रकारे अनंतकालसुधी अतिशय जयनीकरनार एहवीचारगतिसंबंधीजे डु खनीश्रेणी तेप्रते जिनोक्त श्रीसर्वज्ञप्रणि त कृतांतजे सिद्धात तेथकी तद्दयमां विचारिने जेम ए चारगतिना दुःखनीश्रेणीओ तुजने कोइवारे प्राप्तनथाय तेवो उपाय कर ॥ ६ ॥

आत्मन् परस्त्वमसि साहसिकः श्रुताद्वैर्यं ज्ञाविनं चिरचतुर्गतिदुःखरा॥१॥
पश्यन्नपीह न विज्ञेपि ततो न तस्य विच्छिन्नतये च यतसे विपरीतकारी॥७॥

अर्थ ॥ हवेआत्मा चारगतीना डु खजाणतोथकोपण धर्मनेविपे तत्परथातु नथी तेवास्तेपरमअविचारीपणुं देखाडेठे हेआत्मातुं अविचारमांहेमुख्यतो केमके आसंसारमां चिरकाललगें जावीएहवोजे चारगतिनाडु.खनोसमूहतेहने श्रुतसिद्धांत रूपनेत्रेकरी देखतोठतोपण बीकपामतो नथी वलीतेडु खना समूहनोविषेड करवा नेपण उजमालथातुनथी माटेतुं उपरातांकर्मनुकरनारओ केमके डु खवेद कर्मकर वानेबदले डु खवृद्धिकारीकर्मकरेठे॥७॥इतिशास्त्रोपदेशांतरगतचतुर्गत्याधिकारसमाप्त अथमनः ॥ कुकर्मजालैः कुविकल्पसूत्रजै निवद्धय गाढं नरकाग्निशिखिरां॥ विसारवत्पश्यति जीव हे मनः कैवत्तकस्त्वामिति मास्य विश्वसीः ॥१॥

अर्थ ॥ हवेचित्तदमन नामानवनमोक्षर कहेठे तेमांप्रथम आत्माने मनरूपशत्रु तु विश्वासकरवुनिषेधेठे हेजीवतुजने मनरूपी धीवर तेकुविकल्परूप सूत्रेगुथ्या ए हवाजे कुकर्मरूपी जालो तेऐकरीगाढोबांधीने नरकरूप अग्निपेकरी मत्सोनीपरे चि रकाललगे पचावसे जेमधीवरपण मत्सने सूत्रनीजाले गाढोबांधीनेपठे अग्नीमांप चावे तेमइहापण एउपनयजाणुं माटेतुंताहरामनरूप धीवरनोविश्वासकरीसनही जेम ते मनरूप धीवरनाबनावेला कुकर्मरूपजालमांपडेनही एवीरीतेंवर्तजे ॥ १ ॥

चेतोऽर्थं ये मयि चिरत्नसख प्रसीद किं कुर्विकल्पनिकरैः क्षिपसे जवे मां॥ वशो जलि कुरु कृपां नज सविकल्पान् मैत्री कृतार्थय यतो नरकाद्विज्ञेमिः

अर्थ ॥ हवेआत्माबीहितोथको मनरूपमित्रने विनंतीकरेठे हेचिरकालनामित्रतु चेतहैयामाहे हेघणाकालना सहचारीतु महाराजपर प्रसादकरीने एमाठा विकल्पने समूहेकरीने मुजने आसंसारमां सुंनमावेठे तुजनेहुं हाथजोमीने कहुंहुं जेतुमहारा

उपर रूपाकरीने शुजविकल्पजे धर्मे ध्यानलक्षण तेहनी नजनाकरी आपणीमैत्री त फलकर केमकेहुं ह्वे नरकना ड खयी बीहुंहुं ॥ २ ॥

स्वर्गापवर्गौ नरकं तथातर्मुहूर्त्तमात्रेण वशावश यत् ॥

ददाति जतो सततं प्रयत्नाद्दशं तदंतं करणं कुरुष्व ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ ह्वेआत्माने मनवशकरवाआश्री उपदेशआपेठे हेआत्माजे अत करण वशतथा अवशथको जीवने अंतरमुहूर्त्तमात्रमांज स्वर्गमोहादिकना सुखप्रतेआपे अनेनरकनी प्राप्तिपणकरावे एटलेमनवशथको जीर्णशेठ तथाप्रश्नचदराजार्पि इत्या दिकनीपरे स्वर्गमोहादिकआपे अने मनअवशथको तडुलमत्स्यादिकनीपरे अतर मुहूर्त्तमात्रमा नरकप्रतेआपे तेमाटेतुताहारा अंत करणनेज सर्वथाप्रकारेवशकर ॥३॥

मुखाय डु खाय च नैव देवा न चापि कालः सुहृदोरयो वा ॥

ज्वेत्पर मानसमेव जतो ससारचक्रभ्रमणैकहेतु ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ ह्वेतेहेजकहेठे जीवने देवता तथा वर्षा शीत ग्रीष्मादिककाल तथा मित्र शत्रुतेकोऽपण सुखदायी तथादु खदाइनहोय पणएकमन तेहिजजीवने सुख दायी तथा डु खदायीहोय ह्वे तेमनकहेठेठे तेकहेठे ससारसमुद्गमा च्रमणजे ज न्ममरणादिक तेहनुंएकहेठेठे एवचन सङ्गीर्पंचेडी आश्रीजाणवु अन्यथा असङ्गीने मनना अनावे पण ससारमा च्रमण देखायठे ॥ ४ ॥

वश मनो यस्य समाहित स्यात् किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ॥

हृतं मनो यस्य च डुर्विकल्पै किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ॥५॥

अर्थ ॥ जेप्राणीनेपोतानुंमन समाधिवतठतो वशवर्त्तिहोय तेहने नियमजे ? शौच २ सतोष ३ स्वाध्याय ४ तप ५ देवताप्रणिधानादिक लक्षण तथायमजे प्राणातिपात विरमणादिक पाचमहाव्रत तेहनुंसुंकार्यठे केमकेतेतोसर्वे मनवशकर वाना उपायठे अनेजेवारेते मनवशथयु तेवारेतो ते सर्वगुण प्रथमजआव्या अनेजे प्राणीनुं मन माताविरुष्येकरी हतप्रहृतठे तोतेहने नियमयमे करीने पणसुथवानुंठे जेमठालीना गलाना स्तनधाव्याथी काऽ अर्थसिद्धि नथाय तेमज मनवश थयाविना यम नियमादिक पण व्यर्थ जाणवा ॥ ५ ॥

दान श्रुतध्यानतपोर्चनादि वृथा मनोनिग्रहमतरेण ॥ कपाय

चिंताकुलतोञ्जितस्य परो हि योगो मनसोवशलं - ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जीवने एक मनवशयथाविना दानतथा श्रुतसिद्धांतनुंजणुं तथाध्यान
तथा अर्चनजे देवपूजा आदिशब्दथी प्रासाद देवप्रतिष्ठादिक क्रिया तेसर्ववृथाजा
एवी पण तेमोक्षफलनी देनारनथाय केमके कपायजेक्रोधादिक तेसंबंधीनीचिंता
थकी उपनीजे असाता तेणेकरीरहित एहवुंजेमन तेहनुंवशवर्त्तिपणुं तेहिजपरम
योगे अने तेहिज अष्टाग योगनु सर्वस्व ॥ ६ ॥

जपो न मुक्त्यै न तपोधिचेदं न संयमो नापि दमो न मौनं ॥

न साधनाद्य पवनादिकस्य किं त्वेकमंतकरणं सुदातं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जीवने नवकारादिभूजप तथा बाह्य अन्यतर बेप्रकारनुंतप तथासंयम
चारित्र तथा दमजे इंडियदमन तथामौनजे वचननुंसंवर तथा पवनादिकनुंसाधन
आदिशब्दथी चोरासी योगासनप्रमुख तेकांइमुक्तिना देवावाला थायनही तेवारे
तुजने कितुके० मुक्तिप्राप्तिनो शोउपायठे तेकहेठे जेणेरुडीरीते पोतानुंअंतकरणजे
मनतेहने वशकथुं तोतेहिज एकमुक्तिनुं दातार होय ॥ ७ ॥

लब्धापि धर्मं सुकलं जिनोदितं सुदुर्लभं पोतनिजं विहाय च ॥

मन.पिशाचग्रहिलीकृतः पतन् जवांबुधौ नायतिदृग्जग्नो जनः॥८

अर्थ ॥ जडके० हेअज्ञानीप्राणी अतिशयेंकरीपामुंडुर्लभ प्रवहणसरिखो एह
वोएसर्वज्ञप्रणीत संपूर्णधर्म तेप्रतेंपामिने वलीतेहनेठांमिने मनरूपिओ पिशाचके०
नूततेणेघहेजोकखोथको संसारसमुड्मांपमता आयतिदृग्के० उत्तरकालनो विचार
करतोनथी एटलेएमनथी विचारतोजे प्रवहणरूप,धर्मनेठानी संसारसमुड्मां जंपाया
तखाउंठुं तेथी आगलें हवे महारी शीगति थासे ॥ ८ ॥

सुदुर्जयं ही रिपवत्यदोमनो रिपूकरोत्येव च वाक्तनू अपि ॥

त्रिभिर्हतस्तद्विपुञ्जिः करोतु किं पदीजवन्डुर्विपदा पदे पदे॥ ९॥

अर्थ ॥ हेआत्माअतिशय दुर्जेयएहवुंजे ताहरुंमन तेपोतेंशत्रुपणुं आचरेठे अ
नेवली, वचनतथाकायानेपण शत्रुकरेठे मनडुष्टथके वचनतथा कायानाव्यापारपण
डुष्टयाय तेकारणमाटे मन वचन तथाकाया एत्रणेशत्रुयें पराजव्यो एहवोतुंपंगेपंगे डुष्ट
विपदा जे नरकादिक तेहनुं नाजनथातोथको तुमुंकरे एटलेताहरोकांइचाजतुं नथी॥९
रे चित्त वैरि तव किं नु मया ऽपराधं यद्दुर्गतौ क्षिपसि मां कुविकल्पजालो॥जा
नासि मामयमपास्य शिवेस्ति गता तत्किं न संति तव वासपदं ह्यसंख्याः१०

अर्थ ॥ हेचित्तरूपवैरी में ताहरोशो अपराधकीधोळे केतुमुजने विकटपरूपजालें बांधीने छुर्गीतिमानाखेळे जोतुएमजाणतोहोयजे एजीवमुजनेपरिहरीने मुक्तिजनारठे तोपणताहरे वशकरवानास्थानक वलीमहाराशिवाय बीजाअसख्याता संसारीजी वसुंनथी एटले एकहुंजतोरह्यो तोपण ताहरेवीजानीशीखोटळे ॥ १० ॥

पूतिश्रुति.श्वेव रतोर्विदूरे कुष्ठीव संपत्सुदृशामनर्हं ॥

श्वपाकवत्सज्जतिमंदिरेपु नाहेंत्प्रवेशं कुमनोह्तोगी ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेमननाअवशपणाथकी बहुप्रकारना अवगुणथायठेतेदेखाडेवे डुट मनेकरीसंततापपाम्यो एहवोजेप्राणी तेकुह्याकानना कुतरानीपरें रतिजेनिवृत्तितेहृथी वेगेलोहोय जेम कीफेखाथो एहवोजे कुतराते फिहापणरूपमात्र रतिपामेनहीतेम कुविकटपचित्तनोधणी तेपणरतिरहितहोय वलीकोढीआनीपरें संपदारूपणीजे सुदृ शात्रोरूप उत्तमकन्याओ तेहनेवरवाअयोग्यहोय जेमकोढीआनेकोइपण उत्तमक न्यावरवावाठेनही तेमदुष्टचित्तवतप्राणीने सौजाग्यादिक कोइपणसपदाआश्रयेनही वलीसद्गतिरूपजेमदिर तेहनेविपे श्वपाकके० चडालनीपरें प्रवेशकरवानपामे॥११॥

तपोजपाद्या स्वफलाय धर्मा न छुर्विकल्पैर्दतचेतस स्यु ॥

तत्स्वाद्यपेयैः सुचृतेपि गेहे क्षुधातृपाज्या प्रियते स्वदोपात्॥१२॥

अर्थ ॥ माटेविकटपेकरी जेहनुंचित्तपीडांठे एहवाप्राणीने नपजपप्रमुखजेधर्म तेपोतपोताना फलनुंदेवावालोनाथय अने कुविकटपचित्तनोधणी धर्मक्रियाकरतोथ कोपण मोहफलपामेनही तेउपरदृष्टातकहेते जेमकोइ अपुण्यवतप्राणी खानपाना दिके नरेलाघरमांपण पोताना रुपणताद्यादिकदोषथी सुखतृष्णायेपीडाय तेमइहा पण कुविकटपचित्तवतप्राणीते ठतेधर्मपण परजवेसीदाय ॥ १२ ॥

अकृत्रसाध्यं मनसो वशीकृतात् पर च पुण्य न तु यस्य तद्वशं ॥

स वंचित पुण्यचयैस्तद्भवैः फलैश्च हीही हतक करोतु किं॥१३॥

अर्थ ॥ एकमनना वशकरवाथी बीजुंसर्वपुण्यते सुखेंसाध्यठे अनेते मन जेहनेव शनथी तेप्राणी पुण्यनेसमूहें तथातेपुण्यजनितफलेंकरीने वाठितठे तेफोकठे एट लेमनवशविना पुण्यनी तथापुण्यजन्यक फलनी फोकट आशाराखेळे तेमाटे हीही इतिखेदे एवापडो प्राणी सुंकरे पठे तेहने एके गतिनथी ॥ १३ ॥

अकारणं यस्य सुञ्जर्विकल्पैर्हतं मनः शास्त्रविदोपि नित्यं ॥

घोरैरघैर्निश्चितनारकायुर्मृत्यौ प्रयाता नरके स नूनं ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ यद्यपिसिद्धातनोक्षणनारके तथापिजेहनुंमन अकारणके० उपसर्गादि ककारणविना पण नित्ये अतिशयेकुविकल्पेकरी पीफित्ते तेपुरुषमहारौडपापेकरीने दृढकीधुंते नरकायुजेणे एहवुंथकोते सर्वथा मुद्यापठी नरकमांजजरो ॥ १४ ॥

योगस्य हेतुर्मनसः समाधिः परं निदानं तपसश्च योगः ॥

तपश्च मूलं शिवशर्मवल्या मनःसमाधिं जज तत् कथंचित् ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ मननीसमाधिजे एकाग्रता तेहिज योगनुंहेतुते अनेवलीयोगजे अष्टांग लक्षण तेतपनुंपरम उत्कृष्टकारणते अनेतेतपतो मोक्षसुखरूपणी वेलीनुंमूलते मा टेहेआत्मा जेतेउपाय करीने मननीसमाधिनेआदर केमके मननीसमाधिथी योग अने योगथी तप तथा तपथीमोक्षसुख एमपरपराये सर्वसिद्धिपामे ॥ १५ ॥

स्वाध्याययोगेश्वरणाक्रियासु व्यापारणैर्द्वादशज्ञावनाग्निः ॥

सुधीस्त्रियोगी सदसत्प्रवृत्तिः फलोपयोगैश्च मनो निरुंध्यात् ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ हवेमनसमाधिना उपायकहेते स्वाध्यायजे जिनागमतेहनायोगनुं वहेतुं आंबिलादिक तपविशेष तेणेकरीने तथाचारित्रसंबंधीनी क्रियानेविषे प्रवर्तवेकरी वलीअनित्यादिक वारज्ञावनायेकरीने वली त्रियोगीजे मन वचन कायानायोग ते दोनी सदसत्प्रवृत्तिके० जलोअने जूडोव्यापार तेहना फलनुं उपयोगजे विचारणा एटलेत्रियोगना गुणव्यापारनो शो फलते एहवीविचारणा अने अगुणव्यापारनोशो फलते एहवाजे उपयोगदेवा इत्यादिक प्रकारेकरी मननेवशकरतुं ॥ १६ ॥

ज्ञावनापरिणामेषु सिंहेष्विव मनोवने ॥

सदा जाग्रत्सु दुर्ध्यानसूकरा न विशंत्यपि ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेवली एसर्वप्रकारमा पण ज्ञावनापरिणामने विशेषदेखाडेते मनरूपी आवननेविषे सिंहरिखाजे ज्ञावनाना परिणाम तेमांसर्वदासावधानरहेथके दुर्ध्या नजे आर्त्तरोडुध्यान तेरूपजे सूअरोते प्रवेशपणकरीशकेनही तोतिहां तेसूअरो वासकरवानेतो सर्वथानंजपामे ॥ १७ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पडुमे चित्तदमनाजि धानो नाम नवमोअधिकार संपूर्ण थयो ॥ ९ ॥

अथ सामान्यतो वैराग्यधर्मोपदेशः ॥ किं जीव माद्यसि हसस्य
यमीहसेऽर्थान् कामांश्च खेलसि तथा कुतुकरशंक. ॥ चिह्नि
प्सु धीरनरकावटकोटरे वा मज्यापतल्लघु विजावय मृत्युरक्त. ॥१॥

अर्थ ॥ हवेसामान्यथी वैरागोपदेशनामा दसमोअधिकारकहेठे तेमाप्रथमजीव
ने मरणसंबंधीजयदेखाडेठे हेजीवतु मदशानोकरेठे तथासुंहरोठे वली अर्थजेसुव
र्यरूपादिक तेहनेसुंवाठेठे तथावली नि शकठतो कौतुकेकरीने कामजे शब्दादिक
विषय तेप्रतेसुंरमेठे तुजनेतो जयंकर नरकरूपजे खाइ तेमानाखवावाठतो एवो मृ
त्युरूपजे राहस तेउतावळुं तारेसन्मुखआवतु साजलीने नि शकरहिशनही ॥१॥

आलंबनं तव लवादिकुठारघाताश्रिंढंति जीविततरुं न
हि यावदात्मन् ॥ तावद्यतस्व परिणामहिताय तस्मि
न् विन्ने हि क कच कथं जविता स्वतंत्र ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेआउपुंविद्यमानठते जीवनेधर्मकरतु उपदेशेठे हेआत्माताहरो आ
लंबनआधारचूत एहवोजे जीवितव्यरूपवृद्ध तेप्रते लवादिकजे लव लेश रूप घ
डी मुहूर्त्तप्रमुखकालमान तेरूपीया कुहामानाघाव जाहांजगेठेदेनही तेहधीपहेजां
ज परिणामहितजे निदानहितकारी तपसंयमादिक तेहनेअर्थेउद्यमकर जेथ
कीताहरो जीवितव्यरूप वृद्धेद्यापठि फरीतेहने नवपल्लवकरवाने किहाक कोइकप्र
कारें पण मत्रउपायथासे जेणेकरीतु जीवितव्यरूपतरुने नवपल्लवकरीस एटलेह
णेहणे जीवितव्यरूप वृद्धेदातुंजायठे तेठेदाइगयापठि फरीसळकरवानु कोइउपा
यनथी तेमाटे आत्महितनेविपे तत्परथावु एहिजश्रेष्ठउपायठे ॥ १ ॥

त्वमेव मोग्धा मतिमान् त्वमात्मन्नेष्टाप्यनेष्टा सुखदुःखयोस्त्वं ॥

दाता च नोक्ता च तयोस्त्वमेव तच्चेष्टसे किं न यथाहितासि ॥३॥

अर्थ ॥ हवेसर्वकरणीते आत्मानेआधीनठे एहवुकहिने विशेषेंप्रेरेठे हेआत्मातुं
मोग्धाके० मूढतासहितठो अने मतिमान्के० ज्ञातापणतुठो वजीसुखतु वांठक अ
नेइ खनुंअवाठकपणतुठो तथासुखअनेइ खनुंदाता अनेनोक्तापणतुजठो केमके सु
खइ खते स्वरुतकर्मधीजयायठे यडुक्तं श्रीउत्तराध्ययने अप्पानेईवेअरणि अप्पामे
कून्तामली अप्पाकामडयाधेणु अप्पामेनंदणवण अप्पाकत्ताविकत्ताय इत्यादिक
माटे जेरीतें ताहरीआत्माने हितनीपजे तेमजकानथीकरतो ॥ ३ ॥

कस्ते निरंजन चिरं जनरंजनेन धीमन् गणोस्ति परमार्थदृशेति पश्य ॥
तं रंजयाशु चरितैर्विशदैर्भवाब्धौ यस्तां पतंतमबलं परिपातुमीष्टे ॥४॥

अर्थ ॥ ह्र्वेलोकनेरीजवतोथको आत्मापोतातुं हितकांडकरतोनथी तेआश्रयीउ
पदेशेहे हेनिरंजन हेनिरलेपआत्मा हेबुद्धिवंत हेहिताहितविवेकनाजाण चिरकाल
जावजीवलगें लोकनुंरीजवतुं एटलेमलीनवस्त्र धारणकरी बाह्यक्रिया देखाग्नीने शू
न्यचित्ते गमेगामें उपदेशआपीने लोकनुंमनरीजवतुं तेथीतुजने शोगुणते एटलुंत
त्वदृष्टे विचारी परमार्थदृष्टीयेजोतां लोकरीजव्याथी आत्माने अर्थसिद्धिकांडनथी
तेमाटे लोकरंजनत्यजीने उतावलोथयी विशदके० निर्मलजे चारित्र तपसंयमादिक
आचरण तेपोकरीने श्रीवीतराग तथातेमनाजापेलाधर्मनेरीजव जेथकीतुजने अ
बलंके० परचवें संबलेंरहित संसारसमुद्रमांपडताथका राखवानेसमर्थथाय केमके
संसारमांपडता एकधर्मजआधार आपणे पणलोककोइ आधारआपणेनही ॥४॥

विधानहं सकललब्धिरहं नृपोहं दाताहमद्भुतगुणोहमहं गरीयान् ॥

इत्याद्यहंकृतिवशात् परितोपमेपि नो वेत्सि किं परचवे लघुतां चवित्री ॥५॥

अर्थ ॥ ह्र्वेअहकारनिवारवा उपदेशेहे हेआत्मा हुंपंफितहुं हुंसर्वलक्ष्मीये स
हितहुं हुंराजाहुं हुंदातारहुं हुंअद्भुतगुणवतहुं तथाहुंमहोदोहुं इत्यादिकजे पोता
नामनकल्पित अहंकार तेहनावशथकी तुं परितोपके० हर्षपामेणे पणजन्मातरें
जाविनी एहवीतेपदार्थानी लघुताप्रते कांविचारतोनथी जेजेपदार्थनेतु आजवमां
हुंपदेकरेणे तेतेपदार्थनीतुं परचवेंहीनतापामिस इतिजाव ॥यद्भक्तं योगशास्त्रे ॥जाति
लाजकुञ्जैश्वर्य बलरूपतप श्रुतैः ॥ कुर्वन् मदं पुनस्तानि हीनानि लज्यते जन इति ॥५॥

वेत्सि स्वरूपफलसाधनबाधनानि धर्मस्य तं प्रचवसि

स्ववशश्च कर्त्तुं ॥ तस्मिन् यतस्व मतिमन्नधुनेत्यमुत्र

किंचित्त्वया हि नहि सेत्स्यति जोत्स्यते वा ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ ह्र्वेआत्माने इहचवेंधर्मकरवानी प्रेरणाकरेणे हेबुद्धिवतप्राणी तुधर्मतुं
स्वरूपजे क्हात्यादिकदशविध लक्षण तथाधर्मतुंफलजे मोहादिक तथाधर्मतुंसाधन
जे मनुष्यजन्म आर्यद्वैत्रादिक तथाधर्मना बाधकजे कुजन्म कुद्वैत्र प्रमाद मिथ्या
त्व इत्यादिकसर्वप्रकारने वेत्सिके० जाणेणे अनेवली स्ववशके० पोतानेवज्ञेथको ध
र्मकरवाने समर्थपणतो पणतिर्यच नारकीनीपरे परवश तथाधर्मकरवाने असमर्थ

नथी तेमाटे आनवमाज धर्मेनेविषे उद्यमकर केमकेफरी परनवेते काइ सीजेनही
तथा तुजने तेवा धर्मनु फरीकाइ जाणपणुपण नहीथाणे माटे ॥ ६ ॥

धर्मस्यावसरोस्ति पुञ्जलपरावर्त्तैरनंतैस्तथा यात संप्रति जीव हे प्रस
हतो दुःखान्यनंतान्ययम् ॥ स्वल्पाद् पुनरेप दुर्लभतमश्चास्मिन् य
तस्वाहंतो धर्मं कर्तुमिमं विना हि न हित इ खक्षय कर्हिचित् ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने धर्मनुंअवसरजणावेळे हेजीवअनताइ ख सहित तुजने
अनंते पुञ्जलपरावर्त्ते ससारमानटकता सप्रतिके० हमणा आनवमा धर्म करवानुअव
सरआव्योळे अनतउत्सर्पिणी अने अवसर्पिणी प्रमाण एकपुञ्जलपरावर्त्त थाय ते
दनुस्वरूप अथातरथीजाणवु एधर्मनुंअवसरते थोडाजदिवसलगण्णे फरीपामवु घ
एणुडर्जने तेमाटेएअवसरे श्रीजिनोक्तधर्म करवाने उद्यमकर केमके एजिनोक्तधर्म
विना ताहरे किवारेपण जन्ममरणादिकना इ खनो क्यथवानुनथी माटेजोड ख
तुं अतकरवाने वाठतोहोयतो एअवसर पामिने धर्मकरवाने तत्परथा ॥ ७ ॥

गुणस्तुतिर्वागसि निर्गुणोपि सुखप्रतिष्ठादि विनापि पुण्यं ॥

अष्टागयोगं च विनापि सिद्धिर्वातूलता कापि न वा तवात्मन् ॥८॥

अर्थ ॥ हवेअयुक्तवाठकपणाथी जीवतुबाहुजापणुदेखावेळे हेआत्मातुज्ञानदर्शन
चारित्रादिकगुणेरहितथकोपण गुणस्तुतिजे पोतानीप्रशस्ता लोकनामुखथी कीर्त्तिना
वरणनने वाळेते तथापुण्यविनापण सुखने तथा प्रतिष्ठाके० गौरवपणानेवाळेते व
ली अष्टागजेयोग यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि
एआठयोगविना पण सिद्धिअष्टकर्मक्यलक्षण सिद्धनाआठगुण अथवा सिद्धिते
अष्टमहासिद्धि लघिमा वशिता ईशिता प्राकाम्य महिमा अणिमा यत्नकामावसायि
ता प्राप्ति तेप्रतेतुवाळेते माटेहेआत्मा एताहरो बाहुजापणुंते कोइअपूर्वनबुजदेखा
यळे केमके कारणनी सामग्रीविनाज कार्य नीपजाववानी अजिलापाकरेते ॥ ८ ॥

पदे पदे जीव पराञ्जिन्तुती पश्यन् किमीर्ष्यस्यधम परेन्य ॥

अपुण्यमात्मानमवैपि किं न तनोपि क्वा न हि पुण्यमेव ॥९॥

अर्थ ॥ हवेवीजानाकरेला अपमानथी जीवईर्पाकरेते तेआश्रीउपदेशकरेते हे
जीवतु पुण्यरहितपणाथी अधमके० नीचअवस्थापाम्योथकोपण पगेपगे बीजानी
करेली जे अजिन्तूतिके० अपमान आक्रोशादिकते देखीने परेन्य के० तेलोकउपरे
सुं ईर्पाके० क्रोधकरेते पणपोताना आत्मानेज पुण्यहीन केमजाणतोनथी जेपुण्यर

हितहोय तेहनेतो पगेंपगें पराजवथाय तेमांहुं महोटीवातळे एमकांविचारतोनथी अ
थवानिश्चेथी पुण्यजकेमकरतोनथी केजेयकी कोइपराजवनथाय ॥ ९ ॥

किमर्दयन्निर्दयमंगिनो लघून् विचेष्टसे कर्मसु हि प्रमोदतः ॥

यदेकशोप्यन्यकृतार्दन. सहत्यनंतशोप्यंग्ययमर्दनं जवे ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माप्रते परनेपीडातुं फलकहेळे हेआत्मातुं निर्दयपणेकरी ताह्रा
यकी लघुके० निर्बल एहवाजे अंगीके० प्राणी तेहनेपीडतोयको तु प्रमोदत के०
हर्षेकरी पापकर्मविषे सुंप्रवर्त्ते केमके एकवारपण जेप्राणिये अन्यजीवने पीडाउ
पजावीहोय तेप्राणीअनंतिवार संसारमांपीडासहे यडुकं तिद्वयरेउपउसे सयगुणि
उसयसहस्रकोडिगुणा ॥ कोडाकोडिगुणोवाहुऊ विवागो बहुतरो वा इति ॥ १० ॥

यथा सर्पमुखस्थोपि जेको जंतूनि जहयेत् ॥

तथा मृत्युमुखस्थोपि किमात्मन्नार्दसेऽग्निः ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेतेउपर दृष्टांतकहेळे जेम जेकजे फेडको तेसर्पनामुखमां रह्यो अर्द्धग्रसित
थको पण जंतुजेन्हाना कृड्जीवतेप्रतेखाय तेम हेआत्मा तुपणमृत्युना मुखमां र
ह्योयको पण अन्यप्राणीआने सुंपीडाआपेळे ॥ ११ ॥

आत्मानमलपैरिह वंचयित्वा प्रकल्पितैर्वा तनुचित्तसौरभ्यैः ॥

जवाधमे कि जन सागराणि सोढासि ही नारकडुखराशीन् ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ हवेइहजनें हिंसाजनित अल्पमात्रसुखथी परजवे अनंताडुख सहेवा
पडजे तेकहेळे हेजन हेसंसारीप्राणी प्रकल्पितके० तेताहरी कल्पनामात्रथी डुख
नेज सुखकरीमान्या तेपणवली अल्प तुळ कृण स्थायी एहवाजे मनवचनकाया
संबंधीसुख तेणेकरी इहजवे तुग्यायेठतो हाहाडितखेदे जवजे चारगतिरूपसंसार
तेमां अधमजे नरकतेहनेविषें घणाक सागरोपमसुधी नारकीनाजेडुखसमूह तेसहे
वाने सुंतत्परथायळे ए विषय सुखते डुखजळे पणकल्पनामात्रथी एनेजीवसुख
करीमानेळे ॥ १२ ॥ यदाह नर्तृहरि ॥ तृपा शुष्यत्यास्ये पिबति सजिज्ञं स्वाडु सुरजि
कृधार्तं. सन् शालीन् कवलथति मांसाज्यकवलान् ॥ प्रवीसे रागाग्रौ सुदृढतरमा
श्लिष्यति वधूं प्रतीकारो व्याधे. सुखमिति विपर्यस्यति जन ॥ १ ॥

नुरभ्रकाकिण्युदविदुकाभ्र वणिकत्रयीशाकटनिहुकाद्यैः ॥

निदर्शनैर्द्वारितमर्त्यजन्मा डुखी प्रमादैर्बहु शोचिताऽसि ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजअर्थ उचराव्ययनसूत्रना दृष्टातेकरी दृढकरेते हेआत्मातु प्र
मादजे मद्यादिकपाच तेनावगथकी मनुष्यअवतारहारीने पत्रेपरजवेडु खीओथको
उरत्रजेवोकडो कागिणी उदकविडु आम्रवातकीराजा वणिकत्रयीजे त्रणव्यापारी
शाकटजे गामावाहक जिहुकजेराक इत्यादिकोनादृष्टातेतुपण घणुंशोचनाकरीस ॥ १ ३

इहासंक्षेपथी उरत्रादिकना दृष्टातलिखेते तेमाप्रथम उरत्रनुदृष्टातकहेते जेम
कोऽगामसा कोऽकनाघरमध्ये एकवोकडोहतो तेकोऽक प्राहुणाआवसे तेवारे ए
हनुंमास काममाआवणे एमचितवीने तेधरनामाणसो तेवोकडाने अन्नादिकेपोपेते
अनुक्रमेते वोकडो घणुपुष्टशारोथयो हवेतेहनेतेहवोदेखीने एकवाढडो मनमाखेद
पाम्योथको क्रोधधरीने दोहतांगेपरखुजे पोतानीमातानुंडुध तेहनेधावेनही तेवारे
माताये क्रोधनुंकारणपुत्रेथके कहेवालागो हेमाताजूओने आबोकडो यथेष्ट अ
न्नादिकखायते तेथीकहेवो पुष्टयइरह्योते एहनेपुत्रनीपरेपालेते नानाप्रकारना अ
लंकारपहेरावेते अनेमुजनेतो पोतानीमातानुंडुध तेपणकोऽधीवादेतोनी तथासुका
तृणतेपण वखतउपर पूरामलतानथी एहवुसानजी मातायेकसु आउरचिणाऽ
पया जाऽचरसिनंदिउ॥सुकृतिपोहलावेहि एय दीहाउजरक्षण॥ १ ॥हेवत्स जेमरोगीउ
मरवापडयोहोय तेहनेजेकाऽखावामांगे तेआपे तथाफुलनीमाला प्रमुखपहेरावे तेम
एबोकडानेपण वयममननीपरे गृंगारादिककरेते पोपेते पणकोऽप्राहुणाआवसे तेवा
रेपरीह्वाजणासे तेसांजली वत्सठानोरह्यो पत्रेकोऽकदिवगे तेहनेधरेप्राहुणाआव्या
तेवारेतेबोकडानेबाधी उचूकरी घणुतडफडतो जीजकाढतो दीनस्वरे आरडतो मृत्युप
माडयो तेहनामासने खडोखडकरी पचावीने प्राहुणासहितसकुटुबे धरधणिये नह
एकीरुं तेदृचातदेखीने वाढडो नयपाम्योथको सुख्योतरस्योथकोपण मातानुंडुधपीये
नही तेवारेमाताये पुत्रेथके वत्सबोओयो हेमातामे वोकडानीएहवी जूंमीअवस्थादीठी
तेथीमुजने वाववानीपण वांठाथातिनथी एमइहापणएउपनय जोमवो जेमतेबोक
डोजीवितव्यनीवाठाये निर्जयपणे यथेष्टपुष्ट्यातुंथको प्राहुणाआवे मृत्युपाम्यो
तेमहेआत्मातुपण प्रमाटेपुष्ट्यको यथाऽन्नायेविचरेते पणमृत्युआवेथके मनुष्य
जन्महारीनरकादिकना इ खपामि घणुशोचपामीस

हवेवीजुंकागणीनुदृष्टातरुहेते जेमकोऽकराक परदेशेजइ मजूरीकरीने एकहजार
सौनया कमायो पत्रेपोतानदेश तरफचाओ तेवारेरेस्तामाखरचीतारु एकरूपकवटा
वी तेहनी (८०) कागणीसाथेराखी बीजासर्वेऽव्यनी वांसलीनरी सीवीनेराखी एक
दिवसे किहाकमार्गमा विश्रामस्थानके एककागणीवीसरी ते सथवारासाथें आगजें

जातांसांचरी तेवारंरंकेविचाखुंजे एककांगणीनीखोटे रखेनेवीजुंरूपक वटावतुंपडे इमचितवी सथवारोमूकी इव्यनीवांसली किहांकगोपवीने तेकांगणीजेवा पाठोव ल्यो आचिनेजुएनेतो कांगणीकोइकलइगुं अनेपाठोफरीनेजुएतो वांसलीपण को इकलेइगुं पठेनिराशययी अतोत्रट ततोत्रटथको घणुशोच करवालागो जेमतेरां के एककांगणीनालोचथी हजारसोनेयानीवांसली अनेतेकांगणी वेन्हे खोइने घ णाशोचनुजाजनथयो तेमआत्मापणपूर्व अप्राप्तकामजोगथको बहुमूलचारित्रपा मिने वलतुकांगणीतुव्य कामजोगनीजालसायें चारित्रत्यजीने कामजोगवपतोथको कामजोगपणनपामे अनेचारित्रपणनपामे एमउचयत्रटथयोथको तेरांकनीपरें घ णुशोचपामे इहा कांगणी ते एक मासांतुं चोयोजाग अथवावीसकोनी अथवा एकरूपैयातुं (८०) मुंजागजाणवो.

हवेत्रीजुं उदकविडुनुट्टांतकहेठे कोइकवनमां कोइतृपातुरने कोइकदेवतायें क रुणाकरीने क्षीरसमुदनेकाठेजइमुक्यो तेमूर्खेंतिहांपाणीपीधुंनही अनेदेवतानेकहुजे हेस्वामि महारागामनीसीममाकुंठे तेहनेउपकाठे माजनेअग्रेलंबमान एकजलावि डठे तेखरीपडणे माटेमुजनेतिहांमूकोतो विडुओपीउं तेसाजली तेहनेमूर्खनिर्जाग्य जाणी देवतायेतिहांमूक्यो देवतापोताने स्थानकेगयो पठेतेविडुओपण खरीपडयो तेदेखीतेमूर्ख उचयत्रटथयो थको शोचकरवालागो तेमइहांतृपातुरतेजीवक्षीरसमु इतेचारित्र देवतातेसज्ज जलाविडुआरूप कामजोगनासुख एम उपनयजाणवुं

हवेचोंधुंआम्रट्टांतकहेठे कोइकराजाने आवानाफलपणुज वद्वनहता एकदिव रें घणाआम्रफलनाखावाथकी अजीर्णविपुचिकाथयो पठेवैद्यअनेक औपधेंकरी,घ णीफटेनिरोगीकीधो वलतुवैद्येकहु हवेजोआम्रफलखासोतो मरणपामतो एमकही सर्वथावाखो राजायेंपणपोतानादेशमाथी आवानासर्ववननेदावीनारव्या हवेकोइक दिवतेराजा आहेडेनिकल्यो तिहांडुट्टअथ्वे अपहखा एहवाप्रधान अनेराजावेहुजण घणुदूरपंथे किहांकअटवीमाजइपहोता सैन्यसर्वपाठजरहु राजाप्रधान वनेजण अ थर्थीउत्तरी आंबानीठायायेवेठा तेआंबानीचेफलपमयादेखी राजानेघणादिवसें अ जिजापथयो प्रधानेघणुवाखो तोपणतेफलखांधु एटजेतत्काल मृत्युअवस्थातुव्यथ योथको घणुशोचवालागो जेमतेराजा आम्रनास्वादेंलुव्योथको प्रधानेवाखोथकोप ण ते फलखाइ राजा जीव्यत्वनी आशातजीने मरतांमहाशोकपाम्यो तेमइहांपण विपयलुव्यकजीव विपयने परवशथको जिनाज्ञाअणमानतो कामजोगासक्तथयी सयम अने मनुष्यजन्म वेहुहारीने पठे पश्चात्ताप करणे.

ह्वेपाचमुं वणिकमुं दृष्टातकहेढे एकवणिकनेत्रणपुत्रहता तेत्रणेनेहजार हजार सौनेया थापणआपीनेकह्युजे एटलाडव्येतमेव्यापारकरिने अवधितपरेआवतु ह्वे तेत्रणोजण नीमे नीमे मूललेइने जूदेजुदेनगरेचाव्या तेमापहेलोनाइसर्वव्यसनरहित अल्पव्ययकरतो थको व्यापारकरवालागोतेमा घणोकमाणुं अनेवीजो हजारसौने याकायमराखीने लाजआवेतेवावरे एरीतेते मूलडव्यनेराखीरह्यु अनेत्रीजेव्यापारकी धुंनही अनेवेश्यादिकनाव्यसनमा सर्वमूलडव्यचावरीनाख्युं अनुक्रमेतेत्रणोजण पो तानाघरेआव्या तेहोनुं व्यतिकरजाणीने त्रीजापुत्रने मूलनीमेंपणनराख्योमाटे पि तार्ये घरथीवारकामीमूक्यो लोकमानिदनिकथयो दामपणुंपाम्यो जेमतेत्रीजोपुत्र नीमेंमूलनेहारीने निंदाअवस्थापाम्यो तेमआत्माविषयलुब्धथको पूर्वजन्मपुण्यरूप मूल नीमेहारीने जन्मांतरेडुगीतिना डु खपाम्योथको घणुगोचपामेढे

ह्वेठठो शाकटनु दृष्टांतकहेढे जेमकोइरु गामानुवाहक सम विषम मार्गजाणतो थको पण विषममार्गे गामानेलेइगयो पढेडुसरूजागेथके शोचकरवामामनुं तेमइ हांपण जीवपुण्यपापादिक मार्गनेजाणतोथको पण प्रमादना परवशपणाथकी कु मार्गे चालतो कुगतीभापमसे तेवारेशोच पामसे

ह्वेसातमुं जिहुकनु दृष्टांतकहेढे कोइकगामडीआनो रहेवासी पुरुषवालिडेंपरा जव्योथको देशांतरेजइ जिह्दामागे पणपुण्यरहितपणाथकी जिह्दानपाम्यो तेवारे फरीपोताना घरतरफचालवानिकव्यो मार्गमाकोइकगामे पाण पाठकपात्रो एकदेवलढे तेमा रात्रेजइसुतो तेदेवलमाथी एकसिद्धचित्रेलुंकामकुजहायमालेइ निकव्यो पढेएक वाजुयेंउजोरही घडानेकहेवालागो हेकुंनइहामदिरकर एटलेतिहा मंदिरथयुं एम तिहाशय्यादिक नोगसामग्रोसर्वकीरी पढेखीसहित रात्रेनोगनोगवी प्रजातेसर्व सं ह्युं तेदेखीने जिहुककेचितव्युं जेआजलगणहु फोकट पृथ्वीमाजम्यो ह्वेजोहुंएसि अनेसेवुतो माहरीसर्वआइयाफले एमचिंतवीते पाणनीसेवाकरी एकदिवसेते पाणप्र सन्नथइवोव्यो जेतुसुमागेढे तेवारेजिह्दुंबोव्युं जेताहरापशायथीहुंपण एहवोनोगपामुं पाणेकसुतुजने गमेतो एकुंनलेइजा अनेगमेतो एकुनप्रतिष्ठानी विद्यालेइजा ते वारे जिहुकवोव्यो जेहेस्वामीविद्यातो कष्टकरीसाधुं तेवारेफले तेमाटेविद्यासिद्धकु नढे तेहिजमने थापो तोकष्टकिथाविनाज नोगसिद्धिपामु पढेतेपाणेघमोआप्यो ह वेतेगामडीओघटलेइने धरेआव्यो घटनेप्रतापे उज्वलघरनीपजावी विविधनोगसामग्री मेजवी पोतानासर्वकुंडुंसहित मनोवाठित विलास नोगववालागो पोताना सरू नादिकने खेतीप्रमुख आजीधिकाना उपाय सर्वमूकाव्या ढोरप्रमुखचतुष्पद सर्वो

डीमूक्या एकदिवशे ते ग्रामीणमद्यपाने ढाकटोयइने मनमांहर्धधरतो तेविद्याकुंज
खांजाउपरलेइने नाचवालागो मद्यपानना परवशपणाथकी घटपडीने जांगीगयो
तेथी विद्याये करेलुं वैजव सर्वमटीगयो पठेग्रामीणकुटुंबसहित आजीविकायें
इ खीयथोथको शोचकरवालागोके हाहाइतिखेदे जोमेघटसिद्धिनी विद्यालीधीहती
तोसुखीथात एरीते जेमतेग्रामिकजिहु परिअटनकरतां दैववशात् कामकुंजपामिने
वलीमद्यपाननी परवशताथकी कुनजागीनाखीने विद्यानुशोचपाम्यु तेमएजीवपण
छुलंज जिनधर्म पामिने प्रमादपरवशताथी धर्महारीने कुगतीयेंगयोथको धर्मसा
मग्रीविना शोचपामे एसातदृष्टांतना संबंधजाणवा तेमांपहेलापांचदृष्टांततो श्रीउ
त्तराध्ययनना सातमां अध्ययनथी तथाठछोटदृष्टांत पांचमांअध्ययनथी अने सा
तमोटदृष्टांत ठछअध्ययनथी लखुंठे श्लोकमां आद्यशब्दकह्योठे तेथीवीजापण द
रिडिकुटुवादिक् एहवाटदृष्टांत घणाठे तेयंथातरथी जाणवा

पतंगनृगेणखगाहिमीनद्विपदिपारिप्रमुखाः प्रमादै. ॥ शोच्या
यथा स्युर्मृतिबंधुःखैश्चिरायजावी तमपीति जंतो ॥ १४ ॥

अर्थ॥हवेवली ग्रंथकार प्रमादीजीवने दृष्टांतेकरी जावीइ.खदेखाडेठे हेआत्मा जेम
पतंगीयो तथा नमरो मृग तथा खगके० पारेवाप्रमुखपट्टी तथासर्पअने माठलो तथा
हस्तिव्याघ्रइत्यादिक सर्वजीवते प्रमादजे शब्दादिकविषय तेहनावशथकी मरणसंबं
धीइ खेकरीने शोचनीयथायठे तेमांपतंगते नेत्रनाविषयथी दीपशिखायेमोह्योथको
मृत्युपामेठे अने नमरोघ्राणेंडियनाविषयथकी कमलमध्येसुआइमरेठे मृगशब्दविष
यथी नादनुमोह्यो पाराधीथकी मरणपामेठे पट्टीशालप्रमुखकणनेलोचे रसनेंडियना
वशथकी जालमापमेठे सर्पकाननाविषयथी महुअरनानादनोमोह्यो बंधनपामेठे अने
मत्स बडिशनामांसनीजालचे रसनेडियना वशथीमरेठे हस्तिहस्तणीनामोह्यी स्प
शीनेडियनावशे बंधनमरणादिपामेठे व्याघ्रपिंजरामारहेला बोकडानामासनीजा
लचे रसनेंडियनावशेमृत्यु बंधनादिकपामेठे इत्यादिकवीजापण चित्राप्रमुखना दृ
ष्टांतजाणवा तेमाटेहेआत्मा तुंपणतेपतंगादिकनीपरे प्रमादनावशथकी चिरकालल
गे शोचनीय थाइस. ॥ १४ ॥

पुरापि पापै. पतितोसि इखराशौ पुनर्मूढ करोषि तानि ॥ मऊ

न्महापंकिलवारिपूरे शिला निजे मूर्ध्नि गले च धत्से ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रमादनुं पापरूपपणुंदेखाडी तेहनीपरिहारकरेठे हेमूर्खतुंपूर्वपण पा

पेकरीनेजडु खसमूहमांपडघोठे अनेफरीपण तेहिजपापनेकरेठे तेथीतुघणाकदिवस
हितजलनापूरमा बुडतोथको पोतानामस्तकनेविपे अने गजानेविपे शिलाधरेठे॥१५

पुन पुनर्जीव तवोपदिश्यते विज्ञेपि डःखात् सुखमीहसे चेत् ॥

कुरुष्व तत्किंचन येन वांग्भितं जवेत्तवास्तेऽवसरोयमेव यत् ॥१६॥

अर्थ ॥ हवेजीवने प्रमादपरिहारानुएहिजअवसरठे तेकहेठे हेजीवतुजने फरीफ
रीने उपदेशकडुंडुं केजोतुडु खथीबीहेठे अनेसुखनेवाठेठे तोतुं एवुकाइक सुकृत
करके जेथकीताहसं वाठेजुंसुख तुजनेमिले अनेतेसुकृतकरवानो अवसर एहिजठे इ
हाफरीनेउपदेशदीपो माटेपुनरुकृतदोपनही यडुक्तं सक्षायजाणतवडं सहसुउवएस
धुईपयाणोसु ॥ सतगुणकित्तणोसु न दुति पुणरुक्तदोसाठ ॥ १६ ॥

धनांगसौरव्यस्वजनानसूनपि त्यज त्यजैकं न च धर्ममार्हतं ॥

जवंति धर्माद्भि जवे जवे थिता न्यमून्यमीजि पुनरेप डुर्लजं ॥१७॥

अर्थ॥हवेधर्मनीडुर्लजतादेखाडीने धर्मावसरनेज दृढकरेठे हेजीवतु धनतथाशरीर
अनेसुख तथास्वजनकुटुब तथाप्राणजे जीवितव्यपणुं तेसर्वनोल्यागकर पणएकश्रीस
वैद्वप्रणीतजे धर्म तेहनेकोड्वारेपण त्यजीशनही केमकेएधनादिक सर्ववस्तुतेधर्मथकी
जतुजनेजवचवनेविपे वाङ्भितमलत्रे पणधनादिकेकरी जिनोक्तधर्ममलत्रु डुर्लजठे १७
दुःखं यथा बहुविधं सहसेप्यऽकामं कामं तथा सहसि चेत्करुणादिजावै ॥
अल्पीयसापि तव तेन जवांतरेस्या दात्यंतिकी सकलद्रुःखनिवृत्तिरेव १८

अर्थ॥हवेआत्माने अकामडु खनासहेवाने बदले सकामडु खसहेवुते जलुंएमकहे
ठे हेआत्मातुजेम अकामके० इहारहित परवशथको बहुविध सुख तृप्ता वध बंधनादि
कडुःखप्रतेसहेठे तेमज जोकरुणाडिक जेमैत्री प्रमोद कारुण्य माथ्यस्य एपरिणामेकरी
ने सकामके० निर्झरानीबुद्धिये तुडु खसहनकरे तो तेवाथोडापणडु खने सहवेकरीने
जवातरनेविपे आत्यंतिकीके० पुन प्राडुर्जाविरहित एहवी समस्तडु खनी निवृत्तिते नि
श्रयथाय एटले मोक्षपद पामे ॥ १८ ॥

प्रगल्भसे कर्मसु पापकेष्वरे यदाशया शर्म न तद्विनानितं ॥

विज्ञावयस्तच्च विनश्चर कृत विज्ञेपि कि दुर्गतिदुःखतो न द्वि ॥१९॥

अर्थ ॥ हवेधर्मत्यजीने आत्मापापकर्ममां निपुणताकरेठे तेआश्रीकहेठे अरेमू
खंजीवतु सुखनीआस्यायेकरी पापनाउत्पादकजेकर्म तेहनेविपे प्रगल्भसेके० माहा
पणकरेठे पण ते धनस्वजनादिकनासुख तो प्राणितके० जीवितव्यविना जोगवायनही

अने ताहरो जीवतव्यतो शीघ्रके० उतावलुं विनाशशीलते एवीरीतेजाणतोथकोपण
तुं डुर्गतीनाडुःखथी केमबीहितोनथी ॥ १९ ॥

कर्माणि रे जीव करोपि तानि यैस्ते नविश्यो विपदो ह्यनंताः ॥

ताज्यो ज्ञिया तद्दधसे ऽधुना कि संजाविताज्योपि नृशाकुलत्वं ॥ २० ॥

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरेतेहिजकहेते हेजीवजोतुं तेहवाज हिंसा मृपावादादिककर्म
करेते जेकमेंकरीतुजने अनंतिआपदाओथाओ तेवारेंहमणाजते आपदाओसंजारेथके
पण अतिशंनयेकरीने आकुलताकेमपामेते जोपापनाफलजाणतोथकोपण तुपापक
र्मकरवानेप्रवर्तेते तेवारेवली नरकादिकनाडुःखसांजलीनेसावास्ते नयपामेते निश्चंतु
जनेतेडुःखनोगवाजपडणे एमांसंशयसुते एजावार्थेते ॥ २० ॥

ये पालिता वृद्धिमिताः सहैव स्निग्धा नृशस्नेहपदं च ये ते ॥

यमेन तानप्यदयं गृहीतान् ज्ञात्वापि किं न त्वरसे हिताय ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ वलीजीवने हीतार्थनेविपेप्रेरेते हेजीवजेस्वजन मित्रादिक तथापुत्रादिक
तेपात्यापोष्या तथाजे तुजसाथेंवृद्धिपास्या महोटाथया वलीतेताह्रा अतिशयस्नेह
पात्रथया तेहुनेपण यमराजाये निर्दयपण्येयस्था तेजाणीनेपणतु आत्महितकरवानेके
मउजमालयतुंनथी केमके तेहुनेजो यमेंयम्यतो तुशीरीतेस्थिररहिस एजावार्थे ॥ २१ ॥

यैः क्लिश्यसे त्वं धनबंधवपत्य यशःप्रच्युत्वादिन्निराशयस्थैः ॥

कियानिह प्रेत्य च तैर्गुणस्ते साध्यः किमायुश्च विचारयैवं ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ हवेजेतुक्लेशसहेते तेहथीतुजने काऽगुणनथी तेकहेते हेआत्मनतुं आ
शयस्थके० केवलकल्पितमात्र एहवाजेधन बंधु स्वजन अपत्यके० संतान तथा य
श कीर्ति अने प्रखल स्वामिपणुं इत्यादिकनिमित्तेंकरी क्लिश्यसेके० कष्टनोगवेते ते
धनस्वजनादिकेरी तुजनेइहजवे तथा परजवे केटलुंक गुणसाधवुतेएटले ते तुजने
सुंगुणकरसे अनेआकपोते केटलुंकते एमविचारी धनादिकनुं ममत्व करता करतांज
आयुप पुरोयऽजासे अने नवांतरेंकोऽपण ताहरेकामेआवसेनही ॥ २२ ॥

किमु मुह्यसि गत्वरैः पृथक् कृपणैर्वंधुवपुःपरिग्रहैः ॥ विमृश

स्व हितोपयोगिनो ऽवसरैऽस्मिन् परलोकपांथ रे ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ हेपरलोकेजनार पंथीजीव तु कृपण दीन सरणदेवाने अस्मर्थे एहवा अ
ने पृथगत्वरके० जूदाजूदावेराऽजासे एहवाजे बंधु स्वजन तथा वपुजेशरीर तथा ध
नधान्यादिक परिग्रह तेणेकरी सुंमुंजायते एकोऽपण ताह्रासाथे आवेनही एजावा

र्थे माटे एधर्मकरवायोग अवसरने विपे पोतानाहितोपयोगी परलोकना सहायचूत
एहवाजे ज्ञानादिकगुण तेहोने चित्तमाराख ॥ २३ ॥

सुखमास्से सुखं शोषे जुद्धे पिवसि खेलसि ॥ न
जाने त्वग्रतः पुण्यैर्विना ते किं न विष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ हवे ह्मणातुं सुखे विलशेते पण आगलताहरी सीगतिथासे तेकहेते हेआ
त्मातु ह्मणापूर्वोपार्जित पुण्यफलना उपायथी सुसुखेवेशीरहेते तथासुखेनोजनक
रेते सुखेमद्यादिकपानकरेते सुखेंद्यूतादिकेरमेते पणआगल परजवेतुजनेपुण्यविना
सुंघवानुते तेसुंनथीजाणतो एटलेपुण्यविना घणुजडुखीयस्त ॥ २४ ॥

शीतात्तापान्मत्तिकाकतृणादि स्पर्शाद्युत्थात्कष्टतोल्पाद्विज्ञेपि ॥ ता
स्ताश्चैत्रिः कर्मज्ञि स्वीकरोपि श्वभ्रादीना वेदना धिग् धिय ते ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ हवेथोडाकष्टथी वीहतोथको घणुकष्टअगीकारकरेते तेकहेते हेआत्मातु
ताढथी तापथी तथामाखीप्रमुख तृण मानप्रमुखना स्पर्शादिकथी उपतुंजे अटप
मात्रकष्ट तेथीवीहेते कायरथायते अनेएवापापकर्मकरिने श्वत्रके० नरकादिकना प्र
कारनीजे महावेदनाओ तेप्रतेअंगीकारकरेते तोताहरीबुद्धिने धि कारते ॥ २५ ॥

क्वचित्कपायै क्वचन प्रमादै कदाग्रहै क्वापि च मत्सराद्यै ॥ आ
त्मानमात्मन् कलुपीकरोपि विज्ञेपि धिद् नो नरकादधर्मा ॥ २६ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेते हेआत्मातु किहाक परीपहादिकमा कपायेकरीने वली
किहाक क्रियातुष्टानादिकनेविपे प्रमादेकरीने वलीकिहाक उपदेशादिकमा कदाग्रहेंक
रीने किहाकगुणवतनी अनुमोदनानेविपे मत्सरादिकेकरीने पोतानीआत्माने मलीन
करेते पणतुधर्मरहितथको नरकथीवीहितोन्थी माटेतुजने धि कारते ॥ २६ ॥ इति
श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे सामान्यतो वेराग्योपदेशारव्यो दशमोधिकार समाप्त.

अथधर्मशुध्युपदेश ॥ जवेन्नवापायविनाशनाथ तमङ्गधर्म कलुपीकरोपि
कि ॥ प्रमा दमानोपधिमत्सरादिजिर्न मिश्रितं ह्यौपधमामयापहं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेधर्मशुद्धिउपदेशनामें इग्यारमो अधिकारकहेते तिहाप्रथम धर्मनीष्ट
इताज थापेते जेधर्मते नवके० ससारसंबंधी अपायजे जन्ममरणादिक तेहनो वि
नाशकरवाने समर्थथाय एहवाधर्मने हेमूर्खआत्मा प्रमादजे मद्यादिक तथामान
अहंकार उपधि कष्ट तथामत्सर इत्यादिकेकरीने सुं मलीनकरेते हवेतेउपर दृष्टां
तकहेते हियस्मात्के० मिश्रितआपथ आमयापहंनस्यात् एटले विरुद्धव्येमिश्रित

जे आंध्रपथ तेकांड्रोगनिवारकनहोय अनेतेमजतेआंध्रपथनीपरें धर्मपणजोप्रमादादि के मिश्रितहोयतो संसारना अपायजे दुःखतेनो निवारकनहोय ॥ १ ॥

यतः ॥ शैथिल्यमात्सर्यकदाग्रहक्रुधोनुतापदंजाविधिगोरवाणि च ॥

प्रमादमानो कुगुरुः कुसंगतिः श्लाघार्थिता वा सुकृते मला इमे ॥२॥

अर्थ ॥ हवेधर्मनेविपे मलसरिखाजेटलादोपणे तेटलापूर्वाचार्यना वचनधीदेखाडे ठे सुकृतजेधर्मकार्यतेमां शैथिल्यके० धर्मनेविपे अनादरता मात्सर्यके० गुणवतनेविपे वेपनुं ररवुं तथाकदाग्रहके० जूठावचननुंहठ क्रुधके० क्रोध वली अनुतापके० सुकृतकरीनेपणे हाइतिखेदेमें फोकटदानदीधुं फोकटतपस्याकीधी इत्यादिकपश्चात्तापनुं कर वुं तथादंजके० कपट अने अविधिके० शास्त्रोक्तविधिये रहित क्रियानुंकरवुं तथागौरवके० हुंमहाधर्मिष्ट इत्यादिक महोटाइनुचितववु वलीप्रमादजे धर्ममा असावधानपणुं अने मानजेअहंकार वलीकुगुरुजे लोहशिलालुव्य अने कुसंगतिजे कत्सूत्रजापी एह्वामिष्याली प्रमुखनोसंग तथा श्लाघार्थिताके० लोकनामुखथी पोतानी कीर्तिनुंवांठवुं एटलाप्रकारेंकरी धर्ममलीनथाय धर्मनुंयथोक्तफलनथाय ॥ २ ॥

यथा तवेष्टा स्वगुणप्रशंसा तथा परेपामिति मत्सरोष्ठी ॥

तेपामिमां सतनु यद्वृत्तेथास्तां नेष्टदानादिविनेष्टलाजः ॥३॥

अर्थ ॥ हवेआत्मापोतानागुणनी प्रशंसावांठेठे तेआश्रीउपदेशेठे हेआत्माजेम तुजने पोतानागुणनी प्रशंसावद्वजने तेमपरजे अन्यजन तेहनेपणपोताना गुणनीप्रशंसावद्वजने एहहुंजाणीने मत्सररहितथको तेअन्यजननी इमाके० गुणनीप्रशंसाप्रतें विस्तारीनेकहे जेमतुंपणतेप्रगंसाप्रतेपामें केमके कोइने वांठितदानदीवाविनापोतानेपण वांठितजाननथाय एटलेपारकागुणनी प्रशंसाकरीयेंतो पोतेपण प्रगंसनीयथये

जनेपु गृह्णत्सु गुणान् प्रमादसे ततो ऋवित्री गुणरिक्तता तवा ॥ गृह्णत्सु

दोषान् परितप्यसे चरे ऋवंतु दोषास्त्वयि सुस्थिरास्ततः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेकेटलाक काव्यनेविपे गुणप्रगंसानीवांठाथकी अथगुणदेखामेठे हे आत्माजोताहारागुण लोकेग्रहणकहायका तुहर्षपामेठे तोतेहर्षपामवाथी ताहरे गुणनी रिक्ततापासे अनेजोडोके अथगुणबोडतेठते तुं परितापके० खेदपामेठे तो तेखेदपामवाथी ताहाराविपे अथगुणते निश्चलयरहेसे तेमाटे गुणकहाथी हर्ष अनेदोषकहाथी खेद एबेहुवाना तुकरीसनही ॥ ४ ॥

प्रमोदसे स्वस्य यथाऽन्यनिर्मितै स्तवैस्तथा चेत्प्रतिपथिनामपि ॥

विगर्हणै स्वस्य यद्योपतप्यसे तथा रिपूणामपि चेततोसि वित्॥५॥

अर्थ ॥ हेआत्मातु जेमलोकनामुखें पोतानागुण स्तवसांजलीने प्रमोदपामेठे तेम शत्रुनापण गुणस्तवसांजलीने जोप्रमोदपामें अने पोताने विगर्हणै के० अवरुणवादे करीने जेमपरीतापकरेठे तेमजजो शत्रुनापण अवरुणवाद सांजलीने तुपरीताप करे तेवारे एम जाणियेजे तुज्ञाताठो ॥ ५ ॥

अथवा ॥ स्तवैर्यथा स्वस्य विगर्हणैश्च प्रमोदतापौ नजसे तथा चेत् ॥

६मौ परंपामपि तैश्चतुर्ष्वप्युदासतो वासि ततोऽर्घवेदी ॥६॥ इतिवापाठ

अर्थ ॥ वली पागातरेकरी एहिजअर्थकहेठे हेआत्मातुजेम पोतानीस्तुतियेकरी ने तथापोतानेविगर्हणैकरीने प्रमोदतापौके० हर्षअनेशोकप्रतेनजेठे तेमज पोतानी स्तवना तथा निदा अने परनीस्तवना तथा परनीनिदा एचारेनेविपेजो उदास ताके० मयस्थनावनेनजे तेवारेतु अर्थवेदीके० परमार्थनुंजाणठो एमजाणिये एकाव्य पहेलाकाव्यनु पागांतरजाणवु ॥ ६ ॥

नवेन्न कोपि स्तुतिमात्रतो गुणी ख्यात्या न बह्व्यापि हितं परत्र च ॥

तदिद्वुरीर्यादिन्निरार्याति ततो मुग्धानिमानग्रहिलो निर्हंसि कि ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हेआत्माकेवल एकजीस्तुतिमात्रथीज कोऽगुणवतनथाय अनेवली जग तमा ख्यातिकोर्तिजोघणीहोय तोपण तेथी काऽपरनवनु हितनथाय तेमाठेपरलो के हितनुंवाठरु एहवुजेतुते मुधाके० फोकट अजिमानेकरी घहेलोथयो थको ईर्ष्या दिकेकरीने आयतिजे उचरकाल तेहने सावास्ते बगाडेठे एटजेईर्ष्या करवाथी ताहरो परनवनुहित विणसीजायठे इतिनाव ॥ ७ ॥

सृजति के के न बहिर्मुखा जना प्रमादमात्सर्यकुवांधविभ्रुता ॥

दानादिधर्माणि मलीमसान्धमू न्युपेक्षशुद्धं सुकृत चराएवपि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवेदानादिककर्मने जे मलीनकरेठे तेहनेकहेठे हेआत्मा प्रमादजे मद्या दिक पाचप्रकारे तथामात्सर्य एटजे पारकीसपदानी अदेखाऽ तथाकुबोधजे मि थ्यादर्शननुं दृष्टिराग तेणेकरी विभ्रुतके० परानव्या एहवा बहिरमुखजे स्वचित्तक टिपत मार्गनास्थापक कुतीर्थकलोकते मलीमसके० महाआरनादिके दृषत एह वादानप्रमुख ते धर्मकार्यमा कोणकोणनथीकरता अर्थात्मिथ्यालीलोकपण सर्वपो

तपोताना मननीरुचिये दानप्रमुख धर्मकार्यकरेते पण तेप्रमादादिके दूषितथका य
थोक्तफलदायकनथाय तेमाटेतेमलीन धर्मकार्य उवेपीने थोहुंपण शुद्धधर्मकर ॥७॥

आच्छादितानि सुकृतानि यथा दधंते सौजाग्यमत्र न
तथा प्रकटीकृतानि ॥ व्रीडानताननसरोजसरोजनेत्रा
वह्नःस्थलानि कलितानि यथा डुकूलैः ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रशंसारहितधर्मनुं विशेषफलदेखाडेते इहांश्रीजिनशासननेविपे आ
च्छादितके० प्रशंसानेढाक्याथका एटलेजेप्राणी प्रशंसायेरहित थका एहवाजे सुकृत
के० धर्मकार्य तेथीजेहवी सुनगतानेपामे तेहवी प्रकटितके० जेसुकृतकरीने लोक
आगळे प्रशंसाकरावे ते सुनगतानेनपामे तेहनुंष्टांतकहेते जेम व्रीडाजेजळा ते
ऐकरीने नतके० नघटे आननसरोजके० सुखकमलजेहनुं एहवीजे सरोजनेत्राके०
कमलनयना एटले उचमस्त्री तेहना वह्नःस्थलजे स्तनमंडलते डुकूलजे वस्त्रतेऐकरी
सहितथका जेहवी सुनगताप्रते पामे तेहवा उघाडाथका सुनगताप्रतेनपामे ॥९॥

स्तुतैः श्रुतैर्वाप्यपरैर्निरिहितै गुणस्तवात्मन् सुकृतेर्न कश्च न ॥
फलंति नैव प्रकटीकृतैर्नवो द्रुमा हि मूलैर्नपतंत्यपि त्वध ॥१०॥

अर्थ ॥ हेआत्मा ताह्रासुकृतजे धर्मकार्य ते अन्यलोके स्तुतके० वखापोथके
तथा अन्यलोके सांनलेंथके तथा अन्यलोकेदेखेथके तेथीतुजने कोशुणनथी तेउ
परष्टांतकहेते जेमचूमीमांहेथी मूलप्रगटकरेठते डुमजेवृद्धतेफलेनहीपण उलटाहे
वापडे तेम सुकृतपण कघाडाकखाथका फलदायक न थाय ॥ १० ॥

तपःक्रियावश्यकदानपूजनैः शिवं न गंता गुणमत्सरी जन. ॥

अपथ्यजोजी न निरामयो जवेऽसायनैरप्यतलैर्यदातुरः ॥११॥

अर्थ ॥ हवेगुणवतनुं मत्सरकरनुंनिपेधेते गुणजेपारका तपसंयमदानादिकं तेह
नेविपे मत्सरनुंकरनार एहवोजे मनुष्यते तपतथाक्रिया जे आवश्यक दान तथापूजन
जे जिनबिंब पुस्तकप्रमुखनीपूजा इत्यादिक सर्वप्रकारेकरीपण मोक्षपामेनही तेउपर
ष्टांतकहेते जेम आतुरजे रोगीपुरुषते अपथ्यजोजन करतोथको अनोपम महामू
ला एहवाजे रसायन-पारदादिक आपथ तेऐकरी-रोगरहितनथाय इहा रोगीतेआ
त्मा अने तपप्रमुखते रसायण अनेगुणवतउपर मत्सरते अपथ्यजोजन तथा सुक्ति
ते निरोगता जाणवी एउपनयकहु ॥ ११ ॥

मंत्रप्रचारत्नरसायनादि निदर्शनादल्पमपीहि शुद्धं ॥ दाना
र्चनावश्यकपौषधादि महाफलं पुण्यमितोन्यथाऽन्यत् ॥१७॥

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरे तेहिजकहेठे इहाश्रीजिनशासनमा दान देवपूजा आवश्य
क पोसहप्रमुखजे पुण्य तेथोकुपण शुद्ध दोपरहितकीधोहोयतो मंत्रजे जागुलीप्र
मुख तथा रत्नजे सूर्यकात चडकातादिक तथा रसायनजे पारादिक तेहनीपरे म
हाफलकारीथाय जेममत्रथोडाअद्धरनुहोय तोपण विपप्रहारादिकनेहरी महागुणक
रे तथासूर्यकातादिक रत्नन्हानुहोयतोपण महाप्रकागकरे अने रसायणथोकुपण म
होठारोगहरे तेमदोपरहितपुण्यजो थोकुहोयतोपण महाफलदायकथाय अनेतेहथी
विपरोतजे अशुद्धपुण्यकार्य तेअन्यथाके ० घणुहोयतोपण अल्पफलदायकथाय ॥ १७ ॥

दीपो यथाल्पोपि तमासि हंति लवोपि रोगान् हरते सुधाया ॥

तृणं दहत्याशु कणोपि चाग्नेर्धर्मस्य लेशोप्यमलस्तथाह ॥१८॥

अर्थ ॥ जेमदीपक अल्पके ० न्हानोहोयतोपण अंधकारटालेठे वलीजेम अमृ
तनो एकबिंडुमात्रतेपण सर्वरोगनेहरे वलीजेम अग्नीनुएककणीपुमात्रतेपण तृणा
नेवालीनाखे तेमनिर्मलदोपरहित एहवोधर्मनु लेशमात्रतेपण पापनेटाले ॥ १८ ॥

जावोपयोगशून्या कुर्वन्नावश्यक्री क्रिया सर्वा ॥

देहकेशं लज्जसे फलमाप्स्यसि नैव पुनरासां ॥ १९ ॥

अर्थ ॥ ह्वेसर्वक्रियानी सफलताते जावसहितकरवाथोजहोय तेकहेठे हेअ
त्मातु जावजे अक्षा तेहनाउपयोगेकरी शून्यके ० रहित एहवासर्वए अवश्यकरवा
योग्य जे पडिकमणुं पडिलेहणप्रमुखक्रिया तेप्रते करतोथको पणतेथीकेवल शरीरने
केशमात्रउपजावतु तेहिजफलपामेठे पणतेक्रियानुं मुख्यफलजे मोहूनरुण तेसर्व
थानहीजपामे केमके जावथकी शून्यक्रियाजो घणीकरीतोपण नि फलथाय ॥ १९ ॥
इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे धर्मशुद्धपदेशाख्य एकादशोअधिकार समाप्त ॥ ११ ॥

अथ श्रीदिवगुरुधर्मशुद्धिमधिकृत्य किंचिदुपदेश ॥

तत्त्वेषु सर्वेषु गुरु प्रधानं हितार्थधर्मा हि तद्धक्तिसाध्या ॥

श्रयंस्तमेवेत्यपरीह्य मूढ धर्मप्रयासान् कुरुपे तथैव ॥२॥

अर्थ ॥ ह्वेबांरमेंअधिकारे देव गुरु धर्म एत्रणतत्वनीशुद्धिकहेते तिहाप्रथमतो
जो शुद्धगुरुमले तोज शुद्धदेव तथाशुद्धधर्मपामिये तेमोटेप्रथम गुरुतत्वनी शुद्धि
कहेठे हेअत्मासर्वतत्वमा मुख्यतत्वते गुरुठे केमके हितार्थके ० मोहनेअर्थे धर्म

साधवोहोयतो ते गुरुनावचनयकीसधाय तेमाटेतुं मूढयको परीक्षाकखाविनाज गु
रुने आश्रयतोयको धर्मेनेनिमित्तेंजे प्रयासकरेते तैवृथाके० फोकटते ॥ १ ॥

नवी न धर्मैरविधिप्रयुक्तै र्गमी शिवं येपु गुरुर्न शुद्धः ॥

रोगी हि कल्पो न रसायनैस्तै र्येषां प्रयोक्ता जिपगेव मूढः॥१॥

अर्थ ॥ हवेगुरुअशुद्धहोयतोधर्मपण अशुद्धथाय तेकहेते नवीजे संसारीजीव
तेणे अविधियेंकीधाएह्वाजे दानादिकधर्म तेह्मीजीव मोह्गामीनथाय केमकेजे
धर्मनेविषे शुद्धके० निदोपपणुं नथी तेधर्मवृथाते तेउपरदृष्टांत कहेते जेमरसायनतुं
करनार वैद्यते गुणागुणतुं अजाणमूर्खहोयतो रोगीपुरुष ते रसायनेकरी निरोगीन
थाय तेमइहारांगी तैआत्मा औपधतेधर्म मूर्खवैद्य ते कुगुरु जाणवो ॥ १ ॥

समाश्रितस्तारकबुद्धितो यो यस्यास्त्वहो मङ्गयिता स एव ॥

श्रोयं तरीता विपमं कथं स तथैव जंतुः कुगुरोर्नवाब्धिं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवेकुगुरुअने कृतारकतुंदृष्टांतकहेते जेप्राणिये तारकबुद्धियेंकरीने तार
कनेआश्रयोते अनेतेतारकज आश्रितप्राणीने बुढाडनारहोय तोतेप्राणी विपमइ
स्तर एह्वो उधजे समुडनापाणीनो प्रवाह तेशीरीतंतरसे तेमज जेथकी तरवानीआ
शाराखियें तेहिज जेवारें बोडे तिवारें समुडतुं पारते केमपामिये तेमज कुगुरुथी
नवसमुडपण जाणतुं केमके जेगुरुप्रतें तारकजाणीने संसारसमुड तरवानी आशा
यें तेहने आश्रियें अनेतेगुरुतो वन्मार्गने देखाडवेकरी आश्रितप्राणीने संसारसमु
डमां बोडे तेवारे ते प्राणी संसारसमुडनो पारकेमपामे एजावार्थते ॥ ३ ॥

गजाश्वपोतोद्धरथान् यथेष्टपदाप्तये नञ निजान् परान् वा ॥

नजंति विज्ञा सुगुणान् नजैवं शिवाय शुद्धान् गुरुदेवधर्मान् ॥४॥

अर्थ ॥ तेमाटेशुद्धदेवगुरुधर्मने आदगुंतुकहेते जेमविद्वजे निपुणपुरुष तेवां
ठितस्थानके पहोचवानेअर्थें पोताना अथवापारका हाथी घोडा तथा वाहण उठ व
जव रथ तेआपआपयोगेसहितसुलक्षणाजोडने आदरे केमकेजो निर्लक्षण वाहन
होयतो तेह्मीवांठित स्थानकेपहोचायनही माटेहेसरलप्राणी एरीतेंतुंपण मोह्स्था
नक पामवानेअर्थें शुद्धगुणोपेत एवाजे देव गुरु धर्मेतेप्रतेंनज जेथकीमोह्पदपामे

फलावृथा स्युः कुगुरूपदेशतः कृताहि धर्मार्थमपीह सूद्यमाः ॥

तदृष्टिरागं परिमुच्य नञ हे गुरुं विशुद्धं नज चेक्षितार्थ्यसि ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेकुगुरुनाउपदेशाधर्म फलदायकनहोय तेकहेते इहांश्रीजिनशासनने

विपे कुगुरुनाउपदेशयकी धर्मनेअर्थपणजे नजाउद्यमकरेजाहोय तेफलदायकनथाय माटेहेनइकजोतु मोक्षफलनोअर्थीतो तोदृष्टिरागामीने शुद्धपरुपकगुरुनेनज ॥५॥

न्यस्ता मुक्तिपथस्य वाहकतया श्रीवीर ये प्राक् त्वया लुं
टाकास्त्वदृतेऽनवन् बहुतरास्त्वञ्चासन ते कलौ ॥ विश्वा
णा यतिनाम तत्तनुधिया मुष्णंति पुण्यश्रियं फूत्कुर्म
किमराजके ह्यपि तज्जारक्षा न किं दस्यवः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टातेकरी कुगुरुनीडृष्टताकहेठे हेश्रीमहावीर पूर्वेतुमेजे सुधर्मास्वा मिप्रमुख मोक्षमार्गना चलावनारामूक्याहता तेपठे कजियुगमां तुजविना ताहाराशा सनेनेविपे पट्टपरपरा सुविहिताचार्यथी अजगाथइने पोतानाकुमतने प्रवर्त्ताववेकरी ने जूटाकके० छूटाराथया हवेतेहनुं छूटारापणुंकहेठे जेजणी तेयतिनामधरावताथ का स्वत्पबुद्धिलोक जेकुगुरुनीपरिह्वाकरीसकतानथी तेहोनी पुण्यरूपजे लक्ष्मीतेप्रते जूटेठे एहवातेउत्सन्ननापनार कुगुरुनीवाततो अर्थिजीव किहाजइपोकारे केमकेवि शेषज्ञानीविना पोकारकखानुं कोइगमनथी एटले अराजकके० राजानेअर्जावे त लाररूकजे कोटवाल तेपणचोरनथायसु एटलेराजानहोय तेवारेजे ररववालाहोय तेहिजचोरीकरे तेमइहाराजाते श्रीवीरपरमात्मा तेनोमार्ग प्रवर्त्तकतेसुधर्मादिकगण धर अराजकतेकलिकाल जूटाकते कुमतना प्रवर्त्तक इत्यादिक उपनयजाणवु ॥६॥

दमाद्यस्य शुद्धिर्गुरुदेवधर्मैर् धिग् दृष्टिरागेण गुणानपेक्ष् ॥

अमुत्र शोचिष्यसि तत्फले तु कुपथ्यन्नोजीव महामयार्त्तं ॥७॥

अर्थ ॥ हवेअशुद्धदेवगुरुधर्मपामिने हर्षधरेनहीतेकहेठे हेआत्मातु अशुद्धदेव गुरुधर्मप्रतेपामवाथकी गुणनीअपेक्षारहितथयोथको दृष्टिरागेकरी हर्षपामेठे तेमा टेतुजने वि कारठे पण जेवारे तेहनुंफल उदयआवज्ञे तेवारेतुनरकादिकनेविपे घणो शोचपामिस तेहनुंदृष्टात कहेठे जेम महारोगीओ पुरुष स्वादना वशथकी कुपथ्य नोजन करीने पठेरोगवधेतिवारें घणु शोचकरे तेमतुपण दृष्टिरागें करी कुगुरुकुदेव कुधर्म सेवीने पठे इर्गति पामेथके घणुसोचपामिस ॥ ७ ॥

नाम्र सुसिक्तोपि ददाति निवकं पुष्टा रसैर्वध्यगवी पयो न च ॥

इस्थो नृपो नैव सुसेवितः श्रियं धर्मं शिवं वा कुगुरुं संश्रितं ॥८॥

अर्थ ॥ हवेकुगुरुनीसेवा शुनफलनीदेनारीनथाय तेकहेठे जेमलिबडोजलीपरे सी च्योथकोपण आंवातुंफलनआपे तथारसजे घीतेलप्रमुख पुष्टकारीवस्तुथकीपणवाज

णीगायकांश्च इध्यापेनही वजीदेशत्रष्टविपमअवस्थानेपाम्यो जेराजातेने नलीपरेसे व्योथकोपण लक्ष्मीनआपे तेमकुगुरुनेपण सेव्योथको धर्म अथवा मोक्षप्रतेनआपेण कुल न जातिः पितरो गणोवा विद्या च बंधुश्च गुरुधन वा ॥

हिताय जंतोने परं न किंचित् किंत्वादृताः सजुरुदेयधर्माः ॥९॥

अर्थ ॥ हवेसर्वपदार्थथी देवगुरुधर्मअधिकतेते कहेते जंतुके० जीवने कुजजेइ ह्यागकुलप्रमुख तथाजातिजे मातानुंपद पितरके० पितामहप्रमुख तथागणजे स रवासरखामित्रनीटोली तथाविद्याते पदंगीप्रमुख तथाबंधुजे स्वजन वलीगुरुजे कु लविद्यानुंअप्यपक अने धनतेसुवर्णादिक तथाबीजाजेकाइ देश ग्राम मंदिरप्रमुख तेसर्व हितायके० परलोकना हितनेअर्थकोइथायनहीपण सत्के० छुइएहवा देव गुरुअनेधर्म एत्रणनेआदखाथकां परलोकनाहितने अर्थथाय ॥ ९ ॥

माता पिता स्व सुगुरुश्च तत्वात् प्रवोष्य यो योजति शुद्धधर्म ॥

न तत्समोरिः क्षिपते नवाब्धौ यो धर्मविघ्नादिकृतेश्च जीवं ॥१०॥

अर्थ ॥ हवेजेछुइधर्ममांजोमे तेपुरुपनीप्रशंसाकरेते जेपुरुपजेहने तत्वदेखाडी प्र तीवोधपमाडी अनेछुइधर्ममांजोडे तेहनेतेहिजपुरुप माता तेहिजपिता तेहिजस्वज न अनेतेहिज गुरुजाणुं अनेजेजीव हरेकप्राणिने धर्मनुंअंतरायादिक करीने ससा रसमुइमांनावेते तेसरिखोतेनेकोइ बीजो शत्रुनथी ॥ १० ॥

दाक्षिण्यलजे गुरुदेवपूजा पित्रादिभक्तिः सुकृत्तिलापः ॥

परोपकारी व्यवहारशुद्धिर्नृणामिहामुत्र च संपदे स्युः ॥११॥

अर्थ ॥ हवेपुरुपने संपदानाकारण केटलाते तेकहेते दाक्षिण्यताजे अनुकूलता तथालक्षा अनेदेवगुरुनीपूजा तथापितामाता काकोकाकी महोटाजाइ इत्यादिकजे कोइ गुरुस्थानकियाहोय तेहनीभक्ति तथापरनेउपकारनुं करवु तथाव्यवहारछुइते लहेणादेवामा साचापणुराखवु एटलाप्रकार तेपुरुपने इहलोके अथवापरलोके प ण संपदादेवाना कारणनूतथाय ॥ ११ ॥

जिनेष्वभक्तिर्यमिनामवज्ञा कर्मस्वनौचित्यमधर्मसंग ॥

पित्राद्युपेक्षा परवंचनं च सृजंति पुंसां विपदः समंतात् ॥१२॥

अर्थ ॥ हवेपूर्वोक्तिप्रकारेथी विपरीतपणे प्रवर्त्तता प्राणीने आपदाहोय तेकहेते जिनेभक्तिरहितपणुं तथासाधुनीअवगणना अने कर्मजे साधुअने श्रावकनीक्रिया तेहनेविषे अनुचितपणु तथा अधर्मजे धर्मरहित एहवानदृष्टि नास्तिकप्रमुख अ

यवाविरुद्धमिति मिथ्यात्वी कुमतिप्रमुख तेहनीमित्रास्ते विवाहव्यापार प्रमुखैकरी परिचयकरबु तथापिताप्रमुखनी अवगणना अनेपरने कुमालेख कुमानामा कुडा माप कुडातोलप्रमुखैकरीने ऋगबु एटलासर्वप्रकारैकरी पुरुपनेआपदाउपजे ॥ १ २ ॥

नक्तयैव नार्चसि जिनं सुगुरोश्च धर्मं नाकर्णयस्यविरत विरतिर्न धत्से ॥
सार्थं निरर्थमपि च प्रचिनोप्यघानि मूल्येन केन तदमुत्र समीहसे शं १ ३
अर्थ ॥ वलीप्रकारातरेकहेते हेआत्मातु नक्तियेकरी जिनपूजाकरतोनथी अने कदा पिपूजेतेतोपण कुजकमादिक परवशपणायकी पूजेते पणनक्तियीपूजतोनथी तथास द्युरुपासेथी धर्मसांजलतोनथी तथानिरतर अठारपापस्थानक पन्नरकर्मादान प्रमुखथीसंवरनुंकरबु इत्यादिकविरतीपणुं तेपणनथीआदरतो तथासार्थकके ०पोताने अथवाकुटुंबादिकनेअर्थे अनेनिरर्थकके ०स्वार्थविनापण अपथ्य अनाचरित पापोपदेश हिंसाप्रदान प्रमादाचरित एणांचप्रकारेकरी कारणविना पापनेमेलवेते तोपरलोके तुं शामूलैकरी सुखनी वाढाकरेते इहा मूलरूपते पुण्यजाणबु ॥ १ ३ ॥

चतुष्पदैः सिद्धैव स्वजात्यैर्मिल त्रिमास्तारयतीहि कश्चित् ॥

सहैव तैर्मज्जति कोपि दुर्गे शृगालवच्चेत्यमिलन् वरं सः ॥ १ ४ ॥

अर्थ ॥ ह्वेसुगुरुनेसिहनीउपमा अनेकुगुरुने सीयालनीउपमाकहीने उपवेदोते पोतानीजातीनाजे चतु पदमृगप्रमुख तेसाथेमव्या सिंहनीपरें एससारमाजे सदगुरु तेपोतानी जातीना नय्यपचेडियसङ्गीमनुष्यइत्यादिकसाथे मव्योथको आश्रीतजीव नेतारे जेमसिहनिजाश्रितचतु पदने कूपगर्त्तादिकथीतारे तेमसुगुरुपण निजाश्रितन व्यजीवने ससारसमुद्ध्यतीतारे अनेकुगुरुतेसीयालनीपरे स्वजातीयजे मनुष्यादिक अनेविजातीयजे चतु पद तेहनेसाथेलेइजइने दुर्गजेनरकप्रमुख वलीदुर्गजे कूपादिकते माबुमाडे तेमाटेजेकुगुरुतेनमव्योथकोजसारो जेमपचारव्यानमां कोइकवन्नमां बीजा वाघसिंहादिकनुंजयटालवाने अर्थे सर्वचतु पदेंमली एकबलवतसिहने गजाकरी थाप्यो अनेसर्वचतु पद तेहनीसेवाकरवालागा एकदिवसेतेवन्नमां अग्नीलागी तेवारे तेसर्वचतु पद सिंहनेसरणोगया तेसर्वनेसिहेपोताने पुढडेवलगामी एकफालेकरी को इकमहानदी उत्तरीपहेलेपार पहोचाडया वलीकेटलाकदिवसे दावानलमितघो वन्न नवपल्लवयथु तेवारेंतेसर्वचतु पदने पाठापोतानेठामे पहोचाडया एहवोते सिंहनोप राक्रमदेखी कोइरुड्डुंदिसीयालेंपण केटलाक हीनसल निर्जाग्य ससलाप्रमुखजीवने पोतानासेवककीथा वलीकालातरे दवलागो तेवारे सीयाले निजाश्रित सर्वचतु पदने

पुंठडेवलगामी फालजरीनदी उतरवा लागो तेवारे सर्वजीवसहित, पोतेपण अ
गाधजलमांघुमो इहांसिंहते सुगुरु अनेसीयाजते कुगुरु महानदीते डुर्गति अने
आश्रितजीवते धर्माथी मनुष्य एमउपनयलेवो ॥ १४ ॥

पूर्णं तटाके तृपितः सदैव नृतेपि गेहे ह्युधितः स मूढः ॥ क
ल्पद्रुमे सत्यपि ही दरिद्रो गुर्वादियोगेपि हि यः प्रमादी ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ हवेगुर्वादिकतुं योगठतेप्रमाद करबुनही तेदृष्टांतदेइनेकहेठे निश्चंकीजे
प्राणी देवगुरुधर्मतुं योगठतेपण प्रमादवंतथायठे तो हाहाइतिखेदेतेप्राणी नखातला
वेंपण सदाइतरस्थोठे वली ते पुरुष सुखडी प्रमुखे नखाथका घरमां पण जुख्योठे
वली घरमांठते कल्पवृक्षे पण दरिद्रोठे तेमाटे गुर्वादिकनो योगठते प्रमादत्यजीने
धर्मसाधनकरवु तेहिजसार्थकठे ॥ १५ ॥

न धर्मचिंता गुरुदेवचक्ति येषां न वैराग्यलवोपि चित्ते ॥ तेषां
प्रसूक्तेशफलः पशूना मिवोद्भवः स्याद्धटरंजरीणां ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रकारांतरेतेहिजकहेठे आजमेंछुं धर्मकीथो अनेहवे नित्य प्रत्येशोधर्म
करवानुंठे एहवीजेने विचारणानथी यडुक्तं उत्थायोत्थाय चितेयं किमद्य सुकृत कृत ॥
आयुष खंममादाय रविरस्तमयं गत ॥ १ ॥ तथा जेने गुरुअने देवनीचक्तिनथी वली
वैराग्युंलेशमात्रपणनथी एहवाजेपेटनराप्राणी तेहोतुंजन्मते पशु छुंम कुतराप्रसु
खनीपर केवल माताने गर्जधारणादिककेश करवामात्रज फलहोय ॥ १६ ॥

न देवकार्ये न च संघकार्ये येषां धनं नश्वरमाशु तेषां ॥ तदर्ज
नाद्यैर्तजिनैर्नवांधौ पतिष्यतां कि त्वलंबनं स्यात् ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रकारांतरं सुपात्रेधनवावरवानी सफलतादेखाडेठे जेधनवतप्राणीतुं
धन देवकार्यजे प्रासादकराववा अथवाजीर्णाक्षर विवप्रतिष्ठा इत्यादिकनेविपे तथा
सघकार्यजे चतुर्विधसंघनुंपोषुं तथासाधर्मिनीवत्सलताते हीन अने हीनजे साधर्मि
कहोयतेनीचिताकरवी तथा पुस्तकलखववा इत्यादिक कार्योमांउपयोगीनहोय तेप्रा
णीतुं विनाशशील एहहुंजेधन तेउपार्जनादिकनापापेकरी संसाररूपमांपडताने तेधन
सुंकाइ आधारचूतथाय अर्थात कांडनयाय एटलेसुपात्रेव्यविना अन्यथाकोइकामेना
वे ॥ १७ ॥ इति श्रीअथ्यात्मकल्पसुमेदेवगुरुधर्मशुद्धीनामा षाडशोधिकारः समाप्तः ॥ १७ ॥

ते तीर्णा जववारिधि मुनिवरास्तेज्यो नमस्कुर्महे येषां नो विपयेषु निगृ
 ध्यति मनो नो वा कपायैः छुतं ॥ रागद्वेषविभुग् प्रशातकलुपं साम्यात्
 शर्माद्य नित्य खेलति चाप्तसयमगुणाक्रीडि जजज्रावना ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेयतिशिक्षोपदेशनामा तेरमोअधिकारकहेठे तेमाप्रथमयतिनुं स्वरूपक
 हेठे जेमुनीनुमन विपयमां आसक्तपामतुनथी तथाक्रोधादिककपायमा व्याप्तुं
 नथी एहवाजेमहानुनाव संसारसमुद्ध्यतितस्या तेहनेनमस्कारकरियेठेये जेमुनिराज
 रागद्वेषेरहित अइने कलुपताजे पापाचरणतेहने शातपमाडयोठे वलीसमतायेकरी अ
 उपमसुखपास्योठे एहदुअइने पांचमहाव्रतनी पचवीसजावना तथा अतिल्यादिक
 वारजावनानेजजेठे वलीजिनप्रणीतजे सयमनागुण क्रमादिकरूप उद्याननेविपे
 खेलेठे एहदुजेहनुंमनहोय तेहनेज तत्वथकी मुनिकहिये एजावार्थेठे ॥ १ ॥

स्वाध्यायमादित्ससि नो प्रमादै शुद्धा न गुप्ती समितीश्च धत्से ॥ त
 पोद्धिधा नार्जसि देहमोहा दल्पे हि हेतौ दधसे कपायान् ॥२॥ प
 रीसहस्रो सहसे न चोप सर्गात्र शीलांगधरोपि वाऽसि ॥ तन्मोहमा
 णोपि जवाद्धि पारं मुने कथं यास्यविशेषमात्रात् ॥३॥ युगमं ॥

अर्थ ॥ हवेसाधुनावेषमात्रथकीज अर्थसिद्धिनथाय तेकहेठे हेमुनिनुंप्रमावैक
 रीसिआयथ्यानकरवा वाठतोनथी तथाछु-धनिर्मल मनादिकत्रणगुति अने ईर्ष्यादि
 कपाचसुमतीने धारणकरतोनथी वलीशरीरनामोहथी बाह्यअच्यंतर वेप्रकारेतपप
 ण करतोनथी तथायोमोपण कपायनुंकारणउपनाथी कपायधरेठे ॥ १ ॥ तथाक्रुधा
 दिक बावीसपरिसह अने देवता प्रमुखनाकरेला उपसर्ग तेप्रतेनथीसहेतो तथा अ
 ढारसहस्ररूप शीजागरथने पणधरतोनथी अनेकेवल वेपमात्रथीज मोहनेवाठेठे प
 णएरीतेतोतु संसारसमुद्दनोपारकेमपामीत् ॥ ३ ॥ एवेकाव्यनोअर्थ एकगोठे.

आजीविकार्थमिह यद्यतिवेपमेव धत्से चरित्रममल न तु कष्टजीरु ॥ तवे
 स्सि कि न न विजैति जगज्जिघृक्षुर्मृत्यु कुतोपि नरकश्च न वेपमात्रात् ४

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेठे हेसाधुतुआससारमा आजीविकानेअर्थं जे यतिनोवेषय
 रेठे अनेकष्टकरवाथी बीहितोथको निर्मलनिरतिचार जेचारित्रतेप्रते धरतोनथी तो
 तेवारे तु एमकानथीजाणतो जे जगतनुंआसकरनार एहवोजेमृत्युते कोश्वीबीहतोन
 थी वलीसाधुनोवेपमात्र धखाथकी तो नरकपणबीहितोनथी एटजे मृत्यु अने नरक
 एवेवाना सर्वथा तुजनेआवज्ञेज पण ताहाराथी डरसेनही इतिजाव ॥ ४ ॥

वैपेण माद्यसि यते चरणं विनात्मन् पूजां च वांभसि जनाद्बहुधोपधि च॥
मुग्धप्रतारणञ्च नरके ऽसि गंता न्यायं विजिर्षिं तदजागलकर्तरीयां॥५॥

अर्थ ॥ हेअत्मातुचारित्रविना यतिनेवेषेकरीहर्षपामेठे अनेलोकथकी बहुप्रकार
नीपूजा वंदन सत्कारप्रमुख तथाउपधिजे वस्त्रपात्र पुस्तकादिकप्रतेवांठेठे पणपठेतुं
एमुग्धलोकने प्रतारणके० कपटक्रियाये उगाइकरी तेहथीउपाज्योजेनरकतिहाज
रहीश तेमाटेतुं अजागले कर्तरीना न्यायप्रतेधगेठे जेमकोइ खाटकिये एकबकरीहण
वानेअर्थे वधकरवानेस्थानकेआणी कातीयेधारचडावी सज्जकरी तेबकरीनेपासेका
तिभूकी एटलामांकोइकामनेअर्थे पोतेवरमांगयो पठवाडेबकरीये पोतानापगंकीरु
मीखोदितेमाकातिदाटी नेविचारुंजे रखेखाटकीआवेतिवारदेखे एमजाणीतेहनाउ
परसुती देवयोगथी कंठतलेकातीनीधारआवी तेथीगलुदबाइगयु अनेमृत्युपामि तेमहे
आत्मातुंपण तेबकरीनीपरं अज्ञानीथइने कातीरूपनरकने टांकिराखेठे पणतेअवश्य
नाविपणायी उदयआव्याविना रहेसेजनही तेमाटेप्रथमथीज अज्ञानत्यजीने साव
धानरहेजे एन्यायग्रंथातरें बीजेप्रकारेंपण लख्युंठे ॥ ५ ॥

जानेऽस्ति संयमतपोऽनिरमीऽनिरात्मन्नस्य प्रतिग्रहं नरस्य न निष्क्रियोपि ॥
किंङ्गर्तौ निपततः शरणं तवास्ते सौख्यं च दास्यति परत्र किमित्यवेदि॥६

अर्थ ॥ हेआत्माएलोकंजन निमित्तेंजे संयमतथातप तेणेकरीने गृहस्थोपा
संथी अहार औपथ वस्त्रपात्रादिकतुंलेवु ते तो संयमतपादिकना समूहतुं वक्रयके०
मूलपणनय्युं तेवारेंतुजने डुर्गतिमांपमता शरणतेसुंठे अनेपरलोके सुखतें कोणआ
पसे तेविचारीजो एतोलोकोनाप्रतिग्रहंतुं मूलमात्रपण ताहरूसुरुतनथी माटेतुजने
नरकेपडतां उदार अनेपरलोकनेविपे सुखतेशाथकीथासे एजावार्थेठे ॥ ६ ॥

किं लोकसत्कृतिनमस्करणां चैरे मुग्ध तुष्यसि विनापि विशुद्धयोगान्
कृतान् चवाधुपतने तव यत्प्रमादो बोधिद्रुमाश्रयमिमानि करोति पशून्॥७

अर्थ ॥ हवेलोकसत्कारादिकदेखी राचवुंनहीतेकहेठे हेमूढआत्मा शुद्धनिर्मल
दोपरहित एहवाजे मनवचनकायानायोग तेविनालोकोनो सत्कारजे अन्वुत्थाना
दिक तथानमस्कारवदना अर्चना जेनवांगपूजा विलेपनादिक तेणेकरीने मुंहर्षपामे
ठे केमकेएप्रमादते ताहरेसंसारकूपमां पडतांबोधरूप वृद्धनाआलंबनने ठेदवाने ए
लोकसत्कारते कुहाडारूपठे एटलेताहरोप्रमादरूपवैरीते तुजने संसाररूपकुवामां

नाखवासारं बोधआलंबनरूपवृद्धने लोकसत्काररूप कुहाडेकरीवेठे एटलेहमणा
तो सत्कारपामिमनमां हर्षधरेठे पणआगले बोधपामवो दुर्लजयासे ॥ ७ ॥

गुणास्तवाश्रित्य नमंत्यमी जना ददत्युपध्यालयनैक्कशिष्यकान् ॥

विना गुणान् वेपमृपेर्विर्जापि चेत् त तष्ठकाना तव चाविनी गतिः ॥८॥

अर्थ॥ हेसाधो धर्माश्रिलोकतो तद्वारागुणआश्रीने तुजनेनमेठे तथा उपधि वस्त्र
पात्रादिक आलय वस्ति नैपज अन्नपानादिक अनेशिष्य तुजनेआपेठे अनेतुजोगुण
विनाज मात्र वेपधरेठे तेवारे ताहरीभूत्तनी गति आगे जेमठगारा कृत्रिम नवानवा
वेष करीलोकना धनवर्गीलिये पठेकोडकदिवसें तेहनाविपाकथी वध बंधनादिक पा
मे तेम ताहारा हवालपण तेहनीपरे यासे ॥ ८ ॥

नाजीविकाप्रणयिनी तनयादिचिता नो राजनीश्च जगवत्समय च वे
त्सि ॥ नो राजनीर्धरसि वाऽऽ गमपुस्तकानि इत्यपि पाठः ॥ शुद्धे तथा
पि चरणे यतसे न जिह्वो तत्ते प्रतिग्रहचरो नरकार्थमेव ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेसाधुपणानुं सुखदेखाडेठे हेनिकुकतेधरवारपरिग्रहतोमूक्या माटे
आजीविका तथापुत्रादिकनी चितानथी तेमराजासंबंधीजयपणनथी वलीजिनप्रणी
त सिद्धांतपणजाणेठे अथवाजैनसिद्धातना पुस्तकधरेठे तोपणद्युद्धचारित्रनेविपे
उद्यमकरतो नथी तेवारेताहुरु वस्त्रपात्रादिकनुंजेठु तेहनुंजारते नरकनेअर्थजठे ॥ ९ ॥

शास्त्रज्ञोपि दृढव्रतोपि गृहिणीपुत्रादिवधोऽज्जितोऽप्यंगी यद्यतते
प्रमादवशमो न प्रेत्य सौख्यश्रियोऽतन्मोहद्विपतस्त्रिलोकजयिन
काचित् परा दुष्टता वशायुष्कतया स वा नरपशुनूनं गमी दुर्गतौ ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेठतेयोगेपणजीव धर्मकरतो नथी तेहनावेकारणदेखाडेठे लौकिकअ
ने लोकोत्तरशास्त्रने जाणतोथको तथा पचमहाव्रतधारीथको तथास्त्रीपुत्रादिकना
प्रतिबंधरहितथको पण जेप्राणीप्रमादवशे, पशुयोथको परलोकनासुखनी सपदारूप ध
र्मकार्यनेविपेवद्यम करतो नथी तोतिहा त्रणलोकनुं जीपनारजे मोहरूपशत्रु तेहनी
ज कोडक अलक्ष्यमहादुष्टताजाणवी अथवाते नररूपपण्युवापडो पूर्वनरकादिकना
आयुपाना बाधवाथकी दुर्गतिमाज जनारठे एमजाणीयेठेये ॥ १० ॥

उच्चारयस्यनुदिनं न करोमि सर्व सावद्यमित्यसकृदेतदथो करोपि ॥

नित्य मृपोक्तिजिनवचनचारिता तत्सावद्यतो नरकमेव विजावये ते ११

अर्थ ॥ ह्वेयतिनावेषमां नित्येमृपावादिपणुं देखाडेठे जेयतिबीजा लोकोने उगवा
साहं हुंसर्वथासावद्यकरुनही एहबुंकहीनेपठे वारंवार सावद्यकर्म सचितआरंजप्रमु
खकरेठे तेमाटेनित्येमृपावादेकरी जारीथयुं एहबुंजे सावद्यआरंजादिककर्म तेहथी
तुजने नरकेजबुंजसंजवेठे छुतंबोलीने सावद्यकरवाथी निश्चैनरकगतिथाय ॥ ११ ॥

वेपोपदेशाद्युपधिप्रतारिता ददत्यन्नीष्टानृजवो धुना जना ॥

मुंहे च शोपे च सुखं विचेष्टसे जवांतरे झास्यसि तत्फलं पुन ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेठे हेसाधुहमणाआनवमांतुं कालामेलाकपमाप्रसुखना
वेपे तथालोकरजवाप्रमुखनेअर्थे उपदेशआपी कपटवैरागपोपीने धर्मकथाकहेठे इ
त्यादिककपटेंकरी जेचोलाजोकेते तुजने वांठित अन्न पान वस्त्र पात्र वसति सिद्धा
दिकआपेठे तेथीसुखेखायठे सुखेसुएठे सुखेरमतोफिरेठे पणते सुखनोगव्यातुं फल
परजवें नरकादिकनाडु खविना बीजोकांइजाणीसनही ॥ १२ ॥

आजीविकादिविधिधातिंनृशानिशार्त्ता कृत्रेण केपि महतैव सृजंति धर्मान्
तेज्योपि निर्देयजिघृक्षसि सर्वमिष्टं नो संयमे च यतसे जविता कथं ही १३

अर्थ ॥ वलीप्रकारातरे तेहिजकहेठे केटलाकश्रावको आजीविकाजे उदरवृत्ति
आदिशब्दथी वस्त्र आनरण राजदंम पुत्रादिकविवाह इत्यादिकचितायेकरी सदा
कालआकुलथका घणीकष्टेंकरीने धर्मजेदानप्रमुख तेकरेठे अने हेनिर्देयवेपनाधरना
र तुंतेवापात्रोथीपण अन्नपानादिक सर्ववांठितवस्तु लेवानेवांठेठे अनेसंयममा उ
द्यमकरतोनी माटे हाइतिखेदेताहरी तेसीगतीथासे ॥ १३ ॥

आराधितो वा गुणवान् स्वयं तरन् जवाब्धिधमस्मानपि तारयिष्यति ॥

श्रयंति ये त्वामिति चूरिञ्जक्तिञ्जिः फलं तवैपां च किमस्ति निर्गुण ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ एगुणवंतठे एसंयमगुणोसहितठे एमदानुजावठे एनेआराथ्योथको पोतेसं
सारसमुद्धरेठे तेम आपणनेपण तारसे एहवीबुद्धिये घणीनक्तियेकरी तेप्राणिये तु
जनेआश्रयोठे अनेतुतोपोतेनिर्गुणतो माटेतुजने अथवाते आश्रयकरनारने एमांशो
फलठे एटलेतुबुद्धतोथको तेप्राणीनेपण बोडेठे एजावार्थ ॥ १४ ॥

स्वयं प्रमादैर्नपतन् जवांबुधो कथंस्वजक्तानपि तारयिष्यसि ॥ प्र

तारयन्स्वार्थमृजुन् शिवार्थिनः स्वतोन्व्यतश्चैव बिलुप्यसेऽहसा ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ हेसुनितुपोतें प्रमादैकरीने बुद्धतोठतो पोतानानक्तजे सेवकजोक तेने
शीरीतेंतारीश केमके पोताने अन्नपानादिकमले, तेनेअर्थे सरलजे मोक्षार्थिलोक ते

हनेवचतोथको तुफरेठे एटलेपोताना प्रमादाचरणथी अनेबीजोलोकने उगवाथी
एवन्नेप्रकारना पापेकरीने तुलोपायठे ॥ १५ ॥

गृह्णासि शय्याहतिपुस्तकोपधीन् सदा परेच्येस्तपसस्त्वियं स्थितिः॥

तत्ते प्रमादान्नरितात्प्रतिग्रहे कृणार्णमग्नस्य परत्र का गतिः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ हे वेपना धरनारयति तु लोकोपासेथी शय्या वस्ति अहार तथापुस्तक
ज्ञानोपकरण तथाउपधि वस्त्रपात्रादिकजे नित्यलियेठे तेतो तपसीलोकनी स्थिति
ठे परतु तुतो प्रत्यहप्रमादमा मग्नथको काइपणतपस्यादिक करतोनथी तेमाटे प्र
तिग्रहने नियवेकरी नारीथयु एहबुजेप्रमाद तेथकीउपाज्युजे छेणो ते छेणानेविपे
मग्नथको खुतोबोएहबुवतो ताहरीपरचवे सीअवस्थाय्यासे एटलेप्रथमतु चारित्रले
इने प्रमादसेवेठे तेलेणोकरेठे तेवारपठे तपसयमादिकविना लोकोपासेथीशय्यादि
क प्रतंलीयेठे तेबीजोलेणो एमएवंप्रकारना छेणामाखूतोथको ताहरीसी अ
वस्थाय्यासे अर्थात् इष्टअवस्थाज पामीस इतिचाव ॥ १६ ॥

न कापि सिद्धिर्न च तेतिशायि मुने क्रियायोगतप.श्रुतादि ॥ तथा

प्यदंकारकदर्थितस्त्वं ख्यातीच्छया ताम्यसि धिड् मुधा कि ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेतथाविधगुणविना कीर्त्तिनेसुंवाठेठे हेमुनिताहरेविपेकोइ विद्यामंत्रा
दिक सिद्धिनथी वलीवाइणा खमासमणाप्रमुख उच्छृष्टक्रियानथी तथामनवचन
कायाना योगनी गुणप्रवृत्तिनथी तथाबाह्यान्तरतपनथीकरतो तथाश्रुतज्ञान आ
दिशब्दथी प्रजाविकपणं राजाप्रमुरखनुं प्रतिबोधबु इत्यादिकगुणतेपणनथी तोपणतुं
अहकारे कदर्थितयको ख्यातिजे प्रसिद्धितेहनी वाठायेकरीने फोकटशोपरीतापकरे
ठे माटेतुजनने धि.कारथाठताहरामा जो कोइ अतिशयगुणहोय तेवारतो ख्यातिनी
वाठापणयुक्तने अनेतेविनाज प्रख्यातीनेवाठेठे माटेतु धिक्कारवायोग्यठो ॥ १७ ॥

हीनोप्यरे जाग्यगुणैर्मुधात्मन् वांठंस्तवार्चाद्यनवाभुवश्च ॥

ईर्ष्यन् परेच्यो लजसेऽतितापमिहापि यातो कुगाति परत्र ॥१८॥

अर्थ ॥ फरीतेहिजकहेठे अरेनिर्जाग्य नि पुण्यकआत्मातु गुणरहितथको फो
कटस्तवनापूजाप्रमुखने वांठतो जोपूजास्तवनानथायतो वलीलोकोउपरकोधकरतो
थको इहलोकपण अतिशय तापसतापपामेठे अनेपरलोकपणइर्गतिथेजइशा ॥ १८ ॥

गुणैर्विहीनोपि जनानतिस्तुति प्रतिग्रहान् यन्मुदित. प्रतीवसि ॥

लुलायगोश्वोष्ट्रखरादिजन्मभि विना ततस्ते नविता न निष्क्रय ॥१९॥

अर्थ ॥ हवेकुगतिमांपडवाविपे उपदेशकरीने प्रतिबोधे हेयतिवेषनाधारक तुं गुणरहितथको पणहर्षवतथयीने लोकथी नमस्कारादिक स्तवना वस्त्रपात्रअन्नादिकलेवावांठे तेहथीतुजने लुलायजे पामोपाणीवहेवायोग्य अथवागोजेबलदीओ हल गाढा यंत्र कोल प्रमुख वहेवायोग्य अथवाअश्वते अस्वारीकरवायोग्य तथा उंट खररासच अनेकविधजारवहेवायोग्य इत्यादिकअवतार पाम्याविना तेप्रतिग्रहादिकतुं मूलनथाय केमकेगुणविनापण लोकोपासेथी प्रतिग्रहादिक कल्पेते तेहंतुंजेषो पामाप्रमुखना अवतारपामि नारवहीनेतूटबुठे एजावार्थ ॥ १९ ॥

गुणेषु नोद्यच्छसि चेन्मुने ततः प्रगीयसे यैरपि वंद्यसेऽर्च्यसे॥ जु गुप्सितां प्रेत्य गतिं गतोऽपि तैर्हसिष्यसे चाऽज्जिन्नविष्यसेऽपि वा॥१०॥ दानमाननुतिवंदनापरैर् मोदसे निकृतिरंजितैर्जनैः ॥ नत्वैपि सुकृतस्य चेल्लव. कोपि सोपि तव लुंठयते हितैः॥११॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजप्रकारांतरेकहेठे हेमुनिजोगुणनेविपे उद्यमकरतोनाथी ते वारेइहजवेजे तुजने श्रावकादिक गीतनासप्रमुखेकरीगायते तथावलीदादशावर्च वां दणायेंकरीवांठे सुगंधलेपनादिकेकरीपूजेते तेतुंपरजवें निंदनीक कुरूप दरिद्रतादिक पाम्याथका तेहिजताहाराउपर हससे तथानानाप्रकारनीपीमा उपजावसे एटले ते स्वामिपणे अवतरसे अनेतुंदासपणेशास तिहां जातो जाठीप्रमुखना प्रहारेकरी तुजनेपीडसे ॥ १० ॥ हेमुनितु कपटक्रियायेकरी लोकरीजवीने तेहोने दानसन्मान स्तवन वंदनानेविपे तत्परदेखीने हर्षपामेठे पण एम नथीजाणतो जे ताहरो लेश मात्रसुकृतते तेहनेएलोकलुटेठे ॥ ११ ॥

जवेजुणी मुग्धकृतैर्नहि स्तवैर् न ख्यातिर्दानार्चनवंदनादिभिः ॥ विना गुणान्नो जवडःखसंक्षय स्ततो गुणानर्जय कि स्तवादिभिः॥१२॥

अर्थ॥हवेस्तवनादिकनी वाढामुकीने गुणतुंपोषकरबुतेकहेठे हेमुनितुं विशेषाविशेषनाथजाण एहवामुग्धलोकनीकरेलीजे स्तुतितथाख्याति प्रशसादिक तेषेकरीगुणवतनथाय वलीगुणजे ज्ञानादिक तेहनीप्राप्तिविना संसारनोविनाश अनेमुक्तिनीप्राप्तिनाय तेमाटेकेवल गुणनेजउपार्जनकर पणस्तुतिकराववाथी कांइअर्थसिद्धिनथी १२

अर्थेपि शास्त्रं सदसद्विचित्रा लापादिभिस्ताम्यसि वा समा

ये॥येपां जनानामिह रंजनार्थं जवांतरे ते क मुने क च तं॥१३॥

अर्थ ॥ हवेलोकरीजववामाटेतुं शास्त्रजणेशेठे पणजवांतरेतुकिहा अनेरीजनारलो

ककिहा तेदेखाडेढे हेमुनितुजे लोकरीजववानिमित्ते सत्के० नलोजिनागम तथा
असत्के० विरुद्धबौद्धादिकनुशास्त्रते प्रतंनणेढे अनेवली कपटसहित नानाप्रकार
नात्राजापसंजापादिक तेणेकरीने घणुंप्रयासकरेढे पणनवांतरे तेलोककिहागतिमा
जशे अनेतु केइगतियेजइश एटलेआनवे जावजीवद्युद्धीजे जीव तें रीजव्याहणे
तेपरनवेकोइपण ताहरे कामेआवेसेनही ॥ २३ ॥

परिग्रहं त्वं व्यजहानृहादे स्तत्किं न धर्मोपकृतिवृत्तान्तं ॥

करोपि शय्योपधिपुस्तकादे र्गरोपि नामान्तरतोपि हता ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ हवेपरिग्रहयजवा आश्रीउपदेशेढे हेमुनितेपूर्वं घरप्रमुखनुपरिग्रहतां
ड्युं अनेवली धर्मोपकरणे मीसेकरीने शय्या वस्त्रि उपधि वस्त्र पात्रादिक पुस्त
क आदिशब्दयी पाठा चाबखी पोथी बांधणा जपमाला प्रमुखउपकरणानो परिग्रह
सुंकरेढे धर्मोपकरणेकाइ बहुमूलो ममतानावशयकी वधारेराखियेंते परिग्रहजजा
एवो केमके० गरके० विप तेहनेनामान्तरकखाथकी एटलेनामफेरवीनाख्यायीप
ए हताके० मृत्युकारकहोयज जोविपने साकर अमृत श्ल्यादिककहियेतोपण खांधु
यकु प्राणहरणकरे तेमपरिग्रहने धर्मोपकरण निमित्ते राख्योयकोपण दुर्गतिआपे
परिग्रहात्स्वीकृतधर्मसाधनाजिधानमात्रात्किमु मूढ तुप्यसि ॥

न वेत्सि हेमनाप्यतिचारिता तरी निमज्जयत्यंगिनमंबुधौ द्रुतं ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेढे हेमूर्खसायोतु स्वीकृतके० प्रमाणकिंधुंढे धर्मसाधनके०
धर्मोपकरण एहवुनाममात्रजेहुंतुं एहवोपरिग्रह पास्याथी सुंदर्भपामेढे हेमूर्खतुन
थीजाणतोजे अतिशयनारी एहवोजेसुवर्ण तेणेकरीनरी एहवीतरीजे होडी तेजेम
अंगिनके० वेशनारमनुप्यने बोडेढे तेमतुजनेपण धर्मोपकरणेमीसे मव्योएहवो
जे अतिपरिग्रहतेनवसमुझमा बोडशे इतिनाव ॥ २५ ॥

येह कपायकलिकर्मनिबधनाजनं स्यु पुस्तकादिजिरपीहितधर्मसाधनैः ॥

तेपारंसायनवरैरपि सर्पदामयै रात्तात्मना गदल्लते सुखकृत्तु किं नवेत् २६

अर्थ ॥ जेमुनिये हितके० वाठयुंढे धर्मनुंसाधनजेथकी एहवाजे पुस्तकादिकते
णेकरीनेपण अंहजेपाप तथाकपायजे क्रोधादिक तथा कलिकेकलहतेना करवा
थकी कर्मजे ज्ञानावरणियादिक तेनानिकांचित्बंधनुनाजनथाय तेहनेबीजोकोइ
सुखकार्य निवृत्तिनुकरनारनथाय एटलेजेहनेधर्मोपकरणतेहिज ममत्वनावशयकी
परिग्रहपणे परिणम्याढे तोतेहनेअर्थ क्लेशकपायादिकने करवेकरीकर्मवृद्धिकरेढे

तोतेहनेसंतोपते पढे फरीबीजाशथकीथासे एनावार्थ तेहनुंदृष्टांतकहेढे जेम रसा
यनजे मृगांगपारादिक तेहनोसेवनकरवाथीज उलटोमांदापडयो एटलेरसायनथ-
कीपण जेहनेरोगवथ्यो तोपढेतेहनारोगनुं निवारकबीजोसुखकारी कोइनथी ॥२६॥
रक्तार्थ खलु संयमस्य गदिता येऽर्था यतीनां जिने र्वासःपुस्तकपात्र
कप्रचृतयो धर्मोपकृत्यात्मकाः ॥ मूर्धन्मोहवशात् एव कुधिया संसा
रपाताय धिक् स्वं स्वस्यैव वधाय शस्त्रमधियां यहुःप्रयुक्तं जवेत् ॥२७
अर्थ ॥ निशेकरीनेजे वस्त्रपुस्तकप्रमुख पदार्थतेथ्रीजिनेश्वरें साधुनेसंयमनी रक्षा
नेअर्थे धर्मोपकरण स्वरूपेकह्याढे तोहाहा इतिखेदे तेहिजपदार्थ कुबुद्धिनाधणीने
अतिशय मोहनावशथकी उलटासंसारमांबूडावनारनाकारण यइपडेढे तेहनुंदृष्टां
त जेम बुद्धिहीनपुरुपनुं पोतानुं अस्त्रजेखड्गादिक तेविपरीतपणे राख्युंहोय तोपो
तानेजवधकारीथाय तेहनीपरे जाणवु ॥ २७ ॥

संयमोपकरणञ्जलात्परान् चारयन् यदसि पुस्तकादिभिः ॥

गोखरोष्ट्रमहिपादिरूपचतुच्चिरं त्वमपि चारयिष्यसे ॥२८॥

अर्थ ॥ हेमुनितुं जे परप्राणीनारवाहक पोढी बलद उंटप्रमुखने संयमनाउपकरण
नेमीसेकरी पुस्तकादिकनुं नारवहेवरावेढे तेमाटेतेप्राणीतुजनेपण बलद उंट रास
न पामाप्रमुखना अवतारपाम्याथका चिरकालजगें नारवहेवरावशे ॥ २८ ॥

वस्त्रपात्रतनुपुस्तकादिनः शोचया न खलु संयमस्य सा ॥

आदिमा च ददते नवं परा मुक्तिमाश्रय तदिच्चयैकिका ॥२९॥

अर्थ ॥ हवेवस्त्रपात्रादिकथी संयमनीशोचानथीतेकहेढे हेमुनि वस्त्रपात्रतथाश
रीर पुस्तकइत्यादिकनी शोचाकीधेयके निशेकरी संयमनीशोचानथाय एटलेवस्त्रादि
कनीशोचाते संयमने अशोचाकारणीढे तेमांपणवली आदिमके० पहेलीजे वस्त्रादि
कनीशोचाते नवत्रमणजआपे अने परके० बीजीजे संयमनीशोचाते मोहजआपे ते
माटेजोसंसारन्दी वांढाहोयतो वस्त्रादिकनी शोचाआदर अनेजो मुक्तिनीवांढा तुजने
होय तो संयमनीशोचाआदर ॥ २९ ॥

वस्त्रपात्रतनुपुस्तकादिनः शोचया न खलु संयमस्य सा ॥ तां तदत्र प

रिहाय संयमे किं यते न यतसे शिवार्थ्यपि ॥ इतिचोत्तरार्द्धाठः ॥३०॥

अर्थ ॥ वस्त्रपात्रेति एपागंतर एश्लोकनुंपूर्वाद् पूर्वनीपरेजाणवुं अनेउत्तरार्द्धनी

व्याख्याकहेते तस्मात्कारणात् तेकारणमाटेहेसाधो ते वस्त्रादिकनी शोनातामिने जोमुक्तिनोअर्थीढोतो जिनप्रणीत चारित्रनेविपे केमउद्यमकरतोनी ॥ ३० ॥

शीतातपाद्यान्नमनागपीह परीपहाश्रेत्क्षमसे विसोढु ॥

कथं ततो नारकगर्जवास इ खानिसोढासि नवांतरे त्व ॥३१॥

अर्थ ॥ हवेपरीपह सहेवाआश्री उपदेशआपेठे हेमुनिजोतु संयमनेविपे टाहाड तापप्रमुख थोडापणपरीपह सहेवानेसमर्थनथी अनेकायरथायठे तोनवातरेनेविपे नरकतथा गर्जवासनाडु ख केम सहीस एटले नरकादिकना इ खसहेवाथीतो परीप हनाडु खतुं सहेबुजतुंठे एमजाण ॥ ३१ ॥

मुने न कि नश्वरमस्वदेह मृत्तिडमेन सुतपोव्रताद्यै ॥ निपी

डय जीतीर्नवदुखराशे हित्वात्मसाधैवसुख करोपि ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ हवेसाधुने तपप्रमुखतुं उद्यमकरतुंकहेठे हेसाधु एविनाशशील तथा आ खरपोतातुंनही एहवोजेवेहरूप माटितुंपिम तेहने नजाजिनाझासहित तपव्रतप्रमुखे करी दमीने ससारनाडु खसंबंधी सर्वजयठामिने मुक्तिसंबंधी सुखते पोतानेवश केमनथीकरतो ॥ ३२ ॥

यदत्र कष्टं चरणस्य पालने परत्र तिर्यङ्नरकेषु यत्पुन ॥तयोर्मि

य सप्रतिपक्वता स्थिता विशेषदृष्ट्यान्यतरं जहीहि तत् ॥३३॥

अर्थ ॥ हेसाधुजेइहा श्रीजिनशासनेविपे चारित्रपालवानीकष्टे अनेपरनवे ति र्यचनरकादिकनेविपेजे कष्टे तेवेदुकष्टेने परस्परं प्रतिपक्षपणुंरहेठे एटलेजिहा चारित्रकष्टे तिहांतिर्यचनरकतु कष्टनथी अनेजिहा तिर्यचनरकादिकना कष्टे तिहां चारित्र कष्टनथी तेमाटेविज्ञेपदृष्टिये विचारी तेवेमाथी एककष्टनेमूक ॥ ३३ ॥

शमत्र यद्विद्धरिव प्रमादजं परत्र यच्चाब्धिरिव द्युमुक्तिगं ॥ तयोर्मि

य सप्रतिपक्वता स्थिता विशेषदृष्ट्यान्यतरं दृहाण तत् ॥३४॥

अर्थ ॥ हवेसुखनुग्रहबुंकहेठे हेसाधोइहा चारित्रमांप्रमादकरवाथीजे सुख ते विडजेतलुठे अनेसयमना पालवायकीजे देवलोकमुक्तिनासुख तेसमुडसरखाठे तेबन्हेसुखने परस्परप्रतिपक्षपणुठे जिहांप्रमादसुखतिहां मुक्तिसुखनथी अने जिहां मुक्तिसुख तिहांप्रमादसुखनथी माटेविज्ञेपेविचारी वेमाथी सारजाणोतेने आदर ॥३४॥

अथवा॥नियंत्रणायाचरणेऽत्र तिर्यक् स्त्रीगर्भकुंजीनरकेपु या च ॥
तयोर्मिथः सप्रतिपक्षज्ञावा द्विशेषदृष्ट्याऽन्यतरां गृहाण ॥३५॥

अर्थ ॥ हवेगुरुपारतत्रआश्रयीकहेते हेसाधुइहाजिनशासनमा चारित्रनेविपेजे गुरुपारतत्रयादिकत्रणप्रकारनो परवशपणुंते अने तिर्यचनाश्रवतारमां तथास्त्रीनागर्भ मा तथा कुंजीतेवणोजसांकमासुखनुंनारकीने उपजवानुंस्थानकतेमां उपनाजेनार कीते खंडोखंडथयी बाहेरनिकजे तेहनेविपेजे परवशतापणुंते तेवेदुने परस्परंप्रति पक्षीपणुंते एटले जिहांचारित्रनी नियंत्रणाहोय तिहांतिर्यंच स्त्रीअने नरकादिकनी नियंत्रणानहोय अनेजिहां तिर्यंचस्त्रीनरकादिकनी नियंत्रणाहोय तिहां चारित्रनी नियंत्रणानहोय माटेविशेषदृष्टियेंविचारीने तेवेमांथी एकनियंत्रणानेआदर ॥३५॥

सहृतपोयमसंयमयंत्रणां स्ववशतासहने हि गुणो
महान्॥शिवं गुणं इति वा पाठः ॥ परवशस्वतिचूरि स
द्विष्यसे न च गुणं बहुमाप्स्यसि कं च न ॥ ३६ ॥

अर्थ ॥ हवेपरवशेडु खसहेवाकरता पोतानावगेंडुखसहेवुंनलुंते तेकहेते हेसा धुतुं चोयप्रमुखतप तथा नियमअनिग्रहादिक ते यम तथासत्तरनेवें संयमसंबंधी एत्रण नियंत्रणाउंतेतेनुंसहनकर केमके एत्रण नियंत्रणाओते पोताने स्वाधीनपणे सहनकरवीतेते महोटी गुणते तथापाठांतरे एथकी शिवगुणके० मुक्तिरूपीओगुण होय अने जे अतिपरवशपणे एकेडियादिकमां पराधीनथको घणीजनियंत्रणाओ सहीस तिहां अकामनिर्झारासिवाय अधिकुंगुणमात्र काऽपणपामीसनही ॥ ३६ ॥

अणीयसासाम्यनियंत्रणाज्जुवा मुनेऽत्र कष्टेन चरित्रजेन च ॥ यदि
क्षयो दुर्गतिगर्भवासगा सुखावलोस्तत्किमवापि नार्थितं ॥ ३७ ॥

अर्थ ॥ वलीप्रकांतरेतेहिजकहेते हेसाधो आजन्ममां समतारूपनियंत्रणातेसं बंधीकष्ट तथाचारित्रसंबंधीजे अटपमात्रकष्ट तेणेकरी दुर्गति अने गर्भावाससंबंधी असुखनासमूह क्षयथायते तोतेथी सुवांभितपणुंतुंनपाम्यो अर्थात्पाम्योज ॥३७॥

त्यज स्पृहा स्वः शिवशर्मलाज्जे स्वीकृत्य तिर्यङ्नरकादि डु.खं ॥

सुखाणुनिश्चेद्विषयादिजातैः संतोष्यते संयमकष्टनीरुः ॥ ३८ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रमादवतने रीतेकरीकहेते हेसाधुतु जो विषयादिकथीउपनाजे सुख नोलेश तेणेकरी संतोषपामेते अने संयमनाकष्टथीबीहेते एरीतेंतो तें तिर्यंच तथा

नरकबुद्धं स्वकबुद्धकरीने स्वर्गमोक्षनामुखपामवानी वाठामूकीदीधी एटलेअणुमात्र
सुख उपर राच्योथको स्वर्गमोक्षनुं अतुल्यसुखहारेणे एजावार्थे ॥ ३७ ॥

समग्रचिचार्तिहतेरिहापि यस्मिन् सुखं स्यात्परम रतानां ॥

परत्र चेडादिमहोदयश्री प्रमाद्यसीहापि कथ चरित्रे ॥३७॥

अर्थ ॥ हवेचारित्रथी इहलोकेतथा परलोकेसुखे तेकहेणे चारित्रमारकथयजा
एहवाजेजावसाधु तेहने सर्वचिताना निवारवाथकी इहलोकेपण परमअनुपमसुख
होय अनेपरलोकेपण इडादिकनीसंपदा तथा मोक्षनीसंपदाहोय तोहेसाधो एहबुजे
चारित्रतेनेविषे रह्योथकोतु सुंप्रमादकरेणे यत देवलोकसमाणोअ परियाउमहेसि
पां ॥ रयाणअरयाणंच महाणरयसारिसा ॥ १ ॥ पुन. नच राजनयं नच चोरनयं न
च वृत्तिनयं न वियोगनयं॥इह लोकसुखं परलोकहितं श्रमणत्वमिदं रमणीयतर॥२॥

महातपोध्यानपरीपहादि न सत्वसाध्य यदि धर्तुमीश ॥ तज्जावना.

किं समितीश्च गुप्ती धत्से शिवार्थिन् न मन.प्रसाध्या. ॥ ४० ॥

अनित्यताद्या नज जावना. सदा यतस्व डःसाध्यगुणेऽपिसंयमे॥जि
घत्सया ते त्वरते ह्ययं यम. श्रयन् प्रमादान्न नवाह्विजेपि किं॥४१॥

अर्थ ॥ हवेजेवदुकष्टकरीशकेनहीतोते सुखसाध्यधर्मकरे तेकहेणे हेसाधु तु पराक
मवंतपुरुषने साधवायोग्य एहवाजे मासखमणप्रमुख महातप तथा प्राणायामादिक
ध्यान तथाकृधादिकपरिसह धरवानेसमर्थनथी तोहेमोक्षनावाठक केवलमनेकरीज
साधिसकीयेएहवीजे अनित्यादिकजावनातेनुंसेवनकर ॥ ४० ॥ तथावलीप्रकारात
रेकहेणे हेसाधोतुअनित्यताप्रमुख बारजावना ने सदानज अनेडु खें साधवायोग्य
मूलोत्तरगुणने जेना एहवासंयमनेविषेपण सुकुमालपहुंठागीउद्यमकर केमके मृ
त्युते तुजने ग्रासकरवानीवाठाये उतावलुषायणे दिनदिनप्रतें दुकहुआवेणे मा
टेप्रमादसेवतोथकोपण मनेकरीसंतारथकी बीहितोरहेजे ॥ ४१ ॥

हत मनस्ते कुविकल्पजालैर्वचोप्यवद्यैश्च वपुः प्रमादैः ॥ लब्धी

श्च सिद्धीश्च तथापि वांठन् मनोरथैरेव हहा हतोसि॥४२॥दग्धं

मनो मे कुविकल्पजालैर्वचोप्यवद्यैश्च वपुः प्रमादैः ॥लब्धीश्च सि

द्धीश्च तथापि वांठन् मनोरथै रेव हहा विहन्ये ॥ इतिवापाठ. ॥४३॥

अर्थ ॥ हवेसामग्रीविनापण महोटासहोटा मनोरथकरवा अफलने तेकहेणे हे

साधुताहरोमनतं माताविकल्पनासमूहं विणसाडयुं अनेवचनपण मृपाजापणादि
क पापेकरीविणसाडयुं वलीशरीरपण प्रमादजेमयादिकतेणेकरी विणसाडयुं एरीतं
मनवचनकायारूप त्रणगुप्तिविणसाडी तोपण आमोसहीप्रमुखलब्धि तथामंत्रवि
द्यादिकसिद्धिने वांढेठे माटे हाइतिखेदे मनोरथेकरीज पीडायठे जेमशाली डुध खां
मप्रमुख सामग्रीविनापण कोऽमूर्खेहीरनानोजननुं मनोरथधरतो अहर्निशविकल्पे
ज पीडाय तेमतुपणपीडायठे ॥ ४१ ॥ तथावलीपावांतरं माहूरंमन कुविकल्पजालें
विणास्युं तथा अवयके० मृपाजापणादिकपापें वचनविणास्युं अनेप्रमादेकरीशरीर
विणास्युं तोपण लब्धि अने सिद्धि प्रतें वांढतो थको हाइतिखेदे हुं मनोरथमात्रें
ज सुपीमावंबुं इत्यादिक पहेलाकाव्यनुं पावांतर काव्यजाणवु ॥ ४३ ॥

मनोवशस्ते सुखदुःखसंगमो मनो मिलेद्यैस्तु तदात्मकं जवेत् ॥

प्रमादचोरैरिति वार्यतां मिलहीलांगमित्रैरनुषंजयानिशां ॥ ४४ ॥

अर्थ ॥ हवेमननेसतसंगमांजोडवु तेकहेठे हेसाधुताहरे सुखअने दुःखनोजे मि
लाप तेमननेवशठे केमकेमनजेहनीसार्थेमिले तेरूपीथाय जेम तैलने जेहवाफूलनो
संगमिले तेहवीवासनामयथाय माटेमननेप्रमादरूपचोरसार्थेमलतो वारीने नित्ये शी
लांगरथरूपजेमित्र तेनीसार्थेमेलव जेथकीतुजने सर्वथासुखसार्थेज मिलापथाय ॥ ४४ ॥

ध्रुवः प्रमादैर्जववारिधौ मुने तव प्रपात. परमत्सरः पुनः॥ गले

न बद्धोरुशिलोपमोस्ति चै त्कथं तदोन्मज्जनमव्यवाप्स्यसि॥४५॥

अर्थ ॥ हवेयुक्तिविशेषेकरी प्रमादनोपरिहारकहेठे हेसाधुप्रमादनाहेतुयेकरी तु
जनेसंसारमापडवुतो निश्चय थकीठे केमकेप्रमाद अनेसंसारने अग्निधुमादिकनीपरें
नित्यबंधठे अनेवलीजो गलेबांधिमोटी शिलासरिखुं परप्राणीउपरमत्सरतुजनेठे तेवा
रे संसारसंमुद्मांथी तरीनिकलवु केमपामिस माटेप्रमादअने मत्सरवेहुल्यज॥४५॥

महर्षयः केपि सहंत्युदीर्या प्युग्रातपादीन्यदि निर्जरार्थं ॥

कष्टं प्रसंगागतमप्यणीयोपीठन् शिवं कि सहसे न जिहो॥ ४६ ॥

अर्थ ॥ हवेकष्टसहेवाआश्री उपदेशआपेठे केटलाकमहाकृपी तेजडवाहुस्वा
मी दीक्षितचार व्यवहारीपुत्रनीपरें शीतादिक परिसहनासहनारा वली उग्रके० घ
णोकविण आतपके० तडकाप्रमुख कष्टने उदरीनेपण निर्झरानेअर्थसहेठे तेवारेहे
साधुतुं मुक्तिनेतोवांढेठे तेवारें प्रसंगथी उदयआभ्युं एहवोस्वल्पमात्र कष्टप्रतेकान
थीसहेतो अनेकष्टसह्याविना मुक्तिकेमपामिस एजावार्थ ॥ ४६ ॥

यो दानमानस्तुतिवन्दनादिभिर्न मोदतेऽन्यैर्न तु दुर्मनायते ॥ अला
जलाजादिपरीपहान् जयन् यतिः सतत्वादपरो विद्म्वकः ॥ ४७ ॥

अर्थ ॥ हवेअसाधुपणा तथा साधुपणानो चेददेखाडेठे जेलाजअलाजादिक प
रिपहनेजीपतोथको ग्रहस्थनुआप्यो अहारउपधिप्रमुखदान तथासत्कारस्तुतिप्रसु
खमान इत्यादिकेकरी हर्षपामेनही अनेअलाज अपमान प्रहारादिके इहवायनही
तेदिजपरमार्यथी यतिजाणवो अने अपरके० बीजाजेवोन वदनादिकथी हर्षपामे
तथा अलाननंदादिकथी इहवाय तेयतिनावेपे विडंबकके० नटरूपजाणवा ॥४७॥

दधुहृदस्थेषु ममत्वबुद्धि तदीय तस्या परितप्यमानः ॥ अ
निर्दृतांतकरण सदा स्वै स्तेपां च पापैर्भ्रमिता जवेसि ॥ ४८ ॥

अर्थ ॥ हवेमनोगुप्तिराखवानेअर्थे यतिये ग्रहस्थनी चिताकरवीनही तेकहेठे
हेसाधुतुग्रहस्थनेविपे ममत्वनीबुद्धिधरतोथको अनेग्रहस्थनीचिताये तपतोथको
पोतानापापे तथाग्रहस्थनापापे निरतरव्याकुलचित्तवंतथको सत्तारमांजमीस ॥४८॥

त्यक्त्वा गृहं स्वं परगेहचिता तप्तस्य को नाम गुणस्तवर्षे ॥

आजीवि काऽस्ते यतिवेपतोऽत्र सुदुर्गतिः प्रेत्य तु दुर्निवारा ॥ ४९ ॥

अर्थ ॥ हेसाधु पोतातुंघरमूकीने वलीपारका श्रावकादिकनाघरनी चितायेकरी
तुजनेशोगुणठे एकघरमूकी घणाघरनीचिताये कोइगुणनथी आनवमातोतुजने यति
वेपनाप्रतापथी आजीविकाचालेठे पणपरजवेतो तुजने अतिशयदुर्गतिदुर्निवारक
एहवा नरकादिकठे पणपरजवे दुर्गतिनोवारनारकोइनथी एजावार्थ ॥ ४९ ॥

कुर्वं न सावद्यमिति प्रतिज्ञां वदन्नकुर्वन्नपि देहमात्रात् ॥ शय्या
दिकृत्येषु नुदन् गृहस्थान् हदा गिरा वाऽसि कथं मुमुक्षु ॥ ५० ॥

अर्थ ॥ हनेतुकायामात्रथीसाधुठो पणमनवचनथीसाधुनथी तेकहेठे हेमुक्तिवा
उकसेभुर्तु नित्यप्रते आवश्यककरता सब सावळजोग पञ्चखामि जा जीवाए तिविहं
तिविहेणं मणेष वायाए काएण इत्यादिकपाठकहीने दुंसर्वसावद्यकरुंनही एहवीप्र
तिज्ञाकरतोथको तेसावद्यमात्र शरीरथीज अणकरतोथकोथयो पणशय्या जेउपाश्र
यमुख कार्यनेविपे ग्रहस्थनेप्रेरतोथकोठो तो तेमामनथी अनेवचनथी मुमुक्षु तेशा
नाइठे मन वचन कापायेकरी सावद्यमूके तेहनेमुमुक्षुं कहिये अनेतुतोकायामा
त्राः सावद्यकरतोनथी पणमनथी सावद्यचितवेठे अनेवचनथी सावद्यकर्मप्रेरेठे
तथा वचनथी मुमुक्षुनथी मात्रकायाथीज मुमुक्षुठे एजावार्थ इहाप्रेर

एतादेवदेवामात्रजजाणवी बीजीप्रवर्त्तनरूपप्रकरण इत्यादिकप्रेरणीयते एतले पूर्वपणश्रावकं एरुतकखांते जाननुंकारणते इत्यादिकप्रेरणाकखानुंतो साधुनेव्यवहारतेज यथाश्रीरायप्रश्रीयसूत्रे जुत्तमेयंसुरियाजा पुराणमेयंसुरियाजा किंवमेयंसुरियाजा करणिङ्गमेयंसुरियाजा आइणमेयंसुरियाजा अण्णुनायमेयंसुरियाजा इत्यादिक विधिवाक्यदेखायते, तेप्रेरणाजाणवी ॥ ५० ॥

कथं ममत्वाय ममत्वतोवा सावद्यमित्तस्यपि संघलोके ॥ न हे ममद्यप्युदरे हि शस्त्री क्षिप्ताक्षिणोति क्षणतोप्यसून् किं॥५१॥ अर्थ ॥ वलीतेहजकहेते हेसाधोतुं साधुसाध्वी श्रावकश्राविकारूप चतुर्विधसंघमां अमुकागीतार्थनावखतमां आचैत्यकराव्युं एहवीमहोटाइपामवानेअर्थे तथाआ अमारागञ्जनो चैत्यउपाश्रयादिकते इत्यादिकममत्वथकी सुंतावद्यकर्मवांतेते संसारीनीपरे सारजकार्यसर्वमाथेलेइने करवासुंवांतेते अथवासंघमां महत्वपामवानेअर्थे तथाममत्वथकीज सावद्यजे धनप्राप्ति प्रमुखतेसुंवांतेते जेमाटे सोनानीबुरीपण पे टमांचापीथकी सुंप्राणहरणनथीकरतीके. एतलेसोनानीबुरीपण पेटमामारीथकी प्राणहरेते तेमसंघनिमित्तपण अविधिमे सावद्यकर्मकीधुंते संयमरूपप्राणनेहरेते५१॥

रंकः कोपि जनाजिज्ञूतिपदवी त्यक्त्वा प्रसादा जुरोर्वेपं प्राप्य यतेः कथंचन कियत्तान्नं पदं कोपि च ॥ मौखर्यादिवशीकृतजुजनतादा नार्चनैर्गर्वज्ञा गात्मानं गणयन्नरेंद्रमिव धिग्गंता डुतं डुर्गतौ ॥ ५२ ॥ अर्थ ॥ हवेअत्माने उदतपणुंनिवारवा उपदेशेते कोइकपुरुषपूर्वे ग्रहस्थाव सताये रंकहोय अनेलोकोने उपहास्यकरवायोग्य निदाकरवायोग्य विविधप्रकारनी लोकोनीसेवा करवायोग्यहोय पढेगुरुनापशायथी तेअवस्थात्यजी यतिनोवेपपामीतथाघणाकष्टे काइकशास्त्रनुंणणुंणुं पामी तथातेमावली कोइकआचार्यउपाध्यायादिकपदवीपामिने वाचालपणा प्रमुखकलाये जोलाजोकोनेवशकरी तेहनाकरेला जे दानपूजा सत्कारादिक तेणोकरिने अहंकारधरतो अको पोताना आत्माने राजातु व्यगरो पण एमनजाणेजे हुंते शिगणतिमांनुं एसर्व दानपूजादिक जे थायते तेतो श्रीजिनेश्वरना मार्गने थायते तेमाटेहाइतिखेदे तेप्राणी उतावलु डुर्गतिजे नरकादिक तेमांजाडो माटेगर्वनकरवु ॥ ५२ ॥

प्राप्यापि चारित्रमिदं डुरापं स्वदोपजैश्चेद्विषयप्रमादैः ॥ जवां बुधौ धिक् पतितासि जिहो हतोऽसि डुःखैस्तदन्तकालां॥५३॥

अर्थ ॥ हवेदुर्जनचारित्रपामिने विषयप्रमादत्यजवा तेप्रकारांतरेकहेने हेनिह्नु
दुर्जनएहबुजे चारित्रतेपामिने जोपोतानावाकथीउपना एहवाजे विषयप्रमाद तेणे
करीतुससारसमुद्रमापनीश तेवारे ते अनंताकालसुधी चारगतिसंबंधीनाडु खेकरीने
पीडाइश तेमाटेयि कारठेउजने जेतुचारित्रनेविषे उजमालथातोनी ॥ ५३ ॥

कथमपि समवाप्य वोधिरत्नं युगसमिलादिनिदर्शनाहुरापं ॥

कुरु कुरु रिपुवश्यतामगच्छन् किमपि हितं लज्जसे यतोऽर्थितं श ॥५४॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टातसहित बोधनुं दुर्जनपणुंकहेने हेसाधुतुयुगसमिलादिक दशदृष्टां
तेकरी दुर्जनएहबुं समकेतरूपरत्न तेघणोकष्टंपामिने आगलेंवद्वयमाण विषयादिक
शत्रु तेहनुंआधीनपणुंत्यजतुथको काइकआत्मानुंहितजे संयमादिकतेकर जेयकीवां
ठितसुखपामे चुहग पासग धने जूएरयणोय सुमिण चक्रेअ ॥ चम्मजुगे परमाणु दस
दिघंता मणुयलजे ॥ १ ॥ एदशदृष्टातनानामजाणवा ॥ पुवं तेहुळुगु अवर ते तस्त हु
ळसमिलाउ ॥ जुगठिईमि पवेसो इय संसइउं मणुअलजो ॥ १ ॥ इत्यावश्यके ॥ ५४ ॥

द्विपस्त्रिमे ते विषयप्रमादा असंवृता मानसदेहवाच ॥ असं

यमा सप्तदशापि हास्या दयश्चविच्यञ्चर नित्यमेज्यः ॥ ५५ ॥

अर्थ ॥ हवेनामथकी शत्रुदेखामीने तेथीदूररहेवानो उपदेशआपेठे हेसाधो वि
षयजेशब्दादिकपाच तथाप्रमादजे मद्यादिक पाच अने असंवृतकहेतां मोकलामू
क्या एवाजे मनवचनकायानायोग तथा प्राणातिपातादिक पांचअत्रत अनेपांचेदि
यनुं अणजीतवु तथाक्रोधादिक चारकषायनो अपरिहार अनेमनवचनकाया एत्र
णयोगने डु प्रवर्तियेप्रवर्तावबु एसर्वमलीसत्तर असंयमनास्थानक तथावली हास्य
रति अरति जय शोक डुगहा ए हास्यपट्टक एटला ताहाराशत्रुते तेमाटेएथकी
सदाकाल बीहीतोथको विचरजे ॥ ५५ ॥

गुरूनवाप्याप्यपहाय गेह मधीत्य शास्त्रण्यपि तत्ववांचि ॥

निर्वाहचितादिजराद्यजावे प्युपे न कि प्रेत्य हिताय यत्न ॥५६॥

अर्थ ॥ हवेसर्वसामथी मल्याठतापण आत्महितकान्थीकरतो तेकहेने हेरुषितु
घरवामीने गुरुजेधर्माचार्य तेहनेपामीने तथातत्वरूपक शास्त्रजेसिद्धांत तेजणीने
पण तथानिर्वाहजेआजीविका तेहनीचिता अनेआदिशब्दथी वस्त्रपात्र वसतिप्रमुख
नीचिता अनेराजजय चौरजय इत्यादिकतेहानो जरजेसमूह तथावलीआदिशब्दथी
गृह राज देशांतर जलपथ प्रमुखव्यापार तेहानो अजावठतां पण परलोकना हितने

अर्थे कांड्यमनथीकरतो एटले सकलसामर्थीने योगेपण जेआत्महितनथी साथ तो तोपठे घणोज शोचकरीश एनावार्थे ॥ ५६ ॥

विराधितैः संयमसर्वयोगैः पतिप्यतस्ते नवडुःखराशौ ॥ शास्त्राणि शिष्योपधिपुस्तकाद्या नक्ताश्च लोकाः शरणाय नात्तां ॥ ५७ ॥

अर्थ ॥ हवेसंयमग्रहीने संयमविराधनानकरवी तेकहेठे हेयतितेविराध्या एहवा जे संयमनासर्वयोग एटले मूलगुणउत्तरगुणादिकविराध्यातेहेतुयेकरीने संसारना डु खसमूहमांपडतातुजने शास्त्रजेआगमादिक तथाशिष्यजे उपधीपुस्तकप्रमुख तथा बलीनक्तलोकजे श्रावकश्राविकादिक तेकोऽशरणआपवाने समर्थनहीथाय पण एक संयम मात्रज अविराधयो थको शरणदाइथाशे ॥ ५७ ॥

यस्य ह्यणोपि सुरधामसुखानि पत्यकोटीर्नृणां दिनवतीं ह्यधिकां ददाति ॥ किं हारयस्यधम संयमजीवितं तत् हा हा प्रमत्त पुनरस्य कुतस्तवाप्तिः ॥ ५८ ॥

अर्थ ॥ हवेसंयमेजीवितनुं फलदेखाडी प्रमादनोपरिहार उपदेशेठे हेसाथो संयमजीवितनुं ह्यणजेमुहूर्त्तेमात्र तेपणपुरुषनेनिश्चयथी साधिक बाणोकोक्षिपत्योपमजगें देवलोकनामुखआपे यडुक्तं प्रतिक्रमणसूत्रवृत्ता सामास्यंकुणतो समजावसावर्तअघडियडुगं ॥ आउंसुरेसु बंधइ इत्तिय मित्ताइ पलियाइ ॥ १ ॥ बाणवईकोडीउं जसकगुणसद्विसहस्रपणवीसं ॥ नवसयपणवीस्ताए सतिहा अडनाग पलियस्त ॥ २ ॥ इति बाणुकरोड अगणसाठजाख पचीसहजार नवसेपचीश एटलापत्योपम अनेएक पत्योपमना नवजागकरीयें एहवाआठनवमांश अनेतेउपरवली एकनवमांशनो एक तृतीयांश एटलुदेवायु वेधनीना एकसामासकथीबंधाय ते आके करी लिखियेठेये ए१ प६ १५ ए १५, ८१ तो हाहाइतिखेदे हेअधमनीचप्राणी तु संयमेजीवितने के महारेठे हेप्रमादवतफरीनेतुजने एसयमनीप्राप्ति क्याथीथाशे ॥ ५८ ॥

नाम्नापि यस्येति जनेऽसि पूज्यः शुश्रात्ततो नेष्टसुखानि कानि ॥ तत्संयमेऽस्मिन् यतसे मुमुक्षोऽनुचूयमानोरुफलोपि किं न ॥ ५९ ॥

अर्थ ॥ हवेदारसमाप्तिना मंगलनेअर्थे संयमनाशुजफल देखाडी शिहाकहेठे हे मोहार्थीसाधु जेसंयमना केवलनाममात्रथीज एटलेसंयमी एहवुंनाममात्र धराव्याथीज प्रत्यह प्रकारे करी लोकनेविपे तु पूजनीकथयोठो तोशुद्धनिर्मल संयमथी शाशास्वर्गमोहादिक वांछितसुखनहोय एटलेसंयमथी अनीष्टसुख होयज तेमाटेप्र

त्यद्दृश्यमान जेहनुं महाफलअनुनवायठे एहवाए सयमनेविपे तु काउद्यम नथी करतो सर्वथा उद्यमकरवोज युक्तठे ॥५९॥ इति श्री अध्यात्मकल्पद्रुमे यतिशिद्धान्त्यानां नाम त्रयोदशोधिकार संपूर्ण ॥

अथ सामान्यतो यतीन् विशेषधर्मस्थगृहिणश्चाश्रित्य मिथ्यात्वादिसं वरोपदेश ॥ मिथ्यात्वयोगा विरतिप्रमादा नात्मन्सदा संवृणु सौख्य मिच्छन् ॥ असंयता यद्भवतापमेते सुसंवृता मुक्तिरमां च दद्यु ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवे यतिने तथासम्यक्तमूलजवारवृत्तधारक श्रावकने साधारण मिथ्यात्वाव्रति कपाय योग निरोधोपदेश तथा सवरोपदेश नामा चौदमो अधिकारकहेठे तिहाप्रथमकर्मबंधनाहेतुजे मिथ्यात्वादिकतेहनुंसवरकहेठे हेआत्मातु सुखनेवांठतो होयतोमिथ्यात्वजे अनिग्रहिकादिकपाच तेमाअनिग्रहिक तेपोतानाशास्त्रादिकनां ममत्वथी कदाग्रहकरवो तेकुतीधिपाखडादिक बीजुंअनाजिग्रहिक ते सर्वे देवा सर्वे गुरुव सर्वे धर्मा श्र आराध्या एहवोअनिप्राय जेसामान्यप्राकृतलोकोनोते त्रीजुआजिनिवेशिक ते वस्तुनुं यथास्थित स्वरूपजाणेतके पण कोइडटाजिनिवेशना वशथी पोतानुं मतथा पवानेअर्थं गोष्टीमाहिलादिकनीपेठे असत्यरूपणानुंकरवु चोथोसाशयिक ते देवादि कतत्वनेविपे आसाचूके आसाचू एमसंदेहधरवो पाचसु अनाजोगिकते अनाजोग नावशयकी एकेडियादिकनेविपे जीवादिकतत्वनुं अणजाणवु ५ एपाचमिथ्यात्व तथा अशुचमनोयोगादिकत्रण अनेअविरतिते प्राणातिपातादिकपाच तथाप्रमाद जे मद्यादिक पाच एचारेनेसदाकाललगे सवरवुकेमके एचारेने अणसंवखायका ससा रनातापप्रत्ये आपे अने सवखायका मुक्तिरूपिणी लक्ष्मीनेआपे ॥ १ ॥

मन संवृणु हे विघ्नसंवृतमना यत ॥

याति तडुलमत्स्यो जाक् सप्तमीं नरकावनी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथमथी मननुंसवरउपदेशेठे हेपंक्षितआत्मा तुतारामननेसंवर केमके मनने सवरे रहित एवुजे तडुलमत्स्य तेउतावलुं थोडाकालमाज सातमानरकपृथ्वीये जइअवतरे एमत्स्यसमुद्रमाहेला महोटासत्योनी आखनीपापणमाहे स्रक्ष्मस्तितने गर्जे सातमीनरकथीचवीनेअवतरेठे तेमत्स्य तडुलप्रमाणगर्जजथाय पठेतेमहामत्स्यना मुखनाफाडमा पेसतानिकलता एहवाअनेकन्हाना मत्स्यादिकदेखीने तेतडुल मत्स्यएहवुचितवेजे हाहाइतिखेवेजो माहारी आंबडीमोहोटी कायायइहोततो हुंआ सर्वजीवनाकोलियाकरुं पणएमाथीएकेनेजावानआपु एवुमहाडुध्यान चितवतोयको अतर्मुहूर्त्तप्रमाण आशुजोगवीने एकमुहूर्त्तने अतरेवली सातमीनरकपृथ्वीये जइ अ

वतरे एरीतेजीवते वचन तथाकायाये अशक्त्यक्रोहोयतो पण मात्र एकमननाज अ संवरथकी तडुजमत्स्यनीपेठें डुर्गतिगामीथाय ॥ २ ॥

प्रसन्नचडराजर्षे र्मनःप्रसरसवरौ ॥ नरक

स्य शिवस्यापि हेतुचूतौ ह्मणादपि ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेउपरज दृष्टांतकहेते हेप्राणि मननुंप्रसरजे डुर्धाननीप्रवृत्तिअने सं वरजे डुर्धानथीनिवृत्ति तेवेहु एकह्मणमात्रमाजेम प्रसन्नचडराजर्षिनेनरकना अने मुक्तिनापण कारणथया केमकेतेने मननाडुर्धानथी एकह्मणमात्रमां सातमांनरकनुंद लमेजयुं अने तेजमनना संवरथी एकह्मणमा केवलज्ञानपण उपाज्युं ॥ ३ ॥

ह्वेसह्मेषथीतेप्रश्रचडराजर्षिनोसंबंधलखीयेठेंये क्तिप्रतिप्रितितपुरमां प्रसन्नच डराजा राज्यकरताहता अन्यदातिहां श्रीवीरस्वामी समोसखा प्रसन्नचडराजा सह पश्वारें वांदवाआव्यो देशनासांजली वैराग्यपाम्यो पुत्रनेराज्येस्थापी श्रीवीरपासे पोतेदीह्मालीरी अनुक्रमेगीतार्थथयो अन्यदाविहारकरतो राजगृहनगरेंआव्यो ति हाजिनकटपीनी तुअनानेअर्थें स्मशानमां काउसगधरीरह्योठे एटलामाश्रीवीरस्वा मीराजगृहनगरेंसमोसखाठे नगरलोकसर्व जगवतने वांदवाजायठे एटलामांकोइए क वेवणिक तेक्तिप्रतिप्रितितनगरथीआव्योठे तेमांथीएकवणिक प्रसन्नचडराजर्षिने जोइवोव्यो केधन्यठेआपणाराजानेजे राज्यलक्ष्मीतृणनीमाफकल्यजीने ध्यानाधिरूढथ को उग्रतपकरेठे तेसांजलीवीजोवणिकवोव्यो केअहोधि कारठेएनातपने एतुंमुखजो वायोग्यनथी केमकेएवापडाबालरुपुत्रने राज्यआपी मूढथइनिकव्यो अनेपाठलतो सीमाडेवीजाराजायेआवीनेबालकनुंराज्यहरीलेवानगरयेखुंठेनगरतथादेशनालोकसर्व अनाथथयाथका बहुतलपेठे मांदेशजागसे घणुंअनर्थथागे तेथीएतेंछुं र्मिआराथेठे ते सांजलीप्रसन्नचडराजर्षि ध्यानथीचूकीने चितववालागो केअहोमुजवेठा माहारुं राज्यले एवोकोणठे एमरांइध्यानमा व्याप्तथइने मनसार्थेंज महासंग्रामकरवामामुघो तेसमयेश्रेणिकराजा श्रीवीरने वांदवाजातांमार्गमा तेकाउसगधरसाधुदेखी नक्ति पूर्वकवांढी तेहनीउग्रतपम्याने अनुमोढतो समोसरणेपहोतो त्याश्रीवीरनेवांदिनेपु ठुं जेस्वामीएप्रसन्नचडराजर्षि ध्यानाधिरूढअवस्थामां मेवांयो तेअवस्थाने समर्थे काल करेतो शोगतिपामें जगवतेंकल्लु सातमीनरकपामें तेसांजलिश्रेणिकसंत्रांतथइ ह्यो ह्वेप्रसन्नचडराजर्षियें मनथीसंग्रामकरतां सर्वशत्रुहृथा अनेएककोइमहोटा श चूनीसायेयुइकरता आयुधसर्वनपृथयाठे त्यारेजाणुंजे मार्थेलोहनोडोपपहेय्योठे ते लइनेशत्रूनेमारुं एमचित्तवी भाधेहाथनारव्यो एटलेमस्तकतत्काजनुं लोचितमुंमदेखी

ने मनमासंवेगपाभ्यो पश्चात्तापकरवालाग्यो हाहाआमेद्युध्वानचितव्यु मित्रामिडक
 डदेवालागो एवामाफरीश्रेणीके वीरनेपुठ्यु हेस्वामीआसमये राजर्षिकालकरेतोशीग
 त्तिपामे जगवतेअनुत्तरविमानकह्यु तेसांजलीविस्मितथइने श्रेणिकेपुठ्युं कहोस्वा
 मी पहेलेप्रश्रेतोतमे नरककह्यो तेएतपस्वीनेकेमसंजवे अनेएकमुहूर्तनेआंतरे अनु
 त्तरविमानकह्यु तेपणअसमंजस अथवा चातेकरीनेमे अन्यथासांजट्यु तेवारेज
 गवते यथास्थित सर्ववृत्तातेकरी श्रेणिकनोसवेह टाट्यो एटलामां देवडंडुजिनो
 नादसानजलीने श्रेणीके पुठ्युं हेस्वामि आमहोत्सवक्याथायठे जगवतेकह्युजे प्रस
 न्नचड्राजर्षिने केवलज्ञानउपनुं ल्यादेवता महोत्सवकरेठे एमएप्रसन्नचड्राजर्षिने
 एकमुहूर्तनेअंतरे मननोव्यापार नरकहंते अनेमुक्तिहेतेपणथयो ॥

मनोऽप्रवृत्तिमात्रेण ध्यानं नैकेन्द्रियादिषु ॥ धर्म्यं
 शुक्लमनःस्थैर्यं नाजस्तु ध्यायिन स्तुमः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ ह्वेपवनसाधनादिकथी मननोरोधनिरर्थकठे तेकहेठे केवलमननीअप्र
 वृत्तिजे मनोव्यापाररहितपणुं तेणेकरीने एकेन्द्रियादिकजे एकेन्द्रिय वेन्द्रिय तेंद्रिय चौ
 रेन्द्रिय अज्ञपचेन्द्रिय तेहनेविषेध्यानजे मनोरोध लक्ष्ण तेथुंनथी एटलेपवनसा
 धनादिक मनोरोधकरवाथी जोध्यानथायतो एकेन्द्रियादिकनेविषेयाय केमकेतेहनेस्व
 नावथीज मननेअज्ञावेकरी मनोव्यापारनीप्रवृत्तिनथी तेथीपवनसाधनादिकतेकोइस
 माधिलक्ष्ण ध्याननोउपयोगीनथी श्वासरोधादिक क्लिष्टकर्मथी साहसु मनआर्तिये
 व्याकुलथाय पणजेधर्मध्यान अनेशुक्लध्यान तेणेकरीने मननीस्थिरत्तानेजजे एवाजे
 ध्याननाकरनार तेनेज स्तवियेठैये एटलेध्यानते तेनुंजप्रमाणठे ऽतिनाव ॥ ४ ॥

सार्थ निरर्थक वा यन्मन सुध्यानयत्रित ॥ विरतं
 डार्विकल्पेभ्यः पारगास्ता स्तुवे यतीन् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ ह्वेध्यानेकरी जेहनुंमनसार्थकके ०सफलठे अथवानिरर्थकके ०निष्फलठे
 तोपण शुजध्यानेकरियत्रित एटले साकळ्यकु डार्विकल्पजे अशुजकार्यनामनोरथ ते
 ह्थीविरम्युंतेतोतेसदाध्यानजठे एहवाजे ससारनापारगामी साधुतेहने हुंस्तबुंठुं ॥ ५ ॥

वचोऽप्रवृत्तिमात्रेण मौनं के के न विभ्रते ॥ निर

वद्यं वचो येषां वचोगुप्तांस्तु तास्तुवे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ ह्वेवचनयोगनुं सवरउपदेशेठे केवलवचननीअप्रवृत्ति एटलेमात्र वच
 ननेज अणउचरवेकरीने कोणकोणएकेन्द्रियादिक तथा पंचेन्द्रियमांण रोगविजो

पथी तथा मनुष्यमांपण मुंगावोचडाप्रमुखप्राणी मौनपणानेनथीधरतासुं एटलेतेसर्वेमा
नपणोजधरेठे तोतेथी तेहने वचनगुप्तितनकहियें पण जेहनुंवचन निरवद्यके० पाप
रहितहोय एटलेवचनवोव्यानी शक्तिठतांपण सर्वथासावद्यवचननवोले तेनेवचनगुप्ति
वतकहियें तेवानेहुंस्तबुं पणमात्रमांनपणोज धखाथी वचनगुप्तितनकहियें ॥६॥

निरवद्य वचो ब्रूहि सावद्यवचनैर्यत ॥ प्रया

ता नरकं घोरं वसुराजादयोद्भुतं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टांतेकरीने सावद्यवचननुं अनिष्टफलदेखाडेठे हेप्राणितु पापरहि
तवचनवोल केमके सावद्यवचनेकरीने वसुराजा प्रमुख ते घोररौड एहवोजे नरक
तेने पाप्यां तेवसुराजानोसंबंध श्रीहेमाचार्यरुत रामचरित्रमांथी विस्तारेजोडलेवो ए
मजाणी असत्यवचन सावद्यवचननो परिहारकरवो ॥ ७ ॥

इहामुत्र च वैराय उर्वाचो नरकाय च ॥ अग्निद

ग्धा प्ररोहंति उर्वाग्दग्धा पुनर्नहि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेठे जेडुर्वचनो तेथ्यानवसा अनेपरजवमांपण वैरकारीथा
य अनेवलीनरकदाइपणथाय जेमाटेअग्नियेकरीदाधाजेवृद्धादिक तेफरीनवपल्लवथा
य पण डुर्वचननादाधाजेमनुष्य तेनवपल्लवनथाय एटलेस्नेहांकुर तेनेप्रगटेनही केम
के डुरवचनथी उपनोजे वैरजाव तेजन्मातरेपणनमटे इतिजाव ॥ ८ ॥

अतएव जिना टीक्षा कालादाकेवलो भवं ॥ अत्र

द्यादिजिया ब्रूयु ज्ञानत्रयचतुतोपि न ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ एटलामाटे दीक्षालीयापठे केवलज्ञानउपजेंतिहांलगे जिनजेतीर्थीकरदेव
तेमति श्रुत अवधि एत्रणज्ञानना धारकठतांपण अवद्यजेपाप तथाअ्यादिशब्दथी
वचनते ध्यानविघातादिकठे एमजाणी तेहनांनयथी बोलेनही यद्यपि जगवतने ठ
अस्यपणे मनपर्यवज्ञाननी सत्ताहोय तथा पिइहात्रणज्ञानना धारककह्या तेजाणि
येंतेंयेंजे मनपर्यवज्ञाननुंतो मात्र मननो पर्यायजाणवाहुंज साम्यर्थेठे तेमाटेअ्या
चार्यें इहाकह्युनही अनेउपाध्यायथी रत्नचडगणिरुत एजग्रंथनी टीकामांपण एम
जलखुंठे वलीविशेषबुद्धिवतेविचारबु ॥ ९ ॥

रूपया संवृणु स्वांग कूर्मा ज्ञाननिदर्शनात् ॥ सं

वृतासंवृतांगा यत् सुखदुःखान्यवाप्नुयु ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेकायसंवरकहेठे हेप्राणि तुकरूणार्थेकरीने कांचवानादृष्टांतनानि

दर्शनयकी पोतानीकायानेसंवर केमके कायानासंवरवत अने असंवरवतते अनुक्रमे सुखअनेडु खपामे एटलेकायाना संवरवततेसुखपामे अनेअसंवरवतते डु खपामे जे मवेकाचवाहता तेमांशीएकेपोताना अगसंवख्यातो पापीशीयाजथीमूल्युनपाम्यो अ ने वीजेपोतानाअगसवखानही तो पापीशीयाजथी अकालमृत्युपाम्यो एट्टात सवि स्तरपणे श्रीज्ञातासूत्रना चोथाअथ्येनथी जाणवु ॥ १० ॥

कायस्तंज्ञान के के स्यु स्तरुस्तंज्ञादयो यत ॥ शि

वहेतु क्रिया येपां कायस्तांस्तु स्तुवे यतः ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ केवलकायने स्थिरतामात्रथीतोतरुजे वृद्ध तथा अचेतनजे स्तनादिक ते कोणकोणसंवरवतनथी अर्थातजेकोड कायव्यापारना असमर्थते तेसर्वकायसंवरव तजठे पणजेहनीक्रियाजे कायव्यापार तेमोहनेअर्थेहोय तेहने कायगुप्तवत कहियें ठेयें जेकायव्यापारने ठतेसामर्थं पण अशुभकायव्यापारने रुंधे अनेशुभक्रियानो खप करे तेहने कायगुप्तवतकहिये इतिज्ञाव ॥ ११ ॥

श्रुतिसंयममात्रेण शब्दान्कान् के त्यजति न ॥

इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ हवेपंचेडियनुं संवरकहेठे तेमाप्रथम श्रोत्रेडियआश्री कहेठे केवलकानना व्यापारना निरोधयकीज कोणकोणएकेडिय वेडिय तेंडिय चोरेडिय तथापंचेडियति र्थच अनेमनुष्यमध्येपण बेहेराप्रमुखजे श्रोत्रेडियेविकल होय तेशब्दनाविपयने नथी त्यजतासु अर्थातत्यजेजठे पणजेवारेइष्टजे मृदगादिवाजित्र तथास्त्रीकोयलप्रमुखना शब्द अनेअनिष्टजे खर तथायूक प्रमुखनाशब्द नेविपे रागअनेद्वेषत्यजे तेवारेमुनिथाय चक्षु संवरमात्रात्के रूपालोकास्त्यजति-न ॥

इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ केवलनेत्रव्यापारनेज तजवायकी कोणकोण एकेडिय वेडिय तेंडिय त था अथ मनुष्यादिक तेहृष्टविपयने नथीत्यजतासुं अर्थातत्यजेजठे पणइष्टजे स्त्रीनां कटाह नाटकप्रमुख तथाअनिष्टजे अमेथ्य वीनत्सप्रमुख एवाजेएहृष्टिनाविपय तेह नेविपे राग अने द्वेषने त्यजे तेवारे ते मुनिथाय ॥ १३ ॥

घ्राणसंयममात्रेण गंधान् कान् के त्यजति न ॥

इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ केवलनाकना व्यापाररहितपणाथी कोणकोण शुभशुभगंधने एकेडिय

बेंडियादिक तथाबीजापण प्राणैडिये विकलथयेला प्राणि नथील्यजतां अर्थात्त्यजेजठे पणइष्टजे फुलप्रमुख अनेअनिष्टजे अमेथ्यादिक एवाजेगंध तेहेनेविपे राग अने द्वेपत्यजे तेवारें तेमुनिथाय ॥ १४ ॥

जिव्हासंयममात्रेण रसान्कान्के त्यजंति न ॥

मनसा त्यज तानिष्ठान् यदीदृशिसि तप फलं ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ केवलजिव्हाना संवरमात्रथीज कोणकोणद्युनाद्युन रसने पृथ्वीकायादिक एकेडिय तथाबीजापण नावरसनैडियथी विकलथयेलाप्राणी ते नथील्यजतासुं अर्थात्त्यजेजठे पणहेआत्माजो तु तपनुंफलवांठे तो तेजेइष्टवांठित मधुरादिकरस तेने मनसाकहेतां मनोयोगपूर्वक समता परिणामेकरीनेत्यज ॥ १५ ॥

त्वच संयममात्रेण स्पर्शान् कान्के त्यजंति न ॥

इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ केवलत्वचाजे स्पर्शनेडिय तेहनो संयमजे स्पर्शज्ञानना नलेवानी अन्वता तेणेकरीने कोणकोणप्राणी गुनाद्युनस्पर्शने नथील्यजता अर्थात्त्यजेजठे यद्यपि एकेडियादिक सर्वजीवने स्पर्शनुं विषयहोयठे तथापिकुष्टादिक रोगनावशयकी त्वचानीबहिरिनाधणीने स्पर्शनुंज्ञाननजहोय एजावठे पणइष्टजेस्त्रीस्पर्शादिक तथा अनिष्टजे ताप शीत मांस मसा प्रमुखनेविपे राग द्वेपनेत्यजे तेवारेजमुनिथाय ॥ १६ ॥

वस्तिसंयममात्रेण ब्रह्म के के न विभ्रते ॥

मन संयमतो धेहि धीर चेतत्फलार्थसि ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीस्पर्शनेडियमा विगेपकहेठे वस्तिके० मूत्राशय एटलेगुह्येडिय ते नासंवरमात्रथीज ब्रह्मचर्यधारणनथीकरता सुं एटले नारकी समूर्तिमपंचैडिय प्रमुख तथा पुरुपरूपनपुंसक अने स्त्रीरूपनपुंसक इत्यादिक कोणकोणप्राणी मैथुननीअश क्थी शीलधारणनथीकरता एटलेतेसर्व ब्रह्मचर्यवतजठे पणपरिणामविना असक्ति थीपाजुं तेनिष्फलठे माटेहेधीरआत्मा जो तुब्रह्मव्रतनाफलनो अर्थीहोयतो मनने संवरेकरीने ठतीशके ब्रह्मव्रतधारणकर ॥ १७ ॥

विपर्यैडियसंयोगा ज्ञावात्के के न संयता ॥ राग

द्वेषमनोयोगज्ञावाद्येतु स्तवीमि तान् ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हवेसामान्यथी सर्वइडियादिक तेहनोसंयोगजे एकत्रमलबुंते हनाअज्ञा वथी कोणकोणसंवरवतनहोय एटलेविषयनोयोग मद्याविनासर्वसंवरवतजठे पण

जेमहापुरुषे ते तो विषयादिकनो योगततांपण रागद्वेष अने मनयोगना अजावथी
एटलेजेमनथकी रागद्वेषरहितपणे संवरवतळे तेअनोनेहुंस्तबुहुं ॥ १८ ॥

कपायान् संवृणु प्राङ् नरक यदसंचरात्॥

महातपस्विनोप्यापु करटोत्करटादय. ॥१९॥

अर्थ ॥ एमइडियआश्रित संवरकहीने हवेकपायआश्रितकहेते प्राङ्के० हेवि
वेकीप्राणी कपायजे क्रोधादिक तेनुतुसवरकर केमकेएकपायना असंवरथकी करम
अने उकरम प्रमुख महातपस्वी महानुनाव तेपणनरकनेपास्या एकरड अनेउकरड
वे ब्राह्मणमासीयाइ जाइहता ते वैराग्यथकी दीह्लाइ अग्रतपकरी अन्यदाकुणालान
गरिये कोटनापरनालामा चोमासुरह्या तिहानगरना जलप्रवाहनेपूरे साधुरखेतणा
इजाय एमजाणीदेवताये कुणालानगरीउपर वरसादयंजाव्यो कुणालाशिवायबीजे
सर्वत्रवर्षादिवरस्यु केटलेक दहाडे तेवातजाणी नगरलोके ताडनातर्जनाकरी तेसाधु
नेकाढ्या तेवारे क्रोधशेखर करमबोव्यो वर्षमेघकुणलाया तेवारे उकरमबोव्यो दि
नानि दश पंच च वलीकरमबोव्यो मुशलप्रमाणधाराणि वलीउकरमबोव्यो यथारात्रौ
तथा दिवा तेवचनथी अहोरात्रमुशलधाराये कुणालानगरीउपर मेघवृष्टौ तेह्यीकु
णालानगरी लोकसहिततणाइइ महाअनर्थथयो तेवारपठे त्रीजेवषे साकेतपूरे ते
पापनेअणआलोवेठते करमअनेउकरडवेमरीने सातमीनरके कालनामा नरकावास
मां वत्रीससागरोपमनेआयुपे नारकीपणे अवतखा एमजाणी कपायनोसवरकरवो.

यस्यास्ति किञ्चिन्न तपोयमादि ब्रूयात् स य तत्तुदतां परान् वा ॥ य

स्यास्तिकष्टाप्तमिदं तु किं न तद्भ्रंशनी संवृणुते स योगान् ॥२०॥

अर्थ॥हवेवलोमनोयोगादिकनो संवरकहेते जेप्राणिनेकाइ तपसयमादिकनथी अ
विरतिठे तेप्राणिजेमतेम असंबंधबोले तथाअन्यजीवनेपीडाकरे एटले अग्रती जेजेअ
ठुल्यकरे तेतेथेठे पणविरतिवतप्राणितो एतपसयमादिक घणुजकष्टेप्राप्तियायठे ए
मजाणी तद्भ्रंशनी के० रखेमहारांतपसयमनो विनाशथाय एमबीहीतोथको मनोयो
गादिकने केमनसंवर एटलेविरतिवतने सर्वथासंवरकरबुज एजावार्थठे ॥ २० ॥

ज्वेत्समग्रेष्वपि संवरेषु पर निदान शिवसपदा य ॥ त्यजन्

कपायादिजड्विकटपान् कुर्यान्मन संवरमिद्धीस्त ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीमननासंवरनु आधिक्यतापणुकहेते जेमननो संवरठे ते बीजा
जेटला संवरठे तेसर्वमा मोक्षसंपदानु परमकारणठे ते माटे विगेषबुद्धिवत

पुरुषतो कपायादिकथीउपनाजे कुविकल्पते व्यजतोयको मननोसंवरकरे एटले सु
किनुं मुख्यकारणजाणीने विवेकीपुरुषे प्रथममननुं संवरकरबुं इतिचावः ॥ ११ ॥

तदेवमात्मा कृतसंवरः स्यात् निःसंगताज्ञाक् सततं सुखेन॥

नि संगजावादथ सवरस्तद्वयं शिवार्थी युगपन्नजेत ॥२२॥

अर्थ॥हवे ए अधिकारनो उपसंहारकहेठे तेमाटे एमपूर्वंप्रकारें कृतसंवरके० सव
रवंतजे आत्मा तेसदाकाले सुखेकरीने निःसंगपणानेजजे अथवा बली निःसंगपणाथी
संवरवाय एटले एवेहुनो अन्योन्यकार्यकारण नावजाणवो केमके कोइकनेनिःसग
पणाथी संवरआवे अनेकोइनेसंवरथी निःसगतापणुंआवे माटेमोहार्थीपुरुष तेसंव
र अनेनि सगता एवेनेसमकालेसेवे ॥ १२ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पडुमे सिष्यात्वादि
संवरोपदेशाख्य श्रतुर्देशोअधिकार समाप्त ॥ १४ ॥

अथ शुचप्रवृत्तिशिक्षोपदेशः॥आवश्यकेष्वतनु यत्नमाप्तौ दितेषु शुद्धेषु त
मोपद्वेषु ॥ न हंत्यनुक्तं हि न चाप्यशुद्धं वैद्योक्तमप्यौपधमामयापहं॥१॥

अर्थ ॥हवेशुचप्रवृत्तिशिक्षा एहवेनामे पन्नरमोअधिकारकहेठे एअधिकारमा य
तियोग्यशिक्षा यतीनेजाणवी अनेश्रावकयोग्यशिक्षा श्रावकनेजाणवी इहांप्रथम आ
वश्यक करवायोग्यजाणीने आवश्यकआश्रथी उपदेशेकहेठे हेसाधु तथा हेश्रावक
तु पापनानिवारक अनेसर्वज्ञनापित एवांजेशुद्धनिर्मल आवश्यक सामायिकादिक
तथाअवश्यकरणीय पोसह उपवास आलोयणादिक तेहनेविपेउद्यमकर तेनाउपर
दृष्टांतकहेठे जेम वैद्यनुकहजेअौपध तेनखाधुंथकु तथाअशुद्धजेकासुं हरितालप्रमुख
तेखाधुंथकुंपण रोगनिवारक नथाय तेम सर्वज्ञनापित आवश्यकजाणीनेपण तेह
नीक्रियानकरीये अथवाअशुद्धक्रियाकरिये तोतेहथीकर्महयनथाय तेमाटेदोपरहित
शुद्धक्रियायेकरी आवश्यकदिकनो उधमकरवो एउपनयठे इहांप्रसगथी सामायिकना
दोषलखियेठैये १ वस्त्रेतथानुजायेकरीने पलांठीबाधे २ आसनआघुपाहुंफेरवे ३
चपलपणोसर्वदिशायेजोवे ४ गृहसंबंधीसावद्यकर्मकरे ५ नित्तीस्थंजादिकेओठंगीत्रे
से ६ अंगोपांगमोडे ७ आलसमोडे तथाधर्मकार्येंआलसकरे ८ हाथपगेकरकडा व
जाडे ९ शरीरनोमेलउतारे १० खाजिखणो ११ विसामेणकरावे १२ निडाकरे ए
वारदोषकायथकीजाणवा तथा १ कुवचन कोइनुंमर्मनिदादिकबोले २ सहसात्कारे
अविचारुंबोले ३ आर्तिमयदिसंस्थलवचनबोले ४ आपठेंदंबोले ५ सूत्रनणतो अ

थवानवकारगुणतो वचनसंक्षेपकरे ६ कलहविवादकरे ७ राजकथादिकविकथाकरे
 ८ हास्यनावचनकहे ९ सपदारहितसूत्रनणे १० जावाआववानाआदेश आपे एद
 शदोषवचनथीजाणवा वली १ निर्विचेकीमनेकरे २ यशकीर्तिनीवांढायेकरे ३ धनला
 ननेअर्थेकरे ४ गर्वथीकरे ५ जयथीकरे ६ धनपुत्रादिनेअर्थेनियाणुंकरे ७ सामायि
 कनाफलनो सदेहकरे ८ रीसधरीसामायिककरे ९ विनयरहितसामायिककरे १०
 जक्तिरहितसामायिककरे एदशदोषमनथीउपजे एम मन वचन अने कायाना मलीने
 वत्रीशदोषसामायिकनात्यजवा तथावांदणाना ३२ दोष अने काउसगना १९ दो
 ष ते जाप्यादिक ग्रंथथी जाणीने त्यजवा ॥ १ ॥

तपांसि तन्याद्विविधानि नित्यं मुखे कटून्यायतिसुंदराणि ॥ वि
 घ्रंति तान्येव कुकर्मराशि रसायनानीव छरामयान् यत् ॥१॥

अर्थ ॥ ह्वेतपप्रवृत्तिआश्रयीउपदेशे मुखे ० प्रथमकरतीवेलायेतो सुखतृपादि
 कसहेवांपडे तेमाटे कडवाठे पण आयतिके ० उत्तरकाळे सुखनाकरनार एहवाजेवि
 विधप्रकारना ठठ अठम दशमादिक तप तेनित्येकरवां केमकेतेतपज कर्मनासमूहने
 निवारणे तेउपरदृष्टांतकहेठे जेमरसायन पारो हरिताल सुवर्णादिक औषधिओ
 तेहिज अवरअनेक्यादिक छुट्टरोगोनेनिवारणे तेम इहापण उपनयजेतु ॥ २ ॥

विशुद्धशीलांगसहस्रधारी जवानिशं निर्मितयोगसिद्धिः ॥

सहोपसर्गास्तनुनिर्मम सन् नजस्व गुप्ती समितीश्च सम्यक् ॥३॥

अर्थ ॥ ह्वेतपकरनार प्रायेशीलवतजोड्ये तेमाटेशीलआश्रयीउपदेशे हेसाधु
 तुविशुद्धनिर्मजएवाजे अठारसहस्र शीलांगरयतेने धरतोथको नित्ये निर्मित योग
 सिद्धिके ० निपजावीठे अष्टांगयोगनीसिद्धिजेणे अथवायोगजे मनोयोगादिक तेह
 ना छु प्रणिधानना निवारवारूप समाधिनी सिद्धिकर एटजेशीलांगधरतोथको मनव
 चनकायाना योगवशकर एजावार्थे वलीवेहनेविषे ममत्वरहितथको देवादिकनाक
 रेला उपसर्ग तेनेसहनकर अनेपाचसमिति तथात्रगुणशुद्धी तेहनेजज ॥ ३ ॥

स्वाध्याययोगेषु दधस्व यत्नं मध्यस्थवृत्त्यानुसरागमार्थान् ॥

अगारवो नैक्षमटाविपादी हेतौ विशुद्धे वशितेजियौघः ॥४॥

अर्थ ॥ ह्वेशीलवतने मनस्थिरकरवानिमित्त जेसिद्धातादिकतुं स्वाध्याय जणतुं

जणावतुं तेहनुं योगजे मनवचनकायायेकरी नित्यञ्चन्यास करवानेविपे उद्यमकरे वलीआगमनाजे अर्थे तेमध्यस्थवृत्तिये कदाग्रहरहितपणे अनुसरे एटले कदाग्रहे करीने जिनवचननाअर्थनी परुपणाज्वीनकरे वली अगारवके० रुद्रिगारव रसगा रव सातागारव तेषोरहितथकुं अनेविशुद्धिनिर्मलहेतुजे मोहसाधन तेहनेविपे वि पादरहितथकुं एटलेशुद्धक्रियाकरतां अविपिन्नचित्तथकुं अनेवलीवशकीधोठे इडिय नोसमूहजेणे एहवुथकुं नैकेजेउंचनीचकुल शुद्धमानआहारतेहनी गवेषणाकरे ॥४

ददस्व धर्मार्थितयैव धर्म्यान् सदोपदेशान् स्वपरादिसाम्यात् ॥
जगद्धितैपी नवजिश्च कल्पै ग्रामे कुले वा विहराप्रमत्तः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसआयतुंफलते शुनउपदेशठे तेमाटेशुनोपदेशआश्रीकहेठे हेसाधो तुं पोताना अनेपारकानेविपे समानपणे उपदेशकर एटले आमाहारोन्नकठे दाताठे धनाढयठे एहवानेधर्मकहुं अथवा आ मिथ्याली रुपणदरिडीठे एहवानेउपदेशको एकहे इत्यादिककल्पना त्यजी केवलधर्मार्थीपणोकरीनेज पण आहारवस्त्रादिकने अर्थेनही एप्रकारे नित्यधर्मसंबंधीयाजे उपदेशते कहेतोरहे अनेवली सर्वसंसारजी वने हितवाढतोथको नवकल्पेकरीने ग्रामनगरादिकनेविपे शुन उपदेशकरतोरहे त थाविहारकरवानी अशक्तं कुलके० ग्रामनगरादिकनो एकप्रदेशतेनेविपे प्रमादरहित थकुं विहारकर इहांकल्पते मागसिरप्रमुख आवमास जेरुतुव६काल तेहनाआवकल्प अनेश्रावणादिक चारमास चोमासना तेनोएकल्प एरीते सर्वमलीने नवकल्प जाणवा

कृताकृतं स्वस्य तपोजपादि शक्तीरशक्ती सुकृतेतरे च ॥ सदा
समीक्षस्व हृदाऽथ साध्ये यतस्व हेयं त्यज चाव्ययार्थी ॥६॥

अर्थ ॥ हवेशुनोपदेशनाकहेनारने कृत्याकृत्यनोविचारजोइये तेमाटेतेआश्रयीकहे ठे हेसाधु तथाहेश्रावक तुपोतानुं तप जप प्रमुखजेकर्म ते कृत्याकृत्यकहेतां एटलुंमेकी धुं एटलुंमेनथीकीधुं एहनुंविवेचन तथाशक्ति अनेअशक्ति तथापोतानुंसुकृत अनेइ. कृत एटलावाना पोतानामनसार्थेसदायविचारीने तेवारपठे मोहार्थीथकुं साध्यजे साधवायोग्य तपोनुष्टानादिक तेहनेविपेउद्यमकर अनेवली हेयकहेतां त्यजवायोग्य जेविषयकपायादिक तेहनेत्यज सत्पुरुषने चित्तरूपिणीनूमिनेविपे गुरुपदेश तेवीज वृद्धिरूपहोय पठेतेमा विचाररूप जलनासिंचवाथी सुकृतरूपवृद्ध विस्तारपामेते माटे मोहार्थीये हेयउपादेयज्ञेयना विचारपूर्वक धर्मोद्यमकरवो ॥ ६ ॥

परस्य पीडापरिवर्जनात्ते त्रिधा त्रियोग्यप्यमला सदाऽस्तु ॥
साम्येकलीनं गतञ्जर्विकल्पं मनोवचश्चाप्यनघप्रवृत्ति ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ ह्वेजेविचारवत्तहोयते त्रियोगीनिर्मलजोश्ये तेमाटेतेआश्रयीकहेठे हेआत्मात्रियोगीजे मनवचनकायाना त्रणोयोगतेणेकरी सदाऽनिर्मलथा एटजेसर्वजीवउपरे हितबुद्धिराखीने मनवचनकायानायोग निर्मलकर एजावार्थेठे केमके परनेपीडा वर्जवाथकी काययोगतो निर्मलयोज अनेतेकाययोगनी निर्मलताथी मनपणसमता येलीन अनेञ्जर्विकल्पपरहितथाय तथावचनपण पापव्यवहाररहितथाय ऽहाआचार्य काययोग सुगमठे साटे जुदोकरीने नकह्यो ॥ ७ ॥

मैत्री प्रमोदं करुणा च सम्यक् मध्यस्थतांचानय साम्यमात्मन् ॥
सज्ञावनास्वात्मलय प्रयत्नात् कृताविराम रमयस्व चेत ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ ह्वेएत्रियोगीनेनिर्मलताते मैत्र्यादिज्ञावनाथीथाय तेमाटेतेकहेठे हेआत्मातु मैत्रीतथाप्रमोद तथाकारुण्य अनेमध्यस्थता ए चारज्ञावना तेआत्मानेविषे आण अनेवलीतेनावनायेकरी सम्यक्प्रकारे समताआण वली प्रयत्नातुके० पंदि तवीर्यफोरववाथी चिन्ते आत्मलयके० ध्यानलीन अनेध्यानर्थी अविपित्र एहवु थयुं थकु छुनज्ञावनाजे अनित्यादिक तेहनेविपेरमाड ॥ ८ ॥

कुर्यान्न कुत्रापि ममत्वज्ञावं न च प्रजो रत्यरती कपायान् ॥ ऽहापि
सौरख्यं लजसेप्यनीहो ह्यनुत्तरामर्त्यसुखाजमात्मन् ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ ह्वेएजावनाआते ममत्वनात्यागथीहोय तेमाटेतेआश्रयीकहेठे हेसमर्थ आत्मा जोतुकोऽवस्तुनेविषे ममत्वनकरे अनेवली रति अरति अनेकपाय नकरे ए हवोतु वाठनारहितथको रहेतो आज्ञवेज अनुत्तरविमानवासी देवतानाजेबु सुखपामे केमके अनुत्तरवासी देवतामां स्वाभिसेवकनो व्यवहारनथी तेमाटे सत्सारिक सुख जोता अनुत्तरविमाननो सुखते सर्वोल्हृष्टजाणवु ॥ ९ ॥

इति यतिवरशिखां योऽवधार्य व्रतस्थश्चरणकरणयो
गानेकचित्त श्रेयत ॥ सपदि नवमहाब्धिकेशराशि
सतीर्त्वा विलसति शिवसौरख्यानंत्यसायुज्यमाप्य ॥१०॥

अर्थ ॥ ह्वेएअधिकारनो उपसंहारकहेठे एप्रकारे यतिवरजे नजास्ताधु उपलक्ष

एथी जलाश्रावकपणलेवा तेसंबंधीनीजेशिक्षा तेनेचित्तमांधरीने एकाग्रचित्तथकुं चर
एकरणयोगजे चरणसिचरी अनेकरणसिचरीनागुण तेनेजेसेवे तेसाधु तथा ते श्रावक
शीघ्रके० उतावलुं क्लेशड.खना समूहरूपजे संसारमहासमुद्र तेथकीतरनीने मोक्षसु
खनुं अनंतपणुं तेहनुं सासुज्यके० जेसहचारीपणुं तेपामीने वलीमोक्षनाअविनाशीसु
खनीपरे पोतेपणत्यां अविनाशीनावपामी विलसतिके० सर्वदासुखनेअनुजवे ॥१०॥
इति श्रीअध्यात्मकल्पदुमेऽगुजप्रवृत्तिशिक्षोपदेशारव्यः पंचदशोअधिकारसमाप्त.

अथ ग्रथोपसंहाराय साम्यसर्वस्वं ॥ एवं सदाज्या
सवशेन सात्म्यं नयस्व साम्यं परमार्थवेदिन् ॥ यतः
करस्थाः शिवसंपदस्ते ज्वंति सद्यो ज्वन्तीतिजेतुः ॥ १॥

अर्थ ॥ हवेग्रंथनाउपसंहारनेअर्थे साम्यसर्वस्वनामं सोलमोअधिकारकहेढे हेप
रमार्थनाजाण विवेकीपुरुष तुएमपूर्वोक्तप्रकारे अन्यासवशेकरीने साम्यजेसमता ते
हने सात्म्यकहेतां आत्मासाथे ऐक्यपमाड जेसमतार्थी ज्वन्तीतजे संसारसंबंधी
नय तेहनेजेदवावाढतो एवोजेतु तेतुजने मोक्षनी संपदाओ ते तत्कालमात्र करस्था
कहेतां हस्तप्राप्तयाय ॥ १ ॥

त्वमेव दुःखं नरकस्त्वमेव त्वमेव शर्मापि शिवं त्वमेव ॥ त्व
मेव कर्माणि मनस्त्वमेव जहीह्यवज्ञा मवधेहि चात्मन् ॥२॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने अविद्यानोपरिहार अनेसमतानुंधरबु कहेढे हेआत्मातुड
खनेकारणे प्रवर्त्थीं माटे दु.खतेतुजठे एमआगजपण सगलीवस्तुनुं आत्माजकार
णरूपजाणबु वलीनरकनुंकारणतेपणतुजठे वलीसुखपणतुठे अनेमुक्तिपणतुठे व
लीकर्मपणतुठे अने मनोव्यापारना प्रकाशकपणाथी मनपणतुठे तेकारणमाटे अब
ज्ञाजेधर्मकार्यनेविपे अनादरकरवो एटलेहमणा धर्मेनधीयातो तोपठेकरीश इत्यादि
क कल्पना त्यजोने अबधेहिकहेतां धर्मकार्यनेविपे सावधानरहे ॥ २ ॥

निःसंगतामेहि सदा तदात्मन्नर्थेष्वशेष्वपि साम्यज्ञावात् ॥
अवेहि विघ्नममतेव मूलं शुचां सुखानां समतैव चेति ॥ ३॥

अर्थ ॥ हवेसर्वत्रपणे निःसंगपणानुं प्राध्यान्यपणुकहेढे हेआत्मा तेकारणमाटे
सकलपदार्थनेविपे समतानावथी सदाय नि.संगपणाने पाम अनेवली हेनिपुणप्राणि

सकलशोकमुञ्ज ते ममताजठे अनेसकलसुखमुञ्जते समताजठे एहदु जाणीने म
मताने त्यज अने समताने आदर इतिचाव ॥ ३ ॥

स्त्रीपु धूलिपु निजे च परे वा सपदि प्रसरदापदि चात्मन् ॥ त
त्वमेहि समतां ममतामुक् येन शाश्वतसुखाद्यमेपि ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनि संगताते ममत्वमुकवाथीजथायठे तेमाटेममतात्यजवानुं उपदेजे
ठे हेआत्मा ते पूर्वोक्तकारणथी तुममतारहितथको स्त्रीनेविपे अनेधूलिनेविपे वली
स्वजननेविपे अनेपरशत्रूनेविपे तथा वजि सपत्तिनेविपे अने विस्तारपामतीआपदाने
विपे समतानेपामवेकरीने सरखोपरिणामराखजे एटलेमोक्तसुखनोक्तोक्ताथाइश ॥४

तमेव सेवस्व गुरुं प्रयत्ना ढधीष्व शास्त्राण्यपि तानि विद्वन् ॥ न दे
वतत्वं परिचावयात्मन् येभ्यो नवेत्साम्यसुधोपजोग. ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतातेज सकलपदार्थनो सारकरीनेउपदेजेठे हेविद्वन् हेआत्मन्
तुउद्यमकरीने तेहिजगुरुनेसेव अनेगुरुसेवनाकरीनेशास्त्रपण तेहिजण तथाशास्त्र
जणीने तत्वरहस्यपण तेजचिन्तांचितव केजेगुरुथी अनेशास्त्रथी तथाजेतत्वथी सम
तारूपीयुं जेअमृत तेनोउपजोग आस्वादपामे एटजेजेपदार्थनेतु समतानुकारणजा
पो तेतेपदार्थनुंस्वरूपकर केमकेबीजासर्वपदार्थ तेनिरर्थकठे ॥ ५ ॥

समग्रसत्तास्त्रमहाणिवज्यः समुद्धृतः साम्यसुधारसोऽयं ॥ निपी
यता हे विबुधा लज्जेध्व मिहापि मुक्तेः सुखवर्णिकां यत् ॥६॥

अर्थ ॥ हवेआचार्यग्रंथने उपसहरतो ग्रथनीउपावेयतादेखाडेठे हेपंफितजनो
तमेसमग्र जजाजे धर्मशास्त्र तेरूपीयो जेमहासमुद्दे तेहथीउधखुंजे एसमतारूपियुं
सुधारसके० अमृतरसतेप्रत्ये तुमें पीयताकहेतां आदरसहितसाजलो तथाजणो जे
थी तमेआलोकेपण मुक्तिनासुखनी वर्णिकाकहेता वानगीनेपामो केमकेसमतारस
मय जीवते आलोकेपण मुक्तिसुखने अनुजवेठे ॥ ६ ॥

शातरसज्ञावनात्मा मुनिसुदरसूरिञ्चि कृतो ग्रंथ ॥

ब्रह्मस्पृहया ध्येय स्वपरहितोध्यात्मकल्पतरुरेपः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेग्रंथनेठेहे आचार्यपोतानुंनाम अनेग्रथनुंनाम जणाववाकहेठे स्व
परहितकहेता ग्रंथकर्त्ताने तथापरजेश्रोताप्रमुख एबेहुनेहितकारी एवोजेआध्या

त्मकल्पदुमनामेग्रंथ तेतपगञ्जाधिराज श्रीमुनिसुन्दरसूरियेंकीधो ते एग्रंथ पंमितें ब्रह्मजेज्ञान तेहनी वाढाये नएवुं अथवा ब्रह्मजे मुक्ति तेहनीवांठायें चिंतववुं ॥ ७ ॥

इममिति मतिमानधीत्य चित्ते रमयति यो विरमत्ययं नवाडाक् ॥ स
च नियतमतो रमेत चास्मिन् सह नववैरिजयश्रिया शिवश्रीः ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ ह्वेफलोपदर्शन द्वारे मंगलगर्जित उपसंहार वाक्यकहेछे जेमतिवत पुरुष अथ्यात्मकल्पदुमनामे ग्रंथनेनणि पोताना चित्तनेविपेरमाडे रात्रदिवसचित्तवे तेपुरुष संसारथकी थोडाकालमां विरक्तथाय अनेवलीएहनाज चित्तनथी तेपुरुषनेविपे संसाररूपीया शत्रुनीजे जयलक्ष्मी तेणोसहित शिवश्रीजेमोहलक्ष्मी तेमा रमिके ० आश्रयिनेरहे एटलेतेसंसाररूप शत्रुनेजीतीने मोहूरूपलक्ष्मीपामे. इतिअथ्यात्मकल्पदुमे साम्यसर्वस्वनामा षोडशोधिकार समाप्त. ॥ १६ ॥

ए श्रीअथ्यात्मकल्पदुमनामे ग्रंथनो बालावबोधार्थ उपाध्यायश्री रत्नचङ्गणिकृत तथाउपाध्यायश्री विद्यासागरणिकृत एवेटीकाजोइने में महारीबुद्धिने अनुसारे मुज सरखा स्वत्पबुद्धिवत प्राणिना उपकारने अर्थें लेशमात्र लख्योठे तेमां अनाजोगथी तथाअज्ञानथी तथात्रांतिथी जेकांइसूत्रना तथाटीकाना अनुसारथी ओहुंअधकुं अयुक्त लखाणुंहोय तेहनुं मिठामीडुकरं अथवाकिहांएक सुगमपणानेअर्थें किहांएक साहचर्यथी किहांएकरूढिथी जेकांइ विजक्ति वचन लिंग कारक अन्वय प्रमुखनो विपर्यास कीधो होय तेअपराध बहुश्रुत गीतार्थेखमवो तथा उपकारबुद्धे अरु-६ टालिने शुद्धकरवुं.

अथ प्रशस्तिः ॥ श्रीमत्तपगणगगनां गणनासनतरुणतरणिनिज ॥ श्रीराजविजयसू-
रिविचूव बुवि नूरि वितानयशा ॥ १ ॥ योत्याङ्कीदिनव धनं सुविहितानुष्ठानब-
दादरो लोकं कोकमिव प्रबोधमनयज्ञोच्चिश्च गोस्वामिवत् ॥ द्वित्यादीकिटदर्पमुज्वलपटाश्रके वि-
शेषोपज्वलान् यो वाचालितमालवेश्वरसितह्वत्रप्रजावोज्वल ॥ २ ॥ रत्नत्रयप्रथितसंय-
मनृत्तदीप पट्टेप्वरत्नविजयाब्दह्यसुरिरासीत् ॥ येन प्रशांतरजसा प्रशमार्णवेन रत्ना-
करायितमनल्पगुणौघरंजै. ॥ ३ ॥ तस्यान्वये निखिलनूतलगीतकीर्ति श्रीहीररत्न-
इतिसूरिवरो विरेजे ॥ स्वर्ग गतोप्यखिलनक्तसमीहितानि योद्यापि पूरयति नभ्य स्वाम-
रदुः ॥ ४ ॥ तत्पट्टचूपाणमणिर्जयरत्नसूरिः सर्वाग्रणीर्गुणेषु नूरिशुणाश्रयोऽनूत् ॥ श्री-
नावरत्न इति नावविद्यो वरेण्य सत्पट्टचूक्यति संप्रति सूरिराजः ॥ ५ ॥ श्रीहीररत्नसूरे

सकलशोकनुमूल ते ममताजठे अनेसकलसुखनुमूलते समताजठे एहबु जाणीने म
मताने व्यज अने समताने आदर इतिचाव. ॥ ३ ॥

स्त्रीपु धूलिपु निजे च परे वा संपदि प्रसरटापदि चात्मन् ॥ त
त्वमेहि समता ममतामुक् येन शाश्वतसुखाद्यमेपि ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनि सगताते ममत्वमुकवाथीजथायठे तेमाटेममतात्यजवानु उपदेशे
ठे हेआत्मा ते पूर्वोक्तकारणथी तुममतारहितथको स्त्रीनेविपे अनेधूलिनेविपे वली
स्वजननेविपे अनेपरशत्रूनेविपे तथा वलि संपत्तिनेविपे अने विस्तारपामतीआपदाने
विपे समतानेपामवेकरीने सरखोपरिणामराखजे एटलेमोक्षसुखनोचोक्ताथाश्श ॥४

तमेव सेवस्व गुरुं प्रयत्ना दधीष्व शास्त्राण्यपि तानि विघ्न ॥ न दे
वतत्वं परिचावयात्मन् येभ्यो ज्वेत्साम्यसुधोपजोगः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतातेज सकलपदार्थनो सारकरीनेउपदेशेठे हेविघ्न हेआत्मन्
तुंउद्यमकरीने तेहिजगुरुनेसेव अनेगुरुसेवनाकरीनेशास्त्रपण तेहिजण तथाशास्त्र
जणीने तत्परहस्यपण तेजचित्तमांचितव केजेगुरुथी अनेशास्त्रथी तथाजेतत्वथी सम
तारूपीयुं जेअमृत तेनोउपजोग आस्वादपामे एटलेजेपदार्थनेतु समतानुंकारणजा
पो तेतेपदार्थनुस्वरूपकर केमकेबीजासर्वपदार्थ तेनिरर्थकठे ॥ ५ ॥

समग्रसत्तास्त्रमहाणिवज्य समुद्धृत साम्यसुधारसोऽयं ॥ निपी
यता हे विबुधा लजेध्व मिहापि मुक्ते सुखवर्णिका यत् ॥६॥

अर्थ ॥ हवेआचार्यग्रंथने उपसहरतो ग्रथनीउपावेयतादेखाडेठे हेपंक्षितजनो
तमेसमग्र जलाजे धर्मशास्त्र तेरूपीयो जेमहासमुद् तेहथीउधयुंजे एसमतारूपियुं
सुधारसके० अमृतरसतेप्रत्ये तुमे पीयतांकहेतां आदरसहितसाजलो तथाजणो जे
थी तमेआलोकेपण मुक्तिनासुखनी वर्णिकाकहेता वानगीनेपामो केमकेसमतारस
मय जीवते आलोकेपण मुक्तिसुखने अनुचवेठे ॥ ६ ॥

शातरसज्ञावनात्मा मुनिसुदरसूरिञ्चि कृतो ग्रथ ॥

ब्रह्मस्पृहया ध्येय स्वपरहितोध्यात्मकल्पतरुरेपः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेग्रथनेठेठे आचार्यपोतानुंताम अनेग्रथनुंताम जणाववाकहेठे स्व
परहितकहेतां ग्रंथकर्ताने तथापरजेश्रोताप्रमुख एवेदुनेहितकारी एवोजेआअध्या

त्मकल्पद्रुमनामेग्रंथ तेतपगङ्गाधिराज श्रीमुनिसुन्दरसूरियेकीधो ते एग्रंथ पंमिते ब्र
ह्मजेज्ञान तेहनी वांठाये नएवुं अथवा ब्रह्मजे मुक्ति तेहनीवांठाये चितववुं ॥ ७ ॥

इममिति मतिमानधीत्य चित्ते रमयति यो विरमत्ययं नवाडाक् ॥ स
च नियतमतो रमेत चास्मिन् सह नववैरिजयश्रिया शिवश्रीः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ ह्वेफलोपदर्शन द्वारे मंगलगर्जित उपसंहार वाक्यकहेठे जेमतिवंत पुरुष
अध्यात्मकल्पद्रुमनामे ग्रंथनेत्रणि पोताना चित्तनेविपेरमाडे रात्रदिवसचितवे तेपुरुष
संसारथकी थोडाकालमां विरक्तथाय अनेवलीएहनाज चित्तनथी तेपुरुषनेविपे सं
साररूपीया शत्रुनीजे जयलक्ष्मी तेपोसहित शिवश्रीजेमोक्षलक्ष्मी तेमां रमिके ७ आश्र
यीनेरहे एटलेतेसंसाररूप शत्रुनेजीतीने मोक्षरूपलक्ष्मीपामे इतिअध्यात्मकल्पद्रुमे
साम्यसर्वस्वनामा षोडशोधिकार. समाप्तः ॥ १६ ॥

ए श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमनामे ग्रंथनो बालावबोधार्थे उपाध्यायश्री रत्नचङ्गणिकृत
तथाउपाध्यायश्री विद्यासागरगणिकृत एवेटीकाजोऽने में महारीबुद्धिने अनुसारें मुज
सरखा स्वल्पबुद्धिवत प्राणिना उपकारने अर्थं लेशमात्र लख्योठे तेमां अनाजोगथी
तथाअज्ञानथी तथात्रांतिथी जेकांइसत्रना तथाटीकाना अनुसारथी ओहुंअथकुं
अयुक्त लखाणुंहोय तेहनुं मिठामीडकमं अथवाकिहांएक सुगमपणानेअर्थं किहांएक
साहचर्यथी किहांएकरूढिथी जेकांइ विनक्ति वचन लिंग कारक अन्वय प्रमुखनो
विपर्यास कीधो होय तेअपराध बहुश्रुत गीतार्थखमवो तथा उपकारबुद्धिं अष्ट-
टालिने शुद्धकरवुं.

अथ प्रशस्ति ॥ श्रीमत्तपगणगनां गणनासनतरुणतरणिनिज ॥ श्रीराजविजयसू
रिर्वचूव ज्वि नूरि वितानयशाः ॥ १ ॥ योत्याह्नीदिनव धनं सुविहितानुष्ठानत्र-
दादरो लोकं कोकमिव प्रबोधमनयज्ञोनिश्च गोस्वामिवत् ॥ त्रित्वादीकिटदर्पमुज्वलपटांश्रके वि
शेषोज्वलान् यो वाचालितमालवेश्वरसिततत्रप्रनावोज्वल ॥ ११ ॥ रत्नत्रयप्रथितसंय
मनृत्तदीय पट्टेप्वरत्नविजयाब्ध्यसुरिरासीत् ॥ येन प्रशांतरजसा प्रशमार्णवेन रत्ना
करायितमनल्पगुणौघरैः ॥ ३ ॥ तस्यान्वये निखिलनूतलगीतकीर्तिः श्रीहीररत्न
इतिस्वरिवरो विरेजे ॥ स्वर्गं गतोप्यखिलनक्तसमीहितानि योद्यापि पूरयति नव्य इवाम
रदु ॥ ४ ॥ तत्पट्टनूषणमणिर्यज्यरत्नसूरिः सर्वाग्रणीर्गुणिषु नूरियुणाश्रयोऽनूत् ॥ श्री
नावरत्न इति नावविदा वरेण्य सत्पट्टनूक्तयति संप्रति सूरिराज ॥ ५ ॥ श्रीहीररत्नसूरे

सुखा गिष्या मुनिर्मलानिखा ॥ श्रीलब्धिरत्नविबुधा शस्त्रार्णवपारदृश्वान ॥६॥
 श्रीसिद्धिरत्ननाम्ना पाठकवर्यास्तदन्वये तदनु ॥ श्रीहर्षरत्नवाचक, वरा वरीयोगुणैर्व
 या. ॥ ७ ॥ लक्ष्मीरत्नगणीशा आसन् इवादिदनुजलक्ष्मीगा ॥ श्रीज्ञानरत्नगणयस्त
 दाश्रवा साप्रतं जयंतु चिर ॥७॥ तच्चरणकमलसेवा नृगस्तत्संगसमयतरंग ॥ सुविहि
 तकल्याणविमल गणिवरविहितार्थिनीनुन्न ॥ ९ ॥ बालावबोधवार्त्ता मध्यात्मसुरदु
 माख्यशास्त्रस्य ॥ मुनिहसरत्न एता मतनोचनुबुद्धिसत्वहिता ॥१०॥ शोध्यं सुतत्ववि
 द्विर्मथो ऽप धीयनै. प्रवाच्यमानश्च ॥ सद्भावसपदाढ्यै राचङ्कै चिरं जयतात् ॥११॥

इति श्रीमुनिसुंदरसूरिकृतअध्यात्म
 कल्पद्रुमो बालावबोधसहितं नृपूर्य

॥ अथ श्री सीतलनाथष्टक ॥

वृषजनुव्यगति वृषदं सदा व्यजितदर्पकदर्पकचेदक ॥ अमितज्ञानवर्त्तीतिविवर्जित
 जिनमह प्रणमामि सुशीतलं ॥ १ ॥ दृढरथारख्यकुजागनिनदन सुमतिधाम विचह
 एपुगवं ॥ षड्विनिर्जितपद्मप्रच वर जिनमह ॥ २ ॥ यमसुपाश्वेविनूषितविग्रहं
 विशदचडप्रज्ञाननवंधुर ॥ सुविधिरजितनव्यजनव्रज जिन ॥ ३ ॥ विबुधमोदकशि
 तलवाग्जर सकलश्रेयसिकामकुटोपम ॥ सुवसुपूज्यपद शिवदायक जिन ॥ ४ ॥ वि
 मलनीरजपत्रविलोचनं गृहमनतगुणस्य रुपापर ॥ सदयधर्मप्रवृत्ति प्ररूपक ॥
 जिन ॥ ५ ॥ जगति शांतिविताननिपादक धृतशम किल कुस्थमनिंदितं ॥ विगतदो
 पमर जविनौनिज ॥ जिन ॥ ६ ॥ पुगकपायजयप्रतिमह्वचं कनकवर्णधर मुनिसुव्रतं ॥
 नमत दानवमानवराजितं ॥ जिन ॥ ७ ॥ विततधर्मैरथांगकनेमिकं निखिलविष्टप
 पार्श्वमदृपण ॥ सबलमोहविनाशनवीरक ॥ जिन ॥ ८ ॥ इति स्तुत श्रीजिनशीत
 लारख्य स्थित पुरे रायधनानिधाने ॥ श्रीवीरचडस्य मलुकचड नाम्ना विनेयेन वशां
 श्रिये स्तात् ॥ ९ ॥ इति श्रीमह्नीतलनाथारख्यदशमतीर्थाधिपतेरष्टकं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्री कल्याणसागरसूरिकृत माणिक्यस्वामिस्तवनप्रारंभः ॥

नम सिद्धेभ्यः॥स्वधराठंद ॥स्वामी माणिक्यपूर्वस्त्रिचुवनतिलकश्चित्तश्रीसुरादि स्व
लोकोद्योतकर्ता प्रथिततरयशा श्वित्ररुन्नाममत्रः ॥ श्रीमन्नानाचिन्पान्वयगगनरवि
र्मञ्जुकव्याणकांती राप्ते सद्दृष्टिणारव्ये निरुपममहिमा ख्यातिकारिप्रतापः ॥ १ ॥ दुत
विजंजितहंद॥ प्रवरवर्मधनार्पणकामगौ रमृतवाग्गुणरंजितनागर॥रिपुसमूहनिवार
णसद्गतो वृषभचिन्हितपादकुशेशयः॥१॥ हरिणीठंदः॥ द्युजमतिकरश्रंष्टादित्याधिको
त्तरनास्वरं स्त्रिचुवनमणि विश्वाधारो धरेश्वरकीर्तितः ॥ उपशमरसासक्तस्वांतोप्यनंत
चतुष्टयी गुणमणिरखनिर्णटारिष्टामयाधिजराव्यथः ॥ ३ ॥ पंचचामरहंदः ॥ अखर्व
देहराजितो यतीश्वरो घृणाप्रशीतमानसः कलाधरः ॥ अनेकलब्धिमंडितो वृषाकगः
शिवाधिघृष्टिचंद्रमा नतासुरः ॥ ४ ॥ ज्जुगप्रयातहंदः ॥ प्रभुमरुदेवश्रिदाह्लादली
नः सदाचारलीलाविलासांतिशाली ॥ महामोहमातंगपंचास्यकहो हितार्थी कलाशि
व्यविज्ञानजापी ॥ ५ ॥ मालिनीठंदः॥ जलधिनिजगनीर. सारसारंगघोषो जितविष
यविकारो ज्ञानबुद्धिप्रदाता॥ खलसमिरष्टदाकुर्वदेवाधिराज. समवसरणशोनासिंधु
पूरौघमेघः ॥६॥ नाराचहंदः ॥ श्वेतातपत्रचामरैर्युक्तो मनोज्ञपुज्जै ॥ नव्यांगिराशि
वदितो धर्मार्थमोक्षसाधक ॥ ७ ॥ आर्याठंद॥ देवैर्भ्यो विमल. सुंदरवशो नृपूचरा
त्मापि ॥ मान्य सतामजलं सवोदयो वरातिशयधर ॥८॥ गीतिठंदः ॥ त्रैलोक्या
वाप्तविभु. समस्तगुणरत्नकजितसाधुमनाः ॥ एनस्तमोनिशेशः सुश्लोकैर्धवलिता
श आशाद. ॥ ९ ॥ नगस्वरुपिणीठंदः ॥ सदाधर्ममार्गदेशको प्यमेयजाग्यधारक ॥
प्रनूतसत्वपालको विवेकनीतिकारक ॥ १० ॥ माणवकहंदः॥ इ खहरो नाकिनुत स्व्य
क्तमहादोषनरः ॥ पारगतस्तीर्थकर. शीलशाली ज्ञानधन. ॥ ११ ॥ तोटकहंदः॥ कम
लाननमोहितसन्धजन. समयार्थनिरूपणरम्यसुधी. ॥ नृशिलीमुखखेलनतामरसः पु
रुपोत्तमपुण्यनिधिर्वरद ॥ १२ ॥ मणिमध्यहंदः॥ लक्षणपंतया सारतनु निजितमा
यालोनकलि ॥ आदृतसाध्वाचाररति. सादरदेवाधीशपति. ॥ १३ ॥ चपकमालाठं
द॥ केवजयुग्मालोकितलोका लोकविनागः संयमितेव्य. ॥ इन्द्रियबाणानेदितचेता
श्रंपकमालामंडितगात्र. ॥ १४ ॥ हंसीठंदः॥ प्राप्तानंदो चुवनमुकुट स्तीर्थस्वामी विस्तृत
नयन. ॥ सश्रीकात्मा सुरुतनिलयो योगीशो वै विजितकपट. ॥ १५ ॥ शालिनीठं
द ॥ आदेयारव्यो मुक्तिजस्फारसौरव्यो विश्वोत्तंसो इष्टकर्मारिहंता ॥ चक्रेश्वर्याराधितो
गोमुखेशः कांताकारश्रीसधर्माधिकारः ॥ १६ ॥ केकीरवहंदः॥ जगतीशपूज्यो जयताडि

नेश कुशलार्थवद्भोततिवारिधारः ॥ विशदावदातावलिचिन्नामा नववार्द्धिपोत कु
लपाकनाथ ॥ १ ॥ कुलका॥इवज्जाठंद ॥एव मया संस्तुत आदिदेवो नूयात् सदा
संघगणस्य नूत्ये ॥ हेमकरो विश्वजगत्सुदीप कयाणमंगत्यकलापकोश ॥ १८ ॥

॥ अथ सूर्यपुरीयश्रीसंनवजिनस्तवनप्रारंभः ॥

वसततिलकाठद ॥ काम नमोऽस्तु सततं जिनसंनवाय चज्ञाननाय कमलामल
लोचनाय ॥ देहप्रनास्थगितलोकचमत्कराय दुर्ध्यानपाठपविचेदनासिधुराय ॥ १-॥
देवै स्तुताय नवमागरपारगाय कीर्तिप्रसूनसुरनीरुतविष्टपाय ॥ सन्मूर्तिकातिततिर
जितमानवाय सेनागकुहिवरशुक्तिकर्माक्तिकाय ॥ २ ॥ अब्जोपमाय जिनशासनदीप
काय सूर्यारख्यवंदरमनोरममडनाय ॥ नव्याब्जकाननविजासनजास्कराय नानार्थ
दानहरिचदनसन्निजाय ॥ ३ ॥ अर्धेयनामकलिताय शुभाशयाय सिध्यगनामिजनसादर
लोलुपाय ॥ राधातर्हार्दकथनोत्तरकोविदाय, तेज प्रनाचयशसामवनीश्वराय ॥ ४ ॥
अज्ञानमोहनयसंज्वरनेपजाय सौजाग्यजाग्यगुणरत्नकरडकाय ॥ अष्टापदानतनुव
र्णविराजिताय निर्लोकहसरतिखेलनमानसाय ॥ ५ ॥ आब्हानमंत्रविनिवारितपातका
य कयाणसागरतरगकजाधराय ॥ दुष्टारिचक्रजवणाबुधरोपमाय वाचासुधाश्रवणह
र्षितनागगाय ॥ ६ ॥ सद्गर्भमार्गविधिदेशनदेजिकाय दु खौषवारणमुगेऽपराक्रमाय ॥
लोकातिशायिमहिमाचलनूपणाय गधर्वलंठनसुशोभितपत्कजाय ॥ ७ ॥ सस्यौघवृद्धिक
रणाय जितेडियाय शुब्दान्वयोनतिकराय रूपालयाय ॥ मिथ्यात्वतापशशिचदनपादपा
य दुष्कर्मवायुसुजगाय नराचिताय ॥ ८ ॥ संकटपकल्पनविवर्जितमानसाय गांजीर्घ्यधै
र्यमणिसंनवरोहणाय ॥ सज्ञानबुद्धिवरदाय गुणाकराय कौशव्यवह्विपरिवर्द्धनमडपा
य ॥ ९ ॥ इवज्जाठंद ॥ स्तोत्रं चतुर्थ्यैतविनक्तिसयुत ध्यायंति ये संनवदेवरागि
ण ॥ तिष्ठति तद्दाम्नि शुभा समृद्धय कद्याणसंपादनकामधेनव ॥ १० ॥ शा
ईलविक्रीडितबंध ॥ लक्ष्मीकेजिगृह सदावलिनतं, श्रीसंनवारव्यं जिन सन्मार्तंडपुरा
मजाचलवरोहोपे नवावधौ तटा ॥ देवाधीशनरेशशेषपटले संसेवित कामह मुक्तिस्त्री
सुखरंगजोनमनिशं सेवे मुदा सिद्धये ॥ १,१,॥

॥ अथ श्रीसुविधिजिनस्तवनप्रारंभः ॥

दुतवित्रं वितबंध ॥ सुविधिनाथजिनं नयनामृतं सुविधिनाथजिनं महिमालयं ॥
सुविधिनाथजिनं नररंजनं सुविधिनाथजिनं वरकेवलं ॥ १ ॥ सुविधिनाथजिनं कम
लाकरं सुविधिनाथजिनं नवदं पर ॥ सुविधिनाथजिनं ह्यतिकीर्तितं सुविधिनाथजिनं

सुविधिप्रदं ॥ ३ ॥ सुविधिनाथजिनं रजतञ्जलिं सुविधिनाथजिनं जडतापहं ॥ सुविधिनाथजिनं मकरांकितसुविधिनाथजिनं जगदंचितं ॥ ३ ॥ सुविधिनाथजिनं रजतांहित सुविधिनाथजिनं परमेश्वर ॥ सुविधिनाथजिनं श्रुतसूरिणं सुविधिनाथजिनं शिवपारंगं ॥ ४ ॥ सुविधिनाथजिनं गुणदर्शनं सुविधिनाथजिनं जनतानत ॥ सुविधिनाथजिन वरद विभुं सुविधिनाथजिनं नमितासुर ॥ ५ ॥ अत्रुष्टुवंदं ॥ सितेतरपुराधीशः सुविधिर्नवमो जिनः ॥ संघम्य सुखदो चूयात् कव्याणसूरिणा स्तुतः ॥ ६ ॥

॥ अथ श्रीशांतिनाथजिनस्तवनप्रारंभः ॥

धुतविलंबितहृदं ॥ सकलदेवनरेश्वरवदितं विबुधमानवसंस्तुतपूजितं ॥ कमललोचनरंजितनागरचविकपातकतामसजास्कर ॥ १ ॥ निखिलवांछितदानसुरागमं विदितशास्त्रविचारनयागमं ॥ कठिनकर्मदवानलनीरदं परमशातिरदामृतशांतिदं ॥ २ ॥ विविधजह्णरंजितसंचर सुविधिमार्गप्रकाशनतत्परं ॥ चपलमत्तमतंगजगामिनं कमलकोमलमांसलपाणिनं ॥ ३ ॥ दलितदंजमहाधृतिवियहं विदितमोहमहाबलिनिग्रहं ॥ हृदपरीपह्वायुञ्जगमं किञ्च गुञ्चयुमजीप्तसमागमं ॥ ४ ॥ नविचकोरसुखाय कलानिधिं विनयधैर्यगुणोत्करोवधिं ॥ मुनिपडंन्दिनिवासकुशेशयं विबुधसुधामधुसारतराशयं ॥ ५ ॥ कुसुमसन्निनदंतविराजित सुजगजाग्यसुखाकरशोजित ॥ निजसृजावलसायितराष्ट्रकं जितविपद्गुण नतराजकं ॥ ६ ॥ कुगलकेलिविलाससुवं परं विगढकीर्त्तिकाशिदिगंत ॥ कुमतसिंधुरसिंधुरवैरिणं सुमतिकामितसन्नतिकारणं ॥ ७ ॥ वरसुवर्णसवर्णसुवर्णकं जितहृषीकमधर्मनिवारक ॥ हरिणसेवितपादकजं जिनं हितकर स्तुतनिर्झरसङ्गनं ॥ ८ ॥ प्रवरवापिकठानगुणैर्वर हतदरिद्रपर परमेश्वर ॥ समयरीरुतमेरुसुरधुमैप्रचुरसवर्णगुणादधिकोत्तमं ॥ ९ ॥ विकटज्जयमन्मथगंकर जनकलापिघनं विगतांतरं ॥ लपननिर्जितचक्षुसं नृशं विगतदोषकलिं च महौजसं ॥ १० ॥ अशिवविघ्नघनाघनमारुतं विषयतापवश जनतामत ॥ शिववधूपरिजणलोलुपं विमलकेवलि साधुकुलाधिप ॥ ११ ॥ नजत शांतिजिनं तु शिवकरं कुशलसागरवृद्धिकलाधर ॥ अतुलरूपवशीरुतमानव प्रणतसादरकिन्नरदानवं ॥ १२ ॥ षाडशजिः कुलकम् ॥ माजिनोवंदं ॥ सुवननजिनानो शांतिदेवस्य नर्त्तनैवजलनिधिसेतो ई. खदारिद्र्यहर्तुं ॥ निजहृदयविद्युद्द्या स्तोत्रमेतत्पठति प्रतिदिनमपि ये ते संपद प्राप्नुवति ॥ १३ ॥

॥ अथ श्रीशांतिजिनस्तवनप्रारंभः ॥

स्वधरावंदः ॥ इयाङ्गीशांतिदेवो वरकनकतनुः सारसौख्यानि शश्वन्नक्तानां नक्ति

राचुहंदः ॥ कारुण्यरंगरंजिते कार्पण्यदोषवर्जिते ॥ देवाधिपेऽचिरासुते लोकोपकारक
 मते ॥ १६ ॥ इति सप्तमीविजक्तिकाव्यत्रिकं ॥ वशस्थुहंद ॥ स्वकीयवंशावरजास्कर
 प्रजो विशालगंगाजलशुचकीर्ति ॥ अपारसंसारनयाञ्च सत्वरं कृपापरस्त्वं परिरह
 सेवकान् ॥ १७ ॥ इति संबोधनविजक्तिकाव्यमेकं ॥ मंदाक्रांतातंदः ॥ कल्याणोक्तं
 कुशलजननं सर्वसंधस्य नित्यं नानावृत्ते. प्रकलितमिदं स्तोत्रमेतत्रिकालं ॥ मुक्त्वाऽऽज
 स्यं नपति मनुजो जाविनाजावितात्मा गेहे लक्ष्मीर्जवति दृढता तस्य दीर्घायुप
 श्व ॥ १८ ॥ शार्दूलविक्रीडितहंद ॥ कल्याणोदधिवर्द्धनं कलिहूर कौशल्यामालास्पदं
 सौभाग्यौघकर विजक्तिकलितं कार्यैर्विजिन्नैः पर ॥ श्रीशांतेः स्तवनं पठंति नविनः
 सत्पुण्यपण्याजयस्तेषां धाम्नि शुभे निवासमतुला कुर्वति संपत्तयः ॥ १९ ॥

॥ अथ श्रीअंतरिक्षपार्श्वस्तवनप्रारंभः ॥

इवजाहंद ॥ विश्वेश्वरं विश्वजनेशपूज्यं सर्वार्थनिष्पादनकामकुंजं ॥ प्रख्यातिमंतं
 महिमौघलक्ष्म्या पार्श्वे नजे संस्थितमंतरिक्षे ॥ १ ॥ कल्याणमालागुहमंगिदेव विद्या
 धराधीशनुतान्द्रिपन्न ॥ सर्वत्र राष्ट्रेषु विशालकीर्ति पार्श्वे ॥ २ ॥ रोगाधिचितात्तिसमू
 हतापनेपण्यमाचारविचारसूरि ॥ सन्नानरत्नहृदयचूपातांगं पार्श्वे ॥ ३ ॥ संसारसिंधौ
 वरयानपात्रं मुक्त्यंगनासक्तहृद शरण्यं ॥ वामांगजातं जगतीप्रदीपं पार्श्वे ॥ ४ ॥ श्री
 पार्श्वयक्षाधिपमदितोयं श्रीशालिनं सेरपुरावतसं ॥ वाचासुधाकार्पितसन्त्यलोकं पा
 र्श्वे ॥ ५ ॥ त्रिलोक्यकोटोरमनाथनाथं दारिद्र्यवाताहिमनंतशक्ति ॥ शास्त्रार्थनेपु
 ष्यनिधिं द्यालुं पार्श्वे ॥ ६ ॥ पद्मावतीसेवितपादयुग्मं महोन्नरध्वांतदिनेशमाशु ॥
 लावण्यसौभाग्यशोचिराढ्यं पार्श्वे ॥ ७ ॥ ज्ञानादिधर्मानरणं वरेण्यं सद्बोधदाना
 दिकमार्गपाथं आनंदचह्वीततिवारिधार पार्श्वे ॥ ८ ॥ कलश ॥ स्वधरातंदः
 इत्थं ये देववंदं विविधसुखकर चांतरिक्षाख्यपार्श्वं नित्यं व्यायंति नक्तया हृदयरति
 युजो नाग्यवतो नरोपि ॥ लक्ष्मीस्तेषां निकाश्ये वसति दृढतया सर्वदा कामकर्त्री क
 ल्याणश्रेणिकर्तुंनुवि विदिततरा सर्वसंपत्तिकांता ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीगौणिकपार्श्वपठकप्रारंभः ॥

शार्दूलविक्रीडितहंद ॥ वामेयं मरुदेशचूपणतरं श्रीपार्श्वयक्षाचितं कल्याणावलिबद्धि
 सिंचनपनं श्रीह्वाकुवंशोज्ज्वल ॥ आराडाप्रसमागतनरवरं. संसेवित नित्यश. श्रीमञ्जीकर
 गौडिकानियधर. पार्श्वे सुपार्श्वे नजे ॥ १ ॥ नानासाधुजनौघपंकजयने मार्तंडबिवायितं वि
 भ्रबूहनिवारकं कलिपुगे प्राप्तप्रतापाजयं ॥ विश्वस्यां प्रथितावदाननिकर निर्दोषपुण्यो

ज्वलं श्रीमह्वी० ॥ १ ॥ संपन्नैषि सुदानकामकलशं त्रैलोक्यचितामणिं सदाचामृतरजि
तामरनर सद्दर्शमबोधप्रदं ॥ सांजाग्यानुत्कृतातकीर्त्तियशसा संपूरिताशांतर श्रीम
ह्वी० ॥ ३ ॥ मार्गं चांतरजीतिवारिनिचिते क्लेमंकर सर्वदा दारिद्र्याद्दिनिपातनांतकुलि
शं चितार्त्तिरोगापहं ॥ ५ ॥ खत्राससमीरणौघञ्जग नागाकमहोमथं श्रीमह्वी० ॥ ४ ॥
कारुण्यचितचारुचित्तकमलं सत्त्वेषु ससारिषु सद्दयादिगुणैरलंठततनु जावण्यलोला
स्पदं ॥ ससाराणवपीतवारिधिसम मुक्त्यंगनावह्वजं श्रीमह्वी० ॥ ५ ॥ त्रैलोक्ये ति
जकाधित निरुपम ज्यैर्ननि पूजित इष्टाना निजसत्त्वदर्शनपर ह्यिंद्रं सता कामद ॥
नाम्ना ध्वस्तसमस्तवैरिनिचयं राक्षातिनिर्देशकं श्रीमह्वी० ॥ ६ ॥ नृपिष्टामलजक्ति
शक्तिकलितैर्देवैश्चतुर्धा नत सर्वाशाकरैककल्पफलदं सर्वांगिचूडामणि ॥ शिष्टानं
तचतुष्टयीवरतर श्रीमेरुतुगं जिन श्रीमह्वी० ॥ ७ ॥ स्फाराकारनिराजितांगमनुज स
दृष्यहेमाकर विश्वव्याप्ततर प्रवाससदनं गंजीरतासागर ॥ नासोद्योतितविश्वविश्वम
वनौ कल्याणसिंधौ - विधुं श्रीमह्वी० ॥ ८ ॥ अष्टनि कुलक ॥ अनुष्टुप्बंदं ॥ निन्न
माले सदाश्रेष्ठे गुणवद्बद्धनूपिते ॥ पुष्पमालेंऽतरानिख्ये नेकवीहारसयुते ॥ ९ ॥ श्री
मत पार्श्वनाथस्य स्तवन जगतोऽवनं ॥ कल्याणसागरार्थिषु स्मरिनीरचित सुदा ॥ १० ॥
॥ स्वग्धराठंद ॥ ध्येयं श्रीपार्श्वदेव नजत किल जना गोमिकग्रामराज शश्वत्सर्वार्थ
सिद्धयै विहितश्चनहितं विष्टपे चैत्रपूर्वें ॥ सातनदोह्नासलष्टा कुशलगविबुधाः सर्वलोके
विशिष्टानिर्दोषाचारपुष्टा जिनपपतिषु रता अक्षकल्याणतुष्टा ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीगोनीपार्श्वनाथस्तवनप्रारंभः ॥

मालिनीठद ॥ जयति जगति चंद्र पार्श्वनामा जिनेंद्रो विकचकमलदृष्ट्या नंदिताम
र्त्यमर्त्य ॥ अकलितमहिर्माघस्तोर्णसंसारसिंधुर्जुजगकलितपादः पुष्पपीयूषपुष्ट ॥ १ ॥
स्वग्धराठद ॥ श्रीपार्श्व गोडिकारुखं नजत नविगणो कल्पवृक्षं सुगोत्रं नानादेशेषु ल
ब्धातिशयमहितताव्यूहवार सुसूक्तिं ॥ श्रीमतं नीलरत्नाधिकतरवपुयं स्फारलावण्यशा
ल मोहाचोराशिकुनांभवममरनुत पार्श्वयद्धार्यचिंताह्निं ॥ २ ॥ पचचामरवृद्ध ॥ नम
ति पार्श्वमगिनो नरालसा धृतातपत्रचामरै सुरैः स्तुत ॥ अनतशक्तिमालिनं गतामयं
विवेकरत्नरोहणं दयाकर ॥ ३ ॥ वसंततिलकाठंद ॥ करीरुत व्रतमनुत्तरमगिनेत्रा द
त्वाऽद्यु येन वरवार्पिकदानैराशिं ॥ वामो दहेन मुनिनायकनायकेन कल्याणकेलिनि
लयेन गुणागयेन ॥ ४ ॥ डुतविलंबितवृद्धं ॥ मम नमोस्त्ववते परमात्मने नगवते
शिवशर्मविधायिने ॥ अमितशौर्यतिरस्कृतमेरवे शुनदंशोरकमंडलमौलयै ॥ ५ ॥ हरि

लीढं॥ अमृतरसताधिक्याजीष्टान्नरोचमसंगताद्भुवनसुजगात्पार्श्वानिख्यादिनश्यति
 पातक ॥ प्रसरति च वै कीर्तिर्दिकु प्रसूनवडुज्वला प्रजवति पुनः शीघ्रं लीलाजयो
 न्नतिवर्द्धनं ॥६॥ शार्दूलविक्रीडितहृदं ॥ आकृत्या नरदेवदेवमनुषां संतुष्टिकर्तुस्तदा
 चेतोवल्लभकामसार्धददतः कर्मारिहर्तुर्नेशं ॥ आनंदौघसर प्रवृद्धिकरणे पानीयदा
 तुर्मुदा पार्श्वस्यास्ति नतिः समृद्धिजननी कल्याणविस्तारिणी ॥७॥ तोटकहृदं ॥ नरल
 द्दणनूपितवह्यपुरे सुखनीरजरंजितविश्वजने ॥ श्रुतदेशनदर्शितधर्मपथे जिननेतरि ति
 ष्ठति जाग्यरमा ॥८॥ सुजगप्रयातहृदं ॥ सुराधीशचक्रैः स्तुत ज्ञानसिधो जगन्नाथ नेतः
 कृपालोकबंधो ॥ विज्ञो पाहि मां सर्वदा चक्रिजाजं स्मरं त चिर त्वत्पदांजोजजृंगं
 ॥ ९ ॥ शार्दूलविक्रीडितहृदं ॥ स्तोत्रं पार्श्वजिनेश्वरस्य सतत ये प्राणिनो जा
 वतः सहस्रश्यापि पवंति ह्यमनसस्तेषां गृहे संपदः ॥ स्थुर्नित्यं स्थिरजावशो ज
 नतरा धम्मार्थनिष्पादिकाः कल्याणार्णवसूरिनिर्विरचितं मांगल्यमालाकरं ॥१०॥
 शिखरिणीढं ॥ सदा धार्यं चित्ते स्तवनमनवद्यं जयहरं नरैर्नूनं सिद्धयै कुशलवन
 राज्ञो घननिजं ॥ अवंथं चक्रानां जिनगुणरतानां स्मृतिमतां समेषां ज्ञानानां प्रमु
 दकरणं कामितकरं ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीदादापार्श्वनाथस्तवनप्रारंभः ॥

॥ इक्ष्वाकुढं ॥ कल्याणगेहं गुणरत्नराज सद्देहकांल्याजितनीलरत्नं ॥ स्तोत्रे
 मुदाशकरमगिवद्यं दादाजिधं श्रीवरपार्श्वनाथं ॥ १ ॥ सद्धर्मलीनाशयमाद्यु विज्ञं
 कर्माष्टदावानलवारिधारं ॥ संसारपाथोनिधिकर्षधार दादा ॥ २ ॥ आचारव
 द्धीततिवृद्धिनोरं सत्कीर्तिपुष्पदुतवासितादां ॥ नानार्थराक्षांतविचारदहं दादा ॥
 ॥ ३ ॥ वैराग्यरगापितचारुचिंतं सद्बोधिदातारमनीहसेयं ॥ नागेंद्रसंसेवि
 त्तपादपत्रं दादा ॥ ४ ॥ त्रिलोक्यचूडामणिमृद्धिशोच सौभाग्यजाग्यावल्लिपुर्ण
 वेहं ॥ ज्ञानघराजीवदिनेशमेक ॥ दादा ॥ ५ ॥ सर्वाग्नेतारमनीष्टवाच विश्वे
 श्वर रजितसन्धिलोकं ॥ लोकार्त्तिचिताजयडु खवार दादा ॥ ६ ॥ ह्यदाहति रुचजरा
 धिदोष नरामरेडं स्तुतमर्त्यसयं ॥ सन्नागचिन्हं कुशलायकार दादा ॥ ७ ॥ सर्वत्र वि
 ख्याततरप्रतापं कारुण्यसत्रं सुविशिष्टगोत्रं ॥ अज्ञानमिथ्यात्वतमिस्रदीपं दादा ॥
 ॥ ८ ॥ अष्टनि कुजकं ॥ शार्दूलविक्रीडितहृदं ॥ श्रीमद्वीरवटपञ्चनगरं शृंगार
 हारोपमं कल्याणंभुजजानुचडमसमं वामांगजातं परं ॥ दादार्यं जिनपार्श्वदेवमन
 धं ध्यायति ये नित्यशस्तेषां धाम्नि रमा निवासमनिशं कुर्वति कल्याणतः ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीकलिकुंडपार्श्वष्टकप्रारंभः ॥

॥ विबुधादिरार्जुनतपादपद्मं बहुजाग्यसौजाग्यलतौघमेघं ॥ कमठोपसर्गाच्चल
 धैर्येजित्ति कलिकुंडपार्श्वं सुचिर नजेऽहं ॥ १ ॥ कमलाप्रदाने हरिचंद्रनांगं
 सपयोधिवेशानुतलब्धकीर्त्ति ॥ रुचिराकृतौ रंजितविश्वविश्व कलिकुंड ॥ २ ॥
 महिमावदातोत्तमनाममंत्रं समतानिराम कमलानिनेत्रं ॥ अजिजापदं सिद्धि
 विजासयंत्रं कलि ॥ ३ ॥ दुरिताधकारारुणसन्निकाशं करुणाशयं दुःखवने
 पु दाव ॥ नरदेवपूज्यं सुखदं सुमूर्ति कलि ॥ ४ ॥ कनकादिदातारमनंतशक्ति
 वरनीजरत्नाधिकदेहवर्ण ॥ शिवशर्मराजं जनतानिवद्यं कलि ॥ ५ ॥ अनयं सदा
 सज्जणकेलिप्राज्ञं गुनलक्षणांलंकृतवर्यगात्रं ॥ कुलनूपणं शत्रुतृणौघदात्रं कलि ॥
 ॥ ६ ॥ जगतीश्वर कर्मविमुक्तसंग विपमायुधालयमनःस्वरूपं ॥ धरणेऽपार्श्वार्चित
 पादयुग्मं कलि ॥ ७ ॥ गुनसिंधुवृक्षौ शशिन वरेण्यं वचसा सुधाजेन सहर्षस
 न्यं ॥ श्रुतसूरिणं पुण्यविराजमानं कलि ॥ ८ ॥ अष्टनि कुलकं ॥ इडवज्राढं ॥
 एव स्तुत श्रीकलिकुंडपार्श्वं कल्याणनाम्ना मयका नितान्तं ॥ ये प्राणिनः स्तोत्रमिदं
 पवंति तद्दाम्नि लक्ष्मीविलसत्यवश्य ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीरावणपार्श्वष्टकप्रारंभः ॥

॥ इडवज्राढं ॥ देवाधिदेव कृतपार्श्वसेव नागाविराजेन नतान्द्रिपद्मं ॥
 पद्मावतीसंस्तुतनामधेय सेवे सदा रावणपार्श्वनाथं ॥ १ ॥ आनदकंदोदय
 वृद्धिमेघं मेघध्वनिध्वानविशेषराज ॥ जितारिवृंद विगताधिमोहं सेवे ॥ २ ॥
 वामागजात कुलनदिकार ध्वस्तोपसर्गोत्कटदुष्टराग ॥ प्रख्यातिमत च्चवने प्रजा
 वै सेवे ॥ ३ ॥ सन्नीलजासा हसितेऽनीजं सत्कांतकांठ्या रमणीयरूप ॥ प्रावीण्यना
 नातिशयै प्रधानं सेवे ॥ ४ ॥ संनीतिहर्त्तारमनंतसौख्यं विश्वेश्वर द्योतितविश्व
 लोक ॥ पद्मार्थदाने सुररत्नवृद्धं सेवे ॥ ५ ॥ अज्ञानमिष्यात्वतमिस्रजानुं नामं
 मलालंरुतमौजिष्ट ॥ वाणीसुधामोदितसन्त्यसंघं सेवे ॥ ६ ॥ कौशल्यमांगल्यनिवा
 सगेहं पूर्णकृतानीष्टपदार्थराशि त्रैलोक्यदीपं वरसिद्धिजाज सेवे ॥ ७ ॥ संसार
 रत्नाकरयानपात्रं नि शेषदोषोत्तितधर्ममार्गं ॥ आदेयसौजाग्ययश सुपात्रं सेवे ॥ ८ ॥
 अष्टनि कुलकं ॥ मालिनीढं ॥ अलवरपुररत्न रावणं पार्श्वदेव प्रणतगुणसमुद्
 कामद देवदेव ॥ अमितगुणनिधाना ये नर संस्तुवति जगति विदितसारा ना
 ग्यवतो नवति ॥ ९ ॥

॥ अथ श्री गोडीपुरपार्श्वजिनस्तवनप्रारंभः ॥

रागेणगीयते॥गौडिपुरप्रभुपार्श्वममंदं दर्शनदर्शनपरमानंदं नमितसुरासुरवृंदं॥१॥
 श्रीजिनशासनचारुशृंगार अंतरंगरिपुवृद्धकुमार सकलजगदाधार॥२॥निरुपमरूपविरा
 जितदेह विदलितनानाजनसंदेहं अमितगुणधनगेहं॥३॥इरितकाननजेदनदात्रं रुचि
 रलक्षणविभूषितगात्रं वारितकुमतकुपात्रं ॥४॥ अनघजिनवरगोत्रसुगोत्रं कामकुंजम
 णिनिर्जरगोत्रं सयमदृढतागोत्रं ॥५॥वेदितजवनयमरणारिष्टं प्रकटितमहिमातिशयव
 रिष्टं जगदैश्वर्यगरिष्टं ॥६॥ विहिताखिलजविजनकल्याणं पाजितयथारख्यातकल्याण
 दत्तमार्गणकल्याण ॥ ७ ॥ आधिबंधवधगदहर्तारं वाञ्छितकुशलसौख्यकर्तारं श्रुव
 नत्रयजर्तारं ॥ ८ ॥ विकटकष्टनिवारणशूरं आगमनयप्रकाशनसूरं चारतीगंगापू
 रं ॥ ९ ॥ धृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मीगणविश्व केवलयुगलालोकितविश्व प्राप्तजनेप्सित
 विश्व ॥ १० ॥ सेवकमनोजीष्टवातार रजितदेवनरनेतारं अनुजुतकुलत्रातारं ॥ ११ ॥
 इंडनीलमणिवर्णसुवर्णं निखिलदेशविरव्यातसुवर्णं वाक्सुधासारसुवर्णं ॥ १२ ॥ सु
 क्तिसीमतिनीसंगमलुब्ध चचलविषयसुखसंगालुब्ध कर्मपराविप्रलुब्धं ॥१३॥ वदि
 तामरमौलिकुटीर विषमकपायदवानलनीर उत्कटपरीषदधीर ॥१४॥ अंचलगणनी
 रधिसारंगं कीर्तिलतावर्द्धनसारगं दुर्जनशजससारगं ॥ १५ ॥ वदेऽनंतचतुष्टयिराजं
 पूजितसुरपतिमानवगज प्रवरतीर्थीधिराज ॥१६॥ पौडशजिः कुलकं॥ शिवतातिपार्श्व
 वरदवरपार्श्व मोहतमिस्त्रसवितार नागराजराजं त्रिभुवनपूज्य लब्धजवोदधिपार ॥
 शुजसागरनित्यप्रथितगरिमाण ये ध्यायंति विभुं मुदा लक्ष्मीस्तान् ससुपैति सस्वर
 मतुला सर्वार्थसिद्धिप्रदा ॥ १७ ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वजिनस्तवनप्रारंभः ॥

तोटकष्टदः ॥ नविकाबुजनासनजानुनिजं जवतापसमावनवारिधरं ॥रचितागम
 शास्त्रविचारनयं जय मंगलकीर्तियशोनिचयं ॥ १ ॥ कमलामलकेलिंगहं विमलं
 लसदाशयमुल्लितसतमसं ॥ शुजसागरवर्द्धनचक्षुसं सकलामरपूजितपादकजं ॥२॥
 विकटोत्कटकर्म्ममृगेजरिपु खगनागनरेश्वरदेवनतं ॥ तरसा जितमोहरिपुं विचर्य
 यमसंवरसंहितसाधुहितं ॥ ३ ॥ शुजलक्षणलक्षितहस्तयुगं गजराजगतिं गतविभ्र
 रुजं ॥ जडतामयनेपजमीश्वरं दशनद्युतियोतितचारुमुखं ॥४॥ कनकाक्षलधीरम
 न्जीष्टतरं रसनारसरंजितसर्वसजं ॥श्रुवनत्रयमंडलमोघतरं रुचिराकृतिमोहितदेवजनं
 ॥५॥अरिहंतमनुत्तरतीर्थकरं रचितं वरबुद्धिधनं जिनपं ॥पुरुषोत्तममस्मरमर्थनिधि धृ

तिकातिनिकेतनमगिनुत ॥६॥ निजवशवत्तसकमार्तिहर रवनिर्जितमेधनद शिवद ॥
 वधितं च्रुवि विश्वजनीनतम नतनूतगण जितलोनजट ॥ ७ ॥ शरणाश्रितपालकमु
 क्तिपदं वधत वरशांतरस नवम ॥ महसेड्मणिप्रजदेहधर धरणेड्निपेवितपार्श्वयुगं
 ॥७॥ अमम नुतपार्श्वजिन सततं तपसा हतसिद्धमनतबलं ॥ ललनाजनसंगविरक्त
 मलं मलवर्जितमुत्तरसौख्यधर ॥९॥ नवनि कुलक ॥ सुरराजखेचरनागपुरदरधरणि
 रा जमुसेवितं श्रीपार्श्वजिनेश्वर नमितसुरेश्वरपद्मावतीसस्तुत ॥ येऽनतनतया विशुद्धश
 क्त्या संस्तुवति जिनं मुदा शुजसागरपठनाद्भविकरमासमेत ते लजंति सुख सदा ॥ १० ॥

॥ अथ श्रीमदुरपार्श्वार्ष्टकप्रारभ ॥

दृत्विलंबितहृद ॥ विबुधमानवमानसनंदन विजवदानविधौ हरिचदन ॥ नि
 खिलसन्त्यजनै रुतवदनं नजत पार्श्वजिनं महुरानिध ॥ १ ॥ युगलकौशिकसा
 म्यतराशयं च्रुवनजानुनिवासधनाश्रयं ॥ विपयिवारणकेसरिसन्निभं नजत ॥ २ ॥
 अरुणकोटिविजाधिकजास्वर कुमुदबाधवशुत्रतरानन ॥ वरगजीरगुणोत्तमसागर
 नजत ॥ ३ ॥ नविकपद्मविजासनजास्कर जगति जावप्रकाशनदीपक ॥ नयनपाटव
 पावनतत्रक नजत ॥ ४ ॥ रचितकामठवारिदसचयैरखिलधैर्यसमन्वितचेतसं ॥ विकट
 कर्मसमीरणजोगिन नजत ॥ ५ ॥ कमठनिर्मितपाण्डुकदवकै स्थिरतरोटकटजाव
 विराजित ॥ जगति हुजेनसर्पविपापह नजत ॥ ६ ॥ प्रशमनूपणनूपणनूधन मुजग
 नाग्यगुणावन्निमदिर ॥ धवलकीर्तियशोवरघासित नजत ॥ ७ ॥ सकलसघसमीहि
 तक रूक निचितविन्नपराजवहर्तृक ॥ अतिशयाद्भुतचारुचरित्रक नजत ॥ ८ ॥ हरि
 णीठंद ॥ महुरजिनप नित्यं वदे शिवोदधिवर्द्धन शशिनमनिशं किण्वध्वाते दिनेश
 महोदय ॥ स्तवननएने चिताब्हादे रुतादरसेवकेविविधधनद विश्वे विश्वे जिनेश
 नतानने ॥ ९ ॥ दृत्विलंबितहृद ॥ महुरपार्श्वजिनेश्वरसंस्तव पठति यः सुधियोपसि
 नित्यश ॥ वसति तस्य गृहे कमला ऽखिला स्थिरतरासुमतां वरदायिनी ॥ १० ॥

॥ अथ सत्यपुरीय श्रीमहावीरस्तवनप्रारभ ॥

दृत्विलंबितहृद ॥ त्वमसि सद्गुणनदनमदरस्त्वमसिमेरुजतावलिमंरुप ॥
 त्वमसि खेचरनाकिनरस्तुतस्त्वमसि रूपवशीरुतविष्टप ॥ १ ॥ त्वमसि योगिजनौ
 घशिरोमणस्त्वमसि कातिविकाशितदिग्गणः ॥ त्वमसि नाषितरजितनागर स्त्वम
 सि सिद्धिवशारतिमोहित ॥ २ ॥ त्वमसि नड्कर करुणालयस्त्वमसि नक्रचकोर
 निशाकर ॥ त्वमसि दर्शनहर्षितमानवस्त्वमसि संसृतिसागरपोतक ॥ ३ ॥ त्वमसि
 मोहमहोरुद्धुजरस्त्वमसि धर्मधनो धनकामद ॥ त्वमसि सशयवायुशुजंगम

स्त्वमसि दर्शितजीवदयापथ. ॥ ४ ॥ त्वमसि धारितशीलविचूपणस्त्वमसि कामि
तदामसुरद्रुम ॥ त्वमसि देवनराधिपवदितस्त्वमसि जाडयतमित्त्रनजोमणिः ॥ ५ ॥
त्वमसि कर्मवनावनिपावकस्त्वमसि सेवकपूजितपंकजः ॥ त्वमसि जन्मजरामृतिवा
रणस्त्वमसि शाश्वतमोक्षपदस्थितः ॥ ६ ॥ त्वमसि मञ्जुलसत्कुलदीपकस्त्वम
सि सर्वपदार्थविशारद ॥ त्वमसि लोकनतो नतवत्सल स्त्वमसि देवशिखीमुख
पुष्कर. ॥ ७ ॥ त्वमसि नाथमनोहरलक्षणस्त्वमसि समतजीवगण संदा ॥ त्वमसि
संवरमार्गविधायकस्त्वमसि दानगुणाल्पितकल्पक ॥ ८ ॥ त्वमसि चित्रकराति
शयांचितस्त्वमसि सूरिततीश्वरसेवित ॥ त्वमसि दुःखिजनावनतत्परस्त्वमसि हारनि
जं क्कितिमंडले ॥ ९ ॥ त्वमसि शिष्टनरामरसंगतस्त्वमसि लोकचमत्कृतनिर्भे
म ॥ त्वमसि केवलिसाधुनतो मुदा त्वमसि कुग्रहदोषनिवारकः ॥ १० ॥
त्वमसि सद्गतनारचूपोपमस्त्वमसि वीतमदो विशदाशय ॥ त्वमसि तीर्थपते रु
चिराब्दयस्त्वमसि गुप्तिपवित्रितमानसः ॥ ११ ॥ त्वमसि बुद्धिपराजितगी प
ति स्त्वमसि द्वाटकसन्नचित्रियह ॥ त्वमसि नाग्यविनाशनिकेतनस्त्वमसिलोच
महीधरवज्रक ॥ १२ ॥ त्वमसि सप्तनयार्णवतारकस्त्वमसि दुर्घटसत्यनयाध्व
गः ॥ त्वमसि सम्मदसंततिकारकस्त्वमसि सिद्धिकरो वरदायक ॥ १३ ॥ त्वमसि विश्व
जगद्गनयध्वजस्त्वमसि रक्षितनूतकदंबक ॥ त्वमसि दुर्जगदुस्थहरोनिशं त्वमसि वि
स्तृतलोचनरंजक ॥ १४ ॥ त्वमसि विश्वपति. श्रितबांधवस्त्वमसि वक्रतिरस्कृतचंद्र
मा ॥ त्वमसि वैरिसमुद्घटोद्भवस्त्वमसि तीर्थकर प्रतिबोधद. ॥ १५ ॥
त्वमसि नव्यशिखंडिबलाहकस्त्वमसि बंधुरमूर्तिधरोऽजर. ॥ त्वमसि सर्वविद्युर्विग
तातुरस्त्वमसि संयममंडनमंडित ॥ १६ ॥ त्वमसि शातरसाश्रितचेतनस्त्वमसि
पौरुपनिर्द्धितकर्मणः ॥ त्वमसि दुर्ध्वजबोधिनिबंधनस्त्वमसि कामदुघाधिकदानद.
॥ १७ ॥ त्वमसि संचितपुण्यनिधि परस्त्वमसि विघ्नसरीतृपगारुडः ॥ त्वमसि शु
भ्रयशोभरमदिरस्त्वमसि संघजयोन्नतिहर्षदः ॥ १८ ॥ त्वमसि सत्वहितो मतिव
र्धनस्त्वमसि धर्मसरोजसर सम ॥ त्वमसि चक्रिनतो जविज्ञेश्वरस्त्वमसि पारग
त. परमेश्वरः ॥ १९ ॥ त्वमसि सत्यपुरामलनूपणस्त्वमसि सश्रितपादमृगाधि
प. ॥ त्वमसि केवल्युग्मविराजितस्त्वमसि वीरजिनो जिननायक. ॥ २० ॥
त्वमसि शासनपोतनियामकस्त्वमसि साधुदयालुलज्जामकः ॥ त्वमसि सौख्यकरस्त्रिश
लांगजस्त्वमसि विश्वगुरु. शृणुसागर ॥ २१ ॥ हरिणीवंद ॥ जयति सततं वीर. ग
शुर्नवदधिपारगो जगति तिलक पापध्वांते गजस्तिरनुत्तरः ॥ कुशलनिलयस्तीर्थस्वा

तिकातिनिकेतनमगिनुत ॥६॥ निजवशवतसकमार्तिहर रवनिर्जितमेघनदं शिवद ॥
 दधितं च्रुवि विश्वजनीनतम नतचूतगण जितलोचनदं ॥ ७ ॥ शरणाश्रितपाजकमु
 क्तिपदं दधत वरगातरस नवम ॥ महसेइमणिप्रनदेहधर धरयोइनिपेवितपाश्वर्युग
 ॥८॥ अमम नुतपाश्वर्यजिन सततं तपसा हतसिद्धमनतबलं ॥ जलनाजनसगविरक्त
 मलं मलवर्जितमुत्तरसौख्यधर ॥९॥ नवजिं कुजक ॥ सुरराजखेचरनागपुरदरधरणिरा
 जसुसेवित श्रीपाश्वर्यजिनेश्वर नमितसुरेश्वरपद्मावतीसंस्तुत ॥ येऽनंतनक्तया विशुद्धश
 क्तया सस्तुवति जिन मुद्रा गुनसागरपठनाद्भविकरमासमेत ते लजंति सुखं सदा ॥ १० ॥

॥ अथ श्रीमहुरपाश्वर्याष्टकप्रारंभ ॥

द्रुतविलंबितबुद्धं ॥ विबुधमानवमानसनदन विचवदानविधौ हरिचदनं ॥ नि
 खिलसन्धजनै रुतवदन नजत पाश्वर्यजिनं महुराजिध ॥ १ ॥ युगलकौशिकसा
 म्यतराशय सुवनजानुनिवासघनाश्रय ॥ विपयिवारणकेसरिसन्निभं नजत ॥ २ ॥
 अरुणकोटिविजाधिकनास्वर कुमुदबाधवशुभ्रतराननं ॥ वरगनीरगुणोत्तमसागर
 नजत ॥ ३ ॥ जविकपद्मविनासननास्कर जगति नावप्रकाशनदीपकं ॥ नयनपाटव
 पावनतत्रक नजत ॥ ४ ॥ रचितकामठवारिदसचयैरखिलधैर्यसमन्वितचेतस ॥ विकट
 कर्मसमीरणजोगिन नजत ॥ ५ ॥ कमठनिर्मितपाशुकदबकै स्थिरतरोत्कटजाव
 विराजित ॥ जगति हुजेनसर्पविपापह नजत ॥ ६ ॥ प्रशमनूपणचूपणचूधन सुभग
 नाग्यगुणावजिमदिर ॥ धवलकीर्तिप्रशोबरघासित नजत ॥ ७ ॥ सकलसघसमीहि
 तकं नूकं निचितविभ्रपरानवहर्तुक ॥ अतिशयाद्भुतचारुचरित्रकं नजत ॥ ८ ॥ हरि
 णीठदं ॥ महुरजिनप नित्य वदे शिवोदधिर्वर्द्धन शशिनमनिशं किण्वध्वांते दिनेश
 महोदयं ॥ स्तवननएने चिताल्हादे रुतादरसेवकेविविधधनदं विश्वे विश्वे जिनेश
 नतानने ॥ ९ ॥ द्रुतविलंबितबुद्धं ॥ महुरपाश्वर्यजिनेश्वरसस्तव पठति यः सुधियोपसि
 नित्यशः ॥ वसति तस्य गृहे कमला ऽखिला स्थिरतरासुमता वरदायिनी ॥ १० ॥

॥ अथ सत्यपुरीय श्रीमहावीरस्तवनप्रारंभः ॥

द्रुतविलंबितबुद्धं ॥ त्वमसि सज्जुणनदनमदरस्त्वमसिमेरुलतावलिमंभप ॥
 त्वमसि खेचरनाकिनरस्तुतस्त्वमसि रूपवशीरुतविष्टप ॥ १ ॥ त्वमसि योगिजनौ
 वशिरोमणस्त्वमसि कातिविकाशितदिग्गणः ॥ त्वमसि जाधितरजितनागर स्त्वम
 सि सिद्धिवशरतिमोहित ॥ २ ॥ त्वमसि नडकरः करुणालयस्त्वमसि नक्तचकोर
 निशाकर ॥ त्वमसि दर्शनहर्षितमानवस्त्वमसि संसृतिसागरपोतक ॥ ३ ॥ त्वमसि
 मोहमहोरुहमुद्गरस्त्वमसि धर्मधनो धनकामद ॥ त्वमसि सशयवायुज्जगम

स्त्वमसि दर्शितजीवदयापथः ॥ ४ ॥ त्वमसि धारितशीलविचूपणस्त्वमसि कामि
तदामसुरद्रुम ॥ त्वमसि देवनराधिपवदितस्त्वमसि जाड्यतमिस्रनजोमणिः ॥ ५ ॥
त्वमसि कर्मवनावनिपावकस्त्वमसि सेवकपूजितपंकज ॥ त्वमसि जन्मजरामृतिवा
रणस्त्वमसि शाश्वतमोक्षपदस्थितः ॥ ६ ॥ त्वमसि मञ्जुलसत्कुलदीपकस्त्वम
सि सर्वपदार्थविशारदः ॥ त्वमसि लोकनतो नतवत्सल स्त्वमसि देवशिजीमुख
पुष्करः ॥ ७ ॥ त्वमसि नाथमनोहरलक्षणस्त्वमसि संमतजीवगण सदा ॥ त्वमसि
संवरमार्गविधायकस्त्वमसि दानगुणाल्पितकल्पकः ॥ ८ ॥ त्वमसि चित्रकराति
गपांचितस्त्वमसि सूरिततीश्वरसेवित ॥ त्वमसि डुःखिजनावनतत्परस्त्वमसि हारनि
जः क्लितिमंडले ॥ ९ ॥ त्वमसि शिष्टनरामरसंगतस्त्वमसि लोकचमत्कृतनिर्म
म ॥ त्वमसि केवलिसाधुनतो मुदा त्वमसि कुग्रहदोषनिवारकः ॥ १० ॥
त्वमसि सद्गतचारवृपोपमस्त्वमसि वीतमदो विशदाशय ॥ त्वमसि तीर्थपते रु
चिराढ्यस्त्वमसि गुप्तिपवित्रितमानसः ॥ ११ ॥ त्वमसि बुद्धिपराजितगीःप
ति स्त्वमसि हाटकसन्निभविग्रहः ॥ त्वमसि जाग्यविनाशनिकेतनस्त्वमसिलोच
महीधरवज्रकः ॥ १२ ॥ त्वमसि सप्तजयार्णवतारकस्त्वमसि दुर्घटसत्यनयाध्व
ग ॥ त्वमसि सम्मदसंततिकारकस्त्वमसि सिद्धिकरो वरदायकः ॥ १३ ॥ त्वमसि विश्व
जगद्धनयज्ञस्त्वमसि रक्षितनूतकदंबक ॥ त्वमसि दुर्नेगडुस्थहरोनिशं त्वमसि वि
स्तृतलोचनरंजकः ॥ १४ ॥ त्वमसि विश्वपतिः श्रितबाधवस्त्वमसि वक्रतिरस्कृतचड
मा ॥ त्वमसि वैरिसमुद्घटोद्भवस्त्वमसि तीर्थकरः प्रतिबोधकः ॥ १५ ॥
त्वमसि जव्यशिखंडिबलाहकस्त्वमसि बंधुरमूर्तिधरोऽजर ॥ त्वमसि सर्वविद्युर्विग
तातुरस्त्वमसि संयममडनमंडित ॥ १६ ॥ त्वमसि शांतरसाश्रितचेतनस्त्वमसि
पौरुपनिर्द्धितकर्मणः ॥ त्वमसि दुर्लभबोधिनिबंधनस्त्वमसि कामधुयाधिकदानदः
॥ १७ ॥ त्वमसि संचितपुण्यनिधिः परस्त्वमसि विघ्नसरीतृपगारुडः ॥ त्वमसि शु
भ्रयशोभरमंदिरस्त्वमसि संघजयोन्नतिहर्षदः ॥ १८ ॥ त्वमसि सत्वहितो मतिव
र्द्धनस्त्वमसि धर्मसरोजसर सम ॥ त्वमसि चक्रिनतो जविज्ञेश्वरस्त्वमसि प्रारग
त परमेश्वर ॥ १९ ॥ त्वमसि सत्यपुरामलजूपणस्त्वमसि सश्रितपादमृगाधि
पः ॥ त्वमसि केवल्युग्मविराजितस्त्वमसि वीरजिनो जिननायकः ॥ २० ॥
त्वमसि शासनपोतनियामकस्त्वमसि साधुदयालुजज्ञामक ॥ त्वमसि सौख्यकरस्त्रिश
लांगजस्त्वमसि विश्वगुरु ह्यनसागरः ॥ २१ ॥ हरिणीर्द्धः ॥ जयति सततं वीरः शं
भुर्नवेदधिपारगो जगति तिलकः पापध्वांते गजस्तिरनुत्तरः ॥ कुशलनिलयस्तीर्थस्वा

मी सुरासुरसंस्तुतो विदितमहिनां विश्वे विश्वेश्वरार्चितपत्कज ॥ ११ ॥ वशरथहृद ॥
 कुलावतंसं यतिधर्मवेशकं कलदिकापारगमगिपालकं ॥ नवीमि वीर मतिद हिता
 वद्दं मनोर्धसपादनकामकुञ्जक ॥ १३ ॥ सुजंगप्रयातहृदः ॥ प्रसु देववयं जिन वि
 श्वनाथं जगञ्चारुचूडामणि वीरनाथं ॥ सुवेऽह जितारिं नतस्वर्गिनाथं सदा शाति
 कारं नरैर्ज्ञाधिनाथं ॥ १४ ॥ स्रग्धराहृद ॥ श्रीराज वीरदेव प्रणतसुरमणिं देवमर्त्या
 धिराजं कल्याणांनोधिवृद्धी विमलशशधर चाग्यसांन्याग्यकार ॥ ये जव्या ससुव
 ति प्रतिदिनमनयं चारुजक्तया त्रिसंथ्य प्रख्याति ते जजते त्रिभुवनविदिता कीर्तिप्रा
 ग्जारकर्त्री ॥ १५ ॥ तुभ्यं नम समयधर्मनिवेदकाय तुभ्यं नमस्त्रिभुवनेश्वरशेख
 राय ॥ तुभ्यं नम. सुरनरामरसेविताय तुभ्यं नमो जिनजनार्चितपत्कजाय ॥ १ ॥ तु
 न्यं नमोऽजिलपते हरिचदनाय तुभ्यं नमो वरकुलावरजास्कराय ॥ तुभ्यं नम प्रणतदे
 वनराधिपाय तुभ्यं नम प्रवररूपमनोहराय ॥ २ ॥ तुभ्यं नमो हरिणनायकनाय
 काय तुभ्यं नमो यतिततिप्रतिपालकाय ॥ तुभ्यं नमो विकचनीरजलोचनाय तुभ्यं
 नमस्तनितनादविराजिताय ॥ ३ ॥ तुभ्यं नम कुशलमार्गविधायकाय तुभ्यं नमोवि
 कटकटनिषेधकाय ॥ तुभ्यं नमो डुरितरोगचिकित्सकाय तुभ्यं नमस्त्रिजगतो हृदि
 नूपणाय ॥ ४ ॥ तुभ्यं नमो दलितमोहृतमोचराय तुभ्यं नम कनकसन्निजचूषना
 य ॥ तुभ्यं नमोप्यखिलसद्गुणर्मदिराय तुभ्यं नमो मुखकलादिऽतचडिकाय ॥ ५ ॥
 तुभ्यं नमोऽतिशयराजिविभूषिताय तुभ्यं नम कुमतितापसुञ्जनाय ॥ तुभ्यं न
 मो मुखपयोधिवहित्रकाय तुभ्यं नमो विगतकैतवमत्सराय ॥ ६ ॥ तुभ्यं नमो विदि
 तजव्यजनाशयाय तुभ्यं नमो निखिलसंशयवारकाय ॥ तुभ्यं नम प्रथितकीर्त्तिय
 शोन्विताय तुभ्यं नमो जितहृषीकमुनीश्वराय ॥ ७ ॥ तुभ्यं नमोप्रमितपुञ्जनिर्मि
 ताय तुभ्यं नम सकलवाङ्मयपारगाय ॥ तुभ्यं नमो जविकचातकनीरदाय तुभ्यं
 नमश्रणवेनवदायकाय ॥ ८ ॥ कुलकम् ॥ वीराष्टक पठति य सततं त्रिसंथ्य त्य
 क्त्वा सदा प्रबलमीहजड प्रमाद ॥ तद्वाप्ति मद्गु कुरुते कमला निवास कट्याणसा
 गर च्रुवामसतामनीष्टं ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीलोडणापार्श्वनाथस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीकर कष्टहर्तारिं विधिवादप्रकाशकं ॥ धिया तर्जितवागीश परमात्मानमन्वह ॥ १ ॥
 ह्रमागार कृपापात्रं गताधिव्याधिदूषण ॥ त्रेक तु सर्वकार्येषु श्रीप्रदं दलितामयं ॥ २ ॥
 धनधान्यकरं लोके रमाकेलिपदं पर ॥ मर्मतामदमानौघमूर्खतादोषवर्जितं ॥ ३ ॥
 आर्त्तिसंतापनेतारं सूरिश्रेणिशिरोमणिं ॥ रिपुसारगसारग भगिनाथनिषेवितं ॥ ४ ॥

तेजसां मंदिरम्यं वारिताशेषदुर्जनं ॥ निःसीमं सर्वगोत्राणां श्रीमंतं गुणसागर
 ॥ ७ ॥ कथिताचारमार्गैर्धं कल्याणकमले विधुं ॥ प्रणताशेषदेवेशं शासनं कांतचूष
 नं ॥ ६ ॥ गदितागमसंदोह रसनामृतसुंदर ॥ सुराधिकप्रतापाजिं रिकथद दमितेदि
 यं ॥ ७ ॥ नागैर्द्विविधैः सेव्यं लोकानां शक्तिकारकं ॥ जडताया विभेचारं नयनाब्हा
 दकारणं ॥ ७ ॥ पालकं सर्वसत्वाना पाठव्ययद्वेष पूजितं ॥ नाकिमानववद्यांहिं नाथ
 नाथं जगत्प्रभुं ॥ ९ ॥ क्रियासंततिनेतार त्रासितानेकदोषकं ॥ कृतांतार्थविचारकं
 तारतारुण्यराजितं ॥ १० ॥ संसारसागरे पोतं घस्मराधिविवर्जितं ॥ सर्वज्ञं मेघगंजी
 र हितं विश्वस्य सर्वदा ॥ ११ ॥ तेजोनिधिं सुदा पार्श्वे नवीमि लोमणाजिधं ॥ क
 व्याणसागराख्येन संस्तुतं ह्यादिमाह्वरं ॥ १२ ॥ द्वादशनि. कुलक ॥ श्रीमद्वोडण
 पाठव्यनाथमवमौ विख्यातगोत्राजिधं ये जव्या वरजावचकिसहिता. पूजति सौख्या
 र्थिन ॥ ते सत्त्वा सुखमानकीर्तिकलिता कल्याणतुगा परा जायते शुवने-प्रतापरु
 चिरा आदेयवाचः सदा ॥ १३ ॥

॥ अथ श्रीसेरीशपार्श्वोष्टकप्रारंभः ॥

कामौघकर्तारमशेषदेवाधीशैस्सदाचर्चितपादपद्मं ॥ कल्याणकारं वरनीलवर्णं सेरी
 शपार्श्वं नुथ लोडणाख्यं ॥ १ ॥ सत्पुण्यवह्नीवनवारिधारं निःशेषजव्यावलिपूरिता
 गं ॥ त्रैलोक्यवठरं शुवनाधिनाथं सेरी ॥ २ ॥ सारगवाणीजितचित्तदाह्यं सारगगंजी
 रनिनादकांतं ॥ सारगसारंबकयुग्मराजं सेरी ॥ ३ ॥ विश्वेषु सत्त्वेषु कृपाविधानं स
 म्यक्त्वरत्नाजरणाकितागं ॥ ४ ॥ स्वागपशुं दजितारिवर्गं सेरी ॥ ४ ॥ अपारसंसारसमुद्
 पोतं सर्वज्ञमाचारपवित्रवंशं ॥ राक्षांतशास्त्रार्थरहस्यदहं सेरी ॥ ५ ॥ वाणीरसानंदितवि
 श्वविश्व तीर्थकरं नागपुरेशपूज्यं ॥ सर्वत्र विख्यातयशोजिरामं सेरी ॥ ६ ॥ तेजोनिधिं
 कामितकामकुनं सौजन्यसौहार्दविलासपात्रं ॥ कल्याणसूर्यादिवितानहेतु सेरी ॥ ७ ॥
 ॥ ७ ॥ आदित्यचंद्रविक्रदेहनासं सत्प्रातिहाय्याष्टकराजिराज ॥ स्फाराकृता मोहि
 तदेवतेव सेरी ॥ ७ ॥ कलशः ॥ एव कल्याणवद्य त्रिशुवनतिलकं लोडणार्हं सुपार्श्व
 कृत्वैकाग्र्यं स्वचित्ते नवसफलकृते ज्ञानसपत्तिसिद्धये ॥ नित्यं ध्यायति जव्याजिनसमय
 रता शुत्रलेश्याजिरामास्तेपां हर्षात्प्रकामं नवति च सदाने मज्जुपद्मानिवास ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीसंजवनायाष्टकप्रारंभः ॥

लावण्यगेहं कलहेमवर्णं उद्योक्षित सुदरवाहचिन्हं ॥ लक्ष्मीकलापार्णवधि
 ष्यनाथं देवेनेतं सजवनाथमीहे ॥ १ ॥ त्र्येनांगज दारुणकर्मशत्रौ वीर वर पू
 तचरित्रशोभं ॥ हेमास्पदं सजुणरत्नखानिं देवैः ॥ २ ॥ इक्ष्वाकुवशं वरतिग्मरभिम्

राकेडुवक्रं गतवक्रमाद्यं ॥ अज्ञानवैश्वानरशांतिनीर देवैः ॥ ३ ॥ इ खोदधौ पीत
समुद्भिः ॥ सत्प्रतिहार्याष्टकराजिराज ॥ क्रमानधि विस्तृतपुण्यमूर्तिः ॥ दे
वैः ॥ ४ ॥ नव्यैर्मुदा सेवितपादपद्मं सज्जानवज्राहतमोहनूचर ॥ संसारदावाकुज
मर्त्यमेव देवैः ॥ ५ ॥ सत्कीर्त्तिपात्रं दुरितारिसेव्य जगद्जनानदकर शरण्यं ॥ कारुण्यस
युक्तपवित्रचित्तं देवैः ॥ ६ ॥ कुदार्हदत्तं कजलोचनं वै वपु श्रियातर्जितसूर्यकानि ॥
पापाधकारे ऽमलदीपकं न देवैः ॥ ७ ॥ प्रसादनात्त्परसेवकस्येप्सितार्थदाने सुर
देववृहं ॥ सुखरनेकैर्युतचारुदेह देवैः ॥ ८ ॥ कलश ॥ इत्यष्टक श्रीजिनसंज्ञवस्य
पठति ये मञ्जुत्रनाचयुक्त्या ॥ तेपा गृहे पुण्यनिधानञ्चया कल्याणकाराश्च नवति रु
द्वय ॥ ९ ॥ इति श्रीमद्भिननायकस्य श्रीसूर्यपुरचूषणस्य श्रीसंज्ञवनाथस्याष्टक संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीसूक्तमुक्तावली प्रारंभः ॥

मालिनी ठंड ॥ सकलसुठुतवध्वीवृंदजीमूतमालां निजमनसि निधाय श्रीजि
नंभ्य मूर्ति ॥ ललितवचनलीलालोकनापानिबद्धैरिह कतिपयपथे सूक्तमालां
तनोमि ॥ १ ॥ अथक्रमसंग्रहकाव्यं ॥ शार्दूलविक्रीडितठंड ॥ तत्त्वज्ञानमनुष्य
सज्जनगुणान्यायप्रतिज्ञाक्रमा चिन्ताद्यं च कुजं विवेकविनयो विद्योपकारोद्यमा ॥
दानक्रोधदयादितोपविषया साक्षात्प्रमादस्तथा साधुश्रावकधर्मवर्गविषये ज्ञेया
प्रसंगाद्यमी ॥ २ ॥ अथदेवतत्वविषये मालिनीठंड ॥ सकल करमवारी मोक्षमार्गा
धिकारी ॥ त्रिभुवनउपगारी केवलज्ञानधारी ॥ नविजन नित सेवो देव ए नक्तिना
वे ॥ इहज जिन नजता सर्व संपत्ति आवे ॥ ३ ॥ जिनवरपदसेवा सर्वसपत्तिदा
ई ॥ निशिदिन सुखदाई कटपवध्वी सहार्ई ॥ नमि विनमि लहीजे सर्व विद्या वडाई ॥
कृपन जिनह सेवा साधता तेह पाई ॥ ४ ॥ अथगुरुविषये ॥ स्वपरसमयजाणे ध
र्मवाणी वखाणे ॥ परम गुरुकह्याथी तत्व नीशक माणे ॥ नविककज विकागे जा
नुज्यं तेज नासे ॥ इहज गुरु नजो जे सुदमार्ग प्रकागे ॥ ५ ॥ सुगुरुवचनसगे
निस्तरेजीवरगे ॥ निरमल नर थाए जेम गंगाप्रसंगे ॥ सुणिय सुगुरु केशी ॥ वाणि
रायप्रदेशी ॥ लहि सुरनव वासी जे हसे मोक्षवागी ॥ ६ ॥ अथधर्मविषये ॥ जलनि
धि जलवेला चड्थी जेम वाधे ॥ सकल विनवजीला धर्मथी तेम साथे ॥ मनुअ
जनमकेरो सार तेधर्म जाणी ॥ नजिनजि नवि नावे धर्म ते सौख्य खाणी ॥ ७ ॥
इह धरम पसाये विक्रमे सत्य साथ्यो ॥ इह धरम पसाये शालिनो साक वाथ्यो ॥
जस नर गज वाजी मृत्तिकाना जिकेई ॥ रणसमय थया तेजीव साचा तिकेई ॥
॥ ८ ॥ अथज्ञानविषये ॥ तन धन ठकुराई सर्व ए जीवनेठे ॥ पण इक इहिवं

ज्ञान संसारमां ठे ॥ नवजलनिधि तारे सर्व जे दुःख वारे ॥ निजपरहित हेते
 ज्ञान ते का न धारे ॥ ए ॥ यवऋषि इक गाथा बोधथी जै निवाख्यो ॥ इक-पदथि
 चिलातीपुत्र संसार वाख्यो ॥ श्रुतजणत सुझानी मास तुंढादि थावे ॥ श्रुतथि अच
 य हाथे रोहिण्यो चोर नावे ॥ १० ॥ अथमनुष्यजन्मविषे ॥ नवजलनधि नमंतां
 कोइ वेला विज्ञेये ॥ मनुजजनम लाथो डुल्लहो रत्न लेखे ॥ सफल कर सुधर्मा ज
 न्म ते धर्मयोगे ॥ परनवसुख जेथी मोहलक्ष्मी प्रचोगे ॥ ११ ॥ मनुजजनम पा
 मी आलसे जे गमेठे ॥ शशिनृपतिपरे ते शोचनाथी नमेठे ॥ डुल्लह दशकथा थूं
 मानुखोजन्म ए ठे ॥ जिनधरम विज्ञेये जोडता सार्थ ते ठे ॥ १२ ॥ अथसज्जन
 विषे ॥ सदयमन सदाई दुःखिया जे सदाई ॥ परहित मतिदाई जास वाणी मि
 दाई ॥ गुणकरि गहराई मेरुज्यू धीरताई ॥ सुजनजन सदाई तेह आनंददाई ॥ १३ ॥
 जइ डुरजन लोके दूहव्या दोष वेई ॥ मनमलिन न थाए सज्जना तेह तेई ॥ डुप
 दजनकपुत्री अंजना कष्टयोगे ॥ कनकजिम कशोटी ते तिसी शील चोगे ॥ १४ ॥
 अथगुणविषे ॥ गुणगहि गुण जेमा ते बहू मान पावे ॥ नर सुरनिगुणे ज्यूं फूल
 शीशे चढावे ॥ गुणकरि बहु माने लोक ज्यूं चडमाने ॥ अति कश जिम माने पू
 र्णने त्यूं न माने ॥ १५ ॥ मलयगिरि कडे जे जवुलिंवादि सोई ॥ मलयजतरु संगे
 चदना तेइ होई ॥ इम लहिय वडाठ्यूं कीजिये संग रगे ॥ गजशिरचडि वेठी ज्यूं
 अजा सिंहसंगे ॥ १६ ॥ अथन्यायविषे ॥ जग सुजस सुवासे न्यायलढी उपासे ॥
 व्यसन डुरित नासे न्यायथी लोक वासे ॥ इम ऋदय विमासी न्याय अंगी करी
 जे ॥ अनय परिहरीजे विश्वने वश्य कीजे ॥ १७ ॥ पद्यु पण तस सेवे न्यायथी जे
 न चूके ॥ अनयपथ चले जे जाइ ते तास मूके ॥ कपिकुल मिलि सेव्यो रामने
 सीस नामी ॥ अनयकरि तज्यो ज्यूं जाइए लेकस्वामी ॥ १८ ॥ हय गय न सदाई
 युद्ध कीर्ती सदाई ॥ रिपुविजय वधाई न्याय ते धर्मदाई ॥ धरमनय धरे जे ते सुखे
 वैरि जीपे ॥ धरमनय विदूणा तेहने वैरि कोपे ॥ १९ ॥ धरमनय पसाये पांमचा
 पंच तेई ॥ करि युधे जय पाय्या राज्यलीला लहेई ॥ धरमनय विदूणा कौरवा
 गर्व, माता रणसमय विगूता पांमचा तेह जीत्या ॥ २० ॥ अथप्रतिज्ञाविषे ॥
 श्युन अश्युन जिकाई आदरुं जे निवाहे ॥ रवि पण तस जोवा व्योम जाणी
 वगाहे ॥ करिगहन तिवाहे तास निस्तंत आपे ॥ मलिन तनु पखाळे
 सिधुमां सूर आपे ॥ २१ ॥ पुरुपरषणं मोटा जे गणीजे धराये ॥ जिण जिम प
 डिवज्यूं ते न गांडे पराये ॥ गिरिश विष धखो जे ते न अद्यापि नाख्यो ॥ डुर

गति नर लेई विक्रमादित्य राख्यो ॥ ११ ॥ अथ उपशमविषे ॥ उपशम हित
 कारी सर्वदा लोकमांही ॥ उपशम धर प्राणी ए समो सौख्य नांही ॥ तप ज
 प सुर सेवा सर्व जे आदरे ठे ॥ उपशमविण जे ते चारि मथा करे ठे ॥ १२ ॥
 उपशम रस लीजां जास चित्ते विराजी ॥ किम नर नव केरी रिद्धिमा तेह रा
 जी ॥ गज मुनिवर जेहा धन्य ते ज्ञान गेहा ॥ तपकरि कृश देहा शांति पीयू
 प मेहा ॥ १४ ॥ अथ त्रिकरणशुद्धिविषे ॥ जग जन सुखदाई चित्त एवु सदाई ॥
 सुखे अति मधुराई साच वाचा सुहाई ॥ वपु परहित हेते त्रण्य ए शुद्ध जेने
 ॥ तप जप व्रत सेवा तीर्थ ते सर्व तेने ॥ १५ ॥ मण वच तनु त्रण्ये गंगज्युं
 शुद्ध जेने ॥ निज घर निवसतां निर्जरा धर्म तेने ॥ जिम त्रिकरण शुद्धे डीप
 दी अंब वाव्यो ॥ घर सफल फलंतो शील धर्म सुहाव्यो ॥ १६ ॥ अथ कुलविषे
 सहज गुण वरो ज्युं शंखमां श्वेतताई ॥ अमृत मधुरताई चंद्रमां शीतलाई
 कुवलय सुरजाई इक्षुमां ज्युं मिठाई ॥ कुलज मनुजकेरी ल्युं सुजावे जलाई ॥
 ॥ १७ ॥ जिण घर वर विद्या जो द्रुवे तो न ऋद्धि ॥ जिण घर ड्य लाजे तो
 न सौजन्य वृद्धि ॥ सुकुल जनम योगे ते त्रणे जो लहीजे ॥ अनय कुमार ज्युं
 तो जन्म साफल्य कीजे ॥ १८ ॥ अथ विवेकविषे ॥ हृदय घर विवेके प्राणि
 जो दीप वासे ॥ सकल नव तणो तो मोह अधार नाजे ॥ परम धरम वस्तु त
 त्व प्रत्यक्ष जासे ॥ करम नर पतंगा स्वाग तेने विधसे ॥ १९ ॥ विकल नर
 कहीजे जे विवेके विहीना ॥ सकल गुण नखा जे ते विवेके विलीना ॥ जिम सुम
 ति पुरोधा जूमि गेहे वसते ॥ उगति उगति कीधी जे विवेके उगंते ॥ २० ॥
 अथ विनय विषे ॥ निशिविण शशि सोहे ज्युं न शोले कलाई ॥ विनयविण
 न सोहे ल्युं न विद्या वमाई ॥ विनयवहि सदाई जेह विद्या सदाई ॥ विनय
 विण न काई लोकमा उच्चताई ॥ २१ ॥ विनय गुण वहीजे जेहृथी श्री वरीजे ॥
 सुर नर पति लीजा जेह हेलां लहीजे ॥ पर तणय शरीरे पेशवा जे सुविद्या ॥
 विनय गुणधि लाधी विक्रमे तेह विद्या ॥ २२ ॥ अथ विद्याविषे ॥ अगम म
 ति प्रयुंज्ये विद्ययें कोन गजे ॥ रिपु दल बल जंजे विद्यये विश्व रजे ॥ धनधि
 अखय विद्या सीख एणे तमासे ॥ गुरुमुख जणि विद्या दीपका जेम जासे
 ॥ २३ ॥ सुर नर सुप्रससे विद्ययें बैरि नाजे ॥ जगि सुजस सुवासे जेह वि
 द्या उपासे ॥ जिणकरि नृप रज्यो जोज बाणे मयूरे ॥ जिणकरि कुमरिंदो
 रीजव्यो हेम सररे ॥ २४ ॥ अथ उपकारविषेः ॥ तन धन तरुणाई आशु ए चचला ठे ॥

परहित करि छे जे ताहरो ए समे छे ॥ जब जनम जरा जां लागइ
 कठ साई ॥ कहि न तिण समे तो कोण थाइ सहाई ॥ ३७ ॥ नहि त
 रु फल खावे ना नदी नीर पीवे ॥ जस धन परअर्थे सो जले जीव जीवे ॥
 नल करण नरिदा विक्रमा राम जेवा ॥ परहित करवा जे उद्यमी दइ तेवा ॥ ३६ ॥
 ॥ अथ उद्यमविषे ॥ रथण निहितरी ने उद्यमे लडि आणे ॥ गुरु जगति हरीने उ
 द्यमे शास्त्र जाणे ॥ इख समय सहाई उद्यमे छे जलाई ॥ अति अजसं तजी
 ने उद्यमे लाग जाई ॥ ३७ ॥ नृपशिर निपतंती वीज जात्कारकारी ॥ उद्यम क
 रि सुबुद्धी मत्रिए ते निवारी ॥ तिम निज सुतकेरी आवती दुर्दगाने ॥ उद्यम
 करि निवारी ज्ञानगर्भ प्रधाने ॥ ३७ ॥ अथ दानविषे ॥ थिर नहि धन राख्यो
 तेम नाख्यो न जाए ॥ इण पर धन जोतां एव गत्या जणाए ॥ इह सुगुण सु
 पात्रे जेह दे नक्ति जावे ॥ निधि जिम धन आगे साथ तेहीज आवे ॥ ३९ ॥
 नल बलि हरिचदा जोज जे जे गवाए ॥ प्रह समय सदा ते दानकेरे पमाए ॥
 इम वृद्धय विमासी सर्वथा दान दीजे ॥ धन सफल करीजे जन्मनो लाहु ली
 जे ॥ ४० ॥ अथ शीलविषे ॥ अच्युत करम घाले शील शोना दिखाले ॥ गुणगण
 अजुआले आपदा सर्व टाले ॥ तस नर बहु जीवी रूप जावण्य देई ॥ परजव शि
 व होई शील पाठे जिकेई ॥ ४१ ॥ इण जग जिनदास श्रेष्ठ शीले सुहायो ॥ ति
 म निरमल शीले शील गगेव गायो ॥ कलि करण नरिदा ए समां छे जिकोई ॥
 परजव शिव पामे शील पाले तिकोई ॥ ४२ ॥ अथ तपविषे ॥ तरणि किरणथी
 ज्युं सर्व अंधार जाए ॥ तपकरि तपथी ल्युं इख ते दूर आए ॥ बलि मलिन थ
 यं जे कर्मचमाल तीरे ॥ किम तनु न पखाले ते तपस्वर्य नीरे ॥ ४३ ॥ तपविण
 नवि थाए नाश इ कर्मकेरो ॥ तपविण न टले जे जन्म संसार फेरो ॥ तप ब
 लि लहि लब्धी गोतमे नंदिखेणे ॥ तप बलि वपु कीरुं विष्णु वैकीय जेणे ॥ ४४ ॥
 अथ जावविषे ॥ मनविण भिजवो ज्युं चाववो दतहीणे ॥ गुरुविण जणवो ज्युं
 जीमवो ज्युं अजुणे ॥ जसविण बहु जीवी जीव ते ज्युं न सोहे ॥ तिम धरम
 न सोहे जावना जो न होहे ॥ ४५ ॥ जरत नृप इजाची जीरणश्रेष्ठि जावे ॥
 बलि बलकल चीरी केवल ज्ञान पावे ॥ बलनद हरिणो जे पंचमे स्वर्ग जाए ॥
 इहज गुण पसाये तास निस्तार थाए ॥ ४६ ॥ अथ क्रोधविषे ॥ तृण दहन द
 हंतो वस्तु ज्युं सर्वे बाले ॥ गुण करण जरी ल्युं क्रोध काया प्रजाले ॥ प्रसम ज
 लद धारा बन्दि ते क्रोध वारो ॥ तप जप व्रत सेवा प्रीतिवल्ली वधारो ॥ ४७ ॥

धरणि परशुरामे क्रोधि निहन्त्रि कीधी ॥ धरणि सुभ्रमराये क्रोधि निब्रह्मि सा
 धी ॥ नरकगति सहायी क्रोध ए ड ख दाई ॥ वरज वरज नाई प्रीति दे जे वधा
 ई ॥ ४७ ॥ अथ मानविषे ॥ विनय वनतणी जे मूल शाखा विमोडे ॥ सुगुण क
 नककेरी गूंखलाबंध तोडे ॥ उनमद करि दोडे मान ते मत्त हाथी ॥ निजवश
 करि ले जे अन्यथा दूर एथी ॥ ४८ ॥ विषद विष समो ए मान ते सर्प जाणो
 मनुज विकल होवे एण मंके जडाणो ॥ इह न परिहखो जो मान डुर्योधने तो ॥
 निज कुज विणसाडयो मानने जे वहतो ॥ ४९ ॥ अथ मायाविषे ॥ निरुरपण
 निवारी हीयडे हेज धारी ॥ परिहर ठल माया जे असंतोपकारी ॥ मधुर मधुर
 बोले तोहि विश्वास नाणे ॥ अहि गिलण प्रमाणे मायिने लोक जाणे ॥ ५० ॥
 म कर म कर माया दन दोषट्टु ठाया ॥ नरय तिरिय केरा जन्म दे जेह माया ॥
 वजि नृप ठलवाने विष्णु माया वहता ॥ लहुयपण लहूं जे वामनारूप लेता
 ॥ ५१ ॥ अथ लोचविषे ॥ सुण वयण सयाणे चित्तमा लोच माणे ॥ सकल व्य
 सनकेरो मार्ग ए लोच जाणे ॥ इक खिण पण एने सग रगे म लागे ॥ नव
 नव डुख दे ए लोचने दूर त्यागे ॥ ५२ ॥ कनकगिरि कराया लोचथी नदराये ॥
 निज अरथ न आया ते हखा देवताये ॥ सयल निधि लही जे स्वाय ते विश्व
 कीजे ॥ मन तनह वरीजे लोच तृष्णा न ठीजे ॥ ५३ ॥ अथ दयाविषे ॥ सुकृत क
 लप वेली लज्जि विद्या सहेली ॥ विरतिरमण केली शांति राजा महेली ॥ सकल
 गुण नलेरी जे दया जीव केरी ॥ निज ल्हदय धरी ते साधिए मुक्ति सेरी ॥ ५४ ॥
 निज सरण परेवो जेनथी जेण राख्यो ॥ पट दशम जिने ते ए दया धर्म दा
 ख्यो ॥ तिह ल्हदय धरीने जो दया धर्म कीजे ॥ नवजलधि तरीजे ड ख दूरे करी
 जे ॥ ५५ ॥ अथ सत्यविषे ॥ गरल अमृत वाणी साचथी अग्नि पाणी ॥ सृज
 सम अक्षिराणी साच विश्वास खाणी ॥ सुपसन सुर कीजे साचथी ते तरीजे ॥
 त्रिण अलिक तजीजे साचवाणी वदीजे ॥ ५६ ॥ जग अपजश वाधे कूडवाणी
 वदंतां ॥ वसु नृपति कुगत्ये साख कूडी नरता ॥ असत वचन वारी साचने चि
 त्त धारी ॥ वद वचन विचारी जे सदा सौख्यकारी ॥ ५७ ॥ अथ चोरीविषे ॥ पर
 धन अपहारे स्वार्थपें चोर हारे ॥ कुल अजस वधारे बंध घातादि धारे ॥ पर धन
 तिण हेते सर्प ज्यूं दूर वारी ॥ जग जन हितकारी होय सतोप धारी ॥ ५८ ॥
 निशिविन नर पामे जेहथी ड ख कोडी ॥ तज तज धन चोरी कष्टनी जेह थोरी ॥
 पर विजव हृतो रोहिणी चोर रगे ॥ इह अजय कुमारे ते अहो बुद्धि सगे ॥ ५९ ॥

अथ कुशीजविषे ॥ अथश पमह वागे लोकमां लीह जागे ॥ डुरजन बहु जागे
 जे कुले लाज लागे ॥ सजन पण विरागे मां रमे एण रागे ॥ परतिय रस रागे दो
 पनी कोडि जागे ॥ ६१ ॥ परतिय रसरगे नाश लकेश पायो ॥ परतिय रस त्या
 गे शीज गंगेव गायो ॥ द्रुपद जनक पुत्री विश्व विश्वे विढीती ॥ सुर नर मिलि सेवी
 शीलने जे धरंती ॥ ६२ ॥ अथ परिग्रहविषे ॥ शशिवदय वधे ज्युं सिंधु वेला जलेरी ॥
 धनकरि मन साए तेम वाधे घोरी ॥ डुरित नरग सेरी तूं करे ए परेरी ॥ ममकर अधि
 केरी प्रीति ए अर्थकेरी ॥ ६३ ॥ मनुज जनम हारे ॥ डुखनी कोडि धारे ॥ परिग्र
 ह ममता ए स्वर्गना सोख्य वारे ॥ अधिक धरणि लेवा धातकी खंम केरी ॥ सुखुम
 कुगति पामी चक्रिराये घोरी ॥ ६४ ॥ अथ संतोषविषे ॥ सकल सुख नराए विश्व
 तावश्य थाए ॥ नवजलधि तराए डुख दूरे पलाए ॥ निज जनम सुधारे आपदा
 दूर वारे ॥ निज धरम वधारे जेह संतोष धारे ॥ ६५ ॥ सकल सुखतणो ते सार
 सतोप जाणे ॥ कनक रमणिकेरी जेह इहा न आणे ॥ रजनि कपिल बांध्यो स्व
 र्णनी लोलताए ॥ नमर कमल बांध्यो ते असंतोपताए ॥ ६६ ॥ अथ विषयविषे ॥
 शिवपद यदि वांठे जेह आनंद दाई ॥ विषसम विषया तो भांनि दे डु खदाई ॥
 मधुर अमृत धारा दूधनी जो लहीजे ॥ अति विरस सदा तो कांजिका सग्रही
 जे ॥ ६७ ॥ विषय विकल ताणी कीचके जीम जार्या ॥ दशसुख अपहारी जा
 नकी रामजार्या ॥ रति धरि रहनेमी क्रीडवा नेमि जार्या ॥ जिण विषय न वर्ज्या
 तेह जाणो अनार्या ॥ ६८ ॥ अथ इंद्रियविषे ॥ गज मगर पतंगा जेह जूंगा कुरं
 गा ॥ इक इक विषयार्थे ते लहे डु ख चगा ॥ जस परवश पावे तेहतुं शू कही
 जे ॥ इम लहदय विमासी इंद्रि पांचे दमीजे ॥ ६९ ॥ विषय वन चरतां इंद्रि जे
 वंटडा ए ॥ निज वश नवि राखे तेह दे डु खडा ए ॥ अवश करण मृत्यू ज्युं अग्रुमें
 इंद्रि पामे ॥ स्ववश सुख लहा ज्युं कुर्म गुपीडि नामे ॥ ७० ॥ अथ प्रमादवि
 षे ॥ सहु मन सुख वांठे डु खने को न वांठे ॥ नहि धरम विना ते सौख्य ए संपजे
 ठे ॥ इह सुधरम पामी का प्रमादे गमीजे ॥ अति अलश तजीने उद्यमे धर्म की
 जे ॥ ७१ ॥ इह दिवश गया जे तेह पाठा न आवे ॥ धरम समय आले कां प्र
 मादे गमावे ॥ धरम नवि करे जे आयु आले वहावे ॥ शशि नृपतिपरे त्युं सोच
 ना अंत पावे ॥ ७२ ॥ अथ साधुधर्मविषे ॥ शार्दूल विक्रीडितछंद ॥ जे पंच व्रत मेरु
 चार निवहे, नि संग रंगे रहे ॥ पंचाचार धरे प्रमाद न करे, जे डु.परिस्ता सहे ॥
 पाचे इंद्रि तुरगमा वश करे, मोक्षार्थेने संग्रहे ॥ एवो डुप्कर साधु धर्म धन ते, जे

ज्यं ग्रहे त्वं वहे ॥ ७३ ॥ मालिनीडंड ॥ मयण सरव मोदी कामिनी संग तोमी ॥
 तजिय कनक कोडी मुक्तिसूं प्रीति जोडी ॥ नव नव नय वामी शुद्ध चारित्र पामी ॥
 इह जग शिवगामी ते नमो जवु स्वामी ॥ ७४ ॥ अथ श्रावकधर्म विषे ॥ शा
 र्दूलविक्रीडितडंड ॥ जे सम्यक्त लही सदा व्रत धरे, सर्वज्ञ सेवा करे ॥ संध्या वश्य
 क आदरे गुरु नजे, दानादि धर्माचरे ॥ नित्ये सद्गुरु सेवना मनधरे एवो जि
 नाधीशरे ॥ नारुयो श्रावकधर्म दाय दग्धा, जे आदरे ते तरे ॥ ७५ ॥ मालिनी
 ठद ॥ निशिदिन जिनकेरी जे करे शुद्ध सेवा ॥ अणु व्रत परि जे ते काम आनंद
 देवा ॥ चरम जिन वरिदे जे सुधर्म सुवास्या ॥ समकित सतवता श्रावका ते प्रस
 स्या ॥ ७६ ॥ ५म अरथ रसाला जे रची सूक्तमाला ॥ धरम नृपति वाला मालि
 नी ठद शाला ॥ धरम मति धरता एइहा पुण्य वाच्यो ॥ प्रथम धरम केरो सार ए
 वर्ग साच्यो ॥ ७७ ॥ इति श्रीमत्सूक्त मुक्तावल्या धर्मवर्ग प्रथम समाप्त ॥ १ ॥

॥ अथ अर्थवर्ग प्रारंभ ॥

उपेइवजाठद ॥ अथार्थवर्गे हितचित्तन श्रीभितपचार्यस्व महीशसेवा ॥
 खलादिमैत्री व्यसनादि चैव, मिहावधार्या कतिचित्प्रसंगा ॥ १ ॥ अथ अर्थ
 विषे मालिनी ठद ॥ अरथ अरजि जेणे स्वायते विश्व होवे ॥ जिण विण शु
 ण विद्या रूपने कोण जोवे ॥ अनिनव सुखकेरो सार ए अर्थ जाणी ॥ सकल
 धरम एथी साधिए चित्त आणी ॥ २ ॥ अरथ विण कवन्नो जेह वेइयाइ ना
 र्ख्यो ॥ अरथ विण वसिष्टे राम जातो उवेख्यो ॥ सुकृत सुजस कारी अर्थ ते ए
 उपाजो ॥ कुवणज उपजंतो अर्थ ते दूर वर्जो ॥ ३ ॥ अथ हित चित्तनवि
 पे ॥ परहित करवा जे चित्त उवाह धारे ॥ परकृत हितहीये जे न काई विसारे ॥
 प्रति हित परथी ते जे न वाढे कदाई ॥ पुरुष रयण सोई वडिए सो सदाई ॥ ४ ॥
 निज छुख न गणीने पारकू ड ख वारे ॥ तिह्ण वलिहारे जाइए कोडि वा
 रे ॥ जिम विपन्नर जेणे मंक पीडा सहीने ॥ विपधर जिनवीरे बूज्यो ते वहीने
 ॥ ५ ॥ अथ लक्ष्मीविषे ॥ हरि सुत रति रगे जे रमे रात सारी ॥ शिवतनय कुमा
 रो ब्रह्म पुत्री कुमारी ॥ हितकरि दृगलीजा जेहने लडि जोवे ॥ सकल सुख ल
 हे सो सोहि विख्यात होवे ॥ ६ ॥ लखमि बलि यशोदा नदने विश्व मोहे ॥ ल
 खमि विण विरूपी सद्यु जिहू न सोहे ॥ लखमि लहिय राके जे शिलादित्य ना
 ज्यो ॥ लखमि लहिय शाके विक्रमे विश्व रज्यो ॥ ७ ॥ अथ कृपणविषे ॥ कण

कण जिम संचे कीटिका धान्यकेरो ॥ मधुकर मधु संचे जोगवे को अनेरो ॥ ति
 म धन रुपणकेरो नोपकारे दिवाये ॥ इमहि विलय जाए अन्यथा अन्य खाए ॥
 ७ ॥ रुपण पणु धरंतां जे नवे नंद राया ॥ कनक गिरि कराया ते तिहां अर्थ
 नाया ॥ इम मजत करतां डुख वासे वसीजे ॥ रुपण पणु तजीजे मेघज्यूं दा
 न दीजे ॥ ८ ॥ अथ याचनविपे ॥ निरमल गुण राजी त्या लगे लोक राजी ॥
 तव लग कहि जीजी त्या लगे प्रीति जाजी ॥ सुजन जन सनेही त्यां लगे मि
 त्र तेही ॥ मुख थकि न कहीजे ज्या लगे देहि देही ॥ १० ॥ जइ वडपण वाडे
 मागजे तो न काई ॥ लहु पण जिण होवे केम कीजे तिकाई ॥ जिम लघु थइ सोनें
 वीरथी दान लीयूं ॥ हरि बल नृप आगे वामना रूप कीयूं ॥ ११ ॥ अथ नि
 र्धनविपे ॥ धनविण निज बंधू तेहने दूर डंडे ॥ धनविण गृह चार्या तेह सेवा न
 मंडे ॥ निरजल सरजेवो देह निर्जीव जेवो ॥ निरधन तृण जेवो लोकमे ते गणे
 वो ॥ १२ ॥ सरवर जिम सोहे नीर पूरे नरायो ॥ धन करि नर सोहे तेम नीते
 उपायो ॥ धनकरिय सुंहतो माघ जे जाए दूतो ॥ धनविण पग सूजी तेह दीगो मर
 तो ॥ १३ ॥ अथ राज सेवाविपे ॥ सुजनसुं हित कीजे डुर्जना सीख दीजे ॥ जग
 जन वश कीजे चित्त वांठा वरीजे ॥ निज गुण प्रगटीजे विश्वना कार्य कीजे ॥ प्रभु
 सम विचरीजे जो प्रभुसेव कीजे ॥ १४ ॥ जगतिकरि वडानी सेव कीजे तिकाई
 ॥ अधिक फल न आपे कर्मथी ते तिकाई ॥ जलधि तरिय लंका सीत संदेस
 लावे ॥ हनुमत करमे ते राम कडोट पावे ॥ १५ ॥ अथ खलताविपे ॥ रस विर
 स-जजे ज्यूं अंब निंब प्रसंगे ॥ खल मिलण दुवे खूं अंतरग प्रसंगे ॥ सुण सु
 ण ससनेही जाणि ले रीति जेही ॥ खल जन निसनेही तेहडूं प्रीति केही ॥ १६
 मगर जल वसंतो ते कपीराय दीगो ॥ मधुर फल चरवावी ते कखो मित्र मीगो
 ॥ कपि कलिज नखेवा मत्स खेळी खलाई ॥ जलमहि कपि बुद्धी ठामि वे ते जला
 ई ॥ १७ ॥ अथ अविश्वाशविपे ॥ उपजाति ठंड ॥ विश्वासिसाथे न ठले रमीजे ॥ न
 घेरि विश्वास कदापि कीजे ॥ जो चित्त ए गीर गुणे धरीजे ॥ तो लडि लीजा ज
 गमां वरीजे ॥ १८ ॥ इडवजाठंड ॥ चाणायके ज्यूं निज काज साखो ॥ जे राज चागी नृप
 तेह माखो ॥ जो घूअडे काक विश्वास कीथो ॥ तो वायसे घूकने दाह दीथो ॥ १९ ॥
 अथ मैत्रीविपे ॥ मालिनीठंड ॥ करि कनक सरीसी साधु मैत्री सदाई ॥ घसि कसि
 तप वेधे जास वाणी सवाई ॥ अहव करहि मैत्री चडमा सिंधु जेही ॥ घट घट
 वध वाधे सारखा वे सनेही ॥ २० ॥ इह सहज सनेहे जे वधे मित्रताई ॥ रवि प

रि न चले ते काजज्युं बंधुताई ॥ हरि हलधर मैत्री कृष्णने जे ठमासे ॥ हलधर नि
 ज खंधे ले फिखो जीवि आसे ॥२१॥ अथ व्यसन विपे ॥ नलिन मलिन शोना सां
 ऊथी जेम थाए ॥ इह कुवसनथी ल्युं संपदा कीर्ति जाए ॥ कुविसन तिण हेते स
 र्वथा दूर कीजे ॥ जनम सफल कीजे कीर्ति कांता वरीजे ॥ २२ ॥ अथ द्यूतविपे ॥ इ
 तविलवित ठंद ॥ सुगुरु देव जिहा नवि लेखवे ॥ धनविणा सद्गुण जिण खेलवे ॥ नव
 नवे नमवूं जिण ऊवटें ॥ कहिनि कोण रमे तिण जूवटें ॥ २३ ॥ अथमांस नहण
 विपे ॥ उपजातिठंद ॥ जे मांस जुव्वा नर ते न होवे ॥ ते राक्षसा मानुपरूप सोवै ॥ अथ
 चोरीविपे ॥ जे लोकमां नर्ग निवास ऊरी ॥ निवारीए ते परडव्यचोरी ॥ २४ ॥ अथ म
 द्यविपे ॥ सुयंगप्रयातठंद ॥ सुरापानथी चित्त सत्रात थाये ॥ गले लाज गंजीरता शी
 ल जाये ॥ जिहा ज्ञान विज्ञान सूजे न बूजे ॥ इशू मद्य जाणी न पीजे न दीजे ॥
 ॥२५॥ अथ वेश्याविपे ॥ कहो कोण वेश्या तणो अग सेवे ॥ जिणे अर्थनी लाजनी
 हाणि होवे ॥ जिणे कोश सिंहा गुफाये निवासी ॥ ठव्यो साधु ने पालग्यो कंबलासी
 ॥२६॥ अथ खेटकविपे ॥ ठंद ॥ मृगयाने तज जीव घात जे ॥ सघले जीव दया सदा
 नजे ॥ मृगयाथी डुख जे लह्या नवा ॥ हरि रामादि नरेड जे हवा ॥ २७ ॥
 परस्त्रीविपे चाँपाईठंद ॥ स्वर्ग सौख्यनणि जो मन आशा ॥ ठाडे तां परनारि
 विलासा ॥ जेण एण निज जन्म डु खए ॥ सर्वथा न परलोक सूखए ॥ २८ ॥
 अथ ए विपयोना उदाहरणो ॥ शार्दूलविक्रीडितठंद ॥ जूवा खेलण पांमवा वन
 नम्या, मये बली ढारिका ॥ मांसे श्रैणिक नारकी डुख लह्या, बांध्या नरे चोरि
 का ॥ आखेटे दशरत्थपुत्र विरही, केवन्न वेश्या घरे ॥ लंकास्वामि परत्रिया रस
 रमे, जे ए तजे ते तरे ॥२९॥ अथ कीर्तिविपे ॥ मालिनी ठंद ॥ दिशिदिशि पसरं
 ती चड्मा ज्योति जैसी ॥ श्रवण सुणत लागे जाण मीठी सुधासी ॥ निशिदिन
 जनगाये रामराजिंद जेवी ॥ इण कलि बहु पुण्ये पामिये कीर्ति एवी ॥३०॥ अथ
 प्रधानविपे ॥ सकल व्यसन वारे स्वामिसूं नकिधारे ॥ स्वपरहित वधारे राज्यना का
 ज सारे ॥ अनय नय विचारे कुडता दूर वारे ॥ निजसुत जिम धारे राज्य लक्ष्मी
 वधारे ॥ ३१ ॥ अथ कलाविपे ॥ चतुर कर कलानो सग्रहो सौख्यकारी ॥ इण
 गुण जिण लाधी डाँण सपत्ति सारी ॥ त्रिपुर विजय कर्ता जे कलाने प्रसंगे ॥ हि
 मकर मनरगे ले धखो उक्तमांगे ॥३२॥ अथ मूर्खताविपे ॥ वचन रस न जेवे मूर्ख
 वार्ता न वेदे ॥ तस कुवचन खेदे तेहने सीख जे दे ॥ नृपशिरःरज नाखी जेण मू
 र्खे वहीने ॥ हित कहत हणीज्युं वानरे सुग्रहोने ॥३३॥ अथ लज्जाविपे ॥ निज

वचन निवाहे लाज गुराज्य वाले ॥ व्रत नय कुलरीते मातृज्यं लाज पाले ॥ सक
ल गुण सुहावे लाजथी नावदेवे ॥ व्रत नियम लह्यो जे नाइ लज्जा प्रनावे ॥३४॥
शालिनी वंद ॥ एवा जे जे रूयडा नाव राजे ॥ एणोविश्वे अर्थथी तेह ठाजे ॥ एवुं
जाणी सार ए सौख्य केरो ॥ ते धीरा जे अर्थ अर्ज नखेरो ॥ ३७ ॥ इतिश्री सूक्त
मुक्तावल्यां अर्थवर्गो द्वितीय. समाप्त. ॥ २ ॥

॥ अथ कामवर्ग प्रारंभः ॥

उपजाति वंद ॥ ग्राह्या कियंत. किल कामवर्गे कामो नृनार्यो गुणदोषनाज. ॥
सुलहणे योगवियोगयुक्ते समातृपितृप्रमुखा प्रसंगा ॥ १ ॥ अथ कामविपे ॥
कंदर्प पंचानन तेज आगे ॥ कुरंग जेवा जगजीव नागे ॥ स्त्रीशस्त्र लेई जग जे व
दीता ॥ तिण देवा जनवृंद जीता ॥ २ ॥ मालिनी वंद. ॥ मनमथ जगमाहे ड
जैयीजे अद्यापी ॥ त्रिभुवन सुरराजी जासशस्त्रे सतापी ॥ जलज विधि उपासे वा
दिजा विष्णु सेवे ॥ हर हिम गिरिजाने जेण अर्धांग देवे ॥ ३ ॥ शार्दूलविक्रीडित
वंद. ॥ जिह्वीनाव चव्यो महेश उमया, जे काम रागे करी ॥ पुत्री देखि चव्यो चतुर्मु
ख हरी, आहैरिका आदरी ॥ इंई गोतमनी त्रिया विलसिने. संजोग ते ओलव्या ॥
कामे एम महंत देव जग जे, ते ओलव्या रोलव्या ॥ ४ ॥ मालिनी वंद. ॥ नल नृ
पद वदंती देखि चारित्र चाले ॥ अरह नरहनेमी ते तपस्या विटाले ॥ चरम जिन
मुनी ते चिह्नणारूप मोहे ॥ मयण सर व्यथाना एह उन्माठ सोहे ॥ ५ ॥ अथ
गुणदोषोद्भावनविपे ॥ रथोद्भवावंद. ॥ उत्तमा पण नरा न संजवे ॥ मथ्यमा तिम
न योपिता हुवे ॥ एह उत्तमिक मथ्यमी पणो ॥ वेदुमाहि गुणदोषनो गिणो ॥६॥
तत्र पुरुषगुणा यथा ॥ शार्दूलविक्रीडितवंद ॥ जे नित्ये गुण वृंद ले परतणा, दोषां
न जे दाखवे ॥ जे विश्वे उपगारिने उपकरे, वाणीसुधा जे लवे ॥ पूरा पूनिम चद
जेम सुगुणा, जे धीर मेरुसमा ॥ उमा जेह गंजीर सायर जिस्वा, ते मानवा उत्तमा
॥७॥ अतुसुप्त वंदः ॥ रूप सौभाग्य संपन्ना. सत्वादिगुणशोचना ॥ ते लोके विरला
धीराः श्रीराम सदृशा नरा ॥ ७ ॥ अथ पुरुष दोषा यथा ॥ शार्दूलविक्रीडितवंद. ॥
लंकासामि हरति राम तजि जे, शीतातणी एवकी ॥ स्त्रीवेची हरिचद पांमव नृपे, क
ण्णा न राखी सको ॥ रात्रे ठामि निज स्त्रिया नल नृपे, ए दोष मोटा जणी ॥ जोवो
उत्तम माहि दोष गणना, का वात बीजातणी ॥ ८ ॥ अथ स्त्रीगुणा यथा ॥ उपजा
तिवंद ॥ सुसीख आले प्रिय चित्त चाले ॥ जे शीज पाले गृह चित्त टाले ॥ दाना

दि जेणे गृहधर्म होई ॥ ते गेहि नित्ये घरलडि सोई ॥ १० ॥ अथ स्त्रीदोषा यथा
 ॥ उपजातिबंध ॥ चर्चा हृषो जे पति मारकाये ॥ नाख्यो नदीमां शुक्र मालिका
 ये ॥ सुदर्शनश्रेष्ठि सुशील राख्यो ॥ ने आल वेई अचयाय दाख्यो ॥ ११ ॥ वस
 ततिलका उद ॥ माख्यो प्रवेशि सुरिकाति विपयावलीए ॥ राजा यशोधर हृषो न
 यनावलीए ॥ डुखी कखो स्वसुर नूपुर पडिताए ॥ दोषी त्रिया इम - जणी
 इण दोपताए ॥ १२ ॥ अथ सुजहणी स्त्रीविपे -- गार्दूलविक्रीडितबंध ॥ रुडी
 रूपवती सुशील सुगुणी, जावण्य अंगे लसे ॥ लज्जालु प्रियवादिनी प्रियतणे, चित्ते
 सदा जे वसे ॥ लीला यौवन उद्वसे उरवसी, जाणे नृलोके वशी ॥ एवी पुण्यतणे
 पसाय लहिये, रामे रमा सारशी ॥ १३ ॥ उपजातिबंध ॥ सीता सुजडा नलराय रा
 णी ॥ जे झोपदी शीलवती वखाणी ॥ जे एहवी शीलगुणे समाणी ॥ सुलहणा ते
 जगमाही जाणी ॥ १४ ॥ अथसयोगविपे ॥ मालिनी उद, प्रियसखि प्रिययोगे उद्व
 से नेत्र रगे ॥ हसित मुख शशीज्यु सर्व रोमाच अंगे ॥ कुच इक सुज वैरी नघता
 जे न दाखे ॥ प्रिय मिलण समे जे अंतरो तेह राखे ॥ १५ ॥ अथ वियोगविपे
 दिन वरस समाणे रैणि कटपात जाणे ॥ हिम रज कदली जे तेह जालां प्रमाणे
 ॥ शशिरसिकरसो जे सरसो सोड लागे ॥ प्रिय विरह प्रियाने डुख झूं झूं न जागे
 ॥ १६ ॥ अथ माताविपे ॥ इड्वजाबंध ॥ जे मातनो बोल कदा न लोपे ॥ जे विश्वमा सू
 रज जेम आपे ॥ ज्या धर्म चर्या बहुधा परीखी ॥ त्या मातपूजा सहुमां सरीखी
 ॥ १७ ॥ जे मात मोहे जिन एम कीयो ॥ गर्जे वसता व्रत नेम लीयो ॥ जे मात न
 डा वयणे प्रबुद्धो ॥ शीजा तपते अरहन्न सीधो ॥ १८ ॥ अथपिताविपे ॥ जे बाल जा
 वे सुतने रमाडे ॥ विद्या नणावे सरसू जमाडे ॥ ते तातनो प्रत्युपकार एही ॥ जे तेह
 नी नकि हिये वहेही ॥ १९ ॥ मालिनीबंध ॥ निपथ सगर राया जे हरीनड च
 डा ॥ तिम दशरथ राया जे प्रसन्ना मुनिडा ॥ मनक जनक जेते पुत्रने मोह ना
 खा ॥ स्वसुत हिन करीते तेहना काज साखा ॥ २० ॥ अथ पुत्रविपे ॥ स्वागताबंध
 मात तातपद पकज सेवा ॥ जे करे तस सुपुत्र कहेवा ॥ जेह कीर्ति कुजलाज वधा
 रे ॥ सूर्य जेम जगि तेज सधारे ॥ २१ ॥ शालिनीबंध ॥ गंगापुत्रे विश्वमां कीर्ति
 रोपी ॥ आडा जेणे तातकेरी न लोपी ॥ ते धन्या जे अजनापुत्र जेवा ॥ जेणे की
 री जानकी नाथ सेवा ॥ २२ ॥ तोटकबंध ॥ इम काम विजास उलास तए ॥ र
 सरीति हवे अनुभावतए ॥ जिमचदन अंग विलेप तए ॥ हिय होय सदा सुख
 संपतए ॥ २३ ॥ इति श्रीसूक्त मुक्तावल्या काम वर्गस्तृतीय समाप्त ॥

अथ मोक्षवर्ग प्रारंभः-

उपजातिवृद्धः ॥ ग्राह्या कियंतः किल मोक्षवर्गे कर्मकृत्यासंयमनावनाद्याः ॥ वि
वेकनिर्वेदनिजप्रबोधा इत्येवमेते प्रवरप्रसंगाः ॥ १ ॥ मोक्षार्थविषे माजिनीवृ
द्धः ॥ इह नव सुख हेते के प्रवर्ते नलेरा ॥ परन्व सुखहेते जे प्रवर्ते अनेरा ॥ अ
व र अरथ ठंणी मुक्ति पंथा अराधे ॥ परम पुरुष सोई जेह मोक्षार्थ साधे ॥ २ ॥
तजिय नरत केरी जेण ठे खंड जूमी ॥ शिवपथ जिण साथ्यो सोलमे सांति सामी ॥
गजमुनि सुप्रसिद्धा नेम प्रत्येक बुद्धा ॥ अवर अर्थ ठंडी धन्य ते मोक्ष बुद्धा ॥ ३ ॥
अथ कर्मविषे ॥ करम नृपति कोपे दुःख आपे धणोरा ॥ नरय तिरय केरा जन्म ज
न्मे अनेरा ॥ शुभ परिणति होवे जीवने कर्म तेवे ॥ सुरनरपतिकेरी संपदा सोई
देवे ॥ ४ ॥ करम शशि कलंकी कर्म जिहू पिनाकी ॥ करम बलि नरेई प्रार्थना
विष्णुरांकी ॥ करम वश विधाता इंडू सूर्यादि होई ॥ सबल करम सोई, कर्म जेवो
न कोई ॥ ५ ॥ अथ कृमाविषे ॥ इरित नर निवारे जे कृमा कर्म वारे ॥ सकल
तप सधारे पुन्य लक्ष्मी वधारे ॥ श्रुत सकल अराधे जे कृमा मोक्ष साधे ॥
जिण निज गुण वाधे ते कृमा कां न साधे ॥ ६ ॥ सुगति लहि खिमाए खंध
सूरीस सीसा ॥ सुगति दृढ प्रहारे कूरगभू सुनीसा ॥ गज मुनिस खिमाए मु
क्ति पंथा अराधे ॥ तिम सुगति खिमाए साधु मैतार्य साधे ॥ ७ ॥ अथ संयमविषे
स्वागता वृद्ध ॥ पूर्वे कर्म सवि संयम वारे ॥ जन्म वारिनिधि पार उत्तारे ॥ तेह संयम
न केम धरीजे ॥ जेण मुक्ति रमणी वश कीजे ॥ ८ ॥ तुंग शैल बलदेव सुहायो ॥ जे
ण सिंह मृग बोध बतायो ॥ तेम संयम लहीय अरायो ॥ जेण पंचम सुरालय पायो
॥ ९ ॥ अथ द्वादश जावनाविषे ॥ तत्र प्रथम अनित्य जावना ॥ माजिनी वृद्धाधण
कण तनु जीवी बीज जात्कार जेवी ॥ सुजन तरुण मंत्री स्वप्न जेवी गणोवी ॥
अहमत ममताए मूढता कांइ माचे ॥ अशिर अरथ जाणी एणशं कोण राचे
॥ १० ॥ धरणि तरु गिरिंदा देखिए जाव जेई ॥ सुर धनुष परे ते जंगुरा जाव तेई
५म लट्ठय विमासी कारमी देह ठाया ॥ तजिय नरतराया चित्त योगे लगाया ॥ ११ ॥
द्वितीय अस्तरण जावना ॥ परम पुरुष जेवा संहसा जे कृताते ॥ अवर सरण के
तुं लीजिये तेह अंते ॥ प्रिय सुदृढ कुटंबा पाण वेवा जिकोई ॥ मरण समय राखे
जीवने ते न कोई ॥ १२ ॥ सुर गण नर कोडी जे करे जास सेवा ॥ मरण जय
न नूटा तेह ईशदि वेवा ॥ जगत जन हगंतो एम जाणी अनाथी ॥ व्रत ग्रहिय वि
नूटा जेह संसारमाथी ॥ १३ ॥ तृतीय संसार जावना ॥ शार्दूलविक्रीडितवृद्धः ॥

तिर्यचादि निगोद नारकितणी, जे योनि योनी रह्यां ॥ जीवे ड ख अनेक दुर्गति
 णा, कर्मप्रजावे लह्या ॥ या संयोग वियोग रोग बहुधा, या जन्म जन्मे सुखी ॥ ते
 ससार असार जाणि इहवो, जे ए तजे सो सुखी ॥ १४ ॥ इवजा ठंड ॥ जे हीन
 ते उत्तम जाति जाए ॥ जे उच्च ते मध्यम जाति थाए ॥ ज्युं मोक्षमेतार्य
 मुनीइ जाए ॥ ज्युं मंगु सूरी पुरयक थाए ॥ १५ ॥ चतुर्थ एकत्वजावना
 पुण्ये अकेलो जिव स्वर्ग जाए ॥ पापे अकेलो जिव नर्क जाए ॥ ए जीव जा आ
 व करेअकेलो ॥ ए जाणिने ते ममता महेलो ॥ १६ ॥ उपजाति छंद ॥ ए एकलो जी
 व कुटव योगे ॥ सुखी दुखी ते तस विप्रयोगे ॥ स्त्री हाथ देखी चलयो अकेलो ॥ न
 मी प्रबोथ्यो तिणथी वहेलो ॥ १७ ॥ पंचम अन्यत्वजावना ॥ जो आपणो देहज ए
 न होई ॥ तो अन्यको आपण मित्त कोई ॥ जे सर्व ते अन्य इहा जणीजे ॥ केहो ति
 हा हर्ष विपाद कीजे ॥ १८ ॥ देहादि जे जीवयकी अनेरा ॥ श्यो ड ख कीजे तस
 नासकेरां ॥ ते जाणिने बाधणिने प्रबोधी ॥ सुकोसजे स्वांगन सारकीधी ॥ १९ ॥ अथ
 अशुचिजावना ॥ काया महा एह अशुचितार्ई ॥ जिहां नव द्वार वहे सदाई ॥ कस्तू
 रिकपूर सुद्वय सोई ॥ ते काय संयोग मलीन होई ॥ २० ॥ अशुचि देही नर नारि केरी
 ॥ म राच जे ए मलमूत्र सेरी ॥ ए कारमी देह असार देखी ॥ चतुर्थ चक्रिय पण ते उवखी
 ॥ २१ ॥ सप्तमी आश्रवजावना ॥ मालिनी छंद ॥ इह अविरति मिथ्या योग पापादि साधे
 ५ण उण नव जीवा आश्रवे कर्म बाधे ॥ करम जनक जेने आश्रवा जे न रुंधे ॥ स
 मर समय आत्मा सवरी सो प्रबुद्धे ॥ २२ ॥ इवजा छंद ॥ जेकुडरीके व्रतठाडि दीधुं
 ॥ जाईतणू तेवलि राज्य लीधुं ॥ तेड ख पाय्या नरके घणेरा ॥ तेहेतु एआश्रव दोपकेरा ॥ २३
 अष्टमी सवरजावना जे सर्वथा आश्रवने निरुंधे ॥ तेसंवरी संवरजाव साधे ॥ ते जाववदो
 गुरुवज्ज स्वामी ॥ जेणे त्रिया कंचन कोडिवामी ॥ २४ ॥ नवमी निर्जरा जावना ॥ मालिनी
 छंद ॥ डयदस तपनेदे कर्म ए निर्जराण ॥ उत्तपति थिति नाशे लोक जावा नराण ॥ डुरलन
 जग बोधी छलेना धर्मबुद्धी ॥ नव हरणि विजावो जावना एह गुद्धी ॥ २५ ॥ उपजाति छंद ॥
 वे निर्जरा काम सकाम तेही ॥ अकाम जे ते मरुदेवि जेही ॥ ते ज्ञानथी कर्मह निर्ज
 रीजे ॥ दृढ प्रहारी परि तो तरीजे ॥ २६ ॥ दशमी लोकजावना ॥ मालिनी छंद ॥
 जिम पुरुष विलोये ए अधो लोक तेवो ॥ तिरिय पण विराजे थाल स्योवृत्त जे
 वो ॥ उरध मुरज जेवो लोकनाले प्रकास्यो ॥ तिमज नवन जानू केवली ज्ञान
 नास्यो ॥ २७ ॥ एकादश बोधिदुर्लभजावना ॥ स्वागता छंद ॥ बोधि बीज लहि
 जेह अराधे ॥ ते श्लासुत परे शिव साधे ॥ धर्म जावन लही नवि जावो ॥ राय

संप्रति परे सुख पावो ॥ १८ ॥ अथ रागविषे ॥ इन्द्रवज्रा ढंद ॥ रागे म राचे जव
 बंध जाणी ॥ जे जाण ते राग वझे अनाणी ॥ गौरी तणे राग महेस रागी ॥ अर्धांग देवा नि
 जबुद्धि जागी ॥ १९ ॥ अथ द्वेषविषे ॥ रे जीव विद्वेष मने म आणे ॥ विद्वेष संसार
 निदान जाणे ॥ सासूनणदे मिलि कूड कीधूं ॥ जूवं सुनडा शिर आल दीधूं ॥ २० ॥
 अथ संतोषविषे ॥ वसंततिलका ढंदः ॥ संतोष तूत जनने सुख होय जेवुं ॥ ते इव्य
 लुब्ध जनने सुख नाहि तेवुं ॥ संतोषवत जनने सद्गु लोक सेवे ॥ राजेंद्र रक सरि
 खा करि जेह जोवे ॥ २१ ॥ अथ विवेकविषे ॥ उपजाति ढंदः ॥ जो जेह चित्ते सुवि
 वेक जाते ॥ तो मोह अंधार विकार नाशे ॥ विवेक विज्ञानतणे प्रमाणे ॥ जीवादि जे
 वस्तु स्वभाव जाणे ॥ २२ ॥ इन्द्रवज्रा ढंदः ॥ बाला पणे संयम योग
 धारी ॥ वर्षाकृतें काचलि जेण तारी ॥ श्रीवीरकेरो अयमत्त तेई ॥ सुज्ञान पाम्यो सु
 विवेक लेई ॥ २३ ॥ अथ निर्वेदविषे ॥ शार्दूलविक्रीडितढंदः ॥ जे बंधूजन कर्म बंधन जि
 सा, नोगा जुजगा गिणे ॥ जाणंतो विषसारिखी विषयता, संसारता ते हणे ॥ जे सं
 सारह रागहेतु जनने, संसार नावा दुवे ॥ नावो तेइ विरागवत जनने, वैराग्यता
 दाखवे ॥ २४ ॥ वसंततिलकाढंद ॥ निर्वेद ते प्रबल दुर्जर बंदिखाणो ॥ जे ढोडवा
 मनधरे बुध तेह जाणो ॥ निर्वेदथी तजिय राज विवेक लीधो ॥ योगींइ चर्तुहरि सं
 यम योग लीयो ॥ २५ ॥ अथ आत्मबोधविषे ॥ ए मोहनींद तजि केवल बोध हेते ॥
 ते ध्यान शुद्ध रुद्धि नावनि एक चित्ते ॥ ज्युं निःप्रपंच निज ज्योति स्वरूप पावे ॥
 निर्बोध जे अखय मोह सुखार्थ आवे ॥ २६ ॥ मालिनी ढंदः ॥ नवि विषयतणा जे
 चचला सौख्य जाणी ॥ प्रियतम प्रिय योगा चंगुरा चित्त आणी ॥ करमदल स्वपे
 ई केवल ज्ञान लेई ॥ धन धन नर तेई मोह साधे जिकेई ॥ २७ ॥ इति मोहव
 र्गं चतुर्थं समाप्तः ॥

उपजाति वृत्तं ॥ इत्येवमुक्ता किल सूक्तमाला विचूपिता वर्गचतुष्टयेन ॥ तनोतु
 शोभा मधिकं जनानां कंठस्थिता मौक्तिकमालिकेव ॥ १ ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥
 आसीत्सकुणसिंधुपार्वणशशी श्रीमत्तपागह्वप सूरिः श्रीविजयप्रनाजिधगुरुर्बुध्या
 जित स्वर्गुरु ॥ तत्पट्टोदयचूधरो विजयते नास्वानिवोद्यत्प्रन सूरिः श्रीविजयादिर
 त्सुगुरुर्वै षड्जनानंदचूः ॥ २ ॥ आर्यावृत्तं ॥ विख्यातास्तज्ञ्ये, प्राज्ञाः श्रीशांतिवि
 मलनामान ॥ तत्सोदरा बचूवुः प्राज्ञाः श्रीकनकविमलाब्हा ॥ ३ ॥ तेषामुज्ञो विनेयौ
 विद्वान् कत्र्याणविमल इत्याब्हा ॥ तत्सोदरो द्वितीय केसरविमलाजिधो ऽवरजः ॥ ४ ॥
 तेन चतुर्निर्वैर्गै, रचिता नापानिबद्धरुचिरेथं ॥ सूक्तानामिह माला, मनोविनोदाय

वाजाना ॥ ५॥ वेदेंद्रियर्षि च्छ, प्रमिते श्रीविक्रमाहते वर्षे ॥ अग्रंथि सूक्तमाला केसर
विमलेन विबुधेन ॥ ६ ॥ इति श्रीसूक्तमुक्तावली सपूर्ण.

॥ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

अथ

श्री विनयविजयजी उपाध्यायकृत शांतसुधारस ग्रथ अर्थसहित प्रारम्भ.

शार्दूलविक्रीडितञ्जदं ॥ नीरंध्रे नवकानने परिगलत्पचाश्र
वांनोधरे नानाकर्मलतावितानगहने मोहांधकारोत्सुरे ॥
भ्रान्तानामिह देहिनां स्थिरकृते कारुण्यपुण्यात्मजिस्तीर्थे
शौ प्रथितास्सुधारसकिरो रम्या गिर पांतु व ॥ १ ॥

अर्थ ॥ प्रथमग्रंथकर्ता ग्रथनेआर्दे श्रीतीर्थकरदेवनी वाणीनी स्तुतिकरी मंग
लाचरणकरेणे हेनव्यो जेमां कोइविडनथी एटलेनिकजवानो वारणोनथी वलीजेमां
समस्तप्रकारे पाचआश्रवरूप मेघ वरसीरह्ये तथानानाप्रकारना ज्ञानावरणीयादि
क कर्मोनीप्रकृतिरूप वेलियेकरीव्याप्त अनेमोहरूप अंधकारेकरीयुक्त एहवोआसं
साररूपवन तेमाफिरनाराजे प्राणीओ तेने स्थिरकरवानेअर्थे करुणार्थेकरीपवित्रने
अंत करणजेहनो एहवा चतुर्विधसंघरूप तीर्थनाईश्वरजे श्रीतीर्थकरदेव तेणेउपदे
सेली अमृतरसने वरसती एहवीरमणीयजेवाणी ते तमारु रक्षणकरो ॥ १ ॥

द्रुतविलंबितं वृत्तत्रयांस्फुरति चेतसि जावनया विना न वि
डुषामपि शांतसुधारस ॥ न च सुखं कृशमप्यमुना विना
जगति मोहविपादविपाकुले ॥ २ ॥ यदि नवभ्रमखेदप्र
राड्मुखं यदि च चित्तमनंतमुखोन्मुख ॥ शृणुत तत्सुधि
य शुभजावनाभूतरसं मम शांतसुधारसं ॥ ३ ॥ सुम
नसो मनसि श्रुतपावना निदधतां द्यधिका दश जावना ॥

यदिह रोहति मोहतिरोहिताभूतगतिर्विदिता समतालता ॥ ४ ॥

अर्थ-॥ हवेजेशांतसुधारसते जावनाओविना स्फुरतो नथी तेकहेणे विद्वानलोको

ना अंतःकरणमांपण शांतिरूपश्चमृतनोरस तेनाविना स्फुरतोन्धी अने मोह
 तथा खेद तहूपविपैकरीव्याप्त एहवोजेजगत तेमां शांतसुधारसविना किंचित्मात्र
 थोमोपणसुखनथी ॥ ३ ॥ माटेआशांतसुधारसनामा ग्रंथमांजलवानो उपदेशकरेढे
 हेचुदिमंतो जोतमारुंमन संसारत्रमणकरवाना खेदेंकरी पराद्मुख उपरांतूं थयोहोय
 अनेजेमां अनंतसुखढे एहवोजेमोह तेनासुखपामवानेविषे सन्मुखथयो होय तोजेमां
 मनोहरजावनानो रसनरेलोढे एवोमारो आशांतसुधारसनामा ग्रंथसांजलो ॥ ३ ॥
 हवे जावनाथी समताप्रगटथायतेकहेढे हेपंमितजनो आसंसारमा जेजुंश्रवणमा
 त्रकरवाथीज पवित्रतानेकरनारी एहवीबारजावनाढे तो तेने धारणकरनारो जेजीव
 तेनारुदयमां मोहजेअज्ञान तेने आह्लादितकरनारी अनेजेहनी अजुतगतिढे एहवी
 प्रख्यात समतारूप वेलीप्रगटथरो ॥ ४ ॥

रथोद्धतावृत्तं॥आर्तरींङपरिणामपावक छुष्टजावुकविवेकसौष्ठवे॥
 मानसे विषयलोलुपात्मना क प्ररोहतितामां समांकुरः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतापामवाने जे अयोग्यहोयतेकहेढे जेजुंमन पांचेंडियना त्रेवीस
 विषयोनेविषे लोलुपढे एहवाप्राणोअोने आर्त रींङध्यानेकरीने उत्पन्नथयेली एह
 वीजे मातापरिणामरूप अग्नि तेणेकरीने जावनाना रसनेविषे जे चतुरपुरुषोढे तेना
 विचाररूप रूडापणुं जेमांथीबलीगुंढे एहवाप्राणीअोना मनमा समतानोअंकुर
 किहांथी उत्पन्नथाय अर्थात्तनजथाय ॥ ५ ॥

वसंततिलकावृत्तं॥यस्याशयं श्रुतकृतातिशयं विवेकपी
 यूपवर्परमणीयरमं श्रयंते ॥ सद्भावना सुरजता नहि
 तस्य दूरे लोकोत्तरप्रशमसौख्यफलप्रसूति. ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतापामवाने योग्यहोयतेकहेढे सिद्धातश्रवणादिकेकरीने अत्यं
 तपणे संपूर्णनरेला वृद्धिपामेला तथा विवेकरूप अमृततृष्टीनी रमणीयजेक्रीडा ते
 णेकरीने रम्यके० मनोहर शोभायमान एहवाजेनां अंत करणढे तेवांअंत करणो
 मा सद्भावनाअो श्रयंतेके० प्रवेशकरेढे तेथीतेपुरुषने लोकोत्तरजे प्रशमके० शांतर
 सनासुख अर्थात्मोहसुख तेनाफलने प्रसयनारी एहवीजे सुरजताके० कल्पजता
 ते दूरनथी अर्थात् तेहने मोहदूरनथी ॥ ६ ॥

अनुपवृत्तघ्यं॥ अनित्यताशरणते नवमेकत्वमन्यता ॥ अशौच
माश्रवं चाल्मन् संवरं परिजावय ॥७॥ कर्मणो निर्जरां धर्मं सुकृतां
लोकपद्मति ॥ बोधिङ्गुलं जतामेता जावयन्मुच्यसे नवात् ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवेवे श्लोकेकरी आग्रंथमांजाववानी वारजावनाश्रोनां नामकहेते १
अनित्यजावना २ अशरणजावना ३ संसारजावना ४ एकत्वजावना ५ अ
न्यत्वजावना ६ अशुचिजावना ७ आश्रवजावना ८ संवरजावना॥हेआत्मातु एना
वनाश्रोनो विचारकर ॥ ७ ॥ ए कर्मनिर्जराजावना १० धर्मजावना ११ रूडाप्रका
रनी लोकस्वरूप जावना १२ बोधिङ्गुलं जावना॥हेआत्मातु एवारजावनाश्रो नो वि
चारकरतोयको संसारथकीमुक्तयइस ॥ ८ ॥

पुष्पिताग्रावृत्तं ॥ वपुरवपुरिद विदभ्रलीलापरिचितमप्यतिजंगुरं नरा
णां ॥ तदतिभिन्नुरयौवनाविनीत नवति कथं विडुपां महोदयाय ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथमअनित्यजावना जावतां शरीरं अनुनित्यपणुं देखाडेते हेविद
नजन आजगतमां अन्नलीलानीपरे कृणचंगुर अनेजेहनो जयकरवो अत्यंतकठी
णते एहवो तरुणअवस्थायेकरी उन्मत्त मदनजे कामदेव तेनाजेहवु सुंदर एहवुं
जे मनुष्योनुंशरीरते विद्वानजे पंथितलोक तेनापण महोटा उदयकरवानुं कारण
शरीरतेथाय अपितुनहीजथाय ॥ ९ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तघ्यं॥ आयुर्वायुतरत्तरगतरलं लभाप
दः सपदः सर्वेपीडियगोचराश्च चटुला संध्याधरागादिवत्॥
मित्रस्त्रीस्वजनादिसंगमसुखं स्वप्रेज्जालोपमं तत्किं वस्तुन
वे नवेदिह मुदामालंबनं यत्सतां ॥ १० ॥ प्रातर्भ्रातरिहाव
दातरुचयो ये चेतनाचेतना दृष्टा विश्वमन प्रमोदविडुरा जा
वा स्वतः सुंदराः॥तास्तत्रैव दिने विपाकविरसात् हा नश्य
तः पश्यतश्चेत प्रेतदहतं जहाति न नवप्रेमानुबंधं ममा॥११॥

अर्थ ॥ हवेवेकाव्येकरी संसारनो अनित्यपणुं देखामेते हेप्राणी आसंसारमां वा
यरेंकरी चचलथयला एहवाजे पाणीनातरग तेहनीपरे आयुपपणचचलते वली
विचित्रप्रकारनी संपत्तिश्रोते तेपण विपत्तियेकरीशुकते अने समस्त रूपरसादिकजे

विषयते ते संख्याकालना आकाशजेवासुंदरते एतले संख्याना अत्ररागनीपरें सुंदर तोळे पण अत्ररागनीपरें ओडीवारपठि विनाशशीलते तथा मित्र स्त्री स्वजन इत्या दिकोनोजे समागम तेणेकरिने थयेळुंजेसुख तेस्वप्नसरीखुं किवाइंजालसरखुंते ते वारें आसंसारमां सत्पुरुषोने आश्रयकरवायोग्य कश्चिस्तुतेवारुं, अर्थात्कोइजनथी सर्वविनाशशील अनित्यते इतिचाव ॥ १० ॥ वली प्रातके० हेजाई आजगतमां जे प्रजातसमये स्वहकांतिवान तथा अत्यंतपणे जगतने आनंद आपनारा अने स्वतासुंदरजे चेतनपदार्थ अने अचेतनपदार्थना जावदीठाहोय तेपदार्थोना काल परिपाक थयाथी तेहिजदिवसें शोचायेकरी हीन थईजायते अने नाशपामेठे ए ह्वापदार्थोने जोनारो एह्वो महारुं हतके० नष्टथयलुं जे अंतःकरण ते संसार संबंधने मूकतुंनथी ए कहेवी महोटी खेदनीवातते ॥ ११ ॥

॥ प्रथमजावनाष्टकं रामगिरिरागेण गीयते ॥

मूढ मुह्यसि मुधा ॥ मूढ मुह्यसि मुधा ॥ ध्रुवपदं ॥ विज्व
मनुचित्य हृदि सपरिवारं ॥ कुशशिरसि नीरमिव गलद
निलकंपितं ॥ विनय जानीहि जीवितमसारं ॥ मू० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीविशेषे अनित्यजावना जावतोथको संसारतुं अनित्यपणुं देखाडे ठे हेमूर्खशिष्य तुं परिवारसहित पोतानीसंपत्तिनुं चितनकरीने शुंभ्यर्थमोहपामेठे वायुये हलाब्योथको कंपायमानथयीने गलीजनारो एह्वो दर्जेनाअथजागे रहेना रोजे पाणीनुं बिंडुओ तेनीपरें हेविनय आ तहारुंजीवितव्य असारते एमंजाण एरीतें विनयविजयजीठपाथ्याय पोतेपोताने प्रतिबोधकरतो वीजानेपण उपदेशकरेठे ॥ १ ॥

पश्य जंगुरमिदं विषयसुखसौहृदं पश्यतामेव नश्यति सदासं ॥

एतदनुहरति संसाररूपं रयाज्वलकालदवालिकारुचिविलासं ॥ मू० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ वलीहेमित्रतुं जो के आविषयसुखते कृणचंगुरते जेमकोई हाथतालीवेई ने हसतांहसतांज नाशीजायते तेनीपरें विषयसुखपण जोतांजोतांज नहता एह वायुईजायते वली आ संसारतुं स्वरूपते वेगेकरीने जनारी एह्वीजे वीजली तेना जनुकानी कांतीनुं अनुकरण करेठे एतले एसंसारतुं स्वरूपते वीजलीनीपरें चंचलते ॥ २ ॥

हंत हतयोवनं पुत्रमिव शौवनं ॥ कुटिलमति तदपि लघु दृष्टनष्टं ॥ तेन

वत परवशापरवशा हतधियः ॥ कटुकमिह किं न कलयति कष्टम् ॥ मू० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ आ एकमहोटी खेदनीवातठे के डुप्टारुण्यपणुंते कुतरानी पुठडीसरिखो वांको अने जेहने जोतावारज तुरतनहीएवोथईजायठे अर्थात् नाशपामीजायठे एह वा तारुण्यपणाने परवशाके० पराधीनचयला हतधियके० नष्टबुद्धिवतजे पुरुषोठे ते ससारमां परवशाके० स्त्रीओ ते कष्टकारी कडवाफलनीआपनारीठे एहवुं जाण तानथी माटे बतइतिखेदे एणएकमहोटुं खेदनोज कारणठे ॥ ३ ॥

यदपि पिण्याकतामंगमिदमुपगतं ॥ जुवनहुर्जयजरापीतसारं ॥ तदपि गतलज्जमुञ्जतिमनो नांगिना वितथमतिकुथितमन्मथविकारं॥मू०॥४॥

अर्थ ॥ जोपण त्रणेलोकना प्राणीओ जेने जीतवाने अत्यंतअसमर्थ एहवीजे जराअवस्था तेणेकरिने जेपुरुषनुं सारके० सत्वपणुं जनुरखुठे एटजे जरायेकरी शरीरक्रीणथईगयुठे एहवु एशरीर दुर्बल थयु होय तोपण निर्लेकप्राणीओनां मन निष्फल बुद्धिथी उत्पन्नथयला कामविकारने मूकतानथी ॥ ४ ॥

सुखमनुत्तरसुरावधि यदतिमेधुरं ॥ कालतस्तदपि कलयति विरामं॥ क तरदितरत्तदा वस्तु सांसारिकं॥स्थिरतरं चवति चितय निकामं ॥मू०॥५॥

अर्थ ॥ जुओके पाचअनुत्तरविमाननां घणाज पुष्टकारीसुखठे तेनीपण मर्यादा ठे ते पणकालेकरी मर्यादापुरीथयाथी विरामपामेठे तो पाच अनुत्तरविमान करता एवी बीजीकईवस्तुठे जेससारमां वधारेस्थिरीनूतथसे एवातनो तु महोटोविचारकर ५ ये समं क्रीडिता ये च नृशमीडिता ये सहाकृष्मदि प्रीतिवादां॥तान् जनान्वीक्ष्य वत नस्मन्नूयगतान्निर्विशंकाः स्म ऽति धिक्प्रमादां॥मू०॥६॥

अर्थ ॥ जेनीसाथे आपणे हरहमेस रमता खेलता क्रीडाकरता तथा जेनीआ पणे अत्यंत स्तुतिकरता अने जेनीसाथे आपणेंप्रीतीयेकरी बोलताहता तेहिजप्रा णीने नस्मन्नूत थईगयला देखीने पण जोअमे निशंक रहियेठेये तो बतइतिखेदे एवोजे अमारो प्रमाद तेप्रसादने धि कारहोजो ॥ ६ ॥

असकृदुन्मिष्य निमिपंति सिधूर्मिवञ्चेतनाचेतना सर्वज्ञावा ॥ इडजा लोपमाः स्वजनधनसंगमास्तेपु रज्यंति मूढस्वज्ञावा ॥ मू० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेम समुडनां कल्लोज वारवार उत्पन्नथयीने नाशपामेठे तेमज जगत मां स्थावर अने जगमपदार्थोना जावठे एमजाणुं अने जगतमा इव्यादिकनो जेस बंधठे तेसर्व इडजाल सरिखोठे तो एहवा पदार्थोउपर हेमूर्खप्राणीतु गूरीजपामेठे ७

कवलयन्नविरतं जंगमाजंगम जगदहो नैव तृप्यति कृतांतः ॥ मुखग
तान् खादतस्तस्य करतलगतैर्न कथमुपलप्स्यतेऽस्माच्चिरंत ॥ मू० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ वली स्थावर अने जंगमात्मक जगतने निरंतर नष्टकरणकरनारो एहवोजे कृ
तांतके ० यमते तृप्तथातो नर्था एमहोटोव्याश्रयते तोमुखमां व्याव्याप्राणीनो नष्टणक
रनारोजे कालतेनाजहायमां रहेनारा अमेतैये ते अमारोमृत्यु केवीरीतेनथाय ॥ ७ ॥

नित्यमेकं चिदानंदमयमात्मनोरूपमचिरूप्यसुखमनुचवेयं ॥
प्रशमरसनवसुधापानविनयोत्सवो चवतु सततं सतामिह च
वेऽयं ॥ ९ ॥ इतिमहोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणेशिष्योपा
ध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचिते शांतसुधारसगेयकाव्ये
अनित्यजावनाविजावनो नाम प्रथम. प्रकाश. ॥

अर्थ ॥ तेमाटे नित्य एकचिदानंदमय जे महारोआत्मा तेहनुं स्वरूपजोईने सु
खनो अनुचव हुंकरिश इहा विनयविजयजी उपाध्यायकहेठेके आ मनुष्यजन्वमां
शांतिरसरूपजे नूतनअमृत तेहनेपानकरवानो उत्साह सत्पुरुषोने निरंतरहोजो ॥ ९ ॥
इतिश्रीमन्महोपाध्याय श्रीकीर्तिविजयगणेशिष्योपाध्याय श्रीविनयविजयगण
विरचिते शांतसुधारसगेयकाव्ये अनित्यजावनाविजावनोनाम प्रथम. प्रकाश ॥

शार्दूलविक्रीणितं वृत्तं ॥ ये पट्खंडमहीमहीनतरसा निर्जित्य वभ्राजिरे ये च
स्वर्गजुजो जुजोर्जितमदा मेर्द्धुर्दामेडुरा. ॥ तेपि क्रूरकृतांतवक्ररदनैर्निर्द
त्यमाना हठादत्राणा शरणाय हा दश दिश प्रैक्षंत दीनानना ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेवीजी अशरणजावना जावेठे आसंसारमां मृत्युआवेथकेकोईने को
ईनुं शरणनर्था एमदेखाडेठे हाइतिखेदे जेपुरुष महोटापराक्रमेकरी ठखंमष्टथवी
जीति शोचानेपास्या एहवा चक्रवर्ती तथा जेहपंकरीपुष्टयला अने जेहनी सु
जाअ्योमां उच्छृष्टबलठे एटले स्वर्गनासुखजोगवीने आनंदपास्याठे एहवा देवताओ
नेपण जेवारे क्रूरहृदयवंत जे यम तेपोताना मुखमांजेई दातोनाबलात्कारेंकरी न
ष्टणकरे तेवारे तेअशरण थयाथका दीनमुखकरी कोईनुंशरणलेवानेअर्थं दशे
दिशाये जुएठे तोपणतेने कालनादातमांथी मूकाववाने कोई समर्थनथाय ॥ १ ॥

स्वागतावृत्तं ॥ तावदेव मदविभ्रममाली तावदेव गुणगौरवशा
ली ॥ यावदक्षमकृतांतकटाक्षैर्नेक्षितो विशरणो नरक्रीट ॥ १ ॥

अर्थ ॥ माटेजेनो रक्षणकरना कोईनथी एहवो एमनुष्यरूपीओ कोटजेकीडो ते हनेजिहांसुधि सहनकरवाने दुर्जन एहवोजेकाल तेणे पोताना कटाक्कंकरी जोधुंन थी तिहासुधी मढजे अहकार तेनाविजासेकरी शोणेजे अने तिहासुधीज गुणोनों गौरवपणु धारणकरेजे ॥ २ ॥

शिखरिणीवृत्त ॥ प्रतापैर्व्यापन्नं गलितमथ तेजोच्चिरुदितैर्गत
धैर्योद्योगैः श्लथितमथ पुष्टेन वपुषा॥प्रवृत्त तद्भव्यग्रहणविषये
बांधवजनैर्जने कीनाशेन प्रसन्नमुपनीते निजवशं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ पण जेप्राणीने जेवारे यमराजाये पोताने स्वाधीनकखो तेवारे तेप्राणी नो प्रतापपण नाशपाम्यो अने उदितथयजुजेतेज हतु तेपणगलीगयु तथा धैर्य अने उद्योग पण जतुरखु वली शरीरपुष्टहतो तेपण शिथिलथईगयु अनेतेपुरुपतुं एकतुं करेलुं इव्य लेवाने अर्थ बांधवजन जे नाईओ प्रमुख हता ते प्रवर्तयया ॥ ३ ॥

ईतीयजावनाष्टक मारुणीरागेण गीयते

स्वजनजनो बहुधा हितकामं प्रीतिरसैरजिरामं॥मरणदशावशमुपगत
वंतं रक्षति कोपि न सत ॥१॥ विनय विधीयतां रे श्रीजिनधर्म शरण॥
अनुसंधीयतां रे शुचितरचरणस्मरणं ॥ वि० ॥ १ ॥ ध्रुवपदं ॥

अर्थ ॥ फिरि सम्यक्दृष्टीजीवे विज्ञापेंकरी अशरणजावनाने आवीरीते जावचीते कहेजे जेपोताना स्वजनलोके तेघणुज हितनावाठक तथा प्रीतिनाराखनार इत्या दिकरीते घणाप्रकारें रूडाठे पणतेसर्व स्वार्थनिमित्तेजाणवा ए तात्पर्यठे परतु हेस त्पुरुषो जेवारे जीव मरणअवस्था पामवाने तैयारथयो तेवारेतेतुं संरक्षण करना र कोईनथी ॥ १ ॥ तेमाटेग्रंथनाकर्ता श्रीविनयविजयजी उपाध्यायकहेजे के हेवि नय तु श्रीजिनधर्मतुं शरणकर अने पवित्र एहबुजे चारित्रतेतुं स्मरणकर ॥ २ ॥

तुरगरथेज्जनरावृत्तिकलित दधतं बलमस्खलितं ॥ हर
ति यमो नरपतिमपि दीनं मैनिकइव लघुमीनं ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ घोडा रथ हाथी पायदल एचतुरगणी सेनायेकरीशुक तथा पोतेंपण अस्खलित बलने धारणकरनारो एटलेकोईकाले खलनापामेनही एहवो महापरा क्रमवत राजा तेनेपण जेरीतें मैनिकके० माठलानोमारनार जटवईने लघुमी नके० न्हाना दीनमाठलाओने पकडीलियेजे तेरीते यम पकमीलियेजे ॥ ३ ॥

प्रविशति वज्रमये यदि सटने तृणमथ घटयति वदने ॥

तदपि न मुंचति हृतसमवर्ती निदयपौरुपनर्ती ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ॥जो वज्रमय एटले वज्रनाज परमाणुये वनावेला घरमांप्रवेशकरे अथवा सुखमां तृणपजाधारणकरे परंतु निर्दय अने पराक्रमेंकरी नाचनारो तथाजेहनी सर्वेनेधिपे समानघातकरवानीजवृत्तिठे एहवोजेयम ते तेनेपण मूकतोन्थी ॥४॥

विद्यामंत्रमहौपधिसेवा सृजतु वशीकृतदेवां ॥ रसतु

रसायनमुपचयकरणं तदपि न मुंचति मरणं ॥ वि० ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हेप्राणी जो देवतानुंसाधनकरी पोतानेस्वाधीनकरो अथवा महोटीम होटी विद्याओ साधनकरो मंत्रसाधनकरो तथा महोटी औपधिओसाधी शरीरपुष्टी करवानेअर्थे आरोगो तोपण मरण मूकतुंन्थी ॥५॥

वपुषि चिरं निरुणद्धि समीरं पतति जलधिपरतीर ॥ शिर

सि गिरेरधिरोहति तरसा तदपि स जीर्यति जरसा ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥हेजब्जो जो समाधीचढावी शरीरने घणाकालसुधी वायुनोरोधकरो अथवा समुद्रने पहेलाकाठे जईवेशो अथवा वलात्कारें पर्वतनाशिखरउपर चढीवेशो तोपण जराअवस्थाथी ढीणथवु ते काईबंधयतुन्थी ॥ ६ ॥

सृजतीमसितशिरोरुहजलितं मनुजशिरोवलिपलितं ॥ को

विदधानां नूधनमरसं प्रचवति रौकुं जरसं ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ कालाकेडेंकरीने घणोजसुंदर एहवो मनुष्यनो कालोमस्तक तेने सपेतपणानी करनारी तथा शरीरना मांसनोनाशकरनारी खोखरासरीखोकरी नशोनसने जूडी करीवेखाडनारी पृथ्वीउपर मेघसमान शरीरतेने शुष्ककरीनाखनारी एहवीजरा अवस्था जेवारे प्राणीने आवडो तेवारें तेनोरोधकरवाने कोण सहायनूतथमे अर्थात् कोईपण वृद्धावस्थानो रोधकरवाने समर्थनथाय ॥ ७ ॥

उद्यत उग्ररुजा जनकाय कः स्यात्तत्र सहायः ॥ एकोऽ

नुचवति विधुरुरपरागं विज्रजति कोपि न ज्ञागं ॥ वि० ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मा जेवखतें ताहूंशरीर उग्ररोगेकरी व्याप्तथाडो तेवखतें तुजने कोणसहायथाडो ! जुओ जेमचंडमा एकलोपोतेज राहुना ग्रहणनी पीडानोगवेठे प

रतु नक्षत्र अथवा ताराकोईपण तेनाडु खमाविजागलेतानथी तेम तुजनेपण जेवारे रोगादिक डु खप्राप्तथज्ञे तेवारे ताहरोकोईपण संबंधी तेडु खमाविजागलेनारनथी ॥५ शरणमेकमनुसर चतुरंगं परिहर ममतासंग ॥ विनय रचय शिव सौख्यनिधानं शांतिसुधारसपानं ॥ वि० ॥ ९ ॥ इति श्रीशांतिसुधार स गेयकाव्ये अशरणजावनाविजावनो नाम द्वितीय. प्रकाश ॥

अर्थ ॥ माटे दान शील तप अने जाव एचार ध्यग जेहनाठे एहवाएक धर्मजुंज तु शरणकर अने ममत्वनो संग परिहर हेविनय तु शिवसुखनो निधान एहवो जे शांतिसुधारस तेजुंपानकर ॥ ९ ॥ इति श्री शांतिसुधारसगेयकाव्ये अशरणत्वजा वना विजावनोनाम द्वितीय प्रकाश ॥

शिखरिणीवृत्तत्रयं ॥ इतो लोच क्लोच जनयति छ्रंतो दवड्वो ह्लसल्लान्जान्जि कथमपि न शक्य शमयितु ॥ इतस्तृष्णाऽह्ना णां तुदति मृगतृष्णोव विफला कथं स्वस्थैः स्थेयं विविधजनयन्ती मे नववने ॥ १ ॥ गलत्येका चिंता नवति पुनरन्या तदधिका मनोवाक्काये हा विकृतिरतिरोपात्तरजसः ॥ विपज्जतावर्ते ऋटिति पतयालो प्रतिपदं न जतो. संसारे नवति कथमप्यर्तिविरति ॥ २ ॥ सहित्वा संतापानशुचिजननीकुक्किकुहरे ततो जन्म प्राप्य प्रचुरतरकष्टक्रमहत ॥ सुखाजासैर्यावत्स्पृशति कथमप्यर्तिविरति जरा तावत्कायं कवलयति मृत्यो. सहचरी ॥ ३ ॥

॥ हवे त्रीजी संसारजावना जावेठे आ संसारमा डुरतके० घणोमहोदो जेहना अतनथी अनेदावानल सरिखो अर्थात् वनअग्नीसरखो एहवोजेलोच तेनेकोईपणरी तें उदयनेपामनारी जे लोचरूप अंजोनि के० उदकते शातकरी शक्तीनथी पणउलटो क्लोचने उत्पन्नकरेठे वलीइहा संसारमा मृगतृष्णा जेवीरितेविफलठे तेवीरितेइडियोनी तृष्णा प्रेरणाकरेठे तेपणविफलठे तोएहवा अनेकप्रकारना नानाविधनयेकरी बिहा मणा संसाररूप अरण्यमा शरीरितें स्वस्थपणे रहिशकिये ॥ १ ॥ आसंसारमा एक चित्तामटिजायठे तोफरी तेकरतांपण अधिक बीजीचिताआवी उत्पन्नयायठे वली म न वचन अने कायानाव्यापारेकरी विकारथायठे तथाअत्यंतक्रोधना योगेकरी रजो गुणने पामवापणुंप्राप्तथायठे एरीतेंसंसारमां विपन्नरूप खाईनापाणीनी चमरीमां

पगलेपगले पडनारा प्राणीओने कोईवाग्दुःखनो अंतव्यावतोनथी ॥१॥ वली पहे जातो अपवित्रमाताना उदरनेविपे नानाप्रकारना उदरसंबंधी संतापोने सहनकर तो कष्टनीपरपरायेंकरी तामनतर्जनायेयुक्तथको रडेते अने जन्मपाम्यापठे जेटलामां सुखानास करवानेअर्थे कोडपणपोताने अतीपीमाओ दूरकरेते परंतु एटलामातो मृ त्युनी सहचारिणी एहवीजे जराअवस्था ते आवीने प्राणीनादेहनो ग्रासकरेते ते वारें संसारमां सुखतेसुंते अर्थात् काईजनथी ॥ ३ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ विभ्रांतचित्तो बत बंध्रमीति पक्षीव रुद्धस्तनु
पंजरेऽग्नी ॥ नुन्नो नियत्याऽतनुकर्मतंतुसंदानितः सन्निहितां
तकौतुः ॥ ४ ॥ अनुपुष्टवृत्तं ॥ अनंतान् पुञ्जलावर्तानंतानं
तरूपचृत् ॥ अनंतशां भ्रमत्येव जीवोऽनादिज्जवाणिवे ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ प्रारब्धें प्रेरणाकरेलो महोटाकर्मरूप ततुयेकरी बाधेलो काजरूप विघ्ना ढानीपासे वेठेलो एहवोप्राणी बतइतिखेदे शरीररूप पिंजरामां पक्षीनीपरें रूंथ्योय को भ्रांतिवंत चित्तेकरीफिरेते ॥ ४ ॥ एरीतेअनंतानंत शरीरोनोधारणकरनारो एजी वअनंतीवार अनादिकालनो संसारसमुद्रमा अनंता पुञ्जपरावर्त्तरूप पाणीनी त्र मरीमा प्रतिचमण करतोथको फिरेते ॥ ५ ॥

॥ तृतीयजावनाष्टक केदारारागेण गीयते शांतसुधारसकुंभेमां एवेशी ॥

कलय संसारमतिदारुणं जन्ममरणादिजयनीत रे ॥ मो
हरिपुणेह सगलग्रहं प्रतिपदं विपदमुपनीत रे ॥ क० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ वलीविशेषप्रकारे संसारजावनाजावतो संसारनीवीकदेखाडेते मोहरूप शत्रुयें गल्लोथोदेइने पकडयुंते तेणेकरी पगले पगले विपत्तीनेपामेला अरेजीव आ ससारते जन्ममरणादिकना नयेकरी अत्यंतनयंकरते एहुं तु जाण ॥ १ ॥

स्वजनतनयादिपरिचयगुणैरिह मुधा बध्यसे मूढरे ॥ प्रति
पद नवनवै रनुचवै परिचवै रसकृडपगूढ रे ॥ क० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हेमूर्खआत्मातु स्वजन अने पुत्र इत्यादिकोनां परिचयगुणेकरीने कुंआ संसारमां व्यर्थबंधायते वली पगलेपगले नवानवा अनुचवेकरी अने नवानवा परा जवेकरी वारवारतु आलिंगितठो एटले युक्तठो ॥ २ ॥

घटयसि कचन मदमुन्नतेः कचिदहो हीनतादीन रे ॥ प्र-
तिचव रूपमपरापर वहसि वत कर्मणाधीन रे ॥ क० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातु किहांकतो राजलक्ष्मीप्रमुख सपत्नीनामदने धारणकरेते वलीकिहाकतो हीनतापामी रांकजेवो नीखारीथई दीनतापणाने धारणकरेते ए वाआश्रय हेजीवतु कर्माधीनथको जन्मजन्मप्रते अपरअपरके० नवानवाज रूपध रेते कोईनवेनीखारी कोईनवेराजा कोईनवेतिर्यच कोईनवेनारकी वलीएकनवमापण राजारकपणप्रमुख अनेकरूपधारणकरेते एकेहेवो महोदो खेदनोहेतुते ॥ ३ ॥

जातु शैशवदशापरवशा ॥ जातु तारुण्यमदमत्त रे ॥ जातु
हुर्जयजराजर्जरो ॥ जातु पितृपतिकरायत्तरे ॥ क० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ अरेजीवतु एकजन्ममापण कोईकवारेंतो बालकअवस्थाने आधीनर हेते अने कोईकवारेंतो तारुण्यअवस्थाना मदेकरी उन्मत्तथायते वलीकोईकवारें हुर्जय जरा अवस्थायें करी हु खवतथायते अनेकोईकवारें यमराजाना हाथमां सप डाईजायते एहवी अवस्थाअने पामेते ॥ ४ ॥

व्रजति तनयोपि ननु जनकतां ॥ तनयता व्रजति पुनरेप रे ॥ चाव
यन् विकृतिमिति चवगते ॥ सत्यजतमां नृचवशुचशोप शो॥ क० ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मा आससारमा कोईनवमांतो दीकरोते वापथायते फरीकोईक नवमा बापतेदीकरो थायते एहवी संसारी पुरुपोनी गतिअपोनी फजेतीजोईने मनु प्यजन्ममां जेना पुण्यशेपरह्याते एहवो तु आससारने मूकीआप ॥ ५ ॥

यत्र हु खार्तिगददवलवैरनुदिन दह्यसे जीव रे ॥ हंत
तत्रैव रज्यसि चिरं मोहमदिरामदक्कीव रे ॥ क० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव आससारमा हु ख तथा आरतिजेचिता अने रोगरूप दावान लेंकरीने तु नित्यनित्यप्रते वाजेते तोपणमोहरूप मदिराना मदेकरी उन्मत्तथईने तेमां जघणाकालसुधी अनुरक्तथायते माटेवतइतिखेदे मोहनाफंदेज जीवहु खीथायते ॥ ६ ॥

दर्शयन् किमपि सुखवैचवं ॥ सहस्रंस्तदथ सहसैव रे ॥ विप्र
लंजयति शिशुमिव जन ॥ कालवटुको ऽयमत्रैव रे ॥ क० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव जेमकोइलघुबालकने उगवासारुं कोइकचीजतेनाहाथमां आ पीपाठी हीनवीजइयें तेम हंतइतिखेदे आजगतमां कालरूपीओ बटुकके० घोर ते

तुजने कांश्चसुख ऐश्वर्यादिक देखाडीने अकस्मात् तेसुखने जाणेनजहता तेवा करीनाखेळे एम ठोकराने उगवानी रीते काजरूपबदुक लोकोने उगेळे ॥ ७ ॥

सकल संसारजयजेदकं ॥ जिनवचो मनसि निवधान रे ॥

विनय परिण मय निःश्रेयसं ॥ विहितशमरससुधापान रे ॥ १० ॥

इति श्री शांतसुधारस गेयकाव्ये संसारचावना विचावनो नाम तृतीयः प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ तेमाटे अरेविनयतु शांतिसुधारसनुंपानकरी समस्तसंसारिकजयना नाशकरनार एहवा जिन श्री वीतरागनावचनने मनमांधारणकर अने मोक्षपाम एरीते विनयविजयजीउपाध्याय पोतेजपोताना आत्मानेसीखामण आपेळे ॥ इतिश्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये संसारचावना विचावनोनाम तृतीयः प्रकाशः ॥ ३ ॥

स्वागतावृत्तां एक एव जगवानयमाला ज्ञानदर्शनतरंगसरंगः ॥

सर्वमन्यडुपकटिपतमेतत् व्याकुलीकरणमेव ममत्वम् ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेचोथी एकत्वचावना जावेळे एकज जगवानते आआत्माटे अने ज्ञानदर्शन तथा चारित्ररूप तरगेकरीने सरगके० विलासीळे पणते आत्मासिवाय बीजाजे कांई कल्पितपुजजादिकळे तेसर्व ममतास्पदमांज व्याकुलकरनारारे ॥ १ ॥

प्रबोधतावृत्तत्रयां अबुधैः परचावलालसालसदज्ञानदशा

वशात्मनिः ॥ परवस्तुपु हा स्वकीयता विषयावेशवशाद्धि

कल्प्यते ॥ २ ॥ कृतिनां दयितेति चितनं परदारेषु यथा

विपतये ॥ विविधातिंजयावहं तथा परचावेपु ममत्वचावनं ॥

३ ॥ अधुना परचावसंवृतिं हर चेतः परितोवगुंठितां कृण

मात्मविचारचंदनद्रुमवातोर्मिरसाः स्पृशंतु मां ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ परवस्तुउपर रहेलीअत्यंतज्ञाना योगेकरी उपनीजे अज्ञानअवस्थानी अधीनता तेजेना अत करणमां व्यापीळे एहवामूर्खीने जे परकीयवस्तुउपर स्वकीयपणुकटपेळे तेमात्र शब्द रूप रसादिकविषयोना आवेजेकरीजकल्प्योजायते ए एक महोदुं खेदनुंकारणते ॥ २ ॥ पुण्यवानपुरुषे परस्त्रीने पोतानीस्त्रीकरी चितवनकरवु तेजेमविपत्तीनुं कारणथायते तेमज परकीयवस्तुउपर जे ममत्वकरवु तेपण नानाप्रकारनीपीमांनुं अने अनेकप्रकारना जयतुं कारणथायते ॥ ३ ॥ माटेहेआ

त्मा हवे चारेबाहुयेविटेली परवस्तुनी संवृति जे आठादन तेनेतूंदूरकर अने आत्मवि
चाररूप चदनवृद्ध उपरना वायुनीजहेरीतुंजे रस तेतुं एकदृष्टमात्र स्पर्शकर ॥४॥

अनुपुवृत्त ॥ एकतां समतोपेतामेनामालन वि

जावय ॥ लजस्व परमानंदसंपदं नमिराजवत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव आसमतायेकरीयुक्त एहबुजे एकत्वपणुं तेने तु पोताना आ
त्मां विचारीजोईशतो नेमिराजरूपीनाजेवी परमानंद संपदानेपामिश ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थजावनाष्टकं परजीवारागेणगीयते ॥

विनय चितय वस्तुतल जगति निजमिह कस्यकि ॥ ज्वति

मतिरिति यस्य हृदये झरितमुटयति तस्य कि ॥ वि० ॥ १ ॥

एक उत्पद्यते तनुमानेक एव विपद्यते ॥ एक एव हि

कर्म चिनुते ॥ सैकक फलमश्रुते ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीविशेषे एकत्वजावनाजावेठे इहाश्री विनयविजयजी उपाध्याय
पोतेज पोतानीआत्माने उपदेशेठे के हेविनय तु वस्तुतलजे आत्मज्ञान तेतुं चित
वनके ० विचारकर आजगतमा कोइनोस्वकीयपणुठेकेशुं एहवीबुद्धि जेनाकृदयमां
उत्पन्नथायठे तेप्राणीने झरितपापादिक उदयपामेठेसुं अपितुतेने पापोदयपामतुज
नयी ॥ १ ॥ हेआत्मा ताहरोजीव एकलोज उपजेठे एकलोज मरणपामेठे एक
लोज कर्मनेवाधेठे अने तेवंधायला कर्मोनाफलनेपण एकलोज नोगवेठे ॥ २ ॥

यस्य यावान्परपरिग्रह ॥ विविधममतावीवध ॥ जलधि

विनिहृतपोतयुकत्या पतति तावद सावधः ॥ वि० ॥ ३ ॥

स्वस्वभाव मद्यमुदिते ज्ञुवि विलुप्य विचेष्टते ॥ दृश्यता प

परजावघटनात्पतति विलुठति जृन्ते ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जिहांसुधी जेप्राणीनेमाथे परपरिग्रहउपर नानाप्रकारनी जे ममत्व त
द्रूपनारपडयोठे तिहासुधी तो पञ्चराप्रमुख वजनदारवस्तुयेजरेलो जिहाज जेम समुद्र
नातजियामा जइवेसेठे तेम तेप्राणीपण संसाररूप समुद्रना तजियामां पमेलोजा
णवुं ॥ ३ ॥ जेम मदेकरी उन्मत्तथयलो पुरुष स्वकीयस्वभाव एटले मूल स्वना
वने लोपी जमीनउपरपनी चेष्टाकरेठे तेमज परवस्तुनी घटनायेकरी उन्मत्तथयलो
पुरुष संसाररूप जमिनमापडेठे लोटेठे अने जत्रायमान थयोयकोरहेठे ॥ ४ ॥

पश्य कांचनमित्तरपुञ्जलमिलितमंचति कां दशां ॥ कैवलस्य तु तस्य
रूपं विदितमेव ज्वाहृशां ॥वि० ॥५॥ एवमात्मनि कर्मवशतो ज्वति
रूपमनेकधा ॥कर्म मलरहिते तु जगवति चासते कांचनविधा ॥वि० ॥६॥
अर्थ ॥ जेमसुवर्णमां बीजाधातुनी मिश्रतायवाथी विपरीतदशानेपामेठे अने
तेसुवर्णना शुद्धस्वरूपनीतो हेजीव तद्दाराजेवाने खवरजठे ॥ ५ ॥ तेमज्ज्यात्मा
नेविपे कर्मरूप अन्यधातुना वर्णकरी नानाप्रकारना रूपथायठे पणकर्ममलरहित
शुद्धज्ञानस्वरूपी आत्मातो सुवर्णसरखो देदीप्यमानचासेठे ॥ ६ ॥

ज्ञानदर्शनचरणपर्यवपरिवृतः परमेश्वरः ॥ एक एवानुजवसदने सर
मतामविनश्वरः ॥वि० ॥७॥इति रुचिरसमतामृतरस द्वाणमुदितमास्वाद
य मुदा ॥विनय विपयातीतसुखरसरतिरुदंचतु ते सदा ॥वि० ॥८॥इतिश्री
शांतसुधारसगेयकाव्ये एकत्वजावनाविजावनोनाम चतुर्थः प्रकाशः

अर्थ ॥तेआत्मा ज्ञान दर्शनअने चारित्रना पर्यायिकरीयुक्त एहवो अविनाशीजे एकपर
मेश्वर तेमहारा अनुजवगृहमां रम्यमाणयजो ॥७॥माटेदेआत्मा प्राप्तयजलो एहवो अ
तिसुंदर समतारूप अमृतरस तेनोएकद्वणमात्र पण संतोपेकरी आस्वादनकर अने हे
विनय सर्वकाल विषयसुखथी अतीत एटलेजूदा एहवाजे शांतिसुखरस तेनाउपरताह
रेप्रीतिहोजो ॥८॥ ६०शांतसुधारसगेयकाव्ये एकत्वजावनाविजावनोनामचतुर्थ प्रकाश
उपजातिवृत्तं ॥ परः प्रविष्टः कुरुते विनाश लोकोक्तिरेपान मृपेति मन्ये ॥
निर्विद्यकर्माणुनिरस्य किं किं ज्ञानात्मनो नो समपादि कष्टं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवे पाचमी अन्यत्वजावना जावतोयको श्रीविनयविजयजी उपाध्यायकहे
ठे एकनाघरमा बीजार्येप्रवेशकखो एटले पहेजानोनाशकरेठे एहवु लोकोनुं बोलवु
मने खोटुंजागतुनथी केमके महारोआत्मा ज्ञानस्वरूपीठे तेमां कर्मरूप परमाणुये प्र
वेशकरीने आत्माने कोणकोण कष्टोनथीआपी अर्थात् सर्वकष्टोआपीजठे ॥ १ ॥

स्वागतावृत्तम् ॥खिद्यसे ननु किमन्यकथार्तः सर्वदेव ममतापरतंत्रः ॥

चित्तयस्यनुपमान्कथमात्मन्नात्मनो गुणमणीन्न कदापि ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अरेजीवतु सर्वकाल ममताने स्वार्थीनथई अन्यजे पुञ्जादिक तेनीज
गोष्टीये पीडितथको काखेदपामेठे अने जेहनीकोऽउपमाजनथी एवा तारी आत्मा
ना गुणरुपजे मणीरत्न तेनुंकोऽवारेपण चित्तन केमकरतो नथी एकेटलुं अयुक्तठे ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तघ्नम् ॥ यस्मै त्वं यतसे विज्ञेपि च यतो यत्रा
 निशं मोदसे यद्यत्तोचसि यदिद्वसि हृदा यत्प्राप्य पेप्रीयसे ॥
 स्निग्धो येषु निजस्वप्नावममलं निर्लोठ्य लालप्यसे तत्सर्वं पर
 कीयमेव जगवन्नात्मन्न किञ्चित्तव ॥ ३ ॥ इष्टा कष्टकदर्थना क
 तिन ता सोढास्त्वया ससृतौ तिर्यङ्नारकयोनिषु प्रतिहृतविन्नो
 विजिन्नो मुहुः ॥ सर्वं तत्परकीयड्विजलसितं विस्मृत्य तेष्वेव हा
 रज्यन्मुह्यसि मूढ तानुपचरन्नात्मन् न कि लज्जसे ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातु जेनेवास्ते घणोयत्नकरेठे अने जेनाथकी घणोबीहितोरहेठे
 तथा जेथकी सर्वकाल आनंदपामेठे वली जेनाअर्थेघणुंशोचकरेठे अथवा जेनेतुं
 ताहारादयमा हरहमेस इहेठे वली जेनादेखवाथी अत्यतप्रीतिपामेठे जेनेविषे तु
 घणुंस्नेहराखी पोतानानिर्मल ज्ञानादिक स्वप्नावनो नाशकरी लालनपालनकरेठे इ
 त्यादिकक्रियाते सर्वपरकीयजठे पण हेआत्मस्वरूपी जगवन् एमास्वकीय ताहरोकां
 इनथी ॥ ३ ॥ अरेजीवतुपूर्वोक्तप्रकारेकरतोथको आसंसारमां तिर्यच अने नारकीनी
 योनीमां अत्यतडुट एहवी अनेककदर्थनाओ तेजोगवीनथीकेसुं अपितु जोगवीतोठे
 ज केमके मुहुके० वारवार नरकादिकयोनीओमा हणाणु ठेदाणुं जेदाणुं एहवीएह
 वी तहारी अवस्थाओअइ तोपणहेमुखे तेसर्व परकीय एटले स्वरूपविना पुजलनासंग
 थी ड्विजलासथया तेनेविस्मृतकरी फरितेनाउपरज प्रेमधरीने मोहपामेठे अनेतेहनुं
 ज सेवनकरतोथको केमलज्जातोतथी माटे हाइतिखेदे एणमहोटी खेदनीजवातठे

अनुपवृत्त ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रकेतनाचेतना विना ॥

सर्वमन्यधिनिश्चित्य यतस्व स्वहिताप्तये ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातु ज्ञान दर्शन अने चारित्रनी आश्रयचूतजे चेतना तेविना
 बीजाजे विजाविक पदार्थोठे तेसर्वने निश्चयथकी तहाराथी अन्यके० जूदाजाणीने
 पोताना हितने अर्थेयत्नकर ॥ ५ ॥

॥ पंचमजावनाष्टक श्रीरागेण गीयते ॥ तुजुणपारनहिस्रअणोएदेशी ॥

विनय-निजालय निजचवनं तनुधनसुतसदनस्वजनादिषु कि नि
 जमिह कुगतेरवनं ॥ वि० ॥ १ ॥ येन सहाश्रयसे ऽतिविमोहादिदमहमि
 त्यविज्ञेते तदपि शरीरं नियतमधीरं ॥ त्यजति चवंत धृतखेदा ॥ वि० ॥

अर्थ॥ह्रवेविशेषे अन्यत्वजावनाजावता श्रीविनयविजयजी उपाध्याय पोतानेउप
देशकरेठे के हेविनय तुतहारापोताना आत्मारूपघरने जो अने आसंसारमां शरीर
इव्य पुत्र घर स्वजनादिकमा कोणतुजने डुर्गतिथीरहण करवालोठे अर्थात्कोइज
नथी एटलेतु स्वजनादिकनेअर्थे माठाकर्मकरेठे तेकर्मनायोगथी जेवारें नरकादिक
डुर्गतिमांजइस तेवारे तहारोहाथपकमीने तुजने कोइडुर्गतिथी वारीराखइनेही ॥१॥
बीजातोदूररह्या पणजेनीसाथे तुं अत्यंतमोहनावशयकी ऐकपणुंकरेठे एहहुंजे
शरीरतेपण निश्चयथीअधीरोठे सेवट खेदकरावी तुजने मूकीचाव्योजसे अथवा खेद
नोकरनारतुंठो एहवा तुजनेमूकी चाव्योजसे ॥ २ ॥

जन्मनि जन्मनि विविधपरिग्रहमुपचिनुपे च कुटुंबां । तेषु चवं
तं परचवगमने नानुसरति कृशमपि सुवं ॥ वि० ॥३॥ त्यज
ममतापरितापनिदानं ॥ परपरिचयपरिणामं ॥ नज निस्संगत
या विशदीकृतमनुचवसुखरसमन्निरामं ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हेप्राणीतु जन्म जन्मने विपे विविधप्रकारना परिग्रहने संपादनकरेठे
तेमज नानाप्रकारना कुटुंबने संपादनकरेठे परंतु जन्मातरेजाता ते पूर्वीकपरिग्रह
मांथी एकठोकडो पण ताहरीसाथेआवतोनथी ॥ ३ ॥ माटे ममत्तानायोगेंकरी अ
त्यंततीव्रतापनुं मुख्यकारण एवो परकीयवस्तुनो परिणाम तेनोत्यागकर अने नि.संग
त्वपणेकरी स्वभावयल्लु आह्लादनोकरनार एहहुंजेअनुचवसुख तेनुंसेवनकर ॥ ४॥

पथि पथि विविधपथैः पथिकैः सह कुरुते क' प्रतिबंधं ॥
निजनिजकर्मवशैः स्वजने सह किं कुरुते ममताबंधां ॥ वि० ॥ ५ ॥
प्रणयविहीने दधदन्निपगं ॥ सहते बहुसंतापं ॥ तथि निः
प्रणये पुञ्जनिचये वहसि मुधा ममतातापं ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेमपंथीमाणसने जूदेज्जुदेस्थानके मार्गमार्गमा वाटालुलोकुंतुं मिलाप
थतोजायठे पणते वाटमार्गुनीसाथे कोइप्रतिबंधकरतोनथी तेमजपोतपोताना कर्म
नेवशें आवीमल्या एहवावाटमार्गुतुल्य जे तारास्वजनलोक तेनीसाथेतु ममत्वनो
प्रतिबंधकांकरेठे ॥५॥ जेमकोइ स्नेहग्रन्थपदार्थहोय अथवामनुप्यहोय तेनाउपर
स्नेहधरनाराप्राणी बहुसंतापने सहनकरेठे तेमज तुंपण ताहाराउपर निस्नेही ए
हवोजे पुञ्जनोसमुदाय एटलेपोतानुंशरीर तेपणपुञ्जने अनेजेस्वजनादिक शरीरी

जीवते तेपणपुञ्जलजते तथा नवविधपरिग्रह तेपणपुञ्जलते एहवापुञ्जलना समुदायउप
र व्यर्थ ममता रूप ताप धारण करीने संताप सहन करेते ॥ ६ ॥

त्यज सयोगं नियतवियोगं ॥ कुरु निर्मलमवधानं ॥ नद्विविद
धान कथमपि तृप्यसि॥मृगतृष्णाघनरसपानं ॥वि०॥७॥ नज
जिनपतिमसहायसहायं ॥ शिवगतिसुगमोपाय ॥ पिव गद
शमनं परिहृतवमनं ॥शांतसुधारसमनपायं ॥ वि० ॥ ८ ॥

६०शांतसुधारसगेय काव्ये अन्यत्वजावनाविजावनो नाम पंचमः प्रकाशः

अर्थ ॥ माटेनिश्चयेकरी जेहनो वियोगथवानोते एहवापुञ्जलादिकसाथे जे तें स
योगकछुंते तेनोत्यागकर अनेनिर्मल एहवोजेपोतानो शुद्धात्मजावतेनेविषे अवधान
के० स्वस्थथइ एकाग्रपणोलङ्काराख केमकेकोइपणप्राणी मृगतृष्णारूप जलतुंपानक
रीने कदापिकाळें तृप्तथवानोनथी तेमतुपण परवस्तुउपर ममत्तराखी कोइकाळें
आत्मरतिमां तृप्तिपामनारनथी ॥ ७ ॥ माटेरेआत्मा तु असहायने सहायनाकर
नार एटलेअशरणने शरणचूत एहवातीर्थिकरदेव तेनुंसेवनकर अनेनिरदोप मोक्ष
गतिमांजवानु जे सुगमोपाय अथवा जेमाथी परिकृतके० नाशपाम्युठे वमनके०
मोक्षनासुखनो वमवापणु वली गदशमनके० ससाररूप रोगनो समावनार एहवो
जे शातनामा सुधारसके० अमृतरस तेनो पिवके० पानकर ॥ ८ ॥ इतिश्रीशांतसु
धारसगेयकाव्ये अन्यत्वजावनाविजावनो नाम पंचमः प्रकाशः

शार्दूलविक्रीडित वृत्त ॥ सञ्चिडो मदिराघट परिगलत्तल्लेश
संगाशुचि शुच्या मृद्यमृदा बहि स बहुशो धौतेपि गंगो
दकै ॥ नाधत्ते शुचिता यथा तनुचृतां कायो निकायो महावी
जत्सास्थिपुरीपमूत्ररजसां नार्यं तथा शुद्ध्यति ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेठही अशुचि जावना जावेते जेम मदिरा गालवानुंयंत्र ज़ारीनीमाफ
क डिङ्करी सहितथायते तेडिडोमाथी मदिरागलावेते तेथी तेडिडोमा मदिराना
कणिआनुं अशरहीजायते तेलेशमात्र पण मदिरानासगेकरीने अपवित्रथयलु
एहवोजे मदिराना जाजननो डिड तेनेपवित्रकरवाने अर्थे बाहिरथी माटीसाथे गती
ने पठे गंगानदीना पाणीयेकरी घणावरवत थोइधोइने साफकरवामांशियें तोपणते
मदिरागालवाना डिडो कोइवारें पवित्र थापनही तेमज मनुष्यनो अत्यंत बीजरस

डुगवाकरवायोग्य हाम रक्त मज मूत्रनोस्थानकरूप शरीर तेने माटीयेंगसवाथी
 अथवा गंगादिकनापाणीये नवराव्याथी पणपूर्वोक्त दृष्टांतकोऽचारे शुद्धथातुंनथी?
 मंदाक्रांतावृत्तां॥स्नायं स्नायं पुनरपि पुनः रनांति शुद्धाच्चिरञ्जि वा
 रं वारं वत मलतनुं चंदनैरर्चयंते ॥ मूढात्मानो वय मपमलाः प्री
 तिमित्याश्रयंते नो शुद्ध्यंते कथमवकरः शक्यते शोऽभुमेवं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ माटेजगतमां जेनुंअंत.करण मूढथयुंठे एहवालोके स्नानकरीने वा
 रंवार शरीरशुद्धि करवानेअर्थे फरिपण स्नानकरेठे तथा वारवार मलनास्थानकरू
 प शरीरने चंदनेकरीचर्चेठे अने अर्चनेनिर्मलथया एतुंकहीने प्रीतिकरेठे पण एम न
 थी जाणताजे एशरीर तो किचारेपण शुद्धथातुंनथी केमके खात्रनुं उकरडो तेको
 इरीते शुद्ध थायकेसुं अर्थातनजथाय ॥ ७ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ कर्पूरादिच्चिरचितोपि लशुनो नो
 गाहते सौरजं नाजन्मोपकृतोपि हंत पिशुनः सौजन्यमा
 लंबते ॥ देहोप्येप तथा जहाति न नृणां स्वाजाविकीं विस्त्र
 तां नाज्यक्तोपि विचूपितोपि बहुधा पुष्टोपि विश्वस्यते ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ जेमलसणमां कर्पूरादिकपदार्थानो जेलकखो तोपण लसणकांड सुगंधी
 यत थायनही तथा जन्मपर्यंत उपकारकखोहोय तोपण दुर्जनपुरुष कांड सौजन्यता
 ने धारणकरतो नथी तो हंतइतिखेदे आमनुष्यनुंशरीर तेपण स्वजावसिद्ध दुर्गधने
 मूकतुंनथी आशरीरने विविधप्रकारनासुगंधीतेलेंकरीमसत्र्यो अनेवस्त्रालंकारेकरी
 चूपितकखो तथा खवरावी पीवरावीने अत्यंतपुष्टकखो तोपण विश्वासनोपात्र था
 यनही एटले एशरीर हवेसारंथयुं एहवोविश्वास कदापिआवेनही ॥ ३ ॥

उपेज्वजावृत्तं ॥ यदीयसंसर्गमवाप्य सद्यो नवेच्छुचीनामशुचित्वमु
 च्छेः ॥ अमेध्योनेर्ववपुपोस्य शौचसंकल्पमोहोयमदो मह्यान् ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ शरीरनोसंबंधपामिने पवित्रपदार्थाने पण अपवित्रतापणुं आवेठे केम
 के आशरीरने उचमजातिना चंदनादिके मर्दनकरो तो तेचंदनादिक थोडीजवारमा
 पोतातुं सुगंधतापणुंमूकीने दुर्गंधतानेधारणकरेठे तेमज उचमप्रकारनानोजन खच
 राव्याथी तेपण तुरत नरगमय घयीजायठे एवो आ अपवित्रवस्तुने उत्पत्तिनुकार
 ण जेशरीर तेनेपवित्रपणुं करवाना संकल्पनी मोहराखतुं एमहोदोआश्रयकारीने ४

स्वागतावृत्तां॥इत्यवेत्य शुचिवादमतर्थं पथ्यमेव जगदेकपवित्रं ॥

शोधनं सकलदोषमलानां धर्ममेव हृदये निदधीथा ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ एरीते शरीरने पवित्रकरवानोवाद् स्वोटोजाणीने जगतमां एकपवित्र
पथ्य तो समस्तदोषरूपमलानो शोधक एहवोजेधर्म तेहनेऋदयमाधरो ॥ ५ ॥

॥ पट्टजावनाष्टकं आसावरीरागेण गीयते कागारेतनुचुनिचुनिजावे एदेशी ॥

जावय रे वपुरिदमतिमलिनं विनय विबोधय मानसनलिनं॥

पावनमनुचितय विन्नुमेकं॥परममहोमयमुदितविवेक॥जा०॥२॥

दम्पतिरेतोरुधिरविवर्त्ते कि शुचमिह मलकश्मलगत्तै॥ नृशम

पि पिहित. स्रवति विरूपं को बहुमनुतेऽ वस्करकूपं ॥जा०॥३॥

अर्थ ॥ हवेविनयविजयजी उपाध्याय पोतैपोताने उपदेशकरतो अद्युचिपण्ट
चावेठे हेविनय आशरीरनेतु घणुजमलीनजाणीने पोतानुंमनरूपकमल प्रफुल्लित
कर वलीजे परमतेजस्वी अनेजेनाथकी उत्तमविचार उत्पन्नथाय एहवो एकपवित्र
परमात्मानु चितवनकर ॥ १ ॥ स्त्रीनोरक्त अने पुरुषनो रेत तेनापरिणाम

स्वरूपथी उत्पन्नथयु एहवु मलमयजे कश्मलके० चीखलतेनी गर्ताके० खाइ रूप
आ शरीर तेमासुसारुंते जोआशरीरने अत्यतढाकींराखुं तोपणतेमाथी विरूपप
णे मातोडुर्गंधज स्ववेठे तोएवाकचराना कूवाने कोणरुडोकरी माननारठे अर्थात्
कोऽपण उकरडारूप कचरायेंकरी नरेला कूवाने ननुमानसेनही ॥ २ ॥

नजति सचञ्च शुचि ताबूल ॥ कर्तुं मुखमारुतमनुकूलं ॥तिष्ठ

ति सुरजि कियंत काल॥मुखमसुगंधि जुगुप्सितजाल॥ जा०

॥३॥असुरजिगंधवहोतरचारी॥आवरितु शक्यो न विकारी॥

वपुरुप जिघ्रसि वारंवारं॥हसति बुधस्तव शौचाचारं ॥जा०४॥

अर्थ ॥ सुंदरतांबूलमां कर्पूरप्रमुखनारखीने मुखसबंधीवायु अनुकूलकरवानेअर्थें
खायठे परतु निदाकरवायोग्य अनेघणीज डुगड्ढाकरवायोग्यठे लालजेनी वली अथ
वित्रजेनोगंध एहवा तद्वारामुखनी सुगंधीते केटलोक वखतरहसे ॥३॥ शरीरमांचाल
नारो विविधप्रकारना विकारेकरीसहित असुरजिगंधनो वहेनारो जे ताद्वारामुखनो वा
युतेने ढाकीमूकवाने तुसमर्थथयोनही तोताद्वाराअग्ने सुगंधीपदार्थोनो लेपकरी वार
वार तेहनो सुवासलियेठे एतारो पवित्रतानो आचारजोऽने पंडितलोकोहसेठे ॥४॥

द्वादश नव रंध्राणि निकामं ॥ गलदशुचीनि न यांति विरामं ॥
यत्र वपुषि तत्कलयसि पूतं ॥ मन्ये तव नूतनमाकूतं ॥ जा० ॥ ५ ॥
अशितमुपस्करसंस्कृतमन्नं जगति जुगुप्सां जनयति हन्नं ॥ पुं
सवनं धेनवमपि लीढं भवति विगर्हितमति जनमीढं ॥ जा० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ अतिशयेकरी जेमांथी रात्रदिवस अपवित्रवस्तुश्रवेळे पणकोड्वारें विरा
मपामतिनथी एहवाखीना बारढिष् अने पुरुपनानवढिष् तेढिडेकरीसहित एहवा
शरीरने तुंपवित्रपणेजाणोळे मांटेए ताहरोकोड नवोज आचारजणायळे ॥ ५ ॥ ना
नाप्रकारे वगारप्रमुखना संस्कारेकरी संस्कृतकरेलुं पचावेलुं एहवुंजे अन्न तेपण आ
शरीरमा अरोग्यायकी हन्नके० विष्टारूपयइजायळे तेणेकरी जगतमां जुगुप्सा
के० डुगह्वावत्पन्नकरेळे वली आशरीरने वीर्यनीवृद्धिकरनाहं गाचनुंडुध प्राशनक
रीने फरीतेपुरुषें मूत्रितकखोथको तेपणअत्यंत निंदाकरवायोग्य थइपडेळे ॥ ६ ॥

केवलमलमयपुञ्जलनिचये अशुचीकृतशुचिज्जोजनसिचये ॥ वपु
षि विचिंतय परमिहसारं शिवसाधनसामर्थ्यमुदारं ॥ जा० ॥ ७ ॥
येन विराजितमिदमतिपुण्यं तच्चिंतय चेतननैपुण्यं ॥ विशदागमम
धिगम्य निपानं विरचय शांतसुधारसपानं ॥ जा० ॥ ८ ॥ इतिश्री
शांतसुधारसगेयकाव्ये अशौचनावनाविजावनोनाम षष्ठः प्रकाशः

अर्थ ॥ मांटे केवलमजरूप पुञ्जनोसमूह अने पवित्रज्जोजनने अपवित्रपणु आ
पनार एहवाशरीरमां मात्रएक मोक्षसाधन करवानुजे सामर्थ्ये एहिजमहोटी सार
चूतजाण ॥ ७ ॥ मोक्षसाधनेकरी नृपितकखोथको ए शरीरपवित्रथायळे तेचेतना
नीज चातुर्यताजाणवी पणजेमा निमैलसिद्धांतरूप जलमिलेळे एहवो जलस्थान
कजोडने शांतसुधारसनोपानकर ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारसगेयकाव्ये अशुचिना
वनाविजावनोनाम षष्ठः प्रकाशः.

जुजंगप्रयातं वृत्तं ॥ यथा सर्वतो निर्जरै रापतद्भिः प्रपूर्येत सद्यः पयोनिस्त
टाक ॥ तथैवाश्रवैः कर्मभिः संनृतांगी भवेद्द्याकुलश्र्वचलः पकिलश्र्व ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेसातमी आश्रवनावना जावेळे जेम सर्वबाजुथी पमता पाणीना
निजरणायेकरी तत्कालतलाव नराइजायळे पळे पाणीनातरगेकरी चचलथायळे ते

मज कादववधेते इत्यादिके व्याकुलथायते तेम आश्रवेंकरीयुक्तप्राणी कर्मरूपपाणी
यी नरपूरथई व्याकुल अने चचलथको पापरूपकादवे सहितथायते ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ यावत्किचिदिवानुच्य तरसा कर्मह
निर्जीर्यते तावच्चाश्रवशत्रवोऽनुसमयं सिचति न्युयोपि तत् ॥
हा कष्ट कथमाश्रवप्रतिजटा शक्या निरोद्धुं मया संसा
रादतिचीपणान्मम हहा मुक्ति कथं नाविनी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ ते जेटलामा अनुचवलेझे बलात्कारेकरी महारा अत्मामांथी काइक
र्मने हुं शुष्ककरुतुं तेटलामावली आश्रवरूपशत्रु समयसमयप्रते कर्मोने फरी सी
चनकरेते माटे हाइतिखेदे मने एवु कणलागेते के हुं आश्रवरूपशत्रुने केवीरीते
जीतिशकुं अने एरीतेतो अत्यतनयकर संसारथकी महारोवूटको पण सीरीतेथसे ॥ १ ॥

प्रहर्षणीवृत्तं ॥ मिथ्यात्वाविरतिकपाययोगसंज्ञाश्रत्वार.
सुकृतिचिराश्रवा प्रदिष्टा ॥ कर्माणि प्रतिसमय
स्फुटैरमीर्चिवंध्रंतो भ्रमवशातो भ्रमति जीवा ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ पुण्यवतपुरुषोए ? मिथ्यात्व २ अत्रति ३ कषाय ४ योग एचारनाम
ना चारआश्रवकहाते ते समयसमयप्रते एचारआश्रवना योगेकरी कर्मोने बांध
नारा जीवो ते त्रमेकरी चारगतिरूप संसारमाजमेते ॥ ३ ॥

रयोद्धतावृत्तं ॥ इंजियाव्रतकपाययोगजा पंच पच चतुरन्वितास्त्र
य ॥ पचविंशतिरसक्रिया इति नेत्रवेदपरिसंख्यया ऽप्यमी ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ पाचइडियो तथा प्राणातिपातादिक पाचअव्रत अने क्रोधादिक चारक
पाय वली मनादिक त्रणयोग तथा कायिकादिक पचीस असक्रिया एरीते सर्व
मलीने आश्रव बेतालीस प्रकारनुंते ॥ ४ ॥

ऽजवजावृत्तं ॥ इत्याश्रवाणामधिगम्य तत्वं निश्चित्य सत्त्व श्रुतिसन्निधा
नात् ॥ एपा निरोधे विगलद्विरोधे सर्वात्मना जाग्यतितव्यमात्मन् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ एहहुं आश्रवतु तत्वजाणीने निश्चयथकी " नि एटले
आगम सिद्धांतरूप शास्त्रतुं गतापणुं तेजेनाथकी वि
शत्रुनो निरोधकरवा विषे हेआत्मातु तुरत यत्नकर ॥

सप्तमजावनाष्टकं धनाश्रीरागेण गीयते ॥ जोजीमारेहंसारेविषयनराचियें एदेशी ॥

परिहरणीया रे सुकृतिजिराश्रवा हृदि शमतामवधाय ॥ प्रजवं
त्येते रे नृशमुच्छंखला विजुगुणविजववधाय ॥ परि० ॥ १ ॥

कुगुरुनियुक्ता रे कुमतिपरिष्कृता ॥ शिवपुरपथमपहाय
प्रयनंतेऽमी रे क्रियया झुष्टया प्रत्युत शिवविरहाय ॥ परि० ॥ १॥

अर्थ ॥ सुकृतवत्पुरुषे हृदयमां समताधारणकरी आश्रवनोपरिहारकरवो अरे
जीव आ लोखदना शांकलनीपरें बाधीराखनारो जे आश्रव ते विजुजे परमात्मा
तेनागुणरूप ऐश्वर्यतानो नाशकरवाने समर्थथायठे ॥ १ ॥ कुगुरुयेकरेजीप्रिरेणा
अने कुमतियेकरी युक्तथयला हेडुष्टजीव तुं कायिकादिक झुष्टक्रियाउमां प्रवर्त्तवे
करी मोहूपुरीयें जवानो मार्गमूकीने उलटोमोहमार्गनो नाशकरवानुंज यत्नकरेठे ॥ १ ॥

अविरतचित्ता रे विषयवशीकृता विपदंते विततानि ॥ इह
परलोके रे कर्मविपाकजान्यविरलज्जु खशतानि ॥ परि० ॥ ३ ॥

करिऊपमधुपा रे शलजमृगादयो विषयविनोदरसेन ॥ हंत
लजंते रे विविधा वेदना वत परिणतिविरसेन ॥ परि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनाचित्तमां वैराग्यनथी एहवा विषयने पराधीनथयलाप्राणी इहलोके
तथा परलोकेपण निरंतरपणे कर्मनापरिणामोथी उत्पन्नथयलां शैकमाड खोनुं
सहनकरेठे ॥ ३ ॥ हस्ति मत्स्य चमर पतंग अने मृग एवा पाचजातना प्राणीओ
अनुक्रमेस्पर्श रस गंध रूप शब्द ए एकेकाविषयना विनोदरसेकरी नानाप्रकारनी
वेदनाओने एविषयोना परिणाम जे विरस एटले मातारस तेणेकरीपामेठे ए महो
टंखेदनुं कारणेठे ॥ ४ ॥

उदितकपाया रे विषयवशीकृता यांति महानरकेपु परिव
र्त्तते रे नियतमनंतशो जन्मजरामरकेपु ॥ परि० ॥ ५ ॥

मनसा वाचा रे धपुपा चंचला झुर्जयडरितचरेण ॥ उपलि
प्यंते रे तत आश्रवजये यततां कृतमपरेण ॥ परि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेने क्रोधादिक कपाय उदयमांआव्याठे तेप्राणीओ पाचइडिओना
विषयोने स्वाधीनथयलाठे तेणेकरी महोटा नरकमा जायठे अने अनतिवार जन्म
जरामरणकरेठे ॥ ५ ॥ आश्रवेकरी चंचल थयला प्राणी मन वचन अने कायाना

योगे इर्जय एह्वुंजेपाप तेणेकरी युक्तथायठे माटे चतुरपुरुपे आश्रवने जीतवानुं
प्रयत्नकरवु अने नवा कर्म बांधवानही ॥ ६ ॥

शुद्धायोगा रे यदपि यतात्मनां स्रवते शुचनकर्माणि ॥ कांचन
निगडांस्तान्यपि जानीयात् हतनिर्दृतिशर्माणि ॥ परि० ॥ ७ ॥

मोदस्वैव रे साश्रवपाप्मना रोधे धियमाधाय ॥ शांतसुधारसपा
नमनारतं विनय विधाय विधाय ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधा

रस गेयकाव्ये आश्रवजावनाविजावनोनाम सप्तमः प्रकाश

अर्थ ॥ जेपोपोतानुं मनस्वाधीनकखुं तेनाशुद्धयोगजेठे ते शुद्धयोग जोपण
शुचनकर्मेनेज स्ववेठे एटले शुचनकर्मेनीज प्राप्तिकरावेठे परतु तेकर्मोपण मोदसुख
ना नाशकरवाने शोनानीवेडीसरखा जाणवा ॥७॥ माटे विनयविजयजी ठपाध्याय
पोते पोतानेकहेठे के अरेविनय आवाप्रकारेकरी आश्रवसहित जेपाप तेनोनि
रोधकरवा उपर बुद्धिराखी वारवार शातिसुधारसनो पानकरीकरीने आनदपामा॥८॥

इतिश्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये आश्रवजावनाविजावनो नाम सप्तम प्रकाश

स्वागतावृत्तद्वय ॥ येन येन य इहाश्रवरोध. संजवेन्नियतमौ

पयिकेन ॥ आद्रियस्व विनयोद्यतचेतास्तत्तदांतरदृशा परिजा

व्य ॥ १ ॥ संयमेन विषयाविरतत्वे दर्शनेन वितथाज्जिनिवे

शा॥ध्यानमार्तमथ रौडमजस्र चेतस. रिश्ररतया च निरुध्या. ॥१॥

अर्थ ॥ हवेआठमी सवरजावनाजावेठे अरेविनय आजगतमा जे जे उपायेंकरी
निश्रयथी आश्रवनोरोध थतोहोय ते ते उपाय ताहरी अंतरदृष्टियेजोइ तेनेविपे
चित्त लगामीने तेनेस्वीकारकर ॥ १ ॥ एटले संयमेकरीने विषयउपर वैरागकर
सम्यक्त दर्शनेकरीने अज्जिनिवेशके० मिष्यात्वनो आग्रहमूकीआप अने चित्तना
स्थिरपरिणाम पणे करीने आर्त्त तथा रौड एवे ध्यानतु निरतर रुधनकर ॥ २ ॥

शालिनीवृत्तं ॥ क्रोध क्लान्त्या मार्दवेनाज्जिमानं हन्या मायामार्जवेनो
ज्वलेना॥लोच वारांराशिरौडं निरुध्या सतोपेण प्रांशुना सेतुनेवा॥३॥

अर्थ ॥ क्रुमायेकरी क्रोधनो जयकर मार्दवेकरी अज्जिमाननो जयकर सरजपणे
करी मायाजेकपट तेने हणीनाख वलीसमुद्ज्जेवो डुक्कर जे लोच तेहनो उघो सेतु
सरिखोजे सतोप तेणेकरी रोपकर ॥ ३ ॥

स्वागतावृत्तं ॥ गुप्तिनिस्तिमृत्तिरेवमजघ्यान् त्रीन् विजित्य तरसाऽधमयो
गान् ॥ साधुसंवरपथे प्रयतेथा लप्स्यसे हितमनीहितमिदं ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ एमज मनगुप्ति वचनगुप्ति अने कायगुप्ति एत्रण गुप्तियेकरीने जे जीत
वाने घणाजडलेन निंदनीक एहवा त्रण डुपयोग्य तेने जीती रूडासंवर मार्गनेवि
पे यत्नकर एटले प्रकाशवंत देदीप्यमान अने कोडकाले विनाशने न पामनारा एह
वा जे हितार्थ तेने पामीत अर्थात् मोक्षमुखने पामीत ॥ ४ ॥

मंदाक्रांतावृत्तं ॥ एवं रुद्धेष्वमलहृदयैराश्रवेष्वाप्तवाक्यश्रद्धाचंच
त्सितपटपटुः सुप्रतिष्ठानशाली ॥ शुद्धैर्योगैर्जवनपवनैः प्रेरितो
जीवपोतः स्रोतस्तीर्त्वा नवजलनिधेर्याति निर्वाणपुर्या ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ एवाप्रकारेकरी स्वहृदयवत पुरुषे आश्रवनो रोधकरवो पठे आप्तके
पोतानाहितवागिक तीर्थकरादिक पुरुषोना वाक्योत्तर जेश्रद्धाराखवी तेजाणीये
वाहणनेविषे एकसुंदर अनेउज्वल वावटोचडाव्यो एहवो नूतनपीठबंध थयो थको
शुद्धमनोयोग शुद्धवचनयोग शुद्धकाययोग एत्रणयोग तेहिज जाणिये कोडक वेग
वानवायरो तेपोकरी पूखोथको जीवरूपीओ जहाज तेसंसारसमुद्रनो प्रवाह्तरी
ने सुरत मोक्षरूप नगरिये जइपहोचेठे ॥ ५ ॥

॥ अष्टमजावनाष्टकं नटरागेण गीयते महावीरमेरो लालन एवेशी ॥

शृणु शिवसुखसाधनसङ्घपायं सङ्घपायं रे सङ्घपायं ॥ शृणु शिवसु
खसाधनसङ्घपायं ॥ ज्ञानादिकपावनरत्नत्रयपरमाराधनमनपायं
॥ शृणु ॥१ ॥ ॥ विषयविकारमपाकुरु दूरं क्रोधं मानं सहमायं ॥
लोभं रिपुंच विजित्य सहेलं ॥ नज सयमगुणमकपाय ॥ शृणु ॥१॥

अर्थ ॥ हे विनय तुं मोक्षसाधननो रूडोउपाय सांजल एकतो निर्दोषपवित्र
ज्ञानादिक रत्नत्रयतुं आराधनकर बीजो पांचेडियोना विषयसंबंधीजे विकारोठे ते
हनेदूरकर त्रीजोमायासहित क्रोध मान अनेलोभरूप शत्रुओनी.हेलनाकरी सहेज
मां श्रमबिना एचारेकपायने हलकटजेवा जाणी जीतीजेइने कपायथी शून्यथयलो
एहवोजे संयमरूप गुण तेनुंसेवनकर ॥ १ ॥

उपशमरसमनुशीलय मनसा रोपदहनजलदप्राय ॥ कलय
विरागं धृतपरजागं हृदि विनयं नाय नायं ॥ शृ० ॥ ३ ॥
आर्तं रौड ध्यान मार्जय ॥ दह विकल्पपरचनानायं ॥
यदियमरुद्धा मानसवीथी ॥ तत्त्वविद. पंथा नाय ॥ शृ० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ क्रोधरूपअग्नीने शमाववा मेघनीपरे शांतिनोकरनार एहवोजे उपशम
रस तेहने तु मनमा धारणकर हे विनय रुदयमां धारणकरेलोजे परपुञ्जलादिक
संबंधी जाग तेहने तद्वारा रुदयमाथी नीत्वानीत्वाके० काढीकाढीने अत्यंत गुणवा
नजे वैराग्य तेने धारणकर वली आर्तध्यान अनेरौडध्यानने धारणकरीसनही ॥ ३ ॥
तथा संकल्प विकल्पनीजेजालठे तेने वाली जस्मकरीनाख कारणके मनो
योगना मार्गने रुंधी न राखवो एवोकाइ तत्व वेत्तानो मार्गनथी तत्ववेत्ता पुरुष
नेतो मनोयोग मोकळो राखवुज नही ॥ ४ ॥

संयमयोगैरवहितमानसशुद्ध्या चरितार्थयकाय ॥ नानामत
रुचिगहने नुवने निश्चिनु शुद्धपथं नायं ॥ शृ० ॥ ५ ॥ ब्रह्म
व्रतमगीकुरु विमल विभ्राण गुणसमवायं ॥ उदित
गुरुवदनाडुपदेशं संगृह्याण शुचिमिव रायं ॥ शृ० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ सयमनायोगथी थयलीजेमननीशुद्धि तेणेकरीने काइपण कृतार्थकर
नानाप्रकारनी रुचिसहीत विचित्रप्रकारना मतेकरी गहन एटलेव्याप्त एहवो आज
गतमा नयरूप शुद्धमार्ग एटले स्यादाद शैलीरूपजे जैनमार्ग तेनोशोधकर ॥ ५ ॥
वली गुणना समुदायने धरनार अत्यंतनिर्मल एहवाब्रह्मचर्यव्रत ने स्वीकारकर
अने गुरुयेकरलाउपदेशने जेरीतें शुद्धइत्यनो सग्रहकरिये तेरीतेंसंग्रहकर ॥ ६ ॥

संयमवाड्मयकुसुमरसैरति सुरजय निजमध्यवसायं ॥ चेतन
मुपलक्ष्य कृतलक्षणज्ञानचरणगुणपर्यायं ॥ शृ० ॥ ७ ॥ वदन
मलंकुरु पावनरसनं जिनचरितं गाय गायं ॥ सविनय शांतिसु
धारसमेनं चिरं नह पायं पाय ॥ शृ० ॥ ८ ॥ इति श्रीशांतिसुधा
रसगेयकाव्ये संवरजावनाविजावनो नाम अष्टम प्रकाश

अर्थ ॥ सयमना प्रतिपादन करनारा एहवा परमेश्वरनी वाणीमय जेपुष्प ते
पुष्पोना रसनीसुगंधी पोताना अथ्यवसायनेअत्यंतपणेकर अने ज्ञानादिक गुणपर्या

यरूप लक्षणो करनारुं एह्वोजे तदारुं चेतनजे तेने तु अजोख ॥ ७ ॥ पवित्र
अने जलारसेकरी सहित एह्वु परमेश्वरनाचरित्रोनुं गायन करीकरीने पोताना सु
खने अलंकृतके शोणितकर (जूषितकर) वली विनयसहित आ शांतिसुधारसनो
पान करी करीने घणाकाल सुधी आनंद मगमां रहे ॥ इतिश्री शांतिसुधारस गेयका
व्ये संवरजावनाविजावनो नाम अष्टम. प्रकाश. ॥

इजवजावृत्तां॥यन्निर्जरा द्वादशधा निरुक्ता तत् द्वादशानां तपसां विजे
दात् ॥ हेतुप्रचेदादिद् कार्यचेदः स्वातंत्र्यतस्त्वेकविधैव सा स्यात् ॥१॥

अर्थ ॥ हवे निर्जरा जावनाजावेजे निर्जराजे वारप्रकारनी कहीजे तेवारप्रकारना
तपने जेदेकरीथाय इहां कारणनेजेदे कार्यनो जेदथाय तेषेकरी वारप्रकार कहेवाय
नहीकां स्वतंत्रपणेतो निर्जरा एकप्रकारनीजे ॥ १ ॥

अनुष्टुप्चतुस्र्यां॥काष्ठोपलादिरूपाणां निदानानां विजेदत ॥वन्दि
र्यथैकरूपोपि पृथग्रूपो विवद्ध्यते॥१॥ निर्जरापि द्वादशधा तपो
जेदैस्तथोदिता ॥ कर्मनिर्जरा एवात्मा तु सैकरूपैव वस्तुतः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥जेम कारणरूप काष्ठ अने पाखाणना जूदाजूदा जेदजे तेनाजेदेकरी यथ
पि अग्निएकरूपजे तथापि निन्ननिन्नरूप देखायजे एटले आ अमुक काष्टनीअग्नि
अथवा आ अमुक पाखाणनी अग्नि इत्यादिक अग्निना जेदकहेवायजे ॥ १ ॥ ते
मज तपनाजेदेकरी निर्जरा वारप्रकारनीकहीजे पण वस्तुतल्लें विचारतां कर्मनिर्ज
रा स्वरूप जे तेतो एक रूपजे ॥ ३ ॥

उपेजवजावृत्तां॥निकाचितानामपि कर्मणां यजरीयसां जूधरजुधराणां॥
विजेदने वज्रमिवातितीव्रं नमोस्तु तस्मै तपसेऽद्भुताय ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ पर्वतजेवा डुईर एहवा महोटा निकाचितकर्मोना जेदकरवाविपे वज्रनी
परें अत्यंततीव्र एह्वुअद्भुतजे तप तेने महारो नमस्कार होजो ॥ ४ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ किमुच्यते सत्तपसः प्रजावः कठोरकर्माजितकिल्बि
पोपि ॥ दृढप्रदारीव निद्वल्य पापं यतो ऽपवर्गं लज्जतेऽचिरेणा॥५॥

यथा सुवर्णस्यशुचि स्वरूपं दीप्तः कृशानु. प्रकटीकरोति ॥
तथात्मनः कर्मरजो निद्वल्य ज्योतिस्तपस्तद्विशदीकरोति ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ तपना रूमाप्रजावतुं केटलुं वखाण करिये जेटलुं वखाणकरिये तेटलुं

थोडुंजठे केमके दृढप्रहारी जेवा पुरुषोए महोटा कगोर कर्म करीने अत्यंत पापोनो
संपादान कखुंहतो तेपण तपस्याना प्रजावे समस्त पापोनो नाशकरीने थोडाज का
जमा मोक्ष प्रते पास्या ॥ ५ ॥ जेम प्रदीप्तअग्नि सुवर्णनु पवित्रस्वरूप प्रगटकरेठे
तेमज तपजेठे तेपण आत्मामांथी कर्मरूप रजनो नाशकरीने साक्षात् आत्मानुं
ज्योतिस्वरूप प्रगटकरेठे ॥ ६ ॥

स्रग्धरावृत्तं॥ बाह्येनाच्यतरेण प्रथितबहुजिदा जीयते येन
शत्रुश्रेणी बाह्यातरंगा नरतनृपतिवत् जावलब्धञ्जडिम्ना॥
यस्मात्प्राञ्जनेवयु प्रकटितविजवा लब्धयः सिद्ध्यश्च वं
दे स्वर्गापवर्गार्पणपटु सततं तत्तपो विश्वबंध ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेना बाह्य अने अच्यंतर जेवेकरी घणानेद प्रख्यातठे एहवा तपना
उपर विशेषजावना योगेंकरी जेहने दृढपण लब्धके० प्राप्तथायतो ते तपेकरी दुस
मनादिक बाह्यशत्रु अने रागादिक अंतरग शत्रु तेनीजे श्रेणीके० पंक्ति तेने नरत
राजानीपरे जीतीजवायठे वली जेतपथकी ऐश्वर्यताने प्रगटकरनारी अथवावीसल
ब्धीओ अने आवसिद्धिओ प्रगटथायठे तथा जे स्वर्ग अने मोक्षना सुखआपवामा
कुशल वलीजगतने पूजवायोग्य एहवोजेतप तेहनेहुं निरतर नमस्कारकरुं ॥ ७ ॥
अथनवमजावनाएक सारगरागेण गीयते ॥ जिणदरायसरण तिहारे आयोएवेशी॥

विजावय विनय तपोमहिमानं॥ ध्रुवपद ॥ बहुजवसचित्तु
पकृतममुना ॥ लज्जतेलघुलधिमानं ॥ वि० ॥ १ ॥ याति
घनापि घनाघनपटली ॥ खरपवनेन विराम ॥ नजति त
था तपसा छुरिताली ॥ कृष्णजगुरपरिणामं वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ विनयविजयजी पोताने उपदेशकरेठेके अरेविनय तु तपनामहिमानी
जावनाकर जेनायोग्यकी घणानवतुं सचित्तकरेलु पाप तुरतज हलकापणुपामे
ठे ॥ १ ॥ जेम तीक्ष्णवायुये करी महोटी महोटी मेवनीपक्तिओ नाशपामेठे तेमज
तपेंकरीने महोटीमहोटी पापनीपक्तिओ एक कृष्णमात्रमा नष्टइजायठे ॥ २ ॥

वाग्भितमाकर्षति दूरादपि रिपुमपि व्रजति वयस्यं॥ तप इदमाश्र
य निर्मलजावादागमपरमरहस्य॥३॥अनशनमूनोदरता वृत्तिह्वा
सं रसपरिहारं नज सांलीन्य कायक्लेशं तप इति बाह्यमुदार॥४॥

अर्थ ॥ वली जे वाठितार्थ घण्टूरहोय तेनेपण नजीकआणीआपेठे तथाशत्रु
नेपण मित्रकरेठे एहवाएतपने शास्त्रतुं परमरहस्य जाणीने निर्मलजावे आदर ॥
॥ ३ ॥ तेतपनावारचेदठे १ अन्नशन २ उनोदरी ३ वृत्ति-हास एटले वृत्तिसं
क्षेप ४ रसपरिहार ५ सांलीन्यता एटले इडियोनोरोधतुं एकांतबेसतुं ६ कायक्लेश
एठप्रकारतुं महोदुं वाह्यतपठे तेतुं तु सेवनकर ॥ ४ ॥

प्रायश्चित्तं वैयावृत्यं स्वाध्यायं विनयं च ॥ कायोत्सर्गं शुचध्यानं
आन्यंतरमिदमच ॥ वि० ॥ ५ ॥ शमयति ताप गमयति पाप रमयति
मानसहंसं ॥ हरति विमोहं दूरारोहं तप इति विगताशंसं ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ १ प्रायश्चित्त २ वेयावृत्त ३ स्वाध्याय ४ विनय ५ कायोत्सर्ग ६ शुच
ध्यान एठप्रकारना आन्यंतर तपठे तेनेसेव ॥ ५ ॥ एतप अनेकप्रकारना संसारी
कतापनी शांतिकरेठे अनेपापनोनाशकरेठे तथा मनरूपहंसने रमाडेठे वली नि सं
शयपणे आजगतमां ७ खोनेदूरकरवा असमर्थ एहवोजे मोहतेनो नाशकरेठे ॥ ६ ॥

संयमकमलाकार्मणमुज्वलशिवसुखसत्यंकार चिंतितचितामणिमाराध
य तप इह वारं वारं ॥ वि० ॥ ७ ॥ कर्मगदौषधमिदमिदमस्य च जिनपति
मतमनुपानं ॥ विनय समाचर सौख्यनिधानं शांतिसुधारसपानं ॥ वि० ॥ ८ ॥
इति श्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये निर्जराज्ञावनाविज्ञावनोनामनवमः प्रकाशः

अर्थ ॥ वजीएतपते चारित्ररूप लक्ष्मीने वंशकरवानी विद्याठे तथा सुंदर मो
हना सुखआपवाने विशारदठे वली चितितार्थ देवाने चितामणीरत्नसरखोठे एह
वा तपने आजगतमां हेविनय तु वारंवार अंगीकारकर ॥ ७ ॥ हेविनय कर्मरूप
रोगतु औषध अने तीर्थकरोनो जे मत तेठे अनुपानजेहंतुं तथा समस्त सुखतुं
निधान एहवोजे शांतसुधारस तेतुंतुपानकर ॥ ८ ॥ इति श्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये
निर्जराज्ञावनाविज्ञावनो नाम नवमः प्रकाशः

उपजातिवृत्तं ॥ दानं च शीलं च तपश्च जावो धर्मश्चतुर्धा जिनवां
धवेना ॥ निरूपितो यो जगतां हिताय स मानसे मे रमतामजस्रं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेदशमी धर्मज्ञावना जावेठे तीर्थकरदेवें लोकहितार्थे दानशील तप अ
ने जाव एरीतें चारप्रकारनो धर्मकहोठे तेधर्ममारामनमां सर्वकालरहो ॥ १ ॥

इडवजावृत्त त्रयं॥सत्यकृमामार्दवशौचसंगत्यागार्जवब्रह्मविमुक्तियु
क्तः॥ यः संयमं किञ्च ततोपगूढश्चारित्रधर्मो दशधायमुक्त ॥ १ ॥ य
स्य प्रजावादिह पुष्पदत्तौ विश्वोपकाराय सटोदये ते ॥ ग्रीष्मोष्मनी
ष्मामुदितस्तप्तित्वान् काले समावासयति क्षिति च ॥ ३ ॥ उद्धो
लकद्धोलकलाविलासैर्नाप्लावयत्यंबुनिधि क्षितिं यत् ॥ न
घृति यत् व्याघ्रमरुहवाद्या धर्मस्य सर्वोप्यनुजाव एष. ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ १ सत्य २ कृमा ३ मार्दव ४ शौच ५ तपधर्म ६ संगत्याग ७ ब्रह्मचर्य ८
विशेषप्रकारेण मुक्तिपटले निर्लोचितापणुं ए सयमं १० अकिञ्चनता तेषोकरियुक्त ए
रीते दसप्रकारानुं चारित्रधर्म कस्युते ॥ १ ॥ जे धर्मेनापसायेकरी जगतमां चडसूर्य
पण सर्वप्राणीमात्रने उपकारकरवाने अर्थे नित्यउदयपणुं पामेते वलीशीष्मरुतुमा
नी अत्यंत तप्तथयली जमीनने वर्षाकुरुमा मेघ वर्षादकरीने उदिकरेते ॥ ३ ॥ त
था समुद्रपोताना महोटाकद्धोलकरी पृथ्वीनेबुडावतोनथी अने व्याघ्र तथा दावा
नल अने पवन इत्यादिकोकोइने मारतानथी एप्रतापसर्व धर्मनोजते ॥ ४ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तद्वयं ॥ यस्मिन्नेव पिता हिताय यतते
भ्राता च माता सुत सैन्यं दैन्यमुपैति चापचपल यत्रा
फल दौर्बल ॥ तस्मिन्कष्टदशाविपाकसमये धर्मस्तु संवार्मि
त सज्ज सज्जन एष सर्वजगतस्त्राणाय बद्धोद्यम ॥ ५ ॥
त्रैलोक्यं सचराचरं विजयते यस्य प्रसादादिद योत्रामु
त्र हितावहस्तनुचृतां सर्वार्थसिद्धिप्रद ॥ येनानर्थकदर्थ
ना निजमहःस्सामर्थ्यतो व्यर्थिता तस्मै कारुणिकाय ध
र्मविचित्रे ऋक्तिप्रणामोऽस्तु मे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेवखत पोतानाहितनेअर्थे वाप जाइ माता पुत्र अत्यंतउद्योगकरेते
तेपण धर्मनोजप्रतापजाणवो अनेवली धनुष्यनायोगेकरी चपलथयलो जे सैन्यके
लशकर तेपण दैन्यके ० दीनपणाने पामेते तथा जेवखतपोतानी सुजाओतुंबल
निष्फलथायते एवी कष्टअवस्थाना परिणामकाले पण सज्जनएहबुजे आधर्मरूप
मित्रते पोतानाअंगमां बख्तरजेबुथइ जाणे एक धर्मरूप बख्तरज पहेसुहोपनी एट

ले आंगमां बस्तरपदेखा नीपरेंथयीने सर्वजगतना रक्षणाथें उद्योगकरेठे ॥ ५ ॥
वली जेहनापसायथकी स्थावर अने जंगमसहित जगत शोचेठे तथा जे आलोकें
प्राणीओने हितकरवाने योग्यथयीने सर्वअर्थनी सिद्धताने पमाडेठे जेपोपोताना
तेजस्वीसामर्थ्यकरी पापरूपविटवनानो नाशकरीनाख्युठे एहवो जे दयावत धर्मरूप
प्रभु तेने महारो नमस्कार होजो ॥ ६ ॥

मंदाक्रांताष्टतं ॥ प्राज्यं राज्यं सुजगदयिता नंदनानंदनानां रम्यं
रूपं सरसकविता चातुरी सुस्वरत्वं ॥ नीरोगत्वं गुणपरिचय
सङ्गनत्वं सुबुद्धि-कितु ब्रूमः फलपरिणति धर्मकल्पद्रुमस्य ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ महोद्वाराज्य सुंदरस्त्री पुत्र पुत्रीओ रमणीकरूप घणीज सरस कविता
करवानी चतुराई सुस्वरपणुं आरोग्यतापणुं गुणोनोपरिचय तथासङ्गनपणुं अने
रूढीबुद्धि एतर्ववाना ते धर्मरूप कल्पवृक्षना फलठे ॥ ७ ॥

॥ अथ दशमजावनाष्टकं वसंतरागेण गीयते नवितुमेवदोरेहीरविजयसरिराया एदेशी ॥

पालय पालय रे पालय मां जिनधर्म ॥ मंगलकमलाकेलिनिके
तन करुणाकेतन धीर ॥ शिवसुखसाधन नवचयवाधन जगदा
धार गज्जीर ॥ पा० ॥ १ ॥ सिंचति पयसा जलधरपटलीनूतलममृत
मयेन ॥ सूर्याचंक्षमसावुदयेते तव महिमातिशयेन ॥ पा० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हे जैनधर्म तु महारुंरक्षणकर महारुंरक्षणकर तु मागलिकरूप लक्ष्मी
तुं क्रीडागृहठो वलीकरुणानो स्थानकठो तथा मोक्षसुखतुं साधनठो अने संसा
रना समस्तचयनो नाशकरनारठो तेमज जगतना जीवोने आश्रयनूतठो अनेअतिगं
नीरठो ॥ १ ॥ जे मेघनो समूहते पृथ्वीतलने अमृत सरखा पाणीये करीने सिंचन
करेठे अने चक्षु सूर्य जे नित्य उगेठे तेसर्व ताहरोज महिमाठे ॥ २ ॥

निरालंबमियमसदाधारा तिष्ठति वसुधा येनातं विश्वस्थितिमूलस्तं
न तं सेवे विनयेन ॥ पा० ॥ ३ ॥ दानशीलशुचिजावतपोमुखचरितार्थीऽक
तलोक ॥ शरणस्मरणकृतामिह नविनां दूरीकृतचयशोक ॥ पा० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ निरालंब पृथ्वीनेकोई आधार नठता जेनाआधारथकी रहेठे एहवो जग
तनीस्थितीनो मूलस्तन जे धर्म तेने हुं नित्यप्रते विनय एटले चकिये करी सेवुंठुं ॥ ३ ॥
दान शील शुचिजाव अने तप एचारप्रकारेकरी लोकोने चारित्रार्थनो करनारो अने

जे प्राणी आ जगतमा ए धर्मनो स्मरण करेते तथा आश्रय करेते ते प्राणीना जय तथा शोक्रने दूर करनारो एह्वो ए धर्मते ॥ ४ ॥

ह्रमासत्यसंतोपदयादिकसुजगसकलपरिवार ॥ देवासुरनरपूजित शासन कृतबहुजवपरिहार ॥ पा० ॥ ५ ॥ वधुरबंधुजनस्य दिवानिशमस हायस्य सहाय ॥ भ्राम्यति ज्जिमे जवगहनैंगी त्वा बांधवमपहाय ॥ पा० ६ ॥ अर्थ ॥ जेनो ह्रमा सत्य संतोष दया आदेवेइने समस्तपरिवार सुंदरते वली देवता वैल्य अने मनुष्योए जेनी आझामान्यकरीते तथा अनेक जन्म जरा मरण नो परिहार करनारो ते ए धर्मजते ॥ ५ ॥ वलीहे धर्मतु जेनेकोइ जाइनथी तेनोजा इ तथा जेनेकोइ सहायनथी तेने रात्रदिवस सहायनो करनार बांधव रूपठो तेम ठता बांधवरूप तुजने मूकीने प्राणीओ संसाररूप अरण्यमां फिरेते ॥ ६ ॥

जंगति गहनं जलति कृशानुः स्थलति जलधिरचिरेण ॥ तव कृपयाऽखिल कामितसिद्धिर्बहुना कितु परेण ॥ पा० ॥ ७ ॥ इह यत्तसि सुखमुदितदशांगं प्रेत्येजादिपदानि ॥ क्रमतोज्ञानादीनि च वितरसि नि श्रेयससुखदानि ॥ ८ ॥ अर्थ ॥ हे धर्मरूपमित्र तहारीरुपाथकी आरण्य ते महोटा नगर जेवो थाय तथा अग्निते पाणीसरखीथाय अने समुद्रते स्थल सरखो तुरतयऽजायते वधारे सुं कहुं तहारी रुपाथकी प्राणीमात्रना सर्व मनोरथ पूर्णथायते ॥ ७ ॥ आलोकमा जेना अग्नेविपे दयारूप धर्म उदयआव्योते तो तेने इहापण पूर्वोक्तप्रकारे सुखआपेते अने परजवे इडादिक देवताओनी पदवीआपेते वली क्रमेकरी मोहसुखने आप नारा एहवा ज्ञानादिक गुणआपेते ॥ ८ ॥

सर्वतत्रनवनीतसनातन सिद्धिसदनसोपान ॥ जय जय वि नयवतां प्रतिलवितशांतसुधारसपान ॥ पा० ॥ ९ ॥ इतिशांत सुधारस गेयकाव्ये धर्मजावनाविजावनो नाम दशम प्रकाशः अर्थ ॥ सर्वशास्त्रोमा नवनीत एटले माखणजेवो सारनूत अने सनातनके० शा श्वत तथा सिद्धिरूपगृहनो सोपान एटले निसरणीरूप अने जे विनयवत शिष्यो ने शांतिसुधारसतुं पान करावेते एह्वोजे धर्म ते जयपामो जयपामो ॥ ९ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये धर्मजावनाविजावनो नाम दशम प्रकाश

मालिनी वृत्तं ॥ सप्ताधोधो विस्तृता याः पृथिव्यश्छत्राकाराः संति रत्नप्रजा
द्याः ॥ तान्निः पूर्णो योऽस्यधोलोक एतौ पादौ यस्य व्यायतौ सप्त रज्जुः ॥ १

अर्थ ॥ हवे इग्यारमी लोकस्वरूप नावनानावेठे सातअधोअधो एटले एकवी
जाने नीचेनीचे विस्तीर्ण छत्राकारे रत्नप्रजादिक सातपृथ्वीओठे, तेणेकरी परिपू
र्ण एवा अधोलोकरूप सातरज्जुप्रमाणे जेना महोटावेपगठे ॥ १ ॥

तिर्यग्ग्लोको विस्तृतो रज्जुमेकां पूर्णो द्विपैरर्णवातैरसख्यैः ॥ यस्य
ज्योतिश्चक्रकांचीकलापं मध्ये काश्चर्य श्रीविचित्रं कटिच ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अने एक रज्जु प्रमाण विस्तारवत असंख्याता द्विपसमुद्देकरी व्याप्त एह
वो तिर्यग्ग्लोकमां कशपणानी शोनायेकरी युक्तठे वली ज्योतिष चक्ररूप कांचीक
लापाये युक्त जेजुं सुंदर कणदोरोठे ॥ २ ॥

लोकोऽधोर्ध्वे ब्रह्मलोके द्युलोके यस्य व्याप्तौ कूर्परौ पंच रज्जु ॥ लोक
स्यांतो विस्तृतो रज्जुमेकां सिद्धज्योतिश्चित्रको यस्य मौलिः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ जेनो ऊर्ध्वलोके ब्रह्मनामा देवलोक पांचरज्जुप्रमाणे व्याप्त ते कोपरा स
रखो कूरपरठे अने जेजुं लोकनेअंते एकरज्जुविस्तारपणेजे सिद्धशिलातेमस्तकठे ॥ ३

यो वैशाखस्थानकस्थायिपादः श्रोणीदिशो न्यस्तहस्तद्वयश्च ॥ का
लेऽनादौ शश्वदूर्ध्वदमत्वाद्भिभ्राणोपि श्रान्तमुजामखिन्नः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेना मथनकरवाना दंडने स्थानकेपगठे एटले ठासमथन करवाना दंमनी
परे जेना पगपसरेलाठे जेणे पोतानी कटीउपर वेहाय राखेलाठे एहवोयको अना
दिकालजुं निरतर ऊर्ध्वदमपणे जितेंडियथको शातमुझा धरीरह्योठे पण खिन्ननथी ॥ ४

सोयं ज्ञेयः पूरुषो लोकनामा पड्डव्यात्माऽ कृत्रिमोनाद्यनंत ॥
धर्माधर्माकाशकालात्मसंज्ञे ईव्यैः पूर्णः सर्वतः पुजलैश्च ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ षट्पद्व्यरूप जेना आत्मानुं स्वरूपठे जेनेकोइये कखोनथी जेनो जन्म
अथवा मृत्युअथोनथी वली धर्म अधर्म आकाश काल जीव अने पुजल एपांचड
व्येकरी सर्वस्थले परिपूर्ण एवो आ चउदराज लोकनामा पुरुषजाणवो ॥ ५ ॥

रगरथानं पुजलानां नटानां नानारूपैर्नृत्यतामात्मनां च ॥ का
लोद्योगस्वस्वनावादिजावैः कर्मातोद्यैर्नितितानां नियत्या ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ वली जे काल उद्योग स्वस्वनावादिकजावे कर्मरूपवाजितें नियतियेक

री नानाप्रकारना रूपेकरी नचावेला जीवोतुं अने नाचनारोजे पुज्जरूप नाटकी
ओ तेतुं रगस्थान एटले रगमरुपठे एवो एचउदराज लोकनामा पुरुपठे ॥ ६ ॥

एवं लोको जाव्यमानो विविक्त्या विज्ञाना स्यान्मानसस्थैर्यहेतुः ॥
स्थैर्यं प्राप्ते मानसे चात्मनीना सुप्राप्येवा ऽध्यात्मसौख्यप्रसूति ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ एरीतेलोकने विवक्त एटले जूदोजूदो स्पष्टपणे जाव्यो थको विज्ञानीपुरुपो
नामनने स्थिरकरवानो कारण तेहीजथायठे जेवारें मनस्थिरथयो तेवारें आत्माने
हितकरनारी अथ्यात्मिक सुखनी प्राप्तिमुलजथायठे ॥७॥ सप्तनिर्मालनीवृत्तै कुलकं
॥ अथ एकादशजावनाष्टक काफीरागेणगीयते आजसखीमनमोहनो ॥ एदेशी

विनय विजावय शाश्वतं ॥ हृदि लोकाकाशं ॥ सकलचरोचरधा
रणे परिणमदवकाशं ॥ वि० ॥१॥ लसदलोकपरिवेष्टितं गणनाति
गमान ॥ पंचनिरपि धर्मादिनि सुघटितसीमानं ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ विनयविजयजी उपाव्याय पोताने समजावेजे अरेविनय शाश्वतो
चिरकाल रहेनारो एहवो लोकाकाशतु ताह्या हृदयमां धारणकर जेमा समस्त
स्थावर अनेजगमपदार्थोने धरवाविपे पूर्णअवकाशठे ॥ १ ॥ वलीशोजायमान अ
लोकेकरी वेष्टितके० विटुंठे तथा जे गणनाके० परिमाण मूकीने रह्योठे केमके
असंख्यातो लोकाकाशठे माटे, वली जेनीसीमाधर्मादिक पाचडव्येकरी सुघटितके०
रूमीरचनाये करी रचितठे एहवो ए चउदराज लोकनामा पुरुपठे ॥ २ ॥

समवघातसमये जिनै परिपूरितदेहं ॥ असुमदणुकविविधक्रिया
गुणगौरवगेह ॥ वि०॥३॥ एकरूपमपि पुज्जलै कृतविविधविवर्तं ॥
काचनशैलशिखरोन्नतं कचिदवनतगतं ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ वली लोकनामा पुरुपनेविपे श्रीतीर्थकरदेव समुजातना समये पोतानी
आत्माना प्रदेजेकरीने चउदराजलोकना समस्तजाग परिपूर्णकरेठे तथा असुमदके०
प्राणी अने अणुके० परमाणु तेमनी नानाप्रकारनी जेक्रिया अनेगुण तेनागौरवप
णानुं स्थानरुजाणवु ॥ ३ ॥ वली ए लोकाकाश पुरुपमा यद्यपि रूपने धारणकर
नारुं एक पुज्जडव्यठे तेषो नानाप्रकारना करेला एहवा किहाक मेरुना शिखरप्र
माणेवंचा सुवर्णमयपर्वतोठे वलीकिहाकतो गर्ता एटले खामाओठे ॥ ४ ॥

क्वचन तविपमणिमंदिरैरुदितोदितरूपं ॥ घोरतिमिरनरकादिभिः
क्वचनातिविरूपं ॥ वि० ॥ ५ ॥ क्वचिद्ध्रुत्सवमयमुज्वलं जयमंगल
नादं ॥ क्वचिदमंदहाहारवं ॥ पृथुशोकविपादं ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ वली किहांक तो देवताओंना सुवन तेनी सूर्यकांत मणीरत्ननी शोचायें
करी सुंदररूप पणाना उदयने पाम्योठे एटले उदितोदित रूपनेपाम्योठे वजी
किहांक जयंकर अंधकार अने नरकादिके अत्यंत विरूप एटले मातारूप पणाने पा
म्योठे ॥ ५ ॥ वली किहाकतो उत्सवमयठे एटले उज्वल जयमंगलना वाजि
ना नादेंकरी युक्तठे तथा किहाकतो अत्यंतशोक अने खेदे क्रीयुक्त जेमांथी महो
टो हाहाकार शब्द निकलीरहोठे एहवु पुजल डब्ये ॥ ६ ॥

बहुपरिचितमनंतशो निखिलैरपिसत्वैः जन्ममरणपरिवर्तिभिः कृ
तमुक्तममलैः ॥ वि० ॥ ७ ॥ इहपर्यटनपराडमुखा. ॥ प्रणमंत जगवं
तं ॥ शांतसुधारसपानतो धृतविनयमवंतं ॥ ८ ॥ इतिश्रीशांतसु
धारसगेयकाव्ये लोकस्वरूपज्ञावनाविज्ञावनो नामैकादशः प्रकाशः

अर्थ ॥ वली लोकमां पुजलनो स्वरूप विज्ञेयें कहेठे जेने जन्म मरणाना योर्क
री फिरनारा प्राणी पूर्वपूर्व ममत्वनी परंपरायेकरी अनंति अनंतित्वात् खेजेजे
क्योठे अनेजेनुं सर्वप्राणीओए अनतिवार घणुंपरिचित कखुंठे एहवुए पुजल
ठे ॥ ७ ॥ माटे हेजीव तुजो आलोकरूप पुरुपमां फिरवानेविपे परादसुग
होय तो शांतिसुधारसना पानेकरी विनय धारण करनाराओनुं रक्षण करवा वाजा
जे जगवत परमात्मा तेने नमस्कारकर ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये
स्वरूपज्ञावनाविज्ञावनो नाम एकादश प्रकाश

मंदाक्रांतावृत्तां॥यस्माद्विस्मापयितसुमनःस्वर्गसंपद्विलासप्राप्तो
साः पुनरपि जनिः सत्कुले नूरिजोगे॥ ब्रह्मादितप्रगुणपद्वीप्राप
कं नि सपत्न तद्गुणप्रापं नृशमुरुधियः सेव्यतां बोधिरत्नं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेवारमी बोधिद्वेजनावनाजावेठे जेनाथकी देवताओंपण वि
स्मयपामे एहवो स्वर्गसंपत्तिनो विलास पामिने जीव आनंद पामेण पायठे व
लीजेनाथकी अनेकप्रकारना अत्यंत नोगेंकरी युक्त एहवा रूनाकुसुमां पुनःपुनः ज

न्मथायते तथा परपराये अद्वैत ब्रह्मपदवी पमादवामां जेनेकोऽशत्रुनथी जेनीप्राप्ति
पामवी अत्यंतकठीणते एहबुजे बोधरूपरत्न तेनोहेबुद्धिमतो तमसेवनकरो ॥ १ ॥

जुंगप्रयातवृत्तत्रयं॥अनादौ निगोदांधकूप स्थितानामजस्रं जनुर्मृ
त्युङ्खार्दितानां॥परीणामशुद्धि कुतस्तादृशी स्याद्यथा हत तस्माद्दि
निर्याति जीवा ॥ २ ॥ततो निर्गतानामपि स्थावरत्वं त्रसत्वं पुनर्दुर्लभं
देहनाजा ॥ त्रसत्वेपि पंचाक्षपर्याप्तसङ्घिस्थिरायुष्कवत्वं दुर्लभं मानु
पत्वं ॥३॥ तदेतन्मनुष्यत्वमाप्यापि मूढो महामोहमिथ्यात्वमायोपगूढ॥
भ्रमन्दूरमग्नौ चवागाधगते पुन क प्रपद्येत तद्वोधिरत्नं ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ पण अनादि कालना निगोदरूप अंधकार तद्रूप कुवामां रहेनारा निर
तर जन्म मरणना ड खेकरी पीडायला प्राणीअोने तेवी परिणामशुद्धि केमथाय
केमके जेथकी महोटा आनंदे सहित जीव निगोद रूप अंधकार कुवामांथी बा
हेरपडेढे ॥ २ ॥ ते निगोदमांथी नीकलीने पण स्थावरमां उपजबुध्याय केमके
प्राणीने त्रसपणुं पामबुतो दुर्लभते वली त्रसपणामा पण पंचेडियपणुं पामबु ड
र्लभते तेमा वलीपर्याप्तपणु पामबु दूर्लभते तेमापण सङ्घी पंचेडियपणु दीर्घांशु अ
ने मनुष्यपणुं पामबुतो परमदुर्लभते ॥३॥महामोह मिथ्यात्व तथा माया एणेकरी
युक्तथको मूर्खप्राणी आ मनुष्यपणुं पामीने सत्साररूप अगाध खाडामा फिरतो
फिरतो बुडयोथको रहेढे तेप्राणीने बोधिरत्न फरीने शीरीतें प्राप्तथसे ॥ ४ ॥

शिखरिणीवृत्तं॥विजिन्ना पंथान प्रतिपदमनल्पांश्च मतिन कुयुक्ति
व्यासगैर्निजनिजमतोऽन्नासरसिका ॥ न देवा सान्निध्य विदधति न
वा कोप्यरसिकस्तदेवं कालेऽस्मिन् य इह दृढधर्मा स सुकृती ॥५ ॥

अर्थ ॥ धर्मोना जिन्नजिन्न मार्ग अने जिन्नजिन्न स्थानके कुयुक्तिना व्यासगै ए
टले अन्थासे करीने पोतपोताना मतना उदयविपेरसिक एहवा घणामतवाला आ
कालमाढे अनेजो देवतानेपूठवाजइयेतो देव काऽ कोऽपासे आवतोनथी एमजएह
वो अतिशयवालोपण कोऽनथीके जेने पूठि निर्णय करीये तो एवा आ डुप्करकाल
मा जेप्राणी धर्मउपर दृढता राखेढे तेज प्राणी पुण्यवान जाणवो ॥ ५ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तं॥ यावद्देहमिदं गदैर्न मृदितं नोवा जराजर्जरं याव
त्वक्ककदंबकं स्वविषयज्ञानावगाहकृतं॥ यावच्चायुरजंगुरं निजहिते ता
वहुधैर्यत्यतां कासारैः स्फुटिते जले प्रचलिते पालि कथं बध्यते ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जिहांसुधी आशरीर रोगाक्रांत ययोनयी तेमज जिहांसुधी आशरीर
जरायेकरी जर्जरीनूतययोनयी तथा जिहांसुधी आ पांचेंडियनो समूह पोतपोता
ना विषयो लेवाने समर्थे अने जिहांसुधी आयुष्य क्लीणययुंनयी तिहासुधी
हेजीव तुं पोताना कव्याणविषे यत्नकर केमके तजोफुटीने पाणी बाहेर नीकली
जसे तोपठे पालते केवी बांधीस ॥ ६ ॥

अनुष्टुप्वृत्तं ॥ विविधोपञ्चं देहमायुश्च कृष्णजंगुरं ॥

कामालंब्य धृतिं मूढैः स्वश्रेयसि विलंब्यते ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ आशरीर नानाप्रकारना उपडवेंकरी युक्तठे आयुष कृष्णजंगुरठे एमठतां
कोणमूर्ख तेनाउपर संतोष राखी पोताना कव्याणयवाना कार्यमां विलंब करे॥७

॥ ६ादशजावनाष्टकं धनश्रीरागेणगीयते ॥ हीचेरेहीचेरेपीआहिंडोलडेएवेशी ॥

बुध्यतां बुध्यतां बोधिरतिजुलैना ॥ जलधिजलपतितसुररत्नयु

क्त्या सम्यगाराध्यतां स्वहितमिह साध्यतां ॥ बाध्यताम

धरगतिरात्मशक्त्या ॥ वुण ॥ १ ॥ चक्रिञ्जो ज्यादिरिव न

रत्नवो जलैना भ्राम्यतां घोरसंसारकहे ॥ बहुनिगोदादिका

यस्थितिब्यायते ॥ मोहमिथ्यात्वमुखचोरलहे ॥ वुण ॥ २ ॥

अर्थ ॥ जेम समुझनापाणीमा पनीगयलुं चितामणीरत्न पाठोहाथमां आवडु
अतिजुलैजठे तेम बोधिपामवीपण अतिजुलैजठे माटेरुनीरीते बोधिलुं आराधनकरी
पोतालुं हितसाधवुं अनेपोतानी शक्तीयेकरी डुर्गतिनो बाधकरवो ॥ १ ॥ घणी नि
गोदादिक कायस्थितिये करी विशाल अने मोह मिथ्यात्वप्रमुख जाखोगमे चोरटा
ये युक्त एहवो आ घोर संसाररूप अरण्यामां फिरनारा जीवोने चक्रवर्तिना जोजन
सरखो मनुष्य जन्म पामवो जलैजठे ॥ २ ॥

लब्ध इह नरत्नवो जनार्णदेशेषु यः स जवति प्रत्युदात्तार्थकारी ॥ जी

वहिसादिपापाश्रवण्यसनिनां माघवत्यादिमार्गानुसारी ॥ वुण ॥ ३ ॥

आर्यदेशस्पृशामपि सुकुलजन्मना ॥ दुर्लभा विविदिषा धर्मतत्त्वे ॥ र
तपरिग्रहज्ञयाहारसंज्ञावर्तिनि हंत मग्न जगद्दुस्थितत्वे ॥ बु० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जो आ जगतमा प्राणी अनार्यदेशमा मनुष्यजव पाम्योतो उलटो अन
र्थेनुं कारणथायते केमके जीवहिसादिक पापाश्रचना व्यसनवाला जीवोतो माधव
ति जे सातमी नरकादिकठे तेना मार्गंतुं कारण थायते ॥ ३ ॥ रूडाकुजमां जन्म
पामेलो होय अनेवली आर्यदेशमा रहेनार होय तेनेपण धर्मतत्व जाणवानी इहा
थवीडुर्जनठे कारणके रतके० मैथुन परिग्रह जय अने अहार ए चार नामना इ
स्थितपणामा सर्वजगत बूमोपडयोते ॥ ४ ॥

विविदिषायामपि श्रवणमतिदुर्लभं धर्मशास्त्रस्य गुरुसन्निधाने ॥ वित
थविकथादितत्तजसावेशतो विविधविक्षेपमल्लिनेऽवधाने ॥ बु० ॥
॥ ५ ॥ धर्ममाकर्ण्य सबुध्य तत्रोद्यम कुर्वतो वैरिवर्गोऽतरंगराग
द्वेषश्रमालस्यनिष्ठादिको बाधते निहतसुकृतप्रसंग ॥ बु० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कदाचकोइने धर्मतत्व जाणवानी इहाहोय अने गुरुसंनिध बेगोहोय
तोपण वृथा विकथारसना आवेशथी नानाप्रकारना विक्लेपेकरी जोतेनुंअंत करण
मलीन थयुहोयतो धर्मशास्त्रोतुं श्रवण दुर्लभहोय ॥ ५ ॥ वली जेप्राणी धर्मेने
साजली धर्मेनेपाम्यो अने धर्मेनेविषे उद्योगपण करवावेगो तेवा प्राणीनेपण पुण्य
रूप प्रसंगना नाशकरनारा जे रागद्वेष श्रम आलस निष्ठा इत्यादिक अंतरंग शत्रु
नो समूहठे तेपीडाकरेठे तेथीतेने धर्मपामबु दुर्जनथायते ॥ ६ ॥

चतुरशीतावहो योनिलक्षेण्विय क्व लया कर्णिता धर्मवार्ता ॥ प्राय
शो जगति जनता मिथो विवदते ऋद्धिरसशातगुरुगौरवार्ता ॥ बु० ॥ ७ ॥
एवमतिदुर्लभात्प्राप्य दुर्लभतम बोधिरत्न सकलगुणनिधानं ॥ कुरु गुरु
प्राज्यविनयप्रसादोदित ॥ शातरससरसपीयूषपान ॥ बु० ॥ ८ ॥

इ० शांतसुधारसगेयकाव्ये बोधिजावनाविजावनो नामद्वादश प्रकाश

अर्थ ॥ माटे अहोइति आश्चर्य हेजीव चोरासीजकू जीवा योनीमां किहां
पण ते धर्मेनीवात साजली हसेके अर्थात् नहीज साजली हसे केमके घणुकरिने
आ जगतमा ऋद्धिगरव रत्नगरव सातागरव एअण महोटा गारवेकरी पीडायला
लोकोतो परस्पर एकबीजा साथे वादकरेठे पणधर्मेनी वातोसाजली धर्ममार्गं प्रव

नैतानथी ॥७॥ एम अतिदुर्जन वस्तु करता पण विशेष दुर्जन अने समस्त गुणतुं
निधानएवु जे बोधिरत्न ते पामीने गुरुनो अत्यंत विनयकस्यो तेणोकरीने प्राप्तथयुं ए
हवु जे शांतिसुधारस रूप जलोअमृत तेतु तु पानकर एमांकर्ताये पोतानुं नाम पणसु
चयुं ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये बोधिनावनाविजावनोनाम षादश.प्र
काज. एरीते अनित्यादिक वारजावनाअोनो अधिकार संपूर्णथयो ॥

अनुष्टुप्वृत्तं ॥ सधर्मध्यानसंध्यानहेतव. श्रीजिनेश्वरै. ॥ मैत्रीप्रचृतयः
प्रोक्ताश्रतस्रो जावनाः पराः ॥ १ ॥ तथाहुः॥मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्य
रथानि नियोजयेत् ॥ धर्मध्यानमुपस्कृत् तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवे मैत्र्यादिक चारजावनाथो जावेठे श्रीतीर्थकरदेवे सत्यधर्मध्याननी
धारानी हेतुनूत मैत्रीआवेदेइने बीजी चारजावनाथो कहीठे ॥१॥ ते श्रीतीर्थकरदेवे
कहीठे तेमज जाविचेठैये १ मैत्री २ प्रमोद ३ कारुण्य अने ४ माध्यस्थ्य एचारजाव
नाते धर्मध्यानना नूपणार्थे एटले धर्मध्याननी शोचानेअर्थे योजना करीयकी व्या
वनारने चारजावनायुक्त जे धर्म ते रसायन (आंधी) तुल्य थायठे ॥ २ ॥

उपजातिवृत्तं॥मैत्री परेपां हितचितनं यत् नवेत्प्रमोदो गुणपद्मपात.॥
कारुण्यमार्तागिरुजां जिहीर्षेत्युपेक्षां दुष्टधियामुपेक्षा ॥ ३ ॥ सर्वत्र
मैत्रीमुपकल्पयात्मन् चित्यो जगत्यत्र न कोपि शत्रु. ॥ कियद्दिन
रथायिनि जीविते ऽस्मिन् किं खिद्यते वैरिधिया परस्मिन् ॥ ४ ॥
सर्वेष्यमी बंधुतया ऽनुचूताः सद्स्रशोऽस्मिन्नवता नवावधौ ॥ जी
वास्ततो बंधव एव सर्वे न कोपि ते शत्रुरिति प्रतीहि ॥ ५ ॥
सर्वे पितृभ्रातृपितृव्यमातृपुत्रागजास्त्रीजगिनीस्तुपात् ॥ जी
वाः प्रपन्नावदुशस्तदेतत्कुटुबमेवेति परो न कश्चित् ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जे बीजानाहिततुं चितनकरवु ते मैत्रीजावना जाणवी गुणीनो पद्मपा
तकरवु ते प्रमोदजावना जाणवी दुखीप्राणीना दुख डरकरवानी इगाराखवी ते का
रुण्यजावना दुष्टबुद्धीवत प्राणीउपर उपेक्षाकरवी ते उपेक्षणजावना ॥ ३ ॥ हेअ
त्मातु सर्वत्र मैत्रीतापणुंकर एटले आजगतमा कोइपण महारो शत्रुठे एहवो तु
ताहारा मनमा बीजकुज लावीसनही केमके थोडादिवस रहेनारो अल्पमात्र ताह
रो जीवतव्यपणुने तेमा बीजाउपर शत्रुबुद्धि राखीने सुं वृथा खिन्नथायठे ॥ ४ ॥

हेजीव आसंसारसमुद्रमा ए समस्तप्राणीसाथे हजारोवखत ते नाइपणो अनुज
व्यो तेमाटे एसर्व ताहारा नाइथ्योजठे पण कोइ तहारो शत्रुनथी एवीरीते तुजाण
॥ ५ ॥ सर्वजीवो मात्र, ससारमा माता पिता बधु काको पुत्र पुत्री स्त्री, बहेन
गोरारानीस्त्री इत्यादिकरीते ताहरीसाथे शोकडो वखत सगपण करीचुकाठे तेमाटे
एसर्व ताहारो कुटुंबजठे पण एमाकोइ परकीयनथी एमविचारी सर्वजतु उपर मै
त्रिता पणु आदर ॥ ६ ॥

इइवजावृत्तव्या॥ एकेडियाद्या अपि हंत जीवा. पंचेंडियत्वाद्यधि
गत्य सम्यक् ॥ बोधिं समाराध्य कदा लज्जते नूयो नवभ्रांतिजिया
विरामं ॥ ७ ॥ या रागरोपादिरुजो जनानां शाम्यतु वाक्काय
मनोऽहुहस्ता ॥ सर्वेप्युदासीनरसरसतु सर्वत्र सर्वे सुखिनो जवंतु ॥ ८ ॥
अर्थ ॥ फिरी हेजीव तु एवो विचारकर के आ ससारमां जे एकेडियादिक
जीवोठे तेपण रुडाप्रकारे पचेडियादिकपणु पामीने ज्ञानाराधनाकरी कोइकालेप
ण ससारमा नमवारूप नयतुं अंतकरसे एवुजाणीने तेजीवोनी साथे पण मित्रता
कर ॥ ७ ॥ वलीजे प्राणीओने रागद्वेषादिरूप पीडा मन वचन कायाना छुनयो
गोनो डोहकरेठे तेसर्वप्राणी उदाशीनतापणुं पामीने सर्वलोक सुखीथाओ एवोमै
त्रीपणु तु सर्वजीवो उपर राख ॥ ८ ॥

॥ अथ त्रयोदशजावनाष्टक देशाखरागेणगीयते रेजीवजिनधर्मकीजिये एवेशी ॥
विनय विचितय मित्रतां ॥ त्रिजगति जनतासु ॥ कर्मविचित्रतया गति
विविधा गमितासु ॥ वि० ॥ १ ॥ सर्वेते प्रियवांधवा नहि रिपुरिह
कोपि ॥ माकुरु कलिकलुप मनो निजसुकृतविलोपि ॥ विन० ॥ १॥

अर्थ ॥ हेविनय आ त्रयलोकमा कर्मनी विचित्रतायेकरी नानाप्रकारनी तिर्थ
चादिक गतिओने पामेलाप्राणी जे ठे तेसर्वप्राणीमात्रना समूहउपर तु मित्र
तानाव राख केमके एसर्व ताहारा परमप्रिय बापवजठे पण एमाकोइ तहारोशत्रु
नथी माटे फोकट मनने क्लेशेकरी कलुपता मकर कारणके क्रोधजेठे ते तहारा
पोतानाज पुण्यनो नाशकरनारोठे ॥ १ ॥ १ ॥ ए वेकाव्यनो अर्थएकठोठे.

यदि कोपं कुरुते परो निजकर्मवशीन ॥ अपि नवता कि नूयते
हृदि रोपवशीन ॥ वि० ॥ ३ ॥ अनुचितमिह कलह सतां ॥ त्यज
समरसमीन ॥ नज विवेककलहंसता ॥ गुणपरिचयपीना ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ माटे जो बीजोकोइ पोताना कर्माधीनपणाथकी ताहाराउपर क्रोधकरे
ठे तो तुपण तहाराहृदयमा तेनाउपर क्रोध शावास्ते करेठे ॥ ३ ॥ अरेजीवतु स
मतारूप पाणीना तलावतुं मत्स्यइने सत्पुरुषोने अयोग्य एहवुजे कलह तेनेमू
कीआप अनेगुणोनो परिचय करवाने पुष्टकारी एहवोजे विवेकरूप सरोवर तेमां
रमण करवाने हंस जेवो था ॥ ४ ॥

शत्रुजना सुखिन समे मत्सरमपहाय ॥ संतु गंतुमनसोप्यमी
शिवसौख्यगृहाया॥वि०॥५॥सकृदपि यदि समतालवं हृदयेन लि
हति ॥ विदितरसास्त इह रतिं स्वत एव वहंति ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीवतुं समस्त शत्रुलोकोनी मंमलीउपर मत्सरतानावनो त्यागकरी
ने परमसुखीथा अने मोहुरूप सुखना धरने जाणवाने ताहरुं मनकर ॥ ५ ॥ जोए
कवारपण समताना लवतुं ताहारा हृदयमां आस्वादन करीस तो रसज्ञथइने सम्य
कउपर पोतानी मेलेज प्रीतिकरीस ॥ ६ ॥

किमुत कुमतमदमूर्च्छितां झरितेषु पतंति जिनवचनानि कथं ह हा
न रसाङ्गपर्यंति॥वि०॥७॥ परमात्मनि विमलात्मनां परिणम्य वसं
तु ॥ विनय समाभृतपानतो जनता विलसंतु॥वि०॥८॥ इति श्रीशांत
सुधारसगेयकाव्ये मैत्रीजावनाविजावनोनाम त्रयोदश प्रकाश

अर्थ ॥ हे जीवतु शावास्ते कुमतायेकरी मूर्च्छितथइने नरकमांपडेठे अने शांत
रसधीज नरेला श्रीतीर्थकरदेवना वचनोतुं केम संरक्षण करतोनी ॥ ७ ॥ निर्म
लअत करणवाला जीवोनामन परमात्माना स्वरूपनेविपेज परिणत थइ रहो
अने लोकोनासमूह ते समतारूपी अभृतना पानेकरी विनयनो विलासपामो॥८॥
इति श्री शांतसुधारस गेयकाव्ये मैत्रीजावनाविजावनो नाम त्रयोदश प्रकाश.

स्रग्धरावृत्तां॥धन्यास्ते वीतरागा. क्लृपकपथगतिक्लीणकर्मो
परागास्त्रैलोक्ये गंधनागाः सहजसमुदितज्ञानजाग्रद्विरा
गाः॥अध्यारुह्यात्मशुध्या सकलशशिकलानिर्मलध्यानधा
रामारान्मुक्ते प्रपन्नाः कृतसुकृतशतोपाजिताहैत्यलक्ष्मी
॥१॥तेषां कर्मक्षयोत्थैरतनुगुणगणैर्निर्मलात्मस्वभावैर्गायं

गाय पुनीमस्तवनपरिणतैरष्टवर्णरिपदानि ॥ धन्यां मन्ये र
सङ्गा जगति भवतस्तोत्रवाणीरिसङ्गामङ्गा मन्ये तदन्या
वितथजनकथाकार्यमौखर्यमग्ना ॥ १ ॥ निर्ग्रथास्तेपि ध
न्या गिरिगहनगुहागव्हरांतर्निविष्टा धर्मध्यानावधाना
समरससुहिता पङ्कमासोपवासा. ॥ येन्येपि ज्ञानवंत
श्रुतविततधियो दत्तधर्मोपदेशाः शांता दाता जिताङ्गा
जगति जिनपते शासनं चासयति ॥ ३ ॥ दानं शीलं
तपो ये विदधति गृहिणो जावनां जावयंति धर्मं धन्या
श्रुतुर्धा श्रुतसमुपचितश्रद्धया राधयंति ॥ साध्यं श्राध्यं
श्रु धन्या श्रुतविदशधिया शीलमुजावयंत्यस्ता न्सर्वान्
मुक्तगर्वा प्रतिदिनमसकृद्भाग्यभाजः स्तुवंति ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे प्रमोद जावना जावेठे रूपकश्रेणीना मार्गमा प्रवेशकरवाने कर्म
रूपमलने जेणे, क्षीणकखुठे अने त्रणलोकमां गधहस्तिसरखा स्वस्वजावमा रमण
करनारा सहजउदयने पामेला केवलज्ञानेकरी जागृतथयुठे वैराग्यजेहनु एहवा
श्रीवीतराग एटले तीर्थकरनेधन्यठे केमके जे आत्मगुदिकरीने पूर्ण चडकलास
रिखी निर्मल जे ध्यानधारा तडूप अनंतपुण्यना समूहेकरी सपादनकरेली तीर्थ
करनीलक्ष्मी तेतुं आराधनकरी मुक्तिनेप्राप्तथायठे ॥ १ ॥ श्रीविनयविजयजी उपा
ध्यायकहेठे के हु ते तीर्थकरोना कर्मरूपथकी उत्पन्नथयाजे घणा गुणना समूह
तेनी स्तुतिकरवाविषे जेहना परिणामहोयठे एवा आत्माना निर्मलस्वजावे सहित
तीर्थकरनी स्तुति करीकरीने वरणना आठस्थानकोप्रते पवित्रकरंतुं अने आ जग
तमा तीर्थकरोनी स्तुतिना रसने जाणनारी जिव्हाने धन्यमानुतुं तेविना बीजीजे
निष्फल लोकवार्ता अने कार्याना वाचालपणामा वर्चनारी जिव्हाने मूर्खतुल्य
मानुहु ॥ २ ॥ वली पर्वतमा अरण्यमा गुफागुहिरमा निवासकरीने धर्मध्यान उ
पर एकाग्रचित्त राखनारा तथा सम्यक्तरूप रसेकरी सतुष्टययला वली पद्म मास
विगेरेना उपवास करनारा एहवा जे निर्ग्रंथसाधु तेनेपण धन्यठे तथा वली बी
जाजे ज्ञानीपुरुषो शास्त्रउपर पसरलेली बुद्धियेकरी धर्मोपदेशआपेठे अने शातगुणी
दातगुणी जितेडिय एहवा महापुरुष जे जगतमा प्रवर्तताथका श्री तीर्थकरदेवना

शासनने प्रकाशितकरेढे तेनेपण धन्यढे ॥ ३ ॥ वलीजे गृहस्थावासमां रद्याथका पण सुपात्रने दानआपेढे शीजपालेढे तपकरेढे जावनाओ जावेढे तथा चारप्रकारे करी धर्मध्यानने आराधेढे अने पुष्टश्रद्धये शास्त्रनु आराधन करेढे तेनेपण धन्यढे वलीजे साध्वी तथा आविकाओ शास्त्रधकी स्वहृथयली बुद्धिये शीजपालेढे तेनेपण धन्यढे एरीतें हे जाग्यवत नव्यपुरुषो तमे सर्वथा गर्वमूकीने ए पूर्वोक्त समस्त उत्तमपुरुषोनी नित्यप्रते निरतर स्तुतिकरो के जेथकी तमारुं कव्याणथाय॥४॥

उपजातिवृत्तं॥ मिथ्यादृशामप्युपकारसारं संतोपसत्यादिगुणप्रसारं ॥ वदान्यतावैन यकप्रकारं मार्गानुसारीत्यनुमोदयामः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ ए पूर्वोक्त सम्यक् दृष्टी जीवनी स्तुति करवी ते तो श्रेष्ठजढे परतु अमे मिथ्यादृष्टीनो पण उत्तम उपकार जाणीयेढेये कारणके जो तेमनो संतोप सत्यादिक गुणनो प्रसार तथा दातारपणुं अने विनयना प्रकार एटजावाना मार्गानुसारीढे तो एहवोजाणीने तेनीपण अनुमोदना करियेढे ॥ ५ ॥

स्त्रग्धरावृत्तं ॥ जिव्हे प्रव्ही नव त्वं सुकृतिसुचरितोच्चारणे सुप्रसन्ना भूयास्तामन्यकीर्तिश्रुतिरसिकतया मऽद्य कर्णौ सुकर्णौ ॥ वीद्वयान्यप्रौढलक्ष्मी द्रुतमुपचिनुतं लोचने रोचनत्वं संसारेऽस्मिन्नसारे फलमिति नवतां जन्मनो मुख्यमेव ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीवो जो तमे सरलतो अने पुण्यवान पुरुषोना पुण्यनो उच्चार करवाने प्रसन्नतो एटजे आज अमारा कान बीजा पुण्यवान पुरुषोनी कीर्ति श्रवणना रसिकपणो करी सुकर्णरहो अने बीजानी प्रौढ ऐश्वर्यताजोऽने अमारी चक्षु प्रकाशपणाने धारणकरो एहवा जो तमारा विचारढे तो आ संसारमा एज तमारा जन्म सफल पणानो मुख्य फलढे ॥ ६ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ प्रमोदमासाद्य गुणै परेपां येषां मति सङ्कति साम्यसिंधौ ॥ देदीप्यते तेषु मनःप्रसादे गुणास्तथैते विशदीभवन्ति॥७॥

अर्थ ॥ बीजाना गुणो साजली सतोपपामिने जेनीबुद्धि समतारसरूप समुद्घी संलग्नथापढे तेप्राणीना मननो प्रसाद देदीप्यमान थायढे तेमज तेना पोताना गुण पण सर्व सत्व थायढे ॥ ७ ॥

॥ अथ चतुर्दश जावनाष्टकं टोडीरागेणगीयते रूपनकीमेरेमनजगतिवशीरीएदेशी ॥

विनय विजावय गुणपरितोपं ॥ ध्रुवपदं ॥ निजसुकृता

सवरेपु परेपु ॥ परिहर दूरं मत्सरदोष ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हेविनय तूं गुणीपुरुषनागुण उपर सतोप करबु मनमालाव अने पो
ताना पुण्यप्राप्तिनावस्वते बीजाउपर मत्सरकरवापणाना दोषने दूरकर ॥ १ ॥

द्विध्याय वितरति बहुदानं वरमयमिह लज्जते बहुमान ॥ किमिति
न विमृशसि परपरमाग ॥ यद्विजजसि तत्सुकृतविजागं वि० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ अमुक मनुष्य अत्यंत दानआपेठे एवढु कव्याणकारक कामकरेठे अथ
वा अमुकपुरुष अमुकस्थानके बहुमानपामेठे एपणघणुजरुमुठे एहवो रूडोविचार
तु केमकरतोनथी ठेकाणेठेकाणे लोकोना गुणोत्कर्ष करवा एहिज सुकृत विजागंठे

येपां मन इह विगतविकारं ॥ ये विदधति भुवि जगडुपकारं ॥

तेपां वयमुचिताचरितानां ॥ नाम जपामो वारंवारं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ आ जगतमां जेना मननेविषे कोइप्रकारनो विकारनथी एटले निर्विका
रीनता पृथ्वीनेविषे लोकोनो उपकारकरेठे एहवा पवित्र सवाचारी पुरुषोना नाम
अमें वारवार जपियेठेयें ॥ ३ ॥

अहह तितिक्तागुणमसमानं ॥ पश्यत जगवति मुक्तिनिदानं ॥ येन

रुपा सह लसदज्जिमानं ॥ ऊटिति विघटते कर्मवितानं ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनीवरावरी करवाने कोई समर्थनथी एहवो मुक्तिनुं कारणजे कृमा
गुण ते श्रीतीर्थकरदेव नोजूओ के जेणेकरी क्रोधसहित अजिमानेकरी शोचना
रो एहवोजे कर्मनो समूह ते तुरत नाशपामेठे ॥ ४ ॥

अदधु. केचन शीलमुदार ॥ गृहिणोपि परिहृतपरदारं ॥ यश इह

सप्रत्यपि शुचि तेपा ॥ विलसति फलिताफलसहकार ॥ वि० ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ जेगृहस्थो परस्त्रीनुं त्यागकरी महोदुं शीलव्रतपालेठे ते ह्मणापण आ
जगतमा पवित्र यशें फलीनूत यथायका सफल आवाना वृहत्तरिखाशोनेठे ॥ ५ ॥

या वनिता अपि यशसा साकं कुलयुगलं विदधति सुपताकं ॥

तासा सुधरितसंचितराकं ॥ दर्शनमपि कृतसुकृतविपाकं ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ बलीजे स्त्रीओपण शील पालीने पोताना मावित्र तथा ससरा बन्ने कु

लोने यशनी सुपत्ताकके० ध्वजाकरेठे एवीस्त्रीअोनो पुण्य परिपाके करी प्राप्त
येतुं जेदर्शन ते पण पुण्यरूप धननुंज संपादकठे ॥ ६ ॥

तात्विकसात्विकसुजनवतंसाः ॥ केचन युक्तिविवेचनहसाः ॥ अलम
कृपत किल चुवनाचोगं ॥ स्मरणमनीपां कृतशुभयोगं ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ खरेखरा सत्वगुणने धारणकरनारा सज्जनलोकोना मस्तकना नूपणस
मान अने जेम हंस दूय तथापाणीनो विवेचनकरेठे तेनीपरं युक्तियेकरी विवेचन
नाकरनारा एहवा जे सर्वोत्कृष्टप्राणीठे ते आ त्रणेचुवनने शोभायमान करवाने
तत्परठे तो तेवापुरुषांतुं स्मरणकरवुं ते पण शुभयोगनो करनारथाय ॥ ७ ॥

इति परगुणपरिज्ञावनसारं ॥ सफल्य सततं निजमवतारं ॥ कुरु

सुविहितगुणनिधिगुणगानं ॥ विरचय शांतसुधारसपानं ॥ वि० ॥ ८ ॥ इति
श्री शांतसुधारसगेयकाव्ये प्रमोदज्ञावनाविज्ञावनोनामचतुर्दशः प्रकाशः

अर्थ ॥ हे आत्मा एपूर्वोक्तरीते परनागुणनो विचार करवुं एहिज जेमां सार
ठे एवु आ तहारो पोतानो अचतार तेने तुं निरंतर परनागुणो स्मरणकरीने सफ
लकर तथा शुश्रुषोना निधि एहवाजे मनुष्यो तेना गुणोतुं गायनकर अने शां
तसुधारसतुं पानकर ॥ ८ ॥ इति श्री शांतसुधारसगेयकाव्ये प्रमोदज्ञावना वि
ज्ञावनो नाम चतुर्दशः प्रकाशः ॥

मालिनीवृत्तं ॥ प्रथममशनपानप्राप्तिवांगविहस्ता स्तदनु वस
नवेश्मालोकृतिव्यग्रचिता ॥ परिणयनमपत्यावाप्तिमिष्टेडि
यार्थान्सततमन्निलपतंः स्वस्थतां कास्सुतीरन् ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवे कारुण्यज्ञावना जावेठे प्रथमतो अशनपान प्राप्तिकरवानी इष्टा
ये व्याकुलथयजा तदनतर वस्त्र धर अलंकार इत्यादिकोनी प्राप्ति करवाने विषे जे
मनुचित्त व्यग्रअशुंठे तेवारपठि लग्नकरवानी इष्टा तेपठि पुत्रपुत्री प्राप्त करवानी
इष्टा अने इंद्रियार्थजे पाचइंद्रियोना त्रेवीस विषयोतेप्रते इष्टनार एहवाजे संसार
वासी जीवो तेकेवीरीते स्वस्थ थाय ॥ १ ॥

शिखरिणीवृत्तं ॥ उपायानां लक्षैः कथमपि समासाद्य विभवं च वा
न्यासात्तत्र ध्रुवमिति निबध्नाति हृदयं ॥ अथाकस्मादस्मिन्विकिर
ति रजः क्रुरहृदयो रिपु र्वा रोगो वा जयमुत जरा मृत्युरथवा ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हे प्राणी तुझा जगतमां लक्षावधि उपायोकरिने कोइपणरीते ऐश्वर्य
ता मेलवी जन्मोजन्मना अन्यासेंकरि तेहनावपरज मनने स्थिर राखेते पण एना
उपरतो एथीअनतर जे अकस्मातिक कूर हृदयवत शत्रु किवा रोगप्राप्ति नय जरा
अथवा मृत्यु एटलावाना धुजनाखेते ॥ २ ॥

स्त्रग्धरावृत्त ॥ स्पर्धते केपि केचिद्वधति हृदि मित्या मत्सरं
क्रोधदग्धा युध्यते केरुप्यद्वा धनयुवतिपशुक्षेत्रपजादिहेतोः ॥
केचिल्लोचाल्लजंते विपदमनुपद दूरदेशानटंत ॥ किं कुर्म
किं वदामो नृशमरतिशतैर्व्याकुल विश्वमेतत् ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ कोइ क्रोधेकरी दग्धयथायका द्वेषकरेते कोइ परस्पर हृदयमां मत्सर
धरेते केटलाक कोइना रुंध्यानठता स्वठदपणे इव्य स्त्री पशु क्षेत्र गाम इत्यादिको ने
वास्ते लडेते वली कोइक लोनेकरी विपत्तिये नोगित थयायका दूर देशांतरोमां रटन
करीकरीने व्यामूढथायते तो हवे सुं करिये अने सुं बोलिये आ जगत तो अत्यंत
जेकडा ड खेकरी व्याकुलते ॥ ३ ॥

उपजातिवृत्तत्रय ॥ स्वयं खनंत स्वकरेण गर्तान्मध्ये स्वयं तत्र य
था पतंति ॥ तथा ततो निष्क्रमण तु दूरे ऽधोद प्रपाताच्चिरमति
नैव ॥ ४ ॥ प्रकल्पयन्नास्तिकतादिवादमिदं प्रमादं परिशीलयंत
॥ मग्ना निगोदादिपु दोपदग्धा डरंतडुखानि हृद्वा सहते ॥ ५ ॥
शृण्वन्ति ये नैव हितोपदेश न धर्मलेशं मनसा स्पृशन्ति ॥ रुज.
कथंकारमथापनेयास्तेपामुपायस्त्वयमेक एव ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ प्राणीपोते पोतानेहाथे खाडोखोदीने तेमा एवीरीते पडेतेके फरीकोइ
प्रकारे तेमाथी नीकलबुतो दूररुतु परतु उजटो नीचेनीचे जइपडबु तेतुं किवारे
अंतज आवनार नथी एटलो उडोखाडो खोवेते ॥ ४ ॥ जे नास्तिकादिक वादक
टपीने प्रमादना अन्यासकरनारा दोपेकरी दग्धयथीने निगोदादिकमा बुमारह्या
यका जेनोअत घणुंजमागे एहवा महा क्लेशकारी ड खोने सोसेते तो हाहा इतिखे
वे एवात केटली खेदचरेलीते ॥ ५ ॥ जेप्राणीहितोपदेश सांजजतोनथी अने धर्म
लेश्याने तो मनेकरीपण स्पर्श करतोनथी तेप्राणीना ड खो सीरीते दूरकरीये तेनो
आ एकज उपायते तेआगलना श्लोकमा कहेते ॥ ६ ॥

अनुपुवृत्त ॥ परडु खप्रतीकारमेवं ध्यायंति ये हृदि ॥

लज्जते निर्विकारं ते सुखमायतिसुंदरं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेप्राणी पूर्वोक्तप्रकारे बीजाना डु खानो प्रतीकार हृदयमां धरेठे तेणे करी जेना परिणाम सुंदरथायठे तेने निर्विकारी सुख प्राप्तथाय ॥ ७ ॥

॥ पचदशजावनाष्टकं रामकुलीरागेण गीयते ॥ हमारो अंबरदेहुसुरारी एदेशी ॥

सुजना जजत मुदा जगवंतं सुजनाजजत मुदा जगवंतं ॥ ध्रुवपदं ॥

शरणागतजनमिह निष्कारणकरुणावंतमवंतरे ॥ सुज० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हेसङ्गनो आ जगतमां कारणविना दयाना पालनारा अने जे पोताने शरणे आब्यो तेनीरक्षाना करनारा जे जगवतठे तेने तुमे हंपेकरी जजो ॥ १ ॥

क्षणमुपधाय मन. स्थिरतायां पिवत जिनागमसारं ॥ का
पद्यघटनाविकृतविचारं त्यजत कृतांतमसारं रे ॥ सुज० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ एकक्षणमात्र पोतानो मनस्थिरकरी जेनागमना सारतुं पानकरो अने जे कृत्योमा कुत्सित मार्गनी घटनाये करी आपणो विवेक विकारवत थायठे एवा असार निंदनिक कृत्यनो त्यागकरो ॥ २ ॥

परिहरणीयो गुरुरविवेकी भ्रमयति यो मतिमंदं ॥ सुगुरुवच
सकृदपि परिपीतं प्रथयति परमानंदं रे ॥ सुज० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ अविचारितगुरुनो संगमूको केमके जे गुरुओ मंदबुद्धिवत पुरुपोने त्रांति सहि त करेठे अने सुगुरुना वचनो जो एक वखत सांजव्या तोपणपरमानंद उत्पन्नकरेठे रे कुमततमोजरमीलितनयनं किमु पृच्छत पंथानं ॥ दधिबुध्या
नर जलमंथन्यां किमु निदधत मंथानं रे ॥ सुज० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ कुमतरूपी अधारेकरी जेनी आखोढकांइ गयलीठे तेवाप्राणीने मोक्ष मार्गनो रस्तोसुं पूढबु हेजोको तमे दहीनी बुद्धिये पाणीनेविषे मथनिकाने केम नाखोठो केमके ए पाणीमाथी कांइ माखण निकलवानुं नथी ॥ ४ ॥

अनिरुद्धं मन एव जनानां ॥ जनयति विविधातंकं ॥ सप

दि सुखानि तदेव विधत्ते ॥ आत्माराममशकं रे ॥ सुज० ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ पोतानुंमन पोताने स्वाधीन न राख्यो ठता तेहिज पोताने नानाप्रकार

नाडु खो उत्पन्नकरेते अने तेहिज मनपोताने स्वाधीन राख्योठता आत्मारामने निशकपणे विविध प्रकारना सुखआपेते ॥ ५ ॥

परिहरताश्रवविकथागौरव मदनमनादिवयस्य ॥ क्रियतां
सांवरसाप्तपदीन ॥ ध्रुवमिदमेव रहस्यम् रे ॥ सुज० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हे सज्जनो तमे आश्रव अने विकथातुंजे गौरवपणु तथा अनादिकालतुं मित्रजे कामदेव तेनी साथे मित्रतानो त्याग जाव करीने संवररूप सन्मित्रकरो ए हिज एक गुप्त तत्वते ॥ ६ ॥

सह्यत इह कि नवकांतारे ॥ गदनिकुरं वमपारं ॥ अनुस
रताहितजगडुपकार जिनपतिमगटंकार रे ॥ सुज० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हेजीव आ ससाररूप अरण्यामा रागदेषादिक अपाररोगना समूहने तु सोसेते तेनो त्यागकरी ने जगतना उपकार करनार अने ससारीजीवोने राग देष मद मत्सर इत्यादिक रोगोना निवारणकरी निरोगताना आपनार एहवा श्री तीर्थकरदेवरूप आपथनी सेवनाकर ॥ ७ ॥

शृणुतैकं विनयोदितवचनं नियतायतिहितरचनं ॥ रचयत सुकृत
सुखशतसंधान शांतसुधारसपानं रे ॥ सुज० ॥ ८ ॥ इति श्रीशातसु
धारसगेयकाव्ये कारुण्यजावनाविजावनो नाम पचदश. प्रकाश ॥

अर्थ ॥ माटेहे नव्यो विनयविजयजीना कहेला अथवा विनयेकरीने कहेला आ ग्रंथमाहेला वाक्यो तेने एक नियमे करी एटले तदाकार वृत्तिये करी बराबर ध्यानराखीने साजलो ए वचनो साजलवाथी उत्तरफलनी प्राप्तियवाना कालनेविषे हित रजनना करनाराते एहबुजाणीने ए वाक्यो ते एकनियमथी सांजलो ॥ ८ ॥ इति श्रीशातसुधारस गेयकाव्ये कारुण्यजावनाविजावनो नाम पचदश प्रकाश. ॥

पंचापि शालिनीवृत्तानि ॥ श्रान्ता यस्मिन् विश्रम सश्रयंतै रुग्णा प्री
ति यत्समासाद्य सद्य ॥ लज्यं रागदेषविक्षेपिरोधादौदासीन्य सर्व
दा तस्त्रियं न ॥ १ ॥ लोके लोका जिन्नजिन्नस्वरूपा जिन्नैर्जिन्नै कर्म
जिर्मर्मजिन्नि ॥ रम्यारम्यैश्चेष्टितै कस्यकस्यतद्विद्विस्तूयते रुष्यते
वा ॥ २ ॥ मिथ्याशासन्वीरतीर्थेश्वरेण रोद्धुं शोके न स्वशिष्यो जमा
लि ॥ अन्य कोवा रोत्स्यते केन पापात्तस्मादौदासीन्यमेवात्मनी

नं ॥ ३ ॥ अर्हेतोपि प्राज्यशक्तिस्पृशः किं धर्मोद्योगं कारयेयुः प्र
सह्य ॥ द्युः शुद्धं कितु धर्मोपदेशं यत्कुर्वाणा इस्तरं निस्तरति ॥ ४
तस्मादौदासीन्यपीयुपसारं वारंवारं हंत संतो लिहंतु ॥ आनंदा
नामुत्तरंगतरंगैर्जीवन्नियन्नुज्यते मुक्तिसौख्यं ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवे सोलमी माथ्यस्थ जावना जावेठे जेमकोऽप्राणीने थाकचडेलो
होयते प्राणी विश्रांतिनास्थानके विश्रांतिलेठे तेमज उदासीनता जेठेते संसार
रूप अरण्यमां प्रमणकरनारा प्राणीने विश्रांतिलेवानुं स्थानकठे अने जेनेजोऽ
रोगीपुरुष तत्काल प्रीतिवतथायठे एटले गमेतेवा रोगेकरी पीडितहोय तथापि
जेने उदासीनता पणुं प्राप्तयुं तो तेने ते रोगनी व्याधि कांऽपण जाणवामां न
आवता उलटो हर्षवधेठे वली जेनीप्राप्ति राग अने द्वेषरूप शत्रुनो रोधकरवाथी
थायठे एहवीजे उदासीनता ते अमोने सर्वकाल प्रियठे ॥ १ ॥ आजगतमाना
लोको अंतरना आशयेकरी मर्मानेदे निन्ननिन्न कर्मकरी अने रम्यारम्य व्या
पारेकरी निन्ननिन्न स्वरूपवंतठे पण बधाप्राणीनी एकप्रकृति तो नथीज तिवारें
हवे विद्वानपुरुषे केनीकेनी रम्यारम्य चेष्टा उपर संतुष्टथावुं किवा रुष्टथावुं अर्था
त् विद्वान पुरुषेतो सर्वप्राणी उपर संतुष्ट अथवा रुष्टनथता समदृष्टीज राखवी
नलीठे ॥ २ ॥ जूअोकेश्री वीरजगवान पोते तीर्थकर उता मिथ्यासहित बोलना
रो पोतानो शिष्य जमाली तेने रुधीशक्यानही तो बीजो कोण कोऽने पण पाप
थकी रुंधीराखनारठे माटे उदासीनपणुं राखवुंतेहीज आत्मानुं हितकारीठे एम
जाणवु ॥ ३ ॥ जूअोके श्रीतीर्थकरदेव अत्यंत शक्तिना धरनारहता तथापिते
कोऽने बलात्कारेकरी धर्मोद्योग करवाने प्रवर्तावताहता केसुं ते तो जेणेकरी न
व्यपुरुषो इस्तर संसार समुद्रमांथी तरी पारपामे एहवो केवल शुद्धधर्मनोज उपदेश
मात्र आपताहता ॥ ४ ॥ तेकारणे हेसत्पुरुषो तमेवारवार हर्षसहित औदासीन्य
तारूप सारनूत अमृतनो आस्वादनकरो के जेथकी जीव आनदना वहेनारा मो
जायेकरी सहित मोक्षसुख नोगवे ॥ ५ ॥

॥ षोडशजावनाष्टकं प्रजातिरागेण गीयते ॥ आदरजीवह्रमागुणआदर ॥ एदेशी
अनुभव विनय सदासुखमनुभव ॥ औदासीन्यमुदारं रे ॥ कु
शलसमागममागमसारं ॥ कामितफलमंदारं रे ॥ अनु० ॥ १ ॥

नाडु खो उत्पन्नकरेते अने तेहिज मनपोताने स्वाधीन राख्योउता आत्मरामने
निशकपणे विविध प्रकारना सुखआपेते ॥ ५ ॥

परिहरताश्रवविकथागौरव मदनमनादिवयस्य ॥ क्रियता
सांवरसाप्तपदीन ॥ ध्रुवमिदमेव रहस्यम् रे ॥ सुज० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हे सज्जनो तमे आश्रव अने विकथानुंजे गौरवपणु तथा अनादिकालतुं
मित्रजे कामदेव तेनी साथे मित्रतानो त्याग जाव करीने सवररूप सन्मित्रकरो ए
हिज एक गुप्त तत्वते ॥ ६ ॥

सहस्रत इह कि जवकांतारे ॥ गदनिकुरंवमपारं ॥ अनुस
रताहितजगज्जपकारं जिनपतिमगदंकारं रे ॥ सुज० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हेजीव आ संसाररूप अरण्यमां रागदेषादिक अपाररोगना समूहने
तु सोसेते तेनो त्यागकरी ने जगतना उपकार करनार अने ससारीजीवोने राग
देष मद मत्सर इत्यादिक रोगोनो निवारणकरी निरोगताना आपनार एहवा श्री
तीर्थंकरदेवरूप औषधनी सेवनाकर ॥ ७ ॥

शृणुतैक विनयोदितवचनं नियतायतिहितरचनं ॥ रचयत सुकृत
सुखशतसंधान शांतसुधारसपान रे ॥ सुज० ॥ ८ ॥ इति श्रीशातसु
धारसगेयकाव्ये कारुण्यजावनाविजावनो नाम पंचदश प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ माटेहे जव्यो विनयविजयजीना कहेला अथवा विनयेकरीने कहेला
आ ग्रंथमांहेला वाक्यो तेने एक नियमे करी एटले तदाकार वृत्तिये करी बराबर
ध्यानराखीने साजलो ए वचनो सांजलवाथी उत्तरफलनी प्राप्तिथवाना कालनेविपे
हित रजनना करनाराते एहबुजाणीने ए वाक्यो ते एकनियमथी साजलो ॥ ८ ॥ इति
श्रीशातसुधारस गेयकाव्ये कारुण्यजावनाविजावनो नाम पंचदश प्रकाशः ॥

पचापि शालिनीवृत्तानि ॥ श्राता यस्मिन् विश्रम सश्रयंते रुग्णाः प्री
ति यत्समासाद्य सद्यः ॥ लज्जं रागदेषविधेपिरोधादौदासीन्य सर्व
दा तत्प्रिय न ॥ १ ॥ लोके लोका जिनजिनस्वरूपा जिनैजिनैः कर्म
जिर्मर्मजिजि ॥ रम्यारम्यैश्चेष्टितै कस्यकस्यतद्विद्वज्जिस्तूयते रूप्यते
वा ॥ २ ॥ मिथ्याशंसन्वीरतीर्थेश्वरेण रोक्षुं शेके न स्वशिष्यो जमा
लि. ॥ अन्यः कोवा रोत्स्यते केन पापात्तस्मादौदासीन्यमेवात्मनी

नं ॥ ३ ॥ अर्हंतोपि प्राज्यशक्तिस्पृशः किं धर्मोद्योगं कारयेयुः प्र
सह्य ॥ दद्युः शुद्धं कितु धर्मोपदेशं यत्कुर्वाणा ह्यस्तरं निस्तरंति ॥ ४
तस्मादौदासीन्यपीयुषसारं वारंवारं हंत संतो लिहंतु ॥ आनंदा
नामुत्तरंगतरंगैर्जीवन्निर्यन्नुज्यते मुक्तिसौख्यं ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवे सोलमी माथ्यस्थ जावना जावेळे जेमकोऽप्राणीने थाकचडेलो
होयते प्राणी विश्रांतिनास्थानके विश्रांतिलेळे तेमज उदासीनता जेठेते संसार
रूप अरण्यामां त्रमणकरनारा प्राणीने विश्रांतिलेवानुं स्थानकळे अने जेनेजोऽ
रोगीपुरुष तत्काल प्रीतिवतथायळे एटले गमेतेवा रोगेकरी पीडितहोय तथापि
जेने उदासीनता पणुं प्राप्तययुं तो तेने ते रोगनी व्याधि कांऽपण जाणवामां न
आवता उलटो हर्षवधेळे वली जेनीप्राप्ति राग अने द्वेषरूप शत्रुनो रोधकरवाधी
थायळे एहवीजे उदासीनता ते अमोने सर्वकाल प्रियळे ॥ १ ॥ आजगत्तमांना
लोको अंतरना आशयेकरी मर्मनाजेदे निन्ननिन्न कर्मकरी अने रम्यारम्य व्या
पारेकरी निन्ननिन्न स्वरूपवतळे पण बधाप्राणीनी एकप्रकृति तो नथीज तिवारे
हवे विद्वानपुरुषे केनीकेनी रम्यारम्य चेष्टा उपर संतुष्टथावु किवा रुष्टथावु अर्था
त् विद्वान पुरुषेतो सर्वप्राणी उपर संतुष्ट अथवा रुष्टनयता समदृष्टीज राखवी
नलीळे ॥ २ ॥ ज्युओकेश्री वीरजगवान पोते तीर्थकर ठता मिथ्यासहित बोलना
रो पोतानो शिष्य जमाली तेने रुचीशक्यानही तो बीजो कोण कोऽने पण पाप
थकी रुंधीराखनारळे माटे उदासीनपणुं राखवुतेहीज आत्मानुं हितकारीळे एम
जाणवुं ॥ ३ ॥ ज्युओके श्रीतीर्थकरदेव अत्यंत शक्तिना धरनारहता तथापिते
कोऽने बलात्कारेकरी धर्मोद्योग करवाने प्रवर्तावताहता केसुं ते तो जेणेकरी ज
व्यपुरुषो हुस्तर संसार समुड्माधी तरी पारपामे एहवो केवल शुद्धधर्मनोज उपदेश
मात्र आपताहता ॥ ४ ॥ तेकारणे हेसत्पुरुषो तमेवारवार हर्षसहित औदासीन्य
तारूप सारजूत अमृतनो आस्वादनकरो के जेथकी जीव आनंदना वहेनारा मो
जायेकरी सहित मोक्षसुख जोगवे ॥ ५ ॥

॥ षोडशजावनाष्टकं प्रजातिरारणेण गीयते ॥ आदरजीवहृमागुणआदर ॥ एदेशी
अनुचव विनय सदासुखमनुचव ॥ औदासीन्यमुदारं रे ॥ कु
शलसमागममागमसारं ॥ कामितफलमंदारं रे ॥ अनु० ॥ २ ॥

परिहर परचिंतापरिवारं ॥ चितय निजमविकारं रे ॥ वदति को
पि चिनोति करीरं ॥ चिनुतेऽन्यः सहकार रे ॥ अनु० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ बली विज्ञेयप्रकारे माध्यस्थपणुं जावेठे हे विनयतु सर्वकाल सुखनो
अनुभवकर जेम वाञ्छित पदार्थो आपवामा कल्पवृक्षमुख्यठे तेम वाञ्छित मोक्षसु
खनी पमाडनारी अने सर्वशास्त्रोमा महोटी सारजूत एहवीजे उदासीनता तेजुंज
तुसेवनकर ॥ १ ॥ अरेजीव तु बीजा विकारीपदार्थोनी चितवनानो करावनारोजे
ताहरो परिवार तेनोत्यागकर अने पोताना अविकारि स्वरूपनुं चितनकर ॥ २ ॥

योपि न सहते हितमुपदेश ॥ तडुपरि माकुरु कोपं रे ॥ निष्फ
लया कि परजनतट्या ॥ कुरुपे निजसुखलोपं रे ॥ अनु० ३ ॥ सूत्र
मपास्य जडा चापंते ॥ केचन मतमुत्सूत्रं रे ॥ किकुर्मस्ते प
रिहतपयसो यदि पीयंते मूत्र रे ॥ अनु० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जोपणकोऽहितकारी उपदेश साजलतो नथी तोपण तेनावपर क्रोधक
रीसनही निष्फल लोकोउपर संतापकरी पोताना सुखनो लोपकाकरेठे ॥ ३ ॥ केट
लाक मूर्ख सूत्र ल्यजीने बोलेठे केटलाक उत्सूत्र जाषणकरेठे एवीरीतना बोल
नारा जोनिर्मलपाणीने मूकी लघुनीतनुं पान करवालागा तोतेने अमेसुंकरिये ॥ ४ ॥

पश्यति कि न मन परिणामं निजनिजगत्यनुसारं रे ॥ येन
जनेन यथा जवितव्य तन्नवता ड्वारं रे ॥ अनु० ॥ ५ ॥

रमय हृदा हृदयगमसमता ॥ सवृणु मायाजालं रे ॥ वृथा
वद्दसि पुञ्जलपरवशातामायु परिमितकाल रे ॥ अनु० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीव पोतपोतानी गत्यनुसारे सर्वजीवोनामननो परिणाम जूदोजूदो
ठे तेतु केमजोतोनथी केमके जेप्राणीने जेवी जवितव्यताठे तेना मननो परिणाम
पण तेहवोजे तो ते तहाराथी ड्वारंठे एटले तहाराथी वारीशकाय तेमनथी ॥ ५ ॥
माटे हृदयने आनद आपनारीएवीजे समतातेने मनमा धारणकरी आनदनेपाम
अने मायाजालने त्यागकर व्यर्थ पुञ्जने परवश काथायठे केमके तहारोआयुप प
रिमितकालठे एटले प्रमाणसहितठे तेनेचूटतां वारलागसेनही ॥ ६ ॥

अनुपमतीर्थमिद स्मर चेतनमंतस्थितमजिरामं रे ॥ चिरंजीव विश
दपरिणामं ॥ लजसे सुखमविरामं रे ॥ अनु० ॥ ७ ॥ परब्रह्मपरि

णामनिदानं ॥ स्फुटकेवलविज्ञानं रे ॥ विरचय विनय विवेचित
ज्ञानं ॥ शांतसुधारसपानं रे ॥ अणु ० ॥ ७ ॥ इतिश्री शांतसुधार
स गेयकाव्ये माध्यस्थ्यज्ञावनाविज्ञावनो नाम षोडशः प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ हेनव्यो तमे मनमां रहेनारुं आनंदनुं कारण एहदु अनोपम उदा
सीनपणारूप तीर्थनुं स्मरणकरो अने जे कोइकालेपण विराम पामतानथी एहवा
मोक्षसुखपामि चिरकाल स्वप्नपरिणामिरहो ॥ ७ ॥ अने परब्रह्मत्वारूप परिणामोनुं
जे निदान तद्रूप विज्ञानने जे प्रगटकरेठे एहदुं विवेचननुंकरनारुंजेमा ज्ञान
ठे एहवा शांतसुधारसनुं पान ते हे विनयतु निरतरकर ॥ ७ ॥ इति श्रीशांतसुधार
स गेयकाव्येमाध्यस्थ्यज्ञावनाविज्ञावनो नाम षोडशः प्रकाशः ॥

स्रग्धरावृत्तद्वयं ॥ एवं सज्ञावनाग्निः सुरञ्जितहृदयाः संशयाती
तगीतोन्नीतरफीतात्मतत्त्वारत्वरितमपसरन्मोहनिजाममत्त्वा ॥
गत्वा सत्त्वा ममत्त्वातिशयमनुपमां चक्रिशक्राधिकानां सौख्या
नां मंहु लक्ष्मी परिचितविनयाः स्फारकीर्ति श्रयंते ॥ १ ॥
दुर्व्यानप्रेतपीडा प्रभवति न मनाक् काचिद्वद्वसौख्यस्फा
तिः प्रीणाति चित्तं प्रसरति परित सौख्यसौहित्यसिधुः ॥
क्षीयंते रागरोपप्रचृतिरिपुञ्जटाः सिद्धिसाम्राज्यलक्ष्मीः स्याद्
श्या यन्महिम्ना विनयशुचिधियो ज्ञावनास्ताः श्रयध्वं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवे श्रीविनयविजयजी उपाध्याय आग्रंथ समाप्तकरिने उपदेशरूप
पोताना आग्निप्रायनुं कथनकरेठे आवीरीतें पूर्वोक्तप्रकारे सज्ञावनाओनी सुगंधिये
जेनाहृदयमा संशयरहित गायनकरवाथी तार्किककथुठे स्पष्ट आत्मतत्वजेणे अने जे
नामोह निजा अने ममत्व तुरत नाशपाम्या ठे एवाप्राणी ममतानुं अतिशय
पणुं मूढीने चक्रवर्ति तथा इंद्रादिकोनासुखोयकी पण अधिक एवा विनयधरनारा अ
नुपम सुखोनी पुष्कल कीर्तिवत् लक्ष्मीने पामेठे ॥ १ ॥ जेहना महिमायेकरी
दुर्व्यानरूप प्रेतनीपीडा लगारमात्रपण थातीनथी पण कोइएक अपूर्व अर्द्ध सौ
ख्यनी वृद्धिप्रायठे अने चित्तप्रीतिवत्थायठे अने आत्माने चारे वाजुथी सौख्य वृ
त्तिनी नदीपसरठे वली रागद्वेषरुपशत्रु क्षीणथइजायठे सिद्धिरूप साम्राज्यलक्ष्मी

वशथायठे एह्वीजे नावनाओते तेने हे जय्य लोको तमारी विनयेंकरी पवित्रबु
द्वियइहता ते नावनाओतुं आश्रयकरो ॥ १ ॥

पथ्यावृत्त ॥ श्रीहीरविजयसूरीश्वरशिष्यो सोदरावचूतां
दौ ॥ श्रीसोमविजयवाचकवाचकवरकीर्तिविजयाख्यौ ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ श्रीहीरविजय सूरीश्वरना शिष्यवेनाइहता तेमा एक सोमविजयवाच
क अने वीजा कीर्तिविजयवाचक ॥ ३ ॥

गीतिद्वयं ॥ तत्र च कीर्तिविजयवाचकशिष्योपाध्यायविनय
विजयेनाशांतसुधारसनामा संदृष्टो नावनाप्रबोधो ऽयं ॥ ४ ॥
शिखिनयनसिधुशशिमितवर्षे हर्षेण गंधपुरनगरे ॥ श्री
विजयप्रज्ञसूरिप्रसादतो यत्न एव सफलो ऽचूत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ तेमां कीर्तिविजय वाचकना शिष्य श्रीविनयविजयजी उपाध्याय तेणे आ
शांतसुधारस नामा नावनाओ प्रबोधकयो ॥ ४ ॥ आ प्रयत्न संवत सतरसोने
त्रेवीसना वर्षे श्रीगांधार नगरमा श्रीविजयप्रज्ञसूरिना प्रसादपकी हर्षसहित
सफलपयु ॥ ५ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ यथा विधुः पोडशजि कलाजि संपूर्णतामेत्य जग
त्पुनीते ॥ अथस्तथा पोडशजि प्रकाशैरयं समग्रं शिवमातनोतु ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेम चइमा सोलेकलाये पूर्णतापामी जगतने पवित्रकरेठे तेम आ
अथपण सोलकलारूप सोलप्रकाशकरी जगततुं कव्याणकरो एवो महारोआशीर्वादेठे
इंउवज्जावृत्त ॥ यावज्जगत्येप सहस्रजानु पीयूषजानुश्च सदोदये
ते ॥ तावत्सतामेतदपि प्रमोद ज्योति स्फुरद्वाङ्मयमातनोतु ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेकालपर्यंत जगतमा चइसर्ष उगेठे तिहांसुधी जेमाप्रकाशमान वा
णी मयरूप ज्योतिठे एहवो आ शास्त्र ते सत्पुरुषोने आनंद आपो ॥ ७ ॥

इति श्रीमन्महोपाध्याय श्री कीर्तिविजयगणेशिष्योपाध्याय श्री
विनयविजयगणेशिवरचिते शांतसुधारसग्रंथे पोरुश प्रकाशोऽर्थस
हित समाप्तिमगमत्

॥ अथ श्रीजिनप्रज्ञमूरिकृतचतुर्विंशतिजिनस्तवनं ॥

पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा यस्मादधीत्येहितदानविद्याम् ॥ अपूपुजन् यञ्चरणी
 नखातिव्याजेन नूनं नवपद्मवै स्वै ॥ १ ॥ गत्या विजित्य विरदं स्वसेवां चिन्ह
 ह्यलान्धश्वदचीकरद्यः ॥ यस्योदये ह्य्यञ्जना नृणा वो वनूव नूमा लुवि सोऽजि
 तोऽव्यात् ॥ २ ॥ सद्य स निद्याद्भवसंभव व श्रीशंभवो यस्य पितुर्जितारे. ॥ रा
 जाधिराजत्वञ्जुपोपि सेनापतित्वमेवानिमत बताञ्जुत् ॥ ३ ॥ जातोपि य संवरत्
 स्वयं यदजीजनत् संवरमद्भुत तत् ॥ स कीशकेतुर्जितमीनकेतुर्जितोऽजिनंद्यादजिनं
 दनो व. ॥ ४ ॥ सुदुर्लभं मेघनवस्य यस्य मुक्ताफलस्येव न दर्शनं कैः ॥ चडाव
 दात् सुमति तमार्या सर्वश्रियामाश्रयमाश्रयध्व ॥ ५ ॥ न जेजिवान् वक्रगति क
 दाचित् नचातिचार सततं च सौम्य ॥ पद्मप्रज्ञः शोणतनुप्रज्ञोपि नव्यश्रिये को
 पि धरांगजन्मा ॥ ६ ॥ पृथ्व्यां प्रसूत सुमनोजिरर्च्यः सुपर्णकांतिर्वहुकव्युपास्य. ॥
 श्रेय.फलश्रीर्जयताडुदग्रस्कथ सुपार्श्वदुरपास्तताप ॥ ७ ॥ चडप्रज्ञोऽव्यात् वपुर
 गुजालैराङ्गितागीजनता यदीयै ॥ प्रसेननिर्वाणरमाविमुक्तकटाङ्गलङ्गस्नपितेव
 नाति ॥ ८ ॥ नावाह्वे पुष्पशर विजित्य नश्यध्वजं यो मकर गृहीत्वा ॥ आरोप
 यद्भद्रपदे ध्रुव स स्वचृत्यतां मे सुविधिर्विधेयात् ॥ ९ ॥ पितृगदाहप्रशमेन नाव
 दाहप्रमाथेपि खलु स्वशक्ति ॥ अजिङ्गपञ्चगतोपि विद्वान् यस्तं स्तुम शीतलमह
 शीलं ॥ १० ॥ श्रेयान् श्रिये दौहृदि मातृरुद्धात् गर्भस्थिते यत्र महार्हतत्वात् ॥
 ड्व्यर्तरीडाक् प्रणनाशमोहराजाय पूत्कर्तुमिवाहितोत्थ ॥ ११ ॥ जव्यागिना यस्य
 रुचिप्रपंचैरगानि चेतांसि च रजितानि ॥ स वासुपूज्यो जगदेकपूज्य संपूज्यतां नि
 र्जितडुर्जयारि. ॥ १२ ॥ ह्रमान्तर धर्तुमशिक्षितांकठलेन सेवां प्रतिपद्य यस्मात् ॥
 धने ततस्तं स किलादिकोल कापित्यजन्मा विमल. स जीयात् ॥ १३ ॥ अन्त
 जिन्नतुरन्तसौख्यप्रदोऽस्तु दोस्तनितवैरिवार. ॥ यद्वांठनं श्येनमपि प्रदृश्य विश्व
 स्य नश्यत्यथ वर्तिकीया. ॥ १४ ॥ पापाङ्गिनि षड्जमुदीह्य दीपं यद्भद्राणं नक्तिचिकीरु
 पेत ॥ तद्भ्रंशशकी मुद्गरालुलोके शक्र. स्वपाणि स धिनोतु धर्मः ॥ १५ ॥ अरतिरम्ये
 प्यनरातिरम्ये सन्नान्जियोगेऽपि दृढान्जियोगे ॥ चक्रे स्थिता यस्य सुख जयश्री स पातु
 व पंचमचक्रवर्ती ॥ १६ ॥ ठागं ध्वज यम्य तनौ विलोक्य - तत्प्रेमतो ह्य्यञ्जना
 ध्रुवं य. ॥ सर्वांगमालिगिसुवर्णवर्णना सुपूरदंनान्त मुदेऽस्तु कुशु ॥ १७ ॥ सुदर्शना

ज्ञात इति प्रसह्य भेद व्यथाद्यस्तमस खट्वत्ते ॥ पितु क्रम पालयितु किलासौ
 तान्न कलासौष्टवकृद्भिन्नोर ॥ १७ ॥ यस्य प्रिया नो विहितारिलोपामुडा नव
 यो न पर्या नदीनं ॥ निस्तारकात्मा नयमालयस्थो नव्य श्रिये कुंजचव. स मद्धि
 १८ ॥ यस्यागरोचि पटलं समतात्प्रसूत्वर जृगकुलानिराम ॥ उच्चाटनध्यानमि
 तास साह्यान्नाविषा नदत्तु सुव्रतोऽसौ ॥ १७ ॥ यत्नोचनस्पर्द्धिविर्वेदित्वा स्व
 तापरार्थं जगदेकनाथ ॥ यो लक्ष्मलक्ष्याञ्चरण श्रितो डाक् नीलोत्पलेनास्तु नम
 न जूल्यै ॥ १९ ॥ यदक्रयोगात्सुजगं विदन् स्व महाशयोत्पन्नतया कृतज्ञ ॥ यं कं
 र-डाकमिपात्सिपेवे तं नेमिमथ्येमि यदुप्रकाडं ॥ २० ॥ यद्देहदीप्ति तुजितेऽनीज
 र्ना चिर चारुनिजालयत ॥ नैर्मैव्यकोटिं घटयति दृष्टे शिष्टा अतिष्टं स पिनष्ट
 शर्ध ॥ २१ ॥ प्राच्यं विमोच्यास्पदमुद्रवात्प्राक् स्थानांतरे रोपितवान् हरिर्ध ॥
 ताचीकसत्सन्नुणशालिन्नूर्यं यस्याधमन्यान्नमतां स वीर ॥ २२ ॥ जयति गर्जागम
 तन्मदीक्षा ज्ञानापवर्गोत्सववासराणि ॥ जैनानि नाकायितनूतलानि त्रैलोक्य
 त्तोकप्रमदप्रदानि ॥ २३ ॥ यदाष्टवांन शिरसाऽनिवद्य सुमेरुर-डाऽजनि गोत्रमुख्य ॥
 रीर्थाधिनाथा प्रययत्तु सेवाहेवाकिना ते कुपथप्रमार्थ ॥ २४ ॥ कुवादिवक्राडिगु
 हातरान्न प्रयोगधूकालिरलं निरेतु ॥ यस्मिस्तपत्यस्ततम समूहे श्रीवीरसि-डातरवि
 त जीयात् ॥ २५ ॥ व्यामोहनूपालवर विजित्य तस्माद्दुपानं तु सितातपत्रं ॥ य
 स्या. करे राजति पुम्रीक सा चारती यद्वतु वांजित व ॥ २६ ॥ इति जिनप्रजस्र
 रिनिरीडिता जिनवराश्रतुरुत्तरविशति ॥ नरतवर्षनवा सुवनेश्वरा स्वरससिद्धिसु
 ख वितरतु न ॥ २७ ॥ इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ श्री वीतरागायनम् ॥

॥ अथ श्री आस्तिक तथा नास्तिकनो संवाद प्रारंभ ॥

१ नास्तिक -आ जगत अने तेमांना पदार्थो सर्व शून्यठे, एने ससलाना शींगडां, आकारानां फूल तथा वाजणीना पुत्र वगैरे जे पदार्थोनी त्रणे कालमा सिद्ध ता थती नथी, तेवा पदार्थोनी उपमा देवाय कदाच तमे कहेशो के, जेम शशशृंग गादिक देखातां नथी, तेम ए पदार्थो पण देखाया न जोइये, तेम तो नथी. जग ततो प्रत्यक्ष देखायठे, तेने ए उपमा केम देवाय, प्रत्यक्ष प्रमाणवडे सिद्ध पदार्थो ने शून्य केम कहेवाय ? एनो उत्तर ए के, जे ए पदार्थोने देखे ठे, ते त्रमिष्ट ठे. जे पुरुपने त्रम थयो होय, तेने एकठुं बीजुं जाओ, तेम तमने पण थयुं कहेवा शे तमे ए दृष्टांतोनों मर्म समजी शकता नथी, त्यारे तमारा ध्यानमां सहेज आ वे एवो बीजो दृष्टात कठुं ठुं ते सांचलो, आ जगत स्वप्नसमान ठे जेम स्वप्न अस ल्य ठे, तेम जगत पण असल्य ठे. अने स्वप्ना पदार्थोनी पठे आ जगतना पदार्थो पण असल्य ठे. जे देखाय ठे ते स्वप्नी पठे त्रम मात्र ठे, एमां संशय नथी.

आस्तिक -अरे नास्तिक, हुं तने एटलुंज पुठुं ठुं के तारा सिद्धातनो कहेनार जीव ठे के अजीव ठे, एनो उत्तर ताराथी शु देवाओ ? जीव अथवा अजीव कद्याविना चाल शेज नही. जो तु कहीश के ते त्रमरूप ठे, तो ते एक रीते व्यवहार दृष्टीए योग्य कहेवाओ खरुं, केम के जे पोते त्रमरूप होय तेने वधुं त्रमरूप जाओ. जो एम हो य तो अमारो काई वाधो नथी; पण जो तारो सिद्धाती त्रमरूप उरओ नही, तो जेवो उरओ तेवा बीजा पदार्थो पण कबूल करवा पडओ, अने कबूल कद्याविना चालनार नथी, केम के, बीजुं वधुं त्रमरूप होय अने तारो सिद्धांतीज मात्र अत्रम होय एम संजवे नही त्यारे एक सिद्धाती ने एक सिद्धांत ए वे पदार्थो मानवा जोइये ठे. ए वे पदार्थो जो तु माने, तो जीव अने अजीवपणुं सिद्ध थाय ठे के नही! एवी रीते जगतमां पण घटपटादिक जे वस्तु ठे ते वस्तुज ठे अथवस्तु नथी. तेमज घट ते घट ठे. ने पट ते पट ठे घट पट नथी, ने पट घट नथी. एक पदार्थोमा बीजा पदार्थोनी अजाव होय ठे, पण घट घटपणे जावरूपे ठे, ने पट पटपणे जा वरूपे ठे. इत्यादिक सर्व पदार्थोविषे जाणी जेवु. जे जावरूप होय ते सत्यज होय ठे. ए रीते आ जगत जावरूप होवाथी सत्य ठे. केम के सर्व वस्तु पोतपोताना रु.

पैं अनादि सिद्ध ठे, अने जेनो अत नथी तेने गगलाना शिगडा प्रमुखनी उपमा देवी ए केवी मूर्खता ठे वारु । माटे ए बोलबु बालकना जेवुं कहेवाय.

जो स्वप्नजेवु जगत मानशो, तो तमारा पोताने महोडे पोते बंधाशो स्वप्न जे ठे ते स्वप्नपणे जावरूप ठे अने जाग्रतपणे अजावरूप ठे, तेम जागृत जे ठे ते जागृतपणे जावरूप ठे अने स्वप्नपणे अजावरूप ठे, पण केवल अजावरूपे कोई पदार्थ कहेवाय नही ज्यारे स्वप्नजावरूप ठे ल्यारे तेना जेवो जे जगत तमे कहोठो ते केम अजावरूप कहेवाय, अने स्वप्नने जो अजावरूप कहेशो तो देखाय ठे केम ? जे अजावरूप ते तो देखाय नही अने स्वप्न तो रात्रे दीतुं ते रात्रे दीतु कहेवायठे अने दिवसे दीतुं ते दीवसे दीतुं कहेवायठे, माटे जे वखते स्वप्न देखाय ठे ते वखते ते देखावारूपे अने सप्राप्त रूपे सत्य ठे अने जागृत असत्य ठे तेमज ज्यारे जागृत देखाय ठे ल्यारे स्वप्न असत्य ठे एम जावाजावरूप पदार्थ होय ते साध्यंत होय ठे वली विज्ञेप एवु समजबु जोइ ये ठे के, यद्यपि स्वप्न तो साध्यंत ठे पण स्वप्ननो जे विकटप ठे ते आध्यंतरहित शाश्वत ठे तेमाथी कोईक समये स्वप्न उद्भव थाय ठे माटे स्वप्नतुं देखबु कोई काले ठे तेमज यद्यपि जगतमाना पदार्थाने पलटवापणे उत्पाद व्ययनी अपेक्षायै पर्यायपणे साध्यंत ठे तथापि इव्यरूपे सदा शाश्वत ध्रुव ठे केमके पर्यायपणे धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव अने पुजल ए ठए इव्य शाश्वत ठे, जो पण ठेला त्रण इव्यना पर्याय अशाश्वत कहेवाय ठे, तो पण स्वरूपे इव्यपर्याय सदा शाश्वतज ठे, तेने असत्य केम कहेवाय ?

अरे त्रमिष्ट, तमे जीवने मानो ठो के नही ? जो ना कहेशो तो आ बोले ठे ते कोण ठे ? अने जगत असत्य कोण ठेरावे ठे ? जे पोतेज असत्य होय ते बीजाने खु सत्यासत्य कहेवानोठे ? जे पोतेसत्य होय ते बीजाने सत्य अथवा असत्य कहेवाने समर्थ थाय माटे जीव पदार्थ नथीज एम जो कहेशो तो तमे पोतेज काईक पदार्थ ठो ए चात तमाराथी ना कहेवाठो नही अने जगतने असत्य मानो ठो तेवारे तमे पोते तो सत्य ठरशोज, केमके जे पोताथी अतिरिक्त वस्तुने असत्य माने ते पोते ते ना जेवो असत्य होतो नथी, किंतु तेनाकरता विपरीत स्वजाववालो सत्य होयठे ते नो आ प्रत्यक्ष दाखलो ठे के, जगतने तमे स्वप्नजेवु गणोठो, ल्यारे तमे पोते जागृत ठो के नही ? केमके तमे पोते जागृत अवस्थामा न हो तो स्वप्नने स्वप्न कहो नही स्वप्नावस्थानो तमे पोते अनुभव करेलो ठे, ल्यारेज तेनाविपे कथन करी शको ठो, ते

मज जगतविपे पण तमे अनुभव करीने कथन करो गो, तेथकी जगतथी जुदा अ
नुभव कर्ता गो माटे जीव गो.

अने जो जीव न होय तो गतागतनाग, नाव, नापा कार्य तथा कारण इत्यादिक
विषयोनी अनुभव करवो. पाच इंद्रियोनी नियंत्र करवो, त्रणयोगे शरीरनी चाल
ना करवी इत्यादिक चेष्टा करनारो कोण ठे ? ए चेष्टा चैतन्य शक्तिथी थाय ठे एथी
चेतना लक्षणवान जीव जाणवो ज्यारे शरीरमाथी चेतना नीकली जाय ठे त्यारे
चेष्टा थती दीगामां आवती नथी, माटे ते अजीव कहिये एवी रीते जीव अने
अजीव ए बन्ने पदार्थ ठे एम निव थाय ठे.

सर्व वस्तुना वे प्रकार थाय ठे, एक पद्वयने बीजो प्रतिपद्वय जीव पद्वी ठे अने
अजीव प्रतिपद्वी ठे अथवा अजीव पद्वी ठे ने जीव प्रतिपद्वी ठे अर्थात् जीव तथा
अजीव ए वे पदार्थो सग शाश्वत अविनाशी ठे, एवु केवलीनुं वचन ठे, ते अचश्य
मान्य करवु जोये. दोहा, खरी शीख ए मानजो, मनमां राखी नाव, सद्गहाण जिन
वचननुं, करो धरी चित चाव. ?

१ नास्तिक - जीव अने अजीव नही मननारा मूर्ख ठे केमके, जीव तो पांच
महानूतोना समेलनथी उत्पन्न थाय ठे ज्यारे पांच माहानूतोनुं प्रथककरण एटले
जुडंथवापणुं थाय ठे त्यारे जीवनी नाश थाय ठे ए वात साची ठे

आस्तिक - पांच महानूतोथी तो तमारा मतप्रमाणे पांच जुदाजुदा पदार्थोनी
उत्पत्ति थाय ठे ते अप्रमाणे.- पृथ्वीथी अस्थि, जलयकी रुधिर, अग्निथकी जठ
राग्नि, वायुथकी श्वासोश्वास अने आकाशथकी शून्यता थाय ठे ए वधाथी जीव
तो जुदो ठे, ते शायकी उत्पन्न थायठे वारु ? चैतन्यने उत्पन्न करवानी शक्ति
कया नूतमा ठे ? चैतन्य कयानूतना अंसथकी उत्पन्न थयुं ? ते कहो. पांचे महा
नूत पोते जड ठे, ते चैतन्यने केम करी शकशे ? माटे ए पाच महानूतनुं समेल
न जीवनी उत्पत्ति कशे ठे एम तमे कस्यु ठे ते पण संज्ञवे नही, केमके, समेलन
कोई एवो पदार्थ नथी के जेथी कोई पदार्थ उत्पन्न थई शके माटे जीवनी उत्पन्न
करनारो कोई नथी, पण ए तो अनादि पच महानूतथकी जुदोज ठे दोहा, जिनवच
नामृत पान करि, पामो अमर स्वरूप, जीव अनादी अनुभवो, ए ठे शीख अनूप. १

३ नास्तिक.- सर्व जाणो ठे के जीव ते शाश्वत पदार्थ ठे, तेनी उत्पत्ति केम
संज्ञवे ! ज्यारे उत्पत्ति कदेशो त्यारे नाश पण थगो. अने चैतन तो उत्पत्ति त

या नाश रहित ठे, तो चेतनलक्षणवत जीवने नूतनी उपनो कहिये ते युक्त नथी केमके पाच महानूतना अस्त्री तो मात्र शरीरनी उत्पत्ति थाय ठे.

आस्तिक— ए वात पण कटिपत ठे. यद्यपि जीवविपे तो तारा सारा विचार ज एणाय ठे, तथापि जहाशुधी जिनोक्त वचनजन्य ज्ञान नथी थयुं, तद्वाशुधी सर्व मि थ्या ठे. एक जीवने शाश्वत जाण्यो तेथी शु थयुं ' कोई अजाणना मुखथकी नव कार प्रमुख जेवा तादृश्य अहरोनो अचानक उच्चर थाय तेथी शुं तेने तेना फ लनी प्राप्ति थाय ठे ' तेम तें जीवने शाश्वत जाण्यो तेथी शुं सम्यक्त ज्ञानवान क हेवागे ' कदी नही अने शरीर पंच महानूतोथकी उत्पन्न थाय ठे, एवु जे ते कछु ते असत्य ठे. शरीरनी उत्पत्ति तो पुजलथकी थाय ठे बीजा सवादमा अस्था दिकनी उत्पत्ति महानूतनी कही ठे ते पण मिथ्याठे, केमके, अस्थि जे ठे ते पृथ्वी नो अंश नथी, पण पृथ्वीना जेवा कण ठे, रुधीर ठे तेजलनो अस नथी, पण जल नी पठे प्रवाही बिंडुधारा थाय ठे, जतराग्नि जे ठे ते अग्निनो अंश नथी, पण अग्नीनीप ठे उष्ण ठे, शाश्वोश्वास जे ठे ते वायुनो अंश नथी, पण वायुनी पठे पुरुपनो विकार ठे, आकाश ते आकाश जाजन ठे. तेम ठता शरीर पंचमहानूतोथकी उत्पन्न थाय ठे एम कहेसो तो ए पंचमहानूतोमाना पृथ्वी, अप, तेज अने वायु ए ना शरीर शाथकी उत्पन्न थाय ठे ? ए पृथ्व्यादिकपण जीवरूप ठे, अने तेथो शरीर सहित ठे. जेम काची माटी सजीवन ठे माटेज तेमा वनस्पति उगे ठे, अने जेकार नूनि अजीव ठे तेमा वनस्पति उत्पन्न थती नथी तेमज ए पंच महानूत ते सर्व सजीव तथा निर्जीव ए बन्ने रूपे ठे, माटे जो जगत उपजवाना कारण ए पाच महानूतने कहेसो तो पाचमहानूत शाथकी पैदा थया कहेसो ? माटे एनाथी शरीर अथवा जगतनी उत्पत्ति सजवे नही जीव अने जड ए बन्ने पदार्थोथी जग तनी प्रवर्ति ठे एम जाणु दोहा, आगम अगम अगाधरुत, ज्ञान लह्यो नर जे ह, बेशि वचन जिनकटपतरु, लहे चाह फल तेह ३

४ नास्तिक -- जीव तो ईश्वरना अंशथकी उत्पन्न थायठे एम जणाय ठे

आस्तिक -- जो ईश्वरना अंशथकी जीव थाय ठे तो ईश्वर पोते अखरूप ठे ते घटघटप्रते खडखड जावने पामगे ईश्वर निर्लेप ठे तो कर्मलेप सहित केमथाय ठे ? जन्मरोग जरारोग अने मरणरोग रहित ठे ते जन्मादिक सहित केमथाय ठे ? नि रावरण ठे ते सावरण केम थाय ठे ? एह्वो मूढतो जगतमा कोई नथी जे प्रधानपद मूकी अधमपद आदरे ! माटे परमेश्वरने एवी बुद्धि केम थई जे परमेश्वरपद मूकी

ने जगत वाणी जीव श्रयो. केमके सर्व मतमतांतर वाला परमपदनी वांठनाये पो तपोताना मार्गनी क्रिया करे ठे. पोताना आत्माने निर्लेपपणुं चाहे ठे तो स्वमेव ईश्वरपद जन्म जरा मरण रहितपणुं पामीने वली जन्ममरण सहित उपाधिपणुं केमआदरे ठे ? माटे ए तमारा वचन विरुद्ध जणाय ठे

५ नास्तिक:- काई नवी युक्ति कहाडीने बोले ठे. आ बीजाओनी मति तो मारी गई ठे माटे गमे तेम वके ठे जीवने कोई शाश्वत कहे ठे, ने कोई अशाश्वत कहे ठे. वगैरे जेना मनमा जेम आवे ठे ते तेम महोडेथी बोले ठे पण मर्म कोई जाणतो नथी आपणे प्रत्यक्ष अनुभव करेजुं ठे ने आवे देखीए ठेए के जीव पदार्थ उत्पत्तिवान ठे, ने कोईक समये तेनो अत पण थाय ठे. स्त्रीपुरुषनो संयोग थयाथी ते ओना रज तथा वीर्यथी माताना उदरनेविपे शरीररूप एक पिंड बंधाय ठे, ने पठी नियमित समये तेमां चेतना शक्ति आवे ठे, तेने जीव कहे ठे. वली शरीर काई रो गादिकने वश मरण पामे ठे, त्यारे जीव पण तेनी शाये नाश थाय ठे, ए प्रत्यक्ष वात ठे. हाथना कांकणने आरीछुं शमारु जोये माटे जीव पदार्थ कोईकाले न वो पैदा थाय ठे, तेथीजीवनी आदि ठे एम जणाय ठे

आस्तिक.- जाई, तु तो वली बधाथी दाह्यो देखाय ठे ! चेतननी उत्पत्ति तथा नाश संजवे नही. कर्मना वशे जीवने जन्मांतर थाय ठे, तेथी नवुं शरीर धारण करे ठे, पण जीव नवुं थतुं नथी वली शरीरनो नाश थयाथी जीवनो नाश पण थतो नथी. जीव तो बीजा शरीरने धारण करे ठे. तेम ठता जो बधारे आग्रह करी श, तो आ मारा प्रश्ननो उचर आप के, जीव कई वस्तु पलटीने तेमांथी उत्पन्न थाय ठे ? अथवा कई वस्तुनो परिणाम ठे ? केमके कारण विना कार्यनी उत्पत्ति थाय नही एवो नियम ठे, एटजुं समजाव्या ठता पण जो नही मानीश, तो तु पोते जीव नथी पण जड ठे एवुं ठरजे त्यारे जडनी साथे कोण माथाकूट करे !

६ नास्तिक - कदाच जड वस्तुनो परिणाम जीव अने जीवनो परिणाम जड थाय ठे, एम कहीए तो काई दोष आवे के ? अघटितघटनापटीयशी माथा ठे, ते मा बधु सजवे ठे माटे अमे तो एम मानीए ठेए के, जड वस्तु बदलीने तेथी जीवनी उत्पत्ति थाय ठे

आस्तिक:- जाई, ए तमारुं बोलवु केवल अविचारजुं ठे, एम तो कोई अज्ञानी पण माननार नथी जे जड वस्तुथी जीवनी उत्पत्ति थाय, एक स्वभाववाला पदार्थ थी बीजा स्वभाववाला पदार्थानी उत्पत्ति थाय नही एवो नियम ठे. जेम के, मा

टीना पिंमथकी पट थाय नही अने तनुना पुजथकी घट थाय नही. तेम अजीवथी जीव उत्पन्न थाय नही अने जीवथी अजीव उत्पन्न थाय नही जे अचेतन होय तेने जड कहे ठे अने जे चेतन होय तेने जीव कहे ठे ए वन्ने पदार्थ परस्पर स्वजावे अमिलित ठे, तेम उता जड वस्तुथकी जीवनी उत्पत्ति कहेवी, एना जेवी बीजी मूर्ख ता कई ठे। खुं कोईक एवो मसालो हूगे के जो ते जड वस्तुमा पडे तो तेमाथी चेतन पेदा थाय ? एवी काई चीज तमे शोधी कहाडी होय तो अमने देखमावो नी ! माटे ए अज्ञानरूप अधारु हृदयमाथी कहाडी नाखो, ने खुद धर्मने अंगीकार करो दोहा खुद धर्म जन जे लहे, ते पामे पद मोहू, प्रगट वस्तुने मूकिनै, कां जन च्रमे परोहू थ

७ नास्तिक - स्वठंटीना जेवी मुखमुडा करीने बोलवा लाग्यो के, जीवने कर्म लागे ठे के नही ? ए विषे विचार करचो जोइये. अमारा मतप्रमाणे जी वने कर्म लागता नथी.

आस्तिक - तमे तो वली बधाना शिरताज थया जणाओ ठे ! पण कर्मविना काई वनतुज नथी, एम मान्याविना चालणे नही कर्मने तो सर्व अंगीकार करे ठे, एमां कोई वाधो कहाडे एवु नथी. जो कर्म न होय तो पापपुण्यनु फल थवु न जोइये, ते तो प्रत्यहू दीगामा आवे ठे, जेणे पाप कछुं ठे ते डुखी ठे, ने जेणे पुण्य कछुं ठे ते सुखी ठे, वली जो एम होय तो, दान, ध्यान, स्नान तथा पूजा प्रमुख जे सत्कर्म ठे, ते सर्व मतवालाओ शासारु करे ठे ? तमारा क ह्याप्रमाणे तेनुं फल तो काई थनार नथी, पण ते खुन कर्म जाणीने लोको आ दरे ठे ज्यारे कर्म नथी ल्यारे जन्म धारण करवानुं खु प्रयोजन ठे ? माटे जो ज न्ममरण तथा सुखडुख ठे, तो कर्म पण होवा जोइये कर्म ठे ते जीवने रज रूप ठे रागादिकथी बंधाय ठे, ने जोगव्यापठी बुटे ठे जहालगि कर्म ठे तहालगि ससारी जीव कहेवाय ठे, कर्मोनो ह्य थवाथी सुक्त थयो कहेवाय ठे माटे तमारे निश्चय मानवु जोइये ठे के जीवने अवश्य कर्म लागे ठे दोहा, कर्मथकी आ जीवने, सुख डुख सधला थाय, ठुल्य खुनाखुन जेहथी, शफल थया कहेवाय

८ नास्तिक -- तमे कहो ठे के, जीव नवातर थकी आवीने आहि उपजे ठे. ल्यारे एक नवनी वात बीजा नवमा केम करतो नथी ? जो नवातर होय तो ते नी स्मृति जरूर थवी जोइये, ते तो कोईने पण थती नथी ल्यारे नवांतर ठे एम शाउपरथी समजाय ?

आस्तिक - आगला नवनी स्मृति थती नथी ते उपरथी नवांतरनो अनाव ठे ए

म जाणवुं नही आगला जवनी वात तो रही, पण आ जवमाज मद्यादिक पदार्थना योगे, गया दिवसनी वात पूठवाथी माणस बराबर कही शकतो नथी छु ओ के, कोई मनुष्य ताडनादिकना योगे मूर्खवान थयो होय, कोई पुरुषे सुरापान कछु होय, अथवा निद्रावश थयो होय, ल्यारे गया दिवसनी स्मृति रहेती नथी, तेनुं कारण मद्यादिक पदार्थोनुं आवरण ठे तेम जीवने ज्ञानावरणी कर्मना उदयथी पूर्व जवना वातनी स्मृति थती नथी. वली जेम आ जवमाज माताना उ दरमां नाना प्रकारना दुःख सहन करेला होय, ते वात जन्म्यापठो काई कही शक तो नथी, तो जवातरनी वात केम कही शके ? माटे जवातरनी वात तो विशेष ज्ञानीविना बीजो कोई जाणी शकेज नही, एम समजवु दोहा, ज्ञानावरणी कर्मथी न वविस्मृति थइ जाय, विशेष ज्ञानी कहि शके, पूर्व जन्म महिमाय ६

ए नास्तिक.—अजिमानयुक्त मुझा करीने बोले ठे—तेम एम मानो ठो, के जीवने कर्मनो लेप लागे ठे ने वली एम पण कहो ठो के, जीव वास्तविक स्वरूपे शुद्ध ठे ल्यारे जे शुद्ध होय तेने लेप केम लागे? माटे जीव शुद्धज ठे, तेने कोई कर्मनो लेप लागतो नथी एम मानवु जोइये

आस्तिक—हुंकरामांज समाधान करे ठे के, यद्यपि जीवतुं वास्तविक स्वरूप शुद्ध ठे, तथापि शुंजाशुंज कर्मने योगे तेने लेप लागे ठे, तेथीज जीव बंध कहेवाय ठे अने जेने कर्मनो लेप नथी, ते मुक्त कहेवाय ठे. मुक्ति तो सिद्धता पाम्याविना संज वेनही अने जहासुधी मुक्तिनो अनाव ठे, तहासुधी बंधनी कल्पना अथवश्य कर वी जोइये ते बंध जीवने अनादि कालथी चाल्यो आवे ठे जेम धानने तूस ला गेलाज होय ठे तेम जीवने कर्म अने कर्मजन्य शरीर लागेलुंज होय ठे जेम धानने तूस लागवानुं कारण ओतरा होय ठे तेम जीवने कर्मबंध लागवानुं कारण मिथ्यात्व तथा रागद्वेषादिक होय ठे जेम धान्यमाथी तूस तथा तत्संबंधी ठो तरारूप बंध हेतु पदार्थना अनावथी शुद्ध कण देखाय ठे, तेम जीवमाथी मिथ्यात्व तथा राग द्वेषादिक कर्मबंध हेतुनो अनाव थयार्थी शुद्ध निर्मल थाय ठे जेम अनाजनो शुद्ध थयलुं टाणुं उगे नही. तेम जीवपण शुद्ध निर्मल थयार्थी जन्ममरण पामे नही दोहा, कर्म लेपना योगथी, बंध जीवने होय, कर्म खपे मुक्ती लहे, जन्म मरण नहि कोय. ७

१० नास्तिक—उभा विचारमां पडेला जेवी मुझाथी बोलवा लागे ठे. कर्म पोते तो जड पदार्थ ठे. तेथोनो जीवनी साये स्वतंत्र संबंध संजवे नही. कोई पण प्रेरक होवो

जोये. माटे ईश्वरेच्या जीवने कर्म बंध थाय ठे; अने तेज प्रेरक ठे एम जाणवु
 आस्तिक - लगारेक हास्य करीने बोले ठे ईश्वरे पोताना अंशरूप जीवने
 उत्पन्न कखा ठे तेथी जीव ईश्वरनो अंश कहेवाय, ए उपरथी जीव तथा ईश्वरनो
 अंशाशीनाच संबंध तमारा कहेवा प्रमाणे ठे जो ईश्वर अश ठे एम मानीए. तो
 ईश्वरना जेवो जीव होवो जोये केमके, अशाअंशीमा जेठ होतो नथी तेथी ईश्वर
 नी पठे जीव पण निर्मज ठे, एम मानवु जोये. ल्यारे एवा निर्मलस्वरूपी जीवने
 कर्म लगाडीने मजसहित करवातुं कारण शुं हतु! आपणे कोई शुद्ध वस्तु वाप
 रवाने अर्थे ज्यारे लावीए ठैये, ल्यारे जहांसुधी बने तहांसुधी तेने मलीन करवा
 देता नथी, अने स्वच्छ राखवानो घणो प्रयत्न कखा करीये ठे ल्यारे पोताना अंश
 रूप जीवने जाणी जोईने मेल लगाडवु ए ईश्वरनेविषे संजवे नही एम तो कोई
 साधारण मूर्ख मनुष्य पण करे नही, ल्यारे ईश्वर ते तेम करे! अने जे पोता
 ना अंगनो तिरस्कार अथवा नाग करे ते आत्मघाती कहेवाय तेम ईश्वरपण
 आत्मघाती कहेवाडो कदाच तमे एम कदेशो के, ईश्वर पोते पण कर्मकलंकसहित
 ठे ल्यारे जे पोते कलंकसहित होय, ते बीजानो कलंक शु मटाडी शकवानो हतो!
 अने ते ईश्वर पण शानो! माटे गमे तेवी मनकल्पना करीने निर्दोषी ईश्वरने
 दोष लागु करवो ए केटजी मूर्खता ठे! माटे ईश्वरनी इच्छाथी कोई पण अतु नथी
 जे थाय ठे ते कर्मथी थाय ठे एम जाणवु दोहा, कर्मबंध आ जीवने, ईश्वर
 इच्छारूप, कहे एम ते मूर्ख ठे, ईश अक्रीय अनूप ८

११ नास्तिक - आ जगतनी जे अहृत रचना देखाय ठे, तेनो कर्ता कोई पण होवो
 जोये केमके, एवी कृति स्वाभाविक थई शके नही तेम कर्मादिक जड पदार्थोथी
 पण जगतनी उत्पत्ति सजवे नही माटे जे जगतने उत्पन्न करे ठे, तेनेज ईश्वर
 कहिये, अने एवी लोकवदंता पण ठे, के जगत सर्व ईश्वर कृत्य ठे

अस्तिक - जगतनो कर्ता ईश्वर होय, तो सर्व प्राणीमात्रनु ईश्वर कारण थ
 यु ने सर्व पदार्थो ईश्वरना कार्य पित्त जेम पुत्रनी उत्पत्ति करे ठे तेम ई
 श्वर सर्व प्राणी मात्रनी उत्पत्ति ल्यारे ईश्वर स्वरूप अने सर्व
 पदार्थो पुत्ररूप मानवा जोये. पित्तानो प्या स्वाभाविक
 सिद्ध ठे. तेने पण सर्वना होवो जोये तो सर्व
 प्राणीमात्र तेम नथी ईश्वर, तो सर्व
 कोई प्राणी, ईश्वर जीवो

नी वर्त्तणुक जुदी जुदी दीगमा आवे ठे. एम केम कीधुं ठे? वली जगतना जी वाने प्रवर्त्तावनारो ईश्वर ठे, एम पण तमारा कहरा उपरथीज सिद्ध याय ठे ल्यारे हिंडुए गायत्री पूजा करवी, अने म्लेच्छे तेनो वध करवो, ए बुद्धि पण ईश्वरे आ पी कहेवाशे जो एवी बुद्धि देनारो ईश्वर मानशो नही, तो बीजो कोई मानवो जोइशे केमके तमारा मत प्रमाणे प्रेरणा करनारो कोई छुदोज होय ठे, अने जे प्रेरणा करे ठे ते ईश्वर ठे. ल्यारे ते बीजो प्रेरणा करनारो ईश्वर मानवो पडजे ईवी रीते ईश्वरनो ईश्वर तेनो ईश्वर इत्यादिक मानशो तो अनवस्था दोष प्राप्त थ जे वली पोते पोताने दुःखी कोई पण करतो नथी सर्व पोताने सुखनी चाहना करे ठे. तेमज पोताना संबंधीओविषे पण सुखनी चाहना करे ठे तमारा केहेवा प्रमाणे तो जे जीव नरके जाय ठे तेपण ईश्वरनो अंश, अने जे स्वर्गें जायठे ते पण ईश्वर नोज अंश ठे. एटले सुखी तथा दुःखी थाय ते सर्व ईश्वर पोतेज ठे एम उखुं ए प्रमाणे ईश्वर पोतेज संसारमा परित्रमण करेठे. ते पोताना सेवकनां जन्म मरणादिक दु ख केम टाली शके! अने जीवोने नरकथी अथवा बीजो कुगतिथी केम बचावी शके? इत्यादिक विचार करता जगतनो कर्त्ता ईश्वर नथी, किंतु स्वानाविक सिद्धठे. बोहा, ज ग कर्त्ता ईश्वर कहे, ते विद्वान न होय, ईश्वरने कर्त्तव्यनहि, स्वभाव सिद्धज जोय ए

१२ नास्तिक - जगतनी उत्पत्तिकर्त्ता जले ईश्वर न होय, एमां हुं कशो वांधो लेतो नथी पण ईश्वर सर्वव्यापक ठे के नही?

आस्तिक - जो ईश्वर सर्वव्यापक होय, तो जीव शिवाय बीजो कोई पदार्थ ज होवो न जोये. केमके, ईश्वरतो चेतनवत् ठे, ते सर्वमां व्यापक होय, तो चेतना विना कोई जगा खाली न जोइये, के जे ठेकाणे बीजो पदार्थ रही शके, अने जगतमां तो जीव अजीव पदार्थो छुदा छुदा दीगमा आवे ठे एथी स्पष्ट सिद्ध थाय ठे के, ईश्वर सर्व व्यापक नथी वली ब्राह्मण, कृत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ए चार वर्ण अतुक्रमे श्रेष्ठता तथा कनिष्ठता केम पास्या ठे! जेम के, ब्राह्मण सर्वथी श्रेष्ठ, तेनाथी कृत्रिय कनिष्ठ, कृत्रियथी वैश्य, अने वैश्यथी शूद्र कनिष्ठ ठे, अने सर्वथी कनिष्ठ चमालादिक जाति ठे, तेओमां श्रेष्ठ कनिष्ठता न थवी जोइये के मके, ईश्वर तो सर्वमां एक अने समान ठे, तेमा उत्तम मध्यमता प्रमुख संज्ञवे नही, अने उत्तम मध्यम तो प्रत्यह दीगमा आवे ठे वली बीजा पण उदाहर ए अनेक ठे, जेम के, कोई पुरुष शुन कृत्य करे ठे, ने कोई पुरुष अशुन कृत्य करे ठे, एम न थनु जोइये ईश्वर तो बधामा व्यापक ठे, तेथी शुनाशुन कृत्य शासा

जोये. माटे ईश्वरेच्या जीवने कर्म बंध थाय ठे, अने तेज प्रेरक ठे एम जाणवु
 आस्तिक— लगारेक हास्य करीने बोले ठे ईश्वरे पोताना अंशरूप जीवने
 उत्पन्न कखा ठे तेथी जीव ईश्वरनो अंश कहेवाय, ए उपरथी जीव तथा ईश्वरनो
 अंशाग्नीनाव संबंध तमारा कहेवा प्रमाणे ठरे ठे जो ईश्वर अश ठे एम मानीए.तो
 ईश्वरना जेवो जीव होवो जोये केमके, अशांअंशीमा जेठ होतो नथी तेथी ईश्वर
 नी पठे जीव पण निर्मज ठे, एम मानवु जोये. ल्यारे एवा निर्मलस्वरूपी जीवने
 कर्म लगाडीने मजसहित करवातुं कारण शु हतु! आपणे कोई शुद्ध वस्तु वाप
 रवाने अर्थे ज्यारे लावीए ठैये, ल्यारे जहासुधी बने तहांसुधी तेने मज्जिन करवा
 देता नथी, अने स्वच्छ राखवानो घणो प्रयत्न कखा करीये ठे ल्यारे पोताना अश
 रूप जीवने जाणी जोईने मेल लगाडवुं ए ईश्वरनेविपे संजवे नही एम तो कोई
 साधारण मूर्ख मनुष्य पण करे नही, ल्यारे ईश्वर ते तेम करे! अने जे पोता
 ना अंगनो तिरस्कार अथवा नाश करे ते आत्मघाती कहेवाय तेम ईश्वरपण
 आत्मघाती कहेवाशे कदाच तमे एम कहेशो के, ईश्वर पोते पण कर्मकलंकसहित
 ठे ल्यारे जे पोते कलंकसहित होय, ते बीजानो कलंक शु मटाडी शकवानो हतो!
 अने ते ईश्वर पण शानो! माटे गमे तेवी मनकल्पना करीने निर्दोषी ईश्वरने
 दोष लागु करवो ए केटली मूर्खता ठे! माटे ईश्वरनी इच्छाथी कांई पण थतु नथी
 जे थाय ठे ते कर्मथी थाय ठे एम जाणवु दोहा, कर्मबंध आ जीवने, ईश्वर
 इच्छारूप, कहे एम ते मूर्ख ठे, ईश अक्रिय अनूप ८

११ नास्तिक—आ जगतनी जे अद्भुत रचना देखाय ठे, तेनो कर्ता कोई पण होवो
 जोये केमके, एवी कृति स्वानाविक थई शके नही तेम कर्मादिक जड पदार्थोथी
 पण जगतनी उत्पत्ति संजवे नही माटे जे जगतने उत्पन्न करे ठे, तेनेज ईश्वर
 कहिये, अने एवी लोकवदंता पण ठे, के जगत सर्व ईश्वर कृत्य ठे

अस्तिक—जगतनो कर्ता ईश्वर होय, तो सर्व प्राणीमात्रनुं ईश्वर कारण थ
 युं ने सर्व पदार्थो ईश्वरना कार्य थया पिता जेम पुत्रनी उत्पत्ति करे ठे तेम ई
 श्वर सर्व प्राणी मात्रनी उत्पत्ति करे ठे. ल्यारे ईश्वर पितारूप अने सर्व
 पदार्थो पुत्ररूप मानवा जोये पुत्रनी उपर पितानो प्यार होय ए स्वानाविक
 सिद्ध ठे तेम ईश्वर नो पण सर्वनी उपर प्यार होवो जोये जो एम होय तो सर्व
 प्राणीमात्र सुखी होवा जोये. तेम तो दीवामा आवतु नथी कोई सुखी, कोई दुःखी,
 कोई पापी, कोई पुण्यवान, कोई नरकगामी, तथा कोई स्वर्गगामी वगैरे सर्व जीवो

नी वर्त्तणुक जुदी जुदी दीगामा आवे ठे. एम केम कीधुं ठे? वली जगतना जी वाने प्रवर्त्तावनारो ईश्वर ठे, एम पण तमारा कह्या उपरथीज सिद्ध थाय ठे ल्यारे हिंडुए गायत्री पूजा करवी, अने म्लेच्छे तेनो वध करवो, ए बुद्धि पण ईश्वरे आ पी कहेवाडो जो एवी बुद्धि देनारो ईश्वर मानशो नही, तो बीजो कोई मानवो जोइजे केमके तमारा मत प्रमाणे प्रेरणा करनारो कोई जुदोज होय ठे अने जे प्रेरणा करे ठे ते ईश्वर ठे ल्यारे ते बीजो प्रेरणा करनारो ईश्वर मानवो पडशे. ईवी रीते ईश्वरनो ईश्वर तेनो ईश्वर इत्यादिक मानशो तो अनवस्था दोष प्राप्त थ जे वली पोते पोताने दु खी कोई पण करतो नथी सर्व पोताने सुखनी चाहना करे ठे. तेमज पोताना संबंधीओविपे पण सुखनी चाहना करे ठे तमारा केहेवा प्रमाणे तो जे जीव नरके जाय ठे तेपण ईश्वरनो अंश, अने जे स्वर्ग जायठे ते पण ईश्वर नोज अंश ठे. एटले सुखी तथा दु.खी थाय ते सर्व ईश्वर पोतेज ठे एम ठुं ए प्रमाणे ईश्वर पोतेज संसारमां परित्रमण करेठे ते पोताना सेवकना जन्म मरणादिक दुःख केम टाली शके! अने जीवोने नरकथी अथवा बीजी कुगतिथी केम बचावी शके? इत्यादिक विचार करतां जगतनो कर्ता ईश्वर नथी, कितु स्वानाविक सिद्धे. दोहा, ज ग कर्ता ईश्वर कहे, ते विद्वान न होय, ईश्वरने कर्तव्यनहि, स्वभाव सिद्धज जोय ए

११ नास्तिक— जगतनी उत्पत्तिकर्ता नले ईश्वर न होय, एमा हुं कशो वाधो जेतो नथी पण ईश्वर सर्वव्यापक ठे के नही?

आस्तिक— जो ईश्वर सर्वव्यापक होय, तो जीव शिवाय बीजो कोई पदार्थ ज होवो न जोये. केमके, ईश्वरतो चेतनवत ठे, ते सर्वमा व्यापक होय, तो चेतना विना कोई जगा खाली न जोइये, के जे ठेकाणे बीजो पदार्थ रही शके, अने जगतमां तो जीव अजीव पदार्थो जुदा जुदा दीगामा आवे ठे एथी स्पष्ट सिद्ध थाय ठे के, ईश्वर सर्व व्यापक नथी. वली ब्राह्मण, कृत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ए चार वर्ण अनुक्रमे श्रेष्ठता तथा कनिष्ठता केम पान्या ठे! जेम के, ब्राह्मण सर्वथी श्रेष्ठ, तेनाथी कृत्रिय कनिष्ठ, कृत्रियथी वैश्य, अने वैश्यथी शूद्र कनिष्ठ ठे, अने सर्वथी कनिष्ठ चमालादिक जाति ठे, तेओमां श्रेष्ठ कनिष्ठता न थवी जोइये के मके, ईश्वर तो सर्वमां एक अने समान ठे, तेमां उत्तम मध्यमता प्रमुख संज्ञे नही, अने उत्तम मध्यम तो प्रत्यह् दीगामा आवे ठे. वली बीजा पण उदाहरण अनेक ठे; जेम के, कोई पुरुष शुच कृत्य करे ठे, ने कोई पुरुष अशुच कृत्य करे ठे. एम न थवुं जोइये ईश्वर तो बधामा व्यापक ठे, तेथी शुचाशुच कृत्य शास्ता

रु करे ठे ? ए उपरथी एवो निश्चय थाय ठे के, ईश्वर सर्व व्यापक नथी दोहा, व्यापक ईश्वर जे कहे, तेह न जाणे मर्म, जमें चूझ्या सर्व मत, विना एक जिनधर्म १०

१३ नास्तिक - ईश्वर सर्व व्यापक हो के न हो, तेनी साथे अमार जरूर नथी, पण आ जगतनो अधिपति ईश्वर ठे, अने जगतरूप तेनु ऐश्वर्य ठे, तेथीज ईश्वरताने पाम्यो ठे जे ऐश्वर्यवालो होय तेने ईश्वर कहिये

आस्तिक - जगतनुं आधिपत्य जेवानुं ईश्वरने शु कारण हतु ! अने जगतरूप ऐश्वर्य पण तेने शासारु जोइतुं हतु ! शुं जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे ते ऐश्वर्यने पाम्यो न हतो ! ऐश्वर्यविना ईश्वरता संजवे नही ए उपरथी जे जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे अनीश्वर हतो, ते उत्पत्ति करीने ईश्वरताने पाम्यो ठे, एवो तमारो आशय जणाय ठे नही वारु ! पण ए बधुं खोटुं ठे ईश्वरनेविषे एवो कल्पना करवीज नही जोये जुअो के, तमारा कहेवा प्रमाणेज जेम प्रजानी अपेक्षाये राजा कहेवाय ठे, अथवा धननी अपेक्षाये धनाढ्य कहेवाय ठे, तेम जगतनी अपेक्षाये ईश्वर कहेवाय ठे एटले जेवारे जगतने उपजावे तेवारे जगतनु ईश्वर पणु कहिये, एथी जगतनी पूर्वे ईश्वर न हतो एम थयु, अने जेवारे जगतनो प्रलय थाय त्वारे ईश्वरनो पण अनाव थईजवो जोये जो ए वात कबूल करशो तो जे कोई कालमा होय ने कोई कालमा न होय ते कृणिक कहेवाशे जो कृणिक मानशो तो बीजा घणा दोष प्राप्त थशे, माटे ईश्वरने जगतनो एवी रीते अधिपति कहेवो ते योग्य नथी दोहा, अधिपति जगनो जे कहे, ईश्वरने मतवादि, ते एकांत कनिष्ठ ठे, उचम अनेक वादि ११

१४ नास्तिक - आटजा संवाद थया, तेअोमां ईश्वरनु यथार्थ कारणपणुं कोइए कहु नथी जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे ईश्वरने एवो सकटप थयो के, मारु सामर्थ्य प्रगट करुं, ए वात वेदमा कही ठे ते आवी रीते - 'एकोह बहुष्यामि' एटले एक हुं बहु रूपे थाठं. एवा कारणथी जगतनी उत्पत्ति करी ठे, तेथी ईश्वरने कारण कह्यो ठे

आस्तिक - पोतानुं सामर्थ्य प्रगट करवानी इष्ठा तो तेने थाय के, जेनेविषे अज्ञान होय ईश्वरतो सर्वज्ञ ठे, ते शु पोतानुं सामर्थ्य जाणतो नहोतो ! मा रामा केटलुं सामर्थ्य ठे, एवो जेने सशय होय, ते ईश्वर शानो ! साधारण मनुष्य प्राणी पण पोतानुं सामर्थ्य जाणी शके ठे, तो ईश्वर केम न जाणी शके !

માટે એમ કહેવું તે મૂર્ખતા છે. દોહા, નિજ સમર્થને જાણવા, કહ્યું ઈશ જગ
એહ, કારણ વાદી જે કહે, શતમૂર્ખ છે તેહ: ૧૨

૧૫ નાસ્તિક-- ઈશ્વરે પોતાનું સામર્થ્ય બતાવવા સારુ જગતની ઉત્પત્તિ કરી છે,
એમ જાણવું જોડ્યે.

આસ્તિક-- કોને બતાવવા સારુ જગતની ઉત્પત્તિ કરી છે? જીવ અને જડ પ
પાર્યો તો ઈશ્વરેજ ઉત્પન્ન કહ્યા છે, એમ તમે કહો છો. ત્યારે બીજો કોણ જગતની
પૂર્વે હતો કે, જેને દેખાડવા સારુ ઈશ્વરે આ જગતની ઉત્પત્તિ કરી છે? માટે એ
વાત પણ અસત્ય છે. દોહા, બીજાને દેખાડવા, પોતાનું સામર્થ્ય, જગ ઉપજા
વ્યું ઈશ્વરે, એમ કહે તે વ્યર્થ. ૧૩

૧૬ નાસ્તિક-- જેમ માણસ સવારમા ઝઠી વસ્ત્રાદિક પહેરીને આરીસામાં પોતાનું
સ્વરૂપ દેખે છે, તે સારું દેખાય તો આનંદિત થાય છે, તેમ ઈશ્વર પણ પોતે પોતાનું
સ્વરૂપ જોવાસારુ આ જગતરૂપ શૃંગાર કરી પોતાનું રૂપ વિસ્તારીને દેખે છે, એમ
જાણવું જોડ્યે.

આસ્તિક-- માણસ પોતાનું રૂપ આરીસામાં જુવે છે, તેનું કારણ એ કે, મારું રૂપ
સારું દેખાડો નહી, તો લોકો હાશી કરડો, અપવા કોઈ સ્વોડ કાહાડડો, તેમ ઈશ્વરે
બીજા કોના નયથી પોતાના રૂપનો વિસ્તાર કહ્યો છે? ઈશ્વરના જેવો બીજો ઈશ્વર
કોઈ છે નહી; ત્યારે જોનારો કોણ! માટે એ વાત પણ જૂઠી છે. દોહા, પોતે જોવા
આપને, રચ્યો જગત આ ઈશ, કોના નયથી તે કહો, મતવાદી તજી રીશ ૧૪

૧૭ નાસ્તિક-- 'એક એવહિં ચૂતાત્મા, ચૂતે ચૂતે વ્યવસ્થિત, એકથા બહુથા ચેવ,
દ્રશ્યંતે જલ ચડ્વત્' એવી રીતે આત્મા એક ઠતાં સર્વ પ્રાણીમાત્રમા જુદો જુદો દી
વામાં આવે છે, જેમ ચડ્મા એક ઠતાં અનેક જલસ્થાનકોમા પ્રતિબિંબ રૂપે જુદો
જુદો દીવામાં આવે છે, તેમ ઈશ્વર એકજ છે પણ ઘટ ઘટમા જુદો જુદો દેખાય છે
એટલે ઈશ્વર બિંબ છે ને સર્વ જીવ પ્રતિબિંબ છે, એમ જાણવું

આસ્તિક-- જેમ એક ચડ્માના અનેક પ્રતિબિંબો હોય છે, તે જેવો ચંડ્મા
હોય તેવા દેખાય છે. તથા કાચના જુવનમા એક મનુષ્ય ઠતાં અનેક પ્રતિબિંબ
રૂપે દીવામા આવે છે. તેમાં મૂલ આઠતિથી, જુદી આઠતિ દેખાતી નથી
જેમકે, બીજથી તે પૂર્ણિમાશુધી ગમે તેવી ચડ્માની આઠતિ હોય, તેવો પ્રતિબિંબ
દેખાય છે, તથા કાંચ જુવનમાં મનુષ્યની જેવી આઠતિ હોય તેવીજ તાદ્રશ્ય દે
ખાય છે. કાણો હોય તો કાણો દેખાય, આંધલો હોય તો આંધલો દેખાય; વગેરે

विवना जेवोज प्रतिविव देखाय ठे तेम ईश्वर सर्व प्राणीओमां सरखो देखातो नथी कोई सुखी, कोई दुखी, कोई पापी, कोई पुण्यवान वगैरे अनेक प्रकारे देखाय ठे. ल्यारे ईश्वरना प्रतिविव केम सजवे ? जे प्रतिविव होय, ते विवना जेवोज होय ठे ? तेम तो ए नथी वली जेम चडमानो उदय थता प्रतिविव पण तेज वखते उत्पन्न थाय ठे अने चडमा अस्त थयाथी प्रतिविव पण मटी जाय ठे तेम ईश्वर अने जीवोनेविपे थतु नथी ईश्वर उत्पत्ति नाश रहित ठे, तेम जीव पण हांवा जोये ईश्वर जेम अक्रिय ठे, तेम जीव पण कर्मविना होवा जोये. जेवो विव तेवा प्रतिविव होवा जोये तेम तो ईश्वर अने जीव नथी, माटे चडविव नो दृष्टात सर्वथा असत्य ठे, केमके सर्व जीव पोताना कर्मोदयथी उत्तम मध्यम पणुं प्रामेठे दोहा, विव अने प्रतिविवता, ईश्वर जीव प्रमान, चड विववत ए नही, तेथी सत्य न जान. १५

१८ नास्तिक - जीव वर्णादिके करी सहित ठे, एम मानवुं जोये

आस्तिक.- जीव वर्णादिके करी रहित ठे, अने चेतन लक्षणवत ठे, अने कालु, रातु, नीलु, पीलु, तथा धोलुं ए पाच वर्ण, सुगंधि तथा दुर्गंध ए वे गंध, तीखुं, कडवु, कशायलुं, खाटुं तथा मीठुं ए पांच रस, शीत, उष्ण, शिथ, लूखुं, करकश, मृड, गुरु, तथा लघु ए आठ फरस, अने परिममल, व्रत, त्रयाश, चउरस तथा आयतन ए संस्थान प्रमुख सर्व जड पदार्थना गुण ठे, ते चैतन्यमा नथी चेतन नो आकार शरीरने आश्रये ठे जेम पाणीनो आकार जलाशयथी जणाय ठे तेम चेतननो आकार पुज्जथी जणाय ठे

१९ नास्तिक.- जीव कर्मोने केम ग्रहण करतो हरो वारु ?

आस्तिक - जेम वखना ततु ते वखना अश ठे, तेम जीवना प्रदेश ते जीव ना अंश ठे; जेम वखांतर्गत ततुना सूक्ष्म ततु ठे तेम जीवना पर्यायठे जेम वखनो वरण तेम जीवनु सदलक्षण ठे जेम वखने मेल लागवानुं कारण, तेमजीवने मिथ्या त्वादिक हेतुये रागद्वेष आश्रवे कर्मरूप मेल लागवानुं कारण ठे जेम वखनो मल टा लनार धोवी तेम पोताना अंतरनो मल टालनार आत्मा पोते ठे जेम वखने सावुये करी मल टले ठे, तेम जीवने गुणध्यानेकरी कर्मरूप मल टले ठे. जेम वखने अग्नि, तेम जीवने तपस्या ठे इत्यादिक कखाथी कर्मनो ह्य थाय ठे. जे जीव कर्म सहित होय तेने कर्म लागे, पण कर्मरहित होय, तेने नवा कर्म लागे नही जेम सूत्रका तनारी नाडी काते, तेमाथी थोडी बाकी रहे, ल्यारे तेनी साथे बीजी वलगा

हे, पण पहेली होयज नही, तो तेनीसाथे बीजो संबंध साथी करे। तेम जीव पण अनादिनो कर्मसहित ठे, अनादि जीवतुं एहवुंज स्वरूप चाळुं आवे ठे, माटे जहांगुधी कर्म सहित ठे तहांगुधी नवा कर्म पण ग्रहण करे ठे, पण प्रथमथी अमुक वखतेज जीव नवां कर्म ग्रहण करी कर्ममल सहित थयो, एवी आदि नथी.

१० नास्तिक--जीवने कर्म क्यारे लागं ठे? कर्म लागवानी कोई पण आद्य जोये जे पदार्थनो अंत थतो होय, तेनी आदि पण होवी जोये. ज्ञाने करी कर्मोनो अंत थाय ठे एम तमेज कहो ठो. त्यारे आद्य पण कबुल करवी पडजे, ते आदिनो समय कह्यो ठेरवशो? केम के, जीव प्रथम निर्मल होय तोज तेने कर्मरूप मल लाग्यो कहेवाय.

आस्तिक --ए वचन दूषण सहित ठे केमके, जीव प्रथम ज्यारे निर्मल हतो त्यारे तेने कर्म लागवानी परिणाम केम थया? जे निर्मल होय ते पोताने मल सहित थवानी इबा करे नही तेम ठता जीवे कर्मोनी वांढा केम करी? माटे जीव अनादिनो कर्म सहित ठे. जीवनेविपे कर्म स्वभावे अनादिसि-६ ठे. दोहा, आदि जीव निर्मल हतो, पठि बलग्यां ठे कर्म, एम कहे ते ना लहे, जिन वचनोनो मर्म. १६

११ नास्तिक--सर्वमां व्यापक आत्मा एक ठे, अने शरीरो जुदां जुदां ठे, एम मानवु जोइये.

आस्तिक --जो बधामां आत्मा एक होय तो माता, पिता, स्त्री, पुरुष, चाई, वेन, पुत्र, राजा, प्रजा, चोर, साडुकार, चमाल, कृत्रिय, उंच, नीच, नरक, देवता, पुण्यवान, तथा पापी इत्यादिक निन्न निन्न केम देखाय ठे? सर्वमा आत्मा एक होवाथी तेज देखायु जोइये, अने एके कीधेलुं पाप सर्वने लागतुं जोइये, ते मज एके कीधेला पुण्यना सर्व जागीदार थवा जोइये, एकना मुक्त थयाथी सर्व मुक्त थवा जोइये, प्रत्येक माणसतुं जुडं जुडं अनुष्ठान निष्फल थवुं जोइये, तेम तो थतु नथी जे करे ठे ते जोगवे ठे; ए कहेवत प्रमाणो बधा आत्मा निन्न निन्न देखाय ठे. माटे सर्वमा एक आत्मा व्यापकपणुं कहेवु ते समीचीन नथी, एम जाणतुं दोहा, आत्म सर्वमां एक ठे, निन्न निन्न था देह; एम कहे एकात मत, असत कहीजे तेह १७

१२ नास्तिक --सर्व कार्य अने अकार्य ईश्वरनी इबारूप ठे, अने ईश्वरनी इबाथीज सर्व थाय ठे, एम जाणतुं जोइये.

आस्तिक -- जो एम होय, तो जन्म धारण करवामां मातापितातुं गुं काम ठे ? अने विप खाधाथी मरण थाय ठे, तेमा विपतुं सु वाक ठे ? तेमज जो जनथी कुधानी-निवृत्ति, पाणीथी तृपानी निवृत्ति, अग्निथी शीतनिवृत्ति, वली तापथी खेदोत्पत्ति, घर्षाथी धान्योत्पत्ति, द्वेषथी वैरोत्पत्ति, नम्रताथी स्नेहोत्पत्ति, चोरी कखाथी ताडन, यारी थकी निर्लज्ज, पापथकी नरक, पुण्यथकी स्वर्ग, इत्यादि सर्व कारणो अने कार्यो व्यर्थ यज्ञे अने सर्व वस्तुओ स्वगुण रहित कहेवी जोऽज्ञे. राग करनारो स्नेही नही, तेम द्वेष करनारो वैरी नही कहेवाज्ञे उ पकार प्रति उपकार करवानी काई जरूर रहेज्ञे नही अने पाप पुण्य फलरहित यज्ञे. केम के, सर्व कार्य करवानु मूल कारण एक ईश्वर इह्ना थई, माटे सर्व ईश्वर इह्नारूप ठे, एम कहेबु ते समीचीन नथी तमारा कहेवा प्रमाणे पुण्य पापतुं कर्ता पण ईश्वर अने जोक्ता पण ईश्वर थयो दोहा, ईश्वर इह्नारूप आ, कृत्य सर्व जगमांहि, एम कहे शुणता टले, सारासार न कांहि । ६

२३ नास्तिक -- आत्मा पच नूतो थकी थयो ठे, ए वात असत्य नथी, किंतु साची ठे, एतुं अमने जणाय ठे

आस्तिक. - नूत शब्दो अर्थ त्रणे कालमां अस्तित्व थाय ठे एटले जे ठे ठे ने ठे, तेने नूत कहिये नूतनो तो कोई काले ठेद थतो नथी, माटे ए अस्तित्वरूप नूतनो अश तो सजवे नही, तेम आकाशादिक पंच महानूतनो अंश पण कही शकाय नही वली पाच नूतना अज्ञे करी शरीरनी उत्पत्ति थाय ठे, ल्यारे ज्ञान अने चेतना कद्या अंशथी उत्पन्न थयां ? माटे नूत शब्द ए भ्रमजाल ठे अने चिदानंद ज्ञानरूप आत्मा तो शाश्वत ठे ते कोई समये जूनो तथा नवो थतो नथी ते जीव पूर्वोपाजित कर्म करी शरीर बाधे ठे ते जल पुद्गलनु ग्रहण ठे. तेमा नूतनुं काई प्रयोजन नथी, नूत केवी वस्तु ठे ? जीव ठे के जड ठे ? रूपी ठे के अरूपी ठे ? ईश्वराश्रित ठे के नवा प्रगट थाय ठे ? ठता रूप ठे के सयोगे थाय ठे ? ए विपे काई विचार करी शकातो नथी, माटे नूत ए शब्दज व्यर्थ ठे ते नाथी जीवनी उत्पत्ति केम मनाय । दोहा, जीव कपजे नूतथी, ए मत ठे भ्रम रूप, जीव चिदानंद सत्य ठे, अनादि जाव अनूप । ७

२४ नास्तिक -- तमारा कद्या प्रमाणे जीवने नवातर थाय ठे. नवनी प्राप्ति कर्मानुसार ठे जेवा कर्मा कखा होय तेवा नवनी प्राप्ति थाय ठे शुन कर्मतुं फल सारो नव ठे, अने अशुन कर्मतुं फल नरशो नव ठे ते वात सत्य ठे, परंतु को

ई जीवने एक खंडमां शरीर मूकीने बीजा खंममां बीजुं शरीर धारण करवु पमे तो एटलो दूर जतां तेने केटलो वखत लागतो ह्यो ! अने कोई जीवने एक शरीर मूकी तरत तेज गाममा उपजवु होय, तेने कोई दूर जवुं पडतु नथी, तेथी काई वधारे वखत लागतो नही ह्यो, पण जेने दूर जवु पडतुं ह्यो तेने रस्तामा घालता वधारे कखत लागतो ह्यो नी !

आस्तिक - नजीक अथवा दूर नवांतर करवामां वधारे वखत लागतो नथी, सरखोज वखत लागे ठे. जेम घाणी, रहेटीओ अथवा वारणुं इत्यादिक ज्यारे फने ठे, त्यारे तेओना माहेला तथा बाहेरना जागने फरतां सरखोज वखत लागे ठे यद्यपि अंदरनो क्षेत्र थोडो होय ठे, ने बाहेरनो घणो होय ठे, तथापि फरतां वखतमां वधघट यती तथी. वली जेम दीपकने शलगवीए ते कृणमांज प्रकाश करेठे वचमां काई अंतर पडतो नथी, तेम जे वखते एक नव मूके के लागलोज बीजो नव पामे ठे; तेमां लगार पण अवकाश रहेतो नथी ते नव पठी दूर देज धारण करवो होय, के नजीक देशमा धारण करवो होय, गमे त्यां नव धारण कर मांवामां वखतनो वार फेर यतो नथी

१५ नास्तिक - जीवने कर्म केवी रीते लागे ठे.

आस्तिक - आत्माना गुनाछुन परिणामथी जीवने कर्म लागे ठे जो गुन परिणाम होय, तो सारा कर्म लागे ठे, अने अछुन परिणाम होय, तो नरणा कर्म लागे ठे. अने तेना फल पण तेवां थाय ठे. कर्मने काई ज्ञान नथी. जे आ जीवे पाप कछुं माटे हुं एने पापरूप कर्म थई लागुं.

१६ नास्तिक - कर्म तो जड ठे. तेथी तेओमां ज्ञान शक्ति नथी त्यारे जीवे नर शां अथवा सारा कर्मां कखायी पाप अथवा पुण्यरूप परिणाम केम थाय ठे ? ए परिणाम तो ज्ञानविना थाय नही. तेथी एवुं जणाय ठे के कर्म लागवामा ईश्वर हेतु ठे. कर्म करवापणुं जीवने ठे; ने तेतुं फल देवु ईश्वरने ठे

आस्तिक - कर्म लागवामां ईश्वरतुं काई काम नथी. कर्मनो एवो स्वभावज ठे के परिणामने पामतुं. जेम कोई पुरुष विषमिश्रित जोजन करे, ते मरण पामे ठे मरवु ए विषनो परिणाम ठे, पण विष जन्म पदार्थ-होवाथी तेने एवुं ज्ञान नथी के मने जे खाय ठे, ते मरीजायठे; तेम ठतां तेथी तेवो परिणाम थायठे के नही ! वनी जेम कोई पुरुष मिष्टान्न जोजन करे, तेथी पुष्ट थाय ठे पण ते जोजन एम नथी जाणतु के. मारायकी आ शरीरनी पुष्टी थाय ठे. तेम ठतां नेनो परिणाम

तेवो थाय ठे एतो एनो स्वभाव ठे तेम गुणागुन कर्मोंने यद्यपि ज्ञान नथी, तोपण तेओनो एवो स्वभावज ठे, के फलरूपे पोते परिणामने पामबु कर्मो नो एवो स्वभावज ठे के गुन कखाथी पुण्यकर्म बंधाईने उत्तम गतिनी प्राप्ति थाय ठे, तेमज अगुनविपे पण जाणी लेबु एवो कर्मोनों अनंत कालनो स्वभाव ठे. वली जेम चमक पाहाण लोहने पोतानी तरफ खेंची लिये ठे, तेतुं चमकने काई पण ज्ञान नथी, के हुं लोहनुं आकर्षण करुंहुं, परंतु ते क्रिया स्वाभाविक थाय ठे तेम जीव गुणागुन परिणामना उपयोगे गुणागुन कर्म आकर्षण करी आत्मापणे लोलीनूत करे ठे, एवो अनादि कालनो स्वभावज ठे. एमां ईश्वरनुं काई काम नथी

१७ नास्तिक - जीव एवो कोई पदार्थज नथी, बहु शून्यज ठे. त्यारे गुणागुन कर्मो ते कोने लागवाना हता ! ए बधो जर्म ठे. जीव कोई ठेज नही

आस्तिक - नाई, तूं पाको बुद्धिनो देखाय ठे. जीवनेज उराडी नाख्यो एटले बधी खटपट चूकी गई के नही वारु ! अरे मूढमति विचार तो कर, के जो शरीरमा जीव न होय, तो शरीरनी चेष्टा केम थई शके ? शरीर तो जन्म ठे, तेमा चेतन शक्ति न होय तो क्रिया केम थाय ? जो आत्मा न होय तो आ शरीर, हाथ, पग, कान, नाक, जीन, आख, मन, बुद्धि, धन, ग्रान्य, राज्य, तथा संपत्ति प्रमुख सर्व पोताथी जुदा पदार्थोमां शरीर मारुं ठे, धन मारुं ठे, वगैरे एवो बोलनार कोण ठे ! मारुं ठे, एवं कहेनार पदार्थथी जुदा होय ठे एम तो कोई पण कहे तो नथी के हुं शरीर हुं, हुं मन हुं वगैरे, माटे शरीरादिक सर्व वस्तुनो निन्न व्यवहार होवाथी जीव ठे एवु ठरे ठे शरीरमाथी जीव नीकली गया पनी विचार करहुं, बोलबु, तथा चालबु वगैरे काई पण क्रिया थई शकती नथी तेथी शरीर थकी जीव जुदा कोईक ठे एम नकी जाणजे वली शरीरमा ज्यारे जीव ठे त्यारे बोले ठे, ने घट पटादिक पदार्थोमां जीव नथी त्यारे बोलता नथी. तेथी जीवइ व्य ते शरीर थकी निन्न ठे एवं शिइ थयु तेने ठेज नही एम तुं केम माने ठे ? जो जीव न होय तो व्यवहार केम चाले ? माटे जीव अवश्य ठे एम जाणबु

१८ नास्तिक - जीव समय समयनेविपे नवो थाय ठे हमेश एक जीव रहे तो नथी

आस्तिक - ए वात तदन जूठी ठे जीवत्व नबु कोई समये थतुज नथी जीवना पर्याय इव्य, क्षेत्र, काल, जाव, तथा उदय जावाश्रित तो जुदा जुदा

होय ठे, पण जीवपणुं नवुं होतुं नथी. जीव समय समय प्रत्ये जो नवो थ तो होय, तो बालपणनी वात यौवनावस्थामां शान्तली न जोये. तथा गत सम यनुं शान्तलेलुं, दीतेलुं, नोगवेलुं, लीधेलु, तथा दीधेलुं प्रमुख काई पण स्मरणमां आयुं न जोये. तेनी स्मृति तो थाय ठे. तेथी जीव तेहिज ठे. जो जीव नवो थतो होय तो एक जीवतुं करेलुं कार्य बीजो जीव केम जाणी शके ? ए तो प्रसिद्ध वात ठे तेथी जीव इव्य सदा सरखुं ठे, एमां कोई काले पण फेर पडतो नथी, एम जाणवुं.

३६ नास्तिक.— जीव जे नाना प्रकारनां कर्मो करे ठे, तेथोनां करावनार ईश्वर ठे ईश्वरनी प्रेरणा विना जीव थकी कर्म थाय नही, एम जाणवुं

आस्तिक.— जो जीवने कर्म ईश्वर करावतो होय, तो कर्मनो कर्त्ताज ईश्वर ठरजे, केमके जे क्रीयानो प्रेरक होय ठे, तेज कर्त्ता होय ठे. जो ईश्वर कर्त्ता ठेरा वखुं तो जे कर्त्ता होय ठे, तेज जोक्ता होय ठे ए रीतथी ईश्वरने जोक्तापणुं पण आवजे जोक्ता ईश्वर थयाथी पापपुण्य ईश्वरनेज लागे ठे, एम मानवुं पडजे जेम कोई पुरुष पोताना हाथमा खड्ग लईने बीजाने मारे. तेनुं पाप खड्गने लागतु नथी, पण ते खड्गना मारनारने लागे ठे. तेम पुरुषे कीधेलुं पाप पण ईश्वरने लागनार ठे कर्मनो करनार तो खड्गना जेवो ठे; तेने कर्म लागवा न जोईए. तेथी कर्म ईश्वरने लागे ठे एम सिद्ध थयु. एम माननारने एटलुंज पृतवुं जोये के, कर्मनो कर्त्ता तु नथी, तेम कर्मनो जोक्ता पण तूं नथी, कर्त्ता जोक्ता ईश्वर ठे त्यारे सर्व मनुष्यो पोतपोताना मत प्रमाणे क्रिया करवानी बुद्धि केम करेठे ? मद्य माशनो त्याग, अने स्नान, संध्या, स्त्रोत्र, तप, जप, वगैरे शास्तरु करेठे ? पोताने काई पाप प्रमुख लाग्युहोय तो तेनुं निवारण शास्तरु करे ठे ? अकार्य शास्तरु करता नथी ? पाप थकी शास्तरुं बीहेठे ! कर्त्ता शो जोक्ता एम शास्तरुं कहे ठे ? पोते करे ठे, ते नोगवे ठे, तेम ठता वली कहे ठे के हे प्रभु, मारा पाप टालो प ए एम नथी कहेतो के प्रभु तमारा पाप टालो. जे चोरी करे तेने दंड थाय ने जे वेद करे तेना प्राण जाय अने हिंसा करे ते अवश्य नरक गामी थाय. वगैरे ए सर्व व्यर्थ मानवा जोइजे. माटे कर्त्ता जीव ठे ईश्वर नथी एम मानवु जोये

३७ नास्तिक.— अमे मान्य करेलुं ईश्वर सर्वज्ञ ठे एम जाणवु अने शास्त्रोमा पण "सर्वज्ञो ईश्वर." एवा घणा वाक्यो दीगमा आवे ठे, माटे ईश्वर वखुं जाणे ठे.

आस्तिक—यद्यपि तमे कहोठो के ईश्वर सर्वज्ञ ठे, ए वात सत्य ठे तथापि ते सर्वज्ञतानी रीत काईक जूदीज ठे जे तमे मानो ठो ते ईश्वर सर्वज्ञ नथी. अ मे एटलंज पूठीए ठैए के, ज्यारे ईश्वर सर्वज्ञ ठे, त्यारे पोताने दुःख देनारा राव णादिकने तेणे शा सारु उत्पन्न कखा ! ज्यारे ए राक्षसोनी उत्पत्ति पोते कीधी त्यारे पोतानेज युद्ध करबु पड्युं ए उपरथीज विचार करो के जो ईश्वर सर्वे जाणतो होय, तो एवी जूल केम करे ? जो एम कहिये, के राक्षसादिक प्राणी ओ ईश्वर थकी अजाणमा उत्पन्न थया जणाय ठे, तो ईश्वरनेविपे अज्ञानरूप दूषण प्राप्त थगे अने जो एम कहीशु के जाणी जोईने उत्पन्न कखा ठे, तो ईश्वरना नकने पण सग्राम उचित नथी, तो ईश्वरने ते केम सग्राम कार्य उचित थयो ? माटे एम कहेबु तदन असन्नवित ठे

३१ नास्तिक—ईश्वर ज्यारे जगतनो संहार करेठे, त्यारे पोते प्रागवदनं पांड डापर पहीठे ठे, अने ज्यारे जगतनी उत्पत्ति करवानो सन्नव होय, त्यारे जागृत थाय ठे, ए वात तो साची ठे के नी ?

आस्तिक.—ए वात ते वली जूठी होय ! पण हु तमने पूढुं बु के ते प्राग वड अधर आकाशमा रहे ठे के, पृथ्वी उपर होय ठे ? तेमा अधर रहे ठे, एम तो तमे कबूल करशो नही, केम के तमे वली एम पण मानो ठो के, बधुं जलमय थई जाय ठे, ने तेनी उपर मात्र प्रागवदन देखाय ठे, त्यारे पृथ्वी पण कबूल करवी पफगे जो पाणी, पृथ्वी, तथा प्रागवदन ए बधा पदार्थ महा प्रलय थया पठी पण रहे ठे, त्यारे संहार ते ज्ञानो कखो कहेवाय ? जो एम होय तो सर्व पदार्थों शाश्वत थया एम जणाय ठे फरी ज्यारे ईश्वरे सृष्टि उत्पन्न करी, ते प हेला कखा प्रमाणे पाच महा चूते तथा, प्रागवड हतो त्यारे नबु ते शु कीधुं ए वगैरे विचार कखाथी एम जणाय ठे के, ए बधा गपाटा ठे जेना मनमा जेम आव्युं, तेणे तेम शास्त्रोमा लखी नाखुं जणाय ठे

३२ नास्तिक—ब्रह्मा, विष्णु, अने महेश ए त्रणे सर्वज्ञ ईश्वर ठे, एम अमे मा नियो ठैये

आस्तिक—तमे गमे तेम मानो तेमां अमारुं शु गयु ! अमे तो जेम हगे ते म मानशु तमे कखा ते त्रणे जो सर्वज्ञ होय तो अज्ञानने केम अंगीकार करे ! जुवो के, महादेवे पोताना पुत्र गणेशनुं मायुं कापी नाखुं तेनी खंबर पो ताने केम न पडी ? रावण सीतानुं हरण करी गयो ते वखते राम सर्वज्ञ ठता

पशु, पक्षी, तथा वृद्ध प्रमुखने केम पूढतो हतो ? अने ब्रह्मा पासेधी राक्षसो वेद केम चोरी लई गया ? ए रीते ब्रह्मा, विष्णु अने शिव अज्ञानी ठरे ठे. एवा अज्ञानी तेने ईश्वर केम कहिये ?

३३ नास्तिक -सर्वे योनिओमां मनुष्य योनि उत्तम ठे एवुं शास्त्रोमां कस्यु ठे ते सत्य ठे. अने वली अनुभव सिद्ध पण ठे.

आस्तिक -ना कोणे कस्यु ठे ? मनुष्य योनि तो उत्तमज ठे. परंतु तेमे तेम अत.करण पूर्वक मानता नथी देखाता. महोडाधीज मात्र कहो ठो. केम के तमारे तो एथकी पण बीजी उत्तम योनिओ मानवी जोइये ठे. जे योनिने ईश्वरे अंगीकार करी ठे, ते योनि तमारे पण सर्वोत्कृष्ट मानवी जोइये मनु, कनु, तथा वराह, प्रमुख योनिओमां ईश्वरे अवतार लीधो ठे, ते योनिओ मनुष्य योनिकरतां उत्तम मानवी जोइये जो मनुष्य योनिज उत्तम होय तो ईश्वर पोते बीजी योनि केम धारण करे ? माटे तमारा बोलवा प्रमाणे तो मनुष्य योनि करता वराहादिक योनि उत्तम जणाय ठे. ईश्वर ज्यारे पशुमां अवतार लिये ठे, त्यारे पशुमुखी, पशुवाही, तथा पशुरूपी होय ठे. तेने देव मानवो ते अयोग्य ठे आहार, अग्नि, आयुध, असवारी, तथा आवाश ए पाच पदार्थ ईश्वरना नक्तने पण त्याग करवा कस्यु ठे, तो ईश्वर पोते तेतुं केम ग्रहण करे ? माटे वराहादि योनि धारण करनारो ईश्वर मानो, तो मनुष्य योनि करता ते योनि उत्तम कहेवी जोइये, जो तेम नही कहेणो तो ईश्वरने अपमान लागशे

३४ नास्तिक -शरीरनो त्याग करीने जीव परलोके गया पठीपाठो आ लोक मा केम आवतो नथी ? जे ठे तेने तो आर्युं जोइये

आस्तिक -आ संसारनो संबंध मटी गया पठी जीवतुं फरी आववु थतु नथी, तेतुं कारण कर्म ठे जीवतुं आवतुं जतुं कर्माधीन ठे ज्यां कर्म लई जाय त्या जीव जाय ठे. अने जे जे जव पामे ठे ते ते जवना कार्य करे ठे आ जवमा पण हमेश एक रीत रहेती नथी जेम के बालपणानी प्रीति होय ते कोई काले मटी जाय ठे घणा काल लक्ष्मीनो संबंध ठता कोई काले तूटी जाय ठे त्यारे दारिद्र्य आवे ठे कोई कर्मना योगे प्राणी बंदीखानामां पडे, ते वारे तेनो अत्यंत स्नेही होय ते पण पासे आवतो नथी. कोई पुरुष एक स्त्रीउपर बीजी करे त्यारे प्रथम स्त्रीनी उपर प्रीति रहेती नथी, अने पूर्वनो संबंध पण तूटी गया जे बु थाय ठे. तो पूर्व जन्मना संबंध ते केम याद आवे ? ज्ञानावरणी कर्मना यो

गे बीजा जवनु स्मरण पण थतु नथी ए विपयने मलती प्रदेशी राजा अने के शी गुरुगी प्रलोत्तररूप चर्चा ठे ते कहुं हुं

प्रदेशी राजा - मारो अधर्मी दादो नरकमां गयो ठे, ते तमारा मतप्रमाणे त्याथी आवीने मने अधर्म करतो वारे त्यारे हुं मानुं, के वात साची ठे

केशी गुरु - तारी स्त्रीनी साये कोई पुरुषने कामजोग करतो तने दीठामा आवे, ने ते तारा हाथमा आव्या पठी ते तारी वीनती करे के, मने थोडीक चार रजा आपो, तो हुं मारा कुटवने कही आवु के, कामजोग कखाथी आवु डे ख थाय ठे तो ते वात कबूल करीने तेने तू रजा आपीश ?

राजा - ना तेने एक कृण पण बुटो मूकु नही.

गुरु - तेमज तारो दोदो पण पापसची, गुनेहगार थई, नरकमा गया पठी, परमाधामी तेने केम मूके ? तेथी ते आवी शके नही

राजा - मारी दादी स्वेच्छाचारी थई, जैनधर्मने अंगीकार करीने स्वर्ग गई, ते पाठी केम कहेवा आवी नही, ने आवे तो तेने अं हरकत ठे ?

गुरु - कोई पुरुष स्नानकरी, कुच्छम तथा धूप प्रमुख लई देवनी पूजा करवा जेतो होय, तेने कोई चाम्नाल संभाशमा जवाने कहे तो ते त्यां जाय के ? एवी क दी इन्हा पण करे ?

राजा - ना ते एवा खराब स्थले केम जाय ? कदी पण जाय नही

गुरु - तेम तारी दादी स्वर्गलोकमा गई ठे, ते सेतखाना तुव्य आ मनुष्य लो कमा केम आवे ! आ लोकमा आववानी इन्हा पण थाय नही

राजा - एक चोरे चोरी करी, तेनो इन्साफ करीने तेने लोहानी कोठीमा घा ली दीथो तेनु मुख बंध करीने उपर सारी रीते कनई करावी तेमा पवन पण प्रवेश करी शके नही एनु कहुं पठी ते चोर कोठीमा मरी गयो. तेनो जीव ते कोठीना क्या रस्तेथी नोकली गयो ? तेमा तो कोई ठिड् दीठामा आव्यो नही हवे जीव ते केम मनाय ?

गुरु - मोटी शाजामा एक पुरुषने जेरी सहित घालीने तेने चोतरफ बंध करी लीधी होय, तेमा ते जेरी वगाड्याथी तेनो अवाज बाहार शनलाय ठे ते ठि ड्विना बाहार केम आवे ठे ? तेम जीव पण ठिड्विना बाहार निकली जाय ठे

राजा - एक चोरना कटका करी एक कुजमा मे जेरी राख्याहता तेनु महोडुं उ परथी सारी रीते बाधी लीधुं हतु, के जेमा पवन पण प्रवेश करी शके नही ते

केटलाक काल पठी उघाडी जोयुं, तो तेमां अनेक क्रम पडेला देखायां. ते विड्विना क्यांथी आव्यां ?

गुरु - अग्निमां लोहनो गोलो नाख्यो होय तेमां विड्विना अग्नि केम प्रवेग करेते। जे वस्तु अग्निमा नाखीए तेमां विड्वि नहोय, तो पण अग्नि प्रवेग करे ते तेम जीवनो प्रवेग थवामां विड्वनुं कांई काम नथी

राजा:- एक चोरने में ते जीवतो हतो त्यारे तोव्यो, अने मरी गया पठी पण तोव्यो; त्यारे जीव नीकली गयो ठता चारमा कांई फेर पड्यो नही तेनुं शु कारण होबु जोये ?

गुरु - जेम खाली मशक तथा पवनथी चरेली मशक तोली जोतां वजनमा फेरफार थतो नथी तेम जीव वायुरूप होवाथी ते शरीरमांथी नीकली गया पठी कांई तोलमां फेर पडतो नथी

राजा - बालक अने यौवनना शरीरमां फेर ठे पण जीवमा कांई फेर नथी. वने बाणी सरखी बोले ठे ने तेनुं शब्द पणे कानमा सरखी रीते स्वर जाय ठे, तेम ठतां उपयोग सरखो केम थतो नथी ? युवान जे क्रिया करीशके ठे ते बालकथी थती नथी तेनुं कारण शुं ते कहो.

गुरु - जेम जूनुं धनुष्य होय तेथी बाणनो उपयोग जुदी रीते थाय ठे ने न वु धनुष्य होय तो तेथी बाणनो उपयोग जुदी रीते थाय ठे, धनुष्यमा फेर होवाथी बाणनी क्रियामां फेर पडे ठे. तेम बालक अने युवानना शरीरमां फेर होवाथी जीवनी क्रिया सरखी थाय नही एटले बल वीर्य प्रमुखमा पण फेर फारथाय ठे.

राजा.-युवान अने वृद्ध माणशना शरीरमा जीव सरखो ठतां युवाननी पठे वृद्ध केम चार उपाडी शकतो नथी ?

गुरु -जेम कावडवडे चार उपाडनारो पुरुष सारी नवी कावड होय तो वधारे चार उपाडी शके ठे, ने जूनी कावड होय तो कांईक थोडो चार उपाडी शके ठे. तेम जीव तो तेज ठे पण युवान शरीर होय तो वधारे चार उपाडी शके, ने वृद्ध शरीर थाय तो थोमो चार उपाडी शके ठे.

राजा.-एक चोरने मारीने तेना अनेक खंम कीमा, पण जीव तथा जीवना रहेवानुं ठेकाणु ठीगामा आव्युं नही, माटे जीव कोई ठेज नही.

गुरु -जेम काष्टमा अग्नि रही ठे, तेम शरीरमा जीव रह्यो ठे, ते देखाय केम ? जो काष्टमां अग्नि देखाय तो शरीरमां जीव देखाय काठीअारो हमेश लाकमा

कापे ठे पण तेने अग्नि कोई वखते पण दीगमां आवती नथी. ने ते अग्निनुं र हेवानुं ठेकाणुं पण दीगमा आवतुं नथी तेम जाणी जेवुं

राजा -मने प्रत्यह जीव देखामी आपो के जेथी हु जीवने जाणुं

गुरु -तमे बादर वायु कायना जीवने जोई शकशो के ? तेने पण जोई शक शो नही तो जे अरूपी जीव ठे तेने केम जोई शकशो ?

राजा.-हाथीमा अने कीमीमा जीव केम सरखो होय ठे ?

गुरु -हाथीनुं तथा कीमीनुं शरीर महोठुं नानुं ठे, पण जीवमां अधिक न्यून ता नथी जीव वनेमां सरखो ठे

राजा - लोकमां जीव अने जड एक क्षेत्र अवगाही निरतरपणे निराबाध केम रह्या ठे ?

गुरु - जेम दूधनी नरेली कडाईमा साकर, एलची, अने केशर नाखी होय ते केम समाई जाय ठे ? दूधगुदां चारे वस्तु एक क्षेत्र अवगाही निरतरपणे केम रहे ठे ? एकज ठेकाणे चारे वस्तु अन्निक्र जावे रहेली ठे एना वर्ष, गंध, रस, फरश निरतर निराबाधपणे ठे. तेम जीव अने जड जगतमा निरतर एक क्षेत्र अवगाही निराबाधपणे रह्या ठे

३५ नास्तिक - सर्व लोकमा जीव नरपूर ठे त्यारे देखाता केम नथी ?

आस्तिक - जेम सूक्ष्म जीव सर्वत्र पूर्ण ठे ते ज्यारे दिवशे तडको पडे त्यारे घरमाना कोई बिडुदाराये थोडोएक तडको घरमां आवे ठे. ते तडका तरफ जोतां केटला एक परमाणु जेवा दीगमा आवे ठे, ते वधा सूक्ष्म जीवो ठे ते गायमा मा तडको आवे त्यारे उडता देखाय ठे, बीजी रीते देखाता नथी तेम जीव अ ने जड सर्व लोकमा नरपूर ठता उद्वस्थने देखाय नही, किंतु केवल ज्ञानरूप आ तपना योगे देखायठे अर्थात् केवल ज्ञानीज जाणी शकेठे

३६ नास्तिक - चड, सूर्य, गाय, आतप, माता, पिता, स्वर्ग, नरक, जीव, जड, घट, पट, स्तंभ, तथा कुन प्रमुख सर्व भ्रममात्र ठे, वस्तुरूप कंईजनथी

आस्तिक - जेम अंधकारमा आकाशनेविषे कोई पुरुष चाड्यो जाय, ते निरा बाधपणे जई शके ठे, पण वचमा जो जित आवीजाय तो आगल चलातु नथी ने ते कार्यमा अपराबाधक थायठे. ए प्रत्यह भ्रम के सत्यठे ? तथा कोई कोईने मारे, कूटे, दानदिये, ए वस्तु गत्ये सत्यठे, असत्य अने भ्रमजाल तो स्वप्न अने सकटपने कहिये

३७ नास्तिक.—सर्व जगतमा एकज ईश्वर ठे. इश्वर विना बीजुं काई नथी, ए म जाणवुं जोये.

आस्तिक — जो सर्व जगतमां एक ईश्वर होय, तो दाननो देनार पण ईश्वर, अने लेनार पण ईश्वर कहिये. लेनार अने देनारमां काई नेद थयो नही ईश्वरे पोते पोतानी पात्रोबी दान लिधुं त्यारे दान दीयावुं पुण्य कोने थयुं ? एथी दान तथा पुण्य व्यर्थ गयां. वली मारनार पण ईश्वर ने मरनार पण ईश्वर कहेवो जोये, तो ईश्वरे ईश्वरने माखो तेतुं पाप कोने लागुं ? धणी पण ईश्वर ने चोर पण ईश्वर, तो ईश्वरनो माल ईश्वरे चोखो कहेवाय, त्यारे चोरीनी तपाश शासार् रु करवी जोयेठे ? पुण्ये करी स्वर्गमां गयो ते पण ईश्वर, तथा पापे करी नरकमां गयो ते पण ईश्वर, त्यारे स्वर्गमां पुण्यवान जाय अने नरकमां पापी जाय, एम क हेवुं व्यर्थ ठे. ए उपरथी तमारुं बोलवु असंनवित ठे जगतमां एकज ईश्वर ठे एम जे कहेवुं ते असत्य ठे घटघटप्रत्ये जीव जुंदा जुदा ठे, अने तेथोनी करणी पण जुदी जुदी जाणवी.

३८ नास्तिक.—घट पटादिक सर्व पदार्थोमां ईश्वर एकज ठे. एम जाणवुं जोये.

आस्तिक — जो सर्वमां एक ईश्वर होय तो जात, कुल, राजा, तथा चडा लनी निन्नता कही न जोये, कोई श्रेष्ठ तथा नष्ट कहेवाय नही एक पुण्य करे ते तुं फल सर्वने थवुं जोये, तेमज कोईएक पाप करे तेतुं फल पण सर्वने थवु जोये एके नोजन कखाथी सर्वनी तृप्ति थवी जोये, एक नरकगामी थयाथी सगला नरके जवाजोये, एक स्वर्गगामी थयाथी सर्व स्वर्गमां जवा जोये, एकनो नोग सर्वने नोगव्यो जोये, कर्म जुदा जुदां नोगववां न जोये; तेम तो देखातु नथी, जे करे ते नोगवे एवुं स्पष्ट देखाय ठे त्यारे सर्वमा एक ईश्वर केम कहेवाय ? माटे एम क हेवुं ते समीचीन नथी; वधा जीव जुदा जुदा ठे, एम कहेवुं योग्य ठे.

३९ नास्तिक.—स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, चड, सूर्य, नदी, समुद्र, द्वीप, नर, नारी, नगर, ग्राम, तथा माता, पिता इत्यादिक चौराशी लक्ष जीवयोनि प्रमुख सर्व असत्य ठे; एथोमां सत्य पदार्थ कोई नथी.

आस्तिक —सर्व पदार्थ सत्य ठे. जजनी वुंद पण असत्य कहेवाय नही, तो सर्गादिक पदार्थो केम असत्य कहेवाय ? जे वस्तु थाय त्यारे थई कहेवायठे,

अने वणजे त्यारे नाश थई कहेवायठे. ए प्रत्यक्ष प्रमाणे सिद्ध ठे, ते मूढ पण जाणे ठे तो हे नास्तिक तूं केम जाणतो नथी !

४० नास्तिक - जगत ईश्वर रचित ठे

आस्तिक - जो जगत ईश्वररुत होय, तो जेटला - ईश्वरना नक ठे, ते बधा सुखी होवा जोये, तेम तो दीगामा आवतु नथी. हिड तथा सुसलमान बधा सुखी तथा डु खी देखायठे, तेने पण पूढिये तेवारे एम कहे जे सद्दु पोतपोतानी करणी प्रमाणे पामेठे, एम कहीबूटे, त्यारे तमारा कहेवा प्रमाणे तो सुख तथा डु खनो देनार कर्मविना कोई बीजो होवो जोये तेनो तो विचार थई शके नही, माटे हे मूर्खबुद्धि आ जगतनो कोई करता नथी, ए तो स्वजाव सिद्ध ठे अने जी व जेवी करणी करे, ते प्रमाणे सुख तथा डु ख नोगवेठे

४१ नास्तिक - सुख डु खनो देनारो ईश्वर ठे, एम मानवु जोये.

आस्तिक - सुखडु खनो कर्त्ता आपणो आत्मा ठे, तेज सुखडु खनो जोका जाणवो माटे सुखडु खनो देनारो बीजो कोई समजवो नही

४२ नास्तिक - (प्रत्यक्ष प्रमाण वादी) पुण्यथकी सारुं थायठे, ने पाप थकी नरशुं थायठे, ते अमने प्रत्यक्ष दृष्टिए देखाडो तो मानीए

आस्तिक - पुण्यपाप तो सूद्धम पुज्ज समूहूरुपठे जेम शब्दना पुज्ज कानप्रत्ये आ वेत्यारे शब्दनुंज्ञान थायठे, माटे ते सत्य ठे पण आवता देखातानथी तेम सुग ध, दुर्गध प्रमुखना पुज्ज इडियो प्रत्ये आवता देखातानथी, पण तेनु ज्ञान थायठे, तेथी अनुमान प्रमाण वडे जणाय ठे के ए सत्य ठे तथा शरीरमा वायु अने गरमी प्रमुख जे थायठे, ते रोगना उदयथी जाणामा आवेठे, पण प्रत्यक्ष दीगामा आवतांनथी तेम पुण्य तथा पाप पण फल नोगव्याथकी जा णामा आवेठे तेओना पुज्ज उद्वस्थ दृष्टिए आवे नही

४३ नास्तिक - वाट्यावस्था तथा तरुणावस्थामा जीव सरखो ठे तो ते बडे अवस्थामा विज्ञान, विद्या, जापा, तथा पराक्रम सरखा केम नथी देखाता ?

आस्तिक - जेम वृद्धना बीमा अनेक वृद्ध, फल, फुल प्रमुख रहेला ठे, परतु जेवा साधनो मलेठे, तेवी उद्भवताने पामेठे. जेम के, हेत्रनी जूमि सारी होय ने पाणीनी पण बराबर साह्यता होय, तो रुपि फलरूप धान्यनी उत्पत्ति सारी थायठे तेम सारा साधनोवडे जेम जेम शरीरनी वृद्धि थती जाय, तेम तेम जापा पण प्रौढ ताने पामती जायठे, पण अवस्थातर थयाथी बुद्धि बाहेरथी आवती नथी किनु

શરીરની પઠે બુદ્ધિનું અવસ્થાતર થાયઢે સર્વે આત્મગુણ આત્માને વિપે સદા ન
ચ્છાજ ઢે. પણ યોગ્ય સમયમાં ડડવ માત્ર થાયઢે કાઈ બાહરથી નવા આવતા
નથી જેમ મયૂરના શરીરમા અનેક રંગ રહેલાઢે, પણ સમય પામે પ્રગટ થાયઢે.
તેમ વાઢ્યાવસ્થામા પણ સર્વે ગુણ સત્વનાવે ઢે, પરતુ જેવી રીતે પુરુષ બલવાન ઠ
તાં ધનુષ્યવિના બાણ ચલાવવામા સમર્થ થાય નહી, ગલોલા, ગોફણ, તથા સ્વઙ્ગ
પ્રમુખ વધા શસ્ત્ર તેઓના ડપકરણથી ડપયોગી થાયઢે, તે વિના થાય નહી, તેમ
જીવ પણ શરીરોપકરણ અવસ્થારૂપ સામગ્રી થકી સર્વે કાર્ય સાધી શકેઢે. ચેત
નમા કાઈ ફેર નથી, ચેતન સદાસર્વદા સરચુંજ ઢે.

૪૪ નાસ્તિક:-જગત સર્વે ઈશ્વરકૃત હોવાથી સર્વે પદાર્થમાં તથા સર્વે જીવમા ઈ
શ્વરની કલા ઢે

આસ્તિક:-જો એમ હોય તો ઘટ, પટ, સ્તંજ, કુંજ, શાસ્ત્ર તથા જાપા ઇત્યાદિક
અનેક વસ્તુનું જ્ઞાન કોઈ એક જીવને ઢે, ને કોઈએક જીવને નથી જે જીવને ક્ષેપ
પદાર્થનું જ્ઞાન ઢે, તેને તો હે મૂઢમતિ, તું ઈશ્વરનો અંશ માનેઢે, ત્યારે શ્વાન, શૂકર,
રાસન, માજર, વ્યાઢ, પ્રમુખ શ્વાપદ ચૌપદ જીવોને ઘટાઢિક પદાર્થોનું જ્ઞાન નથી
તેથી તેઓમાં શું ઈશ્વરનો અંશ નથી? તમે તો જીવમાત્રને ઈશ્વરનો અંશ માનો
ઠો તેને વાધ આવશે જે ઈશ્વરનો અંશ હોય તે અજ્ઞાની કેમ હોય? ઇથી જગત
નો કર્તા ઈશ્વર અવિવેકી ઠરેઢે અને સર્વમા ઈશ્વરની કલા ઢે, એ બોલવું પણ અ
સભ્ય ઢે, કેમકે જો એમ હોય તો સર્વે સરસા જ્ઞાની હોવા જોયે તેમ તો દેખાતુ
નથી, માટે એ વાત પણ મિથ્યા ઢે. તેમ સર્વે જીવ ઈશ્વરના અશરૂપ ઢે, એમ જે તમે
માનો ઠો, તે પણ અજ્ઞાની હોવાને લીધે માનોઠો માટે સંજવે નહી.

૪૫ નાસ્તિક.- ઈશ્વર નક્તવત્સલ ઢે, અને સ્વેચ્છાથી જન્મધારણ કરેઢે

આસ્તિક:-જો એમ હોય, તો નક્તોને શરીર મૂકતાં વેઢના કેમ થાય ઢે? અ
ને સ્વજનાઢિકના કોલાહલ શબ્દો સાનલોને નક્તને વત્સલનાવકારી આયુષ્યવૃઢિ
કેમ નથી કરતો? મરણાઢિક ક્રિયા તો સર્વે ઈશ્વરના સ્વાધીન ઢે. એ આઢિ વિ
ચાર કરતાં તમારું બોલવું વધું પોકલ ઢે જીવ તો કર્મને આધીન ઢે જેમ કે
ફ લીધેજો પ્રાણી તેની જઢેરને સ્વાધીન થઈ જાયઢે, તેમ જીવવિપે પણ જાણી
લેવું જન્મમરણ પણ કર્મધીન ઢે, તેને જે ધારણ કરે તે ઈશ્વર શાનો! તે તો
સંસારીજ કહેવાય. ઈશ્વર તો કર્મથી મુક્ત હોયઢે, માટે તમારું બોલવું વધું વ્યર્થઢે.

૪૬ નાસ્તિક:-આ પંચ મહાજૂતોથી ડત્પન્ન થણું જે વિશ્વ, તે મહા પ્રલયના

समये पोताना कारण पंच महाचूतोमां लीन थजे, ने पच महाचूतो ईश्वरमां लीन थजे

आस्तिक.—जो एम होय तो ईश्वर जड मिश्रित थाय अने ते समल तथा निर्मल ए बे अचस्थावालो कहेवाजे. ल्यारे केवल ज्योतिस्वरूपपणुं क्या गयुं ? जे पच महाचूतोथकी जगतनी उत्पत्ति थई कहोठो ते तो सदा शाश्वत ठे ते ओमां पृथ्वी, आप, तेज तथा वायु, ए चारे चूतो पोतपोतानी क्रिया करेठे, के म के, वनस्पति अने जगम त्रसनी उत्पत्ति करेठे ते क्रियाविना थाय नही एवी रीते तो जीवनी ठ खान शाश्वत सदा काल ठे, ल्यारे प्रलय ते शानो थयो ? जो एम कहेसो, के पंच महाचूतो जगत विनिर्मित क्रिया करता नथी, ल्यारे तो ते चूतड्व्यरूप कथन मात्रज उरजे अने हरेक वस्तु पोतपोताना गुणविना रहे नही एवो नियम ठे वली जो कहेसो के चूत तो अनत कालना ठे ल्यारे तो संसार पण अनत कालनो उरजे तेनी उत्पत्ति तथा प्रलय केम कहेवाय ? ए तो जेम ठे तेम ठे वली ईश्वर मनसा वाचा कर्मणा करि रहित ठे, अने एक थी अनेक थाउं एवी मननी इच्चा थई ल्यारे जगतनी उत्पत्ति करी ए वे वाक्यो नो परस्पर विरोध ठे, केम के, प्रथम वाक्यप्रमाणे ईश्वर इच्चारहित उरे ठे, ने बीजा वाक्यमा इच्चारहित कहो ठो, एवो पूर्वापर वचनविरोध होवाथी तमारुं बोलवु सर्वे असमीचीन ठे.

४७ नास्तिक — सर्वे वस्तुनो ईश्वर अविष्टान ठे ईश्वरनी इच्चाथी कृत तथा अकृत सर्वे थायठे

आस्तिक — जो एमठे तो घट ते पट केम थतो नथी ? पण तेम थाय नही, केमके, घटनु कारण मृत्तिकानु पिंरु ठे, तेमाथी घटज थायठे पण पटादि कार्य नथी थता. तेमज पटनुं कारण तनु ठे, तेथकी पटज थायठे, पण घटादि क बीजा कार्यनी उत्पत्ति थायनही जो एम थतु न होय तो कारणथी कार्य थायठे, ए प्रवृत्ति मिथ्या थाय. माटे ईश्वरना अधिष्ठितपणातजे ईश्वरनी इच्चाथी कृत तथा अकृत सर्वे थायठे ए तमारुं कहेवुं सर्वे व्यर्थे ठे.

४८ नास्तिक — जीवने जर्वांतर थाय ठे खरुं, पण वेदनो वेद थतो नथी पुरुष वेद ते स्त्री वेद न थाय, स्त्रीवेद ते पुरुषवेद न थाय, तेम स्त्री तथा पुरुष ते नपुस क वेद न थाय ; अने नपुसकवेद ते पुरुष तथा स्त्री वेद न थाय. एम जाणवु जोये

आस्तिक — पुजना परिणामनो नियम नथी एना पुन पुन रूपांतर थया क

रेते. मात्र अक्षुपणुं पामता नथी, वस्तुपणुं गमे ते रूपे थई जायते जेम जैस ना शिंगमांथी केल थायते, काशथकी सरडी थायते, माखीना हिंगारथकी कद लीनी नाजी थायते, एवी रीते कर्मना परिणामे गळंतर थायते आगामिक नव नेविपे कायवेद पलटाईने ते नवा नवरूपे परिणामेजे जेम सोनीना योगे सुव र्ण नाना प्रकारना आकाररूपे परिणामने पामेजे तेम जीव कर्मना योगे नाना विध गतिथ्रो पामेजे. ते तो रहु, आ नवमां पण एकतरखी स्थिति रहेती न थी. जेम के, राजा ते रंक थई जायते, ने, रक ते राजा बनी जायते, सुखी ते दुः खी, तथा हु खीते सुखवान थईजायते इत्यादिक आ नवमां पण पर्याय पलटाई जायते, तो नवांतरमा केम एकरूपे रहे ? कर्मना बंध सादि ठे, माटे जेवो कर्म नो उच्च तेवा फलनी प्राप्ति थायते, एविपे कोई नियम थई शके नही. गमे ते वेद बदली ने गमे ते वेद कर्मना योगे थायते एम जाणवु.

४९ नास्तिक - एम कषु ठे के ब्रह्माना मुखमांथी ब्राह्मणो उत्पन्न थया, जुज थकी कृत्रिय थया, तथा जधा थकी वैश्य थया, माटे ए त्रणे वर्णो उचम ठे, अ ने पादथकी शूद्र उत्पन्न थया माटे अथम ठे, एम जाणवु

आस्तिक.- ए वात संचवित नथी. जुवो के, उबराणा वृद्धमां पेड, दाल, तथा पत्रनेविपे सरखां फल लागेजे. ते सर्व फलोनुं रूप सरखुं होयते, तथा ते थ्रोमां रस पण सरखोज होयते. तेथ्रोमां कोई प्रकारे उचम तथा अथमता क हेवाय नही तेसज ब्रह्माना शरीर थकी उत्पन्न थया जे चार वर्ण, ते सर्व चेतन रूप होयाथी सर्व जीव सरखा जाणवा. उचम मध्यम वगैरे सर्व लौकिक कार्य थकी कहेवायते पण चेतनपणे तो सर्व सरखा ठे. एना उपर एक दृष्टांत कहूं बुं. चारे वर्णना मनुष्य एक तलावने कांते वेशीने पाणी पिपे ठे, तेथी कोई वट लतो नथी पण ते तलावमाथी पाणी नरीने पोतपोताना वासणोमां लीधा पठी हलका वर्णना वासणनुं पाणी उंचा वरणवालो माणस पीए तो वटले ठे. फरी चारे वर्णना नरेला पाणीना वासणो मांनुं पाणी ते तलावमा नाखीने पी तां कोई वटलतु नथी तेनुं कारण बुं ? माटे पाणीमां वटलवापणुं नथी ने वा सण तो सर्वना सरखा ठे. माटे वटलतुं ए मननी मानीता ठे, अने एवीलोक म र्यादा ठे ज्या सुधी मननो मिथ्याजाव ठे, त्यां सुधी निन्न पणुं ठे एम जाणवु

५० नास्तिक.- समदृष्टीने विपे मिथ्याजाव होतो नथी, तेम वतां ते निन्न जाव केम राखेते ?

समये पोताना कारण पंच महाचूतोमां लीन थरो, ने पंच महाचूतो ईश्वरमा लीन थरो

आस्तिक.—जो एम होय तो ईश्वर जड मिश्रित थाय अने ते समल तथा निर्मल ए वे अवस्थावालो कहेवारो. त्यारे केवल ज्योतिस्वरूपपणुं क्या गयुं ? जे पंच महाचूतोथकी जगतनी उत्पत्ति थई कहीठो ते तो सदा शाश्वत ठे. ते ओमां पृथ्वी, आप, तेज तथा वायु, ए चारे चूतो पोतपोतानी क्रिया करेठे, के म के, वनस्पति अने जगम व्रसनी उत्पत्ति करेठे ते क्रियाविना थाय नही एवी रीते तो जीवनी ठ खान शाश्वत सदा काल ठे, त्यारे प्रलय ते शानो थयो ? जो एम कदेशो, के पंच महाचूतो जगत विनिर्मित क्रिया करता नथी, त्यारे तो ते चूतड्व्यरूप कथन मात्रज वररो अने हरेक वस्तु पोतपोताना गुणविना रहे नही एवो नियम ठे वली जो कदेशो के चूत तो अनंत कालना ठे त्यारे तो संसार पण अनंत कालनो वररो तेनी उत्पत्ति तथा प्रलय केम कहेवाय ? ए तो जेम ठे तेम ठे वली ईश्वर मनसा वाचा कर्मणा करि रहित ठे, अने एक थी अनेक थाउं एवी मननी इज्ञा थई त्यारे जगतनी उत्पत्ति करी ए वे वाक्यो नो परस्पर विरोध ठे, केम के, प्रथम वाक्यप्रमाणे ईश्वर इज्ञारहित वरे ठे, ने बीजा वाक्यमा इज्ञासहित कही ठो, एवो पूर्वापर वचनविरोध होवाथी तमारुं बोलडु सर्व असमीचीन ठे.

४३ नास्तिक — सर्व वस्तुनो ईश्वर अधिष्ठान ठे ईश्वरनी इज्ञाथी कृत तथा अकृत सर्वे थायठे

आस्तिक — जो एमठे तो घट ते पट केम थतो नथी ? पण तेम थाय नही, केमके, घटनुं कारण मृत्तिकानु पिंढ ठे, तेमाथी घटज थायठे पण पटादि कार्य नथी थता तेमज पटनु कारण ततु ठे, तेथकी पटज थायठे, पण घटादि क बीजा कार्यनी उत्पत्ति थायनही जो एम थतु न होय तो कारणथी कार्य थायठे, ए प्रवृत्ति मिथ्या थाय. माटे ईश्वरना अधिष्ठितपणातले ईश्वरनी इज्ञाथी कृत तथा अकृत सर्वे थायठे ए तमारुं कहेडु सर्वे व्यर्थे ठे.

४५ नास्तिक — जीवने नवांतर थाय ठे खरुं, पण वेदनी वेद थतो नथी पुरुष वेद ते स्त्री वेद न थाय, स्त्रीवेद ते पुरुषवेद न थाय, तेम स्त्री तथा पुरुष ते नपुसक वेद न थाय, अने नपुसकवेद ते पुरुष तथा स्त्री वेद न थाय. एम जाणडु जोये आस्तिक — पुञ्जना परिणामनो नियम नथी. एना पुन पुन रूपांतर थया क

रेठे. मात्र अक्षुपणुं पामता नथी, वस्तुपणे गमे ते रूपे थई जायठे जेम जेंस ना शिंगमांथी केज थायठे; काशथकी सरडी थायठे, माखीना हिंगारथकी कद लीनी नाजी थायठे, एवी रीते कर्मना परिणामे गत्यंतर थायठे आगामिक जव नेविपे कायवेद पलटाईने ते नवा जवरूपे परिणामेठे. जेम सोनीना योगे सुव एं नाना प्रकारना ध्याकाररूपे परिणामने पामेठे तेम जीव कर्मना योगे नाना विध गतिओ पामेठे ते तो रक्षु, आ जवमां पण एकसरखी स्थिति रहेती न थी. जेम के, राजा ते रक थई जायठे, ने, रक ते राजा बनी जायठे, सुखी ते दु. खी, तथा ह्खी ते सुखवान थई जायठे इत्यादिक आ जवमां पण पर्याय पलटाई जायठे, तो नवांतरमां केम एकरूपे रहे ? कर्मना बंध सादि ठे, माटे जेवो कर्म नो उदय तेवा फलनी प्राप्ति थायठे, एविपे कोई नियम थई शके नही. गमे ते वेद बदली ने गमे ते वेद कर्मना योगे थायठे एम जाणवु.

४९ नास्तिक - एम कष्ट ठे के ब्रह्माना मुखमांथी ब्राह्मणो उत्पन्न थया, जुज थकी ह्त्रिय थया, तथा जघा थकी वैश्य थया, माटे ए त्रणे वर्णो उत्पम ठे, अ ने पादथकी शूद्र उत्पन्न थया माटे अधम ठे, एम जाणवु.

आस्तिक - ए वात संजवित नथी जुवो के, उबराना वृह्मां पेड, दाल, तथा पत्रनेविपे सरखां फल लागेठे. ते सर्व फलोनुं रूप सरखु होयठे, तथा ते ओमां रस पण सरखोज होयठे. तेओमां कोई प्रकारे उत्तम तथा अधमता क हेवाय नही तेसज ब्रह्माना शरीर थकी उत्पन्न थया जे चार वर्णो, ते सर्व चेतन रूप होवाथी सर्व जीव सरखा जाणवा उत्तम मध्यम वगैरे सर्व लौकिक कार्य थकी कहेवायठे. पण चेतनपणे तो सर्व सरखा ठे. एना उपर एक दृष्टांत कहुं ठुं चारे वर्णना मनुष्य एक तलावने कांठे बेशीने पाणी पिये ठे, तेथी कोई वट लतो नथी पण ते तलावमांथी पाणी जरीने पोतपोताना वासणोमां लीधा पठी हलका वर्णना वासणतुं पाणी उंचा वरणवालो माणस पीए तो वटले ठे. फरी चारे वर्णना जरेला पाणीना वासणो मातुं पाणी ते तलावमां नाखीने पी ता कोई वटलतु नथी तेतुं कारण शुं ? माटे पाणीमा वटलवापणुं नथी ने वा सण तो सर्वनां सरखा ठे माटे वटलतुं ए मननी मानीता ठे, अने एवीलोक म यांदा ठे. ज्या सुधी मननो मिथ्याजाव ठे, त्यां सुधी निन्न पणुं ठे एम जाणवुं.

५० नास्तिक - समदृष्टीने विपे मिथ्याजाव होतो नथी, तेम ठतां ते निन्न जाव केम राखेठे ?

आस्तिक—लोक मर्यादा लोपवी नहीं ए नीति ठे तेनो लोप करवो नहीं. जे कार्यनी जगत निदा करे ते कार्य करवो नहीं एबु श्रेष्ठोनुं वचन ठे तेनो पण लोप करवो नहीं तेथीज समदृष्टि पण तेबु आचरण करे ठे पण मनयकी स म दृष्टिने काइ नथी

५१ नास्तिक.— सर्वे कार्यनो कर्ता ईश्वर ठे, एम मानबु जोये के नहीं ?

आस्तिक — एम मानबु नहीं जोये ए वचन प्रजाप ठे ईश्वरविपे कर्तृत्व होयज नहीं घट, पट, रुषि, सधाम, खान, पान, दान, मान, स्नान, तप क्रिया, विनय तथा व्यावच इत्यादिक सर्व पदार्थोना कारण काल, स्वभाव, नियत, पूर्वकृत कर्म, तथा पराक्रम ए पाच ठे जेम के, ततुना पुजमांथी पटनी उत्पत्ति थवानो जे समय ते काल समजवो, ततुना पुजने पटनी उत्पत्ति करवाजीजे योग्यता ते स्वभाव जाणवो, ततुना पुजमांथी पटनी उत्पत्तिनु जे निमित्त थबु ते पूर्व कर्म समजबु, अने ततुना पुजमांथी पटनी उत्पत्ति करवानो जे उद्यम करवो ते पराक्रम जाणवो, ए पाचमाथी एक ओबुं होय तो वस्तुनी उत्पत्ति थई अके नहीं ए पाचना समुदायथी घटपटादिक सर्व कार्योंनी उत्पत्ति थायठे, एखुं मत्त जाणबु

५२ नास्तिक — जो कुठ होता है, सो अज्ञादुतालाके दुकमसे होता है, और किसीका किया कुठ होता नहीं, यही बात रास्त है

आस्तिक — जो ऐसे होवै, तो अज्ञादुतालाने पैदा किये दुये, इमामे हसन औ दुसन, काफिरोंके हातसे कैसे मारे गये ? वे तौ खुदाके प्यारे बंदे थे, तिनकूं काफिरोंने मारे, ये बड़ी अजायबकी बात है तिनकूं बचानेके वास्ते खुदा ना कौवत था ? इमाम किसीके गुनेहगारनी नहीं थे, वे क्यूं मारे गये ? इसवास्ते जो होता है, सो तकदीरसे होता है जो जैसा करता है, सो तैसा पावता है, तामे अज्ञादुतालाका कुठ वास्ता नहीं है यही बात रास्त है.

५३ नास्तिक — अज्ञादुतालाने इमामोका दिल देखनेके वास्ते आजाब दियाथा

आस्तिक — आजाब दिये शिवाय तिनोके दिलकी बात खुदा नहीं जाणता था । जो कहोगे की नहीं जाणताथा, तौ खुदामे खुदापना क्या रहा । खुदा तौ सब जानता है, ऐसे तुमारे कुरानेशरीफमे, कहा है ऐसे होके जी इमामोकू मारनेकी दयानत जो काफरोने करीथी सो खुदा जानके जी कैसे चुप रहा । इ सवास्ते ये बात जी गलत है

५४ नास्तिक:- आदमी मरगये बाद जीकूं फिरस्त जेजाते है ये बात तो सच है की नहीं ?

आस्तिक - इस बातकू कौन फूठ कहता है ? लेकिन समझमें कुछ फरक है. तुम कहते हो की कीयामततक जीकूं एक ठिकानेमें रखते है, पीठे खुदाके पास ले जाके इन्साफ करवाते है, ऐसे नहीं होवै है. जेकीन उसीवरत जी अपनी त गदीरके लिये अग्रा या बुरा फल पावता है. तुमनी सुख, दुख, चेहेस्त औ दोज क तो मानते हो ! सो जैसी जीने करनी करी होवै तेसी गति उसकू मजती है.

५५ नास्तिक - अल्लाहुताजाने ऐसे फरमाया है की जो किसीकूं इजा देता है सो मारने लायक है.

आस्तिक.- कबू मावाप ठोकरेकूं इजा देते है, आ कबू ठोकरा मावापकूं इजा देता है, कबू पीर सुबिदकूं इजा देता है, औ कबू सुबिद पीरकूं इजा देता है; कबू नोकर खाविदकूं इजा देता है, कबू खाविद नोकरकूं इजा देता है, ऐसे खुदाकी खलकतमें जहातके जी है, वे सब इजा देनेवाले होनेते जो सब मारने लायक हो वै तो खैर महिर कैसे रहेगी ! औ रहम करने लायक कोई जी नहीं रहेगां और इमामोकूं जब काफरोने इजा दी, तब तिनोकूं कायके वास्ते इमामोने मारे नहीं इस्त वास्ते जो होवै है सो तगदिरसे होवे ऐसे जानना चाहिये.

५६ नास्तिक.-मांसाआहारी पापिष्ट कहे ठे. आ डनीआमां जलचर, स्थलचर, तथा खेचर प्रमुख जे नाना प्रकारना जीव ठे, तेओने वेशक मारी नाखवा, अने तेओनुं मास नरुण करवुं. एम अमने साहेबे फरमाव्युं ठे, ते प्रमाणे करवामां गुं गुनाह तथा पाप ठे ?

आस्तिक.-तमारा कहा प्रमाणे जीवने मारवुं ए खुदानो हुकम ठे, ते कोई ए फेरववो जोये नहीं. जो फेरवीए तो गुनेहगार ठरीए, एम सि-इ धायठे, त्यारे कोई बाध अथवा सिह प्रमुख मनुष्यनो आहार करनार जीव, तमने मारवा आ वेठे, तेथी ररीने तमे केम नाशी जाओठो ? अने ते प्राणीने नाना प्रकारना हथीअर वगैरेनी सहायता वने केम मारवा तैयार आओठो ? अने जो ते जीव तमारा दावमा आवी जाए तो केम मारीनाखो ठो ? जेम खुदाए तमने जीव मारवाने फरमाव्युं ठे तेम तेओने पण मनुष्य मारवाने फरमाव्युं ठे ! ते प्रमाणे तेओ पोतातुं कृत्य करेठे ; तेओने मारवु लायक नथी. जो तेओने मारवातुं तमने लायक दीशतु होय, तो जे जीवोने तमे मारोठो, तेओए अथवा तेओने वा

स्ते कोई बीजा प्राणीए तमने मारबु पण नालायक नथी; लायकज ठे माटे जेम वाध वगैरे प्राणीओ जीव घातक होवाथी मारवा योग्य ठे. तेम तमे पण जी व घातक होवाथी मारवा योग्य ठे एम तमारें कबूल करबु जोइशे जो कबूल नही करशो, तो खुदाना गुनेहगार ठरशो माटे हे महामदीयन मुसलमीनो वगैरे, जीव मारवामा खुदानोहुकम होयज नही जो एम होय तो खुदा रहम विनानो व रे खुदा तो रहमदिल ठे, एबु तमारा रसूलिह्नाए कुरानेशरीफमां फरमाव्युं ठे तेने वाध आवझे. ए उपरथी एबु जणाय ठे के, कोई एक पुरुपने कोई कारणने ली धे अचानक मासनो आहार मली गयाथी, तेने तेनो स्वाद लागो तेथी, व्यसन पडी गयुं, ने पठी लोकापवादसारु खुदाए फरमाव्युं ठे, एम कहीने वचारा खुदाने हिंसक ठेरव्यो जणाय ठे. तेमा केटलो गुनाह ठे। एनो विचारतो करो। ते प्राणीओने मार वाने खुदा फरमावे ल्यारे बीजी अन्नादिक वस्तुओ पेदा शावास्ते करे ? ए उपरथी साफ जणायठे के, अन्नादिक वस्तु खावायोग्य ठे, पण मास खावायोग्य नथी ते म ठतां जे जीनना स्वादने अर्थे खायठे ते राहसतुव्य जाणवा

वली मुसलमीन प्रमुखने बीजु युक्तिथी समजावे ठे के, तमारा किताबोमां आ वने पाक वस्तु कहीठे, अने पिशाबने नापाक वस्तु कहीठे, पाक वस्तुथी जे पे दाश थायठे, ते पाक कहेवायठे, अने नापाक वस्तुथी जे पेदाश थायठे ते नापाक कहेवायठे जेम के, अन्न वगैरे पदार्थों जे पाणी थी पेदा थायठे, ते पाक ठे अने पिशाबथी जे कीटकादिक पेदा थायठे, ते नापाक ठे एबु तमे पण मानो ठो परतु तेम चालता नथी. केमके मांसाहार करो ठो जुओके प्राणिमात्र पिशाबनी पेदाश ठे ते पिशाब ज्यारे नापाक ल्यारे तेथी पेदा थयेला प्राणीओ केम पाक होय। ते ओना मासने तमे पाक मानो ठो, ए केटली वेवकूफी ठे वारु। जो मासने पाक मा नशो तो पिशाबने नापाक कहेवाशे नही, ने जो पिशाबने नापाक मानशो तो मांस ने पाक मानशे नही जेबु कारण तेवो कार्य एवो डुनीयामा नियम ठे ज्यारे पि शाब जेवो मास ठे, ल्यारे तेनो आहार कखाथी दोजकमा गयाविना केम रहेशो। एनो पाको विचार करीने मास नहूण मूकी यो, अने पाक पाणीनी पेदाश अन्न फल, तथा फूल वगैरे अनेक स्वादिष्ट पदार्थोंनो आहार करीने। परतु तमे मानशो नही केमके एतो जन्मनी आदत पडीगई ठे कसु ठे के, तहाड जाए रुएने आव त जाय सुए, तेम तमारी आदत ह्मणा जनार नथी, पण याद राखजो के किया मतने दहाडे जबाब देवो पडजे ल्यारे आखो, फाटीने पडोला थजे हो।

५४ नास्तिक.— याज्ञिक नास्तिको प्रश्न करे ठे के, यज्ञनेविषे होम करवासारु जी वने मारवुं योग्य ठे. केमके ए कृत्य शास्त्रविहित ठे; माटे एमां पाप नथी, पण पुण्य ठे. यज्ञनेअर्थें जे जीव मरे ठे. ते स्वर्गमां जायठे, माटे ते केम न करवुं ?

आस्तिक.— यज्ञादिकने अर्थें जे जीवनी हिंसा करवी ते योग्य नथी. केमके, हिंसानो परिणाम ते पुण्य होयज नही, किनु पाप होयठे एवो नियम ठे जे शास्त्रोमां पशु होमवानुं कस्यु ठे, ते शास्त्र नही पण कुशाम्भ ठे अने तेनी रचना कर नारा मनुष्य नही पण मनुष्यरूपे राक्षस ठे एम निश्चय जाणवुं. जे पापने पुण्य माने तेना करतां बीजो पापी कोण ! यज्ञमा होमायलुं जीव जो स्वर्गमां जतुं होय तो यज्ञ करनारा तथा करावनारा पोते होमाईने केम स्वर्गमां जता नथी ! पोते एम करता नथी तेषीज जणाय ठे के, ए कल्पित वचन ठे; यज्ञमां पश्व्वादिकनो होम शिव, ब्रह्मा, अने विष्णु आदिक देवताओने अर्थें करेठे अने तेनो बली नोग ते देवताओ लियेठे. ए वात जो साची होय, तो ते देवताओ मासाहारी उरडो देवताओने जो मांस नक्षण करवानी आदत होय, तो तेओ मनुष्यना हाथे शासारु लीये ! शुं तेओ पोते आहारने अर्थें मांस मेलवी शकता नथी ? तेओ तो मोटा सामर्थ्यवान कहेवायठे ते सामर्थ्य केम फोरवता नथी ! जे जीवना मांसनो बलिदान तेओने आपेठे, ते जीवोनी उत्पत्ति पण तेओ पोतेज करेठे, एम तमे मानो ठो पोते जीवोने उत्पन्न करी तेने मनुष्यना हाथे मरावीने तेनो बलिदान पोते लेवो ए शुं देवताओने योग्य ठे ! एम तो कोई साधारण माणस पण करे नही, ते कृत्य देवताओने केम सजवे ? जो ते देवताओने मांस नक्षण करवानी होंस होय, तो पोताने माटे जुदीज जातना कोई जीव विनाना एवाज स्वादवा ला पदार्थनी उत्पत्ति करी, ते पदार्थनो आहार करवाने शुं हरकत ठे ? माटे ए वधी वात मनकल्पित ठे, उत्तम देवताओनेविषे एवी कल्पना करवी योग्य नथी जो ए वात तमारा कह्या प्रमाणे साची होय, तो ते उत्तम देव नही, पण अधम कहेवाय याज्ञिक लोको होमादिकने अर्थें जीवघात करी, तेनो बलिदान दीधायी पोताने नक्त समजे ठे पण एहवुं नक्तुं लक्षण होय नही; देवनक्तुं अंतःकरण शुद्ध होयठे. तेमां मलिन वासना उत्पन्न थायज नही. जो मलिन वासनावालाने नक्त कहिये, तो अनक्त कोने कहीशु ! माटे एवु हिंसारूप कृत्य करनारने नक्त मानवो नही, पण अन्नक्त मानवो. अने ते निश्चय नरकगामी ठे, एमा रचमात्र सशय आणवो नही.

५८ नास्तिक -- कोइ वेदधर्मी प्रश्न करे ठे के, तमारा जैनमतमां जीवना स्वरूपा दिरुनेविपे केवीरीते वर्णन करेलुंठे ? तेने उत्तर दिये ठे के, सर्वज्ञ केवलीए आवी रीते कह्यु ठे --सर्व लोकनेविपे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, काल, जीवास्तिकाय तथा पुत्रजास्तिकाय ए षड्व्य नरपूर ठे ए षड्व्य पोतपोताना गुण तथा पर्याये करी पूर्ण ठे. सदा जावरूप ठे जगतनी स्थिति जेम वर्तमान कालमां ठे, ते मज जूत कालमां हती, अने नविष्य कालमां पण एवी रीतेज जाणवी ते मध्ये जीव अने पुद्गल अनंत काल लोलुपचूत ठे एटले जेम क्षीर तथा पाणी अने मृत्तिका तथा धातुनुं मिश्रण थयाथी एक रूप बनी जाय ठे तेम जीव तथा पु जलोपण एकरूपे रहे ठे समय समयने विपे नवां कर्म जीवबांधे ठे अने समय समयने विपे पूर्व कर्म निर्जरीने टूटी पण जाय ठे कर्मोनी उत्पत्ति तथा नाशमा ईश्वरनुं कांइ कारण पण नथी ईश्वर तो अकर्ता ठे, तेने विपे कर्ता पणुं कत्पाय नही माटे ईश्वर कोईनुं कारण नथी. काल, स्वभाव, नियत, पूर्व कर्म, तथा पु रुपाकार ए पाच कारणो उत्पत्तिना कह्यां ठे एणे करीनेज पुण्य पाप जन्य स्व र्ग नरकने विपे गमनागमन थाय ठे अने दंभकमा जे नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवतानी चोवीश गतिओ कही ठे ते प्रमाणे नवपरपराने पामेठे अने पोताना उपाजैला शुजाशुज कर्म जोगवे ठे ते ते नवने विपे ज्ञानावरणादिक आठ कर्मने अनुसारे वर्त्ते ठे. जेम माटीनी चरेली तूबी जलमा नाखीए तो ते माटीना चारने लीधे मूबी जाय ठे पठी जेम जेम ते माटी, तेमाथी ओठी थती जाय तेम तेम ते तूबी उपर आवती जाय ठे ज्यारे बधी माटी नीकली जाय त्यारे पाणीनी उपर तरती रहे ठे पण पाणीथी उपर जाय नही तेवी रीते जीव पाप कर्मथी लेपायो थको अधोगतिने पामे ठे पठी जेम जेम ते कर्मनी न्यूनता थती जाय तेम तेम ते ऊर्ध्व गतिने पामतो जाय ठे, ज्यारे बधा कर्मनो नाश थई जाय ठे त्यारे ते जीव लोकाग्रने विपे प्राप्त थाय ठे, पण तेनी उपर अलोकमां गमन करतो नथी, जेवी रीते तुबी जलना योगे उची आवे ठे, तेम जीव धर्मास्तिकायना योगे लोकांत रूप ऊर्ध्व गति पामेठे.

वादी आशका करे ठे के, मनुष्य शाना बलंथी सात राज लोक सुधी ऊर्ध्व गमन करे ठे ? जीव तो चौदमे गुणवाणे अयोगी थाय ठे. एनो उत्तर दिये ठे के, जेम धनुष्यथी जे बाण बूटे ठे ते पूर्व जोरना बलथी चालेठे तेने वचमा बीजो को ई चलावनारो जोई तो नथी. ज्यारे धनुष्यमाथी बाण बूटे ठे, ते कृणने विपेज नि

यमित ठेकाणे पढोतो एम समजुं. ए विषय उपर बीजा पण त्रण दृष्टांतो ठे कुंजकारनो चक्र, अग्निनो धूमाडो, तथा एरडीओ ए चार दृष्टात वडे जाणी लेबु पण नास्तिक—कर्मद्वय थया पठी जीव अलोकनेविपे केम जतो नथी। जो जायतो वचमां तेने कोण रोकनारो ठे ?

आस्तिक.—चलन शक्तिने सहाय आपनारुं जे धर्मास्तिकाय इव्य, तेनुं त्यां आलंबन नथी. धर्मास्तिकाय इव्य लोक प्रमाणेज ठे ते थकी अधिक नथी. तेथी अलोकमा जवाने जीव तथा पुज्जनी गति थती नथी.

६० नास्तिक.—कर्मोनो द्वय करीने सिद्धावस्थाने पामेलां जे सिद्ध जीवो ते सिद्धक्षेत्रे समश्रेणीए जायठे पण स्थानातरनेविपे जता नथी तेनुं कारण शु ?

आस्तिक—ते समयनेविपे कोई प्रेरक नथी प्रेरणाविना चक्रत्रमण थाय नही, तेथी सिद्धना जीवो समश्रेणीए सिद्धसिला उपर जायठे

६१ नास्तिक.—सिद्धने शरीरनो अज्ञाव थायठे. त्यारे अचगाहना केम कही ठे ?

आस्तिक—जेम डारानुं वासण वनाववाने अर्थे प्रथम तेना जेवो मेणनो आकार करवो पडेठे तेमा ते रस ओल्याथी ते धातुनो तेवो आकार थायठे ते वासण मेणथी बूटूं कखा पठी पण मेणनो आकार थायठे कदाच मेण गाली नाखीए तो पण ते आकारपणुं जतु नथी, केमके वासणनो आकार जे कायम रहेठे. ते पण ते मेणना आकार जेवोज ठे, तेथी आकारपणुं कायम रहेठे तेम जीव जे शरीराकारे थयोठे. ते शरीरनो अज्ञाव थया पठी पण सिद्ध पुरुषनो आत्मा ते शरीरनी अचगाहनारूपे रहेठे. एटले आउखाने अते जेवो सिद्धना शरीरनो आकार रहेठे. तेवोज जीवना प्रदेशोनो अरूपी आकार रहेठे.

६२ नास्तिक—जेम जलमा जल मळे ते एकरूपे थई जायठे निन्नता देखा ती नथी, तेम अनंत सिद्ध एकरूपे थई रहेठे के चेतन इव्यपणुं जुडं जुडं ठे

आस्तिक:—ज्यारे जलना विडओ मलीने एक जलनो पिम थाय, त्यारे एक ज जल कहेवायठे. पण ज्यारे जलना विड जुदा जुदा होय त्यारे विडु कहेवायठे. एक जल कहेवाय नही तेम सिद्ध पणो सर्व एकज ठे, परतु चेतन इव्ये करी सर्व निन्न निन्न ठे. ते उपर दृष्टांत, जेम अनेक शीपीओथकी उत्पन्न थएला अनेक मोतीओ जुदा जुदा होयठे, तेओमांना केटलाएरु लईने एक मोटो ढगलो करिये. ने पठी तेओ विपे विचार करिये के ए ढगलामां एरुता अनेकता शुं ठे ? ती तरत जणाशे के ते मोतीओ उज्वलता गुणरूपे सर्व एक ठे पण

आकाररूपे सर्व जुदा ठे तेम सिद्धो सर्व सिद्धतारूपे तो एक ठे पण चेतन इव्य रूपे जुदा ठे, एविपे धान्यना पुज वगैरे घणा दृष्टांतो ठे तेथी विचारी जेवु वली सर्व सिद्धोनु सिद्धरूपपणु एक सरखुं होवाथी जाति वाचकपणे तेथो एकज कहेवाय, पण इव्यपणे अनंता कहेवायठे, माटेज जगतमा एवी वदंता ठे के, “प्रभु एकमां अनेक ठे, अने अनेकमां एक ठे” कोई सिद्धमा मोटा नाहनापणुं नथी, सर्व समान ठे. मोटामां मोटापणु तेनी पोतानी अपेक्षा ए नथी थतुं पण बीजा नाहनानी अपेक्षा ए थायठे, मोटो पोताना स्वरूपे करी खुं मोटापणु पामेठे, जो मोटो कहेथु तो कोई काले नाहानो थवानो संजव थशे ! अने नहानो थयाथी स्वरूपमां अपूर्णता थशे, माटे सिद्ध बधा सरखा ठे एम जाणवु अने सिद्ध जनना कर्मना अंश सर्व क्य थई गयाथी पुनरपि जगतमां आगमन थतु नथी जेम खुंजेजा अनाजना दाणाने प्रथवीमा वावीए तो ते उगे नही, तेम सिद्ध पणपाठा ससारी जीव थायनही केमके संसारमा आववु कर्म विना थतु नथी.

६३ नास्तिक - ईश्वर पृथ्वीनो नार उतारवाने अर्थे अवतार धारण करेठे ए वात सत्य ठे के मिथ्या ?

आस्तिक - ईश्वरने तो कोई शत्रु मित्र नाव नथी. तेम ठता दानवने मार वासारु तथा देवताओने निर्जय सुखी करवासारु अवतार धारण करे तो दानव शत्रु अने देवता मित्र ठखा के नी ! जेने शत्रु मित्र नाव होय तो ते ईश्वर शानो ! अने दानवोने प्रथम उत्पन्न शासारु कखा के जेओने मारवासारु पो ताने माताना उदरमा आवी नाना प्रकारनी वेदनाओ सहन करी सग्रामादिक आपत्ति वेठवी पडी ! वली दानव अने देवताओनो ईश्वर तो एकज ठे, सर्वमा तेज ईश्वरनी कजा ठे तेम ठता दानवनी उत्पत्ति करी तेथी ईश्वरमा अज्ञानपणु आवगे संसारमा त्रण प्रकारना जीव होय ठे एक धर्मी, बीजा पापी, त्रीजा महापापी जे कोईने मारे नही ते धर्मी कहेवायठे जे बीजा जीवने मारे ते पापी कहेवायठे ने जे पोताना जीवनो घात करे ते महापापी कहेवायठे. ईश्वरे देव तथा दानव वगैरेनी उत्पत्ति करी तेमा पोते अशरूपे प्रवेश कखो ठतां तेओने माखाथी आत्मघाती ठरजे ने तेम ठखाथी महापापी कहेवाशे

६४ नास्तिक - स्नाने करीने शुद्ध थवु ए मुक्तिनुं अग ठे

आस्तिक - पेटमा रोग होय ने शरीरनी बाहेर छेप लगाडीए तो ते रोग कदी मटे नही तेम आत्माना कर्म विकार ते शरीर शुचिथी कोई काले जाय नही ए

उपर दृष्टांत कहुं हूं जेम कोई मोटी ह्वेलीमां बालक मूतखो होय ते शुद्ध करवा ने जेटली जूमि बगनी होय तेटलीज धोवी जाइये तेम शरीररूप ह्वेली कर्म करी मलीन थई होय तेटलीज तपसाये करी शुद्ध करवी. पण आखा शरीरने स्नान, मङ्गन, स्वच्छ वस्त्रादिक, तथा सुगंध्यादिक करवानुं काई काम नथी, स्नान तो सोल शृंगारमानो प्रथम शृंगार ठे ते सर्व शृंगारनो त्याग करे ल्यारे ब्रह्मचारी कहेवाय. कर्म निर्जराने अर्थे मुनिने ब्रह्मचर्य व्रत पालवो कइयो तेथी पण स्नान करवुं नही एवुं सिद्ध थाय ठे.

६५ नास्तिक—यह दुनिया सब खुदाने पैदा करी है.

आस्तिक—यह दुनिया सब खुदाकी करी होवै तो जो खुदाका बंदा हरवखत खुदाकी बंदगी करै, कुरान वाचै, नमाज करे, औं रोजा रखै, तिसीकूं दुनीयांकी नियामते जैसेकी आज औलाद औं पैसा वगैरा मिलना चाहिये, औं हिंडु व गैरा सब फकीरके माफक होना चाहिये तैसे तो नही होता है दूसरे जी अठी स्वत्तीनत वाले आंखोके नामने मौजूद है. इस वास्ते ये बात रास्त नही है जो होवै है सो सब तकदीरसै होवै है

६६ नास्तिक—आ ससार रामे उत्पन्न कइयो ठे.

आस्तिक—जो आ जगत रामनुं उपजावेलुं होय तो जेअो हमेश रामनी न कि करेठे. पुराण वाचेठे वदना करेठे तथा एकादशी आदिक व्रत राखेठे तेअोनें सर्व इब्यादिक संपत्ति मलवी जाये बीजाअोने विपत्ति होवी जाये. ते म तो दीवामा आवतुं नथी बीजा मुसलमानादिक पण महा सपत्तिवान दीवामा आवे ठे तेथी बंधु कर्माधीन ठे.

६७ नास्तिक—अग्दान (कन्यादान) दीवाथी पुण्य थाय ठे. केमके. स्त्रीपु रूप हलीमली मैथुन क्रियाना सुखने पामे ठे. तेनुं फल दानदेनाराने थायठे

आस्तिक—जाई, तारा जेवो पूर्वपहूी तो एके मल्यो नथी तें तो आडो आंक वाड्यो. पण जाई, मैथुन क्रिया तो सर्वे थकी अशुद्ध ठे; यवन लोको पण इमाम ना दशरानी क्रिया करेठे, ल्यारे मैथुन सेव्याना बख पहेरीने करता नथी केमके ते बखने तेअो नापाक कहेठे तेमज हिंडुअो देवपूजामा, व्रतने दिवगे तथा तीर्थयात्रामा मैथुननो त्याग करेठे. जे मुमुक्षु (मुक्तिनी इच्छा करतो होय) तेणे प्रथम मैथुननो त्याग करवो ए कृत्य नरकनो हेतु होवाथी सर्वथा निंदनीक ठे

इति श्री आस्तिक नास्तिकनो संवाद संहिस रूपे समाप्त

॥ ॐ श्री जिनाय नम ॥

अथ श्रीयशोविजयजी उपाध्यायकृत सम्यक्तना
सडसठ बोलनी सजाय प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ ॥ सुठत वद्विकादबिनी । समरी सरसति मात ॥ समकित सड
सठ बोलनी । कहिंशूं मधुरी वात ॥ १ ॥ समकित दायक गुरुतणो । पञ्चवयार
न आय ॥ जव कोडाकोडे करी । करता सर्व उपाय ॥ २ ॥ दानादिक किरिया न
दिये । समकित विण शिवशर्म ॥ तेमाटे समकित वडूं । जाणो प्रवचन मर्म ॥ ३ ॥
दर्शन मोह विनाशथी । जे निर्मल गुणगण ॥ ते निश्चय समकित कह्यो । तेहना
ए अहिवाण ॥ ४ ॥ ॥ ढाल ॥ देइ देइ दरसण आपणू, एदेशी ॥ ॥ चउ सडहणा
तिलिग ठे । दशविध विनय विचारोरे ॥ त्रिण छुडि पण दूपण । आठ प्रनाविक
धारोरे ॥ ५ ॥ ॥ त्रूटक ॥ प्रनाविक अड पंच नूषण । पच लहण जाणिये ॥ पट् जयण पट्
आगार जावन । ठद्विहा मन आणिये ॥ ५ ॥ ॥ षट् गण समकित तणा सडसठ ।
जेद एह उदार ए ॥ एहनो तत्व विचार करता । लहीजे चवपार ए ॥ ६ ॥ ॥ ढाल ॥
चडु, विह सडहणा तिहां । जीवादिक परमठोरे ॥ प्रवचनमा जे नापिया । लीजे ते
नो अठोरे ॥ ७ ॥ ॥ त्रूटक ॥ तेहनो अर्थ विचार करिये । प्रथम सडहणा खरी ॥ बीजी
सडहणा तेहना जे । जाण मुनिगुण जवहरी ॥ सवेग रग तरग जीले । मार्ग छुड
कहे बुधा ॥ तेहनी सेवा कीजिये जिम । पीजिये समता सुधा ॥ ८ ॥ ॥ ढाल ॥ सम
केत जेणे ग्रही वमिऊ । निन्हव ने अहठंदारे ॥ पासडाने कुशीलिया ते । वेप
विम्वक मदारे ॥ ९ ॥ ॥ त्रूटक ॥ मदा अनाणी दूर ठंनो । त्रीजी सडहणा ग्रही ॥ परद
र्शनीनो सग तजिये । चोथी सडहणा कही ॥ हीणातणो जे सग न तजे ।
तेहनो गुण नवि रहे ॥ ज्यूं जलधि जलमा जळू गंगा । नीर लूणपणू लहे ॥ १० ॥
॥ ढाल ॥ कपूर होवे अति कजळू रे, एदेशी ॥ ॥ त्रण लिग समकित तणारे ।
पहिलो अतअनिलाप ॥ जेहथि श्रोता रस लहेरे । जेवो साकर डारवरे । प्राणी, धरिये
समकित रग । जिम लहिये सुख अजग रे । प्राणी, टेक ॥ ११ ॥ तरुण सुखी
स्त्री परिवखोरे चतुर सुणे सुरगीत ॥ तेहथि रागे अति घणो रे । धर्म सुण्यानी री
त रे । प्राणी ० ॥ १२ ॥ नूख्यो अटवी कतखो रे । जिम द्विज घेवर चग ॥ इष्ट
तिम जे धर्मे रे । तेहिज बीजूं लिग रे । प्राणी ० ॥ १३ ॥ वैयावच्च गुरु वेवन्

रे । त्रीजुं लिंग उदार ॥ विद्या साधक तणि परे रे । आलस नविय लगार रे ।
 प्राणी० ॥ १४ ॥ ॥ ढाल ॥ प्रथम गोवालातणे नवेजी, ए देशी ॥ ॥ अरिहंत ते जि
 न विचरता जी ॥ कर्म खपी दुआ सिद्ध ॥ चेश्य जिण पडिमा कही जी । सूत्र
 सिद्धांत प्रतिद्ध । चतुर नर, समजो विनय प्रकार । जिम लहिये समकित सार ।
 चतुर० ॥ १५ ॥ धर्म विमाधिक नाखेओ जी । साधु तेहना गेह ॥ आचारय आ
 चारना जी । दायक नायक जेह । चतुर० ॥ १६ ॥ उपाध्याय ते शिष्यने जी ।
 सूत्र नणावण हार ॥ प्रवचन सष वखाणिये जी । दरसण समकित सार । च
 तुर० ॥ १७ ॥ नगति बाह्य प्रतिपत्तिशी जी । हृदय प्रेम बहुमान ॥ गुण श्रुति
 अवगुण ढांकवा जी । आशातननी हाण । चतुर० ॥ १८ ॥ पांच जेद ए दश त
 णो जी । विनय करे अनुकूल ॥ सीचे तेह सुधारसें जी । धर्म वृद्धन मूल । चतुर० ॥
 ॥ १९ ॥ ढाल ॥ ॥ धोबीडा तूं धोए मननूं धोतीयू रे ॥ ॥ एदेशी ॥ ॥ त्रण शुद्धि सम
 किततणी रे । तिहाँ पहिली मन शुद्धि रे ॥ श्री जिनने जिनमत विना रे । फूठ स
 कल ए बुद्धि रे ॥ चतुर विचारो चित्तमां रे । टेक ॥ २० ॥ जिन जगते जे नवि थयुं
 रे । तेवीजाथि नवि थाय रे ॥ एवु जे मुख नाखिये रे । ते वचन शुद्धि कहिवाय रे । च
 तुर० ॥ २१ ॥ वेद्यो जेद्यो वेदना रे । जे सहतो अनेक प्रकारे ॥ जिण विण पर सुर
 नवि नमे रे । तेहनी काया शुद्ध उदाररे । चतुर० ॥ २२ ॥ ॥ ढाल ॥ मुनि जन मारगनी,
 ए देशी ॥ ॥ समकित दूपण परिहरो । तेमां पहिली ठे शका रे ॥ ते जिन वचन
 मां मत करो ॥ जेहने समनूप रंकारे । समकित दूपण परि हरो ॥ टेक ॥ २३ ॥
 कंखा कुमतनी वांठना । बीजूं दूपण तजिये ॥ पामी सुरतरु परगडो । किमबाकल
 जजिये ॥ समकित० ॥ २४ ॥ सशय धर्मेना फलतणो । वित्तिगिह्वा नामे ॥ त्रीजुं दूपण
 परिहरो । निज शुच परिणामे ॥ समकित० ॥ २५ ॥ मिथ्यामति गुण वर्णनो ।
 टालो चोयो दोष ॥ उन्मारगि शुणता हुवे । उनमारग पोप ॥ समकित० ॥ २६ ॥
 पांचमो दोष मिथ्यामती । परिचय नवि कीजे ॥ उम शुच मति अरविदनी । न
 ली वासना लीजे ॥ समकित० ॥ २७ ॥ ॥ ढाल ॥ जोलिडा हंसारे विपय न रा
 चीये, ए देशी ॥ आठ प्रनाविक प्रवचनना कहा । पावयणी धुरि जाण ॥ व
 र्तमान श्रुतना जे अर्थनो । पार लहे गुण खाण ॥ धन धन शासन मदन सु
 निवरा । टेक० ॥ २८ ॥ धर्म कषी ते बीजो जाणिये । नंदिखेण परि जेह ॥ नि
 ज उपदेशेरे रंजे लोकने । जंजे हृदय सदेह । धन धन० ॥ २९ ॥ वादी त्रीजोरे त
 कं निपुण जणो । मल्लवादी परि जेह ॥ राजदारेरे जयकमला वरे । गाजंतो जिम

मेह । धन धन० ॥ ३० ॥ जड्बाहु परि जेह निमित्त कहे । परमत जीपण का
 ज ॥ तेह निमित्तीरे चोथो जाणिये । श्री जिनशासन राज । धन धन० ॥ ३१ ॥
 तप गुण ऊपर रोपे धर्मने । गोपे नवि जिन आण ॥ आश्रव लीपेरे नविकोपे क
 दा । पचम तपसी जाण । धन धन० ॥ ३२ ॥ ठगो विद्यारे मत्र तणो बजि । जिम
 श्रीवयर मुणिंद ॥ सिद्ध सातमोरे अंजन योगथी । जिम कालिक मुनि चढ । धन
 धन० ॥ ३३ ॥ काव्य सुधारस मधुर अर्थ नखा । धर्म हेतु करि जेह ॥ सिद्धसेन
 परि नरपति रीजवे । अछम वर कवि तेह । धन धन० ॥ ३४ ॥ जव नवि होवे प्र
 नाविक एहवा । तव विधि पूरव अनेक ॥ जात्रा पूजादिक करणी करे । तेह प्रनावि
 क ठेक । धन धन० ॥ ३५ ॥ ढाल ॥ सतीय सुनझानी । एदेशी ॥ ॥ सोहे समकित
 जेहथी । सखि जिम आचरणे देह ॥ नूपण पाच ते मन वस्या । सखी मन व
 स्या । तेमां नही संदेह । मुज समकित रग अचल होयो । टेक० ॥ ३६ ॥ पहि
 लुं कुशलपणुं तिहा । सखी वदन ने पञ्खाण ॥ किरियानो विधि अति घणो ।
 सखी आचरे तेह सुजाण । मुज० ॥ ३७ ॥ बीजूं तीरथ सेवना । सखी तीरथ
 तारे जेह ॥ ते गीतारथ मुनिवरा । सखी तेहस कीजे नेह । मुज० ॥ ३८ ॥ ज
 गति करे गुरु देवनी । सखी त्रीजूं नूपण होय ॥ किणहि चलाव्यो नवि चले ।
 सखि चोथु नूपण जोय । मुज० ॥ ३९ ॥ जिनशासन अनुमोदना । सखी जेह
 थी बहु जन दुंत ॥ कीजे तेह प्रनावना । सखी पाच नूपणनी खंत । मुज०
 ॥ ४० ॥ ॥ ढाल ॥ इम नवि कीजे हो, ए देशी ॥ ॥ लक्षण पाच कहां स
 मकित तणा । धुर उपशम अनुकूल । सुगुण नर ॥ अपराधी सूपण नवि चि
 तथकी । चितविये प्रतिकूल । सुगुण नर । श्री जिननापित वचन विचारिये । टेक०
 ॥ ४१ ॥ सुरनर सुख जे डख करि लेखवे । वठे शिवसुख एक ॥ सु० ॥ बीजूं
 लक्षण ते अंगीकरे । तारक संवेग सुटेक । सु० । श्रीजिन० ॥ ४२ ॥ नारक चारक स
 मजव कजग्यो । तारक जाणिने धर्म । सु० ॥ चाहे निकलनु निर्वेद ते । त्रीजूं ल
 क्षण मर्म । सु० । श्री जिन० ॥ ४३ ॥ इव्यथकी ड खियानी जे दया । धर्मही
 णानी जाव । सु० ॥ चोथुं लक्षण अनुकपा कही । निज शकते मनव्याव ।
 सु० श्रीजिन० ४४ ॥ जे जिन नारखुं ते नहि अन्यथा । एहवो जे दृढ रग । सु०
 ते आस्तिकता लक्षण पाचसु । करे कुमतिनो ए जग । सु० । श्रीजिन० ॥ ४५ ॥
 ॥ ढाल ॥ जिन जिन प्रति वदन दिसे, ए देशी ॥ पर तीर्थी परना सुर तेणे । चै
 त्य ग्रहां वलि जेह ॥ वदन प्रमुख तिहा नवि करवु । ते जयणा षट जेय रे ।

नविका, समकित यतना कीजे । टेक० ॥ ४६ ॥ वदन ते कर जोडन कहिये । न
मन ते गीस नमाडे । दान ५८ अन्नादिक देवूं । गौरव जगति देखाडेरे । नवि
का० ॥ ४७ ॥ अनुप्रदान ते तेहने कहिये । वार वार जे दान ॥ दोष कुपात्रे पात्र
मतिये । नहि अनुकंपा मान रे । नविका० ॥ ४८ ॥ अण बोलावे जेह ना
खवूं । ते कहिये आलाप ॥ वार वार आलाप जे करवो । ते कहिये संलाप रे ।
नविका० ॥ ४९ ॥ ए जयणाथी समकित दीपे । बलि दीपे व्यवहार ॥ एमां पण
कारणाथी जयणा । तेना अनेक प्रकार रे । नविका० ॥ ५० ॥ ढाल ॥ ललना
नीवेशी ॥ छुद् धरमथी नवि चले । अति दृढ गुण आधार ललना ॥ तो पण
जे नवि तेह्या । तेहने एह आगार । ललना ॥ ५१ ॥ बोळुं तेहवु पालिये ।
दंति दत सम बोल । ललना ॥ सज्जनना दुर्जन तणा । कष्टप कोटिने तोल । ल
लना ॥ ५२ ॥ राजा नगरादिक धणी । तस शासन अजियोग । ललना । तेहथी
कार्तिकनी परे । नहि मिथ्यात संयोग । ललना ॥ ५३ ॥ मेलो जननो घण कह्यो ।
बल चोरादिक जाण । ललना ॥ पेत्रपालादिक देवता । तातादिक गुरु गाण । ल
लना ॥ ५४ ॥ वृत्ति दुर्जन आजिविका । ते नीखण कंतार । ललना ॥ ते हेते दू
पण नही । करता अन्य आचार । ललना ॥ ५५ ॥ ढालाराग मद्दहार ॥ नाविजे
रे समकित जेहथी रुअडूं ॥ ते जावनारे जावो मनकरि परवडूं ॥ जो समकित रे ताजूं
साजूं मूल रे ॥ तो व्रत तरु रे दीपे शिवपद अनुकूज रे ॥ ५६ ॥ त्रूटका ॥ अनुकूज मू
ल रसाल समकित । तेहविण मति अंध रे ॥ जे करे किरिया गर्व नरिया । तेह
जूवो धव रे ॥ ए प्रथम जावना गुणो रुअडी । सुणो बीजी जावना ॥ वारणूं समकि
त धर्मपुरतुं । एहचोते पावना ॥ ५७ ॥ ढाला ॥ त्रीजी जावना रे समकित पीठ जो दृढ स
ही ॥ तो मोटो रे धर्म प्रासाद रुगे नही ॥ पाश्ये खोटे रे मोटो मंमाण न शोनी
ये ॥ तेह कारण रे समकितसं चित थोनीये ॥ ५८ ॥ त्रूटका ॥ थोनीये चित नित एम
जावी । चोथी जावना नाविये ॥ समकित निधान समस्त गुणतुं । एहतुं मन ला
विये ॥ तेह विण तूटा रत्न सरिखा । मूल उत्तर गुण सवे ॥ किम रहे ताके जेह
हरवा । चोर जोर नवे नवे ॥ ५९ ॥ ढाला ॥ जावो पंचमी रे जावना सम दम सार रे
पृथवी परे रे समकित तस आधार रे ॥ ठवी जावना रे जाजन समकित जो मि
ले ॥ श्रुत शीजनो रे तो रस तेहमा नवि ढजे ॥ ६० ॥ त्रूटका ॥ नवि ढले समकित जाव
ना रस । अमियसम संवरतणो ॥ पट जावना ए कही एहमा । करो आदर अ
ति घणो ॥ ६१ ॥ जावता परमार्थ जलनिधि । होऽ निनु ऊकणोल ए ॥ धन पवन

पुण्य प्रमाण प्रगटे । चिदानन्द कलोल ए ॥ ६१ ॥ ढाला ॥ जे सुनिवेश सके नवी ठंणी ए देगी ॥
 ठरे जिहा समकित ते थानक । तेहना पठ विध कहिये रे ॥ तिहा पहिलुं थानक
 क ठे चेतन । लक्ष्ण आतम लहिये रे ॥ खीर नीर परे पुजल मिश्रित । पण
 एहथी ठे अलगो रे ॥ अनुभव हंस चच जो लागे । तो नवि ठीसे बलगो रे ॥ ६२ ॥
 बीजूं थानक नित्य आतमा । जे अनुभूत संजारे रे ॥ बालकने स्नान पान वासना
 । पूरव जब अनुसारे रे ॥ देव मनुज नरकादिक तेहना । ठे अनित्य पर्याय रे ॥
 इव्यथकी अविचलित अखंमित । निज गुण आतमराय रे ॥ ६३ ॥ त्रीजूं थान
 क चेतन कर्ता । कर्मतणे ठे योगे रे ॥ कुञ्जकार जिम कुञ्जतणो जे । दमादि
 क संयोगे रे ॥ निश्चयथी निज गुणनो कर्ता । अनुपचरित व्यवहारे रे ॥ इव्य
 कर्मनो नगरादिकनो । ते उपचार प्रकारे रे ॥ ६४ ॥ चोथूं थानक ठे ते जोका ।
 पुण्य पाप फल केरो रे ॥ व्यवहारे निश्चय नय दृष्टे । जुंजे निज गुण नेरो रे ॥ पं
 चम थानक ठे परम पद । अचल अनत सुख वासो रे ॥ आधि व्याधि तन म
 नथी लहिये । तसु अजावे सुख खासो रे ॥ ६५ ॥ षठूं थानक मोहूतणू ठे । सं
 यम ज्ञान उपायो रे ॥ जोसहिजे लहिये तो सघले । कारण नि फलथायो रे ॥
 कहे ज्ञान नय ज्ञानज साचू । ते विण फूठीकिरिया रे ॥ न लहे रूपू रूपू जाणी
 । सीप जणी जे फिरियारे ॥ ६६ ॥ कहे किरियानय किरियाविण जे । ज्ञान तेह
 सू करजो रे ॥ जल पेसी कर पद न हलावे । तारू ते किम तरसे रे ॥ दूषण नूपण
 ठे इहा बहुला । नय एकेकने वादे रे ॥ सिद्धाति ते बेहु नय साथे । ज्ञानवत अ
 प्रमादे रे ॥ ६७ ॥ इणि परे सडसठ बोल विचारी । जे समकित आराहे रे ॥
 राग द्वेष टाली मन वाली । ते समसुख अवगाहे रे ॥ जेहनो मन समकितमा
 निश्चल । कोइ नही तस तोले रे ॥ श्री नय विजय विबुध पय सेवक । वाचक ज
 स इम बोले रे ॥ ६८ ॥

॥ इति श्री सम्यक्त सडसठबोल सजाय समाप्त

ॐ श्री जिनाय नम
अथ श्री शृंगारवैराग्यतरंगिणीप्रारंभः

संस्कृतटीकाना कर्ता आरभमां मंगलाचरण करेते.

उपजातिवृत्तं ॥ श्रीपार्श्वनाथं प्रणिपत्य चत्तया पुरि
स्थितं श्रीफलवर्द्धिकायां ॥ शृंगारवैराग्यतरंगिणी या
व्याख्याननाव्या क्रियते मया सा ॥ १ ॥

अर्थ - श्रीफलवर्द्धिकानामनी पुरीनेविषे स्थित श्रीपार्श्वनाथ जगवानने ज
क्तिवडे प्रणाम करीने शृंगारवैराग्यतरंगिणी नदीनी नाविकारूप व्याख्या हुं करुतुं.
अवतरण-श्रीसोमप्रनाचार्य, वैराग्यनी वासनावडे शृंगारने दृषित करनार ठ
ता आ शृंगारवैराग्यतरंगणी नामनो ग्रंथ करवानी कामनाएकरी स्त्रीतुं रूप निं
दा करवा योग्य ठे एवु प्रतिपादन करेते ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ धर्मरामदवाग्निधूमलहरीलावण्य
लीलाजुष स्तन्वंगया यमितान्विलोक्य तदहो वालान्किमु
त्कठसे ॥ व्यालान् दर्शनतोपि मुक्तिनगरप्रस्थानविघ्नक
मान् मखा दूरममून विमुंच कुशल यद्यात्मनो वांगसि ॥ २ ॥

अर्थ - अहो ! आ धर्मरूप वननेविषे वावाग्निना धुमाडानी पक्तिना जेवा श्या
मवर्णवाला, सूक्ष्मअंगयुक्त शरीरवाला स्त्रीओना बांधेला जे वालो ठे, तेने जोई
ने तू केम आनंदने पामेते ? जो तूं पोतातुं सारुं थवानी षडा करतो हो तो, जे
ना दर्शनेकरी मुक्तिरूप नगरीना मार्गमां विघ्न थायते, एवा वालोने व्याल (स
र्प) रूप मानीने दूरथी त्याग कर एणेकरी वैराग्यरस दर्शावीने शृंगारने दृषित
कखोते, जेम सर्प जांबा अने काला होयते, तेमज स्त्रीना वाल पण लावा
अने काला होवाथी, तेओतुं साहस्यपणुं कखुते, जेम सर्पने जोतांज आपणे
दूर नाशी जैये वैये, तेम ते वालोने जोताज तेओनो तिरस्कार करवो जोइये
शकुनशास्त्रमां कखुते के, कोई बाहेर गाम कामे जतो, होय ते वखते, जो मा
र्गमां साप मजे, तो ते काममां विघ्न पडतां ते कार्यनी सिद्धि थाय नही, तेमज

मुक्तिरूप नगरीना मार्गमा स्त्रीना बालरूप सर्प जो आडे आवे एटले मोह उत्पन्न थाय तो मोटो विघ्न थायठे, माटे ए सर्वथा त्याग करव ठे उपर कहु के, स्त्रीश्रोना बाधेला बालने व्यालरूप जाए, ए ठेकाणे व मत्कार राख्यो ठे के, बालशब्दमा यकार मळ्याथी व्यालशब्द थायठे, जने व्याल कहेतुं योग्य ठे एने श्लेषालंकार कहेठे

आ वृत्तमा, सर्प चालती वखते जेम वांकोचूको थई जायठे, तेम श विटडीआला होय तेने कविलोको श्रेष्ठ कहेठे. अने जेम सर्पनो रं कालो होयठे, तेम स्त्रीना अति काला रगवाला बाल होय, तो ते श्रेष्ठ ठे. एवी रीते बालनी जे श्रेष्ठता ठे, ते विषयक शृंगार रस दर्शाव्योठे, म मार्गमा सर्प आमो आवे तो कार्यसिद्धि थाय नही; तेम गुणस्थानक एी चडतां पुरुषने वचमां स्त्रीना केशनो मोह उत्पन्न थयो तो तेथी श्रेष्ठ हनी सिद्धि थती नथी, एवी रीते बालनी जे निर्नेर्त्तना कीधीठे ते विषय रस दर्शाव्योठे. ॥ १ ॥

ये केशा लसिताः सरोरुहदृशा चारित्रचंद्रप्रनाभ्रंशां
नोदसहोदरास्तव सखे चेतश्चमत्कारिणः ॥ क्लेशान्मू
र्त्तिमतोऽवगम्य नियतं दूरेण तानुत्सृजेत्तौचेत् कष्टपरंप
रापरिचितः शोच्यां दशामेष्यसि ॥ ७ ॥

अर्थ - हे सखा, कमलपत्रना जेवां नेत्रोवाली स्त्रीना देदीप्यमान के रित्ररूप चडनी ज्योतिनो नाश करवाविषे मेघजेवा ठे, अने जे तारा अंत चमत्कार उत्पन्न करेठे, तेथो मूर्त्तिमान चक्रुरिदियगम्य क्लेश ठे. एम जाणीने दूर नाखी वे जो एश्रोनां तु त्याग करीश नही, तो तु कष्टपरंपरा थयोथको शोक करवायोग्य अवस्थाने पामीश. आ श्लोकमा स्त्रीना केशने सादृश्य कहुठे, ते आवीरीते "लसित" ए शब्द मूलमा ठे, एनो अर्थ करी सित केहेता युक्त, केशशब्दनी क्लेश शब्द थायठे

आ वृत्तमा, मेघना वरुणी साये स्त्रीना केशनी बराबरी करीठे जे काशने विषे मेघ अति शोभायमान दीगमा आवेठे, तेम स्त्रीना मस्तके केश अति लसित एटले देदीप्यमान दीगमा आवेठे स्त्रीनां केश जे चलक य ते श्रेष्ठ कहेवायठे ए मुख्य केशनी श्रेष्ठतानो विषय कहेतां अंतरगत त

धारण करनारी स्त्रीनां नेत्रोने कमलपत्र जेवां कर्हाते, ए बधो शृंगार रस जाण वो. अने स्त्रीना एवा केश जोईने पुरुषना अंत.करणमां मदनादि विकाररूप चमत्कार उत्पन्न थायते, माटे ते क्लेशरूप कर्हाते, केमके, कांमादि विकारो क्लेशरूप कर्हाते, क्लेशो अंतरना विषय होवाथी चक्षुना विषय नथी, तेअ्योएज जाणे केश रूप मूर्ति धारण करी होय नी। एवी उत्प्रेक्षा थायते. ए कारणथी स्त्रीना देदीप्य मान केशने क्लेशरूप जाणीने तेनो तु त्याग कर, एवडे वैराग्य रस दर्शाव्योते.॥२॥

वसंततिलकावृत्तम्॥ ये शुश्रुवोधशशिवखंडनराहुचंद्राश्रितं
हरंति तव वक्रकचा दृशांग्या ॥ ते निश्चितं सुकृतमर्त्यं
विवेकदेहनिर्दारणे ननु नवक्रकचाः स्फुरंति ॥ ३ ॥

अर्थ - हे पुरुष, निर्मल ज्ञानरूप चक्षुं ग्रासन करवाविषे, स्त्रीना वांका केश, राहु जेवा क्रूर ठे. ते तारा अंत.करणमां चमत्कार उत्पन्न करेते. अर्थात् राहु जेम चक्षुनो ग्रास करेते, तेम ए वांका केश तारा ज्ञाननो नाश करनारा ठे. अने ते जाणे सुकृतरूप मनुष्यना विवेकरूप देहनुं विदारण करवाने नवी कर्वत ज होयनी! ए उत्प्रेक्षा ठे. एमा “वक्र कच” एटले वाका केश ते “नवक्रकच” एटले नवी करवतना जेवा ठे. एमकह्याथी श्लेषरूप चमत्कार जाणवो.

आ वृत्तमां, स्त्रीना वाका केश होय ते श्रेष्ठ कर्हाते स्त्रीना वक्रकेश पुरुषना मनने मोहित करेते, एथीज अंत.करणमां चमत्कार उत्पन्न करेते एम कष्ट ठे, माटे ए शृंगार रस ठे; अने स्त्रीना वाका केशनुं दर्शन यतांज पुरुषनुं मन विव्दल थायते, वेहनी पण शुद्धि रहेती नथी, अने ज्ञाननो नाश थई जायते तेथी तेअ्योने राहुरूप कर्हाते. तेमज विवेकरूप शरीरने कापवाने नवी कर्वत जेवा कर्हाते, एवा जाणीने तेअ्योनी तु त्याग कर. ए वैराग्य रस जाणवो. ॥३॥

उपजातिवृत्तम्॥अलंकृतं कुंतलचारमस्या विलोक्य लोक कुरुते
प्रमोदम्॥वैराग्यवीरचिह्नं चरंत ममुं न कि पश्यसि कुंतलचारम्॥४॥

अर्थ - हे पुरुष, पुष्पादिकेकरी गुंथेला स्त्रीना बांधेला केशोनी समूह एटले आंबोडो जोईने लोक आनंदने पामेते, परंतु ए वैराग्यरूप वीरनुं बेदन करणा रुं प्राप्त नामक इ.सह शश्व ठे एम तूं कां जातो तथी? अर्थात् स्त्रीना अलंकृत “कुंतलचार” एटले जे शणगारीने बांधेला केश ठे, ते कुंतलचार एटले प्राप्त नाम

क शस्त्रज ठे एम जाणवु. आ ठेकाणे अज एटले लकाररहित, कृत एटले करे लो, जे कुतलनार शब्द, तेनो कुतनार एवो शब्द थाय, ते योग्य ठे

आ वृत्तमा, पुष्पादिकेकरी शृंगारेलो स्त्रीना केशोनो अबोमो पुरुषने एवो रमणीय जागेठे के, ते जोईने वैराग्यवान पुरुषनो वैराग्य पण मगी जायठे, एवी श्रेष्ठता कहीठे, ते शृंगाररस ठे अने ते दु.खे करीने पण सहन न थाय एवा प्राप्त नामक शस्त्ररूप ठता वैराग्यनो नाशकरनारो ठे, माटे तेनो त्याग कर, ए वैराग्य रस ठे ॥ ४ ॥

वसततिलकावृत्तम् ॥ कस्तूरिकातिलकितं तुलिताष्टमीञ्च
चित्ते विचितयसि सौख्यनिमित्तमेकम् ॥ वामभ्रुवां यदलिकं
तदहो अलीकमित्याख्यैव परया प्रवदंति रूपम् ॥ ५ ॥

अर्थ - हे पुरुष, जेमा कस्तूरीनो तिलक कखोठे, तेथी अष्टमीना चड जेवी जेनी सुंदर चुकुटी देखाय ठे, ते अद्वितीय सौख्यनुं कारण ठे, एवु तु अंत करण मां चितन करेठे, ते व्यर्थ ठे अहो इत्याश्रयें! ते स्त्रीओनुं अलिक एटले जे लजाट ठे, तेने पडित लोको अलीक एटले मिथ्या कहेठे अर्थात् अलिक एवा वे रूप लजाट वाचक ठे, तेओमाना पहेला रूपने बीजा रूपे करी जाण, एटले लजाटने मिथ्या जाण, ए पण श्लेषज ठे

आ वृत्तमा, अष्टमीनो चड अर्धगोलाकार ठता वने खूणाए सरखो देखायठे, तेना वचमा उयाम वर्णना चादलाना जेवु देखायठे, तेथी ते अति शोणित जागेठे, तेम स्त्रीनुं पण वाकु लजाट ठतां तेमा कस्तूरीनो तिलक कखो ह्योय, तो अति मनोहर देखायठे, ते जोईने पुरुषना मननेविषे घणो आनंद थायठे, ते शृंगाररस ठे अने ए जे कस्तूरीना तिलक सहित स्त्रीनुं लजाट अति शोणायमान देखायठे, तेमां काई अर्थ नथी, कितु व्यर्थ ठे, माटे तेनो त्याग करवो ए वैराग्यरस ठे ॥ ५ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ न भूरिय पंकजलोचनायाश्चकास्ति शृंगाररसै
कपात्रम् ॥ नूः किलसौ साधुतरा प्रसूते निबधन मोहविपद्भुमस्य ॥ ६ ॥

अर्थ - हे पुरुष, कमलपत्रना जेवा लोचनवाली स्त्रीनी शोणायमान चुकुटी ठे, ते जाण शृंगाररसनुं एक पात्रज ठे, ते अतिशय श्रेष्ठ नूमि ठे, केमके, एथकी मोह रूपविषना वृद्धनो प्राङ्गर्वाव उत्पन्न थायठे, अर्थात् नू एटले चुकुटी, ते साधुतरा

नू एटले नूमि थायठे, एम कहु, तेमा आवी रीते श्लेष ठे:- सा एटले प्रसिद्ध, धुतरा एटले रेफरहित एवो, नू शब्द नूमिवाचक शब्द थयो ते योग्य ठे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनी जे शोनायमान चुकुटि; तेने शृंगार रसना पात्ररूपे कही ठे; केमके, एने जोताज पुरुपने मोह उत्पन्न थायठे, माटे ए शृंगार रस ठे, अ ने ए चुकुटि नथी पण मोहरूप विपना वृद्धने उत्पन्न करनारी सारी नूमि ठे, एम कहेवाथी वैराग्य रस जाणवो. ॥ ६ ॥

मालिनीवृत्तम् ॥ नवकुवलयदामश्यामलान् दृष्टिपातान् कृत
परमदनाशान् विक्षिपत्यायताङ्गी ॥ इति बहुसि मुदं किं मोह
राजप्रयुक्तान् प्रशमनतवधार्थं विद्यमूनृष्टिपातान् ॥ ७ ॥

अर्थ.- हे पुरुप, विस्तीर्ण नेत्रोवाली स्त्रीना कुवलयनी माला जेवा श्यामवर्णवाला, अन्यमदना नाश करनारा जे कटाह, ते मारा उपर नाखेठे, एम जाणीने तूं शासारु हर्षित थायठे ? अरे, ए जे दृष्टिपात (कटाह) ठे ते प्रशम रूप शूरवीरनो वध करवा सारु मोह राजाए प्रेरणा करेला ऋष्टिपात एटले तलवारना पात (घा) ठे, एम जाण; अंही दृष्टिपातनो ऋष्टिपात आवी रीते थयो ठे:- दृष्टिपात शब्दतुं विशेषण मूलमा “ कृतपरमदनाशान् ” ठे, एनो श्लेष करी आवो अर्थ थाय ठे:- कृत एटले कव्यो, परम एटले अत्यंत, दनाश एटले वकारनो नाश थयाथी ऋष्टिपात शब्द थाय ठे ते योग्य ठे

आ वृत्तमां, विस्तीर्ण नेत्रोवाली स्त्री कही ठे, एथी स्त्रीना विशाल नेत्रोने कवीअो ए वृत्तम कह्या ठे, एम जाणवु, एवा विशाल नेत्रोना जे कटाह, ते कुवलयनी माला जेवा, अने अन्य मदना नाश करनारा कह्या ठे, एटले जे पुरुप उपर कुवलयनी मालाना जेवा कटाह पणे ते पुरुप वीजा गमे तेवा मदवालो होय तो पण तरत ते स्त्रीनी उपर मोहित अईने तेना किंकर जेवो अई रहेठे, अने ते पोतानी उपर स्त्रीना कटाह पडया जोइने अति आनंदित थायठे, माटे ए शृंगार रस ठे, अने एवो जुब्ध थएलो पुरुप मोहरूप राजाने वश थयो थको इ स्त्री थायठे, केमके, नेत्रकटाहरूप तलवारना घाएकरी तेना प्रशमरूप शूरवीरपणानो वध थायठे. तेनो तु त्याग कर, ए वैराग्य रस ठे. ॥ ७ ॥

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ तस्या. कोपपदं यदाननमहोरा
त्रं स्मरन्नात्मनः संतापं वितनोपि काननमहो ज्ञात्वा स

खे तत्त्यजेः ॥ एतस्मिन् वसता मनीजवमहासर्पेण दष्टः

पुमान् कार्याकार्यविवेकशून्यहृदय कस्को न संजायते ॥७॥

અર્થ - હે સલા, કોપતું સ્થાન જે સ્ત્રીનું આનન એટલે મુખ, તેનું રાત્રદિવસ સ્મરણ કરીને તું પોતાને સંતાપ કરીએ છે, અહીં ઇતિ લેવે! તે આનન નથી પણ કાનન એટલે વન છે; એમ જાણીને મૂકી દે, કેમકે, એ વનમા રહેનારો જે કામરૂપ સર્પ, તે જે પુરુષને દશ કરે છે, તે પુરુષનો હૃદય કાર્યાકાર્ય વિવેકથી શૂન્ય થઈ જાય છે, એવો કોણ છે, કે જે ઠક્ત વિવેકશૂન્ય ન થાય! કિતુ સર્વ થાયજ છે. સામાન્ય સર્પનાવિપે કરીને મૂર્ઝિત થએલો પુરુષ પણ શૂન્ય હૃદયવાલો થઈ જાય છે, તો જેને સર્પે દશ કહ્યો હોય તેનુ શું કહેવું! અહીં કોપપદ આનન કાનન છે, એમ કહ્યુ છે, તેથી કોપપદ એટલે કકાર છે ડપપદ એટલે સમીપપદ જેનો એવો આનન શબ્દ કાનન શબ્દ થાય છે તે યોગ્ય છે, એશ્લેષ છે.

આ વૃત્તમાં, સ્ત્રીનું મુખ કોપાયમાન કહ્યુ છે તેનું કારણ એકે, સ્ત્રીની મુખમુદા યત્કિચિત્ કોપાયમાન પુરુષને દીઠામાં આવે તો તેને કામવિકાર ઉત્પન્ન થાય છે અથવા કોઈ કારણને લીધે સ્ત્રીને રીશ આવીને પુરુષને પોતાની મુખમુદા કોપાય માન કરી દેલાડચાથી તેને પ્રીતિ ઉત્પન્ન થાય છે, અને વિવિધ પ્રકારે તેને સમ જ્યાબ્યાની આતુરતાને લીધે કામવિકાર ઉત્પન્ન થાય છે તે અહીં શૃંગારરસ જાણવો, અને સ્ત્રીના મુખને વન જેવુ કહ્યુ છે, ને તેમા કામરૂપ સર્પ રહે છે તે દશ કરીને પુરુષના હૃદયને શૂન્ય કરે છે એટલે સારાસાર વિવેકરહિત કરે છે, અર્થાત્ મૃતકલુ વ્ય કરે છે, તેથી તેનો તુ ત્યાગ કર એ વૈરાગ્યરસ જાણવો ॥ ૭ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ साकारमालोक्य मुखं तरुण्य किं मुग्धबुद्धे मुद
मादधासि ॥ इदं हि चित्तभ्रमनाटकस्य विचक्षणैरामुखमाचचक्षे ॥ ८ ॥

અર્થ - હેરૂઢીબુદ્ધિવાન પુરુષ, તરુણ સ્ત્રીનું સાકાર એટલે સુંદર મુખ જોઈને તુ શાસારુ આનદિત થાય છે! એ મુખને વિદ્વાન પુરુષ નિશ્ચયે કરી ચિત્ત ભ્રમરૂપ નાટકનું આમુખ એટલે આચારજ કહે છે અહીં સાકાર એટલે આકાર સહિત જે મુખ હોય તે આમુખ છે, તે યોગ્ય છે

આ વૃત્તમાં, તરુણ સ્ત્રીનું સુંદર મુખ કહ્યુ છે, તેનું કારણ એકે મુખની સુંદરતા તારુણ્યપણામા હોય છે તે ગમે તેવી સારીબુદ્ધિવાલા પુરુષની બુદ્ધિને વિભ્રમ કરે છે એટલે મોહિત કરે છે. એ શૃંગાર રસ છે. અને તરુણ સ્ત્રીનું મુખ ચિત્તવિભ્રમરૂપ

नाटकनो आचारंज ठे एटले स्त्रीतुं मुख जोईने मोहनो आरज थाय ठे. जेम नाटकनो आचारंज सूत्रधार अने नटीप्रमुखना गायनद्वारा थायठे, ते जोनारा पुरुषना चित्तने मोह उत्पन्न करेठे. तेम ए पण जाणवुं. तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस ठे. ॥ ए ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ कामज्वरातुरमते तव सर्वदाऽऽस्यं वा
मभ्रुवां यदि कथंचिदवाप्तुमिच्छा ॥ यत्नं विनाप्यखिलज
न्मपरंपरासु तज्जातमेव ज्वतो ननु सर्वदास्यम् ॥ १० ॥

अर्थ - हे कामरूपज्वरथी पीडायमान थएली मतिवाला पुरुष, जो सर्वदा एटले सर्व काज सुंदर चुकुटिवाली स्त्रीतुं आस्य एटले मुख, कोई पण प्रकारेकरि तने प्राप्त थवानी इच्छा होय, तो निश्चयेकरि यत्नशिवाय संपूर्ण जन्मपरंपराने विषे सर्वदास्य एटले सर्वतुं दासपणुं तने थयलुंज ठे, एम जाणवुं. आश्लोकमां वे ठेकाणे "सर्वदास्य" ए शब्द आवेलो ठे ते बनेनो अर्थे निन्न निन्न थाय ठे. तेथी अहिं यमक जाणवो.

आ वृत्तमा, सुंदर चुकुटिवालुं स्त्रीतुं मुख कखु ठे, एथी जे स्त्रीनी चुकुटि सारी होय, ते सुरूप दीठामा आवेठे तेतुं मुख कामी पुरुषने अति प्रिय लागेठे. अने तेने जोताज कामीपुरुषनी मति कामज्वरथी पीडायमान थायठे, एज इहां शृंगार रस ठे अने एवा स्त्रीना मुखनी प्राप्तिनी इच्छा जे पुरुष करेठे ते जन्मो जन्मने विषे पराधीन रहेठे. माटे तेनो तूं त्याग कर ए वैराग्य रस जाणवो. ॥ १० ॥

शार्दूलविक्रीणितं वृत्तम् ॥ तस्या. साधुरदं विलोक्य वद
नं यः संश्रयत्यंजसा मुक्त्वा मुक्तिपथं हृदा प्रविशति भ्रां
त्या स दुर्गं वनम् ॥ तच्चात्यंतमचारुवश्वसतिर्येनात्र रा
गादिनिश्चोरैर्धर्मधनापहारकरणात्कष्टं न किं प्राप्यते ॥ ११ ॥

अर्थ - ते स्त्रीतुं "साधु रदं" एटले सारा दांतवालुं वदनं एटले मुख जो इने जे पुरुष वेगे करी तेनो आश्रय करेठे, एटले तेमा लुब्ध थायठे ते पुरुष, हा हा इति खेदे। मुक्तिमार्गने मूकीने, वसतिने अरम्य करीने डुखेकरि पण गमन न थाय एवा वननेविषे त्रांतिए करि प्रवेश करेठे ते वन मर्यादारहित ठे, तेमां गमन करनारा पुरुषतुं धर्मरूप धन रागादिके चोरो हरण करी जाय ठे तेथी शुं कष्टनी प्राप्ति थती नथी? अहिं साधुरदं वदन जे ठे ते वन ठे ए

म कलु ठे. ते आम.- साधुरदं ए शब्दो पदभेद करिये तो साधु अद ए वे पद जुदा थायठे एमाना अदं पदथकी दकार रहितपणुं थायठे, एम वदननु वन थायठे, ते योग्य ठे

आ वृत्तमा, सारा दातवाली स्त्रीनुं मुख जोताज पुरुपनुं मन लुब्ध थई जा यठे मुक्तिनो मार्ग जे धर्मध्यानादिक तेने ते मूकी दे ठे जेने वसति सारी ला गती नथी, मदनने वश थयो थको वनादिक एकात स्थलमां ते स्त्रीसहित अथवा स्त्रीना आगमननी इहावान थयो थको वास करेठे, अने तेथी महाकष्ट सहन करेठे, एवो स्त्रीना मुख दर्शननो जे प्रजाव ते अहिं शृंगार रस ठे अने स्त्रीना मुखरूप जे वन तेमा जे पुरुप प्रवेश करेठे तेनुं धर्मरूप धन रागादिक चोर जुंटी लिये ठे. माटे तेमां लुब्ध थवुं नही ए अहि वैराग्य रस ठे ॥ ११ ॥

पृथ्वीवृत्तम् ॥ यियाससि जवोदधेर्यदितटं तदेणीदृशामहीनसधरं धरं परिहरे पर दूरत ॥ इहास्फुलनतोऽन्यथाविशदवासनानो स्तव ब्रजिष्यति विशीर्णतां न जविता ततो वांबितम् ॥ १२ ॥

अर्थ - हे पुरुप, जो तु आ संसार समुद्रनो पार लेवानी इहा करतो हो, तो हरिणी जेवा नेत्रोवाली स्त्रीओना अहीन एटले अमृतादिवडे परिपूर्ण, अधर एटले ओष्ठरूप धर एटले पर्वत जे ठे तेने तु दूर नाखी दे - ते जो तु नही मूकीश तो ते पर्वतना सघटनना योगे तारी निर्मल वासनारूप नोका जागी जरो. तेथी तारु इहे लुं पार पडरो नही जेम समुद्रमा पर्वतना लागवाथी वहाण जागी जाय तो जवा आववादिक इष्टसिद्धि थती नथी ते प्रमाणे तु पण आ जव समुद्रने पहेले पार पहोची शकीश नही. अही अहीन अधर जे ठे ते धर एटले पर्वतज ठे, एम कलु ठे, ते आम - जे अहीन एटले अकारे करि हीन एटले रहित अधर शब्द ते धर शब्द थाय ठे, ते योग्य ठे.

आ वृत्तमा, स्त्रीना नेत्रोने हरिणीना नेत्रोनी बराबरी करीठे, एटले हरिणी ना नेत्रो अति विगाल अने सुशोजित होयठे तेम स्त्रीना नेत्रो पण अति विशाल तथा सुशोजित होवाथी पुरुपनुं मन खेची लियेठे, तथा जे कामी पुरुप ठे तेने स्त्रीना अधरामृतनेविषे घणी प्रीति होयठे, माटे अमृतेकरी पूर्ण अधर कहां ठे, ते शृंगार रस ठे. अने ते अधर ठे ते पर्वतज ठे, केमके, जे पुरुप ते अधरनेविषे लुब्ध थायठे ते संसारथी बूटी शकतो नथी ए वैराग्य रस ठे. ॥ १२ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ न ज्ञातीदं भ्रातः स्फुरदरुणरत्नौघकिरणप्रता-
नं तन्वंग्यास्तरलतरलं कुंडलयुगम् ॥ दमं डग्धं पुंसामिह विरहसं
योगदशयोर्ज्वलत्तोकानंगज्वलनयुगिदं कुंडयुगलम् ॥ १३ ॥

अर्थ.— हे नाई, वेदीप्यमान रक्तवर्ण रत्नो नो किरणसमूह ठे जेनाविपे, तथा
“ तरल तरलं ” एटले जे अत्यंत चंचल ठे. एवा रुशांगी एटले पातला आंगवाली स्त्री
ना जे “ कुंडलयुगं ” एटले जे वे कानना कुंडल ठे ते शोचता नथी, किंतु विरहदशा
अने संयोगदशामा शोक तथा कामाग्निएकरी युक्त ठे एटले विरहावस्थामां शोकावि-
र्जाव, तथा स्त्रीपुरुषनी संयोगावस्थामा कामाग्निनो आविर्जाव थायठे अने आ-
ससारनेविपे पुरुषना शांतिरूप दूधने बालवावाला ए कुंडयुगल एटले वे कुंडले एम
जाण अही कुंडलयुग ते कुंडयुगल थाय ठे ते आवीरीते—कुंडलयुग शब्दतुं वि-
शेषण तरलतरलं एवुं ठे एनो श्लेषार्थ आम ठे— तरलतर एटले चंचल ठे ल
एटले लकार जेमां एवो जे कुंडलयुग शब्द, तेमांनो लकार कहाडी नाखिये तो
कुंडयुग शब्द थायठे, अने युग शब्द थया पठी तेना अंतमा लकार जोडीये तो
कुंडयुगल शब्द थायठे. ते योग्य ठे.

आ वृत्तमा, स्त्रीना काननेविपे वेदीप्यमान रत्नजडित जे वे कुंडल होयठे, ते
स्त्रीना रूपमां अति वृद्धि करेठे अने चंचल होवाथी अति सुशोचित देखायठे.
तेमा पण रुशांगी एटले पातला आंगवाली स्त्रीने अति शोचेठे ए शृंगार ठे अ-
ने ए जे वे कुंडल ठे ते शोचाकारक नथी पण विरहदशा तथा संयोगदशामा शो-
क तथा कामाग्निना उत्पन्न करनारा ठे, ए पुरुषनी शांतिरूप दूधनो नाश करना-
रा ठे तेथी कुंडरूप ठे, तेनो तूं त्याग कर. ए वैराग्य रस ठे ॥ १३ ॥

अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ ताडकं सरूपहं तस्या पश्यन् मूढ परे
नवे ॥ नरो नरकपालेन्यस्ताडं कं न सहिष्यते ॥ १४ ॥

अर्थ— हे मूर्ख पुरुष, ते स्त्रीतुं साजिलाप “ तामकं ” एटले कर्णनूषण अथ
लोकन करता आगल आवनाग नवमध्ये नरक पालन करनारा अधम परमाधा-
मी पुरुषोनी पात्रोथी “ कताडं ” एटले कोण आघात सहन करनार नथी? अ-
पितु सर्व आघात सहन करत्रो. अही “ ताडकं ” ए शब्द वे वार आब्योठे, तेओ
नो अर्थ निन्न निन्न ठे ए यमकालंकार ठे

आ वृत्तमां, स्त्रीना कानना कुमल जोताज पुरुषने एवी अनिलापा थायठे के ए कुमलेकरी शोचायमान स्त्री मने प्राप्त थाय तो सारं ए शृंगार रस ठे, अने अनिलापाए करी स्त्रीना कुडलोने जे पुरुष जुवे ठे ते आवता नवमा नरकना पालन करनारा परमाधामी देवताओनी मार खायठे, माटे एनो त्याग करवो ए वैराग्य रस ठे. ॥ १४ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ सारं गलं यमरविंदविलोचनाना
मालोक्य चेतसि मुदं कलयन्ति मूढा ॥ हा निश्चितं रचि
तमुक्तिपुरप्रवेशव्यापेधमर्गलममुं न विचारयन्ति ॥ १५ ॥

अर्थ -- हे मूढ, कमलना जेवा नेत्रोवाली स्त्रीओनो जे सार एटले श्रेष्ठ, गल एटले कठ अवलोकन करीने पुरुषो अंत करणमा हर्ष पामेठे. परतु हा इति खे ठे । ए जे गल ठे ते मुक्तिनगरीमा प्रवेश करवानेविषे प्रतिबंध करनार होचायी अर्गल ठे, एवो विचार करता नथी अर्हीं सार एटले अरसहित गल शब्द ते अर्गल शब्द थायठे ते योग्य ठे

आ वृत्तमा, स्त्रीना कवनी श्रेष्ठता कहीठे जो स्त्रीनो कठ सारो होय तो ते ने जोताज पुरुष आनदित थायठे, अर्थात् कामनी इच्छा उत्पन्न थायठे, ते अही शृंगार रस ठे, अने एवा अनिलापी पुरुषोनो मुक्तिरूप नगरीमां प्रवेश यतो नथी. माटे तेनो त्याग करवो ए वैराग्य रस ठे. ॥ १५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ अल प्राप्य स्पर्शं कुचकलशयो पंकजदृशां
परां प्रीतिं भ्रात कलयसि सुधामग्नइव किम् ॥ अवरस्कंदं धर्मद्वितिप
पकटके दातुमनसा प्रयुक्तं जानीया कलुपवरटेन स्पर्शमिम् ॥ १६ ॥

अर्थ -- हे भ्रात, जेना कमजना पत्र जेवा नेत्र ठे, एवी स्त्रीओना स्तनरूप जे कुंज ठे, तेने अलं एटले अत्यंत स्पर्श पामीने अमृतमा मग्न थई जनाराना जेवो जे तु ते शुं उच्छ्रित प्रीतिने पामेठे ? ए स्पर्श, धर्मरूप राजानी सैन्यने प्रहार करवानुं ठे जेना मनमा, एवा कलुप एटले पापरूप नीले मोकलेलो स्पर्श एटले जासूद ठे, एम तु जाण. अर्हीं अलं स्पर्श जे ठे ते स्पर्श ठे, एम कहु रेफ अने लफार एकज होयठे, एवो नियम ठे माटे अलं एटले जेमां रेफ नथी एवो स्पर्श शब्द जे ठे ते स्पर्श शब्द थायठे ते योग्य ठे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना स्तननी उच्छ्रुता कहीठे, एटले पुरुषने स्त्रीना स्तननो स्प
 र्शी यताज अमृतनेविपे मग्न थई गएला पुरुषनी पठे आनंद उत्पन्न थायठे, ए
 शृंगार रस ठे, अने ए स्तन जे ठे ते धर्मनो नाश करवाने अर्थे पापनो एक ठा
 नो जासूद ठे, माटे तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥ १६ ॥

वसततिलकावृत्तम् ॥ पीनोन्नतं स्तनतटं मृगलोचनाया आ
 लोकसे नरहितं यदपूर्वमेतत् ॥ मोहांधकारनिकरह्य
 कारणस्य विद्यास्तदस्ततमेव विवेकज्ञानो. ॥ १७ ॥

अर्थ.- मृगना जेवां लोचनवाली स्त्रीनां जे पुष्ट अने उन्नत स्तनतट एटले
 वे स्तनो ठे, ते नरहित एटले पुरुषने हितकारक नासेठे, अने अपूर्व एटले प्र
 तिहृण पुरुषने चमत्कार उत्पन्न करे ठे, तेनुं तु अवलोकन करेठे, पण ते मोह
 रूप अंधकारनो ह्य करवानुं कारण विवेकरूप सूर्यना अस्ततट ठे अर्थात् ए
 थकी ज्ञानरूप सूर्यनो अस्त थायठे आ पद्यमा स्तनतट जे ठे तेने तु अस्ततट
 जाण एम कद्य, केमके, नरहित अने अपूर्व ए वे स्तनतटना विज्ञेपणो ठे, तेओ
 माथी आवाओ अर्थे निकले ठे - नरहित एटले नकारेकरी रहित अने अपूर्व एटले
 जेनी आद्यमां अकार ठे, एम कखाथी स्तनतटनो अस्ततट शब्द थायठे ते योग्य ठे

आ वृत्तमां, मृगना जेवां लोचनवाली स्त्रीना मांसथी नरेला अने उंचा रहेला
 जे वे स्तन ठे, ते पुरुषने अति सुख करनारा लागेठे, अने पुरुषना मनमा कामवि
 कार उत्पन्न करेठे माटे ए शृंगार रस ठे. अने एज स्तनोनुं विलोकन करनारा पुरु
 षोनो विवेकनाश थई जायठे, एटले कामविह्वल थयो थको तेने कांई स्रजतू न
 थी तेथी एनो त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीणितं वृत्तम् ॥ कंदर्पक्षिपकुञ्जचारुणि कुचदंघ्रे मृ
 गाह्वया मया न्यस्तो हस्त इति प्रमोदमदिरामाद्यन्मना मा
 स्मभू ॥ किंवाजन्म यदर्जितं बहुविधामन्यस्य कष्टक्रियां
 हस्तोऽयं मुकृतस्य तस्य सदसाऽदायीति संचितये ॥१८॥

अर्थ ॥ हे सखा, कामरूप हस्तिना गदस्थल जेवा मनोहा जे मृगाह्वी स्त्रीना वे
 स्तन ठे, तेनेविपे में हस्तस्थापन कखा ठे, एम जाणीने हर्षरूप मदिराएकरी मदी
 न्मत्त अंत करणवालो तु नही था केमके, नाना प्रकारनी तपोनुष्ठानादिरूप जे क
 ष्टसाध्य क्रिया ठे, तेनो अन्यास करीने जन्मेकरी संपादन करेला जे सुकृत एटले

आ वृत्तमा, स्त्रीना कानना कुंमल जोताज पुरुषने एवी अनिलापा थायठे के ए कुमलेकरी शोभायमान स्त्री मने प्राप्त थाय तो सारुं ए शृंगार रस ठे, अने अजिलापाए करी स्त्रीना कुंडलोने जे पुरुष जुवे ठे ते आवता जवमा नरकना पालन करनारा परमाधामी देवताओनी मार खायठे, माटे एनो त्याग करवो ए वैराग्य रस ठे. ॥ १४ ॥

वसततिलकावृत्तम् ॥ सारं गलं यमरविद्विलोचनाना
मालोक्य चेतसि मुढ कलयन्ति मूढा ॥ हा निश्चितं रचि
तमुक्तिपुरप्रवेशव्यापेधमर्गलममुं न विचारयन्ति ॥ १५ ॥

अर्थ -- हे मूढ, कमलना जेवा नेत्रोवाली स्त्रीओनो जे सार एटले श्रेष्ठ, गल एटले कठ अवलोकन करीने पुरुषो अंत करणमा हर्ष पामेठे. परतु हा इति खे ठे ! ए जे गल ठे ते मुक्तिनगरीमा प्रवेश करवानेविषे प्रतिबंध करनार होवायी अर्गल ठे, एवो विचार करता नथी अर्हीं सार एटले अरसहित गल शब्द ते अर्गल शब्द थायठे ते योग्य ठे

आ वृत्तमा, स्त्रीना कवनी श्रेष्ठता कहीठे. जो स्त्रीनो कठ सारो होय तो ते ने जोताज पुरुष आनदित थायठे, अर्थात् कामनी इहा उत्पन्न थायठे, ते अर्ही शृंगार रस ठे, अने एवा अनिलापी पुरुषोनो मुक्तिरूप नगरीमा प्रवेश यतो नथी माटे तेनो त्याग करवो ए वैराग्य रस ठे. ॥ १५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ अलं प्राप्य स्पर्श कुचकलशयो पंकजदशा
परां प्रीतिं भ्रातः कलयसि सुधामग्नश्च किम् ॥ अवस्कंदं धर्मकृतिय
पकटके दातुमनसा प्रयुक्तं जानीयाः कलुपवरटेन स्पर्शमिम् ॥ १६ ॥

अर्थ -- हे भ्रात, जेना कमलना पत्र जेवा नेत्र ठे, एवी स्त्रीओना स्तनरूप जे कुन ठे, तेने अलं एटले अत्यंत स्पर्श पामीने अमृतमा मग्न थई जनाराना जेवो जे तु ते शु वल्कल प्रीतिने पामेठे ? ए स्पर्श, धर्मरूप राजानी सैन्यने प्रहार क रवानु ठे जेना मनमा, एवा कलुप एटले पापरूप नीले मोकलेलो स्पर्श एटले जासूद ठे, एम तु जाण. अर्हीं अल स्पर्श जे ठे ते स्पर्श ठे, एम कडु रेफ अने लकार एकज होयठे, एवो नियम ठे. माटे अलं एटले जेमां रेफ नथी एवो स्पर्श शब्द जे ठे ते स्पर्श शब्द थायठे ते योग्य ठे

आ वृत्तमां, स्त्रीना स्तननी उल्कृष्टता कहीठे, एटले पुरुषने स्त्रीना स्तननो स्प
शी यताज अमृतनेविपे मग्न थई गएजा पुरुषनी पठे आनंद उत्पन्न थायठे, ए
शृंगार रस ठे, अने ए स्तन जे ठे ते धर्मनो नाश करवाने अर्थे पापनो एक ठा
नो जास्रद ठे, माटे तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥ १६ ॥

वसततिलकावृत्तम् ॥ पीनोन्नतं स्तनतटं मृगलोचनाया आ
लोकसे नरहितं यदपूर्वमेतत् ॥ मोहांधकारनिकरह्य
कारणस्य विद्यास्तदस्ततटमेव विवेकज्ञानो ॥ १७ ॥

अर्थ.— मृगना जेवां लोचनवाली स्त्रीना जे पुष्ट अने उन्नत स्तनतट एटले
वे स्तनो ठे, ते नरहित एटले पुरुषने हितकारक नासेठे, अने अपूर्व एटले प्र
तिहृण पुरुषने चमत्कार उत्पन्न करे ठे, तेतु तु अवलोकन करेठे, पण ते मोह
रूप अधिकारनो ह्य करवानुं कारण विवेकरूप सूर्यना अस्ततट ठे. अर्थात् ए
थकी ज्ञानरूप सूर्यनो अस्त थायठे आ पद्यमा स्तनतट जे ठे तेने तु अस्ततट
जाण एम कखु, केमके, नरहित अने अपूर्व ए वे स्तनतटनां विज्ञेपणो ठे, तेओ
माथी आवो अर्थ निकले ठे — नरहित एटले नकारेकरी रहित अने अपूर्व एटले
जेनी आद्यमां अकार ठे, एम कखाथी स्तनतटनो अस्ततट शब्द थायठे ते योग्य ठे.

आ वृत्तमा, मृगना जेवां लोचनवाली स्त्रीना मासथी नरेजा अने उंचा रहेजा
जे वे स्तन ठे, ते पुरुषने अति सुख करनारा लागेठे, अने पुरुषना मनमा कामवि
कार उत्पन्न करेठे माटे ए शृंगार रस ठे अने एज स्तनोतुं विलोकन करनारा पुरु
षोनो विवेकनाश थई जायठे, एटले कामविह्वल थयो थको तेने काई स्रजवूं न
थी तेथी एनो त्याग कर ए वैराग्य रस ठे. ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीणितं वृत्तम् ॥ कंदर्पद्विपकुंजचारुणि कुचर्षभे मृ
गाह्वया मया न्यस्तो हस्त इति प्रमोदमदिरामाद्यन्मना मा
स्मज्जूः ॥ किलाजन्म यदर्जितं बहुविधामन्यस्य कष्टक्रियां
हस्तोऽयं मुकृतस्य तस्य सहसाऽदायीति संचितये ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हे सखा, कामरूप हस्तिना गंदस्थल जेवा मनोह्र जे मृगाह्नी स्त्रीना वे
स्तन ठे, तेनेविपे में हस्तस्थापन कखां ठे, एम जाणीने हर्षरूप मदिराएकरी मदो
न्मत्त अंत करणवालो तु नही था केमके, नाना प्रकारनी तपोनुष्ठानादिरूप जे क
ष्टसाध्य क्रिया ठे, तेनो अन्यास करीने जन्मेकरी संपादन करेला जे मुकृत एटले

पुण्य, तेने ते आडुं हाथ दीधुठे. जेमके, कोई बाहेरथी आवनारा पुरुषने हस्तप्रदानसज्ञाएकरी निषेध करे, तेम कुचवदनेविषे हस्तप्रदानेकरीने सुरुतनो ते निषेध कखोठे एवो जे तु ते मनमा विचार कर आ पद्यमा स्तन उपर हाथ राख्युं अने सुरुतने हाथ दीधुं एज चमत्कार ठे

आ वृत्तमा, कामरूप हस्ती कखोठे ने तेना गंदस्थलरूप स्त्रीना बे स्तन क ह्याठे ते ज्यारे पुरुष हाथनेविषे ग्रहण करेठे त्यारे मदनातुर थयोथको म हाहर्षने पामेठे, ए शृंगार रस ठे, अने नाना प्रकारे कष्ट करीने सपादन करेला सुरुतनो निषेध करेठे, माटे तेनो त्यागकर ए वैराग्य रस ठे ॥ १८ ॥

इजवंशावृत्तम् ॥ कंठोपकंठे लुजित विजाययेर्जुजं युवत्या
चुजगं गराजितम् ॥ एतस्य सरुपर्शवशादपि क्लृणाद
शोषचेतन्यमुपैति सक्तयम् ॥ १९ ॥

अर्थ.—कंठनी पात्रो वलेला गर एटले विषे करीने अजित एवा जे तरुण स्त्री ना चुज एटले बाहु, ते चुजग एटले सर्पज ठे, एम तु जाण ए सर्पना स्पर्शमा त्रेकरी संपूर्णचेतन्य क्लृणमात्रमा नाशने पामेठे जेम सर्पना स्पर्शकरी चैतन्य नो नाश थायठे, तेमज तरुण स्त्रीना चुजस्पर्शथी चैतन्यनाश थायठे चुज नो चुजग आवी रीते थायठे—चुज शब्दनुं विज्ञेपण गराजित ठे, तेनो अर्थ ग कार अक्षरेकरी राजित एटले युक्तथयाथी चुजग शब्द थायठे, ते युक्त ठे

आ वृत्तमा, कठनी पात्रो वाका वलेला स्त्रीना बे हाथ पुरुषने अडकतांज पुरुष अति मोहित थयोथको पोताना शरीरनी छुडि पण रहेती नथी ए शृंगार रस ठे, अने ए बे स्त्रीना हाथ ठे ते साक्षात सर्परूप ठे, केमके, एनो स्पर्श थयाथी पुरुष बेछुड थई जायठे, माटे तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥१९॥

उपजातिवृत्तम् ॥ कंठवसक्ते कुपिते नवाहौ वर वहिः प्राणहरे प्रमो
दः ॥ विध्यस्तधर्मातरजीविते नु स्रैणे न वाहौ विडुपा स युक्त २०

अर्थ—बाह्य प्राणनो नाश करनारो क्रोधायमान जे नवाहौ एटले नवीन सर्प, ते पुरुषना गलामा संलग्न थाय ते सारु, परतु धर्मरूप अच्यंतर जीवित नाश करनाग जे स्त्रीसंबंधी वाहौ एटले चुज, ते पुरुषना गलामा संलग्न थयाथी जे हर्ष थायठे, ते पंक्ति पुरुषने योग्य नथी, केमके, सर्प, कवसजग्न ठता बाह्य प्राणनो नाश करेठे, पण स्त्रीओना जे बाहु ठे, ते कवसंलग्न थयाथी अंतर प्राण

नो नाश करेते, माटे स्त्रीए पोताना हाथथी करेलुं आलिङ्गन सर्प करता पण अ
धिक छ ख देनारुं ठे. आ श्लोकमां नवाहौ शब्द बे वखत आव्योठे तेनो अर्थ जुदो ठे
आ वृत्तमां, स्त्री ज्यारे पोतानी जुजावडे पुरुपने आलिङ्गन करेते, त्तारें पुरुप
पोताना प्राणनी पण परवा राखतो नथी, एवो कामातुर थायते, ए शृंगाररसठे.
अने सर्प गलामां बाजी प्राण लिये ते सारुं, पण स्त्रीतुं आलिङ्गन जलु नही; के
मके, तेथी माग कर्म बंधार्सेने अंतरात्मानो नाश थायते माटे तेनो त्याग कर
वो उचित ठे ए वैराग्यरस ठे ॥ १० ॥

इज्वंशावृत्तम् ॥ कोयं विवेकस्तव यन्नतत्रुवां दोषावगूढ प्रमदं वि
गाहसे ॥ यतः स्मरातंकपरीतचेतसां कि सुंदरासुंदरयोर्विवेचनं ॥११॥

अर्थ - हे साथो, आ तारो कयो विवेक ठे के, नभ ठे चुकुटि जेओनी एवी
स्त्रीना दोषावगूढ एटले जुजाए आलिङ्गित थयो थको तूं उल्हट मदनने पामेठे।
केमके, कामरूप रोमेकरीने जेना अंत करण व्याप्त थायते, एवा पुरुपने सारा
तथा नरसातुं विवेचन थतुं नथी जेम अपस्मारादि (भरी) रोगवाला पुरुपने शु
नाशुन ज्ञान होतु नथी, तेम तने पण थयुंठे. अथवा तारो विवेक दोषावगूढ
एटले दोषेकरीने युक्त ठे एवो अर्थ पण थायते, माटे ए तारो केवो विवेक
ठे एम कहेवुं योग्यज ठे.

आ वृत्तमां, पुरुपने स्त्रीए आलिङ्गन कखुंठतां, ते गमे तेवो विवेकी होय तो
पण ते एक कारे रहीने कामातुर थयोथको हर्षित थायते, ए शृंगार रस ठे,
अने स्त्रीना आलिङ्गनथी पुरुपना विवेकनो नाश थायते, अने अंत.करणमां अ
विवेक आवेठे, माटे तेनो तुं त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥ ११ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ हंहो विलोक्य परमंगदमंगनाना
मानंदमुद्गहसि कि मदनांधबुद्धे ॥ सत्यं विवेकनिधनै
कनिमित्तमेतत् मेधाविनो हि परमं गदमुजृणति ॥ १२ ॥

अर्थ.- हे कामेकरी अंधबुद्धिवाला पुरुप, स्त्रीओना परमंगद एटले उल्हट
वाजुबंध जोर्सेने शु आनंद करेते ? पंक्ति लोको जे ठे ते ए वाजुबंधने ज्ञाननोनाश
करनारो परम एटले उल्हट गद एटले रोग कहेठे, ते सत्य ठे. केमके, जेम रोग जीव
ना नाशनो हेतु ठे, तेम स्त्रीनो बाहुचूपण पण ज्ञानना नाशनो हेतु ठे एपद्यमा
परमंगद ए बे वखत आव्योठे, तेनो अर्थ जुदो जुदो ठे, एवो यमकरूप चमत्कार ठे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना बाहुतुं नूपण जे वाजूबंध ठे, ते पुरुषना मनने एवो मो
हित करी लियेठे के पुरुष कामाथ थयोयको महाहर्षने पामेठे ए शृंगार रस
ठे, अने ए जे वाजूबंध ठे ते आनंद करनारो नथी, पण जीवनो नाश करनारो
मोटो रोग ठे, एम जाणीने तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥ ११ ॥

अथ जनो वलयचरं विलोकते मृगीदृशामधिचुजवल्लिवालिश ॥
न बुध्यते सुकृतचमूं जिगीपत समुद्यतं वलयचरमेनमेनस. ॥१३॥

अर्थ - अथ एटले आ प्रत्यक्ष मूर्ख जन जे ठे, ते हरिणाक्षी स्त्रीओना चुज
लतानेविषे वलयचर एटले जे ककणसमूह ठे ते जुवेठे परतु ए वलय जे ठे ते
सुकृत जे शीलादिक, तेओने जीतवानी इहावालो एवो पापनो मावधानीनूत
वलयचर एटले सेनासमूह ठे, एम जाण आ पद्यमा वलयचर जे ठे, ते वलयचर ठे
एम कस्युठे, बकार अने वकारनु ऐक्यठे वलयचर शब्दनुं विशेषण अथ ए शब्द ठे.
एनो अर्थ अ रहित यं थायठे, तेथी वलयचर शब्द, वलयचर थयो ते योग्य ठे.

आ वृत्तमां, स्त्रीओना हाथमा जे ककण होयठे, तेने जोईने जे मूर्ख जन ठे ते
आनदने पामेठे, ए शृंगार रस ठे, अने ए जे ककणनो समूह ठे, ते शीलादिक
नो नाश करनारो ठे, माटे तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥ १३ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ ये दृक्पथे तव पतति नितंबिनीनां
कांता करा जग्मिपल्लवनप्रवीणा ॥नो वेत्सि तान् किमपव
र्गपुरप्रयाणप्रत्यूहकारणतया करकानवश्यम् ॥ १४ ॥

अर्थ - हे जन्ताना प्रकटीकरण करवाविषे निपुण पुरुष, नितंबिनी स्त्रीओना
कांत एटले मनोइ कर एटले हाथ तारी दृष्टिरूप मार्गमा आवेठे, तेओने मोक्षरूप
नगरी प्रते जता करक एटले करानी पेठे विघ्न करनारा केम जाणतो नथी ! बाहेर
जता जो मार्गमा करानी दृष्टि थाय तो इहेजा कार्यनी सिद्धि थाय नही, एवु श
कुनशास्त्रमा कस्युठे आ पद्यमा स्त्रीना कर जे ठे ते करकज एम कस्यु ठे. ते आ
वी रीते -करशब्दनुं विशेषण कांत शब्द ठे, एनो अर्थ क ठे जेना अंतनेविषे एवो
थायठे, अर्थात् कर शब्दना अते ककार राखिये तो करक थाय ते योग्य ठे

आ वृत्तमा, जडतानु प्रकटीकरण करवाविषे स्त्रीना हाथ निपुण ठे, एटले स्त्री
ना हाथवती पुरुषने स्पर्शादि यताज ते गमे तेवो धर्मादिकनेविषे सावध होय तो

पण दिग्मूढ एटले कामने वश थई जाय ठे, ने तेमां ते पोताने परमानंद माने ठे; ए शृंगार रस ठे. अने स्त्रीना करस्पर्शादिकेकरी स्तब्ध बनी गएला पुरुषने मोक्षनो मार्ग जे धर्म, ते सूजतो नथी, माटे तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस ठे.

उपजातिवृत्तम् ॥ नीव्याप्तमस्या हरिणेक्षणाया यंधीक्ष्य हारं हृदि ह
र्षमेपि ॥ विवेकपंकेरुहकाननस्य तमेव नीहारमुदाहरंति ॥ १५ ॥

अर्थ - नीवी एटले वस्त्र, तेनी गांव पर्यंत हरिणाक्षी स्त्रीनो जे लंबायमान हार, तेने जोईने तूं पोतानां मनमां आनंदने पामेठे, ते हारने पंथितलोक, ज्ञानरूप कमलना वनने नीहार एटले हिम कहेठे. जेम हिम, कमलना वनने नाग कर नारो ठे, तेम स्त्रीना हृदय ऊपरनो जे हार ते ज्ञानने नाश करनारो ठे आ पद्यमा हारने नीहार कह्योठे, ते आमः-हारशब्दतुं विशेषण नीव्याप्त ठे. एनो अर्थ आ ठे - नीशब्देकरी व्याप्त एटले जे युक्त हारशब्द ते नीहारशब्द आयठे ते योग्य ठे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना हृदयनो जे लांबो हार ते जोताज पुरुषने अति आनंद उ त्पन्न आयठे, ए शृंगाररस ठे, अने ते हार जे ठे ते ज्ञानरूप कमलना वनने बा लवामां हिम जेवो ठे, एटले ते हारमा लुब्ध थएला पुरुषतुं ज्ञान नाश थई जाय ठे, माटे तेनो तूं त्याग कर ए वैराग्य रस ठे ॥ १५ ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥ विलोक्य किं सुंदरमंगनोदरं करोपि मोहं मदनज्वरा
तुरानो ईक्षसे छर्गतिपातसंभवं नवांतरे चाविनमंगनोदरम् ॥ १६ ॥

अर्थ - कामज्वरवहे पीडाने पामेला हे पुरुष, सुंदर अंगना एटले स्त्रीतुं उदर जोईने तू का मोहने पामेठे? अंग एटले हे पुरुष, ए उदर नथी पण जन्मांतरने विषे अने नरकने विषे पड्याची उत्पन्न थनारा जे दर एटले जय, तेज ठे, एवो कां विचार करतो नथी? आ पद्यमा अंगनोदर ए पद बे वखत ठे, तेओनो पद विजागेकरी निन्न अर्थ ठे, ते अहिं यमकरूप चमत्कार जाणवो.

आ वृत्तमां, स्त्रीतुं उदर जोई पुरुष मोहने पामीने कामज्वरनी पीडाने पामेठे ए शृंगाररसठे, अने ए उदर नथी पण जन्मांतर तथा नरकमां थनारो जय ठे, एम जाणीने तेनो तूं त्याग कर ए वैराग्य रस ठे. ॥ १६ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ स्फूर्जन्मनोजवज्जुजंगमपाशनाजीनाजी
कुरंगकदृशां दृशि यस्य लज्जा ॥ नाजीमयं जगदशेषमुदी
क्षतेऽसौ यो यत्र रज्यति स तन्मयमेव पश्येत् ॥ १७ ॥

अर्थ - वेदीप्यमान कामरूप सर्पतुं पाशनाञ्जी एटले रहेवानुं स्थान जे हरि
णाह्नी स्त्रीओनी नाञ्जी एटले अवयवविशेष, तेनेविषे जे पुरुषनी दृष्टि लग्न एटले
लागेलीने, ते पुरुष अनीमय एटले निर्जय अवलोकन करतो नथी, जे पुरुष जे
ठेकाणे अनुरक्त थायठे ते पुरुष संपूर्ण तडूप थायठे आ पद्यमा दृष्टि संलग्न
नाञ्जी, नाञ्जीमय संपूर्ण जुएठे ए शब्दश्लेष चमत्कारठे

आ वृत्तमा, स्त्रीनी जे नाञ्जि ठे ते कामने रहेवानु स्थान ठे, एटले ते नाञ्जिने जो
तांज पुरुषने कामविकार उत्पन्न थायठे, ए शृंगार ठे, अने जे पुरुष ए नाञ्जिनेवि
षे आसक्त थायठे, ते अनेक जयने पामेठे, माटे एनो तु त्याग कर, ए वैराग्य ठे ॥ २७ ॥

उपेडवज्जावृत्तम् ॥ जडोपयुक्तं जघनं मृगाह्वया समीह्य किं तोपञ
रं तनोपि ॥ अमु विशुंश्राथ्यवसायहंसप्रवासहेतुं घनमेव विद्या ॥ २८ ॥

अर्थ - हे सखा, जड एटले मूर्ख, तेओने उपयुक्त एटले योग्य एवा हरि
णाह्नी स्त्रीना जे जघन एटले जांघ, जोईने तु का आनंद पामेठे ? ए जघन जे
ठे ते निर्मल चित्तानिप्रायरूप हसना प्रवास ने कारण जूत घन एटले मेघ ठे, ए
म तु जाण अर्थात् ज्वारे वर्षा पडेठे त्वारे हस पोतानु स्थान मूकीने मानसस
रोवर ऊपर जायठे एप्रसिद्ध ठे तेम मनुष्यनी दृष्टिने विषे स्त्रीनी जघा आवेठे,
त्वारे चित्तना निर्मल अणिप्राय मटी जायठे आ पद्यमा जडोपयुक्त जघन जे ठे
ते घन ठे, एम कह्युं ठे, मकार अने लकारनु सावर्ण्य होवाथी जडोपयुक्त शब्द
नो जडोपयुक्त शब्द करवो एटले मकारना लोप सहित जे जघन ते घन थाय
ठे, ते योग्यठे ॥ २८ ॥

आ वृत्तमा, स्त्रीनी जाघ मूर्ख कामी पुरुषोने अति प्रिय लागे ठे ने ते तेमां
लुब्ध होयठे ए शृंगार रस ठे, अने निर्मल चित्तना अणिप्रायनो नाश करेठे,
अर्थात् स्त्रीनी जघा निरख्याथी पुरुषतुं चित्त मलिन थायठे, माटे त्याग करवा
योग्य ठे ए वैराग्य रस ठे ॥ २८ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ नितंबमुल्लासितापनोदं द्विट्कसे यत्कमलेक्षणाना
म् ॥ सर्वात्मनाऽत्यतकटुं विदित्वा तं निबमेव त्यज दूरतोपि ॥ २९ ॥

अर्थ - सतापनी प्रेरणा करनारा कमलनयना स्त्रीना जे नितंब, एटले कटि
नो पाठलो जाग, जोवानी तु इष्टा करेठे, ते नितंब, पत्र, पुष्प तथा फल इत्या
दिना समूहकरी अत्यंत कडुवा जाडना जेवा ठे, एम जाणीने दूर नाखीदे अर्था

त् निंबनुं जाड सर्व प्रकारे कडवु होयठे, तेम स्त्रीना नितब सर्व प्रकारे ग्लानि करवा योग्य ठे, तेनो तु त्याग कर. आ पद्यमां उद्धसित तापनो वेनार जे नितब ते निंबवृक्ष ठे, एम कद्दुं, ते आम -उद्धसित एटले विकसित ठे तकारनो अप नोद एटले नाग जेने विपे, एवो नितब गद्य निंबशब्द थायठे ते योग्य ठे

आ वृत्तमा, कमलना जेवा नेत्रोवाली स्त्रीना जे बे नितब ठे, ते संतापनी प्रेर णा करनाराठे, एटले स्त्रीनी कटिनो पाठलो जाग जोयाथी अत्यंत मदन विकार उत्पन्न थायठे, ते इडा पूर्ण न थयाथी तेना मनमां संताप थायठे, एवो ते नि तबोनो जे प्रजाव ठे, ते शृंगार रस ठे. अने स्त्रीओना नितब निंबडाना जाडजेवा कडवा ठे, माटे एनो तु त्याग कर, ए वैराग्य रस ठे. ॥ १९ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ नूनं नूपुरमेतदायतदृशो रागादि
विद्वेषिणां क्रीडार्थं पुरमित्यवेत्य न दृशाप्यालोकनीयं क
चित् ॥ येनास्मिन् मुखमात्रचंगिमगुणैराकृष्य तैरुल्वणै
र्वक्षस्य प्रसन्न चिरादपि सखे मुक्तिर्नवित्री न ते ॥ ३० ॥

अर्थ.- हे सखा. नूनं एटले निश्चयेकरी विगालनेत्रोवाली स्त्रीओनां जे आ नूपुर एटले चरणनूपण, रागादिशत्रुने क्रीडा करवानुं पुर एटले नगर ठे, एम जाणीने क्यारे पण नजरेकरी जोईश नही जेने पोतानु सारुं थवानी इडा हो य, तेणे क्यारे पण शत्रुनु नगर जोडुं नही केमके, ए नगर प्रसिद्ध, उदार, त था मुख्यत्वे श्रेष्ठ गुणे आकर्षण करी बलात्कारेकरी तने बाधीलेगे, तेथी फरी तू तूटी शकनार नथी अर्थात् ते नूपुरमा जो तु आसक्त थजे तो, फसाई पड जे, आ पद्यमा स्त्रीओना नूपुरने शत्रुनुं नगर कडुठे, ते आम -नूपुरगद्यनुं विगे पण जे नून ठे, तेनो अर्थ न शब्देकरि कन एटले जे रहित ठे, एवु नूपुर ठे, एम जाणुं.

आ वृत्तमां स्त्रीओना पगना नूपुर पुरुषना मननुं हरण करी लिएठे ए शृंगाररस ठे; अने ते नूपुर शत्रुनुं नगर ठे एम जाणीने तेनो त्याग करवो, ए वैराग्य रस ठे. ३०

उपजाति वृत्तम् ॥ यास्त्रीतिनाम्ना विच्रूते शमादौ शस्त्री प्रबुद्धैरवबुध्यतां
सा ॥ एनां पुरस्कृत्य जगत्पन्नंगचटौ यतः पुण्यचटं जिन्नति ॥ ३१ ॥

अर्थ -जे स्त्री एवु नाम तु अत करणमा धारण करेठे, ते शमादौ एटले उपज मादि धर्म कर्मने विपे शस्त्री एटले एक आशुयविगेप ठे, एम सुजाण पुरुषोए जा

ણતું આ સંતારનેવિપે કામરૂપ યોદો, એ સ્ત્રીરૂપ શસ્ત્રીને આગલ કરીને ધર્મરૂપ યોદાનું જેદન કરે છે. જેમ સગ્રામનેવિપે એક મોટો યોદો, પોતાના શસ્ત્રેકરીને પ્રતિ યોદાનું જેદન કરે છે, તેમ કામરૂપ યોદો સ્ત્રીરૂપ શસ્ત્રીએ કરી ધર્મરૂપ યોદાનું જેદન કરે છે. આ પદ્યમા સ્ત્રીને શસ્ત્રી કહી છે, તે આમ -યા સ્ત્રી શમાર્દા વિચૃતે, એટલે જે સ્ત્રી પ્રથમ શકાર ધારે છે, અર્થાત્ સ્ત્રીશબ્દની આયે શકાર આવ્યાથી શસ્ત્રી શબ્દ યાય છે તે યોગ્ય છે.

આ વૃત્તમા, પ્રસિદ્ધ શૃંગારરસ નથી, પરતુ સ્ત્રીની નિર્નર્ત્સના દ્વારા વૈરાગ્યાંતર ગત શૃંગારની પણ સૂચના કરી છે. ॥ ૩૧ ॥

વસતતિલકાવૃત્તમ્ ॥ યેયં વધૂરવસિતા હૃદયે પ્રમોદસંપા
દનવ્યતિકરૈકનિવંધનં તે ॥ સા હર્ગહર્ગતિપયેન જગન્નિ
નીપોર્ધૂરેવ મન્મથરથસ્ય વિજ્ઞાવનીયા ॥ ૩૨ ॥

અર્થ - હે પુરુષ, તારાહૃદયનેવિપે હર્ષસમૂહ ઉત્પાદન કરવાનું કારણ જે વધુ એટલે સ્ત્રી, અવસિતા એટલે આવીને રહી છે, તે સ્ત્રીને તુ જે હૃદયને હર્ષ ઉત્પન્ન કરનારી માને છે, તે વધુ, અત્યંત હર્ગમ નરકના માર્ગેકરી લેઈ જવાવિપે ઇચ્છા કરનારા કામરથની વધુ એટલે ધુરી છે, એમ તુ જાણ અર્થાત્ એ સ્ત્રી નથી, કિન્તુ નરકના માર્ગેકરી સંતારનેવિપે લઈજનારો જે કામરથ, તેની ધુરી છે. આ પદ્યમા વધુ કામરથની ધુરી છે, એમ કહ્યું, મૂલમા વધુ શબ્દનું વિજેપણ અવસિતા શબ્દ છે, એનો અર્થ વકારેકરિ સિત્ત એટલે રહિત થયાથી વધુ શબ્દનો વધુ શબ્દ યાય છે તે યોગ્ય છે.

આ વૃત્તમા, સ્ત્રીને હર્ષસમૂહ ઉત્પાદન કરનારી, અને પુરુષના મનનેવિપે રમણ કરનારી કહી છે, એ શૃંગાર રસ છે, અને એ વધુ નથી પણ કામદેવના રથની ધુરી છે, એમ જાણીને તુ ત્યાગ કર, એ વૈરાગ્ય રસ છે. ॥ ૩૨ ॥

મંદાક્રાતાવૃત્તમ્ ॥ પ્રીતિ તન્વલ્યનલસદૃશો યાસ્તરુણ્ય
સ્તવૈતા દેહદ્યુત્યા કનકનિજયા દ્યોતિતાશા વિવેકિન્ ॥
સત્ય તાસામનલસદૃશાં સયમારામરાજ્યા માન્નૂ પા
ર્થેપ્યસિ યદિ શિવાવાસ્યે વદ્યુદ્ધિ ॥ ૩૩ ॥

અર્થ - હે વિવેકવાન્ પુરુષ, જેની અનલસ એટલે આલસ્ય રહિત દૃષ્ટિ છે, અને

जेनी सुवर्णना जेवी शरीरनी कांतीए दिशाओ प्रकाशित करीठे. एवी तरुण स्त्रीओ तने हर्ष उत्पन्न करेठे, ते अनलसदृश एटले अग्निना जेवी स्त्रीओनी सत्ता संयम एटले चारित्ररूप वनपरपराविषे ठे, एम जाण अर्थात् जेम अग्निसंपर्केकरी वन दग्ध थायठे, तेम स्त्रीसंपर्केकरी चारित्र दग्ध थायठे जो मोक्षप्राप्तिनी बुद्धि तने थई होय, तो स्त्रीओनी समीप पण जतो नही, आ पद्यमा अनलसदृश पद वे वार आव्योठे, तेनो अर्थ नोखो नोखो ठे, ए चमत्कार जाणवो

आ वृत्तमां, चचलदृष्टिवाली स्त्रीना शरीरनो वर्ण सोना जेवो होय, तो पुरुषना मनमां अति आनंद उत्पन्न करेठे. ए शृंगार रस ठे, अने स्त्री अग्नि जेवी ठे, ते संयमादिक वनपरपराने वाली जसम करनारी ठे, माटे एनो तु त्याग कर, ए वैराग्य रस ठे ॥ ३३ ॥

मालिनीवृत्तम् ॥ क इह विषयज्ञोगं पुण्यकर्मायशून्यं स्पृह्यति विषयज्ञो जावयेस्तत्तत्स्त्वम् ॥ स्मरति न करणीयं मूर्खितो येन जंतुः पतति कुगतिगते नैकते मोक्षमार्गम् ॥ ३४ ॥

अर्थ.— आ संसारनेविषे कर्षो पुरुष पुण्यकर्मनो आय एटले जान. एणोकरी शून्य एटले रहित जे विषय जोग एटले पांच इंद्रियना सुखनी इहा करेठे, केमके ए जे विषयजोग ठे, ते विषयजोग एटले विषयज्ञ ठे, जे विषयजोगना योगे मोहने पामेलो प्राणी, स्मरण करवायोग्य ते करतो नथी, तेथी नरकरूप खाडामां पडेठे ते फरी मोक्षमार्गने पामतो नथी, जेम विषय खानारा पुरुषने स्मरणादि रहेतां नथी, तेम विषयोपजोग करनाराने पण स्मरणादिक रहेता नथी. आ पद्यमां विषय जोग जे ठे ते विषयजोग ठे, एम कहु, ते आम — विषयोपजोगी पदनुं यशून्यं ए विशेषण ठे, एनो अर्थ यकारेकरी शून्य एटले रहित थायठे, एम यकाररहित जे विषयजोग ते विषयजोग ठे, ते योग्य ठे.

आ वृत्तमा, पाचे विषयोनी तिरस्कार कखो ठे, तेओनु मूल कारण स्त्री विषय सुख शास्त्रोमा कहुठे, ते आश्लोकमा यद्यपि प्रगट कहु नथी तथापि अर्थात् सिद्ध थायठे, तेथी ए शृंगार रस ठे, अने विषयजोगने विषयजोग कहाठे ए वैराग्य रस ठे ॥ ३४ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ सखे सुखं वैपयिकं यदेतदाज्ञासते तन्नरकां तमंत ॥ सत्य तद्भुत्सर्पदघप्रबंधनिबंधनत्वान्नरकातमेव ॥ ३५ ॥

अर्थ - हे सखा, आ जे विषयसुख ठे ते तारा अंत करणमा कांत एटले म नोहर लागेते, ते सख्य ठे, मिथ्या नथी, परंतु विस्तारने पामनारी जे पाप परपरा, तेतु ए कारण ठे, माटे जेनो अत नरक ठे, एटले नरकने देनारा ठे, एम जाण आ पद्यमां प्रथमना नर कात ए वे शब्द निन्न ठे, अने पाठजना नरकांत ए वे पद एकसरखा ठे, ए काव्यचमत्कार जाणवो

आ वृत्तमा, विषयसुख जे ठे, ते पुरुपना मनने घणा सारा लागेते, एम कस्यु ठे, ते शृंगार रस ठे, अने ए विषयसुखथी पापपरपरा विस्तारने पामेठे, माटे त्या ग करवा योग्य ठे ए वैराग्य रस ठे ॥ ३५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ स्मरक्रीडावाप्यां वदनकमले पद्मलदृशा दृढाऽ
सक्तिर्येषामधरमधुपानं विदधताम् ॥ अदूरस्था बधव्यसनघटना
क्लेशमदती विदग्धानां तेषामिह मधुकराणामिव नृणाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ - कामनी क्रीडारूप जे वापी एटले कुवो ठे, तेनेविपे स्त्रीना अधरोष्ठरूप मधुपुष्परस पान करणारा जे पुरुप ठे, जेअोनी स्त्रीना सुखकमलनेविपे दृढ आ सक्ति ठे, एवा मोह पामनारा जे पुरुप ठे, तेअोने आ स्त्रीना सुख कमलनेविपे जमरानी पठे क्लेशोकरी झ सह एवा बंधनोए व्यसन घटना एटले कष्टरचना समीप वर्तिनी ठे, जेम मधुपान करनारा जमराअोनी कमलोनेविपे दृढाशक्ति बंधने करी कष्ट देनारी ठे, तेम अधररसपान करनारा पुरुपोने स्त्रीना सुख कमलनेविपे दृढ जे आसक्ति ते प्रेमबंधनेकरी कष्ट देनारी ठे

आ वृत्तमा, स्त्रीनो अधरामृत जमराअोनी पठे पुरुपोने अति प्रेम उत्पन्न कर नारो ठे, ए शृंगार रस ठे, अने तेथी ते जमरानी पठे बंधनने पामेठे, माटे त्याग करवा योग्य ठे, ए वैराग्य रस ठे ॥ ३६ ॥

सखे संतोपाञ्च पिव चपलतामुत्सृज निजा शमारामे कामं विर
चय रुचि चित्तहरिण ॥ हरंत्येता तृष्णा न युवतिनितवस्थलक्षु
वो विमुक्ता नीरागैर्विपमशरसंपातविपमा ॥ ३७ ॥

अर्थ - हे सखा, आ चित्त हरिणना जेवो ठे, केमके, जेम हरिण अतिचचल होयते, तेम चित्त पण महाचचल होयते, माटे मृग अने चित्तनुं सादृश्यत्व कस्युठे, एवी चपलताने त्याग करीने संतोपरूप जलनुं पान कर, अने अत्यंत शम रूप वननी प्रीति कर. आ जे युवती एटले तरुण स्त्रीअो ठे, तेअोना नितव एटले

जे केडनी पाठलनो जाग ठे, ते स्थलजूमिना जेवो ठे, त्यां तारी तृषा मटनार नथी ए स्थलजूमि केवी ठे, नीर एटले पाणी अने अग एटले वृह, एणेकरी रहि त ठे. जल अथवा वृहनी गायवडे तृषा निवारण थायठे, ए बनेमांनो कोई ए स्थलजूमिने विपे नथी अने ए जूमिनेविपे व्याथ्यादिक डुष्ट पुरुष बाण नाखेठे, ते वाग्धाथी घणो संताप पामोने तारुं मरण थरो; पण तृषा मटवानी नथी वली ते नितव जूमि केवी ठे? के रागरहित पुरुषोए जेनो त्याग कखोठे, अने विपमशर जे कामदेव, तेना बाणना सपातना योगे बिहामणी ठे. माटे युवतीना नितवनी इहा तु नही कर एवो चित्त प्रत्ये उपदेश ठे.

आ वृत्तमा, स्त्रीना नितववुं वर्षेन कखुं ठे, ए शृंगाररस ठे; अने ते स्थलजूमिनी पते चित्तरूप चमरने पीडा करेठे, ए वैराग्यरस ठे. ॥ ३७ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ चेतश्चापलमाकलम्य कुटिलाका
रां कुरंगीदृशो दृष्ट्वा कुंतलराजिमंजनघनश्यामां किमुत्ता
म्यसि ॥ धर्मध्यानमहानिधानमधुना स्वीकर्तुकामस्य मे
प्रत्युद्धार्यमुपस्थितेयमुरगश्रेणीति संचितये ॥ ३८ ॥

अर्थ- हे चित्त, कुटिल एटले वक्र आकारवाला मेघना जेवा काला अथवा काजलना जेवा अत्यंत श्यामवर्ण, जे हरिणाह्नी स्त्रीना केशनी पंक्ति ठे. तेने जोई ने तु शासारू व्याकुल थायठे? ए स्त्रीना केशनी पंक्ति जे ठे ते धर्मचित्तरूप महानिधान स्वीकार करनारो तु तेने सांप्रत कालनेविपे विघ्न करवासारू तैयार थई ठे एवी उरगश्रेणि एटले सर्पपंक्ति ठे, एम जाण कोई कार्य करवासारू उद्युक्त पुरुषने सर्पदर्शन निषिद्ध ठे, अने निधान ग्रहणना समये तो अत्यंत अनिष्ट ठे माटे स्त्रीकेशपंक्तिरूप सर्पिणीतुं दर्शन तु नही कर केमके, एम कखाथी धर्म चित्तरूप निधानना ग्रहण समये तने विघ्न आवशे नही

आ वृत्तमां, स्त्रीना केशनी पंक्तिने सर्पपंक्ति कहीठे अने तेनी श्यामत्ताने मेघनी तथा काजलनी उपमा दीधीठे, ए शृंगाररस ठे, अने ते सर्पनी पते विघ्नकारी होवाथी सर्वथा त्याग करवा योग्य ठे, ए वैराग्यरस ठे ॥ ३८ ॥

यातुं यद्यनुरुच्यते शिवपुरी रामानितं वस्थली मुंचेर्दूरमिमामनं
गकलनक्रीडाविहारोचिताम् ॥ नोचेद्यौवनचंडवातविततव्यामो
हधूलीकण्ठाम्यदृष्टिरदृष्टशाश्वतपथः प्राप्तोसि जन्माटवीम् ॥ ३९ ॥

આ હાર શોને છે, તે હાર નથી, કિતુ નાનિરૂપ રઘનેવિપે રહેનારો જે કામરૂપ સર્પ, તેણે મૂકેલું આ મનોહર નિર્મોકપટ્ટ એટલે કચુક દીગામા આવેલે, તેજ આ ઠેકાણું મૂકીને બીજે ઠેકાણે જાગી જવાની સૂચના કરેલે સર્પનુ કચુક જયનો હેતુ છે, માટે નાનીરૂપ જે કામરૂપ સર્પને રહેવાનું રાખુ, અને આ હારરૂપ સર્પનું કચુક છે, એમ જાણીને નાશી જવુ યોગ્ય છે

આ વૃત્તમાં, સ્ત્રીઓના કવના હારની શોના કહીલે, તથા નાનિનુ વર્ણન કરેલુ છે, એ શૃંગારરસ છે, અને એ બંને હુ સ્વના સાધન હોવાથી ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે એ વૈરાગ્યરસ છે ॥ ૪૩ ॥

વસતતિલકા વૃત્તમ્ ॥ યઃ કામકામલવિલુપ્તવિવેકચક્તુ
સ્વર્ગાપવર્ગપુરમાર્ગમવીહ્યમાણ ॥ જ્ઞાનાજનં પ્રતિ નિરા
દરતામૃષૈતિ ભ્રાતઃ પતિપ્યતિ સ ઝીમન્નવાધુકૂપે ॥ ૪૪ ॥

અર્થ - જે પુરુષના વિવેકરૂપ ચક્તુ કામરૂપ કામલ એટલે નેત્ર રોગેકરી યસ્ત છે, તે સ્વર્ગ અને અપવર્ગ એટલે મોહરૂપ નગરનો માર્ગ જોઈ શકતો નથી, એમઠતા જે પુરુષ જ્ઞાનરૂપ અજનનો આદર કરતો નથી, તે પુરુષ જયકર સસારરૂપ અધકૂ પમા પડેલે, જેમ કમલાના રોગેકરીને જેના નેત્રો યસ્ત થયલા હોય, તે જો આ સ્વોનેવિપે અજન નાસ્વાનો અનાદર કરે તો અધ કૂપમા પડી જાય, તેમ જ્ઞાના જનનો જે નિરાદર કરેલે, તે આ સસારરૂપ આધલા કૂવામા પડેલે

આ વૃત્તમા, કામને નેત્ર રોગના જેવો કહ્યોલે, એટલે જેને કામલો પ્રમુખ ને ત્રરોગ થાયલે. તે કાઈ જોઈ શકતો નથી, તેમ કામરૂપ નેત્ર રોગના યોગે પુરુષ નિર્લેક્ષ થાયલે, એવી કામની મહિમા છે, તે શૃંગારરસ છે, અને કામાધ પુરુષ આ સસારરૂપ આધલા કૂવામા પડેલે, માટે ત્યાગ કરવાયોગ્ય છે, એ વૈરાગ્યરસ છે ॥ ૪૪ ॥

શિખરિણી વૃત્તમ્ ॥ જ્વારણ્યં મુક્ત્વા યદિ જિગમિપુમ્કિનગરી ત
દાની માકાર્પીર્વિપયવિપવૃક્ષેષુ વસતિમ્ ॥ યતશ્ચાયાપ્યેપાં પ્રથય
તિ મહામોહમચિરાદય જંતુર્યસ્માત્પદમપિ ન ગંતુ પ્રન્નવતિ ॥ ૪૫ ॥

અર્થ - હે પુરુષ, જો તુ જવાટવીને મૂકીને મુક્તિ નગરીપ્રતે જાવાની ઇચ્છા કરતો હો, તો વિપયરૂપ વિપવૃક્ષનેવિપે વસતિ નહીં કર કેમકે, આ વૃક્ષની ઠા યા પણ મહામોહના વિસ્તારને પમાડેલે એ વિપયવૃક્ષની ઠાયાનો સ્પર્શ પણ મો

ह कारक ठे. ए कारण माटे आ प्राणी एक पगलुं पण चालवाने समर्थ थतो नथी. जेम वननेविपे विपलुहनी नीचे वेठेलो पुरुष, मत्त थयेलो होयठे, ते वखते ते वन सूकीने नगरमा जवानी इडा करे तो एक पगलुं, पण नाखी गकातु नथी. मा टे मोहनी इडा करनारा पुरुषे विषयसेवन करवानी बुद्धि करची नही.

आ वृत्तमां, विषयना सेवन थकी पुरुष कामांध थई जाय ठे, एम कसुठे ते शृंगाररस ठे, अने ते सर्वथा त्याग करवा योग्य ठे एम कसुठे ते वैराग्यरस ठे.

उपजातिवृत्तमांसोमप्रज्ञाचार्यमज्ञा च यन्न पुंसां तमपंकमपाकरोति॥

तदप्यमुष्मिन्नुपदेशलेशे निशम्यमानेऽनिशमेति नाशम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीशतार्थवृत्तिकारश्रीसोमप्रज्ञाचार्यविरचिता

शृंगारवैराग्यतरंगिणी समाप्ता.

अर्थ.—सोमप्रज्ञा एटलेचंडकांति, अने अर्थमज्ञा एटले सूर्यकांति जे मनुष्यो नो तम पंक एटले अज्ञानांधकारसमूह दूर करता नथी, ते पण आ अल्प उपदेश श्रवण कखी ठता नागने पामेठे, अर्थात् चंडकांति तथा सूर्यकांति अज्ञानरूप अंधकारनो नाश करवाने समर्थ थती नथी, अने आ उपदेश अंतरनो अंधकार मटाडवाने समर्थ ठे. एथी आ उपदेश अति उत्कृष्ट ठे आ पद्यमा अंधकर्ता ए पोतालुं सोमप्रज्ञाचार्य एवुं नाम चातुर्ये करी गोपन करेलुंठे, ते ज्ञाताओए जाणी लेवु. ॥ ४६ ॥

आ अंधलुं नाम अंधकर्ताए शृंगारवैराग्यतरंगिणी राख्युंठे, एनोअर्थ शृंगार अने वैराग्यरूप तरगोवाली नदी, एवो आयठे ते नदीना धन्ने प्रकार नंदलाल नामना टी काकर्ताए स्पष्टरीते दर्शाव्या ठे, तेनोज चाव लईने आ अमे अर्थ कखी ठे. अंध ना अंतमां टीकाकर्ताए त्रण श्लोक राख्या ठे ते आप्रमाणे.—

संवत्सरद्विपमुनीडमितस्य मासे मार्गे त्रयोदशमिते दिवसे नृगो च ॥ स्वल्पा तरी विरचिता सुखबोधिकारख्या श्लेषौघस्ततरंगिणिकासुशास्त्रे ॥ १ ॥ आगारानाभि नगरे नंदलालेन धीमता ॥ दानविशालशिष्यातुरोधेन रूपया गुरो. ॥ २ ॥ युगमम् ॥ सोमप्रज्ञाचार्यकृति सुजुर्गमां विवृण्वता स्वल्पधिया मयाऽत्र यत् ॥ न्यूनाधिकोऽंकन मल्पबुद्धितः कुरुं विशोष्यं कृतिजि. ठपालुजि. ॥ ३ ॥

इति श्रीशृंगारवैराग्यतरंगिणीनापांतर समाप्तं

॥ अथ श्रीवीरस्तवनप्रारंभः ॥

स्व श्रेयससरसीरुह, सूरं श्रीवीर ऋषिवर सेव ॥ सविज्ञेपहर्षरसवश, सुरासुर
 व्यूहसेव्याऽन्धिं ॥ १ ॥ अश्वोवसीयससर, शोपसहस्त्राद्युराश्रयः सहसां ॥ संसार
 लालसां वो, नूयाद्धवशो वशी वीरः ॥ २ ॥ विपयाशीविपवीश्वर, हिंसारस सरसवा
 रिरुहशिशिर ॥ विश्वम्य रोपशार्कर, संहाररवे शिवाय स्या ॥ ३ ॥ आशंसवः शि
 वश्री, विजासलीला विहाय सुरयोषा ॥ यं शिश्रियु स्वरीशा श्रीवीर श्रेयसेऽसां
 व ॥ ४ ॥ हरहासहंसशशिहा, रहारियशसो शिवैषिसंश्रययो ॥ ईहे वरिवस्यायै,
 वीरेशस्यान्धिसारसयो ॥ ५ ॥ शीलसरोवरजहरी, विहारशिशिरा असंवरीयो व ॥
 वीरम्य व्याहारा, न्हियासुरशरीरशौर्षेहरा ॥ ६ ॥ उरुसंशयशैलस्वरु, ररिहा वीराब्द
 यो वरवृपास ॥ अवसेयाल्लौट्य वा, वर्षारुहवारिवाहरव ॥ ७ ॥ सरलाशया सुशी
 ला, रिरसवः श्रायसश्रिया सह ये ॥ येषां श्रीवीरेश्वर, सेवारस एव हर्षायं ॥ ८ ॥ वीर
 शिवालयसरसी, वरलावर सर्वविषयविघ्नास्य ॥ सवरसारसवासर, सर्वेषां लोलवीप्यवृ
 षं ॥ ९ ॥ शीलश्रियो विवाहावसरे विश्वाश्रयो रसावलये ॥ आवर्ष वसुवर्षा, वि
 शा विशालैर्यैरासी ॥ १० ॥ आशसे सहसाहं, वासवसेवाहं शिवरसाल हरे ॥ रु
 हविश्रसावसाय, व्यवसायायासविरहवर ॥ ११ ॥ अह्रुपयोर्विशरारु, श्रीसर्वस्व
 हि शशिसरोरुहयो ॥ अशरारुस्वास्यश्री, लास्यविलासैर्विलोलयसि ॥ १२ ॥ संसा
 रसलिलराशे, शोपे ऋषिरौर्वज्ञेयश्च वीर ॥ सर्वाशालासियशो, राशिरहिंसारह शा
 ला ॥ १३ ॥ उरसिशयालु श्रेय, श्रिया असवरसरोरुहशशीव ॥ रायाद्धयं शि
 वावह, रसाविहार स्वसेवायां ॥ १४ ॥ सदानिक ॥ अविषह्यशिर शूलं, विश्व
 लिहो विषयवैरिवारस्य ॥ व्याहरसि वृपरहस्य, शस्थाय शरीरिविसराय ॥ १५ ॥ शैश
 व एव सुंसार, स्वहार्यशिरोविलोलासेव्यान्हे ॥ सहसि हेलयांह, सिंहश्च वज्ञेश्वर
 सहसा ॥ १६ ॥ शिशिराद्युशिशिरलेत्रये, रार्थव्यवहारलालसैररूपै ॥ सश्रीयसे ऋ
 षीशै, रीर्ष्यावल्लीलावासिवरै ॥ १७ ॥ उन्नासय स्वसेवारसशीले विशि शिवावलीं वी
 र ॥ अविरलविषयहलांहल, लहरीसंहारसुशिरीष ॥ १८ ॥ श्रवसी वशयसि सौवै,
 व्याहारसै सुरासुराहिविशा ॥ यै सह रसालयाऽह्ना, सि हारदूरारसानरस ॥ १९ ॥
 रैहारशरीरश्री, सुरासुरावार्यवीर्यशाली यः ॥ संवरवैरियश शशि, रादुरज्ञेषश्रियां
 वासः ॥ २० ॥ वरिवस्य स्वरिवरै, विहाय आशारसाविहारियशा ॥ अंहोऽसुरवश

हरिः, सुरशेजशिलाविशालोराः ॥ २१ ॥ शुश्रूषुशिष्यविसर, अत्र सुहर्परसवर्षिसंरा
 वः ॥ अविलयवार्थैश्वर्यं, श्रीयोपाश्लेषरसविवशं ॥ २२ ॥ सैपोऽसहायवीर, शिवा
 रिवाराहवेभ्वसुसदेपु ॥ विश्वस्य सुरोर्वीरुह, आयुष्य श्रेयसां वीर ॥ २३ ॥ संसारी
 रुविपालय, वारिविशोपौर्वहव्यवाहो वः ॥ अव्याघ्रीजाऽलससुर, विलयाहावाऽविपय
 शील ॥ २४ ॥ पंचनि. कुलकं ॥ अन्हियोऽलसस्य शिष्या, वयवजवस्याऽयविरहवि
 रसस्य ॥ श्रीवीर वीरयरया, ह्येद्या अश्रेयसीरस्य ॥ २५ ॥ य. पंचवर्गपरिहारमनो
 कमेतच्चेतश्चमत्कृतिकर गुणकीर्तनं ते ॥ जिब्दाग्रवर्ति वितनोति विपद्रितानां श्री
 वीरजाग्ययुजि न प्रजवति तस्मिन् ॥ २६ ॥ इति पंचवर्गपरिहारेण श्रीजिनप्रजसू
 रिकृतश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीगौतमस्तवनं ॥

श्रीमंतं मगधेषु गौर्वर इति ग्रामो निरामोऽस्ति यस्तत्रोत्पन्नमसन्नचित्तमनिशं श्री
 वीरसेवाविधौ ॥ ज्योतिःसंश्रयगौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिं तापोत्तीर्णमुव
 र्णवर्णवपुषं जन्त्येऽनूति सुवे ॥ १ ॥ के नाम नाचगुरजाग्यसृष्ट्यै दृष्ट्यै सुराणां
 स्पृह्यंत संतः ॥ निमेषविघ्नोश्चित्तमाननेऽज्योत्सना मनोहृत्य तवापिवद्या ॥ २ ॥
 निर्जित्य नूनं निजरूपलक्ष्म्यात् एणीकृत. पंचशरस्त्वया स. ॥ इत्थं न चेत्तर्हि कुतस्त्रिने
 त्रनेत्रानलसंतं सदसा ददाह ॥ ३ ॥ पीत्वा गिरं ते गलितामृतेष्वा सुराश्विर चकुरन्तो
 ज्यमिंडं ॥ सुधान्दे, तत्र सुनीश मन्ये लक्ष्मणलात् शैवलमीक्ष्यतेऽत ॥ ४ ॥ सौ
 जाग्यजग्यापि समाविदाने प्रत्येति लोक. कथमेतदज्ञ ॥ यत्त्वां समग्राअपि लब्धिकां
 ता समालिङ्गिणु समकालमेव ॥ ५ ॥ त्वत्पादपीठे विबुधव्यमर्त्यास्तज्जिह्वनृत्या
 किल कवचवृद्धाः ॥ तैरप्यमाहृत तवोपमानोपमेयनाव कथमस्तु वस्तु ॥ ६ ॥ पदो
 र्नेखाली तव रोहिणीयं मुदे न कस्याद्भुतकृच्चरित्रा ॥ वदारुपुसां वदनेऽरत. प्रविष्टवि
 वोपि शिवाय यस्या ॥ ७ ॥ यत्केवलज्ञानमविद्यमानमथात्मनि स्वातिपदामदा
 स्त्वं ॥ लोकोत्तरत्वे ननु तावकाना दिङ्मात्रमेतच्चरिताद्भुतानां ॥ ८ ॥ नवजुणानां
 स्तुतयो गुणज्ञैर्विधीयमाना विबुधाधिपादैः ॥ स्तुत्यांतरस्तोत्रकथागणस्य समाप्त
 ये वृत्करणीभवति ॥ ९ ॥ न रागवान्नो नजसेतिचार नालंबसे वक्रगति कदाचित्
 ॥ पुरस्कृते नोपि घनाघनाशी तथापि पृथ्वीतनयोति रूढः ॥ १० ॥ प्रज्ञो महावीर
 सुपास्य सम्यक् त्वयार्जितं यत्तद्गकलारहस्यं ॥ गृहे यतिलेप्यनिरूपरत्नत्रयीजुपा
 कीर्तिरतानि तेन ॥ ११ ॥ त्वद्वाणिमाधुर्यजिता पलाय्य सितोपला काचधर्ती विवे

श-॥ तत्रापि नीतिं दधती शलाकाव्याजेन जग्राह तृणं नु वक्त्रे ॥ १२ ॥ श्रीवीरसेया
 रसलालसत्वात् तद्वाधिनीं केवलबोधजर्क्यां ॥ अय्यायतामादरिणीं वरीतुं तृणा
 य मत्वा त्वमिव त्वमस्था ॥ १३ ॥ अयोढपंके कविनिर्निपेव्ये निरस्ततापे बहु
 जगजाले ॥ विजो नवदाडमुखगागपूरे डुर्वादिपूगास्तृणवत्तरति ॥ १४ ॥ राका
 मये दिग्बलये समतात् यशःशशांकेन कृते ध्रुव ते ॥ कुहूध्वनि केवलमेव कवदेशं
 पिकाना शरणीचकार ॥ १५ ॥ जगत्रयोज्ञासि यशस्तवेतत् क स्पर्धता साईमनेन च
 ६ ॥ यस्यापराईपि तृणस्य नैव प्रजाप्रजावो लजतेऽवकाशं ॥ १६ ॥ तत्रैडुपद्मादिषु
 रूढिमात्रं त्वन्नाम्नि तु श्रीर्वसतीति मुष्टि ॥ कुतो न्यथा तङ्कपदीकृताना पुर पुरो नृत्य
 ति नित्यमृद्धि ॥ १७ ॥ वसुनूति सुतोपि कौतुक वसुनूतेर्जनक प्रणेषुपां ॥ जगव
 न्ननवोपि वर्तसे कथमंगीकृतसर्वमग ॥ १८ ॥ नाथ करोषि तृपमीश गणाधिपोपि
 धत्से सदा स यमपाशमपि प्रचेता ॥ श्रीदोपि सत्रितयमालयवासकेलिस्त्व पावकोपि
 हरसे हरहेतिपात ॥ १९ ॥ यत्तपत्यपि कलौ जिनप्रजाचार्यमत्रमनुशीलतां स्फुरेत्
 ॥ हेतुताऽत्र खलु तत्वदेकताय्यानपारमितयैव गृह्यते ॥ २० ॥ मयैव कुर्वेव शमयितुमलं
 नूत्तमहिमा सुतस्त्व जेशेन श्रुतरथपुरा गौतमगुरो ॥ कुरुद्योत क्वीवद्विनपतिसुधा गौत
 मसिमे प्रनो विद्यामंत्र प्रजव जवतो गौतम नम ॥ २१ ॥ इति श्रीगौतमस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ नेमिस्तवनं क्रियागुप्तं ॥

श्रीहरिकुलहीराकर, वज्रमणिवज्रपाणिना प्रणत ॥ त्वमवद्यमुक्त नेमे, प्रणमुपां
 शेमुपीमद्यजा ॥ १ ॥ अथ ॥ मयि प्रसादप्रवण रुपानिधे विधेहि शैवेय निज मनस्त
 था ॥ यथा जगन्नाथ मधुव्रत व्रतं नवे नवे तारकपादपद्मयो ॥ १ ॥ नवे ॥ नयेन नेमे यड
 वशमौक्तिक श्रियानिवासस्तव पादपंकज ॥ ड खोर्मिसघटविघटितात्मना तेनाति
 गनीरतमे नवावुधौ ॥ ३ ॥ आति ॥ दुर्नयाणवमहातरीनिना स्यात्पदोपहितवस्तु
 विस्तरा ॥ पातकानि नवदीरितागिराऽजंतु जातशिवदानलालसा ॥ ४ ॥ अजतु ॥
 प्रेखन्नखश्रेणिमयूखलेखा निर्वासिताशावलयाधिकार ॥ अवार्यसौदर्यविलास गेऽह
 तवाधिगुग्म शरण प्रपद्ये ॥ ५ ॥ गे ॥ यस्त्वया रुञ्चपथ सता मतो देवखडितकुतीर्थि
 कवर्ष ॥ तं प्रपद्य निरवद्यमुद्यता नेदयति ननु मुक्तिपुरी डाक् ॥ ६ ॥ ऊदे ॥ वरिवस्था
 विधौ यस्ते सद्दिवेकविनाकृत ॥ तस्याजिमुखमीकृते न जातु सुखसपद ॥ ७ ॥ असत् ॥
 कर्मकहावलीपावक तावकं दुर्नयाहकृतित्रासनं शासन ॥ ये प्रपन्ना गुणस्नेहिनो
 देहिनस्ते सुराराव्यडु खानि सुश्रिया ॥ ८ ॥ असु ॥ विजवराज्यकलासुररा
 जतावरमणीरमणीनिरलं मम ॥ हृदि पदाबुरुहस्मरणं चते गिरि च तथ्यगुणस्तव

नं तव ॥ ए ॥ चते ॥ जगद्भ्रमणश्रवणपुटाभृतद्वटां तंमोपहां सुलजितरा
 गपेशलां ॥ उदीरयन् गिरिमिलवेशनावनावरा गतामयसुखसंपदां सतां ॥
 ॥ १० ॥ अराः ॥ नव्यान् नवत्रमणजीरुकचित्तवृत्तीन् सदेशनानिरनितस्त्वमुरुप्र
 नाव ॥ दोपासमागमनिमीलितमञ्जरखंडमाग्वासयेन्न किमुश्मिनिर्गुमाजी ॥ ११ ॥
 श्राव ॥ नूत्यानिनूतपुरुदूतपुरानिरामता कुर्वति संततमहोत्सवनाजसुर्वरा ॥
 स्वहृदंनंदधुमयानि महाहृतानि ते कल्याणकानि नुवनेश विभाव्य चेतसा ॥ १२ ॥
 श्रयानि ॥ जास्त्वया भ्रमरविभ्रमवर्णां हे मुनींश्च वपुषि प्रचरिषुः ॥ पापशात्रवनिव
 र्हेणरुष ध्यानसंततिरिवाश्रितमूर्तिः ॥ १३ ॥ ऊहे ॥ इर्वोधिं मे सपदि पदकीनूत
 वास्तो पते सद्भ्रमणश्रेणीकुवलयवनश्यामलहायकाय ॥ आर्कामाराभ्रवनजयिनि
 र्घस्य ते ब्रह्मवर्म स्वैः कादंवेर्न खलु मदनः स्प्रष्टुमप्यहमीष्ट ॥ १४ ॥ इय ॥ जाडांनो
 दनिनादयादवकुलश्रीकवपीठीलुवन् मुक्ताहारमहारथं रतिपतिं निजित्य जैनाजिरे
 ॥ कीर्तिं कैरवकोमलामधिगत त्वामेव देव प्रभुं श्रीमन्नेमिजिनेंश्चश्च शरणं नीरुर्न
 वारातित ॥ १५ ॥ एमि ॥ सेवाहेवाकिनः स्युस्तव पदयुगले येऽत्र नक्तिप्रयुक्तास्तेपां
 देवा सदा पिप्रति हृतविपद संपदः सुप्रसन्नाः ॥ चितारत्नं प्रयत्नात् करतलकजि
 तं कुर्वतां सर्वकालं कालं नेतर्नराणामटति सुघटता नो मनोराज्यसिद्धिः ॥ १६ ॥ पि
 प्रति ॥ नवताऽऽरि जयोऽर्यैश्च प्रसरैः शुक्लतया जगन्नयं ॥ जिन्नसिद्धिरिति प्रसिद्धिना
 क् सुखसाम्राज्यमयी महापुरी ॥ १७ ॥ धारि ॥ अवगच्छतरां स्वसेवकं मां नगवन्
 यां च शिवस्य वर्तिनां त्वं ॥ करुणाईमनाः कुरु प्रसाद मयि तस्याः सपदि प्रकाश
 नेन ॥ १८ ॥ अक् ॥ मरकतकमनीयकातिकाय त्वमजिनतेंश्च फिरीटघटितान्हे ॥
 विरमिन मम चचरीकचर्या हृदय कुशेशकोशमन्वजस्रं ॥ १९ ॥ अय ॥ निखिलज
 गतां गोप्ता गुप्तक्रियास्तवसूत्रणादिति कृतनुति सानंदं श्रीजिनप्रचक्षरीनि ॥ नच
 तु नवता जेतुं नूयो नवत्रमसंनव नयमनयदो नीमः श्रीमद्विवातनय प्रभुः ॥ २० ॥
 इति श्रीनेमिजिनस्तवनं क्रियागुप्तं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमानस्तवनप्रारंभः ॥

कंसारिक्रमनिर्यदापगांधारागुहविराट्ठठवि ॥ वंदोर्निर्विधैरधीरधी स्तोप्येऽहं
 चरमं जिनेश्वरं ॥ १ ॥ त्रैलोक्यनेतस्त्व इर्नयालीनिर्नाशनं शासनमाश्रितो य ॥ त
 स्पेद्यज्जापुयमाविरस्ति इ रुर्मशैलेंडनिदाविधाने ॥ २ ॥ किमेकमाश्रयकर न ते यत्
 पुष्पंधयोप्येव विशेषविज्ञः ॥ त्यक्तोपजांतिभ्रमणानिलापस्त्वदंगसौगंध्यमनुप्रयाति
 ॥ ३ ॥ य. सृजत्यजरं सौरजंसारैरबुजैस्त्व पदांबुजपूजां ॥ प्रेत्य तस्य द्विवि देवम्

गाह्यं स्वागतानि निगदंति सराग ॥ ४ ॥ वाजिवारणरथोद्धतानटैरुद्धता सुजग
 जोगचंगिनृत् ॥ राज्यकक्षिरूपनन्नमीति तं ननमीति तव यः पदौ मुदा ॥ ५ ॥ ना
 किनिकायकरप्रहृताना संप्रसरन् गगने मरुजानां ॥ जन्ममहे तव कस्य न जज्ञे
 दत्तमदो धकधोःकृतिनाद ॥ ६ ॥ ये नक्त्यान्त्रमरविलसिता जज्ञुः पादांबुरुहि तव
 विजो ॥ तैः श्रेय श्रीमधुरमधुरसास्वादो सादात् समजनि कृतिभि ॥ ७ ॥ तत्त्वा
 तत्वारोपलोपप्रवीणा प्रवृष्टप्राणित्राणसंस्थाधुरीणा ॥ श्याज्ञा धत्ते मौलिना नव्यज
 तुश्रेणि श्रद्धाशालिनी तावकीना ॥ ८ ॥ वसुधाम सुधामयवक्त्र विधो तव चापित
 माद्वियते लुवि य ॥ स सुखानि सुखानिरिवोद्यमणीन् विनृते परितोऽटककीर्ति
 नर ॥ ९ ॥ स्रग्विणी कुडलत्राजिगह्नस्थला तारहारद्युतिद्योतिवहस्तटा ॥ राजि
 राखंमलानामखडादरा पादपीठे लुवत्तावके पावके ॥ १० ॥ कृणादेव तेषां शिव
 श्रीलुजगप्रयात विवृद्धिं शुचं कर्म पुसा ॥ नवन्नाममत्रस्य वर्णानुपूर्वा रसज्ञाप्रव
 र्तिष्मुरापादिता यै ॥ ११ ॥ द्रुतविलंबितमध्यरवध्वनद् विविधतूर्यमनेकमणीमयं
 ॥ कुसुमवर्षचितं तव देशनावनितलं कश्चैत्य न मोदते ॥ १२ ॥ सुकुरोज्वले ग
 एणुतां हृदये प्रमिताहूरापि बत वाक् नवत ॥ अनियन्तया प्रतिपफाल जिनध्व
 नितोऽर्थतश्च जगदर्थधिया ॥ १३ ॥ जगत्प्रजो नक्तिनरादनुद्धिजा द्विजातिवशाद्
 पहत्य कृत्यवित् ॥ नरैश्चशस्थमचीकरह्वचीपतिर्नवतं हरिनैगमेपिणा ॥ १४ ॥ वाचां
 ते निखिलनयाविरोधिनीना दुर्बोधदुमदलने कुगारिकाणां ॥ माहात्म्यं शुवनमन
 प्रहर्षिणीनां निर्वक्तुं कश्च यथावदस्तु शक्न ॥ १५ ॥ सिद्धार्थराजकुलनंदनपारिजा
 त न त्राम्यति क तव कीर्तिरपारिजात ॥ वर्णेन दुग्धमधुरेण मतोजनागसिंहो
 ष्टता स्थिरतया सुमनोजनाऽग ॥ १६ ॥ अति महति नवोर्माजिनीह त्रमतो
 जननमरणवीच्या घातदोदूयमाना ॥ कथमपि पृथुपुण्या प्राणिन प्राप्नुवति प्रव
 हणमिव केचिन्नासन तावकीनं ॥ १७ ॥ लवणिमतर्जितस्मरपुरधिरूपदर्पा घटितक
 टाकूलकृशरविद्धकामिमर्मा ॥ कनकमणीमयाचरणरश्मिरजितागी व्यजयत वाणि
 नी न नवत समाधिमुद्रा ॥ १८ ॥ प्रबोधं नव्यांनोरुहवनमधीशाधिगमयन् ह
 रन् मोहध्वांत परसमयतारा कवलयन् ॥ निविष्ट सिंहासन्यलममलजामंडलशु
 तो नवानाजातिस्मोदयशिवरिणीव द्युतिपति ॥ १९ ॥ अमितदमितस्रोतो मा
 यचुरगमसगमत्रिदशहरणीनेत्रो नेत्रत्रिजागविलोकितै ॥ तव जिन मनः शोके कर्तुं
 मनागपि न स्वसाञ्जलयितुमलं कि हेमाङ्घ्रि युगातमहावला ॥ २० ॥ दारिद्र्यापत्य
 रिचवजनुर्विस्त्रसामृत्युद्ध खरार्ता के के न तव बलवद्देवसेवा प्रपन्ना ॥ किं स्याद्भोग

प्रशमनपटोरोपधस्योपयुक्तौ मंडाक्रांता जगति जनता इ सहेनामयेन ॥ २१ ॥ श
रद्वितनिशाकरांशुप्रना जैत्रकीतिं हठाधवलितनिखिलत्रिलोकीतलं श्रद्धयोपासते
॥ सरजसविनमत्सुराधीशचूडामण्डित्योतिपामरुणितपदपीठमूर्ध्निरेप्यञ्जविस्त्वां
प्रज्ञो ॥ २२ ॥ विघ्नाणो नखविक्रियां नयकरां धृतो ह्यसदालधीरौडं शब्दम
नीचकै. प्रकटयन् न्यूवनीकाहृत ॥ त्वङ्गत्या नृतकोप्यवाप्य नृपतां मांसादर
वर्धयन् धत्तेऽनेकपराजिदर्पदलने शार्दूलविक्रीडितं ॥ २३ ॥ विद्यामंत्रैर्न कार्यं सुर
तरुनिरलं वित्तेन च मूर्तं पर्याप्तं राज्यलक्ष्म्या कृतममरतया ह्यास्तां सुवदना ॥ स्फू
र्जत्वेका तु नक्तिस्त्वपि मम मनसि ध्वस्ताखिलमला कैवल्यश्रीर्यया स्यात् करतलनिल
या साऽन्हाय जगवन् ॥ २४ ॥ श्रीवीरः सर्वदिकैः कनकरुचितनूरोचिरुद्दीपदीपैर्मग
व्यः सोस्तु दीपोत्सव इव जगदानंदसंदर्भकंदः ॥ सूक्तिजैनप्रनीयं मृदुविशदपदा स्वध
राधीयमाना नव्यानां नव्यनूत्यै नवतु नवतुदे नावनाजावितानां ॥ २५ ॥ इति
श्रीवर्द्धमान स्तवनं समाप्तम् ॥

॥ ॐ पादाग्रं विरातिजिनस्तवनं ॥
७ ॥ व

कनककांतिधनु. शतपंचकैरिष्टं स्त्रांकितदेहमुपास्महे ॥ रतिपतेर्जपिनं प्रथ
मं जिनं नृवृषचं वृषचं वृषचंऽस्मि ॥ १ ॥ विरदलांठित वांठितदायक क्रमलुठत्रि
दशासुरनायक ॥ स्तुतिपर पुरुषो नवति क्तिता वजित राजितरा जितराग ते ॥ २ ॥ तुरग
जांठनसंजव संजवत्यहरिदं जिन यत्र रसादहं ॥ हृदि दधे जणितीर्गुणचूडं
शमहिता महितामहि तावकी. ॥ ३ ॥ नवमहार्णवनिस्तरणे ह्यया त्वमजिनंदन
देव निपेव्यसे ॥ व्रतनृतां कुगते स्मरनिग्रहप्रसजया सजया सजयात्मना ॥ ४ ॥
त्रिभुवनामितकामितपूरणे सुरतरोरुपमामतिगामुको ॥ तव विज्ञो नजते नवत
क्रमावसुमते सुमते सुमतेर्देव ॥ ५ ॥ धरनृपात्मज पष्ट जिनेश्वर त्वधि कृतप्रण
यः क्रियते पतिः ॥ रजसत्तं प्रथितार्थिदरिडु तोपरमया रमया रमयान्वितः ॥ ६ ॥
प्रभुमुपार्श्वजगत्रितयाङ्गुः पवितकाशिपुरीकवीलकृण ॥ सुकृतिनः कृतिनश्चरितं वि
डुं शुभवतो नवतो नवतोदनं ॥ ७ ॥ कुनयकानननंजनकुंजराः शशिरुचे महसेन
सुत प्रज्ञो ॥ निखिलजीवनिकायहितोक्तिनिः शुभवदा नवदा नवदांगमा ॥ ८ ॥
युधि विजित्य मनोजवमग्रहीन्मकरमंकमिपाद्व्वजंमस्य यः ॥ स्तुतजना सविधिं
कुट्टशां सुरस्तुतमसतमसं तमसंस्तुतं ॥ ९ ॥ दृढरथांगजशीतल शीतलद्युतिकलावि
मला तव नारती ॥ मनसि कस्य न हर्षसनाथतां जिन ततान ततानतताधिनी ॥ १० ॥

जयति गंडकलक्षतनुर्जिनः शशिमुखोबुजदृक् दशमोत्तरः ॥ कनकदीप्तिरमर्षितहीर
कस्तवरदो वरदो वरदोर्युगं ॥ ११ ॥ शुभमयी वसुपूज्यसुत प्रज्ञो शुवननेत्रमहो महि
पांकिता ॥ तव तनुवितनोतु सुख सतामरुचिर रुचिर रुचिरजिता ॥ १२ ॥ सकलस
त्वसरोजविकासने रविरुचिर्विमल त्रिजगत्पते ॥ अपि शमं नयते तव गीर्जिनामृत
रसा तरसा तरसा तृषं ॥ १३ ॥ निजयशोचरनिन्दुतजान्द्वीजलवलक्षिमकार्तिरनं
तजित् ॥ दिशतु वः कुमतासुरनिग्रहे नृशमन शमन शमनश्वर ॥ १४ ॥ जवजयं
तव धर्म धुनोतु वाक्श्रुतिपथाऽतिथितां गमिता सती ॥ किमु करोति न पिचरज शम
वरसिता रसिता रसिताश्रुपा ॥ १५ ॥ जयति शातिजिनः स्म जगति या नटचमूर्यु
धि मोहमहीपते ॥ रणकथामपि चकिचरेण ते ससहसा सहसा सहसाऽमुवत्
॥ १६ ॥ अथति कुंशुजिनाधिपराज्यमाहिमवत स्वयि चक्रहताहितं ॥ त्रिदिवतोऽन्य
धिका जनिर्द्विर्निरसा नरसानरसारकि ॥ १७ ॥ जगदधीश सुदर्शन नूमिपान्वयपय
सरिदीश निशामणे ॥ प्रणिदधेऽतिपदो विशदव्रता वनरतानरता नरतावकान् ॥ १८ ॥
हृदि नरस्तवमद्विजिनस्मरन्नपि हि मूर्तिमुपैति मादतलं ॥ निशमयन् समताकरु
णाचिता किमुदिता मुदिता मुदितादर ॥ १९ ॥ ॥ असुव्रत कञ्चपलाठनो जनरुचि
र्हेरिवशविचूपण ॥ शिवसुखाय तपःपरशुद्धौ चक्रिावनो जवनो जवनोधियां ॥ २० ॥
विरतिवर्म तटाहतिकुवितस्मश्रर शरणाऽक्रियतिर्गद्वया ॥ गुणगणस्य नमिर्बुधबर्ह
ण व्रजनना जनजाजुर्न जावचक् ॥ २१ ॥ अनुमितं खलु नेमिविज्ञो जवत्रमणतो
मयका यद्वि यच्चिर ॥ महितपादचवान् जवत रुपाजवनमानवमा वनमालिना
॥ २२ ॥ कमर्षशासन पार्श्वशिवकरे रमतएव मन्ये प्रियधर्मणा ॥ अपि कुतीर्थ्यज
नेन डुरात्मना तव मतेऽवमतेऽवमतेजसः ॥ २३ ॥ त्रिजगदीक्षण केसरिलक्षण कृ
णामपि प्रभुवीर मनोगिरौ ॥ गुणगणान् मम मास्म विरज्यतामुदयिता दयितादयि
तावकान् ॥ २४ ॥ च्युतिजनुव्रत केवलनिर्वृतिद्वेषदिनाददता मुदमार्हता ॥ व्यरचि
यैरुपयत्रिदशैर्दृशां नवसुधा वसुधा वसुधामनिः ॥ २५ ॥ इति जिनप्रजवोमयकांऽति
मक्रमगतैर्यमकाऽवयवैर्नुता ॥ बलममी वितरतु धुरिस्थिताः शुभवता जवतां जवतां
तिजित् ॥ २६ ॥ सद्यपदेशकर प्रसरङ्किताऽखिलतमस्कतया तपनोपमा ॥ ददतु तीर्थे
कृतो मम निर्ममा शमरमा मरमाऽमरमानिता ॥ २७ ॥ जयति शुर्नयपंकजिनीवने
हिमततिर्यैतिकैरवकौमुदी ॥ शमयितु तिमिराणि जते महावृजिनजाजि न जाजिनजार
ती ॥ २८ ॥ करकृतात्रफला एणती जिनप्रजवतीर्थेमिचारिमधिभ्रिता ॥ हरतु हेमरु
चिः सुदृशा सुखव्युपरम परमं परमबिका ॥ २९ ॥ इति चतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तं ॥

अथ श्रीमहावीरस्तवनप्रारंभः

पराक्रमेणैव पराजितोऽयं सिंह सिपेवे धृतलक्ष्मदज. ॥ सुखानि व खानिरयं र
 माणा द्वैमातुरस्तीर्थकर. करोतु ॥ १ ॥ सप्तश्वतेजाः करसप्तकोञ्च कर्मधसप्ता
 मिरसप्तजीति ॥ प्रणीतवान् सप्तशती नयानां वीर. श्रिये व्यजितसप्ततत्वः ॥ २ ॥
 शक्रान्त प्राणतकल्पपुप्योत्तरात्वभाषाढवलरूपपृथा ॥ देवाधिदेव द्विजदारदेवा
 नंदोदरेऽनूविहितावतार ॥ ३ ॥ इपस्य नंदादसिता त्रयोदशी दशशीत्यहानंत
 तरमीगितस्तत ॥ सुरेशसेनापतिवेशिताध्वना क्लृप्तं कुलं यत्र पवित्रित त्वया
 ॥ ४ ॥ प्रनूतनूतियुजवज्जुवा ज्वज्जनुर्महे नोऽजनि हेजिन ध्रुवम् ॥ जगत्रयीजंतु
 षु हर्षवर्षिणी निरूढरूढिर्मदनत्रयोदशी ॥ ५ ॥ त्वया स्वदेह्युतिसंविजागसंजावि
 त हेम सुवर्णमासीत् ॥ तारतु हीनं त्वदनुग्रहेण ड्वर्णमित्यापदवर्णवादं ॥ ६ ॥
 बाव्ये विवोधाय हरे. सुरादि. पादाग्रनुन्नस्तव यच्चकंपे ॥ चित्रीयता त्वन्तरसा रसात
 न्मूर्धानमाधूनयतिस्म नूनं ॥ ७ ॥ बचूव जाग्यातिशयप्रज्ञावात् गुरुस्तवापि त्रिजग
 जुरोर्य ॥ युक्तयैव त मेरुगिरेर्गिरिष्ठं सिद्धार्थमप्यार्यगणा गृणन्ति ॥ ८ ॥ कथं गु
 णः प्राप्तयश पताका नारीषु नास्तु त्रिशलाशलाका ॥ यत्कुङ्किणुको विमल सुवृ
 त्तो मौक्तिक्यनूस्त्वं गुणयुक्तिहृद्य. ॥ ९ ॥ द्विविप्रवृद्धं सुरमीश मुष्टियातेन यदाम
 नतामनैषी. ॥ गर्वादिखर्वीकरणश्रमं तु चकर्ष तीर्थेश्वर शैशवेन तत् ॥ १० ॥ मो
 हं गमी य खलु तन्नवेपि गंतु कथ सोर्दति लेखशालां ॥ इतीव शक्रोऽपजलाप
 पित्रोरनौचिति ते विनयेन धीमान् ॥ ११ ॥ व्याकुर्वतस्ते हरये यदागमं संगृह्य तु
 व्या कतिचित् गिरां जवान् ॥ अथापको यद्विदधे तदञ्चकरैर्दं सुवि व्याकरणं प्र
 थामगात् ॥ १२ ॥ यस्या न कस्योदितमुक्तिमार्गमार्गस्य कृष्णा दशमी शमीश ॥ प्रा
 ज्यं प्रज्ञो यत्र विसृज्य राज्य श्रमण्यसाम्राज्यमुपायथास्त्व ॥ १३ ॥ शिवालये प्रो
 ङ्कितविग्रहं यत् त्वत्पादमूले चमर निलीनं ॥ जचारिदंनोलियम. प्रचडो नस्प्र
 पुमाच्यैष्ट किमत्र चित्रं ॥ १४ ॥ न बाधितु जातु दधु समर्थतां मुनीन् धातोरि
 व नान्वचर्त्तु ॥ समाधिरूढां प्रकृतार्थसंपदं तवोपसर्गा व्यशिषंस्तु केवलं ॥ १५ ॥
 न कौशिके रागमुपासनापरे करोपि रोपं स्म न चमकौशिके ॥ अहो उदासीनत
 यैव निर्जिता चमूस्त्वया ड्वर्षिपहापि कर्मणां ॥ १६ ॥ निर्वाहितुगां सुर
 चतुर्द्वयतस्तथा तथा यो डुरचेष्टत त्वयि ॥ बहिः कतः स्वर्गिसमाजसंगमा

त् ससंगम म्यान्नकथं जनंगम ॥ १७ ॥ एकाग्रपङ्कत्रिशतावसाने श्रीवीरती
 रे ऋजुवातिकाया ॥ तवोदगात् केवलऋद्धिरस्ताऽपराधराधम्य शुचौ दशम्या
 ॥ १८ ॥ एकाहमाहुर्मुनय कथं मामितीव कोपात् त्वदुपर्यशोक ॥ अदीदृशत् पट्
 पटगर्जपुष्पव्याजस्फुरत्तारकटक्कसहस्रं ॥ १९ ॥ सुरैर्विकीर्णास्तव देशनावना वञ्च
 प्रसूनप्रकरा समतत ॥ जयश्लथीनूतकरात्परिच्युता शराऽवानंगजटस्य कौसुमा
 ॥ २० ॥ स्फुटीजवन्मालककौशिकीमुखप्रशस्तरागस्तवसंस्तवोचित ॥ प्रविश्य दि
 व्य श्रवणाध्वनि ध्वनिर्मुदे न केपा रजयन् मृगानपि ॥ २१ ॥ स्थातुं चलञ्चामर
 युगमकैतवात् त्वदीयदतद्युतिजान्हवीजले ॥ ध्रुव त्वदास्यावुजवातिनारती युग्ये
 उपेतां कलहंसदपती ॥ २२ ॥ स्थैर्यं हृत यद्भवता शिद्युत्वे तथाचनाय स्फुटमे
 प मेरु ॥ स्वयसमागादिति तुंगहेमसिंहासने ते करवति तर्क ॥ २३ ॥ हतु क्कमो
 हं तम एकमेव तद्देहि मेसर्वतमोपहृत्व ॥ इतीव विज्ञापयितु सिपेवे नामडलञ्चद्व
 धरो रविस्त्वा ॥ २४ ॥ दूराङ्गराजन्मनिदे जवजी सुधासपीत्ये त्रिजगज्जनौधं ॥
 नूनं नदन् संसदि देवदेवौर्देव्याहतो कुञ्जिनराञ्जुहाव ॥ २५ ॥ मेदं प्रमाणातरद
 शितं सन्नमस्यते सर्वे इतीव पुसा ॥ सितातपत्रत्रितयह्वलेन रत्नत्रयं दर्शयतिस्म सा
 क्हात् ॥ २६ ॥ सुपर्वसचारितहेमपकजापदेशतश्रंक्रमणरूपे किल ॥ गतस्फुटहस्या
 पि गुणैर्वेशवदा पदोस्तले ते निधयो नवाञ्जुवन् ॥ २७ ॥ त्रैलोक्यसंयुक्तनिरकुशत्रि
 प्राकाररेखात्रयवेष्टितांगं ॥ नैकृत धन्या कतिनाम रक्षायंत्रोपम त्वा सुमनोर्चनीय
 ॥ २८ ॥ त्वत्प्रातिहार्यश्रियमित्यवेदय चेतो नयस्येश चमञ्चकार ॥ स केवली चेन्न
 तदा ऽस्तु तस्य नरञ्जुवम्याजननिर्जगत्या ॥ २९ ॥ अनिद्यविद्यावदनेदुदर्पणा गणा
 धिपास्ते यदसूत्रयन् श्रुत ॥ गिरस्तवैव त्रिपदीसुधाकिर सतां मन स्वप्रथितेन गौ
 रव ॥ ३० ॥ अशेषजापापरिणाममञ्जुलं विचित्रसदेहविपातवङ्गलं ॥ सुवे वच
 स्ते नयनिर्विरोधता विधायि संबोधविधौ निबंधनं ॥ ३१ ॥ तप्त्वा तप पट्टमपास्तज
 व्यलोकार्तिक कार्तिकदर्शरात्रौ ॥ अपापमापु पदमीश पापा पुयीं दिगुग्सप्त
 तिवत्सरायु ॥ ३२ ॥ स्वे यत्र बुद्धे सति फट्गुनीषु जाले स्मरोऽञ्जुमृतकटपमानी
 तद्विश्वद्योत्तरफट्गुनीषु वञ्च कल्याणकपचक ते ॥ ३३ ॥ चुवनाधिपतेरनंतया
 जवत. स्वातिगतेऽत्र चाधिपे ॥ उदयाद्युचित घनाधनोदकयोगान्नवमौक्तिकश्रि
 या ॥ ३४ ॥ ज्ञातेद्ववाकुकुलप्रदीप जगवन् वदारुवृदारकश्रेणीरत्नकिरीटकांतिलहरी
 संस्नाप्यमानान्हये ॥ मोहोर्वीपतिगर्वपर्वतजिदि व्याधामधामश्रियामश्रातं जिनसिं
 हसूरिमहित श्रीवीर तुन्यं नम ॥ ३५ ॥ इतिस्तुतिपरायणे त्रिजगदेकचूडामणे प्रसीद

परमेश्वर स्वरसज्जितिनध्रे मधि ॥ जवेन्मम जवेजवे जवडुपासनावासना जिनप्रजवसं
विदा वरद पूर्णमेतावता ॥३६॥ इति पंचकव्याणिकमयं श्रीमहावीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीमंत्रस्तवनप्रारंभः ॥

स्व श्रियं श्रीमदहंत. सिद्धा. सिद्धिपुरीपदं ॥ आचार्या पंचधाऽऽचार वाचका
वाचना वरा ॥ १ ॥ साधव. सिद्धिसाहाय्यं वितन्वतु विवेकिना ॥ मगलानां च सर्वेषा
माद्यं जवति मगलं ॥ २ ॥ अर्हमित्यह्वर माया बीज च प्रणवाह्वर ॥ एन नानास्व
रूपं च ध्येयं ध्यायंति योगिन ॥ ३ ॥ हृत्पद्मपोडशदलस्यापिन पोडशाह्वर ॥ पर
मेष्टिस्तुतेर्वीज ध्यायेदह्वरदं मुदा ॥ ४ ॥ मंत्राणामादिमं मंत्रं तत्रं विघ्नौघनिग्रहे ॥
ये स्मरति सदैवेनं ते जवति जिनप्रजा ॥ ५ ॥ इति श्रीजिनप्रजविरचितं मंत्रस्तवनं
समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमानस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीवर्द्धमान सुखदृश्येऽस्तु यश.प्रतापैरजिवर्द्धमान. ॥ सिद्धाधिकाररक्षति यस्य
तीर्थं विघ्नौघत संततमेव देवी ॥ १ ॥ जिनैश्च नैश्च अपि तावकीनां स्तोतुं गुणान्
शक्तिभुपस्तथापि ॥ ^{पद्यता} अथैरितस्तान् कतिचिन्नवीमि नाङ्ग. स्वमात्रां विविनक्ति वीर
॥ २ ॥ नयाध्वन ^{पौ} अथ कृतैकमत्स्यैरश्रांतमेकातहितोपदेशै ॥ करैस्विोभ्युति
ना तमिस्वास्त्वया तानां जवजीर्निरासि ॥ ३ ॥ प्रणीयतेऽस्माद्भुतरत्नचित्रै स
मं विमानैस्त्रिदशागमेन ॥ कल्याणकैर्नूवलयं त्वदीयैस्त्रिविष्टपान्यूनमनूनरुद्धि ॥ ४ ॥
जवतमीशं जजतोऽनुजातु डु खान्यलं कानि च नापि तापै ॥ पाणिस्थचितामणिमंग
जाज का निर्कृति. पीडयितु शशाक ॥ ५ ॥ सूर्यप्रजा मोहतम समूहव्यापाठने मंशयव
ह्निवात्री ॥ त्वदेशनावागु जयति त्रिलोकीलोकस्य कर्णामृतदृष्टितुल्या ॥ ६ ॥ रिपून्
विजित्यांतरगानगाधवीर्येण सतज्ञानरमा निवेश्य ॥ ऊर्यकार्पीरिन मुक्तिपुर्या. सा
घ्राज्यमज्यानि सुखोत्करेण ॥ ७ ॥ निस्तेव पीयूषभुजा जनस्य मथ्नाति मिथ्यात्व
विपोर्मिपूर ॥ तव प्रजा नेत्रपुटैर्निपीता कृतस्थितिवर्षमणि नि कलंके ॥ ८ ॥ वृत्ताष्ट
कायह्वरनामधेयैस्तदंख्यवर्णाहितनामकेऽन्हि ॥ इयं स्तुतिर्वीरजिनस्य दृष्टा करोतु क
ल्याणमनुत्तर व. ॥ ९ ॥ इति जिनप्रजसूरिकृत श्रीवर्द्धमानस्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वस्तवनप्रारंभः ॥

पार्श्वं प्रभुं शश्वदकोपमानं ढकोपमानं जववन्दिशातौ ॥ आराधतां दत्तनिरतरा
यं निरतरायं पदमाभुमीडे ॥ १ ॥ वीह्ने जगन्नेत्र महान यत्र महानयत्रस्य तवाद्भि

युग्मं ॥ पुण्य स एवाऽवसरोऽमराजी सरो मराजीव निपेवते चत् ॥ २ ॥ प्रपोमुपां
 पूर्णसमस्तकामं समस्तकाम सकृदप्यधीश ॥ नवतमानस्य विमानमाया विमानमा
 या प्रनवो नवति ॥ ३ ॥ नयाढ्यमुद्यजमचगमाल मचंगमालहितसर्वजाव ॥ कैर्ना
 म धीमद्भिरमानि शातं रमानिशात न वचस्त्वदीय ॥ ४ ॥ नित्य प्रमादेनविना शि
 ताम विनाशितामगलमगनाजा ॥ त्वन्नाम धन्य स्पर्तीश सार रतीशसारगान्धे
 नादं ॥ ५ ॥ नृत्योपि योत्राऽवृजिनप्रजावे जिनप्रनावैकरसस्त्वयि स्यात् ॥ ६ ॥ सरुपवा
 न्नीरगजाश्वसेने गजाश्वसेनेश्वरतामुपैति ॥ ६ ॥ नूयान्नमो नीलतम्राऽऽज्जकाय तमाल
 कायप्रज तुच्यमेव ॥ नवात्त्वदन्य कतमोऽविता न तमोवित् नवान्निद्रोर्क एव ॥ ७ ॥
 त्वदुक्तकृत्येष्वविरामवामे विराम वामेय मयि प्रसीद ॥ नव्यात् तवत्त्व पातु जिन प्रनोऽयं
 जिनप्रनो यं विदधे यतीऽः ॥ ८ ॥ इति जिनप्रजसूरिविरचितं ॥ १ ॥ श्रीपार्श्वस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वनाथस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीपार्श्वपादानतनागराज प्रोत्सर्पदेन कफनागराज ॥ सतां
 त्वा सस्तुम स्थैर्यगुणाऽमराऽगं ॥ १ ॥ ये मर्त्यदेवासुरमानन
 रमाननीय ॥ सद्यस्त्रिलोकीतिलकाऽमितानि सिध्यन्ति तेपा
 दृशोर्दयं पद्मदलानुकारं नाशिश्रयने कमलानुकाऽर ॥ कुती
 र्वश्रिया प्रेम तदीहितेषु ॥ ३ ॥ अन्यर्हितं नव्यकदंबकाना ह्ये
 सेवति ये त्वा विधिवद्व्रजते निर्वाणसौर्यं बुधवद्व्रज ते ॥ ४ ॥
 नि र्वपु श्रिया ते सुरनायिकानि ॥ नाहोनि चेत परजावली
 नावलीन ॥ ५ ॥ प्रनो तवाऽस्तस्मरराजमाने नखाणुजाजेन
 जे लक्ष्मिगृहे रसेनशक्रार्चनीय सुमहे रसेन ॥ ६ ॥ आकाहि
 रामाऽष्टष्टमहोदयपुरी ध्रुवतानिरामा ॥ अप्यध्वरश्रुतितप
 प्यते जिन तव स्तवनाहतेन ॥ ७ ॥ इत्थं फणीऽ सततश्रितपा
 पवति यस्तव पार्श्वनाथ ॥ तस्मै ष्टष्टमवृजिनप्रजवाय नव्या ल
 मवायनव्या ॥ ८ ॥ इति जिनप्रजसूरिविरचितं श्रीपार्श्वनाथस्त
 वनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीनंदीश्वरकल्पप्रारंभः ॥

आराध्य श्रीजिनाधीशान् सुराधीशार्चितक्रमान् ॥ कल्प नंद
 श्वपावनं ॥ १ ॥ अस्ति नंदीश्वरोनाम्नाऽष्टमोऽदीपो द्युसंनिज ॥
 दीश्वरेणानोधिना युत ॥ २ ॥ एत दलयविष्कंजे लक्षाशीतिश्रु
 त्पारिधिपिणा नं
 राजना

नां त्रिपष्टिश्च कोट्य. कोटीशतं तथा ॥ ३ ॥ असौ विविधविन्यासोद्यानवान् देव
नोग्नू ॥ जिनैऽपूजासंसक्तसुरसंपातसुंदरः ॥ ४ ॥ अस्य मध्यप्रदेशे तु क्रमात्
पूर्वादिदिक् च ॥ अजनवर्णाश्रित्वारस्तिष्ठत्यंजनपर्वता ॥ ५ ॥ दशयोजनसहस्रा
तिरिक्तविस्तृतास्तले ॥ सहस्रयोजनाश्चार्धं कुड्मेरूण्याश्च ते ॥ ६ ॥ तत्र प्राक्
देवरमणो नित्योद्योतश्च दक्षिण. ॥ स्वयंप्रज्ञः प्रतीच्यस्तु रमणीय उदकस्थितः ॥ ७ ॥
शतयोजनायतानि तदर्धं विस्तृतानि च ॥ विसप्ततियोजनोच्चान्यर्धचैत्यानि तेषु च ॥
॥ ८ ॥ पृथक् दाराणि चत्वार्युच्चानि षोडश योजनी ॥ प्रवेशे योजनान्यष्ट विस्ता
रेष्यष्ट तेषु तु ॥ ९ ॥ तानि देवासुरनागसुपर्णानां दिवौकसा ॥ समाश्रयादेव तेषां
नामनिर्विश्रुतानि च ॥ १० ॥ षोडशयोजनायामा स्तावन्मात्राश्च विस्तृतौ ॥ अष्ट
योजनकोत्सेधास्तन्मध्ये मणिपीठिका ॥ ११ ॥ सर्वरत्नमया देवहृंदकाः पीठिकोप
रि ॥ पीठिकान्योऽधिकायामोडयनाजस्तु तेषु च ॥ १२ ॥ रूपना वर्धमाना च त
था चदाननापि च ॥ वारिपेणाचेति नाम्ना पर्यकासनसंस्थिता ॥ १३ ॥ रत्नमद्योयु
ता. स्वस्वपरिवारेण हारिणां ॥ शाश्वतार्हत्प्रतिमा. प्रत्येकमष्टोत्तरं शतं ॥ १४ ॥
दे दे नागनूतकुंडनृत् प्रतिमे पृथक् पृथक् ॥ प्रतिमानां पृष्टतस्तु उन्नतृत् प्रतिमैकिका
॥ १५ ॥ तेषु धूपघटीदामयंटाष्टमगलध्वजा. ॥ उन्नतोरणचंगेर्यः पटलान्यास
नानि च ॥ १६ ॥ षोडश पूर्णकलशादीन्यलंकरणानि च ॥ सुवर्णरुचिररजो वालु
कास्तत्र नमय ॥ १७ ॥ आयतनप्रमाणेन रुचिरा मुखमंडपाः ॥ प्रेक्षार्थमंडपा
अकृवाटिकामणिपीठिका. ॥ १८ ॥ रम्याश्च स्तूपप्रतिमाश्चैत्यवृक्षाश्च सुंदरा. ॥ १९ ॥
इध्वजा. पुष्करिण्यो दिव्या संति यथाक्रम ॥ १९ ॥ प्रतिमाः षोडश चतुर्दशस्तू
पेषु सर्वतः ॥ गत चतुर्विंशमेव ता साष्टशततद्युताः ॥ २० ॥ प्रत्येकमंजनाडीणां
ककुब्जु चतसृष्वपि ॥ गते लक्षे योजनानां निर्मत्स्यस्वहवारयः ॥ २१ ॥ सहस्र
योजनो देशे विष्कंजे लक्षयोजना. ॥ पुष्करिण्यः संति तासां क्रमानामानि पो
मश ॥ २२ ॥ नदिपेणा चाप्यमोघा गोस्तूपाऽथ सुदर्शना ॥ तथा नंदोत्तरानंदा सु
नदा नदिवर्धना ॥ २३ ॥ नद्या विशाला कुमुदा पुंडरीकिणिका तथा ॥ विजया वै
जयंती च जयंती चापराजिता ॥ २४ ॥ प्रत्येकं योजनं पंच पंचशत्या परत्रच ॥ यो
जनानां पंचशतिं यावद्विस्तारजाजि तु ॥ २५ ॥ लक्षयोजनदीर्घाणि महो
द्यानानि तानि तु ॥ अशोकसंज्ञक चूत चपकसंज्ञया ॥ २६ ॥ मध्ये पु
ष्करिणीनां च स्फटिकाः पत्यमूर्तयः ॥ लजामवो दुद्यानादिचिन्हा दधिमुखाश्च
यः ॥ २७ ॥ चतु.पष्टिसहस्रोच्चा. सहस्रं चावगाहिनः ॥ सहस्राणि दशा

धस्ताडुपरिष्ठाच्च विस्तृता ॥ २८ ॥ अतरे पुष्करिणीनां द्वौ द्वौ रतिकराचलौ ॥ त
तो जवति द्वात्रिंशदेते रतिकराचला. ॥ २९ ॥ शैलेषु दधिमुखेषु तथा रतिकराडि
पु ॥ तद्वाभ्यतार्हचैत्यानि सत्यंजनगिरिष्विव ॥ ३० ॥ चत्वारो द्वीपविदिकु तथा
रतिकराचला ॥ दशयोजनसहस्रायामविष्कंजशालिन ॥ ३१ ॥ योजनाना स
हस्रं तु यावद्ध्रूयशोनिता ॥ सर्वरत्नमयादिव्या ऊर्ध्वर्याकारधारिण ॥ ३२ ॥ त
त्र द्वयो रतिकराचलयोर्दक्षिणस्थयो. ॥ शक्रस्थेशानस्य पुनरुत्तरस्थितयो पृथक्
॥ ३३ ॥ अष्टानां महादेवीना राजधान्योऽष्टदिकु ता ॥ लक्षाबाधा लक्षमाना जिना
यतननूपिता ॥ ३४ ॥ सुजाता सौमनसा चार्चिमाली च प्रनाकरा ॥ पद्मा शिवा तथा
शुच्यंजने नूतावतंसिका ॥ ३५ ॥ गोस्तूपासुदर्शने अप्यमलाप्सरसौ तथा ॥ रोहिणी
नवमी चाथ रत्ना रत्नोच्चयापि च ॥ ३६ ॥ सर्वरत्नसंचया च सुवसुर्वसुमित्रिका ॥ व
सुजागादि च वसुधरानंदोचरे अपि ॥ ३७ ॥ नंदोत्तरकुरुर्देवकुरु कृष्णा ततो
पि च ॥ कृष्णराजी रामरामा रक्षिता प्राक् क्रमादमू ३८ ॥ सर्वैर्दयस्तासु देवा कुर्व
ते सपरिब्रुवा ॥ चैत्येष्वष्टादिकापुष्पतिथिषु श्रीमदर्हता ॥ ३९ ॥ प्राच्येऽजन
गिरौ शक्र कुरुतेऽष्टादिकोत्सव ॥ प्रतिमानां शाश्वतीना चतुर्दारे जिनालये ॥ ४० ॥
तस्य चाडेऽश्रुर्दिकस्थमहावापीवितर्दिषु ॥ स्फाटिकेषु दधिमुखपरितेषु चतुर्ष्वपि
॥ ४१ ॥ चैत्येष्वर्हत्प्रतिमाना शाश्वतीना यथाविधि ॥ चत्वार शक्रदिग्पाला कुर्वते
ष्टादिकोत्सव ॥ ४२ ॥ ईशानेऽस्त्वोत्तरार्हेऽजनाज्ञौ विदधाति त ॥ तद्वोकपालास्त द्वापी
दध्यास्यादिषु कुर्वते ॥ ४३ ॥ चमरेऽो दक्षिणात्येऽजनाज्ञाबुत्सव सृजेत् ॥ तद्वाप्यंत
र्दधिमुखेष्वस्य दिग्पतय पुन ॥ ४४ ॥ पश्चिमेऽजनशैलेतु बलीऽ कुरुते मह ॥ तद्दि
ग्पालानु तद्वाप्यंतर्जाग्दधिमुखादिषु ॥ ४५ ॥ वर्षदीपदिनारव्यानुपवासान् कुहू
तिथौ ॥ कुर्वन्नंदीश्वरोपास्त्यै श्रायसी श्रियमाश्रयेत् ॥ ४६ ॥ नक्त्या चैत्यानि वदा
रुस्तत्तोत्रस्तुतिपाठनाक् ॥ नंदीश्वरमुपासीनोऽनुपूर्वाहस्तरेत्तरा ॥ ४७ ॥ प्राय पू
र्वाचार्य ग्रथितैरेवायमाचित श्लोकै ॥ श्रीनंदीश्वरकटपो लिखित इति श्रीजिन
प्रजाचार्यै ॥ ४८ ॥ इति श्रीजिनप्रजाचार्यविरचितनदीश्वरकटप समाप्त ॥

॥ अथ श्रीशारदास्तवनप्रारंभः ॥

वाग्देवते नक्तिमतां स्वशक्तिकलापवित्रासितविग्रहा मे ॥ बोधं विद्युर्द्धं जवती
विधत्ता कलापवित्रासितविग्रहा मे ॥ १ ॥ अकंप्रवीणाकलहंसपत्राकृतस्मरेणानमतां
निहतु ॥ अकंप्रवीणा कलहंसपत्रा सरस्वती शश्वदपोहता ६ ॥ २ ॥ ब्राह्मी विजे

पीष्ट विनिष्कुण्डप्रनावदाता धनगर्जितस्य ॥ स्वरेण जैत्री ऋतुना स्वकीयप्रजा
 वदाता धनगर्जितस्य ॥ ३ ॥ मुक्ताङ्गमालालसदौपधीशाऽजिज्ञुञ्ज्वला नाति करे त्व
 दीये ॥ मुक्ताङ्गमालालसदौपधीशा यां प्रेक्ष्य नेजे मुनयोपि हर्ष ॥ ४ ॥ ज्ञानं
 प्रदातु प्रवणा ममातिशया लुनाना नवपातकानि ॥ त्वं नेमुपां नारति, पुडरीक
 शयालुनानानवपातकानि ॥ ५ ॥ प्रौढप्रजावा समपुस्तके न ध्याता सि येनांवि विरा
 जिहस्ता ॥ प्रौढप्रजावा समपुस्तकेन विद्या सुधापूरमदूरङ्खा ॥ ६ ॥ तुभ्यं प्र
 णाम क्रियते नयेन मरालयेन प्रमदेन मात ॥ कीर्तिप्रतापी जुवि तम्य नम्रमरालयेन
 प्रमदेन मात ॥ ७ ॥ रुच्यारविद्वज्रमदं करोति वेलं यदीयोर्चति तेऽन्हियुग्म ॥ रु
 च्यारवि द्वज्रमदं करोति स स्वस्थ गोष्ठी विडुपां प्रविश्य ॥ ८ ॥ पादप्रसादात्तव रू
 पसंपत् लेखानिरामोदितमानवेश ॥ नवेन्नर सूक्तिनिरव चित्रोद्धेखानिरासीदि
 तमानवेशः ॥ ९ ॥ सितांशुका ते नयनानिरामा मूर्ति समाराध्य नवेन्मनुष्य ॥
 सितांशुकांते नयनानिरामांधकारसूर्यः क्लृतिपावतस ॥ १० ॥ येन स्थित त्वामनु
 सर्वतीर्थैः सजाजिता मानतमस्तकेन ॥ डुर्वादिनां निर्दलित नरेऽसजाजितामानत
 मस्तकेन ॥ ११ ॥ सर्वज्ञ वक्रवरतामरसांकलीनामाली धनी प्रणयमंधरया दृशै
 व ॥ सर्वज्ञवक्रवरतामरसांकलीना प्रीणातु विश्रुतयशा श्रुतदेवता न ॥ १२ ॥
 क्लृप्तस्तुतिर्निविडनक्तिजमत्वष्टकैर्गुणैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा ॥ बालोऽनुकप्य इ
 ति रोपयतु प्रसादस्मेरां दृशं मयि जिनप्रनस्रिवर्णा ॥ १३ ॥ इति श्रीजिनप्रनस्रि
 कृतश्रीशारदास्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीजिनसिंहसूरिस्तवनप्रारंभ ॥

प्रभुः प्रदद्यान्मुनिपक्षिपंकेनांगारिरागोपचिति सदान ॥ समुद्रहन् श्रीजिनसिंह
 सूरिर्नांगारिरागोपचिति सदा न ॥ १ ॥ कव्याण गोत्राधितमोहरेणां चमनिलेन
 स्थिरतागुणेन ॥ कव्याणगोत्राधि तमोहरेणौन्नत्यं त्वयैवार्हतशासनस्य ॥ २ ॥ स्वा
 मिन् मनोन्वेति न ते मृगाङ्गी मनोजवाना चतुरगमानां ॥ बोयेन कृद्दीर्न कुलं गजा
 ना मनोजवानां च तुरगमानां ॥ ३ ॥ कदर्पकातारविजावसूना प्राप्ते त्वयीगत्यमृ
 पिं तप श्री ॥ कंदर्पकातारविजावसूनां निर्धिर्गुणानां, जुवि यत्त्वमेव ॥ ४ ॥ ज
 गङ्गानांनोजवने गुणौघवक्रारविदं नविना रुतोह ॥ वदे त्वदीयं सकलोरुपस्य व
 क्रारविदं नविनारुतोह ॥ ५ ॥ सर्व कषायानलमेघवारिमोहाय सूक्तं, गृणु त विजेतु ॥ स
 र्व कषायानलमेघवारिवृत्तं स्मर श्रीजिनसिंहसूरे ॥ ६ ॥ मुदेन कस्यास्तु धुरि स्थि

ता ते सरस्वती कृडवशीकराणा ॥ माधुर्यशैल्याङ्गयिनी तरिर्जी सरस्वती कृडवशीकराणा ॥ ७ ॥ सदोदिताबोधमपूरुपा अप्यानदितावागमृत श्रवोन्त्या ॥ सदोदिताबोधमपूरुपा अप्युपाशमस्तेन मुनीषु तेर्पा ॥ ८ ॥ व्यामोहवाणासुरदर्पमाथ पद्मावरो दीर्णतमोवितान ॥ त्वमेधि सन्मंत्रजपाजिराऽ पद्मावरो दीर्णतमोवितान ॥ ९ ॥ योगेन धीरोचित माननीय श्रियस्तवोचे शशिनोपमानं ॥ योगेनधीरोचित माननीय प्रख्यातमूर्खं तमुदाहराम ॥ १० ॥ स्मराद्युगानां हृदि मेगिमर्माविधामरेशास्त्र निधेहितानि ॥ तत्वानि सूरीऽ मदांद्दिनेदविधाऽमरेशाऽस्त्रनिधे हितानि ॥ ११ ॥ जिनप्रजाचार्यमजासमानावबोधमव्या कविमात्मशिष्यं ॥ जिनप्रजा चार्यमजासमाना प्रजो स्फुरत्वस्य तव प्रसादात् ॥ १२ ॥ श्रीमङ्गिनेश्वरयतीश्वरपादपद्मशृंगारजृंगकरिणि जिनसिंहसूरि ॥ इत्थं स्तुतोन्मु-यमकै शमकैरवेडुरानदकदलनडुर्लजितो नतानां ॥ १३ ॥ इति श्रीजिनप्रजसूरिरुतयमकस्तवकितश्रीजिनसिंहसूरिस्तवनं समाप्तं ॥

॥ अथ श्रीपंचनमस्कृतिस्तवनप्रारंभ ॥

प्रतिष्ठित तम पारे पारेवाग्वर्षिर्वेनव ॥ प्रपंच वेदस पंच नमस्कारमजिद्रुम ॥ १ ॥ अहो पंचनमस्कार कोप्युदारो जगत्सु य ॥ सपदोऽष्टौ स्वयं धत्ते दत्तेऽनता स्तु ता सता ॥ २ ॥ दत्तेऽनुकूजएवान्यो बुक्तिमात्रमपि प्रभु ॥ एष पच नमस्कार प्रातिलोभ्येपि मुक्तिद ॥ ३ ॥ नमस्कारनरेऽस्य किमपि प्राचव स्तुम ॥ यदीयफुल्कृतेनापि विड्वति द्विष कृणात् ॥ ४ ॥ सिद्धयोप्यणिमाद्यास्ता नमस्कारमधिष्ठिता ॥ अष्टापष्टशृङ्गरात्मपि यदसौ प्रणवेऽविशत् ॥ ५ ॥ शिर.कादिधियाधीरै स्वागदेशनिवेशिता ॥ नमस्कृतेर्नवपदी कटरे वज्रपजर ॥ ६ ॥ वर्षेता श्रीनमस्कारान् कार्मण किमतोधिकं ॥ यत्संप्रयोगत पाशुरपि सवनयेङ्गत् ॥ ७ ॥ नमस्कार नुम सिद्ध यत्पदस्पर्शपूतया ॥ पद्याञ्जादितसर्वांग शांतिमासादयेऽऽवरी ॥ ८ ॥ नववर्षीं नमस्कृत्या कृती प्रतिपदं जपन् ॥ विधत्ते विविधानिघ्नविघ्नवग्रहनिग्रह ॥ ९ ॥ कर्णिका प्रदलाढये हृत्पुडरीके निवेश्य य ॥ ध्यायेत्पचनमस्कार संसार स तरेतरां ॥ १० ॥ अष्टौ कोष्ठे पदेष्वस्य वर्णानालिख्य तावत ॥ कुड्यादावर्चयन् सम्यगेति शांतेर्निशांतता ॥ ११ ॥ आद्याह्वराण्यपीष्टार्थसिध्दै स्यु परमेष्ठिना ॥ विडुरप्यामृत किन नाशयेद्विषविक्रिया ॥ १२ ॥ करागुलीषु विन्यस्याहृदादीन् ध्यानमानयन् ॥ प्रत्यूहपन्नगव्यूहव्यपोहे वैनतेयति ॥ १३ ॥ गुरुन् पंच क्रमात् ध्यायन् मुड्या परमेष्ठिना ॥ गूढप्रकूढ मचिरात् कर्मघ्रांथं विमोषयेत् ॥ १४ ॥ षोडशाक्षरगान् श्रद्धापरम. परमेष्ठिन ॥ प्राणी प्रणि

दधानोऽप्यौपवस्तुफलमेवते ॥ १५ ॥ विद्युङ्गलाग्निचूपाजव्यालचौरारिमरिज ॥
 नयं वचयते पच नमस्कारस्य संस्मरन् ॥ १६ ॥ अराय्य विविवत्पंच नमस्कारमु
 दारधीः ॥ लङ्कजापेन पापेन मुक्तमार्हल्यमश्रुते ॥ १७ ॥ ऐहिक फलमीप्सनामष्ट
 कर्मप्रसाधिनी ॥ मुक्तयर्थिनां च स्यादेवैवाष्टकर्मनिपेधिनी ॥ १८ ॥ विपदामञ्जि
 चारस्योपादानस्याखिलश्रिया ॥ स्मर्ता नमस्कृते. स्वर्गिवर्गेण वरिवस्यते ॥ १९ ॥
 चतुर्दशानां पूर्वाणामेवैवोपनिषत्परा ॥ आद्या सकलविद्यानां बीजाना प्रकृति
 परा ॥ २० ॥ इयं पथ्योदनं पथ्यं परलोकाध्वयायिना ॥ परमास्त्रं नृणां मोहराज
 युद्धाय सङ्गतां ॥ २१ ॥ प्राणी प्राणप्रयाणस्य हृषे व्यायन्नमस्क्रियां ॥ जनते सु
 गतिं नैकान् पाप्मन. कृतपूर्व्यपि ॥ २२ ॥ नमस्कृति रूपावित्ते श्रोत्रयो प्राञ्जती
 कृता ॥ स्वीकृत्य पुण्यसध्वंचस्तियेचोपि ययुर्विव ॥ २३ ॥ त्रिदंडिनं निगृह्याऽसिय
 टिना श्रेष्ठिनदनं ॥ नमस्कारस्य महासाऽसाध्य त्वर्णपूरुषं ॥ २४ ॥ स्मृत्वा पंच
 नमस्कारं प्रविष्टायास्तमोगृहं ॥ घटन्यस्तो महासत्या पन्नग पुष्पमाव्यनूत् ॥ २५ ॥
 नमस्कारेण सबोध्य मातुलिगवनामर ॥ प्राणत्राण स्वपरयोर्व्यधत् आऽपुंगव ॥
 २६ ॥ यद्गता हुंडिक प्रापत् सुकुल चडपिगल ॥ इतस्तादृक् गुणस्फीति सुदर्श
 न सुदर्शने ॥ २७ ॥ एष माता पिता स्वामी गुरुर्नेत्रं निपक् सखा ॥ प्राणत्राण
 गतिर्दीप. शांति पुष्टिर्मेहनमहं ॥ २८ ॥ निधय संनिधौ कामधेनुरप्यनुगामिका ॥
 नूततो नृतकास्तस्य यस्य नैप हृदो हिस्क् ॥ २९ ॥ नास्येयत्तां प्रजावाणा क्रमवर्ति
 तथा गिरा ॥ मितायुष्मच्च सर्वोपि न्यक्षेण जणितु क्लम ॥ ३० ॥ सर्वावस्थोचित
 सर्वश्रुतसार सनातनं ॥ परमेष्ठिमहामंत्रं जकितत्रमुपास्महे ॥ ३१ ॥ उच्चैर्योजन
 लङ्कमानविदितो वित्रत्सुवर्णान्मतां नव्यानंदनञ्जशालमहिमा रोचिस्तूलाचि
 त ॥ अस्तु श्रीजिनगेहजास्वररुचिस्थानं जसन्निर्जर सोय वः परमेष्ठिपंचकनम
 स्कार सुमेरु श्रिये ॥ ३२ ॥ साम्नायावयवां जिनप्रनगुरुयां सूत्रयामासिवान् दि
 व्या पचनमस्कृतिसुतिमिमामानदनंदनना. ॥ यस्तैपाचति कंठसीमनि सदा मुक्ता
 जतावित्रम त मुंचत्यचिरेण विन्ननिचया. श्लिष्यति च श्रीनरा ॥ ३३ ॥ इति
 श्रीपचनमस्कृतिस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवीरस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीवर्द्धमान परिपूरितनम्रकाम चामीकरप्रज जिनप्रजसूरिरेतं ॥ सोसूड्यते त
 व जगज्जनर्षवर्षदीपोत्सवस्तवजव यमकावदात ॥ १ - ॥ श्रितास्त्वा कमलाह

र्म्य कटपपाद पयोजये ॥ करी तान् प्रति विश्वैककटपपादपयोजये ॥ २ ॥ क
 स्ते नति न सद्गोप्रसिधुरारातिलक्षणो ॥ रके च तुल्यचित्ताय सिंधुरारातिलक्षणो
 ॥ ३ ॥ हिल्लेश देह दग्गे त्वां शिवगंकार्तिके विदु ॥ नान्यतीर्थ्या यत्र लुता शिवशका
 र्तिकेविदु ॥ ४ ॥ रुद्धान्यपवर्णानामादान दीपाजिका सता ॥ कोटि परा यत्र तेऽनू
 दानदी पालिका सता ॥ ५ ॥ कुट्टशा शुश्रुवे तेऽख्यदेशनाशितदर्पका ॥ धन्यैरेवेश वैरा
 ग्यदेशनाशितदर्पका ॥ ६ ॥ त्वन्मुक्त्याऽसीत्तमो हंतु तरसा दहू पावनी ॥ पू पापा
 पापपद्माऽऽपेतरसादहूपाऽवनी ॥ ७ ॥ त्वत्तेवायां हृषीकेजहृस्तिपाऽजस्यहीनता ॥
 कैर्न नाम तदा राज्ञो हस्तिपालस्य हीनता ॥ ८ ॥ दधाना ऽधोरगेधूक्तस्वातिरेकाविराज
 ता ॥ रक्षेष्टु जात त्वन्मोहो स्वातिरेका विराजता ॥ ९ ॥ त्वन्निर्याणेन करण ना
 गसङ्गमरजयत् ॥ एनासि जगवन् क ना नागसङ्गमरजयत् ॥ १० ॥ मूर्धगत
 स्येडियार्थममता विषपानत ॥ नाथोपचर्या कुर्यास्त्व मम ताविषपानत ॥ ११ ॥
 तावक या पिवत्सुञ्चै रमायाननसारस ॥ दृष्टिर्विदति सोरस्य रमाया न न सारसं
 ॥ १२ ॥ स्तूयासमन्वहमह चवत पृथिव्या सिद्धार्थनदनयशोजिमतं समस्या ॥
 सिद्धार्थनदनयशोजि मत समस्या सर्वश्रिया जिन निज हृदि रोप्यता मे ॥ १३ ॥
 इति श्री जिनप्रज्ञरिविरचितश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीआदिजिनादिस्तवनप्रारंभ ॥

प्रणम्यादिजिन प्राणी मरुदेवागजायते ॥ हरणे पापरेणूना मरुदेवां ग जायते
 ॥ १ ॥ गर्वमैदवमब्जावमाननम्यप्रचोरुण ॥ सौदर्येणाजितस्वैर माननस्य प्रचोरु
 ण ॥ २ ॥ मोहस्थानापतस्त्राण शनवेश मितारये ॥ यस्मै विश्व नमश्चक्रे ग
 जवै शमितारये ॥ ३ ॥ मुढे ऽजिनंदन सूतो राजसवरदेहत ॥ यत्पादाब्जे नृणा
 नाव राजस वरदे हत ॥ ४ ॥ दु स्थाना सुमते दौस्थ्यं साध्वसागदवालन ॥
 ध्यायस्त्वा च स नीरोग साध्वसागद वालन ॥ ५ ॥ क पद्मप्रज शक्तीस्ते प्रजावद
 मितारहिता ॥ सख्यातुमीष्टे चर्कार्कप्रजावदमितारहिता ॥ ६ ॥ मोहराज सुपार्थ
 त्व नुतमायामलोलुप ॥ जकी तेऽत कोस्तु विद्वानुतमायामलोलुप ॥ ७ ॥
 तव चऽप्रनोत्पन्नमहसे नहमेनत ॥ न सेवाविरहं सोढुं महसेनहमे नत ॥ ८ ॥
 मधि विन्नतनुं चऽज्ञावलहप्रचोदया ॥ तन्यास्त्व सुविधे सर्वज्ञावलह प्रचो दया
 ॥ ९ ॥ शीतलानुं श्रियोधान्ना रविकटपमनामया ॥ त्वा प्रत्यात्मा कृतो जर्तरवि
 कटपमना मया ॥ १० ॥ त्वन्मते रमते श्रेयन् कमलायतनेत्र या ॥ सा धीप्रिया
 मेऽन्तु कृत कमलायतनेत्रया ॥ ११ ॥ वासुपूज्य सविज्ञास्त बंधूकारुण्ययोगत ॥

शरण त्वक्रमौ विश्वंब्यूकारुष्ययोगतः ॥ १२ ॥ श्रेयसः शरणं नृष्य त्वं गच्छ
 विमलंरुते ॥ त्वद्दि देहि च नक्त्यादिकृत्व गच्छविमलंरुते ॥ १३ ॥ ॥ यःख्यातस्त्रि
 जगत्कार्यं सदानुतनयोऽनिशं ॥ हंत्वर्कवन्मोहमयीं सदानुतनयोनिशं ॥ १४ ॥
 त्वन्पादाङ्गोऽलिनो ह्यर्थादं मलं पटतां पदं ॥ शांते मोहं जिन मन्ये दमलंपटता
 पदं ॥ १५ ॥ सुश्रीकृष्णं प्रतिप्रवृद्धा यमलार्जिनं जंजना ॥ यास्तावीडैरागरोपयम
 लार्जिनजंजना ॥ १६ ॥ सोढुं समर्यां नूद्यस्य नतमामवनिर्वलं ॥ सौरत्वमर्हच्च
 क्रीडनत मामव निर्वलं ॥ १७ ॥ शक्तिं जवावधैरुद्धर्तुं मतिमद्वीनदेहिनः ॥ पुण्य
 धातर्जने नक्तिर्मतिमद्वीन देहिनः ॥ १८ ॥ यस्या विलासास्त्रेलोक्य पद्मानंदनजा
 नव ॥ मा तु सुव्रत सा शक्या पद्मानंदनजा न व ॥ १९ ॥ यत्र नाहिद्विती ते वा न
 मे रुचिरकोमला ॥ तत्र राजेप्यनीताना नमेरुचिरकोमला ॥ २० ॥ नेमे नमस्ते
 दोषज्ञ रंजनः प्रचविभवे ॥ कर्मासुग्वधायोच्चैरंजनप्रचविभवे ॥ २१ ॥ तापाग्नौ
 छुद्भुवे पार्थ्वं जवता पंचसायकः ॥ श्रितोऽतस्त्वं जनो मोहजवतापं च सायकः ॥
 २२ ॥ नाऽजुन्यः कामसांख्याय लोकनेतरणीयसा ॥ तेन वीर जगत्कर्मांलोकने त
 रणीयसे ॥ २३ ॥ तवाहंन् पंचकट्याणी दया लोकामदायिनः ॥ पायास्त्रिजगते दत्तो
 दयालो कामदायिनः ॥ २४ ॥ त्रातु जीववीथ्या संविदद्वा मानव तामिता ॥ जिने
 द्वा पातु करुणा दद्वा मानवतामिता ॥ २५ ॥ यदाराध्यति गीर्वाणप्रजाऽनयदशा
 सनं ॥ तत् प्रज्ञा शरणं नृका व्रजाजयदशासनं ॥ २६ ॥ यस्या नेशजिग्रा जैन्या सुत
 रामधवासना ॥ हंत्वापदः सुसंधम्यासुतरा मधवासना ॥ २७ ॥ लक्ष्म्यारुष्टिकरं जिनेऽ
 मनयं जज्ञवलीमंदिर वदे तस्य गिर नतत्रमतमः सूर्यं धिया कारण ॥ सार्वीयप्रथित
 प्रजावमखिलारिष्टाघहानिप्रदं दंजन्ध्यालसृणि वरेण्यसमय रगजुण बोधिदं ॥ २८ ॥
 इति श्रीयमकयुक्त आदिजिनादिस्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीपार्थ्वप्रातिहार्यस्तवनप्रारंभः ॥

त्वां विनुत्य महिमश्रियामहं पन्नगाकमठदर्पकोपिणः ॥ स्वा पुनामि किमपीनर
 ह्कितापन्नगाकमठदर्पकोपिणः ॥ १ ॥ कोनुरज्यति देगनौकसि द्वागशोकतरुणा वि
 नासिते ॥ रत्नहेमस्त्रिणि ह्कितोऽन्नसद्वागशोकतरुणाविनासिते ॥ २ ॥ देह्दीविति
 तिरुदृष्टतो द्ययत्तारजा सुमनसः सदानवा ॥ देशनां च्युवि किरति ते स्फुरत्सोऽग्नाः
 सुमनसः सदानवा ॥ ३ ॥ तादृश श्रवणतस्तयोत्तमा कारकाय वरदेशनाध्वने ॥
 प्रस्थितः कऽव पाप्मनां निराकारकायवरदेशनाध्वने ॥ ४ ॥ नाकिनायकयुगेन सादर
 चामरैर्विपदनाग वीज्यसे ॥ त्वं न कर्त्तव्यसुखायमुक्तये चामरैर्विपदनागवीज्यसे ॥ ५ ॥

वीक्षितुर्नयनयोर्निराकृता शसन्नासुरमणीपजावत ॥ आतनोति कृतसिंहविष्टर शस
 नासुर मणीपजावत ॥ ६ ॥ इत्परपयति कीर्तिशुचिता शातजावलयमर्ममोहद ॥
 दीप्यमानमनुमौलि तावक शातजावलयमर्ममोहद ॥ ७ ॥ व्योम्नि गर्जि निनद पु
 रस्तवामानवैरिमुदिरो महर्षिनि ॥ कैर्न कुंडुनिरव श्रुतस्तनौ मानवैरिमुदि रोमहर्षि
 नि ॥ ८ ॥ गोमुपीशु कुपथानि मौक्तिकन्यास ह्यरुचितानि चाधितु ॥ त्रीणि ते
 जिन शितोत्तवारण न्यासह्यरुचितानिचाधितु ॥ ९ ॥ प्रातिहार्यमहिमालयस्तव
 श्रीजिनप्रज विति स्तुतो मया ॥ पार्श्वकामितफलाय कटपतां कटपपादप इवेप
 नेमुपा ॥ १० ॥ इति जिनप्रजसूरिभूतश्रीपार्श्वप्रातिहार्यस्तवन सपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीकल्याणपचकस्तवनप्रारंभः ॥

निजिपलोकायित नूतल श्रिया नयन्मुद नैरयिकानपि कृण ॥ त्रिलोकलोकस्य
 रते प्रपचक जिनेऽ कल्याणकपचकं स्तुम ॥ १ ॥ निवेदित प्रीतिपरं पुरदरंश्रुतुदं
 श स्वप्रविजावितोदय ॥ महानिधानागम चारुरर्हता तनोतु गर्जावतरोत्सव शिव
 ॥ २ ॥ कुकुकुमारीभूतसूतिसस्क्रिय सुपर्वसपादितमङ्गनकृण ॥ सृजतमुद्योतम
 यं जगत्रय जनुर्मह संस्तुमहे जवद्दहं ॥ ३ ॥ सुरोपनीतं परिवत्सर धनैर्यथानिला
 पं परितोपितार्थिने ॥ जिनाधिपाना निखिलागिरिद्विषे नमस्तपस्याप्रतिपत्तिपर्वणे
 ॥ ४ ॥ अमर्त्यनिर्वर्त्तितदेशनाऽवनीभूताभुत कैवलयेनवोद्भव ॥ अमदनादीरवपू
 रितावर करोतु जैन. शुभजाजन जन ॥ ५ ॥ पुरदरकंदितसत्रमत्रमत्सुरोद्यमाजि
 गितमुक्तिवद्भज ॥ जिनस्य निर्वाणदिन दिगंतरस्फुरत्तम सत्तमशर्मणेऽस्तु न ॥ ६
 महर्षयो नूतजवद्भविष्यताममुत्र कल्याणकपचकेऽर्हता ॥ विना विदेहान् दश कर्मनू
 मिषु स्मरति मासर्कतिथीन् सनातनान् ॥ ७ ॥ इत्यादृतस्त्रिभुवनप्रभुसत्क पचक
 आणवज्रकवच हृदि यो विजर्त्ति ॥ शस्त्राणि ते जिततराण्यपि मोहराज सौजाग्य
 जाग्ययुजि न प्रनवति तस्मिन् ॥ ८ ॥ इति श्रीकल्याणपचकस्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ लक्षणप्रयोगमयश्रीवीरस्तवनप्रारंभः ॥

निस्तीर्णविस्तीर्णचवार्णव द्वैरुत्कर्णमाकर्णितवर्णवाद ॥ सुपर्णमहोद्दि दमे सु
 पर्ण श्रीपर्णवर्ण विनुवामि वीर ॥ १ ॥ यैर्व्याप्यता प्राप्यत तावकीनं क्रमावुज नाथ
 नमस्करोते ॥ ससारचक्रमणान्निग्रम्य गणस्य ते वृत्करण गृणति ॥ २ ॥ तुल्येपि ने
 त्राधृतवर्षिजावे कजंकपंकच्युतिसंयुतिन्या ॥ प्रधानगिष्टं वदन त्वदीय मन्यामहे
 इन्वाचयगिष्टमिंडु ॥ ३ ॥ द्विगोरिव त्वत्प्रणतस्य सख्या पूर्वा प्रवृत्तिर्न कुतीर्थिका

नां ॥ विनो बहुव्रीहिसमासवत्वमन्यार्थ एवोपदधासि वृत्ति ॥ ४ ॥ विनक्तिमुक्तं पुरु
 पैरसंख्यै. समाश्रितं धातुविकारहीनं ॥ अपूर्वमेतत्कटकृत्यनिष्ठाप्रधानमाख्यात
 मिन त्वदीय ॥ ५ ॥ यस्मिन्न संधिर्न च वर्णलोपो न संस्तुतिर्विग्रहकारकाणां ॥
 नवा विकल्प कचन प्रयोगेष्वहो नव व्याकरणं तवेदं ॥ ६ ॥ ध्यात्वा हृदा त्वा फ
 लमेति नव्यो दृष्टापि साहान्न कृतीत्वचव्य. ॥ तत्सत्यमेतद्वहिरगतो यत् स्यादंतरं
 गोत्रविधिर्वलीयान् ॥ ७ ॥ एतावतैव प्रतिजाति विश्वविलक्षण वीर जवच्चरित्रं ॥
 जालेन युष्मत्पदसंप्रयोगेष्यलंजि लोकस्य यद्भुजमत्वं ॥ ८ ॥ एकत्र धातातुपस
 र्गपंचकप्रयोग इष्ट. कविजिर्निरतर ॥ त्वद्भ्यानधातातुपसर्गविशति सुर प्रयोक्ता न
 कथं कुजक्षण ॥ ९ ॥ प्रनो महच्चित्रमिदं कदंबके कुतीर्थिकाणामपि कर्म धारये ॥
 यन्मोहराजप्रधनेषु पुंवज्ञावो न कश्चित् परिपोस्फुरीति ॥ १० ॥ शुद्धयोर्वद जावकर्म
 णोर्देशीयन् विकरणस्थिति पदे ॥ निर्विजक्ति समुदाहरन् पदं साधुलक्षणविचक्षणो न
 वान् ॥ ११ ॥ अनुपघातिनमेव किजागमं प्रणिगदंति जिनेश्वर शाब्दिका ॥ असुमतामुपघा
 तकर स्पृशत् कथमिवागमतां स कृत परे ॥ १२ ॥ योपादानं नश्यत पापपुगम्यासि व्या
 प्यं वदतेर्वासवाना ॥ आधार श्रीसंपदा संप्रदानं त्रैलोक्यस्य स्तोत्ररत्नोपदायाः ॥ १३ ॥
 बेडावद्य. करणमुगतां मोहवार्दि तरीतु कर्ता जातेर्दिरदरदनहेदशोर्निर्येशोनि ॥
 नव्यानां यस्त्वमसि सुपथप्रस्थितो हेतुकर्ता तस्मै तुभ्यं जिन मम शिरो नम्रताकम्रम
 स्तु ॥ १४ ॥ अंतस्थास्तव शासनस्य यशसां कुंदावदातस्त्रिपां गहनंते शुवि संप्र
 सारणविधौ मर्त्या न तत्कौतुकं ॥ यत्ने नित्यमनामिनोपि कुगुरौ ह्रुवृत्तदेवेषु च घ्रा
 जते शुण्टुदिजाजनतया ब्रूमस्तद्व्यद्भुतं ॥ १५ ॥ तात त्रातरिदं नपुसकमपि स्वातं
 मदीयं नवन्माहात्म्यस्तुतिसुंदरी प्रणयत पाणौ करोत्वैकदा ॥ तत्संश्लेषसुखानु
 जाववशत. क्लैव्य विधूय रूणात् तत्रोत्पादयिता ऽथ शाश्वतचिदानंदाब्दह्यं नदनं
 ॥ १६ ॥ इत्यंकारमिनारि लक्षणर. सध्वरूपप्रक्रियाचित्रं स्तोत्रमिदं विदंनहृदयो
 जिब्दाग्रजाग्रत्तमं ॥ कुर्वाणः स्मरवाणकुंठनकलानिष्पाततानर्तकी नाट्याचार्य
 जिनप्रज्ञेऽ पदवीसाम्राज्यमासादयेत् ॥ १७ ॥ ऽति श्रीजिनप्रज विरचितलक्षणप्र
 योगमयश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवीतरागस्तवनप्रारंभः ॥

जयंति पादा जिननायकस्य दोषापहा ध्वस्ततमोविकारा ॥ रवेरिवाश्रयमतापका
 श्व न कौशिकक्लेशकरा खराश्व ॥ १ ॥ चाग्ज्ञानपूजानिरपायरूपाश्रत्वार एतेऽतिशया
 स्तवैव ॥ देवाधिदेवत्वमजिपुवतश्चतु कपायकृतये तु नाथ ॥ २ ॥ शुद्धप्रयोगस्तवसं

स्तवेन कृतार्थतामेति कृती कृतीश ॥ न वाच्यतां याति कदापि लोके यथा यथार्थस्तव
काव्यकर्ता ॥ ३ ॥ त्वमेव चेष्वेतसि जागरूको जतोरसि श्रीजिनराजमहन्न ॥ नवेन्न कि
सस्त्रिजगन्महन्न प्रपात्यते किं नहि मोहमहन्न ॥ ४ ॥ त्वमेव देवस्त्रिविधेन येषां जगत्र
यीवद्यपदो हि पादै ॥ धात्री पवित्रीक्रियते किमत्रचित्रं तदीयेस्त्रिजगत्पवित्रे ॥ ५ ॥
उपाधियोगान्महतो लघुत्वं लघोरपि प्राज्यगुरुत्वमेव ॥ आदर्शके देव यथा द्विपस्य प्रदी
पदीप्तौ तु तनूजुत स्यात् ॥ ६ ॥ कश्चिज्जुणाना हि लवोपि लोके यो दृश्यते सोपि विज्ञो
प्रभाव ॥ अद्वैतकल्याणनिधेर्जिनेऽप्योविना पद्मविता नवृक्ष ॥ ७ ॥ नात पर देव
जडत्वमत प्रत्यक्षलक्षोपि नवान्नबुद्ध ॥ सर्वज्ञताप्यस्ति विज्ञो न चान्या त्वमेव दे
वो विदितो यदीह ॥ ८ ॥ विदति सर्वेष्यपरानधीशान् नतान्नतास्ते प्रवदति सर्वान् ॥
जगज्जगन्नाथ यथास्थित हि त्व वेत्सिहि त्वातु न वेत्ति चित्रं ॥ ९ ॥ बहि स्थितं
वेत्ति परस्वरूप न स्वस्थितं देव तव स्वरूपं ॥ चक्षुर्यथा पश्यति बाह्यरूपं नचात्मरू
प तु कदापि लोके ॥ १० ॥ सदात्मविज्ञानविहीनधीनिर्ण ज्ञायते नाथ विज्ञो
स्वरूप ॥ स्वशीर्षपश्चात्प्रविजागसम्यङ् निरीक्षणे कोपि न बाह्यहेतु ॥ ११ ॥ मध्य
स्थनावोपि जिन त्वयीह गुणकृते स्याज्जुणानो नितातं ॥ यथाऽगुणप्रत्यय एषधातो.
कर्मण्यथो कोऽत्र विचारहेतु ॥ १२ ॥ त्वङ्गकिनावोप्ययथार्थ एव नवम्प्रणीतार्थ
विपर्ययेण ॥ विधीयते सर्वहितोपसर्गवर्गेण धात्वर्थेऽवान्यथा हि ॥ १३ ॥ दो
दूयते य स्वयमेव रागद्वेषादिलुंटाकनटैर्यथेष्ट ॥ सस्तूयते सोपि हि देवबुध्या ह्वा
महामोहविजृजितं तत् ॥ १४ ॥ अचित्यमाहात्म्यनिधिं प्रसन्नं जगद्भरण्य जगतीपि
पूज्यं ॥ त्वमेव देव प्रविवेत्सि हि त्वा प्रकाशतेऽन्येन किमु प्रदीप ॥ १५ ॥ किम
स्तिनास्ति विवेकपक्वा रागादिपक्वकृतिलब्धदक्षा ॥ ये श्रीजगन्नाथ जिनप्रजस्ते
त्वामेव देव जिनमाश्रयति ॥ १६ ॥ इति श्रीवीतरागस्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीचंद्रप्रजस्वामिस्तवनप्रारंभः ॥

देवैर्यं स्तुपुत्रे तुष्टं सोमलाभितविग्रह ॥ दद्याच्चंद्रप्रज प्रीतिं सोमलाभितविग्रह
॥ १ ॥ येषां पूजानिधि कर्माजनहृत्कमलालय ॥ ते जिना पातु वोजव्यजनहृत्
कमलालय ॥ २ ॥ कुतीर्थिसार्थेन डुरासद जोज्ञानिरजन ॥ श्रुत सेवेत मोहाग्नि
सदज्ञो ज्ञानिरंजन ॥ ३ ॥ पातु गीर्वा कृताविद्योपरमा कमलासना ॥ यत् प्रज्ञो वा ज
नेलैचे परमा कमलासना ॥ ४ ॥ इति श्रीचंद्रप्रजस्वामिस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीऋषभदेवस्तवनप्रारंभः ॥

संस्कृतज्ञापा.

निरवधिरुचिरज्ञानं दोषत्रयविजयिनं सतां ध्येयम् ॥ जगदवबोधनिबधनमादि
जिनेऽं नवीमि मुदा ॥ १ ॥ कस्तवमिति द्विपोलं वदितु परितो गुणान् गुरुनिजो
पि ॥ चुलुकै प्रमिमासति वा कश्च जलं वरमनीरनिधे ॥ २ ॥ तदपि त्वङ्गक्तिचर
प्रतरलितो वच्मि तावकगुणाणुं ॥ चापलनुन्नो स्फुटमपि लपन् शिशुर्वा निरपवा
द ॥ ३ ॥ ज्ञानप्रदीपजमिव स्निग्धांजनमुपहितं चरणलक्ष्म्या ॥ सद्ग्यानदृगंजि
ताय चिकुरचयस्ते स यो रुरुचे ॥ ४ ॥

प्राकृतज्ञापा.

तमकसिण सप्पखयमोर, मोरवह्नाद्भुते कलिम्मन्ति ॥ तुह सासणापिधं जे कुण
ति विविहे तव किलेसो ॥ ५ ॥ तज्जिय कक्षाणसिरि, पिढे वकक्षाणसिरिविलासणि
हं ॥ तुह वदे देहमहं विलसिरमोहपि ह्यमोहं ॥ ६ ॥ युग्म ॥ तुह मुद्दरन्नासयला,
रविदलही मरट्टफुसणेण ॥ जं विजितु हिमरस्ती नियकंती निवहसुहडेहिं ॥ ७ ॥
असइं तमजि नवचर सुसिरिवं पदू ससंकोसो ॥ डुगं खुर इय घणपरि,दिदंनडं
परनिसेह्ना ॥ ८ ॥

मागधी ज्ञापा.

तुह शुक्तिदेवनाव, स्तं गदपञ्जे शमयपथमचञ्जं ॥ ते यिण कुमदलक्षशव,शि
मिश्राविस्टी पददि नवे ॥ ९ ॥ तमवयवय्यिदमिधं, आचिरिक्कट्ट शुस्टु मोस्कपुलम
गं ॥ काला चिट्टामि हगे, हलिशचले पिस्किडुं धञ्जे ॥ १० ॥ केलीहलाहगुणहं,
हलिञ्जकशवस्टलायि किलणाह ॥ तुह अपुलनवत्तिलसं, वदामु हगे शजीजाह
॥ ११ ॥ संयण्णिदधञ्जकमले, ये पक्कालिदमहदपंकमले ॥ धिदपलमहिमशज्जुवे,
ययडु नव शे शदा कोहे ॥ १२ ॥

पैशाची ज्ञापा.

विवुधान राचित्रानत, अनञ्ज सामञ्ज बुञ्ज तिसपञ्जं ॥ रंतून हितपके मे. कतसि
दीकुतुविनी पनय ॥ १३ ॥ नत्तिनरातो दूरे चिट्ठति यो तुह रमिच्यतेनेन ॥ कसटनरे
चरणसुधा विहितसिनातो न सो ज्ञोति ॥ १४ ॥ शुम्हातित्सेवि तेदे अपुरवसुरपात
वे सतय्येवा॥कीरतिनो येन रत्ती स कयं वपते सुकतवीजं ॥ १५ ॥ नट्यून तुरितरिपुनो
नवव तिंठेतुमं मिमलरूपा ॥ विलसिर पमतञ्जीजल, पक्कालितका इवापगता ॥ १६ ॥

चूलिका पैशाची

काठ सिनेहफलिता तुह वतन सेवते लमा अनखं॥हानून फकुरकुनं पोमं सक
लंकमपि च विशुं ॥ १७ ॥ चलथलमंटलपटिमा चिकुराली शोफते तवसयुके ॥ चल
नसिरितितसथेनू चरनायल तच्च नव तुवा ॥ १८ ॥ तुहंसकिलितटे फुल,ति मवख
नालिव मंचुकचलाची ॥ गतरुचकपोलतलरुचि,फासुर सोतामिनीतामा ॥ १९ ॥ लि
सफसुमकानाविल चनपरिहिन संखनीरचाहखटा ॥ पथस फुवि सवकला नयनी
ती तंसिया तुमए ॥ २० ॥

शौरसेनी.

कुमद मकय्यनिदाण ताऽथ नवमाणविज्जदे जगव ॥ चिदाविदाव नय्ये, व जो
दि यावाणनाथ इमा ॥ २१ ॥ कहुय अलं हरिपदवि कहुय अलं वा महत्त विस
यसुहे ॥ खलु लहिय अपुरवपद पणइजण पाविदूण खलु ॥ २२ ॥ दवाड वि
रागमिदो पय्यत्तं एोग ठत्तरक्केण ॥ नवरि तुह नत्तिपेधि माजिणरायं फुरड हि
दयम्मि ॥ २३ ॥ युग्मम् ॥ हीमाणहे नवादो चक्रिदोह अम्महे यदिघावो ॥ ए ता
यथ ताथथ म ससेवगं सामिआ ततो ॥ २४ ॥

॥ समसंस्कृतम् ॥

हेमसरोरुहजासं कलिमलकमलालिमथहिमजास ॥ नवजयधूलिमहाबल ना
जेय नवतमनिवदे ॥ २५ ॥ तव चरणोनयजलरुह पालीसेवापरायणादेव ॥ विद
ति नरालिगणा वरसिद्धिरामरवलय ॥ २६ ॥ महिमथर तमसमहिम, विमल वरधी
सरोरुहेविमल ॥ समयदयारससुगम चरण सेवे तवासुगम ॥ २७ ॥ तव नामधेय
चितावधरस्ता शुवि नरावली यत्ते ॥ संरुधरिनरामरच, दरमालिंगकेलिरसं ॥ २८ ॥

॥ अपभ्रंशज्ञापा ॥

तत्र रेहइ अलिसामलि विद्वुउरावलि शुयपिठि ॥ निज्जियरिउवलमृणो डगं सुहडन
असिलठि ॥ २९ ॥ हड मिटिह विसहजठि, यावहुदिय जणववहार ॥ पइ कायहि
मुणियह, सुफरुसप्रिय करणपयार ॥ ३० ॥ तास्व महानवजलहिज, लिनरु निवडइ
दुदुरुत्ति ॥ जास्वन पास्विय तुध प,हुसाराणनावजठत्ति ॥ ३१ ॥ सुकटु कह तिहु ता
सुय, इ कहत सुसजलउजम्म ॥ दिविदिवि जीवाञ्चन कर, दि पइ बुत उजिणधम्म
॥ ३२ ॥ चूवे हि कुत्तिस्थियज, वयणू अवरुप्य रयइ विरुहु ॥ तं नेरसिवपमिय त, इ जिदेवु
प्रमाणेहि सुरिहु ॥ ३३ ॥ इकात्ति तेहा नाव वि,णु बुडुपणमिय तुह पाय ॥ जुंजि ऊ

हि ता सुर रहङं करिविणु डरकविघाया ॥३४॥ मञ्ज कंहंतिदु जावरि, उ डडवड तण उद
वेकू ॥ तामिय सट्टलतेव, तु डुनदु चपइ परचकू ॥ ३५॥ जुत्तिवि किरिय नाणहरि, घ
यंमण मनसुद्धिजुगगि ॥ कुकुनपद्दुवइ सिवनय, रि तुह सासणरहिलगि ॥३६॥ परि
कवि तुह तणु नूडहि, कंचणकांति रवन्न ॥ वियसहि महणयणुद्धम, तामइ नवडुह
तिन्न ॥ ३७ ॥

उत्तरपद्यस्याद्यन्हौ संस्कृतं १ समसंस्कृतं २ प्राकृतं ३ द्वितीये पेशाची
चूलिका पेशाचिके ॥ तार्तीयिके मागधीशौरसेन्यौ ॥ तुर्ये अपभ्रंशः ॥
नायालीहयमंदयामयमलं नासं धरत पर राकालि पवलोतयं अखचयासत्तं क
मालाचितं ॥ धीजं लोअमहं ददावहकलं ठिन्नाहमायाजदं नाथा नीवृदिरेसि वदउं
पइं साणडु सीसुद्धइं ॥ ३७ ॥

॥ कविनामगर्जचक्रं ॥

तं प्राप्नो रुचिद्युद्योगरत्नसोन्मीजत्प्रतोपान्वितं शस्तः सौष्ठवनप्रमोहरवनः कंकं
जहस्तञ्चवि ॥ रुच्या जास्करतिग्मसिद्धिरमणीसकृतनावः पर रता ज्ञानरमाशमास्त
रुपमे तन्याः सुविद्यां चिर ॥ ३८ ॥ जगति विदितवान् यस्त्वत्कमाज्ञास्वरूपं तव छु
चिपदजाव संस्तवादध्यवस्य ॥ रचयति निजकंगालंक्रियां स्तोत्रमेतद्भवति नवकरीणा
सिंहसौजीएलक्ष्मी. ॥ ४० ॥ इति श्रीजिनप्रज्ञसूरिविरचित अष्टनापात्मकं श्रीरूपज
देवस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीमहावीरस्तवनं ॥

चित्रं स्तोत्रे जिनं वीर चित्ररुञ्जित मुदा ॥

प्रतिलोमानुलोमाद्यै खड्गाद्यैश्चातिचारुनि. ॥ १ ॥

॥ प्रतिलोमानुलोमपाद ॥

वदे ऽमंददमं देवं यशमाय यमाशय. ॥ नायेनाघयनायेना पाकृता ममता कृपा ५

॥ अनुलोमप्रतिलोम ॥

दासतां तव जागारा नचेयाय मतामस ॥ समतामययाचेनरागानावततां सदा ॥३॥

॥ अर्धप्रतिलोमानुलोम ॥

वरदानवरादित्व त्वदिरावनदारव ॥ याज्यदेव नयान्यास्त सन्याय नवदेज्यया ॥४॥

॥ अर्धभ्रम ॥

श्रीद वीर विरेजत्व दमिताहू गताद्युन ॥ वीताहूमारजितारे रहू मा सदरगवि ५

॥ मुरजवध ॥

गीरतारजतारद्वेषे धीरता स्थिरतारसा ॥ सारतारश्रुतावध्या सुरता जन तावकीध

॥ गोमूत्रिका ॥

ये पश्यन्ति तवेहास्यारविदं नक्तिबंधुरा ॥ न पतन्ति नवे शस्यास्ते विदो जगवन्नरा ॥ ७ ॥

॥ सर्वतोन्नड ॥

नभासररसामान भारिताद्दृक्तारिमा ॥ साता म या यामतासा रक्ष्याममयाक्षर ७

॥ रथपदं ॥

तिर्यङ्गनरसुराकीर्णा जासते ननते सजा ॥

त्वन्माहात्म्यात् कृताश्रयं याश्रिता ततता श्रिया ॥ ९ ॥

॥ द्व्यक्षरपाद ॥

रैगोरांगोरुगीर्गंगा गौरीगुरुरोगरुक् ॥ गोरगा गाररोगारिरैरिरोरैर्युरुं गिरि ॥ १ ॥

॥ एकाक्षरपाद ॥

जाजलाजोललीजालं ततताततितातते ॥ ममाममामममुमा ननानेनोननानन ॥ १ ॥

॥ एकाक्षर श्लोक ॥

काकंकि काकककौक केकाकोककेकिक ॥

कककाकुककोकैक ककु कौकोककाकक ॥ १२ ॥

॥ असयोग ॥

मरुचूमौ तपकृताविव चारुसरोवर ॥

कृत सुकृतहीनानां सुजनं तव शासनं ॥ १३ ॥ युग्म ॥

॥ द्वय्यां खड्गसंदानितकं ॥

सारणि पुण्यवम्याया न्यायमौक्तिकशुक्तिका ॥ कामधेनुर्नयविदां बंधोह्नासन
जालसा ॥ १४ ॥ सार स्याद्वादमुद्रायस्त्रिपदी नवतोंऽजसा ॥ सा मेऽस्तु हवि कां
तेका खिन्नेन रहितेन सा ॥ १५ ॥

॥ मुसलं ॥

श्रीसिद्धार्थकुलव्योमदिवाकर निरजन ॥

कहुतेकांतवा मतं तीर्थकर तवाश्रिता ॥ १६ ॥

॥ त्रिशूलं ॥

शुक्ता या त्वयि नव्याली धन्या धत्तेस्म चेतसा ॥
सामता तामसाकाममकासारगसागरं ॥ १७ ॥

॥ हलं ॥

त्रिशलाकुक्षिपाथोजराजहंस जगदिनी ॥
जोगास्तृणमिव त्यक्तास्त्वयामुक्ति दिदृक्ष्या ॥ १८ ॥

॥ धनु ॥

सुरासुर नमस्तुन्यं नमम्यति जिनोत्तम ॥
मन.प्रसादसंदर्भदलिता गुजवासना ॥ १९ ॥

॥ शर ॥

कथं कर्तुं जनो मोहव्यपोहमहहृदम ॥
मनसा सादर यस्त्वां न स्तौति तिमिरापर्हं ॥ २० ॥

॥ शक्ति ॥

बाढ्यो मरुशिरकंपसंपत्प्रथितविक्रम ॥
मनोजानोकहव्याज मम स्वामी नवाचव ॥ २१ ॥

॥ अष्ट दलकमलं ॥

मानितार्थक्रमामार रमाकांद माधवः ॥
वधमार्गे ममाकास सकामाधी. प्रतानि मा ॥ २२ ॥

॥ षोडशदल कमलं ॥

वनप्या न घनस्वान ध्यानमौन कन-इन ॥
ज्ञानस्थान जिनश्रीनघनमेनस्खन स्व न ॥ २३ ॥

॥ स्तुत्यनामगर्जं बीजपूरं ॥

जय हेमवपु.श्रीक जगन्मोहापहारक ॥
जराहिवीन सिंहाक जन्मनीरधि नाविक ॥ २४ ॥

॥ हरा ॥

तुन्यं नमोस्तुजनयस्थितिकाय नीतिवन्यासुपावक सुरस्तुत वीर नेतः ॥
विद्याल ताविपुलमडपहेमरूप कट्याणधीकरणदृष्ट नतेदमीन ॥ २५ ॥

॥ कविकाव्यनामांक चक्रं. ॥

नग्राकृत्यपथो जिनेश्वरवरो नव्याञ्जमित्रः क्रियादिष्टं तत्वविगानदोपरहितैः सूक्तैः
श्रवस्तर्पणं जन्माचित्यसुखप्रदं सुरचितारिष्टहृद्यो व. सदा दाता शोचनवादिधी क
जलदं यामेक्षणः संविदा ॥ २६ ॥

॥ चामरवधः ॥

श्रीमक्षाम समग्रविग्रह मया चित्रस्तवेनामुना नूतस्त्वं पुरुदूतपूजित विज्ञो सद्यः
प्रसृद्यैधिमे ॥ ख्यातज्ञातकुलावतस सकलत्रैलोक्यकञ्जुभातर स्फारकूरतरज्वरस्मरज
र संरब्धरह्यारत. ॥ २७ ॥ इति श्रीमहावीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीजीरापक्षिपार्श्वस्तवनं ॥

जीरिकापुरपति सदैवत देवत परमह स्तुवे जिन ॥ यस्य नाम जगतो वशंकर
शंकर जपति मत्रवक्त्रं ॥ १ ॥ नाथ तच्च मुखेणुदर्शनं दर्शनं च नयनामृतं
स्तुवे ॥ येन मेडुरिततापहारिणा हारिणा लसति पुण्यवारिधि ॥ २ ॥ विश्वविस्तृत
महाप्रभाव ते जावतेज इह मातिनो युगे ॥ उज्जते दिनकरे हि नासुरे नासुरेश्वरपुर
स्य किं नवेत् ॥ ३ ॥ अर्जुदस्य नवता व्यनावि या नावियात्रिकजनेष्वचीतिद ॥
पश्यतोहरनृतापि सारसा सारसाधुनिचिता नवचरा ॥ ४ ॥ ग्राममात्रमपिजीरप
क्षिका पक्षिकाननसहोदरीव या ॥ त्वत्पदस्थितिबलेन साधुना साधुनायकपुरीवचा
सते ॥ ५ ॥ त्वा नमत्यशिववार्धितारक तारककणसुमै प्रपूज्य य ॥ प्राप्य चिन्म
यमनेनसं पद संपदं स समुपैति शाश्वती ॥ ६ ॥ त्वत्पुर प्रकुरुते प्रजावना जावना
जिन निधाय यो हृदि ॥ निश्चित स लजते न दुर्गती दुर्गतीर्णनवसागर प्रजो ॥ ७ ॥
यो दधाति हृदि तेंऽन्दिपंकज पंकज मलमथ करोति स. ॥ तप्तयेपि न नवति पा
श्वेत पार्श्वतस्यतु नवोद्भवत्रमा. ॥ ८ ॥ त्वत्समृतेरपि जना निरामया रामया चरमया
निरामया ॥ योगिनूपण नवति नूपिता नूपिता किज सुधाशानाश्च ॥ ९ ॥ त्वत्प्रण
तिलालसादर सादर दधति जातुनाध्वनिं ॥ यत्र याति ननु जानुजानवो जानवोद
य नमस्तु तत्र किं ॥ १० ॥ अंतरगरिपवोऽरुपापरा पापराशिहर पीदयंति मां ॥
सत्यपि त्वयि विज्ञो कृपालये पालयेश शरणागतं तत ॥ ११ ॥ त्वन्मय जगति
यस्य मानस मानसयमनतस्य दुर्हरा ॥ तस्करानलपय करेणवो रेणवो जिन न
वति तत्कृणात् ॥ १२ ॥ देवशाखिमणिधेनुदेवता देव तावदिह वाञ्छितप्रदा ॥ या
वदेव तव धामनामज नाम जंतुमनसि प्रदीव्यति ॥ १३ ॥ ज्ञानिन जगदिन निरंजनं

रंजनं त्रिजगतः पुरातनं ॥ त्वां स्मरामि सकलंच निष्कलं निष्कलंकमचलं महाव
लं ॥ १ ॥ इदं यः प्रयतः स्तवीति सततं श्रीजीरपल्लीपुरीवासं पार्श्वजिनप्रभुं प्रकटित
प्रौढप्रतापोदयं ॥ सोवश्यं सुजगं नविष्णुरधिकं धर्मार्थकामामृतश्रीनि न्नीजिरिव
स्वयं गुणगणाश्लिष्टानिराश्लिष्यते ॥ १ ॥ इति श्रीजीरपल्लीपार्श्वस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीफलवर्द्धिजिनपार्श्वस्तवनं ॥

सयलाहिवाहि लहर, समूहसंहरणचडपवमाणं ॥ फलवर्द्धिपासनाहं संशुणि
मो फणय षष्ठफलं ॥ १ ॥ विदुयासं विदुयासं, विदुयासं पंचमनिशुणति तुमं ॥ अम
यरया अमयरया, अमयरया पुगइखमवयण ॥ २ ॥ समणाणं समणाणं, समणा
णं लंघितं फुरइ सत्ती ॥ विणयाण विणयाण, विणयाणदणनयाहि मुदे ॥ ३ ॥ अ
हिरन्ना अहिरन्ना, अहिरन्ना विणियमंति कयपूया ॥ सवाही सवाही, सवाहीणा
तुह य नत्ता ॥ ४ ॥ गयवाहा गयवाहा, गयवाहा अरहियापइपसत्ते ॥ परमहिया
परमहिया, परमहिया सह न हुंति नरा ॥ ५ ॥ सद्दवणा सद्दवणा, सद्दवणाभयरि
क हवंति जणा ॥ सुहयगया सुहयगया, सुहयगया तुह पसाएण ॥ ६ ॥ कणयाउं
कणयाउं, कणयाउं रक्कसी तुमं नवण ॥ नद्ववओ नद्ववओ, नद्ववओ रिद्धिसिरिया
णं ॥ ७ ॥ नाएण नाएण, नाएणं चियति लोहसुहुउंति ॥ नयराई नयराई, नयरा
ई सुगुणपोराण ॥ ८ ॥ फलवर्द्धी फलवर्द्धी, फलवर्द्धी दाइणा तुमे विहिया ॥ सन्न
यरी सन्नयरी, सन्नयरीणतयाइजया ॥ ९ ॥ समणाली समणाली, समणाली णं
तद्दागमे धन्ना ॥ चरणरया चरणरया, चरणरया जाइचत्तिरी ॥ १० ॥ निद्वप्पहस्स
निद्व, प्पहस्स, निद्वप्पहस्स मोहदले ॥ रयणायर रयणायर, रयणायर शुहिर तुस्स
नमो ॥ ११ ॥ इत्थं शुउंति स्तिरिपास जगन्निवास सिगारहारफलवर्द्धिपुरीसिरीए ॥
बुद्धीपराकयजिणप्पहस्सरिवाणी थूयच्चमे वियर अंतररोगमुक्कं ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीचंडप्रज्ञस्वामिस्तवनं ॥

॥ संस्कृतं ॥

नमो महत्तेननरेंद्रतनूज जगज्जनलोचननृंगसरोज ॥ शरद्भवसोमसमयुतिकाय
दयामय तुन्यमनंतमुखाय ॥ १ ॥ सुखीरुतसादरसेवकलक्ष् विनिर्जितउर्जेषचाव
विपक्ष् ॥ सुरासुरवृंदनमस्कृत नद महोदय कल्पमहीरुहकंद ॥ २ ॥

॥ प्राकृतं ॥

जय निरसिय तिदुयणजंतु नंति जय मोहमहीरुहदजनदंति ॥ जयकुंदक

लियसमदंतयंति जयजय चदप्पह्वदकंति ॥ ३ ॥ जय पण्यपाणिगणकप्परु
रुक्क जय जगडिय अपयमकसयपक्क ॥ जय निम्मलकेवलनाणगेह, जयजयजिणि
द अप्पडिमदेह ॥ ४ ॥

॥ शौरसेनी ॥

विगदडहहेड मोहारिकेदूदयं दलिदयुरुडरिदमथ विहिदकुमदरकयं ॥
नाथतं नमदिजोसदटनदवत्सलंलहदिनिच्चदि गतिं सोवद निम्मलं ॥ ५ ॥

॥ मागधी ॥

असुलसुलविसलनलनाय सेविवपदे नमिल जय जतुतुदि दिन्नसिवपुलपदे ॥
चलनपुलनिलद सतालिसलसीलुदे, देहि महसामितंतालि सासदपदे ॥ ६ ॥

॥ पैशाचिकं ॥

तलित्ताखिलतोसतया सूतनं मदनानलनीलमनानगुणं ॥
नलिनारुणपाततलांनमते जिननो इधतं सशिव लजते ॥ ७ ॥

॥ चूलिका पैशाचिकं ॥

कलनालिकनातुलतप्पहलं चलनीकल चालुयशप्पसलं ॥
ललनाचनकीतकुनलुचिल चिनलावमहसमलामिचिलं ॥ ८ ॥

॥ अपभ्रंश ॥

सासयसुक्ख निहाणुनाहनदिघो जेहि तं पुन्नविहूणवजाणु निफलजम्भु तिहं
नरपसुह ॥ ९ ॥ निम्मल तुह सुहचडजे पडुपिक्खुइ पसरिसिं इयनिरुवमआणडु ति
ह सुनिसामी विप्फुरइ ॥ १० ॥

॥ द्वय समसंस्कृत ॥

हारिहारहरहासकुंदसुंदरदेहाजय केवलकमलाकेलिनिलय मंजुलगुणगणमया ॥
कमलारुणकरचरणचरणनरधरणधवल बलसिद्धिरमणिसंगमविलासलालसमलम
वदल ॥ ११ ॥ जवनवदवजलवाहविमलमगलकुलमदिर वामकामकरिकेलिहरण
हरिवरगुणबंधुर ॥ मदरगिरीगुरुसारसबलकलिनूरुहकुंजर देहिमहोदयमेव देव म
म केवलिकुंजर ॥ १२ ॥ इति जगदजिनदन जनहदि चदन चडप्रज जिनचडवर ॥
पड्जापाणिपुत्त मम मगलयुत्तसिद्धिसुखानि विनो वित्तर ॥ १३ ॥

इति श्रीजिनप्रजसूरिरुतचडप्रजस्वामिसक पड्जापास्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमाननिर्वाणकल्याणकस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीति-दार्थनरेशवशकमलाशंगारचूनामणोर्जव्यानां डुरपोहमोहतिमिरप्रोक्तासने
 ऽहर्मणे ॥ कुर्वे किचन कांचनोज्वलरुचेर्निर्वाणकल्याणकस्तोत्रं गोत्रनिदर्चनीयचर
 णांनोजस्य वीरप्रनो ॥ १ ॥ प्राप्य देव शरदांदिसप्तति शीतगौ पवनदेवतर्हणे ॥
 तामुपायत रसेन कार्तिकाऽमावसीनिशि शिवश्रियं नवान् ॥ २ ॥ हस्तिपालकनृ
 पालपालिता पूर्न पूरयतु मन्मन.शुचा ॥ यत्र दर्शेश्व चडमा नवानस्तमाप नवताप
 हा पुन. ॥३॥ कर्जदर्शनिशि दर्शितर्क्यस्तत्रपुर्यखिलवर्णजाः प्रजाः ॥ त्वन्महोदयमही
 तथाऽधुनाऽप्युत्सवं विदधतेऽनुवत्सर ॥ ४ ॥ यैर्ध्वनिस्तव पपे श्रवःपुटं. पौडशप्रहरवे
 शनाविधौ ॥ तान्निवेश्य धुरि धन्यताञ्जुषां रेखया न खलु मुप्यतेऽन्यत ॥ ५ ॥ पुष्यपाप
 फलपाकवर्णनामध्यमध्ययनपंकियुक्शतं ॥ व्याकृथा. स्फुटमष्टपट्टकृतिव्याकृतीश्च
 परिपट्पुरस्तदा ॥ ६ ॥ जीवति त्वयि जिनेऽनूतिना त्वत्प्रणामविधिजंग्जीरुणा ॥ नून
 मेप्यत न देव केवलज्ञानसंपदनुरागजागपि ॥ ७ ॥ यद्विधेयमुपदिश्य गौतम प्रैपि
 नक्तिनृदपि त्वयाऽन्यत. ॥ रोगिण कटुकजायुपानवज्यायसेऽस्य चक्रेपे गुणाय तत्
 ॥ ८ ॥ त्वद्विद्वद्ववतरत्सुरावली या न देहमणिनूपणाशुचि. ॥ सा कुदूरजनि र
 स्ततामसा पूर्णिमानिशमुपाहसद्भुव ॥ ९ ॥ निर्वृते त्वयि विलोक्य विष्टपं ध्यातपूरपरि
 पूरितोदर ॥ रोदयंत इव रोदसी प्रतिशुङ्गरेण रुरुड् पुरदरा ॥ १० ॥ वन्द्वायुजलदेव
 रैः सुरैस्तलपणिकरुतांगसंरुते ॥ नूतिमात्रमपि नूतिधाम ते ऽपस्प्रशन् वत न तान् र
 जोऽस्प्रशत् ॥ ११ ॥ नक्तितो महितुमीशवासवास्तावकीनहनुसंयदं व्यधु ॥ नूनमह्विज
 याय तावकानुग्रहेण हनुमत्वमिध्व ॥ १२ ॥ कुग्रहा न तव जातु शासनं वीर वाधितुम
 लनविषव ॥ एकक त खलु नस्मकयद्दो वाधते नवडुपेक्षितस्तदा ॥ १३ ॥ जग्मुपि त्व
 यि शिव नराधिपास्तद्वृणं गृहमणीनबोधयन् ॥ ये वलु कुनयकाननद्रुपस्त्वत्प्रताप
 शिखिन कणा इव ॥ १४ ॥ यत्र कश्चन मुनिस्त्वया समं युक्ति मेयरितरैर्जनैरिव ॥
 डुपमा समयजावलिगिनां व्यंजितेन गुरुनिर्व्यपेक्षिता ॥ १५ ॥ प्रस्थिते त्वयि
 शिवाय तस्द्वृणं संसुमूर्तुरधिष्ठिव कुंथव ॥ क्लृप्तजीववद्गुलामतः पर सूचयंतइव
 नाविनीं मही ॥ १६ ॥ यत्र यत्र चरणौ त्वयाऽर्पितौ तत्तदास्पदमगादमापतां ॥ ए
 कया पुनरपापया पुरापापयाऽजनि सुरोक्तिनामतः ॥ १७ ॥ यत्र मुक्तिमगम. शम
 डुमावाप पापमुद्दिनाकृतापतत् ॥ प्रीतिमीति तरुकुंजजंजने नाग नागकरणं करो
 तु न. १८ ॥ यः पवत्यशतधीस्तव वीरस्तोत्रमेतद्वधानसमेत ॥ तत्रनाचरिपुरा

जि रयश्रीनाजि न प्रचवति प्रबलापि ॥ १९ ॥ इति श्रीवर्धमाननिर्वाणकव्याण
कस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीअरिनाथस्तवनप्रारंभः ॥

जय शरदशकलदशह्यवदन जय हृतजगदसहनमदमदन ॥ जय नतशमगतश
मनजकदन जयजगवदरपरमपदसदन ॥ १ ॥ गतमलकमलसकलकरचरण
जननमरणजवजयजरहरण ॥ रचय चरणरसनशबलस्वन मनवमसनवमरसरम
वचन ॥ २ ॥ नवरचनरतदशशतनयन नयवनजलदजलजदजनयन ॥ फलद
कलकलयजयकरयजन नमदशमपहरशममनजन ॥ ३ ॥ अमरफलदपदहर
पदकमल गजकरसरलसबलकरयमल ॥ जनयसनयमतनतजनसकल मतफ
लमपमलकलमलमकल ॥ ४ ॥ नयमयवचनपवनसमवमत परमतजलदपट
लमनसमत ॥ शमदमयमसमरसरमसमय जवपतनजचयमज मम शमय ॥ ५ ॥
धनखकनकशकलधनवरज मदकलकरणकलजनजयशरज ॥ शरणदचरणरकदर
शमन सद्यमदधमफलजगमन ॥ ६ ॥ नतशतमखतमखलजनमठर ग
मयपरमपदमजयदसदर ॥ नवनवजववनचवदशमगम शकलनगजकलजलदन
वगम ॥ ७ ॥ तमचयमपनयतपमहृतपन परसमयजरजहरपदजपन ॥ समज
नदमनकमनगजकरट वलनसवलतमहृतमदचरट ॥ ८ ॥ मदनयनगमशरण
रशरण गतरणसदवतरणवरकरण ॥ परसहचरसमरसजगदवन समवसरण
रमदहमहचवन ॥ ९ ॥ सततमचरचरजगदवगमक मननजनकथनतरतमशम
क ॥ परपदनगरगमनरणरणक मफलदशमसफलजपथजणक ॥ १० ॥ रसनर
लसदनलसनमदमन जवनपवनचरनरयतसमर ॥ दलयबहलमलमरवरवशत
मतरतनरशतगतपरवशत ॥ ११ ॥ कपटशकटजलेशयसमनवक जनमवगमय
समयरसमवक ॥ गदगजरणफणधरदकदहन धनहरमरकजदरहरमहन ॥ १२ ॥
समतसतमहपरमतकलस गणधरगणधरशमरसकलस ॥ जवदचवदपदलयलस
द्वम वनमवनमयसहनमहनवम ॥ १३ ॥ एव श्रीअरतीर्थराज तव यो डु क
र्मरोगह्निदा काम केवलवर्णसंस्तवसुधास्वादं विधत्ते सुधी ॥ श्रेयो वा न जरामर
त्वपदवीसौरव्यानि बाह्यंतरा मित्राली जय सुंदर स नियतं शिश्रीयते मानव ॥ १४ ॥
इति केवलाह्वरमयं श्रीअरिनाथस्तवन संपूर्णं ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

॥ अथ श्रीयशोविजयजी उपाध्यायरुत अध्यात्ममतपरीक्षाप्रारंभ ॥

॥ आर्या वृत्तं ॥ पणमिय पासजिएणंढं, वंदिअ सिरिविजयदेवसू
रिंढं ॥ अश्लपमयपरिस्क, जहवोहमिमं करिस्सामि ॥ १ ॥

व्याख्या— सर्व कल्याणनी सिद्धिने अर्थे, श्रीपार्श्वनाथने प्रणाम करीने, तथा
संप्रति विजयमान तपागङ्गाधिराज जे श्रीविजयदेवसूरी तेमनी वदना करीने, पो
ताना बोधने अनुसारे, आ अध्यात्ममतपरीक्षानामनुं प्रकरण हुं करुं हुं

उपोदातः— कोई आशंका करे के, शुद्ध तत्त्वनो जे अंगीकार तेने अध्यात्म
कहेठे. तेमां कोई विवाद नथी, त्वारे परीक्षा ते शानी करवी ? जे वस्तुमां संदेह
पने तेनी परीक्षा कराय ठे, निस्संदेह वस्तुनी शी परीक्षा । माटे आ अध्यात्ममत
परीक्षानामनुं प्रकरण करवानुं कोई प्रयोजन दीगामां आवतु नथी तेने कहेठे ॥१॥

अश्लपं णामाई, चउव्विहं चउविहा य तवंता ॥

तउ इमे अप्पुत्तिय, णामेणश्लपिआ णेआ ॥ २ ॥

व्याख्या— अध्यात्मना चार प्रकार ठे. एक नामअध्यात्म, बीजो स्थापनाअ
ध्यात्म, त्रीजो इव्यअध्यात्म अने चौथो नावअध्यात्म चेतन तथा अचेतन ए
वेमांनी कोई पण वस्तुनुं अध्यात्म एवु नाम राखेलुं होय ते नामअध्यात्म, अ
ध्यात्मवत यतिना आकारनुं चित्र कहाडयूं होय ते स्थापनाअध्यात्म, अने जेथ
की नावअध्यात्म उत्पन्न थाय, जेवा के, प्रतिमादर्शन, सङ्गुरुसेवा, अने अध्या
त्मशास्त्रान्यास ए त्रणे नावाध्यात्मना कारण ठे, माटे ते इव्याध्यात्म, तथा आ
त्माना जे शुद्ध परिणामते नाव अध्यात्म कहिये तेम अध्यात्मीना पण पूर्वोक्त
रीते चार प्रकार ठे तेओमां इहां जेओना मतनो विचार करैव्य ठे, ते नामअध्यात्म
वत ठे. तेओना मतनी आशंकांनुं निवारण करवुं, ते आ ग्रंथनुं प्रयोजन ठे. ॥१॥

उ०— पूर्वोक्त चार प्रकारना अध्यात्ममानो नावअध्यात्म मोहनुं कारण ठे.
माटे तेनुं विशेषकरी स्वरूप कहेठे.—

जा खलु सहावसिद्धा, किरिआ अप्पाणमेव अहिगिब ॥

जएइ परमअपं, सा ढंसण नाण चरण्णा ॥ ३ ॥

व्या०— जहाशुधी कपाय तथा इंडियने वश थयोथको संतारनेविषे आत्मा

फरे ठे, तद्वागुधी आत्मानेविषे कर्मनो अधिकार ठे, स्वत आत्मानो अधिकार नथी. केमके, आत्मस्वजावतुं आह्वादन थएलु ठे जेम मजइव्यना योगे सुवर्ण नु आह्वादन थई जायठे, तेथी तेनो स्वजाव प्रगट थई शकतो नथी तेम कर्मना योगे आत्मानुं आह्वादन थई जायठे, तेथी तेनो ज्ञान, विज्ञान, तथा अमूर्त्तत्वा दि स्वजाव प्रगट थई शकतो नथी अने नामकर्म ते आत्मस्वजावने पलटावीने नर, तिर्यच, नारकी, तथा देवताप्रमुखना पर्यायरूप पोताना स्वजावने प्रगटकरे ठे जेम तीव्र अग्निमा सुवर्णने नारख्याथी ते मज ज्यारे बली जाय ल्यारे सुवर्ण नो शुद्धादिस्वजाव प्रगट थायठे तेम शुभपरिणाम पूर्वक तपश्चर्याप्रमुख थ की ज्यारे कर्मोनी कृत्य थई जायठे, ल्यारे आत्मानो ज्ञानादिरूप स्वजाव प्रगट थायठे एटले कर्मनो अधिकार टलीने स्वत आत्मानो अधिकार प्रवर्त्त ठे, ए अधिकारनी जे क्रिया तेने नावअध्यात्म कहिये ते आत्म ज्ञानरूप एक वस्तु हो वाथी बोधरूप ठे माटे ज्ञान कहिये, तेमज रुचिरूप होवाथी सम्यक्त दर्शन क हिये, तथा प्राणातिपातादिक आश्रवनिरोधरूप होवाथी चारित्र कहिये यत “आ त्मानमात्मनोवेत्ति, मोहत्यागाद्यआत्मनि॥ तदेव तस्य चारित्रं, तज्ज्ञानं तच्च दर्शनं”

उ० कोइ आशका करे के, जावाध्यात्म तथा शुद्धोपयोग ए वे शब्दोनो अर्थ एक ठे जेम उपाधिरहित स्फटिकनो निर्मल स्वजाव ठे तेम परइव्यसंगरहित जीवोनो निर्मल स्वजाव ठे तेनेज शुद्धोपयोग कहेठे. अने एनेज चारित्र कहेठे परइव्यसंगे जीवोनो जे मलिन स्वजाव थायठे, तेने अशुद्धोपयोग कहेठे एना वे जेद ठे - एक शुद्धोपयोग बीजो अशुद्धोपयोग देव गुरु तथा धर्मादिक उ पर जे प्रशस्त राग होयठे, तेने शुद्धोपयोग कहेठे जेम राता फूलना संगथकी स्फटिकनो रातो रंग थायठे, तेम जाणवु. अने जे अप्रशस्त राग तथा द्वेष होय ठे, तेने अशुद्धोपयोग कहेठे जेम काला फूलना संगथकी स्फटिकनो कालो रंग थायठे, तेम जाणवु ए बन्ने मूल स्वजावने ढाकी लियेठे, तेथी अशुद्धोपयोग कहेठे एनेज शुद्धोपयोगरूप चारित्रना ठेद कहेठे. एना आयतन परइव्य ठे ल्यारे श्वेतावरनेविषे चउद उपकरणरूप परइव्यनो संग ठता अध्यात्म केम प्रग ट थाय? तेने उत्तर कहे ठे. ॥ ३ ॥

एविना रागद्वोसो, अब्धपरसेहि किंचि पडिकूलं ॥

परदव उवगरणां, किपुण देदुव धम्मठं ॥ ४ ॥

व्या० मात्र रागद्वेषविना बीजूं कोई पण परद्वय ते शुद्धोपयोगरूप अध्यात्मने प्रतिकूल नथी एम जो अंगीकार नही करशो तो लोकमां सर्वत्र धर्मास्तिका यादिक परद्वय नखा ठे, ते बधां प्रतिकूल कहेवासे. तेम तो मंजवे नही, माटे शुद्धोपयोगरूप अध्यात्मने राग द्वेषज प्रतिकूल ठे, एविनाबीजुं कोई परद्वय प्रतिकूल नथी एम जाणवुं जो एम कदेशो के परिग्रहीत परद्वय अध्यात्मनुं विरोधीज ठे, पण अपरिग्रहीत परद्वय अध्यात्मनुं विरोधी नथी ल्यारे शरीर रूपद्वय परिग्रहीत ठतां केम अध्यात्म उत्पन्न थायते? जो एम कदेशो के, शरीर धर्मनुं कारण ठे तेथी अध्यात्मनो विरोधी नथी ल्यारे धर्मापकरण पण धर्मनां साधन होवाथी अध्यात्मना विरोधी थाय नही ए सामान्यपणे उत्तर कस्यु उ० कोई एवी आशंका करे के ज्यांशुधी उपधि होय. त्या शुधी सर्वथा अध्यात्मनी सिद्धि थाय नही तेनुं मत दूषित करेठे - ॥ ४ ॥

उपधिसहितो ए सिद्धि, सतुसा जह तंडुला न सिञ्चति ॥
इय वयणं पक्वित्तं, दूरे दिष्टतवेसम्मा ॥ ५ ॥

व्या०:- उपधिसहित जीव सिद्धताने पामे नही. जेम तूससहित चोखो सीजे नही, तेम जाणवु. जेम चोखाने तूस दोषरूप ठे, तेम उपधि जीवने दोषरूप ठे. एवु वचन अमरचद नामना विंगंवरनुं जुडुंज नाख्युं ठे, माटे ए दृष्टात स मीचीत नथी. केमके, चोखाने तूसरूप दोष ते स्वरूपथकी ठे, अने जीवने उ पधिरूप दोष स्वरूपथकी नथी जीवने उपधिरूप दोष जो स्वरूपथी होय, तो रूपकश्रेणीए चढेला यतिना स्वधउपर वस्त्र नाखिये तो तेने केवलज्ञान उत्पन्नथवु न जोये अने तूससहित वस्तु सीजे नही ए पण सर्वथा संजवित नथी. केमके, मुग प्रमुख तूससहित सीजता दीगमा आवेठे माटे ए पण एकांत नथी, अनेकांत ठे उ० - परवादी जे दोष उपधिनेविपे कहेठे, ते दोष शरीरनेविपे पण संजवे ठे; ते देखडावे ठे.- ॥ ५ ॥

जा उपगरणे मुञ्जा, आरंजो वा असंजमो तस्स ॥
तह परद्वम्मि रई, सा किण तुहं सररीरिवि ॥ ६ ॥

व्या०:- जो एम कदेशो के, उपधि राख्याथी मूर्ठा थायते ल्यारे शरीरउपर केम मूर्ठा थती नथी. उपधिनी मूर्ठा तो शरीर मूर्ठानिमित्त ठे. तेथी शरीरने

अधिक मूर्च्छा संजवे एतुं समाधान जो आवी रीते करिये के, मूर्च्छांना वे जेद ठे - एक माहं माहं एवो ममत्वपरिणाम, अने बीजो पामेळी वस्तुउपर अवि योगनो अग्र्यवसाय; ए आर्त्तव्याननो जेद ठे. तेओमांती पहेळी जे शरीरविपे ममत्वपरिणामरूप मूर्च्छा कहीठे, ते तो सम्यकृष्टिने पण थाय नही, केमके, ते ज्ञानी ठे अने ममत्वपरिणाम तो अज्ञाननिमित्त ठे एथीज सम्यकृष्टि विषयादिकतुं सेवन करतो ठता पण तेने परमार्थथी विषयसेवनरहित कहेठे, त्यारे यतिनेविपे ते शु कहेबु! अर्थात् यति तो सर्वथा विषयसेवनरहित ठे अने बीजो आर्त्तव्यानरूप जे मूर्च्छा ठे ते धर्मव्यानना प्रजावेकरी शरीरविपे था य नही. एज समाधान उपकरणेविपे पण जाणी लेबु जो एम कदेशो के, उपकरण राख्याथी तेना ग्रहण तथा त्यागथी आरज थायठे., ए वात पण अस् नवित ठे केमके, आरज तो शरीरना करचरणादिनी क्रिया कख्याथी पण थाय ठे. जो कदेशो के शरीरना करचरणादिकनी क्रिया जयणाएकरी थायठे तो जय णाएकरी धर्मोपकरण लेता तथा मूकता पण आरज थतु नथी जो एम कहे शो के, धर्मोपकरणथकी शुद्धात्मपरिणाम जंगरूप हिंसा थायठे त्यारे शरीरथ की केम हिंसा थती नथी? ज्यारे मूर्च्छाविना शरीरथकी हिंसानो सजव थतो न थी, त्यारे मूर्च्छाविना धर्मोपकरणनो पण सजव केम थजे! जो एम कदेशोके, धर्मोपकरणथकी परड्व्यनेविपे रति होवाथी आत्मड्व्यमा रति थती नथी त्यारे शरीरथकी पण ड्व्यरति केम नथाय? कितु थवीज जोडये एनो विचार करो उ० - परड्व्यरतिने वे विकल्पेकरी दूषित करेठे - ॥ ६ ॥

तह परदवस्मि रई, परिणामो रक्कणाणुबंधो वा ॥

इहओ तणु सममुवहि, पासंतो कि ए लजेसि ॥ ७ ॥

व्या० - परड्व्यरति ते शु काययोगना परिणामरूप ठे के, संरक्षणानुबंधी रौड्व्यानरूप ठे? जो प्रथम काययोग परिणाम कदेशो तो शुजकाययोगे दोप केम जागे? अर्थात् एम तो सजवे नही अने जो संरक्षणानुबंधी रौड्व्यानरूप कदेशो तो ते पण सजवजे नही केमके, घोरादिकथकी सर्व प्रकारे जे वखा दिकतुं वचावबुं, तेने संरक्षण कहेठे, ने तेतुं जे निरतर चितन करबु, तेने अनुबंध कहेठे एबु रौड्व्याननो जेद जो उपधियकी थाय तो शरीरथकी पण थबु जोडये केमके, सर्प, चोर, तथा कटकप्रमुख थकी शरीरनी रक्षा करवाना अ

अध्यात्ममतपरीक्षा. एने तो रौडध्यान कहेता नथी । जो एम कहेशो के, यतिने शरीरनेविषे राग नथी होतो, तेम ठतां सर्पादिकथी शरीर नी रहा तो धर्मसाधनने अर्थे करेठे. तेथी तेना अध्यात्ममतपरीक्षा अशुचन होता नथी: एम पण संज्ञवे नही! केमके, यतिने शरीरनी पठे धर्मोपकरणउपर पण राग हो तो नथी. तेम ठतां तेनीरहा पण धर्मसाधनने अर्थे करेठे एवी रीते शरीरना जे वांज धर्मोपकरण उरेठे. तेम ठतां तेथोनी उच्चापना करतां तमने शरम थती नथी!

उ०.— कोई आशंका करे के, उपकरण जे ठे ते ध्यानना विरोधी ठे केमके, तेथोना प्रतिक्षेपनादि बाह्यव्यापारना योगे अंतर आत्मतत्त्वनेविषे चित्त एकाग्र तारूपध्यानमां विघ्न थायठे. एम कहेनाराने उत्तर दिये ठे. ॥ ७ ॥

जो किर जयणापुढो, वावारो सोण जाण पडिक्को ॥
सोचेव होइ जाणं, जुगवं मण वयण कायाणं ॥ ८ ॥

व्या०.— आवाश्यक पडिजेहणाप्रमुख जे जयणाएकरी व्यापार थायठे ते प ए ध्याननो विरोधी होवोजोये, एने तो कोई विरोधी कहेतो नथी कितु एतो ए कं कालाश्रित मन, वचन, तथा कायासंबंधी ध्यानरूप होयठे जेमके, शुचनयो गे करीमन एकाग्र होयठे, एनेज मन संबंधी ध्यान कहेठे, निरवद्य वचन बोला यठे, अने सावद्य वचननो त्याग थायठे, एनेज वचनसंबंधी ध्यान कहेठे, अने शुचनयोगनेविषे यत्नेकरी कायानी दृढता थायठे, एने कायसंबंधी ध्यान क हेठे जो तमे एम कहेशो के, नगवते एकसमयनेविषे वे क्रियानो निषेध कह्योठे; तेम ठतां एकसमयाश्रित मन, वचन तथा काया संबंधी ध्यान केम संज्ञवे ? ए नो उत्तर आमाठे — नगवते जे एकसमयनेविषे वे क्रियानो निषेध कह्योठे ते निन्न विषयविषे ठे, एक विषयविषे निषेध नथी कह्यो जेमके, वांङणाना आवर्त्तननेवि पे त्रण योगनी क्रिया एकज समयनेविषे थायठे यत “ निन्नविषये णिसिद्धं, किरि या डुगमेगयाण एगम्मि, जोग तिगस्त विचंगिय, सुत्ते किरिया जउं जणिया ”

उ०.— कोई आशंका करे के, ध्यान जे ठे ते योगनो परिणाम नथी के जेनी प्रवृत्ति बाह्य व्यापार करतां थाय. जो योगना परिणामरूप ध्यान होय, तो क्षेयथा अने ध्यान एक कहेवाय. एथोमा काई न्यूनाधिकता होय नही तेम तो नथी देखातुं. क्षेयथाओतुं रूप पण छुडंठे, ने ध्याननुं रूप पण शास्त्रोमां छुडं कसुंठे. वली जो योगपरिणामरूप ध्यान होय तो चांदमे अयोगिकेवल गुण

स्थानके शुक्लध्याननो संजव केम थाय । ए तो योगनी परिणतिरूप नथी केम के, ध्यानतो आत्मस्वभाव समवस्थानरूप ठे. अने तेनी उत्पत्ति आवीरीते था यठे - सुखनी तृष्णाएकरी मोहनीयकर्मने वश थयो थको जीवः परडव्यनेविपे प्रवृत्ति करेठे, ज्यारे मोहनीयकर्मनी न्यूनता थायठे, ल्यारे परडव्यनेविपे प्रवृत्ति थती नथी. एमथथाथी विपयनेविपे वैराग्य थाय ठे केमके, विपयनेविपे जे रा ग होय ठे, ते विपय प्राप्तिपूर्वक होयठे अने रागना अज्ञावे वैराग्य होयठे. वैरा ग्यथकी मननो रोध थायठे केमके, मननी प्रवृत्ति विपयविना थती नथी जेम तृणरहित स्थानकनेविपे पडेली अग्नि पोतानी मेलेज नाशने पामेठे तेम विषय विना मन पोतानी मेलेज स्थिरताने पामेठे मननो निरोध थयाथी चचलता मटी जायठे अने पठी मन एकाग्र थईने आत्मानेविपे प्रवृत्त थायठे ए आत्मस्वभाव ने ध्यान कहेठे यत “जो खविदमोहकलुसो, विपयविरत्तो मण्णेण संजित्ता, समवच्छिदो सहावे, सो अप्पाणे दवदिजा दा.” इति प्रवचनसारे. एवु सह चेतन स्वभावरूप जे ध्यान ते, बाह्य व्यापार करता, तथा परडव्य अधिकरण क्रियाठतां केम प्रगट थाय ? एनो निर्णय करेठे ॥ ८ ॥

जाण तिकरण पयत्तो, ए सहावो तेण जेण सिद्धस्स ॥

इह एठाणविजागो, कह सुक्खाणनेआणं ॥ ९ ॥

व्या० मन वचन तथा कायारूप त्रिकरण एटले त्रण योगनो प्रयत्न कखाथी ध्याननी सिद्धि थाय ठे, माटे योगपरिणामरूप ध्यान ठे, परतु उपयोगरूपज ध्यान नथी. अने लेइया पण योगपरिणामरूप ठे तेथी योगपरिणामपणे तो ध्यान तथा लेइया ए बन्ने सरखा ठे, परतु बन्नेना लक्षणो जुदा जुदांठे. लेइया जे ठे ते योगनो चलाचल परिणाम ठे, अने ध्यान जे ठे ते योगनो निश्चल परिणाम ठे अयोगीने यद्यपि करणव्यापार नथी, तथापि ठता मन वचन तथा काया ना निरोधरूप प्रयत्न करे ठे ते प्रयत्ने करीने जे त्रणे योगनो निरोध थाय ठे, ते नेज ध्यान कहेठे अने आर्ही जो आत्मस्वभाव समवस्थानरूप ध्यान लइये तो सिद्धने पण ध्याननुं कर्तृत्व वरइो शास्त्रोमा तो सिद्धनेविपे ध्यानप्रवृत्ति सर्व क्रियानो अज्ञाव कह्योठे जो एम कहिये के, सिद्धने व्यावहारिक ध्यान तो नथी, पण आत्मस्वभावरूप नैश्वयिक ध्यान तो ठे जो एम होय तो योगनो निरोध कखा विना पूर्वकोन्निपर्यंत केवलीने ध्याननो निषेध केम कखोठे ? आत्मस्वभाव सम

वस्थान तो केवलीने सर्वथकी अधिक ठे. ए कारण माटे अयोगीने तो योगनि रोपरूप ध्यान ठे, अने उद्वस्थने करणना दृढव्यापाररूप ध्यानठे. एवी रीते शुंन योगेकरी प्रवर्तनीय जे ध्यान, तेमां वाद विवाद शानो होय !

उ० कोई आशंका करे के, जो उपकरण होय तो राग पण होय, माटे उपकरण सर्वथा त्याग करवा योग्य ठे, तेम जो न करिये तो उत्सर्गमार्ग केम रहे? एप्रश्ननो उत्तर दिये ठे— ॥ ९ ॥

जा खलु सरागचरित्रा, साविय उस्सगगमगगसंलग्गं ॥

मोतुं अववायपयं, अइप्पसंगी परविसेसो ॥ १० ॥

व्या० जे स्थिविरकल्परूप सरागचर्या कहेतां सरागमार्ग ठे. ते पण उत्सर्गमार्गने लागेलो जे. अर्थात् अपवाद मार्ग अने उत्सर्ग मार्ग निकट संबंधी ठे यद्यपि स्थिविरकटपी पण अपवादनो तो त्याग करेठे, तथापि कोई कारण ने लीधे तेने ग्रहण पण करवु जोयेठे अने जिनकल्पी तो कदापि अपवादतुं ग्रहण करेज नही. एवी रीते स्थिविरकल्पी तथा जिनकल्पीना अपवाद तथा उत्सर्गमार्गमा अल्प अंतराय ठे एटले अपवादमार्ग थकी उत्सर्गमार्गनी कांईक उत्कृष्टता ठे, तेथीज बे नेद थयाठे. अने जिनकल्पनी अपेक्षाए स्थिविर कल्प कह्योठे. तेमज उत्सर्गमार्गनीअपेक्षाए अपवाद मार्ग कह्यो ठे. जो उत्सर्ग मार्ग थकी कांईक न्यूनता वालो अपवाद मार्ग, तथा अपवादमार्गथी कांईक अधिकतावालो उत्सर्ग न कहेखु तो चौदमां गुणस्थानकना अंतना समयसुधी उत्सर्गमार्गनो संनव थरो नही केमके सर्वोत्कृष्ट संवर तिहाज ठे. माटे जे ठेकाणे जे मार्ग उत्कृष्ट कह्यो होय ते ठेकाणे तेज उत्सर्गमार्ग ठे. जेमके स्थिविरकल्पनेविषे चौद उपकरणज उत्कृष्ट होवाथी ते उत्सर्ग मार्ग ठे. ॥ १० ॥

उ० मूल गाथावडे पूर्वपक्षी आशंका करे ठे—

नणु वक्ष्णं साहण, मववाउ अंतरंगमुस्सगगो ॥ जा पुणं सराग

चरिया, समुच्चिया ऐव सिद्धाए ॥११॥ पडिसेवणो, पुणसो, अववा

उं फुडो अणायारो ॥ ता वत्ताई गंथो, णो उस्सगगो ए अववाउ ॥१२॥

व्या०— परइव्यमात्रनी जे निवृत्ति, एटले परइव्यनो कांई पण परिग्रहं रह्यो न होय, मात्र आत्मइव्यनोज प्रतिबंध होय, तेज संयमतुं अंतरंग कारण ठे;

एने उत्सर्गमार्ग कहेवे एवी सामग्रीनी प्राप्तिविना शुद्धोपयोगनूमिकाए चढी शकालु नथी, ल्यारे तेनी साह्यता करनारी जे उपधि होय तेनुं धारण करवुं तेने अपवाद कहेवे ते उपधि बंधनो हेतु नथी, माटे निषेध नथी कही केमके, ए उपधि संयमरहित पुरुषना उपयोगमा आवती नथी किंतु संयतीनेज उपयोगी ठे अने मूर्खानो हेतु यती नथी यत “अस्मिन्कुडं उवहिं, अपडणिकं अस जद जणोहिं, मुद्धादिजणणरहिदं, गेह्णुसमणोयजदि विअप्यंते.” ते उपधि आ ठे - एक तो यथाजातलिंग पुज्ज, एटले जेवो माताना उदरमांथी नीकल्यो होय तेवो आकार धारण करवो, बीजो वचनपुज्ज, एटले जेथी शुद्धात्मतत्त्वनो बोध थायठे, तेनुं ग्रहण करवु, त्रीजुं शुर्वादिक विनयरूप मनना पुज्जतुं धारण करवु, अने चोथुं सूत्राध्ययनना पुज्जने धारण करवुं. यत “उवयरण जिणमं ग्गो, लिंगं जह जादरूपमिदि जणिद, गुरुवयणपि अ विणउं, सुत्तस्यण च प न्नत्तं” एवो जे अपवादमार्ग तेने सरागचर्या कहेवे अर्थात् शुद्धोपयोगनी न्यू नताने लीधे अपवादमार्ग कहेवाय ठे. पण जे वस्तु प्रतिपिद्ध एटले सेवन करवा योग्य न होयने तेनु जे सेवन करवु तेने अपवाद कहता नथी तेने तो प्रगट अ नाचारज कहेवे. तेमठता संयतीने वस्त्रादिक सेवन करवायोग्य नथी केमके, ए अनाचार ठे माटे ए सर्व परिग्रहनो त्याग करवो जोये वस्त्रादिक परिग्रहनुं जे ग्रहण करवु ते उत्सर्ग पण नथी ने अपवाद पण नथी, किंतु अनाचार ठे, ते केम करवो? एहवु जे कहेवे तेने उत्तर आपी तेनो समाधान करेवे - ॥१॥१॥१॥

उत्रकुणाइ जह सररीर, सुद्धवर्तगं तहेवमुवगरण ॥

जम्हा तउं मुणीण, सुए अपेगे गुणा जणिआ ॥ १३ ॥

व्या० - जेम शरीर परडव्य ठता शुद्धोपयोगनुं साह्यकारिठे; तेथी परिग्रह क हेवाय नही तेमउपकरण पण शुद्धोपयोगनां साह्यकारी होवाथी परिग्रह कहेवा य नही केमके, ए वात, सिद्धांतोनेविषे पण धर्मोपकरणना अनेक गुण कइयाठे तेथी सिद्ध थायठे जेमके, रात्रीये चउकालें काल ग्रहलेता वस्त्रे करी यतीने शीत नी पीडाटले ठे. ने जो वस्त्र न होय तो शीतनी पीमाने लीधे अग्निना ताप प्रमुख नी चितना थाय तेथी आर्त्तध्यान उत्पन्न थायठे वस्त्रेकरी सचित्त पृथि वी, धूंहरी आस, वृष्टि, तथा हिरमज प्रमुखनी रक्षा थायठे ने जो वस्त्र न होय अने उधाहु शरीर होय, तो शरीरनी गरमीनी बाफथकी ते जीवोने हु ख उत्पन्न थायठे

संपातिमरजरेणु प्रमार्जवाने अर्थे मुहपती राखवी, लेवादेवा प्रमुखनी क्रियाए पूर्वे प्रमार्जवाने अर्थे तथा जैनलिंगने अर्थे उंगो राखवो. तथा पुरुष वेदनीयोदयादिक वर्जने अर्थे चोलपट राखवो. इत्यादिक वस्त्रना गुण क्हाते अनानोगे लीधेजां जे ससक्त गोरसादिक, ते पात्रें करीने विधिपरतई शकायठे. पात्रविना हाथमाज लीधा होय तो योग्य ठेकाणे केम परतवी शकाय ? तथा हाथमा सरस वस्तु लीयाथी-तेनो बिडु जो नीचे पडे, तो तेथकी कीडीओप्रमुख अनेक ज तुअनी विराधना थाय. गृहस्थ जाजनने अर्थे उपनोगेपण पथात्कर्मादिक दोष उपजे, अने जो पात्र होय तो तेणे करी ग्लान अथवा दुर्वलने पथ्यादिक जावयाने अर्थे उपयोगी होवाथी उपकार थायठे. अलब्धिवत तथा लब्धिवत असमर्थ तथा समर्थ प्रादुणाने वास्तव्य पात्र होय तो अन्नपानादिकने आपणी उपकार करे. अन्यथा केम करे ? इत्यादिक वस्त्र तथा पात्रनेविषे अनेक गुणजाणी शरीरनी पठे धर्महेतु होवाथी तेमां परिग्रहपणानी आशंका करवी नही ॥१३॥

उ - उपहासयुक्त पूर्वपद्धतीनी मूल गाथा वडे आशंका करे ठे -

जइ उवहिनारगहणं, इठं दुन्नाएवक्कणणिमित्तं ॥

तो सेयं थीगहणं, मेहुणसस्साणिरोहठं ॥ १४ ॥

व्या० - शीत तथा तापप्रमुखनी पीडाए करी आर्त्तध्यान उपजे नही, ते सारुं तमे एटलो वधो उपविनो नार वेठो ठो; त्यारे मैथुन सज्ञानिमित्त आर्त्तध्यान नो त्याग करवासारु एक स्त्रीनो परिग्रह पण शासारुं राखता नथी ? ज्यारे जीर्णादिक वस्त्र राखवाथी मूर्ठा थती नथी, त्यारे अंगजंग थएली तथा कुरूप स्त्री राखवाथी मूर्ठा केम थाय ? ॥ १४ ॥

उ० - ए आशंकानो उत्तर दियेठे -

एयं वि दूसगाणं, वयणं मयणंधवयणमिव मोहा ॥

असह समोवहासो, देहाद्वाराइगहणेवि ॥ १५ ॥

व्या० - तमारुं बोलजुं जाड (मस्करा) ना जेडु जासेठे. जेम होलीना दाहा डामां कामी पुरुषो गमे तेम बक्या करेठे. अने कामने वश थया थका लाज उपजावे एवां वचनो बोल्या करे ठे. तेम तमे पण मिथ्यात्वना परवडो करी अज्ञानने लीधे मस्करिना वचन बोलो ठो. ते वचनोथी थमने तो काई थवाजुं नथी, पण तमे पोते तेवा वेखाई थावो ठो. केमके, तमे पोते पण चूखनी पीडा टालवासारुं

હોય તે સ્થાપનાદેષ કહેવાય ડ્વ્યદેષના વે પ્રકારઠે.—એક કર્મડ્વ્યદેષ, વીજો નોકર્મડ્વ્યદેષ. એમાના કર્મડ્વ્યદેષના ચાર પ્રકાર ઠે—એક યોગ, વીજો વદ્ધમાન, ત્રીજો વદ્ધ અને ચોથો ઉદીરણપ્રાપ્ત. જે મોહનીયકર્મના પુજ્જલ બંધ પરિણામને અજિમુલ્ક થયા હોય તે યોગકર્મડ્વ્યદેષ કહેવાય, જે મોહનીયકર્મના પુજ્જલ બંધક્રિયાના પરિણામને પામ્યા હોય તે વદ્ધમાનકર્મડ્વ્યદેષ કહેવાય, જે મોહનીયકર્મના પુજ્જલ બંધપરિણામની નિષ્ઠાને પામ્યા હોય તે વદ્ધકર્મ ડ્વ્યદેષકહેવાય, અને જે મોહનીયકર્મના પુજ્જલ ઉદયને પામ્યા હોય તે ઉદીરણપ્રાપ્તકર્મડ્વ્યદેષ કહેવાયઠે તેમ નોકર્મડ્વ્યદેષના વે પ્રકાર ઠે—એક વિશ્રાન્તા, વીજો પ્રયોગ જે સંધ્યારાગ પ્રમુલ્ક દેશાય ઠે, તે વિશ્રાન્તાનોકર્મડ્વ્યદેષ કહેવાય, તથા જે વસ્ત્રાદિકનેવિપે કુસુંજાદિક રાગ દેશાયઠે તે પ્રયોગનો કર્મ ડ્વ્યદેષ કહેવાય ઠે અને જાવદેષના પણ વે પ્રકાર ઠે—એક ઉદયપ્રાપ્ત, વીજો પરિણામ મોહનીયકર્મનો જે ઉદય થાય તે ઉદયપ્રાપ્તજાવદેષ કહેવાય, અને મોહનીયકર્મપરિણામને પામે તે પરિણામજાવદેષ કહેવાયઠે

હવે નયેકરી રાગદેષપંતુંવિવરણ કરે ઠે—સંગ્રહ નયની રીતિએ ક્રોધ તથા માન એ બન્ને અપ્રીતિનો પરિણામ હોવાથી દેષ કહેવાયઠે, અને માયા તથા લોચ એ બન્ને પ્રીતિનો પરિણામ હોવાથી રાગ કહેવાયઠે વ્યવહારનયની રીતિએ માયાની યોજના પરના ઉપઘાતને અર્થે થાયઠે માટે ત્રીજી માયા પણ દેષજ કહેવાય અને ન્યાયોપાત્ત ડ્વ્યપ્રમુલ્કનેવિપે જે લોચ થાયઠે તે રાગ કહેવાયઠે પરંતુ અન્યાયોપાર્જિત ડ્વ્યાદિકનેવિપે જે લોચ થાયઠે તે રાગ કહેવાય નહીં કેમ કે, ઈથી કપાયાદિકની ઉત્પત્તિ થાયઠે રુજુસૂત્રનયની રીતિએ ક્રોધ જે ઠે તે અપ્રીતિનોજ પરિણામ હોવાથી એકાંત દેષ કહેવાયઠે વાકીના ત્રણ જે માન, માયા ને લોચ તે એકાંત દેષ કહેવાય નહીં પરંતુ અનેકાંત કહેવાય; કેમ કે, માન જ્યારે સ્વોત્કર્ષ પરિણામરૂપ હોય ઠે ત્યારે રાગ કહેવાયઠે, અને જ્યારે પરનિદાપરિણામરૂપ હોયઠે ત્યારે દેષ કહેવાયઠે તેમજ માયા તથા લોચ પણ જ્યારે પૂર્વ પરિણામરૂપ હોય ઠે ત્યારે રાગ કહેવાય ઠે, અને જ્યારે પરહોદ્ધ પરિણામરૂપ હોયઠે ત્યારે દેષ કહેવાયઠે. અને શબ્દનયની રીતિએ ક્રોધ તથા લોચ એ વે કપાયરૂપ હોવાથી એમાંના માન તથા માયા અપ્રીતિના પરિણામરૂપે થઈને જ્યારે ક્રોધમા આવીને મલી જાય ત્યારે તે દેષ કહેવાયઠે, અને પ્રીતિના પરિણામરૂપે થઈને જ્યારે લોચમાં આવી મલી જાય ત્યારે રાગ કહેવાયઠે ॥૨૧॥

परद्वंसि पवित्री, ए मोहजाणिया व मोहजाणावा ॥

जोगकयाहु पवित्री, फलकंखा रागदोसकया ॥ ११ ॥

व्या०— परद्वयनेविपे जे प्रवृत्ति थाय ठे तेतुं निश्चयथी मोह कारण नथी केमके, प्रवृत्ति तो मन वचन तथा काय योगथी थायठे, अने फलनी इहा राग द्वेषथी थायठे. माटे फलनी इहाविना यतिजो धर्मोपकरण धारण करे तो तेथी अयोग्य शु थयुं कहेवाय ? केमके, फलनी इहाविना राग तथा द्वेष यता नथी. ॥११॥

वडाइणेवगंधो, मुणीण मुळ विणेव गहणाठ ॥ तह

देहपालणघा, जह आहाला तुह वि डघो ॥ १३ ॥

व्या०— यतिने वस्त्रादिकनो ग्रंथ यतो नथी केमके, मात्र शरीरनी रक्षा कर वासारु ग्रहण करेठे. तेमा मूर्ठा रचमात्र पण होती नथी जेम शरीरनी रक्षाने अर्थे यति निरवद्य आहारतुं ग्रहण करेठे पण तेमां मूर्ठा होती नथी. तेम धर्मो पकरणोविपे पण जाणी लेवु. ॥ १३ ॥

जह देहपालणघा, जुत्ताहारो विराहगो ए मुणी ॥

जह जुत्तवठपत्ता, विराहगो णेव णिदिघो ॥ १४ ॥

व्या०— जेम शरीरतुं पालन करवाने अर्थे निरवद्य आहार लेतां यतिने विराधक कह्यो नथी तेम निरवद्य वस्त्र पात्र राख्याथी पणविराधक न कहेवाय किंतु आराधकज कहेवाय. कोई एम कहे के, शुद्धोपयोग जे ठे ते प्रदीप जेवो ठे, अने नोजन तथा शरीर संचलन जे ठे ते तेजपूरण तथा वाटसंचार जेवो ठे एतो योग्य ठे पण उपधि अयोग्य ठे. एतुं अमरचदतुं बोलवु असमीचीन ठे. केमके, धर्मोपकरण धारण करवां ते प्रदीपने निर्वातस्थले राखवा जेवां ठे. माटे योग्यठे

अणसण सहावजोगा, जह असणं अणसणं तिजुत्त

मिणं ॥ जुत्तं तह वडाई, सहावठ तप्परिणयस्स ॥ १५ ॥

व्या०— जेम सर्व नोजननी तृप्ताथकी रहित ठता अंतरग आत्मस्वजावनी जावना करतां तेना उपछंनने अर्थे आहारतु जे ग्रहण करवुं ते परमार्थे अनाहार ज कहेवाय. यत “जस्त अणोत्तणमप्पा, तंपि तथो तप्पडिहगसमणा, अण जिक्कमणे सण, मधत्तसमणाअणाहारा.” इति प्रवचनसारे. तेमज सकल परि

ग्रहरहित ठतां आत्मस्वभावनी जावना करतां तेना उपपंजने अर्थे वस्त्रादिक रा
खता पण परमार्थे वस्त्रादिकरहित कहेवाय. ते युक्तज ठे ॥ १५ ॥

एवच सचेलाणं, कहउ सुतं जवे अचेलत्तं ॥ इअ

पन्नणत्तस्स तुढं, को णिअधरररररररररर वाउ ॥ १६ ॥

व्या० - एवीरीते सूत्रमा कहेलु जे सचेल यतिने अचेलपणुं ते केम संजवे,
एम कहेतां तमने पोताउं संजालता कण षई पड्डो केमके, तमारा शास्त्रमा
ज यतीने आहार करता अनाहारी कद्याठे त्यारे मूर्धारहित सचेलने पण अचे
ल कहेतां शु अघटित थाय । ॥ १६ ॥

जइ चेल भोगमेत्ता, ण जिया चेलय परीसहो सा

हू ॥ नुजंतो अजिअ खुहा, परीसहो तो तुमंपत्तो ॥ १७ ॥

व्या० - जो एम कदेशो के वस्त्र वापखाथी अचेल परीसह जीताय नही त्या
रे आहार कखाथी कृधापरीसह केम जीताय । जो एम कदेशो के, तीव्र कृधा जा
गी होय तोपण यतीए अनेपणी आहार लेवो नही. किंतु जो शुद्ध आहार मले
तो ज आत्माने उपग्रह करवो एवीरीते कृधापरीसह जीतायठे तेमज शीतादिक
वडे घणी वेदना अती होय तोपण यतिए सदोष वस्त्र लेउं नही, किंतु निर्दोष
वस्त्र मले तो ज आत्माने उपग्रह करवु, एवीरीते अचेलपरीसह पण जीतायठे
एम निश्चयथी अचेलपणु जाणवु ॥ १७ ॥

उ० व्यवहारथी अचेलपणुं दशावि ठे.-

जह जलमवगाहंतो, नणई चेलरहित सचेलोवि ॥

तहवठोजुण कुठिय, चेलावि अचेलया साहू ॥ १८ ॥

व्या० - जेम कोई माणस पोतीउं पहेरीने तलावप्रमुखना पाणीमा स्नान क
रवासारु पेरो ते पोतिउं ठता लोकमां नम्र कहेवाय तेम यति जीर्णवस्त्रने धार
ण करे ते अचेलज कहेवाय ॥ १८ ॥

उवयारेण अचेल्ला, सेसयुणी सब्हा जिणंदाय ॥

संधाउ देव दूंसं, चवई तउं चैव आरअ ॥ १९ ॥

व्या० - तीर्थकर विना बीजा यति उपचारे अचेल्ला कहेवाय केमके, तेउं व
स्त्र ठतां पण अवस्त्र गणोठे जेम कोटी धनवान ठतां तेनो अजिमान न होय

तो ते निर्धन जेवोज होय ठे. एम सचेल साधुविपे पण जाणी जेवुं सर्वथा अचेल तो ज्यारे स्कथ ऊपरथी देवडुष्य वस्त्र पडे ल्यारे तीर्थकर कहेवायठे. ॥१९॥

एएण जइ अचेला, जिणंद जिणकण्णिआइआ सुमु
णी ॥ ता एसोच्चिय मग्गो, एण्णोत्ति पराकयं वयणं ॥३० ॥

व्या० - एणेकरी; जिनतीर्थकर तथा जिनकल्पिप्रमुख अचेलाठे, तेथी एज मार्ग उत्तमठे; अने स्थिविरकल्पनो मार्ग उत्तम नथी, एम कहेनाराजुं निराकरण कस्यु. कारणके, जे जिनकल्पीठे ते पण एकांते अचेला नथी. केमके, जे जिनकल्पीने पात्रनी लब्धि होय, हाथ ठिडरहित थया होय; किंतु वस्त्रनी लब्धि न होय ते ओमांना कोइकने रजोहरण, मुहपति, तथा एक कल्पक ए त्रण उपधि होय ठे; कोइकने रजोहरण, मुहपति, तथा वे कल्पक मजी चार उपधि होयठे, कोइकने रजोहरण, मुहपति तथा त्रण कल्पक मली पांच उपधि होयठे; जेने वस्त्रनी लब्धि होय, किंतु पात्रनी लब्धि न होय तेने सप्तविध पात्रनियोग, रजोहरण, तथा मुहपती मली नव उपधि होयठे, जेने वस्त्रे लब्धिमांनी एके लब्धि न होय तेओमांना कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपती तथा एक कल्पक मली दश उपधि होयठे, कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपति तथा वे कल्पक मली अग्यार उपधि होयठे, अने कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपति, तथा त्रण कल्पक मली वार उपधि होय अर्थात् पोतानी शक्तिने अनुसारे उपधि होयठे. अने जेने वस्त्रे लब्धीओ होय तेने पण रजोहरण तथा मुहपति ए वे उपधि तो निश्चयथी होयठे एवो नियमठे. ॥ ३० ॥

जिणकम्ममेव य कम्मं, जइ कायवं तउ तुहं इहयं ॥

उवएस सिस्स दिस्का, गुरुवयणाईहि कि कज्जं ॥ ३१ ॥

व्या०.- जो तमे कदेशो के, जे कार्य जिनेश्वरे नथी कस्युं ते अमारें पण करुं नथी! ल्यारे धर्मोपदेश, शिष्य, दीक्षा, तथा गुरुवचनादिकनुं तमारें अं उपयोग ठे! जेम नगवते ज्ञान उपना पठी धर्मोपदेश दीधो ठे, किंतु केवलज्ञाननी पूर्वे कोईने उपदेश कस्यो नथी, तेम तमारें पण केवलज्ञान उत्पन्न थाय ल्यारेज उपदेश करवो जोये. तेनी पूर्वे कांई पण धर्मोपदेश प्रमुख करवु जोईये नही वारु !!! ॥३१॥

णिरतिसयाणं कण्णो, घेराणहिउं ठिउं अ तत्तेव ॥

पन्निवज्जउ जिणकण्णं, पंचहि तुलणाइ जुत्तो तो ॥ ३२ ॥

व्या०.— जे साधु लब्धिरहित होय, तेने स्थविरकल्प मार्गज हितकारी ठे. ते समये जिनकल्प त्याग करवा योग्य ठे ज्यारे आत्मज्ञान थाय त्यारे जिनकल्प आढरवो परतु असमर्थ ठता उत्कृष्ट मार्गनो जे आदर करवो ते केवल आर्त्तध्याननो हेतु थायठे यत “अकालोत्सुक्यस्य तत्त्वत आर्त्तध्यानरूपत्वात् धर्मविदो” ॥३१॥

वेज्जुवदिष्ठं उंसह, मिव जिणकहिय दिअं तउ मग्गं ॥ सेवं
तो होइ सुही, इहरा विवरीअफलजागी ॥ ३३ ॥

व्या० — माटे जगवते कहेला मार्गने जे नजे ते सुखी थाय; अने जगवते जे म कछुं ठे तेम जे करवा मामे ते विपरीत फलने लायक थाय. जेम रोगी वैदे कहेली औपधी जो सेवे, तो रोगरहित थाय पण वैदना कखा प्रमाणे न करे तो अपथ्य सेवन करतो ठतां जेम अकाले नाश पामे तेम ए पण जाणी जेतुं ॥३३॥

अणगूहितो सत्ति, जुजंतोवि जह णो चयइ मग्गं ॥

अणगूहितो सत्ति, तह उवगरणं धरतोवि ॥ ३४ ॥

व्या० — सकल आत्मशक्तिने फोरवनारो यति संयमादिकने अर्थे, जेम आहारा करतो ठता जिनमार्गनो त्याग करतो नथी, तेम स्वाध्यायादिकने अर्थेपण ते यतिए धर्मेपकरणनो त्याग करवो नही. यत “ तिहि गणेहि वत्थधरेज्जा, तं जहा, हरिवत्तिअं, डुगठवत्तिअ परीसहवत्तिअं ” इति जज्जा अथवा डुगंठा मटा डवाने तथा सयमने अर्थे वस्त्र धारण करवा जोये जो वस्त्र न होय ने नग्र होय तो लज्जाथाय, अने सयम पळे नही, जो वस्त्र न होयतो लोक निदा करे के, ए धर्म सारो नथी केमके जेमा साधु उघाडा फरेठे ते टालवाने अर्थे वस्त्र धारण करवा, जो वस्त्र न होय तो टाढ तथा तापप्रमुख लागे तेथी चारित्रजगरूप आर्त्तध्यान उत्पन्न थाय ते मटाडवाने अर्थे वस्त्र धारण करवा एम कारणीक वस्त्र होवार्थी असे साहसवत ठतां केम धारण करिये; एम जो कहेसो तो आहार पण कारणीक कछु ठतां तेपण तमारे करवो न जोये. यत. “बहिं गणेहि समणे णिग्गये आहार माहारे माणेइ कमइ तं वेयण वेयावच्चे इरियणाए असंयमणए तह पाण पत्तिआए ठं पुण धम्मचि ताए ” इत्यादि कारणने लीधे यति आहार करे तेथी आज्ञालुं अतिक्रमण थाय नही. तेना कारण थाठे — ऋधानी वेदनाने मटाडवाने अर्थे, वेयावच्च करवाने अर्थे ईर्ष्याशोधवाने अर्थे, संयम पालवाने अर्थे प्राणधारवाने अर्थे, तथा स्वाध्या

यप्रमुख धर्मचिंताने अर्थे साधु आहार करे ठे. पण बल तथा रूपादिकने अर्थे करतो नथी, तेमज वस्त्र पण कारणने लीधे धारण करे ठे तेनो त्याग करवानुं कारण शुं ! आहार लेवो अने वस्त्र मूकवा ! एम करवाने तमारो शुं अनिप्राय ठे ते जाणतु नथी ॥ ३४ ॥

अविजिय हिरिकुत्वाणं जइ नूणं संजमेण अहिगारो ॥
ताकह अजिय डुगंग तसाणं तव्व अहिगारो ॥ ३५ ॥

व्या० - जो एम कदेशो के जेणे लाज तथा डुगंग प्रमुख जीत्यां न होय ते ने चारित्रनो अधिकार नथी. त्यारे जेणे क्रुधा तथा तृषा जीत्यां न होय तेने चारित्रनो अधिकार केम कहेवाय ? ज्यारे क्रुधा तथा तृषा मूलगुणना घातक नथी त्यारे लज्जा तथा डुगंग पण मूल गुणघातक केम कहेवाय ? माटे अही तमारें अनिनिवेशविना बीजू कांई कारण दीगामा आबतुं नथी ॥ ३५ ॥

अह हिरि कुत्वा हिसया हिरि कुत्त सहाव जावणो णोचेत् ॥
एहा बुद्धाहि ताकह तय जाव सहाव संबुद्धी ॥ ३६ ॥

व्या० - जो कदेशो के, यतिने लज्जा तथा डुगंग होय तो तेथी विपरीत जे अलज्जा तथा अडुगंगारूप आत्मस्वजावनी जावना ते न थाय. त्यारे क्रुधा तथा तृषा वतां तेथकी विपरित जे अक्रुधा तथा अतृषारूप आत्मस्वजावनी जावना ते यतिने केम थाय ! माटे शांत दांत प्रमुख श्रेष्ठ गुणयुक्त जे यति ठे, तेतुं मन शुद्ध होयठे तेनाबलची आत्मस्वजावजावना टलती नथी ए समाधान आहार अने उपकरण ए वस्त्रेनेविषे जागु पडेठे ॥ ३६ ॥

उत्सग्गववायाणं मित्तीए अहण जोअणं डुवं ॥ ३
उत्सग्गववायाणं मित्तीइ तहेव उवगरणं ॥ ३७ ॥

व्या० - जो एम कदेशो के, उत्सर्ग तथा अपवाद ए वस्त्रे मार्गनेविषे सापेक्षताएकरी जोजन करवु ते अयोग्य कहेवाय नही ; त्यारे सापेक्षताएकरी उपकरण धारण करवामां शु अयोग्यता ठे ॥ ३७ ॥

ए पसुवगरणेणं पच्चस्काणस्स दव्वउं जंगो ॥ इयकथ
णावि विहवा जोवणमिव णिप्फला एअ्या ॥ ३८ ॥

व्या० - जो एम कहेशो के, उपकरण जे ठे ते जावथी तो मूर्त्तरहित ठे पण इव्ययकी परिग्रहरूप ठे. तेथी पञ्चखाणनो जंग थायठे. केमके इव्य, क्षेत्र, काल तथा जाव ए चार प्रकारे जे पञ्चस्काण ठे तेमानो प्रथम इव्यपञ्चस्काण उपकरण ठतां संजवे नही एवी जे अध्यात्मनी कल्पना ठे ते विधवायीवननी पठे निष्फल ठे. केमके, इव्यादिक चार प्रकारे सर्व मूर्त्तानो जे त्याग करवो तेज सिद्धांतोनो परमार्थ ठे. एम जो न मानीए तो शरीर पण इव्यपरिग्रह ठे, तेनो त्याग केम थाय । अने पञ्चस्काणना जे चार प्रकार कहा ठे ते तो सर्व जाव पञ्चखाणनो विस्तार ठे, एम जाणवु. यत “अपरिगृह्णित्वा सुते, तिजाय मुष्ठा प रिगृह्णोनिमठ, सवहवेसु एसा, कायवा सुत्तसप्रावो,” इति विशेषावश्यके. ॥३०॥

सिद्धंत सिद्धधरणं उवगरण त मुणीण सुहकरणं ॥

अह होइ पावहरणं इय अम्हं विति आयरिया ॥३१॥

व्या० - एवीरीते सिद्धांतनेविषे उपकरण धारण करवानुं कहु ठे, तेजयणाएकरी राख्याथी यतिने सुखकारक थाय ठे, तथा पापतुं हरण करेठे एम उत्तराध्ययन बृहहृत्तिप्रमुखनेविषे अमारा पूर्वाचार्ये कहु ठे, ते अवश्य मान्य करवु जोये ॥३१॥

पुढा दिअंवरणं केवलमश्रुपिआण उवहासो ॥

अम्हाणं पुण दूहइ दोहू विवहि आरवावारो ॥ ४० ॥

व्या० - आग्रंथनेविषे दिगंबरीओए जे प्रश्न कखां ठे, तथा अध्यात्मीओए जे हासीनां वचनो कहांठे, ए बन्नेनो अमारे प्रतिकार करवानो अधिकार ठे. एवीरीते धर्मोपकरण तथा जावअध्यात्म ए वन्नेतुं पोतपोतामां अविरोधपणुं वताव्युं ॥४०॥

उ०.- अध्यात्मनी प्राप्ति केम थाय ते कहेठे -

पंच समिठ तिगुत्तो सुविहिय ववहार किरिअ परिक

म्मो ॥ पावइ परमश्रुप्यं साहू विजिइदिअपसरु ॥ ४१ ॥

व्या० - जेपांच समिति तथात्रणश्रुतिए करि सहित होय, आलय, विहार, जापा, तथा विनयप्रमुख विविधप्रकारे क्रिया पालतो होय, तथा इडियो नीति होय, ते साधुने उत्कृष्ट अध्यात्मनी प्राप्ति थाय ठे ॥ ४१ ॥

लुणइ वसं किरिय जो खलु आहच्च जाव कहणेण ॥

सोहणेइ बोहिवीअं नम्मगगपरुवणं कानुं ॥ ४२ ॥

व्या०.— कोई एम कहे के, व्यवहाररूप बाह्य क्रियाथी अर्थे सिद्ध थाय एवो नियम नथी; केमके, क्रिया कखाविना जरत चक्रवर्तिने काच चुवनमां अनित्य जावना जावतां केवल ज्ञान-उत्पन्न थयुं अने बाह्य क्रिया करतां. रौंइ ध्यानना योगे प्रसन्नचइ अशुन प्रकृति बाधि लींथी माटे व्यवहार क्रिया करवी नही, किंतु निश्चय क्रियानो अंगीकार करवो. एम कहेनारा उन्मार्गनी प्ररूपणा करीने पोताना बोधबीजनो नाश करेते. माटे ते वचन मान्य करवां नही केमके, जरता विकतुं स्वरूप कदाचित्त जावमां कहेवाय एटले एवु कदाचित्तज बनेते, पण नियमथी एमज थायते एतुं कोईनाथी कहेवाय नही. अने व्यवहार पंथमां तो व्यवहारक्रियाविना निश्चय क्रिया संनवेज नही अने ए कारण माटे एक निश्चय अंगीकार करिने क्रिया भूकीदेवी नही किंतु बने अवश्य करवी: ॥ ४१ ॥

सवं सद्भावसजं णिष्ठं पत्रपरकयं च व्यवहारा ॥ ए
गंते मिष्ठं उन्नय एयमयं पुण वयाणं ॥ ४३ ॥

व्या०.— निश्चयनयनी रीतिए सर्व वस्तु स्वजावे उत्पन्न थायते, विशिष्ट वस्तु परिणामने स्वजाव कहेते. ज्यारे बीजने अंकुरपणे उत्पन्न थवानो परिणाम थायते, त्यारे बीजपर्याय टलीने अंकुरपर्याय उत्पन्न थायते. पण तेने बीजा कारणनी अपेक्षा होती नथी. अहीं कोई आशंका करे के, जो बीजा कारणनी अपेक्षा न होय तो कोठामां पडेला बीजनो केम अंकुररूपे परिणाम थतो नथी? एनो जवाब:— कोठामा पडेला बीजने अंकुररूप परिणाम थवानां बीजां कारणो जोयेते, माटे व्यवहारनय पण अंगीकार करवो जोये ते. तेने सामग्री कहेते, ते सामग्री मख्याविना बीजनो अंकुररूपे परिणाम थाय नही. किंतु सामग्रीना योगे ते परिणाम थाय ते. कोई आशंका करे के जो सामग्रीथीज कार्यनी उत्पत्ति थती होय तो तेने परिणाम एतुं नाम राखवातुं कारण खु? किंतु सामग्रीथी कार्यनी उत्पत्ति थायते, एवो अंगीकार करवो जोइये. एनो जवाब के, सामग्रीथी कार्यनी उत्पत्ति थायते एम मानिये तो व्यवहारनय सिद्ध थाय पण निश्चयनय उमी जाय तेथी एकांतपणुं थाय ते मिष्यात्व कहेवाय. माटे बने नयतुं मत प्रमाणनूत मानतुं. जो एकलो निश्चय नय अंगीकार करिये ने व्यवहारनय अंगीकार नही करिये तो सामग्री थकी परिणामविज्ञेपनी उत्पत्ति मनाय नही, अने एकज वस्तु कारण तथा अकारण ए बने जावे कहेवाइ त्यारे

अकारण वस्तुथी परिणामरूप कार्यनी उत्पत्तिनो संज्ञव केम थेशे. कार्यनी उत्पत्ति तो कारणथी थायठे पण अकारणथी थाय नही, इत्यादिके सूक्ष्म विचार कखाथी बन्ने पद्द अंगीकार करवा योग्य ठे एवं सहज जणाई आवशे ॥ ४३ ॥

अप्रंतर वक्ष्णाणं बलिजावलितणंति जइ बुद्धि ॥ नणु कयरं अबलतं वेचित्तंवा विवेसम्म ॥ ४४ ॥ णिप्पतीव फलठं अणिचय जोगो फलेण वा सिद्धं ॥ पढमे समसावग्गी वि ति ए वावार वेसम्मं ॥ ४५ ॥ तति एदोण विसमया सनुव पस्को पुणो असिद्धोति ॥ तेण समावेस्काणं दोष् विसमयत्ति वडुठिई ॥ ४६ ॥

व्या० - कोई कहे के, कर्मरूप अतरग हेतु जे ठे ते बलवाने ठे. अने उद्यम विरूप बाह्यहेतु जे ठे, तेनिबल ठे एम कहेनारा नयवादीने एम पूठवु के, कर्मरूप अतरग हेतु केवी रीते बलवाने ठे ? जो कहेशे के एक जातनो उद्यम करनारा पुरुषोने कर्मनी विचित्रताने लीधे सुखडु खनी अधिक न्यूनता दीशेठे, तेथी कर्मरूप अतर हेतुनुं बल सिद्ध थायठे तो ते कर्म शायी थया ठे ? एनो विचार कखाथी पूर्व नवना उद्यमथी थयाठे एम ठरशे एथी उद्यमनी विचित्रताने लीधेज कर्मनी विचित्रता ठे ॥ ४४ ॥ जो कहेशे के, सुखना कारण ठता पण अशातावेदननीयकर्मना उदये जीवने डु ख ऊपजेठे, ए कर्मनु बलवतपणु जाणवु, अही दृष्टात एके, जेम कोइक मनुष्यने दूधना पानथी पण डु ख थायठे. ए वचनपण समर्थ नथी अहीं पण जवातरना उद्यमनी अपेक्षा ठे, केमके, दुग्धपानादिके करी पण पितादिकना योगे तिकरसादिकनुं उद्योयन थयाथी डु ख ऊपजेठे. ॥ ४५ ॥ जो कहेशे के, कर्म पोताना जोगने अर्थे बाह्य कारणने लियेठे, ते बल ठे तो जन्मातरनो उद्यम जन्मातरना फलजोगने अर्थे, अतराले कारण कर्मादिक कारण उत्पन्न करेठे एम पण कहेवाई शकयठे जो कहेशे के, कचित् बाह्यकारणविना कार्यनी उत्पत्ति थायठे, पण अंतरगकारणविना कोइ कार्यनी उत्पत्ति थायज नही, ए बलजाणवुंतो एम पण संज्ञवे नही, केमके, साक्षात् अथवा बाह्यकारणथीज कार्यनी उत्पत्ति थायठे, ते विना कार्य थायज नही किंवहुना कालादिक बाह्य कारणविना कोई कार्यनी उत्पत्तिज थती नथी माटे परमार्थताए बाह्य तथा अतरग ए बन्नेकारण सरखांज ठे ए वस्तुस्थिति कहेता वे नयने अनुरोधे प्रमाणमार्ग ठे ॥ ४६ ॥

अ० निश्चयनयनुं मत कहे ठे -

णिञ्चिय उंसकहंचिय संव णो परकयं ह्वइ वडुं ॥

परिणामा वंऊत्ता णयवंजं दाण हरणाई ॥ ४७ ॥

व्या०.— निश्चयनयथी सर्व वस्तु आत्मपरिणामथी उत्पन्न थायठे ; परंतु परथी परवस्तुनी उत्पत्ति थती नथी केवल पुण्य पापकर्मना विपाकने अवसरे पात्रे आवेला जे अंगना सर्पादिक बाह्य अर्थे ते निमित्त मात्र ठे तेने व्यवहार वइ मूढ जीव कारण करी माने ठे. व्यवहारवादी कहेठे के, ज्यारे परकारणत्व नथी, ल्यारे साधुने दान दीधार्थी शुचफल अने परइव्यनुं हरण कखाथी अशुच फल केम थायठे ? निश्चयवादी समाधान करे ठे के, निर्दोष आहार साधुने देतां ते देनराना जे शुच परिणाम होयठे, तेथी शुचफल थायठे, परंतु अन्नादिक पुज्जरूप होवाथी, तेथी फल थतु नथी. केमके, पुज्ज इव्यथकी पुज्ज परिणाम थाय ठे, परंतु आत्मपरिणाम नथी थतो. तेमज परइव्यनुं हरण कखाथी जे अशुच फल थायठे, ते पण आत्माना अशुच परिणामे करी थाय ठे, परंतु इव्यरूप पु ज्ज थकी नथी थतु. ॥ ४७ ॥

अ०.— निश्चय थकी दान पण आत्मपरिणामरूपठे, पुज्ज परिणामरूप नथी एम कहेठे:-

दितो वहरंतो वा णय किचि परस्स देइ अवहरई ॥

देइ सुहं परिणामं हरइ वत्तं अप्पणोचेव ॥ ४८ ॥

व्या०.— निश्चयथकी तो साधुने निर्दोष आहार देता तथा परइव्यनुं हरण क रतां ते दान देनार तथा इव्य हरण करनारनेविपे काई देतुं, तथा जेतुं बन्धुज नथी. कोई कोईने दान देतो नथी, तथा कोई कोईनुं इव्य हरण करतो नथी. साधुने आहारादिकनुं दान देता देनारो पोते पोतानेज परानुग्रह बुद्धिरूप शुचप रिणाम दियेठे, तथा परंतु इव्य हरण करतां ते हरण करनारो जीव घात बु द्धि करी पोतेज पोताना शुच परिणामनुं हरण करेठे. परंतु परनेविपे काई दे तुं जेतुं संजवे नही ॥ ४८ ॥

णय धम्माव सुहं वा परस्स देयं णया विहरणिज्जं ॥

कयणासा कयज्जोग, प्पमुहा दोसा फुमाइ हरा ॥ ४९ ॥

व्या०.— जो परआत्मा परने देतो होय तो पोतानो धर्म तथा पोतानुं सुख बीजाने देवाई शकाय ठे, अने जो परनो आत्मा परंतु हरण करतो होय तो

बीजानो धर्म तथा बीजानुं सुख पोते जेवाई शकायठे ए बने पद्ममा रुतनाश
अने अरुतागम दोष प्राप्त थायठे; केमके, जो पोतानो धर्म तथा पोतानुं सुख
बीजाने देवाई शकातु होय तो पोते करेला रुतनो नाश थई गयो कहेवाय, अ
ने जेनारने अरुतनो आगम थयो कहेवाय केमके, तेने नकरेलो धर्म तथा ते
नुं फल जे सुख, तेनी प्राप्ति थायठे, तथा करेलो अधर्म तथा तेहना फलनो नाश
थायठे, ते रुतनाश कहेवाय ठे तेमज बीजानो धर्म तथा बीजानुं सुख पोताथ
की जेवाई शकातु होय तो तेणे करेला रुतनो नाश थई गयो कहेवाय, अने पोताने
अरुतनो आगम थयो कहेवाय, केमके, पोताने नही करेलो धर्म तथा तेना फ
लनी प्राप्ति थायठे, तथा करेलो अधर्म तथा तेना फलनो नाश थायठे, ते रुत
नाश कहेवाय ठे ॥ ४९ ॥

नत्ताइ पोग्गलाणवि णं दाण हरणाइ होइ जीवस्स ॥
जइ तं संचिय दुज्जा तो दिज्जा वा अवहरिज्जा ॥ ५० ॥

व्या०—नक्तप्रमुख पुज्जलनुं देवु तथा जेवु जीवनेविषे थाय नही, केमके,
जे वस्तु पोतानी होय तेनुं देवुं तथा जेवुं थायठे, परनी वस्तुनुं जेवु देवुं थतु न
थी, ने परवस्तुनुं जेवुं देवु तो प्रत्यक्ष करिये ठेये ते केम बने? ज्यारे पुज्जल इव्य
आपणुं नथी ल्यारे जेवु देवु केम कराय ठे? ॥ ५० ॥

जोगवसेणुवणीआ इत्ताणिठा य पोग्गला जेहु ॥
अस्साणे जीवाठ जीवो अस्सो अतोहितो ॥ ५१ ॥

व्या०—नामकर्मना परिणाम जे मन वचन तथा कायना योग ठे, तेना व
शे पुज्जलनुं ग्रहण थायठे, जेम के, सुगंध तथा दुर्गंधनुं ग्रहण करता काय यो
गना वशेकरी पुज्जलनु ग्रहण थायठे; ते आत्मतत्त्वना ज्ञानथकी जिवने रागद्वेपना
कारण थायठे, पण ते आत्माथकी अन्य ठे अने आत्मा तेथकी अन्य ठे केम
के, पुज्जल ग्रहण गुण ठे, अने आत्मा उपयोग गुण ठे. ॥ ५१ ॥

तम्हास परिविज्जागो पोग्गलदव्वंमि णत्ति णित्थयउं ॥
जोगाजोगविसेसो ववहाराचेव सपसस्तं ॥ ५२ ॥

व्या०—माटे निश्चयनथकी एटलो विशेष ठे के, जे आपणने जोग आवेठे,
तेमानु न्यायोपार्जित वित्त होय ते आपणुं, ने जे परने जोग आवे ते परनुं जाणवुं. ॥ ५२ ॥



पुष्पपयडीण उदये जोगो जोगांतरायं विलक्षणं ॥ ज
इ णिअचित्तेणंचिअ, तो जोगो किए कि विणाणं ॥ ५३॥

व्या० -- सातावेदनीयप्रमुख पुण्यप्रकृतीना उदयथी जोगांतरायकर्मनो विल
य थया पढी पण जो जीवने जोग थता होय तो रूपणने पण जोगनी प्राप्ति थ
वी जोइये, तेम तो नथी थतु, केमके, रूपणने पण जानांतरायकर्मना ह्योप
शमथकी इव्यनी प्राप्ति तो थायठे, परंतु जोगांतराय कर्मना वशथी जोगवी शकतो
नथी. माटे जे आपणने जोगवायोग्य होय ते स्वइव्य कहेवाय, ने बीजुं बधुं परइ
व्य ठे एम जाणतुं एवी रीते व्यवहार नयना मते पण एकांत नथी, माटे ए सर्व
पुज्जल इव्यने परकरी जाणतुं जोइये ॥ ५३ ॥

अ० आ सर्व पुज्जल इव्य परकीय ठे एम जे जाणे नही तेने आत्मस्वजावनी
प्राप्ति न थाय ते कहे ठे.

जो परदवमि पुणो करेइ मूढो ममत्त संकण्यो ॥ सो
कहआय सहायं गिओ विसएसु उवलहइ ॥ ५४ ॥

व्या० -- व्यवहारमूढ जीव परइव्यनी उपर ममत्वसंकल्प करेठे, ते विपय
लोलुप थयो थको आत्मस्वजावने पामतो नथी केमके, शरीरादिकनेविपे 'हुं मा
तेजो हुं, हुं दूबजो हुं, हुं गोरो हुं तथा हुं कालो हुं' इत्यादिक अहंकार जीवने
उत्पन्न थायठे, तथा 'मारुं शरीर, मारुं कुटुंब, इत्यादिक ममकार उत्पन्न थायठे,
तेथी विपयोनेविपे दृढप्रवृत्ति थायठे, अने विपयना अन्यासे तेथोनेविपे दृढ जाव
थायठे, एवी परंपराए करी अज्ञाननी वृद्धि थई गयाथी आत्मज्ञान केम थाय ॥५४॥

णाहं होमि परेसिं ए मे परे एत्ति मश्मिर्हकिची ॥
इय अप्पजावणाए रागं होसा विलज्जंति ॥ ५५ ॥

व्या० -- हुं बीजा कोईनो संबंधी नथी, तेम मारो कोई बीजो संबंधी नथी, आ
जगतनेविपे मारुं काई नथी, केमके, परइव्यतुं अस्तित्व जिन्न ठे, अने मारा आ
त्मइव्यतुं अस्तित्व जिन्न ठे, शरीर कुटुंबादिक कर्मना योगे संयोग लक्षण जावठे,
तेमां मारुं काई लागतुं वलगतु नथी, केमके, तेथोनी वियोग पण थायठे, जेनो
कोई काले संयोग तथा कोई काले वियोग थतो होय ते पोतातुं इव्य कहेवाय नही
जेनो कोई काले वियोग थाय नही ते पोतातुं इव्य कहेवाय ठे, एवो तो आत्मस्व

जाव ठे, जेनो आत्माथी वियोग थतो नथी, जेम ज्ञान दर्शननादिक स्वभावोउं
कोई कालें आत्माथी वियोग थतो नथी. एवी रीते शास्त्रोक्तमर्यादाए करी आ
त्मजावना कखाथी राग द्वेषनो नाश थाय ठे ॥ ५५ ॥

तो परिणामाउच्चिय बंधो मोस्को व णिच्चयणयस्स ॥
एंगितिया अणच्चं तिया पुणो बाहिरो जोगो ॥ ५६ ॥

व्या० -माटे जीवने बंध अथवामोहू निश्चयनयथी आत्मपरिणामथीज थाय
ठे अज्ञानरूप परिणामथकी बंध थायठे, अने आत्मज्ञानरूप परिणामथी मोहू
थायठे. जेम हिमथकी थएली जे शीतनी वेदना ते अग्निना तापथकी निवृत्त थाय
ठे, तेम आत्माना अज्ञानथकी थएलो जे कर्मबंध, ते आत्मज्ञानथकी निवृत्त था
यठे केमके, एम सिद्धांतोमा पण कह्यु ठे के, तपथकी दुश्चीण कर्मनो ह्य थायठे
ते पण ज्ञानना संयोगथीज फल थायठे केमके, अज्ञानी कोमाकोडी वर्षेकरी जे
कर्मनो ह्य करे, ते कर्मनो ह्य ज्ञानी एक उच्चासमां करेठे बाह्य योग प्राणाति
पातादिक, तथा क्रियानुष्ठानादिक एकांतिक नथी, तेम आत्यंतिक पण नथी के
मके, बाह्य हिसाविना मनना क्लिष्ट परिणामे करी, तंडुलमड्ड, सातमी नरक पृथ्वी
नेविषे उत्पन्न थायठे अने अप्रमत्त यतिने जयणाए चालतां अनानोगे जीवथा
थथी पण ते प्रत्ययिक कर्मनो बंध थतो नथी. तथाविध क्रियानुष्ठानविना पण
केवल ज्ञान उत्पन्न थाय ठे ने अजव्य जीव यतीने लिंगे उत्कृष्ट बाह्य क्रिया पा
ले ठे तेना बडे ते नवमा अवेयकसुधी जायठे. तो पण छुट्ट परिणामविना संसारनो
पार पामता नथी ॥५६॥

सिद्धी णिच्चयउच्चिय दोहं संजोगउ अवेयत्तं ॥ क

उड कडई दोह्वि उवउगो तुल्लवंचेव ॥ ५७ ॥

व्या० - संसारपार गमन सिद्धलक्षण निश्चय क्रियाथीज थायठे: एमां पण आ
टली विशेषता ठे के, धणाने व्यवहारथकीज निश्चय आवेठे अने कोइक नरतादि
कने पूर्व चारित्रान्यासेकरी तथा नध्यत्वना परिपाकेकरी सहजे पण थायठे. क
पणुं कहेतां योग्यपणु ते निश्चय तथा व्यवहार ए बन्नेना संयोग थकीज थायठे.
एविषे सिद्धात्तमा चार जांगा कहा ठे. पहेलो जे रूपुं साहं नही ने ठाप पण सा
रीनही, तेनी पठे ए जांगो चरकपरिवाजकप्रमुखनेविषे ठे. केमके, ते रूपाना

जेवो शुद्ध परिणाम नथी, तथा ठापना जेवो वेप पण नथी माटे तेअओना अर्थ नी सिद्धि यती नथी, ने ते वदना करवायोग्य पण नथी बीजो रूपुं खोदुं, होय ने ठाप खरी होय ए नागो, पास्त्या, उसन्ना, प्रमुखनेविपे थाय ठे, प्रमुख श देकरी दिगंबरदिक पण लेवा केमके, तेअओने रूपाना जेवो शुद्ध परिणाम नथी मात्र ठापनी पठे वेप तेवो ठे पण परिणामविना तेअओना अर्थनी सिद्धि यती नथी वेप तेवोठे माटे जहांसुधी दोष जाण्या न होय तहांसुधी वदना करवायोग्यठे, पर तु दोष जाण्या पठी जो वदना करिये तो माहा दोष लागे. यत “जहू वेल वगलिं गं, जाणं तस्स एमउ धुव दोसो, णिदंडसत्तिणाऊ, ए वदमाणे धुवदोसो” इत्या वश्यके. एनो अर्थ - जेम कोइ जाडे यतिनो वेप लीधो होय तेने जाणीने वदना करतां निश्चयेकरी दोष लागेठे तिम निर्दंडस जाणी वेप मात्र जोइने वदना करतां धुव दोष लागे त्रीजो रूपुं चोखुं होय पण ठाप खरी न होय ए नागो प्रत्येक बुधने लागु थायठे. केमके, तेअओ अन्यलिगे पण होय तथापि तेअओने रूपानी पठे नावचारि त्रतो ठे, तेथी पोताना आत्मानो अर्थ तो सिद्ध करेठे, परतु साधुना पथ्यविना वदना करवा योग्य नथी चोथो नागो रूपुं पण चोखुं तथा ठाप पण चोखी होय तेनी पठे सर्व शुद्ध जाणवु जे महानुभाव आलय विहारादिक सर्व शुद्ध. यतिनी समाचारी पाळे, अने विशुद्ध चारित्रवत होय, एने रूपानी पठे शुद्ध परिणाम ठे, तेथी आत्मानो अर्थ सिद्ध करेठे, तथा साधुनुं पथ्य ठे, माटे वदवा योग्य तथा पूजवायोग्य पण ठे. एवीरीते एवा ठेकाणे शुद्ध परिणामरूप निश्चय बलवत ठे साधु वेपादिरूप उपचरिता सद्गत व्यवहार ते निर्बलठे. तथाकोईक ठेकाणे व्यवहार अने निश्चय ए वनेनो सरखो उपयोग ठे. अहीं ज्ञान अने क्रियातुं उदाहरण लेवु ज्ञाननयनी रीतिए ग्राम कखु ठे के ज्ञानविना क्रियामात्रथी फलनी सिद्धि यती नथी केमके, मिथ्याज्ञानेकरी सीपनेविपे रूपानी बुद्धि प्रवर्त्ते ठे ने तेनी प्राप्ति तो यती नथी माटे मिथ्याज्ञानजन्य जे क्रिया, तेथी फलनी प्राप्ति यती नथी, किंतु सत्यज्ञानजन्यक्रियाथी फलनी प्राप्ति थायठे. परतु क्रिया तो ज्ञानेकरीनेज थायठे, तेमां मिथ्याज्ञानजन्यक्रिया निष्फळ थायठे ने सत्य ज्ञानजन्यक्रिया सफल थायठे, एवीरीते क्रियातुं कारण ज्ञान होवाथी प्रधान ठे. अने ज्ञानतुं कार्य क्रिया होवाथी अप्रधान ठे, ते मज क्रियानयनी अपेक्षाए एम कखुठे - ज्ञानजन्यक्रियाए करीने संपादन करेखुं जे फल, ते कोई कारणने लीधे व्हीण थई जाय तो ते पावुं क्रियाथी प्राप्त थायठे, माटे क्रिया प्रधान ठे. अने ज्ञान अप्रधान ठे. जुवो के, ज्ञानवान ठता

क्रिया न करे तो ते ज्ञानमात्रथकी फलनी प्राप्ति घती नथी. अहीं दृष्टांतो कहे ठे - जेम कोई पुरुपने मार्गनु ज्ञान सारी पठे होय, पण जो चलनक्रिया न करे तो वांछित नगर प्रत्ये पहोची शके नही, जेम कोई पुरुपने नृत्यकलातुं सारुं ज्ञान होय पण जो नृत्य अजिनय क्रिया न करे तो जोनारा लोकतुं मनरजन करी शके नही, तथा तेने काई इव्यनी प्राप्ति थाय नही तथा जेम कोई पुरुप तरी जाणतो होय एटले जलतरणज्ञानवान होय, पण जो हस्तपादचलनरूपक्रिया न करे तो इच्छितस्थले न पोहोचता वझे बूडी मरे, एवी रीते ज्ञाननय तथा क्रियानय नो परस्पर विवाद ठे, तेने एककोरे मूकीने मात्र साराशनो विचार जो कखो होय तो परमार्थदृष्टिए फलसिद्धिने विपे बन्ने समान बलवत ठे. केमके, शैलेशीश्रवस्थानेविपे केवलज्ञानरूप ज्ञान, तथा संवररूप क्रिया ए बन्ने योगथी मुक्ति थायठे पण ए बन्नेमातुं कोई एक न होय तो मुक्ति थाय नही, ए प्रमाण पदु ठे ॥ ५७ ॥

अ० निश्चयनयनी अपेक्षाए कहेठे -

तुल्लतमवेस्काए णियमासमुदाय जोगमहि गिच्च ॥

किरिञ्चा विसस्सए पुण नाणाउ सुए जउ नणिअं ॥ ५८ ॥

जम्हा दंसण नाणं संपुन्नफलं न दिति पत्तेअं ॥ चा

रित्तजुञ्चा दितिहु विसस्सए तेण चारित्तं ॥ ५९ ॥

व्या० - वद्यपि कार्य करवानी अपेक्षाए ज्ञान अने क्रिया ए बन्नेतुं सरखुं बलठे, तथापि ज्ञान करता क्रियाने आटली विशेषता ठे - ज्यारे शुद्धक्रिया होयठे त्यारे पटादिगुणस्थानके नियमे शुद्धज्ञान होयठे. पण ज्यारे शुद्धज्ञान होय, त्यारे शुद्धक्रियानो नियम नथी केमके, चतुर्थगुणस्थानके सम्यक्तना प्रतापे करी शुद्ध ज्ञान तो होयठे, परंतु अविरति होवाने लीधे शुद्धक्रिया होती नथी एविपे आवश्यक निर्युक्तिमा कहुठे के, जेमाटे दर्शन तथा ज्ञान ए प्रत्ये के संपूर्ण फल दई शकता नथी, पण ज्यारे चारित्रनेविपे एकठा मलेठे. त्यारे संपूर्ण फल दियेठे तेमाटे दर्शन तथा ज्ञान करतां चारित्रश्रेष्ठ ठे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

एवं व्यवहारो बलवंतो णिउउ नणेयवो ॥ ६० ॥

मयं व्यवहारो सवमयं णिउउ वत्ति ॥ ६० ॥

व्या० - एवी रीते व्यवहारथकी निश्चयतुं बल अधिक कहुं तथा आवीरीते पण निश्चयनी विशेषता ठे - जे एकनयतुं मत ते व्यवहार, अने सर्वनयतुं मत

ते निश्चय कहिये, यथा ज्ञतपदार्थनुं जे कथन ते निश्चयनय कहेवाय ठे, ने ए ज्ञता र्थनय पण कहेवाय ठे, निश्चयनयनो विषय जाव जे ठे ते सर्व समान ठे. यत “सव्वणया जावमिहंति” इति विशेषावश्यकं ॥ ६० ॥

अ० एवुंनिश्चयनयनुंमत सांजलीने सिंहावलोकनन्याये व्यवहारवादी बोले ठे -

अहिंआ जइ तुह किरिआ अहिंआ नाणं वि तस्स हेउत्ति ॥

कारणगुणाणुरूवा कज्जगुणाणेषु विवरीआ ॥ ६१ ॥

व्या०.- पूर्व कहेली रीति ए ज्यारे तुं क्रियाने अधिक माने ठे, त्यारे ज्ञानने पण अधिक माननुं जोयेठे. केमके, ज्ञान क्रियानुं कारण ठे कारणना गुण जेवाज कार्थना गुण होयठे, तेथी विपरीत होता नथी जेमाटे ज्ञान क्रियानुं कारण ठे, तेमाटे तेना गुणे करीने क्रियाने कार्य पणानी प्रधानता ठे, तेथी ज्ञान अत्यंत प्रधान ठे, जो कदेशोके, मोक्षरूप कार्य क्रियायकी थायठे. माटे क्रिया अधिक ठे, तो तेम पण संजवे नही. केमके, ज्यारे क्रिया ज्ञाननुं कार्य ठे. त्यारे क्रियानुं कार्य जे मोक्ष, तेपण परंपरा ए ज्ञाननुंज कार्य जाणवु यत. “दासेण मे खरो कीउं, दासोवि मे खरोवि मे” एटले मारा दासे खर वेचातो लीधो, ते दास पण मारो अने खर पण मारो ठे; एम सिंहांतोक्तन्यायथी जाणी लेवु ॥ ६१ ॥

अहं जहं सव्व णयमयं वणिंठिउं इगमयं च ववहारो ॥

सोसा सयलादेसा विगलादेसा कहं होऊं ॥ ६२ ॥

व्या० पूर्वे कह्या प्रमाणे निश्चयनय जे ठे ते सर्व नयनुं मत ठे, जो एम होय तो ते सर्व जांगानुं ग्रहण करनार सकलादेश प्रमाणरूप मानवो जोइसो. त्यारे ते नयरूप विकलादेश केम मानसो ? ॥ ६२ ॥

अ० एवीरीते व्यवहार तथा निश्चय ए वनेनय परस्पर वाद करता जोईने मध्यस्थपणे प्रमाणवादी कहेठे -

मुक्कामुक्कविजागो इज्जामेत्तेण एत्ति एगंतो ॥ जइ

अत्ति तो विनाणे चरणं सारोत्ति तं मुक्कं ॥ ६३ ॥

व्या० व्यवहार तथा निश्चय एवने नयोना मुख्य तथा अमुख्य ए वे विजाग पोतपो तानी इज्जाए र्थई शकेठे, कोईक गुणने लईने निश्चयनी मुख्यता कहेवायठे, अने कोईक गुणने लईने व्यवहारनी मुख्यता कहेवायठे. परतु एथोनेविपे एकात्तपणं संज

वे नहीं, किंतु अनेकांतपणुं संनवेठे. केम के, निश्चय तथा व्यवहारना मुख्य तथा अमुख्य विजाग स्वभाविकधर्मरूप नहीं, किंतु आपेक्षिक ठे जेम आमलक बदरनी अपेक्षाए दीर्घ कहेवाय, अने घटादिकनी अपेक्षाए ह्रस्व कहेवायठे. तेम ए बने नयो एक बीजानी अपेक्षाए मुख्य तथा अमुख्य कहेवायठे, एम ठता पण जो व्यवहारनयवादी पोताना मततुं मुख्यपणुं प्रकाशवानु मानी न वाले तो तेणे वली आ युक्तियेकरीने पोताना मननु समाधान करी लेनु जोये के व्यवहारतुं जे मुख्यपणुं ठे ते मात्र कहेवानुं ठे, अने निश्चयतुं मुख्यपणुं तो कार्यनो उपयोगी ठे, केम के, सामायक आदिदर्शने चौद पूर्वपर्यंत ज्ञानतुं सार ते चारित्र कबु ठे, यत “सामाश्चमार्शत्रं, सुअनाण जाव विडुसाराउं, तस्स वि सारो चरण, स्तारो चरणस्स निवाण” इति आवश्यके ॥ ६३ ॥

सवणयमयत्तं पुण सवेसि सम्मत्तं जत्तं विसत्तं ॥

एयणिव्वयस्स तेण सयल दिसत्त मेगस्स ॥ ६४ ॥

व्या० निश्चयनयने सर्वनयमय पणुं जे पूर्वे कबु ते सर्वनय सम्मत अर्थ मानेठे तेमाटे कबु एम जाण्वाथी एकला निश्चयनयने सर्वनयसमूहरूप प्रमाणात्मक सकल देशपणुं पण दोपनु करनार अशे नहीं. ॥ ६४ ॥

जेणं सयला देसो अजेय वित्तीइ णिव्वयाधीणो ॥

तेणेव सोपमाणं ए पमाणं होइ ववहारो ॥ ६५ ॥

व्या०: जिहा एक धर्मनी धाराए सर्व धर्म जे सकलावेशनेविपे प्रतिपादन कराय ठे, तिहा अस्तित्वादिक एक धर्मनी साथे बीजा सकल धर्मोनु अनेदपणुं जे जाणुं ते निश्चयनयने आयत ठे, एवी अपेक्षाएकरी निश्चयनयने प्रमाण कह्योठे, अने व्यवहारनयने अप्रमाण कह्योठे, परतु एकात निश्चयनय प्रमाण कह्यो नहीं ॥ ६५ ॥

जम एवयारोवि चल कासइ ऐगतिअं ह्वे तंपि ॥ एग

स्स मुक्कजावे णियमा अवररोवयारोत्ति ॥ ६६ ॥

व्या० कोई एम कहेठे के निश्चयनय परमार्थग्राहीठे तेमा कोई उपचार नहीं होवाथी ते वलवानठे, अने व्यवहार नय परमार्थग्राही नहीं, तेमां घणा उपचार होवाथी ते निर्बलठे, एण एकात नहीं, केमके, बनेनय वस्तुग्राही ठे, व्यवहारनय अंशग्राही ठे, तेमां ज्यारे निश्चयनयनी मुख्यता विवक्षिण्ये व्यारेनिश्च

यनय पण उपचारसहित थायठे, इहां कोई विशेषता नथी, यत "अर्पितानर्पितसिद्धे तत्त्वार्थे" शब्देकरी नयनी प्रधानतानी जे विवक्षा करवी ते अर्पित कहिये, अने नयांतरनी अपेक्षाए तेनी अप्रधानतानी जे विवक्षा करवी ते अनर्पित कहिये, एवन्ने प्रकारनी विवक्षायी जे पदार्थनी सिद्धि थायठे, ते तत्त्वार्थ सिद्धि कह्वायठे ॥ ६६ ॥

णिञ्चयणयस्स विसयं जावंचिय जे पमाण माहंसु ॥

तेसि विणोव हेउं कङ्कप्पत्तीइ कामेरा ॥ ६७ ॥

व्या०: कोईक धाम मानेठे के, निश्चयनयनो विषय जे जाव ठे तेज प्रमाण ठे, तो ते जावनो हेतु इच्च ठे, इच्चविना जावनी उत्पत्ति थाय नही जो इच्चविना जावनी उत्पत्ति अंगीकार करीये तो मर्यादा रहे नही अने कारणविना कार्यनी उत्पत्ति यती नथी एवो नियम ठे तेनो जंग अशो! जो एम कहेगो के, इच्च क्रिया संसारमां अनंतवार प्राप्त थएली ठे, माटे ते अप्रधान ठे, तो जाव पण अप्रशस्त अनंतवार प्राप्त थएजो ठे ते केम प्रधान कह्वाय ? जो कहेगो के, शुद्ध जाव अपूर्व ठे, तो शुद्ध इच्च पण अपूर्वज ठे, ते शासारु नही मानवुं जोये ! ॥ ६७ ॥

खाउवसमिगजावे सुओ हेऊ सुहस्स खइअस्स ॥ त

प्रावेण कया पुण किरिआ तप्राववुद्धि करी ॥ ६८ ॥

व्या०: ज्ञायोपशमिक जावे कीधेली जे क्रिया तेज ज्ञायोपशमिक जावनीवृद्धि करनारी ठे; माटे शुद्धजावथी क्रिया अवश्य करवी योग्य ठे, अने तेम न कखाथी जावनी हाणी थई जाय ॥ ६८ ॥

धिइ सद्धा सुह विविइस विष्णुत्ती तत्त धम्म जोणित्ती ॥

तल्लद्धधम्मजावा वहुइं जावतत्तणं ततो ॥ ६९ ॥

एवं पवहुंजावो कमेण गुणठाणसिद्धिमारुहिय ॥

पक्कीणघाइकम्मो कयकिच्चो केवली होइ ॥ ७० ॥

व्या०: धृति, अक्षा, शुश्रूपा, विविद्धिपा, तथा विज्ञप्ति ए पाच पदार्थ धर्मेनां कारण ठे, एविषे पतंजलिप्रमुख ग्रंथोमा पण कहेलुं ठे, उद्वेगादिनो त्याग करीने चित्त स्वस्थ करवु ते धृति कहिये, चित्त स्वस्थ थयाथी मार्गानुसारिणी रुचि उत्पन्न थाय ठे ते अक्षा कहिये, मार्गानुसारिणी बुद्धि थयाथी ज्ञायोपशम जाव

उत्पन्न थायठे, ल्यारे जेम सर्प बाहेर ध्यामो तिडो चाले पण ज्यारे राफडांमां पे सेठे ल्यारे पासरो थई जायठे तेम श्रवणादिकनेविषे बुद्धिनी जे सरला थवी ते शुभ्रू पा कहिये, श्रवणादिक कखाथी जेम जेम बुद्धि शुद्ध थती जायठे, तेम तेम आत्मतत्वचितननी उत्पत्ति थती जायठे ते विविदिषा कहिये, आत्मतत्वचितनथ की शुभ्रूपा जे ठे ते श्रवणादिगुणरूप थायठे, तेविना ते आजासमात्र कहेवाय; पण गुण कहेवाय नही, आत्मतत्वचितन वडे श्रवणादिक गुण उत्पन्न थयाथी सम्यक्तनी उत्पत्ति थायठे, ते सम्यक्तना पाच लिंग शम, सवेग, निर्वेद, अनुकंपा, तथा आस्तिक्यता, एवो आत्मानो जे शुन परिणाम तेने परमतनेविषे विज्ञप्ति कहेठे, आत्माना शुनपरिणामथी धर्मेनो जाव उत्पन्न थायठे, तेणेकरी ज्ञावातरनी वृद्धि थायठे, एम उत्तरोत्तर, जाववृद्धिकरी अवरिति देशविरल्यादिक गुणस्थान श्रेणीचढी घातीकर्मनो कृत्यकरी कृतकृत्य केवलीथाय एनो सारी रीते विचार करी जुवो एटजे सहज जणाईंथावेठे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अ० एवु युक्तिपूर्वक वचन सांजलीने पीडितकर्ण थयो थको परवादी बोव्यो -

नणु जय सो कयकिञ्चो अघारसदोसविरहित देवो ॥

ता बुहतह्ला जावा जुळइ कम्मा कवलज्जोर्जी ॥ ७१ ॥

व्या० देव तो अघारदोपरहित ठे, अने कृतकृत्य ठे, ए सर्व मान्यठे. ने तमे पण जो एमज मानता होतो तेने कवलाहार करनारो केम कहोठो? कवलाहार अंगीकार कखाथी कुधा तृपा पण अंगीकार करवा जोईशे? केम के, कुधा तृषाविना कवलाहार संजवे नही जो कुधा तृपाने पण अंगीकार करशो तो परमेश्वरने अघारदोपरहित केम कही शकशो? केम के, कुधा अने तृषा ए वे दोष तो कवलाहारना ग्रहणथी सिद्ध थायठे ल्यारे शु केवली सोलदोपरहित ठे, जो एम मानशो तो आगमवचननो अपमान थशे यत "कुत्पिपासा जरातंक, जन्मातकनयस्मया ॥ न रागद्वेषमोहाश्च, यस्यास्त स प्रकीर्त्यते." इति दिगंबरग्रंथांतरगत उपासकाध्ययने कुधा, तृपा, जरा, द्वेष, जन्म, यम, इहलोकादित्रय, अहंकार, राग, द्वेष, मोह, चिंता, अरति, निद्रा, विस्मय, विपाद, स्वेद, तथा खेद, ए अघार दोष केवलीने नथी एम कसुठे तेओमाना कुधा तथा तृपा ए वे दोष ठता कृतकृत्यता केम संजवे? माटे केवलीने जो कवलाहारी कहो तो वे दोष अंगीकार करो ॥ ७१ ॥

अ० ए आशंकाको उत्तर कहे ठेः--

तो सक्रावुत्तु जे बुहतहार्इ जिणस्स किरदोसो ॥ जइ
तं दूसेज गुणं साहावियमण्णो कि वि ॥ ७२ ॥
दूसइ अवावाहं इय जइ तुह सम्मउ तयं दोसो ॥
मणुयत्त णं वि दोसो ता सिद्धत्तस्स दूसणउ ॥ ७३ ॥

व्या० क्रुधा अने तृषा ए बे दोष अडार दोषमां गणीने, कृतकृत्य जे केवली तेनेविषे ते बे दोषनो ते जे अज्ञाव कह्यो, ते वचन ताराज मतानुयायिमां कहेता शोचाप्रद ठे, परंतु पंफितोनी पर्यदांमां शोचाने पामे नही, फितु मूय्यविना ना कहे वाय. केमके, क्रुधा अने तृषा ए बन्ने दोषमां त्यारे गणी शकाय, के ज्यारे कोई स्वाभाविकआत्माना गुणने दूषण लागतु होय; तेम तो कांई थतु नथी, केम के, ए ज्ञाव वेदनीयकर्मना करेला ठे; ते केवलज्ञानने दूषित करी न शके. के मके, केवलज्ञानने दूषण करनार ज्ञानावरणीय कर्म ठे तेम केवलदर्शनने दूषित करनारं दर्शनावरणीय कर्म ठे; तेम सम्यक्तचारित्रने दूषित करी शके नही केमके, सम्यक्तचारित्रने दूषित करनारं मोहनीयकर्म ठे. तेमज दानादिक पां च लब्धिने पण दूषित करी शके नही, केमके, लब्धिअने दूषित करनारं अंतराय कर्म ठे ए कारण माटे क्रुधा अने तृषा ए बे दोष कहेवाय नही अहिं कोई आशंका करइ के जेम क्रुधा तथा तृषावने ठद्वस्थने ईयां समिति अुतान्यासा दिरुनो जंग दीगामां आवेठे, तेम केवलीने पण चारित्रज्ञानमां प्रतिबंधरूप शा सारु न थाय? एनो उत्तर आ ठे. यद्यपि क्रुधा तथा तृषा ए बे बहिरिडिय वृत्तिनी ग्लानि करवाने लीधे एकेडिय ज्ञानादिकना विरोधी थायठे. तथापि अती डिय ज्ञाननो घात. करी शकता नथी, कोई एवी आशंका करे के, जीवनो अ व्याबाध गुण ठे. एटले निराकुलत्वरूप जे जीव, तेने दूषित करनारी क्रुधा तथा तृषा ठे. केमके, ते आकुलता परिणामरूप ठे. जे आकुलतानी क्रुधावने निवृत्ति थायठे, तेक्रुधानी परिणामक ठे. ने क्रुधा तेनो परिणाम ठे, अने जे आकुल तानी तृषावडे निवृत्ति थायठे, ते तृषानो परिणामक ठे. ने तृषा तेनो परिणाम ठे. तेने एम कहेहुं के, केवलीनो सिद्धत्व गुण ठे, तेने दूषित करनारं मनुष्यपणुं पण दोषरूप केम न कहेवाय? इत्यादिक विचार करी पोतानी कल्पना मूकीने धातिकर्मना करेला अमार दोष जेवी रीते पूर्वाचार्ये कह्याठे, तेवी रीतेज मानवा

जोइयेते, यत् “अतराया दानलाज, वीर्यजोगोपजोगगा ॥ हासोरत्यरती नीति, जुं गुप्ता शोक एव च ॥ १ ॥ कामोमिथ्यात्वमज्ञानं, निष्ठा चाविरतिसत्त्वा ॥ रागोदो पश्चनो दोषा, केपामष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥ ” ज्ञानगुणनो घात करनारुं अज्ञान, दर्शनगुणनो घात करनारी निष्ठा, सम्यक्गुणनो घात करनारुं मिथ्यात्व, चारि त्रगुणनो घात करनारां हास्य, रति, अरति, जय शोक, डुंगठा, काम, अविरति, राग, तथा द्वेष, अने दानादि लब्धिरूपवीर्यगुणना घात करनारा दानातराय, लाजांतराय, जोगातराय, उपजोगातराय, तथा वीर्यांतराय, एअडारदोष घाति कर्मना कह्याठे, परतु केवलीने घातीकर्मो नो ह्यथई जायठे, माटे ते निर्दोष क हेवायठे तेम ठता ह्युधा अने तृपाने अडारदोषोमा जे गणोठे ते युक्तायुक्त वि चार नकरता केवल स्वमतनुं पोषण करेठे, ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अहं जइ जिणस्स खइअं सुखं इअं विरुअणं तेणं ॥

तो सामसाज्जावे विसेसजुत्ता कहुं सत्ता ॥ ७४ ॥

व्या०— कोई आशका करे के, जेम केवलीने ह्यायिक ज्ञानादिक ठे, तेम ह्या यिक सुख पण ठे, तिहा इ खनो लेश पण नथी, तो ह्युधा तृपा केमलागेठे ? ॥ ७४ ॥

तो वेयणिज्जकम्मं उदयपत्तं कहुं ह्वे तस्स ॥ एय

सोपदेसउदठं समयम्मि विवागं जणणाठं ॥ ७५ ॥

व्या०— उपली आशकानु उत्तर दियेठे के, केवलीने जो ह्यायिक सुख मान ता होतो सिद्धातनेविपे केवलीने वेदनीयकर्मनो उदय कह्योठे ते शासारु न मा नवो ! अर्थात् मानवो जोईजे जेम ज्ञानावरणीयकर्मनो उदय ठता ह्यायिक ज्ञान थतु नथी, तेम वेदनीयकर्मनो उदय ठता ह्यायिक सुख पण थतु नथी, कोई शंका करेके, केवलीने एवा वेदनीयकर्मनो उदय होयठे के, जेना प्रदेश आत्मप्रदेशनी साथे मलेठे, ते स्थिति प्रमाणे रहीने ह्यीण थई जायठे. परतु के वलीने तेनी आकुलता थती नथी एतु उत्तर एके, घद्यपि एवो प्रदेशोदय अम ने पण मान्य ठे, तो केवलीने ह्यायिक सुख सजवे नही तेम ठतां अच्युञ्चयता थी अमारें कहेवु जोयेठे के, केवलीने वेदनीयकर्मनो प्रदेशोदय ठेज नही किं तु सिद्धातोमा विपाकोदय कह्योठे ॥ ७५ ॥

— आवरस्सयेणिज्जत्ती पयडिपसत्तोदठं वएसेणं ॥ ए

जइ ता सुहायाठं असुहपडिवस्सकवयणेणं ॥ ७६ ॥

व्या०.- आचर्यक निर्युक्तिनेविषे प्रकृतितो प्रशस्त उदय कह्यो ठे, तथा विंगं वरना प्रवचनसारनामक ग्रंथमां पण “ पुष्पफला अरिहंता ” इत्यादिक वचनो कह्याठे, एवी रीते असुखना प्रतिपद्द वचनथी केवलीने सुखनो विपाक ठे. ॥७६॥

अ० कोई आशंका करे के, जे कारण माटे सुखविपाक ठे, तेथीज डु खवि पाक नथी ? तेतुं समाधान करेठे. ॥ ७६ ॥

तत्तवसुत्तजणिआ एकारसहा परीसहा य जिणे ॥ तेह
वि बुद्धतह्लाई, खइअस्स सुद्धस्स पडिकूल ॥ ७७ ॥

व्या०.- अमारा श्रीनगवतीसूत्रनेविषे केवलीने अग्यार परीसह कह्याठे. तद्यथा “ एकविहवंगस्तण जंते सजोगि नवव केवलिसस कइ परीसहा पसु ता ? गोयमा, एकारस परीसहा पसुत्ता, एव पुणवेण तित्ते ” तथा वेदुने “ ए कादश जिने ” एवीरीते श्रितत्वार्थसूत्रमां अग्यार परीसह कह्याठे ; एणेकरी के वलीने रुधा तथातृपा प्राप्त थईठतां क्वाधिक सुखनी हानि थती नथी एवु ठरेठे अही उक्त “ एकादशजिने ” ए सूत्रनो अर्थ केटलाएऊ पोतातुं मत पोपण कर वाना हेतुथी एतुं करेठे के “ एकेनाधिकानदश ” एटजे एकअधिक दश न थाय ; अर्थात् अग्यार परीसह नही ए अपव्याख्यान जाणवुं, केमके, एवो समास सं नवे नही. वली केटलाएक सर्वाथिसिद्धिप्रमुख “ नसंति ” एवु बाहेरथी वाक्य लियेठे, तेतो जाणे पोतातुं उत्सूत्रनापणज प्रगट करतो होयनी ! परतु तेथोए आबो विचार करवो जोये के, परीसहनास्वामी चित्ताना अधिकारनेविषे प्रसिद्ध ठतां तेनो अजाव केम थजे ! जे धनरहित होय ते धननो स्वामी कहेवाय नही वली केटलाएकं आवीरीते व्याख्यान करेठे के, केवलीने वेदनीयकर्म होवाथी कारण कार्यापचारेकरीने अग्यार परीसह कह्याठे ए व्याख्यान पण नदीमा बूडता घास नो आश्रय लेवाजेवु ठे, केमके, स्वामित्वचिंताए उपचार संजवे नही, जो उप चार मानिये तो ठता मोहनीयकर्मना होवाथी उपशात मोहगुणस्थानकनेविषे पण बावीस परीसह कहा जोईजे, ए प्रकारे करी सूत्रना घणा अपव्याख्यानो नो त्याग करीने परमार्थनो विचार करवो जोये. ॥ ७७ ॥

अस्साय वेयणिजं बुद्धतह्लाईण कारणं जाण ॥ पळ

तिसतित्तुदय जलित्थंतरजलणदिताणं ॥ ७८ ॥

व्या० - आहार पर्याप्तिनामकर्म तथा असाता वेदनीयकर्म ए वनेना उदय

जोइयेठे, यत “अंतराया दानलान्, वीर्यजोगोपजोगगा ॥ हासोरत्यरती नीति, जु गुप्सा शोक एव च ॥ १ ॥ कामोमिष्यात्वमज्ञानं, निष्ठा चाविरतिस्तथा ॥ रागोदो पश्च नो दोषा, केपामष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥ ” ज्ञानगुणनो घात करनारं अज्ञान, दर्शनगुणनो घात करनारी निष्ठा, सम्यक्तगुणनो घात करनारं मिष्यात्व, चारि त्रगुणनो घात करनारां हास्य, रति, अरति, जय शोक, डगठा, काम, अविरति, राग, तथा द्वेष, अने दानादि लब्धिरूपवीर्यगुणना घात करनारा दानातराय, लानातराय, जोगातराय, उपजोगातराय, तथा वीर्यातराय, एअडारदोप घाति कर्मना कहाळे, परतु केवलीने घातीकर्मनो द्वय थई जायठे, माटे ते निर्दोष क हेवायठे तेम ठता ऋधा अने तृपाने अडारदोपोमां जे गणेठे ते युक्तायुक्त वि चार नकरतां केवल स्वमतनुं पोषण करते ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अह जइ जिणस्स खइअ सुक्कं डुक विरुअए तेणं ॥

तो सामणाज्जावे विसेसजुत्ता क्हं सत्ता ॥ ७४ ॥

व्या०— कोई आशंका करे के, जेम केवलीने ह्यायिक ज्ञानादिक ठे, तेम ह्या यिक सुख पण ठे, तिहा ड खनोलेष पण नथी, तो ऋधा तृपा केमलागेठे १ ॥ ७४ ॥

तो वेयणिज्जकम्मं उदयप्पत्तं क्हं हवे तस्स ॥ एय

सोपदेसउदउं समयम्मि विवाग जणणाउं ॥ ७५ ॥

व्या०— उपली आशंकांनु उत्तर दिचेठे के, केवलीने जो ह्यायिक सुख मान ता होतो सिद्धांतनेविपे केवलीने वेदनीयकर्मनो उदय कहाळे ते शासारु न मा नवो ! अर्थात् मानवो जोईशे जेम ज्ञानावरणीयकर्मनो उदय ठता ह्यायिक ज्ञान थतु नथी, तेम वेदनीयकर्मनो उदय ठता ह्यायिक सुख पण थतु नथी, कोई शंका करेके, केवलीने एवा वेदनीयकर्मनो उदय होयठे के, जेना प्रदेश आत्मप्रदेशनी साथे मलेठे, ते स्थिति प्रमाणे रहीने ह्रीण थई जायठे परतु के वलीने तेनी आकुलता थती नथी एनु उत्तर एके, पद्यपि एवो प्रदेशोदय अम ने पण मान्य ठे, तो केवलीने ह्यायिक सुख संजवे नही तेम ठता अच्युच्चयता थी अमारे कहेतु जोयेठे के, केवलीने वेदनीयकर्मनो प्रदेशोदय ठेज नही. कि तु सिद्धांतोमा विपाकोदय कहाळे. ॥ ७५ ॥

— आवस्सयणिज्जती पयडिपसत्तोदउंवएसेणं ॥ ए

जइ ता सुहायाउं असुहपडिवक्कवयणेणं ॥ ७६ ॥

व्या०- आवश्यक निर्युक्तिनेविषे प्रकृतिनो प्रशंस्त उदय कह्यो ठे, तथा दिगं वरना प्रवचनसारनामक ग्रंथमां पण “ पुष्पफला अरिहंता ” इत्यादिक वचनो कहांठे, एवी रीते असुखना प्रतिपद् वचनथी केवलीने सुखनो विपाक ठे. ॥७६॥

अ० कोई आरांका करे के, जे कारण मांटे सुखविपाक ठे, तेथीज ड सुखि पाक नथी ? तेतुं समाधान करेठे. ॥ ७६ ॥

तत्तदसुत्तत्रणिञ्चा एकारसहा परीसहा य जिणे ॥ तेह

वि तुहत्तहाइ खइअस्स सुहस्स पडिकूलं ॥ ७७ ॥

व्या०- अमारा श्रीनगवतीसूत्रनेविषे केवलीने अग्यार परीसह कहांठे तयथा “ एकविहबंधगस्सणं जंते सज्जोगि नवच्च केवलिस्स कइ परीसहा पस्स ता ? गोयमा, एकारस परीसहा पस्सत्ता, एव पुणवेण तिने ’ तथा वेहुने “ ए कादञ्ज जिने ” एवीरीते श्रीतत्त्वार्थसूत्रमां अग्यार परीसह कहांठे ; एणेकरी के वलीने कुधा तथातृपा प्राप्त थईठतां हाथिक सुखनी हानि थती नथी एवु ठरेठे अही उक्त “ एकादशजिने ’ ए सूत्रनो अर्थ केटलाएक पोतालुं मत पोपण कर वाना हेतुथी एवु करेठे के “ एकेनाधिकानदश ” एटले एकअधिक दश न थाय, अर्थात् अग्यार परीसह नही. ए अपव्याख्यान जाणवुं, केमके, एवो समास सं नवे नही वली केटलाएक सर्वार्थसिद्धिप्रमुख “ नसंति ” एवु बाहेरथी वाक्य जियेठे, तेतो जाणे पोतालुं उत्सूत्रनापणज प्रगट करतो होयनी ! परतु तेओए आवो विचार करवो जोये के, परीसहनास्वामी चिताना अधिकारनेविषे प्रसिद्ध ठतां तेनो अनाव केम थये ! जे धनरहित होय ते धननो स्वामी कहेवाय नही वली केटलाएक आवीरीते व्याख्यान करेठे के, केवलीने वेदनीयकर्म होवाथी कारण कार्योपचारेकरीने अग्यार परीसह कहांठे ए व्याख्यान पण नदीमां बूढता घास नो आश्रय लेवाजेवु ठे, केमके, स्वामित्वचिताए उपचार संनवे नही, जो उप चार मानिये तो ठता मोहनीयकर्मना होवाथी उपशात मोहगुणस्थानकनेविषे पण बावीस परीसह कहा जोईगे, ए प्रकारे करी सूत्रना घणा अपव्याख्यानो नो त्याग करीने परमार्थनो विचार करवो जोये. ॥ ७७ ॥

अस्साय वेयणिङ्गं तुहत्तहाइण कारणं जाण ॥ पक्क

त्तिसत्तित्तुदय जल्लिअंतरजलणदिताणं ॥ ७८ ॥

व्या०- आहार पर्यातिनामकर्म तथा असाता वेदनीयकर्म ए वज्जेना उदय

धी प्रज्वलित थएलो जे जगराग्रि, तेणे करीने जीवने क्रुधा तथा तृषा लागेते, ते वधां कारण केवलीनेविषे ठतां ठे तेने क्रुधा तथा तृषा केम न लागे ? तेकहो ॥ ७७ ॥

अ० वादी आशंका करेते -

नणु बुद्ध तह्ना तह्ना मोहुदठं पत्तियारिंसव ॥

नसुइ अस्सा तह्ना असुहुस्क तयमूति ॥ ७८ ॥

व्या० - क्रुधा तथा तृषा ए मैथुननी इहानी पठे तृष्मारूप होवाथी ते मोहनीयकर्मथकी उत्पन्न थायते माटे केवलीनेविषे ए सचवे नही केमके, केवली ए तो मोहनीयकर्मनो प्रथमज नाश कखोते एनो उत्तर आवीरीते ठे - तृष्णा अने इ खमा घणी निन्नता ठे, तृष्णानेज इ ख कहेवाय नही. परतु संसारीने तृष्णाथकी इ खनी उत्पत्ति थायते ॥ ७८ ॥

अ० तृष्णा उत्पन्न थवानो प्रकार कहेते -

मोहाजिणिवेसेणं चउहि वि उमकोठयाइ हेऊहि ॥

पगरिस पत्तातह्ना जायइ आहारससत्ति ॥ ७९ ॥

व्या० - मोहनीय कर्म अनिनिवेसै चार कारणथी आहारसंज्ञा उत्पन्न थायते ते उत्कर्ष पास्याने लीधे तृष्णा कहेवायते ते चार प्रकार श्रीगणागमा क ह्याते, यत "चउहि गणेहि आहारससप्पा समुप्पज्जइ, उमकोठयाए, बुहावेहणि ज्जस्सण कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदोवउंगेण, ' एनो अर्थ - चार कारणोकरि आहारसज्ञा उत्पन्न थायते. कोठोखाली थयाथी, क्रुधावेदनीयकर्मना उदयथी, आहारादिकनी कथानुं श्रवण कख्याथी, तथा वारवार आहारनो उपयोग कख्याथी आहारसज्ञा उत्पन्न थायते अर्थात् ए चार कारण मद्याथी मोहनीय कर्म ना बजे आहारसंज्ञा उत्पन्न थायते अतएव गोमठ सारटीकाप्रमुखनेविषे पण आहारसज्ञा आहारानिजापरूप कहीते. ते तृष्मारूप होवाथी यतिने ए विना अशनपानादिकनेविषे प्रवृत्ति ठे ते कहेते - ॥ ७९ ॥

असणाइम्मि पवित्ती एतोच्चिय त विणा सुसाहूण ॥ एज

दुत्त विहविहाणो अइआरो हंदि णिदिशे ॥ ८० ॥

व्या० ए हेतुथीज यतिने पण आहारसंज्ञाविना अशनादिकनेविषे प्रवृत्तिठे केम के, विधि पालतां यतिने अतिचार कह्या नथी, अने आहारसंज्ञा तो अति

चारमां ठे माटे जे एम कहेठे के आहारसंज्ञाविना यतीए आहार करवो नही तेने आचारमां पण अतिचार कहा ठे ॥ ८१ ॥

एयं विणा एचुत्ती मेहुणससुं विणा जह् अवंचं ॥ ८

य वयणं पि परेसि एएण पराकयं ऐअं ॥ ८२ ॥

व्या० जेम मैथुनसंज्ञाविना अन्नह्यचर्य न थाय, तेम आहारसंज्ञाविना केव जीने बुक्ति थाय नही एवा परवादीना वचननुं आवीरीते निराकरण कखु ठे.— जेम यतिए आहारसंज्ञाविना आहार करवो उचित ठे, तेम केवजीनेविपे पण मानी लेवुं जोईये ॥ ८३ ॥

एह् साहु चिय पविती ऐवय सुपसत्तजाणहेगति ॥ आ

हारोच्च अवंचं अस्सह तुह् होइ णिहोसं ॥ ८३ ॥

व्या० आहार अवर्जनीय होवाथी उचित ठे, तथा उद्वस्थ यतीने प्रशस्त ध्याननुं कारण ठे. माटे आहारसंज्ञाविना केवजीने आहार लेवो संजवे ठे. अने मैथुन वर्जनीय होवाथी अनुचित ठे, तथा दुर्ध्याननुं कारण ठे माटे मैथुना दिक अनुचितप्रवृत्ति अप्रशस्त रागदेषविना केवजीने थाय नही एवा अर्थनो विचार करीने तेतुं ग्रहण करवु जोये ॥ ८३ ॥

आहारचित्तणुप्रव मेयं आहारससुमासङ्ग ॥

बुद्धइ अट्टक्षाणं इघा लोनेण मूढाणं ॥ ८४ ॥

व्या० आहारना चित्तनथकी जे आहारसंज्ञा उत्पन्न थायठे, तेनेविपे मोहित थयला मूढजीवने जो ते आहाररूपइष्टवस्तुनी प्राप्ति न थाय तो ते वस्तु क्यारे प्राप्त थशे एवा चित्तनरूप आर्त्तध्यान करेठे. परन्तु ते अनिलापा मटती नथी ८४

तत्तो माणसङ्खं लहइ जिठं कंदणाइ कुवंतो ॥

लहुं वि इन्नविसयं रईइ चितेइ अवियोगं ॥ ८५ ॥

व्या० ब्यार पठी पूर्वोक्त रीतिए जो तेने आहारादिक इष्टवस्तुनी प्राप्ति न थाय तो ते जीव कुद्वेदनीयना उदयथी प्रज्वलित थएला उद्वरानलना योगे शरीरइ ख पामेठे अने पठी कंदन रोदनादिक कखाथी अरतिमोहनीयकर्मना उदयने लीधे गाढ चित्तोपतापरूप मानसइ ख पामेठे. कदाच पुण्यप्रकृतिना परिपाके इष्टवस्तुनी प्राप्ति थाय तो पण अरतिमोहनीयकर्मना उदयथी ते वस्तु

ना अवियोगनी इच्छा कखाकरे, तेणे करी ते वस्तु उपर गाढानुरागेकरी आर्त्त ध्यानना वश थयो थको जीव डु खज पामे ठे, माटे मोहसूढ जे जीव ठे तेने परमार्थथकी कठी पण सुख नथी ॥ ८५ ॥

तो मोहणिङ्गखयत तप्रवङ्गकाणुबंधि विलक्षणं ॥

लहई सुहं सबह् चणो पुण बुह चइतं ॥ ८६ ॥

व्या० - मोहनीयकर्मना क्यथी जीवने आहार करवानी रति तथा अरति उत्पन्न थायठे, ने मोहनीयकर्मना उदयथी जीवने मानस डुख उत्पन्न थायठे ते डुख केवलीने मटी जायठे, पण असातावेदनीयकर्मना उदयथी केवलीने जे रुधा ट्टपा लागेठे, तेनो ते त्याग करी शके नही ॥ ८६ ॥

घाईव वेयणीञ्चं इय जइ मोहं विणा ए डुक्कयरं ॥

पयडं पडिरूवानं ता असातं विपयडीतं ॥ ८७ ॥

व्या० - पूर्वपट्टी कहेठे के, वेदनीयकर्म घाती कर्मना जेवुंठे, माटे, मोहनीय कर्मविना ते डुखदायक थाय नही उक्तंच “घादीववेदणीय, मोहसुदणण घादवे जीव,” इति कर्मकामे तेनु समाधान आमठे - जो तमारा कट्या प्रमाणे होय तो असातावेदनीयनी पठे केवलीने बीजी प्रकृतिथो पण मोहनीय कर्मवि ना पोताना कार्यनी करनारी होवी जोये अने तमे वेदनीयकर्मनीसाथे घातीकर्मनी तुळ्यना केवीरीते करोठो ? घातीआना रसना जेवो तेनो रस होयठे एम सरखा पणुं करोठो, के स्वकार्य करवानेविपे घातीआनी अपेक्षापणुं कटपोठो, के अथवा दोपणुं हेतुपणुं कहोठो, ? जो कहेशोके घातीआना रसना जेवो रस होवो जोये तो अघातीकर्म प्रकृति घातीना जेवी होवी जोये केमके, ज्यारे अघातीनी प्रकृति सर्व घातिनी प्रकृतिनी साथे वेईये ल्यारे ते सर्व घातिनीप्रकृतिनो विपाक देखाडे, तथा ज्यारे देश घातिनीनो विपाक देखाडे, अने एकली वेईये ल्यारे मा त्र ते एकजो पोतानोज विपाक देखाडेठे ; माटे पट्ट संजवतो नथी जो कहेशो के, स्वकार्य करवानेविपे घातीआनी अपेक्षा होवी जोयेठे, तो नामकर्म पण पू र्वे मोहनीयकर्मनी अपेक्षा करतु ठता जेम केवलीने मोहविना आपणु कार्य करेठे, तेम वेदनीय कर्म पण मोहनीयकर्मनी अपेक्षाविना कार्य करेठे माटे बीजो पट्ट पण सजवे नही जो कहेशो के वेदनीयकर्मथी दोप लागेठे, तो ते

पण मनाय नही, केमके, क्लृधा अने तृपानेविषे दोषपणातुं पूर्वेज खंडन कखुं ठे, एवीरीते स्वयुद्धिएकरी सारी पठे विचार करीने जुवो ॥ ७४ ॥

अणुकूलं पडिकूलं च वेयणं लस्कणं सुहृद्दहाणं ॥ ए
हु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयचावा ॥ ७५ ॥

व्या०: औदयिक सुख ठता अनुकूलत्व वेदन थायठे, ते रागरूप ठे अने औदयिक ड.ख ठता प्रतिकूलत्व वेदन थायठे, ते द्वेषरूप ठे, माटे केवलीने औदयिक सुख तथा ड.ख ए वन्ने होता नथी, किंतु द्वायिक सुखज होयठे. एम केटलाएक कहेठे, ते योग्य नथी. केम के, जेम अप्रमत्तयतीने औदयिक सुख तथा ड.ख ए वन्ने होयठे. पण राग तथा द्वेष ए वे होता नथी, तेम केवलीने विषे पण जाणी लेवु एमा एकांतपणुं न मानवुं ॥ ७५ ॥

अधुवाण सुहृद्दहाणं जोगो जोगेण कम्मबंधो य ॥
एहु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयचावा ॥ ७६ ॥

व्या०. सुख तथा ड.ख ए वन्ने पदार्थे शाश्वत नथी, किंतु अशाश्वत ठे. ते ओनो एवो नियम ठे के, अवश्य जोगने दियेठे. कखुंठे के, “नाशुकं क्हीयते कर्म” इत्यादि अने जोगथकी कर्मबंध थायठे. ए कारण माटे केवलीनेविषे ते संनवे नही केमके, सुख तथा ड.ख ए वन्ने पदार्था अधुव ठे. एम केटलाएक कहेठे, ते पण योग्य नथी केमके, सुख तथा ड.ख अधुव ठतां अप्रमत्तयती ने होयठे, तो पण तेनाथी कर्मबंध थतो नथी, तेम केवलीविषे पण जाणवुं जोश्ये अही पण एकांत नथी ॥ ७६ ॥

अन्नाणजं तु डुक्क नाणावरणस्केण खयमेइ ॥
ततो सुहमकलंकिय केवलनाणा पुहपूयं ॥ ७७ ॥

व्या०:- ज्यारे हरेक पदार्थनो सूक्ष्म अर्थे जाण्णामां आवतो नथी, त्यारे जीवने महाड.ख उत्पन्न थायठे. केमके, यथार्थवस्तु जाणवानी इत्था प्रमाणे जाण्णामा न आवे तो तेथी जीवने आकूलता थायठे तेज ड.ख जाणवुं. ए ड.ख वस्तुनो सूक्ष्म अर्थे न जाण्णायकी थायठे, माटे अज्ञानरूपज ठे. अज्ञान ज्ञानावरणीयकर्मना क्लृयथी नाश थाय ठे, ते ड.खनोज नाश जाणवो केवलीने ज्ञानावरणीयकर्मनो क्लृय थई जवाथी ड.खरूप अज्ञाननो जेश पण

रह्यो नथी अने केवल ज्ञाननो उदय थयोठे ते सर्व सुखरूप ठे ते सुख केवलज्ञानथकी पृथक्कृत नथी केमके, केवल ज्ञान जे ठे ते स्वभावना प्रतिघातरहित होवार्थी अनाकूलतारूप ठे, त्या आकृजता ठेज नही, ज्यारे आकृजता नथी त्यारे तज्जन्य जे ड ख ते क्याथी होय। अने ड ख नथी त्यारे परम सुखज ठे एवी रीते “ज केवलजित्तिनाणं, त सोक परण सचसोचैव ॥ खेदो तस्स जणीमे, जम्हायादीखयं जादा ” ए प्रवचनसारना वचन असन्वित ठे तोपण आटलो विशेष ठे -- केवल ज्ञान द्वायिकसुखप्रक्रिया सचवे नही, केमके, द्वायिक सुख तो वेदनीयकर्मनाक्यथकीज उत्पन्न थायठे ॥ ९० ॥

एय सुखं ड्रक वा देहगयं इंदिउप्रवं सव्व ॥ अ
त्राण मोह कळे पमाणसिद्धेउ सकोए ॥ ९१ ॥

व्या० दिगवर एम कहेठे -के शरीरगत सुख ड ख सर्वइंद्रियथकी उत्पन्न थाय ठे केम के, उदयस्थने जे सुख तथा ड ख उत्पन्न थायठे ते एवी रीतेज थायठे प्रथम परोद्धज्ञानना कारणथी इंद्रियोनी उपर मैत्री प्रवर्ते ठे, इंद्रियोनी मैत्री थकी विषयोनेविपे तृष्णा उत्पन्न थायठे जेम अग्रिथी तापेलो लोहनो गोलो होयठे, तेम विषयोनी तृष्णाएकरी इंद्रियो तत्र होयठे ते महाव्याधिस्थानीय ठे अने तृष्णा टालवाने अर्थे विषयतुं सेवन थायठे, ते व्याधीना औषधस्थानीय ठे ते यद्यपि व्यवहार दृष्टिए तो सुख कहेवायठे, तथापि परमार्थताए ड खरूप ठे. उक्तंच “पप्पाइठे विसए, फालेहि समास देस हावेण, परिणममाणोअप्पा, सयमेव सुहू णयवदिरेहोत्ति ” इति प्रवचनसारे. ए कारण माटे देहगत सुख ऐंद्रियक ठे. तेमज ड खपण ऐंद्रियक ठे एवा ऐंद्रियक विषयोना डेपथी ड ख क पजेठे. माटे देहगत सुख तथा ड ख केवलीनेविपे नथी तेथीज केवली अतींद्रिय थया ठे उक्तंच “सोखंवा पुण ड्रकं, केवलनाणिस्स नडि देहगय, जम्हा अदिदिअत्त, जाव तम्हा डतंणोयति ” इति प्रवचनसारे एतुं समाधान करेठे -देहगत सर्व सुख तथा ड ख इंद्रियाधीन नथी केम के, इंद्रियोनी पराधीनताथी जे अज्ञान तथा मोहथकी सुख तथा ड ख उत्पन्न थायठे, तेअनेज इंद्रियोनी अपेक्षाठे, परंतु अप्रमत्तयतीने जे मानस सुख थायठे, तथा सातादिककर्मना उदयथी कुधादिक दोष उत्पन्न थायठे, तेमा इंद्रियोनी अपेक्षानो नियम नथी, जो एम. न मानिये ने इंद्रियाधीनज सुख तथा ड ख मानिये तो रतिमोहनीयकर्म तथा अरति

मोहनीयकर्मणुं नामान्तरज वेदनीयकर्मना उदयथी असाता वेदनीय कर्म थाय ठे एम उरजे ल्यारे वेदनीयकर्म छुडु कहेवाजे नही जो वेदनीयकर्म मोहनीयसाथे मानीये तो सातज कर्म उरजे आठ कर्मनो संजव थजे नही. एम करता सर्व जैन प्रकृतिनो उल्लेद थजे वली देहगत सुख जो केवलीने न मानीये तो तीर्थकरनाम कर्मनो विपाक केम संजवे ! जो एम कहिये के तीर्थकरनामकर्म जीव विपाकी ठे, माटे तेथी जीवगत सुखतो कपजेठे. परंतु देहगत क्लुधादिक डु.ख संजवे नही. तो जेम सुखने पण देहनी अपेक्षा ठे, तेम डु खने पण देहनी अपेक्षा ठे, माटे देहगत तज मानवा योग्यठे, इत्यादिक सूक्ष्मविचार करी मव्यस्यबुद्धिये न्याय करो. ॥९१॥

एतोच्चिअ बहु डुःख, र्कएण तेसिं बुहाइवेयणियं ॥

णिवरस लवुव पए अप्पंति जणंति समय विऊ ॥ ९२ ॥

व्या० केवलीने अज्ञानादि जयन्य घणां डु ख मटीगयां ठे, मात्र एक क्लुधावे दनीय रह्यु ठे, ते पण घातीकर्मनी साथे मलेला जेवो पोतानो विपाक देखाडे ठे केम के, केवलीने पुण्यप्रकृतिनो विपाक प्रबल ठे. यतः “अस्तायमाइआओ, जाविअ असुहा हवति पयडीउ, णिवुरस णिवुवपणु ए हुंति ता असुह यात स्त.” ए आवश्यकगाथामां तीर्थकरने असाता प्रकृति डु खदाधिनी यती नथी. जेम दूधना घडामा निंबना रसनो विडु नारव्याथी कटुता थाय नही, एम श्रीजड बाहु स्वामीए कह्यु ठे, जेम तेने प्रबल पुण्यपराजव करेठे. परंतु तेथी क्लुधादिक रूप जे नही एम न जाणवु, एवो जाव जणायठे. पठी विज्ञेपार्थ तो बहुश्रुत जाणे ॥९१॥

एय तं कवलाजोग्गं वेयणियं अगणिमंदयाजावा ॥

एय दमूरज्जुकप्यं वेअणियं हंदि सुअसिधं ॥ ९३ ॥

व्या०.- केवलीनुं वेदनीयकर्म कवलाहार योग्य थाय नही एम न कहेवुं. केमके, केवलीने अग्निमंदपणुं नथी आहारपर्याप्तनामकर्मनो उदय अने वे दनीयकर्मनो उदय होवाने लीधे उदराग्नि प्रज्वलित थायठे. ए वने कारणो हो वाथी केवलीने वेदनीय कर्म कवलाहारयोग्य थायठे जो कोई कहेजे के, वेदनी य कर्म दोरहीना जेवुं ठे, तेथी केवलीने व्याबाध करीशके नही. तेने आवो ज बाब देवो के, ए वचन प्रघोपनुं ठे, शास्त्रनुं नथी. केमके, श्रीसुयगडागनी टीकामा आम कह्युंठे के, “यद्यपि दग्धरक्लुस्थानकत्वमुच्यते वेदनीयस्य तदप्यना

गमिकमयुक्तिसंगतं वागमेह्यत्वंतोदयं सातस्य केवलिन्यनिधीयते. शुक्तिरपि घा-
 तिकर्मह्यादाद्ज्ञानादयस्तस्या अञ्चवन् वेदनीयोऽज्ञवाया क्लृप्तं किमायात येनासौ न ज-
 वति न तपोऽज्ञायातपयोरिव सहानवस्थानलक्षणो विरोधो नापिज्ञायाज्ञावयो-
 रिव परस्परपरिहारेण लक्षणकचिद्विरोधोस्तीति सातासातयोश्चांतमुद्धूतपरि-
 वर्त्तमानतया यथा सातोदय एवमसातोदयोपीति अनंतवीर्यत्वं सत्यपि शरीरव-
 लापचयकृद्देदनीयोऽज्ञवा पीडा च नवत्येव नचाहारग्रहणे किञ्चित्क्रीयते. के-
 वल महोपुरुषिकामात्रमेवेति पंचाशीतिर्जर इत्यत्राया ज्ञेयासयोगिति ”
 एवु जे गुणस्थानकक्रमारोहमा कस्युते, ते तो थोडी स्थितिनी अपेक्षाए जा-
 णवुं, पण रसनी अपेक्षाए न जाणवुं केमके, सत्तानी प्रकृति तो एवी-
 कहीते, पण उदयनी प्रकृति एवी कही नथी उलटो तीर्थकरनामप्रमुखनो प्र-
 बल उदयज कह्योते. एम जाणीने “अतएव दग्धरक्तुकटपेन नवोपग्राहिकल्पेना-
 पि सता केवलिनोपि न मुक्तिमासादयेयु. ” ए आवश्यकबृहद्वृत्तिनुं वचन ठे, ते-
 जोईने पण व्यामोह करवो नही तेटला माटेज इहां पण स्थितिनी अपेक्षाएज-
 केवलीने कर्म दोरडीना जेवा कह्यांते. “अतएव नवोपग्राहित्वात्पग्राहित्वविशेषण”
 कह्यांते. एवु अमने प्रतिजासेते बली विशेष गीतार्थनेविपे जेम पूर्वापरविरोध न-
 थाय, तेम विचारवुं केटला एक प्रमेयकमलमार्त्तमना अनिप्रायने अनुसरिने
 आवीरिती कहेते के, अपूर्वकरणगुणताणाए पापप्रकृतिनो रस कस्योते, मा-
 टे केवलीने तथाविध सातोदय थाय नही मोहसापेक्षप्रकृति थाय तेनो मोह-
 ना घातथी अवश्य घात थायते अन्यथा पराघातनामकर्मना उदयथी केवली
 परहननादिक केम न करे ! ए बोलवु पण डुराग्रहनुं जाणवु, केमके, जेम रसनो
 घात थायते, तेम स्थितिनो पण घात थायते माटे जो रस थोठो थतो होय तो
 स्थिति पण थोठी थवी जोये जेम बद्धमानकर्मनी स्थिति घटी जायते तेम ब-
 द्धमान कर्मनो रस पण घटी जायते, एज समाधानते तथा पराघातनामकर्म-
 नुं फल केवलीने थायजते, अने परहनन तो मोहविना थाय नही केटलाएक
 एम कहेते के वेदनीय कर्म केवलीनेविपे हतवीर्यं ठे, माटे तेनेविपे क्रुधादिक परी-
 सह गयारूप ठे एम जे केवलीनेविपे कहेते तेणे श्वेतावरनी प्रक्रिया जाणी नथी, ए-
 म जाणवु केटलाएक कहेते के, केवलीनेविपे उदीरणाविना प्रचुर पुञ्ज आवता-
 नथी, माटे असातावेदनीयोदयं बली दोरडीना जेवोज ठे. एबोलवु पण अविचार-
 रूप ठे केमके, एवीरिती तो सातावेदनीयोदय पण मद होवो जोये. इत्यादिक

मतनो विचार करतां वास्तविक अर्थ सहज देखाई आवडो. माटे सूक्ष्म दृष्टिवडे ते अर्थनुं शोधन करो ॥ ९३ ॥

णाय केवलनाणाई बुहाईपडिवंधगं जिणंदस्स ॥

दाहस्सिव मंताई इय जुत्तं तंतजुत्तीए ॥ ९४ ॥

व्या०:- जेम दाहना प्रतिबंधक मंत्रादिक ठे, तेम कुधादिकनुं प्रतिबंधक के वलज्ञान ठे. ए वचन पण शास्त्रानुसार नथी. केमके, जेम हाथनेविपे मंत्रेजो अग्नि राख्यो ठतां हाथ बलतो नथी एतुं प्रत्यक्ष दीगामां आवेठे, तेथीज मंत्रादि क जे ठे ते दाहना प्रतिबंधक ठे, एवी कल्पना करायठे, तेम जो केवलीनेविपे वे दनीयादिक कर्मोदयरूप कारण ठतां कुधादिक उचय उत्पन्न घतां नथी एम जो सम्मतशास्त्रमां कळु होय तो एवी कल्पना अई शके, तेविना बोलबु व्यर्थ ठे; माटे शास्त्रनी युक्तिए जिमपूर्वे कळु ठे तेम आदरतुं योग्य ठे. ॥ ९४ ॥

खिळ्ळइ बलं बुहाए णाय तं जुज्जइ अणंतविरिआणं ॥

इय जुत्तं पिण सुत्तुं बलविरियाणं जठ जेठ ॥ ९५ ॥

व्या०.- केवलीने जो नूख लागती होय तो बलनी हाणी आय. ते तो तेने विपे संजवे नही केमके, वीर्षांतरायकर्मना ह्यने लीधे केवलीअनंतवीर्यवत ठे. ए वचन पण अयोग्य ठे. केमके, बल अने वीर्यमां जेद ठे. शरीरनो जे पराक्रम ते बल कहेवायठे, अने अंतरग जे शक्तिविशेष ते वीर्य कहेवायठे. तेम ठतां कुधाएकरी शरीरनुं बल घटेठे, एविपे अमे ना कहेता नथी ए योगप्रत्यय ठे; योग जे ठे ते शरीरनामकर्मपरिणतिविशेषरूप ठे अने नामकर्म तो जगवंतनेविपे ह्णीण अयुं नथी. ॥ ९५ ॥ अ० पूर्वपह्नी आशका करेठे.-

बंधो परपरिणामा सो पुण नाणा ए वीयमोहाणं ॥ जो

गकया पिहु किरिया तो तेसिं होइ णिवीआ ॥ ९६ ॥

व्या०.- ग्रहण तथा मोचनादिक परपरिणामथी जीवने कर्मबंध आयठे ते परिणाम वीतरागने ज्ञानना प्रतापे आय नही उक्तंच “ गेळ्ळुदि णोव ए मुंचदि, ए पर परिणमदि केवली जगव; पेड्ळुदि समतदोसो, जाणदि सबं निरवसेसं” इ ति प्रवचनसारे केवलीने तो योगनी क्रिया पण नथी, त्यारे नोजननी शी कथा अर्थात् केवलीनेविपे नोजन पण संजवे नही जो नोजनक्रिया केवलीनेविपे मा

निये तो तेथी योगक्रिया सिद्ध थरो ते तो केवलीनेविषे संजवे नही. जुवो के, स्थाननिषद्या, विहार, तथा धर्मोपदेशादिकक्रिया पण केवलीने थती नथी, ल्यारे जोजनक्रिया ते केम थाय ! जो कहेशो के, स्थाननिषद्या, विहार, तथा धर्मोपदेशादिकक्रिया केवलीने प्रत्यक्ष विद्यमान ठता ना केम कहेवाय ? तो ते क्रिया यद्यपि ठे, तथापि प्रयत्नपूर्वक नथी. केमके, प्रयत्न रागद्वेष विना थतु न थी. तेतो केवलीनेविषे नथी, माटे ए क्रिया स्वजावसिद्ध ठे जेम आकाशनेविषे वादला समयविज्ञेपे स्वजावेज संचार करेठे, रहेठे, गर्जना करेठे, तथा वर्षा करेठे तेम केवलीने पण स्थाननिषद्या, विहार तथा धर्मोपदेशादिक स्वजावेज थायठे उक्तंच "गणणित्सेक विहारो, धम्मवदेसो अणियदिणा तेसिं, अरिहंताण का ले, मायाचारोव इत्थीण" इति प्रवचनसारे. अतएव केवलीने जे औदधिकी क्रिया ठे, तेनेविषे मोह नही होवाने लीधे परइव्य परिणामना विरहथी ह्याधिकीज जाणवी. यत् "पुष्पफला अरिहता, तेसिं किरिया पुणोहि औदधिगी; मोहादिहे विरहिया, तम्हा साखाइ गतिमदत्ति" ॥ ९६ ॥

अ० एवी पूर्वपक्षीनी आशंकानु उत्तर आपेठे -

जोगं विणावि किरिआ उवळइ कदं ए तस्सोवि ॥

तुल्लं किरिवेचित्तं तह तुल्लं मबुद्धिपुवत्त ॥ ९७ ॥

व्या० - केवलीनेविषे स्थाननिषद्यादिक्रिया जो स्वजावेज थती होय तो प्रयत्न निरर्थक थाय एम तो काऽ दीगमा आवतु नथी प्रयत्न सार्थकज होयठे. केमके, प्रयत्नविना चेष्टा थतीज नथी माटे केवलीनेविषे प्रयत्ननो सजव थायठे, मात्र स्वजाविकतानोज उपयोग करवो नही जो कहेशो के, केवलीनेविषे प्रयत्न जन्य चेष्टा नथी कितु तेथी विलक्षण ठे अर्थात् केवलीनी चेष्टा प्रयत्नविनाज थायठे तो जेम चेष्टा विलक्षण ठे, तेमज प्रयत्न पण शासारू विलक्षण न मानि ये ? अने जेम विलक्षण चेष्टा मोहविना थायठे, तेम विलक्षण प्रयत्न पण मोह विना थतुं जोये जो कहेशो के, केवलीनी चेष्टा मन पूर्वक नथी, तो ते प्रमाणे प्रयत्न पण मन.पूर्वक नथी एम शासारू न मानो एवीरीते सर्व ठेकाणे सरखुं स माधान जाणी लेवु ॥ ९७ ॥

एवं सहाववाणी कद जुत्ता जेणि तेसि वयजोगो ॥

हेऊ दव सुअस्सा वतअणं कम्मखवणाय ॥ ९८ ॥

व्या०—पूर्व कहेला हेतुए करीज दिगंबरो कहेणे के, केवलीने राग नयी होतो तेथी तेनेविषे वचनव्यापार संजवे नही. तेम ठतां जे वचनव्यापार थायठे ते स्वनावेंज मस्तकमांधी ध्वनि नीकले ठे एम जाणवो, पण अक्षररूप वाणी सचवे नही. ए शंका पण अयुक्त ठे. केमके, केवलीने केवलस्थनी पूर्व जेवीरीते वचन योग हतो, तेमज केवलज्ञान यया पठी पण जाणवो अने केवलीने रागविना पण क्रियानु सामर्थ्य ठतां अक्षररूप वाणी केम न संजवे ? कोई आशंका करेके, केवली कृतकृत्य ठे त्यारे ते उपदेश शासारू करेठे ? तेनुं समाधान ए के तीर्थंकरनामकर्मनो विपाक एवीरीतेज जोगवायठे तेथीज केवली उपदेश करेठे. ए केवलीनो स्वनावज ठे जो कहेसो के, केवली पदेकरी एकांते कृतकृत्यठे ? तो तेम पण न समजवु. यत एगंतेण कयडो, जेणे दित्रं जिणंदणामंसे, तदवज फलं तस्स य खवणो वाठ अमवेजउ, इति विशेषवाच्यके जो कहेसो के, परोप कारनी इच्छाविना उपदेश देवो संजवे नही, अने इग तेज राग कहेवायठे अने रागतो वीतरागनेविषे संजवे नही. एवो व्यामोह पण न करवो. केमके एवो इच्छा ते रूपा कहेवाय ठे, पण तेने राग न समजवु. ॥ ९८ ॥

एय वयणपयत्तेणं खेअस्सोदीरणं जिणंदस्स ॥ ९८ ॥
रा सुहस्स पावइ तं एय वा अणुपयणीणं ॥ ९९ ॥

व्या०— जो कहेसो के, वचन बोलवाना प्रयत्नेकरी जीवने खेद थयानी उ दीरणा थायठे. तो ते संजवे नही केमके, मनुष्यना आउखामा साताअसाता वेदनीयकर्मनी उदीरणा प्रमादपरवज्ञेकरीनेज होयठे, प्रमादविना बीजां कारणो ठतां उदीरणा थाय नही जो एम नकहिये अने बीजा कारणोथी उदीरणा थाय ठे एम कहिये ; तो काययोगनेविषे सातावेदनीयनी उदीरणा, पण तेने केम थाय ? केमके, उदीरणानुं तो आउ लक्षण कळुठे.— जे स्थितिना दलिक, उदयावलिका थी बाहेर वचेंठे, तेने कपायसहित योगनामना वीर्थेकरी आकर्षण करीने ते उदयावलिकानेविषे जे प्रहेपन करडुं, ते उदीरणा कहेवायठे. ॥ ९९ ॥

एय तं विरिअविरहियं जायइ अपवत्तणञ्च करणंति ॥

केवलसहावपस्कं सुगयस्स मयमणुमयं जाण ॥ १०० ॥

व्या०— जो कहेसो के ते उदीरणा वीर्थेविना थायठे, तो ते संजवे नही के मके, उदीरणा जेठे ते अपवर्त्तनानी परीकरण विशेषठे. एटले स्थानांतर करावच

नुं कारण ठे, अने कारण जेठे-ते प्रयत्नरूप ठे, एम नमानतां जो केवल स्वभाव वाद मानिये तो बोधनुं मत अनुमत आय, माटे प्रयत्न पण अंगीकार करवुजोये.

खेठ एाईरिजइ केवलजोगेहि तो विणु पमायं ॥ उल्लु
दयहेउपनवो दीसइ पुण सो वि तनुल्लो ॥ १०१ ॥

व्या०:- केवली योग प्रमादविना खेद उदीरतो नथी, परतु उदयना हेतु ते हां उदीरणासरखा दीगामां आवेठे, तेथी खेद जेठे ते उदीरितना जेवो जणायठे पण परमार्थताए ते उदीरणा कहेवाय नही ॥ १०१ ॥

नुत्तीइ सुहपती तं पुण जोगाडदीरियं हुजा ॥ एसा
परजुत्तिलया एएण पकंपिअआ ऐअ ॥ १०२ ॥

व्या० - श्रुक्ति कहेतां जे कवलाहारठे. तेणेकरी केवलीने जे सुख उत्पन्न था यठे, ते योगथी उदीखुं, अने केवलीने तो योगनी उदीरणा संचवे नही केमके, तेने वेदनीयनी उदीरणा होती नथी माटे केवलीने कवलाहार संचवे नही. ए वी जे परशुक्तिरूप वेली ते आवीरीते कपाई गईठे. के प्रमादविना उदीरणा था यज नही एम निश्चये जाणवु ॥ १०२ ॥

एय डुप्पणिहाणं पिदु, केवलजोगाण दोइ नुत्तीए ॥
तं रागद्वोसकय, ते पुण तेसिं विलीणत्ति ॥ १०३ ॥
इय सत्तमाइ फासग, कोडिन्नाईण कवलजोईए ॥ ऐवय
डुप्पणिहाण, सुप्पणिहाणस्स माहप्पा ॥ १०४ ॥

व्या०.- आहारकरी केवलीना योगने ड.प्रणिधान थाय नही. केमके, योगडु प्र णिधान ते रागद्वेषवडे थायठे ते रागद्वेष तो केवलीनेविषे नथी अतएव सप्त मादि गुणगणो चडेला जे कोडिन्नादिमहर्षि, तेअने आहार करतां पण डु प्रणिधा न योग नथी यतो विधिएकरि आहार करता तेअने आत्मजीनताना माहात्म्यथी प्रमाद यतो नथी किंतु अप्रमादज रहेठे सातमा गुणगणानेविषे नवा व्यापारनो आरन यतो नथी पण पूर्वे आरंजेला व्यापारनी निष्ठा होयठे. जेम देवताना आठखाना बंधनो आरन यतो नथी. पण ठे गुणगणो बाधवा मांडयो जे देव तानो आठखो, ते बांधता थका पण सातमे गुणगणो अवायठे. माटे नवा आर

जना अजिप्रायेज "इत्येतस्मिन् गुणस्थानानि संख्यावश्यानि पट्" एवं गुणस्थान क्रमारोहनेविषे कथ्येते. ते संनवितते. ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

हेतु पमत्तयाए आहारकहव एव आहारो ॥ होऊ

जइ एइआरो अस्पृहती एव तेणावि ॥ १०५ ॥

व्या० - आहारनी कथा करता साधु प्रमत्त थायते. त्वारे आहार करतां के म प्रमत्त न थाय ? एवु प्रजावे कहेते ते अयुक्त जाणवुं. केमके, आहारकथा प्रमादतुं कारण नथी. तेम ठतां जो वने सरखा कहिये तो जेम आहारकथा करतां अतिचार थायते तेम आहार करतां पण यतीने अतिचार थवो जोये ॥ १०५ ॥

णिद्वविण एण हेउ नुत्ती सहयारमेत्त ओत्तीए ॥ जेण

सुए णिद्विष्ठा पयडी सा दंसणावरणी ॥ १०६ ॥

व्या०:- जो केवली आहार करतो होय तो तेने निडा होवी जोइये. एम जे कहेते ते पण अप्रमाण जाणवुं. केमके, निडातुं कारण आहार नथी. आहार तो मात्र निडानो सहचारी ठे. सिद्धांतोनेविषे निडाने दर्शनावरणीयकर्म नी प्रकृति कहीते. केमके, आहार करतां पण केवलीने दर्शनावरणीयकर्मनी अजाव ठे. माटे केवलीने निडा होती नथी. ॥ १०६ ॥

एय तरुस थोवयाए जेण अणुष्ठा तउ तउ डुठो ॥

णिद्व डुठयाजं णिद्वई पसंगउ तरुस ॥ १०७ ॥

व्या०.- शास्त्रोमां कसु ठे के थोडो आहार करवो, माटे आहार डुष्ट ठे, ए म कहेवु पण अयोग्य ठे, केमके, घणो आहार कखाथी दर्शनावरणीयकर्म ना विपाकनो उदय थायते. एटला माटे घणो आहार करवो डुष्ट कह्योते. प ए स्वजावे आहार डुष्ट नथी ॥ १०७ ॥

आहारो ए पमाउं जन्नइ अववाइत्तिकाऊणं ॥

अववाया बोलीणा वीयनयाणं जिणाण जउ ॥ १०८ ॥

व्या० - आहार अपवादमार्गने प्रतिबंध करनारो होवाथी प्रमादरूप ठे, ए म नकहेवुं. केमके, वीतनय तीर्थकरने कोई अपवाद नथी. अपवाद तो जे उ त्सर्गमार्ग करी शके नही, अने चारित्रना त्यागथी बीहे, तेने ठे. जिनने तो ते नहोय. ए केवल पोतानी कटपना नथी, केमके, धर्मबिडुनेविषे निरपेक्ष्यतिध र्मना अधिकारे अपवादत्यागसूत्र कथ्येते, ए गीतार्थे यथा सूत्र विचारवो ॥ १०८ ॥

પત્તં મમત્તદ્દેઝુ જુત્તં વોત્તું પુણો ણ દેહુવ્વ ॥ ઇહરાણી
મમન્નાવો જિણાણ કહ્ પાણિપત્તાણં ॥ ૧૦૯ ॥

વ્યા૦.— આહાર કરનારને પાત્ર રાખવા જોઈયે, તે પાત્રતો મમત્વનું કારણ છે એમ કહેવું નહીં કેમકે, પાત્ર તો શરીરની પટે ધર્મસાધન છે જો એમ ન માનિયે ને મમત્વનું કારણ માનિયે તો તીર્થંકરપ્રમુખ જે પાણિપાત્રી છે તેઓનેવિષે નિર્મમત્વપણું કેમ સંજવે? જો કહેશો કે, બાહ્ય પાત્ર મમત્વનું કારણ છે, તો તે પણ અસમીચીન છે. કેમકે, જેટલું પુજન ઇચ્છ્ય છે તે સર્વ આત્માથી બાહ્ય છે, માટે શું તે મમત્વનું કારણ થાય? ॥ ૧૦૯ ॥

જાણં તવોવઘાઠં આહારેણંતિ તે મઈ મિઝા ॥

જાણં સેલેસીણ તવો અ ણિવિસસ્સ તેસિતિ ॥ ૧૧૦ ॥

વ્યા૦.— જો કહેશો કે, આહારેકરી કેવલીના ધ્યાન તથા તપનો વ્યાઘાત થાય, માટે આહાર લેવો અયોગ્ય છે. તો એવું જે તારી મતિમાં જાતે છે તે પણ મિથ્યા છે. કેમકે, ધ્યાન તો શૈલેશીયે છે પણ પૂર્વે ઠલ્કર્ષતાથી દેશેઠણી પૂર્વકોઢી સુધી નથી અને વિશેષેકરી કેવલીને કોઈ તપ પણ નથી ગાણાંગનેવિષે કેવલીને જે અણુત્તર તપ કહ્યું છે, તે પણ શૈલેશ્યાવસ્થાનાવ ધ્યાનરૂપ કહ્યું છે. અને સોમિલના પ્રશ્નના અધિકારે શ્રીનગવતીમાં “કિંં ચંતે જચા સોમિલા, જમે તવ ણિયમ સંયમ સજ્ઞાય સજ્ઞાણવસ્સયમાઈસુ જોએસુ જયણા” એવું કહ્યું છે તેહા પણ તપનું ફલ છે. તેમાટે ઉપચારે તપ કહ્યું છે. ॥ ૧૧૦ ॥

ઝરાલિયદેહસ્સ ય ઠિઈ અવુઠ્ઠીય ણો વિણાહારં ॥

તેણં પિઅ કેવલિણો કવલાહારિત્તણં જુત્તં ॥ ૧૧૧ ॥

વ્યા૦.— ઔદારિકશરીરની સ્થિતિ, તથા તેની વૃદ્ધિ આહારવિના થતી નથી માટે કેવલીને કવલાહાર યુક્ત છે ॥ ૧૧૧ ॥

પરમોરાલિઅદેહો કેવલિણં નણુ હવેજ્જ મોહરવણ ॥

રુઠ્ઠિરાઈધાઝરઠિઠં તેઅમઠં અપ્પપહલુલ્લો ॥ ૧૧૨ ॥

વ્યા૦.— પૂર્વપદ્ધી શકા કરે છે કે, મોહનીયકર્મના ક્ષયથી કેવલીને પરમૌદારિક શરીર થાય છે. તે રુઠ્ઠિરાદિક સત્ત્વધાતુરહિત પરમ પવિત્ર હોય છે. જોહલ

ना पडलनी पठे केवल तेजमय होयते. एवा शरीरने कवलाहारनी अपेक्षा नथी ॥ ११५
अ० उपली आशंकातुं समाधान करेते:-

संघयणणामपगइउ केवलिदेहस्स धाउरहियत्ते ॥

पोग्गलविवागिणी कहु अतारिसे पोग्गले होऊ ॥ ११३ ॥

व्या०:- केवलीतुं शरीर जो सप्तधातुरहित कहिये तो तेने वज्ररूपचंनाराच संघयण नामकर्म प्रकृतिनो उदय केम आय. केमके, ते प्रकृति तो पुज्जल विपाकनी ठे. ते अस्थि पुज्जलने विपेज विपाक देवामे ठे जो दृढ संस्थानमात्र पुज्जलनेविपे ते विपाकने देखाडती होय तो देवताने पण वज्ररूपचनाराच संघयण कहेतु जोये. ११३

मोहविलएण नाणं णामुदयाचेव तस्स पारम्मं ॥

तो वस्साइविसेसो तं होऊण धाउरहियत्तं ॥ ११४ ॥

व्या०:- मोहनीयकर्मना विलयथी केवलीने केवल ज्ञान उपजे ठे. पण शरीरनेविपे कांई विशेषपणुं थतु नथी शरीरनामकर्मना उदयथीज शरीरनेविपे विशेषता आयते. माटे केवलीना शरीरनेविपे पुण्यप्रकृतिना माहात्म्यथी वर्णगति सारसत्त्वादिकनी विशेषता युक्तज ठे. परंतु धातुरहितपणुं आय नही. अतए व शास्त्रोनेविपे कह्युठे के, “ संघयणरूव सत्ता, ए वन्नगइ सारसत्त कसासा, ए मा इणुत्तराई, हवति णामोदया तस्स ” एम ठतां जे केवलीना शरीरनेविपे अस्थ्यादि पुज्जल पलटीने अन्यविपेज पुज्ज उत्पन्न आयते एवी कल्पना करवी ते दृष्टिविपरीत होवाथी अयोग्य ठे. केमके, पुण्यप्रकृतिनो उदय थयाथी तथा विध लब्धिवडे शरीरवर्णादिकविशेष दृढ होयते. एम जाणतु. ॥ ११४ ॥

ओरालिपत्तपोणं तह परमोरालिअंवि केवलिणो ॥

कवलाहारवेस्सं ठिइं च वुट्ठि च पाउणइ ॥ ११५ ॥

व्या०:- तीर्थंकरतुं शरीर जो परमौदारिक होय तो पण तेने कवलाहार सा पेक्षे स्थिति तथा वृद्धिनो अनुभव आय. केमके सामान्यपणे औदारिकशरीर नेविपे एवो नियम ग्रहोठे के, आहारविना शरीरनी स्थिति होयज नही. ॥ ११५

एणं मइनाणपसत्ती, कवलाहारेण होइ केवलिणो ॥

पुप्फाईअं विसयं, अस्स हयाणाइ गिह्जिजा ॥ ११६ ॥

व्या:- जो केवली आहार करे तो तेना आस्वादथी रसनातुं मतिज्ञान आय

नहीं; जो एम मानिये तो समवरणचूमिकानेविषे गूठणप्रमाण फूल पाथरेला होवाथी, तेना परिमलथी घ्राणेंद्रियतुं मतिज्ञान केम न थाय? आस्वाद विना तृप्ति थाय नहीं, एम पण न कहेवु केमके, रतिरूप तृप्ति थती न होय तो ते अमारें पण इष्ट ठे परतु कुधानाशरूप तृप्ति तो आहारविना थायज नहीं ॥११६॥

इरिआ वहिआ किरिआ, कवलाहारेण जइ ए केवलिणो ॥

गमणाइणा विनहवे, सा कि तुह पाण पिहियत्ति ॥ ११७ ॥

व्या० जो कदेशो के, केवलीने कवलाहार करतां इरिआवहिकी क्रिया लागेठे. तो गमनागमनादिक क्रियाए करी केवलीने इरिआवहिकी क्रिया केम न लागे? माटे जेम केवलीने गमनादिक क्रिया ठे, तेम नोजन क्रिया पण जाणवी, एवं प्रथमज कखु ठे ॥ ११७ ॥

एय परुवयारहाणी तेण सया जोग्गसमयणियएण ॥

एय वाहिसमुपत्ती हिअनिअआहारगहणाउ ॥ ११८ ॥

व्या०.-- केवली जो कवलाहार करे तो धर्मोपदेशमा अतराय पडे, तेथी परो पकारनी हानि थाय, एम कहेवु न जोश्ये केमके, ते तृतीयप्रहरनेविषे सुहूर्त मात्र नियतसमयेज आहार करेठे तेथी बाकीनो सर्व काल उपवेशने अर्थे रहे ठे जो कदेशो के, केवली आहार करेतो शूलादिक व्याधि उत्पन्न थवानो संजव थाय, तो ए कल्पना पण व्यर्थ ठे केमके, ते सारी रीते जाणीने अनिष्व गपरिणामरहित हित मिताहारज करे ठे माटे तेनेविषे शूलादिकनो संजव थाय नहीं अने एथी तेनेविषे रागनी कल्पना पण थाय नहीं ॥ ११८ ॥

ए पुरीसाइ डगंठिय मेसि णिह्णु मोहवीआणं ॥

अइसय उंय परेसि विवित्तदेसेविहाणाय ॥ ११९ ॥

व्या० - जो कदेशो के, केवली आहार करे तो तेथी वडिनीत प्रमुख करतुं जो श्ये, तेतो डगठातुं कारण ठे, एम पण कहेवु नहीं केमके, डगठातुं मूल मोहनी य कर्म ठे तेतुं तो प्रथमज उन्मूलन करेलुं ठे अने तीर्थकरनो एवो अतिशय ठे के, तेनां आहार तथा निहारनी विधिने कोई देखी शके नहीं ए कारण माटे बीजाने पण डगंठा उत्पन्न थाय नहीं वली सामान्य केवली एकाते निहार करेठे तेथी पण बीजा कोरने डगंठा उत्पन्न थाय नहीं पूर्वपही कहेठे के, तीर्थ करने पूर्वे पण निहार होय नहीं तो पठी ते केम सजवे? यत " तिष्ठय

रा तपियरो, हलधर चक्रीय वासुदेवाय ; मणुआण नोगनूमी, आहारो एडि एी हारो " ए तो कोई अपूर्व मतठे केमके, शास्त्रोनेविषे एवो कोई अतिशय क ह्यो नथी , तेम एवी उदराग्नि पण नथी के जेथी निहारनो अजाव थाय तेम ठता जो ए वातसाची मानिये तो नस्मकव्याधिनी पठे ते दोपरूप थरो खल रसीकृत आहार मात्र जो नस्म थाय तो पूर्वे केम न थाय ? माटे ते केवल थाप रुचिमात्र ठे ॥ ११९ ॥

जो पुण नृत्तिअजावो केवलिणो अइसउत्ति जंपेई ॥
सो वायामित्तेणं साहेऊ सुह खउ पुँफं ॥ १२० ॥

व्या०:- जो कदेशो के, केवलीने जे शुक्तिनो अजाव ठे ते अतिशय जाण वो तो एम कह्याथी तमे पोते पोताना वचने अठतीवस्तुने ठती करो ठो त्या रे आकाशना पुण्य पण ठे एम कदेशो तो कोण ना कहेनारो ठे। पण ए वच नो सप्रमाण न कहेवाय ॥ १२० ॥

एवं कवलाहारो जुत्तीइ समठितं जिणवराणं ॥

पुवायरिएहि जहा तहेव लेसेण उवइठो ॥ १२१ ॥

व्या०:- एम जे प्रकारे पूर्वाचार्य केवलीने विषे कवलाहारनी समर्थना करी ठे ते प्रकारेज आ ठेकारो अमे लेशमात्र कसुठे ॥ १२१ ॥

तेणं केवलनाणी कयकिच्चो चैव कवलजोईणं ॥

नाणाईण गुणाणं पन्निघायाजावउं सिद्धो ॥ १२२ ॥

व्या०:- माटे केवली कवलाहार करता ठतां पण कृतकृत्यज ठे केमके, ज्ञान दर्शन चारित्र तथा वीर्यगुणनो स्वजावपरावृत्ति एटले पाठल हटवारूप प्रतिघात नथी ज्ञानादिक गुण संपूर्ण सिद्धज होयठे. माटे ते सर्वथा कृतकृत्य तो सिद्धज ठे एम कहेवु जोइये तथापि ज्ञानादिगुणचतुष्टयनी विद्युद्धताने लीधे केवलीने देश कृतकृत्य कहेता पण काई विरोध आवे नही ॥ १२२ ॥

नाणस्स विमुद्धीए अप्पा एगंतउं ए संसुद्धो ॥

जम्हा नाण अप्पा अप्पां नाणं तअस्सं वा ॥ १२३ ॥

व्या०:- जो कदेशो के, आत्मा ज्ञानरूप ठे तेथी ज्ञाननी एकांत शुद्धताने लीधे आत्मा पण एकांत शुद्ध थाय ठे. एम न कहेवु. केमके, ज्ञान ते आत्म

रूपज होयते. केमके, आत्माविना ज्ञाननुं रहेवुं नथी अने आत्मा जे ठे ते ज्ञानस्वरूप पण होयते ने तदन्यस्वरूप पण होयते, ए हेतुथी केवली ज्ञानादिगुणने स्वभावेकरी शुद्ध पण ठे. अने अव्यावाद्यादिगुणना स्वभावे अ शुद्ध पण ठे. एम जाणवु. ॥ १२३ ॥

एव परमप्यत्तं नाणाइड्वारगं मुणेअव ॥

सवह परमप्यत्त सिद्धाणं चवे संसिद्धं ॥ १२४ ॥

व्या०.- एवी रीते केवलीने परमात्मापणुं ज्ञानादिकगुणेकरी वेशथीज जाण वुं, सर्वथा परमात्मा ते सिद्धज कहेवाय माटे आठ दोपना विरहथी आठ गुण तेनेज प्रगट थायते आत्मा त्रण प्रकारनो होयते एक बाह्यात्मा, बीजो अंतरात्मा, अने त्रीजो परमात्मा, आत्मबुद्धिथकी जे कायादिकनुं ग्रहण थायते, ते बाह्यात्मा कहिये शरीरादिकनो अधिष्ठायक जे चेतन ते अंतरात्मा कहिये, अ ने जे सर्व उपाधिरहित शुद्ध आनंदमय होय ते परमात्मा कहिये यत् “आत्मधिया समुपात्तकायादि कीर्त्यते अत्र बहिर्गात्मा कायादेशमधिष्ठायको नव त्यतरात्मा तु चिद्रूपानंदमयो नि शेषोपाधिवर्जित शुद्ध अप्रत्यक्षोनतगुण परमात्माकीर्त्तितस्तदङ्गैरिति योगशास्त्रे “ केटलाएक एम कहेते के, जे मिथ्यात्वा दि परिणामवान होय ते बाह्यात्मा कहिये, जे सम्यक्तादि परिणामवान होय ते अंतरात्मा कहिये, अने जे केवल ज्ञाननिधान होय ते परमात्मा कहिये. मिथ्यात्वादि त्रण गुणगणा सुधी बाह्यात्मा कहेवायते, अविरतिसम्यग्दृष्टिनाम ना चोया गुणगणाथी लईने क्लीणमोहनामना वारमा गुणगणासुधी अंतरात्मा कहेवायते, माटे मिथ्यादृष्टिने पण निश्चयथी सम्यग्दर्शन तथा केवल ज्ञान ठे ते शक्तिएकरी अंतरात्मता तथा परमात्मताने पामेते केमके, अविरति सम्यग्दृष्ट्यादिकने पण निश्चयथी केवल ज्ञान ठे अने बाह्यात्मा ते नूतपूर्वनये करी कहेवायते केमके. तेने मिथ्यादर्शन पर्याय पूर्वे थयाते. जेम मधुथी न रेला घटमाथी मधु कहाडी लीया पठी पण मधुघट कहेवायते. ते न्याय अहि पण जाणवो व्यक्ते परमात्माते बाह्यात्मा तथा अंतरात्मा पूर्वनूतनयथी कहेवायते. केमके, तेने मिथ्यादर्शन तथा सम्यग्दृष्ट्यादि ए बन्ने पर्याय पूर्वे थयाते ॥ १२४

तरस्स य सहावसिद्धा, किरिआ गुण करण जोग अहिगिब ॥

कम्मगुणी आविहवे, जुंजणकरण तु अहिगिब ॥ १२५ ॥

व्या० - ते केवलीने गुणकरण आश्री स्वनावसिद्ध क्रिया होयते. तेने केवली ज्ञानादि गुणपर्याय उपजता आत्माथी अन्यकर्मादिकारणनी अपेक्षा नथी कालस्वनावादिके तेना कारणपणे सर्व आत्मातरनूत ठे मनोवाक्कायरूप गुंजना कारण आश्रीने केवलीने कर्मोपनीतक्रिया पण थायते. माटे ते अंशेकरी केवल स्वनावसिद्ध क्रियाज नथी ॥ ११५ ॥

अह सो सेलेसीए, जाणानजदडुसयलकम्ममलो ॥

कणगंव,सवह च्चिय, लद्धसहावो ह्वइ सिधो ॥ ११६ ॥

व्या० - हवे केवली जे ठे ते, शैलेसीअवस्थानेविषे शुद्धध्यानरूप अग्रिएकरी सर्वकर्मरूपमलने दग्ध करीने अग्रिएकरी निर्मल किधेला सुवर्णनी पठे सवथा लब्धस्वनाव यईने सिद्धत्वपर्यायिनो नजनार थायते ॥ ११६ ॥

तस्स वर नाण दंसण, वर सुह सम्मत्त चरण निच्चठिई ॥

अवगाहणा अणता, मुत्ताणं थई अविरियं च ॥ ११७ ॥

व्या० - ज्ञानावरणीयादिक आतकर्मथी जीवने अज्ञानादिक दोष होयते ते नाश पाभ्यापणी सिद्धने आ आठ गुण प्राप्त थायते. - पहेलो ज्ञानावरणीयकर्मना ह्यथी अनंत केवलज्ञान उत्पन्न थायते, बीजो दर्शनावरणीयकर्मना ह्यथी अनंत केवलदर्शन उत्पन्न थायते, त्रीजो वेदनीयकर्मना ह्यथी ह्याधिक सम्यक्त उत्पन्न थायते, चौथो चारित्रमोहनीयकर्मना ह्यथी ह्याधिक चारित्र उत्पन्न थायते, पाचमो आयु कर्मना ह्यथी अह्य स्थिति उत्पन्न थायते, षष्ठो नामकर्म तथा गोत्रकर्म ए वनेनो ह्यथी एक सिद्धावगाहक स्थाननेविषे हीरशर्करानी पठे अनंत सिद्धावगाहना उत्पन्न थायते, अही मोहनीयकर्मना ह्यथी वे गुण उत्पन्न थायते एम कहु, तथा नाम अने गोत्र ए वे कर्मना ह्यथी एक ज गुण उत्पन्न थायते एम कहुते, ए ठेकाणे स्वपरिजापाज शरण ठे ॥ ११७ ॥

धिरयावग्गहणाठ, पत्तेअं नामगोत्तकम्मखए ॥

चरणंविअ मोहखए, इअ अठ गुणत्ति विति परे ॥ ११८ ॥

व्या०.- केटलाएक मोहनीयकर्मना ह्यथी एकज चारित्रगुणमानेठे, तथा नामकर्मना ह्यथी आत्मप्रदेशस्थिरतारूप गुण कहेठे, तेसज गोत्रकर्मना

कथ्यथी अवगाहना गुण मानेते ॥ ११७ ॥ अ० जे आचार्य सिद्धने चारित्र गुण नथी मानता, ते सूत्रतुं अवलंबन करीने पूर्व पद्ध करेते -

नणु सिद्धांते सिद्धो, एणो चारिती अ एणो अचारिती ॥

अणित्तं ववहारणया, णित्तं होई चारिती ॥ ११८ ॥

व्या०.- “सिद्धे एणो चारिती एणो अचारिती” ए सूत्रनेविषे सिद्धने चारित्री नो अचारित्री कह्योते, एवु वचन तो चारित्र न होय तो संजवे, जेम नव्यत्व न ही होवाथी नव्यत्वने ठेकाणे अनव्यत्व कहेवायते, तेम ठता सिद्धना गुणोमां चारित्रनी गणना केम कीधीते ? ॥ ११८ ॥ अ० कोईएक ए सूत्रतुं समाधान करेते -

नणु इह देसणिसेहे, एणो सद्धो तेण तरुस देसरुस ॥

अणु णिसेहो किरिया, रूवरुस ए सतिरूवरुस ॥ १३० ॥

व्या०.- “एणो चारित्री एणो अचारित्री” ए वाक्यमाना “नो” शब्दथी देश नो निषेध थायते एटले चारित्र वे प्रकारतुं होय ते, एक क्रियारूप ने बीजो परिणामरूप ते तेओमानां क्रियारूपचारित्रनो सिद्धनेविषे निषेध ते, परतु शक्तिरूप चारित्रनो निषेध नथी, एम जाणवु ॥ १३० ॥ अ० केवलीनेविषे क्रियारूप चारित्र ते, परतु शक्तिरूप चारित्र नथी एम कहेवु नही ते कहेते -

जइ किरियारूवं चिअ, चारित्त एव णायपरिणामो ॥

तो किरियारूव चिअ, सम्मतं णायपरिणामो ॥ १३१ ॥

व्या०.- जे प्रेहोत्प्रेह्यादिक्रियाते, ते चारित्र कहिये, अने तडुपयोगरूप चारित्र ते जावचारित्र कहिये, जावचारित्र ज्ञानरूपज ते. ल्यारे निशकताद्याचाररूप जे क्रिया, तेज सम्यक्त कहिये, अने श्रद्धानपरिणाम ते ज्ञान कहिये, एम निर्णय करता ज्ञान तथा दर्शननो जेद थाय नही, ज्यारे आत्मगुणरूप सम्यक्त ते ल्यारे चारित्र पण आत्मगुणरूप केम न कहिये ! अतएव मरुदेवादिकने बाह्याचारविना पण चारित्र सजवेते ॥ १३१ ॥ अ० “इह जविए जंते, चरित्ते परजविए चरित्ते, तडुनयजविए चरित्ते गोयमा, इह जविए चरित्ते, एणो परजविए चरित्ते एणो तडुनयजविए चरित्ते” एवा जगवती सूत्रना वचनोए करी चारित्र जवानजुगामी कस्युते माटे मोहनेविषे चारित्र संजवे नही, एम जे कहेते, तेतुं समाधान आवीरीते ते -

जं पुण तं इह जविकं, तं किरियारूपमेव पोयवं ॥

अहवा जवो ए मुक्को, एो तम्मि जवे इअं अहवा ॥ १३१ ॥

व्या- जे चारित्र इह जविक कहुते, ते क्रियारूप जाणवुं; अने बीजुं जे मोहनीयकमेना कथयी उत्पन्न थायते ते चारित्र मोहनेविपे हांयते, तेनी अमे प ए ना कहेता नयी, अथवा मोहना जवमां विवहा करी नयी माटे इह जविक चारित्र कहुते, अथवा मोहनेविपे चारित्र तो ठे, परतु कर्मनिर्जरारूप प्रयोजन तिहां नयी, तेथीज इह जविक कहुते ॥ १३१ ॥

एय मोक्कसुहे लक्षे, तयणुघाणस्स हंदि वेफह्मं ॥

तक्कारणस्स इहरा, नाणस्स वि होइ वेफह्मं ॥ १३२ ॥

व्या० चारित्रतुं फल मोह ठे, ते पाम्या पठी चारित्र रहेतु नयी एम कहेतुं नही अन्यथा ज्ञानतुं फल विरति ठे, ते पाम्या पठी चारित्र रहेतुं नयी, एम कहेतुं न ही; अन्यथा ज्ञानतुं फल विरति ठे, ते पाम्या पठी ज्ञानपण संजवे नही. ज्यारे सिद्धने ज्ञानतुं फल निश्चयथी लोकालोकप्रकाशरूप ठे, त्यारे चारित्रतुं फल पण निश्चयथी शुद्धात्मस्वजावानुजवलक्षण शासारू न हांय. ॥ १३२ ॥

एव पडसाजंगो, अहियावहि पूरणंमि चरणस्स ॥

सावा किरियारूवे, सुअकरणे जं करंमिति ॥ १३४ ॥

व्या० सिद्धने जो चारित्र मानिये तो यावळीवतानी प्रतिज्ञानो जंग थरो. ए म पण न कहेतुं. केमके, ओठा काले प्रतिज्ञानो जंग थाय ठे; पण अधिक का ले प्रतिज्ञानो जंग न थाय. अथवा ते प्रतिज्ञा क्रियारूपचारित्रनीयज जाणवी. केमके, " करेमि जते " एसत्र श्रुतकरणार्थ कहुते ते श्रुतकरण गुंजनाकरण रूप चारित्रज अवलंबीने प्रवर्ते ठे गुणरूप चारित्र ते आत्मस्वरूप ठे मोहवि रहथी तेनो आविर्भाव मात्र थायते. ॥ १३४ ॥

अह चरण मनुघाणं, तं ए सरीरं विणत्ति जइ बुद्धी ॥

तेण विणा नाणाई, ता तस्स हेऊअं पत्त ॥ १३५ ॥

व्या० जो चारित्र अनुष्ठानरूपठे, ते शरीरविना सिद्धनेविपे सजवे नही. एम जो कहिये तो शरीरविना ज्ञानादिक पण सिद्धनेविपे केम संजवे! पूर्वावस्थामां शरी रथी उत्पन्न अजा ज्ञानादिकना नाशना कारणविना सिद्धने ध्रुव कहियेठे. ॥ १३५ ॥

किरिया फलउदयिगी, खड्ग्रं चरणं वि दोहू मह जेउ॥
सातेण वञ्चचरणं, वञ्चंतरियं तु परिणामा ॥ १३६ ॥

व्या० बीजूं क्रिया ठे ते शरीरनामकर्मना उदयथी ठे, शरीरविना क्रिया था य नहीं. शरीरवने चारित्ररूप क्रिया थायठे ते बाह्यचारित्र कहेवायठे एवा बाह्यचारित्ररूप शुद्ध जैनसमाचारीरूप क्रियानुं सेवन करीने अजब्य जीव पण न वमा ग्रैवयकसुधी जायठे, एवो बाह्य चारित्रनो महिमाठे अने केवलीने तो ह्या यिक चारित्र कद्यठे माटे ते बाह्यचारित्र कहेवाय नहीं; कितु ते शुद्ध आत्मपरिणामरूप होवाथी ए अंतरग चारित्रज कहेवाय ॥ १३६ ॥

आया खलु सामाइय, आया सामाइअस्स अन्नोत्ति ॥
तेणेव इमं सुत्तं, नासइ तं आयपरिणामं ॥ १३७ ॥

व्या० “ आया सामाईए आया सामाइअस्स अछे ” ए सूत्र पण चारित्रने आत्मपरिणामरूपज कहेठे परतु बाह्यक्रियारूप नथी कहेता ॥ १३७ ॥

एय खड्ग्रं विचरित्तं, जोगिणिरोहेण तं विलयमेई ॥
असह विहल पत्तो, विरहो चारित्तमोहस्स ॥ १३८ ॥

व्या० केवलीने जे ह्यायिक चारित्र उत्पन्न थायठे, ते ज्यारे योगनो निरोध करी ने मोहनेविपे गमन करेठे, तेना प्रथमसमयमा नाश थायठे एम कहेवुं नहीं. केमके, ह्यायिकजावनो नाश थतोज नथी जो एम न मानिये अने ह्यायिकजावनो नाश मानिये तो चारित्रमोहनीयकर्मनो नाश कहेवाउं नहीं तेम ठतां वलेकरी नाश अगीकार करथु तो पण ते निरर्थक थउं केमके, चारित्रमोहनीयकर्मना नाशथी ह्यायिक जावतो उत्पन्न थयोनही ल्यारे ए नाशपणुं शु काम नुं? जेम ज्ञानावरणीयकर्मना नाशनुं फल केवल ज्ञान ठे, तेम चारित्रमोहनीयकर्मना नाशनुं फल यथाख्यात चारित्र ठे ते जो सिद्धनेविपे न होय, तो मोहनीयनो नाश निष्फल कहेवाउं ॥ १३८ ॥

तेणं सुद्धवउंगे, चरणं नाणानु दसणं वन्नं ॥

कारणकज्जविजागा, सततमिय कि न सिद्धेसु ॥ १३९ ॥

व्या० ते कारण माटे शुद्धोपयोगरूप चारित्र यद्यपि उपयोगरूपताज्ञानथी अन्यथा ठे, तथापि तेअोमा कारणकार्यजावनेद ठे ज्ञान चारित्रनुं कारण

ठे, तेम चारित्र ज्ञानतुं कारण ठे; जेम सम्यक्त तथा ज्ञानना विषयोमां जेद न थी, अर्थात् वस्त्रेनो एकज विषय ठे, तथापि तत्वरोचकरूप ते ज्ञान कहेवायठे, तथा तत्त्वरुचिरूप ते सम्यक्त कहेवायठे एवो वस्त्रेनो जेद ठे तेम ज्ञान अने चारित्रनो पण जेद जाणवो तेमज ज्ञानावरणीयादिक कर्मोना जेद पण संजवे ठे एवी रीते ज्ञानथी अन्य चारित्र उपयोगरूपने ज्ञानथी अनन्य अनेकांतस्वरूप सिद्धनेविषे केम न थाय ॥ १३९ ॥ अ० ए प्रमाणे सिद्धनेविषे चारित्रनी स मर्थना करी, ते उपर सिद्धांतपद्धने अवलंबीने पूर्वपद्धी समाधान करते.

एव समाहाणविही, जो मूलगुणेषु हुज थिरजावे ॥

सो परिणामा किरिआ, जुंजणकरणं पडिहंतो ॥ १४० ॥

व्या० मूलगुणनेविषे जे स्थिर जावरूप ठे, तेज चारित्र क्रियारूप कहेवुं. के मके, ते मनोवाक्काययोगरूप जुजनाकरणनी अपेक्षा करते कोई पूठे के, एम कह्याथी वीर्यरूप चारित्र थाय. ते संजवे नही जेम ज्ञानाचारादिकथी ज्ञाना दिक अन्य ठे, तेम चारित्राचारथी चारित्र पण अन्यज संजवे तेने एम कहेवुं के, जो एम कहिये तो वीर्याचारथी वीर्य पण कां अन्य न कहिये। जो कहेशो के, योगरूप चारित्र होय तो ते उपशमिक जावे केम थाय। केमके' योग ते नामकर्मना उदधिकजावे वनेंठे उपशमिक जाव तो मोहविना अन्य कर्मनो था यज नही. एम पण न कहेवुं, केमके, योगपरिणामविज्ञेप पण चारित्रमोह नीयकर्मना उपशमादिकनी नियमेंकरी अपेक्षा करते ते उपशमादिक जावेज कहिये, केमके, प्रधाननी अपेक्षाए व्यवहार होयठे अतएव इंद्रियपर्याप्ति उ दय जघन्य पण इंद्रियप्रधाननी अपेक्षाए शास्त्रमां क्वायोपशमिक कहेवायठे. ॥ १४०

असह वक्कजडाणं, चंभाणं चंमरुहपन्नईणं ॥

वेणसिया चारित्तं, सुच्चुवउंगोत्ति काऊणं ॥ १४१ ॥

व्या० जो योगस्थैर्यरूप चारित्र न कहिये, अने शुद्धोपयोगरूप चारित्र क हिये, तो वक्क जमने चारित्र केम संजवे? केमके, तेने तथाविध मायां ते अ शुद्धोपयोगरूप ठे अने ते तो शुद्धोपयोगनो जेद ठे, तथा क्रोधमोहनीयक र्मना परवज्ञे जे चमरुडाचार्यादिक सहजे कोपनशील ठे, तेने पण चारित्र केम संजवे? केमके, तेने पण अशुद्धोपयोग ठे. [मूलगुणनेविषे योगस्थैर्य ते तेने पण संजवे. जेम वज्र अग्निएकरी कल थाय, तो पण वज्रपणुं मूके नही. जे

म यथाविध कपायथी अस्थिरता पण कपायपरिणति प्रमादरूप तेने थयो, तो पण योगस्थैर्यनो घात थाय नही. जो योगक्रियारूप चारित्र कहिये तो ते मरुदे वादिकने केम संजवे? एवो संदेह पण न करवो केमके, मरुदेवादिकने पण संसारनिवृत्तिरूप मनोयोगपरिणतियुक्त ठे उक्तंच “नगवद्दर्शनानंद, योगस्थै र्यमुपेयुपी, केवलज्ञानमम्नान, माससाद तथैव सा” इति योगशास्त्र वृत्तौ ॥१४१॥

चरणं जइ उवउंगो, जिणाण ता हृति तिन्नि उवउंगो ॥

दोसु अ अंतप्रावे, तं तिअस्स पकप्पणा मोहा ॥१४२॥

व्या० जो शुद्धोपयोगरूप चारित्र कहिये, तो केवलीने आ त्रण उपयोग हो वा जोइये. ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग, तथा चारित्रोपयोग इम सामान्यथी प ए तेर उपयोग थवा जोइये. अने शास्त्रोनेविषे तो बार, उपयोग कह्याठे ज्ञान तथा दर्शनमांज चारित्र जेलिये तो त्रीजु कयु चारित्र कहीछु जे कहिये ते प्रयासमात्र थाय. जो साकारोपयोग चारित्र जेलिए तो साकारोपयोगना आठ जेद पण सजवे उपयोगरूप चारित्र मान्याथी इत्यादिक अनेक दूषण थाय ॥१४३॥

उ० जो वीर्यरूप चारित्र कहिये तो पण शैलेशी अवस्थानेविषे ते केम सजवे! केमके, ते समयनेविषे प्रवृत्तिरूप वीर्य नथी एम जे कहेठे, तेनु समाधान करेठे.

सेलेसीए जत्तो, णिवित्तिरूवो सचेव थिरजावो ॥

एय सो सिद्धाणं पिय, जं तेसि वीरिअ णत्ति ॥ १४३ ॥

व्या० शैलेशीअवस्थानेविषे यद्यपि रूप यत्न नथी, तथापि योगनिरोधथी नि वृत्तिरूप यत्न ठेज, तेज परम स्थिरजावरूप चारित्र ठे, ते स्थिरजाव सिद्धने नथी, केमके तेनो वीर्य नथी, माटे चारित्रने दानादिक पांच लब्धिएं ह्याधिक जा व सादिसात कह्याठे, तथा सूत्रमा पण सिद्ध अवीर्य कह्याठे ॥ १४३ ॥

उ० जो चारित्र क्रियारूप कहिये, तो अक्रिया मोक्षकारण कही केम संजवे? यत “साए जते अकिरिआ कि फला, गोयमा, सिद्धगमणपक्कवसाणफला पन्नत्ता” एहवु जे कहेठे, तेनु समाधान करेठे -

अंते अ अंतकिरिआ, सैलेसी अकिरियत्ति एगठा ॥

नाणकिरिआहि मोस्को, एत्तो चिअ जुज्जए एवं ॥१४४॥

व्या० अंतक्रिया, शैलेशी तथा अक्रिया ए सर्व शब्द एकार्थक कहा ठे अत क्रिया एटले सकलकर्मध्वसरूप ठेनुं प्रयोजन; जेथी कोई अन्य क्रिया बाकी रहे

नहीं ते; शैलेश एटले मेरुपर्वत, तेनी पठे जे निश्चल अवस्था ते शैलेशी कहेवाय, अने जे अवस्थानेविषे प्रवृत्तिरूपक्रिया न होय ते अक्रिया कहेवायठे. अतएव “ज्ञानक्रियान्यां मोक्ष” ए वचन युक्त ठे. केमके, सर्व संवररूपक्रिया अक्रिया रूपज ठे ॥ १४४ ॥ उ० को३ आशंका करेते

नणु जोग निरोधेणं, चारित्तं सासयं पर होऊ ॥

असुह तेण ए मोक्षो, उप्रव काले असंतेणं ॥ १४५ ॥

व्या० परमार्थताथी चारित्रनो प्रतिपत्ती यद्यपि चारित्रमोहनीयकर्म ठे, तथा पि जेम चोरनी साथे रहेनारो अचोर पण कर्मोक्ति थायठे, तेम मोहना सहचारथी योग पण चारित्रना विरोधी ठे. माटे योगना निरोधेकरी परम यथाख्यातचारित्र शैलेशीने चरमसमये ऊपजे ते शाश्वतचारित्र सिद्धने पण होयठे जो ते चारित्र ते समयनेविषे उत्पन्न थईने आगल मोक्ष थवाना समये नाश पामतु होय तो ते उत्पन्न थवानुं प्रयोजन छुं? तथा जो कार्यना समये कारण न होय तो कार्यनी उत्पत्तिपण केम थाय? ॥ १४५ ॥

केई बिति सुणीणं, सहावसमवधिई ह्वे चरणं ॥

तं लक्षसहावाणं, सिद्धाण सासयं जुत्तं ॥ १४६ ॥

व्या० केटलाएक कहेठे के, पूर्वोक्त दोपने लीधे शुद्धोपयोगरूप चारित्र थाय नहीं. स्वनावसमवस्थानरूप चारित्र होयठे ते आत्मस्वजाव अविख्यादि दशा ए आत्तादन करी लीधु ठे ज्यारे चारित्रमोहनीयकर्मनो विजय थायठे, ल्यारे ते आत्मस्वजाव प्रगटेठे. ते लब्धस्वजाव सिद्धने शाश्वतरूप चारित्र युक्त ठे. ॥१४६॥

उ० ए कहेला परमतनुं समाधान करेते -

चरणरिउपो ए जोगा, अठसमाएण सबसंवरण ॥

सिद्धे तम्मि सहावे, समवघाणंति सिद्धंतो ॥ १४७ ॥

व्या० जो एम कहिये के, योगचारित्रना विरोधी ठे, तेथी योगनो निरोध कखा थकी परम चारित्र ऊपजे ठे. ए कहेवु योग्य नथी. केमके जो सहचारथी योग चारित्रना विरोधी थाय, तो दर्शनना पण विरोधी थवा जोये तेम तो न कहेवा य ज्यारे शैलेशीअवस्थानेविषे सर्व संवर कहेवाय ठे, ल्यारे तेज समयनेविषे सकल कर्मनिर्जरा कारण चारित्र ठे, एवा अजिप्राये स्वजावसमवस्थानरूप चारित्र पणसिद्धने कहेवुं जोये के जो योगपरिणामथीनिन्नस्वजाववान चारित्र सिद्धहोय ॥१४७॥

उज्जुसुएण मएणां, सेलेसीचरमसमय जावित्ति ॥

अतसमउं च्चिय जहो, हेऊ हेऊस्स कज्जम्मि ॥ १४८ ॥

व्या० एम जे कस्युठे के, शैलेसीना ठेला समयनेविपे चारित्र उपजेठे, ते ऊज्जुसूत्रनयनामते कृष्णपर्याय जंगुरठे तथा कारणनो अंत्यसमयज कार्यनो हेतु ठे ए अनिप्रायेकरी मोहना कृष्यथीज सादिसात क्वाधिकनावरूप बीछुं चारित्र उ पजे ठे ॥ १४८ ॥

एय चरणमोहबंधो, सिद्धाण अ चरणाण संताणं ॥

अविरय पच्चउं सो अडप्पसंगो ह्वे इहरा ॥ १४९ ॥

व्या० सिद्धने चारित्र नही होय तो तेने चारित्रमोहनीयकर्मनो बंध थवो जोये, माटे एम न केहेबु केमके विरति अने अविरति ए वे स्वतत्र परिणाम ठे ॥ १४९ ॥

जंच जिअलस्कण ते उवइठ तं लस्कणं लिग ॥

तेण विणा सो जुज्जइ धूमेण विणा दुआ सुव ॥ १५० ॥

व्या० “नाण च दसण चेष, चरित्तं च तवो तहा, वीरिअ उवउंगो य, एय जीअस्स लस्कण” एवीरीते श्रीउत्तराध्ययनसूत्रनी गाथाएकरी जीवतुं लक्षण चारित्र कस्युठे माटे ते सिद्धने पण होबु जोये एम कहेबु नही केमके चारित्र जे ठे ते उपयोगनी पठे यावत् इव्यजावि लक्षण नथी आही लक्षणगदनो अर्थे लिग जाणवो जेम धूम अग्निनो लिंग ठे तेम चारित्र जीवनो लिंग कस्युठे जेम धूमविना अग्नि तस जोहनेविपे होयठे, तेम चारित्रविना जीवपण होयठे, एमा काई विरोध नथी, अतएव अतरग लक्षण कहीने बाह्य लक्षण कहेवाने अर्थे उपर कहेली गाथा उत्तराध्ययनबृहहृत्तिनेविपे अवतरण करेली ठे ॥ १५० ॥

एय णिअयस्स नाणे अनेयवित्ती कहं चरणविरहे ॥

संतं चिअ पन्निवज्जइ फलेण ज सोय सत वि ॥ १५१ ॥

व्या० जो सिद्धनेविपे चारित्र न होय तो ज्ञानमा चारित्रनी अनेद वृत्ति केम संजवे? केमके, सकलादेशे ठतांज सर्व धर्म एक धर्मवाचक शब्दे बोले एवी आशका पण न करवी, केमके, ते समयमा चारित्र नथी तो पण चारित्रतुं फल ठे. माटे चारित्र ठे एम मनायठे, ए नयना मते चारित्रना फलविना ठते चारित्र पण अठतु माने ॥ १५१ ॥

एषि आयाचरणं चिञ्च आया सामाङ्यंति वयणेणं ॥

दवियाया नयणाए चरणाया सवथोकुत्ति ॥ १५२ ॥

व्या० “आया समाङ्गं, आया सामाङ्ग्यस्स अङ्के” ए सूत्रनेविपे आत्मपर्यायरू
प जे चारित्र्ये, ते इव्यार्थिक नयना आदेशे आत्मरूप कहुते, माटे ते चारित्र
यावत् इव्यन्नावी आत्मस्वभावरूप न जाणवुं केमके, इव्यात्मा, ते नजनाए चा
रित्रात्मा कहुते. तथाहि “ जस्स दविआया तस्स चरिताया नयणाएत्ति ” एवी
रीते जगवतीसुत्रमां कहुते; तथा आत्माना जे आव जेद कह्या ठे, तेओमां चा
रित्रात्माने सर्वस्तोक कहुते, माटे आत्मा तेज चारित्र एम न कहेवुं ॥ १५२ ॥

एतो च्चिय सिद्धाणं, खइअम्मि नाणदंसणगाहसं ॥

सम्मत्तजाइगहणं, वदूण दोसा ण संकंती ॥१५३ ॥

व्या० वली सिद्धनेविपे चारित्र नथी, ते माटेज सिद्धने ह्याइकजावमां ज्ञान तथा
दर्शन ए वेंज कह्याठे जो कोई कहेजे के, सम्यक्तसमान चारित्र्ये. तेथी सम्यक्तना ग्रह
णथी चारित्र्युं पण ग्रहण थायठे एम कहेवु नही. केमके, शुद्धोपयोगरूप चारित्र्यनो
पूर्वेज निपेय कखोठे अने योगस्थैर्यरूप तेहनीज व्यवस्थापना करीठे ॥ १५३ ॥

अम्महं णाज्जिणिविसा, सिद्धाणं अ चरणस्स पक्कम्मि ॥

तह वि ज्जिणमो रतीरइ, जं जिणमयमन्न हाकाउं ॥१५४ ॥

व्या० सिद्धने चारित्र नथी, ए पद्धमां यद्यपि अमने अज्जिनिवेश नथी, तथा
पि आटलु व्यवस्थापन आटलासारू करिये ठैये के, श्रीवीतरागनां वचन अन्यथा
न थाय ॥ १५४ ॥ अ० एवी रीते सिद्धने चारित्र नथी, एवी समर्थना करी, व्यारे
सिद्धना गुणोमा चारित्रनी गणना केम करीठे ? एवा पूर्वपद्धतुं समाधान करेठे -

जइवि जइमो सिद्धंतो, इठं केसिंवि तद्वि सूरीणं ॥

सिद्धाणं चारित्तं, तेसिमए तं मए मिहिञ्चं ॥ १५५ ॥

व्या० यद्यपि सिद्धने चारित्र नथी; एवो सिद्धंत ठे, तथापि केटलाएक आचा
र्यो चारित्र मानेठे, यत “ अन्येतु दानादिलब्धिपंचकं चारित्रं च सिद्धस्यापीडंति,
तदाचरणस्य तत्राप्यन्नावात्, आचरणानावेपि च तदसत्त्वे क्लीणमोहादि प्वपि
तद सत्त्वं प्रसगात् ॥ ततस्तन्मते नचारित्रज्ञावना सिद्धावस्थायामपि सद्भावेनापर्यवसति
तत्त्वादकस्मिन् द्वितीयजग एव ह्याधिको ज्ञावो न शोपेपु त्रिष्वपि ” इति विज्ञोपावश्यक

टीकायां ” ए आचार्यना मतेकरी अमे सिद्धना गुणोमा चारित्रनी गणना करीते. ए मत जे ठे ते पूर्वमतथी विरुद्ध ठे माटे अप्रमाणजठे एम कहेवुं नही केमके, अविद्विन्नपरंपराए आवेलां जे ए वे मत, ते अनतिशय पुरुषथकी निवारण थाय नही जो कदेशो के, एक एकनी युक्तिनी समर्थना करता प्रत्येकमां दोष आवशो, एवो विचार पण न करवो केमके, जिनवचनऊपर अरुचि थयाविना सम्यक्तनो ब्रंश थतो नथी ॥ १५५ ॥

तेसि सवा किरिआ, सहावसिद्धा पणठ कम्माणं ॥

वहंपि कारगाणं, एगठेजं समावेसो ॥ १५६ ॥

व्या० ते सिद्धने सर्व क्रिया स्वभावसिद्ध ठे, एक पण विज्ञाव क्रियानथी के मके, कर्मरहित सिद्धने ठ कारक एक अर्थे विश्रांति पामेठे. ते कहेठे - कथंचित ज्ञानथी अन्यथा अत्माइतिक्रिया स्वतंत्रपणे करेठे माटे आत्मा जे ठे तेज कर्ता ठे, ए पहेलुं कर्तानामा कारक इतिक्रिया स्वतंत्र आत्मानेविषे प्राप्यमाण ठे, मा टे तेज आत्मरूप कर्म ठे, ए बीजुं कर्मनामा कारक जेणे करीने ज्ञानस्वभावथी तथा इतिस्वभावे आत्मा क्रिया करे ठे, तेज आत्मरूप करण होवाथी आत्माज कर्ता ठे एम जाणवु ए त्रीजु करणनामा कारक जे स्वानुफलवेद्यने अर्थे आत्मा इतिक्रिया करेठे, तेज आत्मरूप संप्रदान ठे, ए चोथुं संप्रदाननामा कारक जे पूर्वज्ञेयाकारने विश्लेषे उत्तरज्ञेयाकारमिश्रित ज्ञानस्वभाव आत्मा नजेठे, तेज आत्मस्वभावरूप अपादान ठे ए पाचमुं अपादाननामा कारक तथा जे ज्ञानरूपगुणवुं नाजन जे आत्मानामे इव्य तेज आधार ठे एम जाणवु, ए ठठुं आधारनामा कारक कस्यु ए ज्ञान आश्री ठ कारक कहा, एमज सर्व बीजा धर्मो आश्री जाणी लेवु ॥ ५५६ ॥

ते पुण पनरस जेआ, तिठातिठाय सिद्धजेएणं ॥

तठ इथीणं सिद्धिं, ए खमइ खवणो अजिणिवेसी ॥ १५७ ॥

व्या० ते सिद्धना पदर जेद-कहाठे, यत तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, तीर्थकर सिद्ध, अतीर्थकरसिद्ध, स्वयंबुद्धिसिद्ध, प्रत्येकबुद्धिसिद्ध, बुद्धबोधितसिद्ध, स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, स्वलिंगसिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, गृहलिंगसिद्ध, एकसिद्ध, तथा अनेकसिद्ध हवे एनो अर्थे करेठे तीर्थ एटले जे चतुर्विध संघ, अथवा प्रथम गणधर उत्पन्न थया पठी जे सिद्ध थया ते तीर्थसिद्ध, तीर्थनी उत्प

ति यथा पहेला अथवा तीर्थनो विठेद यथा पठी जे सिद्ध यथा ते अतीर्थसिद्ध, तीर्थकरपदवी नोगवीने जे सिद्ध यथा ते तीर्थकरसिद्ध, सामान्य केवली ठतां जे सिद्ध यथा ते अतीर्थकरसिद्ध, बाह्य कारण दीठाविना जे पोतेज जातिस्मरणा दिक्थी प्रतिबोध पामीने सिद्ध यथा ते स्वयंबुद्धिसिद्ध, प्रत्येक बाह्य कारण वृ पनादि देखी प्रतिबोध पामीने जे सिद्ध यथाते ते प्रत्येकबुद्धिसिद्ध, बुद्धजे गुर्वादिकथकी बोध पामीने सिद्ध यथा ते बुद्धबोधितसिद्ध स्त्रीलिंगना त्रण प्रकार ठे. वेद, शरीरनिवृत्ति, तथा पथ्य, ए त्रणमां अत्रे शरीरनिवृत्तिनो अधि कार लेवो वेद तथा पथ्यनो अधिकार नथी केमके, ए वे प्रकार मोहना अंग नथी माटे शरीरकरी वर्त्तमान ठतां जे सिद्ध यथा ते स्त्रीलिंगसिद्ध; पुरुष शरीर करी वर्त्तमान ठतां जे सिद्ध यथा ते पुरुषलिंगसिद्ध, नपुसकलिंगे करी वर्त्तमान ठता जे सिद्ध यथा ते नपुंसकलिंगसिद्ध; रजोहरणादिकस्वलिंगनेविपे व्यवस्थित ठता जे सिद्ध यथा ते स्वलिंगसिद्ध, परित्राजकादिक चार अन्यालिंगनेविपे जे सिद्ध यथा ते परलिंगसिद्ध, गृहस्थलिंगनेविपे वर्त्तमान ठता जे सिद्ध यथा ते गृहस्थलिंगसिद्ध जे एकला सिद्ध यथा ते एकसिद्ध, अने जे अनेकनी साथे सिद्ध थाय ते अनेकसिद्ध कहेवायठे. ए पंदर जेदमाना स्त्रीलिंगसिद्धने अजिनिवेगने वश यथा थका दिगंबरीओ मानता नथी ॥ १५७ ॥

तस्सम्मयथीसिद्धा, जे पुषिं चैव स्त्रीणथीविच्चा ॥

एवं पुरिस एणुंसा, थी पज्जाएण णो सिद्धी ॥१५८ ॥

चरणविरहेण हीण, तणेण पाव पयडीण वाहुद्धा ॥

मणपगरिसविरहाउं, संघयणाजावउं चैव ॥ १५९ ॥

ध्या० ते दिगंबरीओनुं आहुं मत ठे के, स्त्रीलिंगसिद्ध तो कहिये के जो पूर्व स्त्रीवेदनो ह्य करी अने पठी वन्ने वेदनो ह्य करी सिद्ध थतां होय, तेमज न पुसकसिद्ध पण तो मानिये के जो प्रथम नपुसकवेदनो तथा पठी वन्ने वेदनो ह्य करी सिद्ध थता होय, शरीर करितो पुरुषज सिद्ध थायठे; परंतु स्त्रीना प र्याये करी सिद्धताने पमातु नथी केमके स्त्रीने चारित्र होतु नथी चारित्र जे ठे ते शुद्धोपयोगरूप आचेलक्यमूलगुणमयठे, अने स्त्रीतो अचेलक थायज नही. तथा पुरुष थकी स्त्रीहीन होवाथी पण तेने सिद्धतानो संभव नथी नपुसकत्व तथा स्त्रीत्व महापापे करीने अर्जायठे, एम पापप्रकृतिनी वाहुद्वयताने लीये पण स्त्रीने

मुक्ति थाय नहीं तथा जेम स्त्रीने सातमी नरक पृथवीए जवायोग्य तीव्र अशुभ म नपरिणाम थता नथी, तेम मुक्ति पामवायोग्य तीव्र शुभमनपरिणाम पण स्त्रीने थता नथी. माटे स्त्री सिद्ध थायज नहीं अने सातमी नरकपृथ्विए स्त्रीथी जवातु नथी, माटे तेने वज्ररूपजनाराच संघयण नहीं होवाथी पण स्त्रीने मुक्तिनो संजव नथी ॥ १५७ ॥ १५९ ॥

एवी दिगंबरीअनी युक्तिने ग्रंथकर्ता दूपण दियेठे -

तमिन्ना वेयखठं, सररीरणिवृत्ति णियमणियउत्ति ॥

चरणविरहाइआ पुण, सबे तुह होइआ सिद्धा ॥ १६० ॥

व्या० दिगंबरीअो स्त्रीसिद्धादिकना प्रसिद्ध अर्थने मूकीने जे अन्य अर्थ करेठे ते संजवित नथी केमके, जेने स्त्रीवेदादिकनो पूर्वज ह्य ठे, एवा नपुसकादिक शरीरेकरी वर्त्ता श्रेणी करे तेनेविपे ठे, माटे “ वीसणपुसगवेया ” इत्यादिक स्व शास्त्रवचन समर्थवाने अर्थे ए कल्पना केवल कदाग्रहरूप जणायठे, जो एम कहिये के, उदीर्णा वेदनोज पूर्व ह्य करवो तो तेनेविपे पण शास्त्रोक्त व्यवस्था संजवे नहीं शास्त्रोमां तो एम कसुठे के, जो पुरुष श्रेणिनो आरज करे तो तेणे पूर्व नपुसकवेदनो ह्य करवो, पठी स्त्रीवेदनो, पठी हास्यादिक ठ प्रकृतिनो, अने पठी पुरुषवेदना त्रण खरु करी तेमाना बे खरुनो एकवार ह्य करवो, अ ने त्रीजो खरु संज्वलन क्रोध मान खपाववो जो स्त्रीए रूपकश्रेणिनो आरज कर वो होय तो तेणे पूर्व नपुसक वेदनो ह्य करवो, पठी पुरुष वेदनो, पठी हास्यादि क ठ प्रकृतिनो अने ठेवट स्त्रीवेदनो ह्य करवो जोये अने जो नपुसके रूपक श्रेणीनो आरज करवो होय तो तेणे पूर्व स्त्रीवेदनो ह्य करवो, पठी पुरुषवेद नो, पठी हास्यादिक ठ प्रकृतिनो, अने सरसेवटे नपुसकवेदनो ह्य करवो जोये इत्यादिक रीति जाणी लेवी ॥ १६० ॥

अ० स्त्रीलिगे सिद्ध थवातु नथी, तेमां चारित्रविरहादिक जे हेतु कह्याठे, ते असिद्धठे, एम कहेठे -

ऐगति यमिन्नीण, उद्धतं संजमो चिया लजा ॥

तासि चरित्तविरहे, चाउवसो कह सघो ॥ १६१ ॥

व्या० स्त्रीने चारित्र न होय तेमां कारण सु ठे ? स्त्रीनेविपे जे उ शीलादिक दोष होयठे ते एकात नथी, केमके, परमशीजवान जे सुशीलसादिक आविकाउ थईठे ते

उनी जगवते पोते प्रशंसा करीते वला स्त्री जेम केटलाएक पुरुष डटते तेम पण महारंज महापरिग्रही देखायते, माटे स्त्रीतुं डटतव कांई एकांतें नथी जो कहेसो के. स्त्रीने लज्जा मटती नथी, माटे चारित्र थाय नही, एम पण न कहेवुं; केमके, नग्नताज चारित्रांग नथी, विधि करीने यमोपकरणोतुं धारण करतां चारित्रनो जंग यतो नथी जो कहेसो के, स्त्रीतुं शरीर हिंसायतन ठे, माटे तेने हिंसा नथी, एक हेवु पण असन्यपणानुं ठे केमके, अशक्यपरिहारस्थलनेविषे हिंसा थाय नही प्रमा दना योगे हिंसा थाय ठे, प्रमादनुं जे व्यपरोपण तेज हिंसा कहिये. वली जो स्त्रीने चारित्र न मानिये तो चार प्रकारनो संघ केम संजवे? जो वेपधारिणी श्रा विकाज साध्वी कहिये तो चारित्र जाण्याविना जे वेपधारण करवुं ए तो मोटी विदंबना कहेवाय! जो कहेसो के, चारित्रलेश स्त्रीने थाय ठे, तो तेमा अमे प ए ना कहेता नथी, पण जो कहेसो के, स्त्रीने चारित्र मोहनुं कारण थाय नही तो ते कटाग्रह मात्र जाणवुं. केमके, अथ्यवसायविज्ञोपेकरी पुरुषनी पठे स्त्रीने पण चारित्रनो उत्कर्ष होयते, एमां कांई विरोधता नथी ॥ १६१ ॥

हीणत्तं पुण माणं, लद्धिनइष्टि वलं च अहिगिञ्च ॥

णो पडिकूलमसिद्धं, तिरियणसारम्मि संतम्मि ॥ १६२ ॥

व्या० स्त्रीने जे पुरुषची हीनपणुं कबुठे, ते जो विशिष्ट पूर्वज्ञाननी अपेक्षा ए कहिये तो ते प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज ठे केमके, तथाविध ज्ञानविना पण गुरुपरतत्रताए माषुपादिक चारित्रना पालणार थयाठे. जो लद्धिनी अपे ह्याए कहिये तो पण प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज ठे, केमके, तथाविध लद्धि विना पण मानुष्यादिक कृतकृत्य थयाठे, जो कृद्धिनी अपेक्षाए कहिये तो पण प्रतिकूल नथी किंतु अनुकूलज ठे अन्यथा तीर्थकरादिकनी अपेक्षाए अमहर्दिक गणधरादिक ठे, तेने मुक्तिनो सजव केम थाय? स्त्री पुरुषने अवय ठे, माटे ते चारित्र कृद्धि करी हीन होवी जोये, एवी आशंका पण न करवी, अन्यथा शि प्यादिक आचार्यादिकने अवय ठे, तेपण चारित्रकृद्धि करी हीन होवा जोये, जो वलनी अपेक्षा कहिये तो तेपण प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज ठे, केमके, स्त्री करतां निर्बल जे पंगुप्रमुख ते पण अव्यवसायविज्ञोपे मुक्ति पामेठे, जो कहेसो के, हीनबलने विशिष्टादिरूप चारित्र केम थाय! एमपण न कहेवुं, केमके, चारि त्र ते यथाशक्ति आचरणारूप ठे, माटे ते स्त्रीने पण संजवे ठे, उक्तंच “ वादिवि

कुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च जिनकल्पमन पर्ययविरहेपि न सिद्ध
विरहोस्ती ” एणेकरी अनुपस्थाप्यपाराचितक प्रायचित्तना अनुपदेशथी स्त्रीने प
ए हीनपणुंठे, ए असंबद्ध जाणवु, केमके, योग्यतानी अपेक्षाए शास्त्रनेविषे वि
चित्रतपनो उपदेश ठे उक्तंच “ सवरनिर्जाराहूपो बहुप्रकारस्तपोविधिशाले
योगचिकित्साविधिरिव कस्यापि कथंचिदुपकारीति ” ॥ १६३ ॥

पावाणं पयडीणं श्रीणिवत्तीइ बंधजणणीणं ॥

सम्मत्तेणेव पए णो तासि पाववहुलत्तं ॥ १६३ ॥

व्या० स्त्रीने जे पापनी बाहुव्यता कहीठे, ते वचन पए मिथ्याठे, केमके, जे
वारे स्त्रीपणुं बाध्युं ठे, तेवारे यद्यपि बहुल पापप्रकृति मिथ्यात्वादिरूप ते ठे,
तथापि ते प्रकृति जेवारे तथाजब्यत्वने परिपाके सम्यक्त गुण पामिने क्य करेठे
तेवारे स्त्रीने पापनी बाहुव्यता नथी जहासुधी स्त्रीशरीर होय, तहांसुधी जो तेना
बंधकारण मिथ्यात्वादिक रहे तो स्त्रीए सम्यक्त पण न पाम्युं जोये जो कदेशो
के, पुरुषथी तीव्र काम पण अथ्यवसाय ठे, माटे नपुसकनी पठे स्त्री मुक्ति पामे
नही, एम पण न कहेवु केमके, तीव्र काम पण अथ्यवसाय विज्ञेप पामे ठे ;
माटे ते मुक्तिनेविषे विघ्नकारक नही होवथी ए हेतु अप्रयोजक जाणवो अन्यथा
स्त्री मुक्ति पामे. केमके, ते नपुसकथी हीनकामठे, माटे तेने पुरुषनी पठे जाण
वी ए हेतु पण अत्रे लागु थायठे ॥ १६३ ॥

एय तासि मए विरिञ्चं असुहं च सुहं विणेव उक्किट्टं ॥

तारिसणियमाजावा तेण हउं चरमहेऊवि ॥ १६४ ॥

व्या० जो कदेशोके, जेम सातमी नरक पृथवीए जवायोग्य स्त्रीने अणुजं म
नोवीर्य नथी, माटे तेने मुक्तिनेविषे जवानो पण तथाविध मनोवीर्य थाय नही.
एम कहेवु नही. केमके, एवो नियम नथी, के, जेटलो अधोगति जवानो अथ्यव
साय थाय तेदलोज ऊर्ध्वगति जवानो अथ्यवसाय थाय. केमके, खुजपरी सर्प
बीजी पृथ्वीसुधी उत्कर्षथी अधोगतिए जायठे, पक्षी त्रीजी पृथ्वीसुधी जायठे
चतुष्पद चोथी पृथ्वीसुधी जायठे. उरग पांचमी पृथ्वीसुधी जायठे स्त्री ठवी
नरक पृथ्वीसुधी जायठे, पुरुष अने मज्ज सातमी नरक पृथ्वीसुधी जायठे,
ए स्त्री तथा पुरुषविना बीजा पूर्वोक्त सर्वे प्राणीओ उत्कर्षथी सहश्रार
आठमां देवलोकसुधी उर्ध्वगमन करेठे एवी रीते यद्यपि स्त्री सातमी नरक

पृथ्वीसुधी जती नथी, तथापि तेने मोहसुखनी प्राप्ति थायठे एमां कोई विरोध नथी. केटलाएक कहेठे के, अधोगतिने परमोत्कर्ष होयठे, ते एकांतताथी संजवे नही. केमके, जेवी कारणनी उत्कर्षता होय, तेवीज कार्यनी उत्कर्षता कहेवा यठे; एवो नियमठे परतु एथी अन्य कोऽ नियम नथी स्त्रीनेविपे जो यु-दादिक महारनरूप कारणनो संजव होय, तो सातमी नरक पृथ्वीसुधी जवाय, तेवुं कोई कारण नही होवाने जीधे स्त्रीथकी ल्यासुधी जवातु नथी, कितु ठवीसुधीज जवायठे, अने पुरुष तथा मत्स्यनेविपे तेवां कारण होवाथी तेओथी सातमी नर क पृथ्वीसुधी जवायठे एवी रीते अधोगतिनेविपे जचासारु पुरुष अने स्त्रीना कारणोनी विलक्षणता होवाथी सरखु गमन थतु नथी, परतु ऊर्ध्वगतिनेविपे जवासारु बन्नेनां कारणो सरखां होवाथी सरखुं गमन थवानो अवश्य संजव ठे जेम पुरुषनेविपे शीलादिक गुणरूप ऊर्ध्वगमनना कारण होयठे तेम स्त्रीनेविपे पण होयठे ए हेतुथीज स्त्रीने वज्ररूपजनाराचसंघयणनो संजव ठे एम न मानवामां कोई युक्ति नथी ए प्रकारे स्त्रीना निर्वाणना निरोधनेविपे दिगबरीओ ना हेतुनो निषेध कखो, हवे स्त्रीनो निर्वाण थवामा अनुमान कहेठे -हरेक वस्तुना अनुमानमा पद्द, साथ्य, हेतु तथा दृष्टांत ए चार प्रकार होयठे. एटले ए चार पदार्थोए करी सिद्ध थएली वस्तुने अनुमित कहेठे, अने एचार पदार्थोए करी सिद्ध थवा योग्य वस्तुने अनुमेय कहेठे जेम के, अग्नियुक्त पर्वत सिद्ध कर वो होय, ते अनुमेय कहेवायठे, अने एज पद्द कहेवायठे अनुमान करती वखते "पर्वतमपद्कीरुत्य, बन्दिमत्त्वंसाथ्यते, धूमत्वात् इतिहेतु, पाकगृहवत्, यत्रयत्रधूमः तत्रतत्र बन्दि" पर्वतनो पद्द करीने तेने अग्नियुक्त सिद्ध करेठे, एमां हेतु पर्वतउपर नीकजतु धूमाहुं ठे, जेम रसोई करवाना गृहमां अग्नि होवा थी धूमाहुं नीकलेठे, केमके, ज्यां ज्या धूमाहुं होय त्यां त्या अग्नि होयठे, ए दृष्टा त ठे. तेम "काचित्स्त्रीव्यक्तिं पद्कीरुत्य, मोहाविकलकारणता साथ्यते, दीहाधि कारत्वात्, पुरुषवत्, येये दीहाधिकारिण ते ते मोहाविकलकारिण." कोईए क स्त्रीनी व्यक्तीने पद्दय करीने तेने मोहना अविकलकारणवत् सिद्ध करेठे; एमा दीहानो अधिकार हेतु ठे, अने पुरुषजातिनी पठे ए दृष्टात ठे. केमके जे जे दी हानो अधिकारी होय ते ते मोहना अविकलकारणवत् होयठे. ॥ १६४ ॥

कीवरस कपिअरस व इत्थिए कपिआइ सिद्धी वि ॥ ए
विणा विसिठ चरिअ तासि तु विसिठकम्मखउं ॥ १६५ ॥
पावं तह इत्थित्तं एय पुसुफलाण केवलीण द्वे ॥ परमा
सुइनुआण एय परमोरालितं देहो ॥ १६६ ॥

व्या० कोई आशंका करे के, जेम जातिनपुसकने मुक्ति थाय नही, तेम स्त्रीने पण मुक्ति थती नथी एम उतां जो कहेशो के, जेम रुत्रिमनपुसकने मुक्ति थायते तेम विद्याप्रयोगादिकेकरी युक्त स्त्रीने मुक्ति थायते; तो तेम पण न सजवे, के मके, स्त्रीने विशिष्टक्रियानुष्ठान होतु नथी, विशिष्टक्रियानुष्ठानविना विशिष्टकर्म नो क्य थाय नही अने विशिष्ट कर्मनो क्य थयाविना मुक्ति थती नथी. तथा स्त्रीपणुं जे ठे ते पापप्रकृतिरूप नदीतुं जरणुं ठे, ते पुण्यरूप सुरतरुना केवलज्ञानरूपफलने सेवन करनारा केवलीनेविषे केम सजवे। अर्थात् पापप्रकृतिरूपस्त्रीने केवल ज्ञान संजवे नही तथा स्त्री परम अशुचिठे तेने परमौदारिक शरीर पण संजवे नही केवलीतुं शरीर तो परमौदारिक होयते तेबुं तो स्त्रीतुं शरीर कहेवाय नही, माटे स्त्रीने केवल ज्ञान केम संजवे? ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

अ० ए आशकाने शुक्तिवडे दूषित करेठे -

एय मयुत्त जम्हा विचित्तजावा विचित्तकम्मखउं ॥ ए
य इत्थित्तं प्राव जिणाण पाए एण इत्ति ॥ १६७ ॥

व्या० स्त्रीने क्रियाविशिष्टविना विशिष्ट निर्जरा न थाय, एम जे वादिए कखु ते अयुक्त ठे केमके, जावविशेषे फलविशेषठे क्रियाविशेषविना जावविशेष न थाय, एमा एकांतता नथी केमके, जो शक्तिनो निग्रह करीने क्रिया करिये तो ज जावनी हानि थायठे, अन्यथा जावनी हानि थती नथी तथास्त्री पणुं पा परूप ठे, एमा पण एकांतता नथी, केमके, सम्यक्तना बलथी मिथ्यात्वादिक पाप नो क्य थायठे एम पूर्वकही आब्या ठैये घणुं करीने तीर्थकरनेविषे स्त्रीपणुं न थी होतुं, एटले बहुधा स्त्री तीर्थकर थती दीगामा आवती नथी तेथी स्त्रीपणुं पाप रूप ठे एम जो कहिये तो विप्रत्वादिक पण तेवाज कहेवा जोये केमके, बहु धा तीर्थकरनेविषे विप्रत्वादिकनो पण अजाव होयठे, अर्थात् घणुं करीने कृत्रि यादिक तीर्थकर थएला दीगामा आवेठे तेथी शु विप्रादिकने मोक्षनो संजव न

। अने परमौदारिक शरीरनो तो पूर्वेंज निपेध कखोठे, माटे ते होय के न होय
री शासारू चर्चा करवी । ॥ १६७ ॥

इय इत्थीणं सिद्धी सिद्धा सिद्धंतमूलजुत्तीहि ॥ ईअं

असद्वहंता चिक्रणकम्मा मुणेअवा ॥ १६८ ॥

व्या० एवी रीते सिद्धातमूलयुक्तिउए करीने स्त्रीने मुक्ति थायठे एवुं सिद्ध कखुं
न ठता जे हठेकरीने ए अर्थनी सद्वहणा करता नथी, ते चिक्रणा कर्मवाजा
णवा एवा प्रकारे स्त्रीनेविपे मुक्तिनी व्यवस्थापन कखाथी सिद्धना पंदर चेदनी
वस्था थई तेथी सप्रसंग सर्व सिद्धतुं स्वरूप कखु सिद्धस्वरूपना वणीनथी परम
वाध्यात्मतुं निरूपण थयुं अने जावाध्यात्मना निरूपणथी ग्रंथार्थ पूर्ण थयो १६८
अ० हवे ग्रंथार्थतुं परम रहस्य कहेठे.—

इयं परमरहस्यं एसो अक्षय्यकणकसवटो ॥ एसा

य परा आणा संयमजोगेसु जो जतो ॥ १६९ ॥

व्या० संयमयोगनो जे उद्यम करवो, तेज सर्व शास्त्रना नयविस्तार जाणवानुं
ल ठे; अने एज परम रहस्यनूत ठे. यत “सध्वेसिं पिण याणं, बहुविहवत्तव
णि सामित्ता, त सवणयविसुद्धं, ज चरणगुणछिउं साहू ” इत्यावश्यकदौ तथा
।।श्रयो नवहेतु स्यात् संवरो मोहकारणं; इतीयमार्हती मुष्टि, खनम्याप्रपंचनम्,
नो अर्थ — प्राणातिपातादिक जे आश्रव ठे, ते संसारतुं कारणठे प्राणातिपा
।।दिकथकी विरमवारूप जे संवर ते मोहतुं कारण ठे, ए परमार्थने विस्तारेकरी
।।णवासारूज सर्व शास्त्र ठे माटे जेणे ए अर्थ जाण्यो ठे ते परमार्थताथी सर्व
।।स्त्र ठे एम जाणवु अतएव उपशम विवेक संवर ए पदनो अर्थ जाणीने चि
।।तीपुत्रे निजअर्थ साथ्यो तथा संयमयोगनो जे उद्यम करवो तेज अध्यात्मरूप
।।नाना की कमोटी ठे, जेम कसोटीए करी सोनानी परीक्षा थायठे, तेम क्रियानुष्ठाने
।।री अध्यात्मनी परीक्षा थायठे. ते अध्यात्मेकरी जे विशुद्धि थायठे, ते वाह्यका
।।णतुं आलस्य करे नही. यत “संयमयोगेसु सया, जे पुण सत विरिद्धा विसी
।।ंति; कहते विसुद्धचरणा, बाहिरकरणालसा हुंति.” इत्यावश्यके तथा एज
।।श्री वीतरागनी परमआज्ञा ठे के, संयमयोगनेविपे यत्न करवो जेणे ए यत्न क
।।यो, तेणे चैत्य कुल गणादिक सर्वतुं कार्य कखुं, एम जाणवु. यत. “चेइअ कुज
।।ण सर्वे, आयरिआणं च पवयणसुए अ; सध्वेसु वि तेण कयं, तव संयमसुद्धममतो

अ० कोईक कहेते के, ज्यां सुधी जीवने नव्यत्वनो सदेह होय त्यांसुधी चारि विपे ते केम प्रवृत्ते ? केमके, अचव्य अनेक क्रियाकरे तेथी तेने कष्टमात्र थाय नु परमार्थथी तेने कोई फलनी प्राप्ति थती नथी, एतुं समाधान करेते -

आसन्नसिद्धिआणं जीवाणं लक्षणं इम चेव ॥

तेण ए पवित्तिरोद्धो नवानवत्तसंकाए ॥ १७० ॥

व्या० जे जीव थोडा जवे मुक्ति पामनार होय तेतुं एज लक्षणवे के, ते विप विपे वैराग्य धारण करीने धर्ममां प्रवृत्ते यत "आसन्नकालनवत्ति, सिद्धिअस्त वस्त लक्षण इणामो, विसयसुहेसु ए रज्जइ, सबडामेण उद्ध, मई" इत्युपदेशमा या माटे चारित्रनेविपे प्रवृत्ति थाय, ल्यारे जीवे पोताने आसन्नसिद्धिकपणुं जा कहेवाय, पठी ते नव्यानव्यत्वनी शकाएकरी शुचप्रवृत्तिनो बाधक केम थाय ? तु साधकज थाय. अने हुं नव्यहुं के अचव्यहु ? एवी जेने शंका उत्पन्न थायते, जीव निश्चये करीने नव्यज जाणवो यत "अचव्यस्यहि नव्य नव्यत्वशकाया नावादित्याचारागटीकाया." ए आशंका तो उलटी चारित्रप्रवृत्तिनो अग ठे, टे तेथी काइ बाधा थती नथी ॥ १७० ॥

अ० केटलाएक परवादी एम कहेते के, मोहोपायनेविपे प्रवृत्ति वैराग्यथीज यते, ते वैराग्य अशुक्तनोगनेविपे सचवेते, माटे नोगनोगव्या पठी तेनो ल्याग रीने जो योगमा प्रवृत्ति करिये तो ते सुखथी थई शकेते, एम कहेनाराने शिक्षा अर्थे कहेते -

जो पुण जोए जोतुं इवोइ ततो अ संयमं काठ ॥ ज

लणम्मि पज्जलित्ता इवड पठा सणिच्चोठ ॥ १७१ ॥

व्या० जे पुरुष नोग जागवीने पठी सयम पालवानी इहा करेते, ते इहा प्र म अग्रिमां पनी बलीने पठी शीतलता पामवानी पठे ठे केमके, नोग नोग राथी तेनी इहा मटती नथी, किंतु अधिक थायते यत "नजातु काम का ताना, सुपनोगेन शाम्यति, हविषा रुषवत्तं व, पुनरेव प्रवर्द्धते" जे सुख जी नोगवेते, ते सुख यद्यपि अनंतवार नोगवाई गया ठे, तथापि मोहनीपक ना दोपने लीधे एम जातेते के, मे ए सुख पूर्वे कोई समयनेविपे नोगव्या नथी त "पत्ता य कामनोगा, कालमपातं इह स उवनोगो, अपुवं पिव मन्नई, त विय जीवो मणे सुखं" इत्युपदेशमालायां. ॥ १७१ ॥

० वली भोगनेविषे प्रवृत्ति करनां एवो नोहरहेते क र्कणे कर्कणे कर्कणे
 णय; ते योग्य वे. केमके, भोग स्थि नथी किनु कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 अवतां आयुष्यनो अंत आवी जाय तो र्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 भोगववानेविषे प्रवृत्ति यतां अविगति कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 यमात्र संशय नथी. माटे जे विवेची पुत्र के ते कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 नी अनिजाया करता नथी. एवो कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 कोवा जिअवीसासो विद्वुतया वंरुणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 सको णिरुज्जमो जइ जगन्निजुठ कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 १० हे जीव, तने जीवितयतां जो विद्यात के कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 एले जात्कार हणजगुर वे. एके कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 तेम जीवितय्य इकरुणमां कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 जीजी हणमा नाम यतां वा कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 सुयी जो व धर्मकार कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 ० कोई कहेंगे के, जो जीव गेणेंगे कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 थएलो होय ते चाग्रि कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 देहवले जइ ए कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 तिसिउ पताजावे कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 १० जो रोगादिके कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 रीने योग धारण कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 वाचुं पात्र न कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 याविय कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 योगमागवेकि कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 ० जे पुस्य कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 र नरामो कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे
 कर्कणे कर्कणे कर्कणे कर्कणे

जुसा
 वेप
 उक्तीव
 हद्दाण
 पण ते
 रइआणां,
 गतां गृही
 मेलव्यावि
 प्राप्ति न थ
 य. तेना क
 ७७ ॥
 ए प
 ७८ ॥
 नेविपेज अ व
 य, तेणे सर्व प
 अ० एक आत्म
 हेवे.
 अन्नो
 १ए ॥
 ल्य होयते, प
 ने महाफलदाई
 प्रथम पोताना
 जाने प्रतिबोध
 १बु. ॥ १७९॥
 अणुंज सारुं वे,
 कहेवे

व्या० जे पुरुष एवी शोचना करे के, हमणा मारामां बल नथी, माटे आगल धर्माचरण करीश अथवा हमणा मारो अवसर नथी, माटे आगल जतां धर्माचरण करीश. एम जाणीने आलस करी वेशी रहे ते अरुतपुण्य थका आगल घणी प्रार्थना कखाथी पण पुण्यविना सुखने पामे नही, त्यारे घणो शोच करेते जेम कोड निर्धन पुरुष प्रथम आलस करीने धन अर्जवानो उद्यमन करे ने पठी गली उहा करीने धनविना ड खने पामेते त्यारे पोताना आत्मानेविषे घणोज शोच करेते माटे प्राप्त थएलो धर्म मूकीने आगल यर्मप्रार्थना करीये तो गली प्रार्थना कहेवाय. यत “लक्ष्मिश्च च बोहि, अकिरतो एगयगपञ्चितो, आणदाइं बोहि, लप्सि कयरेण सुलेण” ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ अ० कोई कहेते के, पापनी निंदाथीज पाप टलेते, त्यारे विशेष अनुष्ठान करवानुं कारण शु? एविषे कहेते -

जो पाव गरहतो तं चेव णिसेवए पुणो पावं ॥ तरस्स

गरहा वि मिहा अतहकारो हि मिहत्तं ॥ १७६ ॥

व्या० जे पाप करी मिहामि डुक्कडं दर्शने फरी पाप करे तेनी पापनिदा मिथ्या ठे केमके, जेबु बोलिए तेनुं जो पालिए नही तो तेज मिथ्यात्व ठे यत “जो जह वायण कुणई, मिहहिणी तउंहुको अन्नो, वढेइ अमिहत्तं, परस्स संकं जणे माणे” इत्युपदेशमालाया हवे मिहामि डुक्कड ए शब्दो अर्थ कहेते -मि कहेता कायाथी तथा जावथी मृड थइ, हा कहेता असंयमरूप दोषनु अह्मादन करीने, मि कहेता चारित्रनी मर्यादामा रह्यो थको, ड कहेता डुकृत कार्यनो करनार जे आत्मा तेने हु निडुंनुं, क कहेता मे जे पाप कखाते, तेनुं ड कहेता उपशम पामी ने उद्वेगन करुंनु एवो अर्थ जाणीने मिहामि डुक्कडं दीधा पठी फरी पाप न करवु, ते पापनी साची निदा कहेवायते. तेम न करता पठी जे पाप करवु तेथी तो उलटुं माया मृषावादादि पाप लागेते यत “ज डुक्कडंति मिहा । त चेव णिसेवए पुणो पाव, पञ्चस्कमुस्तावाइ, मायानिवडी पसगोअ” इति ॥ १७६ ॥

अ० ए कारण माटे चारित्र लईने जो ते सारा जावथी पालिए तोज तेथी महाफलनी प्राप्ति थायते, अन्यथा आजीविकाने अर्थे चारित्र लीवा करता गृह स्थधर्मज सारो ठे एम कहेते

चुअधम्माठं मुणिणो सुहुअरं किर सुसावगत पि ॥ प

डिअ पि फलं सेय तरुपडणाउं णञ्चंपि ॥ १७७ ॥

व्या० वेपथारी चारित्ररहित जे सु श्रावक ठे, ते अरिहंतनी पूजा करे, सुसा धुनी सेवा करे, दृढाचारीपणुं पाले, इत्यादिक धर्माचरण करेठे, अने जे चारित्र वेप धारी होय ते गृही धर्म तथा यतिधर्म ए वनेथी च्रष्ट थायठे उक्तंच “ठळीव णिकायदया, विवक्किउणोव दिस्किउ ण गिही, जइधम्माउ चुक्को, चुक्कइ गिहदाण धम्माउ, इत्थुपदेशमालायां वेपथारी चारित्रियाने मूलगुणविना तपथी पण ते बु फल थतुं नथी. उक्तंच “महवय अपुञ्जयाइ, ठ डेउं जो तव चरइआणं, सो अन्नाणी मूढो, नावानुड्ढो सुणेअवो.” माटे केवल वेपथारी करतां गृही धर्म सारो ठे. दृष्टांत - फलनी अनिलापाथी वृद्ध उपर चढी, फल मेलव्यावि ना पडी न जतां ते फल मेलवाई शकाय तो सारुं, पण जो फलनी प्राप्ति न थ तां नीचे पडी जवाय तो उजतुं शरीरने लागे तेथी डु खनी प्राप्ति थाय तेना क रतां वृद्धनी नीचे बेसीनेज पडेळुं फल ग्रहण करिये ते सारुं ॥ १७७ ॥

संयमयोगे अप्पु, द्विअस्स संचत्तवज्जजोगस्स ॥ ए प
रेण किंचि कळं आयसहावेण चिठस्स ॥ १७८ ॥

व्या० संयमना योगे जे आनंद थायठे ते केवल आत्मस्वभावनेविषेज अ व स्थित ठे तेने परतुं शुं काम ठे ! माटे जेने चारित्त परिणम्युं होय, तेणे सर्व प रप्रतिबंध मूकीने आत्मइव्यमात्रना प्रतिबंधे प्रवर्तवुं ॥ १७८ ॥ अ० एक आत्म इव्यमात्रनेविषे प्रवर्त्याथी बीजाने उपदेश केम देवाणे, एविषे कहेठे.

संविग्गो गीयत्तो बोहेउ परंपराइ करुणाए ॥ अन्नो

पुण तुसणीउ पुव बोहेउ अप्पाणं ॥ १७९ ॥

व्या० जे महानुजावी संवेगी गीतार्थ होयठे, ते पोते तो कृतकृत्य होयठे, प रतु बीजानी उपर परम करुणाए करीने तेने प्रतिबोध करे तो तेथीते महाफलदाई ठे. परतु जे एवो न होय तेणे बीजाने उपदेश करवानुं मांफीवालीने प्रथम पोताना आत्मानेज बोध करवो जोयेठे. जे पोते प्रतिबोध पान्या विना बीजाने प्रतिबोध करेठे ते केवल नाटकीआनी पठे नाटक करी देखामनारोठे एम जाणवुं. ॥ १७९ ॥

अ० एवी रीते ज्यारे परप्रतिबंध सारो नथी, किंतु एकाकीपणुंज सारुं ठे, माटे गह्व पण प्रतिबंधरूपज ठे, एम जे जाणेठे तेनो सदेह मटाडवाने अर्थे कहेठे
द्वेण जो अप्पेगो गठे सो जावउ हवे एगो ॥ एगागी
गीउच्चिय कयाइ द्वेअ जावेअ ॥ १८० ॥

व्या० गङ्गमां ठतां इव्यथी जे अनेकता थायठे, तेज नावथी एकता थायठे अ न्यथा गुर्वाङ्गादिक अकुशविना चित्तरूप हस्ति संसाररूप वनमां फरतां एकत्व नाव नारूप वेलीतुं उन्मूलन करी नाखे. अतएव जगवते “एकस्स अङ्घि धम्मो” इत्या दिक प्रबंधे करी एकाकी विहारनो निषेध कखोठे श्रीदशवैकालिक सूत्रनेविषे प ए आम कखुठे “नया लज्जिङ्गा निउण सयाय गुणाहि अं वा गुणउं समंवा, इक्कोवि पावाइ विवळ्ळयंतो, विहरेळ्ळ कामेसु असळ्ळमाणो आ गाथामा आम कखुठे के, ज्यारे पोताथकी अधिक गुणवालो अथवा समान गुणवालो मळे नही, त्यारे एकाकी विहार करवो, ते गीतार्थे आश्री जाणतुं केमके, ते पापने वर्ज्जने कामनेविषे असग करेठे माटे तेने एम कखुठे. अने अगीतार्थे तो गीतार्थेनी निश्राविना पाप वर्ज्जी शके नही तेम कामासंगपण वाली शके नही. अतएव “गीयडो अ विहारो, वीउं गीयड मीसिउं जणिउं ॥ इत्तो तइय वि हारो, नाणुत्ताउं जिणवरेहिं” ए गाथामा खुलीरीते अगीतार्थेने एकाकी वि हारनो निषेध कखोठे माटे गङ्गमा रही, गुरुकुलवास सेवी, गुनादिकनो अन्त्या स करी, अने साधुसग ठता पण अतरग निर्लेप रहीने जो अध्यात्मजावना नाविये तो परमानदनी प्राप्ति थायठे ॥ १८० ॥

कि बहुणा इह जह जह रागद्वोसा लहु विलज्जंति ॥ त

ह तह पयट्ठिअवं एसा आणा जिणदाणं ॥ १८१ ॥

व्या० घणु शु कहिये, जेजे प्रकारे रागद्वेष विलय थाय तेवी रीते प्रवर्तवु. ए ज श्रीवीतरागद्वेषनी आङ्गा ठे ॥ १८१ ॥

असप्यमयपरिक्खा एसा जुत्तीहि पूरिया जुत्ता ॥ सोहि

तु पसायपरा तं गीयड्ढा विसेस विऊ ॥ १८२ ॥

व्या० आ अध्यात्ममतपरिक्खा युक्तिएकरी पूरी कीधी, तद्रूप जे आ ग्रंथ ठे, तेतुं विशेषज्ञ जेगीतार्थे ठे ते मज्जपर रुपा करीने शोधन करो ए विज्ञापनाठे १८२ शार्दूलविक्रीडित वृत्तं ॥ यम्यासन् गुरवोऽत्र जीतवीजयप्राज्ञा प्ररुष्टाङ्गया त्राजते सनयानयादि विजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदा ॥ केम्वा यस्यच सद्म पद्म विज यो जात. सुधी सोदर सोय तत्त्वमिद यशोविजयइत्याख्यानृदाख्यातवान् ॥ १ ॥

इति पमित यशोविजयजी उपाध्यायकृत श्री अ
ध्यात्ममतपरीक्षाग्रंथो बालावबोधसहित समाप्त

ॐ श्रीजिनायनम

अथ श्रीसमयसार नाटक बनारसीदास कृत गुजराती

जापामां अर्थ सहित प्रारंभः

उपोद्घात.

आ ग्रंथनी दिगंबरी बनारसीदासे शुद्ध हिंडुस्थानी जापामां पद्यात्मक ग्रंथरूप रचना करीते. ए ग्रंथकर्ता पोते महापंक्ति तथा कवीश्वर होवाथी विविध प्रका रनी ठंडरचना करीने तेणे पोतानी श्रेष्ठ कृति देखाडी आपीते पदलालित्यता तथा अर्थ गौरवतादिक जे काव्यना सारा गुण वर्णन कखाटे, ते आ ग्रंथनी क वितामां सारी रीते दीगामां आवेते अलंकारवडे कविता सारीरीते चूपित करीते. आ ग्रंथ अत्यात्मिक विषयवालो होवाथी आमां मात्र शात रसज मुख्यते पण प्रसंगानुसारे बाकीना रस पण कचित दीगामा आवेते. जोपण आ ग्रंथ उपर क ह्या प्रमाणे नन्हवादिकमां गणायला दिगंबरीनो रचेलोते, तोपण एनो विषय आध्यात्मिक होवाथी ते सर्वने उपयोगीते, माटे आ पुस्तकमा अमे नाख्योते. ए ग्रंथनी व्याख्या कोई रूपचदजी नामना पंक्ति करीते, ते पण हिंडुस्थानी जापामां हो वाथी सर्व जनने समज्यामा आवे नही, माटे तेनो आश्रय लईने अमे गुजराती जापामा व्याख्या करी ते व्याख्या करताए आदिमां मंगलाचरणनो दोहरो कखोते ते आप्रमाणे -

दोहा - श्रीजिन वचन समुद्रको, कौलगि होइ बखान ; रूपचंद तौहू लिखै,
अपनी मति अनुमान. ॥ १ ॥

अर्थ - व्याख्याकर्ता रूपचदजी कहेते के, श्री जिनवचनरूप समुद्रनो कहांथ
थी व्याख्यान थाय, तोपण हुं मारी मतीने अनुमाने लखी जणावुतुं ॥ १ ॥

हवे ग्रंथकर्ता आरजमां मंगलाचरणरूप श्रीपार्श्वनाथ स्वामीनी स्तुति करेते.

कवित्त, ५कतीसासर्व ह्रस्वाद्धर - करम नरम जग तिमिर हरन खग, उरग
लखन पग शिव मग दरति, निरखत नयन नविक जल बरखत, हरखत अ
मितनविक जन सरति; मदन कदन जित परम धरम हित, सुमिरत जगत जग

तसव मरसि, सजल जलद तन मुकुट सपत फन, कमठ दलन जिन नमत वनरसि ॥ १ ॥

अर्थ - जगतमां जे आठ कर्मरूप तिमिर एटले अंधकारठे तेनुं हरण करवाने खग एटले सूर्यरूप ठे जेना चरणनेविषे सर्पनुं चिन्ह ठे. जे मोहना मार्गने देखाडनारा ठे जेनेनेत्रे करी निरखता कव्याणरूप जल वर्षेठे, तेणे करी अमित के० प्रमाणविना नञ्यलोकरूप सरोवर महा हर्षने पामेठे जेमाटे कामदेवना ह्य करनार ठे, अने जेनुं उत्कृष्ट सहज सुखरूप धर्मेने अर्थे नक्तजन स्मरण करी रद्याठे तेथी तेनुं सब दरसिके० सात नयरूप जे शीत ठे, ते नाशी जायठे. जेनुं शरीर जलसहित मेघना जेनुं नीजवर्ण ठे जेना मुकुटनेविषे सात फण ठे जेणे कमठ नामे असुरनुं मान नजन कछुठे एवा जिनके० श्रीपार्थनाथ जगवान, तेने बनारसीदास नमस्कार करेठे ॥ १ ॥

फरीथी विज्ञेपे श्री पार्थनाथ स्वामीनी स्तुति करेठे.

सर्व लघु स्वरात अक्षर युक्त ठप्पय ठंद एने चित्रकाव्य पण कहेठे - सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग, धवल परम पद रमन, जगत ज न अमल कमल खग, पर मत जलधर पवन, सजल घन सम तन समकर, पर अद्य रज हर जलद, सकल जन नत नव नय हर, यम दलन नरक पद ठय करन, अगम अतट नव जल तरन, वर सबल मदन वन हर दहन, जय जय परम अनय करन ॥ २ ॥

अर्थ - सर्व कर्मरूप खलके० डुष्ट वैरीने दलवा वाला ठो कमठ नामना म हा मूर्ख असुर तेरूप पवन आगल मेरु पर्वतनी परे अमग ठो धवलके० निर्मल सिद्ध स्थानकनेविषे रमनारा ठो जगतना लोकोरूपी उज्वल कमलने विक श्वर करवानेअर्थे खगके० सूर्य जेवा ठो एकात नय वादी जे पर मत, तेरूप मेघ ने मटाडवाने अर्थे पवनना जेवा ठो जल सहित मेघ घटाना जेवो स्याम जे नो शरीर ठे समकरके० उपशमना करनार ठो परके० शत्रुरूप अगके० पाप रजने हरण करवाने मेघ जेवा ठो जेने सकल लोक नमे ठे, अर्थात् त्रिभुवन पू ज्य ठो जन्म मरणरूप जे नव नय तेने हरण करनार ठो लोकोना मृत्युने द लवावाला ठो नञ्य प्राणीअने नरक पदना ह्य करनार ठो अगम एटले अ थाह अने अतटके० अपार एवो जे ससाररूप समुद्र तेने तरवावाला ठो सर्व दोषोमा वरके० प्रधान अने बलवान जे कंदर्पवन, तेने बालवाने हरके० रुडना

नेत्रनी अग्नि जेवा हे जगवान तमे जयवंता थाओ. वली तमे परम अजय पद ना करनार ठो, एटले जय-जंजन ठो ॥ १ ॥ आ ठप्य ठंड वडे परमेश्वरनी महिमानुं वर्णन कखुं. अने पोतानु काव्य चातुर्य दर्शावुं ठे.

आ ग्रंथना कर्ता बनारसीदास कहेठे के जेना प्रसादधी परगसेन पिताने पेर माहं जन्म थयु एवो हुं श्री पार्श्वनाथ जगवाननी स्तुति करंठुं.

सवैया इकतीमा - जिन्हके बचन उर धारत जुगल नाग, जये धरनिंद पद मावति पलकमें, जाके नाम महिमासो कुधातु कनक करै, पारस पापान नामी जयो हे खलकमें, जिनकी जनमपुरी नामके प्रजाव हूम, अपनो स्वरूप लख्यो जानसो जलकमें; तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब, दीजे मोहि साता दृग लीलाके ललकमें ॥ ३ ॥

अर्थ- ज्यारे श्री पार्श्वनाथ जगवाननी कुमारावस्थाहती त्यारे कोई एक सम ये श्री बनारसी नगरीविपे एक तापसीनी साथे अज्ञानतपश्चर्यानी निर्जर्तना पूर्वंक वाद थयो, ते प्रसंगे ते तापसीनी धूणीमाना लाकडामा नाग ठे एवी रीते श्री पार्श्वनाथ जगवाने कखु, ते वातने पेला तापसीए गणकारी नही, तेथी ते लाकडांफोमीने ते नागने बाहेर कहाडयो पण ते अधवळ्यो थयो हतो ते थी तमफडवा लाग्यो, तेना अंतना समयमा श्री पार्श्वनाथ जगवाने तेने “उ असीआ उसाय नमः” ए मंत्र संजलाव्यो. ते वचन तेणे सारी रीते हृदयमां धारी लीधुं एटलामा तेना शरीरनी शांति थई गई तेना अंतना सारा परिणामोने लीधे ते धरणेंड थयो तेनी स्त्री पद्मावती हती, ए कथा श्री पार्श्वनाथ चरित्र मा प्रसिद्ध ठे ते अद्भुत महिमाने दर्शावतां ठतां ग्रंथकर्ता उपमा लकारवडे पारसमणि अने श्री पार्श्वनाथना ए गुणनी सादृश्यता देखाडेठे.-

जेना वचन हृदयनेविपे धारण करीने नाग अने नागणी ए बत्रे पलकमा धरणेंड अने पद्मावतीरूपे थया. आंही नाग अने नागणी कहेवाथी दिगंबरितुं मत जाणवुं श्वेतावरी तो एक नाग नेज कहेठे वली पार्श्वपाखान खलक एटले डुनिया मा प्रसिद्ध ठे एटले पारस मणी नामना पापाणनुं स्पर्श अतांज लोखंन नामनी कुधातुं सोनुं थायठे. तो ए पाखाणमां एवी महिमां किहाथी उत्पन्न थई? तेनु उतर कहेठे:- पार्श्व एवु नाम श्री पार्श्वनाथने तुल्य ठे. तेनी महिमा थकी एटले मात्र पार्श्व एवु नाम ठे ते नामनीज महिमाथकी ते पार्श्वरूप पाखाणमा एवो गुण थयोठे वली जेनी जन्म पुरीतुं नाम बनारसी नगरी ठे, अने ग्रंथकर्ता कहे

ठे के, मारुं नाम पण बनारसी दुं पांश्वो ते मात्र नामना प्रजावथी में मारुं आत्मस्वरूप जाणी लीधुं ते केवी रीतें जेम प्रजात समयमां सूर्य पोताना रूपने जलक मां स्वप्न प्रकाशे ठे, तेनीपरे मारुं रूप पण प्रकाशी रहु ठे ए पण श्री पार्श्वनाथ जगवाननी महिमानो प्रताप ठे. तेज श्री पार्श्वनाथ जगवान महा शात रसने देवावाला ठे, ते हवे दृग लीलाकी जलकमेके० आंख मीचीने उघाडीए अर्थात् एक पलक मात्रनी सत्तामा मुजने आत्म समाधिरूप शाता आपो एथी निवृत्ति सुखनी सूचना करी ठे. ॥ ३ ॥

सिद्ध जगवाननी स्तुति करेठे.-

अडिल्ल ठंड -आविनाशी अविकार, परम रसधाम है, समाधान सरवग, सहज अनिरामहै, शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है, जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवत है ॥ ४ ॥

अर्थ- जेनोविनाश नथी, अने जेने कोई विकार जागे नही एवो परम रस एटले कोई केवलीगम्य जे सहजानद उत्कृष्ट सांतरस, तेना जे धाम एटले घर ठे, माटे सरवगने विषे सहजनी जे अनंत सुखरूप समाधी तेणेकरी जे अनिराम एटले अति मनोझाठे चौदराजलोकनी उपर विराजमान होवाथी सर्व दोष थी रहित शुद्धसे सर्वज्ञता पांश्वथी बुद्ध ठे अने सर्वना ईश्वर माटे अविरोधठे, एहवी अवस्थाए करी ते अनादि अनंत ठे अने चउद राजलोकना उपर विराजमान ठे तेथी जगतना शिरोमणि ठे एवा जे श्रीसिद्ध जगवान ते सदासर्वदा जयवत थाओ ॥ ४ ॥

साधुरूप जगवाननी स्तुति करेठे -

सवेया इकतिसा -ज्ञानके उजागर सहज सुख सागर सुगुण रतनागर वैराग रस जखो है, सरनकी रीत हरै मरनको जैन करै करनसों पीठ दे चरण अनुसखो है, धरमको मरुन नरमको विहंमन जु, परम नरम वृहै के करमसों लखो है, ऐसी मुनिराज सुअ लोकमें विराजमान निरखि बनारसी नमसकार कखो है ॥५॥

अर्थ - जे ज्ञाननो उद्योत करनार ठे. आत्मइव्यनु जे सहजसुख तेना जे समुद्ध ठे अने सुगुनजे ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप ग्त्रत्रयीनी आकर एटले जे खाण ठे पांच इडियोना विषयनेविषे जे वैराग्य ते रूप रसेकरी जे परिपूर्ण थ याठे. कोई परिसह आवीने प्राप्तययाथी गृहस्थनीपरे शरणनी रीति राखे नही आत्माने शाश्वतइव्य जाणीने जेणे मरणनो जयमुकी दीयो ठे. पाच इडियोने

पूठ आपी तेना विपयोथी विमुख थयाथकी जे चारित्रने अनुसखा ठे, वली जेनो आश्रय लेवाथी धर्मपदार्थ विराजमान थाय माटे धर्मना मंफन करनाराठे. मिथ्यामतिरूप जे नरम तेतुं विशेषेकरीने जे खंफन करनारा ठे, जे परम दयावान थईने, कर्मोनीसाथे शुद्ध करेठे. दयावानने युद्धकरवुं संजवे नही तेम ठतां कष्टु ते माटे विरोधालंकार जाणी लेवो. एवी विशेषताने लीधे जे मुनिराज एटले रूपी श्वर सुत्रलोकमा पिसतालीश लाख मनुष्य हेतनेविपे विराजमान ठे तेने हृदय कमलथी जोईने बनारसीदास नमस्कार करेठे ॥ ५ ॥

हवे पाच अनुव्रत लीया ठे जेमणे एवा समकितोनी स्तुति करेठे.

सवैया तेईसा - जेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त जयो जिम चंदन; केलि करै शिव मारगमे जगमांहि जिनेश्वरके लघु नंदन, सत्य स्वरूप सदा जिन्हके प्रगटयो थवदात मिथ्यात निकंदन, संत दशा तिन्हके पहिचान करै कर जोरि बनारसि बंदन. ॥ ६ ॥

अर्थ:- जे मंदबुद्धि ठे ते जीव अने शरीरने एक करी जाणेठे, जेद जा एता नथी पण जेणे समकित पाम्यो ठे, तेना हृदयमा जड अने चेतनतुं निन्न निन्न ज्ञान थयुं ठे, एवु तेने जेदविज्ञान जागृत थयो, तेथी तेतुं चित्त चंदननी पठे शी तल थयु ठे. जे मुक्ति मारगमां केलि करे एटले खेल करी रह्या ठे, आ जगतमां श्री जिनेश्वरना जे न्हाना पुत्रठे अने साधुजे ठे ते सर्वज्ञपुत्र कहेवायठे माटे ते मोटा पुत्रठे वली आत्मा सदा निश्चयेकरी सत्यरूपमांज ठे, पण मिथ्यातवडे मलिन थईरह्योठे. ते फरी सत्यस्वरूप जेतुं निर्मल प्रगटताने पाम्युंठे, अने मिथ्यात्वतुं निकंदन थयुंठे, एटले मिथ्यात्व रखु नथी चार अनंतानुबंधीनी जड तुटी गईंठे. एवी तेमनी शुद्धदशा उलखीने बनारसीदास बन्ने हाथजोडी वदना करेठे ए सवैयामां सम्यक्तनी दृढता बतावींठे. ॥ ६ ॥

पूर्ण सम्यक्तता दर्शाववानेअर्थें फरी तेनीज स्तुति करेठे.

सवैया इकतीसा - स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त साचे साचे वैन कहै साचे जैनमती हैं, काहूके विरोधी नांहि परजायबुद्धि नांहि, आतम गवेपी न ब्रह्मस्थहै न यती है, सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा, अंतरकी लक्ष्मीं अजाची लक्ष्मिपती है, दास नगवतके उदास रहै जगतसां, सुखिया सदीव ऐसे जीव समकितो हैं ॥७॥

अर्थ - जेनी स्वार्थ एटले आत्मा पदार्थनेविपे साची प्रतीति ठे. तथा परमार्थ ते मोहू पदार्थनेविपे साची प्रतीति ठे. जेतुं चित्त निर्मल ठे जे सत्यवचनना बोल

नारा ठे जे साचा जिनमतने ग्रहण करी रह्याठे. जेतुं मन कटपना करतु नथी. केम के, ते साते नयतुं शुद्धस्वरूप जाणोठे तेथी कोईना दर्शनना विरोधी नथी जेम वीथ मतानुसारी पर्याय बुद्धिवाला ठे पण इव्य बुद्धिवाला नथी. तेथी जीवने कृष्णचंयुर मानेठे तेम समकित्तीपर्याय बुद्धिवत नथी पण आत्मइव्यनी गवेपना करनार ठे तेथी तेने पर वस्तुमां मोह नथी माटे गृहस्थ पण नथी अने महा व्रत लीया नथी, तेथी यति पण नथी पोताना घटनेविषे शुद्ध आत्म इव्यने सिद्धसमानज जुणें तेथी घटमाज प्रगट सिद्धि देखेठे अने ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रिद्धिनी वृद्धि जेना घटमां सदा प्रगट देखायठे जे अंतर परमात्मा देव ठे तेतुं जेने लक्ष थयु ठे, तेथी अयाची एटले कोईनी पासे काई मागे नही एवा लक्षपति ठे वजीजे ए पूर्वोक्त प्रकारना प्रगट स्वरूपने पामेला श्री वीतराग जगवतने पामीने तेना दास थयाठे, अने जगतथी उदास रहेठे. जे आर्त्त अने रौड ए वे व्यानथी विमुख थयाठे, तेथी सदीव सुखनी सन्मुख थयाठे, एवा समकित्ती जीव महा सुखमयी ठे ॥१॥

फरी पोताना उद्यासथी समकित्तीनी स्तुति करेठे -

सवैया इकतीसा - जाके घट प्रगट विवेक गनधरकोसो, हिरटे हरख महा मो हको हरतु है, साचो सुख मानै निज महिमा अमोल जानै, अणुहीमे आपनो सुजावले धरतुहै जैसे जल कर्दम कतक फल निन्न करै, तैसे जीव अजीव विलक्षण करतु है, आत्म सगति साथे ज्ञानको उदौ आरावै, सोई समकित्ती नवसागर तरतु है ॥ १॥

अर्थ - एवीरीते “उप्पनेवा, विगमेवा, वूवेवा,” ए त्रण पद सांजलीने गण धरना हृदयमां प्रगट विवेक उत्पन्न थायठे, अने अर्थनेविषे कोई सदेह रहै नहीं. तेवीरीतेज समकित्तीना घटमां विवेक प्रगट थयोठे, तेणेकरी स्वस्थ थई पोताना हृदयमा आनदने पामी महा मोहने हरण करेठे पोतानुं मिथ्यात दूर करी ने सम्यक्त करेठे हवे सम्यक्तनी व्यवस्था कहेठे - जे विषय सुख ठे ते तो अ नित्य ठे, माटे फूटा ठे, अने सहज समाधि सुख जे ठे ते शाश्वता ठे तेथी ते सुखनेज साचु मानेठे अने पोतानी ज्ञातारूप महिमा अमोल जाणोठे तथा ज्ञान दर्शन अने चारित्र जे ठे ते पोतानो स्वभाव ठे, तेने पोतामांज धारेठे प हेला जीव मिथ्यात्वदशामा जीव अने शरीरने एक करी जाणतो हतो, अने हम णा जीव अने अजीवने निन्ननिन्न लक्षणे करी जाणोठे जेम पाणी अने चीकल एकठा थईगया होय, तेने कतकफलनिर्मलीतुं चूर्ण नाखवाथी पाणी तथा कादवने ते रेणु निन्ननिन्न करी नाखेठे, तेम जीव अने अजीवने जुदो जुदो ल

खेते. चारित्रमां आत्मानि शक्तिने साधे, अने मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञाननो उदय
थवानी इहा करते. मतिअज्ञानं तथा श्रुतअज्ञानने गमावी विद्येते. ते समकित्ती
जीव नवसमुद्नो तरनार कहेवायते, ए रहस्य ठे ॥ ७ ॥

हवे समकेत पाय्या ठतां मिथ्यात्वदृष्टिमांज रहेते, तेतुं वर्णन करते.

सर्वथा इकतीसा - धरम न जानत बखानत नरमरूप, ठौर ठौर ठानत लराई
पत्रपातकी नूय्यो अजिमानमे न पाउं धरे धरनीमें, हिरदेमे करनी विचारै उतपा
तकी, फिरेमावाभोजसो करमके कजोलनमे, वैरही अक्वस्थासों बघूलाकेसे पात
की, जाकी ठाती ताती कारी कुटिल कुवाती नारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती
महापातकी. ॥ ८ ॥

अर्थ.- जे वस्तुना स्वभावरूप धर्मने जाणे नही, अने नर्मरूप मिथ्यावाणीने
बखाणे, तथा ठेकाणे ठेकाणे, पोतानुं मत स्थापवाने पद्मपातनी जडाई करे अने पो
ताना अजिमाने नूय्यो थको धरती उपर पग राखे नही, पोतानेज तत्ववेत्ता
जाणे, एमां अधर पगवडेकरी उत्प्रेक्षांकार जाणवो. अने ह्दयामा जेथी उत
पात उपजे एवोज करणीनो विचार करे, अने आ संसाररूप समुद्नेविपे कर्मरूप,
कजोलोना धकाये करी चारे गतिमां मामाभोज करतो फरेते, जेम बटोलिया वा
युमां आवीगएलुं पानहुं आकाशमां ऊडीने नम्या करेते, पण कोई ठेकाणे स्थिर
थई रहेतु नथी, तेवीज एनी अक्वस्था थई रहीते. जेनी ठाती रागद्वेषवमें तस थई
रेहेते, ते तापे करी काली एटले माया तेने राखवाथी कुटिल थइ रहेते. अने कु
वाती एटले जे माठी वातोनुंज चितवनकरी रहेते, तथा पापेकरी नरेली ठें माटे
नारी जाणवी एवी जेनी ठाती ठे, एहवो ब्रह्मघाती एटले आत्मघातनो करनार
मिथ्यात्वी जीव महापातकयुक्त ठे ॥ ९ ॥

गोहरा - वदो शिव अक्वगाहना, अरु वदों शिवपंथ, जसु प्रसाद जाणा करो,
नाटक नामे गरथ ॥ १० ॥

अर्थ - जिहां सिद्धनो अक्वगाह थई रह्योते, ते क्षेत्रने हुं वदन करुंहुं, अने
ज्ञान दर्शन चारित्र ए मोहनो पंथके० मार्ग ठे, तेने हुं वदन करुंहुं ए मंग
जाचरण करी हवे पोतानुं प्रयोजन कहेते - जेना प्रसाद थकी समय सार नाट
क ग्रंथ सस्कृतमां हतो ते प्राकृत जापारूप करुंहुं ए प्रयोजन कद्यो. ॥ १० ॥

हवे आ ग्रंथना अधिकारी बनारसीदास पोतेज ठे, अने एमा कहेवा जायक
पोतानुं आत्मइव्य ठे तेतुं वर्णन करेते.- कविवर्णनं

हवे आ ग्रंथनो महिमा वर्णवेठे. अथ नाटक वर्णन -

सवैया इकतीसा - मोख चलवेकों सोन करमको करै बोन, जाको रस जौन बुधजौन ज्यों घुजति है, गुनको गरय निरगुनको सुगम पथ, जाको जस कहत सुरेश अकुजित है; याहीके छु पठी सो उडत ज्ञान गगनमेऽ याहीके विपड्डी जग जालमे रुजत है, हाटकसो विमल विराटकसो बिसतार, नाटक सुनत हीय फाटक खुजत है ॥ १५ ॥

अर्थ - जेम नला सुकनवडे कार्य सिद्धि थायठे, तेम आ ग्रंथपण मोक्षमार्ग चालनारने कार्यसिद्धिनो करनार ठे, तथा आ ग्रंथ कर्मरूप केफनी जाल काढवाने वमन करवानुं ओपथ ठे, अने जैन ग्रंथनो रस ठे ते रस जौन के० पामिने तेमा पंथित लोक लौननीपरे गर्क थर्रह्याठे वली जेमा गुणजे ज्ञान दर्शन चारित्र तेनी ग्रंथ के० रचनाठे, परमतिनी अपेढ्याये निर्गुण जे मोक्षपद तेनो सुगम पंथ ठे ते निर्गुण कहेवो ठे, जेनो यश अह्य सुख ठे, जेने कहेवाने इं५ पण अकलायठे अने आ ग्रंथनो जेणे पद्ध लीधो ठे, ते तो आ ग्रंथरूप पांखना प्रजावथी ज्ञानरूप आकाशमा पद्धीनी परे उडी रह्याठे अने जे आ ग्रंथना विपड्कित ठे ते पाखरहित पद्धीनी परे जगतरूप पाराधीनी जालमा रुजी रह्याठे तेमाटे आ नाटकनामा ग्रंथ ते हाटक एटले सुवर्णसमान ठे अने जेम गीता ग्रंथमा श्रीरूपे वैराटरूप महोटा विस्तारे करी देखाड्युं तेवो आ ग्रंथ पण विस्तारवत ठे एवा आ नाटक ग्रंथने श्रवण क रतामा हैयाना कमाड ते फाटक के० खुजी जायठे ॥ १५ ॥

दोहरा - कहो शुद्ध निहचै कथा, कहो शुद्ध विवहार, मुक्ति पंथ कारन क हो, अनुजौको अधिकार ॥ १६ ॥

अर्थ - जे शुद्ध निश्चयरूप कथाठे ते कहीश. अने शुद्ध व्यवहार जे ठे ते पण कहीश अने मुक्ति पथनुं कारण जे ठे ते पण कहीश अने अनुभवनो जे अधिकार ठे ते पण हु कहीश ॥ १६ ॥

अनुभव पदार्थनुं लक्षण कहेठे - अनुभव वर्णन

॥ दोहा ॥ वस्तुविचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम; रस स्वादन मुख उपजे, अनुजौ याको नाम ॥ १७ ॥

अर्थ - अजाणीवस्तु जाणवाने मनमां विचार कखाथी तथा तेनुं चित्तन कखाथी एम खोजतां खोजतां ज्यारे मनमां ठीक ठरे ल्यारे सत्य समज्याना रसनो स्वाद प्राप्त थाय ने तेथी मुख उपजे तेनुं नाम अनुभव ठे ॥ १७ ॥

दोहरा— अनुजौ चितामनि रत्न, अनुजौ है रसरूप, अनुजौ मारग मो
खको, अनुजौ मोख सरूप ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ अनुजव जेठे तेज चितामनी रत्न ठे, अने तेज अनुजव रसायननी
कुपी ठे, अनुजव तेज मोहनो मारग ठे अने अनुजवज मोहन सरूप ठे ॥ १८ ॥

अनुजव महिमा.

सवैया इकतीसा:— अनुजौके रसकों रसायन कहत जग, अनुजौ अन्या
स यहै तीरथकी गौर है, अनुजौकी जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनु
जौ अधोरसा सु उरथकी दौर है, अनुजौकी केली यहै कामधेनु चित्रावेली,
अनुजौको स्वाँद पंच अमृतकाँ कौर है, अनुजौ करम तोरै परमसाँ प्रीति जो
रै अनुजौ समान न धरम कोउ और है ॥ १९ ॥

अर्थ.— जगतवासी लोक अनुजवना रसने रसायन केहेठे, केमके जेम रसाय
न लोढातुं सुवर्ण करेठे, तेम अनुजव जेठे ते मिष्याखने फेडीने सम्यक्ति करे
ठे, जेम तीर्थनी गोर जवाथी अपावन होय ते पावन थायठे. तेम ग्रंथविषे अनु
जवनो अन्यास ते अजाणने जाण करेठे. अने अनुजवनी जे रसा के० पृथवी ते
हज सुवर्ण पोरसा ठे, एटले अनुजवनी उत्पती ठे ते सोवन पोरसानी परे वृद्धि
पामेठे अने अधोरसा के० पाताल लोक, ते पण अनुजव रूपमां ठे, अने उर्ध्व
लोकनी दौर ते पण अनुजवरूपमांज ठे, एटले अनुजवमांज स्वर्ग नरक ठे, अने अ
नुजवनी केली के० रमत ते कामधेनुरूप ठे, ते आपणीऋदिने वधारनारी ठे, अने
ते अनुजवनी जे केली ठे ते अक्षय ऋदि करवाने चित्रावेली ठे, अने अनुजवनोस्वा
द ते पंचामृतना कौर के० यास जेवो ठे. अनुजव करमने तोमेठे, ने परमात्मानी
प्राप्ति जोडेठे, एटले अनुजवथी खोजतां परमात्मानी प्राप्ति थायठे, तेथी सर्व धर्म
धारण करवामा अनुजव जेवो बीजो कोई धर्म नथी. एटले अनुजव ज्ञान जाण
वाप्रीज मोहन मार्ग नजीक ठे ॥ १९ ॥

हवे अनुजव साधवाने ठ इव्यतुं वर्णन करेठे. तेमां प्रथम जीव इव्य वर्णन —
दोहरा ॥ चेतनवत अनंत गुन, पर्यय सकति अनंत; अजख अखंडित
सर्वगत, जीव दरबविरतंत ॥ २० ॥

अर्थ — जाणवा मात्रने चेतन कहेठे तद्रूप शक्तीवान ठे, जेना अनंत गुण
ठे जेमा पर्याय के० नामांतरपण पामवानी अनंत शक्ती ठे, इंडिय अगोचर

ठे, तेथी अजहू ठे, देहना खंम थाय पण आत्मा अखंफित ठे, सर्व लोकमां नखो ठे तेथी सर्व गत ठे, एवु जीव ड्युनुं स्वरूप ठे ते कह्यो ॥ १० ॥

हवे पुज्ज ड्युनुं लक्षण कहेठे. अथ पुज्ज ड्यु यथा -

दोहरा - फरस वने रस गंधमय, नरद फास संगण, अनुरूपी पुज्ज दरव, नज प्रदेश परवान ॥ ११ ॥

अर्थ - स्पर्श वर्ण रस गंध ए गुणमय सदा रहे, नरद जे सोगरीरूप राग तेना पासा मां सख, वृत्त, अस्त्र, चतुरस्त्र, आयत ए पाच संस्थान ठे, तेथी एतुं नाम संस्थान ठे. पोत पोतानी वर्गीणा योग्यरूप ग्रहण करे, तेथी ए पुज्ज ड्यु अनुरूपी अथवा परमाणुरूपी ठे जेम आकाश प्रदेश अनंत ठे, तेम ए पण अनंत प्रमाण ठे ॥ ११ ॥

हवे धर्म ड्युनुं लक्षण कहेठे धर्म ड्यु यथा.

दोहरा - जेसै सलिल समूहमें, करै मीन गति कर्म, तेसै पुज्ज जीवको, चल न सहार्ध धर्म ॥ १२ ॥

अर्थ - जेम पाणीना जरावमा माठलुं गमन क्रिया करेठे, तहा क्रियानो कर्ता माठलुं ठे, अने सलिल समूह जे पाणीनो जराव ते क्रियानो साधक ठे तेम पुज्ज लड्युनी तथा जीवड्युनी चलन क्रियानो साधक धर्मास्तिकाय ड्युठे ॥ १२ ॥

हवे अधर्मास्तिकाय ड्युनुं लक्षण कहेठे अधर्म ड्यु यथा

दोहरा - ज्यो पंथिक ग्रीपमसमै, वैठे ढाया माहि, त्यो अधर्मकी जूमिमें, ज ड चेतन ठहराहि ॥ १३ ॥

अर्थ - जेम कोई वटेमार्ग वेसकृत्वा जगानो कर्ता ठे, ने क्रियानी साधक ढाया ठे, तेम अधर्मास्तिकायनी जूमिमें, के० वगाहना तेमा जड जे पुज्ज ने चेतन जे जीव ते वने स्थिर थायठे, तेथी अधर्मास्तिकाय ड्यु स्थिरतानुं कारणठे ॥ १३ ॥

हवे आकाश ड्युनुं लक्षण कहेठे आकाश ड्यु यथा.

दोहरा - संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास, जो नाजन सब जगत को, सोइ दरव आकाश पदारथ ॥

अर्थ - संतत के पचारत ध्येना उदरमा समस्त पदारथ - ह्याठे, अने जे सर्व जगतनुं नाजन ॥ १४ ॥ जूत ठे, ते आकाश ड्यु ॥ १४ ॥

हवे जीवस्तु जाणलक्षण कहेठे जाल

दोहरा - जो ने जाले, सकल वस्तु धिति ठान, परावचवचन करै, काल दरव सो जान!

जीरन क

अर्थः-- जे इव्य वडे सघला वस्तुनी स्थिति बंधाय एटले पेलां सकल वस्तुने नवी वतावे, ने पठवाडेथी ते सघलीने जुनी करी देखाडे, अने उलट पालट वर्त्ता ववानी दशाधरे ते कालइव्य जाणवु ॥ २५ ॥

हवे आ ग्रंथमां कहेवा लायक नव तत्व ठे तेतुं वर्णन करेठेः-- तेमां प्रथम जीवतत्वनी समज पाडेठे नवतत्व वर्णनं, जीवतत्व यथा

दोहरा-- समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखनास, वेदकता चैतन्यता, ए सब जीव विलास. ॥ २६ ॥

अर्थः-- सर्व जीव बराबर ठे ए समता, घटघटमां रमी रेहेठे ए रमता, ऊर्ध्व दिशे गमन करतुं ए उरधता, सर्व पदार्थनी जाणनार ते ज्ञायकता सुखमय नासे ठे तेथी सुखनास, सुखइ.ख वेदे ए वेदकता, अने चेतना गुणथी चैतन्यता ए स घलो जीव तत्वनो विलासठे. ॥ २६ ॥

अथ अजीवतत्व यथा.

दोहाः-- तनता मनता वचनता, जडता जड संमेल, लघुता गुरुता गमनता, ए अजीवके खेल. ॥ २७ ॥

अर्थः-- शरीरपणुं, मनपणुं, वचनपणुं, जडवस्तुमा श्लेज्जेल थवापणुं, लघु पणुं, गुरुपणुं, गमनपणुं ए सर्व अजीवतत्वना खेलठे. ॥ २७ ॥

अथ पुन्यतत्व यथा.

दोहरा-- जो विद्युद् नावनि वधे, अरु ऊरध मुख होय, जो सुखदायक ज गतमें, पुन्य पदार्थ सोय. ॥ २८ ॥

अर्थः-- जे पदार्थ विद्युद् परिणामथी वधे, अने जेतुं ऊर्ध्वमुखठे, ऊर्ध्वगति एज चडेठे, जे पदार्थ जगतमां सुखदायकठे, ते पुन्य पदार्थ जाणवो ॥ २८ ॥

अथ पाप तत्व यथा.

दोहरा-- संकिलेसि नावनि वधे, सहिज अधोमुख होय; ऊँ खदायक संसा रमें, पाप पदारथ सोय. ॥ २९ ॥

अर्थः-- जे पदार्थ संकलेश नाव वडे कपायनीवृद्धीथी वधे, सेहजे जेनी गती नीची ठे अधोमुखठे, अने जगतमा डुखदायक ठे तेज पाप पदार्थ केवायठे. २९

अथ आश्रव तत्व यथा

दोहराः-- जोई करम उद्योत धरि, होइ क्रिया रस रत्न; करपै नूतन करम कों, सोई आश्रव तत्त. ॥ ३० ॥

अर्थ -- जे कर्मनो उदय धरीने शुन तथा अशुन क्रियाना रसमां रत थई रहे, त्यारे नवां करमनुं करखे के० खेचवु करे ते आश्रव तत्व केवाय ॥ ३० ॥

अथ संवर तत्व यथा

दोहा.-- जो उपयोग सरूप धरि, वरतै जोग विरक्त; रौके आवत करमकों, सो है सवर तत्त ॥ ३१ ॥

अर्थ:-- जे शुद्ध उपयोग स्वरूपने धारीने मन वचन काया जोगधी विरक्त थको वचै अने नवां करम आवताने रौकी राखे ते संवर तत्व कहिये. ॥ ३१ ॥

अथ निर्झरा तत्व यथा.

दोहा.-- जो पूरव सत्ता करम, करि धिति पूरण आउ, खिरवैकों उद्यत जयो, सो निर्झरा लखाउ ॥ ३२ ॥

अर्थ -- जे पूर्व कालनेविषे आयुविना सात कर्म सत्तारूप, दतां अने आयु कर्म वर्तमान कालमां सत्तारूप ठे तेनी स्थिति पूर्ण करीने पठी नीरस कर्मने विखेरवामां जे जीव उद्यमवत थयो ए निर्जरानुं लक्षण जाणवु ॥ ३२ ॥

अथ बंध तत्व यथा

दोहा.-- जो नव कर्म पुरानसों, मिलें गंठि मिठ होइ, सकति बढावै वसकी, बंध पदारथ सोइ ॥ ३३ ॥

अर्थ -- जे नवां कर्म जूना कर्म साथे आवी मले, अने तेनी गाठ दृढ बंधाय, अने आगल जता ते कर्मना वसनी शक्ती चढती थाय, ते बंध पदारथ केवाय ३३

अथ मोहू तत्व यथा.

दोहा -- धिति पूरन करि जो करम, धिरे बंध पद जानि, हंस अंस उज्वल करै, मोहू तत्व सो जानि. ॥ ३४ ॥

अर्थ -- जे कर्मनी स्थितिने पूर्ण करीने कर्मने खेरे के० क्यूकरी नाखे अने बंध पद के० सत्तावन प्रकारें बंधस्थान तेने जानि के० जांगीने हंस के० परमात्माना अंसने क्रमे उज्वल करे तेज मोहू तत्व जाणवु ॥ ३४ ॥

हवे कवित्त ठंदमा पदार्थनी नाममाला एटले प्रयोजनवाला नामनी नाम माला लखी जणावेठे

अथ नाम माला सूचनिका मात्र लिख्यते अथ समुच्चय वस्तुके नाम

दोहरा.-- नाव पदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व, इविन अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ए सर्व ॥ ३५ ॥

अर्थ.—प्रथम सामान्यपणे वस्तुना नाम कहेढे. जाव, पदारथ, समय, धन, तत्व, वित्त, वस्तु, इव्य, इविण, अर्थ, इत्यादि घणां वस्तुनां नाम ठे ॥ ३५ ॥

अथ शुद्ध जीव इव्यके नाम—

सवैया इकतीता.—परमपुरुष परमेशुर परमज्योति, परब्रह्म पूरन परम परधान है, अनादि अनंत अविगत अविनाशि अज, निरुद्ध मुक्त मुकुंद अम्लान है; निराबाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसार सिरोमनि सुजान है, सरव दरसी सरबद्ध सिद्ध साई शिव, धनी नाथ ईश जगदीश जगवान है ॥ ३६ ॥

अर्थ—परमपुरुष, परमेश्वर, परमज्योति, परब्रह्म, पूर्ण, परमप्रधान, अनादिअनंत, अव्यक्त, अविनाशी, अज, निर्देह, मुक्ति, मुकुंद, अम्लान, निराबाध, निगम, निरंजन, निर्विकार, निराकार, संसारसिरोमनि, सुजान, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सिद्ध, स्वामी, शिव, धनी, नाथ, ईश, जगदीश, जगवान, कहिये. ॥ ३६ ॥

हवे कर्म व्याप्त अशुद्ध जीव इव्यना नाम कहेढे—संतारी जीव इव्यके नाम

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध अशुद्ध उपयोगी है, विदरूप स्वयंचू चिन्मूर्ति धरमवंत, प्राणवत प्राणि जंतु नूत नव नोगी है, गुणधारी कलाधारी, ज्ञेपधारी विद्याधारी, अंगधारी संगधारी जोगधारी जोगी है, चिन्मय अखंड हंस अपर आत्मराम, करमको करतार परम विजोगी है ॥ ३७ ॥

अर्थ—चिदानंद, चेतन, अलख, जीव, समयसार, बुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्धोपयोगी, चिद्रूप, स्वयंचू, चिन्मूर्ति, धर्मवंत, प्राणवत, प्राणी, जंतु, नूत, नवनोगी, गुणधारी, कलाधारी, ज्ञेपधारी, विद्याधारी, अंगधारी, संगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय अखंड, हंस, अह्वर, आत्मराम, कर्मकर्ता, परमवियोगी कहिये. ॥ ३७ ॥

अथ आकाशके नाम—

दोहरा:— पं विहाय अंबर गगन, अंतरिक्ष जगधाम, व्योम वियत नज मेघपथ, ए आकाशके नाम ॥ ३८ ॥

अर्थ:—ख, विहाय, अंबर, गगन, अंतरिक्ष, जगधाम, व्योम, वियत, नज, मेघपथ, ए आकाशनां नाम. ॥ ३८ ॥

अथ कालके नाम.

दोहा:—यम, कृतांत, अंतक, त्रिदस, आवर्ती मृतथान; प्राणहरन, आदित तनय, कालनाम परमान. ॥ ३९ ॥

अर्थ--यम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्त्तीक, मृतस्थान, प्राणहरण, आदित्य तनय, एवा कालनां नाम ठे. ॥ ३९ ॥

पुन्यके नाम यथा

दोहा --पुन्य सुरुत करवदन, अकर रोग शुन कर्म, सुखदायक संसारफल, जागबहिर्मुख धर्म. ॥ ४०-॥

अर्थ--पुन्य, सुरुत, उर्ध्ववदन, अकररोग, शुनकर्म, सुखदायक, संसार फल, जाग, बहिर्मुख, धर्म, ए पुन्यना नाम ठे. ॥ ४० ॥

अथ पापके नाम यथा

दोहा -- पाप, अधोमुख एन अध, कप रोग इखधाम, कलिल कलुप - किलवि प डुरित, अशुन कर्मके नाम ॥ ४१ ॥

अर्थ - पाप, अधोमुख, एन, अध, कप, रोग, इ खधाम, कलिल, कलुप. कित्विप, अने डुरित, ए अशुन कर्मना नाम जाणवा ॥ ४१ ॥

अथ मोहके नाम

दोहा --सिद्धेत्र त्रिभुवन मुकुट, शिवमग अविचल धान, मोपमुगति वैकुंठ शिव, पंचम गति निरवान ॥ ४२ ॥

अर्थ --सिद्धेत्र, त्रिभुवनमुकुट, शिवमार्ग, अविचलस्थान, मोह, मुक्ति, वैकुंठ, शिव, पंचमगति अने निर्वाण ॥ ४२ ॥

अथ बुद्धिके नाम यथा

दोहा --प्रज्ञा धिपना सेमुखी, धी मेधा मति बुद्धि, सुरति मनीषा चेतना, आ य असविबुद्धि ॥ ४३ ॥

अर्थ - प्रज्ञा, धिपना, सेसुपी, धी, मेधा, मति, बुद्धि, सुरति, मनीषा, चे तना, आसय) असविबुद्धि कहिये ॥ ४३ ॥

अथ विचक्षण पुरुषके नाम -

दोहा -निपुन विचञ्चन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान, पटु प्रवीण, पंन्तित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥ ४४ ॥ कलावत कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमत, ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुणीजन सत. ॥ ४५ ॥

अर्थ -निपुण, विचक्षण, विबुध; बुध, विद्याधर, विद्वान, पटु, प्रवीण, पंन्तित, चतुर, सुधी, सुजन अने मतिमान ॥ ४४ ॥ कलावान, कोविद, कुशल, सुमन, दक्ष, धीमंत, ज्ञाता, सज्जन, ब्रह्मविद, तज्ञ, गुणीजन अने संत ॥ ४५ ॥

अथ मुनीश्वरके नामः—

दोहा—मुनि महंत तापस तपी, जिह्नुक चारित्रधाम ; यती तपोधन संयमी,
व्रती साधु रिपि नाम ॥ ४६ ॥

अर्थ—मुनी, महंत, तापस, तपी, जिह्नुक, चारित्रधाम, यति, तपोधन, संयमी, व्रती, साधु ए रूपिना नाम जाणवां ॥ ४६ ॥

दरसनके नाम—

दोहा—दरस विलोकन देखनी, अवलोकन डिग्चाल ; लखन दृष्टि निरखन सु
वन. चितवन चाहन जाल ॥ ४७ ॥

अर्थ—दर्शन, विलोकन, देखनु, अवलोकन, डिग्चालन, लखनुं, दृष्टी, निरखण, जोनु, चितवन, चाहन, ने जालनुं ॥ ४७ ॥

अथ ज्ञान तथा चारित्रके नाम—

दोहा—ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतज्ञान जगजान, संयम चारित आ
चरण, चरन वृत्ति धिरवान ॥ ४८ ॥

अर्थ—ज्ञान, बोध, अवगम, मनन, जगजान, जगजान, संयम, चारित्र, आचरण, चरण, वृत्ती, धर्यवान ॥ ४८ ॥

अथ साचके नाम—

दोहा—सम्यक् सत्य अमोघ सत, निसंदेह निरधार ; ठीक यथारथ उचित तथ,
मिथ्या आदिअकार ॥ ४९ ॥

अर्थ—सम्यक्, सत्य, अमोघ, सत्, नि संदेह, निर्धार, ठीक, यथार्थ, उचित, तथ, मिथ्या शब्दने आदि अकार लगाडीने बोलीये तो अमिथ्या शब्दथाय ते पण एनुं नाम जाणनुं ॥ ४९ ॥

अथ फूठके नाम—

दोहा—अज्ञथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक ; मुधा मोघ निष्फल
वितथ, अनुचित असत अठीक ॥ ५० ॥

अर्थ—अयथार्थ, मिथ्या, मृषा, वृथा, असत्य, अलीक, मुधा, मोघ, निष्फल वितथ, अनुचित, असत्य, अने, अठीक. ॥ ५० ॥ इति नाममाला समाप्ता

अथ समयसारके द्वादश द्वार वर्णन—

सर्वथा इकतीता—जीव निरजीव करता करम पुण्य पाप, आश्रव संवर निरजरा बंध मोघ है, सरव विद्युदि स्यादवाद साधितापक इत्यासद् डुवार धरे समसा

र कोप है; दरवानुयोग दरवानुयोग दूरि करै, निगमको नाटक परम रस पोष है, ऐसो परमागम बनारसी बखाने यामे, ज्ञानको निदान शुद्ध चारितकी चोप है॥५१॥

अर्थ - जीवदार, अजीवदार, कर्ता कर्म क्रियादार, पुन्यपाप दार, आश्रवदा संवरदार, निर्जरादार, बंधदार, मोक्षदार, सर्व विद्युद्धिदार, न्यादाढदार, साध्य साधकदार, आसमय सारना ए बारदाररूप कोप के० कोठार ठे, आ ग्रंथमा इ व्यानुयोग के० इव्यनो विचारकरवो, पत्नी इव्यानुयोग दूर करवो, ने शुद्ध आत्म सत्तानोज विचार करवानुं अने निगमके० परमात्मानु नाटक एमां परम शांतरसनो पोष ठे, ए परम सिद्धातने वणारमीदास बखाणेठे वली आ ग्रंथमा ज्ञाननुं निदानके० मूलविवरो तथा शुद्ध चारित्रनी चोख के० चोखी क्रिया कही बताववानीठे॥५१॥

अथ ग्रंथारजको नमस्कार मगलाचरण रूप

दोहरा - शोचित निजअनुचूतियुत, चिदानद जगवान, सार पथारथ आत मा, सकल पदारथ जान ॥ ५२ ॥

अर्थ - जे पदार्थ पोताना अनुभव युक्त शोचित ठे, चितके० चेतना अने आ नदित तेचिदानद कहिये, तथा जगवान के० ज्ञानवत ठे, एवो साररूप पदार्थ स सारमां आत्मा ठे, जे समस्त पदार्थनो जाणनार महोदो ज्ञाता ठे ॥ ५२ ॥

अथ आत्मानुं वरीन करी नमस्कार करेठे -

सवैया - तेईसा - जो अपनी छुति आपु विराजत, है परधान पदारथ ना मी, चेतन अक सदा निकलंक महासुखसागरको विसरामी, जीव अजीव जिते जगमे तिनको गुन ज्ञायक अंतरजामी, सो शिवरूप बसै शिवथानक, ताहि विलो कनमें शिवगामी ॥ ५३ ॥

अर्थ ॥ जे पोतानी द्युतिवडेज पोते विराजमान ठे, एटले पोताथी पोते नासी रह्यो ठे, पण बीजा पदार्थवडे जेनो नास यतो नथी एवो कोई प्रधान पदार्थ ना मी प्रतिद्ध ठे जेनुं चेतनरूप अक के० लक्षण ठे ते सदा निकलंक ठे, निरजन ठे, महोदा सुखसमुद्रमा जेनो विश्राम थई रह्योठे, एटले एकाग्रचित्तें जे सहेजे स माधिसुखमा रमी रह्योठे, जगतमा जेटला जीव अजीव पदार्थ ठे, ते सर्वना गु एनो ग्राहक ठे अने अंतरजामी ठे, जे घटघटमा विराजमान ठे तेहज शिव रूप के० सिद्धस्वरूप थयो थको लोकाग्रजागे सिद्धावस्थामां वसेठे, जेने ज्ञान दृष्टिवडे जोईने मुक्ति गामी जीव नमस्कार करेठे ॥ ५३ ॥

हवे जगवाननी वाणीने नमस्कार करेते अथ जिनवाणी वर्णनं
 सवेया तेइसा.—जोग धरं रहि जोगसुं निन्न अनंत गुनातम केवल ज्ञानी; तासहदे
 इहसो निकसी सरिता सम वहे श्रुत सिंधु समानी याते अनत नयातम लडन, सत्य
 सरूप सिद्धांत बखानी, बुद्धजखै न लखै इरबुद्धि सदा जगमाहि जगे जिनवानी ५४
 अर्थ — जे त्रण योगने धारेते तथापि ते मन वचन कायना जोगथी प्रथक
 रहे अलिप्त रहेते, अने अनत गुण प्रगटताने लीधे जेनो आत्मा कोई केवल ज्ञा
 नी पुरुष ते ते केवल ज्ञानीना रुढय रूप इह ते, तेमांथी जे नदीरूप थईने निक
 ली ते शास्त्ररूप समुद्रमा जई जली ते, ज्याथी अनंता नय स्वरूप लक्षण सत्य
 स्वरूपे जिनजीये सिद्धांतमां बखाणी ते, एवी जे वाणी ते तो बुद्धिवत तत्व दर्शी
 होय तेज लखे, अने बुद्धि मिथ्यामति होय ते लखे नही, जाणे नही, एवी
 जिनेश्वरनी वाणी जगतमां सदा जागृत थई रही ते ॥ ५४ ॥

हवे जीव धारनु विचार लखेते ते जीव कवीश्वर पोतेज ते माटे पोतानी व्य
 वस्था कहेते अथ जीव धार कवि व्यवस्था कथन —

उपपय ठंद -- हो निहचें तिहुं काल, शुद्ध चैननमय मूरति, पर परिनति सं
 योग, नई जडता विस्फूरति, मोह कर्म पर हेतु, पाइ चेतन पर रचै; ज्यौ धतूर
 रस पान, करत नर बहु विध नचै, अब समय सार वर्नन करत, परम शुद्धता
 होव मुक्त; अनयास बनारसि दास कहि, मिटौ सहज त्रमकी अरुक्त ॥ ५५ ॥

अर्थ — शुद्ध निश्चयनयचमे अतीत अनागत वर्तमान कालमां हुं शुद्ध चेत
 नामय पिंरु तुं, एहिज मारी मुरति ते, ते एवी ते तारे शुद्ध स्वभाव ठांफीने वि
 जावमां केम परिणाम्यो ते ? एनो उत्तर कहेते जे, कर्मादिक परवस्तु ते तेनुं अ
 र्हीं परिणमन थयु तेथी तेनी जडता अर्हीं विस्फूरति थई एटले जडता फेळी
 शिष्य पूठे ते के, एवो शुद्ध स्वभाव हुतो त्यारे परपरिणति केम ग्रहण करी ?
 तेनो उत्तर, मोह कर्म राग द्वेष रूप जे ते तेज परहेतु उल्लूह कारण पामीने चे
 तन आत्मा परनी साथे मोहित थयो ते, तेनो इष्टांत कहेते - जेम धतुरानो रस
 पान करी माणस तरेवार रीते नाचवा लागे, तेम अनादीनो मोह कारण पामीने
 चेतन जे ते ते पोतानो शुद्ध स्वभाव ठांफीने विजावथी मूर्छा पामी रह्योते
 हवे समयसार के० आत्मानुं वर्णन करताज. मुक्तने परम शुद्धताना स्वभावनी
 ओलखाणथई एटले शुद्ध स्वभावनी खबर पनी तेथी विजावपणुं नाश पाम्युं.
 तेथी अनायास के० घणा अथ वाचवानो प्रयास कीधा विनाज वणारसी दास

ज्ञाता कहेते. के सहज के० आत्माने सगे अनादीथी प्रमती अरुज ते मिथ्या मत भ्रमता लागी रहीते ते मारी मिथ्यामत मटी जाओ ॥ ५५ ॥

हवे आ जीवनी शुद्धता ते आगमथी पामीये माटे आगम वर्णवे ठे अथ आगम व्यवस्था कथन.

सवैया इकतीसा - निहचैमें रूप एक विवहारमें अनेक, याही नै विरोधमें जगत नरमायो है, जगके विवाद नासिवेकों जिन आगम है, जामे स्यादवाद नाम लड्डन सुहायो है, दरसन मोह जाको गयो है सहजरूप, आगम प्रवान जाके हिरवेमें आयो है, अनेसो अखडित अनूतन अनत तेज, ऐसो पद पूरन तुरत तिन पायो है ॥ ५६ ॥

अर्थ - सर्व आगम ज्ञानरूप निश्चयनयमा एकरूप देखाय ठे, अने व्यवहार नयनी अपेक्षावडे अनेक रूप देखाय ठे, पण व्यवहार नयमा नयनो विरोध म होटो ठे, एज नय विरोधमा जगत नरमायु ठे, अने एज नरमवडे जगतमा वा द विवाद उपज्यो ठे, माटे जगतनो विवाद मटामवाने वचमा प्रमाणिक साह्नी रूप जिनेश्वरनो आगम ठे, जे आगममां स्यादाद नाम लेवाथी सर्वपदार्थनु ल कृण सर्वने सोहावे ठे, स्यात् एटजे किवारेक इव्य इष्टीए देखीए ल्यारे ए नय सा चो ने केवारेक पर्याय दृष्टीए जोइये ल्यारे ए नय साचो, एवु कहे थके शिष्य पूठेठे के एवो स्यादाद सहित जिन आगम प्रमाण ठे, ल्यारे सर्वना ह्दयामां केम आव तो नथी? जे पुरुपनो अनादि कालनो मिथ्या दर्शन मोह गयो ठे, तेना ह्दया मां ए जिन आगम प्रमाणरूप आव्योठे, पण मिथ्या दर्शन मोह वाजाना रुदय मां ए आवे नही, हवे स्यादादना जाणनारने केवु फल मजे ते कहेते -- जे पद न य रहित ठे, एटजे नयनी पठे नथी, केमके, नयतो एकात ग्राही ठे, ते पूर्ण पदने केम ग्रहण करी शके? अने पूर्ण पद अखंमितठे, ने ते वली अनादि कालथी ठे, माटे अनूतन के० पुरातन ठे एवु अनत तेजवाळु पूर्ण पद तेने ते तुरत पांम्यो ठे ५६

हवे निश्चय अने व्यवहार नयने लीधे आगम कह्यो तेवारे शिष्य पुठेठे के ए बे नयमां कार्य सिद्धिकारी नय कयो ठे? तेनो उत्तर गुरु आपे ठे

अथ निश्चय व्यवहार कथन

सवैया तेईसा - ज्यो नर कोउ गिरे गिरिसो तिहि, सोइ हितू छु गहे दिठ बां ही, ल्यो बुधकों विवहार नलो तबलो जबलो शिव प्रापति नाही, यद्यपि यो पर वान तथापि सधै परमारथ चेतनमाही, जीव अव्यापक हे परसो विवहार सु तो परकी परग्राही ॥ ५७ ॥

अर्थः— जेम कोई पुरुष पाहाडनी उपरथी नीचे पडतो होय ने बीजो पुरुष तेनो हाथ मजबुत जाली रही तेने पडतो अटकावी राखे, ते तेनो हीत करनार केहेवाय, तेम पमितोने ज्या सुधी शिवसुखनी प्राप्ति नथी अई, 'तहा सुधी व्यवहार नलो ठे, एटले चोथा गुणगणाथी लईने चाँदमां सैलेसीकरण गुणगणसुधी व्यवहारनुं आलंबन ठे, यद्यपि ए रीते व्यवहार आलंबन प्रमाण ठे. तथापि परमार्थ ज्ञान दर्शन चारित्रनु शुद्धपणुं चेतन माज सधाय, बीजाथी न सधाय, अने जीव जे ठे ते पोताना गुणमयी ठे, पोताना गुणमा व्यापी रह्योठे, परंतु पर के० कर्मादिक जडजीव सत्ताथी न्यारा, ते साथे जीव अव्यापक ठे. अने व्यवहार ठे तेतो परनी ढायामां रहेठे, एटले परनी निश्चाविना व्यवहार न होय माटे व्यवहार करता निश्चयनय शुद्ध ठे ॥ ५७ ॥

हवे शुद्धनिश्चयनयथी जे सम्यक् दर्शन प्रगटे ठे तेनी व्यवस्था विशेषपणे जा एवाने अर्थ कहेठे अथ सम्यक दर्शन व्यवस्था कथन

सवैया इकतीता— शुद्ध नय निहचै अकेलो आपु चिदानंद, अपनेही गुण पर जायको गहतु है; पूरन विज्ञान धन सोहै विवहार मांदि, नवतत्वरूपी पंच इव्यमें रहतु है, पंच इव्यनवतत्व न्यारे जीव न्यारो लखै, सम्यक दरस यहै उर तैनग हतु है, सम्यक दरस जोई आत्मस्वरूप सोई, मेरे घट प्रगटयो बनारसी कहतु है ॥५८॥

अर्थः— शुद्ध निश्चय नयनी अपेक्षा लेवाथी चेतनामय जे पदार्थ ठे, ते पोतानी सत्ताये पोते एकलोज ठे, अने पोतानाज ज्ञानादिक गुणना पर्यायना अवस्था जेदने ते ग्रही रह्योठे. अने तेज सामान्य ज्ञानने शोधो जे षट इव्यादिक विशेष ज्ञान तेने विज्ञान कह्ये, अने तेनुं पूर्ण धन के० पिंम ते ए व्यवहार नय मांज देखायठे, अने एज व्यवहार नयथी नवतत्वरूप लई धर्मादिक पाच इव्य मां एकत्र अई रहेठे अने एवाज व्यवहारमां शुद्ध निश्चय केवलना पांच इव्य न्यारा ठे एम जाणुं अने नवतत्वने पण न्यारा जाणवा, एवी इव्य दृष्टीथी अन्य उपाधिना आश्रय ग्रहण करे नही, तेनेज सम्यक्दर्शनी कह्ये, अने जे सम्यक् दर्शन ठे, तेज आत्मस्वरूप मारा घटमां प्रगटनुं एवु वणारसीदास कहेठे ॥५८॥

शिष्ये पुत्र्युं के जीव इव्यथी नव तत्व अने पंच इव्य जुदा केम जाणीए तेनो उत्तर गुरु कहेठे.— अथ जीवइव्य व्यवस्था अग्नि दृष्टात.

सवैया इकतीता—जैसे तृन काठ वास आरनै इत्यादि और, इधन अनंक विध

पावकमें दहिये, आकृति बिलोकत कहावै आगि नानारूप, दीशै एक दाहक सुजाउ जब गहिये तैसे नव तत्वमें नयो हे बहु चेखी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये, जाही ठिन चेतना शक्तिको विचार कीजै, ताही ठिन अलख अचेदरूप लहिये ॥ ५९ ॥

जेम अग्रिमा तृण, काठ, वास अने आरने के० वननो बीजो कचरो इत्यादिक अने क तरेना इधण बालीये ठइये ने जेवी जेवी इधणनी आकृतीएटले (आकार) तेवी तेवी आकृतीनो अग्री देखाय, एरीते अग्री नाना प्रकारनारूपनी कहेवायठे, पण ते वधा अग्रीनो स्वजाव एक सरखो दाहक ठे, एम जो ग्रहण करिये तो बयो अग्री एकरूप ठे तेमज नव तत्वमा जीव जेठे ते जातजातनो जेप धारी रह्यो ठे, माटे जीव पण बहु वेशी के० नाना प्रकारनो थयो एटले शुद्धरूप जीव ठे, ते मिश्रित थयो, त्यारे ए जीवने अशुद्धरूप कह्यो एतुं नाम व्यवहार नय ठे, अने जे कृणमा नवे तत्वमा एक चेतना शक्ति विचारिये, ते वखते शुद्ध निश्चयनये केवलीवडे नव नत्वनो प्रपच अमुख्य राखीने अलकरूप जीव ठे, ते सर्वत्र अचेदरूप पामिये शुद्ध निश्चय नय जाणवुणए

फरी बीजीरीते शुद्ध जीव व्यवस्था कहेठे अथ जीव व्यवस्था बनवारी वृष्टांत - सवैया इकतीसा - जैसै बनवारीमे कुधातुके मिलाप हेम, नाना जांति नयो प तथापि एक नाम है, कसिके कसोटी लोक निरखै सराफ तांही, वानके प्रमान करि लेतु देतु दाम है, तैसेही अनादि पुजलसो सयोगी जीव, नव तत्वरूपमे अरूपी महा धाम है, दीजे उनमानसौ उद्योत बान गोर गौर, दूसरो न और एक आतमाहि राम है ॥ ६० ॥

अर्थ - जेम सोनानी मूसमा चोखु सोनुं गाट्यु अने सोनाथी हीण वातु ते कुधा तु कहिये, तेना नाम कहेठे - रूपु, त्राबुं, सीसुं, जसत, कथीर. इत्यादि वस्तुनो खुदोखु दो हेमनी साथे मिलाप थयो तेथी जुदी जुदी जातनुं सोनुं थयु, ते ठतां एक सोनाने नामे ओलखायठे, अने तेअशुद्ध सोनाने सराफ कसोटी पथ्थर उपर कसीने तेनी लकीर जुये ने तेउपरथी सोनुं केवु ठे ते प्रमाण करे, जेम आ दस रुपीयाना जाव तुं ठे ने आ अगीयार रुपीयाना जावतुं ठे, ने ते माफक तेना दाम आपे लिए ठे. तेमज अनादि कालथी ए जीव पुज्ज इव्यनो संयोगी माटे ए जीवे नव तत्वरूप व्यवस्था धारी, गतीपणे स्थितिपणे जाजनपणे वर्त्तमानपणे, आधारपणे, ए पाचे इव्य ग्रहण कीधा अने नवतत्वरूप धारण कखा पण एमा कोई अरूपी महा तेजवत इव्य ठे ते तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाणे ग्रहण थतु नथी, अने अनुमान

बड़े लड्डये ठड्डये, तेवारे शिष्ये पुत्रशुंके, अनुमान केतुं करीये ठड्डये? त्यारे गुरु कहेते गोरगोर उद्योतवान प्रकाशवान इव्य देखाय, तेतो बीजुं कोई इव्य नही पण एक आत्मारामज जाणवो, ए अशु-इ निश्रय नयथी जीव कइयो ॥ ६० ॥

हवे एवी रीते जे खोजना करीने परिचय पामिये तेने अनुनव कहिये, ते अनुनवतुं स्वरूप केवी रीते ठे? एवं शिष्ये पूठे थके गुरु सूर्यना दृष्टांते कहेते—

अथ अनुनव व्यवस्था सूर्य दृष्टांत

सवैया इकतीसा:— जैतै रविमंजलके उदै महिमंजलमें, आतप अटल तम पटल बिलातु है; तैसै परमात्माको अनुजो रहत जो लो, तो लो कहुं इविधा न कहु पड पातु है; नयको न लेश परवानकोन परवेश, निठेपके वसको विधंस होतु जातु है, जे जे वस्तु साधक है तेउ तहां बाधक है, बाकी रागदोषकी दशाकी कौन बातु है ६ १

अर्थ:—जेम सूर्यमंजलना उदयथी पृथ्वीमंजलमां आतप के० तावरो अटल थई जाय, अने तमके० अंधकारनापमल नासी जाय, प्रकाश उद्योत थाय, तेमज शु-इ निश्रयनयना बलबडे ज्यांसुधी अंतरात्मानेविपे परमात्मानो अनुनव रहेते, त्या सुधी कांई पण द्विविधता न देखाय, पोतपोताना मत्तनो पदपात न रहे अने अहीं नयनो लेश के० अंश न पामिये नय तो ते ठेके, जेजेकरीने वस्तुं साधन कराय अने अनुनव तो सि-इ वस्तुनो होय माटे अही अनुनवमां नयनो लेश नथी अने एमा प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रमाणनो पण प्रवेश नथी, केमके जे प्रमाण होय ते तो अस्ति-इतुं साधन करे पण सि-इ वस्तुने सुं साधने? अने नाम स्थापना इव्य नाव ए चार निक्षेपा ठे, तेपण अस्ति-इ वस्तुं साधन करे ठे, ते तो जेवारें परमात्मानो अनुनव सि-इ थयो त्यारे निक्षेपाना वसतो विध्वंसज थयो जेम सूर्यना प्रकाशवने अंधकारनो नाश थायठे. तेम ए सर्व विलय थाय ठे आ परमात्माने नयप्रमाण निक्षेपादिक वस्तु जे जे साधक ठे ते सर्व वस्तु परमात्माना अनुनवमां बाधक ठे; ज्यांसुधी नयप्रमाण अने निक्षेपानो परिवार होय त्या सुधी शु-इ अनुनव न होय एटलासारु ए बाधक ठे. बाकी राग इप दशानी शु वात केवी! तिहा तो नयादिक कहेवाज जोइये ॥ ६१ ॥

हवे, अनुनवमां शु-इ रूप जीवज लख्यो तेनी व्यवस्था वचन गोचर जेवी होय तेवी केहेते— अथ जीव व्यवस्था विवरन धार.

अडिअ तंद— आदि अंत पूरन सुजाव संयुक्त है; पर स्वरूप परजोग कलपना मुक्त है; सदा एक रस प्रगट कही है जैनमें, शु-इ नयातमवस्तु विराजे वैनमें॥६१॥

अर्थ - आदि निगोद अने अंत सिद्ध अवस्था, तेनी वचे चेतना रूप पोताना पूर्ण स्वजावेकरी संयुक्त ठे, अने ए चेतनामा पर स्वरूप जे जन्म स्वरूप, अने पर जोग जे पुञ्जल संयोग, तेनी दशा कटपना विचारणा तेणेकरी मुक्त ठे आदि अंत सुधी एकज स्वजाव ठे सदा एक चेतना रसमय प्रगट वस्तु ठे, ते शुद्ध निश्चय नयतुं आलंबन लईने जैन आगममा कही ने जेवी कही तेवी वचन व्यवहार मा पण विराजमान ठे ॥ ६२ ॥

हवे एबुज स्वरूप वचन द्वारवडे गुरु हितोपदेश रूप केहेठे -- अथ हितोपदेश. कवित उंद - सतगुरु कहे नव्य जीवनिस्तो, तोरहु तुरत मोहकी जेल, समकित रूप गहो अपनो गुन, करहु शुद्ध अनुभवको खेल, पुदगल पिंम जाव रागादिक, ५ नस्तो नही तुमारो मेल, ए जड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसें निन्न तोय अरु तेल ६३

अर्थ - अहो नव्यलोक वेला आउं, मोहनो बंध तोडो, अने तमारो पोतानो समकित गुण ठे, ते ग्रहण करो; अने ते लईने पोताना शुद्ध अनुभवनो खेल खेलो अने देखवामा जे आ शरीर ठे ते पुदगल पिंम ठे अने कर्म पण पुदगल पिंम ठे अने आ पुदगल पिंमनो राग रूपादिक जाव ते स्वजाव ठे, पण ए वस्तु साथे तहारो मिलाप नथी केमके, ए वस्तु तो जडठे, ने प्रगट ठे, एटले देखवामा आवेठे, ने तमे तो चेतन ठो तथा गुप्त ठो त्यारे ते पुदगल पिंमनी ने तमारी निन्नता ठेरी, जेम पाणीने तेल निन्न ठे, तेनीपरे जाणी लेबु. ॥ ६३ ॥

हवे एवो उपदेश साजलीने ते ज्ञाता पुरुष थयो तेनो विलास कहेठे अथ ज्ञाताविलास

सवैया इकतीसा -- कोउ बुद्धिवत नर निरखै शरीर घर, नेद ज्ञान झिष्टिसो विचार वस्तु वासतो, अतीत अनागत वरतमान मोहरस, निग्यो चिदानंद लखै बंधमे विलासतो; बंधको विचारि महा मोहको सुजाउ मारि, आत्मको ध्यान करी देखो पर गासतो, करम कलंक पक रहित प्रगटरूप अचल अबाधित वि लोकै देव सासतो ॥ ६४ ॥

अर्थ -- कोई बुद्धिवत सम्यक्दृष्टि मनुष्य होय ते पोताना शरीरमा घरने छुये, अने जड चेतननो निन्न निन्न स्वजाव जाणवो ते नेद ज्ञान कह्यो, तेमां दृष्टी आपीने वस्तु वासतो क० वस्तु स्वजावनो विचार करे अतीतकाल अनागतकाल ने वर्तमान कालमां मोहरसविषे चीनो थको, कर्मबंधमा विलास करतो थको पोताना चिदानंद परमात्माने लखे ते पढी क्रमेक्रमे बंधने विदारतो ज जाय एबु कार्यकरी मोह

ना स्वप्नावने मूकतो जाय अने पोताना आत्मामुं ध्यान करे, अने अनुभवमां प्रकाशरूप देखे तारे कर्म कलंक तेहिज पंक के० कादव तेथी रहित प्रगटरूप अचल अबाधित सर्व बाध रहित एवो शाश्वत निरंजन देव परमात्मा पोते ठे, एवु देखे अथ गुण गुनी अनेद कथन व्यवस्था

सवेया तेईसा - शुद्ध नयातम आत्मकी अनुभूति विज्ञान विनूतिहि सोई, वस्तु विचारत एक पदार्थ नामक चेद कहावत दोई, यो सरवग सदा लखि आपुहि, आत्मध्यान करै जब कोई, मेदि अशुद्धि विनावदशा तब सिद्ध सरूपकि प्रापतिदोई ६५

अर्थ - हवे शुद्ध अनुभव जे ठे ते गुण ठे, एक आत्ममां गुणी ठे, तेनुं जेनुं अनेद स्वरूप ठे तेवी अनेद अवस्था कही बतावेठे:- शुद्ध निश्चय स्वरूपी आत्मामां अनुभूतिके० जे अनुभव ठे, तेज विज्ञान विनूतिके० विशेष रूप ज्ञान संपदा ठे अही आत्मा गुणी ठे ने अनुभवज्ञान गुण ठे. हवे ए वे वस्तु शुं ठे? एवो जो विचार करीये तो एकज आत्म पदार्थ जासेठे एकज पदार्थमां आ गुण अने आ गुणी एवांवे नाम ठे तेज चेद केवायठे एम सरवग के० सर्व प्रकारे पोतानेज गुणगुणी रूप लखीने जारे कोई आत्मध्यान करे, तारे अशुद्धविनाव दशा मटीने सिद्धस्वरूपनी प्राप्ति थाय ॥ ६५ ॥

अथ ज्ञाता चितवन स्वरूप कथन

सवेया इकतीसा - अपनेही गुण परजायसो प्रवाहरूप, परिणयो तिरूं काल अण ने आधारसो, अंतर बाहिर परकासवान एक रस, खिन्नता न गहै निन्न रहै जो विकार सो, चेतनाके रस सरवग जरि रह्यो जीव, जैसे लॉन काकर नयेां हे रस ठारसां, पूरन सरूप अति उज्वल विज्ञान घन, मोकों होहु प्रगट निशेष निरवारसो ॥६६॥

अर्थ.- हवे एज घातने जेम ज्ञाता लोक पोताना चितमां चितवे तेवुज स्वरूप कही देखाडे ठे:- आ जे कोई आत्मा केवायठे, ते तो विज्ञान घन ठे; विशेष ज्ञानमय एक पिण ठे, ते अतीत अनागत ने वर्तमान ए त्रणे कालमा प्रवाहरूप कखाथी अविच्छिन्न धाराये पोतानाज गुण पर्याये करीने पोतानाज ज्ञानादिक गुणनी अवस्था चेदने लीधे अने पोताना आधारथी परना आश्रयविना परिणम्यो रहे ठे. अने ए विज्ञान घननी एवी महिमा ठे के तेथी मांहे अने बाहिर एक चित चेतना रसबडे प्रकाशवान थयो जे पोताने जाणे ते अंतर प्रकाश अने बाह्य वस्तुने जाणे ते बाहिर प्रकाश एवा कार्यमा खिन्नता ग्रहण न करे; अने नव विकारथी न्यारो रही सर्व प्रवेशविषे चेतनना रसे करी जीव जरपूर थई रह्यो

ठे ए उपर दृष्टांत कहे ठे के, जेम लुणना कांकरा खार रसथी जरेला ठे, तेम चेतना रसथी जीव नरपूर थई रह्यो ठे एवुं पूर्ण स्वरूप ते अखंभित घणुंज उ ज्वल जे विज्ञान घन पूर्वे वखाण्णुं ते मने प्रगट थाअ्यो निज्ञोप निरवार ते सम विज्ञाव दशानु निवारण करीने पठी ए रीते ज्ञाता पुरुष मनमा चितवे अने ए मांज स्थिर रहे ॥ ६६ ॥

अथ इव्य पर्याय अचेद कथन व्यवस्था

कवित्त उंद - जहें ध्रुव धर्म कर्म ठय लह्वन, सिद्ध समाधि साथ्य पद सो ६, सुधोपयोग जोग महि मंभित, साधक ताहि कहे सब कोइ, यो परतह परोह स्वरूप सु, साधक साथ्य अवस्था दोइ, इहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवे शिव बढक थिर होइ ॥ ६७ ॥

अर्थ - विज्ञान घन ठे ते इव्य ठे, अने ज्ञाता केवाय ते पर्याय ठे, एम वि ज्ञान अने ज्ञाता एकज ठे, तेथी इव्य पर्यायनुं अचेदपणुं बतावे ठे - जहा सक ल कर्मनो क्य लखिये एवो ध्रुव धर्म जे निश्चल स्वभाव ठे, एवु कोइक सिद्धप णानुं थयु ते तो पद साथ्य केवाय ठे, अने शुद्ध उपयोग जेता थका ए मन व चन काय योगमा मभित थका तिर्थकर साधु प्रमुख पर्याय लई रह्या ठे, तेमने सहु कोई साधु कहेठे एवु साधुपणुं ते प्रत्यक्ष स्वरूप ठे, अने साथ्यपणुं ते प रोक्ष स्वरूप ठे ए बने अवस्था लईने एक विज्ञान घन ठे. मोक्षने इह्वनार साथ साथ्य बनेने एक ज्ञान सचयवडे सेवे, ते बने पदमा विज्ञान घन एक ठे, अने ए बने पदनी सेवामा स्थिर थई रहेठे ॥ ६७ ॥

अथ इव्य गुण पर्याय नेद व्यवस्था कथन

कवित्त उंद - दर्शन ज्ञान चरन त्रिगुनातम, समल रूप कहिये विवहार; नि ह्ये दृष्टि एकरस चेतन, नेद रहित अविचल अविकार, सम्यक् दशा प्रमाण उ नै नय, निर्मल समल एकही बार, यो समकाल जीवकी परिनति, कहे जिनंद गहे गनधार ॥ ६८ ॥

अर्थ - शिष्य पूठे ठे के स्वामी तमे अचेद व्यवस्था कही ते कया नयना ब ल बडे कही? गुरु केहेठे के व्यवहार नय बडे इव्य गुण पर्यायनी नेद अवस्था ठे ते कहु तुं - ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रणे आत्माना गुण ठे, ए स्वरूपथी जे व्य वहार कहीए ते समल रूप ठे, अने एज निश्चय दृष्टीथी जोइये तो दर्शन ज्ञान चारित्र एक चेतना रसमय देखाय ठे, अने चेतनाज चेतन ठे, तेणे करीने नेदरहि

त अविचल अतिकार निर्मल रूप ठे. निश्चय नय ने व्यवहार नय ए बन्नै ठे ते सम्यक् दशामां प्रमाण ठे, जे नय ठे ते तो अजिप्राय विशेष ठे, माटे एकज अ व्यक्त रूप निर्मल तथा समल रूप जाणिये. एम समकाले निर्मल अने समल जीवनी परिणति थई रही ठे, ते श्री जिन देव कहे ठे अने गणधर देव सर्वदे ठे. ॥६८॥

अथ व्यवहार कथनं.

दोहरा - एक रूप आत्म दरब, ज्ञान चरन दृग तीन ; जेद जाव परिनाम सां, विवहारे सु मलीन. ॥ ६९ ॥

अर्थ:- हवे ज्ञान दर्शन चारित्रनो त्रिक ठे ते व्यवहार नयथी थाय ठे, ते क हे ठे -आत्म इव्य जे ठे ते एकरूप ठे, ने ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रण जे ठे ते ने द जाव परिणाम ठे; स्यारे एकविपे त्रण जेद थया तेथी ए व्यवहार नयवडे समल रूप थयुं ॥ ६९ ॥

अथ निहचै स्वरूप कथन.

दोहरा-- यदपि समल विवहारसां, पर्यय शक्ति अनेक ; तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक ॥ ७० ॥

अर्थ:-निश्चयनयेकरी निर्मल स्वरूपमांज ध्याववुं जजुं ठे ते केहेठे:-यद्यपि व्यवहारनयनी अपेक्षाथी आत्मानेविपे अनेक शक्ति अनेक पर्याय देखायठे, माटे ते समल ठे, तोपण निश्चय नयनी अपेक्षाथी शुद्ध निरंजन एकज जाण्यामां आवेठे. ७०

अथ शुद्ध कथन.

दोहरा.- एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक वौर ; समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और. ॥ ७१ ॥

अर्थ:- हवे शुद्धरूपीज उपादेय ठे एवुं केहेठे:- जे एक शुद्ध चेतनामय रूप देखवु ते दर्शन, तेमज जाणवुं ते ज्ञान ; अने तेमां जे रमि रहेवुं ते चारित्र ठे, ते नयनी अपेक्षावडे समल अथवा विमल रूप विचारवुं नही. एहिज सिद्ध कहिये, पण बीजा स्वरूपमां सिद्ध नथी. ॥ ७१ ॥

अथ शुद्ध अनुभव प्रशंसा.

सवैया इकतीसा.- जाके पद सोहत सुलह्नन अनंत ज्ञान, विमल विकासव त ज्योति लहलही है, यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहारमे तथापि, एकता न तजै यों नियत अंग कही है; सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करिवेको

मेरी मनसा उमही है, जाते अविचल सिद्धि होतु और नांति सिद्धि, नाहि नाहि नाहि यामें धोखो नाहि सही है ॥ ७१ ॥

अर्थ - हवे एवा स्वरूपनो अनुभव स्थिर रहेवो ते दुर्लभ ठे, माटे सर्व ज्ञाता एनो मनोरथ करे ठे. जेनेविषे अनंत ज्ञानरूप सुलक्षण शोचेंठे, अने विमल वि काशवत के० पोतानो तथा परतुं जाणवु एवी ज्योति जेनेविषे लहलही ठे अ ने यद्यपि व्यवहारनयमा बाह्यात्मा, अंतरात्मा, तथा परमात्मा ए त्रिविध रूप ठे, तथापि निश्चयनयनी अपेक्षायी एकताने व्यजे नही एवं एकरूपी कबु ठे; ते एवो पदार्थतो जीव ठे हवे ते युक्तिथी करी आगल केहेजे ते युक्तियेकरी निर तर तेनु व्यान करवाने मारी होस मनमा उमगी रहोठे जेना ध्यानथी पोता नी ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रुद्धि अविचल थायठे, एज रीते सिद्ध ठे पण बीजे कोई प्रकारे सिद्धि नथी एमां कई धोखो नथी एटजे फुटुं नथी एज वात साची ठे

अथ ज्ञाताकी व्यवस्था वर्णन

सवैया तेईसा -- के अपनो पद आपु संचारत, के गुरुके मुखकी सुनि बानी, जेद विज्ञान जग्यो जिनके प्रगटे सु विवेक कला रज धानी, नाव अनंत नये प्रतिबिंबत, जीवन मोप दशा उहरानी, ते नर दर्पणज्यो अविचार रहै धिर रूप सदा सुखदानी ॥ ७३ ॥

अर्थ -- हवे जेद विज्ञानवडे एनो अनुभव थाय ठे तेथी मुक्ति मले तेज पर मार्य कहेते - कोई तो पोतानुं पद जे पोतानु निरालंब स्वरूप, ते पोतेज सचारी ने पोतावडे ग्रंथी जेदकरी पोताने उलखेठे कोईतो गुरुना मुखनी वाणी शानजी ने पोताने उलखेठे. अने जेना घटमां जड चेतनतुं जेद विज्ञान जाग्युं, तेषे करी पोताना चेतन रूपनी जे न्यारी कला ठे, तेनी राजधानी जे तेनुं ईश्वरपणुं जेना घटमा प्रगट्युं, अने एज राजधानीमां अनंत नाव पदार्थ प्रतिबिंबित थया तेना ज्ञायक थया एटजे जीवता थकाज मोहू दशा उरी मुक्त स्वरूपी थया अने एमा अनंतनाव प्रतिबिंबित थया तोपण समलरूप न थया, तेथी ते मनुष्य दर्पण एट जे आरीतानीपरे विकार रहित थया, स्थिररूप थया, अने सुखदायक थयाठे ७३

अथ जेद ज्ञान प्रशंसा कथन

सवैया इकतीसा -- याही वत्तमान समै नव्यनिको मिटयो मोह, लग्यो है अ नाविको पग्यो हे कर्म मजसों, उदो करै जेदज्ञान महारुचिको निधान, उरको उजारो चारो न्यारो हुंद दलसों, याते धिर रहै अनुजौ विलास गहै फिरि कबहों

अपनपो न कहै पुदगलसों; यहै करतूति यों छुदाइ करै जगतसों, पावकज्यो जि
न्न करै कंचन उपलसों ॥ ७४ ॥

अर्थ:- हवे जेदविज्ञाननी उत्पत्ति अने महिमा कहेवे- आ वर्तमानकाल
विषे जव्यलोकनो मोह चम टली जाय जे मोह कर्म आत्माने अनादिकालथी
लाग्युं ठे; अने कर्ममलमां व्यापी रह्योठे, ते मोह चम मटवाथी जेद विज्ञाननो
उदय थाय, ते जेद विज्ञान केवुंठे? महारुचिनुं निधान ठे. ए जेद विज्ञानमां
महोटी रुचि पामीये ठिये एटले महारुचिनुं कारण ठे. जेद विज्ञानथी गरिष्ट उर
तुं अजवालुं प्रगट थायठे, ते अजवालुं केवुंठे?

एटले महा घाम घुमथी न्यारोठे ६६ दशाथी नीकली स्थिरतामां रहे, अने
पोताना अनुभवनो विलास ग्रहण करे, पोताने सत्यार्थ पणे जाणे, पठी ए जेद
विज्ञान पाम्या थकी शरीर कर्मादि पुजल रूपी जाणीने पोतानुं न कहे आत्मारू
प न कहे करतूति के० ए जे जेदविज्ञाननी क्रिया तेज जगतथी छुदाईने करे, पां
च इच्यथी छुदाई करे, अही दृष्टांत बतावेठे.- जेम अग्री माटी पापाणने कंचन
थी छुदी करे ठे तेम जाणी लेवु ॥ ७४ ॥

अथ परमार्थ शिक्षा कथन.

सवैया इकतीसा:- बानारसी कहै जैया जव्य सुनो मेरी शीख, केहू नाति कै
सेहूके एसो काज कीजिए, एकहू मुहूरत मिथ्यातको विध्वस होइ, ज्ञानको ज
गाइ अंस हंस खोजि लीजिये, वालीको विचार वाको ध्यान यहै कोतुहल, यो
ही जरि जनम परम रस पीजिए, तजी नववासकी विलास सविकासरूप, अंतक
रि मोहको अनंत काल जीजिए ॥ ७५ ॥

अर्थ.-हवे छु-६ जीवइच्यमा रहेवुं तेज परमार्थ ठे तेनी शिक्षा कहेवे -- व
णारसीदास केहेवे.- अहो नाई जव्य जीवो, मारी शिक्षा सानलो केवी पण रीते
थी कोई इच्य क्षेत्र काल नाव पामोने एवु काम करवु के जेणे करीने एक मुहुर्तमा
त्रमां मिथ्यात मोहनो विध्वस थाय अने ज्ञाननो अंस जगावी लेवो, अने सोहं हंसो
एवी ध्वनि करतो हंस जे आत्मा तेने खोजी लश्ये पठी तेनुं लक्षण विचारवु
पठी तेने ओलखीने तेनुं ध्यान करवु. एवी एनी कला खोजीने कुतोहल जे
खेल ते कखा करियें, अने तेज जनम परियंत परम रस पीवो. एरीते सविकार रू
पथी फेली रह्यो एवो नववासनो विलास तेने तजीने तथा मोहनो अंत आ
णीने अनंत कालसुधी जीवीए एटला प्रकारे सि-६ थवायठे ॥ ७५ ॥

अथ तीर्थकरकी स्तुति बाह्यरूप कथनः-

सर्वैया इकतीसा.-जाकी देहदुतिसों दसो दिशा पवित्र नई, जाके तेज आगे सब तेजवत रुके है, जाको रूप निरखी थकित महारूपवत, जाकी वपुवाससों सुवास और लुके है, जाकी दिव्य धुनी सुनि श्रवणकों सुख होत, जाके तन ल छन अनेक आइ ठूके है, तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि सुख चेतनसों चुके है ॥ ७६ ॥

अर्थ - हवे चेतन महिमावान थयाथी पुजलपण महिमावान थाय माटे क विराज तीर्थकरना बाह्य शरीररूप पुजलनो महिमा कहेते - जेनी देहनी युति एवी पसरी रहैते के जेथी दसे दिशा पवित्र थई जायते, एटले शोनायमान थायते अने जेना तेज आगल सर्व तेजवाला बुपी जायते एटले सर्व देवता मद तेजवत थायते अने जेनुं रूप जोईने महारूपवत पंच अनुतरवासी देवता पण चकित थई रहेते अने जेना शरीरनी सुवासथी अन्य सुवासी वस्तु सर्व लुकी जायते अने जेनी दिव्य ध्वनि सांजलीने श्रवणने सुख थायते एटले नव्य अचनव्य सर्वने ते वाणी मीठी लागेते अने जेना शरीरमा अनेक गुन लक्षण आवी ठुकी रह्याते एवा श्री जिन राज देव ठे तेमना एटला गुण कह्या ते अगुण व्यवहार नयनो आश्रय लईने कह्या पण, निश्रयनयथी ए कहेला गुण सर्व गुण चेतननी निन्नता दर्शावेते ७६

अथ जिन स्तुति व्यवहाररूप पुन -

सर्वैया इकतीसा -जामे बालपनो तरुनपो वृद्धपनो नांहि, आयु परजंत महा रूप महा बल है, बिनाहि जनत जाके तनमे अनेक गुन, अतिसै विराजमान काया निरमल है, जैसे विनुपवन समुद्र अचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है, ऐसो जिनराज जयवत होउ जगतमे, जाकी गुनगति महा सुरुतिको फल है ॥ ७७ ॥

अर्थ.-हवे फरी व्यवहारनय वडे जिन स्तुति केरेते -- जेमा जन्मथी मा नीने मर्ण पर्यंत महारूप अने महाबल समान रहेते, पण बालपणु त रुणपणु वृद्धपणु ए त्रण जे अवस्थाना जेद तेमा रूपमा अने बलमा जेद न पामे, जेना सहज स्वभाव जतनविना शरीरमा अनेक गुण आवी रहेते, अने जेनेविपे चोत्रीस अतिशय गुण विराजमान थई रह्याते, अने जेनी काया प्रस्वेदरहित निर्मल रहेते. जेम पवननी वहेर विना समुद्र अचलरूप थई रहेते तेम जेनुं मन अचल ठे, ने आसनपण अचल ठे, अही गतिनी अपेहाविना आस

न अचल कस्युठे, पण निरंतर अचल आसन संजवे नही एवा जिनराजदेव जग
तमां जयवत थाओ जेनी रूडी नकि करवाथी महासुक्ति फलनी प्राप्ती थायठे.

यथार्थ कथन --

दोहरा.— जिन पद नाहि शरीरकों, जिन पद चेतन मांदि; जिन बर्नन कठु
झौर है, यह जिन बर्नन नांदि. ॥ ७८ ॥

अर्थ—एटली व्यवहार स्तुति करीने हवे सत्यार्थ वात कहे ठे:—ए जे जिन नाम
ठे ते जीव विपाकी ठे पण पुज्ज विपाकी नथी, तेथी जिनपद ते शरीरनों नथी, जि
नपद तो चेतननो ठे, तेथी जिनेश्वरनी स्तुति कोई थोरज ठे पण पूर्वे जे जिनेश्वर
नी स्तुति करी ते जिनं स्तुति नथी. इहां शरीर जड ठे अने आत्मा चेतन ठे ए बने
भाव निन्न स्वभावमां ठे तेतुं दृष्टांत आपेठे. ॥ ७८ ॥

अथ जड चेतन निन्नभाव दृष्टांत कथन:--

सवैया इकतीसा:—उंचे उंचे गढके कंगुरे यों विराजत है, मानो नन लोक ली
लवको दांत दियो है, सोहे चिहोउर उपवनकी सघनताई, घेरा करि मानो नू
मि लोक घेरि जियो है; गहरी गंजीर खाई ताकी उपमा बनाई, नीचो करि आ
नन पताल जल पियो है, ऐसो है नगर यामे नृपको न अंगकोउ, योही चिदानं
दसो शरीर निन्न कियो है ॥ ७९ ॥

अर्थ— जेम कोई गढना उंचा उंचाकांगरा बीराजे ठे (अहि कवि उत्प्रेक्षणा क
रे ठे.) पण ते कांगरां नथी पण मातुं तुं जे आ नगरमां स्वर्गलोकने गली ज
वाने दांत आप्यां ठे, एटले जाणे स्वर्ग लोकने गली जज्ञे. अने एनी चारे तरफ
उपवन एटले बाग वाडीनीं सघनता एवी शोनी रही ठे के जाणे नूमिलोक एट
ले मनुष्य लोक तेणे घेरी लीयो ठे अने ए नगरनी चारे बाजुए उंमी खाही
बनी ते जाणे नीचुं आनन एटले मुख करीने पातालज पाणी पातो होयनी
ए रीते जेणे त्रणे लोक जीत्या ठे एतुं नगरतुं वर्णन कीधुं पण ए नगरमां कोई
राजाना अंगतुं कांई वर्णन कीधुं नथी. मतलब के चिदानंदयकी शरीरने निन्न
करी बताव्युं. ॥ ७९ ॥

अथ तिर्यकरकी निहचं स्तुति सरूप कथन वस्तु वर्णन.

सवैया इकतीसा— जामें लोकालोकके सुजाव प्रतिजांते सब, जंगी ज्ञान सग
ति विमज जैसी आरसी, दर्शन उद्योत जियो अंतराय अंतकीउं, गयो महामोह जयो
परम महारसी, सन्धासी सहज जोगी जोगतो उदासी जामें, प्रकृति पंचाशी ज

गि रहि जरि ठारसी, सोहै घटमंदिरमे चेतन प्रगटरूप, ऐसो जिन राज तांहि बंदत बनारशी ॥ ८० ॥

अर्थ - हवे तीर्थंकरपदने लेई रहेली जे वस्तु ठे तेना स्वरूपनुं वर्णन करेठे:- जेमां लोक अने अलोकनो स्वभाव एटले खट इव्य जाव प्रतिनासी रहे, एवी ज्ञान शक्ति निर्मल प्रगटी ठे जेम आरीसामां पदार्थना जाव जासेठे, एवी रीते जेना ज्ञानमा सर्व जाव जासेठे, एटले ज्ञानावरण गयुं, अने दर्शनावरणना नाश थवा थी केवल दर्शन उद्योत थयु अने अंतराय नाश कखो, तेथी अनंतवीर्य धैर्यवत थयो, अने महा मोह कर्म जे ठे ते नाश पाय्यो, तेथी परम उत्कृष्ट महाकपी थयो, तेणे करी यथाख्यात चारित्रनो संन्यास एटले तेनो धारण करनार ज्ञान दर्शन चारित्र आदि जे सहजयोग ठे तेनो धरनार, मन वचन कायना योगथी उदास थईने अघातिक चार कर्मनी पंच्यासी प्रकृती सत्ताये रहि ठे, ते पण बलीने खाखजे वी थई रही ठे, अने जेना घटमंदिरमां चेतन देव ठे ते प्रगटपणे शाही रह्योठे. एवा श्री जिन राज देव तेने वणारसीदास वदन करेठे ए निश्चय स्तुति कही ॥ ८० ॥

हवे एवा शुद्ध चेतननी स्तुतिनुं दृष्टांत देखाडीने हवे निश्चय व्यवहारनो निर्णय करेठे अथ श्री निश्चय व्यवहार तीर्थंकर स्तुति कथन -

कवित्त ठंड - तनु चेतन विवहार एकसे, निहवे जिन जिन है दोइ, तनु स्तुती विवहार जीव श्रुति, नियत दृष्टि मिथ्या श्रुति सोइ, जिन सो जीव जीव सो जिनवर, तनु जिन एक न मानै कोइ, ता कारन तनकी अस्तुतिसां, जिनवर कीअस्तुति नहि होइ ॥ ८१ ॥

अर्थ - शरीर अने आत्मा ए बने व्यवहारमां एक सरखा ठे, अने निश्चयथी जोइये तो बने जुदा जुदा ठे एमाटे तननी स्तुति करतां जीवनी स्तुति करिये ए व्यवहार ठे. अने निश्चे दृष्टीथी जोता ते मिथ्या स्तुतिठे जिनपद कर्म जे ठे ते जीव विपाकी ठे, पण पुजल विपाकी नथी, तेथी जिन ते जीव ठे, अने जीव ते जिन ठे, पण शरीर अने जिन एक करी न मानीए, ते कारणे तननी स्तुति करी ते जिनवरनी स्तुति थई नही ॥ ८१ ॥

अथ वस्तु स्वरूप कथन दृष्टांत करी डिढाइयतु है:-

सवैया तेईसा - ज्यो चिरकाल गडी वसुधा महि, नूरि महानिधि अंतर गूजी;
कोउ उखारि धैर महि कपरि, जो दृगवत तिन्है सब सूजी; ल्यो यह आतमकी

अनुनूति पगी जड जाव अनादि अरुजी, नैजुगतागम साधि कही गुरु, लडन वेदि विचडन वूजी. ॥ ७२ ॥

अर्थ - शिष्य पुढेठे के एवो अनूपम महिमानो धारक जीव आ शरीरमा केम पामिये ? त्यारे गुरु दृष्टांत आपी न्यारी अनूत स्वरूप वस्तु आ शरीरमा दृढावै ठे - जेम कोई महानिधी घणा काल सूधी धरतीनी अंदर दटाई रही होय, ते अंतर उक्त थई रहेली लडनीने कोई खोदी काढी जमीन उपर मूके त्यारे जे नेत्रवत पुरुष ठे तेने बधी देखाई आवेठे तेम आ आत्मानो अनुभव अनादि कालथी जड ए टले पुजल इव्यमां दटाई रह्यो ठे, तेने नयसहित आगम जे सिद्धांत तेणेकरी गुरु ए साथ्य एटले साधने करी सिद्ध करी दीधाथी विचक्षण पुरुष तेने सारी पठे जाणी लियेठे. ॥ ७२ ॥

हवे तेनो जेद ज्ञान पाम्याथी उपादेय वस्तुं उपादान करवाथी आवे ते उ पर धोवीनुं दृष्टांत बतावे ठे - अथ जेदज्ञान स्वरूप कथन धोवीको दृष्टांत - सवैया इकतीसा - जैसे कोउ जन गयो धोवीके सदन तिन्ह, पहिखो परायो वख मेरो मानि रह्यो हे, वनी देखि कह्यो नैया यहु तो हमारो वख, चीन्ह्यो पहि चानतही त्याग जाव लह्यो है, तैसेही अनादि पुढगलसो सयोगी जीव, संगके ममत्वसो विजावतामें बह्यो है, जेद ज्ञान जयो जब आपो पर जान्यो तब, न्यारो परजावसो स्वजाव निज गह्यो है ॥ ७३ ॥

अर्थ - जेम कोई मनुष्य धोवीने घेर गयो अने पारकु वख पोतानुं मानी नू लमां लईने पेहेखुं, एटलामां ते वखनो खरो मालक मळ्यो, तेणे जोईने कसु के, जाई, आ वख जे ते पेहेखुं ठे, ते महारो ठे ते वखते पेला मनुष्ये ते वख जोखुं ने परायुज ठे एवु जाणुं, तेवारे ते वखनो त्याग जाव उपज्यो, ने तेणे ते वख तेना धरणीने हवाले कीधुं. तेमज जीवने अनादि कालथी पुजलनो संयोग थयो ठे, एटले शरीर तथा कर्मनो संयोगी जीव अनादि कालनो ठे, ते सगना ममत्वथी विजावता एटले उलटा जावमां वही रह्यो हतो ते - ज्यारे जड चेतननी जिन्नतानुं ज्ञान थयु त्यारे ते पोताना स्वरूपने तथा परना स्वरूपने समज्यो, अने ते पर रूपथी जुदो थयो ने पोताना स्वरूपनुं ग्रहण कीधुं. ॥ ७३ ॥

ज्यारे निश्चय पोतानुं स्वरूप जाणुं त्यारे ज्ञाता एवो विचार करवा लागे ते कहेठे -

अथ निश्चय स्वरूप कथन -

अमित उद - कहै विचडन पुरुष सदा हो एकहो, अपने रससो जयो आ

पनी टेकहो, मोह कर्म मम नाहि नाहि त्रम कूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है. ॥ ८४ ॥

अर्थ - विचक्षण पुरुष केहेवे के, हुं सदा एक पणो रहुं, चेतना रस बडे नरपूर हुं, अने पोताना आधारथी रहुं हुं, मने बीजानो आश्रय नथी अने जे जात जातनो मोह कर्मनो प्रपंच ठे ते महारुं स्वरूप नथी, ए त्रम रूप कूप ठे ते मारुं स्वरूप नथी, पण शुद्ध चेतनानो सिंधु के० समुद्र ते मारु रूप ठे. ॥ ८४ ॥

हवे एवा पोताना स्वरूपने जाण्वाथकी केवी अवस्था प्राप्त थई ते केहेवे -

अथ ज्ञान व्यवस्था कथन -

सवैया इकतीसा - तत्वकी प्रतीतिसौं लख्यो है निज परगुन, दृग ज्ञान चरन त्रिविध परिणयो है, विसद विवेक आयो आगे विसराम पायो, आपुहीमे आपनो सहारो सोधि लयो है, कहत बनारसी गहत पुरुषारथको, सहज सुजावसौं विजाव मिटि गयो है, पन्नाके पकाय जैसे कचन विमल होतु, तैसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप जयो है ॥ ८५ ॥

एवी जीव तत्वनी प्रतीति थई तेरो करीने ज्ञानादिक निजगुण अने परगुण ते बीजा इव्यना गुण जे गति, स्थिति, अवगाह, वर्तना, वर्णादिक ए सर्व लखीने दर्शन, ज्ञान अने चारित्र ए त्रयो गुणनेविपे परिणामी रह्यो ठे, निर्मल विवेक आव्याथी सारो विश्राम पाम्यो ते स्थिरता पामीने पोताने विपेज पोतानो सहज स्वभाव सोधी लीयो अहीं वणारसीदास केहेवे के ल्यारे आ पुरुषार्थ ते आत्मस्वरूप अर्थ तेतुं ग्रहण करीने सहज स्वभावमा राग द्वेष मोहरूपी विजाव जे अनादिकालनो हतो ते मटी गयो अहीं दृष्टात केहेवे - जेम पाकी इटनी जरीमां गालवाथी सुवर्ण निर्मल थायठे, तेम शुद्ध चेतन निर्मलरूप थईने प्रकाश रूप थयोठे ॥ ८५ ॥

हवे विजाव दूटवाथी निज स्वरूप प्रगटताने पामे तेउपर नटी जे नाचनारी स्त्री, तेतुं दृष्टात कही देखाडे ठे - अथ वस्तु स्वरूप कथन पातरको दृष्टांत -

सवैया इकतीसा - जैसे कोउ पातर बनाय वस्त्र आनरण, आवति अखारे निशि आडो पट करिके, डूह उर दीवटि संवारि पट दूरि कीजे, सकल सजाके लोको देखै दृष्टि धरिके, तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि जेद करि, उमग्यो प्रगट रह्यो तिहुं लोक जरिके, ऐसो उपदेस सुनि चाहिये जगत जीव, सुद्धता संजारे जग जालसौं निकरिके ॥ ८६ ॥

अर्थ - जेम कोई नाचनारी स्त्री आडो पट करीने तथा वस्त्रा नूपणवडे पोतानो

वेप मनोहर बनावीने रातना वखते अखाडामां आवी ऊची रहे, ते आडा पटथी रात्रीने विपे देखाय नही, ने जारे अंतरपट दूर करी वेहु तरफ हाथमां काकडा सलगावी परिचय दूर करे त्यारे सर्व सजाना लोक दृष्टी धरीने तेना रूप सणगार वगेरेनी शो जा प्रगट जोई रीजे ठे, तेम ज्ञाननो सागर एवो जे आत्मा, ते मिथ्यातरूप आडा पटथी प्रबन्न रह्यो हतो, ते कोई समे मिथ्यात ग्रंथी रूप पटने चेदीने प्रगट थयो, ते ज्ञान समुद्र त्रण लोके नरी रह्यो ठे, एटले त्रणे लोक ए आत्माने विपे जासी रह्या ठे हवे गुरु केहेठे के अहो जगतवासी जीव, में जे पूर्वे उपदेश दीयो एवा उपदेशनुं श्रवण करवुं तारे जरूरनुं ठे, ते सांजली जगत जाल मांथी निकजीने तारी छुट वशाने सनारी जेईस. ॥ ८६ ॥

इति श्रीनाटिक समयसारना प्रथम जीव वारनुं निरूपण बालबोध सहित समाप्त थयुं.

दोहरा.--जीव तत्व अधिकार यह, कह्यो प्रगट समुजाइ; अब अधिकार अब जीवको, सुनो चतुर मन लाइ ॥ ८७ ॥

अर्थ--जीवतत्वनुं जेवुं स्वरूप ठे तेनो ए अधिकार एटले स्वरूप, लक्षण, गुण, प्रगट समजाव्यो. हवे बीजो जे अजीव वारठे, तेमां अजीवनो अधिकार मुख्यपणे करीने कह्युं, ते चतुर लोको चित्त दर्शने सांजलजो ॥ ८७ ॥

हवे अजीवने पण ज्ञानवडेज जाणवानुं वनेठे अने आ ग्रंथमां अजिथ्येय ज्ञानठे माटे संपूर्ण ज्ञाननी अवस्था निरूपण करेठे:- अथ ज्ञानकी व्यवस्था कथन:-

सवैया इकतीसा --परम प्रतीति उपजाइ गनधरकीसी, अंतर अनादिकी विजावता बिदारी है, जेदज्ञान दृष्टिसों विवेककी सकति साधि, चेतन अचेतनकी वशा निरवारी है; करमको नासकरी अनुनी अन्यास धारी, हियेमें हरख निज छुटता संचारी है; अतराय नास गयो छुट परकास नयो, ज्ञानको विजास ताको बंदना हमारी है. ॥ ८८ ॥

अर्थ--प्रथमथी जे ज्ञानवडे नव्य लोकना आत्मामां गणधरनी माफक तत्वनी परम प्रतीति उपजावी, अने समकालपणे अंतरात्मानेविपे अंतरनी जे अनादीनी विजावता (मूढता) तेने विमारीठे, अने जड चेतन ए वने निन्न ठे एवु जेदज्ञान प्रगटयुं तेनी दृष्टी तेज विवेकनी शक्ति ते साधि एटले छुदा छुदा गुण पर्याय जाणा, अने छुदा छुदा जाणीने चेतन तथा जड तेनी दशा ठीक कीधी; ते पठी गुण श्रेणीने धरीने रूपेण कर्मनी निर्जरा करवा लाग्यो, ते करी

अनुभव अन्यास कीधो, एटले सत्य प्रत्ययमा पेठो, अने ह्दयानेविषे हर्ष पाम्यो, अने पोतानी शक्ति उत्कृष्ट कीधी. ए कार्य यता अंतराय कर्म जाग्युं. अने केवल रूप प्रकाश पाम्यु, एवो कोई क्रमे क्रमे करी ज्ञाननो विलास उत्पन्न ययो, ते ने अमारी वदनाठे ॥ ८८ ॥

शिष्य पूठे ठे के स्वामी, तमे जे ज्ञान विलास कह्यो, तेतो तेवोज-ठे, पण ते पामवु दूर्लभ ठे, ते उपर गुरु परमार्थनी शिक्षा दिये ठे.-- अथ परमार्थ शिक्षा कथन --

सवैया इकतीसा -- जैया जगवासी तूं उदासी व्हैके जगतसो, एक ठ महीना उ पदेस मेरो मानुरे, और संकल्प विकल्पके विकार तजि, बैठके एकत मन एक गोर आनु रे, तेरो घट सर तामे तुही है कमल ताको तूही मधुकर है सुवास पदचानुरे, प्रापति न व्है है कबु ऐसो तू विचारतु है सही व्हैहै प्रापतिसरूपयाही जानुरो ॥ ८९ ॥

अर्थ -- अरे जीव जगतवासी जाई तु जगत के० जब भ्रमणा तेनु कारण (शब्द, स्पर्श, रूप, रसने गंध,) एने आचाराग सूत्रना वचनथी जगत कहिये तेथी उदास अईने, एक ठ महीना सूधी अखम धाराए मारो उपदेश शांजल एटले मान्य कर एमा ठ महीना कहा ते उपलक्षणथी जाणवा, पण नियम नथी, अने आर्त्तरौड्ध्यानथी अज्ञान दशामां सकल्प विकल्प घणा ऊठे ठे, तेथी आत्मानेविषे विकार उपजे ठे, माटे तेना विकारने तजिदे, अने एकात आसने बे सी मनने एक ठेकाणे परिणामथी राख, तारो घट के० शरीर तेनेज सरोवर जे वो देख, अने तेमा एक उज्वल कमल जोइये. ते कमल तूज ठे अने तूज उज्वल रूपने लीधे मधुकर रूपे था, एम करवाथी तू सहस्र दल कमलमां विलास कर, ए पिंमस्थ ध्यान लगाव्युं एटल्लुं कार्य करवाथी पोताना स्वरूपनी प्राप्ति न यज्ञे एवु तू क्यारे पण विचारीश नही एवा प्राणायामवडे कमल कोप खुलज्ञे ने पोताना रूपनी प्राप्ति यज्ञे, एज रीते गुणज्ञान खुलज्ञे ॥ ८९ ॥

हवे जीवने अजीव एक सरखा अई रह्याठे, ते जुदा जुदा लक्षणवडे देखाडेठे.

अथ वस्तु व्यवस्था वर्णन --

दोहरा -- चेतनवत अनंत गुण. सहित सु आत्मराम, याते अनमिल और सब, पुज्जके परिणाम ॥ ९० ॥

अर्थ -- चेतनावत ठे अने अनंत गुणसहित जे पदार्थ ठे ते तो आत्मराम

जाणवो; अने जे एटलां लक्षणोधी मलेला नथी ते सर्व अपर पुञ्जना परिणाम जाणवा. ॥ ९० ॥

हवे एवी पिठान अनुजवविना न होय माटे अनुजवनी प्रशंसा कहेते:-

अथ अनुजव प्रशंसा:-

कवित्त ठंड.-जब चेतन संचारि निज पौरुष, निरखै निज दृगसो निज मर्म, तब सुखरूप विमल अविनाशक, जानै जगत शिरोमनि धर्म, अनुजौ करै शुद्ध चेतनको, रमे सुजाठ व मै सब कर्म, इहि बिधि सधै मुक्तिको मारग, अरु समीप आवै शिव मर्म. ॥ ९१ ॥

अर्थ:-ए चेतन जे ठे, ते जारे पोतातुं पुरुष के० पराक्रम संचारै, ने पठे पोतानी दृष्टी करी.पोतातुं मर्म जे चेतनपणुं ठे ते निरखे, ल्यारे पोतानो धर्म के० स्वजाव सुख रूप जे निर्मल पणुं, अविनाशी पणुं, जगत शिरोमणी पणुं, सहज स्वरूप तेने जाणो एज अनुजव एटले जे नि.संदेह यथार्थ ज्ञान ठे तेज चेतनने शुद्ध करेते, अने एज अनुजव, जे ठे.ते पोताना स्वजावमा रमे अने सर्व कर्मने दूर करे, एरीते अनुजववडे मुक्ति मार्ग सिद्ध थायते, अने शिवशर्म के० मोक्षतुं सुखते पामेते॥

हवे.ए अनुजवधकी चेतनविपे पोतातुं अस्तित्व साधीने परतुं नास्तित्व साधेते:-

अथ अनुजव प्रशंसा:-

दोहरा -बरनादिक रागादि जड, रूप हमारो नाहि ; एक ब्रह्म नहि दूसरो, दीसे अनुजव माहि ॥ ९२ ॥

अर्थ:-आ शरीरमां जे वर्ण गंध रस स्पर्श राग द्वेषादिक पदार्थनेविपे मोह ठे ते मारुं आत्मरूप नथी, अने अनुजवविपे पोतातुं एकज जाणपणानुं रूप अमे जोइये ठइये. पण बीछुं रूप जोता नथी. ॥ ९२ ॥

हवे जीव अजीव एक द्वैत्रावगाही थया ते जुदा केम केहेवाय ? ते उपर दृष्टात केहेते:- अथ वस्तु विचार.-

दोहरा- खानो कदिये कनकको, कनक म्यान संयोग, न्यारो निरखत म्यान सो, लोह कहैं सब लोग. ॥ ९३ ॥

अर्थ:- जे सोनानी म्यानमां राखेली तलवार लोक जापामीं सोनेरी केहे वायते, ते सोनेरीनो योगतो म्यान उपर ठे, जारे तरवारने सोनेरी म्यानमाधी वार काहाडी जोइये ल्यारे तरवार लोढानी जणाय, -पण सोनेरी नही जणाय. तेम अंतरात्मा माहे जाणवो ॥ ९३ ॥

कोतुक, सो जलिये बरनावि पसारो, मोहसुं निन्न जुदो जडसो चिन, मूरति ना टकं देखनहारो ॥ एए ॥

अर्थ - आ घटमा अनादि कालनो विस्तारवत भ्रमरूप महा अविवेकनो अखाडो ममाई रह्यो ठे, ते अखाडामा बीजो कोई शुद्ध स्वरूप तो देखातो नथी, अने पुज्जल इव्य जे ठे ते अत्यंत महोटी नृत्य करी रह्योठे, एज अविवेकनी आ झा ते अजीव पुज्जल इव्य ठे तेहिज एकेडियादिकना वेपमां लेवरावी फेरवी फेरवी वर्णादिकना पसारनी सामग्री लेवरावी कौतुक देखाडी रह्यो ठे. हवे इहा विवेकरूप जे ठे ते मोहथी जे पुज्जल जड तेथी जुदो ठे तेहिज चिन्मूर्ति एटले चेतन राजाठे ते तो इहा नाटकनो देखनारो ठे ॥ एए ॥

हवे जे जीव अने अजीवतुं एकतापणुं मिथ्या ज्ञानमां जासेठे, तेतो ज्ञानवृद्धि थी निन्न निन्न रूप देखायठे, ते कहेठे - अथ ज्ञान विलास कथन -

सवैया इकतीसा - जैसे करवत एक काठ वीचि खम करै, जैसे राजहंस निरवारे दूध जलको; तैसे जेदज्ञान निज जेदक शक्तिसेति, निन्न निन्न करै चिदानन्द पुदग लको, अवधिको ध्यावे मनपर्येकी अवस्था पावै, उमगिके आवे परमावधि केवलको, याही जाति पूरन सरूपको उद्योत धरै, करै प्रतिविवत पदारथ सकलको ॥ १०० ॥

अर्थ - जेम एक लाकडाने करवती वेहेरीने वे जाग करेठे ने जेम राजहंस दूधने पाणी एकठा होय तेने जुदा जुदा करी नाखे ठे तेम जेने जवितव्य परिपा के जेदज्ञान प्रगटे ते पोतानी जेदक शक्तिवडे चिदानन्द तथा पुज्जल एकमेक होय तेने जुदा जुदा करेठे अने तेज जेदज्ञान पोताना कृपोपशम माफक पोतानी अवधिने ध्यावे एटले पोतानी अवधि ज्ञानरूप पर्यायने पामे, पढी तेहिज जेद ज्ञानथी विच्छुद्ध अयेतुं मनपर्याय अवस्थाने पामे, अने तेथी विच्छुद्ध अर्थने परमावधि सुधी पोचे, एम वधते वधते जेदज्ञान थकी पोतानुं पूर्ण स्वरूप उद्योतवत धारण करे, एटले केवल अवस्था धारे, अने सर्व पदार्थने प्रतिबिंबित करे ॥ १०० ॥ इती श्री समयसार नाटकनो बीजो अजीवधार बालावबोध सहित समाप्त थयो.

दोहरा - यह अजीव अधिकारको, प्रगट बखान्यो मर्म, अब सुनु जीव अजीवके, करता किरिया कर्म ॥ १०१ ॥

अर्थ - अजीव धार एरीते समजावीने कह्यो अने एतुं रहस्य ए ठे के अजीव पदार्थ जाणीने तेथकी जीव पदार्थ जुदो जाणवो; तेतुं वर्णन कखुंठे. हवे जीव

नेविषे कर्त्ताकर्मक्रियानो विचार अने अजीवनेविषे पण कर्त्ताकर्मक्रियानो विचार गुरु कहेते ने शिष्य शानलेते ॥ १०१ ॥

हवे कर्त्तापणामां जीवनी मिथ्या दृष्टि ते ते जेदज्ञानथी बुटे. माटे जेदज्ञाननुं माहात्म्य कहेते—अथ जेद ज्ञान माहात्म्य वर्नन.-

सर्वथा इकतीसा—प्रथम अज्ञानी जीव कहै में सदीव एक, दूसरो न और में ही करता करमको, अंतर विवेक आयो आपापर जेद पायो, जयो बोध गयो मिटी नारत नरमको; नासै बहो दरबके गुण परजाय सब, नासै दुख लाख्यो मुख पूर न परमको; करमको करतार मान्यो पुदगल पिम, आपु करतार जयो आतम धरम को. ॥ १ ॥ जाहि सम जीव देहबुद्धिको विकार तजे, वेदत सरूप निज जेदत नरमको; महा परचम मति मंनन अखंम रस, अनुर्जा अन्यास परकासत परम को, ताही समै घटमें न रहै विपरीत नाव, जैस तम नासै जानु प्रगट धरमको; ऐसी दशा आवै जब साधक कहावै तब, करता व्है कैसै करै पुज्ज करमको ॥३॥

अर्थ—प्रथमथी अज्ञानी जीव जे ते, ते पीताना रूपनी नूनवडे एमज कहेते के निरतर कर्मनो कर्त्ता हुंज हुं, बीजो कोई नथी एरीते जीवनी अपेक्षा लईने कर्मनो कर्त्ता बनेते पढी जारे घटमां विवेक प्राप्त थाय, ल्यारे निजरूपनो जेद स मज्यो एटले बोध थयो, अने चम के० मिथ्यातनो खेल मटी गयो, ने चम नाश थता बए इच्यना गुण पर्याय आत्मानेविषे नासवा लाग्या, कृण कृण अवस्था जेद ते पर्याय कहीए अने पूर्णपुरुष जे ते तेनुं मुख, दीतुं, तेणे करीने कर्मनो कर्त्ता पुज्जपिम मान्यो अने पोते अकर्त्ता थयो अने आत्मिक धर्म जे ज्ञायकता, वेदकता, तथा चेतनता इत्यादिक स्वभावनो हुं पोते कर्त्ता तु एम मान्युं, एटले कर्मनो अकर्त्ता अने पीताना स्वभावनो कर्त्ता एम केहेवा लाग्यो ॥ २ ॥

जे प्रस्तावे जीव ते, ते श्रेणीनुं आरोहण करे, अप्रमत्तता पामे, देहबुद्धिनो विकार तजे, एटले बाह्यान्माने पीतापणे जाणवो ए विकार गामे, ने पीतानुं स्व रूप छुडैज वेदे, अने चमनो जेद करे, घणी तीक्ष्णबुद्धिनो शोचानुं करनार, अने जेनो रस अखंम ते, पूर्ण रसंस्वाद ते, एवो जे शुद्धात्मानो अनुभव ते, तेनो अन्यास करी अंते परमात्मानो प्रकाश करे तेज प्रस्तावे घटपिममां विपरीत नाव रहे नही, एटले अहंबुद्धि वडे जे अकर्त्ताने कर्मनो कर्त्ता करी मान्यो. ए विपरीत नाव हतो ते रहे नही. ते उपर दृष्टांत कहेते.—जेम जानुधर्म के० सूर्यना ती कृण तेजना प्रकाशवाथी तम जे अंधकार ते सर्व नाश पामेते; तेम एवी अप्र

मन दशा ज्यारे प्राप्त थाय, त्यारे ते आत्मस्वजावनो साधक थयो, ते वखत कर्म नो कर्त्ता केम थाय ! अने पुद्गजरूपी कर्मने केवी रीते करे ! एनो अहां उपयोग नथी. ॥ ३ ॥

हवे अहीं प्रथम आत्माने कर्मनो कर्त्ता मानीने पठी तेने अकर्त्ता मानवो ते ज्ञानना सामर्थ्य बडे बनेछे ते कहेछे.—अथ ज्ञानसामर्थ्यवर्णनं —

सर्वथा इकतीसा — जगमें अनादिको अज्ञानी कहं मेरो कर्म, करत्ता मेंयाको किरियाको प्रतिपाखी है, अंतर सुमति जासी जोगसो जयो उदासी, ममता मिटाथ परजाय बुद्धि नाखी है; निरजै सुजाय जीनो अनुर्जाके रस जीनो, कीनो व्यवहार दृष्टि निहचैमे राखी है; नरमकी दोरी तोरी धरमको जयो धोरी, परमसो प्रीति जोरी करमको साखी है ॥ ४ ॥

अर्थ — ससारनेविषे जीव अनादिकालथी अज्ञानीज छे, ते कहेछे के गुन अ ने अगुन कर्मनो कर्त्ता हुंज हुं क्रियानो प्रतिपद्धी के० कर्मनी क्रियानो पहराख नारो हुं, पठी ज्यारे अंतरमां सुमतीनो जास थयो, अने मन वचन तथा काया ना योगथी उदास थयो, एटले ए योगने पररूप समज्यो, तथा ए योगनी ममता मटी गई अने परजाय बुद्धि के० मन वचन अने कायाना योगनी जे बुद्धि ते ना खी दीधी, अने इव्यबुद्धि राखीने आत्मानो जे निर्जय स्वभाव छे, तेहुं ग्रहण कींहुं अने ए स्वजावनो जे अनुजव रस तेमा जीनो के० मग्न थई रह्यो अने सर्व व्यवहारमा प्रवृत्ति करी रह्योछे पण दृष्टिमा श्रद्धा तो निश्चयमा राखी छे, एम करता नर मनी दोरी तोडी नाखी, एवु उद्वेगपणु सूकी दीहु, अने आत्मिक धर्म जे पोतानो स्वभाव तेनो दोरी के० धरनारो थयो, परम साथे प्रीति जोडी, एटले सिद्धपदमा प्रीति राखीने कर्मनो साखी थयो; एटले पुञ्जकर्मने करे तेनो साह्यी थयो छे ॥४॥

शिष्य पूछेछे के, चेतन तथा अचेतन एकक्षेत्रमा रहेछे, अने कर्म करेछे, त हा चेतनने कर्मनो अकर्त्ता केम मनाथ ? गुरु कहेछे के, ज्ञानशक्तिबडे अकर्त्ता मनाथ ते कहेछे — अथ जेदज्ञानको सामर्थ्यपनो कथन —

सर्वथा इकतीसा — जैसो जो दरब ताके तैसे गुन परजाय, ताहुसों मिलत पे मिले न काहु आनसों, जीव वस्तु चेतन करम जड जाति जेद, अमिल मिलजाय ज्यों नितंब छुरे कानसों, एसो सुविवेक जाके हिरये प्रगट जंयो, ताको ब्रम गयो ज्यों तिमिर जंयो ज्ञानसों, सोइ जीव करमको करतासो बीसे पे अकरता कहाई शुद्धताके परवानसों. ॥ ५ ॥

अर्थ:- जे जेवुं इच्च होय तेना तेवा गुणपर्याय होय ठे, ते तेज इच्चसाथे मलेठे, पण बीजा इच्चसाथे मलता नथी, जेम कोई स्निग्धगुणवडे घृतादिक इच्च पोताना पर्यायथी स्निग्ध गुणवाला इच्चसाथे मले, पण रुक् गुणवालासाथे मले नही, तेम ए जीव वस्तु चेतनजाति ठे, अने कर्म जेठे ते जडजाति ठे, एवो जातिचेद ठे. तेथी चेतन तथा जडने अमिलनता ठे, पण कांई युक्ति मिला प नथी. जेम केडना जागनी नीचे पश्चिम प्रदेश नितव ठे, ते उपर रहेला का नसाथे केम मले? एवो गुणपर्यायनो विवेक जेना हैयामां प्रगट थयोठे, तेना है यामां पूर्वनो उपजेलो त्रम नाश पाम्यो, ते उपर दृष्टांत केहेठे के, जेम सूर्यनो उदय थवाथी अंधकार नासेठे, तेम नाश पामेठे, एवा विवेकवालो जीव जे ठे ते कर्मनो कर्ता तो देखायठे पण शुद्धता जे पोतपोताना इच्चनी गुण परिणति तेना प्रमाणथी जीवने कर्मनो अकर्ताज कह्यो ॥ ५ ॥

हवे जीव अने पुञ्जलना लक्षणना जेद देखाडीने एज वात दृढ करेठे.-

अथ जीवपुञ्जलक्षणजेदकथन--

उपप्य उद-जीव ज्ञानगुणसहित, आपगुण परगुण ज्ञायक; आपा परगु न लखै, नाहि पुञ्ज इहि लायक, जीवरूप चिद्रूप, सहज पुदगल अचेत जड, जीव अमूर्ति मूर्तीक पुदगल अंतर वड, जबलग न होइ अनुनौ प्रगट, तबज गु मिथ्यामति लसै; करतार जीव जड करमको, सुबुधि विकाशक त्रम नसै ॥ ६ ॥

अर्थ:- जीवजे ठे ते ज्ञानगुणसहित ठे, अने जेम पोताना गुणनो ग्राहक ठे तेमज पारका गुणनो पण ग्राहक ठे. अने एज गुणना जेठे करीने पोताने तथा परने लखै के० छुएठे; एवी कला शक्ति लायक पुञ्जल क्यारे पण बनी, शके नही जीवतुं स्वरूप चिद्रूप के० चेतनारूप ठे, अने पुञ्जलतो सेहेज जावे अचेतनारूप ठे; एटले जड ठे. वली जीव अमूर्ति ठे अने पुञ्जल मूर्ति ठे, ए मोटुं अंतर ए बने वझेठे. ज्यासुधी शुद्धचेतननो अनुभव प्रगट न थाय. त्याहासुधी मिथ्यामति लसै के० दीप्तवत होयठे अने जडस्वरूपी कर्मनो कर्ता जीव ठे, ते त्रमबुद्धि ठे; पण ए अनादिकालनो त्रम ते सुबुद्धिना विकाश थवाथी नाश पामेठे. ॥ ६ ॥

हवे कर्ता कर्म अने क्रिया ए त्रणे स्वरूप केहेठे-अथ कर्ताकर्मक्रियास्वरूपकथन.-

दोहरा.-करता परिनामी दरब, करमरूप परिनाम; किरिया परजैकी फिरनि, वस्तु-एक त्रय नाम. ॥ ७ ॥

अर्थ-रूपांतरने जजे ते परिणामी केहेवाय, एवुं जे इच्च, ते कर्ता कहिये, रूपां

तेर थावुं ते परिणाम, अने कर्मनुं स्वरूप कहियें, अने पर्यायनुं क्रमे क्रमे फरवुं तेने क्रिया कहिये. ए रीते कर्त्ता कर्मने क्रिया एवा त्रण नाम ठे पण वस्तु तो एकज ठे ७
हवे कर्त्ता, कर्म, ने क्रिया ते केहेवामा नाम निन्न निन्न ठे पण वस्तु एकज ठे
ते कहेठे -अथ कर्त्ताकर्मक्रियाकत्वकथन -

दोहरा.-कर्त्ता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार, नाउ जेद बहु विधि नयो,
वस्तु एक निरधार ॥ ७ ॥

अर्थ --कर्त्ता त्यारे केहेवाय के ज्यारे क्रिया करे, अने क्रिया त्यारे केहेवाय के
ज्यारे कर्म करे, एम नाम जेद नातनातनो पडयो पण करवाथी कर्त्ता, करवाथी
कर्म ने करवाथी क्रिया ए त्रणे एकज वस्तु ठे ॥ ७ ॥

हवे एक कर्म क्रियानो कर्त्ता एकज होयठे, ते स्थापन करेठे -अथ कर्त्ता
कर्मक्रियाप्रतिस्थापना --

दोहा -एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्त्ता दोय, डगा दरब सत्ता सुतो, एक
नाव क्या होय ॥ ८ ॥

अर्थ -ए बात तो खुल्ली ठे के, एक कर्मनी कर्तव्यता के० क्रिया ते एकज हो
यठे अने तेनो कर्त्ता पण एकज होयठे, पण वे कर्त्ता एकज क्रियाना करनारें न
होय. अही चेतन इव्यसत्ता अने पुज्जइव्यसत्ता ते तो डुधा के० वे प्रकारें जुदी
जुदी ठे, ते माटे एक नाव एक कर्म केम बने ? ॥ ८ ॥

हवे कर्त्ता कर्म ने क्रियानो विचार कहेठे. अथ कर्त्ताकर्मक्रियाविवरण -
सवैया इकतीसा -- एक परिणामके न करता दरब दोय, दोय परिणाम एक
दर्व न धरतु है एक करतूति दोइ दर्व कबहो न करै, दोई करतूति एक दर्व न के
रतु है, जीव पुदगल एक खेत अगगाही दोई, अपने अपने रूप कोउ न टरतु
है, जड परिणामनिको करता है पुदगल, चिदानंद चेतन सुजाउ आचरतु है ॥ १० ॥

अर्थ -एक परिणामना वे इव्य कर्त्ता न होय, अने एक इव्य जे ठे ते बे प
रिणाम धारण करे नही, ए रीते वे इव्य मलीने एक करतूती के० क्रिया क्यारे प
ण नज करे तेमज एक इव्य वे क्रिया पण नहीज करे, ए व्यवस्था बुद्धि कहे
वा लायक कहेठे के, जीव अने पुदगल एकमेक थई रह्या ठे; तेथी ए बने एक
हेत्रावगाही थया पण पोत पोताना स्वजावथी कोई टले नही, तेथी पुज्ज जे ठे
ते जड ठे ते जडपरिणामनोज कर्त्ता थाय, अने चिदानंद चेतन ठे ते चेतन स्व
जावने आचरे ॥ १० ॥

हवे सम्यक्तत्त्वस्थामां कर्मनो अकर्ता अने मिथ्यात्वस्थाने विषे- कर्मनो कर्ता ठे एम' कहेते. - अथ सम्यक्तमिथ्याकथनं -

सर्वया इकतीसा - महा डीठ डुखको वसीठ पर दर्वरूप, अंध कूप काडुपे निवासो नहि गयो है; ऐसो मिथ्याजाव लग्यो, जीवको अनादिहीको, याही अहं बुद्धि लिये नाना जाति जयो है, काहू समै काहूको मिथ्यात अधिकार चेद, मम ता उठेदि, शुद्ध जाव परिनयो है, तिनही विवेक धारि बंधको विलास मारि, आतम सकतिसो जगत जीति लयो है. ॥ १.१ ॥

अर्थः-- महाभूषण अने डुखनो पढु आत्मइव्य; ते परइव्य के० पुजलइव्य जेतुं रूप ठे, पिंम. ठे, अने जेसो सत्य दृष्टि पोची शकती नथी, तेमाटे अंधकूप समान ठे, अने कोईथी निवारण नथी थतो, एवो मिथ्याजाव जे मिथ्यात्व मोह कर्म ते जीवने अनादि काल थकी जागेलु ठे, एथी परइव्य तरफ जीवनी अहंबुद्धि लागी, तेथी जीव नाना प्रकारनो थयो. अने कोई समये यथाप्रवृत्तिकरणना वखते कोई जव्यजीवनो मिथ्यात अधिकार चेदायो, ते मिथ्यात्वग्रंथि चेदीने अने सर्वे कार्यनेविषे जे अहंबुद्धिवडे रहेली ममता हती, तेने ठेदीने शुद्ध चिदानंद जावमांज परिणामी रह्यो, ते समये ते जव्यजीव चेदविज्ञान के० जड चे तननो विवेक धारण करीने अविरति, कषाय, योग तथा प्रमाद ए जे बंधनाहेतु हता, तेनो विलास ठोडीने आत्मशक्तिवडे-एटजे पोताना वीर्यबलवडे जगतने जीति लीयेते; जगतथी निरालो थाय ठे. ॥ १.१ ॥

हवे जेम कर्मनो कर्ता आत्मा नथी तेम ए कर्म आत्माना करेलां नथी; अने कर्ता ने कर्म एक रूपजं ठे ते केहेते. - अथ यथा कर्म तथा कर्ता एकरूपकथन -

सर्वया इकतीसाः - शुद्धजाव चेतन अशुद्धजाव चेतन डुहूको करतार जीव और नही मानिये, कर्मपिंमको विलास बर्न रस गंध फास, करता डुहूको पुदगल पर मानिये, ताते बरनादि, गुण ज्ञानावरनादि कर्म, नाना परकार पुजलरूप जानिये; समल विमल परिणाम जे जे चेतनके, ते ते सब अलख पुरुष यों वखानिये १२

अर्थ -- चेतनानेविषे शुद्ध जाव तथा अशुद्ध जाव जे जाणवामा आवेते, ते तो परिणामरूप कर्म ठे; तेथी ते बनेनो कर्ता जीवज ठे बीजो कोई कर्ता मानवो नही. अने ज्ञानने ढांकवुं दर्शनने ढांकवु, इत्यादि कर्म पिंमनो विलास ठे; अने वर्ण गंध रस स्पर्श इत्यादि जे कार्य अने कर्म ठे, ए बनेनो कर्ता पुदगलइव्यनेज प्रमाण राखिये, तेणे करीने वर्णादि के० वर्ण रस गंध स्पर्श गुण ठे ते

अने ज्ञानावरण दर्शनावरण प्रमुख जे कर्म ठे, ते, सर्व नाना प्रकारना पुञ्जरूप जाणवा, जेम कद्यु ठे के, जोगापयन्निपयेसा के० जोगवडे प्रकृतिप्रवेशबंध थाय ने तेनेविपे चेतनना समलपरिणाम के० अशुद्ध परिणाम अने विमलपरिणाम के० शुद्ध परिणाम ए जे कर्मरूपक ठे ते ते सर्व अलक्ष पुरुपरूप ठे, माटे कर्ता कर्मने एकज वखाणीए ॥ १२ ॥

हवे, ए वातना रहस्यने मिथ्यादृष्टि जाणे नही, तेना उपरःहस्तिनो दृष्टात.-
अथ मिथ्यादृष्टि वर्नन हस्तिको दृष्टात.-

सर्वथा इकतीसा:-जैसे गजराज नाज घासके गरास करि, जहत्त सुजाय नहि चिन्न रस लियो है, जैसे मतवारो नहि जानै सिखरनि स्वाद, जुंगमें भगन कहै गऊ दूध पियो है, तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञान रूपी है सदीव, पग्यो पाप पुन्य सो सहज सुन्न हियो है, चेतन अचेतन डूहूकों मिश्र पिंम लखि, एकमेक मानै न विवेक क्यु कियो है ॥ १३ ॥

अर्थ-जेम हाथीने अनाज साथे घास जेलवीने घास आपेठे, ते खायठे हाथीनो खजाव एवोठे के, घासने अनाजनो जुदा स्वाद लेतो नथी. वली कोई माणस मद्य पीने मतवारो थयो होयने तेने दहीने खामथी बनेलुं शिखरण जमवाने आपीये ने पुढीये के एनो स्वाद केवोठे तो ते केहेडो के गायतुं दूध पीये तेवोठे पण तेने दारूनी छुममां छुदा स्वादनी खबर पडती नथी, तेम जीव मिथ्यामतिवालो अर्थने जोपण अनादि कालनो ज्ञानरूपी ठे एटले ज्ञानमय ठे तो पण पापकर्म अने पुन्यकर्ममा लीन अर्थ रह्योठे, माटे सहज जावे शून्यहृदय थयोठे ल्यारे चेतन अने अचेतन जे पुञ्ज, ते बेवने मिश्र के० एक पिंम जोईने एकमेक मानेठे, पुञ्जना जेलथी चेतनने पण पुञ्जकर्मनो कर्ता मानेठे पण कटी विवेकनी नजरथी जोतो नथी. ॥ १३ ॥

हवे जीवने कर्मनो कर्ता मानवो ए प्रमवडे मनायठे, ते उपर दृष्टांत आपेठे
अथ प्रमस्वरूपकथनदृष्टांत:-

सर्वथा इकतीसा-जैसे महाधूपकी तपतिमें तिसीयो मृग, जरमसों मिथ्याज ल पीवनकों धायो है, जैसे अधिकारमांहि जेवरी निरखी नर, जरमसों भरपी सर प मानि आयो है, अपने सुजाय जैसे सागर सुधिर सदा, पवन संजोगसो उड रि अकुलायो है, तैसे जीव जडसों अर्थापक सहजरूप, जरमसों करमको करता कहायो है. ॥ १४ ॥

अर्थ.—जेम वैशाक ने जेठना घणा सरुत तापनी गरमीवडे मृग तरस्यो थईने मृग तृपाने जोई तेने जल जरेलुं तलाव मानी ते मिथ्या जलने पीवाने दोडेठे, तथा जेम अंधारे पडेली दोरडीने जोईने कोई मनुष्य जरमवडे तेने साप जाणी मरी जायठे, वली जेम समुद्रनो स्वनाव स्थिर ठे पण पवनना संजोग थकी उठलतो देखायठे, तेम जीव निश्चय थकी जोता जड वस्तुथी अब्यापक ठे, पण अनादि का लनो सहज रूपी भ्रम तेणे करीने ते जीवने कर्मनो कर्ता कहेठे ॥ १४ ॥

हवे जे सम्यक् दृष्टि थाय ते सम्यक् स्वजावे करीने भ्रम दूर करे, अने छु दो छुदोज जावे जाणे, ते उपर राजहंसपह्नीनो दृष्टांत आपेठे. अथ सम्यक् दृष्टिस्वजाववर्णनं, राजहंसके दृष्टांतः—

सवैया इकतीसा.— जैसे राजहंसके वदनके सपरसंत, देखिये प्रगट न्यारो ठी र न्यारो नीर है, तैसे समकित्तीकी सुदृष्टिमें सहजरूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोई शरीर है, जब शुद्ध चेतनाको अनुजो अन्यासे तब, जैसे आपु अचल न दृजो उर सीर है, पूरव करम उदै आइके दिखाई देहि, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

अर्थ.— जेम राजहंसनुं वदन के० मुखनी अंदरनी जीन, तेना अडकवाथी दूधने पाणी एकमेक होय ते फाटीने डुध जुडं ने पाणी जुडं थाय ठे; तेमज सम्यक्दृष्टिवडे सहजरूपे जीव ठे ते-जुदोज जणाय ने कर्म पण जुडंज जणाय, अने शरीर पण-जुडंज जणाय, एटले बाह्यात्मा, अंतरात्मा ने परमात्मा एत्रणे जुदा जणाय. ज्यारे शुद्ध चेतन अनुजवनो अन्यास करे ल्यारे पोतेज देखाय कर्मादिकनो बीजा कोई साथे जेल नथी. पूर्व संचित कर्म जे ठे ते निज स्थिति पूर्ण थये अथवा उदीरणा करी के० कर्म उदै आब्याथी देखाय; पण जीव कां ई कर्मनो कर्ता नथी, पण ते कर्मना उदयनो तमासो जुएठे ॥ १५ ॥

हवे शिष्य पूठे ठे के, हे स्वामी जीव तथा पुज्ज एकमेक थई रह्या ठे, ल्यारे ते उनेविषे एवो जुदो जुदो स्वनाव केम जाणीये-१ ल्यारे गुरु-तेनो उत्तर आपतां पाणि तुं तथा शाकतुं दृष्टांत आपेठे. अथ कर्तृत्व स्वनाव तसोदक तथा व्यंजनको दृष्टांत

सवैया इकतीसा.— जैसे उसनोदकमें उदक सुनाउ सीरो, आगिकी उसनते फरस ज्ञान चखिये, जैसे स्वाद व्यंजनमें बीसत विविध रूप, लौनको सवाद खारो जीन ज्ञान चखिये, तैसे याहि पिंममें विभावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जी

व जेद ज्ञानसो परखिये, जरमसो करमको करता हे चिदानंद, दरव विचार क रतार जाव नखिये ॥ १६ ॥

अर्थ - जेम उल्लोदक के० उतुं पाणी ते पाणीनो पोतानो स्वजाव तो सीरो के० शीतलज ठे, पण तेनो स्पर्श करता गरम लागेठे ते गरमी आगनी ठे. अने स्वादिष्ट व्यंजन के० शाकमां जात जातनो स्वाद होय ठे अने लोन के० निमक नो खारो स्वाद जुदोज जणाय ठे, ते जीज ज्ञानवडे जणाय ठे; तेमज घटपिंममां विजावता जे कर्मनी साथे चेतननुं मलबु तेतो-जेम में आ कीं उं एम मानबु एतो अ ज्ञानरूप ठे अने जीव ठे ते शुद्ध ज्ञानरूपी ठे, एनेतो शुद्ध जाणवो एज एतुं कार्य ठे ए वात जेदज्ञान वडे जणाय ठे ए चिदानंद जे ठे तेने कर्मनो कर्ता मानवो ते भ्रमवडे मनाय ठे। पण इब्यनो विचार करता एनो कर्ता जाव बने नही प ए ज्ञाता जावज बने ए रहस्य ठे ॥ १६ ॥

हवे निश्चय प्रमाणवडे जे जेनो कर्ता ठे तेने जुदो बतावेठे. अथ कर्तृत्वविवरणं.

दोहा - ज्ञानजाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान, दरव करम पुदगल करै, यह निहचै परवान ॥ १७ ॥

अर्थ - ज्ञानी होय तेतो ज्ञानजाव करे एटले जाणवारूपजे कार्य ठे ते करे ठे, अने अज्ञानी होय ते हुं कर्ता हुं एम मानी अज्ञानजाव करेठे, इब्यरूपजे कर्म ठे तेने पुज्जज करेठे, निश्चप्रमाणमां एबु स्पष्ट ठे ॥ १७ ॥

शिष्य पूठेठे के हे स्वामी ज्ञानजाव ज्ञानी करे ए वात केहेतां ज्ञाननो कर्ता जी व ठरेठे, ते कया नयथी ठरेठे? तेनो उत्तर गुरु आपेठे - अथ व्यवहार कर्तृत्वकथन

दोहा - ज्ञानसरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि उर, दरव कर्म चेतन करै, यह विवहारी दौर ॥ १८ ॥

अर्थ - आत्मा ज्ञानस्वरूपी ठे माटे ज्ञानने तो तेज करे, पण बीजो नही ए निश्चय अने जे एम कहेठे के, इब्यकर्मनो करता पण चेतन ठे तेतो व्यवहार मां कहेवाय. ॥ १८ ॥

हवे शिष्य प्रश्न - कर्तृत्वकथन -

सर्वया तेईसा - पुदगल कर्म करै नहि जीव कही तुम में समुंजी नहि तैसी; कौन करै यह रूप कही अब, को करता करनी कहु कैसी; आपुहि आपु मिले बिबुरै जड क्यों करि मोमन संशय ऐसी; शिष्य सदेह निवारनं कारन बात क हे गुरु हे कहु जैसी ॥ १९ ॥

अर्थ--हवे शिष्य पूछे ठे के, जीवने निश्चयनयथी ज्ञाननो कर्ता कह्यो ने कर्मनो अकर्ता कह्यो, तेतुं शुं कारण ? हे गुरु पुञ्ज इव्यरूप कर्मने जीव करे नही एवी जे वात तमे कही, ते वात हुं यथार्थी समज्यो नही. ए पुञ्जरूपी कर्मनो स्वभाव करे ? इहां कर्ता तो उरावता नथी अने तेनी क्रिया केवी ठे ते कही वली पुञ्ज कर्मनो कर्ता पुञ्जनेज बनावोठो ल्यारे कर्ता कर्म बंने जड थया, ते पोतानी मेले मजबु ठूटा आबुं केम ब्रनी शके ? ए मारा मनमां संदेह ठे. शिष्यना संदेह निवा रवाने आ प्रश्ननो यथार्थी उत्तर गुरु हवे कहेठे:- ॥ ११९ ॥

अथ गुरु उत्तर कथन:-

दोहा:- पुद्गल परिणामी दरब, सदा परिणमै सोय ; याते पुद्गल करमको, पुद्गल कर्ता होय ॥ १० ॥

अर्थ.- हे शिष्य, पुद्गल जे ठे ते परिणामी इव्य ठे कृण कृणमां तरेद्वार बनी जायठे तेमाटे सदा परिणामी रह्यो ठे ते युक्तिथी पुञ्जिक कर्मनो कर्ता पु ञ्जज थई शकेठे. ॥ १० ॥

अथ पुन शिष्य प्रश्न:-

अडिल उंद-ज्ञानवतको जोग निर्जरा हेतु है, अज्ञानीको जोग बंध फल हेतु है, यह अचरजकी बात हिये नहि आवही, बूझै कोऊ शिष्य गुरु समुझावही. ॥ ११ ॥

अर्थ--हवे शिष्य पूछेठे के, ज्ञानभाव ज्ञानी करे एवु कहेवाथी जोग निर्जरारूपी थाय ठे ते केम ? ज्ञानी जोग जोगवे ते कर्मनी निर्जरा करेठे, ल्यारे तो ज्ञानीनो जोग निर्जरानो हेतु ठे अने अज्ञानी जे जोग जोगवे ते कर्म बंधन करेठे, ल्यारे तो अ ज्ञानीनेज जोग बंध फलदाई कह्यो एतो अचरजनी वातठे, केमके जोग जोगववा मां समान होय ने एकनो जोग निर्जरानो कारक अने बीजानो जोग बंधनो कारक एम केम बने ? अने ए वात हृद्यमां उसती नथी. आबुं शिष्यतुं केहेवु सा जलीने गुरु तेनो उत्तर कहेठे:- ॥ ११ ॥

अथ गुरु उत्तर कथन:-

सवैया इकतीसा:-दया दान पूजादिक विषय कपायादिक, दोहू कर्म जोग पै डहूको एक खेतु है ; ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पै, परिणाम जेद न्यारो न्यारो फल हेतु है, ज्ञानवत करनी करै पै उदासीन रूप, ममता न धरै ताते निर्जराको हेतु है, बहे करतूति मूढ करै पै मगन रूप, अंध जयो ममता सो बंध फल हेतु है. ॥ १२ ॥

अर्थ -- दया पालवी, दान देवुं, पूजा प्रमुख करवी, एक एवी रीतना कर्मठे, अने पांच इंद्रियोना विषयनुं सेवन करवु, कपायनुं सेवन करवुं, एक एवी रीतना कर्म ठे, ए बने कर्मनो संसारमा जोग ठे, पण क्षेत्र एक ठे, तेथी बने बंधरूप ठे अने ज्ञानी पण ए वे कर्म करै ठे, तथा अज्ञानी पण करे ठे, अने ए कर्म करता तो ज्ञानी अज्ञानी एक सरखाज देखाय ठे, पण एना परिणाम जेद जुदां जुदा ठे माटे ए कर्मनु फल जुदो जुदो आपे ठे. ज्ञानवान जे कर्म क्रिया करेठे, ते उदासीन रूप थरिने करे ठे, एटले एनी मेले उदय आवेलु कर्म करेठे, पण ममता धरतो नथी, ए माटे निर्जरानो हेतु ठे अने एज कर्म क्रिया मूढ करेठे, पण ए क्रिया करवामा आनंद रूप रहे ठे, ने निजात्म शुद्धीने विसरी जाय ठे, एटले अंध जेवो बनी जाय ठे, अने ममता धारण करे ठे, तेथी बंध फलने लिये ठे; एज माटे अज्ञानी अज्ञाननो करता वरे ठे. ॥ २१ ॥

हवे कुंजारनुं दृष्टात आपीने मूढनुं कर्तापणुं शिख करेठे -

अथ मूढ कर्तृत्व कथन कुजाल दृष्टांत -

ठप्य ठंद -- ज्यो माटीमहि कलस, होनकी शक्ति रहै ध्रुव, दंम चक्र चीवर कुजाल बाहिज निमित्त हुव; त्यो पुदगल परवानु, पुज बरगना जेप धरि; ज्ञानी बरनादिक सरूप विचरत विविध परि, बाहिज निमित्त बहिरात्मा, गहि संसै अज्ञान मति, जगमाहि अहकृत नावसो, करम रूप व्है परिमति ॥ २३ ॥

अर्थ -- जेम कलसरूप कार्य थवामा माटी ड्यनी शक्ति ध्रुव के० निश्चय ठे अने ते कार्यनेविषे तेने फेरववानो दंम अने चक्र के० चाकने चीवर उतारवानी दोरी ने कुजार ए सर्व बाह्य निमित्त थया तेम परमाणु पुजजनो पुज ते बंधपणुं धरीने काम्मणवर्गणानो जेप धरीने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय आठपो नामकर्म गोत्रकर्म अंतराय ए स्वरूपे विविध के० जात जातनो पुजल खध विचर्यो अही बहिरात्मा एटले देव मनुष्यादिरूपी बाह्यात्मा बाह्यनिमित्त थरिने, जम रूपी अज्ञान ग्रहीने अंधी कारण बन्यो; त्यारे जगतमा अहकारबुद्धिनी संगति तेहिज पुजलखंध कर्मरूप बनोने परिणम्यो ठे ॥ २३ ॥

हवे निश्चै जीवतुं अकर्तापणुं मानीने एना अनुभवमा रेहेतुं तेतुं माहात्म्य कहेठे --

अथ शुद्धानुभव माहात्म्य कथन --

सवैया तेईसा -- जे न करै नयपक्क विवाद धरै न विपाद अलीक न जाखै, जे उदवेग तजै घट अंतर, शीतलजाव निरतर राखै; जे न गुनी गुन जेद विचारत,

आकुलता मनकी सब नाखै, ते जगमें धरि आतमध्यान अखंभित ज्ञानसुधारस चारखै
 अर्थ.—जेम मिथ्याती लोक पोतपोताना नयनो पढ़ धरीने पोतपोतामां विवाद क
 रेठे तेम न करतां जे सहज आनंदमां रहेठे, ने विषाद धरता नथी, अने फूटुं बोल
 ता नथी, अने डुष्ट ध्यान धरता नथी एटले उदवेगनो त्याग करेठे, अने हमेश
 पोताना हृदयनेविपे शीतल जाव राखेठे, ने एवा शुद्ध आत्माना अनुभवमा मलेठे.
 जेथी आत्मा गुणी ठे ने ज्ञानगुण ठे, एवो जेने जेद विचार रह्योज नथी, अने
 विकल्प के० व्याकुलताने मनमाथी काढी नाखे, एवा जे शुद्ध अनुनवी थाय, तेज
 आत्मध्यान धरीने जगतनेविपे संपूर्ण केवल ज्ञानरूप अमृत रस तेने चाखेठे. २४

हवे निश्चय नय थकी अकर्त्तापणानी स्थापना अने व्यवहार नयवडे कर्त्ताप
 णानी स्थापना प्रमाण करी बतावे ठे:—अथ निश्चय व्यवहारनय प्रमाण स्थापना—
 सवैया इकतीसा.— विवहार दृष्टिसौं विलोकत बंध्योसो दीसे, निहचे निहार
 त न बांध्यो यह किनही; एक पञ्च बंध्यो एक पञ्चसौं अबंध सदा, दोउ पञ्च अपने
 अनादि धरे इनही; कोउ कहै समल विमल रूप कोउ कहै, चिदानंद तैसोई ब
 खान्यो जैसो जिनही, बंध्यो मानै खुब्यो मानै डुहुनको जेद जानै, सोई ज्ञानवत
 जीव तत्व पायो तिनही ॥ २५ ॥

अर्थ.— चतुर्गतिरूप संसारमां भ्रमण करवानो आत्मानो व्यवहार जोइए तो
 आत्मा कर्त्ताज देखाय ने बंधमां पण जणाय, अने निश्चयनयवदे ज्ञाननोज क
 र्त्ता अने ज्ञानस्वरूपी जोइये तो एज आत्मा कशामां बंधायलो नही जणाय; तेथी
 एकलो व्यवहार पढ़ ग्रहीये तो आत्मा बंधमां ठे, ने एकलो निश्चयपढ़ ग्रही
 ये तो आत्मा सदा अबंध जणाय, एवा बने पढ़ अनादिकालना ग्रहण कीथा ठे
 कोई व्यवहारनयवालो होय ते जीवने समल कहेठे, ने कोई निश्चयनयवालो होय
 ते एने विमल कहेठे. पण जेणे जेवुं पोतानी बुद्धिथी चिदानंदने वखाणो तेवोज
 चिदानदठे. हवे जे सम्यक्दृष्टि होय तेतो आत्माने बंधायलो पण माने, अने
 अबंधपण माने, पण ए मानवामां बेहुनयनो जेद जे जाणे तेज ज्ञानी कहेवाय,
 अने तेपोज जीव तत्वतुं स्वरूप उंजख्युंठे ॥ २५ ॥

हवे बेउ नयने समान राखीने समकित राखेथी समरस जावमां रहे तेनी प्र
 शांसा करेठे.—अथ समरसी जाव प्रशांसा कथन:—

सवैया इकतीसा—प्रथम नियत नय दूजो विवहार नय, डुहुकों फलावत अ
 नंत जेद फलै है; ज्यों ज्यों नय फलै त्यों त्यों मनके कलोल फलै, चंचल सुजाय

लोका लोकलौ वठलै हँ; ऐसी नय कहु ताको पहु तजि ज्ञानी जीव, समरसी नये एकतासों नही टलै है; महा मोह नासै शुद्ध अनुजो अन्यासै निज, बल परगा सै सुख रासि माहिं रलै है ॥ २६ ॥

अर्थ—पहेलोतो निश्चय नय ठे, अने बीजो व्यवहार नय ठे, ए वेउ नयने एक एक इव्य साथे फलाविये ल्यारे अनंत इव्यनी अपेहाने लीधे नयना अनंत जेद फले ठे हवे ए नयना अनंत जेद मननाज विचारथी फले ठे, तेथी जे म जेम नयनुं फलाव थाय तेम तेम मनना तरग पण अनंत जेदे फलेठे, अने म नना कलोल जेटला होय तेटला चचल स्वभावमनना थई जाय, एनुं प्रमाण पट गुणी हानी वृद्धि लेखे लोका लोक प्रदेश परिमाण होय एवी जे नय कहु के० नय ने अंगीकार करी तेनो पहुपात ल्यजिने जे ज्ञानी जीव समरसी जावमा रह्या अने सधला नयना विस्तारमा चेतनानी एकता होय तेथी टले नही ते तो समरसी जा व वाला महा मोह के० भ्रमनो नाश करीने अने शुद्ध चिदानंदना अनुभवनो अ न्यास करीने, एटले कृपकश्रेणी आरोहण करीने परमात्मानुं जे बल ठे तेनो प्र काश करीने सुख राशी जे मोहु पद ठे तेनेविपे मली जायठे ॥ २६ ॥

हवे निश्चय व्यवहार बतावीने पोतपोतानुं जे सत्य स्वरूप लक्षण ठे ते हिज कहेंठे—अथ सम्यक् स्वरूप लक्षण कथन—

सवैया इकतीसा—जैसे काहु बाजीगर चौदहे बजाई ढोल, नाना रूप धरी के जगल विद्या गानी है, तैसे में अनादिको मिथ्यातके तरंगनिसों जरममे धाई बहु काई निज मानी है, अब ज्ञान कला जागी जरमकी दृष्टि जागी, अपनी प राई सबसों लु पहिचानी है, जाके उदे होत परवान एसी जांति नई, निहचे ह मारी ज्योति सोई हम जानी है. ॥ २७ ॥

अर्थ.—जेम कोई बाजीगर चौटामां ढोल वगाडीने जात जातना रूप धरीने पोतानी जगल विद्या प्रसारे ठे, ने तेने लोको साची मानेठे, ते रीते हुं अनादी कालथी मिथ्यात तरग के० टहेरोमा मगन बनी रह्यो तेथी जगलविद्या जो नाराने न्याये जर्ममा धायो थको घणी कायाउ पामीने पोतानी मानी लीयी हती, ते हाल मने ज्ञान कला प्राप्त थवाथी जरमनी दृष्टि दूर थई गई, ल्यारे पोतानी त था पारकी सोंज के० सामग्री ते सर्वने ओलखी लीयी, जे ज्ञान कलाना उदय थवाथी वस्तुनुं परमाण थायठे एवी रीत थई तेथी पोतानी परपरानी शुद्धि आवी, एवा निश्चयथी अमारी ज्योति जे अमारुं स्वरूप तेने अमे ओलखी लीधुं २७

हवे जे ज्ञाता होय ते सम्यक् स्वरूपने शुद्ध अनुभवनेविषे विचारी लिये ते कहे ठे -अथ शुद्धानुभव चित्तन ज्ञान विज्ञान-।

सवैया इकतीसा.-जैसै महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसै लीन होइ जलमें, तैसै शुद्ध आत्म दरवपरजाय करी, उपजे बिनसे थिर रहे निज थल में; ऐसे अतिकल्पी अजल्पी आनंद रूपी, अनादि अनंत गहि लीजे एक पलमे; ताको अनुभव कीजे परम पिऊष पीजे, बंधको विज्ञान मारि दीजे पुढगलमें॥ १७॥

अर्थ.-जेम हीरा जाल पन्ना अने रत्ननी ज्योतिमां लहरी उठे, ने ज्योतिमांज समाई जायठे, वली जेम पाणीना मोजां पाणीमांज समाई जाय, तेम शुद्ध आत्म इव्य ना जे ज्ञान प्रमुख गुणना पर्यायठे ते समये समये उपजे ठे ने वणसेठे, अने इव्य पोताना इव्य स्थानने विपेज रहेठे उपजवु ने वणसवु ए विकल्प पर्यायने आश्र ये थाय ठे, पण इव्यमां तो थिरता रही ठे इव्यमां विकल्प नथी माटे जे अवि कल्पक अने अजल्पी के० स्थिरठे सर्वथा वचन गोचर नथी, अने आनंदरूपी ठे, तेथी सहज समाधि मईठे, एवं कोई आत्म इव्यठे तेतुं अनादि अनंत काल सुधी एक रूपमा ग्रहण करतुं, अने तेज इव्यनो अनुभव करवो, एटले तेने विपेज उपयो ग राखवो, ए अनुभवमां परम पिऊष के० परम अमृतरस उपजे ठे ते पीवो. अ ने जे आश्रव बंधनो विज्ञान आत्मांमां ठे तेने पुज्जनी सामग्रीमां नाखी देवो, एटले पुज्जरूप जूँज ठे ॥ १७ ॥

हवे आत्मानो शुद्ध अनुभव परमपदार्थ ठे, तेनी प्रशंसा करेठे:-अथ अनुभव प्रशंसा:-

.सवैया इकतीसा -दरवकी नय परजाय नय दोउ नय, श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोप है; शुद्ध परमात्माको अनुचौ प्रगट ताते, अनुचौ विराजमान अनुचौ अदोष है; अनुचौ प्रवान जगवान पुरुष पुरान, ज्ञान औ विज्ञानघन महासुखपोप है; परम पवित्र यौही अनुचौ अनंत नाम, अनुचोविना न कहां उर तोर मोप है॥ १८॥

अर्थ.-पदार्थने उलखवाने बेज नय प्रवर्ते ठे; एक इव्यार्थिक नय वडे इव्यनो विवरो अने पर्यायार्थिक नयवडे पर्यायनो विवरो थाय ठे, ए बने नय श्रुतज्ञानरूप ठे, अने श्रुतज्ञान जे ठे ते परोह ज्ञान ठे, अने शुद्ध परमात्मानो अनुभव जे ठे तेतो प्रगट के० प्रत्यक्ष प्रमाणमां आवेठे, तेथी अनुभवज महा बलवान थको विरा जमान थई रह्योठे, एथी अनुभव ते अदोष के० शुद्धठे हवे, अनुभवना नाम कहे ठे अनुभव कहिये प्रमाण कहिये जगवान कहीये, एनेज पुराण पुरुष कहीये, एनेज ज्ञान कहीये, एनेज विज्ञानघन कहीये, एनेज महा सुखतुं पोष कहीये, अने एनेज प

रम पवित्र कहिये, एवं अनुभवना अनंत नाम ठे. अने ए शुद्ध अनुभव शिवा य बीजे कोई स्थानके मोक्ष नहीं ॥ २९ ॥

हवे शुद्ध अनुभवविना संसारमां जमे अने शुद्ध अनुभव प्राप्त थये मोक्ष पामे ते कहे ठे अथ अनुभव सामर्थ्य जलको दृष्टात --

सवैया इकतीसा -- जैसे एक जल नाना रूप दरवानुयोग, जयो बहु जाति प हिचान्यो न परतु है, फिरि काल पाई दरवानुयोग दूरि होतु, अपने सहज नीचे मारग ढरतु है, तैसे यह चेतन पदारथ विजावतासों, गति योनि जेप नव जावर जरतु है, सम्यक सुनाइ पाइ अनुजौके पंथ धाइ, बंधकी जुगती जानि मुगति करतु है ॥ ३० ॥

अर्थ -- जेम पाणी एक रूप ठे तथापि तेनेविपे नाना प्रकारनी माटी प्रमुख इव्यनो मिलाप थये पाणी पण तरेवार जातनुं थाय ठे, हवे देखवामां तो माटी प्रमुख देखाय ठे पण पाणी ओलखातो नहीं फरी कोई औपधादिकथी ते इव्य नो मिलाप दूर थयो अने पाणी तरी आबुं ल्यारे पोतानुं सहज रूप लईने नी चाण तरफ ढलवा लागुं; ते रीते जे चेतन पदारथ ठे ते विजावतासो के० पो तानी जुलुं थकी चार गतीमां चोरासी लाख जीव योनिनेविपे जेप के० एक क्रोड साडासचाणुंलाखं कुलकोडीमां जांतजांतना नवकरतो जावरी के० फरी रहे ठे, एज जीव कोई अवरसर सम्यक् जाव पामीने पोताना अनुभवना मारगमां दोडीने अने बंधनना विलासने तोडीने कर्मनी मुक्ति करे ठे. ॥ ३० ॥

हवे मिथ्यादृष्टि होय ते अनुभव शिवाय कर्मनो कर्त्ता होयज ते कहे ठे. -- अथ मिथ्यादृष्टि कर्त्तव्य कथन --

दोहा -- निशिदिन मिथ्या जाव बहु, धरै मिथ्याती जीव, ताते जावित कर मको, करता कह्यो सदीव ॥ ३१ ॥

अर्थ -- रात ने दिवस पोतानी जूलनेविपे मिथ्याती जीव होय ते फलाणुं में कीयुं मे लीयुं अमहारो इत्यादिक मिथ्या जाव धारे ते माटे अशुद्ध चेतनाजेठे ते विजावित कर्मठे तेनो कर्त्ता सदीव के० निरतर कह्यो. ॥ ३१ ॥

हवे ज्ञानी अने मूढ करम करे ठे, ते एक सरखा देखाय ठे, तथापि मूढ जीवने कर्मनो कर्त्ता कह्यो ने ज्ञानी जीवने कर्मनो अकर्त्ता कह्यो तेनुं कारण कहे ठे:--अथ मूढ कर्मको कर्त्ता ज्ञाता अकर्त्ता यहु कथन --

चोपाई -- करै करम सोई करतारा; जो जानै सो जाननहारा, जो कर्त्ता न हि जानै सोई, जानै सो करता नहि होई ॥ ३२ ॥

अर्थः-- जे कर्मने करे तेज कर्ता केवाय अने जे जाणोठे तेने तो जाणनार कहीये जे कर्ता ठे तेज जाणनार नथी अने जे जाणनार ठे ते कर्ता नथी ॥ ३१ ॥
हवे जे जाणनार ठे ते अकर्ता ठे ते समजावेठेः--अथ ज्ञाता अकर्ता कथनं--
सोरठा-- ज्ञान मिथ्यात न एक, नहि रागादिक ज्ञानमहि, ज्ञान करम अतिरेक, जो ज्ञाता करता नही. ॥ ३२ ॥

अर्थः--ज्ञान नाव अने मिथ्यात नाव एक केवाय नही, अने रागादिक जे राग द्वे प मोह इत्यादिक नाव ज्ञानमां होय नही, एथी ज्ञान जे ठे ते कर्मथी अतिरेक के० छुदो ठे, तेमाटे जे ज्ञाता होय ते कर्ता न होय ॥ ३३ ॥

हवे जे मिथ्यात्वी जीव ठे ते पुञ्जइव्य रूप कर्मनो अकर्ताजि ठे अने नाव कर्मनो कर्ता ठे ते कहेठेः-- अथ जीवइव्य कर्मको अकर्ता यहु कथनः-

उप्ययठंदः- करम पिंम अरु राग, नाव मिलि एक होहि नहि, दोक निन्न स्वरूप, वसहि दोक न जीवमहि, करम पिंम पुञ्जल विनाव रागादि मूढ भ्रम, अलख एक पुगल अनंत किम धरहि प्रकृति सम, निज निज विलास छुत जगत महि, जया सहज परिणमहि तिम, करतार जीवजम करमको, मोह विकल जन कहहि इम ॥ ३४ ॥

अर्थ - पुञ्ज इव्य रूप कर्म पिंम अने राग क्षेपादिक नाव ए बंने मलीने ए क रूप थाय नही, ए बंने नाव निन्न स्वरूपमां ठे, पण ए वेठ नाव जीवमां रेता नथी. एनो विवरो कहेठेः--कर्मपिंम ठे तेतो पुञ्जरूपी ठे अने जे रागादिक विजा व ठे तेतो मूढ जीवनो भ्रम ठे अलख जीव ठे तेतो एकता लीधो रह्यो ठे अने पुञ्ज अनंतताने छेई रह्याठे तो कर्मनुं कर्तापणु एवी सम प्रकृति वेठ केम धारण करशे. जगतमां सर्वे कोई पोतपोताना स्वनाव विलासमा युक्त थई रह्याठे, जेवो पोतानो सहज स्वनाव ठे तेवोज परिणमी रह्यो ठे ए न्यायनी वात ठे, तेथी जड रूपी कर्मनो कर्ता जीव ठे, एवुं वचन जे जीव मोहथी विकल होय ठे ते कहेठे ॥ ३४ ॥

हवे सम्यक् प्रकारे करीने. सिद्धांत समजावेठे. अथ सम्यक्त प्रनाव कथनः-

उप्ययठंद - जीव मिथ्यात न करै, नाव नहि धरै नरम मल, ज्ञान ज्ञान रस रमे, होइ करमादिक पुञ्जल, असंख्यात परदेश, सकति जगमें प्रगटे अति, चिद विलास गंजीर, धीर थिर रहै विमल मति; जब लागि प्रबोध घटमहि उदित, तब लग अनय न पेखियै; जिम धरमराज वरतांतपुर, जह तह नीति परेखिये ॥ ३५ ॥

अर्थ.- जीव ठे ते मिथ्यारूपी कर्म करे नही, एनो हेतु कहेठे के, भ्रममल रू

पी जे चार ठे तेने ए जीव धारण करे नही अने ज्ञान ज्ञाननाज रसमां रमे ए टले ज्ञाता पणामां रहे अने कर्मादिक जे ज्ञानावरणादिक राग वैषादिक तेतो पुत्र लसामग्रीठे अने ए जीवना तो असंख्यात प्रदेशनेविपे एवी शक्ति अति प्रगट पयो जगमगी रही ठे ते कहीये ठइये के, चिदविलास के० ज्ञान विलासनेविपे गंजीरठे धीर ने विमल मतिवत थको स्थिरता थई रह्यो ठे, एवं प्रबोध सम्यक् ज्ञान जा सुधी घट पिन्नामां प्रकाशमान थई रह्यो ठे त्यांसुधी अनय के० अन्ध्याय स्वरूपने दे खीये नही, ते उपर दृष्टांत केहेठे जेम पुर नगरमां धर्मराज वर्तता थका जहां त हां नीतीज जोवामां आवे ॥ ३५ ॥

इतिश्री नाटक समयसार कर्त्ता कर्म क्रिया ढार तृतीय बालबोध सहित समाप्तं

दोहरा - करता किरिया करमको, प्रगट बखान्यो मूल, अब बरनौ अधिकार यह, पाप पुन्य समतूल ॥ ३६ ॥

अर्थ - कर्त्ता क्रिया अने कर्म एउनुं मूल के० रहस्य ते प्रगट करी बखाएयुं हवे पाप अने पुन्य ए बने बराबर ठे तेनो अधिकार वर्णन करुं तुं ॥ ३६ ॥

हवे पाप पुन्य ढार विपे प्रथम ज्ञान चडनी कलाने नमस्कार करेठे -

अथ ज्ञानचंड कला वर्णनं -

कवित्तबंद -- जाके उदै होत घटअंतर, विनसै मोह महातम रोक, सुज अरु अशुच न करमकी डबिधा, मिटे सहज दीसे इक थोक, जाकी कला होतु सपूरन, प्रतिजासै सब लोक अलोक, सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि, सीश नमाइ देतु पग धोका ॥

अर्थ - जे प्रबोध चडना प्रकाशवाथी समान घटमा जे मोहरूप महातम के० घोर अंधकारनुं रोक जे अटकाव ते नाश पामे, अने जेम अधकार गयाथी एक कर्म शुच अने एक कर्म अशुच एवी जे कर्मने विपे द्विविधा ठे ते मटी जाय, अने सहज जावे कर्म बंधरूप ठे एउं एक थोक देखाय अने जेने प्रबोध चडनी सर्व सं पूर्ण कला प्रगट थयेथके सर्व लोका लोकनु प्रतिजास थाय ते प्रबोधरूपी चडकला ने निरखीने बनारसीदास माथुं नमावीने पगधोकदेतुहे के० प्रणाम करेठे ॥ ३७ ॥

हवे मोहेमां शुच अशुच कर्मनी द्विविधता देखायठे ते एक रूप पयो देखाडेठे --

अथ शुजाशुच एकत्वी करन -

सवैया इकतीता - जैसे काहु चमाली छुगल पुत्र जने तिन्ह, एक दियो बामन कूं एक घर राख्यो है, बामन कहायो तिन्ह मय मांस त्याग कीनो, चडाल क

हायो तिन मद्य मांस चारख्यो है, तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप ए क पुण्य नांउ निन्न चारख्यो है; इहां माहिं दोरधूप दोउ कर्म बंधरूप, याते ज्ञान वंतने न कोउ अनिलारख्यो है. ॥ ३८ ॥

अर्थ-- जेम कोई चमालनी स्त्री जुगल पुत्र के० वे पुत्र जणो ने पठी एक ठो करो ब्राह्मणने आपे, ने एक ठोकरो पोताना घरमा राखे, हवे जे ठोकरो ब्राह्मणना घरमा उठरे तें ब्राह्मण केहेवाय, ने ते मद्य मांसनो त्याग करे, जे चमालना घरमा रहे ते चमाल केहेवाय, ने ते मद्य मांस पण चारखे, ते रीते एक वेदनीय कर्मनां वे पुत्र ठे, एक पाप ने बीजो पुण्य, एवां जुदा जुदा नाम कह्यांठे, पण बनेनो स्वजाव एक ठे एटले बेउने विषे दोरधूप के० वेदवानी सत्ता ठे. एटले खेदसंताप ठे वली पापने पुण्य ए वेउ कर्म बंधरूप ठे, एटला वासते ज्ञानीजने ए वेउमांथी कोइनो पण अनिलाप कीधो नथी. ॥ ३८ ॥

हवे पाप तथा पुण्य ए वेउने समान कह्या तेउपर शिष्य प्रश्न पूठेठे --

अथ शिष्य प्रश्नः--

चोपाई -- कोऊ शिष्य कहै गुरु पांही; पाप पुण्य दोऊ सम नांही; कारन रस सुजाव फल न्यारे, एक अनिष्ट लगै इक प्यारे ॥ ३९ ॥

अर्थ--कोई शिष्य गुरुनी पासे आवी कहे के, स्वामी पाप ने पुण्य ए बेने समान कह्या पण ते समान देखाता नथी केमके, ए बेना कारण रस स्वजाव तथा फल ते तो जुदां जुदां ठे वली एमाथी एक प्रिय लागे ठे ने एक अप्रिय लागे ठे ॥ ३९ ॥

हवे शिष्य ए वेउना कारण प्रमुख जुदा जुदा कहे ठे-- अथ शिष्य कथन --
सवैया इरुतीता-- संकिलेस परिणामनिसो पाप बंध होइ, विद्युदसो पुन्य बहु हेतु जेद मानिये, पापके उदे असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदे साता मिष्ट रस जेद जानिये, पाप संकिलेस रूप पुन्यहि विद्युद रूप, इहंको सुजाव निन्न जेद यो बखानिये; पापसो कुगति होय पुन्यसो सुगति होय, ऐसो फल जे द परतह परवानिये. ॥ ४० ॥

अर्थ -- तीव्र कषायमय जे परिणामठे तेनुं नाम संक्लेश परिणाम, तेणे करी ने पापनुं बंध थायठे, अने कषायनुं जे मदपणुं तेने विद्युद कहिये, तेवने पुन्य नो बंध थाय, एवा हेतु एटले कारण जेद मानिये उइये. अने पापना उदयथी अशाता थाय ठे, तेनो स्वादतो कटुक होय ठे. ने पुन्यना उदयवडे शाता उपजे ठे तेनो मिष्ट स्वाद होय ठे. एटले पाप, ने पुन्य ए वेउने विषे रसजेद थयो, वली

पापकर्म क्लेश रूप ठे, तीव्र कषायरूप ठे; अने पुण्य कर्म विशुद्ध रूप ठे मंद कषायरूप ठे, ए बंधने कर्मनो जित्त जित्त स्वभाव थयो, ते एज उपरथी ए बंधने कर्मनो चेद बखाणीये ठइये, अने पापथी कुगति के० नर्क गती तिर्यंच गती थाय ठे, अने पुण्यवने मनुष्यगति देवगति एवी सुगति थाय ठे, ए रीते पाप पुण्यरूप कर्म नेविपे फलनो चेद प्रत्यह प्रमाणथी ठे ॥ ४० ॥

ह्वे शिष्यना प्रश्ननो गुरु उत्तर करे ठे - अथ गुरु उत्तर वचन यथा -

सर्वथा इकतीसा - पाप बंध पुन्य बंध डहूमे सुगति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुगलको पेखिये, सकिलेस विशुद्धि सहज दोउ कर्म चालि, कुगति सुगति जग जालमे विजेखिये, कारनादि चेद तोहि सूजत मिष्यातमांहि, ऐसो दैत जाव ज्ञान दृष्टिमे न लेखिये, दोउ महा अधकूप दोउ कर्म बंध रूप, डहू को विनास मोप मारगमें देखिये ॥ ४१ ॥

अर्थ - पापनो पण बंध थाय ने पुण्यनो पण बंध थायठे ने ज्या बंध होय त्यां मुक्ति न होय, एटले बेउथी मुक्ति नही ते माटे बेउ समान ठे, अने जे कटुक रसमा पाप ठे ने मधुर रसमा पुण्य ठे ए बेउ रस पुदगलना ठे तेथी पापने पुण्य समानज ठे वली जे सक्लेश स्वभावने लीधे पाप ठे, ने विशुद्ध स्वभावथी पुण्य ठे; पण ए बेउ स्वभाव जे ठे ते कर्मनीचाल ठे अने कुगति तथा सुगति ते पाप पुण्यना फल ठे, ते चेदवडे जगत जालनी विशेष ता ठे, तेथी पाप पुण्य समानज ठे अरे शिष्य तने जे पाप पुण्यना कारणादि चेद तेणे करीने पाप पुण्यनो दैत जाव के० द्विविध जाव सूजे ठे, ते तो मिष्यामतिमा सूजे ठे, पण ज्ञान दृष्टि करी जो तां तो ए दैतजाव देखाशे नही ए बेनेविपे आत्मानु अवलोकन नथी, तेथी ए बेउ महा अधकूप ठे, अने ए बेउ कर्म ठे, ते बधरूप ठे अने मोहमार्गने विपे ए बेउनो विनाश देखीये ठे, तेथीए बेउ समान ठे ॥ ४१ ॥

ह्वे मोह मार्गनेविपे बेउनो विनाश बतावे ठे - अथ मोह पद्धति कथन -

सर्वथा इकतीसा -- सील तप संजम विरति दान पूजादिक, अथवा असज्जम कषाय विपे जोग हे, कोउ शुनरूप कोउ अशुन सरूप भूल, वस्तुके- विचारत डुविध कर्म रोग है, ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरममे करम त्याग जोग हे, नौजल तरैया राग दोषको हरैया महा मोपको करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥ ४२ ॥

अर्थ - ब्रह्मचर्य तप, पचेडिय नियम, सवर दान पूजाप्रमुख क्रिया, ए पुण्य बंध

ना कारण कर्म ठे. अथवा, पापना कारण असंयम कषाय अने विषय जो गं ठे. ए बेउमां कोई शुजरूप कार्य ठे, अने कोई अशुजरूप कार्य ठे, पण वस्तुनं मूल विचारतां तो बेउएकर्म रोग ठे; एटले बेउ प्रकारनो कर्म रोग ठे; एवी बंधनी पक्षति के० एक मंडी ते वीतराग देवे वखाणी; पण आत्मिक धर्ममां एटले आत्मानो स्वभाव जोतां कर्म क्रिया त्यागवा योग्य ठे, एवा पापपुण्यने हेय कहेनार, अने जवजल ने तरनार, राग द्वेषने हरनार तथा महा मोक्षनो करनार एक शुद्ध उपयोग उपदेश ठे. ॥ ४२ ॥

हवे अर्धा सवैयामां शिष्य प्रश्न करेठे, ने अर्धा सवैयामां गुरु तेनो उत्तर वालेठे.—अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथन. -

सवैया इकतीसाः—शिष्य कहै स्वामी तुम करनी शुज अशुज, कीनी है निषिद्ध मेरे ससो मनमांहि है, मोपके सधैया ज्ञाता देसविरती मुनीस, तिन्हकी अवस्था तो निरालंब नांहि है, कहै गुरु करमको न्यास अनुजौ अन्यास ऐसो अवलंब उन्हकीको उनमांहि है; निरुपाधि आत्म समाधि सोइ शिवरूप, और दौर धूप पुदगल परठांहि है. ॥ ४३ ॥

अर्थः—शिष्य पूछेठे हे स्वामी, तमे तो मोक्ष मार्गमां शुजने अशुज करणी बेउ नो निषेध कीधो, तेनो मारा मनमां संदेह पडेठे; केमके मोक्षमार्गना साधक ज्ञाता देश विरती पंचम गुण स्थान वर्ति थया अने मुनीश के० पष्ट सप्तम गुणस्थान वर्ति सर्व विरती थया, तेमनी अवस्था तो निरालंबनथी एटलेपोतपोतानी शुद्ध क्रियाना आलंब ने लेईने देश विरती सर्व विरती केवायठे, त्यारे करणी निषिद्ध केम थई? हवे गुरु कहेठे.—जेवो अक्षरनो न्यास मांमथो तेवो श्रुत ज्ञाननुं आलंब न होय तेम शुज कर्मनो न्यास तेतो जोवामा ठे पण ते अनुजवनोज अन्यासठे ते अनुजव अन्यासरूप आलंबन ते तो ज्ञातानुं ज्ञाता पासेज ठे, अने तेमां निरुपाधि के० रागद्वेष कषाय इहादिकविना आत्मानो जे समाधीठे, एटले जे पर रूपने विषे निरूपयोगोपणो रहेबु तेज शिवरूप, के० मोक्षरूपठे अने जे दौरधूप के० खेद संतापजेठे ते तो पुज्जलनी परिठांही के० गांयाठे ॥ ४३ ॥

हवे एज शुज क्रियाविषे बंध अने एज अशुज क्रियाविषे मोक्ष ए बेउ स्वरूप कही बतावेठे—अथ बंध मोक्ष स्वरूप कथन—

सवैया तेईसा.—मोक्षरूप सदा चिन्मूरति बंधमई करतूति कही है, जावतकाल वसै जह चेतन, तावत सो रसरीति गही है, आत्मको अनुजौ जबलौ तबलो शिव

रूप दसा निवन्ही है, अथ जयो करनी जब गानत, बंधविथा तब फेलि रही है ४४
 अर्थ - चिन्मूर्ति के० चिदानन्द ठे ते तो सदा मोक्ष स्वरूप ठे, अने करतूती के०
 क्रिया तेतो सदा बंधमय ठे. यावत् काल के० जेटला काल सुधी चेतन जहां वसे
 तावतकाल के० तेटला काल सुधी तेज रसरति ग्रहण कीयी ठे, एटले तेज रसमा
 रहेठे, एटले ज्यासुधी आत्मानो अनुभव रहे त्यां सुधी गुण क्रिया करता ठता शिवपद
 दशा निवन्ही एटले मोक्ष स्वरूपमा रहे, अप्रमत्तता केहेवाय, अने पोतानुं स्वरूप सुलीने
 अथ ययो थको ज्यारे करणीनोज रस उरावे ल्यारे तो बंधनाज कष्ट रोग फेलावेठे ॥ ४४

हवे मोक्षप्राप्तितुं कारण कहेठे - अथ मोक्ष मार्ग निरूपण -

सोरठा - अतर दृष्टि लखाउ, अरु सरूपको आचरण, ए परमा तमजाउ,
 शिवकारन एई सदा ॥ ४५ ॥

अर्थ - बाह्य दृष्टि ठांमीने अतर दृष्टि आपीने अलङ्कनो जापकरवो, अने तेना
 स्वरूपनुं आचरण करवु, एटले ज्ञान दर्शन चारित्रने आचरिये, तेथकी परमात्मा
 जावसिद्ध थाय, सदाकालनेविपे एज मोक्षनु कारण ठे ॥ ४५ ॥

हवे बाह्य दृष्टिवडे बंध पक्षति थाय ते कहे ठे - अथ बंध मार्ग निरूपण -

सोरठा - करम गुजागुज दोइ, पुजल पिंम विजाव मल, इनसों मुगति न हो
 इ, नाही केवल पाइए ॥ ४६ ॥

अर्थ - गुजकर्म ते पुन्य ने अगुज कर्म ते पाप ए वेउ कर्मठे पुजलना पिंम ठे,
 अने विजाव जे राग द्वेषादिक मजरूप ठे ए वेउनेविपे दृष्टि रहेवायी मुक्ति थाय
 नही, अने केवलज्ञाननुं पद पामीये नही ॥ ४६ ॥

ए वात उपर शिष्य प्रश्न करे ठे ने तेनो उत्तर गुरु दिये ठे -

अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथन -

सवैया इकतीसा - कोउ शिष्य कहै स्वामी अगुज क्रिया अगुइ, गुज क्रिया
 गुइ तुम ऐसी क्यों न बरनी ? गुरु कहै जबलो क्रियाको परिणाम रहे, तबलो चप
 ल उपयोग योग धरनी, थिरता न आवै तोलो गुइ अनुजो न होइ, याते दोऊ
 क्रिया मोप पथकी कतरनी, बंधकी करैया दोऊ डहूमे न जती कोऊ, बाधक
 विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥ ४७ ॥

अर्थ - कोई शिष्य पूछे ठे के हे स्वामी, तमे एउ वर्णन केम करता नथीके अगु
 ज क्रिया जे हिंसादिक ते अगुइ ठे अने गुज क्रिया जे दया दानादिक ते गुइठे
 ल्यारे गुरु उत्तर आपेठे के अहो शिष्य, ज्यासुधी क्रियाना परिणाम रहे ठे ल्या

सुधी उपयोगनी धरनी के० क्षेत्री एटले उपयोगवत आत्मा चंचल रहें ठे. ज्यांसुधी क्रियामां उपयोग रहे त्यांसुधी आत्मानी स्थिरता थाय नही, अने आत्मानो शुद्ध अनुभव होय नही, ए उपरथी ए पुण्य पापनी वेव क्रिया ठे ते मोक्षमार्गनी कतरणी समान ठे. बंधनी करनारठे एधी वेव क्रियामां एक पण जली नथी ज्यां मुक्तिमार्गनो बाधक विचारे त्यां वेव क्रिया निषिद्ध कीधी ठे ॥ ४७ ॥

हवे मात्र ज्ञान सोढूनो मार्ग ठे ते कहे ठे - अथ ज्ञान मोक्ष मार्ग यह कथन:-

सर्वेया इकतीसा - मुक्तिके साधकको बाधक करम सब, आत्मा अनादिको करममाहि लुक्यो है, एते परि कहै जो कि पाप बुरो पुण्य जलो, सोइ महा मूढ मोठमारगतो चुक्यो है, सम्यक् सुजाव लिये हियेमें प्रगटयो ज्ञान, उरध उमगि चलो काहूपे न रुक्योहै, आरसीसो उज्वल बनारसी कहत आपु, कारन सरूप व्हैके कारजको हुक्यो है ॥ ४८ ॥

अर्थ- जे आत्मा मुक्तिको साधक ठे, तेने सर्व कर्म बाधक ठे, एधीज अनादि कालनो आत्मा कर्ममां लुक्यो एटले दबाई रह्यो ठे; एम ठतां पण जो कोई एतुं कहे के, पाप कर्म नवारुं ठे, ने पुण्य कर्म सारुं ठे, तेने महा मूढ जाणवो; ने ते मोक्ष मार्गथी चुक्यो ठे, एम जाणवुं एवामां कोईने नवल परिपाक थकी सम्यक् स्वजावनी प्राप्ति थंड तेवारे हीयामां ज्ञान प्रगटयुं तो ते उर्ध्व दशा तरफ उमगे करीने चाव्यो, पण कोई कर्मथी रोकायो रह्यो नही. ते आरीसानी पठे उज्वल थईने निज ज्ञानोपयोगी पणे कारण सुरूपी थईने पोताना मुक्तिरूप कार्यने पोतेज हुके ठे एतुं बनारसी दास कहे ठे ॥ ४८ ॥

हवे ज्ञाननो तथा कर्मनो विवरुं बतावेठे -- अथ ज्ञान तथा कर्म विवरन - सर्वेया इकतीसा -- जोलों अष्ट कर्मको विनास नाही सरवथा, तोलों अंत रातमामें धारा दोई वरनी, एक ज्ञानधारा एक गुंजागुंज कर्मधारा, डहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी धरनी, ग्यान धारा मोठरूप मोठकी करन हार, दोपकी हरन हार जो समुद्र तरनी, इतनो विशेष छु करमधारा बंधरूप, पराधीन सकति विविध बंध करनी ॥ ४९ ॥

- अर्थ - ज्या सुधी आठ कर्मनो सर्वेया विनाश थतो नथी एटजासुधी मुक्ति न होय त्यांसुधी अंतरात्मा थकी बे धारा वहेठे, तेंमां एक ज्ञाननी धाराने बीजी गुंजागुंज कर्मनी धारा ए बनेनी प्रकृती जुदी जुदी ठे; अने धरनी के० क्षेत्र ते पण छुंड छुंड ठे एमां एटलुं विशेष ठे के जे कर्मधारा ठे ते बंधरूप ठे; अने ज

हपणाने लीधे एनी शक्ति पराधीनरूपठे अने प्रकृतिबंध स्थितिबंध तथा रसबंध एवा जात जातना बंधनी करनारीठे अने ज्ञानधारा मोहस्वरूप ठे मोहनी करनारी ठे ने दोष मात्रनी हरनारी ठे अने नवसमुद् तरवाने तरनी के० नाव समान ठे ॥४९॥

हवे मोह कर्ता जे ज्ञान क्रिया एवो जे स्याद्वाद तेनी प्रशंसा करेठे -
अथ म्याद्वाद प्रशंसा -

सवैया इकतीसा - समुजैन ज्ञान कहै करम कियेसो मोह, ऐसे जीव विकल मिष्यातकी गहजमे, ज्ञान पठ गहै कहै आत्मा अबंध सदा, वरते सुठंड तेउ बूडे है चहजमे, जथाजोग करम करे पै ममतान धरै, रहै सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमे, तेई नवसागरके उपर व्है तरै जीव, जिन्हको निवास स्याद्वादके महजमे ॥५०॥

अर्थ - क्रियावादी कहेठे के, "न ज्ञान श्रेय" एनो अर्थ एठे के ज्ञान जलु नथी जेमा संशय उपजे ठे अने संशय थया थकी जीव अहीनो नही ने तहीनो पण नही एवो थाय ठे माटे क्रिया कर्म करवाथीज मोहठे एम विकल थयलो जीव मिष्यातनी गहजमा कहेठे हवे जे ज्ञानवादी साख्यमती ठे ते ज्ञाननोज पद्व अहीने रहेठे ने एतु कहेठे के बंधने मोह, प्रकृतिने विपेज ठे पण आत्मा तो सदा अबंध पणे बचै ठे, एवी श्रद्धावडे स्वठंड के० पोतानी मरजीमा आवे तेम-चाखेठे तेउ चहज के० कर्दममा बूडेला ठे. अने जे स्याद्वादी ठे ते कोईनो विरोधी नथी, तेथी यथायोग्य एटले गुण ठाणा माफक कर्म क्रिया करेठे, पण कर्मने उदय दशामा राखे ठे अने ममताने धरता नथी, ज्ञान ध्याननी सेवामां सावधान रहेठे, एवा स्याद्वादी जीव उपर थइ रह्या थका नवसागर तरेठे, जेनो निवास स्याद्वाद रूपमेहेजमाठे ५०

हवे मूढनी तथा विचक्षणनी क्रियानुवर्णनकरेठे - अथ मूढविचक्षण क्रिया वर्णन -

सवैया इकतीसा - जैसे मतवारो कोउ कहै और करै और तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरतु है, अखुन करम बंध कारन बखानै मानै, मुगतिके हेतु अखुन रीति आचरतु है, अंतर सुदृष्टि नई मूढता विसरि गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरतु है, करन सों निन्न रहै आत्म सरूप गहै, अनुजौ आरजि रस कांतुक करतु है ॥ ५१ ॥

अर्थ - जेम कोई मतवारो पुरुष कहे कइ अने करे कइ तेम मूढ प्राणी उलटोज नाव धारे ठे, एटले अखुन कर्मने बंधतुं कारण समजे अने मुक्तिनो हेतु अखुनरीत के० अखुन क्रियाने आचरेठे हवे ज्ञानीने अंतर सुदृष्टि थई तेथी मूढता मटी गई ने ज्ञाननो उद्योत थयो तेणे करीने भ्रमरूप तिमिरनो नाश थयो, त्यारे मुक्तिनुं

कारण जे शुच क्रियाठे तेथी ते ज्ञानी निन्न रहे, ममतान धरे, अने आत्मानुंज स्व रूप ग्रही अत्माना अनुचवना आरंजना रस्तुं कोतुक करे ठे ॥ ५१ ॥

इति श्री नाटक समयसारको पुन्य पाप एकत्री कथन चतुर्थे द्वार संपूर्ण

दोहरा—पुन्य पापकी एकता, बरनी अगम अनूप, अब आश्रव अधिकार कबु, कहां अध्यात्म रूप. ॥ ५२ ॥

अर्थ—पाप पुण्यनी एकता तो अगम ठे अने अनुपम ठे तेतुं वर्णन कीधुं, हवे कइंक आश्रवनो अधिकारठे ते कहुंठुं अने अध्यात्मनु स्वरूप कहुंठुं ॥ ५२ ॥

आश्रव सुजटनोनाशकरनारज्ञानसुजटनेनमस्कारकरेठे—अथज्ञान बल वर्णनं.—
सर्वथा इकतीसा—जे जे जगवासी जीव यावर जंगम रूप, ते ते निज वस क री राखै बल तोरिके; महा अजिमानी ऐसो आश्रव अगाध जोधो रोपि रणथंन ठा ठो नयो मूठ मोरिके; आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुजट सवायो बल फोरिके, आश्रव पठार्यो रणथंन तोरि मार्यो ताहि, निरखी बनारसी नमत कर जोरिके ॥ ५३ ॥

अर्थ—जे जे यावर जंगमरूप जगतवासी जीव ठे, तेना सहजबल ने तोडीने ते ते जीवोने आश्रव जोधाए पोताने वस करी राख्याठे एवुं महा अजिमानी जगतमां आश्रवरूपी अगाध जोधो रहेठे, ते रणथंन रोपीने मूठमरोडीने गढो थयो ठे ते एम कहेठे के, जंगतमां मने जीते एवो कोइ नथी ते स्थले अचानक परम धाम के० अती तेजस्वी ज्ञान नामनो सुजट उपला आश्रव जोधानो प्रतिपद्धी ते सवायोबल फोरवीने लडवा ने आब्यो तेणे आश्रव सुजटने पठाडयो अने ते नो रणथंन तोडी नाख्यो एवा ज्ञान सुजटने निरखीने बनारसी दास हाथ जोडी नमस्कार करेठे ॥ ५३ ॥

हवे इत्यरूपी आश्रव अने जावरूपी आश्रवना लक्षण कहेठे—अने सम्यक् ज्ञाननु लक्षण पण कहेठे—अथ द्विविध आश्रव लठन तथा ज्ञान लठन वर्णनं—
सर्वथा तेइसां—द्विते आश्रव सो कहिये जहिं पुज्ज जीव प्रदेस गैराम, जा वित्त आश्रव सो कहिए जहिं राग विरोध विमोह विकासै; सम्यकपद्धति सो क हिये जहिं द्विते जावित्त आश्रव नासै; ज्ञानकला प्रगट—तिहि थानक, अंतर बाहरि और न नासै ॥ ५४ ॥

अर्थ—जांहां पुज्ज इत्य ठे ते जीवना सर्व प्रदेशने आसेठे के० गली जायठे, ते

इवित आश्रव जाणीये अने जांहां इवित आश्रवना प्रसंग थकी आत्मानेविषे रा गद्वेप विमोहनो विकाश थाय त्या जावित आश्रव कहीये, अने ज्यां आत्मानेविषे सम्यक् पदति के० सम्यक् स्वरूप कहिये ताहां तेने इवित आश्रव अने जावित आश्रवना नाश थाय, एटले सम्यक् पदतिनेविषे ज्ञान कला प्रगटे तेथी अंतरजा वाश्रवमां बाहिर इव्याश्रवमां बीजूं नासे नही, सम्यक्ज्ञ दीगमां आवे ॥ ५४ ॥

हवे सम्यक् स्वरूपनो धणी जे ज्ञाता तेतुं लक्षण कहेठे अथ ज्ञाता लक्षण चोपाई ठंद.--जो दरवाश्रवरूप न होई, जह जावाश्रव जाव न कोई, जाकी दशा ज्ञानमय लहिये, सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ५५ ॥

अर्थ:-जे इव्याश्रवना स्वरूपमां होय नही, अने जांहां जावाश्रवतुं पण जाव कोई नथी,अने जेनी दशा ज्ञानमय होय,तेज जीव ज्ञानी अने आश्रवरहित कहिये हवे ज्ञातानी समर्थाईथी निराश्रवपणुं देखाडे ठे.--अथज्ञाताकोसमर्थपणोवर्णन:-

सर्वेया इकतीसा -जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिनामनकी ममता हरतु है, मनसा अगोचर अबुद्धि पूरवक जाव, तिन्हिके विनासवेको उद्यम धरतु है, याहि जाति परपरिनतिको पतन करे, मोखको जतन करे नौजल तरतु है, ऐ स.ज्ञानवत ते निराश्रव कहावै सदा, जिन्हको सुजस सु विचक्षण करतु है॥५६॥

अर्थ -जेटला परिणाम प्रगट मनगोचर ठे, एटला जिन परिणामने मनमां सजारेठे जाणे ठे, अने बुद्धिपूर्वक के० पोतानी अह बुद्धिवडे जे अशुद्ध परिणाम उपजेठे, ते परिणामनी ममता ठांमे ठे, अने जे जाव मनथी अगोचर के० जेनु स्वरूप मनवडे देखाय नही, अने अबुद्धि पूर्वक के० जेने बुद्धिनो प्रचार लागे न ही, एवा अनागत कालना जे अशुद्ध परिणाम, तेनो विनाश करवाने उद्यम करे ठे, ए रीते परपरिनति के० पर वस्तुनो जे परिणाम जे अतीत कालमां थयो ठे वर्तमान कालमा ठे, अनागत कालमां थयो, तेतुं पतन करे. अने मोह के० तेथी बुटबु तेतुं जतन करे ते जवसांगरथी तरे, एवा जे ज्ञानवान प्राणी ठे तेतो सदा निराश्रव केवाय जेनी सुजज्ञ ने स्तुती ते पतित पुरुषो गायठे ॥५६॥

ज्ञानीने निराश्रव कहा तेउपर शिष्य प्रश्न करेठे:-अथ शिष्यः प्रश्न कथन.- सर्वेया इकतीसा -ज्यो जगमे विचरै मतिमद सुठंड सदा वरतै बुध तैसे, चंचलचित्त असजत बैन सरीर सनेह जथावत जैसे, जोग संजोग परिग्रह सग्रह मोह विजास करे जेहां ऐसे, प्रबत शिष्य आचारजसो यह, सम्यकवत निराश्रव कैसे ? ५७

अर्थ - जेम मतिमंद के० अज्ञानी जन जगतमां स्वहृद के० मरजी मुजब वक्तें, तेम पंफित पण सदा तेवीरीते वक्तें, ते आवीरीते चचल चित्तवाला रहे, असंजत वेन के० विचारविना वचन बोले, अने शरीर स्नेहने प्रवर्त्तावे, अने अज्ञानीनी माफक नोगसंयोग राखे, परिग्रहनी संग्रह करे, अने ज्ञान अवस्थामां मोहविलास एवोज करे, ए रीते अज्ञानीनी अने ज्ञानीनी एक सरखी रीति जोईने शिष्य आचार्यने पूढेके के, एने सम्यक्वत निराश्रव केम कहिये ? ॥ ५७ ॥

हवे ए प्रश्नुं उत्तर गुरु आपेठे - अथ गुरु उत्तर कथन -

सवैया इकतीसा - पूरव अवस्था जे करमबंध कीने अब, तेई उदै आई नाना जां ति रस देत है, केई अज्ञान शाताकेई अज्ञान अशातारूप, उहुसो न राग न विरोध सम चेत है, यथायोग किया करै फलकी न इहा धरै, जीवन मुगतिको विरुद गहिलेत है, यातें ज्ञानवतको न आश्रव कहत कोउ, मुदतासो न्यारे नये सुदता समेत है. ५७

अर्थ - पूर्वकालमां अज्ञानअवस्थानेविषे जे जे कर्मबंध कीधेलां होय तेज कर्मो वर्त्तमानकालमां उदय आवीने नाना प्रकारनो रस आपेठे तेमा केटला एक अज्ञानकर्म ते शातारूप ठे, अने केटला एक अज्ञान कर्म अशातारूप ठे; एवा वेउ जातना कर्मनेविषेज्ञानीने राग अने विरोध नथी, एथी ज्ञानी समचित्त ठे. अने यथायोग्य के० उदयमाफक किया करे, पण फलनी इहा राखे नही. ने जीवता ज मुक्त थयाठे, तेथी जीवनमुक्तिनो विरुद धारेठे, ए रीते ज्ञानवत मनुष्यने कोई आश्रव केहेतु नथी ते मूढताथी न्यारो थयो अने अज्ञान समेत ठे ॥ ५७ ॥

हवे राग द्वेष मोह अने ज्ञानना लक्षण कहेठे - अथ राग द्वेष मोहज्ञान लक्षण -

दोहरा - जो हितनाव सु राग है, अनहितनाव विरोध, त्रामकनाव वि मोह है, निर्मलनाव सु बोध ॥ ५८ ॥

अर्थ - जे हितनाव ठे ते राग ठे, अने अनहितनाव ते विरोध ठे, अने त्राम कनाव ठे तेने विमोह कहिये, अने निर्मलनाव ते बोध एटले ज्ञान कहिये ॥ ५८ ॥

हवे राग द्वेषनुं स्वरूप कहेठे - अथ राग द्वेष कथन -

दोहा - राग विरोध विमोह मल, एई आश्रव मूल, एई कर्म बढाईके, करै धरमकी जूल ॥ ६० ॥

अर्थ - राग द्वेष ने विमोह जे ठे ते आत्माने मल ठे, अने एज दोष आश्रवना मूल ठे. अने एज रागद्वेष अने मोह ठे ते करमने वधारीने धरमने जुलावी दिऐठे ६० हवे ज्ञाताने निराश्रव कहेठे. - अथ ज्ञातानिराश्रव कथन -

दोहा -- जहा न रागादिक दसा, सो सम्यक परिनाम; याते सम्यकवतको, क ह्यो निराश्रव नाम ॥ ६१ ॥

अर्थ - जहा राग देप मोहनी दशा न मले तेने सम्यक परिणाम कहिये, ए उपरथी सम्यकवत पुरुषने निराश्रवी नाम आप्युं ॥ ६१ ॥

हवे ज्ञाता जे ठे ते ते निराश्रवपणामा विजास करेठे - अथ ज्ञाता कथन - सवेया इकतीसा - जे कोई निकट नव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्या मतजेद ज्ञान जाव परिनये है, जिन्हकी सुदिष्टिमें न राग दोष मोह कहूं, विमल विलो कनिमे तीनों जीति लये है, तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयो गकी दशामे मिलिगये है, तेई बंध पदति विमारि पर सग मारि आपुमे मगन व्हैके आपरूप जये है ॥ ६२ ॥

अर्थ - जे कोई नव्य राशीमां जगतवासी जीव ठे, ते नव्यत्व परिपाकने लीधे निकट के० पासे थया; ने मिथ्यामतिने जेदीने पोतातुं स्वरूप जे ज्ञान जाव ते नेविपे परिणामी रहेठे, जेनी ज्ञानरूपी दृष्टिमा राग देपने मोह कई पामिये न ही, अने निर्मल निज स्वभावनी विलोकतामा राग देपने मोह ए त्रणेने जीती ली धाठे, अने पाचे प्रमाद तजी पोताना शरीरने साधीने मन वचन अने कायाने शैलेशीकरणमां निरोध करीने शुद्ध उपयोग दशा जे केवल दशा तेनेविपे मली गया तेवा ज्ञानी बंधनो मार्ग विमारी अने परवस्तुनो सग ठोडीने आत्मानेविपे मगन अई आपरूपे थया ॥ ६२ ॥

शिष्य पूठेठे के, एम ज्ञातानेविपे निराश्रवपणुं थरो तो आयुष्यपर्यंत ज्ञाता निरा श्रवी थरो गुरु उत्तर आपेठे के, ज्ञातापणु तो उपशमजावने क्योपशम जाव वडे चंचल ठे ते कहेठे - अथ उपशमी क्योपशमी व्यवस्था कथन -

सवेया इकतीसा - जेते जीव पमित खयोपशमी उपशमी, तिन्हकी अवस्था ज्यो लुहारकी समासी है, तिन आगमाहि तिन पानिमाहि तैसे एंव, तिनमे मि थ्यात तिनु ज्ञान कला जासी है, जोलो ज्ञान रहै तोलो सिधिल चरन मोह जैसे कीलेनगकी सगति गति नासी है, आवत मिथ्यात तब नानारूप बंध करै जो उकीले नागकी प्रकृति परगासी है ॥ ६३ ॥

अर्थ - मिथ्यात्वनी गावजेद कीया पठा जे मिथ्यात्वनो अश उदय आवेठे ते जेनो खपीजाय अने मिथ्यातपुज उपशम्यो रहे ते जीव क्योपशमी कहिये अने जेने अतर मुहूर्तलगी उपशम्योज रहे तेने उपशमी कहाये एवा बेव जाव

ते-जे जीव पंक्ति ठे तेनी अवस्था ते जुहारनी साणसी समान ठे, जेम साणसी घडीमां लोहने ग्रहण करी आगमां होयठे, ने घडीमा तेहज साणसी लोखंमने वमो करवा सारु पाणीनेविपे होयठे ; तेम ए कृयोपशमी अने उपशमी जीव कृण एकमां मिथ्यात नावमां आवे ने कृणनेविपे ज्ञानकलाना प्रकाशमां रहेठे एवी अवस्थानेविपे जांहांसुधी ज्ञानकला रहेठे तासुधी चारित्र मोहनीनी पचीसं प्रकृति शिथिल के० ढीली थई रहेठे ; जेम मंत्रनी जडीए करीने सर्पनी शक्ति गति शिथिल थई जायठे. तेम ए पण जाणवुं, हवे ए जीवने फरी मिथ्यात्व उदय था वेठे ल्यारे तो नाना प्रकारना कर्मबंध करेठे, जेम नागनी उकीलनी करवाथी ना गनी पोतानी प्रकृति फरीथी प्रगटे ते रीते जाणवुं ॥ ६३ ॥

हवे ज्ञानना शुद्धपणानी प्रशंसा कहेठे.-अथ शुद्धनय प्रशंसा:-

दोहा.-यह निचोर या ग्रंथको, कहै परम रस पोप, तजै शुद्धनय बंध है, गहै शुद्धनय मोप ॥ ६४ ॥

अर्थ-आ समयसारग्रंथनु रहस्य एज ठे अने एज उत्कृष्ट रसनो पोषकठे के जे शुद्धतानी नयरीती ठामी तो बंध ठे अने शुद्धतानी नयरीति ग्रही तो मोह ठे ६४ हवे वे नयनेविपे जीवनो विलास कही बतावे ठे --अथ जीव विलास.वर्ननं - सवैया इकतीसा -- करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, वहै रह्यो बहिर सुख व्यापत विपमता, अंतर सुमति आई विमल वडाई पाई, पुज्जसों प्रीति टूटी वूटी माया ममता, सुद्ध नै निवास कीन्हो अनुजो अन्यास लीन्हो, ब्रमचाव ठां मिदीनो जिनो चित्त समता, अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पढ अवलंबी अचलोके राम रमता ॥ ६५ ॥

अर्थ-चौदराजलोकमां कर्मनुं चक्र के० कटक फरी रह्यु ठे, तेमा जगतवासी जीव पण फरी रह्यो ठे, अने ए फरवामा जीव विपमताए युक्त थयो थको क्यारे इष्ट सयोगी ने क्यारे अनिष्ट सयोगी थई ने तेमां बहिर्मुख थई रह्यो, एटले बाह्य विषय नोगनोज ग्राहक थयो, अने अंतरदृष्टिथकी आत्मा न जाण्यो एटलामा अंतरनेविपे सुमति उपजी, तेणे करीने पोतानी निर्मल प्रभुताने पाम्यो, ल्यारे परव सु जे पुज्ज तेनी प्रीति टूटी, एटला कालसुधी पुज्जनी माया ममता जे नही वूटी हती ते वूटी. जेम शुद्धनयवडे आत्मानुं स्वरूप कहु, तेवा शुद्धनयमां पोते निवास कीथो, अने आत्मस्वरूपमां उपयोग राखीने अनुभवनो अन्यास लीयो एथी ब्रमचावनो त्याग थयो अने मन जे ठे ते समाधिनेविपे लीन थयुं. त्या

रथी अनादि अनंत कालसुधी जे स्वरूपमां कईं बीजां विकल्प न पामियें एवुं पोतानुं अचल पद अवलंबीने पोतानुं जे रमता रामपणुं ठे तेने अवलोके ॥ ६५ ॥

हवे आत्मानु शुद्धपणुं सम्यक दर्शन ठे, तेनी प्रशंसा करेठे - अयसम्यक्तप्रशंसा सवैया इकतीसा - जाके परगासमे न दीसे राग दोष मोह, आश्रव मिटत न हि बंधको तरस है, तिहु काल जामे प्रतिविवित अनतरूप, आपुहु अनत स चा नततें सरस है, जाव श्रुत ज्ञान परवान जो विचारि वस्तु, अनुजो करे जहा न वानीको परस है, अनुज अखम अविचल अविनासी धाम, चिदानंद नाम ऐ सो सम्यक दरस है ॥ ६६ ॥

अर्थ - जे शुद्ध आत्माना प्रकाशमां राग द्वेष मोह न देखाय, अने आश्रव न होय; तेमा बंधनो तरस के० लागवु ते पण न होय, अने जे शुद्ध आत्माना प्रकाशमा त्रणे काले अनंतरूप प्रतिविवित थाय ठे, अने निजस्वरूप पण अनत ठे, अने सत्तानतमां सरस ठे, ते सत्तास्वरूपी अनंत पदार्थ ठे, तेथी सरस ठे, एटले जेना अनंतपर्याय सर्व तेहिज धर्म कहे, अने जावश्रुत ज्ञानने प्रमाण करी वस्तु नो विचार अनुभव करे, अने जाहां वाणीनो स्पर्श नही, एटले जे वचन गोचर नथी, अनह्वरूपनो अनुभव पोते करे, ए संयोगीगुणस्थानकनी दशा ठे जेनी तुलना नथी एटले अनुज, वली जेनी खमना नथी माटे अखंम, एवु अचल ने अविनाशी धाम के० तेजोमय तेहिज चिदानंद स्वरूप ठे, एवु ईश्वररूप सम्यक् दर्शननुं स्वरूप कहिये ॥ ६६ ॥

इतीश्री नाटक समयसारविषे बालाबोधरूप आश्रवद्वार पंचम सपूर्ण.

दोहा - आश्रवको अधिकार यह, कहाँ यथावत जेम, अब सवर वरनन करों, सुनौ नविक धरि प्रेम. ॥ ६७ ॥

अर्थ - ए रीते आश्रवनो अधिकार कहाँ हवे सवरतत्वनुं वर्णन करहुं; अ हो नविक के० नव्य प्राणीउ प्रेम धरीने ते साजलो ॥ ६७ ॥

हवे संवरनु आदी ज्ञानवस्तु तेने नमस्कार करेठे - अथ ज्ञान वर्णन - सर्वया इकतीसा - आत्मको अहित अथ्यात्ममरहित ऐसो, आश्रव महात्म अ खंम अंमवत है, ताको विसतार गिलिवेको परगट नयो, ब्रह्ममको विकासी ब्रह्मंम वत है, जामें सबरूप जो सबमें सबरूपसो पे सबनि सो अलिप्त अकाशखमवत है, सो हे ज्ञान जानु शुद्ध संवरको जेप धरे, ताकी रुचि रेखको अमारे दमवत हे ६८

अर्थ - आत्मानुं अहित करता अने अथ्यात्मस्वरूपथी रहित एवुं आश्रव

रूप महात्म के० महा अंधकार अखंडपणे अंधवत के० सर्व लोकने ढांकी रह्यो ठे, तेनो विस्तार गलवाने जे ज्ञानसूर्य प्रगट थयो ते ब्रह्मान जेवो सर्व लोका लोकने विकाशनो करनारो थयो, अने ब्रह्मानिंतुं मंन जेथकी थायठे, अने जेने विषे सर्व रूप जासे ठे; अने जे सर्वरूपे सर्वमां पामिये ठे, अने जे सर्व मूर्तिक वस्तुथी आकाशखंडनीपरे अलिप्त ठे, ते ज्ञानरूपी सूर्य तथा जे शुद्ध संवरनो जेप धरी रह्या ठे; तेनी रुचि रेखाने एटले तेना उदयने अमारो दमवत के० नमस्कार ठे. ६०

हवे जड चेतनना जेदज्ञानथकीज संवररूपी परमात्माने उलखाय ठे, ते सम जावेठे:- अथ जेदज्ञान महिमा कथन:-

सर्वथा तेइसा:- शुद्ध सुभेद अनेद अबाधित, जेद विज्ञान सु तीठन आरा; अंतर जेद सुजाय विजाय करे जड चेतनरूप डफारा; सो जिन्हके उरमे उप ज्यो न रुचै तिन्हको परसंग सहारा; आत्मको अनुजौ करि ते हरखे परखे प रमात्म धारा. ॥ ६९ ॥

अर्थ:- शुद्धपणे स्वभेद के० पोतपोताना न्यारा स्वरूपने बतावनार अनेद के० एक स्वरूप अबाधित एटले कोई प्रमाणांतरे अखंडित एवं जेदज्ञान ते तीक्ष्ण सुजाय ठे, ते सुजायथी अंतरात्मानां जेदन करीने स्वभाव अने विजावने छुदा छुदा करे ने जडरूप तथा चेतनरूपने डफार के० न्यारा करी वतावे एवं जेदज्ञान जेना रुदयनेविषे उपज्युं ठे, तेज जीवने परवस्तुनो संग ते सहारा के० रुचे नही. अने तेज जीव पोताना स्वरूपनो अनुभव करी यथार्थपणे अंतरात्मानेविषे जे परमात्मानी धारा ठे तेने पारखे. ॥ ६९ ॥

हवे जेदविज्ञान जे ठे, ते सम्यक्त ज्ञान ठे, तेनी समर्थाइ थकी स्वरूपनी प्राप्ति थाय ठे; ते कहेठे:- अथ सम्यक्त सामर्थता कथन:-

सर्वथा तेइसा --जो कबहुं यह जीव पदारथ, औसर पाइ मिथ्यात मिटावै; सम्यक धार प्रवाह वहे गुन ज्ञान उदे मुख करध धावै; तो अजिअंतर दर्वित जावित कर्म कि लेश प्रवेश न पावै; आत्म साधि अध्यात्मको पय पूरण व्ह परब्रह्मकहावै ॥ ७० ॥

अर्थ:- जो कोई आ जीव पदार्थ ठे, ते यथाप्रवृत्तिकरणरूप अक्सर पामी ने मिथ्यात्वग्रंथि जेदीने मिथ्यात्वने मिटावे शुद्ध सम्यक अने स्वरूप जलधारा नो प्रवाह वहे अने ज्ञानगुणना उदय वहे उर्ध्व मुख थईने मुक्ति सनमुख दोडे त्यारे अन्यंतर जे इवित कर्म अने जावित कर्म तेना क्लेशनो प्रवेश ते न

थाय. जे प्रकृति प्रदेशरूप कर्म ते इवित कर्म अने राग वेपादिक ते जावित कर्म ए वने प्रवेश नही करी शके, अने अध्यात्मना पथ सेलीमां आवीने आत्माने साधीने पोताना रूपमा पूर्ण थरने परब्रह्म केहेवाय ॥ ७० ॥

हवे संवरनुं कारण सम्यक दृष्टि, तेनो महिमा कहे ठे:—अथ सम्यक दृष्टि महिमा.—

सवेया तेइसा —जेद मिथ्यात सु वेद महारस जेद विज्ञान कला जिन पाई; जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करे उरसो ज पराई, उदतरतीति वसे जिनके घट हो तु निरतर ज्योति सवाई, ते मतिमान सुवर्ण समान लगे तिनकों न गुजागुजकार्ई ७१

अर्थ—मिथ्यातग्रंथि जेदीने तथा उपशमरूप महारस वेदीने जे बुद्धिवते जेद विज्ञाननी कला पामीठे, अने जे ए जेदविज्ञान वडे पोताना स्वरूपनी प्राप्ति करीने पोताना ज्ञान दर्शन चारित्ररूप महिमाने अवधारे, उर के० हैया थकी पराई सोज के० सामग्री तेनो त्याग करे अने जेना घटमा उदतरतीति के० देशविरति तथा सर्व विरतीनी रीत फुरी अने निरतर तप थकी जेनी सवाई ज्योति आय ठे. तेने बुद्धिमान कहिये ते सुवर्णसमान ठे तेमने गुजागुज कर्मरूप काट लागी शकतो नथी ॥ ७१ ॥

हवे संवरनु मूल जेदविज्ञान ठे ते मोहनुं कारण कही समजावेठे:—

अथ जेदज्ञान महिमा कथन —

अडिह्न ठंद—जेदज्ञान संवरनिदान निरदोष है; संवरसो निरजरा अनु क्रम मोप है, जेदज्ञान शिवमूल जगतमहि मानिये, यदपि हेय है तदपि उपाढ्य जानिये ॥ ७२ ॥

अर्थ—जेदज्ञान जेठे ते निरदोष संवरनुं निदान के० मूलकारण ठे अने निर्जे रातुं कारण संवर ठे अने निर्जेराजेठे ते मोहनुं कारण ठे. ए अनुक्रम प्रमाणे मोहनुं कारण परपराथी जेदविज्ञानज ठे. अगर जो शुद्धस्वरूपनी अपेक्षाने लीधे जेदज्ञान त्याग जोगठे तो पण नयोनुं उपाढ्य ते आदरवा जोग्य जानिये ॥ ७२ ॥

हवे स्वरूपनी प्राप्ति थया पठी जेदज्ञाननु हेयपणु देखाडेठे—स्वरूप कथन --, दोहा— जेदज्ञान तबलो जलो, जबलो मुक्ति न होय, परम ज्योति परगट जहा, तहा विकटप न कोय ॥ ७३ ॥

अर्थ.—जेदज्ञान त्यासुधी नजुठे ज्यांसुधी मुक्ति थई नथी जहा परम ज्योति प्रगट थाय त्या विकटप कोई रहे नही तो जेदज्ञान केम करीने रही शके ॥ ७३ ॥

जेदज्ञान मुक्तिनो उपाय ठे ते कहेठे—अथ जेदज्ञानमहिमा कथन —

चोपाई—जेदज्ञान संवर जिन्हि पायो, सो चेतन शिवरूप कहायो, जेदज्ञान जिनके घट नांही, ते जडजीव बंधे घटमांही ॥ ७४ ॥

अर्थ—जे जीवने जेदज्ञानरूप संवरनेी प्राप्ति थई तेज चेतन शिवरूप कहियें जेना ह्यनेविषे जेदज्ञान नथी ते मूर्ख घटपिंमनेविषे बंधायलो रहेते ॥ ७४ ॥ हवे जेदविज्ञानवडे आत्मानो महिमा वधेते ते कहेते—अथ जेदज्ञानकी महात्म्य-

दोहरा—जेदज्ञान साबू जयो, समरस निर्मल नीर, धोबी अंतर आतमा, धोवै नीज गुन चीर. ॥ ७५ ॥

अर्थ -- जेदज्ञान जे ठे ते साबूरूप जाणबुं, अने उपशम रस ते निर्मल पाणी ठे ने अंतर आत्माने धोबी मानवो, ते धोबी पोताना गुणरूपवस्त्रने धुवेते ॥ ७५ ॥ हवे जेदविज्ञाननी जे क्रिया ठे ते कहेते—अथ जेदज्ञानकी कर्तव्यता महात्म्य -

सवैया इकतीसा—जैसे रजसोधा रज सोधिके दरब काढे, पावक कनक काढी दाहृत उपलको, पंकके गरजमे ज्यो मारिये कतक फल, नीर करे उज्वल नितारि मारे मलको, दधिको मथैया मधि काढे जैसे माखनको, राजहंस जैसे दूध पीवे त्यागि जलको; तैसे ज्ञानवत जेदज्ञानकी सकति साधि, वेदे निज संपति उठेदे परदलको. ॥ ७६ ॥

अर्थ—जेम कोई रज सोधा के० जोनारो रजने सोधीने एटले सोना रूपा प्रसु ख इत्यने काढवाने पावक के० अग्निने लगाडेते, ने सोनुं काढीजई पथरा धूल वगेरेने वाली नाखेते. वली जेम कतकफलने पंकना गर्जनेविषे नाखीये तो ते फल जलने मेलथी जूड़ करेते, वली जेम दधीनुं मथनहार दधीनुं मथन करी माखणने जूड़ करेते ने राजहंस पाणी दूध जेगा होय तेमांथी मात्र दूध पीई जायते पाणीने जूड़ करेते—तेम ज्ञानवत प्राणी जेदविज्ञाननी शक्ति साधीने पो तानी ज्ञानसंपत्तिने वेदे अने परदल के० पुजलनुं कटक जे राग देपादिक तेने कापी नाखेते ॥ ७६ ॥

अथ जेदज्ञान मोक्षमूल यहु कथन -

उप्यय उंद.--प्रगट जेद विज्ञान, आपगुण परगुणजानै; परपरिनति परि त्या गि, शुद्ध अनुभव यिति गानै, करि अनुभव अन्यास, सहज संवर परगालै, आश्रव द्वार निरोद्ध, कर्म घनतिभिर विनासै, उय करिविज्ञाव समजाव जजि, निरविकल्पनिज पद गहै, निर्मल विशुद्ध सासुत सुधिर, परम अतिद्विय सुख लहै ७७

अर्थ - जेद ज्ञान जे ठे ते प्रगटपणे पोताना तेम पारका गुणने जाणोळे, ते थो परवस्तुमा जे परिनमन ठे तेतुं ज्ञान करे, पोताना शुद्ध अनुभवनो उराव राखे, ने ते अनुभवनो अन्यास करीने सहज संकरना रूपनो प्रकाश करे, व्याश्रव दारनो विरोध करीने कर्मरूप मेघ अथकारनो नाश करे, अने विजाव के० मोह दशानो ह्य करीने समजाव के० समाधिने जजे, तेणे करीने जहा काई विकटप नथी एवु पोतातुं निर्विकल्प पद तेने पामे एटले जे सुखनेविपे मज नथी ए उपरथी ते विद्युद्ध अनत कालसुधी एकरूप तेथी शाश्वत स्थिर एवु अतींद्रिय के० इन्द्रियगोचर नही एवु सुख पामे ॥ ७४ ॥

इति श्री नाटक समयसारको बाजाबोधरूप संवर दार ठगो संपूर्ण

दोहा -- बरनी संवरकी दसा, जथा जुगति परमान ; मुक्ति वितरनी निर्जरा सुनहु जविक धरि कान ॥ ७८ ॥

अर्थ - संवररूपनी दशा कही ते युक्ति तथा प्रमाणे करी कहीळे, हवे मुक्ति नी वितरणी के० आपनारी एवी जे निर्जरा ठे तेनु वर्णन करुळुं - ते अहो जय्य लोको तमे कान दर्शने शान्तो. ॥ ७८ ॥

हवे निर्जरानुं केतुं स्वरूप ठे ते कहेळे - अथ निर्जरास्वरूप कथन -

चौपाई - जो संवर पद पाइ अनदे, जो पूरव कृत कर्म निकडे, जो अफद वहे बहुरि न फदे, सो निरजरा बनारसि बंदे ॥ ७९ ॥

अर्थ - पोतातुं जे शुद्ध स्वरूप राखवु तेनु नाम संवर कहिये, तेतुं पद पामीने संवर आनद करे, अने पूर्व कालनेविपे जे कर्म कीयाळे, तेने जडथी उखेडी नाखे, अने जे पूर्व कर्मना फद तेथकी बूटीने पाळुं ते फदमा सपमाय नही तेतुं नाम आत्मानी निर्जरा कहिये ते निर्जराने बनारसीदास वदन करेळे ॥ ७९ ॥

निर्जरानुं कारण सम्यक्त ठे माटे सम्यक्तनो महिमा वखाणे ठे.--

अथ सम्यक्त महिमा कथन -

दोहा -- महिमा सम्यक् ज्ञानकी, अरु विराग बल जोई, क्रिया करत फल जुंजते, करमबंध नहि होई ॥ ८० ॥

अर्थ -- जे कर्म बूटे तेतुं फरीने बंधन थई शके, नही ए सम्यक् ज्ञाननो महिमा ठे. वली ए सम्यक्ज्ञान साथे वैराग बलनो जोग ठे, तेथी शुजाशुंज क्रिया करता थका ने तेतुं फल जोगता थका शूखला बंधनवा कर्मनो बंध थतो नथी. ॥ ८० ॥

हवे सम्यक्कनी महिमामां क्रिया करतांज कर्मनी निर्जरा थाय ठे ते दृष्टांते कहेठे:-

सवैया शकतीसा.—जैसे नूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म, कौतुकी कहावै तासो कौन कहै रक है, जैसे विज्ञचारिनी विचारै विज्ञिचार वाको, जारहीसो प्रेम जर तासो चित्त वक है, जैसे धाड् बालक चुघाड् करै लालि पालि, जानै तांदि औरको जदपि वाके अंक है, तैसे ज्ञानवत नानाजाति करतूति वानै, किरियाको जिन्न मानै यातें निकलक है ॥ ७१ ॥

पुनः—जैसे निशिवासर कमल रहै पंकहिमें, पंकज कहावै पै न याके ढिग पंक है, जैसे मंत्रवादी विपधरसों गहावै गात, मंत्रकी सकति वाके विना विपमंक है, जैसे जी न गहै चिकनाड् रहै रूख अंग, पानीमे कनक जैसे कांसो अटक है, तैसे ज्ञान वंत नानाजाति करतूति वानै, किरियाकों जिन्न मानै याते निकलक है ॥ ७२ ॥

अर्थ — जेम कोई नूप के० राजा होय ने ते पोताना कौतुके करीने गमे तेतुं नीच कर्म करे ते क्रिया करवाने लीथे ते कौतुकी केहेवाय पण कोई ते रा जानै रक नही कहे; जेम कोई कुलटा व्यञ्जिचारिणी स्त्री होय ते यद्यपि पोताना धणीनी साथे रहे खरी, तोपण धणीनी साथे तेतुं चित्त लुब्ध होतु नथी, चित्तने विपे तो व्यञ्जिचारनोज विचार थाय, के जो वखत मले तो नीकली जाठं ने यारने मजुं, जेम कोई धाव होय ने ते पारका बालकने धवरावे, अने रमाडे लाल न पालन करे, अने अंक के० पोताना खोलामां लईने वेसे यद्यपि एवी क्रिया तो करे खरी, पण मनमां एम जाणेठे के आ बालक पारकुं ठे, तेवीज रीते जे स म्यक् ज्ञानी ठे ते नाना प्रकारनी गुजागुन क्रिया, राजा श्रेणिक तथा जरत चक्र वर्त्ति अने बीजा साधुनी माफक करे ठे, पण ए क्रियाने पुज्जल रूप जाणेठे, पो ताना स्वरूपथी जिन्न मानेठे एथी बंधनतुं कलंक लागतु नथी ॥ ७१ ॥

एज उपर बीजा दृष्टांत कहेठे के, जेम कमल ठे ते रात्र दिवस पक के० क र्दमनेविपे रहे ठे तेथकीज उत्पन थयुंठे, तेथी पंकज केवाय ठे, तोपण कमलने पंकनो स्पर्शी नथी होतो. जेम कोई गारुडी मंत्रवादी होय ते पोता ना गात के० शरीरने सर्प पासे पकडावे करडावे पण ते मंत्रवादीना मंत्रनी श क्तिवडे सर्पनी मंख विपसंजोगरहित होयठे, जेम जिब्हा इंडिय धी वही प्रसु खनी चीकणई ग्रहण करेठे, पण पोताना अंगने ते चिकाशनो लेश रेवा देती नथी, किंतु नूखीज रहेठे. जेम सोतुं पाणीनेविपे रेहेता थका काटवातुं थतु नथी,

तेवी रीते ज्ञानवत प्राणी नाना प्रकारनी क्रिया करेते, पण क्रियाने पुज्जल संयोग वाली जाणी आत्मस्वरूपथी निन्न माने ते तेथीज कर्म बंध कलंकथी छुदो रहेते ८३ हवे विषय नोगवता थका कर्म बंध न थाय एवी ज्ञानवैराग्यनी शक्ति बतावे ते - अथ ज्ञान वैराग्य शक्ति वर्णन -

सोरगः- पूर्व उदय संबंध, विषय नोगवै समकिति; करै न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ८३ ॥

अर्थ - पूर्व संचित कर्म उदय आव्याथी तेना संबंधे सम्यक्ती जीव विषय नोग जो गवे ते, पण नवां कर्मबंध करतो नथी, ए सम्यक् ज्ञान तथा वैरागनी शक्ति ते ८३ हवे जे ज्ञाता होय ते ते सम्यक् ज्ञान अने विषयनी अरुची ए बेठने साधेते ते कहेते - अथ ज्ञाताकी व्यवस्था कथन -

सवैया तेइसा - सम्यक्वत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उजे गुन धारै, जा सु प्रनाव लखै निज लज्जन, जीव अजीव दशा निरवारै, आत्मको अनुजो करि व्है धिर, आपु तरै अरु औरनि तारै, साधि सुदर्व जहै शिवसर्म सुकर्म उपाधि व्यथा वमिमारै. ॥ ८४ ॥

अर्थ - जे समकिति होय ते सदा पोताना अंत करणनेविषे ज्ञान अने वैराग्य ए वे गुणने धारे जे गुणना प्रजावबडे पोतानुं ज्ञातापणुं लक्षण जोईने जीव अजीव दशा एटले जीव अजीवनुं स्वरूप निरवारै के० छुडं छुडं जाणे, ते पठी आत्मने यथार्थपणे वेदीने आत्मिक स्वभावमा स्थिरता थई रहेते, ते पोते पण तरे अने सत्यउपदेश आपी बीजाने पण तारेते, ए रीते पोताना आत्मइव्यने साधी ने मोहसुंखने पामे, अने कर्मउपाधि सहित जे व्यथा तेनुं वमन करेते ॥ ८४ ॥

हवे विषयनी अरुचिविना ज्ञाननुं बल निष्फल ते, अने एवा ज्ञानीने एकांत पढनेविषे रहेवाथी मिथ्या दृष्टि ठेरावे ते - अथ मिथ्यादृष्टि व्यवस्था कथन -

सवैया तेइसा -- जो नर सम्यक्वत कहावत, सम्यक् ज्ञान कला नहि जागी, आत्मअंग अबंध विचारत, धारत संग कहै हम त्यागी, जेप धरै मुनिराज पटं तर, मोह महानल अंतर दागी, सून्य हिये करतूति करै परि, सो सठ जीव न होइ विरागी ॥ ८५ ॥

अर्थ - जे मनुष्य पोते सम्यक्वत केहेवाय अने सम्यक् ज्ञाननी कला न जागी, एटले सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति न थई तेथी आत्मना अंगविषे बंधविचारे नही, आत्मा अबंध ते एम माने, ने तेथी ते अन्यंतर संयोग धारे ते बली कोई नि

श्रय नयनो पद्म लईने पोते त्यागी ठे एम कहे, मुनिराजनी पठे पटंतर के० जेप धरे, पण अंतरनेविषे मोहमहानल के० मोहरूप अग्नि शलगी रही होय, विषय थकी वैरागी न थयो, तेथी हिया सून्य थको मुनिराजनी पठे क्रिया करे, पण ते जीव मूर्खज केहेवायठे पण वैरागी कहेवाय नही ॥ ५५ ॥

हवे जे सर्व क्रिया करता थका पण मूढ केवायठे ते कहे ठे.-

अथ मूढ क्रिया वर्णन.-

सवैया तेइसा:- ग्रंथ रचै चरचै शुन पंथ लखै जगमें व्यवहार सुपत्ता, सा धि संतोप आराधि निरंजन, देइ सुसीख न लेइ अदत्ता, नंग धरंग फिरै तजि संग ठके सरवग सुधारस मत्ता; ए करतूति करै सठ पै समुजैन अनातम आतम सत्ता ॥ ५६ ॥ ध्यान धरै करि इडिय निग्रह, विग्रहसों न गिनै निज नत्ता; त्यागि विचूति विचूति मिटै तन जोग गहै नवजोग विरत्ता, मौन रहै लहि मंद कपाय सहै वध बंधन होइ नत्ता, ए करतूति करै सठ पै समुजैन अनातम आतम सत्ता ॥ ५७ ॥

अर्थ.- ग्रंथ रचना करे, जला मार्गनी चरचा करे, जला मार्गने लखे, जगतमा व्यवहार मार्गमां प्राप्तिथको रहे, संतोपी थईने निरजनने आराधे, लोकोने सारी शीखामण आपे, अदत्तदान ले नही, परिग्रह संग त्यागीने नंग धरंग फिरे के० दिगंबर थई फरे, अने मुधा के० मुग्धपणे पोताना रसमा मातो थको सर्वांगे ठक्यो रहे, एवी एवी क्रिया मूर्ख होय ते करेठे पण अनातम सत्ता के० आत्माथी पृथक जे मोहनी गहलता ठे तेने, अने आत्मसत्ता के० शुद्ध जाणपणानी जे सत्ता ठे, तेने जुदी जुदी जाणे नही तेमने मूर्ख केहेवा ॥ ५६ ॥

वली मूढनी क्रिया केहेठे के, ध्यान धरे, इडिय दमन करे, विग्रह करेठे ते शरीरनी साथे पोताना आत्मानो संबंध गणे नही. विचूति के० संपत्तिनो त्याग करी विचूति के० नरम शरीर उपर लगाडे, योग मार्ग ग्रहे, अने संसारना जोगथी विरक्त रहे, मौनपणे रहे, कपायतुं मंदपणं समजे, वध बंधन सहेतो थको पण तातो नही थाय, क्रोधादिक न करे, एवी क्रिया सठ मूढ होय ते करे ठे, पण अनातम सत्ता एटले कर्मादिक प्रजावनी सत्ता अने आत्मसत्ता एटले आत्मानुं सख्य स्वरूप तेने समजे नही माटे तेने मूर्ख समजवो. ॥ ५७ ॥

हवे फरी मूढपणानुं स्वरूप बतावेठे - पुनः मूढ वर्णन:-

चाँपाई.- जो विनुज्ञान क्रिया अवगाहै, जो विनु क्रिया मोख पद चाहै, जो विनु मोख कहै में सुखिया, सो अज्ञान मूढनिमें सुखिया ॥ ५८ ॥

अर्थ -- जे जन ज्ञानविना क्रिया अथवा हे अने क्रियाविना मोहू पद वाढे, वली जे मोहू पाभ्या शिवाय कहे के हुं सुखी हुं, तेने अजाण मूर्खनो शिरोमणी जाणवो. ॥ ८८ ॥

हवे जेने कर्मसत्ता तथा आत्मसत्तानी निन्नता जातती नथी तेने महामूढ कहिये तेतुं विवेचन करेते. -- अथ महामूढ व्यवस्थाकथन. --

सवैया श्कतीसा -- जगवासी जीवनिंसां गुरु उपदेश कहै, तुम्हे इहा सोवत अनंत काल बीते है, जागो व्है सुचेत चित समता समेत सुनो, केवल वचन जामे अह्वर सजीते है, आउ मेरे निकट बताउं में तुम्हारे गुन, परम सुरस नरे करमसो रीते है; ऐसे बैन कहै गुरु तउ ते न धरे उर, मित्रकेसे पुत्र किधों चित्रकेसे चीते है ॥ ८९ ॥

अर्थ -- सर्व जगवासी जीवना हित वाढवने अर्थे गुरु एवो उपदेश करेते के, अहो जव्य प्राणी जीव तमे आ जगतमां मोहनिदानेविपे सूता रह्या थकाज अ नादि अनतकाल तमोने वीख्यो ठे, माटे हवे तो चित्तमां सचेत अर्थेने जागो, अ ने समता सहित थका केवलीना वचन सांजलो, जे केवलीना वचनमा अह्वर रस के० इंद्रियना विषय रस तेने जीतेजा ठे, अने तमे मारी पासे आवो तो तमारा गुण बतावु; ते गुण केवा ठे, परम एटले उल्कष्ट सुरसे करी नरेला ठे, अने कर्मथकी रीते के० न्यारा ठे, एवा वचन गुरु कहेते ते जे प्राणी हैयामा धर ता नथी ते मित्रना पुत्र जेवाठे, केमके मित्रना पुत्रवडे पोतातुं घर उधाहु रेतु नथी अने तेने शीखामण शी देवी। अने चित्रामण जेवा ठे कारण के चित्रामण थकी काई सत्य क्रिया थती नथी ॥ ८९ ॥

दोहा -- एते पर बहुरो सुगुरु, बोलै वचन रसाल, तेन दशा जागृत दशा, कहै डहुंकी चाल ॥ ९० ॥

अर्थ -- ए प्रमाणे सज्जु ठे ते फरी. सरस वचन बोले ठे, के जीवने एक सय नदशा ने बीजी जागृतदशा एवी वे दशा ठे तेनी चाल सांजलो ॥ ९० ॥

हवे सैन दशानुं वर्णन करेते. -- अथ शयन दशा वर्णन --

सवैया श्कतीसा. -- काया चित्र सारीमे करम परजक नारी, मायाकी सेंवारी से ज चादर कलपना, सैन करै चेतन अचेतनता नाद लिए, मोहकी मरोर यहै लो चनको ढपना, उदै बलजोर यहै श्वासको सबद धोर, विपे सुख कारजकी दोर यहै सुपना, ऐसी मूढ दसामे मगन रहै तिहू काल, धावै भ्रमजालमे न पावै रूप अचना.

अर्थ:- कायारूप चित्र साली ठे, तेमां कर्मरूप पर्यंक ठे, तेउपर मायानी सेज संवारी ठे, कल्पना के० मननी विकल्पनारूप चादर ठे, अचेतनानी कंध ल ईने एवी सामग्रीमां चेतन शयन करी रह्यो ठे, मोहनी मरोम तेणे करीने लोचन ढंकाया ठे, उदय बल जोर जे ठे, ते श्वासनो घोर शब्द ठे, अने विषय सुख कार्य नी दोड एटले करणी करची ते स्वप्नावस्था ठे, अने एतुंज नाम मूढदशा तथा श यन दशा कहिये. अने ए दशानेविषे जे मूढ जन होय, ते त्रणे काल मगन थको धावे ठे, एटले त्रमजालमां दोडेठे, पण पोतानुं रूप पामतो नथी. ॥ ९१ ॥

हवे जीवनी जागृतदशानुं वर्णन करेठे.-अथ जागृतदशा वर्णन:-

सवैया इकतीसा.-चित्र सारी न्यारी परजंक न्यारो सेज न्यारी, चादर नी न्या री इहां फूठी मेरी थपना, अतीत अवस्था सैन निडा वही कोठ पैन विद्यमान पलक न यामें अब ठपना; श्वास औ सुपन दोउ निडाकी अलंग बूजे, स्रुजे सब अंग लखि आतम दरपना, त्यागी नयो चेतन अचेतनता जाव त्यागी, जाले दृष्टि खोलिके संजाले रूप थपना. ॥ ९२ ॥

अर्थ:-आत्मज्ञान पान्याथकी कायारूप चित्रसारी जुदी जुए, अने कर्मरूप पलं गने पण न्यारो देखे; मायारूप सेज पण जुदी जुए, कल्पनारूप चादरने न्यारी जुए, मतलबके ए ठेकाणे मारी स्थापना फूठी ठे एम समजे. अतीत अवस्थानेवि षे एटले सयनदशांमां निडा लेनार पण कोई बीजा रूपे हुंजहुं, विद्यमान कालमां ते अवस्था नथी, हवे पलकमात्र पण आ अवस्थामां मारो अजाव थनार नथी. श्वास अने स्वप्न ए वे निडानी अलंगनासंयोगे बूजे, अने आत्मारूप आरिनामां आत्मानुंज सर्व अंग सूजे एवी रीते अचेतनतारूप निडानो त्याग करीने चेतन त्या गी थयो त्यारे पोतानी दृष्टि खोलीने जुए, अने पोतानुं रूप संजाले. ॥ ९३ ॥

वली सदगुरु शिद्धानां वचन कहेठे.-अथ पुन सदगुरु शिद्दा कथन:-

दोहा.-इहि विधि जे जागै पुरुष, ते शिवरूप सदीव; जे सोवहि संसारमें, ते जगवासी जीव ॥ ९३ ॥

अर्थ -ए रीते जे पुरुष जागे ठे, तेतो सर्व कालनेविषे शिवरूप के० मोक्षरूप जाणवा. अने जेटला संसारनेविषे सूता ठे, तेटला तो जगतवासी जीव समजवा. ॥ ९३ ॥

हवे मोक्षपद उपादेयरूप कहीने स्तुति करेठे.-अथ आत्मइव्य स्तुतिकथन.

दोहा -जो पद नोपद नय हरै, सोपद सोउ अनूप, जिहि पद परसत औ र पद, जगै आपदारूप ॥ ९४ ॥

अथ—जे पद के० जे स्थानक जवस्थानकनो जय हरे. ठे, तेनेज पद कहे
वुं, तथा अनूप स्थानक केहेवुं, अने जे पदनो स्पर्श अतांज अन्य पद जे कर्म प
द ठे, ते आपदारूप लागे. ठे ॥ ९४ ॥

हवे जब जे संसार पद तेनो जय बतावे ठे.—अथ संसार वर्ननं.—

सवैया इकतीसा—जब जीव सोवै तब समुजे सुपन सत्य, वहि फूठ लागे
जब जागे नीद खोश्के, जागे कहै यह मेरो तन यह मेरी सोज ताहु फूठ
मानत मरणथिति जोश्के, जाने निज मरम मरन तब सूफै फूठ, वूफै जब
और अवताररूप होश्के, वाहु अवतारकी दशामें फिरि यहै पेच, याहि
नांति फूठो जग देख्यो हम दोश्के ॥ ९५ ॥

अर्थ—ज्यारे जीव सयन दशामां सूतो होय ठे, ल्यारे स्वप्नने सत्य करी माने
ठे. अने तेज स्वप्न रूपने ज्यारे निद्रा मूकी जागीने छुए ठे, ल्यारे फूठूं जाणेठे,
जागीने कहे के आ मारु शरीर तो आई ठे, आ सोज के० सामग्री सर्व मारी ठे; ने
ज्यारे पोतानी मर्ण स्थितिनो विचार करे ठे, ल्यारे तो वर्त्तमान शरीर तथा साम
ग्री सर्वने फूठी माने ठे, अने ज्यारे पोताना मर्मनी वात जाणे एटले पोताना स्व
रूपनी वातने जाणे, ल्यारे तो मरणने पण फूठूं जाणे, एमज वली बीजो अवता
र ले ल्यारे बीजा रूपे थईने बीजी वात जाणे, फरी तेज अवतारमा सूता जागा
फूवा साचानुं पेच आगलीज रीते लागो रहे ए रीते वारे वारे अवतार खेवा ने
वली सामग्रीने पोतानी समजवीने वली मरतु, ए रीते सर्व संसारने ढोई के० दे
खीने अमे सर्व संसारने फूगोज जाण्यो ॥ ९५ ॥

हवे ज्ञाता केवी क्रिया करे ते समजावे ठे—अथ ज्ञाताकी क्रिया कथनं—

सवैया इकतीसा—पमित विवेक लहि एकताकी टेक गहि उंदज अवस्थाकी
अनेकता हरतु है, मति श्रुत अविधि इत्यादि विकल्प मेटी, निरविकल्प ज्ञान म
नमें धरतु है, इन्द्रियजनित सुख ड खसों विमुख व्हेके, परमको रूप व्हे करम
निर्जरतु है, सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि, आतम आराधि परमा
तम करतु है ॥ ९६ ॥

अर्थ—जे पमित जन होय ते विवेकनो चेद एटले विज्ञान लहीने पोतानी एक
तानी टेक राखीने प्रथमनी व्द अवस्था जे भ्रम अवस्थामां अनेकता हती तेने ह
रे ठे अने मति श्रुति अविधि इत्यादि ज्ञानस्वरूपना विकल्पने मटाडीने नि
र्विकल्प ज्ञान जे केवल ज्ञान तेने मनमां धरेठे. अने इन्द्रियजनित जे सुख ड

ख तेथी विमुख थई परमात्मरूप थईने कर्मनी निर्जरा करे ठे, एटले निर्जरा थायठे तेथी पोतानी सहज समाधिसाधिने पर जे कर्मपुञ्जादिकनी उपाधि जे राग वैषादिक, तेनो त्याग करीने आत्माने आराधी परमात्मा पणु करेठे ॥६६॥
हवे जे ज्ञान समुद्र परमात्मानी प्राप्ति थाय ठे, ते ज्ञाननी प्रशंसा करेठे:-

अथ ज्ञान समुद्रवर्णनं.-

सवैया इकतीसा:- जाके उरअंतर निरंतर अनंत दुर्व, जाव जासि रहे पें सुजाव न टरतु है, निर्मलसौं निर्मल सु जीवन प्रगट जाके, घटमें अघट रस कौतुक करतु है, जानै मति श्रुत आधि मनपयै केवल सु, पंचधा तरगनि उमंग उठरतु है; सो है ज्ञानउदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरतु है ॥ ६७ ॥

अर्थ - जे ज्ञान सागरना मध्यजागनेविषे निरंतर अनंत इव्य पदार्थ जासी रह्या ठे, पण ते इव्यनो स्वजाव पोते पामतो नथी, निर्मलमां निर्मल एवुं सुजीवन के० जीवितव्य अने समुद्र, पद्वे सुजीवन के० पाणी ते, जेतुं प्रगटठे, अने घटमें के० हृदयनेविषे अघट के० अक्षररस कौतुक के० सत्यार्थ वेदनतुं जे रस तेनुज कुतोहल करे ठे, एटले ए समुद्रनेविषे रस कुतोहल घणा ठे, अने जे ज्ञान समुद्रनेविषे मतिज्ञान श्रुतज्ञान अथविज्ञान मनपर्यवज्ञान ने केवल ज्ञान ए पांचे ज्ञान तरगरूप ठे, उमंग-के० पोतपोताने ठेकाणे प्रगट थई रह्यां ठे एवो ज्ञानसमुद्र ते उदार प्रधान ठे, एनो अपार महिमा ठे, एनेविषे सर्व पदार्थ जासे ठे तेथी पोते निराधार अने एक स्वरूप ठता ज्ञातापणामां अनेकता धरे ॥६७॥

हवे ज्ञानविना मात्र क्रियावडेज मोहनी प्राप्ति नथी तेनुं वर्णन करेठे:-

अथ मोहमार्ग अप्राप्ति कथनं.-

सवैया इकतीसा:- केई क्रूर कष्ट सहै तपसों शरीर दहै, धूम्रपान करै अधो मुख व्हैके फूले है, केई महा व्रत गहै क्रियामे मगन रहै, वहै मुनि चारमें पयारकेसे पूले है; इत्यादिक जीवनको सर्वैया सुगति नाहि, फिरे जगमांहि ज्यों वयारके बधु लेहै, जिनके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरबान, करमके करतार जरममें चूले है ॥६८॥

अर्थ:- कोई अज्ञानी क्रूर कष्ट सहन करेठे अने पंचाग्नि प्रमुख तप करीने शरीरने बालेठे, कसके अज्ञानी अग्निना धुमाडातुं पान करेठे, नीचुं मुख राखी वंचा पग करीने फूलेठे. केटला अज्ञानी जैन लिंग लईने पांच महाव्रत इव्यथी ग्रहण करेठे, अने क्रियामां मग्न रहेठे, एरीतें मुनिराज पणानो चार वहेठे, पण ते पयारना जेवा पूलेठे, वैश जापाये पयार एटले पलाल, जेना फूलनेविषे कण

होता नहीं तेवी रीते निराश जाणवा, इत्यादि केवल क्रिया कलापवडे जीवने सर्वथा मुक्ति यती नहीं, ते जगतनेविपे वयारना बधूल जेम उंचा नीचा फरी रहे ठे, पण एक ठेकाणे उरता नहीं, तेवा समजवा, अने जेना हृदयनेविपे ज्ञान कला जागृतरूप थईठे, तेमने निरवाण के० मोहू ठे, अने जे कर्मना करतार एट जे केवल क्रियानाज करनारा ठे तेतो नर्मनेविपेज नूली रह्याठे ॥ ९७ ॥

हवे जे मूढ जन ठे तेनी दृष्टि निश्चयमां नहीं, पण व्यवहारने विपे ठे, तेथी तेनेविपे अज्ञान ठे ते कहेठे - अथ मूढ व्यवस्था वर्णनं --

दोहा.—जीन जयो विवहारमें, उकति न उपजे कोइ, दीन जयो प्रभु पद जपै,
मुकति कहासो होइ ॥ ९९ ॥

अर्थ -- जे व्यवहारमा लीन थई रह्यो होय एटजे मगन थई रह्यो होय, तेने कोई उकति के तत्वदृष्टि उपजे नहीं, अने पोते अनाथ थईने पोताना नाथना पदने जजे, ए रीते पोतानु निश्चयरूप जाणवाविना मुक्ति क्याथी थाय ॥ ९९ ॥

दोहा — प्रभु समरो पूजो पढो, करो विविध विवहार, मोहू सरूपी आत्मा,
ज्ञानगम्य निरधार ॥ १०० ॥

अर्थ:-- प्रभुने समरो, जावे पूजो, ने जावसहित पढो इत्यादि व्यवहार करो पण मोहू स्वरूपी आत्माठे तेतो निरधार के० निश्चय ज्ञान गम्य ठे ॥ १०० ॥

हवे निश्चय स्वरूपनेविपे ज्ञान पर्याय रूपी अर्थतुं निरूपण करेठे -
अथ पर्यायार्थ निरूपण -

सवैया तेईसा — काज विना न करे जिय उद्यम, लाज विना रनमांहि न कुं
जे, मीलविना न सधे परमारथ, सीलविना संतसो न अरुके, नेम विना न लहे
निहचे पद, प्रेमविना रत रीति न बूजे, ध्यानविना न थजे मनकी गति, ज्ञान
विना शिवपंथ न सूजे ॥ १ ॥

अर्थ - अही अर्थीतर बतावेठे के, जेम जीव पोताना काम विना उद्यम क रतो नहीं. जेम लाज विना रणसंग्रामने विपे फूजतो नहीं बली जेम देह थ खाविना परमार्थ यतो नहीं, अने शील धारण कीधाविना सत्व साथे मजातु न थी बली नियम धखा शिवाय निश्चय पद मजातु नहीं, अने जेम प्रेमनी प्रीत विना रसरीत जणाती नहीं, तथा ध्यानविना मननी गति थोजाती नहीं, तेम ज्ञानविना शिवपंथ के० मुक्तिमार्ग ते सूजतो नहीं ॥ १ ॥

हवे ज्ञानवतनो महिमा देखामीने तेनी व्यवस्था कहेते:-

अथ ज्ञानमहिमा धारक व्यवस्था कथनं -

सवैया तेईसा:- ज्ञान उदै जिनके घट अंतर, ज्योति जगी मति होति न मै ली, बाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आत्मम ध्यान कला विधि फैली; जे जड चेतन निन्न लखै सु विवेक जिये परखै गुन थैली; ते जगमें परमारथ जानि गहै रुचि मानि अथ्यात्म सैली ॥ १ ॥

अर्थ:- जेना हृदयनेविपे ज्ञाननो उदय थवाथी पोतानी ज्योति जागृत थई ने तेथी मति जे बुद्धि ते उज्वल थई पण मेलीनथी, अने पोताना बाह्य शरीरने आत्मा करी माने एवी बाह्य दृष्टी ते मटी गई, अने हृदयनेविपे आत्मध्याननी कला तेनी विधि जे यमनियमादिक ते विधि फेली एटले पसररी, ते वखतथी जड चेतनने निन्न निन्न लखे, अने पोतानो विवेक के० जेदविज्ञान तेपोकरी पोताना गुणनी थेली पारखी लीथी एवा जे जीव तेज जगतमां परमार्थने जाणी तेने रुचिये करी ग्रहण करे, एरीते अथ्यात्मसैली मान्य करीने परमार्थने जाणो. ॥ १ ॥

हवे मोहनी सुगम प्राप्ति देखाडेते:- अथ मोहप्राप्ति कथन:-

दोहा.- बहु विधि क्रिया कलेससां, शिवपद लहै न कोइ, ज्ञान कला परकाश सां, सहज मोह पद होइ ॥ ३ ॥ ज्ञान कला घट घट वसे, योग युगतिके पार, निज निज कला उद्योत करि, मुक्त होइ संसार. ॥ ४ ॥

अर्थ -- जात जातनी क्रियाने निमित्ते क्लेश करवो, तेथी मोहपद मले नही. पण ज्ञानकलानो प्रकाश थवाथी सेहेज मोहपद प्राप्त थायते ॥३॥ ज्ञानकला तो घट घटनेविपे वसी रहेली ठे, पण मन वचन अने कायाना योगनी युक्तिथी पार रहे ली ठे, माटे पोत पोतानी कलाने प्रकाश करवाथी संसारथी मुक्त थवाय ठे, एवो सर्वने सजुरुनी आशीर्वाद ठे ॥ ४ ॥

हवे मुक्तपणुं अनुभव थकी थायते माटे अनुभवनी प्रशंसा करेते --

अथ अनुभव प्रशंसा:-

कुंमलियातंद -अनुभव चितामनिरतन, जाके हिय परगास, सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गतिवास; दहै चतुर्गतिवास, आस धरि क्रिया न मने, नूतन बंध निरोध, पूर्वकृत कर्म विहंभे; ताके न गनु विकार, न गनु बहु जार न गनु चौ, जाके हिरवेमाहि, रतनचितामनि अनुजौ ॥ ५ ॥

अर्थ -अनुभवरूपी चितामणिरत्न जेना हृदयनेविपे प्रकाशमान थई रह्योते

त जाव पुनात क० पावत्र अइन शिवपदन पामठ, न चतुगातना ज वास तन द
हून करेठे, एटले देवगति, मनुष्यगति, तिर्यचगति ने नरकगति ए चारे गतिना वास
ने वाली नाखेठे अनुनवी जननी रीत एठे के ते आशा धरीने क्रिया मांमे नही.
नूतन बंध के० नवा कर्मना बंधने निरोधीने संवर धारण करे, तथा पूर्वकृत कर्म
ने विहंमी नाखीने तेनी निर्जरा करेठे, तेना विकारने अहो नव्य जीव तु गणीस
नही, अने तेना अतिजारने तु गणीस नही, अने तेना जयने पण गणीस नही,
जेना हृदयमां अनुनवरूपी चित्तामणीरत्न प्रकाशी रह्येठे ॥ ५ ॥

हवे अनुनवीनी ज्ञानदृष्टीनु सामर्थ्य वखापोठे— अथ ज्ञानदृष्टि सामर्थ्य कथनं—
सवैया इकतीसा—जिनके हियेमें सत्य सूरज उद्योत जयो, फेलि मति किरन
मिथ्यात तम नष्ट है, जिनकी सुदृष्टिमे न परचै विषमतासों समतासों प्रीति मम
तासों लष्ट पुष्ट है, जिन्हके कटाठमे सहज मोप पथ सधै, साधन निरोध जाके
तनको न कष्ट है, तिन्हिको करमकी किलोल यह है समाधि, मोले यह जोगा
सन बोले यह मष्ट है ॥ ६ ॥

अर्थ—जेना हियानेविषे सत्य सूर्यनो उद्योत अई इह्योठे, अने सत्य सूर्यना
मतिरूप किरण फेली रह्याठे, तेथी मिथ्यात रूप अंधकार ते ज्ञाश पाम्यो वली
जे जीवनी सुदृष्टिमा विषमतानो परिचय नथी, एटले समतासाथे प्रीति बंधाणी
ठे, ने ममतासाथे तथा मोहसाथे लष्ट पुष्ट के० चित्तविनानी प्रीति राखेठे, ने जे
ना कटाठनेविषे एटले थोडा विलोकनमा सहज स्वजावे मोहमार्ग सिद्ध थायठे
साधन के० मनोयोगादिक त्रण योगनो निरोध एटले निग्रह कखोठे अने जेना शरीरने
कष्ट नथी, एवा ज्ञानधारीने जे कर्म लहेर आवेठे तेने गणतीमां समाधी जा
वज जापोठे जो कदी गती कर्मना उदयवमे मोलेठे तोपण ते जोगासन धारीठे
अने जो बोलेठे तोपण मष्ट के० मौनव्रतिठे ॥ ६ ॥

हवे ज्ञानीने परवस्तुनो त्याग कह्यो अने विशेषपणे तेनोज त्याग वखापोठे—
अथ परवस्तुको त्याग ताको विशेष वर्ननं—

सवैया इकतीसा—आतम सुजाय परजायकी न सुधि ताकों, जाको मन
गमन परिग्रहमें रह्यो है, ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इ
हाजो समुच्चैरूप कह्यो है; अथ निज परे त्रम दूरि करिवेके काछु बहुरो सुण
रु उपदेशको उमह्यो है, परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम
उदीरि लह लह्यो है ॥ ७ ॥

अर्थः--जेतुं मन परिग्रहनेविषे मगन थई रह्युं ठे, ते जीवने पोताना तथा पारका स्वभावनी शुद्धता थती नथी परिग्रहने राग तेतो अविवेकतुं निधानं क ह्युं ठे, जे परिग्रहना रागनेविषे पोताना ने पारका स्वभावनी शुद्धता नथी, ते परिग्रह रागने त्याग, अहीसुधी सामान्य मात्र कह्यो हवे निजस्वरूपनो भ्रमने पर स्वरूपनो भ्रम तेने दूर करवाना कार्यने घणा प्रकारें सदगुरु उपदेश करवाने उ चंगवत थया ठे. हवे इहां परिग्रह तथा ते परिग्रहतुं विशेष अग केहेवाने सद गुरु जे ठे ते उद्यम उदीरणा करीने लह लह्यो के० सचेत थया ठे ॥ ७ ॥

हवे सामान्यरूप परिग्रहने राग अने विशेषरूप परिग्रहने राग तेनो विवरो कहे ठे.--अथ सामान्यविशेष कथनं:-

दोहा--त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार; विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार ॥ ७ ॥

अर्थः--जेटली परवस्तु ठे तेटली वधी त्याग जोग ठे. एतो सामान्यपणे परिग्रहना त्यागनो विचार जाणीये; अने ते परवस्तु जात जातनी ठे, अने तेना उपर विचार पण जातजातनो ठे एने विशेषपणे परिग्रह त्यागनो विस्तार जाणवो. ७ हवे परिग्रह ठतां ज्ञातानी परिग्रह उपर अलिप्त दशा कहे ठे:-

अथ ज्ञाता अलिप्त कथनं.-

चोपाईः--पूरव कर्म उदै रस खुंजे, ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे; उरमें उदा सीनता लहिये, यों बुध परिग्रह वंत न कहिये ॥ ९ ॥

अर्थः--पूर्व कर्मना उद्यथकी जे शुभाशुन रस उपजे ते नोगवे पण ते रस नो गनेविषे ममता प्रयुंजे नही, मात्र ज्ञाननेविषे मग्न रहे, पण परिग्रहना संयोग वि योगनेविषे हर्ष विषाद उपजे नही, एवीरीतें जेना मनमा उदासीनता पाभीये ठइयें एवा बुध के० पंक्षितने परिग्रहवत कहेवाय नही ॥ ९ ॥

हवे ज्ञानीनी निस्पृह दशा वखाणे ठे.--अथ ज्ञानी अवांठक कथनं.-

सवैया इकतीता--जे जे मनवठित विज्ञान जोग जगतमें, तेते विनासिक सब राखे न रहत है; और जे जे जोग अनिलाप चित्त परिणाम, तेते विनासीक धर्मरूप व्है बहत है; एकता न इहों मांहि ताते वांठा फुरे नांही, ऐसे भ्रम कारजको मूरखव हत है; संतत रहे सचेत परसो न करे हेत याते ज्ञानवतकों अचठक कहत है ॥ १०

अर्थः--मनना मानी लीधेला जे जे जगतना जोग विज्ञान ठे, ते ते नाश रूप ठे, आपणा राख्या रेहेता नथी. वली जे जे जोग अनिलापरूप, चित्त परिणाम रहेते

ते ते चित्त परिणाम चंचलपणें विनासी धर्म रूपने विपे थई रह्या ठे. एवा जोग नेविपे तथा जोग अजिजापनेविपे अनेकता ठे, पण एकता नथी वली विनश्वर पणुं ठे तेथी एना उपर ज्ञानीनी वांठा फुरती नथी. एवा त्रम कार्यने मूर्ख होय तेज चाहे ठे, जे सतत के० निरतर सावधान रहे अने परवस्तु साथे हेत करे नही, एज माटे ज्ञानवतने अवचक निस्पृही कहेठे ॥ १० ॥

हवे परिग्रहमां रेहेता ठता ज्ञाताने अलिप्तपणुं केवी रीते केहेवाय ते दृष्टांत आपीने समजावे ठे - अथ ज्ञाता अलिप्त दृष्टांत कथनं --

सवैया श्कतीता:- जैसे फिटकडी लोड् हरडेकी पुटविना स्वेत वख मारिये मजीठ रग नीरमे, जीग्यो रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, जेदे नही अंतर स पेती रहे चीरमें, तैसे समकितवत राग दोप मोह बिनु, रहे निशिवासर परिग्रहकी जीरमें, पूरव करम हरे नूतन न बंध करे जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमे॥११॥

अर्थ:- जेम कोई स्वेत वख होय तेने फटकडी लोदर तथा हरडानी पुट के० पट दीधा शिवाय मजीठना लाल रगना पाणीमा चिरकाल के० घणाकाल सुधी नी नावी राखे तोपण ते वख सर्वथा प्रकारे लाले थाय नही, अंतर रग जेदे नही तेथी ते चीरमां सफेती रहेज, तेमज समकितवत जे जीव होय ते राग दोप मोह ना पटविना निशिवासर के० रात दिवस परिग्रहनी जीडमां रहेठे. तोपण पूर्व कर्मना जोगनी निर्जरा करेठे, अने नवां कर्मतुं बंधन करे नही, अने जगतना सु खने जाचे नही वली शरीरने जोईने राचे नही ॥ ११ ॥

हवे परिग्रहने विपे रेहता ठता ज्ञाताने उद्वेग रहितपणुं होय ठे ते दृष्टांत वडे दृढ करावे ठे - अथ ज्ञाता अनुद्वेग कथनं:-

सवैया श्कतीता:- जैसे काहु देसको वसैया बलवत नर, जगलमे जाई मधु ठनाकों गहतु है, बाकों लपटाय चहु और मधुमक्षिका पे, कंबलीकी उटसों अमंकित रहतु है, तैसे समकित शिव सत्ताको सरूप साथे, उदेकी उपाधिको समाधिस्ती क हतु है; पहिरे सहज को सनाह मनमे उठाह, गने सुखराह उद्वेग न जहतु है. १२

अर्थ - जेम कोईक देशनो रेहेवासी नील वगेरे बलवत नर जगलमा जईने म धपुडाने ग्रहण करे ठे, ते वखत ते पुरुपने चारे तरफ मधु मक्षिका के० मध माखीठ लपटाई जाय ठे, पण ते पुरुपना शरीर पर कांमली होयठे, तेथी अमंकित के० मंखविना अमंख रहेठे; तेमज समकित जीव शिव के० परमात्मानी सत्ता के० सत्सूतपणुं तेनुं स्वरूप जे एक विज्ञानघनपणु तेने साथे ठे, अने कर्म

उदयनी जे आत्माने उपाधि लागी रहीं, तेने ते समाधि करी जाएँ ठे. सहज गुण जे ज्ञान दर्शन चारित्र तद्रूप जे सनाह के० बख्तर ते पेहेरी राखेते, अने ए रीते जे कर्मनिर्जरा तेनो उठाह मनमां धारण करे एवा अन्त सुखना राह के० मार्गनेविषे रहेतो थको उद्देग दशाने पामतो नथी. ॥ १३ ॥

हवे ए रीतमां ज्ञातानो अबंधकपणुं वतावेठेः-- अथ ज्ञाता अबंध कथनं--

दोहराः-- ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोइ, चित उदास करनी करे, करम बंध नहि होइ ॥ १३ ॥ मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परगा स; सुगति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास. ॥ १४ ॥

अर्थ--ज्ञानी पुरुष तो ज्ञानमा मगन रहेते, अने रमेते, अने राग द्वेष मोहरूपी जे मल ठे, तेने खोइ दिऐते, अने जे क्रिया करेते ते पण उदासीनरूप करेते, माटे एवा ज्ञानीने कर्म बंधन थतो नथी. ॥ १३ ॥ वली मोहरूपी महातम के० धोर अंधकाररूप जे मल तेने हरे, अने सुमतिना प्रकाशनार दीपकने धरे, ए रीते सुक्ति पंथने प्रगट करी वतावे, एवोज ज्ञाननो विलास ते दीपकरूप जाणवो ॥ १४ ॥

हवे ज्ञानदीपकनुं स्वरूप कही देखाडेते - अथ ज्ञान दीपक वर्णनं -

सवैया इकतीता.- जामें धूमको न लेस वातको न परवेस, करम पतंगनिको नाश करे पलमें; दसाको न जोग न सनेहको संयोग जामे, मोह अंधकारको विजोग जाके जलमें, जामें नतताइ नही रागरंक ताइ रच, लह लहे समता स माधि जोग जलमें; ऐसी ज्ञानदीपकी सिखा जगी अचंगरूप, निराधार फुरी पे डुरी है पुदगलमें ॥ १५ ॥

अर्थ -- जे ज्ञान दीपकमां धुमाडानो लेश नथी ने जेमां वायुनो पण प्रवेश नथी अने जे कर्मरूपी पतंग जीवनो पलकमा नाश करे ठे, ने जेमां दशा के० दीवेदनो जोग नथी, बीजो अर्थ-- कोई विकल्प दशा नथी अने जेने सनेह के० घृत तेलनो संयोग नथी वली जेना प्रकाशमां मोहरूप अंधकारनो वियोग थयुं ठे वली जे दीपकमां तप्ततापणुं नथी, वली जेमां लालरगनी रंचमात्र लाला श नथी, अने जे समता समाधिनो जोग ते रूप जे जल तेनेविषे लहलहायमा न थई रह्यो ठे, एवो जे ज्ञानदीपक ठे, तेनी शिखा सदा अचंगरूप जागी रही ठे, अने ए शिखा सर्व पदार्थनुं ज्ञान करवानी आधार ठे, अने पोते निराधार फुरी रही ठे, अने पुजलमां डुरी के० बुपी रही ठे ॥ १५ ॥

हवे ज्ञानना स्वभावमा खंभना नथी ते उपरं दृष्टांतं आपेठे -

अथ ज्ञान स्वभाव अखंभित दृष्टांतं कथनं -

सवैया इकतीसा -- जैसे जो दरब तामें तैसोही सुजाउ सधे, कोउ दवे काहु को सुजाउ न गहतु है, जैसे संख उज्वल विविध वर्ण माटी नखे, माटीसो न दी से नित उज्वल रहतु है, तैसे ज्ञानवत नाना जोग परिगह जोग, करते विलास न अज्ञानता लहतु है, ज्ञानकला दूनी होइ उंददशा सूनी होइ, कनी होइ चौ थिति वनारसी कहतु है ॥ १६ ॥

अर्थ - जे जेवु इव्य ठे, तेमां तेवोज स्वभाव सिद्ध ठे, पण कोई इव्य अन्व इव्यनो स्वभाव ग्रहण करे नही जेम कोई जलाशयमा संख वेइजीवीव होय ते सरूपमां उज्वल होय ठे, पण जात जातनी माटी खाय ठे, तेमठता माटीनो रंग तेना स्वरूपमां देखातो नथी, तेतो नित्य उज्वलज देखाय ठे, तेम ज्ञानवत प्राणी परिग्रहना जोगथकी नाना प्रकारना जोग जोगवतो ठता अने विलास कर तो ठता अज्ञानता पामतो नथी अने ज्ञाननी कला बमणी थाय ठे, अने ६६ दशा के० त्रमदशा ते जूनी थाय ठे, अने जवस्थिति के० संसार स्थिति ते उणी के० उठी थाय ठे, एवी रीते वनारसीदासतुं केहेवु ठे ॥ १६ ॥

हवे सम्यक् ज्ञाननी साथे सम्यक् क्रिया स्याद्वाद मतने आश्रयी कहे ठे -

अथ स्याद्वाद प्ररूपनं कथनं -

सवैया इकतीसा - जोलों ज्ञानको उदोत तोलो नही बंध होतु, वरते मि प्यात तब नाना बध होहि है, ऐसो जेद सुनिके लग्यो तूं विपै जोगनिसो, जोग निसों उद्यमकी रीतिते विठोहि है, सुनो नैया संतत कहे में समकितवत, यहु तो एकंत परमेसरकी दोहि है, विपेसों विमुख होइ अनुचो दशा आरोहि, मोख मुख ठोहि ऐसी तोहि मति सोहि है ॥ १७ ॥

अर्थ - ज्यां सुधी ज्ञाननो उद्योत ठे, त्यांसुधी बंध थतो नथी, अने ज्यारे मि प्यात्व दशावत ठे, ल्यारे तो नाना प्रकारनो बध थाय ठे, कोई एकंतवादीये एवो ज्ञान माहात्म्यनो जेद साजलीने एवु कथ्यु के तूं विपय जोगववा लाग्यो ठे, अने म न वचन कायाना योगथकी उद्यमनी रीति जे क्रिया, तेने तें ठोडी दीधी ठे, तेने क हेठे के हे सतपुरुप सांजल तु जे कहे ठे, के हुं समकितवंत हुं, पण ए एकतमत जे

इने अनुभव दशामां गुणश्रेणी धरी आरोहण करी अने मोहना सुखने ढोही के० जो, तो एवीज बुझी यकी शोने ठे ॥ १७ ॥

हवे ज्ञाननुं तथा विषय विमुखतानुं सहचारपणुं वतावेठे.—

अथ ज्ञान वैराग्य युगपत् वर्णनः—

चोपाई -- ज्ञानकलां जिनके घट जागी, ते जगमाहि सहज वैरागी; ज्ञानी मगन विपै सुखमांही; यहु विपरीत संजवे नांही ॥१७॥ दोहाः— ज्ञान सहित वैराग्य बल, शिव साथै समकाल, ज्यो लोचन न्यारे रहै, निरखै दोऊ नाल ॥ १९॥

अर्थ.—जेना घटनेविपे ज्ञानरूपी कजा जागी ठे, तेतो जगतनेविपे सहेजे वैरागी र हेठे ज्ञानी थईने विषयसुखमा मग्न होय ए विपरीत वात संजवती नथी ॥१७॥ वली ज्ञाननी संगति ने वैरागनी संगति ए बने चीज समकाल मलीने मोहने साथे, जेम वे आखो जुड़ी रहीठे, पण नाल के० साथे वेउ नेत्र पदार्थने जुएठे ॥१९॥

हवे मूर्खने कर्मनुं कर्त्तापणुं अने ज्ञानीने निर्जरानुं कर्त्तापणुं ए वेनुं स्वरूप क हेठे.— अथ मूढ कर्त्ता कर्मको यह कथन.—

चोपाई— मूढ कर्मको कर्त्ता होवे, फलअजिलाप धरै फल जोवे, ज्ञानीक्रि या करै फल सनी; लगे न लेप निर्जरा दूनी ॥ २० ॥ दोहाः—वधे कर्मसों मूढज्यो, पाट कीट तन पेम; खुलै कर्मसों समकित्ती, गोरख धंधा जेम ॥ २१ ॥

अर्थ— मूढ जे ठे ते कर्मनो कर्त्ता बने ठे, केमके ते क्रियाना फलनो अजिला प धरे ठे, अने फलने जोई रहेठे; ने जे ज्ञानी होय ते क्रिया तो करे पण फल शून्य करे, तेथी ज्ञानीने कर्मनो लेप लागतो नथी; एथी वमणी निर्जरा थायठे ॥

वली जे मूढ ठे ते कर्मनेविपे बंधाइ रहेठे, जेम रेशिमनो किडो पोताना शरीर ना प्रेमवडे पोतानी जालथकी पोतेज बंधायठे. अने जे समकित्ती होय तेतो क र्मनी जालथी खुलेलो रहे ठे, कोनी पठे? जेम गोरखधंधो पोतानी जालथी खु ली जायठे तेम जाणवु ॥ २१ ॥

हवे ज्ञानी जीवने कर्मनुं अकर्त्तापणुं तथा निर्जरारूप उरावे ठे —

अथ ज्ञानीको अकर्तृत्व कथन—

सवेयां तेईसाः—जे निज पूरव कर्म उदै सुख छंजत भोग उदास रहेंगे; जे डरमें न विज्ञाप करै निरवैर हिये तन ताप सहेगे; हे जिनके दृढ आत्मज्ञा न क्रिया करिके फलकों न चहेंगे, ते सुविचछन ज्ञायक हैं तिनकों करता हम तो न कहेंगे ॥ २२ ॥

अर्थ— जे जीव पोताना पूर्व संचित गुण कर्मना उदय वडे सुख जोगवतो थको पण जोगथी उदास रहे ठे, अने जे जीवने असाता वेदनीयना उदयथी ड ख उप जे तो पण विलाप करे नही, अरतिनो विनाग करे नही, अंतरमा कोई चिता न ही राखे, अने शरीरनो संताप सहन करे, वली जेनीपासे आत्मज्ञान ठे, तेतो क्रिया करीने फलने इहे नही, तेज उल्लूह विचक्षण ज्ञानी केहवायठे, अने तेने कर्म करता थका कर्मना कर्ता एम तो अमे कही सकछु नही ॥ ११ ॥

हवे एवा ज्ञानीनी व्यवस्था कहे ठे. ज्ञाता वर्णन—

सवैया इकतीसा — जिनकी सुदृष्टिमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिनको आचार सु विचार सुन ध्यान है; स्वारथको त्यागी जे लहैगे परमारथकों, जिनके वनिजमें नफान हैन ज्यान है, जिनकी समुज्जमे शरीर ऐसो मानीयतु, धानकोसो ठीलक रूपानकोसो म्यान है, पारखी पदारथके साखी भ्रम चारथके तेई साधु ति नहीको जधारथ ज्ञान है ॥ १३ ॥

अर्थ— जे ज्ञातानी सुदृष्टि एवी ठे के, जेनेविपे इष्ट वस्तु तथा अनिष्ट वस्तु बेउ बराबर ठे, अने जेनो आचार एवो ठे के जे जला विचारथी गुण ध्यानमाज रहे, अ ने विषय सुख प्रमुख स्वार्थने त्यागीने जे अथ्यात्मरूप परमार्थ तेनेविपे लागी रहे ठे, वली जेनां वचन एवा ठे के, जेमा नफो नथी तेम टोटो पण नथी, एटले कोई ने सुसीख किवा कुसीख देता नथी मौन वृत्तिज रहेठे वली जेनी समज एवी हो य के शरीरने धाननी ठील के० तुस जेवु अने रूपान के० तरवार तेना म्यान जे बु माने ठे, मतलब के आत्माने शरीरथी जुदो जाणे ठे वली जे जेवो पदार्थ होय तेवी तेनी परिहा करे ठे, अने जेम नय ज्ञानविना पाच दर्शनमा जे भ्रम तुं चारथ चाली रह्यु ठे, तेनो साही ठे, पूठवानुं थानक ठे, तेहिज साधु केवाय ठे, अने तेने यथार्थ ज्ञानी कहिये ॥ ॥ १३ ॥

हवे समकिततुं साहसपणुं वर्णन करेठे -- अथ सम्यक्वतको साहसकथन.—

सवैया इकतीसा — जमकोसो भ्राता ड खदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहतु है, सुरग निवासी जूमिवासी औ पताजवासी, सबहीको तन मन कंपत रहतु है, उरको उजारो न्यारो देखिये सपतं जेसों, मोलतु निशंक न यो आनंद लहतु है, सहज सुवीर जाको सासुतो शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहतु है ॥ १४ ॥

अर्थ— अहि संसारनेविपे जे असाता वेदनीय कर्म ठे; ते केवां ड.खदाता ठे?

अहिं उत्प्रेक्षा करे ठे - जमकोसो त्राता के० यमना जाई ठे, तेनो उदय थता मूरख जन जे ठे, तेतो साहस ग्रही शके नही. सुरगनिवासी के० देवता जूमिवासी के० मनुष्य तिर्यच अने पातालवासी देवता नारकी एवा सर्व त्रिलोकवासी जीवोनां तन मन असातावेदनीय थकी कांपता रहेठे, हवे-ज्ञानी जीवना उरनुं अजवाखुं जे ठे ते अंतरना चांदरणां जेबु ठे, ते केबु ठे ? ते समजावे ठे के, ते सात नय थकी जुडंज ठे, जे अजवालाथी साते नय प्राप्त थतां नथी, अने ए प्रजावथी निशंक थई मोले ठे, अने आनंद पामे ठे सहज सुवीर के० महोदो साहसीक सुनट, जेनुं-ज्ञानरूपी शरीर शाश्वत ठे, एवा ज्ञानी जीवो आचार्य के० महा पुरुष पूज्य जाणवा, एवुं आचार्य कहेठे ॥ २४ ॥

हवे साते नयना नाम कहेठे - अथ सप्त नयनाम -

दोहा.- इह नव नय परलोक नय, मरन वेदना जात ; अनरक्षा अनगुप्त नय, अकस्मात् नय सात ॥ २५ ॥

अर्थ -- आ नवतुं नय, परलोकनुं नय, मर्ण नय, वेदना उपजवातुं नय, अनरक्षातुं नय, अनगुप्त नय, अने अकस्मात् नय ए सात नय जाणवा ॥ २५ ॥ हवे साते नयना लक्षण कही जुदां जुदां उलखावेठे - अथ सप्त नय लक्षण कथनं -

सवैया इकतीसा - वसधा परिग्रह वियोगचिता इह नव, दुर्गति गमन परलोक नय मानिये ; प्राननिको हरन मरन नै कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखा निये, रक्षक हमारो कोउ नाही अनरक्षा नय, चौर नै विचार अनगुप्त मन आनिये अनचिल्यो अखहि अचानक कहाधों होइ, ऐसो नय अकस्मात् जगतमें जानिये २६

अर्थ -- शास्त्रमा जे दस जांतिनो परिग्रह कह्यो ठे तेना विजोगनी चिता रहे ते ज आ नवतुं नय जाणवु. दुर्गतिगमननुं जे नय ते परलोकनुं नय कहिये, प्राण तूटवानुं जे नय ते मर्ण नय, रोग प्रमुखथकी जे कष्ट उपजे ते वेदना नय वखाणिये, अमारी रक्षा करनार कोई नथी देखातो ए अनरक्षा नय, चोर अथवा डस्मण आव्याथी हुं गुं यत्न करी शकीश एवो जे नय तेने अनगुप्त जाणिये. अणचिल्युं शु थरी एबु जे नय मननेविपे रहे-तेनुं नाम अकस्मात् नय जाणवु ॥ २६ ॥

हवे आ नवतुं नय निवारण रूप मंत्र कहेठे - अथ इह नव नय निवारण कथन -

ठप्य वंद - नख शिख मित परवान, ज्ञान अवगाह निरस्कत ; आत्म अंग अचंग, संग परधन इम अस्कत ; मिनचंगुर संसार, विचव परिवार नारज सु,

जहाँ उत्पत्ति तहाँ प्रलय, जासु संयोग विरह तसु, परिग्रह प्रपंच परगट परखि,
इह जय नय उपजै न चित, ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित १७
अर्थ - पगेना नखथी ते माथानी सिखासुधी एटजे सर्व शरीर प्रमाण आत्मानो
गुण जे ज्ञान ते अचगाह के० व्याप्ति तेने जुए, एवां नख सिख सहित ज्ञानमय
आत्मानुं अंग अजंग रहे, तेनी साथे जे पुजलठे तेने परधनके० परडव्य कहेठे, अने
सर्व संसार कृणजंगुर ठे, ने तेनेविपे जे विजय परिवाररूप जार ठे, ते पण कृणजं
गुर ठे, अने जेनी उत्पत्ती तेनुं विनाश ठे, जेनो संयोग तेनो वियोग पण थायठे,
एवो परिग्रहनो प्रपंच प्रगट परखीएँ तो आ जवनुं नय चित्तमां उपजे नही एरी
ते जे ज्ञानी होय ते परिग्रहना वियोगनी चिता न राखे, ने निसंक रहे, पोतानु नि
स्कलंक स्वरूप ज्ञानमय सदा जुए ॥ १७ ॥

हवे परलोकनय निवारणनुं मंत्र कहेठे - अथ परलोक नय निवारण मंत्र -
ठप्पयठंद - ज्ञान चक्र मम लोक, जासु अवलोक मोख सुख, इतरलोक म
म नाहि, नाहि जिसमाहि दोष डख, पुत्र सुगति दातार, पाप डुरगति पढ दा
यक, दो खंमित खानिमें, अखंमित है शिवनायक, इह विधि विचार परलोक नय,
नहि व्यापक वरते सुखित, ज्ञानी निसंकनिकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित ॥ १८ ॥

अर्थ - ज्ञान चक्र के० ज्ञान विस्तार तेतो ममलोक के० मारो लोक ठे, महारो
प्रचार ठे, तेने प्रत्यह जोवो, अने मोह सुख बन्ने रूप ठे, अने इतर लोक
के० तेविना अन्य लोक ते मारो नथी, महारो ज्ञान लोक मारी साथे ठे, जेनेविपे
दोष ड ख नथी परलोकमा सुगतिनुं देनार पुन्य ठे, अने परलोकमा कुगतिनुं आ
पनार पाप ठे ए वे पुन्य पाप आत्मानी खंमनानी खाणी ठे अने हुं अखंमित रूप
हु शिवनायक के० सिद्धरूपी हुं एवा विचारथी परलोक नय व्यापे नही, अने
सुखित के० सदा सुखवत वनें, ए प्रमाणे परलोक नय ठांमिने ज्ञानी पुरुष नि
संक यको निकलंक एवु जे निजज्ञानरूप तेने सदा निरखे ॥ १८ ॥

हवे मरणनय निवारणनो मंत्र कहे ठे - अथ मरन नय निवारण मंत्र -
ठप्पयठंद.- फरस जीज नाशिका, नैन अरु श्रवन अह इति, मन वच तन
बल तीन, सास उस्तास आच धिति, ए दस प्राणविनाश, ताहि जग मरण कही
जे, ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहु काल न ठीजे, यह चित करत नहि मरण नय,
नय प्रमाण जिनवर कथित, ज्ञानी निसक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित ॥ १९ ॥
अर्थ - स्पर्शी, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ए पाचे इंद्रिय; मनोबल, वचनबल, ने

कायबल ए त्रण, स्वासोस्वास आयुस्थिति, ए दस प्राण आदिनो विनाश थाय, तेने जगतमां मर्णनय कहे ठे, पण जीव पदार्थ ठे ते ज्ञानरूपी नाव प्राण सयुक्त ठे, तेतो जीवने ज्ञान प्राण त्रणे कालनेविपे त्रूटे नही, एवो विचार मनमां करवाथी मर्णनय उपजे नही नय-प्रमाण वडे एवु जिनेश्वरनुं कथन ठे, ज्ञानी लोक नि संक पणे पोताना निकलंक स्वरूप ज्ञानरूपने सदा निरंतर निरखत के० सत्यपणे जुए ठे ॥ १९ ॥

हवे वेदना जय निवारणरूप मंत्र कहे ठे-- अथ वेदना जय निवारण मंत्र -
 षण्य ठंद्-- वेदनवारो जीव, जाहि वेदंत सोच जिय, यह वेदना अचंग, सुतो मम अंग नाहि व्यय; करम वेदना द्विविध, एक सुखमय डतीय डख, दोक मोह विकार, पुजलाकार बहिरमुख, जब यह विवेक मनमहिं धरत, तब न वेद ना जय विदित, ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ३० ॥

अर्थ-- वेदनावारो एटले जाणनारो तेतो जीव ठे, अने जेने जाणवुं ठे, तेपण जीवज ठे एटले वेदनावत ते ज्ञानी जीवए ज्ञानरूप वेदन जे अचंग रूप ठे तेतो मारुं अंग ठे, अने कर्म वेदना जे ठे ते मारी नथी अने ते कर्मरूप वेदना वे प्रकारनी ठे, एक सुखमय वेदना ने बीजी ड.खमय वेदना ठे, ए बेच मोह विकार ठे, ए वी सुख ड.खनी वेदना पुजलाकार ठे, पुजलनी ढाया बाह्यरूप ठे, ज्यारे एवो वि वेक विचार मनमां धरे ठे, ल्यारे वेदनातुं जय वेदी सकतुं नथी. ज्ञानी लोक हो य तेतो वेदना जयथी निसंक रहे अने निकलंक एवु पोतानुं ज्ञान स्वरूप ते ने सदा जोतो रहे ॥ ३० ॥

हवे अनरक्षाजय निवारणरूप मंत्र कहै ठे--अथ अनरक्षा जय निवारण मंत्र--
 षण्य ठंद्-- जो स्वस्तु सत्ता सरूप जगमहि त्रिकाल गत, तास विनास न होइ, सहज निहचं प्रमाण मत, सो मम आतम दरब, सरबथा नहि सहाय धर, तिहिं कारन रक्षक न, होइ नक्षक न कोइ पर, जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा जय नसित, ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ३१

अर्थ -- स्वस्तु के० निज आत्मरूप वस्तु, सत्तास्वरूप के० डव्यपणे ठतु केहेवा य ते जगतमा त्रणे कालनेविपे पामिये, तेनो क्यारे पण विनाश नथी यतो, एवु सहज स्वरूप निश्चयनयना प्रमाणवडे जाणवु; एज मारुं आत्मडव्य जे ठे, तेतो सर्वथा प्रकारे कोईनो सहाय धरतु नथी, तेमाटे ए आत्मडव्यनो कोई रक्ष क नथी. तेमज कोई पर के० बीजो एनो जेहक पण नथी जेवारे एवो विचार

समयसारनाटक.

नकी करी राखे, त्यारे अनरह्ना जय नाश पामे, एवा ज्ञानी होय ते अन्न यथी निसंक थको पोताना निकलंक ज्ञानस्वरूपने सदा निरखे ठे ॥३१॥

चौरजय निवारण रूप मंत्र कहे ठे:- अथ चौरजय निवारण मंत्र -
 [य ठंड - परम रूप परतष्ठ, जासु लक्षण चिन ममित, पर प्रवेश तहाँ ना हिं महि अगम अखमित, सो मम रूप अनूप, अरुत अनमित अकूट महि चोर किम गहै, गौर नहि लहै और जन, चितवत एम धरि ध्यानजव, गुप्त जय उपसमित, ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित]
 :- जे परम स्वरूप केहेवाय ठे, अने मान सन्मानवडे प्रत्यक्ष ठे, चिनमं ० चिन्मय एवु जेतुं लक्षण ठे, अने जेना स्वरूपनेविषे परस्वरूपनो प्रवे माहिमही के० पृथ्वीना वचमा अगम्य ठे, अने अखंमित ठे, एवु तो ० मारुं रूप ठे, ते कोईतुं कीधेलुं नथी, अनमित के० प्रमाणविना, एवु अस्तु ठे, ते धनने चोर केम हरी शके । अने और के० बीजा कोई लोक तेनी ज ० शके नही ज्यारे ध्यान धरीने एवुं चितवन करे त्यारे अगुप्त जय के० उ नतुं जे जय ते उपशमी जाय अने एवा ज्ञानी होय ते अगुप्त जयथी नि का पोताना निष्कलंक ज्ञान स्वरूपने सदा निरखता रहेठे ॥ ३१ ॥

अस्मात्तजय निवारण रूप मंत्र कहेठे -अथ अस्मात्तजय निवारण मंत्र -
 [य ठंड - शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सु समृद्ध सिद्ध सम, अलख अना त, अतुल अविचल सरूप मम, चिद विलास परगास, वीत विकलप सुख जहाँ डविधा नहि कोइ, होइ तहाँ कबु न अचानक, जब यह विचार तव, अस्मात्त जय नहि उदित, ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञान खत नित ॥ ३२ ॥

:- जे वस्तु शुद्ध ठे, केवल पोताना स्वरूपने विषेज ठे, बुद्ध के० ज्ञानम रोधी ठे, सिद्धसमान शक्तिवत ठे, अलक्ष ठे, आदिरहित ठे, अने अंत ०, जेनी तुलना कोईथी न थाय माटे अतुल ठे, एवु अविचल मारुं रूप ठे ० गस के० ज्ञानविलासनो जेने प्रकाश ठे वीतविकलप के० अवस्था चेद ०, अने समाधि सुखतुं आनक ठे ज्यां कोई विजातीय न पामिये त्या कोई ०

प ठे ते अकस्मात् जयथी निशंक थको पोताना निष्कलंक ज्ञान स्वरूपने सदा जोतो रहेते. ॥ ३३ ॥

हवे निर्जराना करनार ज्ञानीनी व्यवस्था कहेते --अथ ज्ञानी व्यवस्था कथन --
उप्यय ठंद.-- जो परगुन त्यागंत, शुद्ध निजगुन गहंत ध्रुव, विमल ज्ञान अं
कूर, जासु घट महि प्रकास दुव; जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धार वहावत; जो न
व बंध निरोध, मोप मारग मुख धावत, निःसंकतादि जस अष्ट गुन, अष्ट कर्म
अरि संहारत; सो पुरुष विचक्षण तासु पद, बनारसी बंदन करत. ॥ ३४ ॥

अर्थ-- जे कोई पुजलादि गुणनो त्याग करे, अने ध्रुव के० निश्चयरूप एवा शुद्ध
पोताना गुणनुं ग्रहण करे; निर्मल ज्ञाननो अंकुर के० उदय जेना घटमां प्रका
शित थयो, अने जे पूर्वकृत कर्मने निर्जरानी धर के० श्रेणिविपे वहावि दिये वली
जे नवा बंधनो निरोध करीने एटले निराश्रव थईने मोहमार्गने सन्मुख दोडेते,
गुण श्रेणिमां दोडेते, निशंकित प्रमुख जेना आठ गुण ठे, ते आठे कर्मरूप
शत्रुनो संहार करे, तेज विचक्षण पुरुष केहेवाय, अने तेना चरनकमलने वणारसी
दास बंदन करेते ॥ ३४ ॥

हवे आठ अंगनां नाम कहेते.--अथ अष्टांगके नाम कथनः--

सौरवाः-- प्रथम निसंलैजानि, दुतिय अवग्रित परिनमन, तृतिय अंग अ
गिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थे गुन ॥ ३५ ॥ पंच अकथ परदोष, थिरी करन ठठम
सहज; सत्तम वज्जल पोप, अष्ठम अंग प्रजावन ॥ ३६ ॥

अर्थः-- पेलुं निर्लेशय के० निःशंकित, वीजुं समकितनो गुण जे अवांठक प
णारूप मननो परिणाम, त्रीजुं अंग अग्लान, चोथुं गुण निर्मल दृष्टि एटले मूढ द
ष्टि नही ते, ॥ ३५ ॥ पांचमुं परदोष अकथन, ठठुं अंग समकित स्थिर करवाना
स्वभावरूप, सातमुं सर्व साथे वाठलपणुं अथ्यात्मक पोपक, अने आठमुं अंग
प्रजावना गुणरूप ॥ ३६ ॥

हवे अंगना लक्षण कहे ठेः-- अथ अंग लक्षणः--

सवैया इकतीसा-- धर्ममें न संसै गुनकर्म फलकी न इज्ञा, अगुनको देखि न
गिलानि आनै चित्तमे, साचि दृष्टि राखै काहू प्रानीको न दोष जाखै, चचलता जा
नि थिति गनै बोध चित्तमे; प्यारे निजरूपसां उठाहके तरग उठे, एइ आठो अंग
जब जागे समकितमे, ताहि समकितको धरे सो समकितवत, वहे मोपपावे उ
न आवै फिर इतमें ॥ ३७ ॥

अर्थ - धर्मनेविषे संदेह न होय ते निशंकित गुण, शुभ कर्मना फलनी इच्छा न होय ते निस्पृही गुण, अनिष्ट वस्तुने जोडने चित्तमा ग्लानी न लाववी ते अग्लान गुण, कोईना मगाच्या मगजुं नही ने साचनेविषे दृष्टि राखवी ते अमूढ दृष्टिगुण, कोई प्राणीनो दोष केहेवो नही ते दोषाकथन गुण; चंचलता त्यागीने ज्ञानरूप चित्तनेविषे स्थिरता राखवी ते थिरीकरण गुण, आत्म स्वरूपमा प्रेम राखवो ते वल्ल गुण; अने आत्मस्वरूप साधननेविषे उच्चाह लहरी के० तरंग उठवापणुं लीयो रहे ते प्रजावना गुण, एम एक समकेतना आठे अग ज्यारे जागे, अने ते आठ गुणे सहित सम्यक्तुं धारण करे, ते समकितवत्त केहेवाय ने तेवाज समकित्ती मोक्ष पामे, ने फरीथी आ ससारमा आवे नही ॥ ३७ ॥

हवे निर्जराधारी चैतन्यतुं नाटक कहे ठे -- अथ चैतन्य नाटक कथन --

सवैया इकतीसा - पूर्व बंध नासे सोतो संगित कला प्रकाशे, नव बंध रुंधी तां ल तोरत उठरिके, निसंकित आदि अष्ट अग संग सखा जोरी, समता अलाप चारि करे सुख चरिके, निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदिंग वाजे, ठक्यो महानंदमे स माधि रीजि करिके, सत्तारग नूमिमे मुक्त जयो तिहूं काल, नाचे शुद्ध दृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ३८ ॥

अर्थ - जेम पूर्वकालनेविषे उत्कृष्ट स्थितिथकी बंध करतो हतो तेवी रीते न करता अनुत्कृष्ट स्थितिथकी करवो एम पूर्व बंध नासे, तेतो संगित कला आलाप चारी प्रकाशे, अने नवा बंधने रोधवु ते रूपताल उठले ठे तालतोर ठे, निशंकित प्रमुख जे समकितना आठ अग कल्या, ते सहाय जोडी समता समाधि धारी तद्रूप स्वर बाधीने आलाप करे ठे, अंही कर्मनी निर्जरा हेतु ठे, एटले कर्मना स करवारूप कार्यतुं निर्जरा कारण ठे, ते ध्याननेविषे एक स्वरूपनाद गाजे ठे, अने सोहं धुनी ठे तेरूप मृदंग वाजे ठे, अही जे महानंदमय अर्शने ठक्यो तेतो सुखी थयो, ते जाणिये रीजि अर्श, ने पोतानी आत्मसत्ता तेज कोई रगनूमि ठे एटले रग मद्रप थयो, तेनेविषे त्रणे कालमा शुद्ध दृष्टीसहित ज्ञानरूप वेप स्वांग पहेरी धरीने नटरूप चैतन्य मुक्त अर्शने नाचे ठे ॥ ३८ ॥

इतीश्री समयसार नाटकविषे बालबोधरूप निर्जराद्वार सप्तम संपूर्ण.

दोहा - कही निर्जराकी कथा, शिवपय साधनद्वार, अथ कतु बंध प्रबंधको, कहुं अल्प विस्तार ॥ ३९ ॥

अर्थ.— मोह मार्गनी साधनकार जे निर्जरा तेनी कथा हती ते कही, हवे जे बंध थाय ठे तेना अधिकारनो अल्प विचार कहेठे ॥ ३ए ॥

हवे बंध जे ठे ते ठामवा योग्य ठे, माटे ते बंधनो विदारणहार जे समकित तेने नमस्कार करेठे— अथ बंध विदारन सम्यक्त वर्णन—

सवैया इकतीसा— मोह मद पाई जिन संसारी विकल कीने, याहिते अजानु बाहु विरठ वहतु है; ऐसो बंध वीर विकराल महाजाल सम, ज्ञान मंद करे चद राहु ज्यो गहतु है, ताको बल जंजिवेको घटमे प्रगट नयो, उद्धत उदार जाको उ देस महतु है; सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताही, निरखी बनारसी नमो नमो कहतु है ॥ ४० ॥

अर्थ— जे बंधरूप सुनट ठे ते मोहरूप मदिरा पाईने सर्व संसारी जीवने विकल करेठे, एथी ए बंधरूप वीर ठे ते अजानुबाहुनुं बीरुद वहावेठे के० सार्व जोम थई रहेला ठे, एवो विकराल ए बंधरूप वीर सुनट ठे, बली ए महाजाल स मान ठे, अने एज ज्ञान प्रकाशने मंद करेठे, कोनी पठे जेम राहु चडने मद करेठे तेनी पठे जाणी लेबुं; हवे एवा बंधरूप वीरनो प्रतिपह्नी जे ठे, ते एनुं बल तोड वाने घटनेविपेज प्रगट थयो ठे, जेनो उद्यम उद्धत ठे, एटले कोईथी रोक्यो रहे एवो नथी, अने उदार ठे के० श्रेष्ठ ठे तथा महत् के० मोटो ठे, तेतो समकितरूप शूरवीर जाणवो, ते आनंद अंकूर लईने उदय थयो ठे, ते सम्यक्त शूरवीरने जो ईने पोताना अंग उल्लसित थको बनारसीदास नमो नमो कहेठे ॥ ४० ॥

हवे चेतनाविना कर्म बंध नथी यतां, माटे ज्ञानचेतना तथा कर्म चेतना ए बेउनी समज पाडेठे— अथ कर्मचेतना ज्ञानचेतना वर्णन—

सवैया इकतीसा— जहां परमात्म कलाको परगास तहा, धरम धरामें सत्य सूरजको धूप है, जहां सुन अशुन करमको गढास तहां, मोहके विलासमे महा अंधेर कूप है, फेली फिरै ठटासी घटासी घट घन बीच, चेतनकी चेतना डुहोधा गुपचूप है, बुद्धिसो न गही जाय वेनसों न कही जाय, पानीकी तरंग जैसे पानीमे शुद्ध है ॥ ४१ ॥

अर्थ— जे चेतनामां परमात्मानी कलानो प्रकाश थाय ठे, ते धर्म धरती ठे; ते धरतीमां सत्यरूप सूर्यनो तडको ठे, एटले उजली जगा ठे. बली जे चेतना नेविपे सुन अशुन कर्मना रसनी गढास ठे, एटले सुजाशुन कर्मना रस वडे जे चेतना घोलाइ रही ठे, त्यां मोहराजा विलास करे ठे, तेतो धोर अंधकार ठे,

ए रीते चेतन पुरुषनी जे चेतना के० संज्ञा ठे, तेतो घटाघनबीच के० शरीररूप मे घबचे ठटानी माफक फेली रही ठे, अने घटानी माफक फेलीथकी फरे ठे, अने ए चेतना ते परमात्मानी कजाना प्रकाशमा तथा मोहविलासमां ए बेव तरफ गुपचुप ठे, एटले चुप थी रही ठे, एवी ए चेतना वे तरफ प्रवेश करे ठे, एवात बुद्धीथी ग्रहण थाय ठे, पण वचनथी कही जाय एवी नथी, जेम पाणीना तरंग पाणीमां गुह्युप ठे तेम चेतना बेव तरफ गुह्युप ठे. ॥ ४१ ॥

हवे बंधदारनेविपे बंधनो हेतु कहे ठे - अथ बंधनिदान कथन -

सवैया इकतीसा - कर्मजाल वर्गनासो जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों, चेतन अचेतनकी हिंसासो न बंधे जीव, बंधे न अलख पंचविपे विखरोगसों, कर्मसो अबंध सिद्ध जोगसौ अबंध जिन हिंसासौ अबंध साधु ज्ञाता विपै जोगसो, इत्यादिक वस्तुके मिलापसो न बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपजोगसों ॥ ४२ ॥

अर्थ - कोई कहे ठे के कर्मजाल वर्गणा थकी जगतमां जीव बंधाय ठे, ते वात खोटी एटले कर्म वर्गना जीवना बंधनो हेतु नथी, एवी रीते कदाचित्त मनव चन कायाना योगथी पण जीव बंधातो नथी, चेतन तथा अचेतननी हिंसाय की पण जीवने बंध थतो नथी अलक्ष् पती ठे, तथा अलक्ष् रूपी ठे, ते पंचे द्वियना विषयरूप विपरोग वडे पण बंधातो नथी कर्म वर्गनाथी सिद्धना जीव बंधाता नथी, वली जिनेश्वर देव ठे तेतो त्रणे योगमा ठे तोपण अबंध ठे, साधुजे ठे, ते अनाजोग पणे हिंसा करे ठे, तोपण अबंध ठे, ज्ञाता विषय जोगवेठे, तो पण ते अबंध ठे, एरीते कर्म वर्गना प्रमुख वस्तुना मिलापथी जीव बंधातो नथी पण मात्र एक राग देपने मोह अने जीव बंधरूप अशुद्ध उपयोग थीज जीव बंधाय ठे ॥ ४२ ॥

हवे राग देप अने मोहनेज दृढपणे बंधना हेतु ठरावे ठे -

अथ बंधनिदानदृष्टी करन व्यवस्था -

सवैया इकतीसा - कर्मजाल वर्गनाको वास लोकाकाश माहि, मन वच का याको निवास गति आठमे, चेतन अचेतनकी हिंसा वसै पुज्जमें, विपे जोग वरते उदेके उरजाठमे, रागादिक शुद्धता अशुद्धता हें अलखकी, यहे उपादान हेतु बंधके बढाठमें, याहिते विचठन अबंध कह्यो तिहू काल, राग दोष मोहनादि सम्यक् सुजाठमें, ॥ ४३ ॥

अर्थ:-कर्म जाल वर्गणानो वास तो लोकाकाशमांज ठे, केवल कर्म वर्गणा कारण थकीज जो अमूर्ति चेतनइव्य बंधनावने पामे, तो लोकाकाशनो बंध केम नही थाय? तेमज मन वचन अने कायाना योगनो वास तो चारे गतिनेविपे ठे, अने चारे आ उपामा ठे, त्यारे योग ते आत्माना बंधना हेतु केम थाय? चेतननां प्राण हर्षथी हिंसा थाय ठे; ते पुज्ज बंधरूप प्राणमांज हिंसा थाय ठे, एमज अचेतननी हिंसा पण पुज्जमां ठे, ते आत्मासाथे स्पर्शीती नथी, तो बंध केम थाय? अने विषय जोग जे वरते ठे, तेतो कर्मना उदयमां ठे, अरुजी रह्या ठे, अने आत्मा तो तेथी निरालो ठे, ते बंधाय केम? माटे राग द्वेषने मोहथकी जे अद्यता के० सुगुधता थाय ने परवस्तुने पोतानी करी मानवी ते अलख पुरुषनी अद्यता ठे. अने एज अद्यता बंधने वधारे ठे, ए माटे विचक्षण पुरुषने त्रण कालविपे अबंध कह्यो, केमके, तेने सम्यक् स्वभावमां राग द्वेष अने मोह नथी ॥ ४३ ॥

हवे ज्ञाताने अबंध कह्यो तोपण उद्यमी अर्धने क्रिया करवी ते समजावेठे—

अथ उद्यम प्रशंसा —

सवैया इकतीसा:- कर्मजाल जोग हिंसा जोगसों न बंधे पै तथापि ज्ञाता उद्यमी वखान्यो जिन बैनमें, ज्ञानदृष्टि हेतु विपै जोगनिसों हेतु दौउ, क्रिया एक खेत यो तौ बने नांहि जैनमें, उदै बल उद्यम गहै पै फलकौ न चहे निरदै दसा न होइ हिरदैके नैनमें, आलस निरुद्यमकी जूमिका मिथ्यात मांहि, जहा न संज रै जीव मोहनीद सैनमें ॥ ४४ ॥

अर्थ - जीव ठे ते कटापी कर्मजालथी बंधाय नही, अने जोगथकी पण बंधाय नही, अने हिंसाथकी पण न बंधाय, जोगवडे न बंधाय, तोपण जिनेश्वरना वचनथकी ज्ञाता जीवने उद्यमीज वखाण्युं ठे. ज्ञाननेविपे दृष्टि पण आपेठे, अने विषयजोगमां प्यार पण राखेठे, एवी वे क्रिया एक खेत के० एक आत्माविपे एक स्थानकविपे करेठे, एतु तो जैनवासीमां बने नही, अने जे ज्ञानी होय ते एटलुं तो करेके जे संहनन के० संघयण प्रमुख कर्मनो उदय बल ठे, तेथी यथायोग्य ते क्रियाविपे उद्यमवत थाय, अने तेना फलने इहे नही, ने हृदयरूप नेत्रनेविपे निर्दय दशावंत न थाय, अने आलस निरुद्यम तो मिथ्यात्वमाज पामिये, एथी आलस ने निरुद्यमनी मिथ्यात्व जूमिका ठे, जे जूमिकानेविपे जीव मोहनिइ जेतो थको सघनदिशामा रहेठे, अने पोताना स्वरूपने संचारतो नथी ॥ ४४ ॥ -

हवे जे उदय माफक क्रिया कही तेथी उदय बलनी व्यवस्था कहेणे -

अथ उदै व्यवस्था वर्णनं -

दोहा - जब जाकौ जैसे उदै, तब सो है तिहि थान । सकति मरोरै जीवकी,
उदै महा बलवान ॥ ४५ ॥

अर्थ - जे कालनेविपे जेनो जेवो उदय थाय ते कालनेविपे ते स्थान के०
ते स्वरूपमां जीव रहे ठे, ते जीवनी शक्ति मरोडीने पोतानी शक्ति प्रगट करे, एथी
कर्म उदय महा बलवान ठे ॥ ४५ ॥

हवे उदय बल उपर दृष्टात आपैठे -अथ उदै बल वर्णनं -

सवैया श्कतीसा - जैसे गजराज पखो कर्दमके कुंमबीच उद्यम अहूटे न पैतू
टे छ ख इंद्रसों, जैसे लोह कटककी कोरसों उरफ्यो मीन, चेतन असाता लहै
साता लहै संदसों, जैसे महाताप सिरवाहिसो गरास्यो नर, तकै निजकाज उठी स
कै न सुबंदसों, तैसे ज्ञानवत सब जानै न वसाई कहु, बंध्यो फिरै पूरव करम
फल फदसो ॥ ४६ ॥

अर्थ - जेम हाथी कर्दमना कुंममां पड्यो पडे तेमाथी निकलवाने उद्यम अ
हूटैके० करेठे, पण ते छ खदमथी बूटी शक्तो नथी, जेम हृदयमा लोह कटककी के०
लोढाना कांटानी अणीमा जरायो एवो मज्ज बूटो थई शक्तो नथी, तेथी मत्सतुं
चेतन अशाता पामे, अने संद के० बूटे तो शाता लहे पण बूटे नही, बली कोई
माणस तापज्वर अने माथाना दरदथी हेरान थतो पथारीमा पडी रह्यो होय
अने ते मनुष्य पोताना कार्य करवाने वास्ते तेहाथी उठवाना अनेक उपाय करतो
उता पोताना स्वहृदथी उठी शक्तो नथी, तेमज्ज ज्ञानवत जीवतो सर्व हेय उपा
देय जाणे ठे पण कोई पोतातुं बल चाले नही पूर्व संचित कर्मना फलना फंद
थी एटले कर्मना उदयथी बाध्यो फिरे ठे ॥ ४६ ॥

हवे आलसीने निरुद्यमीनी जेवी अवस्थाठे तेवी बतावे ठे -अथ यथावस्था वर्णनं:-
चौपाई -जे जिय मोहनीदमें सोवै, ते आलसी निरुद्यमि होवै, दृष्टिखे लि
जे जगै प्रवीना, तिन्हि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ४७ ॥

अर्थ - जे जीव मोहरूप निज्ञानेविपे सुई रह्या ठे, ते जीवने आलसु कहीए
ने तेज निरुद्यमी केहेवाय अने जे प्रवीण जीव ज्ञानदृष्टि खोली जागृत ठे, ते आ
लस तजिने उद्यम करे ठे ॥ ४७ ॥

हवे आलसु ने उद्यमीनी क्रियातुं वर्णन करे ठे -अथ यथावस्थातथा क्रिया कथनं -

सवैया इकतीसा.— काच बांधे तिरसों सुमनी बांधे पायनिसो, जानै न गवार
कैसी मनी कैसो काच है, योंही मूढ जूठमें मगन जूठहिकों दैरै, जूठ बात मानै
पै न जानै कहा साच है; मनीकों परखि जानै जोहरी जगत माहि, साचकी समु
जी ज्ञान लोचनकी जाच है, जहांको छु वासी सो तो तहांको मरम जानै, जाको
जैसो स्वांग ताको तैसेरूप नाच है ॥ ४८ ॥

अर्थ— काचने माथाउपर बांधे अने मणीने पगे बांधे, एवा गमार लोकने खव
र नथी होती के काचशी वस्तु ठे, अने मणीशी वस्तु ठे, एम मूढ अज्ञानी जीव फू
ठी वातमां मग्न रहे, फूठा कार्यमां ढोडे, अने फूठी वात माने, पण एम न जाणे
के एमां साच केठलुं ठे, मणी रत्ननी तो जे ऊवेरी होय तेज जगतमां परिह्वा
करीशके, तेमज साचानी समज पण तेनेज पडे, जेने ज्ञानरूपी लोचननी उत्पत्ति
थई होय केमके, जे जिहांको वासी होय ते तिहांको मरम जाणे, एटले मिष्यात
नूमिकानो वासी मिष्यातनेज ग्रहे अने सम्यक् नूमिकानो वासी ते समकितनेज
साचुं माने, मतलब जे जेवो वेप धरी आवे ते तेवोज नाच नाचेठे ॥ ४८ ॥

हवे जे जेवी क्रियाकरे ते तेवु फल पामे ते कहेठे:—अथ यथाक्रिया तथा फलकथनं
दोहा.— बंध वधावे अंध व्हे, ते आलसी अज्ञान, मुक्ति हेतु करनी करै, ते
नर उद्यमवान. ॥ ४९ ॥

अर्थ:— जे नाव अंध थईने बंधने वधारे, ते अजाण आलसी केहेवायठे अने
जे मुक्ति हेतुने अर्थं क्रिया करेठे, ते मनुष्य उद्यमवंत केहेवाय ठे ॥ ४९ ॥

हवे जो ज्ञानहोय तो वैराग्यपण होय अने जो वैराग्य न होयतो ज्ञान पण
न होय तेथी ज्ञानवैराग्यनुं सहचारपणुं कहेठे:—अथज्ञानवैराग्य सहचारत्ववर्णनं—

सवैया इकतीसा.—जबलगु जीव छुऽ वस्तुकों विचारै ध्यावै तबलगु नोगसों उदा
सी सरवंग है, नोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नाहिं, नोग अजिलापकी दशा
मिष्यात अंग है; तातें विपै नोगमें मगन सो मिष्याति जीव, नोगसों उदासि सो स
मकिति अचंग है; ऐसी जानि नोगसो उदासि व्हे मुगति साधै, यहै मन चंग तो
कवोत माहि गंग है. ॥ ५० ॥

अर्थ:— जाहांसुधी जीव छुऽ वस्तुना विचारमां दोडतो होय, तांहांसुधी सर्व
अंगनेविपै नोगथी उदासीनपणुं जोवामां आवे; अने ज्यारे नोगमां मगन रहेतो
होय, ल्यारे तो ज्ञाननी जगन के० जागती न होय, केमके नोग अजिलापनी द
शामां वर्नेवुं तेतो मिष्यातनुं अंग ठे, तेथी विषयनोगमां मगन रहे ते जीव मिष्या

ती केहेवाय, अने जे विषय जोगथी उदासी रहे ते तो अचंग समकेती ठे. एवुं जाणीने अहो नव्यलोको जोगथी उदास थई, ने मुक्तिने साधो ते उपर दृष्टांत कहे ठे के, जेजुं मन चगुठे तेने कथरोटमाज गगा ठे, मतलव के कथरोटमां नाता थका गंगा स्नानतु फल पामेठे ॥ ५० ॥

हवे मोहना अधिकारनेविषे चार पदार्थतुं स्वरूप कहे ठे -

अथ पदार्थ चतुष्क कथन -

दोहा - धरम अरथ अरु काम सिव, पुरुपारथ चतुरग ; कुधी कलापना गदि रहै, सुधी गहै सरवग ॥ ५१ ॥

अर्थ - धर्म, अर्थ, काम, ने मोह, पुरुपार्थना ए चार अंग ठे, ए पुरुपार्थ विषे कुधी के० कुमतिवालो पोतानी मति कटपनाने जाजीने वेसे ठे, अने सुधी के० पंफित पुरुप ठे ते सर्वांगतुं ग्रहण करे ठे ॥ ५१ ॥

हवे चारे पदार्थनी न्यारी न्यारी व्यवस्था सुमति अनेकुमतिना मन आश्री कहे ठे - अथ पदार्थ व्यवस्था कथन -

सवैया इकतीसा - कुलको आचार ताहि मूरख धरम कहै, पंफित धरम कहै वस्तुके सुनाउकों, खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहै, ज्ञानी कहै अरथ दरव दरसाउको, दपतिको जोग ताहि डरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अनिलाप चित आउको, इडलोक थानकों अजान लोक कहै मोह, मतिमान मोह कहै बंधके अनाउकों ॥ ५२ ॥

अर्थ - जे मूर्ख जन होय ते पोताना कुलना आचारने धर्म कहे ठे, अने पंफितजन तो वस्तुना खजावने धर्म कहे ठे, अज्ञानी जन होय ते खेहना खजाना जे सोतुं रुपु जवाहिर वगैरे ठे तेने अर्थ के० इव्य कहि बतावे ठे, अने ज्ञानी जन होय ते इव्यना दरशावने अर्थ कहे ठे, एटले षट्इव्यने अर्थ कहे ठे. डुबुद्धि जन अथी जरतारना जोग सयोगने काम कहे ठे, पण सुधी के० पंफित जन तो चित्तनी इडा अनिलापने काम कहे ठे, अने जे इडनो स्थानक ठे, तेने अजाण लोक मोह कहै ठे, अने जे मतिमान एटले पंफित लोक ठे तेतो जे थकी वधनो अजाव थाय ठे, एटले बंधना नाशने मोह कहै ठे ॥ ५२ ॥

हवे चारे पुरुपार्थने अव्यात्मरूप कहे ठे - अथ पुरुपार्थ चतुष्क अव्यात्मरूपकथन -

सवैया इकतीसा - धरमको साधन सुनाउ साधै, अरथको साधन विलेठ वर्व पटमें, यहै काम साधना ॥५१ पद, सहज मोप सु

श्रुता प्रगटमें, अंतर सुदृष्टिसो निरंतर विलोकै बुध, धरम अरथ काम मोठ निजघटमें,
साधन आराधनकी सोज रहै जाके संग, चूलो फिरै मूरख मिथ्यातकी अजटमें॥५३॥

अर्थः—धर्मतुं साधन तो तेने कहीये के जे वस्तुना स्वभावने साधवो एटले व
स्तुना स्वभावने यथार्थ जाणवो, अर्थतुं साधन तेने कहीये के जे पट् ड्यने वि
लक्षण के० जुदां जुदां जाणवां, काम साधन तेतुं नाम ठे के, जे निरास पदनो
संग्रह करवो, एटले निस्पृह दशामां रहेबु, मोक्षतुं साधन ते ठे, के जेवडे पोता
नी सहज स्वरूप श्रुता प्रगट जावमां करवी, ए रीते अतरदृष्टि वडे एटले ह्यान
दृष्टि थकी बुद्धिमान पुरुष धर्म अर्थ काम ने मोक्ष ए चारपुरुपार्थने निरंतर पो
ताना घटमां देखे; एम चारे पुरुपार्थ साधवानी जेना संघाते सोज के० सा
मग्री रहे ठे, तोपण मूर्ख जे ठे ते मिथ्यातनी अटलमा चूल्या फिरे ठे ॥५३॥

हवे श्रुत व्यवहार नये करी वस्तुतुं सत्य स्वरूप कहेठेः-

अथ श्रुत नय वस्तु स्वरूप कथनं.-

सवैया इकतीसा.— तिहूँ लोकमाहि तिहूँ काल सब जीवनिको, पूरव करम
उदै आइ रस देतु है, कोउ दीरघाउ धरै कोउ अजपाउ मरै, कोउ डुखी कोउ सु
खी कोउ समचेतु है, याहीमें जीवायो याही माखो याहि सुखी कखो डुखी कखो
एसी मूढ आपु मानी लेतु है, याही अहं बुद्धिसो न विजसै नरम मूल यहै
मिथ्या धरम करम बंध हेतु है ॥ ५४ ॥

अर्थ - त्रणे लोक तथा त्रणे काल तेनेविषे जगतवासी सर्व जीवने पूर्व सं
चित कर्म उदय आवेठे, ने ते पोतानो कडवो तथा मीठो रस आपेठे, तेणे करी
ने कोई दीर्घ आयुष्य जोगवी मरेठे, ने कोई अल्प आयुष्यमांज मरेठे, कोई डुखी
ठे, अने कोई सुखी होयठे, कोई समचित के० सम जावमां रहेठे, एम पोत पो
तानी कमाईथी सर्व जीव सुखी अथवा डुखी ठे. तेने मूढ प्राणी जे ठे ते पोताना
साधन मानेठे के, जो में फलाणाने जीवाड्यो, फलाणाने मारी नाख्यो, फलाणाने
डुखी कोयो, ने फलाणाने सुख आप्युं. एवो मूढ अहं बुधीथी जर्ममां श्रुत्यो फरेठे,
अने ए चूल एनी मटती नथी, एज मिथ्या धर्म मूढने कर्मबंधनो हेतु थायठे॥५४॥

हवे फरी मूढनीज व्यवस्था कहेठेः- अथ मूढता कथनं.-

सवैया इकतीसाः- जहांजों जगतके निवासी जीव जगतमे, सबै असहाय
कोऊ काहुको न धनी है, जैसी जैसी पूरव करम सत्ता बांधि जिन, तैसी तैसी उदैमें
अवस्था आइ बनी है, एते परि जो कोउ कहै किमें जीवावो मारो इत्यादि अने

क विकल्प वात घनी है, सो तो अहं बुद्धिसो विकल जयो तिरू काल, मोले निज आत्म सकति तिन्ह हनी है. ॥ ५५ ॥

अर्थ - जाहांसुधी जीव जगतमा निवास करेते ताहांसुधी एक बीजाने असहाय पणे रहेते, कोई कोईनो सहायकारी नथी, तेम कोई कोईनो यणी नथी, अने जे वी जेवी पूर्व कालनेविपे कर्मसत्ता बांधी राखीते, तेवी तेवी उदय कालनेविपे जीवनी अवस्था बनेते, एटला उपर जे कोई कहे के मे आने जीवाडयो ने अने मार्यां, इत्यादि अनेक मनना विकल्पनी वातो घणी ते, ते सघली अहबुद्धि थकी थाय ते, अने ते जीव त्रणे कालने विपे अहकार बुद्धिमा मोले ते, तेणे शुद्ध ज्ञानशक्ती ने हणी ते, अने ते जीवनी ए मूढ अवस्था केहेवाय ते ए रहस्य ते ॥ ५५ ॥

हवे चार प्रकारे करीने जीवनी व्यवस्था उपर चार दृष्टांत आपेते.-

अथ चार प्रकार जीव व्यवस्था कथनं.-

सवैया इकतीसा - उत्तम पुरुषकी दशा ज्यो किसमिस झाख, बाहिज अजिंतर विरागी मूढ अंग है, मध्यम पुरुष नारीयर केसी नाति लिये, बाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है, अधम पुरुष बदरीफल समान जाके बाहिरसो विसै नरमाइ दिल संग है, अधमसो अधम पुरुष पुगीफल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरवंग है ॥

अर्थ - उत्तम पुरुषनी दशा किसमिस झाहू जेवी ते, जेम किसमिस झाहू बाहिरथी ने अंदरथी कोमल ते, तेमज उत्तम पुरुष बाह्य व्यवहार अने अन्यतर व्यवहारमा पण मूढ अंग के० कोमल ते, मध्यम पुरुष नारीयल सरीखो ते, जेम नारीयल बाह्य व्यवहारमा कठोर अने अत्यंतर कोमल ते, तेम मध्यम पुरुष पण बाह्यारथी कठण अने इश्यामा कोमल होय ते, अधम पुरुष बोर समान ते, जेम बोर बाह्य व्यवहारनेविपे नरम देखायते, ने माहेथी कठोर ते, तेम अधम पुरुष बाह्य नरमाइ राखे पण अंतरमा संग के० पाषाण जेवो कठण होयते, अने अधमाधम पुरुष पुगी फल के० सोपारी जेवोते, जेम सोपारी बाह्यने अंदर सर्वा गमा कठोर ते, तेम अधमाधम पुरुष माहे अने बाह्य सघले कठोर होयते ॥ ५६ ॥

हवे उत्तम पुरुषनी दशा कही बतावेते - अथ उत्तम पुरुष कथन -

सवैया इकतीसा -- कीचसो कनक जाके नीचसो नरेसपद, मीचसी मिचाई गरवाई जाके गारसी, जहरसी जोग जानि कहरसी करामाति दहरसी दौस पुद गल ठवि ठारसी, जाजसो जग विलास जाजसो शुवन वास, कालसो कुटव का

ज लोक लाज लारसी; सीवसो सुजस जानै वीवसो वखत मानै, ऐसी जाकी री
ति ताही वदत बनारसी. ॥ ५७ ॥

अर्थ - जे पोताना ह्येनेविपे सुवर्णने कादव सरखुं जाणे, अने नरेश पद
के० राज्य गादीने नीच सरखी जाणे, मित्राईने मीचली के० मर्ण जेवी जाणे, ने
गरवाई के० वडाई ते लीपवानी गार जेवी जाणे, रमायन प्रमुख इव्यजोगनी जा
तीने ते जेर सरखी जाणे, मंत्र शक्तीवडे जे करामत थाय तेने कहर सरखी जाणे,
देशी जापानेविपे हहर के० अनर्थ ते सरखी होसठे, अने पुढगलनी ठवी
ते राख समान जाणे, माया रूप जाल तथा जगतनो विलास तेने जाल जेवो जा
णे, सुवनवास के० घरवास ने तीरना जाल समान जाणे, कुटुंब कार्यने का
ल समान करी जाणेठे, लोकलाज राखवी ते मोहडानी जाल जेवी जाणेठे, सु
यशने सीव के० नाकना मेल समान जाणे, जाग्योदयने विष्टासमान जाणे, एवी
जेनी रीत होय तेने बनारसीदास वदना करेठे ॥ ५७ ॥

हवे मध्यम पुरुपनी दशा बतावे ठे - अथ मध्यम पुरुप यथा:-

सवैया इकतीसा:- जैसे कोठ सुनट सुजाय उग मूरखाय, चेरा जयो उगनीके
घेरामें रहतु है; उगोरी उतरि गई तब ताहि सुधि नई, पखो परवस नाना संकट
सहतु है तैसेही अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, मोलै आठों जाम विसराम
न रहतु है, ज्ञान कला जासी जयो अंतर उदासी पैं तथापी उदै व्याधिसो स
माधि न सहतु है ॥ ५८ ॥

अर्थ - जेम कोई स्वजावे सुनट होय ने तेने कोई उग मले ने ते सुनटने को
ई जडी मूली खवरावे, तेथी ते सुनट उगनो चेलो थई जाय, अने उगना घेरामां
पड्यो रहे, पढी ते सुनटे जे मूली खाधेली तेनी असर नीकली जाय ने पाठो पो
तानी बुद्धिमां आवे, तेवारे ते उगने दुर्जन करी जाणे, पण पोते परवश पड्यो ते
थी नाना प्रकारना संकट सहन कखा करे ठे, तेम अनादि कालनो मिथ्यात्वी जी
व परवस पडेलो नाना प्रकारना संकट सहन करेठे, ने आठ प्रहर संसारमां वि
कल थई ने मोले, पण विश्राम लिये नही, एटलामां ज्ञान कलानो जास थयो,
तेवारें अंतरमां उदासी थयो तो पण कर्मना उदयरूप व्याधी वडे समाधि लहेतो
नथी, आश्रवमांज रहेठे ॥ ५८ ॥

हवे अधम पुरुपनी दशा दृष्टांत दर्शने दृढावे ठे - अथ अधम पुरुप यथा:-

सवैया इकतीसा:- जैसे रांक पुरुपके जाये कानी कोडी धन, उजूवाके जाय

जैसे संजाई विद्वान है, कूररके जाये ज्यो पिमोर जिरवानी मग, सूकरके जाय ज्यो पुरीय पकवान है, वायसके जाये जैसे नीवकी निवोरी दाख, बालकके जाये दंत कथा ज्यो पुरान है; हिसकके जाये जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके जाये सुन बंध निरवान है ॥ ५९ ॥

अर्थ - जेम रांक पुरुपने काणी कोडी ठे तेहीज धन मनाय ठे, अने जेम घु बडने सथ्याकाल प्रजात मनाय ठे, अने कुकडाने पिमोर जीरवानी के० गाय नें सतुं पाणी ते दहीनो थडो मनाय ठे, अने सूकर के० सूअरने पुरीय के० विष्टा तेज पकवान मनायठे, अने कागडाने लीवोमी तेज झाहू जेवी मनायठे, अने बाजकने दंत कथा के० लोकनी कथा ठे तेज पुराण मनाय ठे, ने हिसकने हिंसा मांज धरम मनाय ठे तेमज मूर्खने पुन्यबंध ते निरवाण के० मोरूपद मनाय ठे, ए अधम पुरुपनी दशा जाणवी ॥ ५९ ॥

हवे अधमाधम पुरुपनी दशा दृष्टातेकरी दृढावेठे -अथ अधमाधम पुरुप यथा - सवेया इकतीसा.- कुजरको देखि जैसे रोप करी सुंसे स्नान, रोप करै निर्धन विलोकि धनवतको, रैनके जगैयाको विलोकि चोर रोप करै मिष्यमति रोस करै सुनत सिद्धतको, हसकों विलोकी जैसे काग मनि रोप करे, अजिमानी रोप करै देखत महतकों, सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोप करै त्योही डुरजन रोप करै देखि संतको ॥ ६० ॥

अर्थ - जेम हाथी जोईने कुतरा रीगे नराईने चुकेठे, जेम निर्धन पुरुप धनवा नने जोईने रीगे नराय ठे, जेम राते जागनार पुरुपने जोईने चोर रीगे नराय ठे, जेम मिष्याती सिद्धांतने शान्जली रीगे नराय ठे, जेम हंसने जोईने कागडो री गे नराय ठे, जेम महतने जोईने अजिमानी रीश करे ठे, जेम सुकवि के० सारा क विने जोईने कुकवि के० नगरो कवि रीगे बले ठे तेम अधमाधम पुरुप साधुने जो ईने छुट मन बडे रीगे नराय ठे ॥ ६० ॥

हवे बली अधमाधम पुरुपनी चाल कहेठे -अथ पुनः अधमाधम पुरुप वर्णन.- सवेया इकतीसा -सरलको सठ कहै वकताकों धीठ कहै, विनो करे तासो कहै धनको अधीन है, ठमीको निबल कहै दमीको अदत्ती कहै, मधुर वचन बोलै ता सो कहै दीन है, धरमीकों दनी निसधुहीकों गुमानी कहै, तिशना घटावै तासों कहै नागहीन है, जहा साधु गुण देखै तिन्हकों लगावै दोष, ऐसो कतु डूर्जनको हि रदो मलीन है ॥ ६१ ॥

अर्थ - सरल चित्तवालाने शठ के० मूर्ख कहे, वक्ता के० कथा कीर्तन वाच नारने धीठ कहे, विनय करनारने कहेके एतो धननी आधीनताथी करेठे, कृमाव तने निरबल कहे, इंडिय दमन करनारने अदाता कहे, अने मधुर जापण करना रने कहे एतो गरीब बीहामणो ठे, धरमीने दनी कहे, अने निस्प्रहीने अहंकारी कहे ठे, तृप्ना ठोडनारने नाग्यहीन कहे, ज्या एवां सरलतादिक गुण देखे त्यां दूषण लगाडे, एवुं दुर्जननुं दश्यु मलीन के०मेळुं होय ठे. अने एवा दुर्जनेज अधमाधम पुरुपनी प्रकृति जाणवी ॥ ६१ ॥

हवे मिथ्यादृष्टीनी अहंबुद्धिनुं वर्णन करे ठे - अथ मिथ्यादृष्टी वर्णन -

चोपाई - में करता में कीन्ही कैसी; अब यो करो कहौ जो ऐसी, ए विपरीत जाव है जामें; सो वरतै मिथ्यात दसामें ॥ ६२ ॥ दोहरा - अहं बुद्धि मिथ्या दसा, धरे सु मिथ्यावत; विकल जयो संसारमें, करै विलाप अनंत ॥ ६३ ॥

अर्थ.- हुं कर्ता तुं, आ वर्तमान कालमां केवी वात करुं, नविष्य कालमां जेवी कहीस तेवी करीश, एवी अहं बुद्धी ए विपरीत जाव ठे, अने ए जाव मिथ्या त दशाना ठे ॥ ६२ ॥ जे एवी अहंबुद्धि ठे तेज मिथ्यात दशा ठे, अने ए मिथ्यातद शाने धारण करे, तेज मिथ्यावत केहेवाय ठे, अने एवा पुरुपोज संसारनेविपे वि कल थका संसारमां नटकता डख सहता अनंत विलाप करेठे. ॥ ६३ ॥

हवे मूढ प्राणीनी व्यवस्था कही देखाडे ठे - अथ मूढ व्यवस्था कथन:- सर्वैया इकतीसा.-रविके उदोत अस्तहोत दिनदिन प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यो जीवन घटतु है, कालके असत तिनठिन होत ठीन तन, आरके चलत मानो काठसो क टतु है, एते परि मूरखन खोजै परमारथको, स्वारथके हेतु भ्रम नारथ वटतु है, लग्यो फिरै लोगनिसो पग्यो परजोगनिसो, विपे रस जोगनिसों नेकन हटतु है ६४ जैसे मृग मत्त वृपादित्यकी तपतिमांहि तृपावत मृपा जल कारण अटतु है, तैसे नववासी मायाहीसो हित मानिमानि गानिगामि भ्रमचूमि नाटक नटतु है; आगे को दुक्त धाय पाठे वठरा चराय, जैसे हग हीन नर जेवरी वटतु है, तैसे मूढ चेतन सुकत करतूति करै, रोवत हसत फल खोवत खटतु है. ॥ ६५ ॥

अर्थ.- सूर्यना उदयथी. ते अस्तसुधीमां अंजुलीना पाणीनी परें आयुष्य घटतु जायठे, अने कृण कृणविपे काल जे ठे ते शरीरने घासेठे, तेथी शरीर कृण यायठे, ए रीते तन आर के० शरीर तरफ काल गती रह्योठे, एटले जेम गख कोई वस्तुने कापे ठे तेम कालरूपी शस्त्र शरीरने कापेठे. एवु कार्य थई रह्युठे तोपण मूर्खजन जे ठे

ते परमार्थने खोजतो नथी, पण पोताना स्वार्थने माटेज घ्रमना चारथने खेंची रहे ठे, जोग के० परवस्तु जे काम क्रोधादिक ते साथे जागो फिरेठे, अने परपुञ्जलजोग तेथी पग्यो के० हलि मली रहेठे, तेथी विषयरसने जोगवतां जरा पण हटतो नथी.

अर्थ.—वली जेम कोई जवरो मृग होयठे ते वृषादित्य के० वृषसंक्रांतनो सूर्य एटलेजे घ्रमास तेना तापनेविषे अती तृषावत थयो थको मृषा के० फूठी इच्छा थकी पाणीने माटे अटतु हे के० जटकेठे, तेवी रीते संतारी जीव परस्वरूप मायाजालनेविषे हेत राखीने एटले तेने हितकारी मानीने घ्रमरूपी जूमीनेविषे उराव करी नटनी पेठे नाची रह्यो ठे ते केहेवो ठे तो जेवो कोई दृगहीन के० आंखविनानो पुरुष होय ने ते दोरी वाटतो होय त्यां पासे वाठडुं होय ते दोरीने चावी नाखतो होय तेने ते जाणी शकतो नथी तेथी तेनी मेहनत व्यर्थ जायठे तेम मूढ प्राणी जे ठे ते सुरुतनी क्रिया करेठे ल्यारे रोवत हसत के० अरति अने रतियें करी क्रियाकरेठे तेथी ते करेली क्रियाना परम फलने खोई देयठे ॥ ६५ ॥

हवे फरी बंधना करनार मूढ विषयिनी अवस्था कहेठे — अथ मूढ विषयी वर्ननं —

सवैया इकतीसा -- जिये डिढ पेच फिरे लोटन कबूतरसो, उलटो अनादिको न कहो छलटतु है, जाको फल ड ख ताही सातासो कहत सुख, सहित लपेटी असी धारासी चटतु है, ऐसे मूढ जन निज सपती न लखे क्योंही, मेरी मेरी मेरी निशिवासर रटतु है, याही ममतासों परमारथ विनसी जाइ, कांजीको हर स पाई दूध ज्यों फटतु है ॥ ६६ ॥

अर्थ — जेम लोटण खबुतर होय ते जो पांख बंध करीने पंच लाग्यो तेथी उलट पालट फरेठे, तेम मूढ प्राणी अनादिक कर्मनि कर्मबंध पेचमां पढेलोठे माटे अवलो मार्ग धरेठे, पण कोई रीते सवलो मार्ग धरतो नथी. अने जेजु फल ड.ख ठे एवा विषय जोगवडे जे कईक सातासपजे, तेने सुख मानेठे, जेम कोई मधे लपेटी तरवारनी धारने चाटे, जेमा मनी मीगास थोडी होय ने तरवारनी धार ते मीगास चाखवा जतां जीजने ठे. नाखे तेजुं ड ख बहु थाय, तेम मूर्ख प्राणी पोतानी ज्ञानादिक सपतीने किंदी ओलखतो नथी, पण परवस्तुने रात दिवस मारी मारी मानी रह्योठे एज फूठी ममतावडे परमार्थ जाणवानुं विनास थई जायठे, जेम कांजीना प्राणीना स्पर्शी दूध फाटी जायठे, तेम ममताथी परमार्थ बगडी जायठे. ॥ ६६ ॥

हवे मूढनी अहबुद्धिनी अवस्था कही बतावेठे — अथ पुन मूढ व्यवस्था —

सवैया इकतीसा:—रूपकी न जांक हिये करमको मांक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिर गांक जैसे घनमें, लोचनकी ढांकसों न मानै सदगुरु हांक, मोलै पराधीन मूढ रांक तिहूं पनमें, टांक इक मांसकी मलीसी तामें तीन फांक, तीनि कोसो अंक लिखि राख्यो काहु तनमें, तासों कहै नाक ताके राखिवेको करे कांक, लांकसो खरग बांधि बांक धरै मनमें. ॥ ६७ ॥

अर्थ—आत्मानुं रूप हइयामां नथी दीतुं. तेथी कर्मनो मांक पीयो, एटले कर्म नो रस व्यापी गयो, तेणे करी आत्मानुं स्वरूप जे शुद्ध ज्ञान ते दबाई रह्यु, कोनी पेठे जेम घन के० मेघरूप वादलानेविपे चड ढंकाई रहेठे. तेम तथा ज्ञानरूप लोचन उपर मिथ्यातनी ढांक पडी तेथी सदगुरुनी हांक के० आज्ञा तेने मानतो नथी, अने मूर्ख पराधिन थको रांक वचन बोलेठे, अने त्रणे कालनेविपे निशंक रहेठे. हवे मूढता प्रगट करी बलावेठे जे नाकठे ते टांक के० एक मांसनी सीमरी ठे ते नेविपे त्रण फांक ठे ते प्रत्यक्ष प्रमाणे देखियें ठैये, ते त्रण फांक केवा देखायठे ते कहेठे, ते जाणे त्रणनो आक त्रण फांकवालो कोइए शरीरमाज लखी राख्योठे, ते औदारिक अचयवने नाक कहेठे, अने ते नाकने राखवाने कांक के० लडाई करे ने विचारे जे मरीजईश तो पण नाक तो रहेसे एवा विचारथी लडाई करेठे खड धरेठे अने मनमां बांक धरीज राखेठे. ॥ ६७ ॥

हवे मूढना विषय रागीपणानी दशा कहे ठे— अथ मूढ विषय वरननः—

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ कूकर ह्युधित सूके हाम चावे, हाडनिकी कोर चिहू उर चुने मुखमें; गाल ताखू रस मांस मूढनिको मांस फाटे चाटे निज रुधिर मगन खादमुखमें, तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीतवाने, तामें चित्त साने हित माने खेद ड खमें, देखै परतठ बल हानी मल भूत खानी गहे न गिलानि पगी रहे रागरु खमे॥६८

अर्थ—जेम कोई कुतरो सुख्यो थको हाडकाने चावे ठे, ते हाडकुं सूकुं होय ठे, तो पण तेने चारे तरफ फेरवीने ते चाटे ठे, ने तेम चाटतां तेना गाल जीजने तालवानी चामडी फाटे ठे, अने तेथी लोही नीकले ठे ने तेज पोताना लोही ना खादथी मगन थई जाय ठे, तेमज जे मूढ विषयी पुरुष ठे, ते रती के० स्त्री पुरुष सयोगनी रीति जे श्रृंगार रस तेनेविपे मगन रहेठे, अने तेथी खेद ड ख उपजे ठे, तो पण तेमां सुख माने ठे, अने ते कार्यथी प्रत्यक्ष पणे बलनी हाणी थती जाणे ठे, तथा तेने मल मूत्रनी खाण छुए ठे. तेम उतां तेमां गि

ज्ञानपणुं ग्रहण करतो नथी, डुगंठा पामतो नथी, अने रागरूप रुख के० वृक्षमां मली रहेंडे, तेनो शोक आणतो नथी, उलटो तेमां चित लगावी आनंद मानेते ॥ ६७ ॥

हवे ससारीनी विकलता कहीने साधु जननी व्यवस्था कहे ठे

अथ संसारी तथा मुनी व्यवस्था कथन -

अभिन्न ठंड - सदा करमसो निन्न सहज चेतन कद्यो, मोह विकलता मानि मिथ्याती व्है रह्यो, करै विकल्प अनत, अहमति धारिके, सो मुनि जो थिर होऽ ममत्त निवारि के ॥ ६९ ॥

अर्थ - निश्चयनय वडे सहजरूपे चेतन ठे, ते सदा कर्मथी निन्न कद्यु ठे, पण व्यवहारमा पडीने मोहनुं विकलपणु मानीने मिथ्यामती थई रह्यो ठे, तेथी मन मा अनत विकल्प धरीने अहबुद्धि धारी रह्यो ठे, अने जेणे ममत्व निवारण कींनुं ने स्थिरता पाय्यो तेज साधु थयो ॥ ६९ ॥

हवे मिथ्यात नावथकी व्यवहारनु असंख्यातपणुं कहे ठे -

अथ मिथ्यात्वनाव व्यवहार एकत्व कथन -

सवैया इकतीसा - असंख्यात लोक परवान जो मिथ्यात नाव तेई, व्यवहार नाव केवली उकत है, जिन्हके मिथ्यात गयो सम्यक दरस जयो, ते नियत लीन विवहारसो मुक्त है, निरविकल्प निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सगुन मो ठ पथको दुकत है, तेई जीव परम दशामें थिररूप व्है के, धरममे दुके न करम सो रुकत है ॥ ७० ॥

अर्थ - एक लोकाकाश ठे, तेनी असंख्यातपणे कल्पना करीये, तेना प्रदेश असंख्यात ठे, तेप्रमाणेज मिथ्यात नाव ठे जीवना अथवसाय स्थान ठे, ए व्यवहारनावे केवलीनुं केहेबु ठे, अने जेनुं मिथ्यात गयु सम्यक् दर्शन थयु निश्चय लीन थयो, अने व्यवहारथी मुक्त थाय जेमा विकल्प नथी ते निरविकल्प, अने जेमा उपाधि नही ते निरुपाधि, एवी समाधिथी जे सगुण थईने एटले ज्ञानादिक गुणमय थईने मोक्ष मार्गने जुए ठे ते जीव परम दशामा स्थिर रूप थईने आत्मिक यर्ममा दुके पण कर्मथी रोकाय नही ॥ ७० ॥

हवे गुरुने शिष्य प्रश्न पूठे ठे - अथ शिष्य प्रश्न कथन -

कवित्तठंड - जे जे मोह करमकी परिनति, बंध निदान कही तुम सब, संतत निन्न शुद्ध चेतनसो, तिन्हिको मूल हेतु कहु अथ्व, कै यह सहज जीवको कौतुक, कै निमित्त है पुनज दध, सीस नवाइ शिष्य इम पूठत, कहै सुगुरु उत्तर सुनु जवा ॥ ७१ ॥

अर्थ:- मोह कर्मनी जे जे परिनति ठे, एटले राग वेषादिक ठे, ते तो तमे सर्व बंधनुं निदान कबु, अने एतो निरंतर शुद्ध चेतन थकी चित्र ठे, ते माटे ए बंधनो हवे मूल हेतु कहो; ए बंध थाय ठे ते शुं जीवने सहज कौतुक ठे, के ए ने पुञ्जल इव्य निमित्त ठे ते कहो एम शिष्य माथुं नमावीने गुरुने पूठे ठे हवे गुरु उत्तर आपे ठे के हे नव्य प्राणी एनु उत्तर शानलो ॥ ७१ ॥

अथ गुरु वचन:-

सवैया इकतीसा:- जैसे नाना वरन पुरी बनाइ दीजै हेति उज्जल विमल मनु सूरज करांति है, उज्जलता जासै जब वस्तुको विचार कीजै, पुरीकी जलकसेा वरन जांति जांति है; तैसे जीव दरबको पुगल निमित्त रूप, ताकी ममता सो मोह मदिराकी मांति है, जेद ज्ञान दृष्टिसो सुनाव साधि लोजे तहां, साधि शुद्ध चेतना अवाची सुख शांति है ॥ ७२ ॥

अर्थ:- जेम सूर्यकांति मणी ठे तेम बीजो काश्मिरी पापाण तेवोज ठे, ने ते महा उज्वल ठे, ने तेनी नीचे तरेतरेना रगनी पुरी बनावी आपिये ल्यारे तेमां जात जातनो रग देखाय, पण जारे ते सूर्यकांति मणीना स्वनावनो विचार करिये, तारे तो तेनी कांति जे उज्वल ठे, तेज मनमां आवे, अने दीगामां तो नीचेनी बनावेली रगनी पुरणीनी जलक पडेठे तेथीज तरेवार रग वरण देखायठे, तेरीते जीव इव्यनी अशुद्ध दशानुं निमित्त कारण पुञ्जल इव्य ठे, तेनी ममताथी मोह रूप मदिरानुं उन्मत्तपणुं ठे, अने ज्यारे जम चेतननी जेद ज्ञान दृष्टीवरे चेतननो स्वनाव साधीये, ल्यारे साची शुद्ध चेतनाज जासे. अने अवाच के० वचन गोचर नही, एवी रीतनी सुख शांति ठे तेज जासे ॥ ७२ ॥

हवे वस्तुना संयोगथी स्वनावमां जेद पडेठे, ते उपर दृष्टांत आपेठे.-

अथ संयोगिका स्वनाव वर्णन -

सवैया इकतीसा:- जैसे महिमंजलमें नदीको प्रवाह एक ताहीमें अनेक जांति नीरकी ढरनि है, पाथरको जोर तहां धारको मरोरि होति काकरिकी खानि तहां कांगकी जरनि है, पौनकी फकोर तहां चचल तरग उठे, नूमिकी निचानि तहां चौरकी परनि है; तैसे एक आतमा अतंत रस पुदगल झूकी संयोगमें विचाव की जरनि है ॥ ७३ ॥

अर्थ:- जेम पृथ्वी मंजल उपर नदीनो प्रवाह एकरूप ठे, अने तेज नदीना प्रवाहमां पाणीनुं व्हेवुं अनेक तरेनुं ठे, जे ठेकाणे नदीना प्रवाहमां मोटा मोटा

પથરા થાવી અહેલા હોય ત્યાં ધાર મરડાઈને પને ઠે, અને જાંઠાં કાંકરી ઘણી હોય તાં જાગની ઝરની કે૦ જાગ એટલે પાણીના જરા નનકી ઝઠેઠે અને જાંઠાં પવનની ઝકોર ચાલતી હોય તાહાં ચચલ તરંગ ઝઠેઠે, અને જે ઠેકાણે જમીન નીચી હોયઠે તાહાં નોર પડેઠે વમલ થાયઠે, તેમ આત્મક્રમ્ય ઠે, તેને પુજ્જલ ક્રમ્યનો સંયોગ ઠે અને રસ જે ઠે તે પટ ગુણી હાની વૃદ્ધીથી અનત ઠે, તેનો સયોગ થયે આત્માનેવિપે વિનાવની નરણી થાયઠે ॥ ૭૩ ॥

હવે આત્મા અને શરીર એક મેક વંધાઈ રહ્યા ઠે પણ લક્ષણ નેદ છુદા છુદાઠે તે વતાવે ઠે -- અથ આત્મશરીર લહન નિહન કથન -

દોહરા - ચેતન લહન આત્મા, જડ લહન તન જાલ, તનકી મમતા ત્યાગિ કે, લીજેં ચેતન ચાલ ॥ ૭૪ ॥

અર્થ - આત્માનું ચેતન લક્ષણ ઠે શરીરનું જડ લક્ષણ ઠે, તેથી શરીરની મમતા ઠોમીને ચેતનનું શુદ્ધ જ્ઞાનપણું તેનું ગ્રહણ કરી લેવું ॥ ૭૪ ॥

હવે નિ.કેવલ આત્માની શુદ્ધ ચાલ કહેઠે -- અથ આત્મા યથા.-

સવૈયા તેઈસા - જો જગકી કરની સવ ઘનત, જો જગ જાનત જોવત જોઈ, દેહ પ્રમાન પે દેહસું દૂસરો દેહ અચેતન ચેતન સોઈ, દેહ ધરે પ્રચુ દેહસું નિહન રહે પર ઢન લખે નહિ કોઈ, જઠન વેદિ વિચઠન વૂજત અઠનિસો પરતઠ ન હોઈ ॥ ૭૫ ॥

અર્થ - જે પદાર્થ સર્વ જગતની કરણી કરેઠે, એટલે ચતુર્ગતિ ગમન કરેઠે, અને જે જગતને જાણેઠે, અને જોવત કે૦ દેખેઠે, પોતાની દેહને પ્રમાણે ઠે, પણ દેહથી તે છુદો ઠે. દેહ અચેતન પિમ ઠે, અને આત્મા ચેતનપિમ ઠે દેહધારી ઠે, પ્રચુ ઠે પણ દેહથી મિત્ર ઠે દેહનેવિપે પ્રવઠન કે૦ ઢકાઈ રહ્યો ઠે, એને કોઈ લખતો નથી, પણ એના જે લક્ષણ ઠે તેને વેદી કે૦ જાણીને વિચક્ષણ પુરુષ એને ડ લખેઠે એવો એ આત્મા અક્ષ કે૦ ક્ષિયથી પ્રત્યક્ષ નથી ॥ ૭૫ ॥

હવે દેહની ચાલી કહેઠે - અથ દેહ યથા -

સવૈયા તેઈસા - દેહ અચેતન પ્રેત દરી રજ રેત નરી મલ લેતકી ક્યારી; વ્યાધિકી પોટ અરાધિકી ડંટ ડપાધિકી જોટ સમાધિસોં ત્યારી, રે જિય દેહ કરે સુખ હાનિ ડને પરિ તોહિ તુ જાગત પ્યારી, દેહ તુ તોહિ તજેગિ નિદાન પિ તુંહિ ત જે ક્યું ન દેહકિ યારી ॥ ૭૬ ॥

અર્થ - દેહ અચેતન ઠે, પ્રેત દરી કે૦ જમતારૂપ પ્રેતની ગુંફા ઠે રજ કે૦ લોહી, રેત કે૦ વીર્ય તે થકી નરેલી ઠે, અને મલરૂપ લેતરની ક્યારી ઠે. વ્યાધી

रोगनी पोट ठे, आराध के० आत्माने ठुपावाने उट ठे अने उपाधिनी जोट के० मेजारूप ठे, एने विषे असमाधिज रहेठे, समाधि रेती नथी माटे अरे जीव ए देह ते सुखनो नाश करे ठे एवी ठे, तोपण तने ए देह प्यारी लागेठे. अरे जीव तूं समजके ए देह निदान तनेज तजज्ञो पण तु ए देहनी यारीनो त्याग करतो नथी.

दोहरा— सुनु प्राणी सदगुरु कहै, देह खेहकी खानि; धरै सहज डख दोष कों, करै मोढकी हानि. ॥ ७७ ॥

अर्थः-- सदगुरु कहेठे के अरे प्राणी सांजलो देह ठे ते खेह के० धुजनी खा ए ठे. एनो सहज स्वभाव वात पित्त कफ रूप ड ख दोषने धरनारो ठे. अने मोढ नी हाणी करे ठे. ॥ ७७ ॥

हवे देहनुं वर्णन करेठेः-- अथ देह वर्णनः--

सर्वया इकतीसा— रेतकीसी गढी किधों मढी है मसान केसी अंदर अंधेरी जैसी कंदरा है सैलकी, ऊपरकी चमक दमक पट नूखनकी, धोखे लागे जली जैसी कली है कनैलकी; आँगुनकी आमी महा नोमी मोहकी कनोंडी, मायाकी मसर ति है मूरति है मैलकी, ऐसी देह याहिके सनेह याकी संगतिसो व्है रही हमारी मति कोजू केसे बैलकी ॥७८॥ और और रक्तके कुंम केसनिके फुंम, हाम नि सों जरी जैसे थरी है चुरेलकी, थोरेसे धकाके लगे ऐसे फट जाइ मानो, कागदकी पुरी किधों चादर है चैलकी; सूचै भ्रम वानि गानि मूढनिसो पहिचानि करै सुखहा नि अरुखानि वदफैलकी, ऐसी देह याहिके सनेह याकी संगतिसों व्है रही हमारी मति कोजू केसे बैलकी. ॥ ७९ ॥

अर्थ — जाणे रेतीनी गढी बाधी होय के मसाएनी मढी एटले अपवित्र ठेका एो हाड मासतुं एक थुं कथुं होय, वली जेनी अंदर सेल के० पहाडनी कदर के० गुफा जेवुं अंधारुं ठे, एवा अपवित्र देहरूप स्थानठे तेउपर नूपणना चमक दमकथी शो जे ठे, धोखे के० फूठ जनकाथी देह जली लागे ठे. ते उपर दृष्टांत ठे के, जेम कनेरनी कली उपरथी सुंदर देखाय ठे, पण तेमां अंदर विजकुज सुवास होती नथी; तेथी उचाटकारी लागे ठे, अथगुणनी उरमी ठे महाखुंमी ठे, अने मो हनी कनोडी के० मोहनी काणी आंख ठे, तेथी सजतुं नथी, अने मायानी मसर रति के० मायानो समुदाय ठे; एवी मेजनी मूरती ए देह ठे, एना स्नेहथी अने सग तथी अमारी मति शेलडी पीलवानुं कोल्हु तेना बलद सरखी बनी गई ठे ॥७८॥

वली ए देहनेविषे ठेकाणे ठेकाणे लोहीनां कुंमजा ठे, ने अपवित्र केशनी फुंम

ठे, तेमा हामकां जरेला ठे जेम चुडेल अंतरीनुं स्थानक होय तेवी ए देह ठे. थोडो धको लागवाथी ए देह एवी फुटी जाय ठे के, जेम कागलनी पुडी अने छुं नी मेली चादर ठे, ते जेम जरा टकोराथी फाटी जाय, तेम देह फाटी जाय ठे, एवी ए देहनी ममताथी त्रम वाणी के० मिथ्यावाणी सुचे के० कहे, अने मूढ लोक एनी पिठान राखे ठे, अने ए देह सुखनी हानी करता ठे, अने बढफेलीनी खाण ठे. एवी ए देहना स्नेह तथा एनी सोबत थकी अमारी बुद्धि शेलडी पीजवा ना कोट्हुना बलदनी गति जेवी थई गई ठे ॥ ७९ ॥

हवे कोट्हुना बलदनी अवस्था अने तेनी बराबर संसारी जीवनी गती ठे, एवु स्पष्ट करी बतावे ठे, अथ कोट्हुका बैलकी अरु संसारी जीव समानरूप कथन -

सवैया इकतीसा - पाटी बंधे लोचनसो सकुचै दबोचनिसो कोचनिकोसोचसोनि वेदे खेद तनको, धाड्वोही धया अरु कथा माहि लग्यो जोत, वार वार आरस है कायर है मनको, जूखसहे प्यास सहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उ सास लहे ढिनको, पराधीन दूमै जैसो कोट्हुको कमरो बेल तेसो स्वजाव जै या जगवासी जनको ॥ ८० ॥

अर्थ - जेनी आख उपर पाटी बाधी ठे दबोच के० पगथी ठेलडुं, तेथी संको चाय ठे, अने परोणानी आरना धोच वागे ठे, तेनी सोचनाथी शरीरने खंचवा दे न ही, ने दोडतो फिरे पोताना धयामा धावतोज रहे, ने खांधे जोतर लागो रहे ठे, वार वाग आरनो मार पडे ठे, ते सहन कखा करे, अने मननो कायर ठे, जूखने पण वेठे ठे, अने दुर्जननो त्रासपण खमे ठे, अने स्थिरता पकडतो नथी, हण वार पण सुखे मोडेथी स्वास लई शकतो नथी, एरीते पराधीन थको जेम कोट्हुनो कमरो, के० काम करनारो बलद घुमेठे, तेम जगत वासी लोक घुमे ठे, अर्थात हे नाई कोट्हुना बलद सरखो तेमनो पण स्वजाव ठे ॥ ८० ॥

हवे जगतवासी जीवनी व्यवस्था कहे ठे - अथ जगतवासी यथा -

सवैया इकतीसा - जगतमें मोले जगतवासी नर रूप धरी, प्रेतकैसे दीप कि धो रेत कैसे धुहे है, दीसे पटजूखन आमंवरसो निके फिरे फीके ढिनमाकि सांजी अवर ज्यो सुहे है, मोह के अतल दगे मायाकी मनीसो पगे दाजकी अनीसो लगे कसकेसे फुहे है, धरमकी बुद्धि नाही उरजे नरम माहि नाचि नाचि भर जाहि मरीकेसे चुहे है ॥ ८१ ॥

अर्थ.- जगतवासी जीव मनुष्यरूप धरीने डोली रह्या ठे, ए केवा ठे जाणियें

प्रेतना दीप ठे, ते जेम जलदी मटी जाय ठे, तेम ए पण समजवा. वली रेंति ना घुमाडा जेवा ठे, तथा वस्त्र नूपणना आडंबरथी शोनायमान देखाय ठे, अने कृपेकमा फीका थई जाय ठे, जेम सांज सम आकाशमां वादल रग वदले ठे, तेम जाणवा वली मोहनी अगनीथी दांजे ठे, ने मायानी मनी के० पोतापणुं तेथी पगे के० व्यापी रह्या ठे, जाणिये डाननी अणीवपर लागेजा पाणीना बिंडु सर खा ठे, वारना विदु जेवा ठे धरमनी ओलखाण जेने नथी अने त्रमनेविपे अरुजी रह्या ठे, जेम मरी उतपादनां उदरडा नाची नाची ने मरी जाय ठे. तेम ए सं सारी जीव नाची नाचीने मरण पामेठे ॥ ५१ ॥

हवे जगतवासीनी मोह व्यवस्था कहेठे— अथ जगत व्यवस्था कथन—

सर्वथा इकतीसा— जासो तूं कहत यह संपदा हमारी सोतो, साधनि अमारी ऐसे जैसे नाक सिनकी; जासो तूं कहत हम पुन्य जोग पाई सोतो, नरककी साई है वमाई देह दिनकी, घेरा मांहि पर्यो तूं विचारै सुख आखिन्दिको, माखि नके चूटत मिठाई जैसे जिनकी; एते परि होहि न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक बिनकी ॥ ५२ ॥

अर्थ — अरे प्राणी जेने तूं कहेठे के आ मारी संपत्ति ठे, तेने तो साधु लोके एवी रीते नाखी दीथीठे, के जेम नाकना मेलने नाखी देयठे. अने जे बडाईने तु क हेठे के पुन्यना जोगथी हुं पाम्यो बु ते तो नरकनी सहायी ठे, जे राजादिकनी साहेबीठे. ते दोड दिवसनी ठे ए परीवारना घेरामां तु पड्यो थको आंखनुं सुख समजे ठे, पण ते मिठाईनी ऊपर माखीनी पेटे-टोलानो जणजणाट थई रहे तेम परीवारनो घेरोठे एवुं ठतां जगवासी जीव उदास थतो नथी साधु जो जोश्ये तो जगतनेविपे असाताज ठे, एक कृणमात्र पण शाता नथी. ॥ ५२ ॥

दोहरा— यह जगवासी यह जगत, इनसो तोहि न काज; तेरे घटमें जग व सै, तामें तेरो राज ॥ ५३ ॥

अर्थ — ए जे पुर्वे वखाएया एवा जगतवासी लोक ठे, अने ए लोकोनो ज्या वास ठे, तेने जगत जाणवु, ए साथे संबंध राखवानुं तारुं काम नथी, पण तारा घटनेविपेज जगतनो वास ठे, अने ते जगतमां तारुं राज्य ठे ॥ ५३ ॥

हवे जे पिंमे ते ब्रह्माने ए वात साचीठे, एवुं सिद्ध करी आपेठे —

अथ पिंम ब्रह्मान वनेन—

सर्वथा इकतीसा— याही नर पिंममे विराजे त्रिभुवन धिति, याहिमें त्रिविध प

रिणाम रूप शृष्टि है, याहिमे करमकी उपाधि ड ख दावानल, याहिमे समाधि सु ख वारिदकी वृष्टि है, यामे करतार करतूति याहिमें विनूति, यामें जोग याहीमे वियोग यामें घृष्टि है, याहिमें विलास सब गर्हित गुपतरूप, ताहिको प्रगट जाके अंतर सु दृष्टि है ॥ ८४ ॥

अर्थ.—मनुष्य पिंमनेविपे कटीनी नीचे पाताल लोकठे, नानि ते तिर्यक लोकठे, ते उपर उर्ध्व लोकठे, एवी त्रिभुवननी स्थिति जाणवी, अने एनेविपेज कईक परिणाम उपजे ठे, ने कईक नाश पामे ठे, ने कई स्थिर ठे, एवी त्रिविध शृष्टि बनी रही ठे, अने एज पिंममा आत्माने कर्मनी उपाधि बलगी ठे, तेज डखकारी दावा नल के० अग्रिनो समुह लाग्यो ठे, अने एज पिंममां कोईवारे समाधि सुख आवेठे तेज वादलनी वृष्टी जाणवी, ते दावानल उपर मेघनी वृष्टी ठे, एज पिंममा कर्म नो कर्त्ता पुरुष ठे, एज पिंममा कर्त्तानी क्रिया ठे, ए पिंममांज विनूति के० झा नादिक संपत्ति ठे, एज पिंममा कर्मनो जोग ने कर्मनो वियोग ठे, अने एज पिंममा आत्मानु घृष्ट के० दलन जे शुनाशुन गुणोमां घनडाई रहेतुं ते ठे, एरीते ए पिंममा गर्जित के० मध्यजागमा गुप्तरूपे सर्व विलास ठे पण जेवा अतरमा सु दृष्टीनो प्रकाश ठे, तेने सर्व विलास प्रत्यरूपणे जग्याये ठे ॥ ८४ ॥

हवे ए वातनो उपदेश गुरु कहे ठे — अथ गुरुपदेश कथन—

सवैया तेईसा — रे रुचिवत पचारि कहै गुरु, तू अपनो पद गूफत नाही, खोज दिये निज चेतन लठन है निजमे निज गूफत नाही, सिद्ध सुखद सदा अति उज्जल, मायके फंद अरूफत नाही, तोर सरूप न उंदकि दोहिमें तोहिमें है बुद्धि सूफत नाही ॥ ८५ ॥

अर्थ — पचारी के० बोलावीने गुरु कहे ठे, के रे रुचिवत नव्य, तू पोतातुं पद के० स्थान तेने जाणतो नथी पोतातुं चेतन लक्षण दइयामा खोज, ए पोतातुं लक्षण पोताने विपे ठे ते गूफत के० गुप्त नथी, तारू स्वरूप सिद्ध समान ठे स्वर्गद के० निज आधीन ठे, सदा अति निर्मल ठे, पण मायानी जालना फंद मा पड्यु ठे, तेमांथी वूटी शकतो ? स्वरूप ंदनेविपे नथी एटले ब्रम जालनी द्विप्रिध दगामा नथी, तारू तने सजतुं ॥ ८५ ॥

हवे

वडे

ते सम

ज्ञान

सवैया ते

के, के

इ प्रनाम करै गढि मूरति, केइ पहार चढे चढि ठीके, केइ कहे असमान के ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेठि जमीके; मेरो धनी नहि दूरदिशांतर मोमहि है सुहि सजतनीके.

अर्थ - कोई पोताना परमेश्वरने उलखवाने उदासी थई बेसी रहे ठे, कोई क ई द्वेत्रनेविपे जतो रहे ठे, कोई परमेश्वरनी घडेली मूरतिने प्रणाम करे ठे, कोई परमेश्वरने पामवाने ठीकामां बेसी पर्वतने उपर चढे ठे, कोई परमेश्वरने आस्मान उपर ठे एवु कहे ठे, कोई कहे ठे के, परमेश्वर जमीननी नीचे ठे, ए कुरान वालानी श्रद्धा ठे, पण एविपे मारो निश्चय तो ए ठे के मारो धणी तो काई दूर देश नथी, पण माराविपेज ठे. एम अनुभवथी मने सारुं मालम पडे ठे ॥ ८६ ॥

गोहरा:- कहै सुगुरु जो समकित्ती, परम उदासी होइ, सुथिर चित्त अनुजौ करे, यह पद परसै सोइ ॥ ८७ ॥

अर्थ- सदगुरु कहे ठे के जे समकित्ती होय ते परम उदासी रूप थई चित्त ने स्थिर राखीने निज अनुभव अन्यासथी पोताना पढ़ने पामे ॥ ८७ ॥

हवे मननी चंचलता दर्शावी तेने स्थिर केम राखवु ते उपदेशे ठे.-

अथ मन स्वरूप कथन-

सवैया इकतीसा - ढिनमें प्रवीन ढिनहीमें मायासों मलीन, ढिनकमें दीन ढिन मांहि जेसो शक है, लिये दोर धूप ढिन ढिनमें अनंतरूप कोलाहल गनत मथान कोसो तक्र है, नट कोसो थार किधों हार है रहट कोसो नदी कोसो नौर कि कुंजार कोसो चक्र है, ऐसो मन त्रामक सुथिर आजु केसो होइ ओरहिको चचल अनादिहीको वक्र है. ॥ ८८ ॥ धायो सदा काल पै न पायो कहु साचो सुख रूपसो विमुख डुख कूपवास वसा है, धरमको घाती अधरमको संघाती महा, कुराफाती जाकी संनिपातीकीस्ती दसा है, मायाको ऊपटि गहै कायासो लपटि रहै, चूद्यो त्रम नीरमें बहीरकोसो ससा है, ऐसो मन चचल पताका कोसो अंचल सु ज्ञानके जगसे निरवान पथ धसा है. ॥ ८९ ॥

अर्थ - आ मन कृणमां प्रवीण थायठे, कृणमां मायानेविपे मलीन थायठे, कृणमा दीन दशा धरेठे, कृणमा शक के ० इंड जेवुं बनेठे, कृणमा दोड धाम करेठे, कृणमां अनंतरूप धरे ठे, जेम दहीने बलोवता कुलाहल थायठे, तेवु कुलाहल ए मन करेठे, वली नट जे नाचनार घुमे तवुं, के अरहटनी माला घुमे ते वुं, के नदीनो वमल घुमेठे तेवुं, अथवा कुंजारतुं चक्र फरेठे तेवुं कहुं, एवो सदा काल मननो त्रामक स्वभाव ठे, एवु ए मन आज केम स्थिर थाय? जाते चच

ल अने अनादि कालथी वाकुं चालनारुं मन ठे वली केवुं ठे ? ॥७७॥ हमेशा दोडतु फरेठे, पण एने किहाय साचु सुख प्राप्त थतु नथी, पोताना समाधिसुखथी विमु ख थसुठे, अने ड खरूप कूप वासमा वस्युं ठे, वली ए मन धर्मतुं घाती ठे, अ ने अर्थतुं संघाती ठे, एतुं महा कुराफाती ठे, ए मननी दशा तो जेम कोई पुरु पने सनेपात थयो होय तेना सरखी ठे. डोह तथा वचनाने जट ग्रही लिये ने कायाना मोहथी मगन रहे, ने त्रम जालमां पदी खुल्युंज फरे, जेम कटकनी जी ममां ससल्लु आवी पडे ने जमतु फरे, तेतुं मन ठे ने पताका के० ध्वजा तेना अं चल के० ठेडानी पठे जाणवु. ते ज्यारे ज्ञान प्रगटे ल्यारे निरवाण के० मोह मार्गी तेने विपे गमन करे एवु ठे ॥ ७९ ॥

दोहरा.— जो मन विषय कपायमे, वरते चचल सोइ, जो मन ध्यान विचार सो, रुके सु अविचल होइ ॥ ९० ॥ ताते विषय कपायसो, फेरि सु मनकी वा नि, शुद्धात्म अनुजोविपे, कीजे अविचल थानि ॥ ९१ ॥

अर्थ.— जो मन विषय कपायरूप राग द्वेषमां वतें तो चचल जाणवु अने जो ए मन राग द्वेष ठांभी ध्यान विचारथी रोक्युं रहे तो अविचल जाणवु ॥ ९० ॥ माटे विषय कपायमा मननी लागणीठे तेने काडी निज शुद्धात्मना अनुभवमा लगाडीने आ मनने अविचल करियें ॥ ९१ ॥

हवे मन स्थिर करवाने आत्मानो विचार करवो ते कहेठे -

अथ विचार शिक्षा कथनं -

सवैया इकतीसा -अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज, निराधार निगम निरजन निरंध है, नानारूप जेप धरे जेप को न लेस धरे, चेतन प्रदेश धरे चेतनाको पंध है, मोह धरे मोहीसो विराजे तोमे तोहीसो न तोहिसो न मोहीसो निरागी निरबंध है, ऐसो चिदानद याही घटमे निकट तेरे, ताही तू विचार मन और सर्व धंध है ॥ ९२ ॥

अर्थ.— ए आत्मा अलख ठे, अमूरति ठे, अरूपी ठे, अविनाशीठे अज के० ज न्यो नही एवो ठे, अने जेने कोईनो आधार नही, ज्ञानरूपी ठे, तथा रंगविनानो ठे, ने त्रिइ विनानो ठे, व्यवहारमा जोईये तो नाना प्रकारना वेप धरनारो ठे, निश्चयमा जोईये तो वेपनो लेश धरे नही मात्र चेतनाना प्रदेशतुं धारण करनारो ठे, अने चेतना नो पंध के० पुजरूप ठे, ए उपदेश मनने बाह्यात्मानो ठे, ते बाह्यात्मा मनने कहे ठे के, ए चिदानद जेठे ते राजाठे, ने आ पिमनो मोह धरेठे, अने हे मन ए चिदानंद

तारामां ताराजेवो विराजे ठे, पण निश्चैनयथकी तारेविपे ने मारेविपे एने मोह नथी, एवुं निरागी निरबंध ठे, एवो जे चिदानंद जगवान ठे, ते अरे मन जे घट मांहे जिहां तु वसेठे तेज घटमां ते पण वसेठे माटे ते ईश्वरनोज विचार तुं कर, बीजो विचार सर्व दंड रूपठे. ॥ ९३ ॥

हवे ए चिदानंदनो जे रीते शुद्धानुभव थाय, ते रीते मनने उपदेश करेठे.—

अथ शुद्धानुभव शिक्षा कथनः—

सर्वेया इकतीसा.— प्रथम सु दृष्टिसो सरीररूप कीजे निन्न तामें और सूठम शरीर निन्न मानियें, अष्ट कर्मजावकी उपाधि सोई किजे निन्न ताहुमें सुबुद्धिको विलास निन्न जानिये; तामें प्रभु चेतन विराजित अखंजरूप, वहे श्रुत ज्ञानके प्रवान हीक आनिये, बाहिको विचार करि बाहिमें मगन दुजे, वाको पद साधि वेकों ऐसी विधि मानिये ॥ ९३ ॥

अर्थः—प्रथम सम्यक् दृष्टिवडे शरीररूप बाह्यात्मा निन्न राखवो, ते बाह्यात्मा नेविपे बीजुं सूक्ष्म शरीर कर्म संबंधी अंतरात्मा ठे ते पण निन्न जाणवो, ते अंत रात्माथी परमात्माना ज्ञान दर्शनतुं आत्तादन थायठे. एवु अष्ट प्रकारतुं कर्म तेना जावनी उपाधि ते पण निन्न जाणवी, अने ते अंतरात्मानेविपे सुबुद्धिनो विलास जे चेद ज्ञानादिक ते पण निन्न जाणीये, अने ते सुबुद्धि विलासमा चेतनरूपी प्रभु जे ठे ते अखंजरूपे विराजे ठे, अने ते चेतन श्रुत ज्ञानना प्रमाणथी हृदयमां सारीपठे उराविये, ए रीते हे मन तुं तेनाज विचारमां मग्न रेजे, ने ते चेतनतुं पद साधवाने एटले मोह मार्ग ग्रेहवाने एज विधी युक्त ठे एम जाणजे ॥ ९३ ॥

हवे ज्ञाता जीवतुं स्वरूप वर्णवे ठे.— अथ ज्ञानी जीव कथन —

चोपाई.— इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने, रागादिक निजरूप न माने; तातें ज्ञानवत जगमांही, करम बंधको करता नाही. ॥ ९४ ॥

अर्थ.— ए रीते वस्तुनी व्यवस्था जाणे अने राग द्वेषादिक जे जाव ठे, तेने पोतातुं रूप न माने, तेणे करीने ज्ञानवतने जगतमां कर्म बंधनो कर्त्ता कह्यो नथी आव कर्म तेने बंध करी शकता नथी ॥ ९४ ॥

हवे ज्ञातानी क्रिया कहे ठे.— अथ ज्ञाताकी क्रिया कथनः—

सर्वेया इकतीसा.— ज्ञानी चेद ज्ञानसां विचेठि पुदगल कर्म, आतमाके धर्मसां निराजो करि मानतो; ताको मूल कारन अशुद्ध राग जाव ताके, नासिवेको शुद्ध अनुभो अन्यास गानतो, याही अनुक्रम पररूप निन्न बंध त्यागि, आपुमाहि अ

पनो सुनाउ गहि आनतो, साधि शिवचाल निरबंध होतु तिहू काल, केवल विलोक पाई लोकालोक जानतो ॥ ९५ ॥

अर्थ - ज्ञाता होय ते जेद ज्ञानवडे पुदगलिक कर्मनुं विलक्षण केम करे ते कहे ठे आत्मिक धर्मथी पुदगलिक धर्मने जूदो करीजाणे, एम विलक्षण करे, अने ते पुदगल धर्मनु मूल कारण अष्टु ६ रागदेषादिक जाव ठे, तेनो नाश करवाने शुद्ध अनुभव अन्यास जे रीते पूर्वे कह्यो ते प्रमाणे अवस्था देखी अन्यास राखे, एरीते अनुक्रमे प्रथम सुदृष्टिथी शरीररूप निन्न करवु, ए अनुक्रमे पूर्व संबंधथी अनादि कर्म बंधने त्यागीने पोतानेविषे पोतानोज ज्ञानादिक स्वजाव ग्रहण करे, एम शिव पदनी साधना करीने त्रणे काल निर्वंध थाय, तेवो थई केवल ज्ञान पामीने लोका लोकने जाणनार थाय ॥ ९५ ॥

हवे सम्यक्त धारीनुं पराक्रम कही बतावे ठे.-अथ सम्यक्तधारी वैजव वर्णन -

सवैया इकतीसा - जैसे कोउ हिसक अजान महा बलवान, खोदि मूल विरख उखारे गहि बाहुसो, तैसे मतिमान दर्वकर्म जावकर्म त्यागि, व्है रहै अतीत मति ज्ञानकी दसाहुसो, याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे ज्योति केवल प्रधान सवि ताहुसो, चुके न सकतिसो लुके न पुदगलमाहि, हुके मोपथ लको रुके न फिरि काहुसो ॥ ९६ ॥

अर्थ - जेम हिसक पुरुष नील प्रमुख जे हिसाना फलथी अजाण ठे, अने महा बलवान ठे, ते वृहना मूलने खोदीने पठी पोताना जुजना बले करी ते ने उखेडी नाखे ठे, तेम मतिमान के० सम्यक्ती पंक्ति जे ठे, ते पुदगल स्वरूपी इव्य कर्मने, अने ज्ञानावरणी दर्शनावरणी इत्यादि आठ जाव कर्मने त्यागीने ज्ञान दशावडे अतीत के० कर्मरहित थई रह्यो ठे, अने कृण कृणमा ए क्रियाना अनुसारे मोह अंधकारने मटावे ठे, अने तेथी केवल ज्ञाननी ज्योति उदय थाय, ते ज्योति मति ज्ञान प्रमुख सर्व ज्ञानोमा प्रधान ठे, अने एथी अनंत वीर्य प्रगटे, ने फिरि ए शक्ती ते चुके नही, अने मोह स्थानने जई हुके, अने कोईथी रोकाय नही ॥ ९६ ॥

१३३ श्री नाटक समयसारविषे बंधदार बालावबोध रूप अष्टम समाप्त

दोहरा.- बंध दार पूरन जयो, जो छुख दोष निदान, अब बरनों संभेपसों, मोह दार सुखखान ॥ ९७ ॥

अर्थ - डुखने दोपनु निदान जे बंध तेनो द्वार संपूर्ण थयुं हवे सुखतुं स्था न जे मोह तेनो द्वार संक्षेपथी वरणतु तुं. ॥ ९४ ॥

हवे मोह द्वारने आदि ज्ञान विलासने नमस्कार करे ठे. - अथ ज्ञान विलास वर्णनं. -

सवैया इकतीसा - जेद ज्ञान अरासो डुफारा करै ज्ञानी जीव; आतम करम धारा निन्न निन्न चरचै, अनुनौ अन्यास लहै परम धरम गहै, करम नरमको खजानो खोलि खरचै, योही मोखमुख धावै केवल निकट आवै, पूरन समाधि लहै पूरनके परचै, नयो निरदोर याहि करनो न कहु और, ऐसो विश्वनाथ ता हि बनारसी अरचै ॥ ९५ ॥

अर्थ - जेम कोई परिहानुं करनार पुरुष मुझा प्रमुख ड्यने सुजाकनी आर वडे जेदी सुधातु ठे, के कुधातु ठे, तेनो निश्चय करे ठे, तेम ज्ञानी जीव ठे, ते जेद ज्ञानरूपी आर वडे आत्मा तथा कर्म ए बेउने जुदां करे ठे, अने ते बेउने जुदा जुदा चरचे के० तेमां आत्मिक धारानेविषे तो अनुभवनो अन्यास धारण करे, तेथी परम धरम के० छुद समाधि तेतुं ग्रहण करे, अने कर्मजालने छुदी जा एी ठे, तेने सत्ता कर्मरूप खजानो खोलि खरचे के० विखेरी नाखे, तिहा निर्जरा थाय, एवी रूपक श्रेणीने लीधे मोहना सुखने धाय, त्यां केवल ज्ञान टुकडो आ वे, अने पूर्ण आत्म स्वरूपना परिचय थकी पूर्ण समाधि पामे, पठी नव चरण नी दोर गानीने निरदोर थाय ते पठी तेने कइ बीजुंठुल्य करवानुं बाकी रहे नही, ने तेथी ते विश्वनो नाथ थयो, तेने बनारसी दास पूजे ठे ॥ ९५ ॥

हवे सुबुद्धि विलास वडे आत्मस्वरूप सहाय ते अधिकार कहेठे -

अथ सुबुद्धि विलास वर्णनं -

सवैया इकतीसा. - काहु एक जैनी सावधान व्है परम पैनी, ऐसी बुद्धि ठैनी घटमाहि मारि दीनी है, पैठी नौ करम जेदि दरब करम ठेदि, सुजाउ विजाउ ता की संधि सोधि लीनी है, तहां मथ्य पाती होइ लखी तिन्हि धारा दोइ, एक मु धामई एक सुधारस जीनी है, सुधासो विरचि सुधा सिंधुमें मगन जई, ए ती सब क्रिया एक समै बीच कीनी है ॥ ९६ ॥ दोहरा - जैसी ठैनी लोहकी, करै एक सो दोइ, जड चेतनकी निन्नता, ल्यो सुबुद्धिसो होइ ॥ ३०० ॥

अर्थ - कोई एक जैनी जैन आगमना जाणनारे सावधान थईने परमपैनी के० अति तीक्ष्ण एवी बुद्धिरूप ठैनी के० सोनीनी ठीणी ते शख विशेष, पोताना घटमा नाखी दीधी, पठी ते सुबुद्धिरूप ठीनी नौ कर्म के० आत्म प्रवेशनेविषे

श्लेषम रूप जे राग द्वेष परिणाम ठे, ते नौ करमना जेद तेना पुजलरूपी इच्च कर्म ने ठेदीने स्वभाव अने विभावतानी संधी सोधी लीयी ठे, तहा सांधनेविषे मध्य पाती के० त्रिहाईत बनीने ते पुरुषे बे धारा लखी, तेमा एक तो सुधामइ के० अ ज्ञान मय ठे, ने बीजी सुधारस जीनी के अमृत रस जीनी ज्ञान समाधि मय ठे, अही राग द्वेषादिकनी दशा ठे, ते सुधा दशा ठे, तेथी विरचि के० वैराग धारीने सुधा सिंधुमा मग्न थबु, ज्ञान समाधिरूप सुधा समुद्रमां मग्न रेवुं, ए जे क्रिया क ही ते सर्व क्रियानो विचार एक समयमा करे ॥ एए ॥ जेम जोढानी ठीणी एक ना बे जाग करे ठे, तेम जड चेतननी एकता जागीने जिन्नता करवी ते सुबुद्धि कीज थाय ठे ॥ ३०० ॥

हवे जेवुं सुबुद्धि विलास ठे, तेवु कहे ठे:- अथ सुबुद्धि विलास कथन-

सवैया इकतीसा - (सर्व ह्रस्वहर चित्रालकार) धरति धरम फलहरति कर म मल, मन वच तन बल करत समरपन, नखति असन सित चखति रसन रित, लखति अमित वित करि चित दरपन, कहति मरम धुर दहति नरमपुर, ग हति परम गुर उर उपसरपन, रहति जगत हति लहति नगति रति, चहति अग ति गति यह मति परपन ॥ १ ॥

अर्थ - सुबुद्धि जे ठे ते धरम रूप फलने धारेठे, कर्मरूप मजने हरे ठे, अने ए क्रिया नेविषे मन बल वचनबल अने कायातुं बल तेने समरपण करे एटले ए त्रणे बल ते क्रियामा कामे लगाडे नखति के० खाय ठे, सित के० शीतल नोजन ते र सनरित के० जीजनना स्वादविना नोजन जमे, अमित वितके० परिमाण विनातुं पोतातुं ज्ञानादिक धन चिन्नरूप दर्पण वडे जुए, मर्म धुर के० मर्मनी वात जे जीवतुं स्वरूप ते कहे, त्रम पुर के० मिथ्या नगर तेने बाले, अने अतरनेविषे उ ल्हट गुरुना वचनने ग्रहण करे, अने हृदयनेविषे उपसरपन के० स्थिरता धारे अने जगतनो हितकारी थको रहे, त्रणे लोकनी नक्ति अने रति के० सुख तेने लहे, एटले सर्व लोकने पूजनीक थाय होई अगति गति के० जेनेविषे बीजा सा मान्यनी गति थती नथी, तेवी मोक्षगति चाहे, एवो सुमतिनो उल्हट विलास ठे.

हवे ज्ञातानो विलास कहे ठे - अथ ज्ञाता वर्ननं -

सवैया इकतीसा - (सर्व गुरु अह्वर चित्रालकार) रानाकोसो वाना लीने व्यापा साथे थाना चीने, दाना अंगी नानारंगी खाना जगी जोधा है; माया बेली जेती तेती रेतेमे धारेती सेती, फदाहीको कदा खोदे खेतीकोसो जोधा है, बाधा

सेती हांता जोरे राधासेती तांता जोरे बाढी सेती नांता तोरै चांदी कोसो सोधा है; जानै जाही ताही नीके मानै राही पाही पीके, गनै वाते माही एसो धारावाही बोधा है ॥ २ ॥

अर्थ - जे बुध के० ज्ञानी ठे, ते राणा के० राजा जे पातसाहनुं स्वांग लेतो थको रहे ठे. जेम राजा पोताना आत्मानुं साधन करे, अने पोताना ममलनो साज राखे, पोताना थाणाने चीन्हे के० नीवेबानी राखे, दानाइ राखे पण नादानी नही राखे, ए चारे उपाय वडे नाना रग करे, खाना जंगी के० लडाईनेविपे जोडा थई रहै, तेम ज्ञानी पुरुष आत्म साधन करे, गुणगणा चिन्हे अने त्यागी थको कर्म निर्जरानेविपे ना ना प्रकारना रग धारे, राग देप दुर्जन साथे लमी हटावी देय, एवी रीते एक पद ना वे अर्थ थाय ठे, जेम लुहार रेतरमीवडे लोढाने घसी नाखे ठे. तेम जेटली जेटली माया वेली के० कर्मजाल तथा गजवेल जे क्रोध तेने मेधा के० सुबुद्धि ते. रू. प रेतरमी वडे घसी नाखे; अने फंदना कदने खोटेठे जेम लोधा के० खेडुत खेतर नी धरतीने कद के० मूलथी खोटी नाखे ठे, तेम बाधा के० कर्मबंध तैथी हा ताजोरे के० छुदाई करे, अने राधा के० सुबुद्धि ते साथे नातो जोडे, बाढीके० कुबुद्धि तेनो नांतो के० संबंध ते तोडे, जेम सोना रूपानी चाढी सोधनार वस्तु उ ज्वल करेठे, तेम जे जेने तेने जाणे, हेय जे ठामवा योग्य वस्तु अने उपादेय जे आ दरवा योग्य वस्तु तेने पण नीके के० ठीक जाणे, पण हैयाने राहीपाही के० फुल समान पीरुसमान जाणे जीनासथी खीलावेठे, ए रीते माही वातो उरावे एवो सम्यक्त धारानो वेहेनार अबोधा के० पंथित ने ज्ञानी कहीये ॥ २ ॥

हवे ज्ञाताने चक्रवर्ति समान कही बतावेठे:-अथ ज्ञाता चक्रवर्ति समान कथन - सर्वथा इकतीसा - जिन्हिके दरब मिति साधत ठ खंम थिति, विनसै विजाव अरिपंकति पंतन है; जिन्हिके नगतिको विधान पर्षनो निधान, त्रिगुनके चेदमान चौदह रतन है, जिन्हिके सुबुद्धि, रानी चूरि महा मोह वज्र, पूरे मगलीक जे जे मोखके जतन है; जिन्हिके प्रमान अंग सोहै चमू चतुरग, तेई चक्रवर्ति तनु धरै पै अतन है. ॥ ३ ॥

अर्थ - जेणे ठए इव्य प्रमाण करी साथ्या तेज जाणे ठये खंम साथी लीधा, अने जेना रागवेषादि विजावदिशा वणसी जाए तेज जाणिये शत्रुनी पंक्तिनुं प तन के० नाश थयो, अने तेने नव प्रकारनी नक्तिनुं विधान के० करवु तेज तेने नव निधान ठे, ज्ञान दर्शन ने चारित्ररूप जे त्रण गुण ठे, अने तेना क्योपशम

माफक जे चेद उपजेठे, तेजेना चौद रतन प्रगटमान ठे, अने जेम चक्रवर्तिने खीर ल होयठे, ते तेना ठ खम साधवाना राज्याजिपेक समय होय ल्यारे वज्र रत्न हाथवडे चूरीने, मुख आगल मंगलीक पूरे तेम जेने सुबुद्धिरूप खी रत्न ठे, ते महा मोहरूप वज्रने चूरीने मोहना जतनने माटे मंगलीक पूरे ठे, एटले मंगल कार्य करे, अने जे प्रत्यक्ष प्रमाणे करीने अर्थनुं ग्रहण करेठे, तथा परोक्ष प्रमाणे करीने पण अर्थने ग्रहेठे, एवा जेना प्रमाणरूप अंग ठे, तेज तेनी चतुरगी सेना थई एम जाणवुं, ए रीते ज्ञाता पुरुषे चक्रवर्तिनी देह धारी ठे, तेम ठता पण ज्ञाता अतनके० अशरीरी जेवु ठे ॥ ३ ॥

पूर्वे कही जे नवधा जक्ति तेनुं हवे वर्णन करेठे - अथ नवधा जक्ति वर्णनं -

दोहा - श्रवन कीरतन चितवन, सेवन वदन ध्यान; लघुता समता एकता,
नौधा जक्ति प्रमान ॥ ४ ॥

अर्थ - उपादेय स्वरूपने शान्तलबु, किरतन करवुं, चितवन करवुं, सेवा पूजा करवी, वदन स्तुति करवी, ध्यान धरवु, तन्मयता करवी, समाधि करवी, एकमेकपण, ए नौधा के० नव चेदवडे जक्ति प्रमाण थायठे. ॥ ४ ॥

हवे जे ज्ञाता मोक्ष सन्मुख थयो तेनी अनुभव दशा कहे ठे -

अथ अनुजवी वचन -

सवैया इकतीसा - कोई अनुजवी जीव कहै मेरे अनुजौमे, लठन विचेद जिन्न करमको जाल है, जानै आप आपुको जु आपु करी आपुविपे, उतपति नास ध्रुव धारा असराल है, सारे विकल्प मोतो न्यारे सरवथा मेरो निहचै सुजाव यह विवहार चाल है, मै तो छुड़ चेतन अनत चिन मुझ धारी, प्रखुता हमारी एक रूप तिहू काल है ॥ ५ ॥

अर्थ - जे आत्मानो अनुभव पाम्यो तेज अनुजवी जीव एवु कहे ठे, के मा रा अनुभवमा लक्षण चेदथकी कर्म जाल हवे जिन्न दीसवा लागी, अने आत्माज कर्ता कारक आत्माज करण कारक आत्माज आधार कारकविपे आत्माज कर्म कारकने जाणे. अने अही कोई पर्यायनी उत्पत्ति अने नाश ठे, अने इ व्य ध्रुवता पणे ठे, ए त्रणे धारा अही असराल पणे वही रही ठे, तो पण ए त्रणे धारा विकल्परूप ठे, अने मारेथी तो सर्व विकल्प सर्वथा जुदाज ठे, विकल्पमा तो कही निश्चय नथी अने मारो तो चेतना स्वरूप निश्चे स्वजाव ठे, अने आगल कही जे त्रण धारा तेतो व्यवहार नयनी चालमां ठे. आ जे सिद्धांत वचन

कहुं बुं. तेणे करीने हुंतो शुद्ध चेतना स्वरूपी बुं, अनंत चिन मुझा धारी के० अन्त
त ज्ञाननो धरवा वालो बुं, एहवी महारी प्रचुता त्रणे काजने विषे एक रूपेणे॥५
हवे चेतनानुंज स्वरूप बतावे ठे - अथ चेतना वर्ननं-

सवैया इकतीसा - निराकार चेतना कहावे दरसन गुन साकार चेतना शुद्ध
ज्ञान गुण सार है; चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरबमाहि, सामान विशेष सत्ताही
को विसतारहै, कोउ कहै चेतना चिनह नाही आत्मानें, चेतनाके नास होत त्रि
विध विकार है; जठनको नास सत्ता नास मूज वस्तु नास, तातें जीव दरवको
चेतना आधार है॥ ६ ॥ दोहरा - चेतन जठन आतमा, आतम सत्ता मांदि,
सत्ता परिमित वस्तु है, जेद तिहूमें नाहि ॥ ७ ॥

अर्थ.- आत्मानो दर्शन गुण जे निराकार कहिये उइये तेतो निराकार चेत
ना अई, अने जे आत्माने शुद्ध ज्ञान गुण सारनूत कहिये उइये तेतो साकार चे
तना अई, विशेषताने लीधो रह्यो ठे माटे साकार कहिये, एरीते निराकार अने साका
रपणे दर्शन तथा ज्ञाननेविषे द्वैत जाव अयो, पण चेतनानेविषे तो अद्वैत जाव
ज रह्यो ठे, अने चेतनागुण थकी चेतन इव्य ठे, तेथी चेतन इव्यमां वेउ समाई
गयां. वली निराकार ने साकारपणुं सामान्य ने विशेषपणाथकी ठे, ते तो सामा
न्यता अने विशेषता चेतना इव्यनी सत्तानो विस्तार ठे; कोई मूढमति वैशिषिक
प्रमुख दर्शन वाला कहे ठे, के, आत्मानेविषे चेतन चिन्ह नथी, चेतना लक्षण
नथी, तेने केवुं के, अरे मूढ, जो चेतन चिन्ह न कहिये तो चेतनानो नाश थवाथी
त्रिविध विकार उपजशे, ते कया तो मन वचन ने कायाना विकार जाणवा, माटे
लक्षणनो नाश थवाथी वस्तुनी सत्तानो नाश अशे अने वस्तुनी सत्तानो नाश थवाथी
मूज रूप वस्तुनो पण नाश अशे, माटे जीवने जाणवानो तो एक आधार चेतनानोजठे
॥६॥ आत्मानुं चेतना लक्षण ठे, सत्ता धर्मविना आत्मा ठरे नही तेथी आत्मा स
त्ताने विषेज ठे, अने पोतपोतानी सत्ता प्रमाणेज सर्व वस्तु ठे, वस्तु इव्य विचारी
जोइये त्यारे उत्पादादि त्रणे वस्तुमां जेद कोई नथी ॥ ७ ॥

हवे चेतना लक्षणनुं शाश्वत तथा अविनाशीपणुं दृढ करावेठे -

अथ चेतना अविनासी यह कथनः--

सवैया तेईसा - ज्यां कजघौत सुनारकि संगति, जूपन नांउ कहै सब कोई; कं
चनता न मिटी तिहिं हेतु वहै फिरि औटि तु कंचन होई; ल्यो यह जीव अजीव
संयोग जयो बहु रूप जयो नहि दोई; चेतनता न गई कबहू तिहिं, कारन ब्रह्म

कहावत सोई ॥ ७ ॥ ; देखु सखी यह आपु विराजत याकि दसा सर्व याहिकुं सोहै, एकमें एक अनेक अनेकमें, ढंढ लिये डुविगामहि दो है; आपु सँजारि लखै अपनो पद, आपु विसारके आपुहि मोहै, व्यापक रूप यहै घट अंतर, ज्ञान में कौन अज्ञानुमें कोहै ॥ ८ ॥ ज्यो नट एक धरै बहु नेप कला प्रगटै जग कौ तुक-देखे, आपु लखै अपनी करतूति वहै नट निन्न विजोकत पेखै, ल्यों घटमें नट चेतन राउ विजाव दसा धरि रूप विसैखै, खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद, छंद विचार दसा नहि लेखै ॥ १० ॥

अर्थ — जेम कलघोत के० सोनुं तेने सोनी घडीने नूपण बनावेठे, ल्यारे ते घाटना संयोगथी लोको तेने नूपण केहेवा जागेठे पण मूल वस्तु जे कंचन तेकां ई जतु रखु नथी, केमके, ज्यारे ते घाटने अग्नीमा गाली नाखे ल्यारे पाहुं ते सोनु केवाय, तेम आ जीव जे ठे, ते अजीवरूप कर्म पुदगल इत्यादिक बीजा पण पुज लना संयोगथी एक कोडी शाडी सताएणं लाख कुल कोडीमा बडुरूपे थयो, तो पण द्विविध नथी थयो, केमके, चेतनता कई गई नथी, तेमाटे ते स्वरूपमां जीव ब्रह्मज केवाय ठे, जेनो विस्तार मोटो तेने ब्रह्म कह्ये ॥ ७ ॥ आत्मानी अ नुचूति ते सुबुद्धि सखीने कहेठे, हे सखी, जो आ आपणो ईश्वर विराजे ठे, अने ए ईश्वरनी दशा सर्व एनेज शोजेठे, एवी विरुद्धता बीजे ठेकाणे न शोजे लक्ष्ण वडे एकतामा जोईये तो एक रूप ठे, अने अपर सत्ताए देखीये तो अनेकरूप ठे, अने ढंढ दशामा देखीये एटले अज्ञान दशामा देखीये अने ज्ञान दशामां देखीये तो द्विविध रूप ठे, ते द्विविधपणु कहेठे — क्यारे तो पोतानुं पद जे पोतानु स्वरूप ते ने संजारीने छुए, अने क्यारेक तो पोताने विसरीने पोते मोहमां पडे हे सखी, एहिज ईश्वर घटने अंतर व्यापक रूप ठे, तेथी जे जे अस्थामां व्यापे ठे. तेवारे ज्ञाननेविपे पण बीजो कोइ नथी अने अज्ञाननेविपे पण बीजो कोइ नथी ॥ ८ ॥ हवे ए ना उपर दृष्टात कहेठे — जेम कोई नट होय ते बहु वेप धरेठे, ने तेते वेपनी कला प्रगट करेठे ल्यारे जगत तेने कुतुहल समजे, पण नट पोते पोतानी क्रिया जाणैठे, ने तेणे धरेजा वेपथी पोते छुदोठे, एवु जाणैठे तेम घटनेविपे चेतन राजा रूप नट ठे; ते विजाव दशा धरीने रूप विशेष करेठे, पण ज्यारे सुदृष्टि खोजी छुए ल्यारे तो पोतानुं पद उंजखे अने ढंढ विचारनी दशाने पोते लेखामा गणे नही ॥ १० ॥ हवे चेतन नटनी सघली चेतना एक ठे, ते कहेठे — अथ चेतना उपादेय यह कथन — अडिह संव — जाके चेतनजाव चिदातम सोइ है, आर जाव जो धरे सु आरे

कोई है, यो चिनमंजित जाव, उपादे जानते; त्यागं जोग परजाव पराये मानते ॥
 अर्थः—जेनेविपे चेतन जाव ठे, तेने चिदात्मा अथवाचिद्रूप कहिये ठे, अने ए
 चेतनाजावथी बीजो जाव जे धारेठे, तेतो कोई बीजो ठे, एथी चेतना मंजित जे
 जाव ठे तेतो उपादेय रूप जाणवो, अर्थात् पोतानो करी जाणवो, अने चेतना जा
 वथी जे परजाव ठे, ते सबलो त्यागवा योग्यठे ने तेने पारको करी मानी लेवो ॥ १ ॥

हवे जे सम्यक् दृष्टि चेतना उपादेय राखीने मोक्ष मार्गना साधक थया तेनी
 अवस्था कहेठे.— अथ सम्यक्दृष्टि मोक्ष मार्गको साधक कथन.—

सवैया इकतीसा.— जिन्हके सुमति जागी जोगसो जये विरागी, परसंग त्यागी
 जे पुरुष त्रिभुवनमें; रागादिक जावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कवहू मगन
 व्हे न रहै धाम धनमें, जे सदीव आपको विचारै सरवग सुख, जिन्हके विकल
 ता न व्यापै कब मनमें, तेई मोक्ष मार्गके साधक कहावै जीव, जावै रहो मंदि
 रमें जावे रहो वनमें ॥ १२ ॥

अर्थः— जेना हृदयामां सुबुद्धि जागी, अने विषय जोगथी जे वैरागी थया, अने
 जे रागद्वेषादिक परजाव ठे, तेनो सेवना संग के० त्रण लोकनेविपे तेनो त्यागी जे
 पुरुष ठे, अने जे रागद्वेषादिक जाव पदार्थ ठे ते थकी जेनी रेहेणी न्यारी ठे, तेथी
 धाम के० घर अने धन तेनेविपे मग्न थई न रहे, अने जे सदा निश्चय दृष्टीए देखीने
 आत्माने सर्वांग शुद्ध विचारे ठे, तेथी जेना मननेविपे विकलता नही व्यापे, एवी
 दशा जईने जे जीव रह्या ठे, तेज जीव मोक्ष मार्गना साधक केहेवाय, पठी ते
 जावे तो मंदिरमां रहे, ने जावे तो वनमां रहे, पण तेनी दशा सर्व स्थानके
 एकज होय ठे. ॥ १२ ॥

हवे मोक्षगामी जीव विचक्षण पुरुषनी दशा कहेठे.— अथ विचक्षणदशा वर्णनः—

सवैया तेईसाः— चेतन मंजित अंग अखंजित शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो, राग
 विरोध विमोह दशा समुजे भ्रम नाटिक पुगल केरो; जोग संयोग वियोग अथवा
 अविश्लोकि कहै यह कर्मज वेरो, है जिन्हकों अनुजौ इहि नांति सदा तिन्हिको
 परमारथ नेरो. ॥ १३ ॥

अर्थ.— जे परमात्मानेविपे दृष्टि देने एवो विचार करे के, जे मारो पदार्थठे, ते
 चेतन मंजित ठे, अने अखंजित ठे, अथेय ठे, अजेय ठे, अने शुद्ध ठे, पवित्र ठे,
 अने एथी जुड़ी जे राग द्वेषने मोहनी दशा थई ग्हीठे, तेने तो भ्रमरूप मिथ्याजाल
 पुद्गलजुं नाटक करी समजे ठे, अने पंचेंद्रियना जोगसंयोग ने वियोग एवी बाह्या

त्माने विषे व्यथा श्रवलोकी ने एवुं कहे के, एतो कर्मनो पेरो ठे, कर्मनो उदय ठे, एवो अनुभव जेने नित्य रहे, तेने परमार्थरूप मोक्ष ते सदा नेरो के० नजीकठे. १३
हवे जे मोक्षथी दूर ते चोर, ने मोक्षथी निकट ते साहुकार एवु कहेठे -

- अथ चोर तथा साहुकार वर्णन.-

दोहरा - जो पुमान परधन हरे, सो अपराधी अज्ञ, जो अपनो धन विवहरे,
सो धनपति धरमज्ञ. ॥ १४ ॥ परकी सगति जो रचै, बंध बडावे सोइ; जो निजस
चामे मगन, सहज मुक्त सो होइ ॥ १५ ॥

अर्थ - जे पुमान के० पुरुष परधनने हरे, ते अपराधी जीव अज्ञ के० अज्ञाण
कहीये, ने जे पोतानाज धननो व्यवहार राखे, ते धनपती कहिये, धर्मज्ञ के० ध
र्मने जाणनार कहिये ॥ १४ ॥ तेम जे परवस्तुनी सगतीए राचे ते चोर केहेवाय,
ने तेज पोताना बंधने वयारे, अने पोतानी सत्तामा सदाकाल मगन रहे तेज
मुक्तरूप थाय ॥ १५ ॥

हवे वस्तु कोने कहिये अने सत्ता कोने कहिये ते बतावेठे - अथ वस्तुसत्तावर्णनं

दोहरा - उपजे विनसे थिर रहे, यह तो वस्तु वखान, जो मरजादा वस्तुकी,
सो सत्ता परवान ॥ १६ ॥

अर्थ - उत्पत्तिवत्, विनाशवत्, स्थिरतावत् एतो वस्तुनुं वखाण ठे, अने जे
वस्तुनी मरयादा जे परिमाण ते धर्म ने सत्ता कहीये, ए अनुभव प्रमाण ग्राह्य ठे १६
हवे केवा केवा इव्यनी केवी केवी सत्ता ठे ते कहेठे -

अथ सत्ता व्यवस्था वर्णन.-

सवैया इकतीसा - लोकालोक मान एक सत्ता है आकाश दर्व, धर्म दर्व एक
सत्ता लोक परिमिति है, लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व, कालके अणु
असख सत्ता अगनिति है, पुदगल सु-६ परवानकी अनत सत्ता, जीवकी अनत
सत्ता न्यारी न्यारी धिति है, कोउ सत्ता काहुसौंन मिलै एकमेक होई, सवे अस
हाय यो अनादिहीकी धिति है ॥ १७ ॥

अर्थ - आकाश इव्यनी मरयादा लोकालोक लगे एक ठे, तेथी आकाश इव्यनी
एक सत्ता ठे, अने धर्मास्तिकाय इव्य लोकप्रमाण एक रूप ठे तेथी धर्म इव्यनी
एक सत्ता ठे, अने अधर्मास्तिकाय इव्य पण लोक प्रमाण एक रूप ठे तेथी अधर्म
इव्यनी एक सत्ता ठे, अने कालना इव्यना अणु ठे ते लोकाकाश प्रदेश परिमाणे
असख्यात ठे, तेथी काल अणुनी असख्यात सत्ता ठे ए कहेठुं दिगंबर सप्रदायनुं

ठे, अने योग शास्त्रमां पण कहु ठे, अने लोकविषे पुज्जरूपी शुद्ध परमाणुनी पण अनंत सत्ता ठे. अने लोकविषे जीव अनंत ठे, तेथी जीवनी पण अनंत सत्ता ठे, तेथीज जीवाजीवनी जुदी जुदी क्षेत्रावगाहना ठे, जे इव्यनी जे सत्ता होय ते बीजी कोई इव्यनी सत्ता साथे मले नही, जो एकमेक थई जाय तो सर्व सत्ता असहाय पणे वचें, माटे एकमेक न थाय एवी अनादि कालनी स्थितिठे. ॥१७॥

हवे चेतन इव्यनी सत्तातुं वर्णन करेठे - अथ चेतन सत्ता वर्णन -

सवेया इकतीसा:- ए५ ठहो इव्य इन्हहीको हे जगतजाल, तामें पांच जड एक चेतन सुजान है, काहुकी अनंत सत्ता काहुसों न मिले कोई, एक एक सत्ता में अनंत गुन गान है; एक एक सत्तामें अनंत परजाय फिरे, एकमें अनेक इह जांति परवान है; यहें स्यादवाद यहें संतनिकी मरजाद, यहें सुख पोष यहें मोहको निदान है ॥१७॥

अर्थ.- ए ठए इव्ये करी एथीज जगतजाल वचेंठे, ते ठनेविषे पांच इव्य जडरूपी ठे, ने एक चेतनरूपी इव्य ठे ते जाणनार ठे, अंही पुदगलनी अनंत सत्ता कही, अने जीवनी अनंत सत्ता कही, एवा अनंतपणे करीने कोईनी सत्ता कोई साथे मले नही, एटले जुदी जुदी अनंत सत्ता ठे, अने प्रत्येक सत्तामां अनंत गुणतुं ज्ञान ठे, अने एक एक सत्तामां अनंत पर्याय अनंत अवस्था नेदफिरे तेथी जे पूर्वे एकमा अनेक कहु ते एरिते ठे, स्यादाद मतमा ए वात प्रमाण ठे, अने सतपुरुषना वचननी पण एज मरियादा ठे, तथा एज मत सुखतुं पोपण क रनार ठे, अने मोहकुं निदान एटले मूल कारण ठे. ॥ १७ ॥

हवे ए वचन थकी जे वस्तुनी धर्म ग्रहो जाय तेज सत्ताधर्म कहीये तेथी एक जीव इव्यनी सत्ता कहेठे:- अथ एक जीव इव्यसत्ता वर्णन -

सवेया इकतीसा - साधि दधि मथनि अराधि रसपंधनिमें, जहां तहां ग्रंथ निमे सत्ताहीको सोर है, ज्ञान जानु सत्तामे सुधा निधान सत्ताहीमे सत्ताकी डर नि सांफि सत्तामुख जोर है, सत्ताको सरूप मोख सत्ता नूजे यहें दोष, सत्ताके उ लेंध धूम धाम चिहू और है; सत्ताकी समाधिमें विराजि रहे सोई साहु सत्तातें निकसि और गहे सोई चोर है. ॥ १७ ॥

अर्थ-जे वस्तुनेविषे वती देखाय, जेम दहीना मंथनमां घीनी सत्ता साधिये, जे थौ पधमां मधुर रस ठे. तो तेथी वस्तु नीपजे ठे, माटे रस मार्गमां सत्ताविना सिद्ध नथी जे वस्तुमां बत्तापणुंते तेने सत्ता कहियें, शास्त्रमां ज्या त्यां ग्रंथोनेविषे सत्तानोजसोरके ०

शब्दों ज्ञान रूपी जानुनो उदय जीवनी सत्तामां निपजे, वली सुधा के० अमृत ते पण सत्तामाज पामिये, निधान पण सत्तामाज पामिये जे सत्तानुं डरनि के० बुपावबु ते संख्या रूपठे, अने जे सत्तानी मुख्यताठे तेज चोर के० प्रजात रूपठे. जीवनी सत्ता नुं जे स्वरूप ठे तेज मोहू ठे, अने सत्ताने छुली जवुं एज दोषरूप ठे सत्तानुं उलघ न करवाथी चीहोउर के० चारे, तरफ धामधुम नीपजे, जे पोतानी सत्ता सन्नूतपणुंठे, तेमां विराजमान थई रहे तेने साहुकार कहिये, अने जे पोतानी सत्ताथी नीकलीने अन्यनी सत्ताने ग्रहे तेने चोर कहिये ॥ १९ ॥

हवे सत्तानी समाधिनुं वर्णन करेठे - अथ समाधि वर्णन -

सर्वया इकतीसा - जामे लोक वेद नाहि थापना उठेद नाहि पाप पुन्य खेद ना हि क्रिया नाहि करनी, जामे राग दोष नाहि जामें बध मोष नाहि, जामे प्रभु दा सन आकास नाहि धरनी, जामे कुलरीत नाहि जामे हारजीत नाहि जामें गुरु शिख नाहि विप नाहि जरनी, आश्रम वरन नाहि काहुकी सरनि नाहि ऐसी सु ष सत्ताकी समाधि जूमि वरनी ॥ २० ॥ -

अर्थ - जेमां लौकिक वेदबु नथी, अने जेमां स्थापनानो उठेद नथी, जेमा पाप पुन्यनो खेद नथी, जेमां कोई क्रिया करणी नथी, जेमा राग द्वेष नथी, जेमा बंध मोहू नथी, जेमा प्रभुताने दासपणु नथी, जेमा आकाश अने धरती नथी, जेमां कुलनी रीत नथी, जेमा हारने जीत नथी, जेमां गुरु अने शिष्य नथी, जे मा विप जरनी एटले चालवुं हालवु नथी, जेमां कोई आश्रम व्यवहार नथी, त था वर्ण व्यवहार नथी, जे कोईनी शरण रूप नथी एवी छुः सत्तानी जूमि ते स माधिरूप वरणवी ठे एटले स्वरूपनी छुः समाधिने विपेज छुः सत्ता पामिये. २०

हवे मिथ्यादृष्टिने चोर अने अपराधी कही देखडावेठे -

अथ मिथ्यादृष्टि अपराधि यह कथन -

दोहरा:- जाके घट समता नही. ममता मगन सदीव, रमतां राम न जान ही, सो अपराधी जीव ॥ २१ ॥ अपराधी मिथ्यामती. निरदं हिरदै अंध, प रकों माने आत्मता, करे करमको बंध ॥ २२ ॥ फूठी करनी आचरे, फूठे सुखकी आस; फूठी जगती हिय धरे, फूठो प्रभुको दास ॥ २३ ॥

अर्थ - जेने केवल जाणपणुं जे समताने समाधि ते नथी अने जे सदा पर वस्तुनी ममताविपे मगन थई रहे, ने निज घट अथवा स्वरूपनेविपे रमी रह्यो ए वो जे आत्मराम तेने जेणे जाण्यो नथी तेनेज अपराधी चोर जीव कहिये ॥ २१ ॥

अर्थ - जे पर वस्तु लेय ते अपराधी ने तेज मिथ्यामति, तेजे निरदय ने तेज हैयानो अंधकहिये, एटले जे पररूप पुज्जने आत्मो माने ते कर्मनो बंध करेठे १२

जाहांसुधी पोतानी वस्तुने न जाणे व्यांसुधी तो जे क्रिया आचरे ते सर्व फु वी ठे, अने तेने जे मोह सुखनी आशा ठे, ते सर्व फुठी ठे. पोताना प्रभु जा एया विनातो जे जक्ति हियामां धरे ठे, ते सर्व फुठी जाणवी, अने परमेश्वरने उ लख्याविना दासपणं राखवुं ते पण सधलुं फुठुं ठे ॥ १३ ॥

हवे मूढ लोकना फुठपणानी व्यवस्था कहे ठे:- अथ मूढ व्यवस्था यथा-

सवैया इकतीसा:- माटी नूमी सैलकी सु संपदा बखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है; अपनोन रूप गहै अोरहीसो आपु कहे, साता तो समाधि जाके असाता कहर है, कोपको रूपान लिये मान मदपान किये, मायाकी म रोरि हिये लोचकी जहर है, याही जाति चेतन अचेतनकी संगतिसो, साचसों विमु ख नयो फुठमें बहर है ॥ १४ ॥ तीत काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखनित प्रवाहको महर है, तासो कहे यह मेरो दिन यह मेरी घरी, यह मेरोई परोई मेरोई पहर है, पेहको खजानो जोरे तासो कहे मेरो गेह, जहां वसे तासों कहे मेरोई सहर है; याहि जाति चेतन अचेतनकी संगतिसो, साचसो विमुख नयो फुठमें बहर है ॥ १५ ॥

अर्थ - सात धातु जे ठे पहाडनी धरतीनी माटी जेवी ठे, तेने संपत्ति करी व खाणे ठे. पोतानी अणु-क्रियामा अमृत जाणे ठे, अने ज्ञानमां जेर समजे-ठे, एटले क्रिया थकी सिद्धि जाणे, ने ज्ञान थकी नही जाणे. जे पोतानुं चिदानंद स्वरूप ठे तेने ग्रहे नही, पण शरीरादिक जे ठे तेने आत्मारूप जाणोठे. अने जे साता वेदनीय उपजे ठे. तेने तो समाधि करी जाणे ठे, असाता वेदनीयने कहर के० उपध्व माने ठे, कोपनुं रूपान जे खड्ग ते लईने रहे ठे, मान ने अहंकार रूप मद पीझे रहेठे, हैयानेविपे मायानो मरोड राखेठे, लोचनी फेर खाया करे ठे, एवी रीते अचेतननी संगती थकी एटले जड पुज्जनी संगतीथी साच थकी विमुख थयोठे, ने फुठमां बहर हे के०तत्पर अई रह्योठे, ॥१४॥ अर्थ स्पष्ट. १५ हवे सम्यक् दृष्टि सादुकारनी व्यवस्था कहे ठे:- अथ सम्यक्दृष्टि व्यवस्थाकथन-

दोहरा- जिन्हके मिथ्या मति नही, ज्ञान कला घटमाहि; परचे आत्म राम सों, ते अपराधी नाहि ॥ १६ ॥

अर्थ - जेनी मिथ्यामति नाश पामीने घटनेविषे ज्ञान कला प्रगटी ठे, जेणे
आत्मारामने उलख्यो ठे, ते लोक अपराधी नथी साहुकार ठे ॥ २६ ॥

हवे ज्ञानीनी व्यवस्था कहे ठे - अथ ज्ञानी यथा -

सवेया इकतीसा - जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट जयो, संसे मोह विघ्नम
विरप तीन्यो वढे है, जिन्हकी चितौनि आगे उदे खान नूसि जागे लागे न करमरज
ज्ञान गज चढे है, जिन्हकी समुज्जिकी तरंग अग अगममे, आगममे निपुन अध्या
तममे कहे है; तेई परमारथी पुनित नर आगे जाम, राम रस गाढ करे यहै पाढ
पढे हैं ॥ २७ ॥ जिन्हको चिहुंटी चिमटासी गुन चूनवेको कुकथाके सुनवेको दोउ
कान मढे है, जिन्हको सरल चित कोमल वचन बोले, सोम दृष्टि लिये मोले मोम
कैसे गढे है; जिन्हके सगति जगि अलख अराधिवेको परम समाधि साधिवेगो मन
वढे है, तेई परमारथी पुनित नर आगे जाम, राम रस गाढ करे यहै पाढ पढे है २७

अर्थ:- जेना हैयामा धर्म ध्यानरूप पावक के० अग्नि प्रगट थयो, तेथी संगय मो
ह अने विघ्नम ए त्रणे वृद्धरूप ठे, ते वढे के० बली गया ठे, जेनी चितौनी के०
ज्ञानदृष्टि आगल उदयरूप कुतरो नसिने जागी जाय ठे, अने ज्ञानरूपी गजराज
उपर चढी रहेठे, तेथी कर्मरूप रज लागती नथी, बीजातु जे अगम अग ठे, तेमां
जेनी समजना तरंग उठी रह्या ठे एवा आगम के० जैन वाणीमा निपुण थयो, अ
ने अध्यात्म ज्ञानमा पूर्ण थयो ठे, तेनेज सम्यक्दृष्टि कहिये, परमार्थने पामनार
पुनित के० पवित्र रूप थयो जाणवो आत्मारामना अनुभव रसमा आठे प्रहर
गढे के० संपूर्ण मग्न थई, एज पाठ पढे ठे, एटले नणे ठे, ॥ २७ ॥ वली जेम ची
मटी के० हाथनी चिमटी अथवा चिपीयो तेवढे कई नानी वस्तुने पकमी लश्ये उइ
ये; तेम पारका गुण जुटी लेवाने जेनी एवी चपटी ठे, अने विकथा साजलवाने जे
बने कानने बंध करी राखे ठे, जेनुं चित सरल ने निष्कपटी ठे, जे निरहकारीपणे
कोमल वचन बोले ठे काम क्रोधादिक विकारविना सौम्य दृष्टी राखे ठे, वली जे मोम
केसेगढेहे के० मीणना घडाजेवु हृदय कोमल राखे ठे, अने पोताना अलख समा
धि स्वरूपने साधवाने जेनी सुमति जागी ठे, अयोगी अवस्थामा जेनी परम समा
धि थई ठे; तेने साधवाने जेनो मन वष्यो ठे तेज सम्यक दृष्टि परमार्थना पामनार
पुनित के० पवित्र रूप थई रह्या ठे, ने तेज आत्मारामना अनुभव रसमा आठे प
होर दृढ मग्न थई एज पाठ पढे ठे. ॥ २७ ॥

हवे समाधिनुं स्वरूप कहे ठे -- अथ समाधि वर्णनं --

दोहरा.— राम रसिक अरु रामरसं, कहन सुननकों दोइ; जब समाधि परंग
ट नई, तव बुविधा नहि कोइ ॥ २९ ॥ नंदन वदन श्रुति करन, अवन चितवन जाप;
पढन पढावन उपदिसन, बहुविध क्रिया कलाप ॥ ३० ॥ शुद्धात्म अनुनौ जही,
सुजाचार तिहि नाहि, करम करम मारगविशे, शिव मारग शिवमांहि ॥ ३१ ॥

अर्थ.— आत्माराम जे ठे ते रसिक के० रस जोक्ता ठे, अने राम के० रमनुं ते
रसरूप ठे, केवाने सांजलवाने रसिकने रस बेउ ठे, पण जेवारें एनेविपे समाधि प्र
गट थाय ठे त्यारे बे पणुं नथी रेनु त्यारे तो रसिक अने रस ए बे एकज व
स्तु ठे ॥ २९ ॥ राम के० रसिक अवस्था धारतो एटली क्रिया करे ठे के, नंदन के० आ
नंद पामे ठे, वदन के० प्रणाम करे, श्रुती के० जात जातना गुणनी स्तुती करे ठे,
अने एवाज गुण सांजली एमुंज चिंतवन करे, एनोज जाप जपे ठे, जणे जणावे
उपदेशे, एवी रीते रसिक अवस्थामां जात जातना क्रिया कलाप ठे ॥ ३० ॥

पूर्वे कही जे क्रिया तेने करता करतां जहां शुद्ध आत्मानो अनुभव थाय त
हां सुजाचार बुटीजाय, कृत कृत्यपणे ते अयोगी दशामां ठे, कर्म जे ठे ते कर्म
मार्गमांज रहे, एटले संसार मार्गनेविपेज रहे, शुन कर्म पण संसार मार्गमां ठे
अने शिव मार्ग ते शिवमांहे एटले शुद्ध आत्माने विपेज ठे ॥ ३१ ॥

चोपाई.— इहि विध वस्तु व्यवस्था जैसी, कही जिनिंद कही में तैसी; जे प्र
माद संयति मुनि राजा, तिन्हिको सुजाचारसो काजा ॥ ३२ ॥ जहां प्रमाद द
सा नहिं व्यापे, तहीं अवलंब आपनो आपे, ता कारन प्रमाद उतपाती, प्रगट
मोह मारगको घाती ॥ ३३ ॥ जे प्रमाद संयुक्त गुसाई, कठहि गिरिहि गिडुककी
नाई, जे प्रमाद तजि उद्धत होही, तिन्हिको मोप निकट दृग सोही ॥ ३४ ॥
घटमें ह प्रमाद जबताई, पराधीन प्राणी तवताई; जब प्रमादकी प्रभुता नासै
तव प्रधान अनुनो परगासे ॥ ३५ ॥

अर्थ.— ए रीते श्री जिनेइ देवे वस्तुनी व्यवस्था कही ठे, ने तेवीज आंहा
प्रमाणथी में पण कही ठे, अने जे मुनिराज प्रमाद दशामां ठे, तेने तो सुजाचार
एटले शुन क्रियानुं आलंबन लीथाथीज कार्य सिद्धि थाय ॥ ३२ ॥

अने जे मुनिराजने आत्माना अधिक वीर्याशिने लीधे प्रमाद दशा न व्यापे
त्यां पोतानुं आलंबन पोते लिये, तेमाटे प्रमाद तो उतपाती ठे, अने प्रगट रीते मो
ह मार्गनो घात करनार ठे, अने अंतरायनो करनार ठे ॥ ३३ ॥

युसाई देशी जापानो शब्द ठे, एनो अर्थे मुनिराज थाय ठे, जे मुनिराज प्रमाद संयुक्त ठे ते तो गिड्डक के० दडानी रीते उठे ठे, ने पडे ठे, पण स्वस्थताने पा मे नही अने जे प्रमाद ठोडीने अप्रमादपणे उठीने उजा रहे ठे, तेने पोतानी दृष्टी नजीक मोहू ठे ॥ ३४ ॥ जांहां सुधी घटमा प्रमाद ठे, त्यांसुधी ते पराधी न ठे, अने ज्यारे आत्मानी शक्ती जागे ठे, ज्यारे प्रमादनी प्रभुता नाश पामे ठे, ज्यारे तो पोताना प्रधान अनुभवनो प्रकाश थाय ठे ॥ ३५ ॥

दोहरा.— ता कारन जग पथ इत, उत शिव मारग जोर, परमादी जगकों टूके, अपरमाद सिव थोर ॥ ३६ ॥ जे परमादी आलसी, जिनके विकल्प चूरि, होहि सि थिल अनुनै विपे, तिन्हिको सिवपथ दूरि ॥ ३७ ॥ जे अविकल्पी अनुनवी, शुद्ध चेतना युक्त, ते मुनिवर लघु कालमे, होहि करमसों मुक्त ॥ ३८ ॥ जे परमादी आलसी, ते अजिमांनी जीव, जे अविकल्पी अनुनवी, ते समरसी सदीव ॥ ३९ ॥

अर्थ— तेमाटे जगतनो मार्ग प्रमादीनी तरफ ठे, अने अप्रमादीनी तरफ मोहू मार्ग ठे, केमके, जे प्रमादी होय ते जगतने छुए अने अप्रमादी मुक्ती तरफ छुए ठे ॥ ३६ ॥ जे प्रमादी ठे, ते आलशी ठे तेने चूरि के० घणा विकल्प उठे ठे, अने पोताना अनुभवमा तेने शिथिलपणुं रहे ठे, अने तेने मुक्ति मार्गरूप स्वरूपाचरण दूर ठे ॥ ३७ ॥ अने जे विकल्पविना अनुभवमा वसे ठे, ने शुद्ध चेतना युक्त ठे, ते मुनीश्वर थोडा कालमां कर्मथी मुक्त थाय ठे ॥ ३८ ॥ जे प्रमादी अने आलशी ठे तेने अहबुद्धिथी अजिमांनी कहियें. ने जे विकल्प रहित पोताना अनुभवमां ठे, तेने तो सदाय समरसी कहिये ॥ ३९ ॥

हवे अजिमांनी तथा ज्ञानीनी अर्वस्था उपर दृष्टांत आपेठे.—

अथ अजिमांनी तथा ज्ञानी व्यवस्था कथन —

कविच ठंड.—जैसे पुरुष लखे पहार अढि, चूचर पुरुष ताहि लघु जग्ग, चूचर पुरुष लखे ताकों लघु, उतर मिलै डुहुको भ्रम जग्ग, तैसे अजिमांनी उन्नतगल, और जीवकों लघुपद दग्ग, अजिमांनीकों कहे तुठ सब, ज्ञान जगे समतारसजग्ग ॥ ४० ॥

अर्थ— जेम कोई माणस पहार उपर चढयो होय तेने चूचर के० तलोटीपरना माणसो न्हानोठे एम छुए, अने तलोटी वाला माणसने पहार उपर चढेजो न्हानो छुए, अने पठी पहार उपर चढेजो हेठे उतरी तलोटी वालाने मले ज्यारे बेठनो भ्रम नाना पणानी दूर थाय; तैम अजिमांनी पुरुष उंची गरदन राखनारो अन्य जीवने नाना छुए, तुठ जाणो, अने बीजा पुरुषो ते अजिमांनी पुरुषने तुठ जाणो,

एम अरपरस विचारमां विपमता रहे ठे.-ते ज्यारे-ज्ञान जागे त्यारे बेउना मनमां विपमता मटीने समपणुं आवी जाय ॥ ४० ॥

हवे एकला अजिमाानीनी व्यवस्था कहे ठे.- अथ अजिमाानी यथा.-

सवैया इकतीसा:- करमके नारी समुजेन गुनको मरम, परम अनीति अधरम रीति गहे है, होहि न नरम चितगरम घरमहुते, चरमकी दृष्टिसो नरम नूली रहै है; आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर नाएहू न मोले मानो पाथरके चहे है; देखनके हाउ जव पंथके वटाउ ऐसे, मायाके खटाउ अजिमाानी जीव कहे है ४१

अर्थ-जे करम बंधयी अती नारी ठे. देखने गुण जाणोठे, पण गुणानो मर्म जा एतो नथी अने परम अन्याय तथा अधर्मनी रीत ग्रही राखेठे. चित्तनेविपे नरमा स तथा दया परिणाम नथी. देखनो अती बर्म ताप ठे, तेथी गरम रहेठे, ज्ञान दृष्टी नथी अने चर्मरूप दृष्टीवडे नरममां नूब्यो फरे ठे. कोई विकट आसन बांधे तेने खोले नही, ने मोढेथी वचन बोले नही, मौन ब्रती रहे, तेने ज्ञानी महा पु रुष जाणीने कोई माथुं नमावे, तो तेनो सत्कार ने अंग चेष्टा पण न करे, जाणिये पथर थवानीज इठा करतो होय नीवली जेम बालकने मराववाने हाउ कहीये ठइये तेम लोकोने मराववाने वेप धरी हाउ बनीने बेसे, अने जव ब्रमणना मा र्गमां वटाउना सरखो चाले, एरीते माया जालना खाटनारा अजिमाानी जीवने उजखीये ॥ ४१ ॥

हवे ज्ञानी जीवनी व्यवस्था कहे ठे:- अथ ज्ञानी यथा -

सवैया इकतीसा:- धीरके धैरैया जवनीरके तरैया जयनीरके हरैया वर वीर ज्यो उमहे है; मारके मरैया सुवीचारके करैया सुख द्वारके दरैया गुनलोसो लह लहे है; रूपके रीकैया सवनैके समुजैया सबहीके लघुजैया सबके कुबोल सहे है वामके वमैया दुखदामके दमैया ऐसे रामके रमैया नर ज्ञानी जीव कहे है-॥४२॥

अर्थ-धीरजने धरनार, संसार सागरने तरनार, जवनीडने हरनार, मोटा सूर वीरनी परे पोताने साह्य आपवाने उमंगी रह्याठे, कंदर्पने मारनार, जला विचारनुं करनार, सुख समाधिना टाजामा दत्रनार, आत्माना गुणनो लव एटले अंस तेमां लहलिहि रह्या ठे, आत्मरूपना रीजवनार, सर्व नयना सारनो रस समजनार, निर हंकारी पणे सर्वना नाना जाई थई रह्याठे कृमांवतपणे सर्वना छुट ववन सहेठे. वाम के० स्त्रीने वमेया के० ठोडनार, दु.खनी परपराना दमनार, एवा आत्माराने मने विपे रमनारा मनुष्यने ज्ञानी जीव कहीये ॥-४२ ॥

हवे शुद्धात्मना अनुभवनी प्रशंसा करेते - अथ शुद्धात्म अनुभव प्रसंसा -

चोपाई - जे समकित्ती जीव समचेती, तिन्हिकी कथा कहाँ तुमसेती, जहां प्रमाद क्रिया नहि कोई, निर्विकल्प अनुभव पद सोई ॥४३॥ परग्रिह त्याग जोग स्थिर तीनों, करम बंध नहि होइ नवीनों, जहा न राग दोष रस मोह, प्रगट मो पमारग मुख सोहे ॥ ४४ ॥ पूरव बंध उदे नहि व्यापे, जहा न जेद पुत्र अरु पापे, दरब जाव गुन निर्मल धारा, बोधविधान विविध विस्तारा ॥ ४५ ॥ जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी, तिन्हिके हिरदे डविधा केसी, जे मुनिपिपक श्रेणि चढि धाये, ते केवलि जगवान कहाये ॥४६॥ दोहरा - इहिविधि जे पूरन जये, अष्ट करम वनदाहि, तिन्हिकी महिमा जो लखे, नमे बनारसि ताहि ॥ ४७ ॥

अर्थ - जे समकित्ती जीव ते समचेती के० वीतरागपणे सभतान्त ठे, अ हो जय्य प्राणी, तेनी कथा हु तमने कहुतुं जाहा कोई प्रमादनी क्रिया नथी, तेने निर्विकार निर्विकल्प अनुभव पद कहीये, एटले अनुभवमा विकल्प नथी ॥४३॥ जहां परियहनो त्याग ठे, अने त्रणे जोग स्थिर ठे, त्या नवीन कर्मनों बंध नथी यतो, वली जहां जीवने राग द्वेष रस मोह नथी, तेज प्रगटपणे मोह मार्गंतुं मुख के० प्रारज ठे ॥४४॥ वली जहा पुर्वे जे कर्मबंध ठे, तेनो उदर्थ नथी, अने जाहा पुन्य पापना जेदनो विचार नथी, अने जाहा ताधुना सतावीस गुण ड्यप पणे जावपणे निर्मल धाराये वही गटाठे, वली जाहा बोधविधान के० ज्ञानना प्र कार जात जातना विस्तारमाठे ॥४५॥ जेनी एवी सहज अवस्था थई होय तेना हृदयमा आत्म ओलखवनी, डविधा कर्म रहे। अने एज अवस्थामा जे मुनिरा ज रूपक श्रेणी चढी मुख धाये तेनो केवली जगवत जाणवा ॥ ४६ ॥

अर्थ - ए रीते कर्मरूप वनने वालीने पूर्ण आत्मरूपमा जे थयाठे अने तेना महिमाने जे सत् पुरुष होय तेहिज जुएठे, एटले सत्य पणे जापोठे तेने वणारसीदास नमस्कार करेते ॥ ४७ ॥

हवे मोह पदार्थनी उत्पत्तिनो क्रम कहेते - अथ मोह उत्पत्ति वर्नन -

उप्य बंध - जयो शुद्ध अकूर, गयो मिथ्यात् मूर नशि, क्रमक्रम होत उदोत, सहज जिम शुक्लपक्क शशि, केवल रूप प्रकासि, जासि सुख रासि धरम धुव, करि पूर न पिति आउ, त्यागि गतजाव परम दुव, इह विधि अनन्य प्रचुता धरत, प्रगटि बूद सागर जयो, अविचल अखंड अननय अखय, जीव दरब जगमहि जयो ॥४८॥

अर्थ - शुद्धतानो अंकुर प्रगट थता मिथ्यात मूलथी नाश पांम्बुं, तेवारे जेम अ

जवालीया पखवाडीयामां चंद्रमां क्रमे क्रमे उद्योतवत थायठे, एरीते आत्मापण क्रमे क्रमे उद्योत यतां केवल ज्ञान रूपनो प्रकाश थाय, अने आत्मानो निश्चल ध्रुव धर्म सुख समुह ते नासे, ते पठी आशुष्य कर्मनी स्थिती पूर्ण करीने अने मनुष्य गतिनो नाव ठोडीने परमात्मारूपें, थाय, एरीते अनन्य प्रचुता एटले सर्वधी श्रेष्ठ ता धारण करे, कोनी पेटे तो जेम पाणीनी बुंद बुंद एकठी मली समुह थायठे तेम आत्मा गुणना अंस क्रमे क्रमे प्रगट करतो पूर्ण थयो, ते पठी अविचल अखंड अज्ञय ने अक्षय, एवं, जीव इव्य जगतनेविपे सदा जयवत थायठे. ॥ ४७ ॥

हवे अष्ट कर्मनो नाश थयेथी जे आत्माना सहज आठ गुण प्रगट थायठे ते कहेठे— अथ अष्ट कर्म नागतें अष्ट गुण प्रकाश वर्तनं.—

सर्वथा इकतीसाः— ज्ञानावरनीके गये जानिये जु है सु सब, दंसनावरनके गयेतें सब देखिये, वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित्त त्रिसेखिये; आठ कर्म गये अवगाहन अटल होइ, नाम कर्म गयेते अमूरती क देखिये, अगुरुलअधुरूप होई गौत कर्म गये, अंतराय गयेते अनंत बल लेखिये. ४८

अर्थ—ज्ञानावरणीय कर्म नाश थता लोकालोकमांजे वस्तु ठे, ते सर्व जणाय, एटले, केवल ज्ञान प्रकाश थाय, अने दर्शनावरणीय कर्मनो ह्य थवाथी लोकालोकना नाव ने सामान्यपणे जोईये, एटले केवल दर्शनगुण प्रगट थाय, अने वेदनीय कर्मना ह्य थी निराबाध रस उपजे एटले आत्मा बाधपणाथी मुक्त थाय, ते अबाधपणे अनंत सुखरूप गुण उपजे, वली मोहनीय कर्मनो नाश थयेथी विशेषपणे शुद्ध चारित्र प्रगट थाय, एटले प्रथारख्यात चारित्र स्पष्ट गुण होय, आशु कर्मनाश थयेथी अथ गाहनाती सांठि अनंत स्थिति थाय, (आयुकर्मगते निश्चला स्थिनिर्भवति) नाम कर्म नाश थयेथी अमूर्त्तिकपणुं जीवतुं शुद्ध स्वरूप उपजे, गोत्र कर्मनो ह्य थयेथी अगुरुलधु गुण उपजे, जेथी जीवमां लघुपणु तथा गुरुपणु न होय, अने अंतराय कर्मनो नाश थयेथी अनंत बल उपजे, एटले अनंत वीर्यपणानो गुण उपजे ठे. ए आठ गुण उपजे. ॥ ४९ ॥

इति श्री नाटक समयसारनो बालबोधरूप नवमो मोक्ष-दार समाप्त.

दोहराः— इति त्रि नाटिक ग्रथमें, कह्यो मोक्ष अधिकार; अथ वरनो संक्षेपसों, सरव विद्युद्दीदार. ॥ ५० ॥

अर्थ - इति के० सपूर्ण नाटक समये सारविषे मोक्ष द्वारनो अर्थ कह्यो ने हवे दसमुं सङ्केपथी सर्व विद्युदि द्वारतुं वर्णन करुं तुं ॥ ५० ॥

हवे अंही सर्व उपाधि रहित शुद्ध आत्म स्वरूपतुं वर्णन करे ठे -

सवैया इकतीसा - करमको करता है जोगनिको जोगता है; जाकी प्रभुतामें ऐ सो कथन अहित है, जामे एक इन्द्रियादि पंचधा कथन नाहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसो रहित है, ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है सुजाव जाको, लोक व्यापी लोको तीत लोकमे महित है, शुद्ध वस शुद्ध चेतनाके रस अंश नयों, ऐसो हंस परम पु नीतता सहित है ॥ ५१ ॥ दोहरा.- जो निहचे निरमल सदा, आदि मध्य अरु अत, सो चिद्रूप बनारसी, जगतमाहि जयवत ॥ ५२ ॥

अर्थ - कर्मतुं कर्त्तापणु अने सुखडु खतुं जोगतापणुं एवु जे लोक व्यवहारमां केवाय ठे ते जेनी प्रभुतामा ईश्वरताई ठे तेमा अहितकारी ठे, वली जेनी प्रभुता मां एकैइय प्रमुख पांच जेदतुं केवु ते पण अहितकारी ठे, सत्य नथी केमके जे स दा निर्दोष ठे, तेना निश्चय स्वभावमा बंध नथी अने मोक्ष पण नथी, एवो बंध मोक्ष रहित ठे त्यारे ए इव्य शुं ठे, एवो प्रभ उठे तेनो खुलासो करे ठे के, ए ज्ञाननो समूह जे पुजतेरूप ठे जेनो स्वभाव ज्ञान गम्य ठे, ज्ञान वडे जाणवामां आवे एवो ठे, लोकमा सघले स्थले व्यापी रह्यो ठे, लोकातीत के० क्षेत्र लोकथी जुदो ठे ने लोकमा महित के० पूजनीक उपादेय ठे, अनादि कालनो एवोज चाब्यो आवेठे तेथी जेनो शुद्ध अवतश ठे अने शुद्ध चेतनाना रस प्रदेशथी नरपूर ठे, एवा जे हंस ठे ते परम पुनीतता सहित एटले उत्कृष्ट शुद्धता सहित ठे ॥५१॥ जे निश्चय स्वरूपमा सदा निर्मल ठे, आदि मध्यने अंत्य अवस्थाने विषे एक रूप ठे, ने तेज चिद्रूप ठे तेनी वणारसी स्तुती करेठे के एवा जगवान जगतमां जयवत थाव्यो. ५२

हवे जीवतुं अचोक्ता पणुने अकर्त्ता पणु उरावे ठे - अथ जीव अकर्त्ता वर्णन - चोपाई - जीव करम करता नहि ऐसो, रस जोगता सुजाव न जैसो, मिथ्याम तिसों करता होई, गये अज्ञान अकरता सोई ॥ ५३ ॥

अर्थ - जेम जीवने कर्मनो कर्त्ता न कहिये तेम रसनो चोक्ता पण न कहिये; जी व ज्यासुधी मिथ्यामति वालो ठे, त्यासुधी तो कर्त्तापणु केवतमा साचो ठे. पण ज्यारे ए अज्ञान जायठे. त्यारे जीव अकर्त्तापणु ठे एवु स्पष्ट जणाय ठे ॥५३॥ हवे आत्मानो शुद्ध स्वभाव तथा विजावतुं वर्णन - अथ स्वभाव विजाव वर्णन, - सवैया इकतीसा - निहचे निहारत सुजाव जाहि आतमाको, आतमीक धर

म परम परगासना, अतीत अनागत वरतमान काल जाको, केवल स्वरूप गुण लोकालोक नासना; सोई जीव संसार अवस्थामांदि करमको, करतासो दीसे निये नरम उपासना; यहै महा मोहके पसार यहै मिथ्याचार, यहै जौ विकार यहै व्यवहार वासना ॥ ५४ ॥

अर्थ - निश्चय दृष्टि जौतां जे आत्मानो आत्मिक धर्म परम प्रकाशरूप सदा स्वभाव ठे. एटले निश्चैनयथी अतीत अनागत तथा वर्तमान कालमां लोकालोक नासनानो करनार केवल स्वरूप गुण ठे, तेज आत्मा संसार अवस्थानेविपे भ्रम उपासनावहे एटले मिथ्यात अज्ञानीनी सेवाने लीधे कर्मना कर्त्तानी पठे देखाय ठे एम मिथ्यातनी सेवामां जे रेडुं ते मोहनो पसार ठे, एज मिथ्याचार ठे जीवने नव भ्रमणनो एज विकार ठे. तथा एज व्यवहार वासना ठे ॥ ५४ ॥

हवे जीवनी अज्ञोक्ता अवस्थानुं वर्णन करेठे:- अथ जीव अज्ञोक्ता वर्णन -
चोपाई - जथा जीव करता न कहावै; तथा जोगता नाउ न पावै; हे जोगी मिथ्यामति माही, मिथ्यामती गयेते ते नाही ॥ ५५ ॥

अर्थ - जेम जीव कर्त्ता नथी तेम ज्ञोक्ता पण नथी, मात्र मिथ्यातमां कर्त्ता जीव ठे, ने ज्ञोक्ता पण जीव ठे, पण मिथ्यात नाश थाय ल्यारे जीव कर्त्ता अने ज्ञोक्ता नाम धरावतो नथी ॥ ५५ ॥

हवे नय स्वरूपमा ज्ञोक्ता अज्ञोक्ता पणाना लक्षण बतावेठे -

अथ जोगतापना अज्ञोक्तापनाको लक्षण:-

सचैया इकतीसा - जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धी, सोतो विपे जोग निको जोगता कहायो है; समकित्ती जीव जोग जोगसो उदासी ताते सहज अ जोगता गरथनिसे गायो है, याही जाति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बुध, परजाउ व्यागि अपनो सुजाउ आयो है, निरविकलप निरुपाधि आतमा अराधि, साधि जोग जुगति समाधिमें समायो है ॥ ५६ ॥

अर्थ - जगतवामी जे अज्ञानी ठे, त्रयो कालविपे परजाय बुद्धि ठे, एटले इ व्यबुद्धि नथी, ने हुं सुखीं-हुं दुःखी एवी पर्याय बुद्धि करेठे, पण निम्नपणे शुद्ध आत्म इव्यने नही जाणे, एवो अज्ञानी जीव तो विषय जोगनो ज्ञोक्ता केवायठे, अने समकित्ती जीव मनवचनने कायाना, योगथी तथा विषय जोगथी उदासीपणे रहेठे, अने शुद्ध आत्म इव्यना अनुभवमां मग्न ठे, तेथी समकित्तीने शास्त्रमां सहज अज्ञोक्तापणे गायलो ठे, एरीते पंक्ति ठे ते वस्तुनी व्यवस्था अवधारिने ए

टले वस्तुनो स्वभाव विचारिने परभावने त्यागीने पोताना सहज स्वभावमां थावे ठे, तेथी सुखी ड खी इत्यादि विकल्पविना कर्म संयोगरूप उपाधिविना, एवा आत्माने आराधीने ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जोगनी जुगति साथी समाधि एटले सहज स्वरूपमां समायठे ॥ ५६ ॥

हवे अज्ञोक्ता जीवनी अवस्थालुं वर्णन करेठे - अथ जीव अज्ञोक्ता वर्णनं -

सवैया इकतीता - चिनमुझा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन, रतन चंमारि अपहारी कर्म रोगको, प्यारो पंढितनिको दुस्यारो मोख मारगमे न्यारो पुदगलसो उजियारो उपयोगको, जाने निजपर तत्त रहे जगमे विरत्त गहे न ममत्त मन वचकाय जोगको, ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करमको, करता न होइ जोगता न होइ जोगको ॥ ५७ ॥ दोहरा:- निरजिलाष करनी करे, जोग अरुचि घटमांदि, तातें साथक सिद्ध सम, करता जुगता नाहि. ॥ ५८ ॥

अर्थ - चेतना चिन्हनो धरनार, निश्चल स्वभाव ज्ञातापणुं तेनो अधिकारी, ज्ञानादिक गुणरूप रत्नना चंमारनो चमारी ठे, कर्मरूप रोगनो विनाश करनार, पंढितनो प्यारो एटले तत्व ज्ञानीने वल्लज, मोक्षमार्गमा दुशीयार के० सावधान, पुर्जलिक धर्मथी जुदो रेनार, मतिश्रुत प्रमुख उपयोगतुं अजवाळुं जेना हृदय मां थयुंठे, पोताना अने परका सर्व तत्वनो जाणनार, जगतमा विरक्तपणे रेनार, एटले वेरागी, मन वचन ने कायाना योगनी ममता नही राखनार माटे ज्ञानी जीव ज्ञानावरणी प्रमुख कर्मनो कर्त्तापण नथी, अने ड ख सुखना जोगनो जोक्तापण नथी ॥ ५७ ॥ इठाविना क्रिया करवी, अने घटपिन्ना जोगनी रुची नही राखवी, तेथी मुक्तिनो साथक पुरुष सिद्ध समान कह्यो, अने ते कर्त्ता तथा जोक्ता नथी ॥ ५८ ॥

हवे अदंबुद्धि थकी कर्त्तापणु थायठे ते कहेठे - अथ अदंबुद्धि वर्णनं -

कवित्तंड - ज्यों हिय अंध विकल मिथ्यात धर मृषा सकल विकल्प उपजावत, गहि एकत पठ आत्मको, करता मानि अधोमुख धावत, ल्यो जिनमती दरब चारित कर, करनी करि करतार कहावत, वठित मुक्ति तथापि मूढमति, विनु समकित नवपार न पावत ॥ ५९ ॥ चौपाई - चेतन अंक जीव लखि लीन्हा, पुदगल करम अचेतन चीन्हा; वासी एक खेतके दोऊ, यदपि तथापि मिले नहि कोऊ. ॥ ६० ॥ दोहरा - निजनिज जाठ क्रिया सहित, व्यापक व्यापि न कोइ, करता पुदगल करमको, जीव कहासों होइ. ॥ ६१ ॥

अर्थ - जेम कोइ हृदय अधपुरुष विकल मिथ्याधारीने ह्यामा विकल्प उप

जावे, ते सर्व फूटा ठे ते क्रियावादीनो एकांत पडू अहीने आत्माने कर्ता मानीने अधोमुख के० नीची गतीने पकडी रह्योठे, एवो जे जिनमती ठे ते जाव चारित्र विना अने इव्य चारित्रयुक्त करणी करेठे, ने क्रिया करण एटले गुन क्रियानो कर्ता पोते केहेवायठे, ते मुक्तिने वांठे तोपण मूढमतिठे, नवनो पार समकित विना पामतो नथी. ॥ ५९ ॥ अने जीवनो अंक के० चिन्ह चेतना जाणवी; अने पुज्ज तथा कर्म ए वेउने जड जाणवा. चेतन अने अचेतन वेउ एक क्षेत्रा वगाहीठे एटले एक क्षेत्रवासी ठे, तथापि कोई कोईथी मले एवा नथी. ॥ ६० ॥ जे पदार्थ ठे ते पोतपोताना जावनी क्रिया सहित रहे ठे, जेमां व्यापी रहे ते वस्तुने व्याप्य कहीये अने व्यापी रहेनार पदार्थने व्यापक कहीये तेथी पुज्ज व्याप्यमां जीवतुं व्यापकपणुं नथी, माटे पुज्जलीक कर्मनो कर्ता जीव क्यांथी थाय अर्थात् न ज थाय. ॥ ६१ ॥

हवे व्यवहारमां जे रीतें जीवतुं कर्तापणुं ठरेठे ते जाणवेठे:—अथ कर्ता कथन:—

सवैया इकतीसा:—जीव अरु पुज्ज करम रहे एक खेत, जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है, लठन सरूप गुन परजे प्रकृति जेद, इहूमें अनादिहीकी डविधा वहरही है, एते परि निन्नता न जाते जीव करमकी, जौलों मिथ्या जाउ तोलों ओधी वाउ वही है; ज्ञानके उद्योत होत ऐसी सूधी दृष्टि नई, जीव कर्म पिमको अकरतार सही है. ॥ ६२ ॥ दोहरा.— एक वस्तु जेसी जु हे, तासों मिले न ध्यान; जीव अकर्ता करमको, यह अनुजो परवान. ॥ ६३ ॥

अर्थ — जेम आकाश प्रदेशमां पुदगल कर्म अवगाहि रहे ठे; तेज आकाश प्रदेशमां जीव प्रदेश पण अवगाहि रहे ठे. एम जीव अने पुज्ज एक क्षेत्रना वासी ठे, तथापि चेतननी सत्ता अने जडनी सत्ता ए वे जुदी ठे अनादि काल नी लक्षण जेदवडे स्वरूप जेदवडे गुणपर्यायवडे ने प्रकृति जेदवडे ए वेउनेविपे द्विविधता चाली आवेठे तेम ठतां लक्षण प्रमुखनी निन्नता मिथ्यात्व जावने लीधे जीव अने कर्मनी ज्या सुधी जाते नही, त्यां सुधी उंघोवायु वहे ठे एटले जीवने कर्ता मानीये ठेये अने ज्ञानतुं उद्योत थवाथी सम्यक्नी एवी शुद्धता थई के ते थी कर्म पिमनो अकर्ता जीव सही थयो ठे. एम जाणुं ॥ ६२ ॥ जे वस्तु जेवीरी ते ठे ते साये आनके० बीजा स्वरूप वाली वस्तु मलती नथी. एकमेक थती नथी एथी जीव कर्मनो अकर्ता ठे ए अर्थ अनुभव प्रमाणथी समजाय ठे ॥ ६३ ॥

हवे मूढ जीव कर्मनो कर्त्ता मानी जेय ठे ते कहे ठे - अथ मूढकर्त्तायहकथन-
चोपाई - जेडुरमती विकल अज्ञानी, जिन्हि सुरीति पररीति न जानी, माया
मगन नरमके नरता; ते जिय जाव करमके करता ॥ ६४ ॥ दोहरा - जे मि
ध्यामति तिमरसो, लखे न जीव अजीव, तेई जावित करमके, करता होइ सदीव
॥ ६५ ॥ जे अशुद्ध परिनिति धरे, करे अह परवान, ते अशुद्ध परिनाम के, क
रता होइ अजान ॥ ६६ ॥

अर्थ - जे जीव छुट बुद्धिबडे विकल ठे, अज्ञानी ठे, जे पोतानी ने पारकी
रीत जाणता नथी माया जालमा मग्न ठे, भ्रमनाचरता के० धणी ठे, ते जीव
जाव कर्मना करनारा ठे ॥ ६४ ॥ जे जीव मिध्यामति अथकारथी जीव अजीव
ने निन्न पणै जाणता नथी, ते जीव सदाकाल जावित कर्मना कर्त्ता ठे, एटले
पोतपोताना कर्मनो जे स्वजाव तेनेज जावित कर्म कहिये ॥ ६५ ॥ जे जीव अ
शुद्ध परिणतिते धरेठे, सर्व क्रियामा अहंकार बुद्धिथी अहं कर्त्ता एवु प्रमाण क
रठे, ते जीव अजाण थका अशुद्ध परिणामना कर्त्ता थायठे ॥ ६६ ॥

अथ शिष्य प्रश्न -

दोहरा - शिष्य कहे प्रश्न तुह्य कह्यो, डुविध करमको रूप; दर्व कर्म पुदगल
मई, जाव कर्म चिद्रूप ॥ ६७ ॥ करता दरवित करमको, जीवन होइ त्रिकाल,
अब इह जावित करम तुम, कह्यो कौनकी चाल ॥ ६८ ॥ करता याको कौन है,
कौन करै फल जोग, के पुदगल के आत्मा, के डुहुको संयोग ॥ ६९ ॥

अर्थ - हवे शिष्य प्रश्न पुठे ठे के, हे प्रश्न तमे कस्य ठे के, कर्मतुं स्वरूप वे
प्रकारतुं ठे, एकतो पुदगलमय ते पुदगल पिंमरूप इव्य कर्म ठे, अने वीज्जु ना
व कर्म ठे ते चिद्रूप के० चेतनाविकार रूप ठे ॥ ६७ ॥ वली स्वामी तमे एवु कस्य के
इव्य कर्मनो करनार जीव त्रणे कालमा नथी, त्यारे जावित कर्म तमे कोनी चा
ल कह्यो ठो? ॥ ६८ ॥ ए जावित कर्मनो कर्त्ता कोण ठे, ने एना कर्म फलनो
जोक्ता कोण ठे? पुज्जल कर्त्ता जोक्ता ठे? के आत्मा कर्त्ता, जोक्ता ठे? किवा पुज्ज
ल अने आत्मा ए वेहुनो संयोग कर्त्ता जोक्ता ठे ॥ ६९ ॥

हवे आ प्रश्ननो गुरु, उत्तर आपेठे - अथ गुरु उत्तर कथन -

दोहरा - क्रिया एक करता जगल, यों न जिनागम माहि, अथवा करनी
औरकी, और करै यो नाहि ॥ ७० ॥ करे और फल-जोगवे, और बने नहि एम,

जो करतासो जोगता, यहै यथावत जेमा ॥७१॥ जाव कर्म कर्तव्यता, स्वयं सिद्ध नहि होइ, जो जगकी करनी करे, जग वासी जिय सोइ ॥७१॥ जिय करता जिय जोगता, जाव कर्म जिय चालि, पुद्गल करे न जोगवे, डविधा मिथ्या जाति ॥७३॥ तातें जावित करमको, करे मिथ्याती जीव, सुख दुख आपद संपदा, नूजे सहजसदीवा ॥७४॥

अर्थ.— क्रिया करणी एक होय अने तेना करनारा जुगल के० वे एवी वात जिनेश्वरना आगममां नथी कही, तेम पुद्गल अने जीव ए वेठ एक क्रिया करे नही, अथवा बीजानी क्रिया ठे अने करनार वली बीजो ज ठे, एवुं पण ठे नही, एटले पुद्गलनी क्रिया जीव न करे अने जीवनी क्रिया पुद्गल न करे ॥७०॥ एरीते करे एक अने तेनुं फल जोगवनार बीजो ज होय एवुं बने नही, एवु जिनेश्वरना आगममां नथी कह्यु, एटले पुद्गलनी क्रियातुं फल जीव जोगवे नही, केमके जे कर्त्ता तेहिज जोगता, जे कर्म करे तेज फल जोगवे, ए वात केवत प्रमाणे खरी ठे ॥७१॥

जाव कर्मनी कर्तव्यता के० क्रिया तेतो स्वयं सिद्ध न थाय, एटले जाव कर्म पोतानी मेले सिद्ध नही थाय तेथी एवुं ठे के जे जगतनी क्रिया करे ते जाव कर्मनो कर्त्ता ठे; एटले गमनागमन क्रिया करे तेज जाव कर्मनो कर्त्ता जगत वासी जीव ठे ॥७१॥ जीवज कर्त्ता अने जीवज जोका ठे, जीवनी चल विचलताथी जाव कर्म उपजे ठे, एथी जावित कर्म जीवनी चाल ठे. ए जावित कर्मने पुद्गल करे नही, तेम जोगवे पण नही, एमां जे अद्वैत मतवाला द्विधा राखे ठे. ते मिथ्या जात ठे ॥७३॥ तेमाटे जे मिथ्याती जीव ठे, ते जावित कर्मने करे ठे तेणे करी सुख दुख आपदा संपदा सदा सहजे जोगवे ठे ॥७४॥

हवे एकांत वादिसांख्यमतना वचनलुं वर्णन करे ठे.— अथ एकांत वादी चर्ननं— सवैयां इकतीला— केई मूढ विकल एकांत पठ गहै कहै आतमा अकरतार पूरन परम है, तिन्हसों जु कोउकहै जीउ करता है तासो, फेरी कहै करमको करता करम है, ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्म घाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोहको जरम है; तिन्हको मिथ्यात दूरि करिवेको कहै गुरु स्यादवाद परवान आतम धरम है ॥७५॥

अर्थ:— कोई मोह मूढ जीव ज्ञानवडे विकल एकांत पढ़ ग्रहीने एम कहे ठे के, आत्मा अकर्त्ता ठे, परम पूर्ण ठे, ते एकांत वादीने कोई एवु कहे के, आत्मा कर्त्ता ठे, तेने सांख्यमति प्रमुख एकांत वादी कहे ठे के, कर्मतुं कर्त्ता कर्मज ठे. एवा मिथ्यातमां मग्न मिथ्याती जीव ब्रह्म घाती ठे. तेमना हैयामां अनादि का

लथी मोह कर्म लाग्युं रहे ठे, ते मिथ्याती जीवतुं मिथ्यात दूर करवाने स्या दाद रूप जे आत्म धर्म ठे. ते धर्मज बधी रीत प्रमाण करी कहे ठे ॥ ७५ ॥

हवे जेम स्या दाद वस्तु स्वरूप ठे तेम कहे ठे - अथ स्या दाद कथन -

दोहा - चेतन करता जोगता, मिथ्या मगन अजान, नहि करता नहि जोग ता, निहचे सम्यकवान ॥ ७६ ॥ सवैया इकतीता - जैसे सांख्यमति कहै अलख अकरता है सर्वथा प्रकार करता न होइ कब ही, तैसे जिनमति गुरु मुख एक पद सुनि, याही जाति मानै सो एकत तजो अबही, जोलों डरमति तौलो करमको कर ता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सब ही, जाके घट ज्ञायक सुनाव जग्यो जब ही सो, सोतो जग जालसों निराजो नयो तबही ॥ ७७ ॥

अर्थ - मिथ्यातमा मग्न अजाण थको चेतन कर्ता ठे अने जोगता पण ठे अने समकेति जीव निश्चेषी कर्ता पण नथी अने चोक्ता पण नथी ॥ ७६ ॥

जेम सांख्यमति पोताना मतमा एवी प्ररूपणा करेठे के, जे अलक्षरूप ठे ते सर्वथा अकर्ता ठे, पण क्यारे कर्ता थतो नथी, अने सत्व रज तम गुण प्रकृति कर्ता ठे, एरीते जे सांख्यमतिवाला कहे ठे, तेम कोई जिनमती पण कोई गुरुना मुखथी निश्चे नयनो एक पद सांजलीने एमज माने, एटले जीवने अकर्ता माने ठे पण श्री जिनेश्वरना मतमा स्या दाद पद ठे ते एवु उरावे ठे के जांहां सुधी छुट बुद्धि मिथ्यामती अह बुद्धिमां ठे, तांहा सुधी जीव कर्मनो कर्ता ठे, अने सुमती आवेथी सदा अकर्ता ठे, जेठु ठे तेठुज अकर्ता कह्यो, जेना घटमा पोतानो ज्ञायक स्वनाव ज्यारे जाग्यो ते वखतधीज ते जगजालथी निरालो थयो, तेणे अर्थ पुज्ज परावर्त्तमा ससार लावी सुक्यो ॥ ७७ ॥

हवे एकांत वादी बोधमतीनि बुद्धिनु वर्णन करेठे - अथ बोध मति, वर्णनं

दोहरा - बोध भिनक वादी कहै, त्रिनु जंगुर तनुमाहि, प्रथम समे जो जीव है, दुतिय समे सो नाहि ॥ ७८ ॥ ताते मेरे मतविपे, करे करमजो कोइ; सो न जोग वे सरवथा, और जोगता होइ ॥ ७९ ॥

अर्थ - बोध कृष्णिक वादी ठे, ते एवु कहे ठे के शरीरमां रेहेनारो जे पदार्थ ठे ते कृष्णजंगुर ठे एटले प्रथम समयमां जे जीव पदार्थ शरीरने विपे ठे, ते बी जा समयमा न पामिये, एथी सर्व कृष्णजंगुर ठे ॥ ७८ ॥ वली बोध कहे ठे के मारा मनमा एवी श्रद्धा उरी ठे, के जे कोई कर्म करेठे, ते तो कर्मना फलनो जो गता नथी कृष्णजंगुर पणाने लीधे बीजोज जोगता थाय ठे ॥ ७९ ॥

हवे एकांत वादी बोधमतीना खंमननो उपदेश करठे:-अथ मतखंमन उपदेश-
 दोहरा.-यह एकंत मिथ्यात पप, दूरि करनके काज, चिद विलास अविचल
 कथा, जाषै श्री जिनराज ॥ ८० ॥ बालापन काहू पुरुष, देख्यो पुर कइ कोइ,
 तरुन नये फिरिके लख्यो, कहे नगर यह सोइ ॥ ८१ ॥ जो डहु पनमें एक
 थो, तो तिन्हि सुमिरन कीय; और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय.
 ॥ ८२ ॥ जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जैनमत शुद्ध, तब इकांत वादी
 पुरुष, जैन नयो प्रति बुद्ध ॥ ८३ ॥

अर्थ:- ए जे एकांत कृष्णनंगुरपणं ते मिथ्यात पढ़ ठे, तेने दूर करवाने चि
 दविलास अविचल कथा के० जीवना अचल पदनी वात सामान्य केवलीना रा
 जा श्री जिनेश्वर देव कहेठे. ॥ ८० ॥ कोईक पुरुषे बाव्यावस्थामां एक नगर दी
 तुं होय ने ते पढी ज्यारे जुवानीमां आव्यो ल्यारे फरीथी तेज नगरने तेणे जोयु
 ल्यारे तेने रैतां रैतां स्मृती आवीके, आ नगर तो में बालपणामां जोयुं हतु तेज
 ठे. ॥ ८१ ॥ हवे अंधी जीवना अचलपणानो संजव देखाडेठे - के, वेहु काल
 मां जो ते एकज हतो, तेवारे ते पुरुषे बालपणामां ते नगर जोयुं हतु ल्यारे तेने
 जुवानीमां तेनुं स्मरण थयु ए वात सत्य ठे, एटले बने वखतमां नगर तेज खरुं
 ठे, तेम एक पुरुषनो अनुभव के० जोगवेलुं कार्य तेने बीजो पुरुष जाणी शके
 नही. ॥ ८२ ॥ ज्यारे आ वात प्रगट सांनली अने जैनना शुद्ध मतनी वात सां
 नली ल्यारे एकांतवादी पुरुषें प्रतिबोध पामीने जैनमत ग्रहण कीयो अने बोधम
 तने गोडी दीयो. ॥ ८३ ॥

हवे बोधमतीना कृष्णनंगुरपणामां सदहणा केम अई ते कहे ठे -

अथ बोध मतीकी सदहना कथन:-

सवैया इकतीसा- एक परजाय एक समैमें विनसि जाइ, दूजी परजाय दूजै
 समै उपजति है, ताको ठल पकरिके बोध कहे समै समै, नवो जीव उपजे
 पुरातनकी पति है; ताते मानै करमको करता है और जीव, जोगता है और
 वाके हिए ऐसी मति है, परजै प्रयानको सरवथा दरव जाने, ऐसे डुरबुद्धिको
 अवश्य डुरगति है ॥ ८४ ॥

अर्थ:- हर कोई इव्यनो एक समयमां जे एक पर्याय ठे, इव्य क्षेत्र काल ना
 वने लीधे अवस्था जेद ठे, तेतो पर्याय ते समयमाज विनाश पामे ठे, अने
 बीजा समयमां बीजो पर्याय उपजे ठे, एवी जैननी वाणी ठे ते वातनेज बोध

मतीवाला निश्चलपणे पकडी राखीने कहे ठे के, समय समय नवो नवो जीव उपजे ठे, अने पाठला चूना जीवनी हाणी थायठे, वली आम मानेठे के कर्मनो कर्ता कोई बीजो जीवठे अने कर्मनो जोगता कोई बीजोज जीव ठे एम बोधमति क हेठे, इव्यना पर्यायतो समयमां फरे ठे, तेने बोधमति पर्याय प्रमाणने सर्वथा प्रकारे इव्यज जाणे ठे एवा इर्बुदिने अवश्य इर्गतीज प्राप्त थाय ठे ॥ ८४ ॥

हवे इर्बुदि अने इर्गतीनु लक्षण कहे ठे.—अथ इर्गति स्थिति लक्षण -

दोहरा - इर्बुदि मिथ्यामती, इर्गति मिथ्या चाल, गहि एकंत इर्बुदिसों, सुगति न होइ त्रिकाल ॥ ८५ ॥ कहे अनात्मकी कथा, चहै न आत्म शुद्धि, रहै अथात्मसो विमुख, डराराधि इर्बुदि ॥ ८६ ॥ सवेया इक्तीसा - कायासे विचारि प्रीति मायाहिमे हारि जीति, लिये हुरीति जैसे हारिजकी लकरी, चूंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै जूमि, ल्योहि पाई गाडे पें न ठाडे टेक पकरी; मोहकी मरोरसों नरमको न गोर पावे, धावै चिदु और ज्यों बढावै जाल मकरी, ऐसी इर्बुदि जूलि जूठके जरोखे जूली, फूली फिरे ममता जजीरनिसों जकरी ॥ ८७ ॥ वात सुनि चौक उठे वातहिसों चौकी उठे, वातसों नरम होइ वातहीसो अकरी; निदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी; मोख न सुहाइ दोख देखै तहा पंठि जाई, कालसो मराई जैसे नाहरसो बकरी, ए सी इरबुदि जूली जूठके जरोखे जूली, फूली फिरे ममता जजीरनिसो जकरी ॥ ८८ ॥

अर्थ - मिथ्यामतिने इर्बुदि कहिये, अने मिथ्या चालने इर्गति कहिये, जे इष्ट बुद्धि ठे, ते एकात्मतीने ग्रहणकरी रहेठे, तेने त्रणे कालमां सुक्ति न थाय. ॥ ८५ ॥ हवे इर्बुदिनी व्यवस्था कहेठे - जे आत्माथी जिन होय ते अनात्मा कहिये ते अनात्मानी कथा करे आत्मानी शुद्धता न जाणे, अने जे आत्मने आश्रय विचार ठे तेने अथात्म कहिये, ते तेनाथी डराराध्य के इष्टे समजायो जाय तेनाथी इर्बुदि जीव विमुख रहे ठे ॥ ८६ ॥ इर्बुदिनो विचार कहेठे.—कायासाथे प्रीति विचारे हार जीत करी मायामा गही रहे, हठ पकडी रहे; जेम हारल पक्री पोताना पगमां लाकनी पकनीज राखे ठोडे नही वली बीजो दृष्टात एक ठे; जेम कोई एक चोर जुगलीना बंध देई करी गोहने मेहज अथवा हवेली उपर चढावे ठे, ते बंधना जोरथी गोह चुमीने पकनी राखे, ने त्या पोताना पग घटी राखे, पण जे टेक पकनी ते मूके नही, तेम मोह कर्मनी मरोड लागी तेथी त्रमंठुं ठेकाणु पामे नही, एटले त्रम ठोडे नही जेम मकनी जाल वधारती पसार

ती चारे तरफ दोडे ठे, तेम चारे तरफ दोडतो फरे, ए रीते डुबुद्विये जूली जुवने फरुखे फुली रहेठे, ने ममतारूप डुबुद्विना जजीरनी वेडीने जकमी रह्यो ठे, ॥७३॥

वली एवाने कोई अध्यात्मनी वात कहे ल्यारे चौकी उठे, ने नों जो करी उठे, क दायह करे अने पोताना मनने रुचती वातथी नरम थाय ने मनमानती वात न थाय तो प्रकृति व्याकरी करे, मोहमार्गना साधकनी निंदा करे, अने जे हिंसक अधर्म कहेठे, तेनी प्रशंसा करे, पोतानी मोटाईने साता सुख समजे असाताने फ कोरी जाणे, मोहनी वात सुहाय नही, ज्यां कोई दोष जुए त्यां चतुराईनुं अजिमान वतावे, अने मृत्युथी एवो मरे के, जेम नाहीरथी बकरी मरे, ए रीते मरतो रहे एम डुबुद्वि जीव चूक्यां फरेठे, ने जूवने फरुखे जुलतो ममतारूप वेडीमां बंधाई रह्योठे. ७४

हवे एकांत पद्धीना मतनी स्थापनावपर अनेकांत स्या दादी मतनी प्रशंसा करेठे:-

अथ अनेकांत श्लाघा कथन.-

कवित्त उंद:- केई कहै जीव ठिन जंगुर, केई कहै करम करतार; केई कर्म र हित नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार; जे एकंत गहै ते मूरख, पंफित अने कांत पखधार; जैसे निन्न निन्न मुगतागन, गुनसो गहत कहावे हार. ॥ ७५ ॥

दोहरा.- जथा सूतसग्रहविना, मुक्तमाल नहि होइ, तथा स्यादादी विना मोख न सधे कोई. ॥ ७६ ॥

अर्थ - कोई बोध मती जेवा तो जीवने कृण जंगुर कहेठे, कोई मीमांसक सर खा कर्मने कर्ता मानेठे, कोई सारख्यमती सरखा तो सदा जीवने कर्मरहित कहे ठे, एरीते अनंत नय नाना प्रकार कहे ठे, एमाथी जे एकांत पद्धज ग्रही रहेठे ते तो मूरख ठे अने पंफित जन जे ठे, ते अनेकांत पद्ध ग्रहेठे, जेम एक माला मां मोतीनो समुदाय आपणी आपणी सत्तामां सव जुदा जुदा ठे पण ते सुतर मा परोव्याथी सर्वनुं-एक हार नाम पडेठे, ॥७६॥ तेवो अनेकांत मत ठे, केम के, सूतरना संगविना मोतीनी माला बने नही, तेम स्यादादमत धारण कीया शिवाय मोहनो साधनहार थाय-नही. ॥ ७७ ॥

हवे मत जेदनुं कारण पांच नय ठे तेनुं वर्णन करेठे.- अथ पंच नय वर्णन:-

दोहरा.- पद सुजाउ पूरवउदे, निहचे उदिम-काल; पद्धपात मिथ्यात पथ, सरबंगी सिव चाल. ॥ ७८ ॥

अर्थ.- कोई पद वस्तु स्वभाव माने कोई पूर्व-कर्मनो उदय माने, कोई निश्चय

माने, कोई उद्यम माने, अने कोई काल माने एमां पक्षपात करी जे एकेनेज माने ते मिथ्यात्व मार्ग केहेवाय ॥ ९१ ॥

हवे जुदा जुदा मतनी व्यवस्था कहे ठे - अथ मतव्यवस्था कथन -

सवैया इकतीसा - एक जीव वस्तुके अनेक रूप गुण नाम, निरजोग शुद्ध पर जोगसो अशुद्ध हे, वेद पाठी ब्रह्म कहै मीमांसक कर्म कहै शिवमति शिव कहै बोध कहै बुद्ध हे, जैनी कहे जिन न्याय वादी करतार कहै, ठहो दरसनमे वचनको विरुद्ध हे, वस्तुको सरूप पहिचाने सोइ परवीन, वचनके जेद जेद माने सोई शुद्ध हे।

अर्थ - जीव वस्तु एक अने तेना गुण अनेक ठे, रूप अनेक ठे, अने नाम अनेक ठे, निरजोग ठे एटले परसंयोग विना पीताना स्वभावमां रह्यो शुद्ध ठे, अने परना संयोगथी अशुद्ध ठे वली वेद पाठी प्रजावे करी एने ब्रह्म कहेठे मीमांसक जैमिनीय एने कर्म कहेठे, शिवमती एटले वैशेषिक एने शिव कहेठे, बौधमती एने बुद्ध कहेठे, अने जैनी एने जिन कहेठे, न्यायवादी नैयायकादिक एने कर्त्ता कहेठे, एरीते ठए दर्शनमां शुद्ध जीवने कहेवामां एकएकथी वचनतुं विरुद्ध ठे ए ठए दर्शनमा जे वस्तुतुं स्वरूप उलखे तेज प्रवीण केहेवाय, अने वचनना जेद प्रमाणे समजिरूढ नयनिते वस्तुमां जेद प्रवीण माने तेज शुद्ध वातं ठे ९१

हवे ठए दर्शनना मत स्थापन करे ठे - अथ मतस्थापना कथन -

सवैया इकतीसा - वेदपाठी ब्रह्म मानै निहचै स्वरूप गहै, मीमांसक कर्म माने उदमे रहतु है, बोधमति बुद्ध मानै सूठम सुजाउ साथै शिवमती शिवरूप कालको हरतु है, न्याय ग्रंथके पढैया थापे करतार रूप, उद्दिम उदीरी उर आनंद लहतु है, पाचो दरसनी तेतो पोपे एकएक अंग, जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहतु है ९२

अर्थ - वेद पाठी के वेदांती जीव वस्तुने ब्रह्म मानीने निश्चै स्वरूपने ग्रहेठे एटले एक अद्वैत मत धारेठे मीमांसक के यज्ञना करनार जीवने कर्मरूप मानेठे, तेथी उदयरूप थया जे सस्कार तेतुं ग्रहण करेठे बौधमती जीवने बुद्धमानीने कृष्णचरुपण्याथी सूक्ष्म स्वभाव साथेठे, तेथी वस्तुना स्वभावनेज कर्त्ता मानेठे शिवमती जे वैशेषिक ते जीवने कालरूप मानेठे अने शिवने कर्त्ता मानेठे, न्याय ग्रंथना जणनारा प्रमाणादिक सोल पदार्थने मानेठे, शुद्ध जीवनेज कर्त्ता मानीने उद्यमनी उदीरणामां चितने आनंद करी मग्न रहेठे, एम ए पाचे दर्शन वस्तु स्वभावदिक पांच नयना एक एक अंग पोपेठे, एटले एकात पक्ष ग्रहेठे अने जे जैन मार्ग केहेवाए ठे, तेतो सर्वांगी सर्व नय ग्रहण करेठे ९३

हवे जे मत स्थापनामां जुदी जुदी बुद्धि कही ते सर्व एक ठे, एवं जणावेठे.-

अथ मत स्थापना एकली करन.-

सवैया इकतीसा - निहचै अज्ञेद अंग उदै गुनकी तरग उद्यमकी रीति लिखे उदता सकति है; परजायरूपको प्रवान सूठम सुनाउ कालकीसी ढाल परि नाम चक्र गति है, याही जाति आतम दरबके अनेक अंग, एक माने एकको न माने सो कुमति है, टेक मारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजी जीवे वादी मरे साची कहवति है ॥ ९४ ॥

अर्थ - सर्व जीवमां लक्षण जेद नथी एवं निश्चय अंग ते साचो तरतम योगें गुणना तरग उठी रह्या ठे तेथी उदय अंग साचो ठे, अने जीवनी उदत शक्ति ठे. त्यां ते प्रवृत्ते ठे, तेथी उद्यम अंगवडे कर्तापणुं साचु ठे, अने पर्याय कृण कृणमां जुदा जुदा ठे, तेनारूपतुं प्रमाण सूक्ष्म ठे. तेथी बोध सूक्ष्म स्वजावने साधेठे, ते पण साचुं अने परिणामनी गति ठे, ते फरता चक्रनी शक्ति ठे, ते काल इव्यनी ढाल ठे तेथी इहां कालने कर्ता कह्यो ते पण साचो ठे, एरीते आत्मइव्यमा अनेक अंग पामीये पण एमांथी एकज अंग माने अथवा एक अंग न माने तेतुं नाम कुमति ठे, जे एकांत पद ठोडीने एक वस्तुमां अनेक अंग खोजे तेतुं नाम सुबुद्धि कहीए, जेम के खोजी जीवे ने वादी मरे ए केवत ठे, ते साची ठे ॥ ९४ ॥

हवे स्याद्वादतुं रूप कहेठे.- अथ स्यादवाद स्वरूप कथन.-

सवैया इकतीसा - एकमे अनेक है अनेकहीमे एक है सु, एक न अनेक कबु क ह्यो न परतु है; करता अकरता है जोगता अजोगता है उपजे न उपजिति मूए न मरतु है, बोजत विचारत न बोले न विचारे कबु, जेपको न जाजन पै जेखसो धरतु है, ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतीसो उजट पजट नट वाजीसी करतु है ॥९५॥

अर्थ.- एक इव्यमां अनेक पर्याय ठे, अने अनेक पर्यायमां एक इव्य ठे, ए थी दर कोई वस्तु एकज ठे, अथवा अनेकज ठे, एम काई केहेवातु नथी व्यवहार मा कर्ता ठे, निश्चयमां अकर्ता ठे, व्यवहारथी जोक्ता ठे, निश्चयथी अजोक्ता ठे, व्यवहारथी उपजे ठे, निश्चयथी उत्पत्ति नथी व्यवहारथी मुझ्यो, ने निश्चयथी न थी मुझ्यो, व्यवहारथी बोलेठे, विचारेठे, ने निश्चयनयथी कांइ बोले पण नही, ने विचारे पण नही, अविक्लपी ठे, निश्चयथी जेपतुं जाजन के० स्थानक नथी, व्यवहारथी जेपनो धरनार ठे. एवो चेतनवत जे ईश्वर ठे, ते पुदगलीक अचेतन

नी संगतीथी उलट पालट थई रह्योने, जाणे नटनी बाजीनो खेल करतो होय नी तेम खेल करेते. ॥ ९५ ॥

अथ अनुनव व्यवस्था कथन.

दोहरा.— नट बाजी विकल्प दसा, नाही अनुनौ जोग; केवल अनुनौ करन को, निर विकल्प उपयोग ॥ ९६ ॥

अर्थ.— अनुनवमा आत्मइव्यनी जे अवस्था पामिये ते कहेते पूर्वे कही जे नट सरखी जीवनी उलट पालट बाजी ठे, ते तो विकल्प दशा ठे ए दशा अनुनवमां योग्य नथी नि.केवल अनुनव करवाने निर्विकल्प उपयोग आपवो तेज सत्य ठे ॥ ९६ ॥

हवे अनुनवमां निर्विकल्प उपयोग आपवुं तेनु दृष्टात कहेते.—

अथ अनुनौ दृष्टांत कथन.—

सवैया इकतीसा — जेसे काडु चतुर संवारी हे मुगतमाल मालाकी क्रियामें ना ना जातिको विज्ञान है, क्रियाको विकल्प न देखे पहिरन वालो, मोतीनकी शोचमें मगन सुखवान है; तेसे न करे न जुजे अथवा करे सु जुजे, और करे और जुजे सब नै प्रवान है, यद्यपि तथापि विकल्प विधि त्याग जोग निरविकल्प अनुनौ अमृत पान है. ॥ ९७ ॥

अर्थ — जेम कोई चतुर पुरुष मोतीनी माला समारीने बनावी ने तेमां जात जातनुं विज्ञान ठे, पण ते मालानो पहेरनारो तेनी क्रियानो विकल्प जोतो नथी, पण मोतीनी शोचाथी मगन ने सुखवान थई रहे ठे, जेम मोतीनी मालामां थ नेक विज्ञान ठे, तेम अही पण अनेक विकल्प ठे, आत्मा कर्त्ता नथी, जोक्ता न थी, अथवा कर्त्ता ठे, जोक्ता ठे, अथवा राग देपादिक करनारा बीजा ठे, अने जो गवनारा बीजा ठे, ए सर्व नय प्रमाण ठे. यद्यपि ए सर्व नय प्रमाण ठे, तथापि ए सर्व विकल्प विधि त्यागवा योग्य ठे. केमके अनुनव जे ठे तेतो निर्विकल्प ठे अने अमृतपान समान ठे उपादेय ठे ॥ ९७ ॥

हवे स्या दादी आत्माने कर्मनो कर्त्ता जे नयथी मानेते ते कहेते.—अथ कर्त्ताकथनः—

दोहरा.— दरब करम करता अजख, यहु विवहार कहाउ, निहचे जोजे सो दरब, तेसो ताको जाउ ॥ ९८ ॥

अर्थ — पुं

कर्मनो कर्त्ता

पुरुष आत्मा ठे, ए व्यवहार

मां केवाई शके ठे, निश्चय नयमां तो ए वात ठे के जेवुं जे इव्य होय तेवुं तेवुं जाव स्वरूप होय, एथी पुदगज इव्यनी क्रिया पुज्जलवडेज बनेठे ॥ ९८ ॥

हवे जेवुं विपरीतपणुं बुद्धिमां जासेठे, तेवुं कहेठे:—अथ विपरीत बुद्धिकथनं:—
सर्वेया इकतीसा:— ज्ञानको सहज ज्ञेयाकाररूप परिणमे यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञान रूप कह्यो है, ज्ञेयज्ञेय रूप यो अनादिहीकी मरजाद, काहु वस्तु काहुको सुजाव नहि गह्यो है, एते परि कोउ मिथ्या मति कहे ज्ञेयाकार प्रति जासनिसें ज्ञान अशुद्ध व्हे रह्यो है, याहि डरबुद्धिसो विकल नयो मोलत है समुजे न धर म यो नर्ममाहि व्हयो है ॥ ९९ ॥

अर्थ:— ज्ञाननो ए सहज स्वजाव ठे के, घट पट प्रमुख ज्ञेय के० जाणवाजोग जे पदार्थ ठे, तेनो जे आकार ठे, तेजरूपे आत्मानुं ज्ञान परिणमे, यद्यपि ए वात प्रमाण ठे तो पण ज्ञान जे ठे, ते ज्ञानरूपज कहेवाय पण ज्ञेयरूप न कहेवाय अने जे ज्ञेय पदार्थ ठे ते ज्ञानमां परिणम्यो ठे तोपण ज्ञेयरूपज केवाय, पण ज्ञानरूप न केवाय एवी अनादि कालनी मर्यादा ठे, कोई वस्तु बीजी वस्तुनो स्वजाव ग्रहण करे नही, तेम छुदो छुदो स्वजावपण धारण करे नही, एवी मर्यादा बंध वातठे, तेम ठतां कोई वैज्ञेपिक प्रमुख मिथ्यामति कहेठे. के ज्ञेय पदार्थना आकार प्रति जासे ठे, तेथी ज्ञान पदार्थ अशुद्ध अई रह्योठे, ज्यारे ए अशुद्धपणुं मटी जज्ञे तारे मुक्तिअज्ञे, एज डट बुद्धिथी मिथ्यात्व मोहनो विकल्प थयो, तेथी अंहि तहिं विकल अईने मोले ठे, अने धर्मके० वस्तुनो स्वजाव जाणतो नथी. तेथी भ्रममां व्हयो फिरे ठे. १०० हवे सर्व पदार्थ पोताना स्वजावमां व्यापीरहाठे ते कहेठे —अथव्यापकताकथनं:—

चोपाई:— सकल वस्तु जगमे असुहाई, वस्तु वस्तुसो मिले न काई; जीव वस्तु जाने जग जेती, सोऊ निन्न रहे सवसेती ॥ ४०० ॥

अर्थ:— जगतनेविषे सर्व जाव असहाय पणे वचें ठे. कोई कोईनो सहाय कारी नथी, एज अर्थ प्रगट पणे कहे ठे, के एक वस्तु बीजी विलक्षण वस्तु साथे मले नही जगतमां जेटली वस्तु ठे, तेटलीने जीव जाणे ठे. एटले सर्व ज्ञेय वस्तु जीवना ज्ञानमां परिणमे ठे, तोपण जीव सर्व वस्तुथी छुदोज रहे ठे, एम पोतपोताना छुदा लक्षण ठे तेथी छुदा रहेठे ॥ ४०० ॥

हवे व्यवहारनी केवत देखाडेठे:— अथ व्यवहार कथनं:—

दोहरा:— करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोई, यह कथनी व्यवहार की वस्तु स्वरूप न होइ ॥ ४०१ ॥

अर्थ -- कोई अज्ञानी जीव ठे, ते कर्मने करेठे अने तेनुं फल पण नोगवेठे, ए केव त व्यवहारमां ठे पण जेबुं वस्तुनुं स्वरूप ठे, तेवी केवत नथी ॥ ४०१ ॥

हवे व्यवहारने प्रमाण करे एवी विपरीत बुद्धिनुं वर्णन करे ठे -

अथ विपरीत बुद्धि वर्णनं -

कवित्त उंद - ज्ञेयाकार ज्ञानकी परिणति, पै वह ज्ञान ज्ञेय नहि होइ, ज्ञेय रूप खट दरव निन्न पद, ज्ञानरूप आत्मपदसोइ, जाने जेद जाउ सुविचरन गुन लठन सम्यक दृग जोइ, मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहिकोइ २

अर्थ - जेवो ज्ञेय वस्तुनो आकार ठे, तेवी ज्ञाननी परिणती ठे एटले ज्ञान घट पटादिक ज्ञेयना आकार परिणाम ठे, पण ज्ञान ठे ते ज्ञेय रूप न थाय. जगतमा जे ज्ञेय वस्तु ठे ते उच्च ठे तेतो निन्न पद के० जूदा जूदा स्वभावथी केवा योग्य ठे, अने जे आत्मापणुं कहियें तेतो ज्ञानरूप ठे एवो जावनो जेद ठे, ते गुण लक्षण उलखीने जे जलो विचक्षण अध्यात्मनो वेत्ता सम्यक दृष्टी होय तेज जाणे पण वैशेषिक मति जेवो मूर्ख होय ते ज्ञानमां आकार वि कल्प जोईने कहे अहो आ ज्ञानमां आकार नासे ठे तेतो प्रगट कलंक ठे तेने कोई केम लखे नही ॥ २ ॥

हवे मिथ्यामति जीव पोतानी मतीने दृढ करेठे - अथ मिथ्यामति कथनं - चोपाई - निराकार जो ब्रह्म कहावे, सो साकार नाम क्यो पावे, ज्ञायाकार ज्ञान जबताई, पूरन ब्रह्म नाहि तबताई ॥३॥ ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने, नास करनको उदिम माने, वस्तु सुजाउ मिटे नहि क्योही, ताते पेद करे सवयोही ॥४॥ दोहग. - मूढ मरम जाने नही, गहे इकात कुपहू, स्यादवाद सरबंगमें, माने दहू प्रत्यहू ५

अर्थ. - ब्रह्मतो निराकारज ठे, ते साकार नाम केम धारण करे, जो ब्रह्मने आ कार मानीये तो साकार केबुं जोये, ते केम बने, जासुथी ज्ञेयनो आकार ज्ञानमा प्रति नासे ठे, तहा सुधी पूर्ण ब्रह्म न केवाय ॥३॥ ज्ञेय वस्तुनो जे आकार के० प्रति नासठे ते ब्रह्मने मलरूप माने ठे, ते मलनो नाश करवाने उद्यम करे, जे वस्तुनो जे वो स्वभाव होय तेवोज रहे पण कदी मटे नही, तेथी मूर्खजे सव लोकठे ते अमथो जूगे क्षेप करे ठे ॥४॥ जे मूर्ख ठे ते मर्मनी वातने न ओलखे ने एकात पहू जे जे कुपहू ठे तेनेग्रहे अने जे माहो पुरुष ठे, ते स्यादाद मतना आश्रयथी सर्वांगमय प्रत्यहू पणे माने, एटले निराकार साकार सर्व नय माने ॥ ५ ॥

हवे स्याद्वाटने ग्रहण करनार जे सम्यक्ति ठे तेनी स्तुती करे ठे:—अथ सम्यक्त स्तुती —
दोहरा — शुद्ध दरब अनुनौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमांहि, ताते सम्यक् वंतनर,
सहज उठेदक नाहि ॥ ६ ॥

अर्थ:— सम्यक्तिना हृदयमां जे अनुभव ठे, तेज शुद्ध इव्यने शुद्ध करे ठे के
मके, हृदयमां वस्तु स्वभाव जाणवाथी शुद्ध दृष्टी ठे, तेथी जे सम्यक्वत पुरुष ठे,
ते सहज स्वभावना उठेदक थतो नथी, एटले सहज जावनो उठेद मानतो नथी
हवे परवस्तुमां परइव्यनुं अव्यापक पणुं दृष्टांतवडे दृढ करेठे.—

अथ अव्यापक इव्य कथन—

सवैया इकतीसा:— जैसे चदकीरन प्रगटि चूमि सेत करे, चूमिसीत होति सदा
जोतिसी रहती है, तैसें ज्ञान सकति प्रकासे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पे न ज्ञे
यकों गहती है, शुद्ध वस्तु शुद्ध परजायरूप परिणमै, सत्ता परवान मांहि दाहे न
ढहती है, सोतो औररूप कबहो न होई सरब था निहचे अनादि जिनवा
नी यो कहती है ॥ ७ ॥

अर्थ:— जेम शरदपुनमनी रात्री समे चडना किरण प्रकाश वडे पृथ्विने श्वेत
रूप करेठे, पण ते चडमानी ज्योती कइ पृथ्वी वनती नथी, सदा ज्योतीरूप र
हेठे, तेम ज्ञान शक्ती एहवी ठे के जे हेय उपादेय वस्तुने प्रकाशे ल्यारे ज्ञान,
ज्ञेय वस्तुने आकारे देखायठे पण ज्ञेय वस्तुनुं स्वरूप ग्रहण करे नही. केमके,
जे शुद्ध वस्तु ठे ते शुद्ध पर्यायरूप पणोज परिणमे अने जेनी पोतानी सत्ताठे ते जेट
लामा वस्तुनुं सडूप पणुं ठे, तेटला प्रमाण मांहे शुद्ध पर्यायनेज परिणमे ठे, प
ण ए वस्तुनुं स्वरूप ढांक्युं रहे नही, तेतो शुद्ध वस्तु कोइनी संगतीथी सर्व प्रकारे
बीजेरूपे न थाय ए वात निश्चयमाठे, एवी अनादि कालनी जिनवाणी कहेठे ॥७॥

हवे वस्तुनुं यथार्थ स्वरूप कहे ठे — अथ जथा स्वरूप कथन.—

सवैया तेईसा.— राग विरोध उदे तबलो जबलों यह जीव भ्रपा मग धावे;
ज्ञान जग्यो जब चेतनको तब कर्म दशा पररूप कहावे, कर्म विलेठि करे अनु
जो तब मोह मिथ्यात प्रवेश न पावे, मोह गये उपजे सुख केवल सिद्ध जयो
जगमाहि न आवे ॥ ८ ॥

अर्थ — ज्यासुधी आ जीव मिथ्यात मार्गमां ढोडे ठे. त्यां सुधी राग देपनो
उदय ठे, अने तेथी सत्य मार्गने पामतो नथी. ज्यारे शुद्ध चेतन वस्तुनुं ज्ञान जा
ग्यो ल्यारे तो कर्म दशा जे ठे ते पररूप जणाय, अने आत्मा तेथी शुद्धो जोवामां

आवे ज्या चेतननो अनुभव ठे त्यां सत्यार्थे पणे जाणवुं होय ते कर्मनुं विलक्षण पणुं करे. एटले जेद विज्ञानवडे चिन्न लक्षण पणे जाणे, अने त्यां मोहरूप मिथ्या त प्रवेश करी शके नही. मोह गयाथी सुख समाधिमां केवल ज्ञान प्रगटे अने त्यां जीव सिद्ध थाय अने फरीथी जगतने विषे आवे नही ॥ ८ ॥

हवे जेम अनुक्रमें वस्तु स्वरूपने प्रगट पणे स्वभावने वधारे ते कहेठे.—

अथ अनुक्रम वस्तु स्वरूप वर्द्धमानता कथन —

उपय ठंद — जीव करम सयोग, सहज मिथ्यात रूप धर, राग दोष परिणति, प्रजाव जाने न आपापर, तम मिथ्यात मिटिगयो, जयो समकित उदोत स सि; राग दोष कडु वस्तु, नाहि विनु माहि गये नसि, अनुजो अन्यासि सुखराशी रमि, जयो निपुन तारन तरन, पूरन प्रकाशनिहचलि निरखी, बनारसी वंदत चरन ॥ ९ ॥

अर्थ — अनादि कालनो जीवने कर्म साथे संयोग ठे. तेथी सहज संबंधे मिथ्यात स्थिति रूपी धारी जीव ठे, अने क्यारेक जीव रागमां परिणम्यो रहेठे, अने क्यारेक देपनी परिणतिना प्रजावथी पोताने तथा परने जाणतो नथी एवामां क्यारेक मिथ्यातरूप अधकार मटी गयुं ने समकितरूप चडमानो प्रकाश थयो तेथी खबर पमीके रागदेष कडं वस्तु नथी, एटले जली वस्तु नथी, एम जाणी एना अनादरथी राग देष कृणमा नाश पाम्या अने ते पठी पोताना अनुभवनो अन्यास कीथो तिवारे तो सहज समाधिरूप सुखराशीमा रमी रह्यो एरीते निपुण सर्वे ज्ञानी, तरण तारण समर्थ प्रभु थयो हवे ए पूर्ण प्रकाश अनत काल लगी निश्चल थयो तेना ध्यानने निरखी बनारसी वास ते प्रभुना चरणने नित्य प्रतें वडेठे. ॥ ९ ॥

रागदेषना हेतुनु शिष्य प्रश्न करठे गुरु उत्तर आपेठे — अथ प्रश्नोत्तर कथन:—

सवैया इकतीसा.— कोउ शिष्य कहे स्वामी राग दोष परिणाम ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोनहै, पुगल करमजोग किधो इडिनिको जोग, किधो धन किधो परिजन किधो जोन है, गुरु कहे ठहो दर्व अने अपनेरूप, सबनिको सदा असाहाई परीनोन है, कोउ दर्व काहु को न प्रेरक कदाचि ताते, राग दोष मोह मृषामदिरा अचोन है ॥ ९ ॥

अर्थ — कोइ शिष्य आचार्यने विनय पुर्वक पुठवा लाग्यो के अहो स्वामी, आत्माने राग देष परिणाम उपजे ठे. तेनो प्रेरक निश्चय पणे तमे काने ठेरावो ठे एटले आत्माने पुजलिक कर्मनो योग ठे, तेज इहा हेतु ठे, के पंचेडियनो जोग

हेतुके के धन हेतु ठे, के परिवार हेतु ठे, अथवा मंदीर हेतु ठे ? इत्यादिकोमांथी राग देप परिणामनो हेतु कोण ठे, ते कहो गुरु कहे ठे, हे शिष्य ए पुञ्ज संबंध हेतु नथी, तेम इव्य इडिय ठे, तेतो पोतपोताने रूपे पोतपोतानी सत्तामां रहे ठे, अने सर्व इव्योतुं परिणामन सदा असहाई ठे, कोई कोईतुं सहाय करतु नथी. तेथी कोई काले कोई इव्य कोईतुं प्रेरक नथी एटले हेतु नथी, माटे राग देप परिणामनो हेतु तो मिथ्यात्व मोहकर्मरूप मदिरानी अचौन के उदतपणुं ठे ॥ १ ॥

हवे कोई मूर्ख राग देप परिणामनुं प्रेरक पुञ्जनुं बल ठे एम कहेठे, तेने गुरु समजावे ठे.— अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथन.—

दोहरा:— कोक मूरख यो कहै, राग दोष परिनाम ; पुग्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ १ ? ॥ ज्यो ज्यो पुग्गल बल करे, धरि धरि कर्मज नेप ; राग दोषको परिनमन, ल्यो ल्यो होइ विशेष ॥ १ ॥ इहविधि जो विपरीत पख, गहे स इहे कोई, सो नर राग विरोधसो, कबहू निन्न न होइ ॥ १ ॥ सुगुरु कहै जगमें रहे, पुग्गल संग सदीव, सहज शुद्ध परिनमनको, औसर लहे न जीव ॥ १ ॥ ताते चिदचावनविपे, समरथ चेतन राउ, राग विरोध मिथ्यातमे, सम्यकमेंसिब जाउ ॥ १ ॥

अर्थ.— कोई मूर्ख लोक एम कहेठे के, आत्मरामविपे जे राग देप परिणाम ठे, ते पुञ्जनी जोरावरीथी ठे, एटले एज पुञ्जनुं जोर ठे ॥ १ ? ॥ जेम जेम कर्म नेख धारीने एटले कर्म वर्गनारूप धारीने पुञ्ज इव्य आपणुं बल विस्तारेठे, तेम तेम रागदेपनुं परिणाम विशेषरूपे थाय ठे, एम आत्मानेविपे देखाय ठे, ए सांख्यमतिनुं केहेतुं ठे ॥ १ ॥ ए रीते जे सांख्यमतिवाला आतुं विपरीत ग्रहण करेठे, अने सर्वहेठे, ते पुरुष राग देषथी एवी श्रद्धावडे पण कदी छुटो थाय नही ॥ १ ॥ हवे सतगुरु कहेठे, अरे प्राणी जगतमा पुञ्जना संगमा जीव सदा रहेठे अनादीथी ए पुञ्जने जीवतुं संश्लेषपणुं ठे, तेथी सहज शुद्ध परिणामवालो जीव अवसर न पामे, एटले पोतानुं शुद्ध परिणाम ग्रहि शके नही ॥ १ ॥ चेतनराय जे ठे ते चिदचावने विपे एटले ज्ञान चावविपे समरथ ठे, एटले जाणपणानां कार्यमां समर्थ ठे. अने मिथ्यामति निमग्रताथी जाणपणामां राग देप परिणाम देखाय ठे, अने जीव सम्यक्त चावमां रहेठे, ल्यारे शिव चाव उपजेठे ॥ १ ॥

हवे ज्ञान चावमां पुञ्जनो चाव व्यापी शकतो नथी तेथी परचावतुं अब्यापक पणुं कहेठे.— अथ अब्यापकता कथन.—

दोहरा - ज्यो दीपक रजनी समै, चिहु द्विति करे उदोत, प्रगटे घट पट रूप मे, घट पट रूप न होत ॥ १६ ॥ ल्यो सु ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म, ज्ञेयावृत्ति परिणमन पे, तजै न आतम धर्म ॥ १७ ॥ ज्ञान धर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ, राग विरोध विमोह मय, कबहु नूलि न होइ ॥ १८ ॥ ऐसी महिमा ज्ञानकी, निहचै है घटमाहि, मूरख मिथ्या दृष्टिसो, सहज वि लोके नाहि ॥ १९ ॥

अर्थ - जेम दीवो रात्रि चारे दिशाने प्रकाशमान करेते, अने तेथी घटपटा दिक पदार्थ प्रगटेते, पण दीपकनो प्रकाश घटपटरूप थतो नथी ॥ १६ ॥ तेमसुज्ञान जे ठे, ते सर्व ज्ञेय वस्तुनो मर्म जाणोते, तेना ज्ञानमा ज्ञेय पदार्थनो आकार पण परिणमेते तो पण ज्ञान जे ठे ते आत्म धर्म शुद्ध पणुं गंतु नथी ॥ १७ ॥ ज्ञान धर्मथी जाणपणु ते सदा अविचल ठे ए जाणपणामा कोई विकार प्रवेश करे नही. राग द्वेषमोहमां जीव वहेते खरो, तोपण जाणपणाने कही नूल तो नथी ॥ १८ ॥ एवो ज्ञाननो महिमा निश्चे स्वरूपे घटमा ठे पण मूरख मिथ्या दृष्टीथी सहज स्वरूपने विलोकतो नथी ॥ १९ ॥

हवे अनादिकालथी जीवनो मूढ स्वभाव ठे ते कहेते - अथ मूढ स्वभाव कथन - दोहरा - परसुनावमे मगन व्हे, वाने राग विरोध, धरै परिग्रह धारना, क रे न आतम सोध ॥ २० ॥

अर्थ - शुद्ध चेतन स्वभावथी बीजा स्वभाव जे ठे ते पर स्वभाव ठे, तेमां मग्न थईने राग द्वेषमा ठेरी रह्योते, अने एज राग द्वेषथी परिग्रहनी धारणा धरेते पण आत्मइव्यनो सोध करे नही ॥ २० ॥

हवे मूढने कुबुद्धि अने पंफितने सुबुद्धि होय ते कहेते - अथ कुबुद्धि तथा सुबुद्धि विवरन -

चोपाई - मूरखके घट डुरमति जासी, पंफित हिए सुमति परगासी, डुरमति कुबजा करम कमावे, सुमति राधिका राम रमावे ॥ २१ ॥ दोहरा - कुबजा कारी कू बरी, करे जगतमे खेद, अलख अराधे राधिका, जाने निज पर जेद ॥ २२ ॥

अर्थ - मूरख प्राणीना घटमा डुरमति जासी रहीते, अने पंफितना हैयामा सु बुद्धि प्रकाश थई रही ठे कुबुद्धि जे ठे ते कसराजानी दासी जे कुबजा तेना सरखी ठे ते कर्मनी कमाई करेते, अने सुबुद्धि जे ठे ते राधिका सरखी ठे ते आत्मराम नाथकने रमाडनारी ठे ॥ २१ ॥ कुबजा दासी काजी अने कुबडी ठे, ते जगतमां खेद प्रयास उपजावे एवा काम करनारी ठे, अने सुबुद्धि राधिका

जे ठे, तेतो अलख नायकनेज आराधे ठे. अने एज माहारो श्रेष्ठ इष्ट नायक ठे, अने बीजा सर्व पर ठे, एवो नेद जाणे ठे ॥ २३ ॥

हवे कुबुद्धि अने कुबजातुं एकसरखुं वर्णन करेठे:- अथ कुबुद्धि यथा -
सवैया इकतीला - कुटिल कुरूप अंग लगी है पराए संग, अपनो प्रवान करि
आपुद्धि विकारि है; गढे गति अंधकीली सकती कमंधकीली, बंधको बढाव करे
धंधहीमें धारि है; रामकीली रीतिलि ए मांम कीली मतवारी सांम ज्यों सुबंद
मोले नांमकीली जाई है, घरको न जाने नेद करे पराधिन खेद, याते डुबुद्धि
दासी कुबजा कहाई है. ॥ २३ ॥

अर्थ:-जे कुबुद्धि ठे ते मायाथी कुटिल ठे, तेज कुबजा कुरूप अंग वालीठे, अने
कुबुद्धि पारका संगमां लागी रहेठे, तेम कुबजा पण एवीठे कुबुद्धि पोताना अशुद्ध
प्रमाण वडे पोतेज परवस थईठे, अने कुबजा पण तेम वेचाईठे कबंध एटले म
स्तकविना लडाई करे- तेनी गत्ती वेफाम होयठे, ते आंधलानी माफक गति
लई मोलतो फिरेठे तेम कुबुद्धिने कुबजापण माथा विनानी फिरेठे अने डुबुद्धि
ठे ते कर्मना बंधने वधारेठे, ने धंध के० राग देप विग्रहमां दोडेठे, तेम दासी प
ण पारका घर धंधामा दोडती फरेठे कुबुद्धि पोताना नायकने अलखती नथी, तेथी
रांम जेवी रीती राखेठे, तेम दासीपण नायकविना रांमनी रीतेठे वली सोहागननी
रीते मतवारी थकी फरेठे जेम साठ जनावर स्वठंदे मोलेठे, अने चांमनी ठोकरी
लाज विनानी होयठे, तेवी ए कुबजा दासी ठे. जेम कुबुद्धि पोताना घरनो नेद
जे ज्ञानादिक वित्त ठे ते जाणे नही, तेम दासी पण घरनो नेद जाणे नही, ने प
राधीन थकी खेद कखा करे माटे डुबुद्धिरूप दासी ते कुबजा दासी सरखीठे ॥ २३ ॥
हवे सुबुद्धि अने राधिका ए वेतुं एक स्वरूप कही देखाडेठे:-अथ सुबुद्धि यथा-

सवैया इकतीला - रूपकी रसीली त्रम कुलफकी कीली सील सुधाके समुद्ध
जीली सीली सुखदाई है, प्राची ज्ञान जानकी अजाची है निदानकी सुराची नरवा
ची ठोर साची ठकुराई है; धामकी खबर दार रामकी रमन हार राधा रस पंध
निमें अंधनि मेगाई है, संतनिकी मानी निरवानी नूरकी-निसानी याते-सदबुद्धि
रानी राधिका कहाई है. ॥ २४ ॥ दोहरा.- वह कुबजा वह राधिका, दोउ गती
मति मान; वह अधिकारनि करमकी, यह विवेककी खान. ॥ २५ ॥ दरव करम
पुजल दसा, जाव कर्म मति वक्र, जो सुज्ञानको परि नमन, सो विवेक गुनचक्र. २६
अर्थ.- सुबुद्धि आत्मारूपनी रसीली ठे, अने राधा पण रूपनी रसीली ठे, अने

ध्रमरूप तालाने खोलवानी कुची ठे सुबुद्धि शीज रूप सुधा समुद्रमा ऊली रहेछे अने राधा पण तेची ठे, एम ए वेउ शीज प्रकृतीयेकरी महा सुखदायी ठे, ज्ञानरूप जानुनो उदय करवाने प्राची के० पूर्व दिशा जेची ठे, निदाननी जाचनारी नथी, एटले निस्ने हीपणे सुबुद्धि अने राधिका ठे निरवाची के० वचन गोचर नथी, एवे ठेकाणे राची रहेछे, जेनी साची ईश्वरता ठे धाम के० जे पोतातुं आत्म घर तेनी खबरदार ठे, जेनी साथे रमी रहीठे ते राम एटले पोताना इष्टनी साथे रमनारी ठे राधा रस पंथ ए टले राधावल्लनीना मार्गना रसग्रंथमां राधानामे ईश्वरनी प्यारी ठे, तेचीज सुबुद्धि पण ठे एवी संतजननी मानेती ठे अने स्वस्थपणे रेनारी अने नूर के० शोनानी नि शाणी ठे एवी सुबुद्धि वचेंठे, माटे सुबुद्धिने राधिका राणी कहेवी ॥ २४ ॥ ए रीते कुबुद्धि कुबजा थई अने सुबुद्धि राधिका थई ए वे पोतपोतानी गति अने मति लीधी रहेछे ते कुबुद्धि जे कुबजा तेतो करम बधनी अधिकारणी ठे, अने सुबुद्धि राधिका तो विवेकनी खाण ठे ॥ २५ ॥ ज्ञानावरणीय आदिक इव्य कर्म ठे, ते पुद्गलरूप ठे अने मतिनी वक्रता ठे ते जाव कर्म जाणीए, जे सुज्ञाननो परिणमन होय तेने विवेक गुणतुं चक्र कहीए ॥ २६ ॥

हवे जाव कर्मना चक्रनी उपर दृष्टात कहेछे - अथ कर्म चक्र यथा -

कवित्त ठंड - जैसे नर खेलार चोपरको, जान विचार करै चित चाउ, धरि स वारि सा बुद्धी बलासों, पासाको कुबु परे सु दाउ, तैसे जगत जीव स्वारथको करि उद्यम चितवे उपाउ, लिख्यो जलाट होइ साईं फल, कर्म चक्रको यही सुजाउ ॥ २७ ॥

अर्थ - जेम कोई चोपटनो खेल करे, ते पुरुष चित्तमा जान विचारी खेलवानो चाह राखे, एटले हाँस राखे, पोतानी बुद्धि बलने छुग प्रमुखनो यत्न राखीने त्रिक चोक प्रमुख दाव उपर सारी संजाल राखीने रमे, पण दाव तो पासाने आधीन ठे तेम जगतनो जीव उद्यम करीने पोताना स्वारथनो उपाय चितवे, पण पोताना ल लाटमा लख्युं होय तेज फल थाय, कर्म चक्र उदय माफक थाय एनो एज स्वजावठे २७

हवे विवेक चक्र उपर दृष्टांत कहे ठे - अथ विवेक चक्र यथा -

कवित्त ठंड - जैसे नर खिलार सतरंजको, समुजे सब सतरंजकी घात, चले चाल निरखै दोषं दल, मोह राग न विचारे मात, तैसे साधु निपुन शिव पथमें लहन लखे तजे उतपात, साथे पुन्य चितवे अने पद, यह सुविवेक चक्रकी वात ॥ २८ ॥ दोहरा - सतरंज खेले राधिका, कुबजा खेले सारि, याके निसिदिन

जीतवो, वाके निसिदिन हारि ॥ ३९ ॥ दोहरा— जाके उर कुवजा वसे, सोई अजख अजान ; जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यक वान ॥ ३० ॥

अर्थ— जेम कोईमाणस सेतरजनो रमनार सेतरजना खेलनी सर्व धात के० युक्ति अने दाव समजेठे पोताना पराया दल उपर नजर राखी चाल चाले, पोताना पारका वजीर हाथी प्रमुख मोहोरा गणतिमां राखी मनमां परने मांत करवो वि चारेठे तेम साधु लोक पंथित ठे, ते मोहू मार्गमा खेले. लक्ष्णथी वस्तुने जोय तेमां उत्पातरूप कार्य होय ते ठांमी दे, अने पोतानुं साधन करे, चित्तमां अनेद पद विचारे ए विवेक चक्रनी वात ठे ॥ ३० ॥ सुबुद्धि राधिका ते सेतरंज खेळी रही ठे, अने कुमति कुवजा पासा सरखो खेल खेलेठे. तेमां आ सुमती रा धिका तेनुं विवेक चक्रमां रातदिन जीतनुं थायठे. अने कुमति कुवजा ते कर्म चक्रमां रातदिन हारेठे ॥ ३९ ॥ जेना हैयामा कुमति कुवजा वसे, तेतो अजख आत्माना अजाण ठे. अने जेना हैयामां सुमति राधिका वसेठे. तेज समकेतवत बुद्ध कहेतां ज्ञाता कहिये ॥ ३० ॥

हवे ज्यां शुद्धज्ञान ठे त्यां शुद्धक्रिया थाय ते कहेठे—अथ ज्ञानक्रिया सहकार कथन सर्वथा शकतीसा— जहां शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योत ठीसे तहां शुद्ध परवान शुद्ध चारित्रको अंस है ; ता कारन ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग विलास धर्म वाको सरवस है, राग दोष मोहकी दस्तासों निन्न रहे याते, सर्वथा त्रि काल कर्मजाजको विध्वस है, निरुपाधि आत्म समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्र गट पूरन परमहंस है, ॥ ३१ ॥ दोहरा—ज्ञायक जाव जहां तहा, शुद्ध वरनकी चाल, ताते ज्ञान विराग मल, सिव साथे सम काल ॥ ३१ ॥

अर्थ— जे प्राणीविषे जे शुद्ध ज्ञाननी कलानो उद्योत देखायठे, ते प्राणीवि षे तेज वखतमां आत्मानी शुद्धता प्रमाण करिने शुद्ध चारित्रनो पण अंस थाय ते कारणथी जे ज्ञाता होय तेतो ज्ञेय के० हेय उपादेयरूप सर्व जाणवा योग्य वस्तुनो मर्म जाणे, ल्यारे ते हेयने ठामे अने उपादेयरूप सर्व जाणवु तेने ग्रहेठे, एवो वैराग्यना विलासनो स्वभाव सर्व अंस करी प्रगट थाय. अने वैराग्य आ व्याथी राग द्वेष मोहनी दशाथी प्राणी निन्न रहेठे, तेथी पूर्वकृत कर्मनी निर्जरा थायठे, अने वर्त्तमानकालमा कर्म न बाधे, जे प्रकृति ठुटी गई ते आगामिक काल मां बांधे नहीं, एम सर्वथाप्रकारे कर्मजालनो विध्वस थाय. तेवारे राग द्वेषादिक उपाधि रहित आत्म समाधिमां विराजे तेथी तेने पूरण परमहंस प्रगटपणे क

दिये ॥ ३१ ॥ जिहा ज्ञायक जाव ठे तिहा शुद्ध चारित्रनी चाल पामिये तेथी ज्ञान अने वैराग्य मलीने समकालें शिवमार्ग साधेठे ॥ ३१ ॥

हवे ज्ञानक्रिया उपर अंध पयुनुं दृष्टांत देठे - अथ ज्ञान क्रियाको दृष्टांत -- दोहरा - यथा अंधके कथ परि, चढै पयु नर कोइ, वाके दृग चाके चरण, होहि पथिक मिलि दोइ, ॥ ३२ ॥ जहा ज्ञान किरिया मिले, तहा मोहू मग सोइ, वह जानै पदको मरम, वह पदमे थिर होइ ॥ ३३ ॥

अर्थ - कोई पागलो नर जेम कोई आंधलाना खजा उपर चढवाथी, पागला नी आख अने ते आंधलाना पगथी चाले, ल्यारे पंथ मार्ग होय तो बनेना मल वा थो गमन थाय हालबु चालबु बने, तेम ज्ञान वैराग्य मलेथी मोहूमार्गें चलाय ३३ ज्या ज्ञान अने क्रिया ए वे एकठा थई रहे त्या मोहूनो मार्ग थाय एटले ज्ञानथी वस्तुनो मर्म जाणे अने क्रियाथी पोताना वस्तुखनावमां स्थिर थाय ॥ ३४ ॥

हवे ज्ञान अने क्रियानुं जेवुं स्वरूप ठे तेवुं कहेठे - अथ ज्ञानक्रियाको स्वरूप दोहरा - ज्ञान जीवकी सजगता, करम जीवकी नूल, ज्ञान मोहू अकूर है, करम जगतको मूल ॥ ३५ ॥ ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम, कर्म चेत नामे वसे, कर्म बंध परिनाम ॥ ३६ ॥

अर्थ - ज्ञान ठे ते जीवनी सजगतता ठे एटले जीवने जगावे ठे, कर्म के० क्रिया कार्य करवो ते जीवनी नूल ठे, ल्यां ज्ञान ठे ते मोहूनो अंकुर ठे, एटले मोहूनो हेतु ठे, क्रिया कार्य करवो तेतो नवत्रमणनुं मूल ठे ॥ ३५ ॥ चेतना वे प्रकारनी पूर्वे कही ठे, तेमा ज्ञानचेतनाना जागवाथी केवल राम प्रगटे ते शुद्ध पर मात्मा प्रगटे ठे, अने बीजी कर्मचेतना कहिए तेमा आत्मानो बंधपरिणाम उपजेठे

हवे ज्ञाननो प्रजाव अने क्रियानो प्रजाव निन्न निन्न कही देखाडे ठे.-

अथ ज्ञानक्रियाको प्रजाव निन्न कथन.-

चोपाई-जबलग ज्ञान चेतना जारी, तब लयु जीव विकल संसारी, जब घट ज्ञान चेतना जागी, तब समकित्ती सहज वैरागी ॥ ३७ ॥ सिद्ध समान रूप नि ज जाने, पर सजोग जाव परमाने, सुक्षातम अनुनो अन्यासे, त्रिविध करमकी ममता नासे ॥ ३८ ॥

अर्थ - ज्यालगी क्रिया परिणामे करीने ज्ञान चेतना जारी थई एटले चेतना कर्मरूप थई, ल्यांलगी तो संसारी जीव विकलरूप थई रह्योठे अने ज्यारे घटमां ज्ञान चेतना जागृतरूप थई, ल्यारे ते समकित्ती कहेवायठे, तेने सहज वैरागी

कहिए ॥३७॥ अने ज्ञान चेतनाना जाणवाथी पोताना रूपने निश्चय सिद्धसमान जाणे, अने पर पुत्रजना संयोगथी जे जाव उपजे, तेने तो पररूप माने, शुद्धात्म ना अनुभवनो अन्यास राखे, इत्यकर्म, नावकर्म, नोकर्म, एवी त्रंण जातिना कर्मनी ममता गमावे. ॥ ३७ ॥

हवे ज्ञाता थईने जे पूर्वकालविषे कर्म कीधांठे तेनी आलोचनाले, अने पोतानी विगतवार कहेठे:- अथ ज्ञाता पूर्व कृत कर्म आलोचन कथन-

दोहरा - ज्ञानवत अपनी कथा, कहै आपसो आप, में मिथ्यात दसाविषे, कीने बहु विधि पाप. ॥३९॥ सवैया इकतीसा - हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताही ताते हम करुना न कीनी जीव घातकी, आप पाप कीने औरनको उपदेश दीने दूती अनमोदना हमारे याही बातकी, मन वच कायमे मगन व्हे कमाए कर्म, धाए त्रम जालमें कहाए हम पातकी, ज्ञानके उदे जए हमारी दशा ऐसी नई, जेसी ज्ञान नासत अवस्था होत प्रातकी. ॥ ४० ॥

अर्थ - ज्ञान चेतना जागे ते ज्ञानवत पोतानी कथा पोतानी मेले करे, के में पूर्वकालमां मिथ्यात दशामा बहु जातनां पाप कीधां ठे. ॥ ३९ ॥ हमारा हैया मां पूर्वकालविषे महामोहनी विकलता थई, तेथी अमें जीव घातनी करुणा न कीधी, ने निर्दयदशा राखी, पोतानी कायाथी तो पोतेज पाप कीधां अने बीजा ने वचने करी पापनो उपदेश दीयो, अथवा कोईने पाप करतो देखीने में तेनी अनुमोदना करी एवी रीते मन वचन कायाना अशुद्ध व्यवहारमा मगन थईने कर्मनी कमाणी करी मिथ्या जालमा एवी रीते दोडया, तेथी अमे पातकी के हेवाइए ठैये, हवे ज्ञाननो उदयथता हमारी दिशा एवी थई के जेम सूर्यना नास वाथी प्रजात कालनी अवस्था उद्योतवंत थाय, तेम हमारी पण एवी अवस्था थई ४० हवे ज्ञाता ज्ञानना प्रजावथी जेवी आपणी अवस्था जाणे तेवी कहेठे

अथ ज्ञाता ज्ञान प्रजाव कथन -

सवैया इकतीसा:- ज्ञान ज्ञान नासत प्रवान ज्ञानवान कहे, करुना नियान अमजान मेरो रूप है; कालतो अतीत कर्म चालतो अनीत जोग जालतो अ जीत जाकी महिमा अनूप है; मोहको विलास यह जगतको वास मेंतो जगत सो शुन्य पाप पुन्य अंध कूप है, पाप किन कियो कौन करे करिहै सु कोन, क्रि याको विचार सुपनेकी धोर धूप है. ॥ ४१ ॥

अर्थ - ज्ञानरूप सूर्यनो प्रकाश होवाथी प्रमाण ज्ञानवान के ज्ञाता पुरुष एम

कहेते के, माहारुं स्वरूप करुणा निधान ठे. तथा सर्वनो पोतानाजेतुंस्वरूप जाणीने सर्वनो हित वत्सल ठे अने अम्जान कहेता निर्मल ठे कालने वश नथी एटले शाश्वत ठे कर्म चालनो तेने जय नथी, एटले कर्म जेना स्वभावनो नाश करी शके नही, मन वचन अने कायना योगनी जाल तेथी अजीत ठे, अने आ जगतनो वा स ठे, तेतो मोहनो विलास ठे, पण माहारो विलास नथी, जगत कहीए जव भ्रमण तेथी हुं शून्य हुं, गति कर्म जगत करेते, तेतो मारा स्वरूपमां पाप पुन्य अथकूप समान ठे, एथी पाप कोणो कीयुं, हवे कोण करेते, आगल कोण क र्शो, आ जे क्रियानोविचार दीगामा आवेते तेतो स्वप्नानी दोरधाव समान मिथ्या व्यवहार ठे ॥ ४१ ॥

हवे मिथ्या परिणामतुं वरणन करेते - अथ मिथ्यात परिणाम वर्णन.-

दोहरा - मै यौ कीनौ यौ करौ, अब यह मेरो काम, मन वच कायामे वसे, ए मिथ्यात परिणाम, ॥ ४२ ॥ मन वच काया करम फल, करम दशा जड अंग ; दरवित पुज्ज पिंममे, जावित जरम तरग ॥ ४३ ॥ ताते जावित धरमसो, करम सुजाव अपूठ, कोन करावे को करे, कोसर जहे सब जूठ ॥ ४४ ॥

अर्थ - मै आबु कीयुं आम करुतुं, हवे आ माहारुं काम ठे, ते कहुतुं, एरीते ज्ञान चेतना जाग्याविना मन वचन कायामा मिथ्या परिणाम वसेते, ॥ ४२ ॥ आ जे मन वचन कायाना जोग ठे, ते कर्मतुं फल ठे, अने कर्मनी दशा जडरूप अंग ठे, ए जे मन वचन काया ठे, ते पुज्ज इव्यनो पिंम ठे, तेथी आ मिथ्या तरग जाव उपजेते, ॥ ४३ ॥ तेमाटे आत्मानो जावित धर्म एटले शुद्ध जाणपणुं, तेथी मिथ्या तरगरूप कर्म स्वभाव विपरीत ठे, तेने करावे कोण-अने करे कोण ? अने सरल कोण ठे, एटले अनुमोदे कोण ए प्रपंच सर्व जुगोते, ॥ ४४ ॥

हवे आ जोगथी क्रिया होय तेनी निदा करेते - अथ क्रियाकी निंदा कथन:-

दोहरा - करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नाहि, गनी बंध पदति विपे, सनी महा छप माहि, ॥ ४५ ॥ सचैया इकतीसा - करनीकी धरनीमें माहा मोह राजा वसे, करनी अज्ञानजाव राकसकी पुरीहै, करनी करम काया पुगल की प्रती गायी करनी प्रगट, माया मिसरीकी बुरी है, करनीके जालमे उरजि रह्यो चिदानंद करनीकी उठ ज्ञान जान दुति छरी है, आचारज कहै करनीसो विवहारी जीव करनी सदीव निहचै सरूप बुरी है. ॥ ४६ ॥

अर्थ - करणी जे क्रिया ठे ते, सदा अहितनी करनारी ठे, मुक्तिने देवा वाली

नथी, आ क्रियाने आगममां तो बंध पद्धतिमांज गणी ठे, तेथी क्रिया महा इख सहित ठे. ॥ ४५ ॥ क्रियानी जूमिमां महा मोह राजा वसेठे, अने क्रिया ठे ते तो अज्ञान जाव राक्षसनी नगरी ठे एटले क्रियामां अज्ञान राक्षस रही शकेठे. अने ए क्रिया ठे ते तो कर्मनो पडठायो ठे, अने काय योगनो पडठायो ठे. अने पुज्जनो पडठायो ठे क्रिया ठे ते प्रगट माया जाल ठे, तथा ते साकरनी ठरी ठे, मीगस आपी मारेठे. आ करणीनी जालमां चिदानंद परमात्मा उरजी के० मग्न थई ग्ह्यो ठे, अने क्रियाना थोथे ज्ञानरूप सूर्यनी ज्योति ठपी रही ठे. श्री आचार्य कहेठे के क्रिया करतो थको जीव व्यवहारीज कहिए. पण निश्चल रूप देखवाथी क्रिया सदा सर्वदा बुरी ठे, एटले खोटो ठे ॥ ४६ ॥

हवे पोतानी समज पामे तेने ज्ञाता कहेठे - अथ ज्ञाता कथन -

चोपाई.- मृपा मोहकी परिनति फेळी, तातें करम चेतना मैली; ज्ञान होत ह्म समुज्जी एती, जीव सदीव निन्न परसेती ॥ ४७ ॥ दोहरा - जीव अनादि स्वरूप मम, करम रहित निरुपाधि, अविनाशी अशरन सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥ ४८ ॥

अर्थ.- अमारामां पहेजा मिथ्या मोहनी परिनति फेलाई ठे, एटले मोहधी अशुद्ध थई, त्यारं फेलाणी. तेनो उदय गाढो थयो, तेथी चेतना शुद्ध हती पण अशुद्ध थई, कर्मसहीत चेतना मलीन थई हवे ज्ञान चेतना प्रगट थतां अमे एटली वात जाणी, के जे जीव ठे ते निश्चे परजोगथी न्यारो ठे ॥ ४९ ॥ अनादि कालधी जे जीव प्राणधारी केहेवायठे. ते मारुं स्वरूप ठे ते स्वरूप केवुं ठे ते कहेठे. कर्म रहित ठे अने संयोगादिक उपाधि रहित ठे. बली विनाश न पामे, सदा ईश्वर ठे; कोईतुं शरण न राखे, अने आ स्वरूप सिद्धसमाधिना सुखमय ठे ॥ ४८ ॥

हवे ज्ञानस्वरूप कर्म उपाधिथी निन्नठे ते कहेठे:- अथ ज्ञान स्वरूपी कथन:-

चोपाई - में त्रिकाल करणीसों न्यारा, चिद्विलास पद जगत उज्यारा; राग विरोध मोह मम नांही, मेरो अवलंबन मुजमांही ॥ ४९ ॥ - सवैया तेइसा:- सम्यकवंत कहे अपने गुनमे नित राग विरोधतुं रीतो, मे करतूति करो निरवं बक, मोह विपे रस लागत तीतो, सुद्ध सुचेतनको अनुजौ करि, में जग मोह महा नड जीतो, मोप समीप नयो अब मो कहुं फाल अनंत इही विधि वीतो ॥ ५० ॥ दोहरा.- कहे विचठन मे सदा, रह्यो ज्ञान रस राचि; सुद्धतम अनुजति सों, खलित न होइ कदाचि ॥ ५१ ॥ पूर्व करम विप तरु नए, उदे जोग फल पूज, में इन्हको नहिं जोगता, सहज होहुं निरमूल ॥ ५२ ॥

कहेते के, माहारं स्वरूप करुणा निधान ठे तथा सर्वनो पोतानाजेबुंस्वरूप जाणीने सर्वनो हित वत्सल ठे अने अस्मान कहेता निर्मल ठे कालने वश नथी एटले शाश्वत ठे कर्म चालनो तेने जय नथी, एटले कर्म जेना स्वभावनो नाश करी शके नही, मन वचन अने कायना योगनी जाल तेथी अजीत ठे, अने आ जगतनो वा स ठे, तेतो मोहनो विलास ठे, पण माहारो विलास नथी, जगत कहीए नव प्रमण तेथी हुं शून्य बु, गति कर्म जगत करेते, तेतो मारा स्वरूपमा पाप पुन्य अधकूप समान ठे, एथी पाप कोणे कीयुं, हवे कोण करेते, आगल कोण करे, आ जे क्रियानोविचार दीगमा आवेते तेतो स्वपानी दोरधाव समान मिथ्या व्यवहार ठे ॥ ४१ ॥

हवे मिथ्या परिणामनुं वरणन करेते.— अथ मिथ्यात परिणाम वर्णन —
दोहरा— मै यौ कीनौ यौ करौ, अब यह मेरो काम, मन वच कायामें वसे, ए मिथ्यात परिणाम, ॥ ४२ ॥ मन वच काया करम फल, करम दशा जड अंग, दरवित पुञ्ज पिंरुमे, जावित जरम तरग ॥ ४३ ॥ ताते जावित धरमसो, करम सुजाउ अपूव, कोन करावे को करे, कोसर लहे सब जूठ ॥ ४४ ॥

अर्थ — मै आबु कीयुं आम करहुं, हवे आ माहारं काम ठे, ते कहुं, एरीते ज्ञान चेतना जाग्याविना मन वचन कायामा मिथ्या परिणाम वसेते, ॥ ४२ ॥ आ जे मन वचन कायाना जोग ठे, ते कर्मनुं फल ठे, अने कर्मनी दशा जडरूप अंग ठे, ए जे मन वचन काया ठे, ते पुञ्ज इव्यनो पिंरु ठे, तेथी आ मिथ्या तरग जाव उपजेते, ॥ ४३ ॥ तेमाटे आत्मानो जावित धर्म एटले शुद्ध जाणपणुं, तेथी मिथ्या तरगरूप कर्म स्वभाव विपरीत ठे, तेने करावे कोण अने करे कोण? अने सरल कोण ठे, एटले अनुमोदे कोण ए प्रपच सर्व जुगोते, ॥ ४४ ॥

हवे आ जोगथी क्रिया होय तेनी निदा करेते.— अथ क्रियाकी निदा कथन —
दोहरा — करनी हित हरनी सदा, मुक्ति वितरनी नाहि, गनी बंध पद्वि विपे, सनी महा ड्य माहि, ॥ ४५ ॥ सवैया इकतीसा — करनीकी धरनीमे माहा मोह राजा वसे, करनी अज्ञानभाव राकसकी पुरीहै, करनी करम काया पुगल की प्रती ठाया करनी प्रगट, माया मिसरीकी बुरी है, करनीके जालमे उरजि रह्यो चिदानंद करनीकी उट ज्ञान जान दुति डुरी है, आचारज कहै करनीसों विवहारी जीव करनी सदीव निहचै सरूप बुरी है ॥ ४६ ॥

अर्थ — करणी जे क्रिया ठे ते सदा अहितनी करनारी ठे, मुक्तिने देवा वाली

नथी, आ क्रियाने आगममां तो बंध पद्धतिमांज गणी ठे, तेथी क्रिया महा दुख सहित ठे ॥ ४५ ॥ क्रियानी जूमिमां महा मोह राजा वसेठे, अने क्रिया ठे ते तो अज्ञान जाव राक्षसनी नगरी ठे एटले क्रियामां अज्ञान राक्षस रही शकेठे. अने ए क्रिया ठे ते तो कर्मनो पडठायो ठे, अने काय योगनो पडठायो ठे अने पुज्जनो पडठायो ठे क्रिया ठे ते प्रगट माया जाज ठे, तथा ते साकरनी ठरी ठे, मीगास आपो मारेठे. आ करणीनी जालमां चिदानंद परमात्मा उरजी के० मग्न थई रह्यो ठे, अने क्रियाना थोथे ज्ञानरूप सूर्यनी ज्योति ठपी रही ठे. श्री आचार्य कहेठे के क्रिया करतो थको जीव व्यवहारीज कहिए पण निश्चल रूप देखवाथी क्रिया सदा सर्वदा बुरी ठे, एटले खोटो ठे ॥ ४६ ॥

हवे पोतानी समज पामे तेने ज्ञाता कहेठे.— अथ ज्ञाता कथन—

चोपाई.— मृषा मोहकी परिनति फैली, तातें करम चेतना मैली; ज्ञान होत हम समुज्जी एती, जीव सदीव चिन्न परसेती ॥ ४७ ॥ दोहरा—जीव अनादि स्वरूप मम, करम रहित निरुपाधि; अविनाशी अशरन सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥ ४८ ॥

अर्थ.— अमारामां पहेजा मिथ्या मोहनी परिनति फेलाई ठे, एटले मोहथी अशुद्ध थई, त्यारे फेलाणी तेनो उदय गाढो थयो, तेथी चेतना शुद्ध हती पण अशुद्ध थई, कर्मसहीत चेतना मलीन थई. हवे ज्ञान चेतना प्रगट थता अमे एटली वात जाणी, के जे जीव ठे ते निश्चे परजोगथी न्यारो ठे ॥ ४७ ॥ अनादि कालथी जे जीव प्राणधारी केहेवायठे ते मारुं स्वरूप ठे ते स्वरूप केवु ठे ते कहेठे कर्म रहित ठे अने संयोगादिक उपाधि रहित ठे. वजी विनाश न पामे, सदा ईश्वर ठे; कोईनुं शरण न राखे, अने आ स्वरूप सिद्धसमाधिना सुखमय ठे ॥ ४८ ॥

हवे ज्ञानस्वरूप कर्म उपाधिथी चिन्नठे ते कहेठे:— अथ ज्ञान स्वरूपी कथन:—

चोपाई.— में त्रिकाल करणीसों न्यारा, चिदविजास पद जगत उज्यारा; राग विरोध मोह मम नांही, मेरो अवलंबन मुज्जमांही ॥ ४९ ॥ सवैया तेइसा:—सम्यकवंत कहे अपने गुनमें नित राग विरोधसुं रीतो, मे करतूति करो निरवं ठक, मोह विपे रस जागत तीतो, सुद्ध सुचेतनको अनुजौ करि, में जग मोह महा नड जीतो, मोय समीप जयो अब मो कहुं फाल अनंत इही विधि वीतो ॥ ५० ॥ दोहरा— कहे विचठन मे सदा, रह्यो ज्ञान रस राचि; सुधातम अनुजूति सों, खलित न होइ कदाचि ॥ ५१ ॥ पूर्व करम विप तरु जए, उदे जोग फल फूज; में इन्हको नहिं जोगता, सहज होहुं निरमूल ॥ ५२ ॥

अर्थ - हुं त्रणे कालमां क्रिया करणीथी न्यारो हुं माहारे कर्मथी संगनथी तो क्रीयाथी संग केम थाय माहारं पद के० स्वरूप, चिदविलास के० ज्ञानविलास ठे, ते जगतमां अजवावु ठे. अने राग देप मोहनाव वनें ठे तेतो माहारं स्वरूप नथी माहारो अवलंब आधार माहारा स्वरूपमा ठे ॥ ४९ ॥ समकेती जीव पोताना गुण कहेठे. हुं नित्य प्रत्ये राग देप मोहथी, रीतो के० रक्त एटले रहित हुं. हुं जे क्रिया करवु ते राग देप विना वांठारहित करवुं अने जे ए विषय रस ठे ते, मोहतीतो के० मने तिक लागेठे एटले कडवां लागेठे शुद्ध पोतानी चेतनानो अनुभव करीने हुं जगतमां मोहरूप महासुनट जीव्यो, माहारु एवु स्वरूप पामीने हुं मोहने सन्मुख थयो, हवे मने एवी रीतथीज अनंत काल वीतो एटले अनंत काल लगे एवोज रहु ए आशंसा ठे ॥ ५० ॥ विचक्षण ज्ञानी पुरुष आशंसा करीने कहे के हुं सदा ज्ञान रसमा राची रहुं अने हुं शुद्ध आत्माना अनुभवथी कोइ पण कालमा खलित न थावं ए आशंसा ठे ॥ ५१ ॥ ए पूर्व कृत पुन्य पापरूप जे कर्म ठे, ते विष वृद्ध जाणवा अने ते कर्मना उदय नो जे जोग ठे ते विष वृद्धना फल फुल ठे हुं आ उदय जोगनो जोका नथी राग देपथी रहित हुं अनादिकालना साथे लागेला विषय जोग ठे तेसहज निर्मूलथाय ५२ हवे उदासीनताने वैराग्य कहिये तेनो महिमा कहेठे - अथ वैराग्यमहिमाकथन - दोहरा - जो पूर्व कृत कर्म फल, रुचिसों जुंजे नाहि, मगन रहे थावो पदुर, शुद्धात्म पदमाहि. ॥ ५३ ॥ सो बुध कर्मदसा रहित, पावे मोप तुरंत, जुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत ॥ ५४ ॥

अर्थ - जे पूर्वकालमां कर्म कथुं तेनुं फल उदय थयुं ते फलथी रुचि लगाडी जोगवे नही अने आठ प्रहर शुद्ध आत्मपदमा मगन रहे ॥ ५३ ॥ तेज पंक्ति कर्मदशा रहित थईने तरत मोक्षपद पावे, ते पठी आगमिक कालमां अनंत काल लगे परम समाधिनुं सुख जोगवे ॥ ५४ ॥

हवे ज्ञानि पुरुषनो क्रमे क्रमे महिमा वधेते कहेठे - ज्ञानी पुरुष महिमा कथन. - तप्य ठंढ. - जो पूर्व कृतकर्म, विषय विष फल नहि जुंजे, जोग जुगतिकारज करंत ममता न प्रजुंजे, राग विरोध, निरोध संग विकल्प सवि ठंढे, शुद्धात्म अनुनो अन्धानि सिव नाटक मने, जो ज्ञानवत इह मग चलत, पूरन व्हे केवल लहे; सो परम अतींद्रिय सुखविषे, मगन रूप सतत रहे ॥ ५५ ॥

अर्थ - जो ज्ञाता थईने पूर्व कृतकर्म रूप वृद्धना विष फलने जोगवे नही

एटले इष्ट फलथी रतिन उपजे अनिष्ट फलथी अरति न उपजे एवो ज्ञाता जे ठे ते मन वचन कायाना योगे करी युक्त ठे तेथी जोगनी गति के० प्रवृत्तिये कार्य करेठे, पण कार्यविषे ममता प्रज्जे नही एरीतें राग द्वेषनो विरोध करीने योग ना संगथी जे विकल्प उठेठे, ते सर्व ठांमे, शुद्ध आत्माना अनुभवनो अन्यास करीने शिवनाटक के० जे थकी जीवन्मुक्ति होय एवो नाटक मांमे जो ज्ञानवत पुरुष एहिज मांमे चाले तो पूरण स्वभाव पामीने केवल ज्ञान पामे पठी केवल ज्ञान पामीने उत्कृष्ट अतींद्रिय सुखनेविषे निरंतर मगन रहे. ॥ ५५ ॥

हवे शुद्ध आत्मा इव्य ठे तेतुं वर्णन करेठे:—अथ शुद्ध आत्मदर्शवर्णन -

सवैया इकतीसा - निरजै निराकुल निगम वेद निरजेद, जाके परगासमें जग त माईयतु है, रूप रस गंध फास पुद्गलको विलास, तासों उदवश जाको ज श गाइयतु है, विग्रहसो विरत परिग्रहसे न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है; सो हे ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है, ॥ ५६ ॥ जैसे नर जेदरूप निहचें अतीत हुंतो, तेसो निरजेद अब जेदको न गहैगो, दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निज थान फिरि बाहिर न बहैगो, कबहु कदाचि अपनो सुजाउ ल्यागि करि, राग रस राचिके न परवस्तु गहैगो, अमलान ज्ञान विद्यमान परगट जयो, याही जांति आगम अनंत काल रहेगो ॥ ५७ ॥ जबहिते चेतन विजाउसो उलटि आपु समौ पाइ अपनो सुजाउ गहि लीनो है, तबहीते जोजो छेन जोग सो से सब लीनो, जो जो ल्याग जोग सो सो सब ठांफि दीनो है, लेवेकौ न रही गोर ल्यागिवेकौ नांही और, बाकी कहा उबखो जु कारज नबीनो है, संग ल्यागि अंग ल्यागि वचन तरंग ल्यागि, मन ल्यागि बुद्धि ल्यागि आपा सुद्ध कीनो है ॥ ५८ ॥

अर्थ - जे निर्णय केवाय ठे, निराकुल केवाय ठे. निगम के० उत्कृष्ट अर्थ के हेवाय ठे. वेद के० ज्ञानरूप केहेवाय ठे जेनो जेद नथी एवो प्रकाशवत पदार्थ ठे जेमा सर्व जगत समाय ठे अने जे ए रूप रस गंध स्पर्श जे विनाशी पदार्था ठे, तेतो पुज्जनो विलास ठे, तेना उदवस के० तेथी रहित जे ठे तेनो जसगा इष्ट ठे वजी जे विग्रह के० शरीर तेथी विरत के० रहित अने इव्यभावरूप परिग्रह तेथी छुदो ठे जेमां सदाय त्रणे योगथी रहित पणानुं चिन्ह के० लक्षण पामीए ठे एतुं पदार्थ तो ज्यां ज्ञान ठे त्यां ते पदार्थ ठे तेथी ज्ञान प्रमाण ठे. अने चेतनानो निधान ठे. तेने अविनाशी ईश्वर मानीने मस्तक नमावीए

ठे ॥५६॥ हवे बीजुं पण शुद्धात्म इव्य सिद्धतुं वर्णन करेठे - अतीत कालमां
 पण शुद्धात्म इव्य निश्चय नयथी अज्ञेद रूप हतो अने व्यहारनये जेदरूप हतो
 हवे केवल रूप पामिने निर्जेद के० जेद रहित जाणीए हवे एवी दशामां कोण
 मूर्ख जेद उरावसे नैयायिक लोक जे पोतानी परूपणामा समाधि योग आत्माने
 कर्म रहित मानिने फरी सत्सारमां अवतार मानिने ठे तेने नमस्कार करेठे पण जे
 कर्म रहित थयो सुख समाधान सहित थयो. पोतानुं स्थानक पाम्यो ते पाठो
 बाह्य सकटमा केम पडरो जेम धरतीनो चार उतारवां ईश्वर अवतार लेइने इ ख
 पामेठे एवु मिथ्यादृष्टिनी केवतमांठे पण जीव शुद्ध थईने फरी राग रसमां राधि
 ने कोई कालमा आपणु स्वभाव त्याग करिने पर वस्तुने ग्रहे नही केमके अमज्ञा
 न ज्ञान के० जे ज्ञान फरी करमाय नही एवु ज्ञान विद्यमान कालविषे प्रगट थयुं
 तेतो आगमिक कालमां अनत काल लागी रहरो ॥ ५७ ॥ हवे फरीथी अवतार
 लेवाना कारणनो अज्ञाव कहेठे - अनादिकालथी चेतन मिथ्यात जावरूप
 विज्ञावमां रमि रह्यो हतो ते समयप्रस्ताव पामिने, विज्ञावथी उपरावो थई
 पोतानो शुद्ध स्वभाव हतो ते पोतेज लइ लीथो, तेथी ज्ञान दर्शनादिक जाव लेवा
 योग्य हतो ते लीथो, अने राग द्वेषादिक जाव त्यागवाजोग हतो ते सर्व त्यागी
 दीथो ते लेवानुं बीजु ठेकाणुं रखु नही, अने त्यागवानुं पण बीजुं ठेकाणुं रखु
 नही हवे इहा बाकी नजु कार्य करवानुं क्यो रह्योठे जे कार्य करवाने फरी अव
 तार लेवु पडे जे उपाधिसंग हतो तेतो सर्व त्यजीने एटले अंग त्याग के०
 काय योग त्यागिने वचन तरंग त्याग के० वचन योग त्यागीने तथा मनो योग
 त्यागिने बुद्धि त्याग के० विकल्प त्यागीने आत्माने शुद्ध करी लीथो ॥ ५८ ॥

हवे बाह्य जेप धरवो ते इव्यजिंगि कहीए ते एकांतपणे मोक्षतुं कारण नथी
 ते कहेठे - अथ एकांत इव्यजिंगीकी निदा -

दोहरा - शुद्ध ज्ञानके देह नहि, मुझा जेप न कोइ, ताते कारन मोपको, दर
 वजिंगि नहि होइ ॥ ५९ ॥ इव्य लिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विन्यान, अष्ट
 महारिधि अष्ट सिधि, एक होहि न ज्ञान ॥ ६० ॥

अर्थ - आत्मा तो शुद्ध ज्ञानमय ठे अने शुद्ध ज्ञानने देह नथी, अने ज्यारे देह
 नथी ज्यारे ज्ञान ने मुझा जेप पण कोइ नथी तेथी मोक्षतुं कारण इव्य जिंगि होय नही.
 एटले जेप लीथे मुक्ति नथी ॥ ५९ ॥ ज्ञानथी इव्यलिंग तो प्रगट पणो शुद्धो
 ठे. कलाविज्ञान, वचन विज्ञान, ते ज्ञानथी न्यारो ठे. तथा आचार, श्रुत शरीर,

वचन, वाचना, बुद्धि, उपयोग, संग्रह संलीनता, ए अष्ट महा सिद्धि ठे. अने अष्ट सिद्धि ठे ते पण ज्ञान नथी ॥ ६० ॥

हवे एटला महिमावत स्थानक ठे, तो पण ए ज्ञानना स्थानक नथी ते कहेबे:-

अथ ज्ञान अज्ञाव स्थानक कथन-

सवैया श्रुतीसा - जेपमें न ज्ञान नहि ज्ञान गुरु वर्चनमें, मंत्र जंत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानी है, ग्रंथमे न ज्ञान नहिं ज्ञान कवि चातुरीमें वातनिमें ज्ञान नही ज्ञान कहा वानी है, ताते जेप गुरुता कविच ग्रंथ मंत्र वात, इनतें अतीत ज्ञान चेतना निसानी है, ज्ञानहीमें ज्ञाननही ज्ञान उरठोर कहू, जाके घट ज्ञान सोइ ज्ञानको निदानी है ॥ ६१ ॥

अर्थ:- जेपमां ज्ञान न पामीए अने गुरुवाई के० गर्वपणुं महोटाइ पणुं ते मां पण ज्ञाननुं स्थानक नथी अने मंत्र तंत्र यंत्रमां ज्ञाननी कहेणी नथी तथा ग्रंथ शास्त्र पढवाथी पण ज्ञान प्राप्त थतु नथी कवितामां चातुर्यतामां ज्ञान नथी. वातनी चतुराइमा ज्ञान नथी अने जे वाणी ठे ते सुं ज्ञान ठे, अर्थात् वाणी पण ज्ञान नथी माटे जेख गुरु वाइ कविताई, ग्रंथ मंत्र यंत्र तंत्र वात ए सर्वथी अतीत के० जुदोज ज्ञान वस्तु ठे, ते चेतननी सहिनाणी ठे. ज्ञानतो क्यारे जा एबुं के जे अष्टु-६ पणे होय तेतो ज्ञान न कहेवाय, माटे पूर्वे जे स्थानक क ह्या तेथी जुदोज कोइ ज्ञान वस्तु ठे माटे जेना घटमां ज्ञान प्रगटयुं, तेज ज्ञाननुं मूलकारण ठे ॥ ६१ ॥

हवे जे पूर्वे जेप प्रमुखना धारक कहा तेनी मूढता कहि देखाडे ठे:-

अथ जेपादि धारक मूढ यद्दु कथन-

सवैया श्रुतीसा - जेप धरे लोगनिको वचे सो धरम उग, गुरुसो कहावे गुरु वाई जाते वहिये, मंत्र तंत्र साधक कहावे गुनी जादूगर, पंथित कहावे पंथिताई जामें लहिये, कविचकी कलामें प्रवीन सो कहावे कवि, वात कही जाने सो पवार गीर कहिये, ए तो सब विपेके निखारी मायाधारी जीव, इन्हकों विज्ञोकिके द याल रूप रहिये ॥ ६२ ॥

अर्थ:- जेप धरीने लोकोने, उगे नरमावे ते धर्म उग कहेवाय, एटले तेने गुरुतानी चाहना होय ते गुरु केवाय. मंत्र यंत्र तंत्रादिक गुणनुं जे साधक होय ते जादूगर केवाय. अने जेमा पंथिताई रही ठे. ते पंथित केवाय, कवित चातुरिनी

कलामां जे प्रवीण होय तेतो कवि केवाय, वातो बनावी बनावीने कही जाणे ते पवारगर केवाय एटली अथस्थाना धरनारा ठे. ते सर्व इंडियविपयना याच क मायावारी जीव ठे. तेने जोईने मनमां एबु विचारिये के अहो इति आश्रय ए. वापडा केम पोतानो स्वार्थ खोयठे एवी रीते तेनL उपर दयालरूप थई रहेबु हवे जीवना अनुभवनी योग्य दशा कहे ठे.— अथ अनुचो जोगता कथन — दोहरा.— जो दयालता जाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग, पे तथापि अनुचो द शा, वरतै विगत तरग ॥ ६३ ॥ दरशन ज्ञान चरण दशा, करे एक जो कोड, थिर व्है साथे मोप मग, सुधी अनुभवनी सोइ ॥ ६४ ॥

अर्थ — जे आत्माने शुद्ध दयालता जाव प्रगटेठे तेतो ज्ञाननुं अंग प्रगट अयुं एम जाणीए पण अनुभव दशा जे ठे. ते तो विगततरग के० विकल्प रहित वने ॥ ६३ ॥ वली दर्शन ज्ञान चारितनी दशाने विकल्प रहित एकपणे आत्माने जुएठे, एज रीते स्थिररूप थईने मोक्ष मार्गने साथे ठे तेनेज सुधी के० सुबुद्धिवत अनुभववत केहिये ॥ ६४ ॥

हवे नि सदेह सुद्ध स्वरूप पामबु तेनो महिमा कहे ठे — अथ अनुचो महिमाकथन — सवैथा इकतीता — जोइ दृग ज्ञान चरणातममे ठटि ठोर जयो, निरदोर पर वस्तुको न परसे, सुद्धता विचारे थ्यावे शुद्धतामे केलि करे, सुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा वरसै, त्यागी तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमको, करे ध्यान नष्ट नष्ट करे और करसै, सोई विकल्प विजई अजप काजमाहि, त्यागि जो विधान निरवान पद दरसे ॥ ६५ ॥

अर्थ — जे कोई दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी आत्मानेविषे ज्ञानने ठेकाणे ठेरावीने वाट बाधे, त्या निरदोर के० संशय रहित थईने परवस्तुनो स्पर्श न करे त्या निश्रे नय ग्रहण करीने शुद्धताज विचारे, शुद्धताज थ्यावे अप्रमादि थईने शुद्धतामां केलि करे शुद्ध ध्यानना प्रथम पायामा प्रवेशकरी शुद्धतामां थिर थईने महा ध्यानं दरूप अमृतनी धारा वरभावे, आही अवयवरूप लक्षण ठे तेशी शरीरना कष्टने त्यागेठे जीवताथी शरीर कष्ट न जाणे थ्यारे स्पष्ट थईने एटले वीर्य फोरवीने थाठे कर्मनो स्थान नष्ट करे एटले कर्मने सत्ता थकी चलायमान करे अने नष्ट करे के० निर्जरा करे ऐसे औरहुंकेसे के० ते जीव कर्मने आकारिने निर्जरावे ते जीव विकल्प जालनो विजय करीने अष्टप कालमाज विधान के० नवे श्रेणि ने त्यागी मोक्ष पद देखे एटले पामे ॥ ६५ ॥

हवे शिष्य पुत्रे ठे के ए अनुभव पामवो महा विषम ठे ते उपर गुरु शिक्वादे ठे.—

अथ अनुजो शिक्वा कथनः—

चोपाई— गुन परजैमें दृष्टि न दीजे, निरविकल्प अनुजौ रस पीजे, आप समाइ आपमें लीजे, तनपा मेटि अपनपो कीजे ॥ ६६ ॥ दोहरा— तजि विजाव दुइजे मगन, सुधातमं पदमांहि, एक मोप मारग यहै, और दूसरो नाहि ॥ ६७ ॥

अर्थ— आत्माना गुण पर्याय अनेक ठे. पण तेमां दृष्टि न देवी. मात्र निर्विकल्प इव्यनो अनुभव रस पीवो. आत्मा आधारमा आत्मानो समाप्त करी लेवो एटले जय लगाडवो, एटले आपणे शरीर धारी ठीए, ते दशानो काय योग पणुं ठे ते मटावी आत्म स्वरूप करीए ॥ ६६ ॥ आत्माना मूल स्वभाव विना बीजो सर्व विजाव पणुं ठे, तेहने ल्यजीने छु-इ आत्माना चिदानंद स्वभावमाज मगन थइ ये, एक अद्वितीय मोहूनो मार्ग एज ठे तेथी बीजो कोइ मोहूनो मार्ग नथी ॥ ६७ ॥ हवे छु-इ आत्मस्वरूपना अनुभवविना महाव्रत्तिपण इव्यलिंगी जाणवा ते कहेठे—

अथ इव्यलिंगी व्यवस्था कथन—

सवैया इकतीसा— कइ मिथ्या दृष्टि जीव धारे जिन मुडा जेष, क्रियामें मं गन रहे कहे हम जती है, अतुल अखंभ मलरहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान नावसो विमुख मूढमति है, आगम संजाले दोष टाले विवहार जाले, पाले वृत्त यद्यपि तथापि अविरती है, आपुको कहवे मोप मारगके अधिकारी मोपसों सदी व रुष्ट छुष्ट इरगति है ॥ ६८ ॥ दोहरा— जे विवहारी मूढ नर, परजे बुद्धी जीव, तिनको बाहिज क्रीयको, हे अवलंब सदीव ॥ ६९ ॥

अर्थ— कैक जीव मिथ्या दृष्टि ठे अने आचार्य उपदेश रसथी जिन मुडाजेष धारी ठे अने साधुनी क्रियामां मगन रहेठे, अने पोताना मनथी अथवा कोईना पूठवाथी अमे जती ठइये एम कहेठे एटले महाव्रत्ति ठैये अने जेनी तुलना नथी एवुं अखंभ के० संपूर्ण विजाव मलरहित सदा प्रकाशवत पोतानुं अनुभवरूप जे ज्ञान नाव ठे तेथी विमुख ठे माटे मूढमती ठे जोपण ते क्रिया करेठे आग म सिधांत संजारेठे अने आहारादिकना दोष टाली व्यवहारमा दृष्टि राखेठे ए म जद्यपि महावृत्त पाले ठे तो पण निश्रे नयथी ए अविरतीज कहीए एवा जे जीवठे ते पोते मोहू मार्गना अधिकारी लोकमां कहेवायठे पण मोहूथी ए सदा रुठयाज रहेठे एटले अनव्यने पण क्रिया केवल नवमा त्रैव्यकछुद्धि गति कही ठे पाठो ए छुष्ट इरगतिमां पडेठे ॥ ६८ ॥ जे कोइ मूर्ख मनुष्य व्यवहार

मात्र रहे अने जे जीव पर्याय बुद्धिबत ठे ते सुनगतियो जीव होय तो नलो एवी पर्याय बुद्धि धारेठे तेने तो बाह्य क्रियानो अवलवन सदाय कह्योठे ॥६९॥

हवे व्यवहारे महामूढ ठे तेनुं वर्णन करेठे.— अथ महामूढ वर्णन —

चोपाई—जेसे मुग्ध धान पहिचाने, रुप तंडुलको जेद न जाने, तैसे मूढमती व्यवहारी, लखे न बंध मोष विधि न्यारी ॥७०॥ दोहरा—कुमती बाहिज दिष्टिसों, बाहिज क्रिया करत, माने मोष परपरा, मनमे हरप धरत ॥ ७१ ॥—शुद्धात्तम

अनुजो कथा, कहे समकित्ती कोइ, सो सुनिके तासो कहे, यह सिवपंथ न होइ ७२

अर्थ—जेम कोइ मननो नोलो पुरुष ठे ते धानने तो ओलखे पणतूस अने तंडुल मां, निन्नता ठे ते न जाणे तेम जे व्यवहारी मूढमती ठे तेतो बंधविधि अने मोक्षविधि जूदी जूदी लखी शके नही केवल विधिज जाणे ॥७०॥ जे कुमती होय ते पर्याय बुद्धिशी शाता वेदनी पणे समाधि सुख जाणीने बाह्य इष्टिशी तेनी हेतुरूप बाह्यक्रिया करे अने बाह्यक्रियामां मग्न होय तो तेथी तेने—निर्जरा मा नीने मोक्ष परपरा माने अने मनमा आनद पामे ॥ ७१ ॥ ते मूढने कोइ सम कित्ती जीव शुद्ध आत्मानी अनुभव दशाने मोक्षनुं कारण कहे तो तेनुं वचन सांजलीने तेने एतुं कहे के ए रीतेतो मोक्षमार्ग थाय नही ॥ ७२ ॥

हवे मूढ तथा ज्ञानीनुं लक्षण कहेठे—अथ मूढ तथा ज्ञानी लक्षण कथन —

कवित्त—जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुझा धरि क्रिया प्रवानहि, ते हि य अथ बंधके करता, परम तत्वको जेद न जानहि, जिन्हके हिये सुमतिकी कनि का, बाहिज क्रिया जेप परमानहि, ते समकित्ती मोष मारग मुप, करि प्रस्थान जव स्थिति जानहि ॥ ७३ ॥

अर्थ—जेना हीयामा देह बुद्धि रहेठे एतले देहधारी ने पण, निन्नपणे जाए तो नथी अने मुनीश्वरनी मुझा धारिने क्रियानेज प्रमाण करेठे तेतो हीयानो अथ ठे अने बंधनो करनार ठे अने परम तत्वके० मोक्ष तत्वना जेद ने जाणतो नथी अने जेना हीयामा सम्यग दृष्टिने लीधे, सुबुद्धिनी करणीका जागी तेतो बाह्य क्रियाने जेप रूप प्रमाण करेठे तेनेतो समकित्ती कहीए ते जीव मोक्ष मार्ग ने सन्मुख प्रस्थान के० प्रयाण करी करीने जवस्थितिने निश्चेजाजे ठे ॥ ७३ ॥

हवे संक्षेपथी नि केवल उपादेयरूप मोक्ष मार्गनो उपदेश ठे ठे—

अथ मोक्षको उपदेश संक्षेप मात्र कथन—

सवैया इकतीसा—आचारिज कहे जिन वचनको विसतार, अगम अपार है

कहेंगे हम कितनो! बहुत बोलवेसों न मकसूद चुप नली, बोलीए सु वचन प्रयोजन न है जितनो, नाना रूप जलपसों नाना विकल्प उठे, ताते जेतो कारिज कथन नलो तितनो, शुद्ध परमात्मको अनुजौ अच्युत कीजे, यहै मोय पंथ परमारथ हे इतनो ॥ ७४ ॥ दोहरा:— सुदातम अनुजौकिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर, मुक्ति पंथ साधन वहै, वाग जाल सब और ॥ ७५ ॥

अर्थ.— आचार्यजी शिष्यने कहे ठे अहो शिष्य जिनेश्वरनां वचननो विस्तार तो नय प्रमाण करीने अगम अपार ठे. अमे केटलोक कहीए, आही बहु बोलवुं ते अमारे मकसूद नथी तेथी चुप रहेवु तेज ठीक ठे, अने जेटलुं प्रयोजन ठे. तेटलुंज बोलवुं पण नाना प्रकारनु जल्प के० बोलवुं कहियें तो नाना प्रकारना विकल्प उठेठे तेथी जे एक कार्य ठे तेपुरतुज बोलवुं बस ठे, शुद्ध परमात्म इव्यना अनुभव योगतुं अच्युत करीए एज मोक्ष मार्ग जाणीए, बधी वातमां एटलोज परमार्थ ठे ॥ ७४ ॥ जे क्रियाथी शुद्ध आत्मानो अनुभव थाय तेज क्रियाठे अने शुद्ध ज्ञान दृष्टिनी दौर तेज मुक्ति पंथनुं कारण ठे. बीछु सर्व वचनानंबरठे ॥ ७५ ॥

हवे शुद्ध जीव इव्यनुं वर्णन करेठे:— अथ शुद्ध जीव इव्य वर्णन —

दोहरा.— जगत चक्रु आनंदमय, ज्ञान चेतना नास, निर्विकल्प साश्वत सुधिर, कीजे अनुजौ तास. ॥ ७६ ॥ अचल अखंभित ज्ञानमय, पूरन वीत ममत्व, ज्ञानगम्य बाधा रहित, सो है आत्म तत्व. ॥ ७७ ॥

अर्थ.— जे पदार्थ जगतमां चहूजेवुं ठे अने आनंदमय ठे. जेनी ज्योति ज्ञान अने चेतना ठे. जेमां कोई विकल्प नथी जेद नथी अने शाश्वतो ठे तथा स्थिर ठे जे पदार्थनो अनुभव करीए तो मुक्ति पामीए ॥ ७६ ॥ जे कोईकाले पोतानां स्वभावथी चलायमान थाय नही एवो अखंभित ज्ञानमयठे. संपूर्ण समाधिवत अने ममत्व रहित, इन्द्रिय ग्राह्य नही तेथी ज्ञान गम्य ठे अने अनेय अनेयपणाथी बाधा रहित ठे तेज आत्म तत्व कहीए ॥ ७७ ॥

इति श्री नाटक समयसार ग्रंथनो दशम सरव विमुक्ति नामा द्वार बालाबोधरूप संपूर्ण थयो

दोहरा.—सरव विमुक्ति द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ; कुंद कुंद मुनिराजकृत, पूरन जयो गरथ. ॥ ७८ ॥

अर्थ:— जे द्वारमां आत्मानी सर्व विमुक्ति पामिये तेज द्वार कह्यो ते प्रगटप

एो मोक्षनो मार्ग कथ्यो ठे, श्री मधर स्वामीनी वाणी सांजलीने श्री कुंदकुंदाचा
यें आ ग्रंथ कीथो एवी संप्रदाय वातठे, ते ग्रंथ संपूर्ण थयो ॥ ७८ ॥

हवे ग्रंथ कर्तानुं नाम अग्ने ग्रंथनो महिमा कहेठे.— अथ ग्रंथ व्यवस्था कथन —
चोपाई — कुद कुद मुनिराज प्रवीना; तिन्ह यह ग्रंथ इहालो कीना, गाथा
बद्ध सु प्राकृतवानी, गुरु परपरा रीति बखानी. ॥ ७९ ॥ जयो ग्रंथ जगमें वि
ख्याता; सुनत महा सुख पावहि ज्ञाता, जे नव रस जगमांहि बखाने; ते सब र
समें सार समाने. ॥ ८० ॥ दोहरा — प्रगट रूप ससारमें, नव रस नाटक होइ,
नव रस गर्जित ज्ञानमें, विरला जानै कोइ ॥ ८१ ॥

अर्थ — कुंद कुंद नामे मुनिराज ते अध्यात्ममां प्रवीण थया, ते आचार्ये आ
सर्वे विशुद्धिनामांरर लागि आ ग्रंथ कीथो ते ग्रंथ प्राकृत गाथाबद्ध जलीवाणी प्रका
शी आ वाणीने गुरु संप्रदायथी अमृत चंद्र आचार्ये वखाणी ॥ ७९ ॥ आ ग्रं
थनी टीका व्याख्यान करवाथी कुंद कुदाचार्यनो करेलो ग्रंथ जगतमां विख्यात
थयो, तेने सांजली ज्ञाता होय ते महा सुख पामे, जगतमा जे नव रस वखाण्या
ठे, ते सर्वे रसमां सार रस ते ए समयसार नाटकमा समाई रहाठे ॥ ८० ॥
संसारमा ए वात प्रगट ठे के जे नाटक होय ते नव रसमय होय, पण शातर
समां जे ज्ञान ठे. तेमा नवे रस गर्जित ठे तेने तो कोई विरलाज जाणोठे ॥ ८१ ॥
हवे नव रसतुं वर्णन करतां नव रसना नाम कहेठे — अथ प्रथम नव रसके नाम
कवित्त बंद — प्रथम शृंगार वीर दूजो रस, करुणा तृतीय जगत सुखदायक, हास्य चतुर्थ
रुद्र रस पंचम, ठछम सुरस विचित्र विजायक, सत्तम जय अष्टम रस अदञ्जुत, नवमो
शांत रसनिको नायक, ए नव रस एई नव नाटक, जो जहाँ मगन सोइ तहाँ लायक ८१

अर्थ — प्रथम शृंगार रस, बीजो वीर रस, त्रीजो करुणा रस, ते जगत
मा सुखदायक ठे. चोथो हास्य रस, पांचमो रौद्र रस, ठछो विचित्र रस, ते विजा
यक कहेता चित्तनो जग करनार ठे सातमो जय रस, आठमो अदञ्जुत रस,
नवमो शांत रस ठे, ते सर्वे रसनो नायक ठे, ए नव रस कहिए. ते नव रस नाटक
रूप होय जे प्राणी जे रसमा मगन थई रह्यो ठे तेने ते रस लायक ठे. ॥ ८१ ॥

हवे नव रसना स्थाई नाव कहेठे — अथ रस अवस्था कथन —
सवैया इकतीसो — सोनामे सिंगार बसे वीर पुरुपारथमें, हियेमे कोमल क
रुना रस बखानिये, आनंदमे हास्य रंम सुंममे विराजे रुद्र, बीजठ तहा जहाँ गि
जान मन आनिये, चितामें जयानक अथाहतामे अदञ्जुत, मायाकी अरुचि ता

में शांत रस मानिये, एई नव रस नवरूप एई नावरूप, इन्हको विलेठन सुदृष्टि जग जानिये. ॥ ८३ ॥

अर्थ:- शोचामां शृंगार रसनो निवास ठे अर्थ साधन रूप पुरुपार्थमां वीर रसनो वास ठे. हृदयना कोमलता पणामां करुणा रसनो वास ठे. आनंदनी प्राप्तिमां हास्य रसनो वास ठे. रण संग्राममां रूम मूंमपडेलां होय, त्यां रौड रस नो वास ठे. कोई सुगामणु स्थानक जोई मनमां ग्लानी आवे, त्यां विजत्स रस नो वास ठे. चितामां जय रसनो वास ठे. जे कोई अथाग अघटमान वस्तु जाणिए त्यां अद्भुत रसनो वास ठे. ज्यां मायानी अरुचि होय तहां शांत रसनो वास प्रमाण कहिए ए नव रस ठे ते नवरूप के० संसार रूप पण ठे, अने एहिज नव रस नाव के० उत्तम नावरूप पण ठे, ए नव रसनो विलेठन के० विवेक जे ठे ते तो जगतमां सुदृष्टिची जाणीए ॥ ८३ ॥

हवे एज नव रस नावरूप ज्ञानमां गर्जित ठे ते एकज ठेकाणे देखाडे ठे:-

अथ नव रस ज्ञान गर्जित एकीनूत कथन.-

उपय उंद:- गुन विचार सिंगार, वीर उद्धिम उदार रूप; करुना सम रसरीति, हासहिरदे उगाह सुख; अष्ट करम दल मजन, रुड वरते तिहि थानक; तन विलेठ बीनठ, उंद डखदसा जयानक, अदञ्चत अनंत बल चितवत, शांत सहज वै राग धुव, नव रस विजास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव. ॥ ८४ ॥

अर्थ:- ज्ञानादिक गुणोकरी आत्म विनूपित देखिये त्यांतो शृंगार रस उपज्यो १ अने आत्मानेविषे निर्जेरा प्रमुखनो उद्यम देखिये त्यांतो उदार प्रधान वीर रस ठे २; ज्यारे आत्माने उपशम रसनी रीते देखिये त्यारे करुणा रस जाणिए ३; ज्यारे एने अनुभवमां उत्साह अने सुखउपजे ठे ते तो हैयामां हास्य रस उपजे ठे ४, महा बलवान आठ कर्मना अनंत प्रदेशी दल ठे तेनो दलन करतां देखीए तो तहां आत्मा रौड रसमयि थई रह्यो ठे ५, ज्यारे पुज्जनं स्वरूप विचारीये ठीए त्यारे विजत्स रस ठे ६, ज्यारे आत्मा पोतानुं स्वरूप न जाणे अने उंद डखदशामां पड्यो ठे, त्यारे तो जय रसमां देखीए ७, अनंत वीर्यनुं ज्यारे चितवन करीए त्यारे तो आत्मा अदञ्चत रस पामे ८, ज्यारे राग छेप निवारिने सहज वैराग्यने धुव के० निश्चल धारे ठे, त्यारे आत्मा शांत रसमय पामीए ९, ए नव प्रकारना नाव रसना विजास नो प्रकाशतो ज्यारे घटमां सुबुद्धि प्रगट थाय त्यारेज थाय. ॥ ८४ ॥

हवे कुंद कुंदाचार्यकृत आ ग्रंथ ठे तेनी स्तुति करेठे:- अथ ग्रंथ स्तुति:-
 चोपाई - जब सुबोध घटमे परगासे, तब रस विरस विषमता नासे, नव रस
 लखे एक रसमांही, तातें विरस नाव मिटि जांही ॥८५॥ दोहरा-सब रस गर्जित
 मूल रस, नाटक नाम गरथ, जाके सुनत प्रवान जिय, समुजे पंथ कुपथ ॥ ८६ ॥
 चोपाई - वरते ग्रंथ जगत हित काजा, प्रगटे अमृतचद मुनि राजा, तब तिन्ह
 ग्रंथ जानि अति नीका, रची बनाइ संसकृत टीका ॥८७॥ दोहरा:- सर्व विशुद्धि
 धारलौं, आए करत बखान, तब आचारज नकिसौं, करे ग्रंथ गुन ज्ञान. ॥ ८८ ॥
 चोपाई - अदञ्जत ग्रंथ अध्यातम वांनी, समुजे कोक विरला ज्ञानी, यामें स्या
 दवाद अधिकारा, ताको जो कीजे विसतारा ॥ ८९ ॥ तो गरथ अति शोना पावे
 वह मदिर यह कलस कहावे, तवचित अमृत वचन गढखोले, अमृत चद आचारज
 बोले ॥९०॥ दोहरा - कुदकुद नाटकविपे, कह्यो दरव अधिकार, स्यादवादनें सा
 धि में, कहों अवस्था धार ॥ ९१ ॥ कहों मुक्ति पदकी कथा, कहों मुक्तिको
 पंथ, जैसे घृत कारज जहा, तहाँ कारन दधिपथ ॥ ९२ ॥ अर्थ स्पष्ट ॥
 चोपाई - अमृत चद बोले मृडुवानी, स्यादवादकी सुनो कहानी, कोक कहै जी
 व जगमांहीं, कोक कहै जीव है नाही ॥ ९३ ॥ दोहरा - एक रूप कोक कहै,
 कोक अगनित अंग; तिन जंगुर कोक कहै, कोक कहै अचंग ॥ ९४ ॥ नय अन
 त इह विधि कही, मिले न काहू कोइ, जो सब नय साधन करे. स्यादवाद है
 सोइ ॥ ९५ ॥ स्यादवाद अधिकार अब, कहों जैनको मूल, जाके जाने जगत
 जन, लहै जगत जल कूज ॥ ९६ ॥

अर्थ - हवे संगतनी वात कहेठे - ज्यारे घटमां सुबोध प्रकाशे ठे, ज्यारे एरसस
 हित ठे अने ए विरस ठे एवो विषय ममता नाव ठे ते सर्व नाश पामेठे एनो
 हेतु ए ठे के जे नव रस ठे तेने एक नाव रसमांज लखे के० जुवे, तेथी
 विरस नाव मटीने एकज रसमां आत्मानुं रहेवुं थाय. ॥ ८५ ॥ एम सर्व रसोमां
 गर्जित एक रसमय थयलुं एवु आ समयसार नाटक नामे ग्रंथ श्री कुंद कुंदा
 चार्यजीए कह्यो, जेना अर्थ जावने सांजलता प्रमाणिक जीव ठे ते मारग कुमा
 रगनो विचार समजे. ॥८६॥ प्रथम जगत वासी जीवोने हितकारी कार्यनो ग्रंथ प्रवर्त
 मान थयो ते पठी अमृतचद नामा आचार्य प्रगट्या तेणे आ ग्रंथ अति श्रेष्ठ
 जाणीने आ ग्रंथनी टीका बनावी, गाथालुं रहस्य जइने काव्य बंध कह्यो ते कहीए
 ठीए. ॥ ८७ ॥ श्री अमृतचदजी एज ग्रंथनुं व्याख्यान करतां सर्व विशुद्धि धार

सुधी आब्या. आंही ग्रंथ संपूर्ण थयो जाणी श्री अमृतचंद्र आचार्य नंकिना वश थो ग्रंथतुं गुण ज्ञान करे ठे. ॥ ८८ ॥ आ ग्रंथ अध्यात्म वाणीमां अन्नत थ यो, पण आ ग्रंथने कोई विरला ज्ञानवत पुरुष समजे, आ ग्रंथमां स्यादादनो अधिकार ठे ते अल्प बुद्धि स्थूलमतिने समजवो मुशकेल ठे तेथी ते स्यादादनो जो विस्तार करीये तो सारुं ॥ ८९ ॥ जेथकी आ ग्रंथ अति शोना पामे एम विचारी आ ग्रंथरूप मंदिर तेना उपर स्यादादनो विस्तार करियें तो ते कल शरूप थाय. ल्यारे महारा चित्तमां अमृत जेवा वचन गढी के० धारण थइने खुले ए म दोष रहितनी परे श्री अमृतचंद्र आचार्य बोले ठे के ॥ ९० ॥ श्री कुंद कुं दाचार्यना करेला नाटक ग्रंथमां जीव अजीव इव्यनो अधिकार कह्यो. हवे हुं स्यादाद नयनी अवस्थानो ढार कहुंठुं. अने साथ्य वस्तुनी अवस्थानो ढार कहुंठुं ॥ ९१ ॥ वाणुमां दोहरानो अर्थ सुजल ठे ॥ ९२ ॥ अमृतचंद्र आचार्य एवी कोमल वाणी बोव्या के अहो शिष्य स्यादादनी कथा हुं कहुंठुं ते सांज जो कोई अस्तिवादि तो एम कहे ठे के जगतमां जीव वस्तु ठे, अने कोई नास्तिवादी कहे ठे के, जगतमां जीव वस्तु नथी. ॥ ९३ ॥ कोई अद्वैत वादी ब्रह्मने एकरूप कहेठे. कोई नैयायिक वैशेषिक जीवने अगणितपणे कहेठे कोई बौध मतीने लीधे जीवने कृष्णचंगुर कहेठे, कोई सांख्य मतीने लीधे जीवने अचंगज कहेठे ॥ ९४ ॥ अर्थ समजवाना मार्गने नय कहिए, ते समजवाना मार्ग अनंत ठे; तेने लीधे नय पण अनंत कहिये; तेमां कोई नय कोई नयने मले नही, विरोधी ठे. हवे आंही जे सर्व नयतुं साधन करे, एटले सर्व नयने साचा साधिने देखाडे, तेने स्यादादि जाणीए ॥ ९५ ॥ ते स्यादादनो अधिकार हवे हुं सर्व कहुंठुं. एज स्यादाद आगमतुं मूल ठे. जे स्यादादना जाण प्रवीण जग तवासी लोक ठे ते संसार जलधिनी कांठो पामेठे. ॥ ९६ ॥

हवे नयजालथी शिष्यने संदेह उपज्यो ल्यारे प्रश्न करेठे:- अथ शिष्यप्रश्न

गुरु उत्तर कथन -

सवैया इकतीसा.- शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीन के पराधीन, जीव एक है किधौ अनेक मानि लीजिये, जीव है सदीव किधौ नाहि है जगतमांहि? जीव अवि नस्वर के नस्वर कहीजिये, सतगुरु कहे जीव है सदीव निजाधीन, एक अवि नस्वर इरव दृष्टि दीजिये, जीव पराधीन ठिन चंगुर अनेकरूप, नाहि तहां जहां परजे प्रवान कीजीए. ॥ ९७ ॥

अर्थ— प्रथम शिष्य पुढे, स्वामी जीव स्वाधिन ठे के पराधिन ठे ? जीव ए क ठे के गणतिमां अनेक ठे ? ए केम मनमा जाणवुं 'अने जीव कहेवाय ठे तो जगतमा सदायठे के नथी, ए अस्तिपणानो संदेह ठे, अने जीव अस्ति के अविनाशी ठे के विनाशी ठे हवे आवी रीतना प्रश्न उपर सजुरु कहेठे के हे शिष्य जीव वस्तु जगतमां ठे, पण नास्ति न कहीए, अने ते जीव आपणे स्वाधिन ठे अने एक ठे यद्यपि गिणतीयें अनेक ठे, तो पण लक्षणथी एक ठे. अविनाशी इव्य इष्टि दीजे तो एमज ठे, अने जो पर्याय नय प्रमाण करीये तो जीव पराधीन ठे, कर्माधीन ठे. अने अवचित मरण देखतां कृणजंगुर ठे गत्यादिक देखता अनेकरूप ठे वली अजीव पदार्थ स्थापनानी अपेक्षाये न थी अने जहा पर्याय प्रमाण ठे तिहा एठे ॥ ९७ ॥

हवे इव्य क्षेत्र काल नावे करीने सर्व वस्तुनुं अस्तिनास्तिपणुं कहेठे —

अथ दरव क्षेत्र काल नाव अस्तिनास्ति कथन —

सवैया इक्तीसा—दर्व खेत्र काल नाव चारो जेद वस्तुहीमें, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये, परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अंग, ताको जेद दर्व परजाय मध्य जानिये, दरवतो वस्तु खेत्र सत्ता जूमिकाल चाल, सुजाव सहज मूल सकति बखानिये, याही जाती परविकल्प बुद्धि कल्पना, विवहार दृष्टि अंशजेद परवानि ये. ॥ ९८ ॥ दोहरा — हे नाही नाही सु है, हे है नाही नाहि, यह सरवगी नयध नी, सबमाने सब माहि. ॥ ९९ ॥

अर्थ—इव्य क्षेत्र काल नाव ए चारें जेद वस्तुमां विचारीए, छांही आपणे वस्तु ठे, ते अस्तिरूप मानीए, एटले स्वइव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वजावथी विचारीए ल्या रे तो सर्व वस्तु अस्तिरूपें ठे, अने जो परवस्तुथी ए चारने विचारिये तो वस्तुनुं नास्तिस्वरूप नीपजे ठे एटले परइव्य परक्षेत्र परकाल परजावथी सर्व वस्तु नास्तिरूपे ठे नियत अंग के निश्चैनयथी. अस्ति ठे तेनो जेद इव्य पर्यायथी जाणवो. ए चार जेदमा इव्यथी वस्तु कहीए, वस्तुनी सत्तानी जूमिने क्षेत्र कहियें, वस्तुनी परिणाम चालथी काल कहीए, सहजनी मूलशक्तिने स्वजाव कहीए ए रीते बुद्धिनी कल्पना करीने परइव्य क्षेत्रादिकना जो विकल्प ग्रहण करियें जेम के घट वस्तु ग्रहण करवाथी परइव्य परक्षेत्र परकाल परजावनी कल्पनाथी नास्ति ठे ए व्यवहार दृष्टिथी वस्तुना अश जेद प्रमाण थाय. ॥ ९८ ॥ अने ए नथी एवु कहेवामा स्वइव्यादिकनुं अस्तिपणुं लईने परइव्यादिकथी नास्तिपणुं लईए तथा नही ते ठे एम

कहेवामां प्रथम परब्रह्मादिकतुं अस्तिपणुं ग्रहीए, ठे अने नथीज एम केहेवामां फरी परब्रह्मादिकतुं केवल नास्तिपणुज ग्रहण करियें ठे, एथी सात जांगा उपजे ठे, आंही सर्वांग नयना धणी स्यादादी सर्व वस्तुमा सर्व जांगा माने ठे ॥ ९९ ॥

हवे चौद नयना जेदथी एकेक जेदे एकांत पद्दतीनी जेवी केहेणी ठे तेवी कहेठे -

अथ चतुर्दश नय जेद एकांत पद्द कथन नाम स्थापन-
-

सवैया इकतीसा- ज्ञानको कारन ज्ञेय आतमा त्रिलोक मेय, ज्ञेयसो अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय ग्राही है, जोलो ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व दर्बमें विनाज्ञेय ठेत्र ज्ञान जी व वस्तु नांही है, देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ताअंसमांही है, जीव तिन जंगुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकंत अ वस्था मूढ पाही है ॥ ५०० ॥

अर्थ - प्रथम चउद नयना नाम स्थापना कहेठे - जे ज्ञेय वस्तुमां ज्ञान उप जेठे, तेथी ज्ञानतुं कारण ज्ञेय ठे ए नाम ठे, १ त्रण लोक प्रमाणे आत्मा ठे, तेथी त्रिलोकमय एवु नाम ठे, २ जेम अनेक ज्ञेय ठे, तेम ज्ञान पण अनेक ठे. ते अनेक ज्ञान ए नामठे. ३ ज्ञानमां ज्ञेयनी ग्या ठे ते मेलवु ठे तेथी मेलन ज्ञेय ए नाम ठे. ४ ज्यां सुधी ज्ञेय ठे त्या सुधी ज्ञान ठे. ज्ञेय उपरांत ज्ञान नथी तेथी ज्या लगी ज्ञेय ए नामठे ५ सर्व दर्ब मयी विज्ञान ठे तेवु तेज नामठे. ६ ज्ञेय क्षेत्रने प्रमाणे ज्ञान ठे, तेथी ज्ञेय क्षेत्रमान ए नाम ठे. ७ जीव वस्तु जगतमां नथी. तेथी नास्ति जीव ए नामठे, ८ देहनो नाश अवाथी जीवनो पण नाश, तेथी जीव नाश ए नामठे ९, देह उपजवाथी जीव विराजे ठे, तेथी देह त्यां जीवोत्पाद ए नामठे १० आत्मा ठे ते अचेतन पदार्थ ठे तेथी अचेतन ज्ञाता ए नाम ठे ११ सत्ताना अंस ते जीव कहिए ठे, पण आत्मा अंस मात्रठे ए नाम ठे १२ जीव ठे, ते कृणजंगुर ठे तेथी एज नामठे १३, ज्ञान ठे ते ज्ञायक सरूपमा नथी तेथी अज्ञायक ज्ञान ए नाम ठे १४ एवी एवी एकांत अवस्था मूढ लोको पामे ठे, ए नयना जेद जाणवा ॥ ५०० ॥

हवे ज्ञानतुं कारण ज्ञेय. एजे प्रथम नय कहु तेनो- प्रपंच करी देखाडेठे -

अथ ज्ञानको कारन ज्ञेय प्रथम नय यद्दु-कथन:-

सवैया इकतीसा- कोउ मूढ कहै जैसे प्रथम समारि नीति, पीठे ताके उपर सु चित्र आठो लेखिये, तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसे, तैसे तहा ज्ञान रूप कारज विशेषिये, ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसेई मुजाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय चित्र

निम्न पद पेपिये, कारन कारज दोउ एकहीमें निहचे पे, तेरो मत साचो विवहार
दृष्टि देखीये ॥ ५०१ ॥

अर्थ - कोई मूढ भीमांसक ते शिष्य लोकने एम समजावे ठे के, जेम प्रथम
जितने समारी होय तोपठी तेना उपर चित्र सारुं थाय, अने नरसी उपर नरसुं
चित्र थाय, तेम ज्ञाननी उत्पत्तिनुं कारण मन ठे, पण जेवो घटपट प्रमुख पदार्थ हो
य तेवुज तिहांज्ञानरूप कार्य विशेष थाय ठे, जो घटपदार्थ जाणवा योग्य
होय तो घट ज्ञान होय, अने पट पदार्थमां पट ज्ञान होय, तेथी ज्ञाननुं कारण
झेय ठे, हवे तेने स्यादाद ज्ञानी एम कहेठे के, अहो नाई, जे जेवी वस्तु ठे
तेनो स्वभाव पण तेवोज ठे, जे ज्ञानपदार्थ ठे तेनो स्वभाव जाणवानोज ठे, अने जे
झेयपदार्थ ठे ते जाणवा योग्यज ठे, आ अर्थ चेदथी ज्ञान अने जेय एवने छुदा
पद जाणवा अहीं जे जेय कारण पणे कह्यो तेज ज्ञान विकल्पे कस्यु, तेथी घटपटादि
जगत ठे ते जड पदार्थ दूर रह्या, अने ज्ञान ठे तेज सामान्य पणे ठे तेथी निश्चे नयथी
तो ज्ञानमां जेय पामिये, पण व्यवहार दृष्टि आपता तो ताहारुं मत पण साचुठे ५०१

हवे बीजा एकांत नय आत्मा त्रिलोकमय ठे तेनो प्रपच देखाडे ठे -

अथ इतिय नय आत्मा त्रिलोक प्रमानयहु कथनं.-

सवैया इकतीसा - कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समुजे त्रि
लोक पिंन आतम दरव है, याहितें सुठंद नयो मोले मुख हू न बोले कहे याज
गतमें हमारोई खरब है, तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों निम्न पै जगतको
विकासी तोहि याहीते गरब है, जो वस्तु सो वस्तु पररूपसो निराली सदा,
निहचे प्रमान स्यादवादमें सरब है, ॥ ५०२ ॥

अर्थ - कोई नैयायिक वैशेषिक मिथ्याति ठे ते ज्ञानने लोकालोक व्यापी मा
नीने एवु समुजे ठे के जीवठे ते विज्ञाननो पिंन ठे अने विज्ञान ठे ते लोकालोक
व्यापी ठे तेथी आत्मइव्य त्रण लोक प्रमाण ठे तेथी पोताने सर्व व्यापी ईश्वर
मानीने स्वठंद थयो मोले ठे अजिमानमां चढ्यो थको बीजाने मुख मानीने कोई
नी साये मुखथी न बोले जो बोले तो एम कहे के आ जगतमां हमारोज खरब के ०
सर्व रचना ठे हवे तेने सा दाद ज्ञानी कहे ठे के अहो नाई जीव जे ठे ते जगतथी
निम्न ठे पण तेना ज्ञानमां जगतनो विकास ठे तेथी ईश्वरपणानो गर्व चढ्योठे पण
जे वस्तु ठे तेतो पोताना स्वरूपमाज रहे ठे अने परस्वरूपथी सदा छुदी रहे ठे तेथी
जगत अने आत्माने निश्चे नयना प्रमाणथी स्या दादमा सर्वथा विचरोथ पामिए. ५०२

हवे त्रीजो एकांत नय ते ज्ञेयथी ज्ञाननो अनेक प्रपंच कहि देखाडेठे:-

अथ त्रितीय ज्ञेयसो अनेक ज्ञान कथन:-

सवैया इकतीसा:- कोउ पशु ज्ञानकी अनंत विचित्राई देखे, ज्ञेयको आकार नाना रूप विसतर्यो है; ताहीको विचारी कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकंत पद लोकनिर्तो लयो है; ताको भ्रम जंजवेंको ज्ञानवत कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस ज्यो है; ज्ञायक सु जाई परजाईसो अनेक जयो, जद्यपि तयापि एकतासो नहिं टयो है; ॥ ५०३ ॥

अर्थ:- कोई पशु के० मुखे ज्ञाननी अनंत विचित्रता देखेठे. तेनो हेतु कहे ठे. जगतमां ज्ञेय वस्तु अनंत ठे, तेना आकार अनंत ठे ते ज्ञानमां परणमे ठे तेथी ज्ञानपण नानाप्रकारथी विस्तरे ठे, अने तेना नाना रूप विस्तारने विचारीने ज्ञाननी अनंत सत्ता माने ठे. एवो एकांत पद लईने प्रतिवादी लोकथी लडे ठे. हवे स्यादादी ज्ञानवत ते एकान्तपह्नीना भ्रम जांजवाने एम कहेठे के, अहो जाई तुं ज्ञानने ज्ञेयनो आकार परणम्यो जाणीने केम जूले ठे? ज्ञान ठे ते अगम्य वस्तु ठे. निराबाध रसथी ज्यो ठे. ज्ञाननो ज्ञायक स्वभाव ठे, तेथी यद्यपि पर्याय शक्तिथी ज्ञान अनेकरूप थयुं ठे तथापि ज्ञायक स्वभावथी ज्ञाननी एकताज ठे. पण ते एकताथी ज्ञान टलतुं नथी. ॥ ५०३ ॥

हवे चौथा नयमां ज्ञाननेविये ज्ञेयनी गायानो प्रपंच देखाडे ठे:-

अथ चतुर्थ ज्ञेय गायो यह कथन:-

सवैया इकतीसा:- कोउ कुंधी कहे ज्ञानमांहि ज्ञेयको आकार, प्रतिजाति रह्यो हे कलंक ताहि धोइए; जब ध्यान जलसो पखारिके धवल कीजे, सब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइए; तासो स्यादादी कहे ज्ञानको सुजाव यह, ज्ञेयको आकार वस्तु नाहि कहा खोइए, जैसे नाना रूप प्रतिविककी जलक दीते, जद्यपि तथापि आरसी विमल जोइए. ॥ ५०४ ॥

अर्थ:- कोई कुंधी के० कुबुद्धि वैज्ञानिक मतवालो एम कहे ठे के, जो जगत वासी जीवना ज्ञानमांज ज्ञेयनो आकार प्रतिजासे ठे, ते आकार तो निराकार ज्ञानतुं कलंक वपजेठे. तेने धोई नाखवो जोइए, तेथी निराकारतुं ध्यान लगाडुं तेतो जल थयुं, ते जलथी प्रहालीने ते ज्ञानने उज्वल करिये तेवारें निराकार शुद्ध ज्ञानमय थवाय ठे, हवे आही स्यादादी तेने कहे ठे. अरे जाई ज्ञाननो एज स्वभाव ठे,

के ज्ञेयनो आकार वस्तुमां जासे तो आंही आकार गमावी नाखवानी छुं मतलब ठे जेम आरसीमां नाना रूप प्रति बिबनो जलकाट देखाय ठे तो पण आरसी निर्मल जोइए पण तेने प्रतिबिंबनुं कलंक कोई न कहे ॥ ५०४ ॥

हवे पांचमो एकांतनय ते ज्यां लगें ज्ञेय त्यां लगें ज्ञान तेनो प्रपंच कही देखाडे ठे

अथ पंचम जौलो ज्ञेय तोलो ज्ञान यह कथन-

सवैया इकतीसा - कोउ अइ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम जोलो विद्यमान तौलो ज्ञान परगट है, ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनास होइ, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अलट है, तासों समकितवत कहे अनुजौ कहान, परजे प्रवान ज्ञान नानाकार नट है, निरविकल्प अविनस्वर दरव रूप, ज्ञानज्ञेय वस्तुसों अघ्यापक अघट है ॥ ५०५ ॥

अर्थ - कोई अजाण पुरुष एतुं कहेठे के जेवो ज्ञेयनो आकार तेबु ज्ञाननुं परिणाम थायठे, तेथी ज्ञेय विद्यमान ज्यां लगी होय, त्यां लगी ज्ञान प्रगट रहेठे अने ज्ञेयनो विनाश थये ज्ञाननो पण विनाश थायठे, एवी वात मिथ्यामतीना ह दयमां मिथ्यानी अलट लागी रहेठे, हवे तेनाथी सम्यकवत स्यादादी अनुभव नी कथा कहेठे अरे जाई, जेम कोई नट पुरुष ठे ते नाना प्रकारना जेप धारी ने नाना प्रकारनां नाम धरावेठे, तेम ज्ञानरूप नट ठे, ते नाना आकार धरीने पर्याय प्रमाणे बहुरूपी थायठे पण जेबु नट इव्य एक ठे तेबु ज्ञान वस्तु पण निर्विकल्प एक ठे, इव्यपणे अविनस्वर ठे अने ज्ञान वस्तु ते ज्ञेय वस्तुथी अघ्यापक ठे, एटले ज्ञेयवस्तु ज्ञान वस्तुमा एक मेक न थाय तेथी ज्ञान ज्ञेयनी एकता अघटती ठे ॥ ५०५ ॥

हवे ठछ एकांतनय सर्व इव्यमयी आत्मानो प्रपंच कही देखाडे ठे.-

अथ षष्ठम सर्वं दर्वमय आत्मा यह कथन-

सवैया इकतीसा - कोउ मद कहे धर्म अधर्म आकास काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमें, जाने न भरम निज मानें आपा परवस्तु बंधे विट करम धरम खोवे मगमे, समकित्ती जीव सुख अनुजो अन्यासे तातें परको ममत्व त्याग करे पग पगमें, अपने सुजावमें मगन रहे आगें जाम, धारा वाही पंथिक करावे मो प मगमे ॥ ५०६ ॥

अर्थ - कोई मूर्ख ब्रह्मादितवांही एतु कहे ठे के जो कोईनां मतमां धर्म अधर्म आकाश काल जीव पुदगल एठ एइव्य कहेवाय ठे ते सर्व ब्रह्म ठे तेथी मारु पणरूप सर्व जगतमा विस्तरि रह्यु ठे बीजो पदार्थ कोई नथी आही गुरु सि

ष्यने कहे थे. अहो शिष्य एतो ब्रह्मा वैतवादी मूढ मती थे, ते पोतानो मर्म जाण तो नथी; अने पर वस्तु थे तेने आत्मा जाणे थे. एवा मिथ्यात्वथी ए दृढ कर्म वां धे थे. अने जगतमां पोतानो धर्म खोवे थे पोतानो स्वभाव गमावे थे. जे सम केती जीव होय तेतो सोहं चीजना ध्यानथी शुद्ध अनुभवनो अन्यास करे, तेथी आत्मतत्व जुडंज पामे अने पगले पगले परवस्तुनो त्याग करे, अने पोताना शुद्ध स्वभावमां आवे प्रहर मगन रहे, तेथी ज्ञान धारामां वहेनारो मोक्ष मार्गमां चालनारो कहेवाय थे ॥ ५०६ ॥

हवे सातमो एकांत नय जे ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण ज्ञान तेनो प्रपंच कहि देखाडे
अथ सप्तम ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण ज्ञान यह कथन—

सवैया इकतीसा— कोउ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परवान, तेतो ज्ञान ता तें कहुं अधिक न और है; तिहुं काल पर तेत्र व्यापी परनयो माने, आपा न पि गाने ऐसी मिथ्या दृग दौर है, जैन मती कहे जीव सत्ता परवान ज्ञान, ज्ञेयसों अ व्यापक जगत सिर मोर है; ज्ञानकी प्रनामें प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय, जदपि तथा पि स्थिति न्यारी न्यारी वौर है ॥ ५०७ ॥

अर्थ:— कोई मूर्ख एम कहे थे के जेटलुं ज्ञेय वस्तुनो आकाररूपनुं प्रमाण थे एटले ज्ञेयनो जेटलुं एक नाहानुं मोहोतुं प्रमाण थे. तेटलुं ज्ञाननुं प्रमाण थे ते थी कोई वधारे बीजो प्रमाण नथी. एम ज्ञानने त्रणे कालमां परक्षेत्र व्यापी अ ने पर वस्तुथी परिणम्यो, एटले ज्ञेयथी एक मेक थयो ज्ञानने माने थे. पण ज्ञानने आत्मारूप जाणे नही, एवी मिथ्या दृष्टिनी दौर थे. हवे तेने जैनमती स्यादादी कहे थे. अहो नाई, जेटलां आकाश क्षेत्रमां जीव सत्ता थे तेटलाज प्रमाण ज्ञान थे अने ज्ञान थे ते घट पटादिक ज्ञेय पदार्थथी अव्यापक थे एज जगतना मस्तके मुगट समान थे. जो पण ए ज्ञाननी प्रनामां नाना प्रकारना ज्ञेय पदार्थ प्रतिबिंबित थई रह्याथे, तोपण ज्ञाननी स्थिति जूदीज थे. अने ज्ञेयनी स्थिति पण जुदीज थे. अने ज्ञाननुंवेकाणुं आत्मा थे ते पण जुदोज थे, अने ज्ञेयना पृथिवी प्रमुख जे ठेकाणा थे ते पण जुदाज थे ॥ ५०७ ॥

हवे आठमो नय नास्तिकवादी एम कहे थे के वस्तु नथी एज एकांत नय थे. तेनो प्रपंच कही देखाडे थे.— अथ अष्टम नास्तिकवादी वस्तु नाही यह कथन—

सवैया इकतीसा— कोउ शून्यवादी कहे ज्ञेयके विनास होत, ज्ञानको विनास होइ कदो केसे जीजियें; तातें जीवितव्यताकी थिरता निमित्त अब, ज्ञयाकोर परि

नामनिको नास कीजियें, सत्यवादी कहे नैया हूजें नाही पेद खिनझेयसों विरचि ज्ञान निन्न मानी लीजीयें; ज्ञानकी शकती साधि अनुजो दशा अराधि, करमको त्यागिके परम रस पीजियें ॥ ७ ॥

अर्थ:- कोई बौध मतिनो जेद गुन्यवादी एम कहे ठे के, ज्ञेय ठते ज्ञान उपजे ठे, अने ज्ञेयनो विनाश थए ज्ञाननो पण विनाश थाय ठे. अहो प्रतिवादी तमेज कहोठो के ज्ञान ते जीवतुं रूप ठे तो ज्ञाननो विनाश थएथी जीव पण विणसी जाय. तो जीवतुं केम होय ? तेनो उत्तर के जीवितव्यनी स्थिरताने कारण एटले शाश्वत जीव राखवा निमित्त ज्ञानमां जे ज्ञायाकार परिणाम उपजे ठे, तेतुं नाश करिये तो जीवनी स्थिरता थाय, हवे ते उपर सत्यवादी जैनी कहे ठे. अहो नाई एम खेदमां खिन्न के० आकुलव्याकुल न थावु. ज्ञेयथी विरचिने उदासीन थईने ज्ञान वस्तु निन्नज मानी लईयें ए ज्ञाननी ज्ञायक शकती ठे ते शक्तिं साधन करिने अनुजव दशामां ए ज्ञायकने आराधिने कर्मने त्यागी परम रस पीजीए ॥ ७ ॥

हवे नवमो एकात नय देहनो नाश आतां जीवनो नाश. तेनो प्रपंच कही देखाडेठे अथ नवम देहके नाश होत जीवको नाश यह कथन-

सवै इकतीसा.- कोठ कूर कहे काया जीव दोठ एक पिंम, जब देह नसै गी तवहीं जीव मरेगो, ढायाको सो ठल किधों मायाकोसो परपंच, कायामे स माइ फिरि कायाको न धरेगो, सुधी कहे देहसों अव्यापक सदीव जीव, समोपाइ परको ममत्व परिहरेगो, अपने सुनाठ आइ धारना धरामे धाइ, आपुमें मगन व्हेके आपा छुइ करेगो ॥ ९ ॥ दोहरा.- ज्यों तन कचुकि त्यागसों, विनसे नांहि शुभंग; त्यों शरीरके नासतें, अजख अखंजित अग ॥ १० ॥-

अर्थ - कोई चारवाक मती कूर एम कहे ठे के, काया अने जीव वने एक पिंम ठे, तेथी ज्यारे देह नाश पामसे त्यारे जीव पण नाश पामजे. जेम वृहन्नो विनास थये तेनी ढाया पण विनाश पामे ठे, तेम काया अने जीवनी ढायानो ठल बनी रह्यो ठे अथवा इइ जालनी मायानो प्रपंच बनी रह्यो ठे, तेथी ते कायामां समाइने एटले दीपकनी परे ओलवाइने पाठो कायाने धरजे, नही हवे तेने सुधि के० पंजित स्यादादी कहेठे. अहो नाई जीव ठे ते देहथी, सदा अव्यापक ठे. एटले जीव देह पणे परिणम्यो नथी. आ जीव पोतानो समय प्रस्ताव पामीने परनो ममत्व, ठोडजे. त्यारे पोताना छुइ स्वभावमां आवीने, धारनाधरामेधाइके एटले स्थिरता रूप जूमिमां रहीने आप स्वरूपमां आपज मगन थईने आत्मानी छु

क्षता करशो. ॥ ए ॥ जेम सर्पना शरीर. उपर कांचली आवे, ते कांचलीना त जवाथी जुजंग विणशो नही. तेमज शरीरनो त्याग थातां अलप जीव ठे ते अखं मित अंगे रहेठे पण जीवतुं विनाश थतुं नथी. ॥ १० ॥

हवे दशमो एकांत नय देह उपजवाथी जीव उपजे तेनो प्रपंच कही देखाडेठे:-

अथ दशम देह उपजत जीव उपजे यह कथन:-

सवैया इकतीसा:- कोउ डुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उ पज्यो हे अब आइके, जोलों देह-तोलों देहधारी फिर देह नसे, रहेगो अलप ज्योति ज्योतिमें समाइके, सदबुद्धी कहे जीव अनादिको देह धारी, जब ज्ञान, होइगो कवहीं काल पाइके; तबही सो पर तजि अपनो सरूप नजि, पावेगो परम पद करम नसाइके. ॥ ११ ॥

अर्थ:- कोई डुर बुद्धि धरनार एक ममत्व वालो एम कहेठे के, पेहेजो जीव हू तो नही. अने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ए चार नूतना मिलापथी देह उपज्यो ते मां ज्ञान शक्तिरूप जीव पण आवी उपज्यो. हवे ज्यांसुधी देह वतें ज्यांसुधी देह धारी नाम धरावे ठे अने पाठो देहनो नाश यशो ल्यारे अलख पुरुष ज्योति रू पो ठे, ते ज्योतिमां समाइ जाशे. हवे सदबुद्धि स्यादादी कहेठे, अहो नाई जीव अना दि कालथी देह धारी मूर्च्छिक ठे एटले नवो उपजु नथी. अने ए जीव कोई काले काल लब्धी पामीने ज्ञानी थाशे. ल्यारे देहादिक पर वस्तुने त्यागिनें पोताना, स्वरूपने नजसे. पठी कर्मोनो नाश करीने परम पदने पामशे. ॥ ११-॥

हवे अग्यारमो एकांत नय-आत्मा अचेतन तेनो प्रपंच विस्तारथी कहे ठे:-

अथ एकादशम आत्मा अचेतन यह कथन -

सवैया इकतीसा:- कोउ पद्मपाती जीव कहे ज्ञेयके, आकार परिणयो ज्ञान ता तें चेतना असत हे, ज्ञेय के नसत चेतनाको नास ता कारन, आत्मा अचेतन त्रिकाल मेरे मत हे; पंमित कदत-ज्ञान सहज अखंमित हे, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों विरत हे; चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रवान जीव तत हे ॥ १२ ॥

अर्थ:- कोई पद्मपाती हठवादी जीव कहेठे. ज्ञान ठे ते ज्ञेयनो आकार परिणम्यो होय, अने आकार परिणाम, असत ठे, तेथी चेतना पण असत ठे. तेनो हे तु कहे ठे, ज्ञेयो ज्ञेयनो नाश थाय तेवारें चेतनानो नाश थाय ठे. जे सत्-वस्तु होय तेनो तो विनाश किवारे पण न थाय. ते कारणथी चेतना असत् थई तेथी

त्रयो कालमां आत्मा अचेतन थय, एतु माहारो मत ठे हवे पंमित न्यादादी क हे ठे अहो नाई ज्ञान वस्तु सहज स्वभावे अखंमित ठे, अने ज्ञेयनो आकार धरेठे तोपण ज्ञेयथी विरक्त ठे जेम आरसीमां आकार जाते तोपण ते आकाररूप आर सी न थाय, जो चेतना लक्षणतोपण नाश मानीए तो जीवनी सत्तानो पण ना श थाय, त्तारे जीव वस्तु पण असत् थाय, तेथी जीव तत्व जे ठे ते ज्ञान चेतनाना प्रमाणथीज मानीए ॥ १२ ॥

हवे वारमो एकांत नय अंसप्रमाण जीव सत्तानो प्रपंच कही बतावे ठे.-

अथ द्वादशम अंस प्रमान सत्ता यह कथन -

सवैया इकतीसा - कोठ महा मूरुप कहत एक पिंममांहि, जहांलें अचित चित अंग लहलहे हे; जोगरूप जोग रूप नाना कार ज्ञेय रूप, जेते जेद करम के तेते जीव कहे हे; मतिमान कहे एक पिंममांहि एक जीव, ताहीके अनंत जाव अंस फेलि रहे हे; पुगलसों निन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा, उपजे विन से थिरता सुनाव गहे हे ॥ १३ ॥

अर्थ - कोई बौधमती महा मूर्ख एम कहेठे के, एक शरीरमां ज्यों लंगी अचित चित अंग के० घटपटादिक अचेतन विकल्प अथवा नर अमर तिर्यचादि चेतन अंग ते सचित विकल्प चकचकी रह्याठे, योगपरिणामथी योगरूप जोगपरिणामथी जोगरूप एम ज्ञेयनां नानाप्रकार रूप जेटलां कर्म के० क्रियाना जेद थायठे, ते टलाने जीव संख्या कहेठे, एटले जीव सत्ता अंस प्रमाण थई, हवे बुद्धिर्वत स्यादा दी एम कहेठे के, अहो नाई एक पिंममा एक जीव ठे अने ते जीवना ज्ञान परिणामे करीने अनत जाव जासनरूप अंस फेली रह्या ठे पण जीव ठे ते पुदगल थी निन्न ठे, अने कर्मयोगथी अजिन्न के० निराकुल ठे, तेमां जाव अंस अनत उपजेठे अने अनत विणसे ठे पण जीवतो स्थिरतारूपज ग्रही रह्यो ठे ॥ १३ ॥

हवे तेरमो एकांतनये कृणचंगुर जीवनो प्रपंच कही देखाडे ठे -

अथ त्रयोदशम त्रिनचंगुर जीव यह कथन.-

सवैया इकतीसा - कोठ एक त्रिनवादी कहे एक पिंममांहि, एक जीव उपजंत एक विनसतु है, जाही समै अंतर नवीन उत्पत्ति दुइ ताही समै प्रथम पुरातन वस्तु हे; सरवंग वादी कहे जेसे जलवस्तु एक, सोइ जलविविध तरगनि लसतु है तेसे एक आत्म दरव शुनपरजेसों अनेक नयो पें एक रूप दरसतु है ॥ १४ ॥

अर्थ - कोई एक कृणवादी बौध एम कहेठे के एक पिंममां एक जीव उपजे

हे. एक जीव विणसे ठे. जे समे पिंममां नवा जीवनी उत्पत्ति न थाय ते समे पे हलो पुराणो जीव ठे ते वसे ठे, पठी. ते विणसेठे एम शृंखला बंध उपजे विणसे ठे, तेने सर्वांगवादी जैनमती एम कहेठे के अहो नाई, जेम तलाव प्रमुख ज लाश्रयमां जल वस्तु एक ठे तेज जल विविध तरंगे करी लसित के० निन्न निन्न देखाय ठे, तेम एक आत्मा इय्य ठे ते गुण पर्यायथी अनेक रूप थयो ठे तोपण इव्यार्थिक नये एक रूपेंज देखीए ठे. ॥ १४ ॥

हवे चउदमो एकांतनय ज्ञायक अज्ञायकनो प्रपंच कही बतावे ठे.-

अथ चतुर्दशम अज्ञायक ज्ञायक नय यह कथन:-

सवैया इकतीसा:- कोउ बाल बुद्धि कहे ज्ञायक सकति जोलों, तोलों ज्ञान अछुइ जगत मध्य जानिये; ज्ञायक सकति काल पाई मिटि जाई जब, तब अ विरोध बोध विमल वखानिये; परम प्रवीन कहे ऐसी तो न बने वाही, जैसे बिरुं परगास सरजन मानिये, तेसैं बिरुं ज्ञायक सकति न कहावे ज्ञान, यहतो न पठ परतरु परवानिये. ॥ १५ ॥

अर्थ:- जेनी बालकना जेवी तुड बुद्धि ठे. एवो कोई शुन्य वादी तथागत कहेठे के, ज्या लगे ज्ञानमां ज्ञायक शक्ति ठे, त्यां लगे जगतमां ज्ञान अछुइ कहे वायठे; तेनो एज परमार्थी ठे, के जे ज्ञायकपणुं ठे ते विकल्परूप ठे. अने विकल्प थी ज्ञान अछुइ थाय ठे, तेथी निर्विकल्प ज्ञान अछुइ ठे ज्यारे चवितव्यताने व शथी पोतानो समय प्रस्ताव पामीने ज्ञायक शक्ति ठे ते मटी जाय, ल्यारेज विकल्पना विरोधथी रहित एवुं बोध के० ज्ञान ते विमल के० अछुइ वखाणीए. हवे एने परम प्रवीण स्यादादी कहेठे.- अरे नाई जे तुं ज्ञायक एकतामां विकल्प मानिने शंका पामेठे, अने ज्ञायक पणुं अछुइ मानेठे, ए वात बने नही. जेम प्रकाशविना सूर्य मान्यो न जाय, अने प्रकाशथीज सूर्य मान्यो जाय, तेम ज्ञायक शक्तिविना ज्ञानपण कहेवाय नही, जो तमे अनुमानप्रमाणथी तमारो पद साधन करता नथी, तो प्रत्यक्ष प्रमाणथी पण तमारो पद प्रमाण कीधो न जाय, तेथी तमारो पद ठे ते पढानास ठे. ॥ १५ ॥

हवे जेणे चउद एकांत नय हटावी दीधा एवो जे स्यादाद तेनी स्तुतिकरेठे:-

अथ स्यादवाद प्रशंसा कथन:-

बोहरा:- इह विधि आतम ज्ञान हित, स्यादवाद परवान, जाके वचन बिचारसो, मूरख होइ सुजान ॥ १६ ॥ स्यादवाद आतम सदा, ता कारन बल

न जाति न पाति न वसकि वेली न अंसकि जाई; दासि किए बिनु जातनि मारत,
 एसि अनीति न कीजे गुताई ॥ १४ ॥ दोहरा - माया ठाया एक हे, घटे बढे
 ठिनमाहि, इन्हकी संगति जे जगे, तिनहि कहुं सुख नाहि ॥ १५ ॥ सवैया तेईसा -
 लोगनि सों कबु नांतों न तैरों न तोसों. कबू इहू लोगकों नातो; ए तों रहेरमि
 स्वारथके, रस, तूं परमारथके रस मातो; ए तनसों तनमे तनसे जड; चेतन तू त
 नसो नित हातो, होहि सुखी अपनो बल तोरिकें- राग विराग विरोधकों तातो.
 ॥ १६ ॥ सोरठा - जे डुरबुद्धीजीव, ते उतग-पदवी चहे, जे समरसी सदीव,
 तिन्हको कबू न चाहिए ॥ १७ ॥ सवैया इकतीसा - हांसीमें विपाद बसे विद्यामें
 विवाद बसे, कायामे मरन गुरुवर्चनमे हीनता; सुचिमे गिलान बसे प्रापतिमे हानि
 बसे, जेमे हारि सुंदर दशामे ठवि ठिनता, रोग बसे जोगमे संयोगमें वियोग बसे, गु
 नमे गरव बसे सेवामाहि हीनता, और जगरीति जेती गर्जित अज्ञाता सेती, साताकी
 सहेली है अकेली उदासीनता ॥ १८ ॥ दोहरा - जिहि उतंग चढि फिरि पतन,
 नहि उतंग बहिकूप, जिहि सुख अंतर जयवसे, सो सुख है इखरूप ॥ १९ ॥
 जो विजसे सुप सपदा, गये ताहि इख होइ, जो धरती बहु त्रिणवती, जरे अगनि
 सों सोई ॥ २० ॥ इति गुरुउपदेश समाप्त. दोहरा - सबदमाहि सतगुरु कहै,
 प्रगटरूप जिन धर्म, सुनत विचरुण सबहै. मूढन जानै-मर्म ॥ २१ ॥
 अर्थ - अहो जीव चेतन, तमे मोह निझा तजीने जागो, अने सत्य स्वरूप दे
 खीने मायारूप सपदाने छुं बलगी रह्याओ, पृथिवी प्रमुख अठार चारादीक जे ठे
 तेमा तमें क्याथी, आव्या ठो? अने कही दशामा जाशो? अने जेनी सा
 थे तमे राची रह्याओ, तेतो मायाजाल संपदा ज्यानी त्या रहेओ, ए मायाजाल तमा
 री जाती नथी, तथा पाती नथी अने, माया तमारा वंसनी वेली नथी; अने तमा
 रा अंश-के० एक देशनी, पण काई नथी; तेथी; तमारे अने मायाने संबंध तो को
 ई पण तथी अने, तमे पोतानी करीने जाणोओ. तेथी; एकहेवत साची-करो ठो, के
 दासी कया वगर जात मारो ठो, तेथी उतपात थाशो; माटे हे महंत पुरुषो एवी
 अनीति न करवी, ॥ २४ ॥ माया अने ठाया, एक सरखीज ठे. कृणमां वधे ठे अने
 कृणमा घटे ठे तेथी ए मायानी संगते, जे लागी रहेठे, तेने, क्यारे, पण सुख
 यातु नथी, ॥ २५ ॥ - आ. जे पुत्र कलत्रादिक तु, पोताना जाणे ठे तेतो प्रारका
 लोको, जेवा ठे, ए लोकोनी साथे, तारो काई नातो नथी, अने ए लोकोने पण ता
 हारी साथे, कोई प्रकारनो नातो नथी, ए, जे, पुत्रकलत्रादि-लोको ठे तेतो पोता

ना स्वारथना रसथी ताहरी साथे रमी रह्या ठे, अने अरे चेतन तु तो पोतानी चे तना रूप परमारथना रसमां राची रह्यो तुं. वली ए जे लोको ठे ते तारा तनथी तनमय थई रह्या ठे, एटले ताहारा शरीरथी मोहीत ठे, अने ए शरीर तो जम ठे अने तु तो चेतन ठे. तेथी ते जडथी ताहारी सदा निन्नता ठे. माटे राग अने द्वेष रूप मोह कर्मनो नांतो तोमी पोतानुं वल फोरवीने सुखी था ॥ ३६ ॥ जे जीव राग द्वेषथी डुट बुद्धि थई रह्यो ठे. तेतो इंद्रादिकनी वंची पदवी चाहे ठे, अने जे जीव सदाई समरसी जावमां रहे ठे. तेने कोई उंच पदवीनी चाहना थाती न थी. ॥ ३७ ॥ हांसीने सारी मानीए ठे पण तेमा विपवाद वसे ठे, विद्याने सारी जाणीए ठीए पण तेमा विवाद जगडो वसे ठे, कायाने सारी जाणीए ठीए पण ते मां मरणदोष ठे, गुरुताई के षवडाईने सारी जाणीए ठीए, पण तेमा कोई कवारें हीए ता ठे, पवित्राई सारी जाणीए ठीए, पण एने आदि के अंत्ये छगड्या उपजे ठे, प्राप्ति सारी जाणीए ठीए पण तेनी साथे हाणी लागी रही ठे, जीतबु जलुं ठे पण तेनी साथे हारबु लाग्युंज ठे, ज्ञानीनी सुंदर दशा नली ठे पण अंत्ये काती क्हीए थई जाय ठे, जोगनुं सुख सारुं ठे, पण तेमां रोगनी उत्पत्ति ठे, इष्ट संयोग नलो ठे पण तेनी साथे वियोगपण तैयार थई रहे ठे, प्रीती नली ठे पण तेनी साथे अघ्नी ति पण उपजे ठे, औदार्यादिक गुणमां गर्व अहंकार वसे ठे, राज सेवा सारी ठे, पण तेमां दीन पणुं वसे ठे, अने बीजी जेटली जगतवासी जीवोनी रीत सारी जाणी ए ठे, तेतो सर्व अंतर गर्जित अशाता सहित ठे. तेथी एकली उदासीनताज शा तानी साहेली ठे. माटे समरस जावज अ्रेट ठे ॥ ३८ ॥ जे उंचे ठेकाणे चढी ने पठी नीचे पडबु थाय, ते उतंग ठेकाणुं न कहेवाय. पण ते ठेकाणु कुवा जेवु कहेवाय, तेम जे सुखना अंदर डुख वसे ठे ते सुख पण डुखरूप कहेवाय ठे ॥ ३९ ॥ केमके सुख संपदा विलसे ठे पण पठी तेना नाशथी डुख थाय ठे. जेम तृणोवाली ध रती अग्निथी वली जाय ठे. पण तृणविनानी धरती कोई रीते बलती नथी, ए दृष्टा ते जाणी लेवुं ॥ ३० ॥ एरीते गुरु उपदेश सुचनीकामात्र संपूर्ण थयुं, सदगुरु जे ठे ते जिनधर्मने प्रगट रूप शब्दमांज कहे ठे. एटले वचनमां बखाणे ठे. ते जिन धर्मने सांजली विचक्षण पुरुष होय ते सईहे ठे, अने मूर्ख होय ते तेनो मर्म जाणे नही ३१- हवे कोईकने उपवेशनी रुचिठे, अने कोईकने नथी तेनुं स्वरूप कहे ठे:-

अथ उपदेश रुचि अरुचि कथन-

सवैया तेइसा.- जेसे काहू नगरके वासी द्वे पुरुष नूले, तामें एक नर सुष्ट ए

क डुष्ट उरको, दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू थोर पंथिककों पूठे पंथ पुरको; सोतो कहे तुझारो नगर हे तुमारे ढिग, मारग दिखावे समुजावे खोजपुर को, एते पर सुष्ट पदिचाने पें न माने डुष्ट, हिरवे प्रवान तेसे उपदेश गुरुको ॥ ३३ ॥
 सवैया इकतीसा - जेसे काहू जगलमे पावसको समो पाई अपने सुनाई महा मेघ वरपतु हे, आमल कपाय कटु तीषन मधूर पार, तेसो रस वाढें जहां जेसो दरपतु है, तेसो ज्ञानवत नर ज्ञानको बखान करे, रसको उमाहो है न काहू परपतु है, वहे धुनि सुनि कोठ गहै कोठ रहै सोई, काहूकों विपाद होई कोठ हरपतु है ॥ ३३ ॥ दोहरा - गुरु उपदेश कहा करे, डुराराधि सतार, वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ ३४ ॥

अर्थ - जेम कोई नगरना वासी बे पुरुष नगरमांथी निकलीने दिशा चूली गया, ते बे पुरुषमा एक तो सुष्ट के० हैयाना सरल स्वभावना हतो, अने एक हैयानो डुष्ट हतो, पठी ते बने पुरुष नगरनी समीपज फरवा लाग्या पठी कोई बीजा वाटमार्गने नगरनो मारग पूठवा लाग्या, ल्यारे ते कहेवा लागो जे तमारुं गाम तो तमारी समीप ठे, एम कही ते बेनेने मारग देखाहे, अने रुडी रीते पुर के० नग रने खोज करी समजावे, पग बतावे तेमां जे सरल हैयानो ठे, तेतो साचुं माने, पण डुष्ट हैयानो ठे ते माने नहीं, तेम गुरुनो उपदेश ठे तेपण पुरुषना हैया प्रमाणे ठे ॥ ३२ ॥ जेम कोई अरण्यमां वरसाद पोतानो समय पामीने स्वभावथी महा मेघ वरपे ठे ल्यारे आंबली प्रमुख खाटा रसवाला तथा बावल प्रमुख कसा एल रसवाला, अने लिबडा प्रमुख कडवा रसवाला, जाल प्रमुख नीब रसवाला, जेठी मध प्रमुख मधुर रसवाला, अने लोण प्रमुख द्वार रस वाला जाडोमां तेउ ना गुण प्रमाणे रस वृद्धि आय ठे, तेम ज्ञानी आचार्य प्रमुख पोताना वचन वर्गीणा वचन योगे खिरे के० प्रकाशे ठे, ते ज्ञानतुं वखाण करतां पोताना अनुज व रसमां उमग थई रह्या ठे, पण ते वखते कोई योग्य अयोग्य श्रोतानी परिहा करता नथी, पठी ते श्रोता पुरुषोमां ते ज्ञाननी ध्वनि सानलीने कोई तेनी वा एीने ग्रहे ठे, कोई सुई रहैठे, निडा करे ठे, कोई मिप्याहृष्टिने विपादपण आय ठे, अने कोई सम्यक् दृष्टि ठे ते हर्ष पण पामे ठे ॥ ३३ ॥ माटे गुरुनो उपदेश थुं करे आ संसारी लोक डुराराथ्य ठे, समजाववा कण ठे, जे संसारना उदरमा पाच प्रकारनी श्रद्धावाला जीवो ठे, ते सदा वसीज रह्या ठे ॥ ३४ ॥

हवे पांच प्रकारना जीवना नाम कहे ठे:- अथ पंच प्रकार यथा:-
 दोहरा.- मूंधा प्रभु चूंधा चतुर, मूंधा रोचक सुध, उंधा डरबुद्धी विकल, मूंधा
 घोर अडुद्ध ॥ ३५ ॥

अर्थ:- एक तो मूंधा तेतो प्रभु स्वामी ठे, बीजा चुंधा के० चतुर ठे, बीजा सुं
 धा के० रुचिवत ठे, चौथो उंधाके० डट डरबुद्धि ठे, अने विकल ठे पांचमा मूंधा
 के० घोर कुबुद्धि ठे ॥ ३५ ॥

हवे मूंधालुं लक्षण कहे ठे:- अथ मूंधा यथा:-

दोहरा.- जाकी परम दशाविपे, करम कलंक न होइ; मूंधा अगम अगाध पद,
 वचन अगोचर सोइ ॥ ३६ ॥

अर्थ:- जेनी उत्कृष्ट दशा वर्षवेली ठे, जेमां कोई कर्मरूप कलंक देखाय नही,
 एवो जे अगम तथा अगाध पद ठे एटले सिद्ध पद ठे जे वचननो विषय थई
 शके नही तेने मूंधा कहिये ॥ ३६ ॥

हवे चुंधालुं लक्षण कहे ठे:- अथ चुंधा यथा:-

दोहरा:- जे उदास व्है जगतसों, गहे परम रस पेमें; सो चुंधा गुरुके वचन,
 चूंधे बालक जेम. ॥ ३७ ॥

अर्थ:- जे जीव जगतथी उदासी थई रहे ठे, अने जे परम दशामां रही तेना
 प्रेम सवादने ग्रहे ठे एटले उत्कृष्ट दशा जावे ठे, तेतो गुरुना वचनने बालकनी
 परे चुंधे ठे. अने पुष्ट थाय ठे, ते चुंधा कहेवायठे. ॥ ३७ ॥

हवे सुंधालुं लक्षण कहे ठे:- अथ सुंधा यथा:-

दोहरा.- जो सु वचन रुचिसों सुने, हिए डष्टता नाहि; परमारथ समुजै नही,
 सो सुंधा जगमांहि. ॥ ३८ ॥

अर्थ:- जे रुचियें करी आगमना अंग जे सु वचन तेने सांजले ठे. जेना हृदयमां
 डष्टता नथी, पण सूक्ष्म तत्वने समजे नही तेने जगतमां सुंधा पुरुष कहिये. ॥ ३८ ॥

हवे उंधालुं लक्षण कहे ठे:- अथ उंधा यथा:-

दोहरा.- जाको विकथा हित लागे, आगम अंग अनिष्ट; सो उंधा विषई विक
 ल, डष्ट रिष्ट पापिष्ट. ॥ ३९ ॥

अर्थ - जेने विकथानां वचन हितकारी लागे ठे, अने आगम अंग अनिष्ट लागे
 ठे. तेतो विकल विषयी जीव उंधा कहेवाय, दोषवत रोसवंत पापकर्मी थई रहेठे.

हवे घुंघातुं लक्षण कहेठे.— अथ घुंघा यथा:—

दोहरा— जाके श्रवण बचन नही, नहि मन सुरति विराम, जडता सो जड वत जयो, घुंघा ताको नाम ॥ ४० ॥ चोपाई— घुंघा सिद्ध कहे सब कोक, घुंघा घंघा मूरख दोठ, घुंघा घोर विकल संसारी, घुंघा जीव मोप अधिकारी ॥ ४१ ॥ दोहरा— घुंघा साधक मोषको, करे दोष डख नास, लहे पोष संतोष सों, वर नों लठन तास ॥ ४२ ॥

अर्थ— जेने वचन नथी एटले एकेडिय ठे अने जेने श्रवण नथी एटले बेरि डिय तेरिडिय, चोरडिय ठे. अने जेने मननी सुरता नथी एटले असही ठे, वली जे विराम के० विरती नथी अज्ञानरूप जडताथी जडरूप थई रह्या ठे तेने घुंघा कहीए ॥ ४० ॥ घुंघा पुरुपने तो सहु कोई सिद्ध कहे ठे, घुंघा अने कथा ए वने मूरख ठे, अने घुंघा होय तेतो अघोर अंधारामा विकल संसारी जीव ठे अने घुंघा जीव ठे तेतो मोहना अधिकारी होय, अने मोहना वाठक होय ॥ ४१ ॥ घुंघो ठे तेतो मोहना साधक ठे, दोष अने दुखनो नाश करे ठे, अने संतोषथी पुष्ट ता पामे ठे, तेनुं लक्षण वरणुं ठुं ॥ ४२ ॥

हवे मोह साधननु उदाहरण कहेठे.— अथ साधक लक्षण —

दोहरा— रूपा प्रसम सवेग दम, अस्ति जाव वैराग, ए लठन जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग ॥ ४३ ॥

अर्थ— रूपा जे दया, तथा जे कपायना उदयतुं दबावतुं ते, प्रसम अने सवेग ते मोहना अजिजापनु पद के० स्थानक ठे, तथा दम ते इडियदमन, अस्ति एट ले जिनोक्त वचन उपर श्रद्धा, एहवो वैरागी जाव ठे एटला लक्षण जेना हृदयमां रहे ठे अने सात व्यसननु त्याग करे तेज साधक होय ॥ ४३ ॥

हवे साते व्यसनना नाम कहेठे.— अथ सप्त व्यसन नाम,—

चोपाई— जूवा आमिप मदिरा दारी, आपेटक चोरी परनारी, ई सात व्यसन डख दाई, डरित मूल डगीतिके जाई ॥ ४४ ॥ दोहरा— दर्वित ए सातों व्यसन, डुरा चार डख धाम, जावित अंतर कलपना, मृपा मोह परिनाम. ॥ ४५ ॥

अर्थ— जुगार १, मांस नक्षण २, मदिरापान ३, वेश्या गमन ४ आखेटक के० शिकार खेलवो ५, चोरी करवी ६, परस्त्री गमन ७, ए सात व्यसन कहेवाये ठे, ते संसारमां डखदाई ठे पापना मूल ठे अने डगीतिना जाई ठे. ॥ ४४ ॥ ए जे क्रियारूप साते व्यसन ठे ते डव्यरूप ठे. ए डष्ट आचाररूप डख धाम

के० हु खनुं घरठे. अने जेना अंतरमां वृथा के० फूग मोह परिणामनी कल्पना के० विचारणा ध्यावना थाय ठे. ते जावित व्यसन कहीए. ॥४५॥

हवे जावित सात व्यसननी व्यवस्था कहेठे - अथ जावित व्यसन व्यवस्था कथन -
सवैया इकतीसा:- अशुनमें द्वारि शुन जीति यहै दूत कर्म, देहकी मगनताई यहै मांस नपिवो, मोहकी गहलसों अजाने यहै सुरापान, कुमतिकी रीति गनिका को रस चाखिवो; निरदे व्हे प्राण घात करिवो यहै सिकार, परनारी संग परबुद्धिको परपिवो; प्यारसों पराई सोज गहीवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन विचारि ब्रह्म लखिवो ॥ ४६ ॥

अर्थ:- अशुन कर्मना उदयथी द्वार मानिये अने शुन कर्मना उदयथी जीत मानिये तेतो जुगार खेलवो ठे, देह उपर मगनता रहे तेतो मांस नक्षण जाणवो, मोह कर्मथी मूर्खित थई रह्याथी. अजाण थई रह्यो होय तेज सुरापान व्यसन ठे, कुबुद्धिनी रीते चालतुं तेतो वेद्याना रसनु चाखतुं ठे, निर्दय परिणाम राखीने प्राणघात करवो, तेज शिकार खेलवो ठे. पररूप-जे पुजजादिक तेनी बुद्धिने परखवी तेतो परनारी सेवा व्यसन ठे, पारकी साँज सामथी उपर प्रीत राखीने प्यार मेलववानो चाह राखे तेज चोरी ठे, ए जावित सात व्यसनतुं विदारण करवाथी ब्रह्म लख्यो जाय ठे. ॥ ४६ ॥

हवे मोहना साधकनी व्यवस्था कहेठे - अथ साधक व्यवस्था:-

दोहरा:- विसन जाव जामे नही, पौरुष अगम अपार; किये प्रगट घट सिंधु मधि, चौदह रतन उदार. ॥ ४७ ॥

अर्थ:- जेना चित्तमां व्यसनजाव पामिए नही, अने अगम अपार पुरुषात्तन पामिए, तेणे घटरूप समुद्र मंथन करीने उदार के० असुब्य चौदे रत्न प्रगट कीधां ४७

हवे जावित चौद रतनु वर्णन करेठे - अथ जावित चौदे रतनको बरनन:-

सवैया इकतीसा:- लठमी, सुबुद्धि, अनूजति; कवस्तुजमनि; वैराग कजपवृद्ध, संत सुवचन है, ऐरावत उधिम प्रतीतिरंजा, उदैविप कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद धन है; ध्यान बाप प्रेमरीति मदिरा विवेक वैद्य शुद्धजाव चंद्रमा तुरगरूप मन है; चौदह रतन ए प्रगट होइ जहां तहां, ज्ञानके उदोत घट सिंधुको मंथन है ॥ ४८ ॥

दोहरा:- किए अवस्थामें प्रगट, चौदह रतन रसाज; कबु व्यागे कबु संग्रह है; विधि निपेधको चाल. ॥ ४९ ॥

अर्थ:- सुबुद्धि उपती तेतो लक्ष्मी उपनी र; आत्मानो अनुभव उपतुं तेतो

कौस्तुभमणि उपजुं २, वैराग्य उपज्यो तेतो कल्पवृक्ष उज्युं ३, नांपा सुमति उप
 जी तेतो संख उपज्यो ४, उद्यम उपज्यो तेतो ऐरावत हाथी उपज्यो ५, प्रतीत
 उपजी तेतो रजा उपजी ६, कर्मनो उदय तेतो विषय उपज्युं ७, कर्म निर्जरा थइ
 तेतो कामधेनुं उपजी ८, आनंद उपज्यो तेतो अमृतधन उपज्युं. ९, ध्यान उपज्युं
 तेतो चार्प के० सारंग धनुष उपज्युं १०, प्रेमरीत के० प्रेमनी लय उपनी तेतो
 मदीरा उपनी ११, विवेक उपनो तेतो धनवतरि वैद्य उपजुं १२, शुद्ध जाव उप
 नो तेतो चड्मा उपजुं १३, मन शुद्ध थयुं तेतो सात मुखो अश्व उपनु. १४, एच
 ऊद रत्नतो त्यां प्रगट थाय ठे ज्यां ज्ञाननो उदय थवाथी पोताना ज्ञानरूप घट
 समुद्रनुं मंथन थाय ठे तिहा उपजे ठे एम जाणवुं ॥ ४८ ॥ साधनी अवस्थामां
 ए चौदे रत्न रसाल हतां ते प्रगट कीधा, ए चौद रत्नमां विधि निपेधनी चालमां
 एटले हेय, उपादेयनी चालमां कंइक त्यागे ठे अने कइक संग्रह करेठे ॥ ४९ ॥
 हवे जावित चवद रत्न तेमां आठ रत्न त्यागवा योग्यठे अने उ रत्न ग्रहण कर
 वा योग्य ठे ते कहेठे - अथ अष्ट रत्नपट उपादेय कथन -

दोहरा - रमा, संप विप धनु सुरा, वेद धेनुं हय हेय, नति रजा गज कल्पत
 रु, सुधा सोम आदेय ॥ ५० ॥ इह विधिजो परजाव विप, वसे रमे निजरूप, सो
 साधक शिवपंथको, चिदविवेक चिद्रूप, ॥ ५१ ॥

अर्थ - रमाके० लक्ष्मी तेतो सुबुद्धि १ सुवचनशांष २, उदय विषय, ३ ध्यान
 धनुष, ४ प्रेम रीत मदिरा, ५ विवेक वैद्य ६ निर्जरा काम-धेनुं, ७ मन शुद्धते
 घोडो, ८ ए आठ अथिर ठे तेमाटे ठामवा योग्य ठे अने अनुभव मणि, १ प्रति
 ति रजा, २ उद्यमहाथी, ३ वैराग्य कल्पवृक्ष, ४ आनंद सुधा, ५ शुद्ध जाव च
 ड्मा, ६ ए उ रत्न ग्रहण करवा योग्य ठे ॥ ५० ॥ आ रीतिथी पररूप जे क
 मांदि क जाव ठे तेज विष थयुं. तेनो जे वमन करे ठे अने पोताना स्वरूपमां
 रमे ठे तेज पुरुष मोक्ष मर्गनो साधक जाणीये जे ज्ञान जावनो जाणनार अने
 ज्ञान स्वरूपी तेज साधक कहीए ॥ ५१ ॥

हवे मोक्षपदना साधकनी व्यवस्था कहेठे - अर्थ साधक व्यवस्था कथन -
 कवित्त उंद - ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर निरखेदरव सुगुन परजाइ, जिन्हके स
 हंजरूप दिन दिन प्रति, स्यादवाइ साधन अधिकाइ, जे केवल प्रतीत मारग मुषविते
 चरन रापे वहराइ, ते प्रविण करिबिन मोह मज अविचल होइ परमपद पाइ ॥ ५१ ॥
 अर्थ - जेने घट अंतरमा ज्ञाननी दृष्टि जागी तेथी इव्यने देखे जापोते इ

अना गुण जाणो. गुणना पर्याय जाणो अने जेने सहज रूपेज एटले जवतव्यताना प
रियाकथी दिन दिन प्रत्ये स्थादादुं साधन अधिक थई रह्यो ठे. अने जे केवलीना कहे
ला मारगने सन्मुख थई रहे. एज चित राखे अने एज मारगविषे चरण ठरावी राखे,
ते प्रवीण पुरुष मोहरूप मजने ह्रीण करी परम पद पामी अविचल थायठे ॥ ५१ ॥

हवे सम्यक् दृष्टिनी व्यवस्था अने मिथ्यात्व दृष्टिनी व्यवस्था कहेठे -

अथ सम्यक् दृष्टि मिथ्या दृष्टि व्यवस्था --

सवैया इकतीसा - चाकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिनि
सम्यक मिथ्यात नाग करिके ; निरडुंद मनसा सुनूमि साधि लीनी जिनि, कीनी
मोप कारन अवस्था ध्यान धरिके ; सोई छुड अनुजो अन्यासी अविनाशी नयो,
गयो ताको करम जरम रोग गरिके ; मिथ्यामति आपनो सरूप न पिताने तामें,
मोले जग जालमें अनंत काल जरिके. ॥ ५३ ॥

अर्थ - जेम रात्रिनेविषे चक्रवो फिरतो फरतो रहे ठे, तेम संसारमा फिरतां
फिरतां जेनो अंत निकट आव्यो, सम्यक पास्यो, मिथ्यात्वनो नाश करिने राग दे
पादिक रहित एवी मनसारूप जली चूमिका जेणे साधि लीयी, अने ध्यान धरिने
पोतानी अवस्था मोरूपदना कारणरूपी कीयी, तेज सम्यक दृष्टि छुड अनुजवनो
अन्यासी थयो, एम कर्म रोगने गमावीने अविनासी थयो एटले जन्म मर्ण टळ्यो
सिद्ध थयो, एवी सम्यक दृष्टि पास्याविना मिथ्याती पोतानुं सरूप थोजखे नही.
तेथी अनंतकाल जरिके के० लगी जगतनी जालमां मोले ॥ ५३ ॥

हवे जे आत्मानो अनुभव पास्यो तेनो विलास कहेठे - अथ अनुभव विलास -

सवैया इकतीसा - जे जीव दरवरूप तथा परजायरूप, जोउ नै प्रवान वस्तु
सुधता गहत है, जे अछुडजावनिके त्यागी नए सरवथा विषेसों विमुप व्हे वि
रागता चहत है ; जो आहजनाव त्यागनाव डहूं नावनिको, अनुजो अन्या
सविषे एकता कहत है ; तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोप, मारगके सा
धक अवाकक महत है ॥ ५४ ॥

अर्थ - जे कोई जीव इय्यार्थिक अने पर्यायार्थिक ए वे नय प्रमाण
करिने वस्तुनी छुडताने ग्रहेठे, जे जीव राग देष मोहथी आत्मां जे अछुड
जाव ठे तेना सर्वथा त्यागी थया ठे, तेथी पाच इडियोना विषयथी विमुख थईने
वैरागतामां वर्तवा लागेठे, अने जे जाचित चौठे रत्नमा ठ जाव रत्न ग्रहण करवा
योग्य ठे. अने आठ जाव रत्न त्यागवा योग्य ठे, एटले आठ हेयने ठ उपाठेय ठे, ते अ

नुजवना अन्त्यासविपे बंने जावनी एकता करेठे, एटले जे इव्यमां दृष्टि रहे अने पर्यायमा दृष्टी न रहे, तेने एकता कहेठे. ते जीव ज्ञान क्रिया जे मोह मार्गनुं कारण कबु ठे तेना आराधक थया. अने सहजरूपमां मोह मार्गना साधक थया, फरी तेने कर्म बाधा न होय, तेथी अबाधक थया महिमावत थया पुजनीक थया ५४ हवे जे ज्ञान अने क्रियाने निघन्नावे माने ठे तेने एनी एकता कही देखाडे ठे.-

अथ ज्ञान क्रिया एकता कथन -

दोहरा - विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोष, ता परनतिकों बुध कहे, ज्ञान क्रियासो मोष. ॥ ५५ ॥

अर्थ - अनादि कालनी जे अशुद्धता ठे तेनु जिहा विनाश आयठे त्यां शुद्धतातुं पोषण आयठे. एवी जे आत्मानी परिणति आय तेज ज्ञाननी क्रिया कहे वायठे तेने बुध के० पंक्ति पुरुष एवु कहेठे के ए ज्ञान क्रियाथी मोह थाय, आ ही ज्ञान तथा क्रियानी जे अविधा लखेठे ते शब्दनयथी जाणवी. ॥ ५५ ॥

हवे ज्ञाननी व्यवहार नयथी थापना देखाडे ठे - अथ ज्ञान इव्य स्थापना दोहरा - जगी शुद्ध समकित कला, वगी मोषमग जोइ, वहे करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ ॥ ५६ ॥ जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम, जेसे दीपक जो धरे, सो उजियारो धाम ॥ ५७ ॥

अर्थ - जेणे शुद्ध समकेतनी कला जाणी अने जे कला मोहना मुख मां जावा लागी ते पुरुष कर्मने चूरण करीने क्रमे क्रमे पूरण थाय ॥ ५६ ॥ जेना घटमां एवी दशा अई रही ठे ते पुरुषतुं साधक नाम केहेवाय जेम दीवानुं अजवातुं थएथी घरमा पण अजवातुं थाय, तेम ज्ञानक्रिया तो मोह साधक ठे, पण ज्ञानक्रियाने धरता पुरुष पण साधक थाय ॥ ५७ ॥

हवे ज्ञानतुं फल कहेठे - अथ ज्ञानकला वर्नन -

सवैया इकतीसा - जाके घट अंतर मिथ्यात अधकार गयो जयो परगास सुं शुद्ध समकित जानको, जाकी मोह निडा घटी ममता पलक फटी, जान्यो जिन मरम अवाची नगवानको, जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्विम उदार जग्यो, लग्यो सुप पोष समरस सुधा पानको, ताही सु विचहन को संसार निकट आयो, पायो तिनि मारग सुगम निरवानको ॥ ५८ ॥ जाके हिरदैमें स्यादवाद साधना करत, शुद्ध आतमाको अनुनौ प्रगट जयो हे, जाको संकल्प विकल्पके विकार मिटि, सदा काल एकी जाव रस परिनयो हे, जिनि बंध विधि परिहार मोष अंगी

कार, ऐसो सुविचार पठ सोउ ठांनि दयो है, जाकी ज्ञानमहिमा उद्योत विनवि न प्रति, सोइ नवसागर उल्लेखि पार गयो है ॥ ५ए ॥

अर्थ—जेना घटमां अनादिकालनो मिथ्यात अंधकार हतो ते गयो, अने शु ६ सम्यक् रूप सूर्यनो प्रकाश थयो राग द्वेष मोह निडा जेनी घटी गई, ममता रूप पलक लागी हती ते फिटि गई. तेथी जिन अवाची जगवाननो एटले सिद्ध स्वरूपनो मर्म पाम्यो, जेजुं ज्ञान तेज वधुं एटले प्रकाश थयुं प्रधान उद्यम जाग्यो अने उपशम रस रूप अमृत पानना सुखनो पोष थयो, ते सु विचक्षण पुरुषने संसार निकट आव्यो. तेणे तो सुगम वातमां मुक्तिनो मारग पाम्यो ॥ ५० ॥

जेना हृदयमां स्याद्वाद स्वरूपनी साधनाथी शुद्ध आत्मानो अनुभव प्रगट थयो अने जेने संकल्प विकल्पनो विकार बहु जातनो हतो ते मटीने सदा कालमां एक चेतना रस जे एकी जावपणुं ठे ते पणे परिणम्यो, तेणे करीने बंध विधिनी परि हार जे संवरतुं धरवो ते थयुं अने निस्पृह दशाथी मोहूनो जे अंगीकार तेना विचारनो पक्ष धार्यो ठे ते पक्ष ठांनी दीधोठे, जेना ज्ञाननो महिमा दिन दिन प्र ते उद्योत थयोठे. तेज जीव नव समुद्र उतरीने पार घहोच्यो एम जाणवु ॥५१॥ हवे अनुभवनी व्यवस्था तेज उपादेय ठे ते कहे ठे.—अथ अनुभव व्यवस्था कथन

सवैया इकतीताः—अस्तिरूप नास्ति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये; दीते एक नैकी प्रतिहनी अपर दूजी नैकों नै दिपाइ वाद विवादमें रहिये, थिरता न होइ विकल्पकी तरगनिमें, चंचलता बढे अनु नौ दशा न लहिये, तातें जीव अचल अबाधित अपमं एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥ ६० ॥

अर्थ—कोई नयथी अस्तिरूप ठे, कोई नयथी नास्तिरूप ठे. कोई नयथी अनेक कोइ नयथी एक. कोई नयथी स्थिररूप कोई नयथी अस्थिररूप, इत्यादि नाना प्रकार स्वरूपथी जीव कहीए. अही एक नय जे स्वरूप साधे ठे, त्या ते न यनो प्रतिपक्षी के० उलटी रीते बीजो नय देखाय ठे, तेतो पैला नयथी विपरी तपणुं साधे ठे, तेथी जो एकांतनयपणुंज ग्रहीए अने ते उपर बीजो नय नदेखामीये तो वादविवाद थई जाय तेथी नय जेद करणीथी कृविकल्पना तरग उठेते तरगथी चे तन स्थिर न थाय, अने चंचलतापणुं बंधे तेथी अनुभव दशाग्रही न जाय. माटे नय पक्ष तजीने अनुभव अन्यासने कारणे जीव इव्य अचल ठे. अबाधित ठे, अख न ठे, एक ठे एवा स्वरूपनो स्थानक साधिने समाधि सुख ग्रहण करिये ॥ ६० ॥

हवे इव्य क्षेत्र काल नावे करीने आत्मानुं अखंमितपणुं कहे ठे -

अथ इव्य क्षेत्र काल नाव कथन -

सवैया श्कतीसा -जेसे एक पाको आंबफल ताके चारि अंस, रसजाली गुठली ठीजक जब मानिये, यो तो न वनें पे एसे वने जेसे दहेफल रूपरस गंध फास अपंम प्रवानिये, तेसे एक जीवको दरव पेत्र कालनाव, अंस जेद करि जिन्न जिन्न न वपानि ये, दर्व रूप पेत्ररूप कालरूप नावरूप, चारों रूप अलख अखंम सत्ता मानिये॥६१

अर्थ - शिष्य कहेठे हे स्वामी इव्य क्षेत्र काल नावरूप वस्तुना चार अशत मे कहे गो, त्या एवु दृष्टात आपवु के, एक आवफल ठे तेना रस, जाली एट ले रेसो गोटली अने ठाल ए चार अंस ठे, तेमज वस्तुना इव्य क्षेत्र काल नाव ए अंश होय के न होय, हवे गुरु कहेठे हे शिष्य आही तु अशके ० खंम समज्यो ते थी ए दृष्टात दीधुं तेतो वने नही पण आही अखंमपणामा चार अंस लाववा तेनुं दृष्टात ए ठे के तेज आवफल ठे तेमां रूप, रस, गंध ने स्पर्श ए चारे अखंमपणे प्रमाण करिए ए चार रस ठे, तेम एक जीवनुं इव्य क्षेत्र काल नावरूप अंस जेद करीने रस जाली गोठलीने ठाल ए खम खम वखाणीये नही आही जे साध्यरूप आत्म सत्ता ठे ते इव्यथी अखंमितपणे, आत्मा इव्यरूप ठे अने क्षेत्रथी अखंमपणे असख्यात प्रदेशाअवगाहपणे ठे, कालथी अखंम त्रिकाल वर्तिठे जावथी अखंम ज्ञायक नावपणे ठे, एम जीवना चार अंश अखंमपणे मानिये॥६१॥

हवे साध्यपदमा ज्ञान ज्ञेयनुं विज्ञेय पणु अने अविज्ञेय पणुं कहेठे.-

अथ ज्ञान ज्ञेय विज्ञेय कथन -

सवैया श्कतीसा -कोउ ज्ञान वान कहे ज्ञान तो हमारो रूप, ज्ञेय पटदर्व सो हमारो रूप नाही हे, एक नै प्रवान एसे दूजी अब कहे जेसे, सरस्वती अक्षर अर्थ एक गही है, तेसे ज्ञाता भेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप सकति अनंत मुज पाही है, ताकारण वचनके जेद जेद कहे कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता माही हे ॥ ६२ ॥ चोपाई -स्वपर प्रकाशक सकति हमारी, ताथें वचन जेद त्रम जारी, ज्ञेय दसा द्विविधा परगासी, निज रूपा पररूपा ज्ञासी, ॥ ६३ ॥ -दोहरा- निजरूपा आत्म सकति, पररूपा परवस्त, जिनि लखि जीनो पेव यह, तिनि लिख जियो समस्त ॥ ६४ ॥

अर्थ - कोई ज्ञानवत प्राणी पोताना अनुभव प्रमाणथी एम कहेठे के जे ज्ञान ठे तेतो अमारुं रूप ठे अने जे पट इव्य ज्ञेयठे तेतो अमारुं रूप नथी तेथी

ज्ञान अने ज्ञेय विशेष पणामां ठे. गुरु कहे ठे, एतो एकज नय प्रमाण ठे. ह
वे बीजा नयथी जेम अविशेष पणुं थाय ठे. तेम कहुं बुं. जेम सरस्वती के० वि
द्यारूप अर्थ ठे तेम अक्षर के० विद्यारूप अर्थ एकठो रहे, तेम ज्ञाता ते तो मा
हारुं नाम थयुं. अने जे ज्ञान ठे तेतो चेतनानो विराम के० प्रकार ठे. अने जे
ज्ञान ज्ञेय पणे परिणम्यो ठे. ते तो ज्ञेयरूप शक्ति ठे एवी अनंत शक्ति माहारीज
पासे ठे. ते कारणथी वचन जेद करीने ज्ञान अने ज्ञेयनो जेद कोई नले कहो प
ण बीजो नय देखवाथी ज्ञाननो ने ज्ञेयनो विलास आत्म सत्तामांज ठे. तेथी अवि
शेष पणुं ठे. ॥ ६२-॥ जेथी हमारी शक्ति एवी ठे जे पोतानो प्रकाश करे अने
परनो पण प्रकाश करे तेथी स्व पर प्रकासक ठे, तेथी ज्ञान अने ज्ञेय ए वचन जे
वे जे जेद ठे, तेज जारी त्रम उपजावेठे पण वस्तु एक ठे. ज्ञेय के० जे जाणवा यो
ग्य तेतो दशा वे प्रकारे करीने कही एक तो निजरूपा बीजी पर रूपा कही ठे ॥ ६३
आंही जे निजरूप ज्ञेय दशा कहीए ते तो स्वरूप प्रकाशक आत्म शक्ति ठे, अने जे बी
जी पर रूप ज्ञेय दशा ते परवस्तु ठे जेणे एवातनो पेच जाणुं तेणे तो समस्त जाणुं ६४
हवे एज पेच स्यादादमां जोडए ते स्यादादरूप वस्तुनुं वर्णन करेठे.-

अथ स्यादाद रूप वस्तु वर्नन

सवैया शकतीसा.-- करम अवस्थामें अशुद्धसो विलोकियत, करम कलंकसों र
हित शुद्ध अंग हे, उजे नै प्रवान समकाल सुखासुद्धरूप, एतो परजाइ धारी जीव
नाना रंग हे; एकही समेमें त्रिधारूप पे तथापि याकी, अखंफित चेतना सकति स
रवग हे, यहे स्यादाद याको जेद स्यादादी जानै, मूरष न माने जाको हियो दृ
ग जंग हे. ॥ ६५ ॥ निहचे दरव द्विष्टि दीजें तव एकरूप, गुन परनति जेद चाव
सों बहुत हे, असप प्रवेश संयुगत सत्ता परवान, ज्ञानकी प्रजासो लोकालोकमा
न चुत हे, परजे तरगनिके अंग त्रिनचयुर हे, चेतना सकति सो अखंफित अचुत हे,
सोहे जीव जगति विनायक जगत साग, जाकी मौज महिमा अपार अदचुत हे,
॥ ६६ ॥ विजाव सकृति परिनतिसो विकज दीसैं, सुद्ध चेतना विचारते सहज सं
त हे, करम संयोग सो कहावे गतिको निवासी निहचें सरूप सदा मुक्त महंत हे
ज्ञायक सुजाउ धरे लोकालोक परगासी सत्ता परवा न सत्ता परगास वत हे; सोहे जी
व जानत जहां न कौतुकी महान जाके कीरति कहान अनादि अनत हे ॥ ६७ ॥

अर्थ:- कार्मण शरीर सहित आत्मानी कर्म अवस्थामां दृष्टि दर्शए तो आ
त्माने अशुद्ध देखीए ठीए अने कर्म कलंक रहित केवल आत्माभाज दृष्टि द

इए तो जो शुद्ध अंग ठे. अने ए बेधनय समकालेज प्रमाण करीए तो शुद्धाद्य
 ६रूप कस्यु जाय. एमा पर्यायनी धाराये करीने जीवना विचित्र प्रकार ठे. शुद्ध अद्य
 ६ अने शुद्धाद्य ६ ए त्रणरूप आत्माना एकज समे पामीए, यद्यपि एम ठे तथा
 पि त्रणेरूपमां आत्माना अखंमित चेतना शक्ति सर्व अगमा जरि रहि ठे, तेज
 स्यादाद कहीए, तेनो जेद जे स्यादादी होय, तेज जाणे पण जेनुं हृद्युं दृगजग
 के० सम्यक दृष्टि रहित ठे. ते मूर्ख एनो जेद न जाणे ॥ ६५ ॥ निश्चयनयथी
 इव्य उपर दृष्टी आपिये तो आत्म इव्य एकरूप ठे अने ए आत्म इव्यना गुण
 परिणतिरूप जेद नावथी जोइये तो आत्मा बहुरूपे ठे अने आत्माना सत्ता अ
 संख्यात आकाश प्रदेश सयुक्त ठे, अने ते सत्ताने प्रमाण आत्मा कह्यो जायठे
 अने ज्ञाननी प्रजा विचारीएतो लोकालोक प्रमाण क्षेत्रथी संयुक्त आत्मा कह्यो
 जायठे, तथा कृणकृणमा पर्याय रूप तरगना अग विचारीएतो जीव कृणजगुरज
 कहेवाय ठे, अने तेने चेतना शक्तिथी विचारीए तो सदा सर्वदा अखंमज कहेवा
 य, अने अच्युत कहेवाय ठे तेज जीव जगतनो विनायक के० धणी अने जगत
 मां सारजुत पदार्थ ठे. जेनी मोज अने महिमा अपार ठे अने अज्ञूत ठे ॥ ६६ ॥
 हवे बीजुं पण स्यादवाद कहेठे -- रागदेषादिक विजाव शक्तिथी परिणम्यो देखीए
 तो आत्मा विकल देखाय ठे, अने तेनी शुद्ध चेतनाज विचारीएतो सहज सतरूप
 दीसे ठे, कर्म संजोग सहित आत्मा विचारीये तो चारे गतिनो वासी अने चोरा
 सी लाख योनीनो वासी कहेवाय ठे, अने निश्चयनयथी एनुं स्वरूप जो विचारी
 ए तो सदा सर्वदा मुक्तिरूप महत ठे, अने जो एने ज्ञायक स्वजाव धारी विचारीए
 तो लोकालोक प्रकाशक अमेय कहेवाय, अने जोए आत्माना प्रकाशवत सत्ता वि
 चारिये तो पोतानी सत्ता प्रमाण आत्मा होय, ते जीव वस्तु साथ्य ठे. जे जहान
 के० जगतने जाणेठे, जे महोठो कौतुकी पुरुष ठे, जेनी कीर्ति अने कथा अनादि
 अनंत काल लगी एवीज चालती आवेठे ॥ ६७ ॥

हवे साथ्यरूप केवल दशानु वर्णन करे ठे - अथ केवल दशा वर्नन -

सवैया इकतीसा - पंच परकार ज्ञानावरनको नास करि, प्रगटी प्रसिद्ध जग
 माहि जगमगी है, ज्ञायक प्रजामे नाना क्षेत्रकी अवस्था धरि, अनेक नईपें एकता
 मे रसपगी है, याही जाति रहेगी अनंत काल परजंत, अनंत शक्ति फोरि अनंत
 सों लगी है, नरदेह देवलमे केवलमे सरूप सुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सि
 पा समाधि जगी है ॥ ६८ ॥

अर्थः— मति ज्ञानावरण प्रमुख पांच प्रकारना ज्ञानावरणीय कर्मनो नाश करीने प्रसिद्ध के० प्रत्यक्षपणे प्रगटी एवी जे ज्ञान ज्योतिनी शिषा जगतमां जग मगी रही ठे ते ज्ञान ज्योतिनी शिषा पोताना ज्ञायकपणारूप प्रज्ञामां ना ना प्रकारना ज्ञेयनी अवस्था धरीनें अनेकरूप थई ठे, तेपण ज्ञायक पणानी जे एकता ठे तेना रसथी मली रही ठे तेज रीते अनंत काल पर्यंत रहेज्ञे. अने अनंत वीर्य फोरवीने अनंत पदथी लागी रहेज्ञे जेवारे मनुष्यना देहरूप देवजमां शुद्ध केवल ज्ञान स्वरूपे एवी ज्ञान ज्योतिनी सिखा जेवी समाधि ठे, ते जागृत थई एटले सर्व विषमता नाव मटि गयो ॥ ६७ ॥

हवे अमृतचंद्र आचार्य ठे ते चंद्रमां ठे अने तेनी कलारूपि त्रण धारा ठे, तेतुं छुदा छुदा अर्थथी वर्णन करे ठे —अथ अमृत चंद्र कलाके तीन अर्थ कथन —

सवैया इकतीता — अक्षर अर्थमें मगन रहै सदा काल, महा सुख देवा जै सी सेवा काम गविकी; अमल अबाधित अलप गुन गावना है, पावना परम शुद्ध नावना है नविकी, मिथ्यात तिमर अपहार वर्द्धमान धारा, जैसी उने जाम लों किरन दीपे रविकी; ऐसी है अमृत चंद्रकला त्रिधारूप धरे, अनुजो दशा गरंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ६९ ॥ दोहराः— नाम साधि साधक कहायो, षार षाद शम ठीक, समय सार नाटक सकल, पूरन जयो सटीक ॥ ७० ॥

अर्थः— अमृतचंद्रनी अनुचव दशारूप कला ठे तेतो अक्षर अर्थमां के० मोक्ष पदार्थमां सदाकाल मगन रहे ठे, अने जेवी कामधेनुनी सेवा सुखदायक थाय तेवी सुखदायक ठे, अने अमृत चंद्रनीग्रंथ टीकारूप कला ठे तेज पाठला वर्णने करी युक्तठे, अने अमृतचंद्र कविनी बुद्धि ठे, तेतो अक्षर अर्थ के० शब्दार्थ तेमां मगन रहे ठे, आगल बीछु वर्णन पूर्वली रीते जेम अमृत चंद्रनी अनुचव दशानी कला अने ग्रंथनी टीकानी कला अने कवीकला ए त्रण कला अमल ठे, अबाधित ठे, अलक्ष पुरुषना गुणनो गायन करतीज रहे ठे तेथी पावन ठे, जब्य त्व पणानी परम शुद्ध नावना ठे, अने ए त्रणोकला, मिथ्यात्वरूप अंधकारनी अपहरण करनार ठे, अने चढते परिणामे ठे, जेम चढता वे पोहोर लगी सूर्यना किरण चढता चढता दीपे ठे, तेम ए कलापण वधती वधती दीपे ठे, एवी अमृतचंद्र आचार्यनी कला ठे ते त्रण प्रकारतुं रूप धारण करे ठे, एक तो अनुचव दशा बीजी ग्रंथनी टीका करी ते अने त्रीजी काव्य बंधकरतां कविकला कीधी ॥ ६९ ॥

साय्य साधीक नामे बारमो क्षर ठीक कह्यो, अमृतचद आचार्यनुं करेलुं कलस
रूप समयसार नाटक ग्रंथ टीका समेत संपूर्ण थयु ॥ ७० ॥

इतिश्री नाटक समयसारनो साय्य साधकनामा बारमुक्षर बालाबोधरूप
संपूर्ण थयो. ग्रंथाग्रंथ ८००० मान ठे

हवे ग्रंथनी अते अमृतचद आचार्य कवि आलोचनाकरेठे - अथ कविआलोचन. -

दोहरा - अब कविजन पूरव दशा, कहै आपसो आप, सहज हरप मनमें
धरै, करै न पञ्जाताप ॥७१॥ सवैया इकतिसा - जोमें आप ठानि दीनो पररूप
गही लीनो, कीनो न वसेरो तहा जहां मेरो थल है, नोगनिको नोगी रहि करमको
कर्ता जयो, हिरदे हमारे राग दोष मोह मल है, ऐसी विपरीति चाल नई जो अ
तीत काल, सो तो मेरी क्रियाकी ममताताको फल है, ज्ञान दृष्टि नासी जयो क्रिया
सो उदासी वह, मिथ्या मोह निझामें सुपनको सो ठल है ॥७२॥ दोहरा - अमृत
चदमुनिराज कृत, पूरन जयो गरथ, समयसार नाटक प्रगट, पंचमगतिकोपंथ ७३

अर्थ - हवे कलसनो करनार कविठे ते पोतानेज पोतानी पूर्वदशा कहेठे
पोताना मर्म जाण्णायी सहज हर्ष उपज्यो ठे ते आलोचनामा धारे ठे, पण प
स्तावो करतो नथी ॥७१॥ अतीत काले जे महारुं आत्मानुं स्वभाव हतो ते मे
ठानि दीयो, अने पर जे कर्मादिक पररूप हतो ते मे लई लीयो, अने ज्या समा
धिविपे माहारो निवास हतो, त्या मे वास न कीयो पाच इंडियोना विषय नोग
नो नोगी थईने कर्मनो कर्ता थयो, अमारा हैयामा राग देपरूप महा मोह मल
हतो एवी उलटी चाले चाह्यो तेतो अतीत कालमा वात वीती एवुं जे कार्य
थयु तेतो मारी क्रियामा ममता राखी तेनु फल थयु हवे तो ज्ञान दृष्टि नासी
तेथी क्रियाथी उदासी थयो, अने जे अतीत कालमा अवस्था थई तेतो मोह
मिथ्यात निझामा स्वपना जेवो खेल थयो ॥७२॥ अमृतचद आचार्यनो करेलो ग्रंथ
संपूर्ण थयो, आ समयसार नाटक जे ग्रंथ ठे ते प्रगट पणो पंचम गतिके ० मुक्तिनो
पथ ठे ॥७३॥ इति श्री समयसार नाटक ग्रंथ अमृतचद आचार्यकृत संपूर्णम् ॥

हवे बणारसीदाश कहेठे - दोहरा - जाकी जगति प्रजावसो, कीनो ग्रंथ
निवाहि, जिन प्रतिमा जिन सारपी, नमे बनारसी ताहि ॥७४॥

अर्थ - जेनी जकिना प्रजावे करीने गहनार्थ ग्रंथहतो ते निर्वाहकीधो. एवी
आ कालमा जिन प्रतिमा ठे ते श्रीजिनेश्वर सरपी ठे. तेने बणारसीदास नमेठे

हवे जेवा श्री जिनेश्वर देव महात्म्यवत ठे, तेची जिन प्रतिमा पण महात्म वत ठे ते कहेठे:- अथ जिन प्रतिमा महात्म्य कथन-

सवैया इकतीसा - जाके मुख दरससो जगतके नैननिकां थिरताकी बानी चढी चचलता विनसी, मुडा देखे केवलीकी मुडा यादि आवे जहां, जाके आगे इंडकी विचूति दिसे तिनसी; जाको जस जपत प्रकास जगे हिरदेमे, सोई मुड म ती होइ हुती जो मजिनसी, कहत बनारसी सु महिमा प्रगट जाकी, सोहे जिनकी सबी हे विद्यमान जिनसी ॥ ७५ ॥

अर्थ.- श्री जिन प्रतिमाना मुख दर्शन थवाथी जे तेना जकजन ठे तेना नयनने कंइ आगल सम्यक् दशा के० संवर दिशा पामेली होय तेनी स्थिरतानी वाणी वधे, अने जे जावपदार्थमा चचलता होय तेनो नाश थाय. अने पद्मासन स्थित मुडा आकार ज्यां देखे, त्यां केवलीनी मुडा याद आवे ठे. ते केवलीनी मुडा एम सं चारवामां आवे ठे के, जेनी आगल इंडनी संपदा ठे ते त्रण समान देखायठे, एटले चोसठ इंड महिमा करेठे, अने ते दशा साजलवामा आवे तेवारे त्या जे के वलीना जश कहेवायठे, तेना गुणनो प्रकाश ह्यामां जागेठे, अने त्यां जे पहेली मति सम्यक् दशामां मेली जेवी हत्ती ते शुद्ध थई, तेथी वणारसीदास कहेठे के जिन प्रतिमाना एवी प्रगट महिमा ठे के ते विद्यमानजिनेश्वर समानज मानवी ॥७५॥

हवे जिन प्रतिमानो जक्तिवत ठे तेतुं वर्णन करेठे -अथ प्रतिमा माने ताको वर्णन

सवैया इकतीसा.-जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहरि लसी, विनसी मिथ्यात मो ह निडाकी समारपी, सैली जिन सासनकी फैली जाके घट जयो, गरवको त्यागी पट दरवकौ पारपी; आगमके अहूर परे है जाके श्रवनमे, हिरदे चंदारमें समा नी बानी आरपी, कहत बनारसी अलप नवस्थिति जाकी, सोइ जिन.प्रतिमा प्रवाने जिन सारपी ॥ ७६ ॥

अर्थ.- जेना हीयामा सम्यक् दर्शननी लेहेर विराजमान थई रही ठे, अने मिथ्यात मोहनीय रूप निडानी मुर्ठा ते विनास पामी ठे, तथा जेना घटमांथी जिन शासननी सेली के० तत्व समजवामा अने तत्व समजणामा अहं बुद्धिरूप अजि माननो त्याग थयोठे, अने जे उ ए इव्यने परखनारो ठे जेना श्रवणमा आग मना अहूर पडे ठे. एटले सिद्धांत सांजले ठे, बली रूपेरिय थार्प आर्पित रूपि संबंधी वाणी ते जिनवाणी कहिये, ते जेना हृदयरूप चंदारमां समाणी ठे.

एतले जरी ठे, वणारसी दास कहे ठे के जेनी जवस्थिति अत्प आवी रही ठे, तेज पुरुष जिन प्रतिमाने जिन सरिषी प्रमाण करेठे ॥ ७६ ॥

हवे वणारसी दास पोतानी कथनी कहेठे - अथ वणारसी कथन -

चोपाई - जिन प्रतिमा जन दोष निकडे, सीस नमाइ बनारसिवदे, फिरि मनमाहि विचारे ऐसा, नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥ ७७ ॥ परम तत्व परचेइ समांही, गुन थानककी रचना नांही, यामे गुनथानक रस आवे, तो गरथ अति शोजा पावे ॥ ७८ ॥ दोहरा - यह विचारि संक्षेपसो, गुनथानक रस योज, वरनन करे बनारसी, कारन सिव पथ खोज ॥ ७९ ॥

अर्थ - जिन प्रतिमां ठे तेज मनुष्यना राग द्वेष मिथ्यातनुं निकंदन करनार ठे, तेथी वणारसीदास मस्तक नमावीने तेने वदे ठे पठी बनारसीदास मनमा एम विचारे ठे के, आ नाटक ग्रंथमां जेवु परमपद ठे तेतुं आही कहेठे ॥ ७७ ॥

आ ग्रंथमा उपादेयरूप परम तत्व, आत्म तत्वनो परिचय ठे पण गुणस्थानकनी रचना आ ग्रंथमां नथी. हवे जो आ ग्रंथमा गुणस्थानकनो रस आवे तो आ ग्रंथ सारी शोजा पामे ॥ ७८ ॥ ए प्रमाणे विचारिने संक्षेप मात्र गुणस्थानकना रसनी चोजनो वणारसी दास वर्णन करे ठे ते वर्णन शिवपथनुं कारण ठे अने शिवपंथनी खोजना ठे ॥ ७९ ॥

हवे गुणस्थानकनुं स्वरूप ठे तेवु कहेठे - अथ गुणस्थानक सरूप कथन - दोहरा - नियत एक विवहारसो, जीव चतुर्दश जेद, रंग जोग बहु विधि जयो, ज्युं पट सहज सुपेद. ॥ ८० ॥

अर्थ - निश्रे जीव एकरूप ठे अने व्यवहारनयथी जीव चौद जेदे ठे आ हीं दृष्टांत आपेठे, जेम वस्त्र सहज रगमा सफेद ठे पण रगना जोगथी विचित्र प्रकारना रगनो थाय तेम गुणस्थानकथी जीवनो तेवो जेद ठे. ॥ ८० ॥

हवे चौद गुण स्थानना नाम कहेठे - अथ चतुर्दश गुणस्थानक कथन - सवैया इकतीसा - प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुरथो अत्रत पंचमो व्रतरंच है, उगो परमत्तासातमो अपरमतनाम, आठमो अ पूरव करन सुख सच है, नौमो अनिवर्तनाव दशमो सुलमजोज, एकादशमो सु उपसत मोह वच है, द्वादशमो ठीन मोह तेरहो सजोगी जिन, चौदहो अजोगी जाकी यिति अंक पंच है. ॥ ८१ ॥ दोहरा - वरने सब गुण थानके, नाम चतुर्दश सार, अत्र वरनों मिथ्यातके, जेद पंच परकार. ॥ ८२ ॥

अर्थः— प्रथम मिथ्यात, बीजो सास्वादन, त्रीजो मिश्र, चोथो अविरत, पांचमो रच मात्र व्रत एटले देशव्रती, ठवो प्रमत्त, सातमो अप्रमत्त, एवा नाम ठे. आठमो अपूर्वकरण अथवा निवृत्ति बादर, ए वे नाम ठे ते आंही मुखनो संच के० मिलाप ठे, नवमो अनिवृत्ति बादर, दशमो सूक्ष्म लोन, अग्यारमो उपसांत मोह, आंही मोहनी वचना ठे एटले मोहधी बुटबु ठे. बारमो क्रीण मोह क हीए, तेरमो सयोगी जिन, ते केवली थयो, चांदमो अजोगी जिन, जेनी स्थिति अ इ व क ल ए द्दस्र पांच अक्षर जेटली ठे. ॥७१॥ एम सर्वे चउवे गुण स्थान ना नामनु सत्यार्थ वर्णन कीधुं ते शोचे ठे. हवे अनुक्रमें पहेला मिथ्यात गुणवा याना पांच प्रकारथी पांच जेद ठे ते कहुंहुं. ॥ ७२ ॥

हवे पांच मिथ्यात्वना नाम कहेठे— अथ पंच मिथ्यातके नाम कथन.—

सवैया इकतीसा— प्रथम एकंत नाम मिथ्यात अनिग्रहीक, दूजो विपरित अ जिनिवेशिक गौत है; तीजो विनै मिथ्यात अनाजिग्रह नाम जाको, चोथो संसे जहां चित चोरकोसो पोत हे; पंचमो अज्ञान अनानागिक गहलरूप, जाके उदे चेतन अचेतनसो होत है, ए पांचो मिथ्यात त्रमावे जीवको जगतमें, इन्हके वि नास समकितको उद्योत है ॥ ७३ ॥

अर्थः— पांच मिथ्यात्वमां पहेलो एकांत पद्धना ग्राही अनिग्रहिक नामे मिथ्या त्व ठे. बीजो मिथ्यात पहेला मिथ्यातथी विपरित ठे. तेनुं अजिनिवेशिक एतुं गो त के० नाम ठे, त्रीजो विनय मिथ्यात सर्वनो पूजनार ठे जेनुं नाम अनानिग्र हिक ठे, चोथो संसयिक मिथ्यात ज्यां चित ठे ते त्रमण करतुं रहे नमराना वचानी माफक, पांचमो अज्ञान मिथ्यात, ए अनानागिक पणाथी अज्ञापणपो एकेडिया दिकमा गहलरूपी ठे. निज्ञानी ठाकतुं स्वरूपी ठे. जेना उदयथी चेतन ठे ते अ चेतन थीं रसुठे. जेना नाम लीधा ते एज पांचे मिथ्यात जीवने जगतमा जमा वेठे. ए पांचे मिथ्यात्वतुं विनाश यएथी समकेतनो उद्योत थायठे ॥ ७३ ॥

हवे एकांतवादी अनिग्रहीक मिथ्याततुं जहूण कहेठेः— अथ एकांत यथाः—

दोहरा— जो इकंत नय पद्द गहि, ठके करावे दद्द, सो इकत वादी पुरुष, मूषावत परतद्द. ॥ ७४ ॥

अर्थः— सातेनयमां हर कोई एक नयनो पद्द ग्रहीने पोताना जाणपणामां ठ की जायठे, अने दद्द के० तत्ववेत्ता कहेवाय, ते एकांत मतनो स्थापक मीमांसक नैयायक प्रमुख पुरुष ठे ते प्रत्यक्षपणे अनिग्रहीक मिथ्याती ठे ॥ ७४ ॥

हवे जाणपणामा तो काईक अनेकातपणुं ठे पण ह्ठथकी विपरीत कहेठे
माटे तेनुं लक्षण कहेठे - अथ विपरीत यथा.-

दोहरा - ग्रंथ उकति पथ उडपे, थापे कुमत सुकीय, सुजस हेत गुरुता ग्र
हे, सो विपरीती जीय ॥ ८५ ॥

अर्थ - ग्रंथमां जे कह्यो एवो मार्ग तेने उथापीने नन्हवादिक पोतानी कुम
ति थापे पोतानी प्रसिद्धि थवाने माटे गुरुता के० आचार्यपणो ग्रहेठे, ते जीव अ
नेकांतताथी विपरीत थयो तेने आजिनिवेसिक मिथ्यामती कहीए ॥ ८५ ॥

हवे जेनो विनय मिथ्यात ठे एवा अनजिग्रहिक मिथ्यातीनुं लक्षण कहेठे
अथ विनय मिथ्यात यथा -

दोहरा- देव कुदेव सु गुरु कु गुरु, गिनें समान जु कोइ, नमे नगतिसो सब
निको, विनय मिथ्याती सोइ ॥ ८६ ॥

अर्थ.- सु देवने अने कुदेवने सु गुरुने अने कु गुरुने जे कोइ समानज गणे
ठे, अने तामली तापसनीपरे परिणाम प्रवर्ज्या लेइने नक्तिथी सर्वने नमेठे, पण
गुणदोपनी खबर न होय ते विनय मिथ्यात्व कहिये ॥ ८६ ॥

हवे जेना जाणपणामा संदेह ठे, ते संशय मिथ्याती कहिये तेनुं लक्षण कहेठे
अथ संसय यथा -

दोहरा - जो नाना विकल्प गहे, रहे हिए हेरान, थिर वहे तत्व न सबहे,
सो जिय संसयवान ॥ ८७ ॥

अर्थ - जे अपार नय जाल देखिने जीवमां संशय राखे, नानाप्रकारना चित्त
विकल्प ग्रहे अने हेरान थई रहेठे. स्थिरता राखीने तत्वने सर्वे नही तेज जीव
संशयवत्त मिथ्याती कहीये ॥ ८७ ॥

हवे पाचमा अज्ञान मिथ्यातीनु लक्षण कहेठे.- अथ अज्ञान यथा -

- दोहरा - जाको तन डुर दहलसों, सुरति होति नहिं रच, गहल रूप वरते
सदा, सो अज्ञान तिरयंच ॥ ८८ ॥ पंच जेद मिथ्यातके, कहे जिनागम जोइ,
सावि अनादि सरूप थव, कहां अवस्था दोइ ॥ ८९ ॥

अर्थ - शरीरमा ड खना दहेलथी जेने हेय उपादेयनी, रचमात्र सुरता रती
नथी, सुर्वित रूपे जे सदा वनें ठे ते एकेडियादिक तिरयंच अज्ञान मिथ्याती कहि
ये ॥ ८८ ॥ श्री जिनेश्वरना आगम सिद्धांत जोईने मिथ्यातना पाच जेद कहेठे:- जे

नी आदि पामीए तेतो आदि मिथ्यात्व कहीए, अने जेनी आदि न पामीए तेतो अनादि मिथ्यात्व कहिये, एवी एवी मिथ्यात्वनी अवस्थानुं स्वरूप हवे कहेते ॥ ८५ ॥

प्रथम सादि मिथ्यात्वनुं लक्षण कहेते.— अथ सादि यथा:—

दोहरा — जो मिथ्या दल उपसमे, ग्रंथ जेद बुद्धि होइ,
फिरि आवे मिथ्यातमें, सादि मिथ्याती सोइ ॥ ८० ॥

अर्थ:— जे मिथ्यात मोहनीयना दलने उपसमावीने मिथ्यात्व ग्रंथी जेदीने ज्ञाता समकेती अर्धने पाठा मिथ्यातमां आवे ते सादि मिथ्यात्व कहीए एना मिथ्यातमां हवे आदि अर्ध तेथी सादि मिथ्याती कहिये ॥ ८० ॥

हवे बीजो अनादि मिथ्यातनुं लक्षण कहेते— अथ अनादि यथा कथन:—

दोहरा.— जिनि गरथि जेदी नहीं, ममता मगन सदीव, सो अनादि मिथ्या मती, विकल बहिर्मुख जीव. ॥ ८१ ॥

अर्थ.— जे जीवे मिथ्यात्व ग्रंथी जेदी नथी अने सदासर्वदा काल लगण ममता मांज मगन रहे, ते जीव अनादि मिथ्याती कहीए, अने जे बहिर्मुख रहे जेने परमात्मा इव्यनी दृष्टि नथी, ते बहिर्मुख जीव कहीए ॥ ८१ ॥ इति श्री वणारसीदास कृत नाटक समयसारनेविषे प्रथम गुणस्थानकनो अधिकार संपूर्ण थयो.

दोहरा.— कह्यो प्रथम गुण थान यह, मिथ्या मत अन्निधान, अल्प रूप अ ब वरनबु, सासादन गुण थान. ॥ ८२ ॥ सवैया इकतीसा — जैसे कोउ बुधित पुरुष खाइ खीर खांम, वोन करे पीठे के लगार स्वाद पावे हे, तैसे चढि चौथे पां चएके ठवे गुणथान काहु उपसमीको कपाइ उदे आवे हे, ताहि समे तहां गि रें परथान दशा त्यागी, मिथ्यात अवस्थाको अधोमुख व्है धावे हे, बीच एक स मे वा ठ आवली प्रमान रहे, सोइ सासादन गुणथानक कहावे हे. ॥ ८३ ॥

अर्थ.— जेतुं मिथ्यात एवुं नाम ठे, ते पेहेलुं गुणस्थानक सूचना मात्र कहु, हवे संक्षेप मात्र सासादन गुण स्थाननुं स्वरूप कहुंहुं. ॥ ८३ ॥

अर्थ.— जेम कोइ कुधावत पुरुष ठे ते खीरखांम खाय पठी तेने वमन करेते ते वमननी पठी पण खीरखांमना जोजननो जगारेक स्वाद पामेठे तेम कोइ जीव उपशम सम्यक पामीने चौथे अविरत गुणस्थाने रह्यो ठे अथवा उपशम सम्यक पांमताज सरखो समान पाचमा गुणठाणे अथवा ठवे गुणठाणे चढ्यो त्यां समकेतनी उज्वलाता न अर्ध, अने अनंतानुबंधी उपशमि कपाय हतो ते उदय थयो, ते समयमा ते त्रणे गुण ठाणाथकी ते उपशम सम्यकती प्रधान

दशा जे श्रेष्ठ दशा तेने त्यागीने फरी मिथ्यात दशाने उंधे मुखे उलटो रहेते, एटले मिथ्यात्व पामतामां अने सम्यक्त वूटतामां वचे एक समयकाल प्रमाणे अथवा उत्कृष्ट ढ आवलिका प्रमाणे जे सम्यक अंश रहेते तेनेज साखादन गुन स्थानक कहिए ॥ ९३ ॥ इति द्वितीय गुन थानक समाप्त

दोहरा.— साखादन गुन थान यह, नथो समापत बीय, मिश्र नाम गुन था न अथ, बरनन करो त्रितीय ॥ ९४ ॥ सर्वैया इकतीसा.— उपसमी समकि ती केतो सादि मिथ्यामती, डूहूनिको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे हे, अनंतानु बंधी चोकरीको उवे नांही जामे, मिथ्यात समे प्रकृति मिथ्यात न रहेहे, जहा सदहन सत्यासत्यरूप समकाल, ज्ञान जाव मिथ्या जाव मिश्र धारा वहे हे, जाकी धिति अतर मुहूरत वा एक समे, एसो मिश्र गुन थान आचारज कहे हे अर्थ— आ बीजो साखादन नामे गुणस्थान संपूर्ण अयुं हवे त्रीजु मिश्र गु नथाननुं वर्णन करहुं ॥ ९४ ॥

अर्थ.— उपशम सम्यकि मिथ्यात मिश्र अने सम्यक्त रूप त्रण पुज करीने ज्यारे मिश्र पुजमा जीव वत्ते, अथवा सम्यक्तथी पडीने फरी मिथ्यात्वमा आवी सादि मिथ्यात्वी अईने मिश्र पुज उदय अयाथी मिश्रमा वत्ते, एवेउने मिश्र गुण स्थानक कहिये, केमके मिथ्यात्व सम्यक्त थको वत्ते ठे जेथी ससार अनतो वधे ते अनंतानुबंधीनी चोकमी कहिए, तेनो जेमा उदय नथी अने मिथ्यातपणुं शमे तथा उपशमेठे, त्या मिथ्यात्वनी प्रकृतिनो उदय रहेतो नथी ज्यां समकाले सत्या सत्य रूप श्रद्धा ठे एटले श्रद्धामा साचु खोटुं वेउ ठे तिहा ज्ञान जाव ठे, ते मिश्र धारामा वहेठे. अने मिथ्यात्व जाव पण सम्यक्त धाराथी मिश्रित धारा थकी वहेठे जेनी उत्कृष्टि स्थित अतमुहूर्त कालनीठे, अथवा जघन्य एक समयनी ठे एतुं नाम त्रीजुं मिश्र नामे गुणगाणु आचार्यजी कहेते इति तृतीय गुनस्थान समाप्त ॥ ९५ ॥

दोहरा — मिश्र दशा पूरन जई, कही यथा मति जापि, अथ चतुर्थ गुनथान विधि, कहां जिनागम सापि, ॥ ९६ ॥

अर्थ — मिश्र गुणगाणानी जेवी दशा ठे, ते जेवी पोतानी बुद्धि ठे तेवी रीतें जापारूप कही ते संपूर्ण अई, हवे श्री जिनागमनी शांभ जईने चोथा सम्यक्त गुण गाणानी विधि करहुं ॥ ९६ ॥

हवे चोथा सम्यक्त गुणगाणानु वर्णन करेते — अथ सम्यक्त वर्णन — सर्वैया इकतीसा — केई जीव समकित पाइ अर्थ पुदगल, परावर्त काल ताई

चोखे होई चित्तके, कोई एक अंतर मुहूरतमें ग्रंथि जेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोप वितके, तातें अंतरमुहूरतसो अर्ध पुञ्जजों, जेते समें होही तेते जेद समकितके, जाही समे जाको जब समकित होई सोई, तबहीसो गुन गहे दो प दहे इतके ॥ ९७ ॥ दोहरा - अथ अपूर्व अनवर्ति त्रिक, करन करे जो कोड; मिथ्या ग्रंथि विदार गुन, प्रगटे समकित सोइ ॥ ९८ ॥

अर्थ - सम्यक्त पामीने चित्तनो चोखो अर्धे अर्धे पुदगल परावर्तन काल ल गण संसारमां रहेउ, अने कोईक जीव तो एकज अंतमुहूर्त कालमां मिथ्यात ग्रंथी जेदी समक्त पामीने चारे गतिनो मार्ग उलंघन करी मोक्षरूप वित्तना सुख वेदे, पण संसारमा रहे नही तेथी सम्यक्त पामीने जघन्य संसार स्थित एक अंतर मुहूर्तनी ठे अने उत्कृष्ट संसार स्थित अर्ध पुदगल परावर्तनी थायठे, हवे एटली संसार स्थितिनी वचमा एक एक समयनी वृद्धि करता जेटला ते स्थितिना जेद थाय तेटला सम्यक्तना जेद पामीए ए रीते सम्यक्तना घणा जेद पामिये, जे समे जेने सम्यक्तनु उदय होय ते समे ते जीव ल्यारथी पोताना गुण ग्रहेउ, अने इ तके के० ते संसार अवस्थाना दोपजुं दहन करेठे ॥ ९७ ॥ अथ के० यथाप्र वृत्ति करण, अपूर्व करण, अनिवृत्ति करण ते त्रणे करण जे कोई जन्वजीव करे ठे त्यां कोईक वखते एक, आयुकर्मविना शाते कर्मनी स्थिति अंत कोडा को मी सागरोपम प्रमाण रहे, ल्यारे यथाप्रवृत्ति करण थाय पढी मिथ्यात ग्रंथी जे दवाथी अपूर्वकरण थाय, अने सम्यक्त प्रगटवाथी अनिवृत्तिकरण थाय, जे कोई ए त्रणे करणे करी मिथ्यात ग्रंथी विदारीने सम्यक्त स्वरूप पामे तेज सम्यक्त कहिये हवे अष्ट प्रकारथी सम्यक्त विवरण करे ठे:- अथ अष्टरूप कथन:-

दोहरा:- समकित उत्पत्ति चिन्ह गुन, नूपन दोष विनास, अतीचार छुत अष्ट विधि, बरनो विवरन तास ॥ ९९ ॥

अर्थ - सम्यक्तनुं सरूप, १ सम्यक्तनी उत्पत्ति, २ सम्यक्तनुं चिन्ह, ३ सम्यक्त नो गुण, ४ सम्यक्तनुं नूपण, ५ सम्यक्तना दोष, ६ सम्यक्तनो विनास, ७ सम्यक्तना अविचार, ८ ए सर्व आठ प्रकार थया, तेनो विवरो करंठुं ॥ ९९ ॥

हवे प्रथम सम्यक्तनुं सरूप कहेठे - अथ सम्यक्त थया:-

चोपाई:- सत्य प्रतीति अवस्था जाकी, दिन दिन रीति गहे समताकी; दिन दिन करे सत्यको साको; समकित नांव कहावे ताको ॥ ६०० ॥

अर्थ:- सत्यमा जेनी प्रतीति ठे ते साचानेज सरवहेठे, एवी जेनी अवस्थाठे

अने दिवसे दिवसे वधती वधती क्रमा निर्लोकता प्रमुख समतानी रीत ग्रहण करेते एवु सत्य कार्य पहेलां कदीन कर्युं, तेथी हवे कृण कृणमां सत्यनो सा को के० महा कार्य करेते ते जावतुं नाम सम्यक्त कहीए ॥ ६०० ॥

हवे सम्यक्तनी उत्पत्ति कहेते.- अथ उत्पत्ति यथा.-

दोहरा - केतो सहज सुजावको, उपदेशे गुरु कोइ, चिहुं गतिसेती जीवकां,
सम्यक् द्रशन होइ, ॥ ६०१ ॥

अर्थ - नदीने किनारे उचा पाणीना कलोल आवता जाताना न्यायथी एट जे सरिछुपल घोलना न्यायथी कोइने सहज स्वभावमाज समकित उपजे, कोई गुरुना उपदेश थकी सम्यक्त उपजे, जे जीव चारे गतिमां सयन निडा करी रह्यो हतो तेने जे सम्यक्त उपजे ठे ते एवा एवा प्रकारथी उपजेते ॥ ६०१ ॥

हवे जेथी सम्यक्त उपज्युं जाणीए ते सम्यक्तना लक्षण कहेते -अथ लक्षण यथा

दोहरा - आपा पर परचेविपे, उपजे नहि सदेह, सहज प्रपंच रहित दशा
समकित लक्षण एह ॥ ६०२ ॥

अर्थ - आत्मा अने आत्माथी बीजा जे कर्मादिकना पुज्ज ठे, एटजे बीजा पाचे इव्य तेना परिचय प्रतीतिमा, सदेह उपजे नही अने सहज सजावमा आत्मदशा ते मायानी प्रपंच रहितथाय ए सम्यक्तना लक्षण कहिये ॥ ६०२ ॥

हवे सम्यक्तना गुण कहेते - अथ गुण यथा -

दोहरा - करुना वठल सुजनता, आत्मनिदा पाव, समता नगति विरागता,
धरम राग गुण आव ॥ ६०३ ॥

अर्थ.- दया तथा सर्वतु हित वाठक पणुं सर्व साथे मैत्री जाव राखतुं आत्मनिं वातुं पठन करवु, ष्ट अनिष्ट उपर समजावे रहेवो, देव गुरुनी जक्ति, वैरागरस माज जिज्यो थको रहेवु धर्मथी राग राखवो. ए सम्यक्तना आव गुण ठे ॥६०३॥

हवे सम्यक्तना पांच नूपण कहे ठे - अथ पंच नूपण यथा -

दोहरा - चित प्रजावना जावजुत, हेय उपादयवानि, धीरज हरप प्रवीनता
नूपन पंच वखानि ॥ ६०४ ॥

अर्थ - चित के० ज्ञान एटजे जिन शासननो जेवी रीते प्रजाव वधे तेवा जा वमां रहेवु हेय उपादेयनु ज्ञानवत थई, धैर्यमा रहेवु, सम्यक्तपामीने. हर्ष राखतुं, तत्वविचारमा प्रवीणता राखवी, ए पांच सम्यक्तना नूपण वखाणिए ॥ ६०४ ॥

हवे सम्यक्तना पचीस दोष कहेते - अथ पंचवीस दोष यथा:-

दोहरा -- अष्ट माहामद अष्ट मल, षट् आयतन विशेष; तीन मूढता संज्ञगत,
दोष पचीसी एष. ॥ ६०५ ॥

अर्थ:- अष्ट माहामद ते, अने आठ मल ते, षट् आयतन विशेष ते, अने
त्रय मूढता ते; ए सर्व एकठा करीए तो पचीस दोष थाय. ॥ ६०५ ॥

हवे आठ जातना मद कहेते:- अथ अष्ट मद यथा:-

दोहरा.- जाति लान, कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार, इन्हको गरव छु
कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार. ॥ ६०६ ॥

अर्थ:- जातिमद, लानमद, कुलमद, रूपमद, तपमद, बलमद, विद्यामद,
तथा अधिकार के० ऐश्वर्यमद ए आठ वस्तुनो जे गर्व करवो तेज आठ प्रकारना
मद कहाते. ॥ ६०६ ॥

हवे आठ प्रकारना मल कहे ते - अथ अष्ट मल कथन-

चोपाई:- आसंका अस्थिरता वाढा, ममता दृष्टि दशा डुरगंगा, वत्सल रहि
त दोष परजापे, चित्त प्रजावना मांही न रापे ॥ ७ ॥

अर्थ - धर्म उपर अने जिनशासन वचन उपर शंका राखे, धर्ममा स्थिरता
नही स्वर्गादिकनी वांछा धरे, कुतुंबादिकविषे ममत्व जाव राखे, ए धर्म म
लीन ते एवी डुरगंगा करे, स्वामी वत्सल न करे, पारका दोष प्रकाशे, ज्ञान प्रसु
ख विविध प्रकारनी प्रजावनामां चित्त न राखे ए आठ मल जाणवा ॥ ७ ॥

हवे षट् आयतन दोष कहेते ते षट् स्थान मिथ्यात्वना कहेते - अथ षडायतनयथा:-

दोहरा:- कुयुरु कुदेव कुधर्म धर, कुयुरु कुदेव कुधर्म, इनकी करे सराहना,
यह षडायतन कर्म ॥ ८ ॥

अर्थ:- कुयुरुने माननार, कुदेवने सेवनार, कुधर्मने माननार, कुयुरु प्रशंसा,
कुदेव प्रशंसा, कुधर्म प्रशंसा, ए ठएनी प्रशंसा करे ते आयतन कर्म दोषे ते ॥ ८ ॥

हवे त्रय मूढता दोष कहेते - अथ मूढत्रय यथा कथन:-

दोहरा:- देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष, आठ आठ षट् तीनि मिलि,
ए पचीस सब दोष. ॥ ९ ॥

अर्थ - सुदेव समजे नही ए पेजी मूढता, सुयुरुने समजे नही ए बीजी गुरु
मूढता सुधर्मने समजे नही ए त्रीजी धर्म मूढता ए अविद्यानो पोषक ते ए
रीते आठ मद, आठ मल, षट् आयतन, त्रय मूढता, सर्व मली पचीस दोष थाय ए

हवे पाच प्रकार सम्यक्तनो नाश करे ते कहेढे:- अथ नाश पंचक यथा -
दोहरा:- ज्ञान गर्व मतिमदता, नितुर वचन उदगार, रुड्जाव आलस द
सा, नास पंच परकार. ॥ १० ॥

अर्थ:- ज्ञानना गर्वथी, बुद्धिनी मंदताथी, कठण वचनना उदगार के० कहेवाथी,
रुड्जाव धरवाथी, आलसु पणाथी, एवी रीते पाच प्रकारे सम्यक्तनो नाश थायढे.
हवे दिगंबर संप्रदायथी सम्यक्तना पाच अतिचार कहेढे - अथ अतीचारपंचकयथा -

दोहरा:- जोग हास जय जोग रुचि, अग्रसोच थिति चेव, मिथ्या आगमकी
जगति, मृपा दरसनी सेवा ॥ १ ॥ चोपाई - अतीचार ए पच प्रकारा, समज करहि स
मकितकी धारा, दूपन जूपन गति अनुसरनी, दसा आठ समकितकी वरनी १ ॥

अर्थ - सम्यक्तनी क्रियाथी मने लोक हससे एवो मनमां जय - राखे, पाच ६
डियना विषयजोगनी रुचि राखे, आगल माहारुं शुं थाडो एवी पोतानी स्थितितु
चिन्तन करतो रहे, मिथ्यात दर्शनना जे आगम सिद्धांत ठे तेनी नक्ति करे, पाच
मुं मिथ्या दर्शननी सेवा करे ॥ ११ ॥ ए पाच प्रकारना अतीचार ते सम्यक्त
नी उज्वल धाराने मज सहित करेढे, एवी दूपण गतिनी पाठल लागी अने जूप
ए गतिने पाठल लागी रहे ए समकितनी आठ दशाने वरणी ॥ १२ ॥

हवे जे सात प्रकृतिना क्य अथवा उपशमथी सम्यक्त उपजे ते कहेढे:-

अथ सम प्रकृति यथा -

दोहरा:- प्रकृति सात अब मोहकी, कहां जिनागम जोड, जिन्हको उदै नि
वारिके, सम्यक दर्शन होड ॥ १३ ॥ सवैया इकतीता - चारित मोहकी चारि
मिथ्यातकी तीनि तामे, प्रथम प्रकृति अनतानुबंधी कोहनी, बीजी महामान रस
जीजी माया नई तीजी, चौथी महाजोन दसा परिगह पोहनी; पांचड मिथ्यात म
ति ठवी मिश्र परनति, सातई समे प्रकृति समकित मोहनी, एई पट विगवनि
तासी एक कुतियासी, सातो मोहप्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ १४ ॥

अर्थ - हवे मोहनीयनी सात प्रकृति श्री जिनेश्वरनो आगम जोई कहुंनु जे
सात प्रकृतिनो उदय निवारवाथी सम्यक्त दर्शन प्रगट थायढे ॥ १३ ॥ मोहनी
कर्मना वे जेद ठे - एकतो चारित्र मोहनी, बीजी मिथ्यादर्शन मोहनी, तेमा चारित्र
मोहनीयनी चार प्रकृति, अने मिथ्या दर्शन मोहनीनी त्रण प्रकृति मली सात
प्रकृति ठे, तेमा प्रथम प्रकृति अनतानु बंधी कोहनी के० क्रोधनी, बीजी प्रकृति म
हा अचिमानना रसमा जीनो थको रहे ते अनतानुबंधी मान, अने त्रीजी प्र

कृति महामायामय ते अनंतानुबंधी माया, चोथी प्रकृति महालोज दशामां प रिग्रहनी पोपण करनार ए अनंतानुबंधी लोज, पांचमी प्रकृति मिथ्यात मोह नी, षठी प्रकृति मिश्रपरिणाम एटले मिश्र मोहनी, सातमी प्रकृति जे ठे ते पहेली ठए प्रकृतितुं सम थयो एटले ढबाई गई ते सातमी सम्यक्त मोहनी जाण वी, एमां धुरली ठ प्रकृतितो विगचनितारी के० वाघणी जेवी ठे एनी गैल लागी तो कांइ बूटती नथी, अने एक सातमी प्रकृति कुतियासी के० कुनार्या जेवी ठे तेनोपण नरोसो नथी ए साते मोहनीयनी प्रकृति ते जीवना सद्भावनी रोकनार ठे. ॥१४॥

हवे साते प्रकृतिथी सम्यक्तना जेद उपजे ते कहे ठे:— अथ सम्यक्त जेद कथन उपप्य षंड — सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंजित ; सात प्रकृति ठय करन, हार ढायकी अखंजित, सातमांहि कबु पिपहि, कबुक उपसम करि रक्के, सो ठय उपसमवंत, मिश्र समकित रस चरके; षट प्रकृति उपशमइ वा पिपइ, अथ वा ठय उपशम करे; सातई प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरे ॥ १५ ॥

अर्थ.— जेने ए सात प्रकृति उपसमी जाय तेतो उपसमी, पंजित के० ज्ञाता होय तेनुं नाम उपशम सम्यक्त कहीए, अने जे ए साते प्रकृतिनो ह्य करनार होय तेने ह्या यकी कहीए, ते अखंजित ज्ञायक सम्यक्त होय, वली ए साते प्रकृतिमां कंई खपावे, कंई उपशमावी राखे, तेतो उपशम लक्षण सहित, तेमां मिश्ररूप सम्यक्त रसने चा खे, ए सातो प्रकृतिमा ठ प्रकृति उपशमे अने सातमी सम्यक्त मोहनीय तो प्रकृति क दय आवी वेदे ठे. अथवा ठ प्रकृति ह्य थईठे अने सातमी वेदे ठे अथवा ठ प्र कृतिमा कोई प्रकृतिनो ह्य थयो ठे. अने कोइनो उपशम थयोठे, अने सा तमी प्रकृति वेदे ठे ते वेदक सम्यक्त धारी कहीए ॥ १५ ॥

हवे सर्वे सम्यक्तनो नव जेद कहे ठे.— अथ नवविधि सम्यक्त वर्ननः दोहरा.— ठय उपसम बरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार, ढायक उपशम जुग लघुत, नौधा समकित धार ॥ १६ ॥

अर्थ.— ह्योपशमसमकित त्रण प्रकारनो वर्ने ठे वेदक सम्यक्तना चार प्रकार ठे, ह्यायक सम्यक्तनो एक प्रकार ठे अने उपशम सम्यक्तनो एक प्रकार, ए ह्यायकने उपशम वेदुना मलवाथी सर्व मली नव प्रकारनो सम्यक्तधारी थाय ॥ १६ ॥

हवे ह्योपशम सम्यक्तना त्रण प्रकार कहेठे.— अथ ह्योपशम त्रई यथा:— दोहरा:— चारि पिपहि त्रय उपसमहि, पण पय उपसम दोइ; पै षट उपसम एक यो, पय उपसम त्रिक होइ ॥ १७ ॥

अर्थ—साते प्रकृतिमां अनंतानुबंधीनी चोकडी खपी गईं, अने त्रण दर्शन मोहनी उपसमी ठे, तेने कृयोपशम सम्यक्त कहिए. अथवा चार अनतानुबंधी अने मिथ्यात मोहनी ए पांच प्रकृति कृय गईं, अने वे उपशमी ठे, तेने पण कृयोपशम सम्यक्त कहिए, अथवा मिश्र मोहनी जगण ठ प्रकृति, कृय गईं, अने सातमी उपशमावी ठे, तोपण कृयोपशम सम्यक्त कहिए, एम त्रण प्रकारे कृयोपशम सम्यक्त थाय हवे कृयोपशम सहित सम्यक्त मोहनी वेदवाथी जे कृयोपसम वेदक नीपजे ठे तेना वे प्रकार ठे -- अथ कृयोपशम वेदक द्विक यथा कथन --

दोहरा.— जहा चारि प्रकरती पिपहिं, दे उपसम इक वेद, पय उपसम वेदक दशा, तासु प्रथम यह जेद ॥ १८ ॥ पंच पिपे इक उपसम, इक वेदे जिहि गौर, सो पयउपसम वेदकी, दशा डुतिय यह और ॥ १९ ॥

अर्थ— ज्या अनतानुबंधी चार प्रकृति कृय थांय ठे अने मिथ्यात मिश्र ए वेद प्रकृति उपशमेठे. अने एक सम्यक्त मोहनी वेदेठे आवी दशामा जे कृयोपशम सहित वेदक समकित थयोठे तेनो आ प्रथम जेद ठे ॥ १८ ॥ वली ज्या चार अनतानुबंधी अने मिथ्यात मोहनी ए पांच प्रकृति खपीठे, अने एक मिश्र मोहनी उपशमी ठे. अने एक सम्यक्त मोहनी वेदे ठे. ल्यारे कृयोपशम सहित वेदक समकितनी आ बीजी दशा थई ॥ १९ ॥

हवे जे ह्यायिक सहित वेदकठे -- अने उपसमसहित वेदक ठे तेनो प्रकार कहे ठे.—

अथ ह्यायिक वेदक उपशम वेदक यथा कथन -

दोहरा:— पय पट वेदे एक जो, व्यायक वेदक सोइ, षट उपसम इक प्रकृति विद, उपसम वेदक होइ ॥ २० ॥ खायक उपसमकी दशा, पूरव षट पद मांहि, कही प्रगट अब पुनरुक्ति, कारन वरनी नाहि ॥ २१ ॥

अर्थ— ज्या चारे अनतानुबंधी अने मिथ्यात मोहनी मिश्र मोहनी ए ठ प्रकृति खपी ठे. अने एक सम्यक्त मोहनी वेदे ठे, ल्यारे ह्यायिक वेदक सम्यक्त कहिये, अने ए जे पूर्वे ठ प्रकृति कही ते जेणे उपशमावी ठे, अने एक सम्यक्त मोहनीय वेदे ठे, ल्यारे उपशम वेदक सम्यक्त कहिये ॥ २० ॥ कृयोपशम नामे जे सम्यक्त कहिए, तेनी दशा तो पाठला पटपद के० उपय ठंदमा कही ठे, तेहा ए सातमा कईक उपशम करी राखे, एवु प्रगट कहेलु ठे तेथी आंहि फरी कहेवायाथी पुनरुक्ति दोष लागे ते कारणथी फरी वरणवी नथी ॥ २१ ॥

हवे सम्यक्तना मूल जेद चार अने उत्तर जेद नव ठे ते कहेठे:- अथ जेद विवरन.-
- दोहरा.- षय उपसम वेदक पिपक, उपसम समकित चारि; तीन चारि इक इ
क मिलत, सब नव जेद विचारि. ॥ १२ ॥

अर्थ.- कृत्योपशम सम्यक्त, वेदक सम्यक्त, कृत्यिक सम्यक्त, उपशम सम्यक्त एवा मूल
चार जेद समकितना थया. वली कृत्योपशमना त्रण जेद वेदकना चार जेद अने कृत्य
कनो एक जेद, उपशमनो एक जेद, ए सर्व मली समकितना नव उत्तर जेद थया
हवे निश्चयादिक सम्यक्तनी व्यवस्था कहेठे -अथ निश्चे व्यवहार सामान्यविशेष.-

सोरठा.- अथ निहचे विवहार, अरु सामान्य विशेष विधि, कहो चारि परका
रि, रचना समकित नूमिकी ॥ १३ ॥ सर्वैया इकतीसा - मिथ्या मति गांठि जेद
जगी निरमल ज्योति, जोगसां अतीत सोतो निहचे प्रवानिये, वहे छंद दसासां
कहावे जोग मुझा धरे, मति श्रुति ज्ञान जेद विवहार मानिये, चेतना चिह्न पहि
चान आपपर वेदे, पौरुष अजप ताते समान बखानिये, करे जेदाजेदको विचार विस
ताररूप हेय गेय उपादेयसां विशेष जानिये. ॥ १४ ॥ सोरठा - थिति सागर ते
तीत, अंतर मुहुरत एक वा, अविरति समकिति रीत, यह चतुर्थ गुण थान इति १५

अर्थ - हवे निश्चेथी अने व्यवहारथी सामान्य विशेषपणो कहेठे सम्यक्तनी नूमि
नी चार प्रकारनी रचना ठे ते कहेठे. ॥१३॥ प्रथम मिथ्यात ग्रंथी जेदिने जे आ
त्मानी निर्मल ज्योति जागी ठे. अने जे ज्योति मन, वचन, कायाना जोगथी अ
तीत ठे तेतो सम्यक निश्चनयथी प्रमाण करीए बीजुं ते सम्यक छंद दशाथी व
र्त्तमान थाय ठे एटले बहु विकल्पथी धामधूम दशाथी बर्त्त ठे ल्यारे तो एतुं कहे
वाय ठे के ए जोग मुझा धारी ठे आ मति ज्ञानी ठे आ श्रुत ज्ञानी ठे. एवा जेद
व्यवहारनयथी मानिये ठे त्रीजुं ए आत्माना चेतनारूप चिन्ह के लक्षण जाणी
ने आत्म इव्य अने परइव्यने वेदे ठे परतु अंतरायना उदयथी पुरुष पराक्रम
अल्प ठे. एटले अविरति ठे. तेथी ए सामान्यपणे सम्यक्त कहीए, चोथुं गुण
अने गुणिनो जेदाजेद विचार विस्तररूप करे जेम आत्मा गुणिते ज्ञानादिक गु
ण ठे. तेना जेदाजेदना विचार करवो एवा हेय ज्ञेय उपादेयनो विचार राखवो
ए विशेषपणे सम्यक्त जाणिए ॥ १४ ॥ -अविरत सम्यक्तनी उत्कृष्टि तेत्रीस सा
गरोपम स्थिति अथवा जयन्यथी एक अंतर मुहूर्तनी स्थिति होय, अविरति सम्य
क्तनी रहस्य मर्यादा ए वे प्रकारे होय, ए चोथुं गुणस्थानक समाप्त थयुं. ॥१५॥

हवे पांचमां गुणस्थानकना विवरणनो आरंज करेठे:-अथ पंचमगुनस्थानक आरंज दोहरा.- अथ बरनो इकवीस गुन; अरु बावीस अचण्य; जिन्हके संग्रह ल्या गसों, सोहे श्रावक पय ॥ १६ ॥

अर्थ - तेमा प्रथम पांचमा गुणस्थानक लायक श्रावकना एकवीस गुण कहुंठुं अने बावीस अचण्य ठे ते कहुंठुं जे गुणने संग्रह करवाथी अने जे अचण्यने त्यागवाथी श्रावकनो पद्द गुणसंग्रहीत शोचान्यमान थाय ते कहुंठुं ॥ १६ ॥

हवे श्रावकना एकवीस गुणना नाम कहेठे -अथ श्रावक इकवीसगुन कथन - सर्वैया इकतीसा - लज्जावत दयावत प्रसंत प्रतीतवत परदोषकों ठकैया पर उपगारी है, सोम दृष्टि गुन ग्राही गरिष्ट सबकों इष्ट सीष्ट पद्दी मिष्टवादी दीरग विचारी है, विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, नदीन न अजिमानी मध्य विवहारी है; सहजै विनीत पाप क्रियासो अतीत एसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुन धारी है ॥ १७ ॥

अर्थ - लज्जावत १, दयावत २, संतमूर्ति ३, प्रतीतवत ४, परदोषनो टांकनार ५, परउपकारी ६, सोमदृष्टि ७, गुणग्राहक ८, गुरुवाई ९, सर्वनो वल्लज १०, सिष्टाचारतुं पद्दी ११, मिष्टवचन बोलनार १२, उंमो विचार विचारे १३, विशेष ज्ञाननो जाणनार १४, शास्त्ररस जाणनार १५, करेला उपकारने जाणे १६, ते उपकारने जाणे १७, धर्मने जाणनार १८, अदीनपणुं ग्रहे अजिमानी रहे नही १९, एवा मध्यम वेहेवारमां रहे के जेथी सहज स्वजावे विनयवत होय २०, अने पापक्रिया थी रहित होय २१, एवा पवित्र श्रावक एकवीस गुणना धरनार थाय ॥ १७ ॥

हवे जघन्य श्रावकने बावीस वस्तु अचण्य ठे -अथ बावीसअचण्य वर्नेन.- कवित्त ठंड -उंरा घोरवरा निसजोजन, बहु बीजा वेगन सधान, पीपर वर उंवरि कतुंबरी, पाकर जोफल होइ अजान, कंद मूल माटी विप आमिष, मधु मापन अरु मदिरापान, फल अति तुच्च तुसार चलित रस, जिनमत ए बावीस अपान ॥ १८ ॥

अर्थ.- गुमोरा हेमा करहा १, काचा धोलना चमा २, रात्री नोजन ३, बहु बीज फल ते दाडम प्रमुख ४, वेगण ५, अथाणुं पाणीमाहेलो ६, पीपलनी पीपी ७, वनचूकना फल ८, धोलरना फल ९, कतुंबरना फल १०, पाकरीनां फल ११, अजाण्यांफल १२, कटमूलनी जाति सर्व १३, माटीनीजाति १४, अफीमप्रमुख १५, मास १६ मधु १७, माखण १८, मदिरापान १९, बहु तुच्च फल काचुं फल २०, हीम २१, जेनो वर्ण, रस, गंध, स्पर्शी फरी गयो होय ते चलित रस २२, ए बावीस वस्तु श्री जिनेश्वरमा मत धारिने अचण्य ठे ते खावी नही ॥ १८ ॥

दोहरा.— अथ पंचम गुण-थानकी, रचना वरनो अल्प ;

जामे एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥ १९ ॥

अर्थः—हवे देशविरतीनामें पांचमा गुणथानकी रचना अल्पमात्र वर्णवुं.तुं संक्षेपमात्र करीने ते गुणथानमां अग्यार प्रतिमा धारी ठे प्रतिमा एवुं नाम चारित्र विकल्पनुंठे १९ हवे अगीअार प्रतिमाना यथार्थनाम कहेठे.—अथ एकादश प्रतिमा नामकथन सवैया इकतीसा.— दंसन विच्छुद्धकारी बारह विरतधारी सामायक चारी पर्व पो सह विधि वहे, सचिन्को परिहारी दिवा अपरस नारी, आठो जाम ब्रह्मचारी नि रारनी व्है रहे; पाप परिग्रह ठंमे पापकी न शिक्षा मंमे, कोउ याके निमित्त करे सो वस्तु न गहे, एते देस व्रतके धरैया समकित्ती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हे नगवतजी कहे ॥ ३० ॥

अर्थः— दर्शन विच्छुद्धनी करनारी दर्शन प्रतिमा १, वारे व्रतनी धरनारी वि रति प्रतिमा. २, जहा सामायकनो उच्चार ठे ते सामायक प्रतिमां ३ जहां पर्व आब्याथी पोसह करवो ते पोसहप्रतिमा. ४, जहा सचिन् वस्तुनो परिहार कहिये ते सचिन् परिहार प्रतिमा ५, ज्या दीवसे स्त्री स्पर्श न करवो ते दिवस अस्पर्श प्रतिमा. ६, आठे प्रहर ब्रह्मचर्यमां रहेवुं ते ब्रह्मचर्य प्रतिमा ७, सर्व आरंजनो जिहां त्याग करवो ते निरारनी प्रतिमा ८, परिग्रहने त्यागवो ते परिग्रह त्याग प्रतिमा, ९, ज्यां पापोपदेश न देवुं ते पापोपदेश त्याग प्रतिमा १०, कोई आपणा निमित्त आहाराधिक वस्तु करे तेले नही ते उदेशिक त्याग प्रतिमा ११, ए अगीयारे प्रकारे करीने देश विरत धारी सम्यक्ति जाव कहा ठे तेनी आ अग्यार प्रतिमारूप प्रतिज्ञा नगवतजी कहे ठे ॥ ३० ॥

हवे ए प्रतिमानो अर्थ कहेठे — अथ प्रतिमा कथन—

दोहरा.— संयम अंस जग्यो जहां, नोग अरुचि परिनाम; उदे प्रतिज्ञाको नयो, प्रतिमा ताको नाम. ॥ ३१ ॥

अर्थः— जहा संयम चारित्रनो अंस जाग्यो, अने नोग अरुचिना परिणाम थया, त्यां कोई प्रतिज्ञानो उदय थयो तेवुं नाम प्रतिमां कहीए. ॥ ३१ ॥

हवे प्रथम दर्शन प्रतिमातुं विवरण करेठे — अथ प्रथम प्रतिमा यथाः— दोहरा — आठ मूलगुण संग्रहे, कुवतन क्रिया न कोइ; दर्शन गुण निर्मल करे; दर्शन प्रतिमा सोइ ॥ ३२ ॥

अर्थः—आंही पेहेला कहा ठे करुणा वत्सल सुजनता इत्यादिक सम्यक्तना आठ मूल

गुण ठे तेनो संग्रह करे, ज्यां साते व्यसननी क्रिया नथी एवा सम्यक्त दर्शनना गुण निर्मल करे, तेज दर्शन प्रतिमा कही इहा व्रत नथी एनो काल एक मासनो ठे ॥३१॥

हवे बीजी प्रतिमानो विवरो कहेठे - अथ द्वितीय प्रतिमा यथा -

दोहरा.- पंच अनुव्रत आदरे, तीन गुण व्रत पाज, सिद्धा व्रत च्यारो धरे, यह व्रत प्रतिमा चाले ॥ ३३ ॥

अर्थ.- पांच अपुव्रत, त्रण गुणव्रत अने सामायक धारे १, पोसह धारे २, देशावगासग करे ३, अतिथ सविनाग करे तथा चार शिक्षाव्रत धारे, ते व्रत प्रतिमा जाणवी तेनो काल वे महीनानो ठे ॥ ३३ ॥

हवे त्रीजी सामायक प्रतिमानो विवरो कहेठे -- अथ तृतीय प्रतिमा यथा -

दोहरा -- दर्वनाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक, तजि ममता समता गहे, अंतर मुद्धरत एक ॥ ३४ ॥ चोपाई -- जो अरिमित्र समान विचारे, आरत रूड् कुथ्यान निवारै, संजमसहित जावना जावे, सो सामायकवत कहावे ॥ ३५ ॥

अर्थ.- दश दोष वचनना टालवा, बार दोष कायाना टालवा, ए इव्यविधि अने दश दोष मनना टालवा ते जावविधि जाणवी, तेणे करीने संयुक्त, अने हैया मा एक शो आठ पंचपरमेष्ठी मंत्रनो स्मरण लागो रहे, एम बीजी पण कोई प्रतिज्ञा नी टेके राखीने, ममता तजीने, समता ग्रहण करवी, एम एक अंतरमुद्धरत काल पर्यंत सामायक चारित्र थाय ॥ ३४ ॥ जे कोई शत्रु मित्रने समान विचारे, आर्त्तध्यान राइध्यानतुं निवारण करे, पच सवर सहित थाय बार जावना जावे, तेज सामायकधारी आवक कहिए, ए त्रीजी प्रतिमा त्रण मासनी होय ॥ ३५ ॥

हवे चौथी पोसह प्रतिमानो विवरो कहेठे.- अथ चतुर्थ प्रतिमा यथा:-

दोहरा.- सामायक कीर्ती दसा, चार पहर लो होइ,

अथवा आठ पहर रहे, पोसह प्रतिमा सोइ ॥ ३६ ॥

अर्थ - जे पूर्वे सामायकनी दशा कहीठे तेवी दशा चार प्रहर लगी होय, अथवा तेवी दशा आठ प्रहर लगे रहे, तेज पोसह प्रतिमा धारी आवक कहीए, ए चार मासनी प्रतिमा जाणवी इहा आठम चउदश अमास पूनमने दहाडे तंथा पर्वदिन आवेथी पोसह करे ॥ ३६ ॥

हवे पांचमी सच्चि परिहार प्रतिमानो विवरो कहेठे - अथ पंचमी प्रतिमा यथा -

दोहरा - जो सच्चि नोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर,

सो सच्चि त्यागी पुरुष, पच प्रतिज्ञागीर ॥ ३७ ॥

अर्थ - जे सचित्त जोजननो त्याग करे अने फासु जल पीए, ए रीते जे पुरुष सचित्त वस्तुनो त्याग करे ए पेहेली प्रतिमाथी एटली बधती क्रिया करे तेतो पाचमी प्रतिमानो धरनार जाणतुं ए प्रतिमा पाच मास सुधी रहे ॥ ३७ ॥

हवे ठठी ब्रह्मचर्यप्रतिमानो विवरो कहेठे - अथ षष्ठी प्रतिमा यथा -

चोपाई - जो दिन ब्रह्मचर्यव्रत पाळे, तिथि आए निसि द्यौस संनाळे, गहि नौवामी करै व्रत रक्षा, सो षट प्रतिमा साधक अक्षा ॥ ३८ ॥

अर्थ - सचित्तनो परिहारि तो प्रथमनीज रीते ठे. अने दिवसे ब्रह्मचर्य धारे पाळे अने पंचमी पर्वे आवे दीवसरात्रमां एटले आठ प्रहर ब्रह्मचर्य पाळे तिहां नववाडे करीने ब्रह्मचर्यवृत्तनी रक्षा करे ते पुरुष ठठी प्रतिमानो साधनहार होय ते ठमास लगणनी जाणवी ॥ ३८ ॥

हवे सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमानो विवरो कहे ठे:- अथ सप्तमी प्रतिमां यथा-

चोपाई.- जो नववाडि सहित विधि साधे, निशिदिन ब्रह्मचर्य आराधे, सो सप्तम प्रतिमाधर ज्ञाता, शील शिरोमणि जगत विख्याता ॥ ३९ ॥

अर्थ.-जे श्रावक नववाड सहित जे ब्रह्मचर्यवृत्तनी विधि ठे, ते विधियें ज रात दिवस ब्रह्मचर्यने आराधतो रहे. अने जे आगल ठ प्रतिमानी क्रिया कही ठे तेने तो लीयोज रह्यो ठे. एवो जे श्रावक ठे, तेतो सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमानो धरनार ज्ञानी पुरुष शील शिरोमणि जगतमां प्रख्याति पामेजो जाणवो ॥ ३९ ॥

हवे आंही प्रसंगथी नव वाडनो विवरो कहे ठे - अथनौवाडि यथा -

कवित्तवंद.- तियथलवास प्रेमरुचि निरपन, वेपरीठ जापन मधुवेन, पूरवजो गकेलि रसचित्तन, गुरु आहार लेत चित्तचेन, करि सुचि त्तन सिंगार बनावत, तियप रजक मध्यसुखसेन; मनमथ कथा उदरि जरि जोजन, ए नववादि जान मतजेन ४०

अर्थ - ज्यां स्त्रीं वसे त्यां वासन करवो, प्रेमरुचि राखीने स्त्रीना अंगोपांग ठे खेवानही, दृष्टिदोपतुं निवारण करीने आडुं पडडुं आपीने स्त्रीना मधुर वचन सां नजे नही, पूर्वे कालमा जे जोग क्रीडा करी होय तेनो रस चित्तवे नही, चित्त ना चेनने अर्थें वृत्तादिक सहित गरिष्ट आहार खेनही, स्नान मजनथी शरीरने पवित्र करीने शृंगार शौचा सजे नही, स्त्रीने सुवाना पलंगमां सुखसेन करे नही, मनमथ जे कदर्थ तेनी कथा कहे नही, पेट चरीने जोजन न करे, ए नव वाडो जैन मतमा जाणवी ए बहुज आनद कारी ठे ॥ ४० ॥

हवे आठमी निरारज प्रतिमानो विवरो कहे ठे.—अथ अष्टमी प्रतिमा यथा:—
दोहरा — जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारज, सो अष्टम प्रतिमा धनी,
कुगति विजे रज यंज ॥ ४१ ॥

अर्थ — जे कोई श्रावक पाठली सर्व क्रिया करतो थको विवेक सहित विधि
विशेष आदरे, अने पापनो आरज पोताना हाथे न करे तेतो आठमी निरारज
प्रतिमानो धरनार श्रावक कुगतिना विजयनो रणयंज रूप थई रह्यो ठे ॥ ४१ ॥

हवे नवमी परिग्रह प्रतिमानो विवरो कहे ठे — अथ नवमी प्रतिमा यथा —
चोपाई — जो दसया परिग्रहको त्यागी, सुख संतोष सहज वैरागी, समरस
चित्त किंचित ग्राही, सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ४२ ॥

अर्थ —जे नवविध परिग्रहनो त्यागी होय, सुख संतोष सहित वैरागी होय, उ
पशमरसथी नीज्यो रहेतो होय, किंचित ग्राही कहेतां कईएक असन वशननु ग्रहण
करनारो होय अने बीजी क्रिया सर्वे आठमी प्रतिमानी परे होय, ते श्रावक नव
मी प्रतिमानो धरनार होय ए प्रतिमा नवमास लगी रहे ॥ ४२ ॥

हवे दसमी पापोपदेश त्याग प्रतिमा कहेठे— अथ दसमी प्रतिमा यथा —
दोहरा — परको पापारजको, जो न देइ उपदेश, सो दशमी प्रतिमासहित, श्रा
वक विगत क्लेश ॥ ४३ ॥

अर्थ — नवमी प्रतिमा लगण गृह कुटुंब परिवारने पापनो उपदेशआपे पण
आहीं पापारजनो उपदेश त्यागे ते श्रावकने दशमी प्रतिमासहित जाणिये तेज
श्रावक क्लेश रहित थयो एम जाणवु ॥ ४३ ॥

हवे अग्यारमी उचितग्राही प्रतिमानो विवरो कहेठे —अथ अग्यारमी प्रतिमा यथा
चोपाई — जो सुठद वरते तजि मेरा, मठमठपमहि करे वसेरा, उचित अ
हार उदक विहारी, सो एकादश प्रतिमा धारी ॥ ४४ ॥

अर्थ — जे आपणां घर बार मेरा ठामीने स्वठंद वनें, अने मठ मंठपमा वास
करे, आधाकर्मि आहार त्यागे, योग्य आहार ले अने उड्डम व्यवहारी थइ साधु जे
बु थाय, ते अगीअरमी प्रतिमनो धरनार थाय ए श्रावकनी करणी ठे. ॥ ४४ ॥

हवे अग्यारमी प्रतिमानी व्यवस्था कहेठे —अथ एकादश प्रतिमा यथा —
दोहरा — एकादश प्रतिमा दशा, कही देशव्रत माहि, वही अनुक्रममूलसों,
गही सु वूटी नाहि ॥ ४५ ॥

अर्थ — ए अगीअर प्रतिमानी दशा पाचमां देशविरति गुणस्थानकमांहे क

हवे प्रमत्तनामे ठग गुणगणानी अथस्था कहुहुं. — अथ प्रमत्तगुणस्थानक. —
दोहरा — पंचप्रमाद दशा धरे, अगइस गुनवान, थविर कटप जिन कटप छु
त, हे प्रमत्त गुनथान. ॥ ५१ ॥

अर्थ — धर्मरागादि पांच प्रमादनी दशा धारेठे. अने साधुना अठधावीस गुण धारे
ठे आही अठधावीस गुण कह्या ते दिगंबर संप्रदायथी थिवर कटपथी थिवरनो आचा
र अने जिनकटपथी जिननो आचार तेणेकरी युक्त ठे एम प्रमत्त गुण स्थान होय

हवे पाच प्रमादना नामनी गणती करेठे — अथ पच प्रमाद यथा —

दोहरा — धरमराग विकथा वचन, निडाविपय कपाइ, पंच प्रमाद वसासहि
त, परमाढी मुनि राइ ॥ ५२ ॥

अर्थ — धर्मउपर राग राखे, विकथा वचन बोले, निडासेवे, रस ते इंडिप्रमुखना वि
पय सेवे, कपाय सेवे, ए दशासहित जे मुनिराज होय ते प्रमादी कहीए ॥ ५२ ॥

हवे श्री मुनिराजना अठधावीस मूल गुण कहेठे — अथ अगइस मूलगुण कथन
सवैया इकतीसा — पंच महाव्रत पाळे पंच सुमती सजाले, पच इंडि जीति न
थो जोगी चित चैनको, पट आवशक क्रिया दर्वित जावित साधे, प्रासुक धरा
मे एक आसन है सेनको, मजन न करे केसलुंचे तन वस्त्र सुंचे, त्यागे दतवन पे
सुगव स्वास चैनको, वाढो करपे अहार जघु जुजी एकवार, अगइस मूल गुण
धारी जती जैनको ॥ ५३ ॥

अर्थ — सवाउ पाणाइ वायाउवेरमण इत्यादिक पच महाव्रत पाळे इर्यासुमति
प्रमुख पाच सुमति संजांलीने करे अने पाच इडिनो जीतनार एटले जेने इडियोनाविप
य सेवता चित्तमा चैन नउपजे, तेथी विपयोनो त्यागी थाय सामायक प्रमुख ठ आव
श्यकक्रिया ठे, ते इव्यथी पण साधे अने जावथी पण साधे ए १ गुण थया फासू पृथ्वी
प्रमुख सध्यामा प्रमाणोपेत एक शयन आसन राखे ए-२२ गुण थया स्नान न
करे केश लोच करे शरीरविपे वस्त्रनो त्याग करे दांतण नकरे स्वासवदननो सु
गध मूखलुण प्रमुख नले, उजो उजो अहारकरे जघुता के० अंतप्रात आहार
जुजे तेपण एक ठेक खाय ए अठधावीस मूल गुणनो धरनार जैन दर्शनी जती
होय ॥ ५३ ॥ ए दिगमवर संप्रदायथी गुण कह्या ठे.

हवे पाच महाव्रत कहेठे — अथ पच महाव्रत यथा —

दोहरा — हिंसा मृया अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज,
किंचित त्यागी अनुव्रती, सवि त्यागी मुनिराज. ॥ ५४ ॥

अर्थ - जीवघात असत्य चोरी मैथुन परिग्रहसामग्री ए पांचे आश्रवने किंचित त्यागे ते अपुत्रवती श्रावक कहिए अने सर्वथा त्यागे ते मुनिराज कहिए॥५४॥ हवे पाच प्रकारनी समिति एटले सावधानपणुं कहेठे -अथ पंच सुमति यथा-

दोहरा - चले निरपि जापे उचित, जपे अगोष अहार,
लेइ निरखि मारे निरखि, सुमति पंच परकार ॥ ५५ ॥

अर्थ:- जोइने चाले ते श्यां सुमति, योग्य वचन बोले ते जापा सुमति, दूष एरहित आहार लीए ते एपणा सुमति, वस्त्र पात्र निरपीने ले ते अदान सुमति मज्जमुत्रादिक जोइने परठवे ते पारीगावणीया सुमति, ए पांच प्रकारे सुमति॥५५॥ हवे जे अवश्य करीए ते आवश्यक कहीए तेना नाम कहेठे, अथपमावश्यकथथा दोहरा - समता वदन शुति करन, पम्किमनो सज्जाउ, काउसगग मुडाधरन ए पडावसिक जाउ ॥ ५६ ॥

अर्थ.- सामायक धरवी १ गुरुवंदना करवी २ चोवीशजिनेश्वरनी स्तुति करवी ३ अतिचारथी निवर्तनाते पडिकमना ४ स्वाध्याय करवी ५ काउसगगमुडा धरवी ए उ आवश्यक कहीए. ॥ ५६ ॥

हवे थिवर कल्प अने जिनकल्पनो जेद कहेठे'-अथ स्थिवर कल्पी जिनकल्पी - सर्वैया इकतीसा- थिवर कलपी जिनकलपी डविध मुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहत है, दोउ अगईस मूल गुन के धरैया दोउ सरव तियागी व्है विरागता गहत है, थिवर कल्पिते जिन्दके सिष्य सापा होई,वेठके सज्जामें धर्म देसना कहत है, ए काकी सहज जिन कलपी तपस्वी घोर, उदेकी मरोरसुं परिसह सहत है ॥ ५७ ॥

अर्थ.- थिवर कल्पी अने जिन कल्पी ए वे प्रकारना मुनिश्वर होय ए वे वनवासामां रहे. अने वेहु नागारहे ए वे अगवीस मूल गुणना धारनार ए वे सर्वस्व के० सर्व परिग्रहना त्यागी थईने वैरागजाव धरे एवा कह्या पण ते वेमां स्थिवर कल्पी ते कहीए जेने शिष्य शाषा होय, अने सज्जामा वेसिने धर्म देशना करे अने जे जिन कल्पी होय ते एकाकी होय घोरतपस्वी होय अने कर्म उदयनी मरोरथी जे परिसह उपजे ठे ते सहन करे ए दिगमबर सप्रदायिक वचनो ठे ॥५७॥

हवे प्रसंगथी बावीस परिसह साधुने सदेवा योग्य तेना नाम कहेठे:-

अथ बावीस परीसह यथा कथन:-

सर्वैया इकतीसा -ग्रीपममे धूप थिति सीतमे अंक पचीत, जूपेधरेधीर प्यासे नीर न चढतु है, मंस मसकादिसों न मरे जूमि सैन करे, वध बंध विधामें अमोल व्हैर

हनु है, चर्या डख जरे तिन फाससों न थरहरे, मल डुरगंधकी गिलान न गहनु है, रोगनकां न करे इलाज एसो मुनिराज, वेदनीके उदे ए परीसह सहनु है ॥ ५७ ॥

अर्थ - उष्ण कालमां तडकामां आताप सहे, शीत कालमां शीत सहेवाथी चित्तमा कपे नही, छुख्यो ठतां धीरज राखे अनेपणी ग्रहे नही प्यासवत थको स दोष पाणीनी चाहना करे नही नागा शरीरने मांस मसकादि करडे तोपण करे नही धरतिये सय्या करे मरणांत कष्ट आवे जातजातना वध बंधनादिक कष्ट तेथी अमोल रहे पण चलायमान न थाय चर्या के० विहारतुं ड ख जरे तदरीले विहारमा तथा सयनासनमा कगोर त्रण स्पर्शथी थरहरे नही मेजनीजे डुर्गंध ठे तेथी तेनी डुगह्ना न करे रोगनी वेदना सहे पण तेनो इलाज न करे एवा मुनिराज होय ते वेदनीय कर्मना उदयथी ए डग्यार परिसह उपजे ठे तेने सहे ठे ॥ ५७ ॥

कुडलीया - एते सकट मुनि लहे, चारित मोह उदोत ; लज्जा संकुच ड.प ध रे, नगन दिगंबर होत, नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवे, त्रियसनमुख दृग रोकि, मान आपमान न बेवे, थिर ठहे निर्जय रहे, सहे कुवचन जग जेते, निरुक्त पद सग्रहे, लहे मुनि संकट एते ॥ ५८ ॥ दोहरा - अल्प ज्ञान लघुता लखे मति उतकरप विलोड, ज्ञानावरन उदोत मुनि, सहे परीसह दोड ॥ ६० ॥ स हे अदरसन डुरदसा, दरसन मोह उदोत, रोकेउमग अलानकी, अंतरायके होत.

अर्थ - हवे चारित मोहनीना उदय थवाथी मुनिराज संकट सहेठे ते संक टनी गणतरी कहेठे नगन दिगंबर थई जे लज्जाथी संकोच ड ख उपजे ठे तेने धरे एटले सकटथी न जागे १ वली नगन दिगंबर थई श्रोत के० इडीयना र ति स्वादने न सेवे, २ स्त्रीना हाव जावथी चुके नही ३ कोड सत्कार करे कोड असत्कार करे तेउपर विषम जाव लावे नही ४ कोड नयथी जागे नही स्थिर र हे निर्जय रहे ५ जगतमा जे कड कुवचन ठे आकोसना वचन ठे ते सर्व सहन करे ६ निरुक्त ग्रहणथी निरुक्त पद सग्रहे पण ते संकटथी जाजे नही ए सात संकट चारित्र मोहनीना उदयथी मुनि लहेठे ते सहन करे ठे ॥ ५८ ॥ हवे जण्णाविना अल्पज्ञानथी सर्वमा पोतानी लघुता थाय ते सहन करे पोता ना मतिना उत्कर्षथी उत्कृष्टपणु जोडने शुरुता सहे; एवी ज्ञानावरणी कर्मनो उ दय थातां अज्ञान परिसह अने प्रज्ञापरिसह ए वे परिसह उपजे ठे ते सहन करे ॥ ६० ॥ दर्शन मोहनीयना उदय थवाथी सम्यक् दर्शननी मलिनता उपजे तेनी डष्ट दशा सहे पण सम्यक् दर्शनथी न जागे अंतराय कर्मनो उदय थवाथी जे

लाजनों उमंग रोकती रहे तेषी अलाजने सहन करे ए बावीस परिसह कह्या ॥ ६१ ॥
हवे जे कर्मथी जे परिसह उपजे ते कहे ठे अथ बावीस परिसह विवरनन.—

सवैया इकतीसा.— एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात; ज्ञानावरनीकी दोइ एक अतरायकी; दंसन मोहकी एक बाविसति बाधा सब, केई मनसाकी के इ वाकी केई कायकी, काहुकों अजप काहूसो बहोत उनी साता, एकही समेमें उ ठे आवे असहायकी, चर्याथित सज्जामांहि एक सीत उस्नमांहि, एक दोइहोहि ती नि नांही समुदायकी ॥ ६२ ॥ २ दोहरा — नानाविध संकटदशा, सहिसाथे शिव पंथ, थिविरकल्प जिन कटपधर, दोक सम निगरथ ॥ ६३ ॥

अर्थ.— अग्याअार संकट तो वेदनी कर्मना उदयथी उपजे ठे चारित्र मोहनी य कर्मथी सात बाधा उपजे ठे ज्ञानावरणनी करेली वे बाधा उपजे ठे अत रायनी कीधी एक बाधा उपजेठे दर्शन मोहनीनी करेली एक बाधा उपजे ठे, सर्व मली बावीस बाधा थइ ते बावीसने परिसह कहीए बावीस बाधामां कोई मन नी ठे कोइ वचननी ठे कोइ कायानी ठे आ बावीस बाधामाहेली कोइने अत्प एक वे उपजे कोइने बहु उपजे तो एकज समे अयोगीस बाधातुं उदय थाय ते मा असहायनी के० जे बाधा बाधासाथेज बोलेठे पण साथे बने नही ल्यारे तेमां एकज बाधा एक समे थई ते असहायनी कहीए, जेम चर्यापरिसह चालवाथी उ पजे ठे निपेया परिसह रहेवाथी उपजेठे शर्या परिसह रहेवाथी उपजे ठे. अने शितबाधा तथा ऊण बाधामा एक समयमा एकज बाधा उपजे तेषी आ पां च परिसहमां एक अथवा वे अथवा त्रण एक समयमा थाय पण समुदायरूप पां चे न थाय. ॥ इति परिसह अधिकार समाप्त थयो इति परिसह अधिकार.—

अर्थ.— एवां नाना प्रकारना संकट ठे तेनी दशा सहन करीने मुक्तिमार्ग साधे, तेषी थिविर कल्पना धरनार अने जिन कल्पना धरनार ए बेहु नियंथ समान ठे हवे थिवर कल्पमा अने जिनकल्पमां कंइ तफावत ठे ते कहेठे.—

अथ थिविरकल्प जिनकल्प तारतम्य कथन.—

दोहरा:— जो मुनि संगतिमें रहे, थविरकल्पि सो जानि; एकाकी जाकी दसा,
सो जिनकल्प बपानि ॥ ६४ ॥ चोपाई—थविर कल्प मुनि कबुक सरागी, जिन कल्पी महांत विरागी, इति प्रमत्त गुनथानक धरनी, पूरन नई जथारथ वरनी. ६५

अर्थ.— जे मुनीश्वर गज्जना गणनी संगतमां रहेठे, तेतो थिवरकल्पी जाणीए जेने गणनी निश्रा नथी जेनी एकाकी दशा ठे तेतो जिनकल्पी कहिए ॥ ६४ ॥

ए वेज निग्रंथमा शिवरक्तपनो धरनार कइरु सराग दशामा ठे, अने जे जिनक
वपी ठे ते महावैरागी ठे एटले प्रमत्त गुणठाणानी जे नूमिका बाधी अने यथार्थ
साचपणे वरणी ते पूर्ण थई ॥ ६५ ॥

हवे सातमा गुणस्थाननु वर्णन करेठे - अथ सप्तम गुणस्थानक वर्णन -

चोपाई - अब वरनो सत्तम विसरामा, अप्रमत्त गुणस्थानक नामा, जहा प्रमा
द क्रिया विधि नासे, धर्मध्यान थिरता परगासे ॥ ६६ ॥ दोहरा - प्रथम करनचा
रित्रको, जासु अंत पद होइ, जहा अंहार विहार नंहि, अप्रमत्त हे सोइ ॥ ६७ ॥

अर्थ - मुक्तिरूप मंदिरमा चढतां ते सातमो विसामो ठे, अने अप्रमत्त गुण
स्थानक जेतुं नाम ठे ते हवे वखाणे ठे जे गुणस्थानमा धर्मरागादिकेकरी प्रमा
दनी विधि नासेठे, जे पूर्वजा गुणस्थानकमां धर्मध्यान चचल हतो ते आंही स्थि
रपणे प्रकाश करेठे ॥ ६६ ॥ प्रथम गुणस्थानना अंतपदमा एटले ठेजा सम
यमा चारित्रमोहनो कर्मने नेदवानो यथा प्रवृत्तिनामे प्रथम करण थयुं, आंही
धर्मध्याननी स्थिरता एवी ठे के ज्या अंहार विहार क्रिया नथी ते अप्रमत्त गु
णस्थानक होय ए वचन दिगंबर सप्रदायतुं ठे. ॥ ६७ ॥

हवे आठमा गुणस्थानकनुं वर्णन कहेठे - अथ अष्टम गुणस्थानक वर्णन -

चोपाई - अब वरनो अष्टम गुणस्थाना, नाम अपूरव करन वखाना, कबुक
मोह उपसम करि राखे, अथवा किंचित कृत्यकरि नाखे ॥ ६८ ॥ जो परिनाम न
ये नहि कबही, तिन्हको उदो देखिये जबही, तव अष्टम गुणस्थानक होई, चारि
त करन दूसरो सोई ॥ ६९ ॥

अर्थ - जेतु नाम अपूर्व करण वखाणीए ठीए, हवे आंही श्रेणी चढवामा जे
उपशमीक थको चढेठे तेतो आंही कइक मोहने उपशमावी राखेठे, अथवा जे कृ
पक थको चढे ठे तेतो आंही चारित्र मोहनो कइक कृत्य करि नाखेठे ॥ ६९ ॥
एतु जे परिणाम पेहेलां कोइ कालमा थयु नथी ते परिणामतुं ज्यारे प्रगट पणुं
देखियेठीए, त्यारेतो आठतुं गुणस्थानक होय तेने ठेले समय चारित्र मोहनीय
कर्म नेदवाने अपूर्व करण नामे बीछुं करण होय तेतुं नाम निवृत्ति पण ठे ॥ ६९ ॥

हवे नवमा गुणस्थाननु वर्णन करेठे - अथ नवम गुणस्थानक वर्णन -

चोपाई - अब अनवर्त्ति करन सुनु नाई, जहा नाव थिरता अधिकाई, पूर
व नाव चलाचल जेतै, सहज अमोल नए सब तेते ॥ ७० ॥ जहा न जा

व उलटि अथ आवे; सो नवमो गुणथान कहावे, चारित मोह जहां बहु ठीका; सो हे चरन करन पढ तीजा ॥ ७१ ॥

अर्थ - प्रथम अनिवृत्ति करण गुणस्थाननो व्यवहार कहुं बुं ते सांजजो. जे गुणस्थाननेविपे स्थिरता जावनी अधिकार्थे. अने पूर्वजाव कषायना उदयथी जेटला चलाचल जाव होय तेवा सर्व आंही सहज अमोल थया ठे ॥ ७० ॥ ज्यां जावथी चढीने फरी तिहांथी पडी नीचेना गुणस्थानके न आवे एवो अनिवृत्ति कहेवाय, आंही अनिवृत्तिनो परमार्थ सिद्धांतमां बीजीरीते ठे, ते तो नवमुं गुणस्थान कहेवाय, ज्यां चारित्र मोहनीय कर्म घणुंज त्रुटी गयो ठे तेज ए चारित्र मोहनीय कर्म नेदवानो त्रीजो अनिवृत्ति करण थयो. ॥ ७१ ॥

हवे दशमु गुण स्थानक कहुं बुं:- अथ दशम गुणस्थानक वर्ननं -

चोपाई:-कहाँ दशम गुण थान झुसाखा, जहां सूठम शिवकी अनिलापा, सूठम लोन दसा जहाँ लहिए, सूठम संपराय सो कहिए. ॥ ७२ ॥

अर्थ - जिहां उपशम्यक् अने रूपक एवी वे आखा वचें ठे जे गुण स्थानमां सूक्ष्म शिव पदवीनी अनिलापा ठे. एवी ज्यां सूक्ष्म लोन दशा पामिये, ते सूक्ष्म संपराय कहीए, संपराय एवु कषायतुं नाम ठे ॥ ७२ ॥

हवे अग्यारमुं उपसंत मोह नामे गुणथान कहुं बुं - अने तेनी प्रच्युतातुं प्रमाण कहुं बुं अथ एकादशम गुणथान वर्नन -

चोपाई:-अब उपसंतमोह गुणथाना, कहा तासु प्रच्युता परवाना, जहाँ मोह उपसमे न जाते, जथाप्यात चारित परगासे ॥ ७३ ॥ दोहरा.-- जाहि फरसके जीव गिरि, परे करै गुन रद, सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद ॥ ७४ ॥

अर्थ.- जे गुणस्थानमां मोहनीय कर्म सर्वे उपशमी जाय पण उदयमां जाते नही अने यथाख्यात चारित्रनो प्रकाश थईने जेवुं निसंग आत्मानु. सहज रूप ठे तेवु प्रगटेठे ॥ ७३ ॥ जे उपशम श्रेणि चढिने अने जे गुणस्थानने फरसीने अवश्यज जीव तिहांथी पडे अने जे गुण प्रगटे, ते सर्व रद करे, ए अगीयारमी दशा थई, एटले उपसंत मोह गुणस्थान थयु एटले उपशमनी मर्यादा थई ७४ ॥

हवे बारमा क्लीणमोह गुणस्थानतुं वर्णन करुं बुं--अथ द्वादशम गुणथानके वर्ननं.-

चोपाई:- केवल ज्ञान निकट जहाँ आवे, तहाँ जीव सब मोह पिपावे, प्रगटे यथाख्यात परधाना, सो द्वादशम ठीन गुण थाना ॥ ७५ ॥

अर्थ:- जे गुणस्थानने केवल ज्ञान निकट आवे ठे. अने त्यां जीव सर्व मो

हनीय कर्म स्वपावीने बीजा पण घाती कर्म सर्व स्वपावे, अने ज्यां प्रधान उत्कृष्ट यथा
ख्यात चारित्र प्रगटे एवा प्रकारची जेठे ते वारमो क्लीण मोह गुणस्थानक कहीए ॥७५॥
हवे आंही लगण पाठला ठगथी मांफी सात गुणस्थानमां उपशम श्रेणीनी अपेक्षाये
जेकाल स्थिति ठे ते कहेठे -अथ पष्ट गुणस्थानक स्थितिकथन उपशम श्रेणिक अपेक्षा

दोहरा - पट सत्तम श्रुतम नवम, दश एकादश बार, अंतर मुद्दुरत एक वा,
एक समे धिति धार. ॥ ७६ ॥ तीन मोह पूरन नयो, करि चूरन चित चाल; अ
व सजोग गुण थानकी, वरनो दसा रसाल ॥ ७७ ॥

अर्थ -ठतुं, सातसु, आठसु, नवसु दशसु, अष्टारसु, बारसु, ए सात जे गुणस्थान
ठे तेनी स्थिति एक अंतर मुहूर्तनी ठे अथवा सात गुणस्थाननी जघन्य एक समयनी
स्थिति धारो ॥७६॥ मोहमय जे चित्तनी चाल हती तेतुं चूर्ण करीने क्लीण मोह गुण
स्थानक पूरण थयु हवे सजोगीगुण थानकनी रसाल दशातुं वर्णन करंतुं ॥७७॥

हवे तेरेमा गुणस्थानतुं वर्णन करंतुं - अथ त्रयोदशम गुण स्थानक वर्णन -

सवैया इकतीसा -- जाकी ड ख दाता घाती चोकरी विनसगई चोकरी अघा
ती जरी जेवरी समान है, प्रगट नयो अनंत दसन अनत ज्ञान, वीरज अनत
सुख सत्ता समाधान है, जामें आठ नाम गोत वेदनी प्रकृति ऐसी एक्यासी
चोरासी वा पंचासी परवान है, सो हे जिन केवली जगत वासी नगवान, ताकी
जो अवस्था सो सजोगी गुण थान है ॥ ७८ ॥

अर्थ - जे आत्म गुणना घातना करनार एवा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी,
मोहनीय, अंतराय, ए घाती कर्मनी चोकडी ड ख दाता हती ते जेनी विनाश
थई गई, अने जे आत्माना गुणनो घात न करे एवा वेदनी, आठु, नाम, गोत्र, ए
चार अघाति कर्मनी चोकडी रही ते बजेली दोरी समान रही ठे. दर्शनावर
णीय कर्मद्वय थयाथी जिहा अनत केवल दर्शन प्रगट थयो अने ज्ञानावरणी
द्वय थयाथी जिहा केवल ज्ञान प्रगटयुं. अंतराय कर्म द्वय. थयाथी अनंत वी
र्य प्रगटयो: मोहनीय कर्म द्वय थयाथी अनत सुखसत्तामय अने समाधि प्रगटी
अने जेमा आठु कर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीकर्म, एचारनी सर्व ८५ प्रकृति रही
ठे तेमां कोईना आहारिक शरीर आहारक अगोपाग, आहारक संघातन, आहारक
बधन, तथा जिननामविना, ऐसी प्रकृती रही ठे अने कोईने जिननाम सहित ठे तेथी
(८१) रही ठे तथा काईने अहारक चतुष्कठे अने जिननामनथी माटे ८४ ठे तथा को
ईने जिननाम सहित पञ्चासी प्रकृतितुं प्रमान ठे. एवी दशानो भरनार जे ठे ते

जिन होय केवली होय जगततुं नगवान होय तेनी जे अवस्था ठे तेनेज सयोगी गुणस्थानक कहीए. ॥ ७८ ॥

हवे सजोगी गुणस्थानकवाजानी मुझा देखाडेठे—

सवैया इकतीसा.—जो अमोल परजंक मुझा धारी सरवथा अथवा सुकाउसग्ग मुझा थिरपाल हे; खेत सपरस कर्म प्रकृतिके उदे आए, विना मग नरे अंतरिहू जाकी चाल हे; जाकी धिति पूरव करोडि आठवर्ष घाट, अंतरमुदुरति जघन्य जग जाल हे, सो हे देव अठारह दूपन रहित ताको बनारसी कहे मेरी वंदना त्रिकाल हे. ७९

अर्थ.— जे अमोलपणे सर्वथा प्रकारे पर्यक मुझा धारी होय एटले पद्मासनवा लीने सदा सर्वदा वेसेठे, अथवा काउसग्गमुझा स्थिरपणे पाले ए वचन दिगंबर सं प्रदायतुं ठे, अने क्षेत्र, स्पर्श रूप जे कर्म प्रकृति ठे तेनो उदय थयाथी केवली विहार करेठे पण बीजा पुरुषनीपठे चाले नही पण केवली मगलुं नखाविनाज आकाशमां अधर चाले चाले ए परूपणा दिगंबर संप्रदायनी ठे; जे सयोगी गुण स्थाननी स्थिति आठ वर्षे न्यून पूर्वकोटी वर्षनी थाय केमके जन्मथी आठ वर्षलग्गी केवलज्ञान उपजतो नथी, अने आ गुनस्थानानी जघन्यस्थिति एक अंतरमुदूर्त्तनी थाय जगतजालमा एटलुंज रहेंबु होय आंही जे एवी अवस्थानो धरनार होय तेतो अठार दूपण रहित देवाधिदेव थाय बनारसीदास कहेठे के तेने मारी त्रिकाल वंदना ठे ॥ ७९

हवे अठार दूपणनां नाम कहेठे:— अथ अठारस दोष कथन:—

कुंमलीया:—दूपन अछारह रहित, सो केवलि संजोग; जनम मरण जाके नही, नहिं निंझ नय रोग, नहिं निंझ नय रोग, सोग विस्मय न मोहमति; जरा खेद परस्वेद, नाहिं मद वैर विषे रति; चित्ता नांही सनेह, नाहिं जह प्यास न चूपन, थिर समाधि सुख सहित, रहित अछारह दूपन ॥ ८० ॥ कुंडलीया.— वानी ज हा निरहरी, सप्तधातु मल नाहि, केस रोम नख नहि बढे, परम उदारिक मांहि, परम उदारिक मांहि, जांहि इंडिय विकार नसि, जयाख्यात चारित प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि; लोकालोक प्रकास, करन केवल रजधानी, सो तेरम गुनथा न, जहां अतिशय मयवानी. ॥ ८१ ॥ दोहरा.—यह सजोग गुनस्थानकी, रचना कही अनूप, अथ अयोग केवल कथा, कहां यथारथ रूप ॥ ८२ ॥ - -

अर्थ.— जे अठार दूपणथी रहित ते सजोगी केवली कहिए जेने जन्म नथी मरण नथी, निंझा नथी, नय नथी, रोग नथी, सोग नथी, विस्मय नथी, मोहम ति नथी, जरानो खेद नथी, परसेवो नथी १० मद नथी ११ वैर नथी १२ विषय

उपरति नथी ? ३ चिता नथी ? ४ स्नेह नथी ? ५ जेने तरस लागे नही ? ६ चूप जागे नही ? ७ अस्थिरपणुं नथी ? ८ तेथी समाधिमुख सहित स्थिररूप थायठे, ए वा अढार दूषण रहित ठे. ए अढार दोष दिगंबर संप्रदायथी ठे सिद्धांत संप्रदायमा ? ८ दूषण जुदा कह्या ठे. ॥ ८० ॥ आ गुणस्थाननी अवस्थामां निरुद्धरी वाणी होयने मस्तकमा अहकार ध्वनीरूप होयठे, अने शरीरमा सात धातु अने सात धातुना मल यता नथी. ए दिगंबर संप्रदायथी कहेलुं ठे अने जेना शरीरमां केश, रोम, नखनी वृद्धि थती तथी, एतो उदारीक शरीरमा पण एटला दोष नथी, तेथी देवाधिदेव परम उदारीक शरीरमाज कहिए, ज्यां जेने इंद्रियविकार नासी गयाठे, ने ज्यां प्रधान उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगट थयुं ठे, ज्या शुद्ध व्यानरूप चड्मा स्थिररूप थयोठे. अने ज्यां लोकालोकना प्रकाशनी करनारी केवल ज्ञानरूप राजधानी विराजी रही ठे, ते तेरमुं संयोगी गुणस्थानक कहिए, ज्या पातरीश अति शय मयवाणी ठे ॥ ८१ ॥ ए संयोगी गुणस्थाननी सर्वथी अधिक अनूप रचना कहीठे हवे अयोगी केवलीनी दशा यथार्थरूप के० जेवीरीते बनीठे तेवी रीतनी कहुंठुं ८२ हवे चौदमा अयोगी गुणस्थाननुं कर्णन करुंठुं अथ चतुर्दश गुणस्थानक वर्णनं

सवैया - इकतीसा - जहां काहू जीवको असाता उदे साता नाहि, काहूको थ साता नाहि साता उदे पाइये, मन वच कायसां अतीत नयो जहां जीव जाको जस गीत जग जीत रूप गाइये, जामें कर्म प्रकृतिकी सत्ता जागी जिनकीसी, अंतकाल देसमेंमें सकल खिपाइये, जाकी थिति पंच लघु अहूर प्रवान सोइ, चौदहो अयोगी गुण थाना उहराइये. ॥ ८३ ॥

अर्थ - जे गुणस्थानमा कोई जीवने अशाता वेदनीनो उदय ठे अने शाता वेदनीयनो उदय नथी, एटले शाता वेदनी सत्तारूप ठे. अने कोइने शाता वेदनीनो उदय ठे, अने अशाता उ खरूप उदयमां नथी, एटले सत्तामा ठे अने ज्या सैलेसी करण करीने मनोयोग, वचनयोग, काया जोगथी जीव अतीत एटले रहित थयो. जेना जशनु वर्णन जगतने जीतवा रूप गाइए ठीए एटलो ठे अने जेमा जोगी जन केसी कि० सजोगी केवलीनी रीते कर्म प्रकृतिनी सत्ता रहिठे. ते अतकालमा अंतना वे समयमा समस्त खपावेठे अने जे गुणस्थानकनी स्थिति पंच लघु अहूर अ, इ, उ, ऋ, ए अहूर कहेतां जेटलो काल प्रमाण होय एटलो काल प्रमाण स्थिति ठे तेज चौदहं अयोगी ठेरावीए. ॥ ८३ ॥ इति श्री चतुर्दश गुणस्थानक अधिकार बालाबोधरूप समाप्त

बोहरा- चाँदहगुनथानक दशा, जगवासी जियनूल; आश्रव संवर नाव वे, बंध मोहके मूल. ॥ ७४ ॥

अर्थ- जगतवासी जीव अष्टक थको नूलमा पदयो वे तेनी ए चाँद गुण स्थानकयी चाँद दशा थाय वे. आही तत्व दृष्टिमा जोतां जे आश्रव संवर नाव वे तेज बंध मोहना मूल वे; एटले आश्रव बंधनु मूल वे अने संवर मोहनुं. मूलवे हवे आश्रव संवरनी जुदी जुदी अवस्था कहेवे. अथ आश्रव संवर व्यवस्था कथन.

चोपई- आश्रव संवर परनति जोलां, जगत निवासि चेतना तोलां; आश्रव संवर विधि विवहारा; दोक नवपथ शिवपथ धारा. ॥७५॥ आश्रव रूप बंध उत्पाता, संवरज्ञान मोप पद दाता, जा संवरसां आश्रव ठीजे, ताकां नमस्कार अथ कीजे. ७६

अर्थ- ज्वां सुधी आश्रव संवरनुं परिणाम परिणामे वे, व्यासुधी चेतन रूप ई अथर जगत-निवासी अई रह्योवे. आही आश्रवनी विधि वे ते व्यवहारमां वे. अने संवरनी-विधि वे ते पण व्यवहारमा वे ए वजा केवे व्यवहार पंथ ते संतार मार्गनी धारा अने मोह मार्गनी धारा पण वे. ॥७५॥ संतारमा जे बंधरूप उत्पात वे ते तो आश्रवरूप वे. अने जे मोहपदनो दाता ज्ञान वे ते संवर रूप वे. जे संवरथी आश्रव ह्य थयो होय तेने हवे नमस्कार करीए ठीए. ॥ ७६ ॥

हवे अंयनी अंते मंगलाचरण रूप संवर रूपी ज्ञानने नमस्कार करेवे:-

सर्वया इकतीता-जगतके प्राणी जीवव्हेरह्यो गुमानी एतो, आश्रव असुर इ ख दानी महा नीम हे; ताको परताप खंनिवेको परगट नयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम हे; जाके परजाव थागे जागे परजाव सब, नागर नवल सुख सागरकी सीम हे; संवरको रूप धरे साथे शिवगह एतो, ज्ञानी पातसाह ताकां मेरी तसमीज हे ७७

अर्थ- जगतना वासी जेटला प्राणी वे. ते सर्वने जीतीने जे गुमानी अई रह्यो, एवो आश्रवरूप जे असुर वे. ते महा दुखदायक वे. तेनो प्रताप संभवा ने जे ज्ञानरूप वादशाह प्रगट थयो वे ते केयो वे के धर्मनो धारण करनारो वे. अने कर्मरूप रोग गमाववानो हकीम वे जे ज्ञान वादशाहनां प्रजाव थागज काम क्रोधादिक राग हेपरुप पुज्जना जाय वे ते सर्व नास्ती जाय वे; अने नागर केव च नुर वे, जे पहिला कोड चारे न पामेजो एवो जे नयो सुख समुद्र ते लगण जेनी सीम वे. संवररूपनो धरनार अने मुक्तिमार्गनो माधनार एवो जे ज्ञानरूपी वादशाह वे. तेने माहानी मजाम वे. एटले नाटक करीने ज्ञान वादशाहने मुजरो कीयो वे. ॥ ७७ ॥

इति श्री समयसार नाटक बालावबोधरूप अर्थ महीन समाप्त थयो.

चोपाई - जयो ग्रंथ संपूरन जापा, बरनी युनथानककी सापा; बरनन थोर कहाँ लौ कहिये, जथा सकति कही चुप वहे रहीये ॥८८॥ लिहए करन ग्रंथ उदधि का; ज्यो ज्यो कहिये त्यो त्यो अधिका, ताते नाटक अगम अपारा; अलप क वीसुरकी मतिधारा ॥ ८९ ॥ दोहरा - समयसार नाटक अकथ, कविकी म ति लघु होइ, ताते कहत बनारसी, पूरन कथे न कोइ ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा - जैसे कोउ एकाकी सुनट पराक्रम करि जीते केही जातिचक्री कटक सो लरनो, जैसे कोउ परविन तारू चुज नारु नर, तरे कैसे स्वयंचूरमन सिधु तर नो, जैसे कोउ उदिमी उठाह मनमाहि धरे, करे कैसें कारज विधाताको सो करनो; तेसे तुठ मती मोरी तामें कविकला थोरी, नाटक अपारमे कहाँलो याहि बरनो ? ९१

अथ जीव महिमा कथन --

सवैया इकतीसा -- जैसे वटवृक्ष एक तामें फल हे अनेक फल फल बहु बीज बीज बीज वट है, वटमाहि फल फलमाहि बीज तामे वट कीजे जो विचार तो अन तता अघट है, तेसे एक सत्तामे अनंत गुण प्रजा प्रजामे अनंत नृत्य नृत्यमें अनंत उट है, उटमे अनंत कला कलामें अनंत रूप, रूपमे अनंत सत्ता एसो जीव नट है ॥ ९२ ॥ दोहरा - ब्रह्म ज्ञान आकाशमे, उडे समति षग होइ, जथा स कति उदिम धरे, पार न पावे कोइ ॥ ९३ ॥ चोपाई - ब्रह्म ज्ञान नन अंत न पावे, सुमति परोठ कहाँलो धावे, जिहि विधि समयसार जिनि कीनो, तिन्हके नाम धरे अब तीनो ॥ ९४ ॥

अथ कवि त्रयी कथन नाम --

सवैया इकतीसा -- कुदकुवाचारज प्रथम गाथा ब-६ करे, समेतार नाटक विचारी नाम दयो है, ताहीके परपरा अमृतचद जये तिन्ह, संसकृत कलस समारि सुख लयो है, प्रगटयो बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अबकिये हैं कविच लिए बोध बीज वयो है; शब्द अनादि तामे अरथ अनादि जीव, नाटक अनादियो अनादिहिको जयो है

अथ कविव्यवस्था कथन -

चोपाई - अथ कबु कहुं यथारथ वानी, सुकवि कुकविकी कथा कहानी; प्रथम सुकवी कहावै सोई, परमारथ रस बरने जोई ॥ ९५ ॥ कलपित वात लिए नहिं अने, गुरु परपरा रीति बखाने, सत्यारथ सैली नहिं वंने, मृपा वादसों प्रीति न मंने ॥ ९६ ॥ दोहरा - वंद सबद अक्षर अरथ, कहे सिद्धात प्रवान, जो इहि विधि रचना रचे सो है सुकवि सुजान ॥ ९७ ॥

चोपाईः-- अथ सुनु कुकवि कहूं है जेसा; अपराधी हिय अंध अनेसा, मृपा जाव रस बरने हितसों, नई उकति नहि उपजे चितसों ॥ ९९ ॥ प्याति जान पू जा मन आने; परमारथ पथ जेठ न जाने; वानी जीव एक करि बूके, जाको चि त जड ग्रंथि न सुजे ॥ १०० ॥ वानी जिन नयो जग मोजे, वानी ममता त्यागि न बोले, हे अनादि वानी जगमांही, कुकवि वात यह समुजे नांही. ॥ १०१ ॥

अथ वानी व्यवस्था कथन -

सवैया इकतीसाः-- जेसे काहू देसमें सलिलधार कारंजकी, नदीसों निकसि फिरि नदीमें समानी हे, नगरमें गैर गैर फेली रही चहूं थोर, जाके ढिग बहे सोई कहे मेरो पानी हे, त्योही घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन वदनमें अनादिहीकी वानी हे; करम कलोलसों उसासकी वयारि वाजे, तासो कहे मेरी धुनि एसो मूढ प्रानी है. ॥ १०२ ॥ दोहरा.- एसे मूढ कुकवि कुधी, गहे मृपा पथ दोर; रहे मगन अणिमानमें, कहे थोरकी थोर. ॥ १०३ ॥ वस्तु सरूप लखे नही, बाहिज दृष्टि प्रमान; मृपा विलास विलोकके, करे मृपा गुन ज्ञान. ॥ १०४ ॥

अथ मृपा गुन ज्ञान यथाः-

सवैया इकतीसाः-- मांसकी गरंथि कुच कंचन कलस कहे, कहे मुख चंद जो सलेखमाको धरु हे, हाडके दशन आहि हीरा मोती कहे ताहि, मांसके अधर थो व कहे विंव फरु है, हाड दंम जुजा कहै कौलनाल काम जुधा, हामहीके थंजा जया कहे रंजा तरु हे, योही फूरी छुगति बनावै आ कहावै कवि, एते पर कहे हम सारदाको वरु हे ॥ १०५ ॥ चोपाई- मिथ्यावत कुकवि जे प्रानी, मिथ्या तिनकी जापित वानी, मिथ्यावत सुकवि जो होई, वचन प्रवान करे सब कोई १०६ दोहरा- वचन प्रवान करे सुकवि, पुरुष हवे परवान, दोऊ अंग प्रवान जो, सोहे सहज सुजान. ॥ १०७ ॥ अथ नाटक समयसार व्यवस्था कथनः-

चोपाईः-- अथ यह वात कहां हे जेसे, नाटक जापा नयो सु एसे, कुंद कुंद मुनि मूल उधरता, अमृतचद टीकाके करता ॥ १०८ ॥ समेसार नाटक सुख वानी, टीका सहित संसरुत वानी, पंजित पढै दृढमती बूके. अलपमतीको अरथ न सूके. ॥ १०९ ॥ पांमे राजमद्व जिनधर्मी, समयसार नाटकके मर्मी, तिन्ह ग रथकी टीका कीनी. बालाबोध सुगम करि दीनी. ॥ ११० ॥ इहि विधि बोधवचनिका फेली, समीपाइ अथातम सेली, प्रकटी जगतमांहि जिनवानी, घर घर नाटक कथा बपानी ॥ १११ ॥ नगर आगरामांहि विख्याता, कारन पाइ जए बहुज्ञाता,

पच पुरुष अति निपुन प्रवीने, निसिदिन ज्ञानकथारस जीने ॥ ७१२ ॥ दोहरा-
रूपचद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्जुज नाम, तृतिय जगौती दासनर, कौरपाल
गुनधाम ॥ ७१३ ॥ यर्मदास ए पच जन, मिलि बेसे इक ठोर, परमारथ चरचा
करे, इन्हके कथा न और ॥ ७१४ ॥ कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं थोर सिद्धांत,
कबहूं विग बनाइके, कहे बोध विरतत ॥ ७१५ ॥ अथ विगयथा-
-

दोहरा- चित चकोर करु धरम धरु, सुमति जगौती दास, चतुर जाव थिर
ता नए, रूपचद परगास ॥ ७१६ ॥ इहि विधि ज्ञान प्रगट जयो, नगर आगरे
माहि; देसदेस महि विस्तर्यो, मृपा देश महि नाहि. ॥ ७१७ ॥ चोपई - जहां त
हा जिनवानी फेली, लपे न सो जाकी मति मेली, जाके सहज बोध उतपाता,
सो ततकाल लखे यह वाता ॥ ७१८ ॥ दोहरा - घटघट अंतर जिन वसे, घटघ
ट अंतर जैन, मत मदिराके पानसो, मतवाला समुजें न ॥ ७१९ ॥

चोपई-बहुत बटाव कहालो कीजे, कारंजरूप वात कहि लीजे, नगर आगरा
माहे विप्याता, बनारसी नामे लघु ज्ञाता ॥ ७२० ॥ तामें कवित कला चतुराई, कृपा
करे ए पंचो नाई, ए परपंच रहित हिय खोजे, ते बनारसीसो हसि बोजे ॥ ७२१ ॥
नाटक समैसार हित जीका, सुगमरूप राजमली टीका, कवित बध रचना जो
होई, जापा ग्रथ पढे सब कोई ॥ ७२२ ॥ तब बनारसी मनमहि आनी, कीजे
तो प्रगटे जिनवानी, पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी, कवित बंधकी रचना कीनी ॥ ७२३ ॥
सोरहसे तिरानवे विते, आसुमास सित पद्द वितेते, तिथि तेरसि रविवार
प्रवीना, तादिन ग्रंथ समापत कीना ॥ ७२४ ॥ दोहरा ॥ सुख निधान सकबंध न
र, साहिव साहि किरान, सहस साहि सिर मुकुटमनि, साह जहां सुजतान ॥
७२५ ॥ जाके राज सुचेनसो, कीनो आगम सार, इति जीती व्यापी नही, यह
उनको उपगार ॥ ७२६ ॥ अब सबका ठीक कथन -

सवैया इकतीसा -- तीनसे दसोत्तर सोरठा दोहा ठंद दोउ, जुगलसे तेतालीस
इकतीसा आने है, ठासी सु चोपईये सेतीस तेइसे सवैये, वीस ठप्ये अठारह क
वित्त बपाने है, सात फुनिही अडिछे चारि कुंमलीए मिले, सकल सातसे सचाई
स ठीकगाने है, बचीस अक्षरके सलोक कीने ताके लेखे ग्रंथ संख्या सत्रहसे सा
तअधिकाने है ॥ ७२७ ॥ दोहरा -- समयसार आतम दरव, नाटक जाव अनंत;
सोहे आगम नाममे, परमारथ विरतंत ॥ ७२८ ॥

॥ इति परमागम समयसारनाटक नाम सिद्धांत संपूर्णम् श्री रस्तु ॥

॥ श्रीपार्श्वनिजायनमः ॥

अथ

॥ श्री सम्यक्त्व स्वरूपस्तव बालावबोध सहित प्रारंभः ॥

प्रथम अर्थकर्तानुं मंगलाचरण.

श्रीमद्वीरजिनं नत्वा, गुरुश्रीज्ञानसागरं ॥ श्रीसम्यक्त्वस्तवस्या
र्थो,- लिखामि लोकनापया ॥ १ ॥ गुरुपदेशतः सम्यग्किंचित
शास्त्रानुसारतः ॥ वृद्धपरंपराज्ञात्वा, क्रियतेबोधिसंग्रहं ॥ २ ॥

अर्थ.- श्रीमद्वीरपरमात्माने नमस्कार करीने तथा ज्ञानदृष्टिना दाता परमो
पकारी श्रीगुरुना चरणार्विंदने नमस्कार करीने पौत्रलिकसुख तथा आत्मिकसुख
नो एक अर्थव्यहेतु एतले पौत्रलिकसुख तथा आत्मिकसुखने जिन जिन दर्शवना
रो एहवो श्रीसम्यक्त्वगुण, तेनी मूलोत्पत्ति सप्रचेद कहेनारुं सम्यक्त्व पंचवीतीनामे
प्रकरण, तेनी अर्थ श्रीगुरु उपदेशयकी तथा कांईक शास्त्रानुसारयकी तथा कांईक
वृद्ध परंपरायकी एतले बहुश्रुतोनी वातो शान्जलीने मारी बुद्धिने अनुसारे कि
चित्मात्र संक्षेपयकी लोकनापामां वार्तिकरूपे कहुं.

प्रथम सूत्रकारनी गाथा लिखेठे:-

जह सम्मत्तरुवं, परुविश्रं वीरजिणवरिदेण ॥
तह कित्तणेण तमहं, युणामि सम्मत्त सुद्धिकए ॥ १ ॥

अर्थ - जह के० जेम उपशम द्वायोपशमादि प्रकारे सम्यक्त्वनु स्वरूप श्रीवीर
जिनवरिदे परुम्युंठे, गणधरादिकने उपदेश्युंठे, तहकित्तणेण के०तेम कित्तनकरवेक
रीने एतले जेरीते श्रीवीरपरमेश्वरें सम्यक्त्व प्राप्तिनी प्रनालिका उपवेशी, तमहद्युणा
मि के० तेज प्रनालिका गनित वीनतिये करीने श्रीवीरपरमात्मानें स्तवीश, एरीतें
प्रकरण कर्तार्थें वस्तुनिर्देशात्मकरूप मंगल कयुं, हवे प्रकरण करवानुं प्रयोजन क
हे ठे:-ए प्रकरण शावास्ते करेठे के सम्मत्तसुद्धिकए के०सम्यक्त्वनी बुद्धियवाने अ
र्थ एतले द्वायिकजावे सम्यक्त्व सुद्धि पामवाने अर्थें करेठे. यद्धक्तं आगमे.-अथयुद्धि

गलेणं जंतेकिजणइ ? गोयमा, नाण दंसण चारित्त बोद्धिजानं जणइ व्याख्या—श्री गौतमे वीरपरमेश्वरने पूठयुं जे थय.के० स्तोत्र अने, थुई के० चार गाथारूप एट ले परमेश्वरनुं स्तवन तथा थुई करता केवो जान थाय ? तेवारे परमेश्वरे कस्युके हे गौतम, ज्ञान दर्शन चारित्ररूप बोधजानथाय एटले रत्नत्रयी पामवानो हेतु थाय केमके निश्चयनये ज्ञान दर्शन अने चारित्र ते अप्रमतजावे होय, तिहाज संपूर्ण सम्यक्त्व कहिये जंसम्मंतिपासहा तमोणतिपासहा जंमोणति इत्यादि आगमनेधिपे कस्युठे, एरीते सम्यक्त्व थुई करवारूप प्रयोजनने अर्थे एप्रकरण करेठे ए अर्थकरवा नुं प्रयोजन कस्यु ॥ १.॥ इति प्रथमगाथार्थी ॥

हवे सम्यक्त्व प्राप्तिनी अगाठ जेवी जीवनी अवस्था होय ते व्यतिकरगर्नित बीजी गाथाये स्तुति करेठे -

सामि अणाइ अपांते, चउगइ संसारघोरकातारे ॥

मोहाइ कम्मगुरुठिइ, विवागवसउं जमइ जीवो ॥ २ ॥

अर्थ - हेस्वामि, मारासरिखा संसारीजीव, ते जेनी आदिपण नपामिये अने अंत पण नपामिये तेने अनादि अनंत कहिये, एटले जेनी आदि अंतनथी एवो चतुर्गति भ्रमणरूप संसार, तेहिज जाणिये एक घोर कातार एटले जयानक अटवी, तेहेने विपे मोहाइकम्म गुरुठिई के० मोहनीयादिक आठे कर्मनी उत्कृष्टस्थितिनां वि वागवसओ के० विपाक वेदवाना परवशपणाथकी जमइजीवो के० एजीवभ्रमणक करेठे सर्व जीवोनी मूलस्थिति एहवीठे के अनादि निगोदजे सूक्ष्मवनस्पतिकाय जा ति निगोद, तेमा खाणसंपन्न कनकोपल न्याये अनादिना रहेठे, एसर्वजीवोनी मूलस्थितिठे, तेमा अगुलने असंख्यातमे जागें शरीरहोय, अने जशोठपन्न.आवलिका नुं आयुहोय, एटले रोगरहित मनुष्यना एक श्वासो श्वासमाहे सत्तरजव जाजेरा करे, एम केवल तुच्च आयुष्यवेदता खुलकजरूपे अनादि निगोदमा चय उपेचय एटले तिहाज जन्म मरण करता रहेठे, एरीते सर्व संसारीजीवोने निगोदमां न टकंतां अनतानंत पुज्जपरावर्त्त वीतिगया ॥ २ ॥

तिहा रहेताथका कोई घुणाद्धरन्याये नियतकारणा परिपाक थवाथी कोई समं ये एकादिकम वे स अथ्यवसायना तरतमयोगथी, तत्तुल्यदलुकार्मि थाय एटले जेम अ द्धर गुणता गुणता कोई समये अचानक कोई नियम सिद्ध थईजाय ठे, एम नियत कारणा परिपाकथवाथी ते जीव एक वे इत्यादिक आत्माना अथ्यवसायनी तरत

म्यता सहित थयो, थको, ते अथ्यवसायना जेवा, परिणाम, होय तसुद्य के० तेवा परिणामतुद्य हलुकर्मिं थायठे (एरीते मने उपला न्यायनो खोलासो सुज्यो ते लखी जणाव्यो ठे.) ते लघुकर्मिपणानायोगे सूक्ष्म निगोदथी निकलीने बांदर निगोदमां आवे तिहा आयुकर्म स्थित्यादिकनी वृद्धिथाय, कोईकरीते बीजाजीवोने दृष्टिगोचर पण आवे, एहवोथाय, बांदर शरीर ठे. माटे स्वकाय परकाय शस्त्रथी ठेदन जेदन योगे जो अकाम निर्जराथवा लागी तो तेना योगथी वेईंझियादिकमां आवे, तिहांव ली प्राण अने पर्याप्ति तथा ईंझीय अने शरीरनी वृद्धिथाय इहा कर्मबंध वधतुंथाय केमके जिव्हा इडिय तथा नाषा अने शरीरादिक अधिकरणनी वृद्धिथई राग द्वेष न चोत्पादक नाषा अनेकरस आस्वादनाजिजापी जिव्हाथाय, वलीअनेक जीवने ड ख दायी महोटांमं महोदुं वारयोजनतुं शरीरथाय, उत्कृष्टआयु वारवर्षनुंथाय, तेणोकरी शुनाशुन अथ्यवसायनी पण तरतमता थाय, तो तिहांपण अकाम निर्झरानी बहु लता होय तो, उंचो तेंडियादिकमा आवे, अनेजो अधिकरणनायोगे हिंसादिकदोष नी बहुलता थाय, तो फरी एकेंडियमा पण जाय, तिहां वली एकेडियमां उत्कृष्टो अन्त कालरही फरीकोईकवारें कोईक अकाम निर्जराना योगथी विकलेंडियमां आवे तिहां वेईंझी तेईंझी चोरेई एत्रणे विकलेंडिय कदिये इहा जेम जेम ईंझी प्राण अने पर्याप्ति वधे तेम तेम अधिकरण पण वधे

हवे तिहां जो हिंसादिक कारणोनी वृद्धिथाय तो पाठो पनी एकेडियादिकमां आवीजाय, अनेजो सामान्ये रहे तो पोतानी कायस्थितिप्रमाण हींडियादिकनावेज रहे, अनेजो ठेदन जेदनरूप अकामनिर्जरा थायतो तेनेयोगे उंचोपण आवे, इहां विकलेंडियथी एकेडियमाजाय अने एकेडियथी विकलेंडियमांजाय, एरीतें अनता फेराथाय, तिहा एकेका फेरामां प्राये अन्तकालपण वहीजाय.

एरीते करता विकलेंडियथी अकामनिर्जराने योगे प्राये तिर्यंच पंचेडियथाय, ते तिर्यंच पंचेडिना वेजेदठे, एक गर्जज अने बीजा समूर्द्धिम. तेमां समूर्द्धिम ने मन न होय तोपण तेमा शरीर प्राण पर्याप्ति आयुप्रमुख अधिकरणनी वृद्धिथाय, तेथी जो हिंसादिक अधिकरणनी बहुलता थई तो पहली नरके जवुं पडे, अथवा पा ठो पनी एकेडियादिकमा पण जाय, जो नरकेजाय तो उत्कृष्ट असख्यात कालसु धी हेत्रवेदना परमाधामिकृत तीव्रड.ख तथा प्रस्परकृत तीव्रड.ख अनुनवे, तथा एकेडियमां गथोतो फरी वेदनादिक अनेक ड.ख सहन करे फरी अन्तकाल जमे.

- कदाचजो समूर्द्धिम पंचेडियमा ठेदन जेदन सीत तापादिक महाड.ख सहन

थी अकाम निर्जराने योगे गर्जज मनुष्य थाय, अथवा गर्जज तिर्यच पचेडिय थाय, ते जेवारे गर्जज पचेडितिर्यच अथवा गर्जज मनुष्य थाय, तेवारे प्रबल अधिकरणी थयो, तिहां पांचे आश्रव प्रबलपणे सेवे तिहां प्राण तथा पर्याप्ति पूरणहोय तेनेलीधे त्रिकाल वेदन स्वकीय परकीयना विकल्पजालमां पडे, तेथी उत्कृष्ट कर्मस्थितितुं धणी थाय, आर्त रौड ध्याननी प्रबलता थाय, ते दुर्ध्या ननायोगे कर्मस्थिति दीर्घकरे, इहां कोडकजीव प्रबल हिंसादिक कारणनेयोगें सातेनरकोने विपे जाय, अथवा किवारेक मुर्छादिक अधिकरण योगे पाठी एके डियमां पण जाय, तिहां अनंतकाल रुले

अथवा किवारेक उद्वेग चेदन ताडन तर्जन शीत तापादिक सहनकरतो जाति शरलपरिणामी माटे तीव्रसक्लेश न करे तो अकामनिर्जराकरी कोडकजीव देवगति पामे, अथवा कोडकजीव मनुष्यथाय तेमाजो देव थयोतो अतिशय विषयाशक्तमा माचीने तीव्रसक्लेशे विषयाशक्त थको मरीने प्राये तिर्यच पचेडी गर्जजथाय, तिहां बहुल हिंसादिक सेवनकरी नरकेजाय, अथवा पाठोपडी एकेडियचक्रमा जाय, फरी तिहाथी निकली पंचेडियपणुं पामता उत्कृष्ट कायस्थिति योगे असंख्य पुजल परावर्त्त वीतीजाय.

अथवा कोडकदेवमरी मनुष्यथाय, तिहां कारण अपरिपाकपणायी बहुलतायें अनार्यक्षेत्र अनार्यकुलमा उपजे, तिहा प्रबल कपाय विषयादिक अशुद्धहेतुना योगे अद्वारे पापस्थानकसेवी, किवारे सातेनरकोनेविपे जेवा जेवा कर्म बाधे तेवा तेवां कर्मानुसारे ते ते नरकमा जई उपजनुथाय, एम यथाबंधी उपजे, तिहां नरक संबंधी आकाराड ख असंख्यकाल पर्यंत सहन करे, ते नरकडःखना विपाक जव जावनादिक ग्रंथथी जाणवा.

अथवाकोड तो मनुष्यनवपामी घरकुटंबनी तीव्र मूर्छामा मूर्छितथको अज्ञान योगे परिणम्यो तो फरी तिर्यचगति यावत् एकेडिय चक्रमांपडे, वली ते दशापाम ता अनंतानंत काल व्यतिक्रमीजाय, तथा कोडमनुष्य विशिष्टज्ञानविना मूढचेतना वंत प्रकृतियें सरलथको सहजे कपायनी मंदताये मनुष्यपण थाय, तिहावली कालपरिपाकविना अशुद्धकारणनी बहुलतानेयोगे मित्याख्यादिक अशुद्धहेतुनी पुष्ट ताये कर्मस्थिति उत्कृष्टिकरे, ते उत्कृष्टकर्मस्थिति लखियेंवये ॥ गाथा ॥ मोहेको डाकोडी, सत्तरिवीसचनामगोयाण ॥ तीसायराणि चउन्न, तिचीसायराई आ

उस्त ॥ १ ॥ अर्थ ॥ तेकर्मबंध बांधवाना चारहेतुने, मिथ्यात्व अविरति कषाय अने योग, ए चारहेतुनी प्रबलताये कर्मस्थिति उत्कृष्टी बांधेते.

तिहां सर्वकर्मनो उत्पादकपोषक मोहनीय कर्म ठे, जेम इमाथी सुरगी अने सुरगीथी इंतुं तेम मोहनीयकर्मथी आठेकर्मबांधे, आठे मली मोहनीयकर्मनी पुष्टीकरे, माटे मोहनीयकर्मनी मुख्यताकही, मोहनीयकर्मने राजपदनी उपमाकही, ते मोहनीयकर्मनी अवघावीस प्रकृतिमां मिथ्यात्व मुख्य कर्मप्रकृतिठे, समस्त संसारमां सर्वजीवोने समस्त दुखनोहेतु एकमिथ्यात्वठे ते मिथ्यात्वमोहनीय एकवारनुंबांधुं उत्कृष्टो सिंचेरकोडाकोडी सागरोपमसुधी विपाकआपे, तेहनो विपाक अत्यंत मदिरापाननी घुमि सरिखोठे, जेम मदिरानुं पानकरनार पुरुष मित्रने शत्रुनी बुद्धियें मारवादोडे अने शत्रुने हंसीहंसी मजवादोडे

तेम तीव्रमोहना उदयथी जीवने अजीवजाणे अने अजीवने जीवजाणे तथा धर्मने अधर्मजाणे, अधर्मने धर्मजाणे, मार्गने उन्मार्गजाणे, उन्मार्गने मार्गजाणे, साधुने असाधुजाणे, असाधुने साधुजाणे, मुक्तने अमुक्तजाणे, अमुक्तने मुक्तजाणे, ए दशप्रकारे मिथ्यात्व विपाक आपे.

तथा नामकर्म अने गोत्रकर्म एकवारनुंबांधुं उत्कृष्टो वीसकोडाकोडी सागरोपम स्थितिरहे, ते नामकर्मनो विपाक चित्रकार सरिखो विचित्रपणे ठे केमके जे वर्षे रहित गंधरहित स्पर्शरहित रूपरहित रसरहित अने समस्तदोष रहित, असंख्यातप्रदेशी लोकप्रमाणे अखंड अनेतं ज्ञान दर्शन चारित्र स्वरूपी संघयण संस्थान रहित, ए वा अरूपी आत्माने एकेडिय बेंडिय कुरूपी सुरूपी वीगणो कुबनो कालो धोलो अतिमहोदो तो हजारयोजनप्रमाण अति सूक्ष्म तो वालनी अणीउपरे असंख्यगोला गोलेंगोलें असंख्य निगोद निगोदे निगोदे अनेतं जीव, इत्यादिक जीवने अन्याख्यान रूपे विपाकआपे एवु ए नामकर्मठे.

गोत्रकर्मनो विपाक कुंजारना जामा सरखो ठे, केमके एजीव जगत् शिरोमणी सिद्धसमान जगतने वदनीय स्वरूपी ठे, तेज जीवने चमाल मातंग हलाल खोर जेने कोई अडके नही कदापि अडके तो जलादिके स्नानकरी शुद्ध थाय, जो विष्टा चर्म हामुं नहण करनारो स्वान घरमां आवे, अथवा तेनो स्पर्श थाय तो तेनी कांई शंका न आपे, शोचपण न करे, अने पंचेडिय तेवली मनुष्य दश प्राणेंनो धारकृतत्वातत्व सर्व उच्चिच वस्तुनो जाण, सर्व मनुष्य जेहवो मनुष्य वृजा वृचन करणी करवा समर्थ, तेहनुं दर्शन स्पर्श अथवा निकट रहेवानी कांई चाह

ના કરેનહી, તેથી તેને વસ્તિ બાહિર રહેવું પડે, એ સર્વ વિપાક નીચ ગોત્રના જાણવા તથા ંચ ગોત્રના વિપાક તે જે કોઈ જીવ મૂર્ખ જડ હુટ નિર્વન નિર્ગુણ કુરૂપો કુચિત્ત હોય, અને કુકર્મનો કર્તા હોય, કર્મ ચમ્પાલ હોય, એવું ઠતા પણ મહોટા કુજમા અવતાર લીધો હોય, તો દોષે નહ્યો પણ લોકમા આદર સન્માન સત્કાર પામે, જો અશુદ્ધાચરણ દેશી નિંદા થાય, તોપણ અવશર ંપર તેહને સઠ કોઈ તેહીને વિનયકરે, જે એ મહોટા ં, મહોટા કુજના ં, ંજાદીં, કેટલાક દોષ ઢાક્યા જાય ંતિ ગોત્ર કર્મવિપાક

જ્ઞાનાવરણી અને દર્શનાવરણી તથા વેદનીય અને અંતરાય, એચારેકર્મની સ્થિતિ એકવાર બાધ્યા ત્રીસકોઢાકોઢી સાગરોપમ પર્યત વિપાકઆપે.

તેમા જ્ઞાનાવરણીકર્મ આંખનાપાંટા સમાનં, જેને એકર્મનો ત્રીઢોદયહોય તે પ્રાણી કાર્જ જાણેનહી, કેમકે જીવના સર્વ આકાશ તથા કાલ પ્રમુખ ંવ્યપર્યાયથી અનંતગુણા જ્ઞાનગુણના પર્યાયં, તે સર્વપર્યાય એ જ્ઞાનાવરણીકર્મે આવચાં, એક અક્ષરના અનતપર્યાયં, તેમાંહેલો એકપર્યાયનું જ્ઞાન નિગોદિઆ જીવને ંપજતાંહોય, વાકી સર્વપર્યાયનું જ્ઞાન ઢાક્યું, એક અક્ષરનો અનંતમો નાગ ંઘાઢોરહે, તેપણ ંવ્યસ્વનાવેરહે, પણ કર્મની રાયતિનથી, એક જીવંવ્ય તે બીજા સર્વંવ્યના ંવ્ય ગુણ પર્યાયના ત્રિકાલિક ંત્પાદ વ્યયનો એકસમયમા જ્ઞાયક ચિદા નઢધનરૂપી એહુ ચેતનરાજં તેને એ જ્ઞાનાવરણીકર્મે જઢરૂપ અતિગુપ્તકરીનાચે, પણ તેહના ંપર કોઈરીતે અનુકપાકરેનહી, કાપ્રાયકરે, ચેતનના મુખ્ય જ્ઞાનગુણને આવરે, એ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના વિપાક જાણવા.

- દર્શનાવરણીયકર્મ વૈત્રીસરિખું દરવાન ઢોઢીદાર સરિખું ં, જેમ રાજાપ્રસન્ન થયોઢતા દરવાન સુસી નહોયતો તે અટકાવી રાચે, પણ રાજાની નેટકરવાનઆપે તેમ એકર્મનો વિપાક જે પૂર્વોક્ત સ્વરૂપ જીવને અધકરે, ન્યૂનંડીય શૂન્યંડીયકરે વચિર કરે સર્વ ંનકરણીઆદરે, તે અવસરે સર્વઘાતી નિઙા આવી તેનો ંનનિમિત્ત વ્યર્થકરી નાચે, એ દર્શનાવરણીય કર્મનો વિપાક જાણવો

- વેદનીયકર્મ મધુલિપ્ત તરવારની ઢારા સમાનં તેમા મધુના આસ્વાદ સરિચી શાતાવેદનીયં અને જીન ંદાયાના હ સ્વ સરિચી અશાતા વેદનીયં એકર્મના વિપાક ગર્જગતહુ સ્વ - જન્મસમયના હ સ્વ સમસ્ત રોગોત્પત્તિનાહુ સ્વ - મરણ સમયનાહુ સ્વ વિયોગોદયનાહુ સ્વ વિષય અપ્રાપ્તિનાહુ સ્વ અથા મહાનયનાહુ સ્વ શીતહુ સ્વ તાપહુ સ્વ તથા તિર્યચના નવમા વધ વંધન નારવહન શકટવહન કૃપિક્રિયાગત હ.

ख खासीक्रियाडु.ख नासावेधडु.ख कुधाडु.ख प्यासाडु.ख मृगयाडु ख असवारी
नाडु.ख दूरपथ गमनडु.ख जातिवैरीनाडु.ख धर्मबुद्धिये हनन समयना डु.ख
पिंजरांमा पडवानाडु.ख इत्यादिक अनेकडु ख तिर्यचगतिमांठे, तथा नरकगतिमां
क्लेत्रवेदना शरीरगत अनेक रोगजन्मडु ख परमार्थाभिकृतडु ख अन्योन्य प्रद्वरण
प्रद्वार डु ख ए सर्वे अशातोदय वेदनीयना विपाकजाणवा, तथा शातावेदनीयोद
यथी सर्वेइहित खावा पीवानाजोग वली खेलवुं स्त्रीविलास राग रग सुख सद्य्या
मान महत्त्व राजलीला कामनासिद्धि निरोगता इत्यादिक सर्व शातावेदनीयना वि
पाक ठे एकर्म जीवना, आख्याबाधगुणने बाधकरनारुंठे समस्त देव मनुष्यना
त्रिकालिक पुजलिकसुख, एकठाकरिने दुखनाकरिये तो सिद्धनासुखने अनंतमे जागे
पण न आवे, एहवा सहजानंदी जीवने एकर्म शुजाशुज पुजजपिंममा रखडावे ए
वेदनीयकर्मनो विपाककह्यो.

अंतरायकर्म राजाना चंमारीशरिखुंठे जेम राजा सुप्रशन्नथई कोईने इव्य आप
वानो आदेशकरे, पण जो चंमारी अनुकूल न होय, तोकोईपण निमित्ते विलंबक
रीआपे, धकाखवरावे, पण इव्य आपेनही, तेम ए कर्मनाविपाके दान शक्ति न पामे
कदापि दानइह्वा न करे अने इह्वाकरेतो उलटो कोई एहवो विकल्पउठे के, जेथकी
दानआपवानी बुद्धि जूलीजाय, पण आपीशकेनही, तेमज लाज मेलववाने अर्थ
पण घणीजं पोतांनी बुद्धि केलवी चतुराईथी उद्यमकरे, सर्ववाते खबरदारीराखे,
अने कार्यपण सलुखाईमा आवे, जेथकी एवी आशा थायके आ उद्यममां रूडीप्रा
प्ति अवश्यथज्ञे तेथी हर्षवत पण थाय एटलामा कोईलानांतराय कर्मना उदयथी
एहवा कारणो आवी बने के जेथकी लाजने ठेकाणे उलटो त्रोटोथईपडे, ते लो
जांतराय कर्मनो विपाक जाणवो तेमज जोगांतरायकर्मना विपाके जोग न पामे, कदा
पि पामे तो रोग शोग नयादिक कारणे जोगवी शकेनही एमज उपजोग वस्तुपण
एना उदयथी न पामे, कदापिपामे तो तेनो कोईपण हरकतनेलीधे उपजोग करीशके
नही, तेमज वीर्यांतरायना उदयथी शरीर निर्बलतापामे, अनेक औषध रसायन
खायें तोपण उलटो कोई कुपय्यादिकने योगे रोग थाय, दुर्बलतानी वृद्धि थाय,
परवसादिकने योगे मननीहोस मनमांसमें पण चित्तितकार्थ करी शकेनही, एरीतें
अंतरायकर्मनो विपाक जाणवो

आयुकर्मनो उत्कृष्टीस्थिति तेत्रीस सागरोपमनीठे, ते एक शुजायु बीजुं अशु
जायु ए वे प्रकारेठे, एकर्म हेड शरिखुंठे, जेम ज्यां लगण हेडमा पण प

इयुंहोय त्यांलगण किहांपण जवाई शकायनही, तेम आयुकर्म बांध्यापठी गमे एटली धर्मकरणीकरे द्वायिक सम्यक्त्वादिक उपाजें. तोपण बाधेलीगती अवश्य नो गववीपडे, पण तूटेनही, बीजा कर्मोनोउदय तोअपवर्त्तेन सक्रमणादि करण योगे नि फलकरे, पण ए कर्मतो नोगव्याविना तूटेजनही बीजा शुनाशुनकर्म उंच नी च परिणाम योगें दल वृद्धि हानीथाय, पण एकर्मतो यथाबंधें अवश्य नोगव्युंज जोय, जोपण नरकादिकना दुःखघणाय अनिष्ट लागे, तोपण तूटेनही, एरीते आयुकर्मनो विपाक जाणवो

एरीते आतेकर्मनी प्रकृति स्थिति रस अने प्रवेशबंधना परवशपणे अनंतानंत पुजलपरावर्त्ते थया जन्ममरणादिरूप, जीपण कांतारमां जन्म्यो, एम जमतां जमतां कोईकवारे दुर्लभ मनुष्यजवादि सामेघीयोग मव्यो, पण मिथ्यात्वनी प्रवजता हे तुये अथवा पांचकारणना परिपाकविना किहांपण सम्यक्त्वनी प्राप्ति नथई, केवल जवपूर्णथयो इहां प्रसगे योगविडुंयथमाकहेली सम्यक्त्व प्राप्तिनी शैली लखियेंतश्ये -

जे नव्यजीवठे तेने नव्यताना उदयेकरी अकाम निर्जरायें कर्मखपावतां पाच कारणनी अनुकूलतायेकरी वे पुजलपरावर्त्ते शेष संसार रहे, तेवारे धर्मशब्द सामान्ये सहहे, जे धर्मशब्द शानजवा सन्मुख निर्विवेकपणेहोय तेने श्रवणसन्मुखी जावकहिये, पण तथाविध आदरपीपासाकाईहोयनही पण सहज मिलेतो विमुखनही

पठे तिहांथी संसार परित्रमणकरतो जीव उच्च जावमां आवे, तेवारे दोढपुजल परावर्त्तरहे मार्गगवेपणा मार्गश्रवण मार्गसन्मुख मार्गानुसारी मार्गप्राप्ति इत्यादिकनाम इहांथी आगेंथाय, धर्मजणीधसे जिनोक्तमार्गनुं श्रवणहोय कोइकरीतें रुचि थाय पण तीव्रजावे, गवेपणानहोय, एने मार्गपतित कहियें, एटले मार्गेपडयो कोइ जवे एवीरुचीथईपनी, संसारपरित्रमणकरतां एकपुजल परावर्त्तरहे तेवारे जिनमार्गानुसारीपणं शुद्धाशुद्धनी गवेपणामात्रहोय, एरीतेकरता इहा धर्मयौवनकालथावे न्यायसपन्न विजवप्रमुख पात्रीसगुणपामे, मित्रादिकदृष्टी पामवानो अवशरहोय, एहने मार्गानुसारी कहिये, इहां पटदर्शननी जिन्नताजाणे, जिनोक्तमार्गें व्यवहारे प्रवर्त्ते, इहाथी मिथ्यात्वमदपड्यु, तेथी व्यवहारे इव्यधर्मपणपामे, पण सम्यक्त्व प्राप्ति न थाय, इहा पहेला त्रण अनुष्ठाननी प्रवजता होय, सर्वक्रियाकरे तेदेखी बीजा अनेकजीव धर्मपामे, पण पोताने नहोय तेक्रियानुफल स्वर्गादिकथाय, पण निर्जरा अर्थे नथाय ॥ १ ॥ इतिद्वितीय गाथाय

हवे सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपायकहेतेः-

पल्लोवलमाइअहा, पवत्तिकरणेणकोविजइकुणई ॥
पलिआ असंखजागुण, कोमिकोमि-अरठिइ सेसां ३ ॥

अर्थ ॥ इहां चरम पुज्जपरावर्तमा मिथ्यात्वनी मंदताथाय तिवारें सम्यक्त्व पामवाना कारण त्रण करण्ठे, तेनानाम एक यथाप्रवृत्ति बीजोअपूर्व त्रीजोअनिवृत्ति, तेमां इहाप्रथमकरणनो अवसरठे-तेकहेते, ए सम्यक्त्वगुण पामतां सुधीमां सर्वसाधारण आठ दृष्टांतकह्यांते तेमां यथाप्रवृत्तिकरणकरतां वे दृष्टांतलागे-ते दृष्टांतनी आवश्यकोक्त गाथा लिखुं.

“पल्लयगिरि सरिउवजा, पिवीलिआ पुरिसपह जरगहीआ ॥कोदव जल वड्डा एिअ सामाइयलाजदिठंता ॥ १ ॥ एगाथानोअर्थकहेते एक पालानुंदृष्टांत, बीजुं पर्वतथी नदिप्रपातस्थानेरहेला पापाणुं दृष्टांत, त्रीजुं पीपीलिका ते कीनीनुंदृष्टांत, चोथुं त्रणपंथीपुरुपनुं दृष्टांत. पांचसु ज्वरग्रहीतनुं दृष्टांत, ठुं मदनकोइवनुं दृष्टांत, सातमुं मजिनजल दृष्टांत, आठमुं समजवखदृष्टांत, ए आठ दृष्टांत सर्वे सम्यक्त्वनो लाज यतासुधीमा लागे, ते यथा स्थानके लखीसुं, पण इहातो यथा प्रवृत्तिकरणे वे दृष्टांतलागेते ते कहिये ठैये

तिहां सम्यक्त्वपामता करण त्रण्ठे १ यथाप्रवृत्तिकरण २ अपूर्वकरण ३ अनिवृत्तिकरण; तेमां यथाप्रवृत्तिते ‘अनतिक्रम्यकरोतीति’ यथाप्रवृत्ति, ए व्युत्पत्तिनो अर्थ -यथाके० जेम अनादिनी चाल्ठे तेमनीतेम प्रवृत्तिनुं करणके० जीवपरिणामनुं प्रवर्तनठे जिहां, तेने यथाप्रवृत्तिकरणकहियें, एटले अनादिनुजे चाल परिणामंठे ते प्रवर्तन फखुंनथी, अनादिचालें प्रवर्तंठे पण कारणपरिपाकनी जोरथी मिथ्यात्वनी मंदताथाय, तेथी पालाने दृष्टांते जेम पूर्वे, जखो धाननोपालो तेमां थोडुंधानेनाखिये अने घणुं धानकाढीये तेवारे तेपालो कालातरे खालीयाय तेम कर्मरूप धानेकरी समस्त आत्मप्रदेशरूप पालोचखोठे तेपालो जीवने अनानोगथी एटले इहाविना सहजे अकामनिर्जराथी वेदनचेदनादिकथी अद्युजविपाकावशरें मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कपायनी मंदतानायोगे कर्मविपाके बहु व्यापक न होय तेवारे कष्टमाफक निर्जरावणीथाय, अने मिथ्यात्व कपायनी मंदता माटे नवाकर्मपण घणाबंधनही, मदवीर्यमाटे प्रदेशरश पण थोडुंग्रहणकरे एटले घणी निर्जराथाय अने बंध अल्पथाय तेथी कर्मस्थिति रूपधान्यनुं पालो घटाडे.

तथा बीजुद्घट्टांत नदीना पापाणनुं, जेम पर्वतथी नदीधारापडे तिहां नीचेरहे
 लुं पापाण तेनदीनी जलधारा पडवाथी अरहो परहो घोलाय अथडाय, ते पापा
 ण घोळना घचनानेयोगें घसाईने घोळघाटमाआवे, फरसमां सुहालोथाय एरीते स
 हेज स्वजावेकोईक घाटमाआवे पण कोऽए एनो विचारपूर्वक घाट कखोनथी.

तेम जीवते पापाणरूप, नदीप्रवाह ते कर्मोदय प्रवाहें पचतो अकाम निर्जराथी
 पूर्वोक्तन्याये निर्जरायेकरी कोऽक धर्मप्रवृत्तियोग्य घाटमाआवे. (आकारमाआवे)

ए वेदघातेकरी एकआयुर्कर्मवर्जिने बाकीसातेकर्मनी उत्कृष्टिस्थितियोग्य बंधप
 रिणामने घटाडे, तथा पूर्वबंधहोय तेपण निर्जरे, तेवारें संतेरकोडाकोडी मिध्या
 त्व बाधतोहतो ते परिणाम टलीने पव्योपमने असंख्यातमें जागें न्यून एक को
 माकोडीनी स्थितिवंधना परिणाम राखे, तथा पूर्वबंधहोय तेपण सर्व स्थिति
 घटीने एक कोमाकोडीनी स्थिति सेपरहे, एरीतें एक आयुर्कर्म मूकी बाकी सा
 ते कर्मनी स्थितिघटादीनाखे एटले त्रीसकोमाकोडी स्थितिवाला कर्मोनी अोगण
 त्रीस कोडाकोडि घटाडी पव्योपमने असंख्यातमेजागें न्यून एक कोडाकोडी
 सागरोपम राखे, ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अने अतराय ए चार कर्मनी
 एटली स्थितिराखे, तथा नाम अने गोत्र ए वेकर्मनी उत्कृष्टी वीसकोडाकोडी साग
 रोपमनी स्थितिमाथी अोगणीस कोडाकोडीघटाडीने पव्योपमने असंख्यातमे जा
 गे न्यून एक कोडाकोडिराखे, एटलासुधी जे जीवना परिणामनी योग्यताथयी एतुं
 नाम यथाप्रवृत्तिकरण कहिये, ए करण जीव ससारमा जमता जमता अनतिवार
 करे, पव्योपमने असंख्यातमेजागे उंठी एककोडाकोडी सागरोपमनी शातकर्मनी से
 पस्थितिरही तिहासुधी यथाप्रवृत्तिकरण कहिये, आगले अंधीदेशआब्यो खरो पण
 ए करणयोग्य परिणामे आगल न जवाय इति प्रथमकरण

बीजु अपूर्वकरण ते जे पहेजा संसार परित्रमण करता कदापि एतुं, करण जे
 जीवपरिणाम विशेष ते पाम्योनथी माटे अपूर्वकरण कहिये, ए अपूर्वकरण परि
 णामे घन निवड रागद्वेष परिणतीमयी जे अंधीतेने जेदवामामे, जे जेदे तेह अथ्य
 वसायने अपूर्वकरण कहिये

त्रीजु अनिवृत्तिकरण ते जे अथ्यवसाय फल प्राप्तिविनानिवर्तें पडेनही, एटले
 पूर्वे आव्योजे अपूर्वकरणरूप परिणामे ते पाठो जायनही तेने अनिवृत्तिकरण
 कहियें, ते अनिवृत्तिकरणरूप परिणामेकरी जीव सम्यक्त्व पामे ते त्रीजुकरण इ
 हा ए त्रण करणनी साखआपवाने कल्पजाप्यनी गाथा लिखेले - "अंतिमकोडा

कोडी, सर्वकम्माण आठवक्काणं ॥ पत्तियाअसंखिअइ, जागेखीणोहवइगंठी ॥ १ ॥
गंतित्तिसुद्धप्रेउ, करकडधणरूढमूढगंठीव ॥ जीवस्तकम्मजणित्तं, घसुरागदोसपरि
णामो ॥ २ ॥ जागंठीतापढमं, गंठीसमइउत्तनवेवीधं ॥अनियट्टी करणपुण, सम्म
त्तपुरक्कडे जीवे ॥ ३ ॥ ए त्रणगाथानो अर्थ लेशमात्र लखियेते.

आयुवर्जाने सातेकर्मनी अंतिम के० ठहेली कोडाकोडिस्थिति पव्योपमने अ
संख्यातमेजागे न्यूनरहे बाकीसर्वखपीजाय एहवे इहां गंठी कवणस्थानकडे ॥ १ ॥
गंठीकहेवीठे सुद्धप्रेउ के० अत्यंतदुःखे नेदवायोग्य कर्कश वक्र गूढ गुप्त कोइ ख
दिरादि कठीण काटनागांठनीपरे जेवीतेवीरीते नेदाय देदायनही ए उपमाये अ
नादिनुं जीवने कर्मजनित घन के० निवड राग द्वेष परिणति संचयरूप ग्रंथी ते
वज्रवत् डुन्नैयते ॥ २ ॥ जिहांगंठीठे तिहांसुधीआवे तेने पढम के० प्रथम यथा
प्रवृत्तिकरण होय, पठी गंठीसमइउत्तके० ग्रंथी समर्थनकरता साम्यर्थवतथई ग्रंथी
नेदतां बीजुं अपूर्वकरण होय; तथा पुण के० वली अनियटीकरण के० अनिवृत्ति
करण ते सम्मत्तपुरक्कडे के० सम्यक्त्व अवश्यप्राप्त नव्यपणे आगलकखुं जेणे जीवे,
एटले सम्यक्त्व अवश्यपामवु जेना मुखआगल रखुते तेजीवने त्रीजुंकरण होय॥३॥

एरीतें धाननोपालो तथा नदीनुपठर ए वे दृष्टातें कोइकजीवे यथाप्रवृत्तिकरणें
पव्योपमने असंख्यातमेजागें न्यून एककोडाकोडि सागरोपमनी सातेकर्मनी शेष
स्थिति कीधी, एटले सम्यक्त्व प्राप्तिनो निश्चैययो एरीतें शिष्यबोझ्यो तेवारें गुरुक
हेठे इहां सम्यक्त्व प्राप्तितुं निश्चैययोनथी ते गाथाये करीकहेठे.

तत्रविगंठीघणाराग दोसपरिणामयं अजिहितो ॥

गंठियजीवो विहहा, नखहइ तुह दंसणं नाह ॥ ४ ॥

अर्थ:- तत्रविके० तिहापण कांइकउणी एककोडाकोडी स्थिति शेष सातकर्म
नी कीधी तोपण अजव्य अथवा डुन्नैव्यत्वादिक दूषण ने लीधे हाहाइतिखेदे रा
गद्वेषपरिणाममईग्रंथीवेशगत जीवपण ग्रंथीने अणनेदतोथको हे नाथ ताहंरं दर्श
नजे श्रीमुखे कहेखुं सम्यक्त्वते पामीशकेनही? केमके ए यथाप्रवृत्ति करणखुदीतो
अजव्यपण आवे एवु आवश्यक वृत्तिमां कसुठे के अजव्यपण कोइक अकामनि
जेराकरतो ग्रंथीदेशसुधीआवे तिहां अरिहंतनी कूदीवेखीने अथवा अन्यकोई पुज्जी
करुदीनी इहायें प्रवर्तमानथको चारित्रलीधे तिहामात्र श्रुतसामायकनो जाज तेने
होय, पण शेष दर्शन सामायिकादिक पामेनही, एम संसारमां नमताथका व्यव

हार रासियाजीवप्राये जिहाद्यधी चरमावर्त चरमकरण न पामे तिहांसुधी अनतिवा
र ग्रंथीदेशसुधीआवी पाठापडे ॥ ४ ॥ इतिचतुर्थगाथायर्थ.

हवे जीव जे रीते ग्रंथीजेदे ते रीत कहेवे.—

पहिलिय पविलिय नाएण, कोविपळत्त सन्निपंचिदी॥

जवो अत्रुपुग्गल, परियट्टवसेस संसारो ॥ ५ ॥

अर्थ—पहिलियपिविलियनाएणके० इहां ग्रंथीदेशपाण्यापठी कोइकजीव अपूर्वक
रणकरे ते पंथीजे वाटमार्गु तथा पिलिलीकाजे कीडी तेने नायण के० न्याये दृष्टां
तेंकरे तेदृष्टांत देखाडवाने नाप्यनी गाथाउ लिखुंबुं

जहइहतिन्निमणुस्ता, जंतडविपहंसहावगमणेण ॥ कालाइकमनीया, तुरतिप
त्तायदोचोरा ॥ १ ॥ दंहुमग्गतडडे, तेएगोमग्गउपडिनियत्तो ॥ बीउंगहियोतइउं, स
मइकतोपुरपत्तो ॥ २ ॥ अडवीजवोमणुस्ता, जीवोकम्मछिईपहोदीहो ॥ गठीयनय
छाण, रागदोसायदोचोरा ॥ ३ ॥ नग्गोविइपरिवुद्धी, गहियोपुणगठिउंगउतइउं ॥ स
मत्तपुरएव, जोइज्ञा तिन्निकरणाइ ॥ ४ ॥ खिईसहावियगमण, थाणूसरण तउंसमु
प्ययणं ॥ ठाणथाणुसिरेवा उंहरणंवासुअंगीण ॥ ५ ॥ खिइगमणपिवपढम ॥ था
णूसरणचकरणमपुव्वं ॥ उप्पयणपिवतत्तो, जीवाणकरणमनियट्टि ॥ ६ ॥ थाणुव्वग
विदेसो, गंठियसत्तसत्तववछाण ॥ उंसरणपिवतत्तो, पुणोविकम्मछिइविवट्टि ॥ ७ ॥

हवे ए सातगाथानो अर्थ किंचितमात्र लिखुंबुं जहइह के० जेमइहां कोइक ति
न्निमणुस्ता के० त्रणमनुप्ये, ते सहावगमणेण के० स्वजावगमनेकरी सहेजे नि
प्रयोजने जतिपहं के० अटवीपंथेजायवे ते जाताजातां घणी अटवी उलंघीगया
पठी कालाइकमनीया के० कालअतिक्रमवेकरी नयपाम्या, एटले असूरवरवतें अट
वीनो पंथ तेथी मरवालागा, एटलामा तुरति के० तुरत पत्तायदोचोरा के० बेचोर
आवी लागा. ॥ १ ॥ पठी ते त्रणमनुप्ये दिंहुमग्गतडडे के० मार्गनेतडे एट
ले मार्गनेमुखें ढुकडा वे चोरोदेखीने ते के० ते त्रणमांथी एगोमग्गाउ के० एकतो मा
र्गथकी पाठो निवर्त्यो, एटले पाठोनासीगयो तथा बीउंगहियो के० बीजानेतो ते
चोरलोकोये ग्रहणकीधो एटले पकडीलीधो, अने तइयोसमइकंतो के० त्रीजोमनु
प्यते चोरोने सम्यक्प्रकारें अतिक्रम्यो, एटले पोतानुं बलवीर्यफोरवी चोरोने हतप्र
हतकरी पुरपत्तो के० पुरप्रतेपहोतो एटले इडितस्थानके निर्जयपणे पहोतो ॥१॥
ए दृष्टांत सम्यक्त्व प्राप्तिमां उपनयजावे उतारेवे—

अडविनवो के० नवत्रमणरूप तो अटवीकहिये, तेमां मणुस्साजीवो के० म नुप्य ते त्रण उत्कृष्ट जातना संसारी जीव कहिये, अने कम्मचिर्षपहोदीहो के० क र्मस्थितिते महोदो दीर्घ मार्गकहिये, तथा गंतियजयघाण के० ग्रंथीदेश ते जयतुं स्थानक कहिये, वली रागदोसायदोचोरा के० राग अने द्वेषरूप वे चोरजाणवा ॥ ३ ॥ तेत्रणमांशी दुर्नव्य अथवा अनव्यजीव तेतो जग्गो के० पाठो जागो (ना सीगयो) तथा अचरमकरणी अथवा अपरिपक्व कारणीतो ग्रंथीदेशेज्जरह्यो, इहां ग्रंथीदेशे जव्य अथवा अनव्य उत्कृष्टो संख्यात असंख्यात कालसुधीरहे पठी ज व्यने शेष अर्द्धपुज्जपरावत्त संसाररह्योहोयतो ग्रंथीजेदे अधिक ससारीपाठोफिरे इहां ग्रंथीदेशे जव्य अथवा अनव्य रह्यांथका इव्यश्रुत निज दशपूर्वसुधी पामे इव्यचारित्रपामे

अनव्य पूर्वश्रुत न पामे, केटलाक ग्रंथोने अनुसारे तथा वृद्ध परंपरायेपण अन व्यने पूर्वश्रुत न होय, तथा कोइक ग्रंथने अनुसारे लब्धिदशपूर्वसपूर्णेने पूर्वलब्धिक हिये, ते अनव्यने न होय पण शेषहोय, पठी बहुश्रुतकहेतेखरुं पुरेपुरा दशपूर्व तथा अधिक यावत् चउदपूर्वसुधि जे जणे ते नियमा सम्यक्त्वीहोय केमके कटप नाप्यमां कह्युंते यत् चउदस दसय अनिन्ने, नियमासम्मत्तसेसएनयणा ॥ ५ ॥ इति तेमाटे उत्कट कारणयोगे बीजो पुरुपतो ग्रंथीदेशेज टकीरह्यो, तथा त्रीजो चरम करणी प्राप्त जव्य सम्यक्त्ववत् वीर्योद्भासवधते राग द्वेष परिणतिरूप ग्रंथीजेदी ने सम्यक्दर्शन रूप नगरेंज पदोचे एम त्रणेकरणनो उपनय जोईशा के० जोडवो॥४॥

हवे त्रणगाथार्ये पीपीलिकानुं दृष्टांत समजावेठे.— खिइसहाव के० जेमकृति जे पृथ्वी तेनाउपरे सहजस्वनावें कीमीफिरेठे गमनकरेठे पण तेमा कोइनी प्रेर णानथी, हवे तेमा एक कीडीतो फरती फरती थाणुजे खीलो अथवा नीतप्रमुख तिहासुधी आविने वली पाठीफरीजाय, तथा कोइक कीडीतो थाणुजे खीलो नीतते उपरें चढवामांमे तेचढीने थाणुना उपर वेसी रहे, तथा वली कोइक की डी थाणु उपरें चढीने उडीजाय, तथा कोइक कीडी खिजाथी अधवच पाठीउतरे ए सूअगीण के० मृदंगीजे कीडी तेनुं दृष्टांत जाणवुं ॥ ५ ॥

हवे एनो उपनय उपमान देखाडेठे, खिइगमणके० कृतिगमन एटले कीडीनुं पृथ्वी उपरें फरवुं खीलाना मूलसुधी आववुं ते पढमंके० प्रथमना यथा प्रवृत्तिक रण सरिखुठे, तथा कोइक कीडी थाणुंसरणचके० खिलेचढी ते सरिखुं बीजुं

मपुत्रके० अपूर्वकरणे, तथा कोष्क कीडी खीलेचढीने तेखीलाथी उपयणके० उ
डीगई ते सरिखु जीवने त्रीजुं अनिवृत्तिकरण कहिये ॥ ६ ॥

थाणुंवगंदिसेके० थाणुंजे खीजो तिहाज टकीरहेवु ते ग्रंथीदेशें रहेवुं एटले
गंवीयसत्तस्सतहवजाणके० ग्रंथीगतजीवतुं कोइकालसुधी तिहा रहेवुहोय, ते सरि
खुंजे, तथा उंसरणपिवतत्तोके० ते खीलारूप गंवीदेशथी ओसरे एटले पाबुफिरे
ते पुणोवि के० फरी कर्मस्थितिनी वृद्धिकरे फरी उत्कृष्टी कर्मस्थितिवधारे ॥७ ॥

ए सातगाथाये वे दृष्टातकह्या तेणेकरी कोइ सङ्गीपर्याप्तो पचेंडी नव्यजीव मु
क्तिजावा योग्यहोय, जेने अवहृपुगलपरियट्ट के० अर्द्धमात्र पुजजपरावर्त्त शोप
संसार वाकी रह्यो होय, एहवो एटले लक्षणेपूरण जे जीव होय ते जीव जे करे ते
आगली गाथाये कहेजे ॥ ५ ॥ इति पचमगाथार्थ

अपुत्रकरणमुग्गर, धायविदिय डुधगविजेउसो ॥

अतमुहुत्तेणगठ, नियट्टिकरणे वि सुज्जतो ॥ ६ ॥

अर्थ- हवेपूर्वोक्त लक्षणवत जीव ते ग्रंथीदेशसुधीआवे, तिहा परिणाम निर्म
लतानी वृद्धिहोय ते कहेजे, अपुत्रके० पूर्वकोइवारे पान्थोनही, एहबुजे परिणाम
तेने अपूर्वकरण कहिये, ते अपूर्वकरण कहेवुजे जे निवड आकरी अत्यंतकठिण
एवी पूर्वोक्तरूपजे ग्रंथी तेने जेदवाने मुग्गरके० वज सरिखु ठे तेने धायके०
घायेंकरीने विदियके० विहित एटले कखोजे डुष्टग्रंथीतुं जेदजेणे, सोके० तथाचूत
ते जीव प्रतिक्षणे विद्युद्धमान परिणामनी निर्मलता वंधते थके अंतर सुहूर्त
मात्रमा पूर्वोक्त अनिवृत्ति करणेगयो एटले ग्रंथीजेदकरता अंतर मूहूर्तलागे तिहां
चढते परिणामे ग्रंथीजेदकरी अनिवृत्तिकरणे जाय, इहां अपूर्वकरणनी विद्युद्धता
थकी अनिवृत्तिकरणनी निर्मलता वद्युद्धतरजे, माटे अपूर्वकरण थने अनिवृत्तिक
रणनी निन्नता थई ॥ ६ ॥ इतिपट्टिगाथार्थ

हवे ते अनिवृत्तिकरणे गयोथको जीव जे करे ते कहेजे

सो तंवरणे सुहृमोव, वयरी जय जणियपरमआनंदं ॥

सम्मत्तलहइजीवो, सामन्नेणं तुह पसाया ॥ ७ ॥

अर्थ- ॥ सोतडके० तेजीवने तिहां अनिवृत्तिकरणे अती विद्युद्ध परिणाम
ना जोरथी मिथ्यात्व मोहनीयना पुजनीस्थिति वे थाय, तेमा पहेली स्थिति अं
तरसुहूर्तवेध एटले एक अतरसुहूर्तमा खपीजाय, एटली स्थितिना मिथ्यात्व मो

हनीय नामा कर्मनादलीया ते महोटीस्थितिजे कोडाकोडी सागरोपममां पव्योप मना असंख्यातमा जागे न्यूनत्वे ते स्थितिमांथी नजीकखेचीले, एटले बीजी पव्यो पमने असंख्यातमेंनागे न्यून एककोडाकोडी सागरोपम प्रमाणहती तेमाथी अंतर मूहुर्तप्रमाण वेद्य नीची खेंचीने जूदीकीधी, वाकी शेपरही तेतुं महोटो पुज अलगोराख्यो एटले न्हानीस्थिति तथा महोटीस्थितिने वचमां आंतरोपडयो ते वारे ए बेहुस्थितिनी वचमां जे खाली जगारही तेनेअंतरकरणकहिये एम इहां अनिवृत्तिकरणना जोरथी अंतरकरण करे.

अने प्रथम स्थितिगत दलियाने अंतरमूहुर्तमां खेपवे अने महोटीस्थितिमांथी आवता दलियाने उपशमावे विष्कंजित उदयकरे अंतरमुहुर्त उदयनआवे एवाकरे एटले अनिवृत्तिकरणे वे कार्यकरे एरुतो मिथ्यात्वस्थितिना बेनागकरी अंतर करणकरे अने बीजुं अंतरमुहुर्तवेद्य प्रथम लघुस्थितिने खपावे एटले अनिवृत्तिकरणो कालपूरोथाय तेवारे आगल अंतरकरणमां धसे दोडे जाय प्रवेशकरे, तेवारे तिहां अंतरकरणे प्रथमसमये देनाथ तमारे प्रसाढे क्वायिकादिकनीपरे विशिष्टतो नही पण सामान्यपणे अल्पकालीन उपशमनामा समकितपामे, ते सीरीतेपामें ते नी उपमाकहेढे,रणेमुहमोववैरि जयजणियपरमआणदंके० जेमसुजटहोय ते रणने विपे वैरीने जीतवाथी परमानंदपामे, तेम अनादिनाजे रागद्वेषरूप महोटाशत्रु तज्जनित गुरुकर्मस्थित्यादि अनंतानुबंधिया चार वैरीने जीतवाथी परमानंद सरिखुं सम्यक्त्व जीवपामे यद्दुक्तं आवश्यकदिग्रंथे

पावति खवेऊणं; कम्माइ अहा पवत्ति करणेण ॥ उवलनाएण कहमवि, अ निन्नपुवि तउगत्ति ॥ १ ॥ तगिरिवरंच जेतु, अपुव्वकरणुग्गवज्जधाराए ॥ अंतोमुहुत्तकालं, गंतुमनियट्टिकरणमि ॥ २ ॥ पइसमयंसुप्रंतो, खविक कम्माइ तव्वहुआइ ॥ मिच्चतं मिउईणे, खीणेणुइयंमिउवसते ॥ ३ ॥ संसारगिम्मत्तवियो ॥ तत्तो गो सीसचदणरसोव, अईपरमनिवुइकर, तस्संतेलहइसम्मत्तं ॥ ४ ॥

हवे ए चारगाथाओनो अर्थ लिखेढे अनादिकालतुं संसारचक्रमां जमतोथकी जीव पावतिके० पामे, मिथ्यात्वमोहनीयादिक कम्माइके० कर्मांने खवेऊणके० खपावीने ते अहापवत्ति करेऊणके० यथाप्रवृत्तिकरणेकरिने कर्मां खेपवे; तेतुंदृष्टांत उवलनाएणके० उपलजे पूर्वोक्त नदीना प्रवाहनो पारवाण, तेना दृष्टांतेखेपवे; पठी अनिन्नपुव्विके० पूर्वोकोडवारे नेदीनथी एवीजे रागद्वेष परिणतिमई मिथ्यात्वग्रंथी तंके० ते अंधीने शीरीतेजेदे के गिरिवरंके० गिरिवरजे पर्वतते जेतु के० नेदवाने जेम व

ज बलवान्ते, तेम अपूर्वकरण परिणामरूप उग्र वज्रधाराये करीने जीवग्रंथी जे दत्तो अंतर मुहूर्तकालमां अनिवृत्तिकरणयोग्यो, पठीते अनिवृत्तिकरणे गयोथको शृं करे तेआगली गाथाये कहेते ॥ २ ॥

पइसमयके० प्रतिसमये एटले समय समयप्रते विद्युद्मान परिणामिथको ति हा, बहुलाकर्मोने खेपवे, तेवखते जे मिथ्यात्वना दलियां उदयआव्या, तेने ह्यकरे अने जे उदय न आव्या उदयाजिमुख न थया ते दलियाने उपशमावे, एटले उदी रणादिक करणवले पण विपाकोदय अथवा प्रदेशोदय जे अईशकेनही तेने उपश माव्या कहिये, एम इहा अनिवृत्तिकरणे केटलाक मिथ्यात्वना दलियाखेपव्या, अने केट.लाक उपशमाव्या, अने मिथ्यात्व स्थितिना वे जागकरी विचमां अंतरकरण कथुं ॥ ३॥ हवे ते अंतरकरण करता जे थयु ते आगली गाथाये कहेते.

संसारगिम्मके० जेम कोईक पंथी जन ग्रीष्मकालमा मथ्यान समये निर्जलव नंमा सूर्यनापडेला किरणने परित्तापे पडेला जूना अजडतापेकरी अतिव्याकुल थयो होय, तेने कोई शीतल स्थानकमले वजी तिहाकोई बावनाचदनतुं रसठाटे तेवारे ते पंथी सात्तापामे केवो आनदमग्र होय

तेम इहां नव्यजीव रूप पंथी अनादिकालतुं संसाररूप उग्र गीष्म काले जन्म मरणादिकरूप निर्जलवनमां कपायरूप उग्रतापे पीडयो रोगशोगादिरूप लू अजड एटले लुख तेणेकरी अलुज्यो (दग्धथयेजु) अने तृष्णारूप महोटी पीपासा ते णेकरी पराजव्यो थको एवो नव्यपंथी ते अनिवृत्तिकरणरूप शु-६ शरलमार्गे पा मि दूरथी अंतरकरणरूप शीतलस्थानकदेखी हर्षवतथको धसीतिहां पद्दोतो, एटले गोशीथेजे बावनाचदन तेहनोजे रस तेहनीपरें शीतल अईपरमके० अतिशय परमं उत्कृष्ट अनिवृत्तिकरण परम सुखसाताकरण एहबु तस्सतेके० ते अनिवृत्तिकरणे अंते अने अंतरकरणे प्रथमसमये धनसारवत् शीतल सम्यक्त्वपामे तेवारें अनेतातुं बंधी तथा मिथ्यात्वकृत परित्ताप सर्व मटीजाय गाढ तृष्णा पीपासा मटीजाय॥४॥

इहां अनादिकालतुं परमशत्रु परम दु खदातारूप एहवा मिथ्यात्वतुं दु,ख अं तर मुहूर्तसुधी दफेथाय (दूरथाय) अनादिनो प्रथम दुखांत इहांथयो इहां सि द्धांत सैलीमां कालनिष्ठायै गुणदोष प्राप्ति तथा विरह आश्री. चारजांगा कह्यांजे तेना नामकहेते ? अनादिअनंत १ अनादिसांत २ सादिसांत ३ सादिअनंत ए चारजांगेतुं अर्थकहेते जेने मिथ्यात्वादिक अनादिनुंजे अने ते किवारें मट ते पण नही एवा अत्रव्यादिकने अनादिअनंत प्रथमजागोठे अने, जे नव्यजीवें

प्रथम सम्यक्त्वपाप्म्युं तेवारे ते जीवें अनादिना मिथ्यात्वतुं अतश्चाणुं तेमाटे तेने अनादिसांत बीजोनांगो जाणवो, तथा जे जीव सम्यक्त्वपामी वली सम्यक्त्व वमन करी मिथ्यात्वे गया तेवारे मिथ्यात्वनी आदिष्यी, पठी केटलोक काल मिथ्यात्वे रही वली शुनसामथीना षोडशी फरी सम्यक्त्व पाप्म्यो तेवारे मिथ्यात्वनो अंतथ यो ए त्रीजो सादिसांतनामा नांगोषयो, तथा चोथो सादिअनंतनामा नांगो तेह्ना यिक सम्यक्त्वादि ह्वायकजावे जेने जे गुण प्रगट थया तेगुण तेने होय पण मिथ्यात्वने न होय, केमके ग्रंथी जेद कखापठी जे मिथ्यात्व होय, ते तो सादिसात नागे ज होय, माटे जेने सम्यक्त्वादिक ह्वायकगुण प्रगटचा ते सादि, अने ते गुणआ व्या जाय नही ते अनंत, एटले नव्य मिथ्यात्वने त्रणे नांगाहोय, अने अत्रव्य मिथ्यात्वने एकज अनादिअनंत नांगोहोय, यहुक्तः—मिष्ठत्तमनवाण, तमणाश्मणत येसु णेयवं॥नवाण तमणाश्, सपथ्यवसित्यु सम्मते॥१॥अर्थ.—अत्रव्यने मिथ्यात्व अनादि अनंत नागेहोय, अने नव्यने अनादि सपर्यवसित नागें मिथ्यात्वहोय इति॥१॥४॥

हवे सम्यक्त्व केटले जेदेंहोय ते आगमनी गाथायें कहेते.—

तंचेगविहंछविहं, तिविहं तह चउविहंच पंचविहं ॥

तठेगविहं जंतुह, पणीय जावे सु ततरुई ॥ ८ ॥

अर्थ.—एक प्रकारे वे प्रकारे त्रण प्रकारें चारप्रकारे अने पांचप्रकारे पण आगममां सम्यक्त्व कहुंते, ते जेदोना स्वरूप विवरीने कहेते.—तठेगविहंके० तिहां एकविध सम्यक्त्व ते जके० जे हे परमेश्वर तुहके० ताह्रा पणियंके० प्रकास्या जे जीवादिकजाव पदार्थ तेनेविपे तत्वरुचिहोय अर्थात् परमार्थ बुद्धिहोय, शकल दोषरहित अने शकलगुणे संपन्न एहवा अरिहंतदेवे नाप्युंजे तत्वते सत्यठे एहवी रुचि परमार्थबुद्धि, तदू प आगममां कहुंते. 'तमेवसच्च निस्संकं जजिणोहिपवेइयं' इत्यादि हरुचिरूपः यहुक्तं योग शास्त्रेः—रुचिजिनोक्ततत्वेपु सम्यक्श्रद्धानमुच्यते जायतेतन्निसर्गेण गुरोरधिगमेनय ?

ए उपला श्लोकनो अर्थ करेते—श्री जिनेश्वर नापित जीवाजीवादिक तत्वनेविपे जे सम्यक्श्रद्धान के० निश्चल प्रतीत तेने तत्वरुचि कहियें, ते तत्वरुचि श्रद्धान मिथ्यात्वदलना रसनी मंदताये जातिस्मरणादिक निमित्ते ईहापोह करता करतां सहेजे पोतानीमेळें तत्वश्रद्धान पामे ते निसर्ग सम्यक्त्व कहेवाय, अथवा शुनशु रुनी उपाशना करतां सिद्धातवाणी साजजतां जे पामे ते उपदेशिक श्रद्धान कहिये ॥ १ ॥ इत्यादिक लक्षण जे तत्वरुचि ते एकविध सम्यक्त्व कहिये ॥ ८ ॥

हवे द्विविध सम्यक्त्व त्रणप्रकारें कहेले-
 ॥

द्विविधं तु द्वयं चावा, निश्चय व्यवहारउवि अहवावि ॥

निरसग्गुवएसाउ, तुहवयण विऊहिनदिठं ॥ १० ॥

अर्थ - हे जिनेश्वर ताह्रा चाप्याजे षादशांग तेना जाण एहवाजे प्रवीण पु
 रुप तेणे एक इव्य सम्यक्त्व अने बीजुं नाव सम्यक्त्व ए वेप्रकारें सम्यक्त्व क
 ह्युठे, अथवा एक निश्चयसम्यक्त्व अने बीजुं व्यवहारसम्यक्त्व एरीते पण वे प्र
 कारकह्याठे. तथा वली एक निरसर्गसम्यक्त्व अने बीजुं उपदेश सम्यक्त्व ए पण
 वे प्रकार कह्याठे. एम त्रण प्रकार द्विविध सम्यक्त्वना ते तुहवयण के० ताह्रां
 वचनना विकहिके० वेता एटले आगमार्थना जाण पुरुपे निदिठंके० देखाड्याठे ए

हवे त्रणप्रकारे द्विविधसम्यक्त्वकह्यु तेनालक्षण कहेले -

तुह वयणे तत्तरुइ, परमउ मजाणउवि दवगयं ॥

सम्मं चावगयं पुण, परमउ वियाणउ होई ॥ १० ॥

अर्थ - हेप्रच तुह के० ताह्रां वयण के० वचननो परमउ के० परमार्थ जे
 रहस्य तेनो मजाणउवि के० अजाणठे, पण ताह्रा वचननेविपे तत्तरुइ के० त
 त्वरुचिठे, केमके जे राग द्वेष अज्ञान ए त्रण दोपनो नाशयवाथी वीतरागथयाते
 असत्य चापण करेनही, माटे श्रीजिन जापित वचन सर्व सत्यठे, एम ते जाणेठे
 तो एवीजे तत्वरुचि ते दवगय के० इव्यगत सम्यक्त्व कहिये यडुकं सिद्धाते -जावे
 एतद्वहंतो अयाणमाणेविसम्मत्त, इतिवचनात् जे सूक्ष्म अर्थने नधीजाणतो एह
 वा अजाणनेपण जो नावे सद्वहणाठे के जे अरिहंत ते शुद्ध जापण करनाराज
 ठे एहवी उवे प्रतीतठे तो अजाणपुरुषने पण इव्यथी सम्यक्त्वठे.

बीजुं चावगयं के० जावगत सम्म के० सम्यक्त्व ते पुण के० वली परमउवि याणउ
 के० परमार्थना जाणपुरुषने होई के० होय. यडुकं सिद्धाते -जीवाइ नव पयठे, जो
 जाणइ तस्त होइ संमत्त इतिवचनात् माटे जे नव्यजीव जीवादिंक नवेपदार्थने सम
 स्त नय गंम जंग प्रमाण निक्षेप प्रमुख स्याद्वाद सैलीपूर्वकजाणे, सद्वहे, ते नव्य
 जीवने चावगत सम्यक्त्व कहिये ॥ १० ॥ एमइव्यसम्यक्त्व तथा चावसम्यक्त्व कहुं

हवे निश्चयव्यवहार रीतें वेप्रकारनासम्यक्त्वनु लक्षण कहेले -

निश्चयउसम्मत्तं, नाणाइमयण्य रसुहपरिणामो ॥ इ

यरंपुण तुहसमए, जणियंसम्मत्तहेऊहि ॥ ११ ॥

अर्थ.— ज्ञान दर्शन चारित्ररूप शुद्ध श्रद्धा जासन रमणता पूर्वक रत्नत्रयीरूप आत्मानुंजे शुद्धपरिणाम तेने निश्चयउत्समम्भक्तके० निश्चय सम्यक्त्व कहिये, ए टले आत्मानेज निश्चय सम्यक्त्व कहिये, केमके आत्मा ने आत्माना गुण ते कां ईच्छदानधी परिणामे अनन्यठे एकठे गुण गुणी नावें अचेदेज रह्याठे केमके अ नेदपरिणामे परिणाम्योजे आत्मा ते तद्गुणरूपज कहेवाय. यदुक्तं योगशास्त्रेः— आत्मेवदर्शनज्ञान चारित्र्याण्यथायते ॥ यस्तदात्मैवस्वगुणैः शरीरमधितिष्ठति॥१॥

प्रायें अप्रमत्तसाधुने निश्चयनय सम्यक्त्व पूर्णकहेवायठे केमके जेवुं जाण्युं ते वोज त्यागनावठे अने श्रद्धापण तदनु रूपठे माटे स्वरूपोपयोगी जीवने आत्मा तेहिज ज्ञान दर्शन चारित्रठे कारणके आत्मा रत्नत्रयात्मक अनेदनावें शरीरमां रह्याठे, माटे रत्नत्रयीने शुद्धोपयोगे वर्त्तताजीवने निश्चय सम्यक्त्व कहिये

तथा इयरेके० इतर ते बीजुं व्यवहारसम्यक्त्वठे. ते हे प्रभु तहारा सिद्धांतने विषे सम्यक्त्वना हेतुजे मिथ्यात्वीनु संस्तव परिचय प्रसुख जे अतिचारादिक दो पठे तेना त्यागधी थाय तथा देव गुरु नक्ति बहुमान योगे शासनोन्नति हेऊहिं के० हेतुयें थाय यदुक्त गुणस्थानक विचारग्रंथे - देवेगुरुचसंपेच सद्भक्तिशासनोन्नति ॥ अन्नतो पिकरोत्येव स्थितिस्तूर्येगुणालये ॥ १ ॥ अर्थः— देव गुरु तथा श्री संघ तेनी बहुमान सहित नक्तिकरे शासनोन्नतिकरे अवरिति गुणगणे रह्योथको पण आगमोक्त विधिमागें निरतिचार सम्यक्त्वप्रवृत्ति सहितहोयतेने व्यवहार सम्यक्त्व कहियें ॥ ११ ॥

हवे त्रीजा वे प्रकारे सम्यक्त्व कहेठे तेमा एक निसर्गें सम्यक्त्व प्राप्ति अने बी जी उपदेशजन्य सम्यक्त्व प्राप्ति. इहां शिष्यपूठेठेके निसर्गके० सहेजे सम्यक्त्वनी प्राप्ति केवीरितेथाय? तेवारे गुरु दृष्टांत गर्जित सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय कहेठे—

जल वत्त मग्ग कुद्व, जराइ नाएण जेणपन्नत्तं ॥ नि
रसग्गुवएसजवं ॥ समत्तं तरस्स तुप्प नमो ॥ १२ ॥

अर्थः— ए गाथामां पांच दृष्टांत कह्याठे, तेमां जलनो तथा वखनो अने कोड्व नो ए त्रणदृष्टांत आगल पुज त्रय नावनावसरे कहीवतावसे. अने मार्गनी तथा ज्वरनो ए वे प्रसूतठे ते कहेठे—जेमकोईक पंथी मार्गधी त्रष्टथयो पठी बीजाकोई ना उपदेश पास्याविनाज नमतो नमतो पोतानीमेले सहेजे मार्गचढे, अने कोईक पंथ त्रष्ट थयलो पंथी तथाविध पापना उदयधी कोई सज्जननो योग न मलवा थी मार्ग पामेजनही. तिहांतुंतिहांजरहे अनेत्रीजोपुरुष बीजानेपूठीमार्गपामे

तेमज वली ज्वरनो दृष्टांत कहेते— जेम कोईकने तापज्वर आव्यो ते कोईने औपध कखाविनाज पोतानी मेले जतोरहे, अने कोईकने तो औपध चूर्ण धागादि (दोरादिक) प्रयोगकरवाथी ज्वरजायते, तथा कोईकनेतो असाध्यज्वर कोईरीतें जायजनही एरीते ए वे दृष्टांत सम्यक्त्व प्राप्तिविषे जोडवा ते आवीरीते—

कोईक शुक्लपद्मी कालादिक कारण परिपाकवत चरमावर्त्ति चरमकरणी एवो नव्य जीव ते सहेजे आपे आप विचारतेथके सम्यक्त्वपामे ते निसर्ग सम्यक्त्व कहिये, तथा कोईक जीव पूर्वोक्त कालादिक योग्यतावत होय पण सजुरुने योगे उपदेश सानली अनादिनी जूलमटाडी देव गुरु धर्म सद्वहणारूप सम्यक्त्वपामे तेने उपदेश सम्यक्त्व कहिये एरीते नाएणके० ए न्याये (दृष्टांत) द्वाराये निसर्गोद्भव सम्यक्त्व तथा उपदेशोद्भव सम्यक्त्व ते हे प्रभु तुमे कछु परूप्युं तेमाटे परमोपकारी एहवा तु जने माहरो नमस्कार थाओ ॥ १२ ॥ एम वेप्रकारतुं सम्यक्त्व त्रण रीते कछु.

हवे त्रणप्रकारे सम्यक्त्व कहेते—

तिविहं कारग रोअग, दीवग जेएहि तुह मय विऊहि ॥

खाउवसमोवसमिय, खाइय जेएहि वा कहियं ॥ १३ ॥

अर्थ— हेनाथ तुहमय के० तहारा मतना विऊहि के० वेता जे गणधरा दिक, तेणे कारक रोचक अने दीपक एम तिविह के० त्रण जेएहि के० प्रकारें सम्यक्त्व कछुते, वा के० अथवा ह्यायोपशमिक उपशमिक अने ह्यायिक एरीते पण त्रणजेवें सम्यक्त्व कहियंके० कछुते ॥ १३ ॥

हवे कारकादिक सम्यक्त्वना जहण कहेते—

जं जह जणियं तुमए, तं तह करणं मि कारगो होइ ॥

रोअग सम्मतं पुण, रुइमित्त करंतु तुह धम्मं ॥ १४ ॥

अर्थ— हेनाथ जे जेम यथार्थजावे विधिमार्ग तुमे जणियं के० प्रकाशयो ते तेमज आझाने अनतिक्रमतोथको एटले तुमारी आझासहित आगमोक्त शैलीपूर्व क यथाशक्तिये दान पूजा व्रत नियमादिक करे तेने कारक सम्यक्त्व कहिये, तथा पुन के० वली वीजुं रोचक सम्यक्त्व, ते तुहधम्मके० तहारा धर्मनेविषे रुईमित्तकरतुके० रुचिमात्रकरे, श्रीजिनोक्त धर्मकरवानी इहारहे शुद्धश्रद्धाराखे कोईने धर्म प्रवृत्ति करतोदेखीने रूडुंमाने परतु पोते जारीकमीं माटे क्रियानुष्ठानादिक करी शके नही तेने रोचक सम्यक्त्व कहिये ॥ १४ ॥

हवे दीपक सम्यक्त्व कहेते:-

सयमिह मिच्चद्विधी, धम्मकहाईहिं दीवइ परस्स ॥
दीवग सम्मतमिणं, जणंति तुह समय मईणो ॥ १५ ॥

अर्थ:- सयमिह के० स्वयं पोतेतो मिथ्यादृष्टी अजव्य दुर्नेव्य होय, पण अं गारमर्दाकाचार्यनी परे धम्मकहाईहिंके० धर्मकथादिकेकरी आदिशब्दथी सामायिता एना अनुष्ठानना अतिशयेकरीने एटले दंजरचना विशेषेकरी, पर जे बीजा जव्य नइक जीवोहोय तेने धमेंकरी दीपावे, एटले आगला जीवोना घटमां प्रकाशक रावे परंतु पोताने अंतरंगपरिणामें श्रद्धानहोय एहवाने हे प्रभु तहारा समयजे सिद्धांत तेना जाणपुरुषो दीपक सम्यक्त्व कहेते

इहां शिष्यें प्रश्नकछुंजे पोते मिथ्यात्वी मिथ्यात्वे वासित अंत करण वालाने सम्यक्त्वी केमकहोतो ? तेवारे गुरुकहेते हे शिष्य, जो मिथ्यापरिणामीठे तोपण आ गला प्राणीउने धर्म पमानवानो हेतुआयठे, अथवा शासनोन्नतिकरेठे, माटे कारणे कार्यनो उपचारकरी सम्यक्त्व कहिये, सम्यक्त्वनो हेतुठे माटे सम्यक्त्व कहिये, यइ कं सिद्धांते.-विहियाणुछाण पुण, कारण मिहरोयगं तु सद्दहणं॥मिच्चद्विधीदीवइ, जत तेदीवगं ततु ॥१॥ अर्थ -विहियाणुछाण के० विहित एटले नीपजाव्युंठे कछुंठे आग मानुसारें धर्मानुष्ठानजेणो ते कारक सम्यक्त्व कहिये, अने रोयगं के० रोचक सम्यक्त्व ते शुद्धसद्दहणारूप रुचियायं तेने कहिये, वली मिच्चद्विधी के० पोतें मिथ्यादृष्टीयको परने तत्वदीपावे, परने सम्यक्त्व प्रकाशकरे तेने दीपक सम्यक्त्व उपचारें कहिये॥ १५

हवे बीजीरीतें प्रकारांतरे त्रणजेद सम्यक्त्वना कहेते.-

अपुव्वकय त्तिपुंजो, मिच्च मुइन्नं खवित्तुअणुइन्नं ॥

उव्वसामिय अनियट्टि, करणाउं परं खउंवसमी ॥ १६ ॥

अर्थ:- इहां त्रण सम्यक्त्वनी विगत ए प्रकरणेविषे प्रकरणकारना आशयथी अवचूरिकारनो आशय निन्नपमेठे. पण ठीक शब्दार्थ मलतोनथी. माटे आशयक विशेषावश्यक अर्थदीपिका सुदर्शनाचरित्र कटपनाप्य प्रमुखग्रंथोने सम्मत प्रकरणकारनो आशयठे ते विगत लखियेठे -प्रकरणकारें सिद्धांत तथा कर्मग्रंथिक ए वेदुना अनिप्राय ग्रहणकरी प्रकरण रचनाकरीठे तेमां सिद्धांतकारनो ए आशय ठे. जे अनादि मिथ्यादृष्टीने कोई तथाविध सामग्रीनो सद्भाव एटले प्राप्तिर्ष्यं य थाप्रवृत्तिप्रमुख त्रणकरण करता अपूर्वकरणना अथ्यवसायथी ग्रंथी जेदी शेषमि

प्यात्व स्थितिना त्रण पुंज करी प्रथम शुद्धपुञ्जनेवेदे ए त्रणपुंजनी स्थापना करि येतैये.—(० शुद्धपुज • मिश्रपुज • अशुद्धपुज) ते कारणथी उपशम सम्यक्त्वपा म्याविनाज प्रथम ह्योपशम सम्यक्त्वपामे, तथा वली कोईक नव्यजीव यथाप्रवृ त्वादिक करणत्रय अनुक्रमे पूर्वोक्तविधियेकरी अंतरकरणने प्रथम समये उपशम सम्यक्त्वपामे पण उपशमें रह्यो पुजत्रण करेजनही, अंतरमुहूर्त काल प्रमाण शु द्धनिर्मल अपौञ्जलिक उपशमनावेदी तिहांथी चलायमान थयोथको अवश्य मि प्यात्वेंजाय, अपरपुंजतो ठेनही माटे इन्द्रिकाने दृष्टातेफरीपाठो संगणजे मिथ्या त्व स्थानकथी आब्यो तेफरी मिथ्यात्वेज जाय, जेम इन्द्रिजे कोईजातनी लट इय ल एककाष्टादिक पदार्थथी आगल जावाने चाहनाकरे त्यारे आगलागात्रनु विहे प के० विस्तारतुकरे, आगला शरीरनाजागने चारेतरफविस्तारता स्थानक अणपा मता पाठीपूर्वस्थानके जिहाथी सरीर उपाडयुंहुतु तिहाजआवे यडुक्तं कटपनाप्ये— आलंबणमलहति जहस्रक्षणमुचएइजिया ॥ एवञ्चकयतिपुजो मिहंचियउवसमी एइ ॥ १ ॥ ए गाथानो अर्थ सुगम प्रथम लखाइजगयोते

एम स्थानांतरगमनना नाव माटे उपशम सम्यक्त्वी मिथ्यात्वेज जाय ए सि द्धतिकनो अनिप्रायठे, तथा कर्मग्रंथ वाला एममानेठे के जेकोई अनादि मि प्यादृष्टी संसारीजीव जेवारे चरमावर्त तथा चरमकरण करवाने अवसर पहेला सम्यक्त्व प्राप्तिकालेज यथा प्रवृत्त्यादि करणत्रय करवा पूर्वकज अंतरकरणकरे, तिहां उपशम सम्यक्त्वपामी अवश्य त्रणपुंज करे, एटले यथाप्रवृत्तिकरणे ग्रंथीदे शेआवे, तथा अपूर्वकरणे ग्रंथीजेदकरे, तथा अनिवृत्तिकरणे मिथ्यात्वस्थितिना वे जागकरे, एकअंतरमुहूर्तवेद्य न्हानीस्थितिकरे, बीजी देसूणी कोमाकोडी प्रमाण म होटी स्थितिकरे एवी वे स्थितिकरे

एरीतें वे स्थितिकरी तेमांथी न्हानीस्थिति खेंचीलेई नेवचमां अंतरकरे एटले वे स्थि तिनीवचमां खाली जायगारहे एमकरे, पठो न्हानीस्थितिने अनिवृत्तिकरणना अथ्य वसायेकरी खपावीने, पठो अंतरकरण जे वे स्थितीनावचें खाली जायगारहीठे, तेमां प्रवेशकरे, त्या अंतरकरणमां प्रवेशकरवाने पहेले समयेज उपशम सम्यक्त्व पामे, ते अंतरकरणश्रोलंबता अंतर मुहूर्त प्रमाण कालजाय तेनेज उपशम सम्यक्त्व कहिये.

हवे अंतरकरणमा वर्ततो औपधसरिखु जे उपशम सम्यक्त्व, ते सम्यक्त्वेकरी ने कोदशावा धान अथवा मलीनजल अथवा मलीनवस्त्र ए त्रयोना सरिखुंजे मि प्यात्व मोहनीयकर्म तेने सोधीने त्रणेनागे वेचीनाखे, तेमां पहेलो जागतो शुद्ध

निर्विष तथा स्वप्न निर्मल जाणवो अने बीजोनाग अर्द्धशुद्ध तथा थोडोच गदलुं अने थोडोमलीन जाणवो वजी त्रीजो नाग संपूर्ण अशुद्ध यथास्थित तथा कलु प अतिमोहोलो तथा मलीन गलीच जाणवो हवे ए त्रणे वस्तुना दृष्टांते विवरिने विपदरीतें देखाडेढे:-

जिम मीणसहित कोइव धानने उलजलादिक औपधनायोगे एकनाग मीणर हीतकखो, बीजोनाग अर्द्धशुद्ध कखो, अने त्रीजोनाग जेमहतो तेमनोतेमरह्यो, ते अशुद्धे, तथा जेम कोईक वस्त्रमलीनहतुं ते हारादिक औपधनायोगे अतिस्वप्न निर्मल थाय, बीजुं थोडाऔपधानो प्रयत्नमाटे थोडुंनिर्मलथाय अने त्रीजुं मलीनज रहे, तथामलीन जलजेमनिर्मल फलादिकनायोगे अतीस्वप्नथाय, बीजुं थोडुंनिर्मल थाय त्रीजुं मलीनज रहे, एम त्रण दृष्टांतें अंतरकरण गत उपशमसम्यक्त्वरूप औपध नायोगे करी मिथ्यात्वमोहनीयना दलियां मिथ्यात्वरूप मीणमां नखांहातां तेनो ए क नागतो शुद्धकखो मीणरहीत कखो, अने बीजोनाग अर्द्धमीणरहीत थयो, एट लामां अंतरमुदूर्तना कालनीसमाप्ति थई तेथीते बीजो नागतो अर्द्धशुद्धथयो अने त्रीजोनाग शुद्धकरवानेतो पोची शक्योज नही तेथी ते त्रीजो नागतो संपूर्ण मिथ्यात्वरूप मीणसहित विपथी नरेलोज रहिगयो.

हवे ते त्रणपुजनां त्रण नामथयां, तेमां पहेलो शुद्धपुजते दर्शनमोहनीयक हिये, हवे ते जीव अंतरकरण गत उपशम काल, पूरोथयेथके एटले जेटलोवखत अंतरकरणनो तेटलोज वखत उपशम सम्यक्त्वनोढे ते उपशम सम्यक्त्वनोकाल अंतरमुदूर्त्तप्रमाण पूरोथयेथके जो परिणामनी विद्युद्धीरहे तो शुद्धपुंजनो उदयथा य, तेनुनाम ह्योपशम सम्यक्त्व कहिये, एटले मिथ्यात्वरूप मीणामां नरेलां द लियांजे शुद्धकखां तेहनो उदय ह्योपशम सम्यक्त्वकहियें.

इहां शिष्य प्रश्नकरेढे के जो निर्विषदलियांकखां तोपण जातेंते दलियांपोते मिथ्यात्वनांढे, निर्विषथीतो रस रूप गंगादिक गयुं पण गुणने आवरणकरनारां द लियांतो तेमना तेमजढे, तो सम्यक्त्वश्रद्धा नासना केमथाय ? तेवारें गुरुकहेढे के जेमकोई अन्नक अथवा अपर पाषाणादिक ते जातेंमलीनहोय तेनेकोई औपधा दिक योगेकरी ते पाषाणादिकमांथी कालासरूप कलुपता काडीनाखे तेवारे ते दल निर्मलथाय, पढीतेने आतरेजे वस्तुरहीहोय ते सर्वदीगमांआवे, पण ठानीरहेनही तेमज इहां दर्शनमोहनीयकर्मना दलमध्ये अशुद्धपरिणतिरूप मिथ्यात्व विपेकरी मलीनथयेळुं अत्यंतकालासपणुं नरेळुंहतुं ते उपशम सम्यक्त्वरूप औपधनी

महीमाथी दूरथाय, पढी निर्विपदलियांरह्या ते स्वह्व अत्रपटल सरिवांठे ते निर्मे लदलिया काईश्रद्धा जासनमा विपरिणाम करेनही, तेथी जो जाते मिथ्यात्वदलि याठे तोपण निर्विपडे (निर्मलठे) तेथी तेने ह्योपशम सम्यक्त्व कहिये

यद्भक्तं विशेषावश्यकवृत्तौ --तद्यथेसुप्रदीपस्य स्वज्ञात्रपटलेगृहं ॥ नकरो ल्यावृत्ति काचि देवमेतद्गुणैरपि ॥१॥ एकपुंजी द्विपुंजी च त्रीपुंजी वाननुक्रमात्; एने पश्चानुपू र्वेलेव एटले त्रीपुंजी द्विपुंजी एकपुंजी दर्शन्त्युनयवाश्वेव मिथ्यादृष्टिश्चकीर्त्तित ॥ २ ॥ इहा लोकनेविपे जेम अत्रखना पडातरे रहेलुं दीपक सर्वस्थानके उद्योतकरे, पण तिहां अत्रक जोआडोठे तोपण काई न्यून प्रकाश दीपकनुं करीशकेनही, ते वीजरीते सोधेला मिथ्यात्वदल तेपण काई न्यून श्रद्धाकरेनही.

तिहा त्रिपुंजी ते सम्यक्दर्शनी द्विपुंजी ते मिश्रदर्शनी अने एक पुंजी मिथ्या दृष्टिहोय, तथा उपशम सम्यक्त्वथी आगलें जो काईक उज्वल काईकमलीन एह वा मिश्रपरिणामथाय तो मिश्रमोहनीयनो उदयथाय, एटले मिश्रपुंजनो उदय थावे अनेजो अनतानुबंधीना उदय बलथकी अतिमलिन परिणामथया तो मि थ्यात्व मोहनीयनो उदयथाय एटले अशुद्धपुंजनो उदयथावे

एरीते संसारमा केटलाक त्रीपुंजी केटलाक द्विपुंजी केटलाक एकपुंजी, तेमां ह्योपशमो त्रिपुंजीहोय तथा मिथ्यात्व ह्य करवाने सम्यक्त्व मोहनीयनो उज्व लताकरे तेवारे द्विपुंजीहोय, अथवा अपुंजी एटले पुंजरहित पण ह्यायक सम्य क्त्वीहोय तथा जिवारें मिश्रउदेलन करे अथवा क्लेपवे तेवारे एकपुंजीज होय इहा पुंजत्रयनो संक्रम कल्पनाथे एमकहोठे प्रवर्द्धमान परिणामी जे सम्यक्त्वीहोय ते मिथ्यात्व दलिक पुंजने आकर्षिने सम्यक्त्वपुंजमा अथवा मिश्रपुंजमा सक्र मावे तथा मिश्रपुंजने सम्यक्त्वी सम्यक्त्वमा सक्रमावे.

तथा मिथ्यादृष्टी मिश्रपुंजने मिथ्यात्व पुंजमांनाखे अने सम्यक्त्व पुंज मि थ्यात्वपुंजमां सक्रमावे, पण मिश्रपुंजमा न नाखे, तथाचोक्तं--मिहत्तंमिअखीणे ति पुंजीसम्मदीष्टिपोनियमा ॥ खीणमिउमिहत्तं दुएगपुंजीवखवगोवा ॥ १ ॥ एरीते कर्मग्रंथिकमते प्रथम उपशम सम्यक्त्वजपामे अने ते उपशमि नीयमा त्रणपुंजकरे, उक्तंच कर्मग्रंथे--कम्मगंथेसुधुव पढमावसमी करेइ पुज तियं ॥ तवडिउपुणगहइ स म्मेमीत्तमिभिडेवा ॥१॥ अर्थे सुगमठे एरीते सिद्धांतिकमार्गे तथा कर्मग्रंथिकमार्गे निन्न निन्न आशय ठे ते प्रकरणकरनारे तो बेहुना आशयलेई प्रकरणनी रचना करीते.

तिहा सिद्धांतकारना आशये कोई मिथ्यादृष्टी यथाप्रवर्त्यादि करणत्रये करी

अंतरकरणकरे तिहा अंतरकरणमां उपशम सम्यक्त्वपामे पण पुंजत्रय करेनही अंतरमुहूर्त्त उपशम सम्यक्त्ववेदीने पठी मिथ्यात्वेजाय ए आशय प्रकरणकारे सातमी गाथामा अनिवृत्तिकरणे अंतर करणकरी सामान्ये मात्र उपशम सम्यक्त्वपामे पण पुंजत्रय न कखां एमकखुळे, वली कोईजीव यथाप्रवृत्तिकरण करी पठी अपूर्वकरणे ग्रंथोनेही पुंजत्रयकरी अनिवृत्तिकरणे क्योपशम सम्यक्त्वपामे ए आशय अपुवक यत्तिपुंजो एम सोलमी गाथामा कह्योळे, एटले अनादि मिथ्यादृष्टी प्रथम क्योपशम सम्यक्त्वजपामे ए सिद्धांतसैलीळे

तथा कर्मग्रंथाजिप्राये तो अनादि मिथ्यादृष्टी जीव पहेलां करणत्रयपूर्वक अंतरकरणे उपशम सम्यक्त्वधीर्षने त्रणपुंजअवश्यकरे. पठी जे पुंजनो उदयथाय ति हांजाय एटले कोई खुद्दपुजेजायतो क्योपशम सम्यक्त्वधीषाय तथा जो मिश्रपुंज नो उदय थायतो मिश्रगुणवाणेजाय अने अशुद्धपुंजेगयो तो मिथ्यात्वधीषाय ए अजिप्राय कर्मग्रंथसेलीनो ठे, ते ग्रंथकारें सत्तरमीगाथाये अकयतिपुंजोउत्सर इत्यादि आशयकह्यो, एरीते सिद्धांतिक तथा कर्मग्रंथिक वेद्दुएमली उपशम सम्यक्त्व पामे वाना वे मार्गकह्या तथा क्योपशम सम्यक्त्वपामवाना पण वे मार्गकह्या, एटलीवा त प्रसंगथी कही हवे. मूलगाथानो शब्दार्थ लिखियेळे.

अपुवकयत्तिपुंजो इत्यादिक अपूर्वकरणे कखाळे त्रणपुंजजेणे मिश्रजे मिथ्यात्व तेनादल उइसू के० उदयआव्या तेने क्येपवीने क्येकरीने अने अणुइन्नं के० उदयन आव्या जे मिथ्यात्वनादल तेने उपशमावीने अनियट्टीकरणाउ परखउवसमी के० अनिवृत्तिकरणथी आगल क्योपशम सम्यक्त्व पामे ॥ १६ ॥

हवे कर्मग्रंथनी सेलीये उपशम सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय कहेळे.-

अकय ति पुंजो उत्सर, दव इलिय दद्व रुख्ख नाएण ॥

अंतरकरणुवसमित्त, उवसमियोवाससेणि गउ ॥ १७ ॥

अर्थ:- अकयतिपुंजोत्ति के० जेणे त्रणपुंज पूर्वेकखानथी एटले पुंजकखाथी आगल जेम वनमा दावानल बलतो उत्सरके० उखरखेत्र एटले जिहा खारीजमी न रणरूपहोय अथवा केवल वेणुएटले रेतिनीचूमिहोय सुकी नदीप्रमुखनी, तेने उत्सरचूमिकहिये; तथा जेचूमिउपर पूर्वदवलागी गयोहोय अने घासलाकडी तथा रुख्य के० जाडप्रमुख बली साफअई गयाहोय ते दवदग्ध चूमिकहिये एटले एक उत्सरचूमि अने वीजी दवदग्धचूमि ए वे ठेकाणा जो बलती ईलियके० अग्नीपामें

तो पोतानीमेले उजवाडजाय नाएणके० एन्याये मिथ्यात्व वेदनरूप जे दावानल ते अंतरकरणरूप ऊखरखेत्रपामीने सहेजे पोतानीमेले उवसमिउके० उपशमि जाय उजवाडजाय तेथी जीव उवसमिउके० उपसम्यक्त्व पामे.

केमके पूर्वे अनिवृत्तिकरणना जोरथी जे जे मिथ्यात्वना दलिया उदयआ व्याते क्यकीधा अने जे उदयनथी आख्या ते उपशमाव्या, एटले आवता रोकी राख्यां तथा विष्कंजित, उदयकखा अने वली दूरेराख्यां एम विचमां अंतरमुहूर्त गम्य निर्मल, प्रदेशोदीरणादि करण ने अयोग्य एह्नु अंतरकरणकीतुं

इहां शिष्य प्रश्नकरेते के पूर्वे क्योपशम सम्यक्त्व पामवाने अक्सरे एम कस्य हतुं जे उदयआव्या मिथ्यात्वदल ते क्यकीधां अने उदय न आव्या ते उपशमा व्या ए लक्षणकस्य हतुं अने वली उपशम सम्यक्त्व काले पण एमजकहोठो तो क्योपशम तथा उपशममा काई, फेरपड्योनही तेमठता गणतिमां जूदाकेम कहोठो?

हवे गुरु उत्तर कहेते के क्योपशममा तो शुद्धदलियानो उदयठे तेमां कोई मिथ्यात्व पुंजमाथी दलियुंजलीने उदय आवे ते प्रदेशोदयठे इतितत्व.

हवे ते अनिवृत्तिकरणना बलथी मिथ्यात्वनी एक न्हानी अने एक महोटी एवी वे स्थितिकरी तेमां पेली लघुस्थितिने द्वेषवी अने बीजी महोटी स्थितिने दूरथंजावी विचमां अंतरकखो, तेमां प्रवेशकरे तेने पहेलेसमयें उपशम सम्यक्त्व होय, पठीते उपशम सम्यक्त्वना जोरथी अंतरमुहूर्तमां शेष विष्कंजितउदय मिथ्यात्व स्थिति, तेना शुद्ध अर्द्धशुद्ध अने अशुद्ध एवा त्रणपुंजकरे एटले उपशम सम्यक्त्वनो कालपूरोथयो कहेवाय पठीते जीवना जहेवा परिणामरहे तेवा पुंज नो उदयथाय ए उपशम सम्यक्त्व एकजवार होय अने ए सहज मोहनुंबीजठे.

इहां प्रथम सम्यक्त्व पामतां कोईक जीवतो एकलुं सम्यक्त्वज पामीने रहि जाय अने कोईक जीव सम्यक्त्वसाथें देशविरतिपणुं पण पामे अथवा सर्वविरति पणुपण साथेंज पामे. यडुक्तं वृहत्सतकचूषौ - उवसमसम्मदिही अंतरकरणे विद्यो कोई देस विरयंपि लनेइ कोई पमत्तापमत्तजावपि सासायणो पुण न कि पि लहेइ इति एनोअर्थे सुगमठे

इहा उपशमकाल पूर्णथयाथी परिणामनी निर्मलतायें शुद्धपुंजनो उदयआ वे तेथी क्योपशम सम्यक्त्वथाय ते वली कालांतरें सका कंखा कुतीर्थसंसर्ग कु शास्त्र श्रवणादिक अतिचारनी प्रबलताथी मिथ्यात्वदलनी उदीरणाताथी मिथ्या त्वे मिश्रितथाय तो तत्काल मिथ्यात्वगुणताणोजाय मिथ्यात्वीथाय ते वली सं

ख्यात् असंख्यात कालांतरे शुचनिमित्ते करी, प्रपतित सम्यक्त्वीजीव फरी सम्यक्त्व पामे तेवारेपण अपूर्वकरणे त्रणपुजकरी अनिवृत्तिकरणे शुद्धपुंजोदय कृयोपशम सम्यक्त्वपामे. 5हां शिष्यपुढेठे जे पहेला सम्यक्त्व जानकाले तो किवारे प्रथम न पाम्या तेमाटे अपूर्वकरणकहो पण हमणा तो जे पूर्वेपाम्युं हतु तेनोज फरीजान थयो तो तेने शीरीतें अपूर्व कहिये ?

हवे गुरुकहेठे अपूर्वसरिखुं अपूर्व एटले जे वस्तुने थोमाज वखतपामियें पण घणावखत नपामियें तेने अपूर्वजकहिये केमके संसारसंबंधी अन्यपर्याय प्राप्तिनी संख्याआगल ए सोगणतिमांठे माटे एने अपूर्वज कहिये एरीतें वृद्धवचनठे सिद्धांतिक नो ए अनिप्रायठे.

तथा फरी सम्यक्त्वनी प्राप्तिनीपरे देशविरति अथवा सर्वविरति नी प्राप्तिना व खतेपण यथाप्रवृत्ति तथा अपूर्वकरण ए वनेकरे पण अनिवृत्तिकरण न करे. मात्र अपूर्वकाल समाप्ति समयेज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुंपामे जेवारे देशविर ति अथवा सर्व विरतिपणुंपामे तेवारे यावत् अंतरमुहुर्त्त लगे तो अवश्य ते जी वना प्रवर्द्धमान परिणामहोय अने अंतमुहुर्त्त वीत्यापठी कोईना प्रवर्द्धमान परिणामथाय अथवा कोईना हीन हीन थाय अने कोई स्वभावस्थजरहे

तथावली जे उपयोगविना सहेजे परिणामनी मलिनताये देशविरतिथी पडयो अथवा सर्वविरतिथी पडयो ते फरी परिणामनी निर्मलताने योगें करणकखावि नाजे देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुं पामे, वलीजे उपयोगेपड्या एटले उपयो गीतोहोय पण पोताना कुमत कदाग्रहादिक दोपेकरी विपर्याशयई कुविकल्प, पूर्व क पड्याथका मिथ्यात्वेंगया ते जघन्यथी अंतरमुहुर्त्त तथा उत्कृष्टो प्रचूत घणोका लगये थके फरी देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुं पामे ते पूर्वोक्त करण कखाथी ज पामे एम कम्मपयनीग्रंथे टीकामा कबुठे तथा सिद्धांतिक, ने मते तो विराधि त सम्यक्त्वी गृहित सम्यक्त्वथकोपण कदाचकोईक ठगीनरकष्टवी सुधीपणजाय खरो, अने कर्मग्रंथिक मतेतो वैमानिक विना अन्यस्थानके न उपजे तेमाटे गृही त सम्यक्त्ववत ठे एहउं प्रवचन सारो-दार वृत्तिमांकहुंठे.

तथा आवास सम्यक्त्वशुणथी पडयोथको कर्मग्रंथिकना मतेतो उत्कृष्टस्थितिक कर्मप्रकृतिबाधे अने सिद्धांतने अनिप्रायेंतो निन्न ग्रथिक उत्कृष्टस्थितें कर्मप्रकृति बांधेजनही ए सर्व प्रसंगेंकहुंठे एटले अंतरकरणगत उपशम सम्यक्त्वकहुं.

तथा उवसमियो वा स सेण्णिकं कं अथवा उपशम सम्यक्त्व स्वश्रेणीयेहोय

एटले स्वश्रेणिते उपशमश्रेणि चढतांपण होय, यद्भक्तं:-उवसमसेटिगयस्तय, होइ उवस्तामिउउसम्मत्त, जोवा अकय तिपुंजो, अखविहमिहो जहइसम्म ॥ १ ॥
 ए गाथानो अर्थ सुगमठे

१ हवे स्वश्रेणिजे उपशमश्रेणी तेनी विधि अनुक्रमे लिखेठे, तिहां प्रथम उपशम श्रेणि चढवायोग्यना लक्षण गुणस्थान क्रमारोह ग्रंथयीलिखिये ठेये -पूर्वज्ञ शुद्धि मान् युक्तो, ह्याद्यैसंहननैस्त्रिणि संध्यायन्नाद्यशुक्लांशं स्वाश्रेणीश्रयतेक्रमात् ॥ १ ॥

अर्थ - पूर्वगत श्रुतनो धरनारहोय शुद्धिमान् के० नित्य अप्रमत्त निरतिचारवत चारित्रियो होय, वली केटलाकने मतेतो अविरत्यादिक चारगुणगणावाला पण उपशमश्रेणीना प्रारभक होय, तथा आद्यसंहनन के० वज्ररूपननाराच रूपननाराच नाराच ए आद्यना त्रण संघयणमांथी अन्यतर संघयणी अने व्यायनाद्यशुक्लांशं के० शुक्लध्याननो प्रथम पाद ध्यातोथको एवोते उपशमश्रेणी मानवायोग्य तिहां अप्रमत्त गुणगणे अनंतानुबंधी कपायनी चोकडी तथा मिथ्यात्व मिश्र अने सम्यक्त्व ए त्रणमोहनी मली साते प्रकृति उपशमावीने संज्वलननो लोचवर्जित वीस मोहनीय कर्मनीप्रकृति ते अपूर्वकरण गुणगणे तथा अनिवृत्तिकरण गुणगणे उपशमावीने पढी सूक्ष्मसंपराय गुणगणेलोचमोहनीय प्रकृतिने अणु अणु करी पढी उपशांत मोह गुणगणे तेहिज अणुरूप लोचप्रकृतिने उपशमावे एम सर्वोपशमकरे यद्भक्त गुणस्थान क्रमारोहग्रंथे - अपूर्वादि ६एकैक गुणेषु समकक्रमात् करोतिविशतेशांति लोचानुत्त्वचतत्सम ॥ १ ॥ अर्थ सुगमठे.

तथा इहां उपशमश्रेणीकारक वेप्रकारेहोय एक स्वत्पायु बीजो दीर्घायु तिहां अट्पायुवत तो श्रेणीसमाप्ति अवसरे मरणपाप्त्यो थको अहमेइपणे उपजे सरवार्थसिद्धि पर्यंत देवताथाय यद्भक्तं - श्रेण्यारूढकृतेकाले हमेइप्केवगञ्जति पुष्टा युक्षुपशातांत नयेचारित्रमोहन ॥ १ ॥ अर्थ - जे स्वत्पायुहोय अने प्रथम संघयणीहोय ते सरवार्थसिद्धिपर्यंत जाय, अहमेइते जेनावपर कोइतुं हुकमनही एह वा कटपातीत देवतामा उपजे अने बीजा तथा त्रीजा संघयणवालाते अच्युतांत वारमा देवलोकपर्यंत उपजे पण आगल न जाय

तथा पुष्टायु सम्यक्त्वो तो उपशातमोह गुणगणापर्यंत मोहनीयकर्मनुं पूर्ण उपशमकरे तेवारे उपशम सम्यक्त्व होय, यद्भक्तं -शांतिदृग्वृत्तमोहत्वा दशोपकर्मकानि त्री स्यातांसम्यक्त्वचारित्रे जावश्वोपशमात्मक ॥ १ ॥ अर्थ -इहा उपशांत मोह गुणस्थानके दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय उपशमावशरे सम्यक्त्व चारि

त्रते उपशम जावमां होय तथा जावपण उपशमहोय तथा जेने तज्ञवे मोक्षेजहुं होय तेने ह्याधिक सम्यक्त्व पणहोय, तेने उपशांतमोह गुणगणो पांचेजाव होय पणतेजुदा जाणवा पण इहांतो केवल उपशमनीज विवहाळे तथा इहां उपशांतमोह गुणगणो चढ्यो ते अवश्यपडेज. यडुक्तः—वृत्तमोहोदयंप्राप्यो पंशमीच्यवतेत तः ॥ अयकृतमलंतोयं पुंनर्मानिन्यमस्नुते ॥ १ ॥ अर्थः—उपशमी चारित्रमोह नीयनो उदयपामिने उपशातमोह थकी पडे फरी मोहजनित प्रमादनी कलुपता मापडे ए एमजघटमानठे केमके जेम मोहोळुं गदलुप्राणी होय तेने कोई औष धनेजोरे मेलहेमोकरिये तेवारें निर्मलजल उपर तरतुरहे तेपाणी कोई वायुप्रमुख नी प्रेरणानिमित्त पामी फरी गदलुं (मेलुथाय) ए प्रजाव प्रमादोदयनाठे. यडुक्तः—सुअकेवलीआहारग उजुमइउवसंतगाविउपमाया ॥ हिमंतिजवमणंत तयणंतरमेव चउगइया ॥ १ ॥ अर्थः—शुक्तकेवलीजे चउदपूर्वि तथा आहारक शरीरनाधणी वली उजुमईजे मनपर्यवज्ञांनी. कजुमतीवाला पण विपुलमतीना घणीनही तथा उपशांतमोह इग्यारमां गुणगणावाला ए सर्वप्रमादना योगथी तेहिजजवने अनंतर अनंताजवत्रमण चारेगतिमां वासोकरे तेमाटे मोहने वांठनार प्राणीये सर्व था प्रमाद नहीजकरवो.

इहां शिष्यपूढेठे के उपशमीतो अवश्यपडे तो उपशमीने मुक्तिनी योग्यता ठे के नथी? गुरुकहेठे सातलव प्रमाण अवज्ञोप आयुवालो उपशमी खंनश्रेणीक थ को अधुरीश्रेणीथकोज पाठोफिरे ते सातमें गुणगणोआवी फरी रूपकश्रेणीचढे ते सातलवने नंतर ह्रीणमोह बारमें गुणगणोथई अंतगड केवली थको मोक्षे जाय, इहां सातलवते मुहूर्त्तनो इग्यारमो जागकहिये जेप्राणी तज्ञवमोहगामी होय ते एकजवार उपशमश्रेणीमांमें उपशमथी उत्तरी रूपकश्रेणीवेचढे अनेजे, तज्ञव मोहगामी नहोय ते एकजवमा बेवारपण कोईकजीवश्रेणीकरे पण तज्ञवें सिद्धि वरे नही यडुक्तं सिद्धांते.—जीवोदुइक जन्ममि, इकसेढी करेइ उवसमगो ॥ स्वयंपिकक्षा नोकक्षा दोवारेउवसामगो ॥ १ ॥ अर्थः—जे जीव एक जन्ममा एकवार उपशमश्रेणी करे ते मोक्षपणपामे अने जे बे वारकरे तेने रूपकश्रेणीनहोय इहां अचरम शरी री उपशमी पमथायका प्रथम गुणस्थानके मिथ्यात्वे जाय यडुक्तं गुणस्थानक मारो हेः—अपूर्वाद्यास्त्रयोपुधे. मेकंयातिसमोद्यता चत्वारोपिच्युतायायं सप्तमंचात्येदं हि नः ॥ १ ॥ अर्थः—उपशमश्रेणीचढतां अपूर्वाद्याके अपूर्व अनितृत्तिने सूक्ष्मसंपराय ए त्रणगुणगणावाला उंचाचढतां एकेक गुणगणो चढे एटले अपूर्वगुणथी अनितृ

त्तिवादरे जाय अने अनिवृत्तिवादरथी सूक्ष्मसंपराये जाय अने सूक्ष्मसंपरायथी उप
शांतमोह गुणोवाणे जाय एम एकेकगुणवाणेचढे तथा उपशमथी पडता अपूर्वादिंक
चारगुणवाणार्थीपडता मिथ्यात्वेंजाय अथवा अंतदेहीजे चरमशरीरीहोय ते पडतां
सातमें गुणवाणे आवी अटके, तेवली सातमागुणवाणार्थी फरी रूपकश्रेणीयेचढे
परंतु जे एकवार उपशमीहोय ते रूपकश्रेणीकरे पण बेवार उपशमी होयते रूप
कश्रेणी न करे यदुक्तं:—उवसमसेषिचउक्तं जाईजीवस्त आनव नूप; तापुणदोणाज
वे खवगसेणीपुणोएगा ॥ १ ॥ आ ससारमा रहेतोथको जीव मोक्षपामे तिहासुधी
चारवखत उपशमश्रेणीकरे तेवली एकनवमां बेवारकरे अने रूपकश्रेणीतो आखा
ससारमां एकजवारकरे इतिगाथार्थ ॥ एवात प्रसंगेथई ॥ १७ ॥

हवे रूपकश्रेणीतुं स्वरूपकहेते प्रथम ह्यायकनी अनुक्रमणिका कहेते -

मिहाइखएखइउ सोसत्तगिखीणिगाइवझाऊ ॥

चउतिनवजाविमुक्तो तप्रवसिद्धीविइयरोवा ॥ १८ ॥

अर्थ - पूर्वे सिद्धांतानिप्राये अपूर्वकरणेकखाळे त्रणपुजजेणे ते जीव शुद्ध
पुजोदये वर्त्ततो यथा कर्मग्रंथानिप्राये अंतरकरणगत उपशमबलें कखाळे त्रणपुज
जेणे ते जीव जेवारे शुद्धविपाकोदय वेदतो एटले ह्यायोपशमसम्यक्त्वे वर्त्त
तो चोथागुणवाणार्थी मामीने ह्यायिकप्रारंभे तिहा प्रथम अनंतानुबंधी चार क
पाय तथा मिथ्यात्वमोहनीयपुज मिश्रमोहनीयपुज अनेसम्यक्त्वमोहनीयपुज ए
त्रणपुज अने पूर्वोक्त चार कषाय ए सातेप्रकृतिनो ह्यकरे तेवारे ह्यायक सम्य
क्त्वीथाय तेना वे जेदते एक व ह्यायुह्यायिक सम्यक्त्वी बीजो अबह्यायुह्यायिक स
म्यक्त्वी तिहाजे अबह्यायु एटले जे जीवे आगलानवतुं आयुवाधुंनथी एवो ह्या
यिक सम्यक्त्वीजीवतो तज्ञवेज मोहेंजाय, अने जेणे आवतानवतुं आयुबंधीने
पठी सातप्रकृति ह्यकरी ह्यायक सम्यक्त्व पाम्यो ते जीव त्रणनवे अथवा चार
नवे मोहजाय तिहाजो देवजवतुं अथवा नरकजवतुं आयु बाधुहोय तो त्रीजे
नवे मोहजाय, तथा असंख्यात वर्षना आउपावत युगत्रिया मनुष्य तिर्यचतुं
आयुबाधुहोय तो चोथेनवे मोक्षपामे, केमके युगलार्थी अवश्य देवगतिपामे, ति
हाथी चवी मनुष्यथई मोहजाय, माटे चारनवकरे इहां आयुवाधुंनपठी कोईजी
व ह्यायिक सम्यक्त्वपाम्युं तो ते जीव सातप्रकृति ह्यकरीते एटलेजरहे पण
आगल रूपकश्रेणीचटेनही ते नवेतो ह्यायिक मात्रेंजरहे पठी पूर्वोक्तरीतें त्रीजेन
वे अथवा चोथेनवे सिद्धिवरे ए प्रसंगथी वातकही

हवे रूपक श्रेणीतुं स्वरूपकहेते:-अणमिद्धमिस्सत्सम्मं अणं नपुंसञ्चिवेयत्तं कंच पुमवेयंचखवेई कोहाइएयसंजलणा ॥ १ ॥ गइआणुपुद्धिदोदो जाईनामंचजावचउरे दी आयावउज्जायं थावरनामंचसुहुमंच ॥ २ ॥ साहारणमपङ्कतं निदानिदंचपय लपयलंच श्रीणंखवेइताहे ओसंजचअरुत्तं ॥ ३ ॥ वी समिकणनियंतो ॥ दोहेस मएहिं केवलोसेसे पढमेनिदंपयल नामस्स इमाइ पयडीउं ॥ ४ ॥ देवगइ आणुपुवी निकविसंघयण पढम वज्जाइ अस्सरसंठाण तिडयराहारनामंच ॥ ५ ॥ चरिमेना णावरणं पंचविहंदसणंचउवियप्य पंचविहमंतरायं खेविताकेवलीहोइ ॥ ६ ॥ इ ति श्रेणीस्वरूपं. ए त्रणप्रकारं सम्यक्त्व कथु. ॥ १७ ॥

हवे चार प्रकारे सम्यक्त्व कहेते:-

चउहाउं सासाणं, गुभाइ वमणुव माल पमणुव ॥

उवसमिउं उपडंतो, सासाणो मिउ मऽप्यत्तो ॥ १९ ॥

अर्थ-- चउहाउं के० चारप्रकारे सम्यक्त्वहोय ते आवीरीते के त्रण सम्यक्त्वतो पूर्वकह्या अने जेवारें तेनीसाथे सासाणं के० सास्वादन नामे सम्यक्त्व जेलीयें तेवारे चारप्रकारे सम्यक्त्वथाय हवेसास्वादनतुं स्वरूपकहेते.

उपशम सम्यक्त्वनो काल अंतरमुद्धर्तते तेमांथी जेवारे कोइकजीवने जवित व्यतानायोगें मिथ्यात्वे अवश्यजावुठे तेवारे उपशमकालमां उत्कृष्ट उ आवलिका प्रमाण काल वाकी शोपरह्योहोय अने जघन्यथी एकसमय रह्योहोय अथवा तेनी वचमानो जेजेरहेते मध्यमकाल कहिये एटलो उपशम सम्यक्त्वनो काल शोपरहे तिवारें उपशमावेलाजे अनंतानुबंधी कपायनादल तेनो उदयथाय ते जीवने सम्यक्त्व थकां गोलना वमननीपरें तथा माल पतननीपरे एटले जेम गोलप्रमुख मधु ररसतुं नोजनकरी पाहुं वमनकरे तेवारे नोजन करती वखतेंजे मधुरताना स्वाद नी लेजतहोय तेवी लेजत कांई वमन करती वखते न होय पण कांईक गल च टयो अनिद्धित स्वादलागे केमके जोपण वमनतोठे तोपण मीठासतुंठे तेम उपश मथी पढयो अने हजी मिथ्यात्वे पहोतुनथी तेना विचलाकालमां सास्वादन सम्यक्त्व ते गुडवमन सरखोहोय ते वमता सम्यक्त्वनो अनुजवदेखाडयो अने मालयकी पडवा शरिखो कालस्थिति देखाडयो, जेम मालयकी पडतां सावधानहोय तोपण बेछुडाइथी ते अवश्य चूमी फरसे तेम सम्यक्त्वनी श्रेणीगत सावधान होय तोपण अनंतानुबंधी दलना उदयवले टकी सकेनही इति तत्व

त्तिवादरे जाय अने अनितृत्तिवादरथी सूक्ष्मसंपराये जाय अने सूक्ष्मसंपरायथी उप
शांतमोह गुणोवाणे जाय एम एकेकगुणोवाणेचढे तथा उपशमथी पडतां अपूर्वादिक
चारगुणोवाणाथीपडता मिथ्यात्वेजाय अथवा अतदेहीजे चरमशरीरीहोय ते पडतां
सातमें गुणोवाणे आवी अटके, तेवली सातमागुणोवाणाथी फरी रूपकश्रेणीयेचढे
परंतु जे एकवार उपशमीहोय ते रूपकश्रेणीकरे पण वेवार उपशमी होयते रूप
कश्रेणी न करे यडुकं.—उवसमसेणचउकं जाईजीवस्त आचव नूण, तापुणदोणान
वे खवगसेणीपुणोणा ॥ १ ॥ आ संसारमा रहेतोयको जीव मोक्षपामे तिहांसुधी
चारवखत उपशमश्रेणीकरे तेवली एकनवमा वेवारकरे अने रूपकश्रेणीतो आखा
संसारमां एकजवारकरे इतिगाथार्थ ॥ एवात प्रसंगेथई. ॥ १७ ॥

हवे रूपकश्रेणीतुं स्वरूपकहेठे प्रथम क्वायकनी अनुक्रमणिका कहेठे -

मिठाइखएखइउं सोसत्तगिखीणिठाइवडाऊ ॥

चउत्तिनवनाविमुस्को तप्रवसिद्धीविइयरोवा ॥ १८ ॥

अर्थ - पूर्वे सिद्धांतानिप्राये अपूर्वकरणोकखाठे त्रणपुजजेणे ते जीव शुद्ध
पुजोदये वर्तेतो यथा कर्मग्रंथानिप्राये अंतरकरणगत उपशमबलेकखाठे त्रणपुज
जेणे ते जीव जेवारे शुद्धविपाकोदय वेदतो एटले क्वायोपशमसम्यक्त्वे वर्ते
तो चोथागुणोवाणाथी मानीने क्वायिकप्रारजे तिहा प्रथम अनंतानुबंधी चार क
पाय तथा मिथ्यात्वमोहनीयपुज मिश्रमोहनीयपुज अनेसम्यक्त्वमोहनीयपुज ए
त्रणपुज अने पूर्वोक्त चार कपाय ए सातेप्रकृतितो क्वायकरे तेवारे क्वायक सम्य
क्त्वीथाय तेना वे नेदठे एक वद्वायुक्वायिक सम्यक्त्वी बीजो अबद्वायुक्वायिक स
म्यक्त्वी तिहांजे अबद्वायु एटले जे जीव आगलानवतुं आयुवाधुंनेथी एवो क्वा
यिक सम्यक्त्वीजीवतो तद्वेज मोक्षेजाय, अने जेणे आवतानवतुं आउषुंवांधीने
पठी सातप्रकृति क्वायकरी क्वायक सम्यक्त्व पाम्यो ते जीव त्रणनवे अथवा चार
नवे मोक्षजाय तिहांजो देवनवतुं अथवा नरकनवतुं आयु वाधुहोय तो त्रीजे
नवे मोक्षजाय, तथा असंख्यात वर्षना आवपावत युगलिया मनुष्य तिर्यचनुं
आयुवाधुहोय तो चोथेनवे मोक्षपामे, केमके युगलधर्मि अवश्य देवगतिपामे, ति
हाथी चवी मनुष्यथई मोक्षजाय, माटे चारनवकरे इहा आयुंवांध्योपठी कोईजी
व क्वायिक सम्यक्त्वपाम्युं तो ते जीव सातप्रकृति क्वायकरीठे एटलेजरहे पण
आगल रूपकश्रेणीचढेनही ते नवेतो क्वायिक मात्रेंजरहे पठी पूर्वोक्तरीते त्रीजेन
वे अथवा चोथेनवे सिद्धिरे ए प्रसंगथी वातकही

हवे रूपक श्रेणीनुं स्वरूपकहेठे:-अणमिहमिस्तसम्मं अठ नपुंसद्विवेयउक्कंच
पुमवेयंचखवेई कोहाइएयसंजलणा ॥ १ ॥ गइआणुपुद्विदोदो जाईनामंचजावचउरे
दी आयावउक्कोयं थावरनामंचसुहुमंच ॥ २ ॥ साहारणमपक्कंतं निहानिदंचपय
लपयलंच श्रीणंखवेइताहे ओसंजंचअउक्कं ॥ ३ ॥ वी समिकणनियंतो ॥ दोहेस
मएहिं केवलोसेसे पढमेनिदंपयल नामस्त इमाइ पयडीउं ॥ ४ ॥ देवगइ आणुपुद्वी
निकविसंघयण पढम वक्काइ अण्णयरसंगाण तिहयराहारनामच ॥ ५ ॥ चरिमेना
णावरणं पंचविहंदंसणंचउवियण्ण पंचविहमंतरायं खेविताकेवलीहोइ ॥ ६ ॥ इ
ति श्रेणीस्वरूपं. ए त्रणप्रकारे सम्यक्त्व कथु. ॥ १७ ॥

हवे चार प्रकारे सम्यक्त्व कहेठे:-

चउहाउं सासाणं, गुणाइ वमणुव माल पणुणुव ॥

उवसमिउं उपडंतो, सासाणो मिउ मऽप्यत्तो ॥ १९ ॥

अर्थ:- चउहाउं के० चारप्रकारे सम्यक्त्वहोय ते आवीरीते के त्रण सम्य
क्त्वतो पूर्वकह्या अने जेवारे तेनीसाथे सासाणं के० सास्वादन नामे सम्यक्त्व
जेलीयें तेवारे चारप्रकारे सम्यक्त्वथाय हवेसास्वादननुं स्वरूपकहेठे.

उपशम सम्यक्त्वनो काल अंतरसुदूर्तठे तेमाथी जेवारे कोइकजीवने जवित
व्यतानायोगें मिथ्यात्वे अवश्यजाबुठे तेवारे उपशमकालमा उत्कृष्ट उ आवलिका
प्रमाण काल बाकी शेपरह्योहोय अने जघन्यथी एकसमय रह्योहोय अथवा तेनी
वचमानो जेजेरहेते. मध्यमकाल कहिये एटलो उपशम सम्यक्त्वनो काल शेपरहे
तिवारे उपशमावेलाजे अनंतानुबंधी कपायनादल तेनो उदयथाय ते जीवने सम्य
क्त्व थकां गोलना वमननीपरें तथा माल पतननीपरें एटले जेम गोलप्रमुख मधु
ररसनुं जोजनकरी. पाहुं वमनकरे तेवारे जोजन करती वखतेंजे मधुरताना स्वाद
नी लेजतहोय तेवी लेजत कांई वमन करती वखतें न होय पण कांईक गल च
टयो अनिहित स्वादलागे केमके जोपण वमनतोठे तोपण मृगासनुंठे तेम उपश
मथी पढयो अने हजी मिथ्यात्वे पहोतुंनथी तेना विचलाकालमां सास्वादन स
म्यक्त्व ते गुडवमन सरखोहोय ते वमता सम्यक्त्वनो अनुजवदेखाडयो मा
लयकी पडवा शरिखो कालस्थिति देखाडयो, जेम मालयकी पडतां
तोपण बेछुडाइथी ते अवश्य जूमी फरसे तेम सम्यक्त्वनी सावधान
होय तोपण अनंतानुबंधी दलना उदयवले टकी सकेनही.

त्तिवादरें जाय अने अनिदृत्तिवादरथी सूक्ष्मसंपराये जाय अने सूक्ष्मसंपरायथी उप
शांतमोह गुणोपाये जाय एम एकेकगुणोपायेचढे तथा उपशमथी पडतां अपूर्वादि
चारगुणोपायाथीपडता मिथ्यात्वेजाय अथवा अंतदेहीजे चरमशरीरीहोय ते पडतां
सातमें गुणोपाये आवी अटके, तेवली सातमागुणोपायाथी फरी रूपकश्रेणीयेचढे
परंतु जे एकवार उपशमीहोय ते रूपकश्रेणीकरे-पण वेवार उपशमी होयते रूप
कश्रेणी न करे यदुक्तं:-उवसमसेणिवचकं जाईजीवस्स आनव नूण, तापुणदोणान
वे खवगसेणीपुणोएगा ॥ १ ॥ आ संसारमा र्हेतोयको जीव मोरूपामे तिहासुधी
चारवखत उपशमश्रेणीकरे तेवली एकनवमां वेवारकरे अने रूपकश्रेणीतो आखा
ससारमां एकजवारकरे इतिगाथार्थ ॥ एवात प्रसंगेथई ॥ १७ ॥

हवे रूपकश्रेणीतुं स्वरूपकहेठे प्रथम ह्यायकनी अनुक्रमणिका कहेठे.-

मिहाइखएखइठं सोसत्तगिखीणिठाइवद्धाऊ ॥

चउतिन्नवजाविमुक्को तप्रवसिद्धीविइयरोवा ॥ १८ ॥

अर्थ - पूर्वे सिद्धांतांनिप्राये अपूर्वकरणेकखाठे त्रणपुंजजेणे ते जीव शुद्ध
पुजोदये वर्त्ततो यथा कर्मग्रंथान्निप्राये अंतरकरणगत उपशमवर्त्ते कखाठे त्रणपुंज
जेणे ते जीव जेवारे शुद्धविपाकोदय वेदतो एटले ह्यायोपशमसम्यक्त्वे वर्त्त
तो चोथागुणोपायाथी मांमीने ह्यायिकप्रारंभे तिहा प्रथम अर्नंतानुबंधी चार क
पाय तथा मिथ्यात्वमोहनीयपुज मिश्रमोहनीयपुंज अनेसम्यक्त्वमोहनीयपुज ए
त्रणपुंज अने पूर्वोक्त चार कपाय ए सातेप्रकृतिनो ह्येकरे तेवारे ह्यायक सम्य
क्त्वीयाय तेना वे जेदठे एक व ह्यायुह्यायिक सम्यक्त्वी बीजो अबह्यायुह्यायिक स
म्यक्त्वी तिहाजे अबह्यायु एटले जे जीवे आगलानवतुं आयुवांधुंनयी एवो ह्या
यिक सम्यक्त्वीजीवतो तन्नवेज मोहजेजाय, अने जेणे आवतानवतुं आउधुंबाधीने
पठी सातप्रकृति ह्येकरी ह्यायक सम्यक्त्व पाम्यो ते जीव त्रणनवे अथवा चार
नवे मोहजाय तिहाजो देवनवनु अथवा नरकनवनुं आयु वांधुंनहोय तो त्रीजे
नवे मोहजाय, तथा असंख्यात वर्षना आउपावत युगलिया मनुष्य तिर्यचनुं
आयुवांधुंनहोय तो चोथेनवे मोरूपामे, केमके युगलधार्मि अवश्य देवगतिपामे, ति
हाथी चवी मनुष्यथई मोहजाय, माटे चारनवकरे इहा आयुवांधुंनपठी कोईजी
व ह्यायिक सम्यक्त्वपाम्युं तो ते जीव सातप्रकृति ह्येकरीठे एटलेजरहे पण
आगल रूपकश्रेणीचढेनही ते नवेतो ह्यायिक मात्रेंजरहे पठी पूर्वोक्तरीते त्रीजेन
वे अथवा चोथेनवे सिद्धिवरे ए प्रसंगथी वातकही

हवे कृपक श्रेणीतुं स्वरूपकहेते.—अणमिहमिस्तसम्मं अण नपुंसद्विवेयठकंच
 पुमवेषंचखवेई कोहाइएयसंजलणा ॥ १ ॥ गइआणुपुद्विदोदो जाईनामंचजावचउरें
 दी आयावउज्जोपं थावरनामंचसुहुमंच ॥ २ ॥ साहारणमपज्जंतं निदानिदंचपय
 लपयलंच थीणखवेइताहे ओसंजचअणं ॥ ३ ॥ वी समिकणनियंतो ॥ दोहेस
 मएहिं केवलोसेसे पढमेनिदंपयलं नामस्त इमाइ पयडीउं ॥ ४ ॥ देवगइ आणुपुद्वी
 निकविसंघयण पढम वज्जाइ अणुयरसंठाण तिउयराहारनामंच ॥ ५ ॥ चरिमेना
 णावरणं पंचविहदंसणंचउवियण्ण पंचविहमतारायं खेवित्ताकेवलीहोइ ॥ ६ ॥ इ
 ति श्रेणीस्वरूपं. ए त्रणप्रकारे सम्यक्त्व कहु ॥ १८ ॥

हवे चार प्रकारे सम्यक्त्व कहेते:—

चउहाउं सासाणं, गुभाइ वमणुव माल पणुव ॥

उवसमित्त उपडंतो, सासाणो मिह मइयत्तो ॥ १९ ॥

अर्थ:— चउहाउं के० चारप्रकारे सम्यक्त्वहोय ते आवीरीते के त्रण सम्य
 क्तवतो पूर्वकह्या अने जेवारें तेनीसार्थे सासाणं के० सास्वादन नामे सम्यक्त्व
 जेलीयें तेवारे चारप्रकारें सम्यक्त्वथाय हवेसास्वादननुं स्वरूपकहेते.

उपशम सम्यक्त्वनो काल अंतरमुदूर्तेते तेमांथी जेवारे कोइकजीवने जवित
 व्यतानायोमें मिथ्यात्वे अवश्यजावुठे तेवारे उपशमकालमां उक्कट उ आवलिका
 प्रमाण काल बाकी शोपरह्योहोय अने जघन्यथी एकसमय रह्योहोय अथवा तेनी
 वचमानो जेजेरहेते मध्यमकाल कहिये एटलो उपशम सम्यक्त्वनो काल शोपरहे
 तिवारें उपशमावेलाजे अनंतानुबंधी कपायनादल तेनो उदयथाय ते जीवने सम्य
 क्त्व थकां गोजना वमननीपरें तथा माल पतननीपरें एटले जेम गोलप्रमुख मधु
 ररसनुं जोजनकरी. पातुं वमनकरे-तेवारें जोजन करंती वखतेजे मधुरताना स्वाद
 नी जेजतहोय. तेवी जेजत काई वमन करंती वखते न होय पण काईक गल च
 टयो अनिहित स्वादलागे केमके जोपण वमनतोठे. तोपण मीगसनुंवे तेम उपश
 मथी पढयो अने हजी मिथ्यात्वे पहोतुनथी तेना विचलाकालमां सास्वादन स
 म्यक्त्व ते गुडवमन सरखोहोय ते वमतां सम्यक्त्वनो अनुनवदेखाडयो अने मा
 लथकी पडवा शरिखो कालस्थिति देखाडयो, जेम मालथकी पडता सावधानहोय
 तोपण बेछुदाइथी ते अवश्य चूर्मी फरसे तेम सम्यक्त्वनी श्रेणीगत सावधान
 होय तोपण अनंतानुबंधी दजना उदयबलें टकी सकेनही इति तत्त्वं.

हवे सास्वादन शब्दनो अर्थलिखेते सहसास्वादेन वर्चते इति सास्वादनं सम्यक्त्वनो आस्वादमात्ररहे तेषां सास्वादनकहिये अथवा आके० समस्तपणे शातन करे पातनकरे मुक्तिमार्गथी त्रंसकरे ते आशातनकहिये एटले अनतानुबंधी कषायवले सम्यक्त्वगुणथी त्रष्टकरेमाटे आशातने ते आशातनसहीत अवस्यहोय माटे साहाशातन कहिये अने प्राकृतसूत्र माटे सासायणकहिये यद्भक्तं विशेषावश्यके - उवसमसम्मत्तात् चक्षुपमिष्ठं अपावमाणस्त ॥ सासायणसम्मत्तं तय त रालमिह्वावलयिं ॥ १ ॥ एनोअर्थ सुगमठे एरीतें चार प्रकारे सम्यक्त्वकह्यु ॥ १ ॥

हवे पांचप्रकारे सम्यक्त्व कहेते -

वेयग जुअ पंचविहं ॥ तंचतुडपुंजरखयमितइयस्स ॥

खयकाल चरमसमए ॥ सुधाणु वेयगो होइ ॥ २ ॥

अर्थ.- पूर्वे कहाजे चार सम्यक्त्व तेनीसाथे वेयगके० वेदक सम्यक्त्व छुअके० युक्तकरिये तेवारे पंचविहंके० पांचप्रकारे सम्यक्त्वहोय जे सम्यक्त्वना अत्यंत शुद्धपुजने वेदीये अनुजविये ते वेदकसम्यक्त्वकहिये तेहथी शुद्धपुजनेथी अनर्थातरठे अजेद ठे माटे ए सम्यक्त्वपण वेदक कहेवाय एटले जे कूपकश्रेणी प्रतिपन्न तंचके० ते प्रथम अनंतानुबंधीचोकडी तथा डुपुंजरखयमिके० मिथ्यात्वपुज अने मिश्रपुज ए पुज क्यथयेतते तइयस्सखयकाल चरमसमएके० शुद्ध ठेला सम्यक्त्व पुजना दासापण उदेरी उदेरी उदये अनुजवी अनुजवी निर्जरा करता करता निठव्युंठे उदीरेणा बल जिहा एटले चरमावजिकाये उदीरेणा करण लागेनही एटले त्रीजा सम्यक्त्व पुजने क्ये करता जेवारे ठेजो सर्वोदित पुजलासत चरम समय वेद्य शुद्धपुणुं वेदन एटले शुद्धकायोपशम पुजनेवेदे ते वेदक सम्यक्त्व कहिये यद्भक्त विशेषावश्यके - वेयगसमत्तंपुण सवोइय चरम पुग्गलावडे ॥ खीणे दसण मोहे, तिन्निहंमि स्काइयं होइ ॥ १ ॥ इहां शिष्य प्रश्नकरेठे के तुमे चरम शुद्धपुणुं वेदन ते वेदक कहोठो तेवारे क्योपशममा अने वेदक मा इयो फेरथयो केमके शुद्धपुजनुं वेदन बे ठेकाणे सरिखुंठे तो शुद्धनाम केम कहोठो? तेवारे शुरु उचरकहेते के तें साजुकह्यु पण एमां, विशेष एठे के ए वेदक तो अशेष समस्त पुजलानुच वत अत्यंत शुद्धठे अने इतरजे, क्योपशम सम्यक्त्व ठे तें उदित अनुदित वे पुजल उदयानुच वतठे एटलो विशेषठे, परमार्थ जोतांतो क्योपशमजठे समस्त मोहनीय क्यकरवाना कालनो जे, चरमसमय

मात्र ते वेदक सम्यक्त्व कहिये. जेम सूक्ष्मालोचना खंम वेदवाथकी सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक कहिये, तेम छुद्दह्योपशम पुजजना वेदवाथकी वेदक सम्यक्त्व था यठे, एम वेदक सम्यक्त्व सहित सम्यक्त्वना पांचनेद थाय ऽति वेदकस्वरूपं १०

हवे ए पांचे सम्यक्त्वनो काल कहेठे:-

अंतमुद्दुत्तो वसमो, गवलिय सासण वेयगो समउ ॥

साहिय तितीसायर, खइउ ड गुणो खउंवसमो ॥ ११ ॥

अर्थ.- उपशम सम्यक्त्वनो काल उत्कृष्टो अंतरमुद्दुत्ते, अने साखादननो काल उत्कृष्टो ठ आवलिनोठे, तथा वेदक सम्यक्त्वनो काल एक समयठे, अने ह्यायिक सम्यक्त्वनो उत्कृष्टकाल सर्वार्थे सिद्धिनी अपेहाये साधिक तेत्रीससागरोपमनोठे, साधिककह्यातेतो मनुष्यनवनी अपेहायेकह्या, केमके ह्यायिक सम्यक्त्ववंतजीव ते त्रणनव अथवा चारनव उत्कृष्टो संसारमारहे, उक्तंच पचसंग्रहे -तइय चउडं तमि, नवंमि सिध्यंति दंसणे खीणे ॥ ज देव निरय संखाउ, चरम देहेसु ते हुंति ॥ १ ॥ अर्थ - बदायु ह्यायिकसम्यक्त्ववतजे होय ते देवगति अथवा नरकगतिये जाय, तेवारे तन्नवातरे तृतीयनवं मोद्दजाय, तथा कोई ह्रीण सप्तकी जो तिर्यचमाउप जे तो अवश्य असंख्य वर्षना आउपावाला युगल तिर्यचमा उपजे, पण संख्यात वर्षायु तिर्यचमां ह्यायिक सम्यक्त्ववत न उपजे, पठी तिर्यचमाथी देवथाय, अने देवमाथी मनुष्यथई मोद्दजाय, अने जे अबदायुवत होय तेतो तेहिजनवे रूपक श्रेणीपुरीकरी सिद्धथाय, तथा एकजीव आश्री अथवा अनेकजीवआश्री सम्यक्त्वनो उपयोग जघन्यथी तथा उत्कृष्टथी अंतरमुद्दुत्त होय. अने ह्योपशमरूप सम्यक्त्वनी लब्धीतो एकजीवने जघन्य अंतरमुद्दुत्त अने उत्कृष्टीतो डुगणो के० ह्यायिकथकी वमणो ठासठ सागरोपम अने मनुष्यनवें अधिकहोय, तेथी उपरांत सिद्धजथाय, एटले बारमादेवलोकसुधी त्रणवार गमनथाय, तिहा उत्कृष्टायु वावी स सागरोपमनुठे, अने मनुष्यनो नव अधिकगणता ठासठसागरोपम जाऊंराथाय, अने विजयविमान आश्री वे नव करवापने तिहापण उत्कृष्टायु तेत्रीस सागरोपमनुठे, अने मनुष्यनव गणता साधिक ठासठसागरोपम ह्योपशम सम्यक्त्वनो कालमानथाय, एम नानाप्रकारना जीवो आश्री सर्वकाल ठासठ सागरोपमठे, यडु कं सिद्धाते -दोवारे विजयाइसु, गयस्स तित्रीअ अजुए अहवा ॥ तऽ अइगे नरचविय, नाणा जीवाण सबत्ता ॥ १ ॥ एनोअर्थ सुगमठे ए पांचेसम्यक्त्वनो कालकह्यो

हवे संसारमात्रमण करता जीव ए पांचे सम्यक्त्वमां कियु कियु सम्यक्त्व केट
लीवार पामे ते कहेहे --

उक्रोस सासायण, उवसमिया हुति पंचवाराउ ॥

वेयग खयग इक्रंसी, असंख वारा खउवसमा ॥ ११ ॥

अर्थ -- उल्हटा मोहावधि सुधी संसारमां जमता जीव सास्वादन तथा उपशमिक
सम्यक्त्व पांचारपामे, तेमां एकतो प्रथम सम्यक्त्व लाजकालें अंतरकरणगत उपश
मिक होय, अने उपशमश्रेणी चारवखतपामे, तिहां चारवखत उपशमनो लाजहोय.

तथा वेदक सम्यक्त्व अने ह्यायक सम्यक्त्व ए वे एकजवार पामे अने ह्योप
शम सम्यक्त्वतो मोहावधि संसार जमता असंख्यातिवार पामे, एरीते सम्यक्त्व
प्राप्तिनी संख्या कही, हवे एक जवमां केटलीवार आकर्षहोय ? आकर्षते गुणधी
मद थईने जूमीफरसीने वली सावधानथई गुणनी प्रबलता करे, एटले मूकीने व
ली ग्रहण करवुं ते आकर्षकहिये यडक्त आवश्यक सिद्धांते गाथा - तिन्नंसह
सपुहुत्तं ॥ सयपुहुत्तच होइ विरईए ॥ एग जवे आगरिसा ॥ एवइया हुंति नायवा ॥ १ ॥

अर्थ - तिन्नत के० एक श्रुतसामायक, बीजो सम्यक्त्वसामायक, त्रीजो देशविर
तिसामायक, ए त्रणनेविपे एक जवमा सहस्रपृथक्त्व होय, बेहजारधी मांमीने
नवहजार सुधी सहस्र पृथक्त्व संज्ञाढे, तथा सयपुहुत्तं के० शतपृथक्त्व आकर्ष
सर्व विरतिमाहोय, बसेथीमांमी नवसंसुधी होय, एरीते एकजवमा उल्हटा आकर्ष
होय, अने जघन्यधीतो एकज आकर्ष होय ए एकजवना आकर्ष कहा

हवे नानाप्रकारना जवमा जमता गुणपामी पामी पडता फरी पामता आकर्ष
नी संख्या केटली थाय ते कहेहे गाथा - तिन्नं सहस्र मसंखा, सहस्र पुहुत्तंच
होइ विरईए ॥ नाणा जव आगरिसा, एवइया हुति नायवा ॥ १ ॥ अर्थ -- श्रुत, स
म्यक्त्व, अने देशविरति ए त्रणे सामायकवतने नानाप्रकारना जवत्रमणकरतां मो
हजाय तिहांसुधी उल्हटा असंख्याताहजार आकर्ष थाय, तथा सर्वविरतिने ना
नाजवें मोहजाता सुधीमा उल्हटा पृथक्त्व हजार आकर्षहोय, एरीते सम्यक्त्व
प्राप्तिसंख्याने प्रसंगे आकर्ष संख्या कही ॥ ११ ॥

हवे कया गुणवाणे कियुं सम्यक्त्व होय ते कहेहे -

वीयगुणे सासाणो, तुरिआइसु अडिगार चउ चउसु ॥

उवसमग खइग वेयग, खाउवसमा कमा हुंति ॥ १३ ॥

अर्थः— वीथगुणोसासाणोके० सास्वादन सम्यक्त्वते वीजा सास्वादन गुणवाणा मांहेज होय, पण अन्यगुणस्थानके नहोय, अने उपशम सम्यक्त्व ते तुरियाइसु अङ्गिरचउचउसुके० चोथागुणगणाधीमांमी आठगुणगणासुधी होय, अर्थात् चोथागुणधीमांमी इग्यारमां उपशांत मोह नामना गुणगणासुधीहोय पण अन्य गुण स्थानके नहोय, अने द्वायक सम्यक्त्व इगारसके० इग्यारगुणगणोहोय, एट ले चोथागुणगणाधी मांमीने चउदमां अयोगी गुणगणासुधीहोय अने द्वायोपश म सम्यक्त्व तथा वेढक सम्यक्त्व ए वे सम्यक्त्व चउचउके० अनुक्रमे चार चार गुणगणानी संख्यासुधी पामिये, अर्थात् वेदक अने द्वायोपशम ए वे चोथागुण गणाधी मांमीने सातमां अप्रमत्त गुणगणासुधीजहोय पण अन्यगुणगणे न पा मिये एवात सत्ताआश्रीजाणवी पण परमायंतो वेदकसम्यक्त्व अने द्वायोपशम सम्यक्त्व ए वे एकज कह्याठे यथा पमसीतप्रकरणे—वेयग खयग उवसमे, चउरो एगार अठतुरियाइं इति श्रीजिनवद्वजसूरिरुत पडसीतप्रकरणेकद्युठे, तथा बंधस्वा मित्वमा पण कद्युठे एरीतें गुणस्थानक निष्ठायें सम्यक्त्वकह्यां.

हवे सम्यक्त्व पाम्यापठी देशविरति सर्वविरति द्वायिकजाव किवारें प्राप्तथा य ते कहेठे, गाथा.— सम्मत्तमिउजध्धे, पलिय पुट्टुत्तेण सावउं दुक्षा ॥ चरणोवस म खयाणं, सायर संखंतरा हुति ॥ १ ॥ अर्थ—पूर्वोक्त नव्यजीव जेवारें ग्रंथीजे दकरी सम्यक्त्वपामे तेवारपठी अंतकोडाकोडीनो स्थितिवंधठे, तेमांथी पलियपट्टु सके० पृथक्त्व पळ्योपम एटले वे थी मांमीने नव पळ्योपम सुधी ओठीकरे, एट ले कोइक वे पळ्योपम स्थितिउठीकरे, कोइ त्रण एम यावत् कोइ नव पळ्योपम जेटली स्थिति अंत कोडाकोडीमाथी उठीकरे, तेवारे देशविरति गुणस्थानकनो द्वायोपशमथाय एटले जावथी देशविरति तेवारेथाय.

तथा चरणोवसमके० चरणजे सर्वविरतिपणुं तेनो द्वायोपशमतो जे स्थितियें देशविरतिगुण प्राप्तथयुंठे ते स्थितिमांथीपण सख्याता सागरोपमनी स्थिति उठी करे, एटले सर्वविरतिवत स्थितिवांधेतो अंतकोडाकोडी नवपट्योपमे न्यून जे देश विरतिनी स्थितिठे, तेथीपण संख्याता सागरोपम उठीवाधे, एवा अथ्यवसायें कथा यनी मंडताहोय इतितत्व तेवार पठी सख्याता सागरोपम खपवाथी उपश्रमश्रेणी पडीवजे तेवारपठी पण सख्याता सागरोपमनीस्थितिखपवाथी कृपकश्रेणी पमीवजे.

हवे जे जीव सम्यक्त्व पामीने पाठोपमी मिथ्यात्वेगयो तेफरी सम्यक्त्व कि वारेपामे ? केटलो अंतरहोय ? तेकहेठे. सम्यक्त्वनुं अंतरु जघन्यथीतो अंतरमुहूर्त

ते; केमके कोष्कजीव सम्यक्त्व वमिने पाठो परिणामनी निर्मलताने योगे तदाव
रण कृत्योपशमथी अंतरमुहूर्तने आतरे फरी सम्यक्त्वपामे, तथा कोष्कजीव बहु
लकर्मी तीर्थकरादिकनी प्रचूर आशातना करे ते जीव अर्द्धपुञ्ज ससारमां प्रवेत्ते,
संसारमा जन्ममरणकरे, पठे अर्द्धपुञ्जगये फरी सम्यक्त्वपामे एटले उत्कृष्टआ
तरुं अर्द्धपुञ्ज परावर्तते उक्तच सिद्धाते—तिष्ठयर पवर्णण सुअ, आयरिय गणहर
महद्दीयं ॥ आसायंतो बहुसो, अणत संसारियो होइ ॥ १ ॥ तीर्थकरनी तथा प्रव
चनजे समस्त जैनशासननी अने आचार्यजे गह्वना अघिपति तेनी तथा गण
धरजे त्रिपदी ग्राहक अथवा महोटा प्रजाविक पट्टोधर तथामहर्दिकते तप संय
म श्रुतादिक अनेक लब्धिसंपन्न तेने रुचिवत कहिये एटला जीवोनी आसातना
एटले तेमना अवर्णवाद् बोले निदाकरे अन्याख्यानबोले ते जीव अनंतसंसारिया
य एटले प्रकरणकारे पाच सम्यक्त्वनुं स्वरूपकहु ॥ १३ ॥

हवे अथातरे दशविध सम्यक्त्वरुचिरूप कहुते तेपण इहा प्रसर्गे लखियेइइये य
इक्तमागमे.— एगविह डुविह तिविह, चउहा पचविह दसविह सम्मं ॥ द्वाइ
कारयाई, उवसमचेएहिवासम्म ॥ १ ॥ अर्थ — जे निसक तत्वरुचि श्रद्धान जि
नमार्गनेविपे ते एकविध सम्यक्त्व कहिये अने डुविध सम्यक्त्वते इयथी तथा
जावथी अथवा निसर्गथी अने अधिगमथी अथवा निश्चयथी अने व्यवहारथी
अथवा पुञ्जलिक अने अपुञ्जलिक एम वे प्रकारेते

त्रणप्रकारे सम्यक्त्वते उपशम, क्वाथिक, अने कृत्योपशम अथवा कारक रोचक
अने दीपक एपणत्रण जाणवा वली पूर्वोक्त त्रणमा सास्वादन जेजिये तेवारे चार
प्रकारे सम्यक्त्वथाय अथवा वेदक युक्तकरिये एमपण चारप्रकारथाय तथा वेदक
सास्वादन एवे पूर्वोक्त त्रणसाथे जेजिये तेवारे पांचप्रकारथाय एनोविस्तार पूर्वे कहुते

तथा दशविध सम्यक्त्वते दशप्रकारनी रुचिवतजीव ते रुचिनेदे सम्यक्त्वनो जे
देकहिये ते दशरुचि केवाने सिद्धातोक्त गाथालिखेते — निसग्गु वेएसरुइ, आण
रुईसुत्त वीयरुइ मेव ॥ अनिगम विडाररुई, किरिया संखेवि धम्मरुई ॥ १ ॥ एदशो
रुचिना नामकह्या हवे प्रत्येके वज्ञोना स्वरूप कहेते

चूअडेणाहिगया, जीवाजीवायपुन्नमावच ॥ सहसमइआसव, संवरोय रोएव
निसग्गो ॥ १ ॥ जो जिण दिठे जावे, चउविहे सदहाइ सयमेव ॥ एमे अनन्नह
निय, सनिस्तगरुइतिनायवो ॥ १ ॥ अर्थ — चूअडेणके० सडूतार्थ एटले उतो
जे अर्थ तेहने सहसमइके० जातिस्मरणादिक बुद्धिविज्ञानेकरी जेजे श्रीजिनेश्वर

जीना दीठा जेजीवाजीव पुण्यपापादिकना नाव ते चउविहेके० इव्य क्षेत्र काल नाव जेदे अथवा नाम स्थापना इव्य नावनेदे एव चारेप्रकारें स्वमेव एटले पोता नीमेलेज सहहे जे एमजठे पण श्रीजिन नापित अन्यथानथी एम जिनेश्वरना दीठानावते निश्चलकरे ते निश्चलरुचि निसर्गरुचि जाणवी

एएचेव उवइठे, जोपरेण सहहइ ॥ ठउमडेणजिणेण, उवएसरुइत्तिनायवो ॥ ३ ॥ अर्थ:- एएके० ए श्रीजिनोक्त सिद्धांतमां कह्याजेजे नाव ते उवइठेके० उपदेशद्वाराये परेणके० परथी एटले ठद्वस्थथी अथवा जिनराजथी सांनलीने अविस्तथ सहहे तेने उपदेश रुचि कहिये.

राग, दोसो, मोहो, अन्नाणंजस्त, वग्गयं, होइ ॥ आणाए रोयंतो, सोखलु, आणारुई नाम; ॥ ४ ॥ अर्थ:- जेने रागदोष द्वेषदोष मोह अने अज्ञानदोष क्यथईगया ते असत्य नबोले केमके ए त्रणदोषठते असत्यबोलाय रागनुलीधो अथवा द्वेषनुलीधो अथवा अज्ञानदोषे अणजाणे जुतुंबोले पण जेने त्रणदोष क्यगया तेसावास्ते जुतुंबोले, हेतुविना कार्यथायनही एटले ए त्रणदोषरहित जे वीतरागपरमात्मा तेनी आज्ञानेविषे अत्यंत आदरहोय ते त्रीजी आज्ञारुचि कहिये.

जो सुचमहिद्धंतो, सुएणउ गार्ह समत्तं ॥ अणेण बाहिरेणव, सोसुत्तरुईत्ति नायवो. ॥ ५ ॥ अर्थ:- सूत्रजे सिद्धांत तेने नणवा तथा सांनलवानी चाहना करे जेम जेम श्रुतअवगाहे तेमतेम सम्यक्त्वरसपामे एटले इग्यारेअंग तथा बार उपांग अने बाहिरेणवके० बाहिरते मूलसूत्रप्रमुख एम जेकाले जे सिद्धांत वत्त मानहोय ते सूत्राकरउपरे घणीचाहनारहे जे जे किरियाकरे ते सूत्राकरने मज तीजकरे ते चोथी सूत्ररुचि कहिये

एणेण अणेगाई, पयाई जो सरइउ सम्मत्तं ॥ उदएव तेजविड, सो वीयरुइत्ति नायवो ॥ ६ ॥ अर्थ - जे नव्यजीव गुरुनामुखथकी एकादि जीवपदनो अर्थ सांनली अनेकपदमां मतिपसारे एटले मूलवात पामीने बीजी अणकहेलीवात पामीजाय उदकजेपाणी तेमा तेलनु विड पडयो ते जेम विस्तराजाय तेम थोडुं सांनलीने घणुजाणीजाय ते पांचमी बीजरुचि कहिये.

सोहोइ अनिगमरुई, सुअनाण जेण अउउदिठं ॥ इकारसमंगाइ, पइन्नगंदिठी वारुअ ॥ ७ ॥ अर्थ - ते जीवने अनिगमरुचिहोय जेणे इग्यारअंग तथा उ पाग अने पइन्नगंके० प्रकीर्णक उत्तराध्ययन प्रमुख तथा दृष्टिवादाना गनीर अर्थजाणे वजी अर्थजाणवानी चाहनाराखे ते ठही अनिगमरुचि कहिये

दवाए सवजावा, सवपमाणेहिं जस्सउवल्लदा ॥ सवाहिं नयविही हिय,
विहाररुत्ति नायवो ॥ ८ ॥ अर्थ.— इय्यजे धर्मास्तिकायादिक ठ तेना सर्वजाव
जे इय्य गुण पर्याय उत्पाद व्यय धौव्य तेने सर्वनय जंग प्रत्यक् परोक्षादिप्रमा
ए स्यादाद सैली सहित अनेक सप्तजंगी परुपणायेजाणे ते सातमीविस्तार रुचि
दंसण नाए चरित्ते, तव विणए सच्चसमीइ गुत्तिसु ॥ जोकिरिया जावरुइ,
सोखल्लु किरिया रुइनाम ॥ ९ ॥ अर्थ.—जेने दर्शन ज्ञान चारित्र तप विनय समिति
गुत्तिप्रमुख बाह्य क्रियाथी घणु रगहोय क्रियाजावमां घणी चाहना रहे तेने थाव
मी क्रियारुची कहिये

अणनि गाहिय कुदिछी, संखेव रुत्ति होइ नायवो ॥ अविस्तरउ पवयणे, अ
एनि गहियो असेसेसु ॥ १० ॥ अर्थ— जेप्राणी अणनिगहिय के० अणनि
ग्रहिक कुट्टीजे कुमार्गे शांख्यादिक दर्शनोतो आग्रह धरेनही थोडुं कहाथकी
घणुंजाणे कुमत्तिये पफेनही समोविचारे चिलातिपुत्रनीपरं तथा प्रवचनजे जिना
गम तेनेविपे घणुं अविस्तरद के० निपुणतो न होय तोपण सरल्लगुणेकरी कदा
ग्रह धरेनही जिनमार्गनी प्रतीत माने तेने नवमीसंक्षेप रुचीकहिये.

जो अडिकाय धम्म, सुअ धम्मंखल्लुचरित्तधम्मंच ॥ सद्दहइ जिणानिहियं, सो
धम्मंरुत्ति नायवो ॥ ११ ॥ अर्थ— जे जव्यजीव अडिकायधम्म के० पंचा
स्तिकायतुं स्वरूप जाणे तथा श्रुतधर्म अने चारित्रधर्म ने बाह्य अंतरगजावे श्री
जिनोक्तमार्गे सद्दहे संकल स्वजाव विजाव स्वरूप जाणे तेने हेधोपादेय जावे य
थायोग्य सद्दहे ते दशमी धर्मरुचि कहिये ए दशरुचि ते सम्यक्त्वना चेदढे

हवे ए सम्यक्त्वगुणनी प्राप्ति ते मिथ्यात्वना त्यागथी थाय ते मिथ्यात्वना जे
ठ पाचढे तेमाजे लौकिक प्रवाहधर्म जेजे सारजी सपरिग्रही कुशीलसेवनादिक जे
धर्म बुद्धेग्रहो तेहिज सारकरीजाणे तेतुं ह्वताणे अमारोधर्म तेज सारढे एम
कदाग्रहकरे पण मय्यस्थयई परिह्हाकरी शुद्धनेग्रहेनही ते अनिग्रहिक मिथ्यात्व.

जे एम कहेके सर्व दर्शनरुडाढे सर्वने वांदिये पण नदियेनही एवी पोतानी
मदबुद्धिजे जडतापणु तेनेलीधे कांचने तथा मणीने सरखाकरे पण परिह्हाकरी
शुद्धने ग्रही शकेनही ते वीजुं अननिग्रहिक मिथ्यात्व

जे जाणीजोईने छुतुं बोले कुमति कदाग्रहना जोरथी विरुद्ध परुपणाकरी ड
रत संसार वृद्धिकरे जमाली प्रमुख नन्हवनीपरे ते त्रीजुं आनिनिवेशिक मिथ्यात्व.

जे श्री जिनोक्त सिद्धांतना जाव सांजली संशय धरे जे ए केमहसे एम मगम ग्योरहे ते चोथुं सांशयिक मिथ्यात्व कहिये.

जे एकेंद्रियादिक समूर्द्धम जीवोने अनादिंतुं पठवाडे लागोरह्योठे प्रायें अस्त त्रीयासुधीतो अनानोगिकज होय ते पांचमुं अनानोगिक मिथ्यात्व जाणवुं अथवा संसारीजीवोने वीजापण चारप्रकारें मिथ्यात्वहोय ते कहेठे एक देव गत लौकिक वीजो गुरुगत लौकिक त्रीजो लोकोत्तर देवगत चोथो लोकोत्तर गुरु गत तेमां हरी हर शक्ति प्रमुखने माने पूजे ते लौकिक देवगत मिथ्यात्व, ब्राह्मण तापसादिकने गुरुबुद्धमाने पूजे ते लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, वलीजे सप्रजाव जि नविंवने इंद्रिय सुखने अर्थे माने पूजे ते लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, अनेजे सुसा धुने इहलोक सुख यश मान प्रतिष्ठा अथवा धन धान्य पुत्रादिकनी आस्थाधरी माने इहे दानआपे ते लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व कहिये

तथा जीवै अजीवसन्ना अजीवैजीव सन्ना मग्गे उमग्गसन्ना उमग्गेमग्गसन्ना सुदेवेअदेवसन्ना अदेवेसुदेवसन्ना सुसाहुसु असाहुसन्ना असाहुसुसाहुसन्ना धम्मे अथम्मसन्ना अथम्मधम्मसन्ना ए दशप्रकारे विपरीत वासनारूप मिथ्यात्वठे.

तथा जे वली रक्षाबंधन शंक्रांतिपूजन एम एकवर्षमा शतपर्व आराधन ते सर्व लौकिक पर्वगत मिथ्यात्वठे तथा दीवालीप्रमुख कल्याणीकना दिवशें इंडी यसुखने साथे विशेष पूजारचनादिक करे ते लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्वठे ए सर्व मली एकवीसजेदे मिथ्यात्व ते संसारीजीवोने संसारमां जमाडेठे.

तथा वली धर्माधिजीवने चारप्रकारे मिथ्यात्व टालवानो उपयोग राखवो ते कहेठे तेमां प्रथम प्रदेशमिथ्यात्वठे ते जे आत्मप्रदेशें पूर्वबंध मिथ्यात्वनादलियां र ह्यांठे ते सत्तागत अथवा उदयगत दलियांठे ते प्रदेशगत मिथ्यात्वठे ते जेवारे जीव जिनवाणीसांजली यथार्थनावजाणी सदहे सकल पुत्रलिक्रमावने हेयसदहे केवल स्वरूपलाजते यथार्थ परिणति परिणमन तेनेज सुखतुंमूलजाणी सदहे आदरकरे एवीवांठार्यें प्रदेशमिथ्यात्व टलीजाय.

बीछुं परिणाम मिथ्यात्व ते जे पोताना प्रमाददोपेकरी शुद्धश्रद्धाफरीने कुश्र क्षायाय जेम पूर्वधरने निष्ठादिक दोपेकरी पूर्वगलीतथाय मरीने निगोदादिकेजाय जेम प्रसन्नचद राजरूपी दूरवाक्य सांजली चेतनाफरीगइ ते परिणाम मिथ्यात्वक हिये ए मिथ्यात्व ते जिनवाणीनेविषे तीव्रोपयोगी रहेवाची टलेठे.

त्रीछुं परुपणामिथ्यात्व ते उत्सन्नजापवाना जे महोटादोप तेने कहियें एथी अ

नंतससार त्रमणकरे धर्मबीजनो ईसकरे जे सदहणा राखीने मरणांत कष्टपडे तो पण श्रीजिनवाणी विरुद्ध प्ररुपणानकरे तेने ए मिथ्यात्वतुं दोषटले

चोशुं प्रवर्त्तिमिथ्यात्व ते जे मिथ्यात्वनी करणीकरे मिथ्यात्व प्रवर्त्तावे तेने क हिये ए मिथ्यात्व सुसाधु तथा सुभावकनी सगति करवाथी तथा रागद्वेषने मद करी मध्यस्थतावे थड परिह्वाकरी शुद्धप्रवर्त्तन करवाथी टलेते.

एमए मिथ्यात्वजेठे ते जगतमा जेटली दुःखनीजातोठे ते सर्वतु मूलकारणते कोप्योडुसमन कोप्योव्याल तथा वेताल जे नकरीसके ते ड ख एमिथ्यात्वआपेठे व्याधि मृत्यु दाजिड तथा वनवासशीपण मिथ्यात्व सेवनते अनंतगुणु ड खदाइ ठे जेणे मिथ्यात्वजीव्यो तेणे सर्वजगतजीव्यो इडादिकनी रुद्धिपामवीसुलनते पण मिथ्यात्व टालतु ड करठे तेमाटे आत्मसुखार्थिजीवे विज्ञेपथकी मिथ्यात्व सो धन करतु निर्मल श्रद्धान करी आठगुणयुक्त सकादिदोष विमुक्त सम्यक्त्व दृढकरतु

हवे आठगुणोकरी सम्यक्त्वनी पुष्टीकरे ते आठगुण कहेठे गाथा ॥ निस्तकिय निकस्त्रिय, निवित्तिगिज्ञा अमूढदिष्टीय ॥ अवबुह थिरीकरणे, वल्लल्पनावणेअठ ॥ १ ॥ श्रीजिनागमनेविषे सूक्ताविचार अतिद्वियादिक नावजेठे ते साचा सदहे पण सदेहसंका नआणे अने सातजय पण मनमा आणेनही ते प्रथम निसंकगुण बीजो निकषागुण जे अन्यदर्शनना कष्ट मत्र चमत्कारादिक उन्नतदेखी तेनी चाहना नकरे आकहाधरेनही अथवा धर्मना पुण्यरूपफलनी इज्ञा नराखे केमके जिहा इज्ञानी आतुरता तिहापुण्यरस ओठोथाय जिहा इज्ञा तिहाकर्मबंधते अने पुण्यतो धर्मक्रियानो वस्तुस्वजावठे तेतो अवश्यजथाय तेने इज्ञारूप दोष तो सा सु कमरसकरे अने जे निरुहपणे धर्मक्रियानुंफलते ते निरविधिठे माटे ए निकं पागुणशी धर्मफल वृद्धिनेपामेठे

; त्रींनुं निवित्तिगिज्ञागुण ते जे कर्मसंबंधी फलनो संदेह राखेनही जेम कोई मनु प्य धर्मकरणी करतो कोई पूर्वकृत पापप्रकृतिने उदयड खेपोडतो थको मंदबुद्धि नो धणी एमविचारे जें दुंधर्मकरुंनुं तोपण पीडाकेम पासुंनुं ए धर्मक्रियानुं फल घासेके नही थाय एवीसकाधरे पण एम नविचारेजे एतोपूर्वरुत कर्मफल उ दय आवायेठे पण वर्त्तमान जे धर्मक्रिया करुंनुं ते आगल अवश्य आवसेज केमके श्रीजिनश्वरे कहुंते कडाण कम्माण न मुक्त अडि, माटे जे निवित्ति गिज्ञा गुणवतहोय ते संदेह धरेनही श्रीजिनजड्गणि खमाश्रमणे कडयमइ, ड ध्वले, तिविहाय रिह विरहउवावि ॥ नेयग हणत्तणेण, नाणापरणो दगेणच ॥ १

अथवा अशुचिपुञ्ज एकसरखागणे पण अशुचिपुञ्जदेखी दुगंठा करेनही तथा पुण्योदये अशुचिसंयोग मित्याथका खुलीनथाय अहंकार करेनही पापोदयधी अशुचिसंयोगमित्या दिलगीरथायनही ते निवृत्तिगंठा गुणकहिंयें.

चोथो अमूढदृष्टीगुण ते जे श्रीआगमसिद्धांतमां निगोदप्रमुखना सूक्ष्मविचार सांजलतां मुंजायनही जे पोतानी धारणांमां आवे ते धारिरीखे अने जे धारणातु द्विये नआवे ते सद्दे, तिहां एमविचारेजे सर्वदोषधी विमुक्त एहवा जिनेश्वरते अन्यथा वादीनहोय. यदुक्त आगमें.—असइसहुजंजुफिय्या, सवणुमय मवित्तह ॥ त हाचित्तएमइयं, अन्नदान वयंतिजे॥१॥अणुवकय पराणुग्गह, परायणा जंजिणा जग प्यवरा ॥ जिय राग दोसमो हाय, नन्नहा वाइणो तेण ॥ २ ॥ अर्थ.— जेजि नवाणी सांजलतां खबर नपडे, समजवामां नआवे, तेना हेतु लिखेठे. कोईक श्रो तातो पूर्वजव कृत ज्ञानविराधन कर्मोदयथयेथके मतिदुर्बलताधी न समजे तिवा रें आचार्य तथा विधि उपदेशक कोई हेतु दृष्टांतादिक वचनेकरी श्रोताना चित्त मां उतारे, एहवा महापुरुषोने विरहे तथा नीतीन्यायना अणजाणवाथफी एटले अनेक नय युक्तिना ग्रहणपणाविना अथवा ज्ञानावरणीकर्मना प्रबलोदयधी न समजे, तेवारे आत्मार्थि अमूढदृष्टी जीव एवो विचारकरे जे हेतु उदाहरण अथवा अनेक युक्तिदृष्टातें घणा वखत कहेताथकां पण मने सारीपठे समजण पडतीन थी ते महारे पूर्वोक्त दोषना योग्यधी जाणवी, पण सर्वज्ञमत तो अविच्छेद सत्य जठे, एम कहे तेवारे कोई दृष्टाकरे जे एकांते जिनोक्त रचनाज सत्यठे एवु तें कि मजाणु? तेवारे अमूढदृष्टी श्रोता उचर कहेठे.—अणुवकय के० जे जिनेश्वर ते केवां ठे प्रत्युपकारनी चाहनाविना परने अनुग्रह उपकार करवाने तत्परठे, तथा जजि णा के० जे कारणमाटे जिनेश्वरते जगतमां प्रवर के० श्रेष्ठे; रूप बल तेजकांति बुद्धि कृद्धि सिद्धिप्रमुख गुणे सर्वोत्कृष्टे, अने वली जियराग के० जीत्याठे मूलधी राग वेपने मोहजे अज्ञान ए त्रणदोष जेमांधी गयाठे माटे जिनेश्वर अन्यथावादी होयज नही तेधी परमयथार्थवात ते आगमनीजठे ए अमूढदृष्टीनामा चोथोगुण. पाचमो अवबूह गुण ते पोतानी आत्मामां अनंत ज्ञानदर्शनादिक गुणठे ते नुपावेनही उदकडुख भेटवाने वीनतादिक न जापे शुद्धसत्ता जेवीठे तेवीजकहे अने पुनजिक सुखडुखते अज्ञानदशा कृत उपायिठे आत्मा ए रागवेप उपाधि थी न्यारोठे, इमज परजे अन्यसाधक तेमांपणजे गुणहोय ते प्रगटकरीकहे पण नुपावेनही ते पांचमोगुण.

उक्तो धिरीकरणगुण ते पोताना परिणाम परजावमांथी काढी ज्ञानध्यानमां जोडे, नित्ये धर्मक्रियाकरतोहोय ते अथव्य धिरयोगवत थयोथको करे, पण चप लताना कारणमित्ते तोपण अधिरपणुं ग्रहेनही साध्यसाधनथी मगेनही, तथा कोई नव्यप्राणी गुजागुज कर्मोदयनिमित्ते धर्मथी पमतोहोय तेने सज्जपदेशादिक थ्यापी अथवा तेने कोईरीते सहायीथईने तेतुं परिणाम - धिरकरे, पण मगवा न थ्यापे ते उक्तो स्थिरीकरण गुण जाणवो

सातमो वत्सलतागुण थ्या वर्त्तमान शासनमा जे नव्य धर्मरुचि जीवोसाथें सामायक पोसह परिकमण यात्रा पूजादिक धर्मकरणी करताहोय, जेहनी सदह एा एकहोय ते पोताना साधर्मी कहिये, तेनी नक्तिकरवी ते वत्सलताकहियें अथवा सर्वजीव जाते आपणासाहमीजठे, एकसत्ताये सरखाठे, वास्ते सर्वजीवनी वात्सलता करवी, जीवदयापालवी, अथवा अंतरगजावे जीवना ज्ञानादिकगुण ठे तेने ज्ञानध्यानेकरी पोषवा (पुष्टकरवा) एटले ज्ञान ध्याननो घणो अन्यास करवो ए स्वनिष्ठा वात्सल्यगुण सातमोठे.

आठमो प्रजाविकगुण ते जैनशासननी उन्नतिकरवी, संघयात्रा रथयात्रा अथवा महोटा तप जप उंजी उपधान प्रतिष्ठा पूजादिकजा घणामहोत्सवे अढलक दाना दिकनी उदारताकरी जेथी अन्यदर्शनीउपण अनुमोदनाकरे एवी धाराये धर्म स न्मुखकरे, स्वदर्शनी वृद्धिकरे, घणाजीवोने धर्मजोडावे, एवा कारण मेलवे जेथकी जैनशासनने प्रजावे (दीपावे) ए बाह्यप्रजाविकगुण अथवा पोतानी आत्माना ज्ञानादिकगुण तेने वधारवा पुष्टकरवा ते अंतरप्रजाविक गुण ए प्रजावनागुण आठमो कह्यो.

हवे श्री सम्यक्त्वना सदसत्तचेद विद्युद् व्यवहारथी कहेठे -

तिस्सुद्धिं विंग लक्कण, दूसण नूसण पचावगागारां ॥

सदहण जयण जावण, ठाण विणय गुरु गुणाईयं ॥ २४ ॥

अर्थ - तिस्सुद्धि के० सम्यक्त्वनी त्रणसुद्धिठे, तेमा पहेली मनसुद्धि ते श्रीजिन तथा जिनमत ए बे विना अपर सर्व असारठे ऽम चित्तवे ते, मनसुद्धि, बीजी व चनसुद्धि ते श्रीजिनेश्वरनु आराधन करतां सर्व कार्यनी सिद्धिथायज अने कोई पू वरुत ड रुतना उदयथी जे कार्य न थयु ते अन्य देवोथी शुथवानुंठे, माटे अरिह तनी सेवाथी कामना सिद्धिथायज, वास्ते स्वप्रमापण अन्यदेवनी प्रार्थना न करं,

एवुंजे निसंकपणे बोजवुं ते वचनसुद्धिं कहिये. त्रीजी कायसुद्धिते कोई पूर्वकृत अशुभोदयथी कोई मिथ्यादृष्टी दुष्टराजा अथवा चोर अथवा दुष्ट देवादिकजेते ते एो खड्गादिके जेयो, जिलादिके यंत्र घाणीप्रमुखे पीज्यो, अग्नी प्रमुखे दाज्यो, एवा महोटा मरणांत कष्टआवे, एण एक श्रीजिनेश्वरविना अपर देवने वज्रजंघनीपरे नमेनही ते कायसुद्धि कहिये

लिंगके० लिंगत्रणणे ते कहेते:—जे श्रीजिनागम सांजलवानी घणीज इगाराखे इंधियसुखना अनेककार्यमूकी आगम सांजलवाने तत्परहोय ते प्रथम सुश्रुपा लिंग कहिये बीजुंलिंगते धर्मकरणी करवाने परमरागहोय जेटला धर्मकरणीयते तेहिजकार्यमाने बाकी सर्व नवपूरणमाने ते बीजुलिंग. त्रीजुलिंगते जे श्रीजिनेश्वर तथा जिनमार्गानुसारी गुरु तेना वैयावज्जमां यथायोग्य निश्चलाजिग्रह रूप नियमें प्रवृत्ते ते त्रीजुलिंग जाणवुं.

हवे जेथको हृदयगत सम्यक्त्व लिखियें जाणियें तेजलक्षण पांचमे:—ते कहेते तेमां पहेजुं लक्षण समठे, तेजेम रागद्वेषनी मंदता, तेम समतानी वृद्धि, सुखदु:खना उदये हर्षविषाद धरेनही ते समकहिये. एटले समपणेहोय पापोदये पुण्योदये अ व्यापकहोय तेसम नामा प्रथम लक्षण जाणवुं. बीजु संवेग लक्षण ते नित्ये मोहानिलापरहे, जे जे मोहना कारणते ते ते उपरे आदर घणुंहोय, परजावथी विमुखरहेते बीजुं लक्षण. त्रीजु निरवेद्यलक्षणते जे सप्तांग सहित एकठत्र राज्यपाम्युंहोय तोपण एमजाणे जे ए बंदीखाने पड्योवुं. ए कारागारथी के वारें नूटीस, सर्व पुजलिकनाव ते बंधनरूपगणे, समस्त संतारथी उदासरहे, ते निरवेद्य लक्षण त्रीजुं जाणवु चोथुं अनुकंपनलक्षण ते जे सर्व संतारीजीव उपरे अनुकंपाधरे, एटले संतारीजीवोना इव्यडु ख देखीने तेना उपर परम मैत्रीनावधरी, यथा शक्तिये उपकारकरे, मनमां एवी चाहना राखेजे कोई जीव पाप नकरे कोईजीव दु खी नथाय, सर्व संतारीजीव इव्य नाव दु खथी तुटे, धर्मपामे महारी शक्तिपुरे तो सर्वने धर्मरुचिवतकरुं, जेम एना जन्ममरणना दु खटले, एवी वासनाते अनुकंपा लक्षण चोथुं जाणवुं. पाचमुं आस्तिक्यता लक्षणते श्रीजिनशासन तथा जिनधर्मउपरें परम आसताहोय, परमरंगहोय एरीतें धर्मरंग वासीतहोय ते आस्तिक्यता लक्षण पांचमुं जाणवुं.

हवे पांच दूषण सम्यक्त्वना कहेते:—तेमां प्रथम संकादूषण ते जे जिनवाणी मां सदेहधरे ते शंकाकहिये. तेना वे जेदते—एक देशविषयी बीजो सर्वविषयी. तेमां

सर्वविषयसंका ते धर्मते के नथी अथवा जिनधर्म सत्यते किवा असत्यते, एवी विचारणाते सर्वथी संकाजाणवी; अने जे देशसंकाते, जीव सर्वगतते के असर्वगतते पृथ्वीमां जीवपणुं केमठेरे; अथवा निगोदादि स्वरूप केम घटमानथाय? कई युक्ति मानिये अथवा वर्तमानकालें चारित्रते के नथी इत्यादिक देशसंका जाणवी तथा पूर्वकहीजे सर्वसंका ए वे संका सम्यक्त्वने दूखवे ते संकानामे प्रथम दूषण जाणवुं.

बीजुं कांहादूषण. ते जे परदर्शननो अनिलापधरे तेने आकांहा, दूषणकहिये ते वेप्रकारेते एक देशथी आकांहा बीजी सर्वथी आकांहा तेमा सांगतादिक एकज दर्शननो अनिलापधरे ते तो देश विषय आकांहा, अने जे सर्वपारखंमीधर्मनी आकांहाधरे ते बीजी सर्वविषय आकांहा, एवीजुंदूषणकह्यु. सम्यक्त्व मलीनकरे ए श्रीजिनागममा अविस्वात रूप दूषणते.

त्रीजुं वितिगिह्वादूषण ते जे तपस्यादिक धर्मकरणीकरता तज्जन्यफलनो संवेह धरे, ए धर्मक्रिया फलसे के नहीफलसे, केमके क्रिया वे प्रकारनी जगतमां देखाय ते, एक फलआपे बीजी अफलपण थाय, आपाढाचार्यनी परे संदेहमांणडे, इहां कोईशिष्ये पठयुं जे संकाते सवेहरूपते, अने आ विचिकिह्वापण संदेहरूप कहोठो तो ए वेमा शोविशेषपणुंते जेथी निन्न निन्नकहोठो एम शिष्ये पुठयाथी गुरुकहे ठे सका दूषणते इय्यगुण विपेठे अने विचिकिह्वा क्रिया विपेठे ए त्रीजुं दूषण .

चोथु प्रसादादूषण ते कलिंगी तापस सांख्यादिक देखीने अहो ए महोटा त पस्वीते, इयादिक वर्णन ते आसंसाकहिये, ए प्रसंसाकरता असजुणाकरणे करी सम्यक्त्व मलीनकरे, सुग्धबुद्धि मिथ्यादृष्टी लोकने विपे, अत्यादरथाय, मिथ्याधर्मनी सदापुष्टीयाय, केमके लोककहेके जैनधर्मीपण एनी प्रसंसाकरेते, तो ए महागुणी ते इत्यादिक दूषणोथी सम्यक्त्व मलीनथाय ए चोथुंदूषण .

पांचमुं दूषणते जे कुलिंगी अन्यदर्शनी साथे संस्तव परिचयकरे, नित्य जेगार हे, तेनी क्रियाना वर्णन महिमा सांजली श्रद्धादोषदलीथाय, अने तेनी गुलज क्रियादेखी दर्शन दृढता, सियिलथाय, माटे अन्य दर्शनीनो परिचय त्यजवो ए पांचमुं दूषणते .

हवे, पांच नूपण कहेते - प्रथम, स्थैर्यनूपणते जे श्रीजिनधर्मने विषे, स्थिरताहो य, पण युक्ति कुयुक्ति साजली चपलचित्त करेनही ते स्थैर्यनूपण. बीजुं प्रजावना नूपणते श्रीजिनशासननी अनेक संघयात्रा पूजा प्रतिष्ठादिकना महोत्सव करते बीजुं प्रजावना नूपण जाणवुं त्रीजुं नक्तिनूपणते श्रीजिनशासन उपर घणीनक्ति

राखे, जेम कोई दलिडी रोगी अपराधी कलंकी प्रमुख दोषनिधानं महोद्धृष्टियो दीन हीननिष्ठाचरातुंवस्था अनुभवतो, एवा डु खी पुरुषने कोई उपकारी साम्यर्थ्यवान पुरुषं करुणालावी तेना सर्वेडु खफेडी महोटा धन धान्य राजरुद्धि समृद्धियें सहितकस्यो, हवेते दलिडीपुरुषने उपकारना करनार उपरं केहवी नक्तिहोय तेथी अधिक नक्ति देव, गुरु, धर्म, उपरंराखे ते त्रीजुं नक्तिनूपण कहिये. चीथुं नूपण श्रीजिनशासननेविषे कुशलता आगमसैलीयुक्ति प्रयुक्ति हेतुदृष्टांत मांहे अतिनिपुण ए नूपणवत क्यांय खलायनही जिहांजाये तिहां आगमनी कुशलताथी अन्य दर्शनीमां जैनमार्ग दीपावे कोई स्थानके हारेनही, परिकर्मित बुद्धिबले प्रयुनो मार्गदीपावे घणाने जैनधर्मपमाडे ते चोथुंनूपण.

पांचमुं तीर्थसेवा नूपण ते जे इव्यजावथी तीर्थनी सेवांमां रसीयोहोय तिहां इव्यथी तीर्थ ते श्रीसिद्धाचलादिक पुण्यक्षेत्र जिहां तरतमयोगें घणाजीव सिद्धि वखा घणाजीव रत्नत्रयीपास्या घणालस्यक्त्वदृष्टी देवनिवासि ते एवां पुण्यक्षेत्रं अनेक जनसमुदाययुक्त विधिपूर्वक जायते तिहां ते महापुरुषोना चरित्रने बहुया द करता पुण्यक्षेत्रना योगथी घणा कर्मोनी निर्जराथाय, केमके बंध तथा निर्जरा ते इव्य क्षेत्र काल जाव ए चारने अनुकूलता माफक थायते शुनइव्यादिक चारने निमित्ते पुण्यनी वृद्धिथायते, तेथी निकटसंसारीथायते, वली अशुनइव्यादिक चारने योगे संसारदुःख दुर्गतिनी वृद्धिथायते, माटे कर्मरूप निमित्तें इव्यतीर्थजें वुं अने जावतीर्थ ते दादसांगी अथवा चतुर्विध संघ तेनी सेवा नक्तिबहुमान करतां आत्मा निर्मलथाय, बीजाजीव धर्मपामे ए तीर्थसेवानामे पांचमुंनूपणकह्यते.

हवे आठप्रजावक केहेवे पावयणी धम्मकही, वाई निमित्तउ तवस्तीय ॥ विद्या सिद्धो अ वमि, अथेव पनावगा जणिया ॥ १-॥ अर्थ- पावयणीके प्रावचनीते जिनमार्गमां कुशल जिनमार्गदीपावे, तेथी प्रजावक कहियें. चीथुं धर्म कथामां अतिनिपुण होय ते घणा दुर्वोधजीवोने धर्मपमाडे, शासनने उन्नतिवधा रे, माटे बीजो प्रजावकजाणवुं त्रीजो प्रजावक वादी तेएकवातने शेकडावसतथा पे, वलीतेज शेकडाववत उत्थापे पण किहां खलायनही. प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत युक्ति कुयुक्तिमां निपुण, एवा तीक्ष्णबुद्धिमान वादी स्याद्दिमां निपुण ते राजदारे बहुजनसमह जयपताकावरे, शासनने दीपावे माटे वादी प्रजावकत्रीजो जाणवो चोयो निमित्तनारी प्रजावक ते जे पूर्व आम्नायनायोगथी जूत जविय्य वर्तमान कालनी बातकहे ते निमित्त कुशल; कोई तथाविध अवशरे राजदारादिकमां शा

सननी उन्नति करवा माटे कोई जानाजान गृहेपी निमित्तकहे, सर्वप्राणीने चमत्कारपमाडी पोताने अनुकूलकरे; तेअनुकूलथयाथी धर्मेनी वृद्धिथाय शासनदीपे, एचोथो प्रजाविक जाणवो. पांचमो तपस्ती प्रजावक ते श्रीजिनागमोक्त विधिमर्यादा पूर्वकतपकरे, तेने अनेक, कठिण कर्मेनी निर्झराथाय, आमोसहीप्रमुख घणी लब्धि उं उपजे, तपस्याना, महात्म्यथी इतिउपड्व देवतलादिक सर्व समीजाय, उपासना कखाविनाज तेने देवता पोतानीमेले आश्रितथई महीमावधारे, एवा शक्तिवत तपस्वी जिहाविचरे-तिहां श्रीजिनशासनदीपावे, माटे प्रजावक कहिये. षष्ठोविद्यासंपन्न-प्रजावक ते आकाशगामिनी प्रमुख अनेक विद्यायें संपन्न महापुरुष कोई विपम वेलांमां श्रीसंघनो उद्धारकरे, विघ्ननिवारे, दुष्टदमनकरी संघनीरक्षाकरे, शासननेदीपावे, घणाजीवोने धर्मसन्मुखकरे, माटे प्रजाविक कहिये, सातमो सिद्ध प्रजाविक ते जे पूर्व-आम्नाये-गुरुकपाथी पाम्यो अंजनसिद्धि चूर्णसिद्धि मंत्रसिद्धि, कनकसिद्धि प्रमुख अनेकसिद्धि संपन्न होय, ते कोई विषमताने योगे-जानाजानदेखी कोई अद्भुत सिद्धिनावलेकरी संघनो विघ्नदूरकरे, शासननी महोटाई करी देखाडे माटे प्रजाविक कहिये. आठमो कविप्रजावक ते जे जिनमार्गंधर्मेने अणुदूषवतो समस्त वर्त्तमात श्रुतमा निपुण स्वपर शास्त्रवेता कोई शासनोन्नतिकारणे अथवा कोई विघ्नजय निमित्ते कोई महा गंजीरार्थी अतिशयोक्ति युक्त प्रकशरे जे सांज लताज-पंक्तिहोयते चमत्कारपामी अनुकूलथाय, एम ए प्रजावक चितितकार्य सर्वकरे शासनोन्नतिकरे माटे प्रजाविक जाणवो ए आठप्रजावक कहा

हवे ष आगार कहेते तेमां प्रथम-आगार, रायानियोगेण एटले राजाने आदे जें काई धर्मविरुद्ध करवुपडे तेनो आगार, बीजो गुणानियोगेण एटले घणाजोक न्यात-जात प्रमुखना जोरथी विरुद्ध करवुपडे-तिहा प्रतिज्ञा-जागेनही ते बीजो आगार, त्रीजो बलानियोगेण ते कोई महाबलवान बलात्कारेण पकडी परवशकरी जोरावरीथी अचरु प्रमुख मुखमानाखे, खंवरवे तेथी प्रतिज्ञा-जागेनही ते, त्रीजो आगार, चोथो देवानियोगेण ते कोई दुष्ट देव पोतानी दिव्यशक्तियेकरी मनुष्यनी चेतना विकलकरे, अथवा अत्यंत मरणात कष्ट समस्त कुटुंबने आपे ते विकलतांमां अथवा कष्टनो माखो राजवेत समान काई विरुद्ध करवुपडे तिहां प्रतिज्ञा जागेनही, ए चोथोआगार पांचमो गुरुनिगृहेण, ते माता पिता वृद्धप्राता प्रमुख ना केहेवाथकी ते समजाव्या न समजे अने जो तेमलुं केहेवु न करे तो लोक निंदा करे, एम विचारी तेमना केहेवाथकी काई विरुद्ध करवुपडे ते पांचमो आगार षष्ठो

वित्तिकंगारेण ते वृत्ति कहेतां आजीविका तेहिज महोटा कांतार एटले अटवी ए टले कोई पापोदयथी एवु इव्य क्षेत्रादिक योग मलिजाय के जेथकी आजीविका नी दुर्जनताथईजाय त्रणदिवश पर्यंत जिहांसुधी शक्तिफुरे परिणामटके तिहां सु धीतो टक्योरहे पठे जाणेजे हवे टकासेनही एचुंदेखे तेवारे। कोई विरुद्ध कारणे आजीविका करवीपडे ते ठणे आगारजाणवो. ए ठए आगारतो जे उत्सर्गें पाली शकेनही तेनेठे, पणजे दृढ परिणामी होय ते सावास्ते आलंबनजहे, जे मंदहोय ते लाकडी लेइने चाले तो तेने कोई विरुद्धपण कहे नही.

हवे चार सदहणा कहेठे तेमां प्रथम परमार्थजे तत्वार्थ तत्वज्ञान शास्त्ररह म्य तेनो परिचयकरे, केमके तत्वज्ञान पाम्याविना जे उद्यमठे ते कष्टरूपठे, माटे तत्वज्ञान परिचय ए प्रथम सदहणाकहियें. बीजी तत्वज्ञाननी सकलपरमार्थनाजा ए जे मुनिराज तेनी सेवाकरे, एवा मुनीने सेव्याविना तत्व प्राप्तिपणनथाय, माटे तत्व ज्ञाननी सेवना ते-बीजी सदहणाजाणवी. त्रीजी व्यापन्नदर्शनी वर्जन ते व्यापन्नके० गयुंठे दर्शन जेथकी, एटले श्रद्धानृष्ट थयेला स्वदर्शनी, तेनी संगतन करवी, हीणानी सोबतकरतां साधुजनपण हीणोकेहेवायि, वास्ते दर्शन त्रष्टनुं संग वर्जनुं ए त्रीजी सदहणा जाणवी चौथी कुट्टी संगवर्जन ते मिथ्यात्वी ता पसादिकनी संगतनकरे, रासजसंगे गायकुटाणी माटे धर्मार्थियें कुलिंगीनुं संगवर्ज बु एचोथी सदहणा जाणवी

हवे ठ प्रकारे जयणाकहेठे तेमां प्रथम अन्वदर्शनी जे तापसादिक तथा तेना देवजे ब्रह्मा विष्णु महेश शक्ति प्रमुख ३ तथा तेणे ग्रहणकरेलाजे अरिहं तना चैत्य प्रतिमां बडिनाथ प्रमुख एटलानी साथे ठप्रकारनो व्यवहार नकरवो ठ प्रकारनी जयणा कहियें तेनानाम कहेठे एक वंदननकरनुं बीजुं विशेष बहुमान पूर्वक पंचाग प्रणिपातादिक तेने नमन कहीयें ते पण नकरनुं. त्रीजुं दानजे अन्न वस्त्रादिक तेपण नक्तिपूर्वक धर्मसाधनार्थे नअपनुं. उचित अनुकंप जाणीदेवु ते नी मनाई नथी चोथुं अनुग्रह प्रदान जे वारंवार तेडीतेडीने देवुं ते पण नकरनुं पांचमुं आलाप ते बोलांव्याविना आगलथी एकवार बोलवुं तेपण नकरनुं, ठणे संलापते वारंवार बोलवुं तेपण नकरनु. ए ठ वाना करतां सम्यक्त्वजाय माटे ठ वाना वर्जवा ए ठ प्रकारनी जयणा कहियें.

हवे सम्यक्त्वनी जावना कहेठे:-समस्त धर्मनुं मूलते सम्यक्त्वठे एवुं जावनुं ते प्रथम जावना. तथा समस्त धर्मरूप नगरनो दर तेपण सम्यक्त्वठे एवुं जाव

बु ते बीजी जावना. तथा धर्मरूप प्रासादनो पाइयो अथवा पीठते पण सम्यक्त्व जठे एवुं जाववु ते त्रीजीजावना, तथा सम्यक्त्वते आत्मार्थिकजीवोने निधान अखुट खजानोठे एवुं जाववुं ते चोथीजावना, समस्त धर्मनो आधार ते सम्यक्त्व जठे एवी वासना ते पांचमी जावना जाणवी, तथाधर्मरूप अमुक्यचीजने राखवा तुं जाजनते सम्यक्त्वठे एम जाववुं ते ठही जावना जाणवी

हवे सम्यक्त्वना ठ गण कहेठे शुद्धपद पणामाटे अस्ति ते जीवठे एम दृढ निश्चं जाणवु ते प्रथम गणठे. तथा सास्वत नित्यठे इच्छथी किवारे नाशनथी ए बीजुंगाण तथा पुण्य पापनो कर्त्ता तेपण ए जीवजठे ए त्रीजुंगाण. तथा वली पुण्य पापनो नोक्ता तेपण जीवजठे ए चोथुंगाण. तथा निर्वाण जे मुक्ति सिद्धठे ए पां चमुंगाण. तथा ते मुक्तिपामवानो उपायपणठे ते ठठुंगाण. ए ठ गणाविशेषनी च र्चा दर्शन सितरी प्रमुख ग्रंथयकी जाणवी ए ठगणनी अप्रतीत अविश्वास ते मिथ्यात्व जाणवु माटे ठ गण रुढीरीते सहहवा आगमरुची गुरुपासेथी धारवा.

हवे सम्यक्त्वनी निर्मलताने अर्थे दशनो विनयकरवो ते कहेठे - अरिहंत ते विचरता तीर्थकर १ ज्योतिस्वरूपी सिद्ध २ चैत्यजे प्रचुना देरासर ४ श्रुतसिद्धांत ५ वीतरागनो धर्म ६ मोक्षमार्गना साधक साधु ७ पाचप्रकारना आचार ते पोतेपण पाले अने परने पलावे ते आचार्य ८ जे इग्यारअंग पोते नणे अने प रने नणावे ते उपाध्याय ९ पवयणीते चउदपूर्वधर १० दर्शनजे सम्यक्त्व ए दश नो विनयकरवो एदशो नो यथायोग्य अनुकूलपणोथयिने विनय करताथका सम्य क्त्व अतिनिर्मल थाय

११ - विचारं तुह समया, सया सरंताण नवजीवाणं ॥

सामिय तुह प्यसाया, हवेऊ समत्त संपत्ति ॥ १५ ॥

अर्थ - हे स्वामिन् तुहसमया के० तहारा परुप्या. सिद्धांतनो विचार के० विस्तार तेने सया के० सदाकाल सरंताण के० अनुसरतां अन्यासकरतां एवा नवजीवाणं के० नव्यजीवोने तुहप्यसाया के० तहारा पशायथी सकल सिद्धांतनोपार एवोजे समत्त के० सम्यक्त्व तेनी संपत्ति के० प्राप्ति ते सम्यक्प्रकारे निरावरणजावे हवेयु के० थाउं. ए प्रकरण करनारनी आसीसठे इति सम्यक्त्वस्तव बालावबोध संपूर्ण मगमत.

॥ अथ प्रशस्तिखिरव्यते ॥

॥ दोहरा ॥ यह विधि समकित श्रणतणी ॥ प्रापति आगम मांदि ॥ जापी नि

सुणी सदहे ॥ तस दो डुरगति नांदि ॥ १ ॥ सुरपति सुख लेवो सुगम ॥ सुजन
रङ्ग इक ठत्त ॥ दुर्जन नरनव जगतमें ॥ समकित गुण सपत्त ॥ २ ॥ दान दया
संयम क्रिया ॥ समकित युत शिव हेता ॥ नदि तो मडक चूर्णपरि ॥ नव बंधन संकेत
॥ ३ ॥ विण समकित सयम क्रिया ॥ करे अनंती वार ॥ पार न पावे तेह युत ॥
अड नवमे निस्तार ॥ ४ ॥ एक सहित दश गुण वधे ॥ छुन्य अंक कहिवाय ॥ वो
धियुक्त गुण सवि क्रिया ॥ नहितो कष्ट कहाय ॥ ५ ॥ पुन्यदिशी पूरव जली ॥ जिहाँ
उदयाचल थान ॥ कल्याणक सवि जिनतया ॥ तिय ए दिशि परधान ॥ ६ ॥ सु
विहित सूरि गुणे जख्या ॥ (श्री) पुन्यसिंधु सूरिस ॥ वाचक ज्ञानसागर तणि ॥ निनु
जस नामे सीस ॥ ७ ॥ तास शिष्य पूरव तणा ॥ तीरथ चेटण, काज ॥ छुन
सकुने सूरतथकी ॥ करि प्रयाण छुन साज ॥ ८ ॥ यमुना सुर तटनी तटे ॥ वंद
न श्रीजिनपाय ॥ नगर मगसुदावाद लगि ॥ अनुक्रम पढुता जाय ॥ ९ ॥ साउस
खा गोत्रे जलो ॥ साह सुगाल सु नाम ॥ इखमां काले धर्मनो, कखो सुगाल सु
गाम ॥ १० ॥ समतसिखर गिरिराज पर ॥ वीसे टूंक स्तूप ॥ थापी तिम इकवी
समो ॥ कखो प्रसाद अनूप ॥ ११ ॥ पंचम आरे परगडो ॥ कखो उदार प्रति
६ ॥ मानव नव सफलो करी ॥ जगमाहे जश लीध ॥ १२ ॥ तसु सुत जागनि
धी जलो ॥ दाता धर्मी दह ॥ राजसजा मंगन समी ॥ अजिनव अजय प्रत्यह ॥
॥ १३ ॥ साह सुला नामे निपुण ॥ आगम रुचि प्रिय धर्म ॥ तास कहणथी ए कियो
॥ जापामय स्तव मर्म ॥ १४ ॥ आगे बहुश्रुते बहु लिख्या ॥ समकित जेद विशेष
॥ वाकु लखि जापा लिखुं ॥ उनमे कूण विशेष ॥ १५ ॥ तोजी तस आसय अ
गम ॥ हुं उद्यस्य अयाण ॥ जूल चूक जे मुफतणी ॥ बुध जन लाजो गण ॥
॥ १६ ॥ आगम जलधि अपार हे ॥ मुफ मति नौका तुड ॥ क्यो निवहे जादो
नदी ॥ पकरे जेडी पुड ॥ १७ ॥ अल्पमति मे अज्ञान हुं ॥ जाणुं न बहुत रहस्य ॥
ऋपाकरी मोपे कति ॥ करजो शुद्ध अवस्य ॥ १८ ॥ सज्जन मुफशिरमोर हे ॥ हुं
सज्जनको दास ॥ संतरुपाथी मुफ दुसे ॥ ए सफलो सुप्रयास ॥ १९ ॥ कुमति क
दाग्रह भ्रमथकी ॥ वितड लखाणु जेह ॥ श्रीसथ साखे मुफहुं ॥ मिडाइकड
तेह ॥ २० ॥ दुर्जन चारुं अंगमे ॥ समकित एह अमूल ॥ नविजन तस उद्यम
करो ॥ जिम शिवसुख अनुकूज ॥ २१ ॥

इति श्री सम्यक्त्व स्वरूपस्तव - बालावबोध सहित समाप्त.

दे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १२ ॥ दोहा - केइ मूढ अन्याय करि, आए जंग
जिम थाय ॥ तिम जिण इव्य वधारता, बुडे नवोदधिमांय ॥ १२ ॥ व्याख्या -
केवि-केटलाएक मोहेण- मोहे करीने अन्नाणी- अज्ञानी शुद्धज्ञान विकल एह
वा मूढ- मूर्ख तत्वज्ञानना अजाण जिणवरयाणारहिय- जिनवरनी आज्ञाथकी
रहित थया थका जिणद्वं जिनइव्यने- वधारतावि वधारता ठतां पण नव समुद्धे-
सत्तार समुद्धेविपे बुद्धंति- बुडे ठे जमेठे ॥ १२ ॥

अवतरण - अंगारकर्मादिक कर्मरूप कुव्यापार पोते कस्याथी अथवा कोईना हा
थे कराव्याथी, अथवा देवइव्येकरी गृहादिक स्थावर मिलकत खरीद करी अथ
वा करावीने जाडे आपवी तथा नीच लोकोने जिनइव्य व्याजनी आशाए धीरवा
थी, तथा पोते बलवान ठतां जोर देपाडीने जवरजस्तीथी कोईनी पासेथी काई
इव्य जई लेवु तथा माली, सुतार, शिल्पी (कडिया) इत्यादिकनी पात्रेथी वचना करीए
टले उगीने जे देव इव्यनी वृद्धि करवी ते जिनआज्ञाथी रहित ठे ए वृद्धि जिन
आज्ञा प्रमाणे कहेवाय नही पण जिनआज्ञाथी बाहेर कहेवाय तथा कुकुरा
एटले नरगी कलाए करी देवइव्य वधारवानो शास्त्रोनेविपे निपेय कस्यो ठे. घणो
जान यतो होय तोपण ए इव्य कोईने अंग उधार देवानो निपेय कस्यो ठे सुव
ए तथा रत्नादिकना आचूणणो रापीने तेना व्याजथी देवइव्यनी वृद्धिकरवी कही
ठे अने सुकलाएकरी तथा न्यायोपार्जित धनना जागे करी देवइव्यनी वृद्धि क
रवी एम शास्त्रोर्मा कस्युठे माटेज अयोग्य मनुष्यने देशना देवी नही ते कहेठे -
मूल - कुग्गह गह गहियाण, मुद्धो जो देइ धम्म उवएस ॥ सो चम्मासी कुकर,
वयणम्मि खिवेइ कपूर ॥ १३ ॥ दोहा - कुग्रह ग्रह ग्रहि जीवकूं, जो रुद्ध य
र्म सुणाय ॥ चर्मजखी, कूकरमुखे, सो कपूर चवाय ॥ १३ ॥ व्याख्या - कुग्गह
अग्निनिवेश मिथ्यात्वरूप जे कुग्रह तद्रूप गह-ग्रह जे जूतादिक तेषेकरी गहिया
ण-ग्रहण थएला जे लोको तेअने मुद्धो-मुग्ध जो-जे धम्मउवएस-धर्मना उ
पदेशने देइ-दिये ठे, सो- ते चम्मासीकुकरवयणम्मि-चर्मादिकने नकूण करनार
कूतराना महोमा जाणे कपूर-कपूर जोजन खिवेइ-क्षिपति एटले नाखेठे. एनो
जावार्थ - जे मनुष्यो डराग्रहरूप जूतेकरी प्रसायला ठे, तेउने शुद्ध धर्मनी देश
ना देवी ते कूतराना महोडामा उत्तम जोजन आपवानी पठेठे, अर्थात् योग्य
अधिकारी जोईने धर्मोपदेश करवो ए तात्पर्य ठे ॥ १३ ॥

सिद्धांतथी बाहेर पोतानी मतिए करी कटपेलो पोते अंगीकार करेलो जे अस

व्य पदार्थ, तेने फुलो उपदेश देईने पुष्ट करवो ते अजिनिवेश मिथ्यात्व कहेवाय ठे. अने जे हेय उपादेयना ज्ञानेकरी रहित होय तेने मुग्ध कहेठे.

अवतरणः—अयोग्य पुरुषने उपदेश देवामा रोपनो संजव ठे ते कहेठेः—मूल — रोसो विखमा कोसो, सुतं जासंतयस्त धन्नस्त ॥ उस्तुत्तेण खमाविय, दोस महा मोह आवासो ॥ १४ ॥ दोहा— सूत्र नापि नर धन्य तस, रोपवि उपशम कोश उत्सूत्रीकी पिण क्कमा, महा मोह घर दोप ॥ १४ ॥ व्याख्या—सुतं जासंतयस्त धन्नस्त—सूत्रनुं नापण कर्त्ता जे धन्य पुरुष ठे, तेनो रोसोवि—रोप एटले क्रोध ठे ते पण खमाकोसो—क्कमानो कोश एटले चंडार ठे; अने उस्तुत्तेण—उत्सूत्रेकरी खमाविय—क्कमा पण दोस—दोप अथवा द्वेषरूप ठे, महामोह आवासो—ते महामोह एटले अज्ञाननो आवास एटले महेल ठे एनो नावार्थी.—सूत्र नापी शुद्ध प्ररूप क गीतार्थ पुरुषनो क्रोध पण क्कमानो चंडार ठे, केमके, ते शिष्यादिकने शुन सा धननो हेतु ठे, अने उत्सूत्र नापी अगीतार्थ पुरुषनी क्कमा पण क्रोधनो चंडार ठे, केमके, ते शिष्यादिकने अशुन साधननो हेतु ठे ॥ १४ ॥

अवतरण—कोईक ठेकाणे क्रोध शुननो हेतु थायठे अने क्कमा अशुननो हेतु थायठे माटे जिनधर्मनुं सम्यक् जाणपणुं घणुं कवण ठे ते कहेठे मूल—इकोवि न संदेहो, जं जिण धम्मेण अडि मुक्क सुहं ॥ त पुण डडिन्नेयं, अइक्कड पुन्न रहियाण ॥ १५ ॥ दोहा— जो शिवसुख जिणधर्मथी, एकजि नहि संदेह ॥ पुन्य हीणके जाणवो, कवण मोह सुख तेह ॥ १५ ॥ व्याख्या— इकोवि—एक पण नसंदेहो—संदेह नथी, जं—जो जिणधम्मेण—जिणधर्मनुं आराधन कखुं ठतां मुक्कसुहं—मोहसुख अडि—ठे, एटले जिनधर्मना आराधनथी निश्रये करी मोह थायठे एमा एके संदेह नथी पुण—वली त—ते जिनधर्म डडिन्नेय—डुःखेकरी जाणवा योग्य ठे, एटले जाणवाने अशक्य ठे ते कोणेजे अइक्कड पुन्नरहियाणं—अति उत्कट ए टले अति प्रधान सम्यक्त्वरूप पुन्य थकी रहित प्राणी ठे तेने; अर्थात् अजिनिवेश मिथ्यात्वने जिनधर्मनुं सम्यक् जाणपणुं थडु घणुं कवण ठे ए जाव ठे ॥ १५ ॥

अवतरण—स्त्रीनी चोसत कला अने पुरुषनी बोतेर कला इत्यादि स्थूल पदार्थोथी जिनधर्मनुं डडिजपणुं देखाडे ठे — मूल — सर्वपि विद्याणिक्कड, लप्पइ तह चउरि माइ जणमअ ॥ इक्कपि जाय डडिहं, जिण मय विहु रयण सुविआण ॥ १६ ॥ दोहा— चतुराई सबही कला, लहिये जगत सुजाण ॥ पिण डडिज इक जैन मत, विधी रत्त विज्ञान ॥ १६ ॥ व्याख्या — सर्वपि—सर्व पण विद्याणिक्कड—जोको

नेविपे जाणामा आवेठे, तह-तिम चउरिमाइ-चतुराईपणुं एटले उचित कार्यने विपे कुशलपणुं जणमझे-अविवेकी लोकोनेविपे पण लप्रइ दीगामा आवेठे, काई डुर्जेन नथी, केमके संसारनी चतुराई जीवे अनंत वार पामेली ठे परतु जाय-हे नाई, इकंपि-एकज डुलह-डुर्जेन ठे एटले डु खे करी पमाय एवुं ठे ते जिणमय विहि रयण सुविआण-जिनमन संबंधी विधि रत्तुं नलु जाणपणु तथा करवा पणुं तेज एक डुर्जेन ठे, केमके, विवेकी पुरुपने जिनशासन, संबंधी विधिरत्तुं स म्यक् जाणपणु तथा करवापणुं सजवे पण बीजाने संजवे नही ए नाव ठे ॥१६॥

अवतरण --जिनमतविधिरत्तना सम्यक् जाणपणानुं डुर्जेनपणुं देखांम्युं, ते जाण पणानेज सम्यक्त्व कहेठे, माटे हवे सम्यक्त्वतुं डुर्जेनपणुं देखाडेठे-- मूल -- मि डुत्त बहु लयाए, विसु-इ सम्मत्त कहण नवि डुलहं ॥ जह वर नरवइ चरियं, पाव नरिदस्स उदयम्मि ॥ १७ ॥ दोहा -- बहुजताय मिथ्यात्वकी, डुलन सु समकित द्यान ॥ जिम पापी नृपके उदै, वर नरनाय कथान ॥१८॥ व्याख्या -- मिडुत्त बहु लयाए- मिथ्यात्व तथा मिथ्यात्वोना बहुल पणाने लीधे, एटले व र्तमान डुपम कालमा देदीप्यमान असयतपूजा नामे दशमा अष्टेराना महिमाए करी डुव्यालिंगी कुलिंगी तथा तेथोना सेवको अजिनिवेशादिक मिथ्यात्वोघो घणा ठे माटे विसु-इसम्मत्तकहणमवि-अजिनिवेश मिथ्यात्व मजरहित निर्मल सम्यक्त्व तुं कथन करवु पण डुलहं--डुर्जेन ठे अही दृष्टात कहेठे --जह- जेम पावनरिद स्स उदयम्मि--पापी एटले अन्याई राजानो उदय थयो ठता वरनरवइ चरियं--प्रधा न न्यायवत नृपतिना चरित्रतुं वर्णन करवु डुर्जेन ठे तेम ते पण जाणी लेवु ॥१९॥

अवतरण --विशु-इ सम्यक्त्वतुं कथन करवु पण डुर्जेन ठे, तथापि उत्सूत्र जापी डुव्यालिंगीनो त्यागकरवो योग्य ठे ते कहेठे -- मूल - बहु गुण विज्ञा निलओ, उमुत्त जाली तहा विमुत्तवो ॥ जह वर मणि जुत्तो विदु, विग्घ करो विसहरो लोए ॥ १७ ॥ दोहा -- बहु गुण विद्या गेहजो, तदपि उत्सूत्री हेय ॥ जिम वर मणिजुत्त विघ्न कर, विपथर लोक विपेय ॥ १७ ॥ व्याख्या -- बहु गुण-जोप ए घणी आकरी क्रिया करवादिरूप घणा गुण विज्ञा-चौद श्रुतरूप विद्यातुं नि लओ-वर ठे, अथवा बहु गुणवाली विद्यातुं घर ठे, तहवि-तोपण- उत्सुअना सी-उत्सूत्र जापण करनारा डुव्यालिंगीनो मुत्तवो-त्यागकरवो योग्य ठे एविपे दृ ष्टात कहेठे --जह-जेम वरमणिजुत्तोवि-श्रेष्ट मणि रत्तेकरी युक्त ठता पण दु-निश्र य करी विग्घ करो-विघ्नने करनारो एहेवो विसहरो-विपथर जे सर्प ते लोए-लोकने

विषे अथवा लोकोए ठांडवा योग्य ठे एनो जावार्थे—जेम सर्प अमूख्यं मणिने धारण करनारो ठतां विपमयी होवाथी त्याग करवा योग्य ठे, तेम कोई पुरुष बंधु गुणयुक्त विद्यावान ठतां उत्सूत्रचापी होय तो अवश्य त्याग करवा योग्य ठे. ॥१॥ ॥ ॥

अवतरण.— अतिशय करी जे मोह ते व्यामोह कहेवायठे. तेम उत्सूत्रचापी इव्यलिगी जे गुरु ते, कुलक्रमथी चाल्या आवेठे, माटे तेने केम मूकाय! जो हुं त्याग करूं तो सज्जन लोको मारो त्याग करे, अथवा वनाउंए अंगीकार करेलो चाल मुकी दैये तो वाप दादानुं नाम जाय, इत्यादिक जे विचार करवो ते स्वजन व्योमोह कहेवायठे, तेज दर्शावेठे— मूल—सयणाणं वामोहे, लोआ धिष्यंति अत्र लोएण ॥ नो धिष्यंति सुधम्मे, रम्मेहा मोह माहप्यं ॥ १ए ॥ दोहा.— स्व जन नेह धन लोन करि, सेवै लोक मिथ्यात ॥ रम्य धर्ममें नवि रमै, है अज्ञान उतपात ॥ १ए ॥ व्याख्या.— सयणाणवामोहे—स्वजनना व्यामोहेकरी, अत्रलोहे—अर्थेना लोनेकरी, एटले मंत्र तत्रादिकनुं अर्थे जे प्रयोजन अथवा अर्थे जे धन तेना लोनेकरी, लोआ—सामान्य लोक जे ठे ते, धिष्यंति—ग्रहण करेठे एटले पो ताने वश करेठे, अने रम्मे—रमणीय जिन जाणित सुधम्मे—जे सारो धर्म ठे ते नोधिष्यंति—ग्रहण करता नथी हा—मोटी खेदनी वात ठे, जुवो मोहमाहप्यं—मो हनुं केटलुं माहात्म्य एटले महिमा ठे एनो जावार्थे.—स्वजन अथवा धनना लोने करीने लोको मिथ्यात्वनुं सेवन करे ठे, अने रम्य जे जिन धर्म तेने मूकी दिये ठे ए मोहनुं माहात्म्य ठे ॥ १ए ॥

आशका.—सर्व लोक मोहने वश थया थका मिथ्यात्वनी सेवना करेठे एम कथाथी सर्वने अधर्मनो प्रसंग प्राप्त थजे! ए शंकांनुं निराकरण करेठे—मूल— गिहवावार परिस्तम, खिन्नाण नराण वीसमण ठाण ॥ एगाण होइ रमणी, अ न्नेसि जिणिद वर धम्मं ॥ २० ॥ दोहा.— गृह व्यापार परिश्रमे, खिन्न थया नर तांहि ॥ इकनारी विश्राम हे, अन्य जिनागममाहि ॥ २० ॥ व्याख्या.— स्त्री पुत्रादिक कुटुंब परिवार गिह एटले घरने अर्थे, वावार—दंत लाख रसादिक अनेक विध व्यापार करतां थयो जे परिस्तम—परिश्रम एटले खेद तेषो करी खि न्नाण—खिन्न एटले थक लाग्याथी आकुल थयला एवा एगाण—एकेक नराण—मनुष्यने वीसमणठाण—विश्रामनु स्थान ते रमणी—स्त्री होइ—ठे. केमके, तेउ नारी कर्माजीवो ठे माटे. अने अन्नेसि—बीजाने एटले सुदृष्टिवत जीवोने विश्रामनुं स्थान जिणद्वर धम्मं—जिनेइनो जापेलो प्रधान धर्म ठे अर्थात् जे नारी कर्मा माण

सो ठे तेउने स्त्रीनो संग प्रीय लागेठे, अने जे हलुकर्मी माणशो ठे तेअोने जिन धर्म कर्त्तव्य प्रीय लागेठे ॥ २० ॥

अवतरण - मूढ तथा अमूढ पेट जरवामा सरखां ठे, पण कर्मविपाकेकरी सरखा नथी ते कहेठे. मूल - तुझेवि उथर जरणे, मूढ अमूढाण पिह्न सु विवागं ॥ एगाण नरय डुक्कं, अत्रेसिं सासय सुक्क ॥ २१ ॥ दोहा - सम पिण उदर जरे जुअो मूढ अमूढ विपाक ॥ मूढ लहै नरकादि डुख, निपुण लहै शिव नाक ॥ २१ ॥ व्याख्या - जेना अरस परस उथर जरणे-उदरनुं जरवु एटले पेट जरवु अथवा घरना व्यापार कार्यनुं करवु ते तुझेवि-तुत्य एटले सरखा ठे तोप एण मूढ अमूढाण-मूढते अविवेकी अजाणलोक अने अमूढ ते विवेकी धर्मना जाण लोक ठे, तेअोना विवागं-विपाक एटले कर्मनो अजाणन रस ने पिह्नसु-हे नार्ह तु देख, एगाण-एक एक केटलाएक निर्विवेकी महारनी महापरिग्रही, तथा मि प्याट्टि जीवो ठे तेअोने नरयडुक्कं-नरकनुं डुख ठे उपलक्षणथी तिर्यंच तथा निगोदनुं डुख पण जाणवु अत्रेसिं-बीजा जे सम्यकृष्टि देशविरति धर्मज्ञ विवे की जीवो ठे तेअोने सासयंसुख मोटी स्थिति आश्री देवलोकसंबंधी शाश्वत सुख ठे उपलक्षणथी परपराएकरी मोहना सुखनो पण सनव ठे मूढ तथा अमूढ ना विपाकमां एटलु फरक ठे माटे मूढपणानो त्याग करवो योग्य ठे ॥ २१ ॥

अवतरण - हवे वे गाथाए करी अमूढपणानी प्राप्तिनो उपाय प्रगट करीने कहे ठे - जिण मय कहा पबंधो, संवेग करो जियाण सवोवि ॥ सवेगो सम्मत्ते, सम्मत्तं सुद्ध देसणया ॥ २२ ॥ ता जिन आण परेण, धम्मोसो अन्न सुगुरु पासम्मि ॥ अह उच्चियं सद्वाअो, तस्सुवएसस्स कहगाअो ॥ २३ ॥ दोहा - जिनमत कथा प्रबंध सव, जण सवेग उपाय ॥ सवेग तु समकित ठते समकित सुद्ध गिराय ॥ २२ ॥ तो जिन आण परे धरम, सुणवो सुगुरु सकाश ॥ अथवा तत उपदेशको, कथ क सु श्रावक पास ॥ २३ ॥ व्याख्या - सवोवि- सर्व जिणमय कहा पबंधो- जिन मतनी कथानो प्रबंध अथवा निबंध ते जियाण-हलुकर्मी नव्य जीवोने संवेग करो-सवेग ते मोहानिलाप, तेनो करनार ठे अने सवेगो सम्मत्ते-सवेग ते सम्यक्त्व ठता ठे एटले सम्यक्त्व ठता सवेग होय ठे सुद्ध देस णया-उत्सूत्र मल कलंक रहित सुद्ध देशनाए करी सम्मत्त-सम्यक्त्व होयठे. ए नो जावार्थ - हलु कर्मी जीवोने जिन मतनी कथाना सर्व प्रबंधो अथवा सर्व निबंधो सवेगना जनक ठे ॥ २२ ॥ ता-ते कारण माटे जिनआणपरेण-

जिनराजनी आझानेविषे जे तत्पर प्रधान ठे ते मनुष्ये, सुगुरु पास्तम्भि-तारा गुरुनी पासे एटले सम्यक् ज्ञान दर्शन तथा चारित्रवान गुरुनी पाजे धम्मो-धर्म सोअव-सांजलजुं योग्य ठे. अह-अथ एटले जो तेवा मुनि महाराजनो योग न थाय तो उचियं-उचित प्रमाणे तस्सुवएसस्त- ते सुगुरु जापित धर्मे उ पदेशनो कद्दगाओ-वक्ता पण पोतानी मतिथी कहेनार नही एहेवो सद्गाओ-श्रावक जे धारणादिक गुणोसहित होय तेने समीपे धर्मे साजलवो पण बीजानी पाजे थी साजलजु नही एनो जावार्थे.--जिनाङ्गा पालनार प्राणीए सुगुरुनी पाजेथीधर्मे तुं श्रवण करतुं, तेनो योग न थाय तो कोई धारणादि गुणो सहित श्रावकनी पासेथी सांजलजु पण अनेरा पासेथी कदी पण साजलजु नही ॥ २३ ॥

अवतरण - धर्मोपदेश साजलव्याथी सम्यक्त्वादिकतुं जाणपणुं थायठे ते श्रेष्ठे ते कहेठे- मूल:- स कदासो उवएसो, तन्नाणं जेण जाणई जीवो ॥ सम्मत्त मिच्च जाव, गुरु अगुरु धम्म लोअ विई ॥ २४ ॥ दोहा- कथा ज्ञान उपदेशते जाणे जाते जीव ॥ समकित अरु मिथ्यात्वनो, जाव त्रिलोक थितीव ॥ २४ ॥ व्याख्या- सकहा- ते कथा सो उवएसो-ते उपदेश तन्नाण- ते ज्ञान जेण-जेणे करी जीवो- जीव सम्मत्तमिच्चजाव-सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वना जाव अथवा स्वरूपने गुरुअगुरु-सुगुरु अने अगुरु एटले कुगुरुना जावने तथा धम्म-जिन धर्मेनी स्थितिना जावने अने लोअविई लोकनी स्थितिना स्वरूपने जाणइ-उपादेय तथा हेयपणे जाणे एनो जावार्थे.-- जेणेकरी जीव सम्यक्त्वादिकना स्वरूपने जाणी शके नही ते कथा पण नही ते उपदेश पण नही अने ते ज्ञानपण कहेवाय नही. ज्ञानादि रत्नत्रय संयुक्त ते सुगुरु कहेवाय ठे, तेथी विपरीत ते कुगुरु कहेवायठे रात्रि नोजननी विरति प्रमुख ते धर्मस्थिति कहेवायठे, अने धन धान्यादिके करी प्राये ग्रहस्थ शोनेठे, अथवा लोकविरुद्ध न करतु ते लोकस्थिति कहेवायठे. ॥ २४ ॥

अवतरण - जिन वचन सांजलव्याथकी पण केटलाएक जारी कर्मी जीवोतुं मिथ्यात्व जतुं नथी ते कहेठे मूल - जिण गुण रयण महा निदि, जइणवि किन जाइ मिच्चं ॥ अह पत्तेति निहाणे, किवणाण पुणोवि दारिइं ॥ २५ ॥ दोहा- जिन गुण मणि निधि पाय कर, किम न थाय मिथ्यात ॥ निधि पाये पिण रूपणके, वजि दरिइ विख्यात ॥ २५ ॥ व्याख्या -- जिण गुण रयण महा निदि-जिनराजना सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादिक गुणरूप रत्नना षादशांग सि

सो ठे तेउने स्त्रीनो सग प्रीय लागेठे, अने जे हलुकर्मी माणशो ठे तेअ्योने जिन धर्म कर्त्तव्य प्रीय लागेठे ॥ १० ॥

अवतरण—मूढ तथा अमूढ पेट नरवामां सरखां ठे, पण कर्मविपाकेकरी सरखा नथी ते कहेठे. मूल—तुझेवि उच्चर नरणो; मूढ अमूढाण पिह्व सु विवाग ॥ एगाण नरय डुक्कं, अत्रेसि सासयं सुक्कं ॥ ११ ॥ दोहा.—सम पिण उदर नरे जुअो मूढ अमूढ विपाक ॥ मूढ लहै नरकादि डुख, निपुण लहै शिव नाक ॥ ११ ॥ व्याख्या.—जेना अरस परस उयर नरणो—उदरनुं नरबु एटले पेट नरबुं अथवा घरना व्यापार कार्यंतुं करबु ते तुझेवि—तुट्य एटले सरखा ठे तोप ए मूढ अमूढाण—मूढते अविवेकी अजाणलोक अने अमूढ तें विवेकी धर्मना जाण लोक ठे, तेअ्योना विवागं—विपाक एटले कर्मनो छुनाछुन रस ने पिह्वसु—हे जाई तु देख, एगाण—एक एक केटलाएक निर्विवेकी महारनी महापरिग्रही, तथा मि प्यादृष्टि जीवो ठे तेअ्योने नरयडुक्कं—नरकनुं डुख ठे उपलक्षणथी तिर्यच तथा निगोदनुं डुख पण जाणबु अत्रेसि—बीजा जे सम्यक्दृष्टि देशविरति धर्मज्ञ विवे की जीवो ठे तेअ्योने सासयंसुखं मोटी स्थिति आश्री देवलोकसंबंधी शाश्वत सुख ठे उपलक्षणथी परपराएकरी मोक्षना सुखनो पण सजव ठे मूढ तथा अमूढ ना विपाकमां एटलुं फरक ठे माटे मूढपणानो त्याग करवो योग्य ठे ॥ ११ ॥

अवतरण—हवे वे गाथाए करी अमूढपणानी प्राप्तिनो उपाय प्रगट करीने कहे ठे:—जिण मय कहा पबंधो, सवेग करो जियाण सवोवि ॥ संवेगो सम्मत्ते, सम्मत्तं सुख देसणया ॥ १२ ॥ ता जिन आण परेण, धम्मोसो अत्र सुगुरु पासम्मि ॥ अह उचिर्यं सद्धाअो, तस्सुवएसस्स कहगाअो ॥ १३ ॥ दोहा—जिनमत कथा प्रबंध सब, जण सवेग उपाय ॥ संवेग तु समकित ठते समकित सुख गिराया ॥ १२ ॥ तो जिन आण परे धरम, सुणवो सुगुरु सकाश ॥ अथवा तत उपदेशको, कथ क सुं श्रावक पास ॥ १३ ॥ व्याख्या.—सवोवि—सर्व जिणमय कहा पबंधो—जिन मतनी कथानो प्रबंध अथवा निबंध ते जियाण—हलुकर्मी नच्य जीवोने सवेग करो—संवेग ते मोक्षानिलाप, तेनो करनार ठे अने संवेगो सम्मत्ते—सवेग ते सम्यक्त्व ठता ठे एटले सम्यक्त्व ठता सवेग होय ठे सुख देस णया—उत्सूत्र मल कलंक रहित सुख देशनाए करी सम्मत्त—सम्यक्त्व होयठे. ए नो जावार्थ—हलु कर्मी जीवोने जिन मतनी कथाना सर्व प्रबंधो अथवा सर्व निबंधो सवेगना जनक ठे ॥ १२ ॥ ता—ते कारण माटे जिनआणपरेण—

जिनराजनी आज्ञानेविषे जे तत्पर प्रधान ठे ते मनुष्ये, सुगुरु पासम्मि-सारा गुरुनी पासे एटले सम्यक् ज्ञान दर्शन तथा चारित्रवान गुरुनी पासे धम्मो-धर्म सोअव्व-सांनजवु योग्य ठे. अह-अथ एटले जो तेवा मुनि महाराजनो योग न थाय तो उचियं-उचित प्रमाणे तस्सुवएसस्त-ते सुगुरु जापित धर्म उ पदेशनो कहगाओ-वक्ता पण पोतानी मतिथी कहेनार नही एहेवो सद्धाओ-श्रावक जे धारणादिक गुणोसहित होय तेने समीपे धर्म सांनजवो पण बीजानी पासे थी सांनजवुं नही एनो जावार्थीः--जिनाज्ञा पालनार प्राणीए सुगुरुनी पासेथीधर्म तुं श्रवण करवु, तेनो योग न थाय तो कोई धारणादि गुणे सहित श्रावकनी पासेथी सांनजवु पण अनेरा पासेथी कदी पण सांनजवुं नही ॥ २३ ॥

अवतरण - धर्मोपदेश सांनज्याथी सम्यक्त्वादिकतुं जाणपणुं थायठे ते श्रेष्ठे ते कहेठेः-- मूल-- स कहासो उवएसो, तन्नाण जेण जाणई जीवो ॥ सम्मत्त मिह्व जाव, गुरु अगुरु धम्म जोअ विई ॥ २४ ॥ दोहा - कथा ज्ञान उपदेशते जाणे जाते जीव ॥ समकित अरु मिथ्यात्वनो, जाव त्रिलोक थितिव ॥ २४ ॥ व्याख्या.- सकहा- ते कथा सो उवएसो-ते उपदेश तन्नाणं- ते ज्ञान जेण-जेणे करी जीवो- जीव सम्मत्तमिह्वजाव--सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वना जाव अथवा स्वरूपने गुरुअगुरु-सुगुरु अने अगुरु एटले कुगुरुना जावने तथा धम्म-जिन धर्मनी स्थितिना जावने अने जोअविई लोकनी स्थितिना स्वरूपने जाणइ-उपादेय तथा हेयपणे जाणे एनो जावार्थीः-- जेणेकरी जीव सम्यक्त्वादिकना स्वरूपने जाणी शके नही ते कथा पण नही ते उपदेश पण नही अने ते ज्ञानपण कहेवाय नही ज्ञानादि रत्नत्रय संयुक्त ते सुगुरु कहेवाय ठे, तेथी विपरीत ते कुगुरु कहेवायठे. रात्रि जोजननी विरति प्रमुख ते धर्मस्थिति कहेवायठे, अने धन धान्यादिके करी प्राये ग्रहस्थ शोनेठे, अथवा लोकविरुद्ध न करवु ते लोकस्थिति कहेवायठे. ॥ २४ ॥

अवतरण - जिन वचन सांनज्याथकी पण केटलाएक जारी कर्मी जीवोतुं मिथ्यात्व जतुं नथी ते कहेठे. मूल - जिण गुण रयण महा निहि, लक्षुणवि किन जाइ मिह्वत्तं ॥ अह पत्तेति निहाणे, किवणाण पुणोवि दारिदं ॥ २५ ॥ दोहा - जिन गुण मणि निधि पाय कर, किम न थाय मिथ्यात ॥ निधि पाये पिण रूपणके, वलि दरिड् विख्यात ॥ २५ ॥ व्याख्या-- जिण गुण रयण महा निहि-जिनराजना सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादिक गुणरूप रत्नना षादशाग सि

इंद्रांतरूप महा निधिने लक्ष्मणवि-पामीने पण एटले सांजलीने पण अग्निनिवेश
मिथ्यात्वी जीवोतुं मिह्वत्तं-मिथ्यात्व ते अतत्वश्रद्धानरूप किनजाइ-केम जतु नथी
एवो शिष्ये प्रश्न कखो तेनो गुरु उत्तर आपेठे- अह-अथ निहाणे पत्ते-रत्न
तथा सुवर्णतुं निधान प्राप्त थयुं ठतां पण किवणाण-रूपण पुरुपोतुं पुणोवि-तो
पण दारिद्रं-दारिद्र्य केम जतु नथी, अर्थात् रूपण पुरुपने रत्न अथवा सुवर्णादि
कतुं निधान मय्यु ठतां पण तेतुं दारिद्र्य जतु नथी, तेम जिन गुण रत्न सि-इंत
महानिधिप्रते काने सांजलीने पण नारी कर्मी जीवोतु मिथ्यात्व जतु नथी॥२५॥

अवतरण - जेम जिनागम सम्यक्त्वादिक धर्मनु कारण ठे, तेमज जिनना उप
देशेला पर्युपणादिक रूढा पर्वो पण सम्यक्त्वादिक धर्मनु कारणठे ते कहेठे
मूल - सो जयउ जेण विहिया, संवहर चाउमासिय सुपवा ॥ निहंधसाण जा
यइ, जेसि पजावथ्यो धम्ममई ॥ २६ दोहा - धर्म पर्व संवत्सरी, चतुर्मासि आ
वेय ॥ थाप्या जेणे जयतु ते, पापी सुमति धरेय ॥ २६ ॥ व्याख्या - सो-ते
जिन जयउ-जयवता थायो जेण-जेणे संवहर चाउमासिय सुपवा-सावत्सरक पर्यु
पणा पर्व तथा चतुर्मासिक त्रण (उपलक्षणथी चोदस पूर्णमासि अष्टम्यादि उपविं
तथा कव्याणिक तिथि रूढा पर्वनं) विहिया-उत्पन्न कखा ठे, जेसि-जे पर्वोना प
जावाउ-प्रजावथकी निहंधसाण-निहंधस प्राणीयोनी एटले निर्दय प्राणीयोनी
पण धम्ममइ-धर्म करवानी मति तथा जिन धर्म प्रशंसवानी मति एटले बुदि
जायइ-थायठे एनो जावार्थ - पर्युपणादिक सुपर्वनेविपे चतुर्विध श्रीसय, विज्ञे
प पणे चतुर्विध धर्मनेविपे उद्यम करैठे, तेने जोई निर्दय प्राणीउनी पण जैन
धर्म अगीकार करवानी अथवा प्रशंसवानी मति थायठे, त्यारे दयावत प्राणीयोनी
थाय तेमा शु कहेवु। माटे जेणे सुपर्व थाप्याठे ते जिनराज जयवता थाओ.॥२६॥

अवतरण - सुपर्वनेविपे कहीने हवे कुपर्वनेविपे कहेठे - मूल - नामपि तस्स
असुह, जेण निदिछाइ मिह्व पवाइ ॥ जेसि अणुसगाउ, धम्मीणवि होइ पाव मई
॥ २७ ॥ दोहा - पाप पर्व जेणे रच्या, अणुन नाम पण तास ॥ धर्मीने पण
जेहथी, पाप मत्तीनो वास ॥ २७ ॥ व्याख्या - तस्स-तेनु नामपि-नाम प
ण असुह-अणुन ठे, एटले पाप ठे जेण-जेणे मिह्व पवाइ-मिथ्यात्वना पर्व
निदिछाइ-उत्पन्न कखा ठे अथवा तेनो उपदेश कखो ठे जेसि-जे पर्वोना अ
णुसंगाउ-अनुसग थकी एटले प्रसंग थकी धम्मीणवि-धर्मी लोकोनी पण पाव
मई-पाप मति एटले पाप करवानी बुदि होइ-थायठे एनो जावार्थ -होली, धु

लेटी, विजयादशमी, गणेश चोथ, नाग पंचमी, पाप नवमी, वृह वारस, तथा धन तेरस इत्यादिक अनेक मिथ्यात्वना पर्वोने दिवसे घणा पाप, उपद्रव, हास्य कुतुहल आय ठे, जेना प्रसंगथी धर्मी पुरुपोनी पण पाप मति आय ठे त्यारे अर्थमी लोकोनी ते शी वात कहेवी। माटे जे पुरुपे मिथ्यात्व पर्वोनी स्थापना करीठे ते पुरुप तुं नाम पण अगुन जाणवुं, एटले तेतुं नाम लीधायी पण पाप लागेठे ॥२७॥

अवतरण--उपरनी वे गाथाना अनुसारें तो ज्यारे सुपर्व आवे ठे, त्यारे सर्वने धर्ममति उत्पन्न होवार्थी वधा धर्मी यवा जोये; अने ज्यारे कुपर्व आवे ठे त्यारे फरी तेअोनीज पाप बुद्धि अर्थ जवाने लीधे वधा पापी यवा जोये त्यारे कोईनो स्थायीजाव सिद्ध यजे नही एटले सर्वे जन पापी अने धर्मी ठरजे. ए आगंका दूर करवाने उत्तर कहे ठे -- मूल --मज्जिइ पुण एसा, अणुसंगेण ह्वति गुण दोसा ॥ उक्किठ पुण पावा, अणुसंगेणं न विष्पति ॥ २८ ॥ दोहा - ज्हेवे संगे जे ह्वो, ते नर मथ्यम होय ॥ अति धर्मी अति पातकी, ते तो फिरे न कोय ॥२८ व्याख्या -- पुण तेसा मज्जिइ-मथ्यम पुरुपनी स्थिति एटले मर्यादा एसा-ए ठे, अणुसंगेणं-अनुसंगे करीने एटले परना प्रसंगे करीने गुणदोसा- गुणवान तथा दोषवान ह्वति-आयठे, एटले गुणीना प्रसंगथी गुणी तथा निर्गुणीना प्रसंगथी गुण रहित आय ठे, ए मथ्यम पुरुपनी स्थिति ठे, परतु उक्किठ पुणपावा-जे उल्कृष्ट पुण्यवत धर्मी तथा जे उल्कृष्ट पापी अधर्मी ठे ते अणुसंगेण- पर प्रसंगेकरी न विष्पति-ग्रहण कखा जता नथी एनो जावार्थ - उल्कृष्ट धर्मीने पापीनो प्रसंग आय तो पण तेनी पापमति यती नथी, अने उल्कृष्ट जे पापी होय तेने धर्मीनो प्रसंग आय तोपण तेने धर्म मति यती नथी, अने जे मथ्यम पुरुप होयठे तेजज न्यूनाधिकताने पामे ठे जे अति पापी तेमज अति पुन्यवान नहोय ते मथ्यम पुरुप कहेवाय ठे ॥ २८ ॥

अवतरण --वली एनेज वली वृढावेठे.--मूल--अइसय पाविय पावा, धम्मिअ प वेसु तोवि पाव रया ॥ न चलंति सुइ धम्मा, धन्ना किविपाव पवेसु ॥२९॥दोहा -अति शय पापी पापरत्त, रहे सुपर्वे जेम ॥ पाप कुपर्वे धर्मथी, धन्य चले नहि तेम ॥२९॥ व्याख्या --जे माटे एम ठे तो-तेमाटे अइसय पाविय पावा-अतिशय एटले उल्कृष्ट पाम्युं ठे पाप जेणे, एटले जे उल्कृष्ट पापी पुरुप ठे ते धम्मिअपवेसुवि-धर्मी पुरुपो संबंधी पर्युपणादिक पर्वोनेविपे पण पावरया--पाप रत्त होयठे, एटले पाप कर्मनेविपे आसक्त रहेठे किवि- तेमज केटलाएक धन्न--वन्य एटले पुन्यवत प्राणी

उ पापपद्मेषु-पाप पर्वोनेविषे पण शुद्ध धम्मा-शुद्ध धर्मथकी नचलंति-चलायमान यता नथी. अने नवीन धर्मी जीवोने स्थिर राखवाने अर्थे दर्शन चरु पासठा दिकनो तथा अन्य दर्शनी कुलिगीनो प्रसंग पण करता नथी, घणो कहेवाची शुं

अवतरण.-- जेम सुपर्व अने कुपर्व ए वे प्रकारना पर्व कह्याठे, तेम सुलक्ष्मी तथा कुलक्ष्मी ए वे प्रकारनी लक्ष्मी ठे ते वतावेठे -- मूल -- लक्ष्मीवि हवइ डवि हा, एगा पुरिसाण खवइ गुण रिद्धि ॥ एगाय उद्धसंती, अपुत्र पुत्राणु जावार्ड ॥ ३० ॥ दोहा -- लक्ष्मी दोविध एक तो, नर गुण धण क्यकार ॥ एक दिपावै पुरुपकं, पाप पुन्य अनुसार ॥ ३० ॥ व्याख्या --लक्ष्मीवि-लक्ष्मी पण डविहा-वे प्रकारे हवइ-ठे तेमा एगा-एक तो अज्ञान कष्टादिके करी प्राप्त थएली जे ठे ते पुरिसाण-पुरुषोनी गुणरिद्धि-ज्ञानादिक गुणरूप रिद्धिने खवइ-क्य करेठे, एट ले नाश करेठे य-वली एगा-एक सुपात्र दानादिकेकरी प्राप्त थएली जे लक्ष्मीठे ते पुरुषोनी ज्ञानादिक गुणरुद्धिने उद्धसती-उद्धासने पमाने ठे एटले वधारेठे. अपुत्र पुत्राणु जावार्ड- पाप धर्मेना अनुभाव थकी एटले प्रजावथकी ते लक्ष्मी वे प्रकारे होयठे अपुत्र-पाप अज्ञान कष्टादिक, तेना प्रजावथी प्राप्त थएली जे लक्ष्मी ते गुणरुद्धिने नाश करेठे, अने पुत्र-पुन्य धर्म सुपात्र दानादिक, तेना प्रजावथकी प्राप्त थएली जे लक्ष्मी ते गुण रुद्धिनी वृद्धि करेठे ॥ ३० ॥

अवतरण -- ते लक्ष्मी लेवा देवामा जेम दोष थायठे तेम कहेठे.-- मूल -- गुरुणो नष्टा जाया, सठ्ठे शुणिकण लिति दाणाइ ॥ इन्निवि अमुणिय सारा, दू सम समयम्मि बुद्धंति ॥ ३१ ॥ दोहा -- जाट थया गुरु आदने, स्तवी लेत दा नादि ॥ तत्व अजाण वए बुडे, इसस्म समए प्रादि ॥ ३१ ॥ व्याख्या -- गुरुणो-नाममात्र गुरु केवल बाह्य लिंग रजोहरण मुख वस्त्र धारीने आजीविकानो कर नार, नष्टा जाया-जाट थया एटले जाटनी पठे कीर्त्ति वंचनाना बोलनार थया सठ्ठे-नाममात्र श्रावकने शुणिकण-स्तवीने एटले अहो महाजाग्य, पुन्यवत अ हो कटपट्ट, मनोवञ्चित पूरक, देवगुरु नक्तिफारक. जिन आज्ञा प्रतिपालक, श्रा-व्रत धारक, हीन दीनोदारक, धीर गंजीर औदार्यादि गुण गर्णरलंरुत इत्यादि क स्तवना करीने दाणाइ-असनादि आहार वस्त्र पात्र कंबल पाद पुसणादिक वस्तु लिति-लियेठे. इन्निवि-ते वने एटले स्तवना सांजलीने वस्तुने देवावालो ग्रहस्थ अने स्तवना करीने वस्तुने लेवावालो कग्रु अमुणियसारा--जेउए सिद्धं

तनो सार एटले परमार्थे जाण्यो नथी, तेउ दूसमसमयम्मि-डुपम कालरूप समु
इनेविपे बुड्ढंति-बूढेठे, एटले नरक निगोदादिकनेविपे प्राये घणा कालसुधीनमेठे ३ ।

अवतरण:- गत गाथामां परमार्थेने न जाणनारा बूढेठे एम कयु, ते परमा
र्थेने न जाणनारा घणा ठे अने परमार्थेने।जाणनारा थोडा ठे ते कारण सहित
कहेठे. मूल - मिच्च पवाहे रत्तो, लोओ परमउ जाणओ थोवो ॥ गुरुणो गारव
रसिआ, सुद्धं धम्मं निगूहंति ॥ ३१ ॥ दोहा- मिच्च प्रवाहे रत घणा, लोक स्तो
क सवुद्ध ॥ गारविरस लंपट गुरु, गोपै धर्म विसुद्ध ॥ ३१ ॥ व्याख्या - मिच्चप
वाहे-मिथ्या एटले विचार रहित ज्ञानेविपे रत्तो-रक्त एटले आसक्त एवा लोओ-
जे लोक ठे, ते घणा ठे ते लोकोथकी तथा सम्यक्त्वना पडिवाइ थकी परमउ
जाणओ-परमार्थेना जाण पुरुषो हमणा घणाजथोवो-थोडा ठे, कारण के गा
रव रसिआ-रुद्धि रस साता गौरवनेविपे रसिक एवा गुरुणो-नाम मात्र गुरुठे, ते
सुद्धं धम्मं-निर्मल जिन ज्ञापित तपसंयमरूप धर्ममार्गेने निगूहंति-गोपवेठे. केम
के, शुद्ध मार्गेनी प्ररूपणा करीश तो मने कोण वांइशे ! तथा पूजशे ! एवी स्था
पना करीने शुद्ध मार्गेने प्रकाश करता नथी, माटे परमार्थेना जाण पुरुष थोडाठे. ३१

अवतरण - वलो बीजो हेतु वतावे ठे मूल - सवोवि अरिह देवो, सुगुरु गुरु
जणइ नाम मित्तेण ॥ तेसि सुख सुहयं, पुन्न विदूणा न पावति ॥ ३३ ॥
दोहा- अरिह देव सुगुरु गुरु, नाम मात्र सवि कहत् ॥ ताके सुजग सुखपकूं,
पुन्यहीण नहि लहत् ॥ ३३ ॥ व्याख्या- परपरा गत जे श्रावक कुज, तेनेविपे
उपजेला ते सवोवि-बधाउने पूठीये तो नाममित्तेण-नामात्रे करीने जणइ-एमक
हेठे के, अरिह देवो-अरिहत- जे वीतराग ते देव, सुगुरुगुरु-संविद्ध गीतार्थे ते
गुरु, उपलक्षणथी श्रीवीतराग ज्ञापित श्रुत चरित्ररूप ते धर्म, एम नाममात्र
थी कहेठे, केमके, तेसि-ते देव गुरु तथा धर्मसुं सुहयं-सुख दायक इष्टकारी एवु
जे सुख-स्वरूप, तेने पुन्नविदूणा-रूडा पुन्यथी रहित प्राणी न पावति-पामता न
थी, माटे परमार्थेना जाण वत्तेमान कालनेविपे थोडा अथवा कोई विरला ठे. ॥ ३३ ॥

अवतरण - शुद्ध मार्गेना उपदेशक तो ठे तोपण हमणा परमार्थेना जाण
पुरुष थोडा केम कहोठो ? एवो शिष्यनो संशय दूर करवा निमित्त गुरु कहेठे के
अहो नइ, सानल - ॥ मूल - सुद्धा जिण आण रया, केसिं पावाण दुंति सिर सूलं,
जेसि ते सिरसूलं केसि मूढाण ते गुरुणो ॥ ३४ ॥ दोहा - शुद्ध जिनाइरा रत दुवे, कै
खलने शिर सूल ॥ जेने ते शिरसूल फुन, ते गुरु सव अनुकूल ॥ ३४ ॥ व्याख्या -

जिण आणरया- जिन राजनी आज्ञा पालवानेविपे रक्त एटले सावधान होवाने लीधे सुद्धा- निर्मल चित्तवाला एवा जे सविद्ध गीतार्थे शुद्ध मार्गोपदेशक ठे ते केसिं पावाण-केटलाएक पापी श्रमणोना सिरसूल-माथानु सूल हुंति- थायठे, एटले शुद्ध मार्गनी देशना कोईक प्रकारे सांचलीने त्रासने पामे ठे एवा जेसिं- जे पापी श्रमण केवल वेशधारी होय ठे, तेउने ते शुद्ध मार्ग उपदेशक पुरुष सिरसूल-माथाना शूलना जेवा लागे ठे ते-ते पापी श्रमण नि केवल वेपधारी के सिंमूढाण- केटला एक मूढ अजाण लोकोना गुरुणो-गुरु ठे, एटले पूज्य ठे एनो जावार्थे.- जे पापी श्रमण पापंमी जैनाजास नि केवल वेप धारी सविद्ध पक्षीना गुणे करीने पण रहित एवा तथा तेउना सम्यक् ज्ञान विकल एवा जक्त लोक तो घणा होय ठे, पण सत्य असत्यना विवेकी परमार्थ कुशल कोई विरलाज होय ठे

अवतरण - अशुद्ध मार्ग प्ररूपक कुगुरुने तथा तेना जक्त लोकोने जोईने शंथकार खेद सहित वचन कहे ठे ॥ मूल - हा हा गुरु अ अकळं, सामी न दु अडि कस्त पुकरिमो ॥ कह जिण वयण कह सुगुरु, सावया कह इय अकळं ॥३५॥ दोहा.- गुरु अकार्य हानहि घणी, करिये कहा पुकार ॥ सुगुरु श्राद्ध जि न वचन कह, कहा अकार्य असार ॥ ३५ ॥ व्याख्या - हा हा-अति मोटो खे द थाय ठे, गुरु अ अकळं-कुगुरुने मानवु तथा पूजवु इत्यादिरूप वर्त्तमान सम यनेविपे मोटु अकार्य थाय ठे, एवी रीते दयालु सुगुरुना वचन सांचलीने कोई एक बोव्यो के ल्यारे पुकार करो, एटले कोई सुभर्मी राजा प्रमुखनी पाशे फिरि याद करो ल्यारे गुरु कहेवा लाग्या के हे नड्, सामी-सुराजकुलोत्पन्न लोकहि त कारक डुर्नीति निवारक कोई राजा नअड्डी-नथी तो दु-निश्रये कस्त-कोनी आगल पुकरिमो-अमे पुकार करिये। माटे फिरियाद करवी निरर्थक ठे, एवा गुरुना वचन सांचलीने वली ते बोव्यो के, ल्यारे प्रथम 'हा हा गुरु अ अकळ' ए वाक्य तमे केम बोव्या? गुरुए कहु एटला वास्ते के, कह-क्याहां जिणवयण-सकल नय समूह, अखिल दोष रहित, एवा जिनवचन एटले सर्वज्ञ जाणित वचन, अने कह-क्याहा सुगुरु सावया- सुगुरु तथा श्रावक अने कह-क्याहा गुरु अ अकळ-सम्यक् ज्ञान क्रिया थकी च्रष्ट अविधि मार्गना उपदेशक, एवा जे कुगुरु, तेउनी सेवनारूप मोटुं अकार्य जे ठे ते केटलो अनर्थ कारी ठे ॥ जिनगजना नामादिक लई, तथा अशुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करी करीने ते

कुगुरु पोताने तथा पोताना नक्त लोकोने डुर्गतिमां नाखे ठे, एवा करुणा जाव
थी 'हा हा गुरु अ अकळं' ए वाक्य बोलवामां आबुं ठे ॥ ३५ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां कुगुरुनी सेवनारूप मोटुं अकार्य कसुं ते यथार्थ
जाणीने कोईक हलुकर्मी नव्यजीव ते गुरुनो त्याग करे तेने मूढ लोक डुष्ट क
हेठे, ते दृष्टांतेकरि कहेठे -मूल.-सप्ये दिष्टे नासइ, लोउं न हु किपि कोइ अस्के
ई ॥ जो चयई गुरु सप्यं, हा मूढा नणइ तं डुष्टं ॥ ३६ ॥ दोहा - साप देख
नासे कुई, लोक कहै कठु नाहि ॥ कुगुरु सापथी जे नसै, मूढ कहै खल ताहि
॥ ३६ ॥ व्याख्या.-लोउं-लोक सप्ये दिष्टे-सर्पनेदेखीने नासइ-नाशी जाय तेने
कोइ-कोई माणस किपि-काई अस्केइ-कहेता न-नथी हु-निश्चये, एटले तेने
कोई एम कहेतो नथी के तु कायर ठे, वीकण ठे, अथवा नपुंसक ठे इत्यादिक
कोई नरखु वचन कहेता नथी, उलटुं सारुं कहेठे, के तारुं मोटुं जाग्य जे तु सा
पनी पासेथी नाशी गयो. अने जो-जे पुरुष कुगुरु सप्यं-कगुरुरूप सर्पने चयइ-
त्याग करेठे एटले तेने मूकी दियेठे, हा-इतिखेदे मूढा-मूढ अज्ञानी लोक तं-ते
कुगुरुरूप सर्पने मूकी देनारने डुष्टं-डुष्ट, जाग्यहीण, पोताना वाप दादादि पूर्वजोनी
कुलमर्यादासुं उल्लंघन करनार ठे एम नणइ-कहेठे, पण सारुं कहेता नथी, एटले
तु कुगुरुरूप सर्पथी बची गयो ए घणुं सारुं थयुं माटे तुं मोटो जाग्यवान ठे एम क
हेता नथी, केमके सर्प अने कुगुरुमा केटलुं अंतर ठे ते तेउं जाणता नथी. ॥ ३६ ॥

अवतरण:- हवे सर्प अने कुगुरुमां घणो अंतरायठे ते कहेठे.- ॥ मूल.-
सप्यो इकं मरणं, कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइ ॥ तो वरिसप्यं गहियुं. मा कुगुरु
सेवण नइ ॥ ३७ ॥ दोहा.- एक मरणकूं साप दे, कुगुरु मरण अनत ॥ श्रेष्ठ सा
प ग्रहवुं तदा, कगुरु सेव नहि संत ॥ ३७ ॥ व्याख्या.-सप्यो-सर्प इकंमरण-
एकजवार मरणने दियेठे, अने कुगुरु- अगीतार्थ तथा विधिमार्गना अज्ञाण जे
कुगुरु ते अनंताइ मरणाइ देइ-अनंतवार मरणने दियेठे; ज्यारे अगीतार्थ कुगु
रुनी एवी कथा ठे ल्यारे जे सर्व गुणोकरी रहित कुगुरु होय तेतुं छु कहेवुं! तो-
ते माटे नइ-हे नइ, सप्यंगहियुं-सर्पने मणिलेवादिकने अर्थे जे ग्रहण करवुं ते
वर-श्रेष्ठ ठे पण कुगुरुसेवण-कुगुरुनी सेवा अथवा पूजा मा- करीश मा. अर्था
त् हे नइ, रखे कुगुरुनी सेवना तु करे कदापि करवी नही, तुं पोतातुं कव्याण इ
ह्वनार तथा सरल स्वभावनो होवाथी आ उन्नम सीखामणहुं तने आपुहुं. ॥ ३७ ॥
अवतरण -एवी रीते पूर्व गाथामां सर्पथकी पण कुगुरुने चूंमो कद्यो तेम

ठता तेने लोको गुरुबुद्धि ए नेमेठे तेनुं कारण छुं? ते ठजायाने लीधे मानेठे एम
 दृष्टात सहित कहेठे. - जिण आणा विचयंता, गुरुणो नणिकण जं न मिथ्यंति॥
 ता, कि कीरइ जोओ, ठलिओ गडुरि पवाहेण ॥ ३७ ॥ दोहा - जिण आजाथी
 रहितने, गुरुकहि जो शिरनाय ॥ गमर प्रवाहे जण ठव्यो, तो सुं करिये नाय ॥
 ॥ ३७ ॥ व्याख्या - जिण आणा - समिति गुप्ति महाव्रतादि जिण नापित क्रि
 या अनुष्ठानरूप जे जिनराजनी आजा, तेने विचयंता - विज्ञेपे करी त्याग करनार
 एवो जे कुगुरु, तेने गुरुणो - गुरु नणिकण - कहीने एटले जाणीने ज - जो
 नमिथ्यंति - लोक नमेठे, ता - तो किंकरइ - छु करिये। एनो कोई उपाय नथी. केम
 के, गडुरि पवाहेण - गाडरीना प्रवाहनी पठे विचार रहित मूर्ख लोकोनी जे चाल
 तेणे करीने - जोओ - लोको ठलिओ - ठलाई गया ठे ते जाणे दिग्मूढपणाने, अं
 धपणाने, बधिरपणाने पाम्या होयनी। एवा ए लोक थई गया ठे तथा तेओने
 जाणे - छुष्टग्रह तथा जूत बलग्या होयनी। तथा तेओनी ऊपर योग चूर्णादिक
 नापीने जाणे कोईये वश करी लीधा होयनी। केमके सिद्धांतथी बधुं विपरीत
 आचारे चालेठे, तेमज बीजाने पण चलावेठे. एवा कुगुरुने गुरु करीने मानेठे
 माटे ए लोक गाडरीया प्रवाहे करी ठजाया ठे, तेओने हवे सुधारवानो काई उ
 पाय विचारमां आवतो नथी ॥ ३७ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा कह्यु के लोको ठलाई गयाठे ते ऊपर कोई एवी आशंका
 करेके, लोको गुरुने दाक्षिणताने लीधे नमता हजे। एटले चतुराईवाला जाणीने नम
 ता हजे! तेने हितोपदेशक गुरु कहेठे के, नाई ए ठेकाणे लोको चतुराईथी रहितठे, ते
 सानल - मूल - निदस्किनो जोओ, जइ कुवि मग्गेइ रुट्टिया खंम ॥ कुगुरूण सग चयणे,
 दस्किनंही महामोहो ॥ ३७ ॥ दोहा - लोक अदाक्षिण कोइ जो, मागे रुट्टिया जागा ॥ कुगु
 रु संगत्यागनविपे, दाक्षिणता धिग रागा ॥ ३७ ॥ व्याख्या - निदस्किनो - दाक्षिणथीरहित
 जोओ - आ लोको ठे, केमके, जइ जो कुवि - कोई पण नूखेकरी पीडित रांक माणस रुट्टि
 याखंम - रोटीनो खंम एटले रोटलीनो एक ककडो मग्गेइ - अन्नदाता, सेठ साहेब इ
 त्यादिक चाटुक बचने करी मागेठे, तो पण तेने ते आपता नथी, उलटां डुर्वच
 नो बोलीने कहाडी मूकेठे अने कुगुरूण संग चयणे - कगुरुनो सग त्यागवाने
 विपे, दस्किन - दाक्षिणपणं करेठे एटले एमने मारा वाप दादादिक मानता थ्या
 वेला ठे, वली मारा गहना कहेवायठे, माटे केम ठोडाय! एम लोक कुगुरुनी
 दाक्षिणतामां पड्या ठे, हा - मोटो खेद ठे, महामोहो - ए मोटुं अज्ञान ठे के,

दीन दुःखीने एक रोटीनो ककडो आपतां कठण लागेते, अने दुर्ग-दुर्गति प्रापक जे कुगुरु, तेने अति सरस असन प्रधान वसन प्रमुखेकरी सन्मानेते, माटे ए मोटुं अज्ञान लोकोनेविषे प्रवर्त्ते. ॥ ३९ ॥

अवतरणः—पूर्व गाथामा दृष्टीरागी लोकोतुं मूढपणु कहुं, हवे तेथोना नाम मात्र गुरुतुं मूढपणुं कहेते— मूल.— कि जणिमो किं करिमो, ताण हयासाण धिष्ठ डुछाणं ॥ जे दंसिकण लिंगं, खिवति न रयन्मि मुद्द जणं ॥ ४० ॥ दो हा — नाखै नरके मुग्ध जन, देखाडो मुनि वेप ॥ ते हताश खल धीठने, कहिये किंसुं विशेष ॥ ४० ॥ व्याख्याः— हयासाण—उत्तरोत्तर कल्याणरूप हणार्ई ठे आशा जेनी एना धिष्ठ डुछाणं—धीठ एटले अकार्य करवामां अति चतुर अने डुष्ट एटले दोषवाला ताण— तेथोने कि जणिमो— हुं कहेवुं। अने कि करिमो— हुं करवुं? जो उपकार करिये तो परघातादि उपडव करवाने सावधान थाय; ते आंधला सिहना नेत्र उघाडवाना दृष्टांते जाणी छेवुं, एटले कोई आंधलो सिंह जोई तेनी ऊपर दया आणीने कोई पुरुष काई इलाज करीने तेने देखतो करे तो तेनाज प्राण लिये. तेम कुगुरुनी ऊपर उपकार कखो होय तो तेना बदलामां अपकार शिवाय बीजो फायदो थवानो नथी. ल्यारे कोई कहेजे के तेथोनी ऊपर अपकारज करवो तो ते पुण्यवानने अघटित ठे; माटे तेथोने हुं कहेवुं। अने हुं करवुं काई कहेवुं। अथवा करवुं उचितज नथी केमके, जे—जे लिंग—रजोहरण तथा मुख वेस्त्रादिक साधुनो वेप तेने दंसिकण—देखामीने मुद्दजण—मुग्ध जन ए टले विवेक विकल लोक, तेथोने नरयन्मि—नरकनेविषे खिवति—नाखेते. ॥ ४० ॥

अवतरणः—पूर्व गाथामां कुगुरुतुं मूढपणुं देखाडहुं, हवे तेउनी स्तुतिने मिपे निंदा करे ठेः— ॥ मूल.— कुगुरुवि सत्सिमोहं, जेसि मोहाइ चंदिमा दहुं ॥ सुगुरुण उवरि नत्ती, अइ निविमा होइ नवाणं ॥ ४१ ॥ दोहाः—ते प्रससिये कुगुरु पण, ज सु मोहादिक देप ॥ सुगुरु परिचयी जीवके, थाए जगति विशेष ॥ ४१ ॥ व्याख्याः— कुगुरुवि— कुगुरुने पण संसिमोह—हुं— प्रशस्तुं हुं; केमके, जेसिं—जेना मोहाइ चंदिमा—मोहादिके करी जे चमपणुं अथवा, क्रूरपणुं, तेने दहुं—देखीने न वाण—मोहानिलापी नव्य प्राणीयोने सुगुरुण उवरि—सुगुरुनी ऊपर अइनिविमा—अतिदृढ जक्ति हाइ—थाय ठे एटला वास्ते कुगुरुनी प्रशस्ता करिये ठेये, परतु तेना गुणोतुं वर्णन करी प्रशस्ता करता नथी. ॥ ४१ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां जे नव्य जीव कह्या ते सम्यक् दृष्टि जाणवा तेउतुं

सम्यक्त्व उद्घासने पामवानुं कारण कहे ठे.- मूल.- जह जह तुष्ट धम्मो, जह जह डुछाण होइ अइ उदय ॥ समद्विधि जियाण ॥ तह तह उद्वसइ समत्तं ॥ ४२ ॥ दोहा ॥ जिम जिम खलनो अति उदे, जिम जिम तूटे धर्म ॥ तिम तिम समकित जीवको, उलसै समकित सर्म ॥ ४२ ॥ व्याख्या - जह जह-जेम जेम धम्मो-जिन नापित धर्म तुष्टइ-तूटेठे एटले हाणीने पामे ठे, वली जह जह-जेम जेम डुछाण- दर्शन त्रष्ट, निन्दव, पासञ्जा, उसञ्जा तथा कुसीलियादिक अने अन्य दर्शनी त्रिदंती, परिव्राजक, तथा विप्रादिक डुष्ट लोकोनो अइ उदय- अति उदय एटले अतिशय जोर सत्कार तथा पूजादिक होइ- थाय ठे तह तह-तेम तेम समद्विधि जियाण- सम्यक् दृष्टि जीवोनुं सम्मत्तं- सम्यक्त्व उद्वसइ- उद्घासने पामे ठे, एटले विशेष दीपे ठे ए मोटो आश्चर्य ठे. शिष्यने गुरु कहे ठे के, काई आश्चर्य नथी, वस्त्र, पात्र, वसति, आहार तथा पोतपोताना श्रावक इत्यादिनी ऊपर लडी मरज्ञो, अने साधु कहेवाज्ञो वली कलहना करनार, मारकूटना करनार गुर्वादिक मोटा सत्पुरुपने पण असमाधि उत्पन्न करनारा अज्ञो. डुपम कालमा घणा असयति थया थका संयति कहेवाज्ञो, अने कोईक विरला धर्मार्थी सुसाधु अज्ञो एवा श्री महावीर स्वामीनां वचन संनारी सनारीने तथा ते पूर्वोक्त लोकोने जोई जोईने श्री वीर वचननी आस्था ते सम्यक्त्वतुं आस्त्रिक्यता नामे पांचमुं लक्षण दृढ थाय ठे. ॥ ४२ ॥

अवतरण - पूर्वोक्त गाथामां जेम डुष्ट पापी लोकोनो ह्मणा अति उदय क ह्यो तेम ह्मणा जिनमतनो अति उदय केम यतो नथी? ते प्रश्नोत्तररूप गाथा एकरी कहेठे -- मूल - जअ जतु जणणि तुद्धे, अइ उदयं ज न जिणमए होइ ॥ तं किञ्च काल संनव, जियाण अइ पाव माहर्षं ॥ ४३ ॥ दोहा - जग जननी सम जिनमते, जो अति उदय न होय ॥ कलि कालज जणनो अति, पाप म हातम सोय ॥ ४३ ॥ व्याख्या - जअजतुजणणितुद्धे-जगतना जीवने मातानी तुद्ध, जिणमए-एवो जे जिनमत, तेनो अइ उदयं-अति उदय ज-जो न-नथी होइ-यतो त-ते किञ्चकालसंनवजियाण-क्लिष्टकाल एटले कलिकालमा उत्पन्न थएला जे जीव तेउना अइपावमाहर्षं--उत्सूत्र देशनादिक दोषरूप अति पापतुं महात्म्य ठे. एनो नावार्थ -- जिनमतनो उदय तो श्री डुप्पसह अणगारसुधी व र्त्तज्ञो, तोपण जेवो तीर्थकर महाराज ठता जिनमतनो उदय हतो, तेवो जिन मतनो अति उदय नथी यतो तेतुं कारण दोष डुष्ट कलिष्ट पंचम कालनेविषे उ

त्पन्न थया जे जीव पाखंमी लोक, तेना उत्सूत्र देशनादि महादोषरूप अति पापनो प्रताप ठे माटे जैन मतनो अति उदय केवी रीते थाय । ॥ ४३ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां कहुं के जिनमतनो अति उदय थतो नथी ते इष्ट लोकोना अति पापनुं महात्म्य ठे, ते इष्ट लोको पापे करीने पूर्ण होयठे ते कहेठे:- मूल - धम्मंमि जस्त माया, मिञ्चत्त गहो उमुत्ति नोसंका ॥ कुगुरुवि करइ सुगुरु, विउसोवि स पाव पुन्नत्ति ॥ ४४ ॥ दोहा - जिसके माया धर्ममें, जागो ग्रह मिथ्यात ॥ सो उत्सूत्री जरम नह, कहै उजटि सवि वात ॥ ४४ ॥ व्याख्या - जस्त-जेने धम्मंमि-जिन धर्मनेविपे माया-कपट वनेठे, एटले पूजा धनादिक जाज यश कीर्तिने अर्थे लोकनी दृष्टिए करी जे धर्म करवो ते वधी माया जाणवी ते जेने ठे, मिञ्चत्तगहो-अतत्व अज्ञान मिथ्यात्वनो गृह हठवा द वनेठे जेने वली उमुत्ति- उत्सूत्र जापी ठे, नोसंका- उत्सूत्र जापवा थकी नरक निगोदनेविपे अनंत कालसुधी निवास थइ एवी जेने शंका नथी, वली जे कुगुरुवि-कुगुरुप्रते पण सुगुरु-सारो गुरु करइ-करेठे, एटले आ उत्तम गुरु ठे एम मानेठे, स-ते विउसोवि-विद्वान ठतां पण एटले इव्यथकी घणा शास्त्रो नपेजो ठता पण पाव पुन्नत्ति-हिसादिक अडारे पापेकरी पूर्ण जाणवो ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां कहा प्रमाणे जे पापेकरी पूर्ण होय ते काई पण धर्म कार्य करी शके नही, धर्म कार्य जिनाज्ञां प्रमाणे कखाथी सुखदायक थाय ठे, अन्यथा न थाय ते कहेठे - मूल - किञ्चंपि धम्म किञ्चं, पूया पमुहं जिणि द आणाए ॥ नूअ मणुग्ग हरइअं, आणा जंगउ इहदायं ॥ ४५ ॥ दोहा - जिन पूजादिक कार्य पण, सफल जिनाज्ञा थाय ॥ आणा जंगरहित दया, कार्य सवी इखदाय ॥ ४५ ॥ व्याख्या - पूया पमुहं-पूजा प्रमुख एटले जिन पूजा, सामायक प्रतिक्रमण, शास्त्रान्यास, तथा जिनश्रुवन कराववा प्रमुख धम्मकिञ्चं धर्मकृत्य जे किञ्चंपि-करवुं तेपण जिणिंद आणाए-जिनेइनी आज्ञाए करी सुखदाई थायठे नूअमणुग्गहरइअं-नूत अनुग्रह रहित एटले जीव दयाए करीने रहित जे जिन पूजा तथा सामायकादिक धर्म कार्य करवु ते जिन आणानो जंग कखा जेवुं थायठे. माटे सिद्धांतमां कहु ठे के, वीतरागनी आज्ञानो जंग करवा थकी पूर्वोक्त सर्व धर्मकार्य इहदायं-जन्म मरणादिक इ खना देनारां ठे जिन राजनी आज्ञानुं आराधन कखाथीज मोह थायठे अने जिनराजनी आज्ञा विराधवा थकी नरकादिक इ.ख थायठे ए जिनागमनुं सुख ठे. ॥ ४५ ॥

अवतरण -- जिनाङ्गाविना कष्टादिक जे करबु ते सर्व संसारनो हेतु थाय ठे ते कहे ठे - मूल - कष्ट करंति अर्पणं, दमंति दवं चर्यंति धम्मञ्ची ॥ इकं न चय ति मिञ्चत्त विसलव जेण बुडंति ॥ ४६ ॥ दोहा -- कष्ट करै आपा दमै, इच्च त जे पण जोय ॥ तजै नही मिथ्यात्व लव, बुडे जेद्वथी लोय ॥ ४६ ॥ व्याख्या -- कष्ट करंति- लोच करवो, उघामे पगे चालबु, धरती कपर सूबु, तथा अणसणा दि अनेक प्रकारनुं बाह्य तप, इत्यादिक कष्ट जे ठे ते मूर्ख करे ठे. अर्पण-आत्माने, एटले मनने तथा इडियोने दमति-मूर्ख दमे ठे, वली दवं-धनादिक इच्च ते ने धम्मञ्चि-धर्मना अर्था थका जे मूर्ख चर्यंति- त्यागे ठे, पण इक मिञ्चत्तविस लव-एक मिथ्यात्व उत्सूत्ररूप विपलवने न चयति- मूकी देता नथी. जेण-जे मिथ्यात्व उत्सूत्ररूप विपलव करी मूर्ख अज्ञानी इ ख समुझनेविपे बुडति-बूडे ठे; ए मोटी खेदनी बात ठे. ॥ ४६ ॥

अवतरण -- पूर्व गाथामां उत्सूत्र जापीनु मूढपणु देखामनुं, हवे शुद्ध पुरुष नो संग करवो अने अशुद्ध पुरुषनो संग त्यागवो ते कहे ठे ॥ मूल - सुद्ध वि हि धम्म राउं, वढई सुद्धाण सगमे सुअणु ॥ साविय अशुद्ध सगे, निउणाण विग लइ अणुदियहं ॥ ४७ ॥ दोहा - वधे मीत सतसंगथी, वर विधि धरम सुराग ॥ घ टे कुसंगे प्रति दिवस. विडुनो पण ते राग ॥ ४७ ॥ व्याख्या -- सुअणु-हे सुजन, हे धर्मापदेश योग्य, सुद्धाण-जे शुद्ध पुरुष, सुसाधु, तथा सुश्रावक होय तेनो संग से-समागम अथवा परिचय कखाथी सुद्ध विहि धम्मराउं--शुद्ध विधि ते राग देप मल रहित रत्नत्रयी मोक्ष मार्ग विधि तइप जे जिन जापित धर्म तेनेविपे राग एट ले प्रीति वढइ-वधे ठे एटले वृद्धिने पामे ठे अने हे सुजन, सोविय--ते पण शुद्ध विधि धर्मनो राग, अशुद्ध संगे--अशुद्ध पुरुष एटले उत्सूत्र जापी पासञ्चादिकनो संग अथवा परिचय कखाथी निउणाणवि--निपुण पुरुषो पण अणुदियह-निरतर दिन दिन प्रते गलइ-गले ठे एटले हाणीने पामे ठे त्यारे अनिपुण पुरुषोने हाणी थाय तेमां शु कहेबु। माटे उत्सूत्रजापी पासञ्चादिकनो संग सर्वथा वर्जवो, अ ने शुद्ध प्ररूपक आचारवत पुरुषनो परिचय करवो ॥ ४७ ॥

अवतरण -- पूर्व गाथामा अशुद्ध पुरुषना संगनो त्याग करवो एम कसु-एथी ए म जाणबु के जे अशुद्ध पुरुष होय ठे ते शुद्ध पुरुषनी कपर देष करवा वीला होय ठे, माटे तेनां समीपे बलविनाना पुरुषे वसबु नहीं, ते कहे ठे - मूल - जो से वइ सुद्ध गुरु, अशुद्ध जोआण सो महा सचू ॥ तम्हा ताण सयासे, बल रहिओ

मा वसिष्ठ्यासु ॥ ४७ ॥ दोहा-- शुद्ध गुरु जे सेवतो, ते अशुद्ध जण शत्रु ॥ तो बल रहित वसो नही, जहां अशुद्ध जण तत्र ॥ ४७ ॥ व्याख्या:- जो-जे लोक शुद्ध गुरु-निर्मल ज्ञान दर्शन चारित्र्य गुणें गुणवत गुरु प्रते सेवइ-सेवे ठे, सो-ते लोक अशुद्ध लोअण-उत्सृज नापी पासडादिकना दृष्टीरागी नक्त लोक, तेउने म हासतू-महा शत्रु एटले वैरीना जेवां लागे ठे, तम्हा--ते कारण माटे ताण-ते अशुद्ध लोकोना सयासे-समीपे बलरहित-धर्म आश्री निर्भय पणुं अने शरीर ध नादिक शक्ति संपन्न एम अन्यंतर बाह्य ए वे प्रकारना बले करी, रहितजे होय तेणे मा वसिष्ठ्यासु-वसतुं नही; केमके, जे क्षेपी माणस होय ते सारा गुणने पण दूषण दिये ठे, माटे अशुद्ध लोकोना समीपे वसतु तेमां घणो उपडव रह्यो ठे; ते थी बीजे कोई ठेकाणे रहेतुं ते सारुं ठे ॥ ४७ ॥

अवतरण -- पूर्व गाथामा खल पुरुषोनी पासे रहेवातुं निवारण कखुं तेतुं कारण कहेठे.- मूल - समय विक असमता, सुसमता जड जिणमए अविजं ॥ तड न वड्ड धम्मो, पराह्व लहइ गुणरागी ॥ ४९ ॥ दोहा.- जिन मत विड असमर्थे जन, जहां समर्थे अजाण ॥ धर्म न वाधे तह लहे, गुणरागी अपमान ॥ ४९ ॥ व्याख्या.- जड-जहा समयविक-जिन आगमना जाण पुरुष असम ता-क्षेत्र कालादिक दोपेकरीने असमर्थे ठे, अने जिणमए-जिन मतनेविपे अविज-जे अविद ठे एटले अजाण ठे, ते सुसमता-अति कलह, क्लेश तथा मार कूट कर वाने समर्थे ठे; तड-तिहां धम्मो-शुद्ध विधि धर्म नवड्ड-वृद्धिने पामे नही; उ लटुं गुणरागी-गुणानुरागी पुरुष पराह्व-पराजवने एटले तिरस्कारपणाने लहइ-लहे एटले पामेठे, माटे अशुद्ध पुरुषोना समीपे असमर्थे होय तेणे न वसतु ॥ ४९ ॥

अवतरण-- जे सामर्थवान उन्मार्गी तथा उत्सृत्री होय तेनो जिनमार्गीने विपे प्रवेश करवा देवो नही ते कहेठे.- मूल.- जं न करइ अइ नाव, अमग्ग से वो समडडं धम्मे ॥ ता जं अहकुय्या, ता पीडइ सुद्ध धम्मडी ॥ ५० ॥ दोहा सत्रल कुमार्गी धर्ममें, जो न करै अति नाव ॥ तो सुंदर अथ जो करै, तो सुध धर्में ड्य दाव ॥ ५० ॥ व्याख्या - समडडं-मुष्टि चपेटादिक प्रहारनी अपेक्षाए करी कुञ्चित समर्थवत एवो जे अमग्गसेवी-अविधिमार्गी एटले उन्मार्गीनो सेव नार, उत्सृजनो बोलनार, सम्यक्त्वरहित लिंगधारी लोक तथा तेउना नक्त लोक ते धम्मे-जिन धर्मनेविपे ज-जो अइनाव-अति नावप्रते नकरइ-करे नही, एट ले त्यां पसारो अथवा प्रवेश करे नही; ता-तो जं-जण ठे एटले सुंदरठे अह-

अथ जो ते अविप्रि मार्गना सेवनार लोक्रु जिनधर्मनेविपे अति चाव एटले प्रवेश कुच्या--करे ता--तो सुद्ध वमडी--शुद्ध धर्मना अर्थी जे नव्य प्राणी ठे तेउनेपी हइ--पीढे एटले अठता आल प्रदान दुर्वचन हेजनादिके करी छुख दिये, माटे ते उ न्मागें लोकोनो जिनधर्मनेविपे प्रसार न थाय एटले आवबु न थाय तोज सारुं ५०

अवतरण - पूर्व गाथामां कहु के, समर्थ उन्मार्गीनो जिनधर्मनेविपे प्रवेश थाय तो ते धमार्थीने पीडा करेठे, हवे धमार्थी पुरुपोनो कोई पराजव करी श के नही ते कहेठे - मूल - जइ सब सावयाण, एगच्च ज तु मिह्ववाचम्मि ॥ धम्मडियाण सदर, ता कहणु पराजव कुच्या ॥ ५१ ॥ दोहा - मिथ्या वादे होय जो, श्रावक जन सब एक ॥ धर्मी जनकूं वर तदा, किम ये ड्रव अविवेक

॥ ५१ ॥ व्याख्या - मिह्ववाचम्मि-मिथ्यावादनेविपे सब सावयाण--नाम मात्र सर्व श्रावकोनु ज -जो एगच्च--एकत्वपणु ठे, तु--वली जइ--जो एकत्वपणु धर्मविधिवादेविपे धम्मडियाण--धमार्थी पुरुपोनुं होय ता--तो सुंदर--हे सुंदर, हे जइ, ते नाम मात्र श्रावक लोक धमार्थी पुरुपोनो पराजव--पराजव अथवा तिरस्कार तु--इति वितर्कें कह--केम कुच्या--करे! अपि तु नज करे धमार्थी पुरुपोनुं पण धर्मविधिवादेविपे एकत्वपणुं नथी केमके, ए विपम कालनो प्रजाव ठे माटे नाम मात्र जे श्रावक ठे ते धमार्थी पुरुपोनो पराजव करेठे एनो - जावार्थ आ देरामरनेविपे अमारो तथा अमारा गोत्री होय तेअोनो मूल नायकनी पूजा आरती करवानो अधिकार ठे, बीजानो अधिकार नथी तथा चडिकादि गोत्र देवो देवता अमारा पूर्वज मानता आव्याठे, ते अमे तमारा कहाथो केम मूकी ये? नगरादिकनेविपे सुविहितनो प्रवेश यता पूर्वे कोई समये आठव थयो नथी ते अमे वेठा ठता केम थाय! इत्यादिक जे मिथ्यावाद तेनेविपे नाममात्र श्रावकोनुं जे एकत्वपणु ठे, तेमा विधि चेल्यादिक धर्मविधिवादेनेविपे धमार्थी पुरुपोनु सघपट्टोक्त एकत्वपणु होय तो हे सुंदर, कोई पण धमार्थी पुरुपोनो पराजव करी शके नही

अवतरण -- पूर्व गाथामां धमार्थीनुं वर्णन कखुं, हवे ते धमार्थीने सहाय करनारा गुणोने कहेठे - 'मूल-- तं जयइ पुरिस रयण, सुगुणहं हेम गिरिवर महग्घ ॥ जस्ता सयम्मि सेवइ, सुविहिरउं सुद्ध जिण धम्म ॥ ५२ ॥ दोहा:-सुगुण महर्ह्य महा गिरि, जयसो पुरुप रतन्न ॥ जसु आश्रय आचार रत, करै सुधर्म जतन्न ॥ ५२ ॥ व्याख्या - त पुरिस रयण--ते पुरुप रत्न जयइ--जयवत ठे; अथवा जयवत थाओ, जस्त सयम्मि--जेना आश्रये एटले जेना आधारे सुविहिर

उ-सुविधिरत पुरुष एटले विधिमार्गनेविपे तत्पर पुरुष शुद्ध जिणधम्मं कदाग्रहा
दिक मज्ज कलंक रहित जिनधर्मप्रते सेवइ- सेवेठे एटले आराधेठे एवो पुरुपरत्त
सुगुणइ-अदीदाय, धैये गंनोर, क्कमा विनयादिक सुष्ट गुणरूप धनेकरीने सहित
ठे, वजी ते पुरुष रत्त केवो ठे? हेम गिरिवर महग्घं-मेरु पर्वतनी पठे महर्ध ठे
एटले अति महोगो अथवा अमूल्य ठे. ॥ ५२ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां कक्षु के, धर्मेने सहायता करनारो अमूल्य पुरुष
ठे; तेनोज्ज फरी पुष्ठी करेठे - मूल:- सुरतरु चितामणिणो, अग्घं न लहति
तस्स पुरिसस्स ॥ जो सुविहिरय जणाणं, धम्माधार सया देई ॥ ५३ ॥ दोहा -
ते सुपुरुषके मूजकू, सुरतरु मणी न पाय ॥ विधिरत जनकूं जो दिए, धर्म सहा
ह्य सदाय ॥ ५३ ॥ व्याख्या - जो- जे पुरुष सुविहि रवणाणं- सुविधि रत्त लोको
ने धम्माधार- धर्मेनो आचार एटले धर्मेनो अवटंठ साह्य, देइ- दियेठे, सया- स
दा सर्वदा, तस्स पुरिसस्स-ते पुरुषनो अग्घ-अर्थ एटले मूज ते सुरतरु चितामणि
णो-कल्पवृक्ष चितामणिरत्त उपलक्षणथी कामधेनु कामकुञ्ज ठे ते नलहंति-नथी
पामता; केमके. ते पुरुषने शिवसुखदायक अमूलक सम्यक्त्व रत्तनी प्राप्ति ठे
माटे कल्पवृक्ष चितामणि प्रमुख ठे ते ते पुरुषना मूजने नथी पामता, एटले
तेनो तुज्जना करी शकता नथी ॥ ५३ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां धर्मेने सहाय्य करनार पुरुषना गुणनुं कीर्त्तन थयुं
ते सांनजीने ते सत्पुरुषोतो लज्जाने पामेठे, त्यारे तेनुं गुण कीर्त्तन करवामां फल
शुं ठे एवी शंक्रानुं निवारण करवानेअर्थे कहेठे - मूज.- लज्जति जाणि मोहं,
सप्पुरिसा नियय नाम गहणेण ॥ पुण तेसि किञ्जणाउं अम्हाण गलंति कम्मा
इ ॥ ५४ ॥ दोहा - लाजे निज नामोच्चरे, दु मातुं सत पुर्ष ॥ वजि व्हेना गुण
गाय ह्म, कर्म टले कटु तुर्ष ॥ ५४ ॥ व्याख्या - सप्पुरिसा-सत्पुरुष जे ठे ते
जोपण नियय नाम गहणेणं-निजक नामनु ग्रहण कखाथी एटले आ दाता,
परोपकार कर्त्ता, इत्यादिक गुणे करी सहित पोतानु नाम सांनव्याथी लज्जति-ल
ज्जाने पामेठे जाणिमोह-एम ठे ते हुं जाणुंहुं, तोपण तेसि किञ्जणाउं-तेना
गुण कीर्त्तन कखाथी पुण-वलो अम्हाण-अमारा कम्माइ-ज्ञानावरणादिक पाप
कर्म गलंति-गलेठे, एटले क्य थायठे, माटे सत्पुरुषना गुण कीर्त्तन निरत्तर करवा.

अवतरण - पूर्व गाथामा सत्पुरुषोनेविपे रहेला गुणानुं जे वर्णन करवुं ते
निर्जरानो हेतु ठे एम कक्षु, ह्वे आझा रहित धर्म सेवनारनी वार्त्ता कहेठे:-मूल

आणा रहियं कोहाइ संजुयं अप्प ससणञ्च ॥ धम्मं सेव ताणं नय किञ्ची नेय धम्म च ॥ ५५ ॥ दोहा -- आण जंग क्रोधादि जुत, आप प्रसंस निमित्त ॥ धर्म सेवता लोकने, नही धर्म नहि कित्त ॥ ५५ ॥ व्याख्या -- आणारहिअं--आश्रव हेय, संवर, उपादेय, ए वीतरागनी आझा तेणे करी रहित, वली कोहाइ सजुयं क्रोधादि संयुक्त एटले क्रोध मान माथा लोच ए चार कषाये करीने सहित, तथा अप्प संसणञ्च--आत्म प्रशंसाने अर्थे पोतानी शोचाने अर्थे ए प्रकारे धम्म--जिन धर्म प्रते सेवताण--सेवनारा लोकोनी नयकिञ्ची--कीर्त्ति नथी; एटले विवेकी पु रूप जे ठे ते तेउनी श्लाघा करता नथी च--वली नेयधम्म-- ते धर्म पण नही के जे डुर्गतिमां पढता प्राणीने राखे नही ॥ ५५ ॥

अवतरण -- पूर्व गाथामा कस्यु के, आझारहित धर्मेना सेवनारनी कर्त्ति नथी होती अने तेउने धर्म पण नथी होतो, तो पण कांईक तो कीर्त्ति तथा धर्म थ तो हशे, ए आशंका दूर करवाने कहेठे - मूल - इयर जण ससणाए, हिछ उ स्सुत्त जासिए न जयं ॥ ही ही ताण नराण, डुहाइ जइ मुणइ जिण नाहो ॥ ५६ ॥ दोहा - नीच प्रससाए जणे, उत्थ्रुत धीव निजाज ॥ जो जावी ड ख तेहने, सो जावै जिन राज ॥ ५६ ॥ व्याख्या - इयर जण संसणाए--जिनोक धर्मेना अजा ए इतर जन सामान्य लोकोए करेली जे प्रशंसा, तेणे करीने हिछ--न्हिष्ट थए ला एटले प्रसन्न थया थका उस्सुत्त जासिए--उत्सूत्र जापण करता न जयं--जे ने नरकादिकनेविषे जमवानुं जय नथी, ही ही--मोटी खेदनी वात ठे. ताण न राण--ते नरोना अनागत कालसंबंधी डुहाइ--जे ड.ख ठे, ते प्रते जइ--जो जिण नाहो--जिननाथ मुणइ--जाणे ठे, तो पण ते ड.खप्रते समस्त प्रकारे कहेवाने समर्थ नथी, केमके, डख अनत ठे माटे ॥ ५६ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा उत्सूत्र जापीने अनत ड ख थाय ठे एम कस्यु, ह वे बोधीने अनंत संसार च्रमणनो नाश थाय ठे ते कहे ठे - मूल - उस्सुत्त जासगाण, बोही नासो अणत सतारो ॥ पाणञ्जएवि धीरा, उस्सुत्तं ता न जासं ति ॥ ५७ ॥ दोहा - बोधि नाश उत्सूत्रिके, जामण मरण अनत ॥ प्राण तजै पण धीर तत, नहि उत्सूत्र जणत ॥ ५७ ॥ व्याख्या -- उस्सुत्त जासगाण--जिन राजना वचनथी विरुद्ध ते उत्सूत्र कहेवाय ठे, तेनुं जापण करनार एटले बोल नार, तेने बोहीनासो--श्री जिन धर्मेनी प्राप्ति ते बोधी सम्यक्त्व तेनो नाश थाय अने अणंत सतारो--अनत संसार थाय एटले अनत कालसुभी चार गतिमां च्र

मधुं थाय ता-ते कारण माटे पाणञ्चएवि-प्राण तज्याथी पण एटले प्राण कंवने विपे आख्या ठता पण धीरा- बुद्धिमान जे पंमित पुरुष ठे ते उत्सुत्तं-जिन वचन थी विरुद्ध न नासंति- बोलता नथी ॥ ५४ ॥

अवतरण- पूर्व गाथामां उत्सूत्र बोलवु नही, एटले जे धीर पुरुष होयठे ते उत्सूत्रतुं बोलवुं अविधि जाणीने त्याग करेठे, हवे ते अविधिनी प्रशंसा पण न कर वी ते कहेठे:- मूल - मुद्गाण रंजणठं, अविहि पसंसं कयावि न करिच्या ॥ किं कुज बहुणो कडवि, शुणति वेसाण चरियाइ ॥ ५५ ॥ दोहा.- अविधि कीर्ति न कर कदा, रूचु जन रंजन हेत ॥ शुच कुज वधु कि नी किया, वेस्या चरित शुपोत ॥ ५६ ॥ व्याख्या:- मुद्गाण रंजणठं-अजाण लोकोने रंजन कर वाने अर्थे अविहि पसंसं-पोतानो गड मूकी बीजानी पाशे जई सामायक पडि कमण शास्त्र श्रवणादिक कांई न करवु, जेम तेम पूजा सामायकादिक धर्मकृत्य करवु, विधि अविधि कांई न जोवुं, इत्यादिक जे उत्सूत्र तेरूप अविधिनी प्रशंसा एटले नि कारण जे अविधि करवानी अजिलापा जे अविधिनी प्रशंसा तेने सत्पु रूप कयावि-कदापि एटले कोई काले पण न करिच्या-करे नही; एज वात दृढ करवाने वास्ते अर्ही दृष्टांत कहेठे:- कि-शुं कुजवहुणो- कुजवधु एटले कुजवा न स्त्रीओ कडवि- कोई ठेकाणे पण वेसाण चरियाइ- पोतानी इडाए चालवु, सरस आहार करवो. अति उन्नव वेश पहेरवो, परपुरुषने चोगववु, जोवननो जाच मानवो, इत्यादिक वेस्याना जे चरित ते प्रते शुणति-स्तवे अथवा वखाणे, अपि तु नहीज वखाणे केम के जो तेना वखाण करे तो कलंक लागे. तेम जे सत्पुरुष ठे ते अविधिनी श्लाघा करेज नहो. केमके, जो करे तो तेने उत्सूत्रनो कलंक लागे ५५

अवतरण - पूर्व गाथामां अविधिनी प्रशंसा ते जिन अज्ञाना जंगनो हेतु हो वाथी तेनो निषेध कखो. हवे ते जिन आज्ञाना जंगनो जय कोईने होयठे ने को ईने नथी होतो ते कहे ठे - मूल - जिण आणा जंग जयं, नवसय नीयाण होइ जीवाणं ॥ नवसय अनीरुयाणं, जिण आणा जंजणं कीडा ॥५६॥ दोहा - नवजयथी अति नीरु जे, आण जंग जय तास ॥ नवजयथकी अनीरुनें, आणा जंग न हास ॥ ५७ ॥ व्याख्या- नवसय नीयाण- नवसतनीत एटले नरकादि कना शेकडा नवथकी बीहोता एवा जीवाण- जीव जे ठे तेओने जिणआणा जगजयं - जिन आज्ञाना जंगनो जय होइ-थाय ठे; केमके, ते नवसत नीत जीव एवो विचार करेठे के जो राजानो आज्ञानो जंग कखो होय तो वंथादिक अने

क प्रकारना डु खनी प्राप्ति थायठे, तो जिन अज्ञानो जंग करवाथी जीव निश्चे करी नरकादि चार गतिमा प्राए अनत कालसुधी अनत डु ख नोगवे तेमा गु कहेवु । माटे जिन आज्ञाना जंगनो जय सत्पुरुष जवसतनीतने होयठे, अने न वसय अजीरुयाण— जे नरकादिक जवना शेकडाथकी नथी वीहीता एवा जे जीव तेअने तो जिए आणाजंजणं कीमा— जिन आज्ञानो जंग करवो, तथा विराध वु ते कीमारूप ठे एटले एक हासीरूप ठे. ॥ ५ए ॥

अवतरण — पूर्व गाथामां कहु के, जे जीवोने जवनी चीति नथी ते जिन आज्ञाने विराधे ठे, एथी एम न जाणवुं के, जे शास्त्रोथो अजाण होय ठे तेज विराधे ठे, अने जे जाण होय ते नथी विराधता ! किंतु शास्त्रना जाण होय ठे ते पण कोई छुट कर्मना उदयथी जिन आज्ञाने विराधे एमा कांई आश्रय नथी ते कहे ठे — मूल— को असुआण दोसो, ज सुअ सहियाण चेषणा नछा ॥ धि-दी कम्माणजठ, जिणोवि ल-दो अल-दुत्ति ॥ ६० ॥ दोहा — जोनसि स्तुत युत चे तना, कितो अस्तुतनो दोपा ॥ धिग् धिग् कर्मनकूं यदा, लजध अलज जिन पोसा ॥ ६० ॥ व्याख्या — सुअ सहियाण—श्रुत सहित जे लोक ठे, तेउने एटले घणा सि-दांत ना जाण लोकोनी ज—जो चेषणनछा—चेतना नाशने पामी एटले जिन आज्ञानी श्र-दाने अजावे अजिनिवेश मिथ्यात्वना उदये करी चेतना विपरीत पणाने पा मी तो असुआण—अश्रुत लोकोनी एटले जे जिनोक्त सि-दात नएषा नथी एवा लोक ठे तेउनो को दोसो—हुं दोप कमाण—कर्मने धिदि—धिक् धिक् थारुं एटले कर्मने विकार ठे जअो—जे कारण माटे जिणोवि ल-दो—जिन एटले तीर्थकर, पाम्या ठता पण अल-दुत्ति—अण लाथ्या अथवा अण पाम्या जेवुं थयु ज मानि प्रमुखने, ते सत्य ठे केमके, सि-दातमा कहु ठे के, मनुष्य जन्म अने सि-दात साजजवु डुर्जन ठे ते कदाच साजले पण साजलीने तेनी श्र-दा आववी परम डुर्जन ठे केमके, मोह् मार्ग साजलीने पण घणा च्रष्ट थाय ठे ॥ ६० ॥

अवतरण — पूर्व गाथामा कर्मने विकार होजो एम कहु, माटे कोईनो उपहास करवो नही ते कहे ठे — मूल — इयराणवि उवहासं, तम जुत्त जाय कुज पसूयाण ॥ एस पुण कोवि अग्गी ज हास सु-द धम्ममि ॥ ६१ ॥ दोहा — करवु पर उपहास जे, ते अयुक्त जिनदास ॥ कुज प्रसूतके अगनि जे धरमविपे जो हास ॥ ६१ ॥ व्याख्या — जाय—हे नाई इयराणवि उवहास—इतर सामान्य नीच लोकोनो पण उपहास करवो त—ते कुज पसूयाण—कुज प्रसूत एटले कुजोन पुरुषोने अयुत्त—अ

युक्त ठे एटले अघटित ठे पुण-तथा सुद्ध धम्ममि-निर्मल कपाय मज रहित धर्म
नेविपे तथा सुद्ध धर्म ठते ज हास-अज्ञानी लोकोने जे हास्य आवे ठे एस- ए
कोई अग्गी-वचनथी न कहेवाय; एवो कोईक अग्नि ठे केमके, हास्य ठे ते क्रोधा
दि कपायनुं कारण ठे ते कोड पूर्व संचित तप चारित्रने वाली जस्म करी नाखे ठे,
ने जीवने प्राये उलूह अन्त काल सुथी कुंनकारना चाकनी पठे संसार कांतारमां
नमावे ठे. माटे कोईनो उपहास करवो नही ॥ ६१ ॥

अवतरण-- पूर्व गाथामां कस्यु के जे सुद्ध धर्मनो उपहास करे ते अज्ञानी
ठे, तेने पण जे सुमण सुजन होय ते, परम हित देवानी इहा करे एम कहेठे -
मूल -- दोसो जिणिद वयणे, संतोसो जाण मिच्च पावम्मि ॥ ताणंपि सुद्ध हिय
या, परम हियं दाउ मिहंति ॥ ६२ ॥ दोहा -- मिथ्यात्वे संतोप जस, जिन वर
वचने देप ॥ तसु पण सुद्ध मनादिए, परम सुहित उपदेश ॥ ६३ ॥ व्याख्या -
जास-- जेओने जिणिद वयणे-जिनेइना हास्य कपायादिक दोष वर्जित जे वचन,
तेओनेविपे दोसो -देप वचें ठे अने मिच्चपावमि-हिंसा जाव मिथ्यात्व दर्शन शक्य
अडार पाप तेनेविपे संतोसो-संतोप वचेंठे एटले प्रसन्नता वचें ठे, ताणपि-तेओने
पण सुद्ध हियया-निर्मल ठे हृदय जेओना एवा जे पुरुष ते परम हियं दावं इहं
ति-सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र मोहना उपायरूप परम हित देवाने इहेठे ॥ ६२ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां कस्यु के, जिनधर्मनो क्षेपी अने मिथ्यात्व पापनो
अति रागी होय तेनी ऊपर पण उपकार करवो तेनुं कारण शुं? ते कहेठे --
मूल - अहवा सरल सहावा. सुअणा सब्ब डुंति अविषप्पा ॥ उहुंत विसजरा
एवि, कुणति करुसं डुजीआण ॥ ६३ ॥ दोहा - सरल स्वजावी स्वजन व्हे नि
विकल्प नव वौर ॥ मसित साप ऊपर अपी, करे कृपा क्या ओर ॥ ६३ ॥
व्याख्या - अहवा-अथवा सरल सहावा-सरल एटले निष्कपट स्वजाव ठे जे
ओनो एवा जे सुअणा- सुजन एटले सत पुरुष ठे ते सब्ब-सर्व स्थानकनेविपे
अविषप्पा-डुष्ट रागक्षेप विकल्प रहित हुंति- होयठे. एटले शत्रुमित्रनेविपे सम
चित्तवर्त्ती होयठे. उहुंतविसजराएवि डुजीहाण-मूकी दीधो ठे अथवा वमनकस्यो
ठे मुखयकी विपनी नर एटले समूह जेणे एवा जे द्विजिन एटले सर्प तेओनी
ऊपर पण करुण-करुणा एटले दया कुणति-करेठे, ल्यारे बीजानी ऊपर दया
करे तेमा ते शुं कहेहुं! अहो सर्प समान दुर्जन अने विष समान तेओनां दुर्व

चन जाणवा एवा दुर्जननी ऊपर पण जेने दयाजाव वचेंते एवा सज्जन परम
हित करवानी इच्छा केम नही करे। अपि तु करेज ॥ ६३ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां श्रावकतुं सम्यक्त्व दृढ करवाने कथन कथुं पण
साधुतुं सम्यक्त्व कथु नही तेथी एवो विचार थायठे के साधुने सम्यक्त्व हरो ?
ते शंका दूर करवाने कहेठे - मूल - गिहि वावार विमुक्के, बहु मुणि लोएवि न
हि सम्मत्त ॥ आलंबण निरयाण, सद्वाण जाय किं नणिमो ॥ ६४ ॥ दोहा -
गृह व्यापार रहित घणा, मुनि पण समकित हीन ॥ इह सालंबन श्राद्धकूं कहि
ये किंसुं कुलीन ॥ ६४ ॥ व्याख्या - गिहि वावार विमुक्के-गृहस्थ संबधी अं
गार कर्मादिक अनेक प्रकारना व्यापार कुव्यापार थकी विमुक्त-रहित एटले इ
व्येकरी गृहस्थना व्यापारेकरी रहित एवा जे बहुमुणिलोएवि-घणा जे साधु जन
तेउनेविपेपण नहि सम्मत्त-सम्यक्त्व नथी तो आलंबण निरयाण-माता पिना
नो आग्रह, पुत्र कलत्र-प्रातादिकनो मोह, श्रेष्ठादिकनी दाक्षिणता, इत्यादिक जे
आजवन तेनेविपे निरत-तत्पर एटले पूर्वोक्त आलंबनोएकरी कुदेव कुगुरु तथा
कुर्मने सेवता एवा जे सद्वाण-नाममात्र श्रावक, तेउनेविपे सम्यक्त्वनी प्राप्ति
नो जाय-हे प्रात, कि नणिमो-गु अमे कहिये ? केमके, जो गृहस्थ व्यापारआ
लंबन रहित इव्य मुनिनेविपे सम्यक्त्वनी नास्ति ठे, तो पुत्र कलत्रादिक अनेक
आलंबनोएकरी सहित व्याकुत्र एवा जे नाम श्रावक तेउनेविपे सम्यक्त्व केम
होय। अपि तु न होय ए जाव ॥ ६४ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां सम्यक्त्व पामवानो उद्यम प्रथम करवो एम देखाड्युं,
हवे उत्सूत्रनो निपेध करवो ते कहेठे - मूल - नसयं न पर कोवा, जइ जीअ
उसुत्त नासण विहियं ॥ तावुद्धिसि निपुंत्तं, निरुत्थयं तवफडा डोव ॥ ६५ ॥
दोहा - किमहिन उत् श्रुत नापवु, उत् श्रुत नाप्यु जोय ॥ तो सहि बूडिस
जअ तू निरर्थे जप तप होय ॥ ६५ ॥ व्याख्या - सयं-स्वयमेव एटले पोता
नो बुद्धि करीने न-उत्सूत्र न बोलवु, पर-गुर्वादिकनी अपेक्षाए करीने न-उ
त्सूत्र न बोलवुं. वा-अथवा कोण जाणे केम ठे केम नथी। जिनागम अति गं
जीरार्थे ठे, विधि जोता तो तीर्थनो उच्छेद थाय, माटे जेम चाले तेम चलाव्या
जवु एम जे बोलवु ते उत्सूत्र, इत्यादिक उत्सूत्र बोलवु नही तथा कोवा-कोप
थकी उपलक्षणथी मान माया लोच हास्य नयादिकथी उत्सूत्र न बोलवु जीअ-
रे जीव, जइ-जो उसुत्त नासण-उत्सूत्रतुं नापण एटले कथन विहियं-कथुं

ता-तो संसार समुद्रनेविपे बुडिसि-तुं बुडीश निप्रंत-निश्रे तवफडाडोव-तपनो फटाटोप एटले आमंवर ते उत्सूत्र बोजवाथकी निरहयं-निरर्थक ठे, एटले फो कट ठे. माटे तपक्रियाए करीने संसारथी तूं बूटवानो नथी ॥ ६५ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां जेने जिनवचन परिणम्या नथी तेनुं स्वरूप कहु, हवे जेने जिनवचन परिणम्या ठे तेनुं स्वरूप कहेठे- मूल- जह जह जिणिंद वयण, सम्मं परिणमइ सुइ हिययाणं ॥ तहतह लोअ पवाहे, धम्मं पडिहाइ नड चरियं. ॥ ६६ ॥ दोहा.- जिम जिम जिनवच सुमनने, प्रगटे सम्यक् प्रकारं ॥ तिम तिम लोक प्रवाहमे, धर्म जाति नट चार ॥ ६६ ॥ व्याख्या:- जह जह-जे म जेम सुइ हिययाण- निर्मल हृदयवत पुरुपोने जिणिंदवयण-जिनेइना वचन सम्मं-सम्यक् प्रकारे परिणमइ-परिणमे ठे एटले अत्यंत रुचेठे, तह तह-तेम तेम लोअपवाहे- लोक प्रवाहनेविपे धम्मं- जे आपमतिनो धर्म ठे ते नडचरियं- नट चरित एटले नटना खेलनी पठे तेने पडिहाइ- प्रतिजासेठे एटले देखाय ठे, तेवा पुरुपोने सम्यक्त्व थाय. ॥ ६६ ॥

अवतरण:- पूर्व गाथामां जिनेइ वचन आश्री कहु, हवे तेनुंज दृढपणे कथन करेठे - मूल - जाण जिणिदो निवसइ, सम्मं हिययम्मि सुइनाणेण ॥ ता ए तिणं व विरायइ, समिह्व धम्मो जणो सयलो ॥ ६७ ॥ दोहा - शुइ ज्ञान कर जसु हिये, सम्यक वशो जिनेश ॥ तसु आगे वृण जिम दिपे, मिथ्या धर्मि अशोष ॥ ६७ ॥ व्याख्या:- जाण हिययम्मि- जेना हृदयनेविपे जिणिदो-जिनेइ तीर्थनाथ सम्मं-सम्यक् प्रकारे सुइ नाणेणं-निर्मल ज्ञाने करीने निवसइ- वसे ठे, ताण-तेने सम्मिह्व धम्मो-मिथ्या धर्म सहित एवा जे सयलो-सकल जणो-लोक ठे तें तिणव-वृणोनी परे अकिचित्कर एटले काई हित वल करवा समर्थ नथी एवो ते मिथ्यात्वी लोक विरायइ-विराजे ठे, जासेठे एटले देखायठे ॥ ६७ ॥

अवतरण.- पूर्व गाथामा जेना हृदयमां सम्यक् प्रकारे जिनेइ देव वशेठे ते जिनधर्मथकी चलायमान थाय नही, एम देखाड्युं. हवे तेथी जे इतर ठे तेनुं स्वरूप कहेठे:- मूल - लोअ पवाह समीरण, उदंम पयंम चंम लहरीए ॥ दढ सम्मत्त महावल, रहिआ गुरुआविहलंति ॥ ६८ ॥ दोहा:- लोक प्रवाह पवन उदंम, चम प्रचम लहरेय ॥ दृढ समकित अति वलविना, गुरुआ पण हल्लेय ॥ ६८ ॥ व्याख्या.- लोअ पवाह समीरण-लोक प्रवाहरूप पवन, तेने उदंड-आगम विरुइ अठता वचनरूप अति ऊची एवी पयम-प्रचड ड खदायक क्रोध

ना वचनरूप माहोमाहे मलेली श्रेणी जे चम-रोड अतिशय नयकारी एवी लहरीए-जहेरीयोएकरी प्रेखा ठतां एवा, वली दढसम्मत्त महावल रहिआ-दढ सस्यक्त्वरूप महा बलेकरीने मोटा पराक्रमे करीने रहितठता एवा गुरुआवि-वाह्य गुणेकरीने मोटा पण ते दहति-हालेडे एटले मोलम मोला थायठे अमुक एम कहेठे, अने अमुक एम कहेठे तेमां कोतुं खरुं मानिये ! आतुं के पहेलातुं ! छे करिये ! एवी रीते मोलम मोला थायठे पण तत्व निश्चे करी शकतो नथी ॥६८॥

अवतरण- पूर्व गाथामा लोक प्रवाहरूप पवननी लहेरोएकरी जे प्रेखा होयठे ते अज्ञानी होयठे, एम कहु, हवे तेतुं स्वरूप कहेठे.- मूल - जिण मय लवहीलाहे, जं ड खं पाउणति अन्नाणी, नाणीण संजरिआ, जएण हिययं थरडरइ ॥ ६९ ॥ दोहा - जिनमतनी निदा करी, जो अज्ञानि डख पाय ॥ ते साजरिज्ञानी तणो, नय करि कपे काय ॥ ६९ ॥ व्याख्या -जिणमय लवहीलाए-त्यादादनी एक लवमात्र हीलनाए करी अन्नाणी-अज्ञानी जीव ज डरुं-जे डखप्रते पाउणति-पामे ठे, ते डखने संजरिआ-संजारीने अथवा त संजरिआ-ते डखने समरीने नाणीण-ज्ञानवान पुरुपोतुं जएण-नयेकरीने हिययं-हृदय थरडरइ-थर थर कंपायमान थाय ठे, एटले ते अज्ञानी जीवनी कपर अनुकपा आवे ठे अने पोते पण जिनमतनी हीलना थकी घणुंज बीहे ठे ए नाव ॥ ६९ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा जिनमतनी हीलना कथायी अज्ञानी जीव जे डखने पामे ठे, ते डखने याद करीने ज्ञानी पुरुपोतुं हृदय नये करी थर थर कपे ठे एम कहु, पण ते ज्ञानीजीव अज्ञानीना दोपने जोता नथी ते कहे ठे -मूल -रे जीव अनाणीण, मिडद्विणीण नियसि कि दोसे ॥ अण्णावि कि न याणोसि, नय्यंइ कठेण सम्मत्तं ॥ ७० ॥ दोहा - मिथ्यादृष्टि अज्ञानिनो, दोष जुवे शु बोध ॥ नहि जाणे शु आपने, कठे समकित बोध ॥७०॥ व्याख्या-रे जीव-हे नय्य जीव, अन्नाणीण मिडद्विणीण-अज्ञानी जे मिथ्यादृष्टि ठे तेउना दोसे-जिनमतनी हीलनादिक दोपने कि-शु नियसि-तु देखे ठे, तु ताहरी अण्णावि-आत्माने पण कि न याणोसि-शु नथी जाणतो, जे अनेक वार इव्य थकी जिनमत आश्रीने जिनमतनी हीलना कीधी तेथी मे घणा डख पाम्या, एम शु तु नथी जाणतो ? अर्थात् तु जाणे ठे, वली नय्यंइ-वीतरागना वचनथी जणाय ठे, जे सम्मत्तं-सस्यक्त्व दर्शन ते कठेण-कठे करी अनेकगमे उपदेश देवाथी पमाय अथवा जणाय ठे ; पण लहेजे पमाय अथवा जणाय नही ॥ ७० ॥

अवतरण— पूर्व गाथामां कष्टे करीने सम्यक्त्व जणाय ठे एम कद्यु, त्यारे शिष्ये अशंका करी के, गोत्र देवतादिक तथा पासडादिकने पूजतां लोकवृत्ति ए करीने कोईएक खशी जाय तेमां छुं दोष ठे? इत्था तो छुं जिनधर्मनी ठे? एनो उत्तर कहेठे— मूलः— मिञ्जत्त मायरंतवि, जे इह वठंति सुं जिए धम्मं ॥ तेग छावि जरेणं, सुत्तुं इहंति खीराई ॥ ७१ ॥ दोहा— आचरता मिथ्यात्वने, जे चा हत जिन धर्म ॥ ज्वर पीडित ते पय पिवा, वांठे विकल विशर्म ॥ ७१ ॥ व्याख्याः— मिञ्जत्त मायरंतवि—कुदेव, कुगुरु, कुधर्म सेवनरूप मिथ्यात्वने आचरतां अथवा से वतां लोकनी वृत्ति ए करी कोईएक दिवसे पण जे—जे पुरुष इह—आ जगतनेविपे सुं जिएधम्मं—निर्मल जिन धर्मने वठंति—वांठे ठे, ते पुरुष जरेण—ज्वरे करी ने एटले तापे करीने घञ्जावि—अस्त एटले पीडाता थका पण खीराइ—क्षीरादिकप्र ते सुत्तुं—खावाने इहंति—इहेठे, एवा न्याय करेठे. एटले जे मिथ्यात्वप्रते सेवतो थको जिनधर्मनी इत्था करेठे ते करबु तेत्तुं सर्वं नव दुःखने अर्थे ठे. ॥ ७१ ॥

अवतरण— पूर्व गाथामां मिथ्यात्वने आचरतो ठतो पण जे जिनधर्म कर वानी इत्था करेठे, एम कद्यु, हवे तेना दोष देखाडता ठतां दृष्टांत सहित दाष्टांत कहेठे— मूलः— जह केइ सुकुल बहुणो, सीजं मयलंति लिति कुल नामं ॥ मि ञ्जत्त मायरंतवि, वहंति तह सुगुरु केरत्तं. ॥ ७२ ॥ दोहा.— जिम केईक सुकुल वधू, व्रत हत लियकुल नाम ॥ आचरता मिथ्यात्व तिम, वहे सुगुरु अजुगाम. ॥ ७२ ॥ व्याख्या.— जह—जेम केई—कोईएक सुकुल बहुणो—सारा कुलमां उत्पन्न थएली स्त्रीओ सीजं मयलंति— अंग उपाग गोपीने राखवां, पर पुरुषोनी सायें वातो न करवी, अति उद्भट वेप न पहेरवो, नीची दृष्टि करी चालबु, कामविका रनी कथा न करवी, घरने वारणो कजा न रहेबुं, वारी गोखलानी वाहर मुख कहाडीने न जोबु, लाज तथा शरमने मूकीने वातनो विस्तार न करवो. आलस न मोडबुं, जाणी जोईने वगासां न नाखवां, कडकडां न कहाडवां, पर पुरुषने प्रेम सहित न जोबु, कार्यविना कोई सगावालाने घेर पण न जाबु, इत्यादिक शील आचारने मलीन करती ठती लितिकुजनाम—सेनापति, गाथापति श्रेष्ठी इत्यादि मो टाना कुजनुं नाम जेती एटले अमे मोटा कुजनी ठेए, एम कहेती मोटा कुलने कलं कित करेठे तह—तेम मिञ्जत्त मायरंतवि—कुदेव तथा कुगुरुसेवा, अने उत्सृज्जरूप पणादिक मिथ्यात्वने आचरतां ठतां पण नामसाधु अने नामश्रावक ते सुगुरु केरत्तं—सौधर्मा स्वामी प्रमुख सुगुरुना केडवापणाप्रते वहंति— वहेठे एटले धारण

करेते. अर्थात् पोते उत्सूत्री अनाचारी ठतां सविद्ध गीतार्थे सुगुरुना केडवापणां धारेते ते उलटं आचारवत गुरुने उत्सूत्री अनाचारी लोकमाहे प्रति-६ करेते पण ते वापडाने अज्ञानने वसे खवर पडती नथी ॥ ७२ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा मिथ्यात्वतु आचरण करता घणा टोप लागेते ए कव्यु, हवे उत्सूत्रविपे वात कहेते - मूल - उत्सुच मायरतवि, उवति अण्यं इ साव गन्मि ॥ तेरुद्धरोरगवृत्रि, तुलंति सरिसं धनढेहि ॥ ७३ ॥ दोहा - आरता उत्सूत्र जे, मानं आपसुमद्व ॥ रौड् दरिडे डु खि ते, तुले साथ सुधनद्व ॥ ७३ ॥ व्याख्या - उत्सुच मायरतवि - अविधि ए जिनपूजा सामायक पडिकमणादिक उत्सूत्र प्रते आचरता ठता पण एटले सेवता थका अने जे सुसावगन्मि - सुश्रावकपण नेविपे अण्यं - पोताने उवति - स्थापेते ते - ते पुरुष शु करेते । रुद्धरोरगवृत्रि - रौड् रोरकरी एटले अतिगय दरिडे करी अस्तठता पण एटले पीड्या थका अने धणढेहि सरिसं - धनाढयनी साथे एटले महायनवाननी साथे तुलंति - तुलना करेते, एटले पोते दारीडी ठता अनाढयनी साथे वरोवरीपणुं करेते. ॥ ७३ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा उत्सूत्र बोले ते मूढ कहेवाय एम कव्यु, हवे जे मूढ होय ते न्याय जाणे नही ते कहेते - मूल - किवि कुज कमन्मिरत्तो, किवि रत्ता सु६ जिणवर मयन्मि ॥ इय अंतरन्मि पिबुह, मूढा नार्यं न जाणति ॥ ७४ ॥ दोहा - केड कुलाचारे रता, केड रत जिन गन्माहि ॥ जुअो घ्रात इति अंतरे, जखे न्याय सव नाहि ॥ ७४ ॥ व्याख्या - किवि - केटलाएक पुरुष ठे ते कुलकम्ममि - कुज कर्मनेविपे एटले सत्य प्रसत्य विचार रहित, अविधि मज कलंक सहित, लोक प्रवाहनेविपे रत्ता - रक्त ठे एटले आसक्त ठे, अने किवि - केटलाएक पुरुषो ठे ते सु६ जिणवरमयन्मि - निर्मल अविधि मज कलंकरहित अनेकात त्यादाद जिनवर मृतनेविपे रत्ता - रक्त ठे एटले सावधान ठे, इय - ए प्रकारे अंतरन्मि - पुरुषोमां प्रगट अंतर ठता कुलकम मिथ्यात्वनेविपे जे रक्त ते अविवेकी, अने शु६ जिन मृतनेविपे जे रक्त ते विवेकी, ए प्रकारे पुरुषोमां प्रगट अंतर ठे ते मूढा - मूढ ज्ञान विकल प्राणी नार्यं - न्यायने नयाणति - नथी जाणता एटले कुजकम ठे ते ससारनो हेतु ठे, शु६ जिनेइमत ठे ते मोह नो हेतु ठे ए खरे खरो जे न्याय तेने नथी जाणता. पिबु - हे श्रोताओ तमे जुअो ए केटली आश्चर्यनी वात ठे । ॥ ७४ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा कव्यो जे न्याय ने विपरीतपणे जाणते कोई एक

जीव मिथ्या दृष्टि पाखंडीजनो संगमात्र मूके पण तेणे कहेलो धर्म मूकी द्विये नही ते अयुक्तपणुं ठे एम कहे ठे.- मूल.- संगोवि जाण अहिउ, तेसिं धम्माइ जे पकुवंति ॥ मुत्तूण चोर संगं, करति ते चोरियं पावा ॥ ७५ ॥ दोहा.- अहितकारि जसु संग पण, जे तसु धर्म करेय ॥ चोर संग तजि चोरिने, करै पापि नर तेय ॥ ७५ ॥ व्याख्या:- जाण-जे मिथ्यादृष्टि पाखंडीजनो संगोवि-संगपण अहिओ-अहितकारी ठे, जन्म जरा मरणादिक डु खने देवा वालो ठे, तेसिं-ते मिथ्यादृष्टि पाखंडी लोकोतुं कथन करेलुं थापेलुं जे धम्माइ-पाप नवमी चासुंडा कालिकादिक पूजना प्रमुख धर्म तेने जे- जे पुरुष पकुवंति-अतिशय करिने करे ठे ते पावा-पापी जुओ शुं न्याय करे ठे । चोरसंगं-चोरना संगने मुत्तूण-मूकीने एटले सृली आरोपण, कान नाशिकादिक ठेदन जेमां कार्शक संशय हतो ते चोर नो संग मुकीने तेना संगथी संतोप न पामीने पाप मति ते चोरीय-चोरी पणा प्रते करति- करेठे; एनो जाव-जेमां शूली देवानो अथवा कान नाशिकादिक ठेदन करवानो कार्श पण संशय नथी एवी जे चोरी तेने करे ठे जुवो ए केटलो अज्ञान ठे.

अवतरण-पूर्व गायामां मिथ्यात्वीना धर्मेनी स्थापना करे ते पापी कहेवाय एम कहु, हवे तेज वात विशेषे करी कहे ठे.- मूल.- जड पसुमहिस लस्का, पवं होमंति पाव नवमीए ॥ पूअंति तपि सद्धा, हा हीजा वीघरायस्स ॥ ७६ ॥ दोहा:- पातक नवमी पर्वमें, पसु मरता जसु पास ॥ तेने पूजित आइ जन, हा जिन हेला हास ॥ ७६ ॥ व्याख्या:- जड-जे स्थानकनेविपे तथा जे चासुंडा कालिका ज्वाला प्रमुखनी आगल पाप नवमीए पवं-पाप नवमी शुक्ल आसु चैत्र संबंधी नवमी तिथी प्रमुख जे पर्व तेनेविपे पसुमहिस लस्का लाखो गमे पशु ठा ग बोकडा महीस पादा उपलक्षणथी मनुष्य सूकरादिक होमंति-होमाया जाय ठे, मराया जाय ठे, रुधिरना कर्दम थाय ठे तंपि-ते चासुंडादिक देवीओप्रते सद्धा-कुल क्रमथी चालतुं आवेलुं ग्रहण कथुं ठे जिनमत जेणे, ते श्रावक लोक पूअंति-पूजे ठे, हाथ जोडे ठे, मस्तक नमावे ठे, नैवेद्यादिक चढावे ठे, जे श्रावक नाम धरावीने एम करे ठे ते हा-इति खेदे करी वीघरायस्स-वीतराग देवनी हीजा-हीजना एटले निंदा करे अथवा करावे ठे, मिथ्यात्वी लोक एम बोले ठे जे लगारैक रुधिर थकी पण जे मरे, एक कीडाना मरवाथी बीहे, एवा श्रावक लोको आवी आवीने अमारी चासुंडा देवीने पूजे ठे माटे जैनना देवथकी अमारी चासुंडादि

क देवीओ अधिक ठे, इत्यादिक हीजना वचन मिथ्यात्वी लोक बोले ठे, तेना क राववा वाला ते श्रावको जाणवा ॥ ७६ ॥

अवतरण.— पूर्व गाथामां हीजनाविपे कस्यु; हीजना ठे ते मिथ्यात्व ठे, हवे जे मिथ्यात्वतुं आरोपण करेठे, तेणे शु कस्युं ते कहेठे:— मूल— जो गिह कुहुंब सामी, संतो मिह्वत्त रोवण कुणइ ॥ तेण सयजोवि वसो, पक्कित्तो जव समुद्धम्मि ॥ ७७ ॥ दोहा — गृहकुटब स्वामी ठतो, जे थापै मिथ्यात ॥ नाख्यो तेणे वश मव, जव समुद्धमे त्रात ॥ ७७ ॥ व्याख्या.— जो—जे गिह कुहुंब सामी संतो—गृह एटले नारी, कुहुंब ते स्वजनादिक एउनो स्वामी अथवा ऊपरी ठता मिह्वत्त रोवण— मिथ्यात्वतुं आरोपण एटले स्थापन कुणइ—करे ठे; तेण—ते पुरुपे शुं कस्युं! सयजोवि वसो—सकल वस पण जव समुद्धम्मि—संसार समुद्धनेविपे पक्कित्तो प्रहेप्यो एटले नाखी दीयो सिद्धांतमा श्रावकने मिथ्यात्वनो त्रिविध त्रिविध त्याग करवानु कस्यु ठे ए हेतु माटे घर कुहुंबनो स्वामी ठता जे श्रावक ते मिथ्यात्वतुं आरोपण अथवा स्थापन केम करे! उपलक्षणथी कोईना घेरमां केम करवा ये! अपितु करे पण नही अने कोईने करवा पण दिये नही ॥ ७७ ॥

अवतरण — पूर्व गाथामां जे मिथ्यात्वतुं आरोपण करे ते पोताने तथा सकल वशने जव समुद्धमा नाखे ठे एम देखाड्युं, हवे जे मिथ्यात्वने सेवे ठे तेने सम्यक्त्व होतु नथी ते कहे ठे — मूल — कुंम चउडी नवमी, वारस्ती पिंम दाण पमुद्दाई ॥ मिह्वत्त जाव गाई, कुणति तेसि न सम्मत्तं ॥ ७८ ॥ दोहा — वारस नवमी चौथ मृत, पिंम प्रमुख मिथ्यात ॥ जे नर सेवे तेहने, नहि समकित अ वदात ॥ ७८ ॥ व्याख्या — कुड चउडी— गणेश चौथ, करवा चौथ, नवमी—शुक्ल चैत्त आशोनी पाप नवमी वारस्ती— वड वारस, पिंम दाण पमुद्दाई— सुएला पित्रादिकने जोजननतुं देवु इत्यादिक मिह्वत्त जावगाइ— मिथ्यात्वनो जाव रह्यो ठे जेमा, एवा जे लौकिक देवगत तथा गुरुगत मिथ्यात्व, अने लोकोत्तर देवगत तथा गुरुगत मिथ्यात्व, एमज लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, तथा लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व जाणवा ते मिथ्यात्वने जे पुरुप कुणति—करे ठे एटले सेवे ठे तेसिं— ते पुरुपोने न सम्मत्तं—सम्यक्त्व अथवा जिनोक्त तत्वतुं श्रद्धान नथी ॥ ७८ ॥

अवतरण — पूर्व गाथामां जे मिथ्यात्वने सेवे तेने सम्यक्त्वनी प्राप्ति थाय नही एम कस्यु, हवे ते मिथ्यात्वनेविपे पडेला जे कुहुंब तेने कोई एक धीर पुरुप कदाहेपणठे ते सर्वना हितने अर्थे दृष्टातसहित कहेठे —मूल —जह अइरुलंमि खु

चं, सगमं कष्टंति केवि धुरि धवला ॥ तह मिह्याउ कुटुंबं, इह विरला केवि कष्टं
 ति ॥ ७९ ॥ दोहा:- जिम कादव खूतो शकट, काढे केइ धोरि ॥ तिम कुटुंब
 मिथ्यात्वधी, काढे केइ सजोर ॥ ७९ ॥ व्याख्या:- जह- जेम केवि केटलाएक धु
 रिधवला- प्रधान वृपन ठे ते अइकजन्मिखुत्तं- अति कादवमां खूतेलुं एवुं जे
 शगमं- शकट एटले गाहुं तेने कष्टंति- कहाडेठे: तह- तेम इह- आ दूसम आ
 रानेविपे केविविरला- केटलाएक विरला हलुकर्मी आसन्न सिद्धि कवाग्रह रहित
 पुरुप ठे ते मिह्यायो- पूर्वोक्त मिथ्यात्वरूप कादवमांथी कडुवं- पोताना पुत्र क
 लत्रादिक कुटुंब परिवारने कष्टंति-कहाडेठे, अने जिनजापित धर्मनेविपे जोडेठे
 पण सर्व प्राणी जोडवा समर्थ नथी. ॥ ७९ ॥

अवतरण.- पूर्व गाथामां मिथ्यात्वमां पडेला जे कुटुंब तेने कोई विरला पुरु
 प कहाडे पण वधा कहाडी शके नही एम कहुं, पण जिनदेवने जोवाथकी सर्व
 जीव सम्यक्त्व पामशे ते शंका निवारण करवाने वास्ते कहेठे:- मूल - जह व
 दलेण सूर, महियल पयडंपि नेय पिडंति ॥ मिह्यत्तस्स य उदए, तहेव न नियं
 ति जिण देव ॥ ८० ॥ दोहा:- जैसे महितल प्रगट नी, धन युत रवि न दि
 खाय ॥ तैसे उदय मिथ्यात्वके, नहि दीसत जिनराय ॥ ८० ॥ व्याख्या:- महि
 यल पयडंपि सूर-घट पटादिक वस्तु देखाडवाथकी महीतल पृथ्वीमंगलनेविपे प्र
 गट एवो जे सूर्य, तेने पण जह-जेम वदलेण-वादलाए करीने एटले मेव घटाए
 करीने लोक नेयपिडंति-नथी देखता तहेव-तेमज मिह्यत्तस्सय उदए-पूर्वोक्त
 मिथ्यात्वनो उदय थयो ठतां जिणदेव-जिनदेव प्रत्ये लोक न नियंति-नथी देख
 ता, च शब्दथी सुगुरु तथा सुधर्म प्रत्ये पण नथी देखता, जेम वादलाएकरीने सूर्य
 नो विव देखाय नही, तेम मिथ्यात्वना उदयथी सुदेव सुगुरु देखाय नही वादल
 खशी जाय त्यारे सूर्य देखायठे, तेम मिथ्यात्व टव्याथी जिनदर्शन थाय ठे. एटले त
 ल्यथकी जिनदेवनुं स्वरूप उलखाय ए नाव, पण बीजी रीते नही एम जाणवुं ८०

अवतरण -- हवे मिथ्यात्वनो उदय थयाथी जीव मिथ्यात्वनेविपे आसक्त था
 यठे, अने गुणी पुरुपनेविपे मडर करे ठे, एवा जीव थायज नही तो सारुं ते
 कहेठे-- मूल-- कि सोपि जणणि जाओ, जाणो जणणीइ किं गओ विद्धिं ॥ ज
 इ मिह्यरथो जाओ, गुणोसु तह मडरं वडइ ॥ ८१ ॥ दोहा -- किम ते जायो
 जणनिये, जायो तो कि पुट ॥ मिथ्या मगन थयो जदी, तिम गुण मडरि डुट ॥
 ॥ ८१ ॥ व्याख्या-- कि-हुं सो-ते अपिनिश्चे जणणिजाओ- माताए जन्म्यो,

जणणीऽ-जो माता ए जाअ्यो-जन्म्यो तो ते विद्धि-वृद्धिने कि-केम गअ्यो-पाम्यो ! एटले ते पुट केम थयो ! एम केम कहेवुं पड्युं ! जह-जो मिह्वरअ्यो-मिथ्यात्वनेविपे रत एटले आसक्त एहवो जाअ्यो-थयो वली जो गुणोसु-सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुणो युक्त जे पुरुष तेनेविपे तह-तथा समुच्चय अर्थनेविपे मह्वर-मह्वर इपां एटले देपनाव प्रत्ये वहइ-वहेडे, करेडे एटला वास्ते हे शिष्य, कहेवु पड्युं जे ते माताए केम जन्म्यो ! अने जो माताए जन्म्यो तो केम ते वृद्धिने पाम्यो ! केमके पूर्वोक्त जे लोकिक लोकोत्तर मिथ्यात्व, तेनेविपे पोते प्रवृत्ति कखाथी परने प्रवृत्ति कराव्याथी अने गुणी पुरुषनेविपे देपबुद्धि कखाथी प्राए अनंत नवन्नमण ठे. वली कुपुत्रनी माता पण प्राए सारी होती नथी, कदाच कोई सारी होय तो कुपुत्रने जोगे माताने मलिनता आवे माटे कुपुत्र न जन्म्योजसारुं.

अवतरण - पूर्व गाथानो अर्थसांजलीने कोई बोळ्यो के, देव तथा देवी प्रमुख आपणने कोई उपडव करे नही माटे मानीए ठैए ते शंका दूर करवाने कहेडे - मूल - वेसाण बंदियाणय, माहण हुंबाण जस्कसिरकाण ॥ नत्तानस्कछाण, वियाण जतिदूरेण ॥ ८२ ॥ दोहा - वेस्या ब्राह्मण जाट डुब, जहसिद्ध इन काय ॥ जह स्थान स्वजगत ठे, विरतीथी अलगाय ॥ ८२ ॥ व्याख्या - वेसाण-वेस्या नो बंदियाण-चारण जाटादिक लोकोनो माहण हुंबाण-ब्राह्मण लोकोनो हुंबो नो, जस्क सिरकाण-जह व्यंतर देव शेष गणेशादिकनो एटले मिथ्या दृष्टि देवी देवताअ्योनो नत्ता-नक्त अथवा सेवक ठे तेज तेअ्योनो नस्कछाण-नहने मागवा तुं स्थानक ठे एटले वेस्या चारण जाटादिक सरिखा जे मिथ्यादृष्टि देव देवीअ्योने माने अथवा पूजेठे तेअ्योनेज ते आवीने नडेठे अने डु ख दियेठे, ते तेअ्योनीज पाशेथी जह मागेठे पण विरयाण-विरति पुरुषोथकी दूरेण-दूर जंति-जायठे. एटले ते मिथ्यादृष्टि देव देवीना त्यागी ठे, वदन नमस्कारादिक आदर पण कांई करता नथी तेथकी ते देव देवीउं दूर जायठे. ॥ ८२ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा विरति पुरुषोथकी मिथ्यादृष्टि देवता दूर जायठे एम कखु, माटे विरति पुरुष शुद्ध मार्गनेविपे सुखे चाले ते कहेडे - मूल - सुडे मग्गे जाया, सुहेण गह्वन्ति सुडे मग्गंमि ॥ जे पुण अमग्ग जाया, मग्गे गह्वन्ति तं चुय्यं ॥ ॥ ८३ ॥ दोहा - सुखे सुडे मारग चलै, थया सुडे मग जेय ॥ जात कुमार्गी मा र्गमे, चाले अचरज तेय ॥ ८३ ॥ व्याख्या - सुडे मग्गे जाया-शुद्धमार्गनेविपे उत्पन्न थया एटले जे शुद्ध परपराए साधु श्रावकना कुलनेविपे उत्पन्न थया ते

जीव सु६ मग्गम्मि-सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप निर्मल जे मोक्षमार्ग तेनेविषे सुहेण-सुखे सुखे गहंति-गमन करेठे. एटले जायठे, एमां काई आश्रय नथो. पुण-वली जे-जे प्राणी अमग्ग जाया-कुमार्गनेविषे उत्पन्न थया ते एटले अन्य दर्शननेविषे तथा उत्सूत्र जापी उन्मार्गे चालनार जैनाजास नन्हव पासडा थोस त्नादिकना कुलनेविषे उत्पन्न थया ते जीव सुगुरुना सुखनी वाणी सांजलीने मग्गे-मोक्षमार्गनेविषे गहंति-गमन करेठे अथवा जायठे. तं-ते बुध्यं-आश्रय ठे ॥ ७३ ॥

अवतरण- पूर्व गाथामां कसु जे कुमार्गनेविषे उत्पन्न थया ते मोक्षमार्गे चा ले ते मोटो आश्रय ठे. एवुं सांजलीने कोई कहेठेके एमां सुं आश्रय ठे? ए आशंका दूर करवाने कहेठे.- मूल:- मिहत्त सेवगाणं, विग्घसयाइंपि बिति नोपावा ॥ विग्घ लवमि विपडिए, दढ धम्माण पणञ्चंति ॥ ७४ ॥ दोहा- मि थ्यात्वोके विघन सत, पण बोलत नहिं छुट ॥ पडे विघन लव धर्मिके, तो नाचे अथ पुट ॥ ७४ ॥ व्याख्या.- मिहत्त सेवगाण- मिथ्यात्वुं सेवन करनार, एट ले कुदेव कुगुरु मिथ्यादृष्टि देवी देवताना पूजनारने विग्घसयाइंपि-रोग सोग न य कष्ट मरणादिक शेकडा गमे विघ्न थायठे, पण ते शेकडा विघ्नोना समूह प्रत्ये पावा- जे पापी मिथ्यात्वी लोक ठे ते नो-नथी बिति- बोलता अने दढधम्मा णं-दढ धर्मी पुरुषोने विग्घ लवमि विपडिए- लवमात्र विघ्न पड्याथी पण एटले लंगारेक खास श्वास ज्वरादिक थयाथी पण ते पापी मिथ्यादृष्टि लोक पणञ्चंति- अतिशय करी नाचे अथवा कूदेठे, दढ धर्मी पुरुषोने अवर्णवाद बोलेठे माटे जे कुमार्गनेविषे उत्पन्न थईने सु६ मार्गनेविषे चाले ते मोटो आश्रय जाणवो. केम के कुमार्गमां उत्पन्न थईने सुमार्गे चाले एवो संजव थतो नथी ॥ ७४ ॥

अवतरण- पूर्व गाथामां कसु के जे पापी लोक ठे ते दढ धर्मी पुरुषोने ल गारेक विघ्न पडे ते जोईने नाचेठे, केमके, तेपोते उन्मार्गनेविषे उत्पन्न थया एवु जाणता नथी ते कहेठे.- मूल:-सम्मत्त संजुआण, विग्घंपि दु होइ उह्व सरिहं ॥ परमुह्वंपि मिह, न संजुअं अइ महाविग्घ ॥ ७५ ॥ दोहा:- समदृष्टी के विघ न पण, उठव सरिखो होय ॥ अति उठव मिथ्यात्व छुत, महा विघ्न नय जोय ॥ ७५ ॥ व्याख्या.- सम्मत्त संजुआणं-सम्यक्त्व सहित पुरुषोने विग्घंपि दु-मर रणादिक विघ्न पण निश्चये करी उह्व सरिहं-उत्सवना जेवुं होइ-थायठे केमके सम्यक्त्ववान प्राणी आ लोकनेविषे सम संवेगादिक गुणेकरी सदानदी होयठे ते मरीने पण प्रधान देवगतिने पामेठे. माटे तेने मरणादिक विघ्नपण उत्सवतु

व्ये; अने जे मिञ्च संञ्च-मिथ्यात्व संयुक्त ठे ते परमुञ्चवपि-परम उत्कृष्ट उ
त्सव ठता पण अइ महाविग्यं-अति महा विघ्नचूत ठे केमके मिथ्यादृष्टि जीव
महा मोह मिथ्यात्व दवानलने योगे संतप्तात्मा होयठे माटे अही डु खी यईने
मरीने डुर्गतिनेविपे जायठे एवी रीते परलोकनेविपे पण डु खी थायठे ते वात
उन्मार्गीमां जे उत्पन्न थाय ते जाणता नथी. ॥ ८५ ॥

अवतरण.- पूर्व गाथामा कहु के, सम्यक्त्ववान प्राणीने विघ्न पण उत्सवना
जेवो थायठे, ते केवी रीते ते कहेठे - मूल - इंद्रोवि ताण पणमइ, हीजंतो नियय
रिद्धि विञ्जार ॥ मरणते वि दु पत्ते, सम्मत्तं जे न ठडंति ॥ ८६ ॥ दोहा - निज सं
पतकूं हीजतो, नमे इंइ पण तास ॥ जे समकित ठांमे नही, पडे मरणकी त्रास
॥ ८६ ॥ व्याख्या - दु-निश्चैकरी मरणतेवि पत्ते-मरणात समय प्राप्त ठतां पण
एटले कंठगत प्राण थाय ठतां पण जे-जे पुरुष सम्मत्तं-जिनोक्त तत्व श्रद्धान
सम्यक्त्वने न ठडंति-नथी मूकता ताण-ते पुरुषोने इंद्रोवि-देवेंइ पण पणमइ-
प्रणाम करेठे. ते शुं करतो थको प्रणाम करेठे? नियय रिद्धिविञ्जार-निजक संबं
धी एटले पोता संबंधी ऋद्धि समृद्धिनो जे विस्तार तेने हीजंतो-हीजना करतो
थको एटले तृण तुल्य मानतो थको प्रणाम करेठे. ॥ ८६ ॥

अवतरण-पूर्व गाथामां कहु के, कंठगत प्राण ठता पण सम्यक्त्वनो त्याग
करता नथी एहेवु दृढपणं होवातुं कारण शुं ठे ते कहेठे.- मूल - ठडंति निय
य जीयं, तिणव मुक्कडिणो न उण सम्मं ॥ लप्रइ पुणोवि जीयं, सम्मत्तं हारियं
कत्तो ॥ ८७ ॥ दोहा - मोहार्थी तृण जिम तजे, निज जीवित न समत्त ॥ जी
वित वलि पण पामिये, ह्युं न समकित कत्त ॥ ८७ ॥ व्याख्या.- मुक्कडिणो-
जे मोहूनो अर्थीं ठे ते, नियय जीयं-पोताना जीवितने एटले आशु तथा प्राण
ने तिणव-तृणनी पठे ठडंति-ठांमेठे अथवा त्यागी दियेठे उण-पुन. एटले वली
सम्म-सम्यक्त्वने न-नथी मूकता शुं जाणीने नथी मूकता? जीयं-जीवित ठे
ते तो पुणोवि-वली पण लप्रइ-प्राप्त थशे, केमके, 'ज्या सुधी मोह नथी' त्या
सुधी जीवित तो जन्म जन्मनेविपे ठे, पण सम्मत्त हारियं-सम्यक्त्व रत्न हारेलुं
कत्तो-क्याथी प्राप्त थाय केमके सम्यक्त्व रत्न हारेलुं फरीने प्राप्त थवु अति ड
लेंन ठे एम श्रीवीतरागे कहु ठे. माटे पोताना जीवितनो त्याग करेठे पण मो
हनो अर्थीं सम्यक्त्वनो त्याग करतो नथी ॥ ८७ ॥

अवतरण- पूर्व गाथामा सम्यक्त्व हारेलुं फरी प्राप्त थवु डुर्जन कहु ते तो

वीक पण ते सम्यक्त्व वडे करीने शुं धनवान नही थाय । ए शंका दूर करवाने कहेते.- मूल - गयविहवावि सविहवा, सहिया सम्मत्त रयण राएण ॥ सम्मत्त रयण रहिया, संतेविधणे दरिद्वत्ति ॥ ८८ ॥ दोहा:- विजव रहित पण विजव जुत, समकित रत्न समेत ॥ समकित रहित ठते धने, दारिडी वनप्रेत ॥ ८८ ॥ व्याख्या:- सम्मत्त रयण राएण:- सम्यक्त्वरूप रत्न राज एटले सम्यक्त्वरूप जे चिंतामणि रत्न तेणे करीने सहिया सहित जे पुरुष ते गयविहवावि-गतविजव थई जाय. धन संपदा रहित थई जाय तो पण सविहवा-सहित विजव कहिये एटले धनसंपदाए करी सहित कहिये. केमके, सम्यक्त्वरूप चिंतामणि रत्न जे नाव लक्ष्मी, तेनी पात्रे धनधान्यादि बाह्य लक्ष्मी शा हिशाबमां ठे ! कांई पण हिंसाबमां नथी. सम्यक्त्व रत्न मोक्ष सुखनो देनार ठे अने बाह्य लक्ष्मी जेठे तेतो सम्यक्त्वविना पुरुषने नरकादिकनी देनार ठे. माटे एम कहुं, अने सम्मत्त रयण रहिया-सम्यक्त्व रत्न रहित जे पुरुष ठे एटले जेनी पात्रे सम्यक्त्वरूप रत्न नथी ते पुरुष संतेवि धणे-धन ठतां पण दरिडी ठे एटले निर्धन ठे. ॥ ८८ ॥

अवतरण:- पूर्व गाथामां सम्यक्त्वनुं विशेषपणुं देखाड्युं माटेज सम्यक्त्व शुद्धिना अवसरे कोई धननी कोटी आपे तोपण सम्यक्त्ववान श्रावक ते अवसरथी चूके नही; ते कहेते.- मूल:- जिण पूअण पन्नावे, जइ कुवि सड्ढाण देइ धण कोडिं ॥ मूचूण त असारं, सार विरअंति जिण पूअं ॥ ८९ ॥ दोहा:- पूजा अवसर आइकूं, कोइ दिए धन कोडि ॥ ते असार तजि सार जिन, पूजा रचे नि चोडि ॥ ८९ ॥ व्याख्या:- जिण पूअण पन्नावे- जिन पूजा करवाना प्रस्तावे ए टले अवसरे सड्ढाण- सम्यक्त्ववान श्रावक लोको जणि जइ-जो कुवि-कोई इइ नरेंइ धनवान पुरुष धण कोमि-धननी कोटीने देइ- दिए अथवा आपे तं-ते अ सारं-असार अधिर धननी कोटीने मुचूण-मूकीने सारं-सार प्रधान एवी जे जिण पूअं-जिनराजनी पूजा तेने विरअंति-विशेष पणे विधि पूर्वक रचे एटले करे. ॥ ८९ ॥

अवतरण:- पूर्व गाथामां जिन पूजा जेठे ते सार ठे एम कहुं, पण विधि पूर्वक जिनपूजा सार जाणवी अर्हां शिष्य आशंका करेठे के, अविधि ए केम सार नही ? ते शंका दूर करवाने कहेते - मूल.- तिडयराणं पूअ्या, सम्मत्त गु णाण कारिणी जणिया ॥ साविय मिडत्तयरी, जिण समये देसिया पूअ्या ॥ ९० ॥ दोहा:- दर्शनादि गुण कारिणी, कहि जिनवर पूजाय ॥ वलि मिथ्यात्व करी क ही, सा पूजा जिनराय ॥ ९० ॥ व्याख्या.- तिडयराणं-तीर्थकर एटले अरिहंतो

नी पूआ-जल पुष्प चदन धूप दीपादिरूप विधिपूर्वक पूजा ते सम्मत्त गुणाए-
सम्यक्त्व ज्ञानादिक गुणानी कारिणी- करवा वाली तथा सम्यक्त्व ज्ञानादिक गु
ण प्रगट करवाने कारणचूत नणिआ-जिनागममा कही ठे साविय-वली तेप
ण पूआ- तीर्थकरनी पुष्प चदनादिरूप अविधि पूर्वक पूजा ते मिह्वत्तरि-मि
थ्यात्वनी करनारी जिण समये-जिन आगमनेविषे देसिआ-देखामी ठे. एम जा
णीने अहो नइ, तीर्थकरनी विधिपूर्वकज पूजा करवी श्रेय ठे ॥ ९० ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां जे तत्वने जाणनार होयठे ते विधिपूर्वक जिनपूजा क
रे एम देखाम्युं, पण एवी रीते तत्वने जाणनार कोण होय ठे ते कहेठे:-
मूज - ज ज जिण आणाए, तं चिय मन्नइ न मन्नए सेसं ॥ जाणइ लोयपवा
हे, न दु तत्तं सो अ तत्तविक ॥ ९१ ॥ दोहा - जो जो जिन आझा सहित,
तेहिज मानै जोय ॥ शेष न मानै तत्व नह, लोकिके विदू सोय ॥ ९१ ॥ व्या
ख्या - ज ज जिण आणाए-जे जे वचन जिन आझाए करीने ठे, त चिय-ते वच
ननेज मन्नइ-जे पुरुष मानेठे सेस-ते टाली शेष जिन आझा विरुद्ध जे वचन
तेने न मन्नए- नथी मानता वली जे दु-निश्चे लोयपवाहे- लोक प्रवाहनेविषे
तत्तं-तत्व मोह साधनरूप सार पदार्थे कोई पण न-नथी जाणइ-जाणता सो-
ते पुरुष तत्तविक-तत्वज्ञानी जाणवो पण एथी बीजो कोई तत्वनो जाणनथी॥ ९१ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां कहा जे अर्थे, ते प्रगट करवाने अर्थे उपनय स
हित निगमन करतां ठता एटले समाप्ति करता ठता कहेठे - मूल - जिण आ
णाए धम्मो, आणा रहिआण फुडं अहमुत्ति ॥ इय मुणि ऊणय तत्तं, जिण आ
णाए कुणहु धम्मं ॥ ९२ ॥ दोहा - आणा रहित अधर्म कुट, धर्म जिनाझा
तार ॥ एह तत्व जाणी करो, धर्म जिनाझा सार ॥ ९२ ॥ व्याख्या - जिण आ
णाए- जिन आझाए करीने धम्मो- कृमा दयादिकरूप धर्म ठे; आणा रहिआण-
जिण आझाए करी रहित जे पुरुष, तेने फुडं- प्रगटपणे अहमुत्ति- हिसाफूव प्रको
पादिरूप अधर्म पाप व्यापार ठे, इति- पद समाप्तिने अर्थे, इय- ए प्रकारे तत्तं-
तत्वने एटले धर्मना स्वरूप अने अधर्मना स्वरूप एटले धर्म अधर्म वनेना स्वरूप
प्रते मुणिकण- जाणीने हे नइ, जिण आणाए- जिन आझाए करीने सहित
धम्म- कृमा दयादिकरूप धर्म प्रत्ये कुणहु- तमे करो ॥ ९२ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां जिन आझाएकरी धर्म करवो एम कहु, हवे जे त
त्वज्ञानी सामग्री ठता पण तत्वने नथी सांजता, नथी जाणवानो उद्यम करता

नेने दोष देखाडतां ठतां कहेठे:- मूल:- साहीणे गुरु जोगे, जे नहु निसुणति
सुद्ध धम्मञ्जं ॥ ते डुठ धिठ चित्ता, अह सुद्धा नवनय विहूणा ॥९३॥ दोहा:-
नवनय रहित सुनट तथा, डुष्ट धीठ नर तेय ॥ ठते सुगुरु स्वाधीन जे. शुद्ध
धर्म न सुणोय ॥ ९३ ॥ व्याख्या - साहीणे-स्वाधीन पणुं ठतां गुरुजोगे-शुद्ध ध
र्मोपदेशक गुरुनो योग समागम ठतां जे-जे पुरुष सुद्ध धम्मञ्जं-शुद्ध धर्मार्थप्रते
एटले विषय कपाय मजरहित सम्यक् ज्ञान क्रियारूप धर्म परमार्थने हु-निश्चे न
नथी, निसुणति-सांजलता. ते-ते पुरुष केवाठे ? डुठधिठ चित्ता-डुष्ट धीठ चित्तवा
ला जाणवा एटले रागद्वेष मिथ्यात्व कदाग्रह सहित चित्त ते डुष्ट चित्त कहिये,
अने वारंवार कहिये तोपण कुचाल ठोडे नही ते धीठपणुं; ते धीठपणाए करी
ने सहित चित्त होय ते धीठचित्त कहिये एवा चित्तवाला अह-अथवा ते केवा
जाणवा ? नवनय विहूणा-संसार त्रमणरूप संग्रामना नयथकी विहूणा-रहित
एवा सुद्धा-सुनट एटले योधा जाणवा; घणुं शुं कहिये। दश दृष्टांते दोहेकुं एवुं
जे मनुष्यपणुं ते पामीने वली स्वाधीनपणुं पामीने वली तत्वज्ञान प्रकाशिक सदगु
रुनो योग पामीने श्रीवीतराग जापित निर्मल धर्मार्थने सांजलता नथी अने जे सांज
लेठे तेनी ऊपर डुष्टनाव करेठे. माटेजकस्यु के ते नवनय रहित एवा सुनट योधाठे.

अवतरण:- हवे गुरु उपदेश सांजल्ल्याथी शुं गुण थाय ठे ते कहेठे.- मूल:- सु
द्ध कुल धम्म जाइवि, गुणिलो न रमंति लिति जिण दिस्कं ॥ तत्तोवि परम तत्तं
तेउवि उवयारउं मुस्कं ॥ ९४ ॥ दोहा:- सुकुल धर्म जाती गुणी, पर नर मे
लिय सम्म ॥ पठे विसुद्ध चरण पठे, उपकारे शिव रम्म ॥ ९४ ॥ व्याख्या:-सु
द्ध कुल धम्म जाइवि-निर्मल कुल धर्म जातिवत्त. एवा पण गुणिलो-धैर्य; गं
नीर्य, औदार्यादि गुणो सहित एवा पुरुष होय ते गुरु उपदेश सांजल्ल्याथी नरम
ति-विषय कपायमां रमता नथी जिणदिस्कं-जिन दीह्याप्रत्ये एटले सम्यक्त्वने
लिति-ग्रहण करे ठे. तत्तोवि-त्यार पठी पण परमतत्त-परम तत्वने एटले जि
नोक्त चारित्र धर्मने ग्रहण करे, तउवि-त्यारपठी पण उवयारओ-उपचारथी ए
टले शुद्धविधि धर्मोपदेश कल्याथी मुस्कं-मोहने पामे ठे. ॥ ९४ ॥

अवतरण:- वली सदगुरुनो उपदेश सांजल्ल्याथी निश्चे निर्वेद थाय ठे ते कहे
ठे:- मूल:- वल्लेमि नारयाउवि, जेसिं डुस्काइ संजर ताणं ॥ नवाण जणइ हरि
हर, रिद्धि समिद्धीवि उद्धोसं ॥ ९५ ॥ नीकां नारक जेहनो, डुख सुणि नवि ज
ण केय ॥ हरि हर क्खि समुद्धि पण, तनु उक्कंट जणोय ॥ ९५ ॥ व्याख्या.-

नारयाओवि-नारकी जीवोने पण वन्नेमि-हुं वर्णवुं हुं, एटले वखाणुं हुं. केमके जेसिं- जे नारकी जीवोना डुस्काइ- अनेक प्रकारनां जे डु ख; तेने संजरताणं-सं नारनार अथवा चितन करनार एवा जे नवाण- नव्य जीव, तेना उ-दोसं-रोम कुपने हरिहर रिद्धि समिद्धी वि-विष्णु शंकरनी रुद्धि समृद्धि ठे ते पण जणइ- उत्पन्न करे ठे केमके, हरिहरादिकनी रुद्धि समृद्धि ठे ते पण नरकादिक डुःखनी हेतु ठे माटे ते देखीने नव्य जीवोनां रोमाच कजा थाय ठे ॥ ९५ ॥

अवतरण - एम वे गाथाए करी संवेग निर्वेदनो स्वरूप कह्यो हवे जे ग्रंथोमां एतुं उपदेश ठे, एवा उपदेश मालादिक सिद्धांत प्रकरण जे ठे तेने सर्व साधु श्रावक माने ठे, अने केटला एक कदाग्रही लोक मानता नथी, ते वन्नेना वे गाथाए करी स्वरूप कहेठे-मूल -सिरि धम्मदास गणिणा, रइअं उवएस माल सिद्धंत॥ सबेवि समण सद्धा, मन्नति पढति पाठंति॥ ९६ ॥ दोहा.-धर्मदासगणि रचित उप, देश माल सिद्धांत॥ श्रमण श्राद्ध मानैसवी, पठे पाठवे खाता॥ ९६ ॥ व्याख्या-सिरि धम्मदास गणिणा श्रीधर्मदास- आचार्यजीए रइअं-रच्युं ठे, जे उपएसमाल सिद्धंत-उपदेशमाला नामे सिद्धांत प्रकरण तेने सबेविसमणसद्धा-सर्व श्रमण सुसाधु श्राध्य सुश्रावक जे ठे तेउ मन्नति माने ठे, पढंति-पढेठे, अने पाठंति-नणावे ठे ॥ ९६ ॥

मूल.- तं चैव केवि अहमा ठलिया अइमाण मोह नूएण ॥ किरियाए ही जंता, ही ही डुस्काइ न गणति ॥ ९७ ॥ दोहा - मान मोह नूते ठव्या, अधम केइ किरियाय ॥ तेह मालने हीजता, न गणे नव डु ख जाय ॥ ९७ ॥ व्याख्या अइ माण मोह नूएण-अनिमान मोहरूप नूतढायें करी ठलिया-ठलाएला एटले वेजान थएला एवा अहमा-अधम उत्सूत्र नापी नीच माणस केवि-केटला एक चैव-निश्चे करीने तं- ते उपदेशमाला प्रकरणने किरियाए-तपादि कष्ट क्रिया ए करीने हीजंता-हीजना करे एटले एहवा प्रकरणमां शुं ज्ञान वैराग्य ठे एमं निदा करेठे माटे ग्रंथकर्त्ता कहेठे के हीही-मोटी खेदनी वात ठे के, डुस्काइ-नरकादिक जे डु ख ठे तेने न गणति-नथी गणता एटले श्री धर्मदासगणि प्रमुख महा पुरुषोना रचेलो जे प्रकरण ते सिद्धांतरूप कहां ठे, तेने जे नथी मानता ते नरकादिकना डु खथी नथी बीहीता. एम जाणीने मनमां एवु थायठे के, तेथोनी सी वले थरो ? ॥ ९७ ॥

अवतरण.- पूर्व गाथामा कहु के, उपदेशमालादिक सिद्धांततुय्य प्रकरणनी हीजना कखाथी घणुं डु ख थायठे, ते डु.ख कीयु ? ते कहेठे - मूल.-इथराण

ठकुराणवि, आणा जंगेण होइ मरण डहं ॥ किं पुण तिलोअ पढुणो, जिणिंदवे
वाइ देवस्त ॥ ९८ ॥ दोहा:- एक मर लघु चूपनी, आण जंगथी थाय ॥ सुं
ली त्रिचुवन चूपनी, आण हणो कहवाय ॥ ९८ ॥ व्याख्या:- इयराण ठकुराण
वि-इतर बीजापण ठकुर सामान्य राजाओनी आणा जंगेण-आज्ञाजंग कखाथी
मरण डहं-मरणादिक डख होइ-होयठे. तो तिलोयपढुणो-त्रिलोकना प्रभु एटले
स्वामी एवा जिणिंद देवाहिदेवस्त-जिनेंइ देवाधिदेवनी आज्ञा जंग कखाथी अ
नंत जन्म मरण थाय ते डुःखनुं किंपुण-गुं वर्णन करिये! अनंत डुःख कही श
काय नही संविद्ध गीतार्थनी परंपराथी चालतो आवेलो जे अर्थ, तेने प्रमाण न
करनुं एटले माननुं नही ते आज्ञा जंग कहेवायठे. ॥ ९८ ॥

अवतरण:- पूर्व गायामां जिन आज्ञानो जंग कखाथी अनंत डख थायठे एम कसु,
पण जेओ दया धर्मनेविपे उद्यमवान होयठे, तेओने जिन आज्ञाएकरी सुं थायठे
ते कहेठे:- मूल:- जग गुरु जिणस्त वयण, सयलाण जिणाण होइ हिय करणं ॥
तातस्त विराहणया कह धम्मो कहणु जीवदया. ॥ ९९ ॥ दोहा:- जगहितकर
जिनवर वचन, ते कारण जविलोय ॥ तास विराधे धर्म किम, जीवदया किम
होय. ॥ ९९ ॥ व्याख्या:- जगगुरु जिणस्त-त्रण जगना गुरु एवा जे श्रीजिनव
र, तेमनुं-वयणं-वचन कहेठु ठे? सयलाण जियाण- एकेडियथी लईने जावत्
पंचेंडिय सकल जीवोने हिय करणं-हित करनार एटले कव्वाणनुं करनार होइ-ठे.
ता-ते कारणमाटे तस्त-ते जिनवचननी विराहणया-विराधना कखाथी एटले खं
डना कखाथी नु-इति वितर्के कहधम्मो-धर्म ते क्यांथी! अने कह-क्यांथीणु जीव
दया-निज परजीवनी अनुकंपा एटले करुणा अपितु कांईज नथी; जिनवचननी
आराधनाएकरीनेज चारित्र धर्म अने दया प्रमाण ठे, अन्यथा नथी. ॥ ९९ ॥

अवतरण:- पूर्व गायामां जिन आज्ञानी विराधना कही, ते जिन आज्ञानो
प्रकार देखामतां कहेठे:- मूल - किरियाइ फमा मोव, अहियं साहंति आगम वि
दूणं ॥ सुंदाण रंजणडं, सुंदाणं हीलणदाए ॥ १०० ॥ दोहा:- सूत्र रहित
दर्शी अधिक, क्रिया तणो मंमाण ॥ ऋजु रंजण मुनि हीजवा, किरिं मूढगत त्राण
॥ १०० ॥ व्याख्या - आगम विदूषणं-सिद्धांतोक्त विधिये करीने रहित अने
सिद्धांतमांह नथी कह्यो जे प्रकार तेणोकरिने सहित. एटले सिद्धांतमां पुष्प नै
वेद्यादिक पूजा करवी, कही ठे, ते न करवी एम कहे; वली जिनपूजा सामायक
प्रतिक्रयणादिक धर्म कर्त्तव्य विधि पूर्वक करनुं एम कसुं ठे, ते जेम तेम करनुं;

विधि अविधि प्रमुखने जोबु नही एम कहे, इत्यादिक जे उत्सुत्र प्ररूपणा ते आ गम विहीण कहिये, एबु किरियाई फडाडोव-बाह्य तप नियम व्रतादि धर्म अनुष्ठानरूप क्रियानो जे फटाटोप एटले आमंवर तेने मुनिराजथी अहियं-अधिक साहंति-साधेठे एटले करेठे, जे निन्द्वादिक लिंगिया लोक ठे ते, एम करेठे ते शा सारु आमंवर करेठे ? मुद्राण रंजणडं-मुग्ध लोक एटले जिन धर्मना अजाण जोला लोकोना वित्तने रजन करवाने अर्थे, तथा मुद्राणं हीलणछाए-शुद्ध पुरुषोनी एटले सिद्धांत जापित अर्थना कथनार पुरुषोनी हीलना करवाने अर्थे ते अज्ञानी मूढ सम्यक ज्ञान रहित क्रियानो आमंवर अधिकतर देखाडेठे ॥१००॥

अवतरण -पूर्व गाथामा अशुद्ध धर्म देखाडवावालाने मूढ तथा अज्ञानी कहु हवे जे शुद्ध धर्मतुं दान करेठे ते पुरुषो केवा होयठे ते कहेठे- मूल - जो देइ शुद्ध धर्म, सो परमप्या जयम्मि न दु अन्नो ॥ कि कप्यहुम सरिसो, इयर तरु होइ कश्यावि ॥ १०१ ॥ दोहा.- शुद्ध धर्मकूं जो दिए, सो जिनराज न श्रीर ॥ सुरतरु समतरु अन्य क्या ! होय कहु किये तोर ॥ १०१ ॥ व्याख्या - जो-जे साधु श्रावक सम्यक् दृष्टि कोइ शुद्धधम्म-निर्मल कपाय मल रहित श्री वीतराग जापित धर्मप्रते देइ- दिये, सो- ते परमप्या- परमात्मा ठे एटले तीर्थकरतुल्य ठे दु- निश्चय जयम्मि- जगतनेविपे तेनी तुलना करनारो अन्नो- बीजो कोई नथी एवात्मा कोई वितर्क करे तो तेने एम कहिये के, कि-शुं कप्यहुमसरिसो- कटपवृद्धना जेवो इयरतरु-कोई बीजो वृद्ध कश्यावि-कोई काले होइ-थाय ! ते कहु त्यारे ते वितर्क करनारो बोव्यो के कदापि न थाय माटे तमे कहु ते सत्यठे १०१

अवतरण -पूर्व वे गाथामां अशुद्ध धर्म प्रकाशकनी उपेक्षा अने शुद्ध धर्मदायक नी प्रशंसा करवालुं जे जणाव्युं ते तो जे वस्तुनो गुण दोष जाणे ते करे, केम के, ते मध्यस्थ पुरुष होयठे पण जे वस्तुना गुण दोषथी अजाण होय ते मध्यस्थ पुरुष मा गणाय नही ते कहेठे - मूल.-जे अमुणिय गुण दोषा, ते कहुअ बुहाण हुंति मञ्जवा ॥ अह तेवि दु मञ्जवा, ता विस अमिआण तुल्लं. ॥ १०२ ॥ दोहा - जे गुण दोष अज्ञान ते, किम बुधमे बुध होय ॥ अथवा ते बुध होय तो, सम विप अमृत दोष ॥ १०२ ॥ व्याख्या - जे-जे पुरुष अमुणिय अगुणदोसा-वस्तुना गुण अने दोष नथी जाणता, ते-ते पुरुष बुहाण-बुध एटले पडित पुरुषोनेविपे मञ्जवा- मध्यस्थ राग द्वेष रहित समचित्तवाला कहुअ-केम हुंति- थाय ! एटले जे वस्तुना गुण तथा दोषने जाणतो नथी ते बुध मध्यस्थ पुरुषने तुल्य केम गणाय !

अपितु नहीज गणाय. अह- वली तेवि-तेनेपण हु-जो मअञ्ज-मध्यस्थ कहिये;
एटले वस्तुना अजाण जीवपण जो समचित्तवाला होय ता- तो विसअमिआण-
विष अने अमृत वनेने तुल्लत- तुल्यता थाय. पण एमतो कोई प्रकारे थाय नही.
वस्तु धर्मने जे जाणनारो होय तेनेज मध्यस्थ पंफित कहिये. अने वस्तु धर्मनो जे
अजाण होय तेने अमध्यस्थ पुरुष कहिये ए जावार्थ. ॥ १०२ ॥

अवतरण:- हवे गुणनो राग अने दोष त्याग पूर्वक उपदेशना भित्से करीने क
हे ठे:- त्रण तत्व आराधवा योग्य ठे.- मूल:- मूलं जिणिंद देवो, तद्वयणं गुरु
जणं महासयणं ॥ सेसं पावछाणं, परमप्पाणं च वळ्ळंमि ॥ १०३ ॥ दोहा.-
मूल जिनेश्वर तद्वचन, गुरु जन गाढा सैन ॥ शेष पाप थानक तज्ज, निज पर
नो दिन रैन ॥ १०३ ॥ व्याख्या.-मूलं-प्रथम जिणिंद देवो--जिनें देव बीजो तद्वय
णं-ते जिनें देवसंबंधी वचन सिंघात त्रीजा महा सयण-परम हितकारी माटे मोटा
स्वजन एहेवा गुरुजणं-गुरुजन एटले ते जिनें देवना साधु मुनिराज; ए त्रण
तत्व सेववा योग्य ठे. सेसं- शेष बीजा परमप्पाणं च--पर संबंधी एटले अन्य
दर्शनी संबंधी अने पोतासंबंधी एटले लोकोत्तर मिथ्यात्व संबंधी पावछाणं-जे पा
प स्थानक ठे ते सर्वने वळ्ळंमि-हुं वज्जुं हुं एटले त्याग करुं हुं ॥ १०३ ॥

अवतरण.- कोई कहेजो के, एकनो अंगीकार करवो अने बीजानो त्याग कर
वो; एम कखाथी तमारामांज राग देषनी प्राप्ति अजो? ते शंका दूर करवाने कहे
ठे:- मूल:- अम्हाण राग रोसं, कस्सुवरि नडि इड्ड गुरु विसए ॥ जिण आणरया
गुरुणो, धम्मड्डं सेस वोसरिमो ॥ १०४ ॥ दोहा.- राग रोस किन ऊपरे, नहि
हमने ठे एक ॥ धर्म हेत जिन आण रत, ठे गुरु और विवेक ॥ १०४ ॥
व्याख्या.- अह्वारे रागरोस-राग देष कस्सुवरि-कोईनी ऊपर नडि-नथी. गुरु
विसए-गुरु संबंधी वार्ता, इड्ड-एम ठे. जिण आणरया-जिनराजनी आझामां
रत अथवा तत्पर एवा गुरुणो-गुरु धम्मड्डं-मोह साधन जे धर्म तेने अर्थे अ
मार सेववा योग्य ठे सेस- शेष एटले बीजा जे जिनराजनी आझाथी बाहिर
ठे ते सर्वने वोसरिमो-अमे वोसराविए ठैए, एटले त्याग करीए ठैए. जे वीतराग
नी आझामां होय तेने गुरु मानिये ठैये; अने बीजाउनी ऊपर तो अमार मध्य
स्थ जाव वर्ते ठे माटे हे नड्ड, कोईनी ऊपर अमे राग देष करता नथी ॥ १०४ ॥

अवतरण - हवे गुरुनेविषे पण राग देषनो अजाव होयठे तेज विज्ञेप पणो
कहेठे:- मूल- नो अण्णणा पराया, गुरुणो कइयावि हुंति सुद्धाणं ॥ जिण वय

ए रयण मंमण, मन्विय सवेवि ते सुगुरु ॥ १०५ ॥ दोहा.— निज पर गुरु न करे कदा, तत्व ज्ञात गत गर्व ॥ जैन वचन मणि मंमणे, मंमिंत ते गुरु सर्व ॥ ॥ १०५ ॥ व्याख्या — अप्पणा—ए आपणा गह्वना गुरुणो- गुरु ठे माटे एमनेज वांदवुं अने एमनी पाशेशीज व्याख्यान सांजलवु, तथा व्रत पञ्चस्काण करवा, अने पराया—ए परगह्वना गुरु ठे माटे एने वादवुं नही, एनी पाशेशी व्याख्यान साज लवुं नही, व्रत पञ्चस्काण काईन करवु, एवी चाल ते सुद्धाण—सम्यक्दृष्टि श्रावक लोकोनी कइयावि—कदापि नो—नही. दुंति—होय केमके, जिणवयण रयण ममण मडिय- जिन वचनरूप रत्नना ममन एटले आचूपणे करी जे ममिंत विचूपित ठे; ते सवेवि—ते सर्वेपण सुगुरु—रूडा गुरु ठे, सम्यक्दृष्टि श्रावक लोकोने वादवा पूजवा योग्य ठे अने जे जिनवचनथी उपराठा चाले ठे ते वादवा पूजवा योग्य नथी.

अवतरणः— सुगुरुजं शमाटे ग्रहण करवु! ए शंका दूर करवाने कहेठे — मूल — वलि किङ्कामो सङ्गण, जणस्स सुविसुद्ध पुन्नञ्जत्तस्स ॥ जस्स लहु सग मेवि, सुयम्म बुद्धी समुद्धसए ॥ १०६ ॥ दोहा — शुद्ध पुन्य युत सजन जन, तसुं जइये बलिहार ॥ जसु लघु संगमथी दुवे, धर्म बुद्धि विस्तार ॥ १०६ ॥ व्याख्या — सुविसुद्ध पुन्नञ्जत्तस्स—अति निर्मल श्रुत चारित्र धर्मरूप पुन्य, तेणे करी संयुक्त एवा जे सङ्गण जणस्स—परम हितकारी होवाथी सङ्गन जन एटले साधु जन तेनी. वलि किङ्कामो- वली पूजा तथा सेवा अमे करिये ठैये, एटले अमे तेनी बलिहारीये जैये ठैये जस्स- जेनो लहुसंगमेणवि- लघु एटले अल्पमात्र संगम एटले परिचय कखाथी पण सुयम्म- जिननापित धर्मेनी बुद्धि- विचारणा स समुद्धसए- अति उद्दास एटले अति आनदने अथवा अति विस्तारने पामेठे ए कारण माटे सुगुरुजं ग्रहण करवा योग्य ठे. ॥ १०६ ॥

अवतरण — साप्रत सुगुरुजं वर्णन करवाना अधिकारनेविपे स्मृतिना उपयोग मा व्याख्या जे श्रीजिनवह्वनसूरीजी, ते सुगुरु होवाथी तेमनी स्तवना करतां कहे ठे — मूल — अङ्गवि गुरुणो गुणिणो, सुद्धा दीसति तडयडा केवि ॥ पढु जिण वल्लहं सरिसो, पुणोवि जिणवल्लहो चेव ॥ १०७ ॥ दोहा -- केइ आज पिण आ करा, दीसे गुणि गुरु शुद्ध ॥ प्रसु जिनवल्लन सारिखो, वलि जिनवल्लन बुद्ध ॥ १०७ ॥ व्याख्या — अङ्गवि- आजपण एटले चालता समयमा पण गुणिणो- ज्ञानादि गुणोकरिने गुणवंत एवा सुद्धा- दंजरहित अथवा निर्मल चित्तवाला एवा, तडयडा- आकरी तप क्रियाना करवावाला सुद्धा तथा सुद्धा-एवा, केवि—केटलाएक गुरुणो-

गुरु एटले साधुजन दीसंती-देखीए ठैये, नजरे जोइये ठैये. उपलक्षणथी सांजली ये ठैये. पुणोव-वली पण-पद्मजिणवह्मह सरिसो--प्रभु जिनवह्मन सरखोतो जिण वह्महोचेव- जिनवह्मनज संजलायठे; ने तेज कर्ण अचकुने दर्शनज थतुं होयनी!

अवतरण.-हवे-जिनवह्मन सूरिना जेवा सर्वोत्कृष्ट पुरुषोनां वचनोथी पण के टलाएकने-सम्यक्त्वनी, प्राप्ति थती नथी, ते दृष्टांतसहित कहेठे:- मूल.- वयणे वि सुगुरु जिणवह्महस्स केसिं न उह्मसइ सम्मं ॥ अह कह दिणमणि तेयं, उलु आण हरइ अंधत्तं ॥ १०८ ॥ दोहा:- गुरु जिनवह्मन वचनथी, उजसै सम्मन जास ॥ हरे घूककी अंधता, कैसे जानु प्रकाश ॥ १०८ ॥ व्याख्या:- सुगुरुजिण वह्महस्स- सुगुरु जिनवह्मनजीना वयणेवि- वचनो ठतां पण एटले उपदेश सां नजता ठतां पण केसिं- केटलाएक नारीकमीं जीवोनुं सम्मं- सम्यक्त्व ज्ञान चहु न उह्मसइ- उह्मासने पामता नथी एटले कषडता नथी अह-अथ एटले एनी कपर दृष्टांत कहेठे -- दिणमणितेयं- स्र्धनुं तेज सर्वत्र प्रकाश करतु ठतां उलु आण- उलुक एटले घूवड पद्मीनो अंधत्तं--अंधकार कह- केम एटले कया प्रकारे हरइ- हरे एटले दूर करे, अपि तु नहीज करीशके. ॥ १०८ ॥

अवतरण:- वली जे श्रीजिनवह्मनसूरीनां वचनोथकी नवना स्वरूपने देखता ठतां सम्यक्त्वने अंगीकार करता नथी, तेवा पुरुषोना धिष्ठपणाने धिक्कारता ठतां कहेठे:- मूल - तिहुअण जणं मरतं, दहूण निअंति जे न अप्पाणं ॥ विरमंति न पावाउं, धिद्दी धिष्ठण ताणं ॥ १०९ ॥ दोहा:- मरता जग जन जोइने, जे न करै वस मन्न ॥ पापथकी विरमे नही, ते नर धीठ अघन्न. ॥ १०९ ॥ व्याख्या - मरत-मरता एवा जे, तिहुअण जणं-- त्रण नवनना जन एटले लो कने- दहूण-- देखीने जे- जे पुरुष अप्पाणं- पोतानी आत्माने न निअंति- नथी देखता, अने पावाओ--हिंसा तथा मृपादि पाप व्यापार थकी न विरमंति- विराम पामता नथी, एटले निवर्त्तता नथी, ताण- ते पुरुषोना धिष्ठणं-धीठ पणाने धिद्दी-धिक् धिक् होजो, एटले धिक्कार थाउं. ॥ १०९ ॥

अवतरण:- हवे तेनाज कुस्नेहपणाने कहेठे:- मूल:- सोएण कंदिकणं, कु ट्रेकण सिरं च उअरं च ॥ अण्यं खिवति नरण, तं पिहु धिद्दी कुनेहत्तं ॥ ११० ॥ दोहा:- शोक विलाप करी उदर, शिर कूटी उर देह ॥ नासै नरके जीवने, धिग् धिग् ते कुनेह ॥ ११० ॥ व्याख्या - सोएण-शोकेकरीने कंदिकण-आकंदन अ थवा-विलाप कखाथी च-वली सिर-मस्तक उअरं-उदर एटले पेट च शब्दथी

उरु एटले उरादिक प्रते कुट्टकणं-कूटी पीटीने नरए-नरकनेविपे जे अप्पं-आ
 त्माने खिवति-हेपेठे एटले नाखेठे, दु-जे कारण माटे तेतुं जे कुनेहत्तं-कुस्नेह
 पणुं ठे, तपि-तेने पण धिद्धी-धिक् धिक् होजो एटले धिक्कार आय्यो ॥ ११० ॥

अवतरण -- हवे शोकादिक कीधाथकी उलटो अति दोष होयठे तेज कहेठे.--
 मूलः--एगं पिअमरणइहं, अन्नं अप्पावि खिष्पए नरए ॥ एगंच मालपमणं,
 अन्नं लयुडेण सिरिघाउं ॥ १११ ॥ दोहा-- प्रिय मरणतुं एक डख, बीजुं न
 रक मजार ॥ इकतो पडवुं मालथी, बीजो मंम प्रहार ॥ १११ ॥ व्याख्या - ए
 गं-एक पिअमरणइहं-पुत्र कलत्रादिक प्रियजन स्वजन लोकोना मरवानुं ड ख
 अन्नं-बीजुं नरए-नरकनेविपे अप्पा-आत्मा विखिष्पए-विहेपिये ठेए एटले ना
 खीये ठेए ए मोटो आश्चर्य ठे अही दृष्टांतकहेठे.- एगंच-एक तो मालपडणं-
 एकादि मालथकी पडवुं, अने अन्नं-बीजुं लयुडेण-लाकमीए करीने सिरिघाउं-
 माथाकपर घात करवो एटले जे पमयो तेतुं माथुं फोनी नाखवुं ए मोटो अन्याय ठे

अवतरण.- एम क्याथी करे ? एवी आशंका करीने हमणा सुगुरुवादिकतुं ड
 लेनपणुं प्रगटकरतां उतां कहे ठे.- मूल-- संपइ दूसम काले, धम्मडी सुगुरु
 सावया डलहा ॥ नाम गुरु नामसड्ढा, सरागदोसा बहू अडी ॥ ११२ ॥ दोहा:-
 धर्माथी दूषम समै, डलन साधुने आध ॥ नाम साधु श्रावक बहू, दृग रागादि
 सबाध ॥ ११२ ॥ व्याख्या:- संपइ-सांप्रत एटले वर्तमान काल दूसम काले-दू
 सम कालनेविपे धम्मडी-श्रीजिन जापित मोद्ध पद साधक शुद्ध विधि धर्मेना
 अर्थी अजिजापी एवा, सुगुरु सावया-सुगुरु सु साधुने श्रावक समणोपासक ड
 लहा- डलन ठे; अने सराग दोसा-राग वेपे करीने सहित एवा, नाम गुरु-स
 म्यग् ज्ञानादि गुणे करीने रहित केवल नाम मात्र गुरु साधु, तथा नाम सड्ढा-
 नाममात्र श्रावक तेतो बहु अडी- घणा ठे ॥ ११२ ॥

अवतरण --हवे सुगुरु श्रावकपणानो हेतु कहे ठे -- मूल -- कहियंपि सुद्ध
 धम्मं, काहिवि धन्नाण जणइ आणंदं ॥ मिञ्चत्तमोहिआणं, होइ रई मिञ्च
 धम्मेसु ॥ ११३ ॥ दोहा -- शुद्ध धर्मेनी वात पण, धनने रति उपजाय ॥ मि
 थ्या मोहित मूढने, मिथ्यात्वे रति थाय ॥ ११३ ॥ व्याख्या -- कहियंपि-- क
 ह्यो ठे तोपण सुद्ध धम्म-निर्मल वीतराग जापित धर्म एटले विस्तार सहित क
 हेतो जे जिन धर्म तेकाहिविधन्नाण--केटलाएक धन्य पुरुषोने पण एटले थो
 माकज धन्य पुन्यवत प्राणीउने आपणद-आनद एटले आत्मिक हर्ष जणइ-उत्प

न्न करेते; केमके, धर्मरूप रत्ननो व्यापार करनारा थोडाज होय ठे माटे; अने मित्र
न मोहिआण--मिथ्यात्वनेविपे मोहेला एटले मूर्खित थएला जे लोको तेउनी र
इ-रति एटले प्रीति मित्रधम्मसु-- मिथ्यात्व धर्मेनेविपे होइ-होय ठे; ते अति घ
णा ठे, माटे सुगुरु तथा सुभावकतुं डर्लेनपणुं जाणतुं ॥ ११३ ॥

अवतरणः-- हवे बीजुं आ कालनेविपे जे वचेंते ते कहेतेः-- मूलः-- इक्ष्मि
महाडुस्कं, जिण वयण विकण सुइहिययाणं ॥ जं मूढा पावाइं, धम्मं नणिज्ज
ण सेवति ॥ ११४ ॥ दोहा.- जिन मत जाण विमल हिये, तास एक गुरु डुःख
॥ धर्म कहीने सेवतो, पापप्रते जो सुख ॥ ११४ ॥ व्याख्याः-- सुइहिययाणं-
जेतुं निर्मल चित्त ठे, एटले सर्व जीवोनेविपे जेने अनुकंपा नाव वचेंते एवा जे
जिणवयणविकण-जिनवचन एटले जिनआगमनेविपे विद्वान एटले अति कुशल
पुरुषोने आ कालमां इक्ष्मि महाडुस्कं-एक मोटुं डु ख होयठे. जं-जे कारणमाटे
मूढा- मूर्ख अज्ञानी लोक जे ठे ते पावाइं- जीव वधादिक पापप्रते धम्मनणिज्ज
ण- धर्म कहीने एटले देवगत्यादि पुन्य कहीने सेवति-सेवेते, सेवीने ते बापडा
डुर्गतिमां पडशे; ए एक मोटुं डुःख ज्ञानी पुरुषोना चित्तमा वचेंते. ॥ ११४ ॥

अवतरणः-- त्यारे शुं वधाय मूढ पुरुषो ठे, कितु केटलाएक अमूढ पुरुषो
पण ठे ते कहेतेः-- मूलः-- थोवा महाणुजावा, जे जिणवयणे रमंति संविग्गा ॥
ततो नवजयनीया, सम्मं सत्तीइ पालंति ॥ ११५ ॥ दोहाः-- महा जाग जिन व
चन रत, संवेगी नव नीत ॥ विरला जे समसक्ति, व्रत पाले श्रुत रीत ॥ ११५ ॥
व्याख्याः - जे-जे पुरुष जिणवयणे-जिन वचननेविपे रमंति-रमे ठे, एटले तरु
ण सुखी नारी परिवारथी परिवस्यो पुरुष जेम किन्नर देवताना गीत सांजलवाने
विपे प्रेम करेते. तेम जे पुरुष जिन आगम सांजलवानेविपे अतिज प्रेम करेते; वली
जे संविग्गा--संविद्ध एटले मोहना अनिलापी ठे महाणुजावा-ते महानुजाव पराक्र
मवान पुरुष थोवा-थोडाठे. ततो-ते पुरुषथी नवजयनीया-नरकादि चतुर्गति संसा
रना नयथकी बीना जे पुरुष एवा, वली सम्म-जिनोक्त श्रद्वानरूप सम्यक्त्वप्रते सत्ती
इ-यथाशक्तिएकरी पालंति--पालता-आराधता एवा पुरुषअतिशयथोडाठे. ॥ ११५ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथाए करी सम्यक्त्वतुं डर्लेनपणुं देखाडुं, हवे ते सम्य
क्त्वविना धर्मरुख्य निष्फल ठे, एम दृष्टांते करीने कहे ठेः-- मूलः--सवंगं पिडुस
गमं,जह न चलइ इक्क वडहिला रहियं ॥ तह धम्म फडामोव, न चलइ सम्मत्त
परिहीणं ॥ ११६ ॥ दोहा- इक धुर विण सर्वांग पण, शकट जेम न चलंत ॥

तेम धर्म ममाण सब, विन समकित न फलंत ॥ ११६ ॥ व्याख्या:- इक बड हिला रहियं-गामानां पइडा रोकवानी खीजीए करी रहित, एवुं, सवंगं सगडं-सर्वांग शकट ठता पण एटले बीजां सर्व अंगेकरी सहित गाहुं ठता पण जह-जे म हु-निश्चे नचलइ-नथी चालतु तह-तेम सम्मत्त परिहीण-सम्यक्त्व रहित, ए हेवु जे धम्मफामोव-दान दया, शील तपादिक धर्मनो फटाटोप एटले जे आंमंवर ते न चलइ-नथी चालतो, एटले अब्यावाध अक्षय मोक्ष फल नथी आपतो, उलटुं विजेपतर डखनुं कारण थाय ठे ॥ ११६ ॥

अवतरण - शिष्य वितर्क करेठे के, जे सम्यक्त्वविना अन्य धर्म आंमंवर ठे, ते हितने करता नथी, एवु वाक्य मिथ्यात्वीनेविपे रोपरूप थरो ? ए आशंका दूर करवाने कहेठे - मूल - न मुणति धम्मतत्त, सबं परमत्त गुणहियं अहियं॥ बालाण ताण उवरि कह रोसो मुणिय तत्ताण ॥ ११७ ॥ दोहा -- धर्म तत्व श्रुत आत्महित, अहित न जाणे जेह ॥ ते अजाण पर रोप किम, जिनमत कुसल करेह ॥ ११७ ॥ व्याख्या - धम्मतत्त-जेमा जिनोक्त धर्मनुं स्वरूप रहेलुंठे, एवो जे सब-शास्त्रसिद्धांत तेने जे पुरुष नमुणंति- नथी जाणता, वली जे पुरुष परमत्त गुणहियं- परमार्थ जे मोक्षपद तेनुं साधन सम्यक् ज्ञानादिक गुण तडूप जे हित तेने जाणता नथी, वली जे पुरुष अहियं- अहित एटले मिथ्यात्व-अविरति कपायादि नवत्रमणनु कारणरूप जे अहित तेने नथी जाणता, ताणबालाण- ते बाल अज्ञानी जीवोनी उवरि-उपर मुणियतत्ताण-जेउए जिन धर्म तत्व एटले परमार्थ जाण्यो ठे, ते पुरुषोने कहरोसो-रोप केम थाय । अपितु नज थाय केम के, जे ज्ञाता पुरुष होय ठे ते इव्य तथा जाव ए वे अनुकंपा सहितज होय ठे ॥ ११७ ॥

अवतरण - हवे जे बाल अज्ञानी लोको ठे तेउनुंज बालपणुं दृष्टांत सहित देखाडे ठे:- मूल - अप्पावि जाण वयरी, तेसिं कह होइ परजिए करुणा ॥ चोराण वडियाणय, दिठंतेण मुणोयव ॥ ११८ ॥ दोहा - जसु वैरी निज आतमा, तसु परदया न होय ॥ याचक चोरतणो इहा, उदाहरण जग जोय ॥ ११८ ॥ व्याख्या - जाण-जे लोकोनो पोतानो अप्पा-आत्मा पण वयरी-वैरीठे, एटले शत्रुनी तुल्य ठे, केमके हिसा अस्तव्य अदत्त तथा परदारगमनादि अहित कार्य करेठे माटे, तेसि-ते बाल अज्ञानी लोकोनो परजिए-पर जीवोनी ऊपर करुणा-दया कह-केम होइ-थाय । अपितु नज थाय, एटले जेने पोतानो आत्मा पण शत्रुनी पठे शत्रु वचें ठे, तो तेने बीजा जीवोनी ऊपर दया ते केम वचें ! अ

पितु नहीज वत्ते ते चोराण-चोरने वली बंदियाण-बंदिक पुरुषोने एटले परधन
अजिलापी पुरुषोने दिठ्ठेण-दृष्टांते करीने मुण्येयव्वं-जाणवुं एटले जेम चोरादि
कने परनी दया आवती नथी, तेम छुट्टाचारी इह परलोक विरोधकारी, उत्सूत्र
जापी जे होय तेने परजीवनी दया आवे नही. ॥ ११७ ॥

अवतरणः- हवे बाल स्वभावप्रते विचार करीने ते बाजना स्वरूप तथा ल
द्वणने कहेठे:- मूलः- जे रज्जु धणाईणं, कारणचूया हवति वावारा ॥ तेवि दु
अइपावज्जुया, धन्ना बडुंति नवनीया ॥ ११९ ॥ दोहा.- जे ठे राज धनादिनो.
हेतुचूत व्यापार ॥ ते अति पाप वणिज तजे, उत्तम नव जीतार ॥ ११९ ॥ व्या
ख्या.- रज्जु धणाईणं-राज एटले राजादि पदवीनो, धणीमादि धनादिकनो आदि
शब्दथी शब्दादिक इडियविषयनो कारणचूया-कारणचूत एटले हेतुरूप एवो जे-
जे वावारा-व्यापार हवति-ठे, एटले बाह्य व्यापार शत्रुहनन राजसेवा कृषी कर्म
दंतवाणिज्यादि, अने अंतर व्यापार पंचाग्निताप अज्ञान कष्ट क्रियादिरूप तेवि-
ते व्यापार पण दु-निश्चय अइपावज्जुया-नरक निगोदादिकना कारणमाटे अति
पापसहित ठे एम जाणीने ते व्यापारने धन्ना-जे धन्य पुन्यवत उत्तम पुरुष ठे
ते बडुंति-ठोडेठे एटले त्याग करेठे ते उत्तम पुरुष केहेवायठे -नवनीया-नवनी
त ठे एटले जे संसारथकी बीहीना ठे, अने उदास रहेठे तेज महा सत्विठे ११९

अवतरणः- धन्य पुन्यवत सत्ववत जे उत्तम पुरुष ठे तेतुं स्वरूप कष्ट, हवे अ
धम पुरुष जे हीण सत्वि ठे तेतुं स्वरूप कहेठे -मूल.-विइयाय सत्तर हिया, धण
सयणाईहिं मोहिया लुब्धा ॥ सेवति पावकम्मं, वावारे उयरजरणछा ॥ १२० ॥
दोहा:- मोहित धन स्वजनादिके, लुब्ध सत्व करि हीण ॥ पाप नजे व्यापारमें,
मथ्यम पैटाधीन ॥ १२० ॥ व्याख्या:- विइयाय-प्रथम उत्तम पुरुष कह्यो, तेनी
अपेक्षाएकरीने बीजा जे अधम पुरुष ठे ते पावकम्मं-स्वामी शोह, विश्वासघात,
चोरी, परधन हरणादी तथा अंगार कर्मादि पंदर कर्मादान तथा हिंसादि अ
ष्टादश पापस्थानकने सेवति-सेवेठे, वावारे-व्यापारनेविपे उयरजरणछा-उदर ए
टले पैट नरवाने अर्थे, ते अधम पुरुष केवा ठे:- सत्तरहिया-सत्व एटले शुन
पराक्रम रहित एवा, वली ते अधम पुरुषो केवा ठे.- धणसयणाईहिं धन स्वज
नादिके करीने आदि शब्दथी शब्दरूपादिक इडिय विषये करीने मोहिया-मोहित
एटले मूढ थएला एवा, वली ते अधम पुरुष केवा ठे? लुब्धा-लोनी एटले ला
लची अति ठे एवा जाणवा. ॥ १२० ॥

अवतरण.— बीजा अधम पुरुपतुं स्वरूप कद्य हवे त्रीजा अधमाधम पुरुपतुं स्वरूप कहेते.— मूल.— तस्या हमाण अहमा, कारणरहिया अनाणगवेण ॥ जे जंपंति उमुत्तं, तेसिं धिद्धि पंदिच्चं ॥ १११ ॥ दोहा — अधम अधम कारण विना, करि अज्ञान अजिमान ॥ जे उत्श्रुत चापन करे, धिग धिग तेतुं ज्ञान ॥ ॥ १११ ॥ व्याख्या — तस्या—त्रीजा अहमाण—अधमोनेविपे अहमा—अधम एट ले त्रीजा अधमाधम पुरुप ते कारण रहिया—धनजाज कुटव पोपणादि कारण रहि त उता अनाणगवेण—अज्ञानना गर्वे करीने जे—जे उमुत्तं— उत्सूत्रप्रते जंपंति—जंपेते अथवा बोलेते तेसिं—तेना पंदिच्चं—पान्दित्यने धिद्धिबु—धिक्कार धिक्कार थाओ धनजाजादि कारणे जे उत्सूत्र बोलबु, ते डुर्गतिने देवावापुं ठे, माटे कारणने लोधे पण उत्सूत्र बोलवानो निषेध ठे ल्यारे कारणविना तो विशेषपणो निषेधज जाण वो माटे कारणविना अने अज्ञान अजिमाननी बुद्धिथी जे उत्सूत्र चापण करेते ते अधमाधम पुरुप जाणवो. तेना पंडितपणाने धिक्कार धिक्कार ठे. जे नीचथी पण नीच होय तेने अधमाधम कहिये ॥ १११ ॥

अवतरण.— उत्सूत्र बोलनारने शासारु अधमाधम कह्यो? अने तेना पंदि तपणाने शासारु धिक्कार थाओ एम कद्य? ते देखाडता उता कहेते.— मूल — ज वीरजिणस्स जिथो मिरई उस्सुत्त लेस देसणओ ॥ सागर कोडाकोडि, हिंमइ अइनीमजवरसे ॥ ११२ ॥ दोहा:— जीव मरीची वीरनो, उत्श्रुत लेस उच्चार ॥ सागर कोडा कोडि जो, नमिथो जवकातार ॥ ११२ ॥ व्याख्या.— ज—जे कारण माटे वीरजिणस्सजीथो—वीर जिनेश्वरनो जीव मिरई—जरत पुत्र मरीचीने जवे उस्सुत्त लेस देसणओ—कपिले ज्यारे वारवार पूठवा मांफ्युं, ल्यारे एम बोव्या के, हे कपिल रूपन जिणसाधुओनेविपे पण धर्म ठे अने अही अमारामा पण धर्म ठे, एतइप उत्सूत्रनो जे लेश, तेनी देशना थकी अइनीमजवरसे—अति नीम रौइ जव अरएय जे ससार कांतार तेनेविपे सागर कोडाकोडी— सागरोपमनी को डाकोडीसुधी एटले एक कोडाकोडी सागरोपमसुधी हिंमइ—हीनेठे एटले जमेठे, एम वर्तमान निर्देशनी अपेक्षाए कद्य, परमार्थ तो जन्मोठे एम जाणवु. ॥ ११२ ॥

अवतरण.— हवे उत्सूत्रतुं निगमन करता उता कहेते — मूल — ता जइ इमंपि वयणं, वारंवार सुणित्त समयम्मि ॥ दोसेण अवगणिता, उस्सुत्त पयाइ सेवति ॥ ॥ ११३ ॥ दोहा — वारवार ए श्रुत वचन, सांजलि जोतो हेय ॥ सेवे बहु उत्सुत्र पद, दोष न माने जेय ॥ ११३ ॥ व्याख्या — ता—ते कारणमाटे जइ—जो इम—ए

प्रत्यक्ष, वयणं—मरीचिउक्त उत्सूत्र वचनो प्रत्ये समयस्मि—सिद्धांतनेविषे—वारंवारं—
 वारंवार सुणीत—सुणीने एटले सानजीने अपि—पण दोसेण—अनिनिवेष मिथ्यात्वा
 टिक दोषेकरी अथवा द्वेषेकरी अवगणिता—अवगणनाए करीने एटले अपमानताए
 करीने उत्सुत्तपयाइ—उत्सूत्रना पदने सेवति—जे सेवेठे एटले जे बोलेठे. ॥ १२३ ॥
 मूलः—ताण कहांजिण धम्मं, कह नाणं कह डहाण वेरगं ॥ कूमानिमाण पंमिय, न
 डिया बुडंति नरयस्मि ॥ १२४ ॥ दोहाः—तसु जिन धर्म किहां थकी, ज्ञानसुं डुख वै
 राग ॥ कूटमान पंडित नटित, नरके खेलत फागा ॥ १२४ ॥ व्याख्याः—ताण—ते पुरुषोने
 कह—केम जिण धम्मो—जिन धर्म थाय ! कह—केम नाणं—यथार्थ ज्ञान थाय । क
 ह—केम डहाण—नरकादिकनां डु ख थकी वेरगं—वैराग्य एटले उदासपणुं थाय ।
 अपितु ते उत्सूत्र जापीउने जिनधर्मादिक काई प्राप्तज न थाय. केमके, जिन धर्म
 आजाए करीने पूर्वे कष्टु ठे ते कारण माटे कूमानिमाण पंमिय—कूड अने अनिमा
 न अथवा फा अनिमान अहंकारे करी सहित जे पंमित पणुं ते कूटानिमान पं
 डितपणुं कहिये. तेणे करीने ते पुरुष नडिया—नडेला एटले पीढायला नरयस्मि—
 नरकनेविषे एटले नरकरूप अंधकूपनेविषे बुडंति—बूडे ठे. एम जाणीने उत्सूत्र
 न बोलवुं एज सार ठे ॥ १२४ ॥

अवतरण—हवे जे उत्सूत्र जापी जीव ठे, तेने हितोपदेशनुं दान देवुं नही; केम
 के, ते ए दान लेवाने अयोग्य ठे ते कहे ठे.— मूल—मामा जपह बहुअं, जे बद्धा
 चिक्कणेहिं कम्महिं ॥ सवेसि तेसि जायइ, हिउवएसो महादोसो ॥ १२५ ॥ दोहाः—
 जे बांध्या खल कर्म करि, ते सबहीके थाय ॥ हित उपदेश सु दोष मय ॥ बहु मा
 नण इण न्याय ॥ १२५ ॥ व्याख्या— उत्सूत्र जापी कदाग्रही अयोग्य जीवने ब
 दुअं—घणो हितोपदेश मामा जपह—कहेवो नही. केमके, जे—जे पुरुष चिक्कणेहिं
 कम्महिं—चीकणा कर्म एटले अति क्लिष्ट ज्ञानावरणादिक कर्म करि बद्धा—बांधेला
 अथवा निगडेला ठे. तेसि, सवेसि—ते सर्वने हिउवएसो—हितोपदेश एटले मोक्ष
 मार्गनो उपदेश ते महादोसो—महा दोषरूप अथवा महा द्वेषरूप जायइ—थाय ठे;
 माटे अयोग्य जीवने घणो हितोपदेश कहेवो नही ॥ १२५ ॥

अवतरण.— धर्मने अयोग्य जीवने हितोपदेश करवाथी क्लेशमात्र थाय तेनुं
 कारण कहे ठे — मूल — हिययस्मि जे कुसुद्धा, ते कि बुझंति धम्म वयणेण ॥ ता
 ताण कए सुणिणो, निरुद्धं दमइ अप्पाणं ॥ १२६ ॥ दोहा— जसु कुसुद्ध मन
 केम सो, जिन वचने बूजेय ॥ तो तेने अर्थे सुणी, फोकट आत्म दमेया ॥ १२६ ॥

व्याख्या.- हिययम्मि-हृदयनेविपे एटले चित्तनेविपे जे- जे पुरुष कुसुधा-कुसुधते, एटले अशुद्ध ते, एटले अजिनिवेश मिथ्यात्वादिक दोषरूप कलंक पंके करीने मजिन ते, ते-ते पुरुष कि-केम धम्मवयणेण-जिनधर्मसंबंधी वचने करी बुझति-बोध पामे। अपितु नहीज पामे, ता- ते कारण माटे ताणकए-ते दुष्ट चित्तवालाने अर्थे गुणियो- ज्ञानादिक गुणो करी गुणवत पुरुषते ते निरुद्धयं- निरर्थक एटले फोकट अप्याणं-आत्माने दमइ- दमेते, एटले क्लेश उपजावेते, अही फलीतार्थ एम समजवुं के, जे गुणी पुरुष होयते ते परने गुण करवानी बुद्धिमाटे हितोपदेश कर्त्ता काई पण पोताने क्लेश माने नही, पढी परने गुण थाओ वा न थाओ ए गुणीनो सहज स्वभावते माटे गुणी पुरुषनो कीधेलो उपदेश फोकट नथी ते उपदेश पोताने स्वाध्याय तप ते ? १६

अवतरण -- गुणी पुरुष एम कहेते के अहो नव्य, जिनधर्म करवादिक तो दूर रहो, पण एक जिन धर्मनुं श्रदान ते तेपण ड.खनुं हरण करनारुं ते, तेज कहे ते:- मूल -- दूरे करण दूर,म्मि साहण तह पजावणा दूरे ॥ जिण धम्म सहहाण, पित्तकडुकाइ निष्ठवइ ॥ १२७ ॥ दोहा:- करनो अरु साधन तथा, रहो प्रजावण दूर ॥ छुद्ध यर्म श्रदान पिण, हरै कविण डखपूर ॥ १२७ ॥ व्याख्या -- करण- विधि करीने दान शील तप जावनारूप जिनधर्मनुं जे करवुं, तेतो दूरे-दूर रहो तथा साहण-पूर्वोक्त जिनधर्मनुं साधन एटले कथन करवुं तेपिण दूरम्मि-दूर रहो, तथा पजावणा-प्रावचनी धर्मकथी प्रमुख अष्ट प्रकारना प्रजावकपणे करीने जे जिनधर्मनी प्रजावना करवी एटले जिनधर्मनो महिमा उद्योत करवो तेपण दूरे-दूर एटले ठेठे रहो, मात्र जिण धम्मसहहाणपि-जिनजापित धर्मनुं एक श्रदान रुचि पणुं पण तिस्र डुकाइ-तीरुण दारुण जे नरकादिक ड ख तेने निष्ठवइ-निष्ठापेते एटले नसाडेते, अथात् बीछुं काई न बने तो पण एक जैनधर्मनुं श्रदानकरवुं ? १२७

अवतरण - ते श्रदाननुं लक्षण ए के सिद्धांतनुं साजलवु, ते सिद्धांत साजलवानी पोतासंबंधी इच्छा देखाडता ठता कहेते - मूल- कइया होही दिवसो, जइया सुगुरुण पायमूलम्मि ॥ उस्सुत्त जेस विसलव, रहियो निसुणोसु जिण धम्म ॥ १२८ ॥ दोहा - ते दिन क्यारे आवशे, ज्यारे सदगुरु पास ॥ उत्सूत्रात्ते रहित जिन, यर्म सुणीसुं खास ॥ १२८ ॥ व्याख्या - दिवसो-ते दिवस दिवस कहेवार्थी ते घडी ते मुहूर्त्त ते पक्ष, ते मास ते वर्ष कइया-क्यारे होही-यशे। जइया-ज्यारे सुगुरुण-सुविहित गीतार्थ धर्माचार्य सुगुरुने पायमूलम्मि-पादमूल एटले समीपे जिणधम्म-जिनजापित धर्मने निसुणोसु-हुं साजलीश. केवो थयो

थको हुं सांजलीश ! उस्तुत्त लसविसलव रहियो-उत्सूत्रना लेशरूप विपलवेकरी
ने रहित ठतो एटले गुरुने समीपे सांजलवाशी मनमां रहेला जे उत्सूत्र वाक्य,
तेना लेशरूप विपना लवेकरी रहीत थयो थको हुं सांजलीश. ॥ १३७ ॥

अवतरण:- ते दिवस क्यारे थरो एम शासारु कथुं ? गुरुतुं तो काई डुर्जनप
णुं नथी, केमके, गुरु तो जोवामां घणा आवेठे, ते ऊपर कहेठे:- मूल:- दिछा
वि केवि गुरुणो, हियए न रमंति मुणिय तत्ताण ॥ केवि पुण अदिछुच्चिय, रमं
ति जिणवव्वहो जेम ॥ १३७ ॥ दोहा:- दीठा पण केइक गुरु, न गमे जाण हि
येय ॥ केइ अदीठाहि जगमें, जिम जिणवव्वज्ज श्रेय ॥ १३७ ॥ व्याख्या:- केवि-केटला
एक दिछावि-नजरे जोएला पण काने सांजलेलानीशी वात करवी । गुरुणो-साधु
समाचारीमांहे निपुण एपणीय आहारना लेवावाला एवा गुरु ते मुणियतत्ताणं-जेणे
जिनशासनतो तत्वपरमार्थ जाण्यो ठे, तेना हियए-हृदयनेविपे नरमंति-रमता
नथी एटले रुचता नथी, केमके तेना हृदयनेविपे तो जे सम्यक् ज्ञान क्रिया संवेग
गुणो करीने सहित गुरु होय ते रुचेठे, पण एकलुं ज्ञान एकली क्रियादिक वाला
रुचता नथी. पुण-वली केवि-केटलाएक अदिछुच्चिय-नही दीठेला ज्ञानक्रिया सं
वेग सहित गुरु पण रमंति-रमेठे रुचेठे, जेम-जिम जिणवव्वहो-ज्ञान क्रिया
संवेग सहित जिनवव्वज्ज सूरि नही दीठेलो अमारा चित्तनेविपे रुचेठे; तेमना र
चेला ग्रंथो जोतां तथा तेमना संतानीक साधुनी समीपे तेथीना ज्ञान वैराग्य क्रि
यानुष्ठान सांजलतां अति प्रिय लागेठे एम नेमीचंद्र चंमारी कहेठे. ॥ १३७ ॥

अवतरण.- एम ठतां पण जे पुरुष कुगुरुने पण सुगुरुनी पठे माने ठे, तेतुं
निराकरण करता ठता कहेठे.- मूल-अजया अइ पाविछा, सुइ गुरु जिण वरिद
तुल्लति ॥ जो इह एवं मन्नइ, सो विमुहो सुइ धम्मस्स ॥ १३७ ॥ दोहा:- आरं
जी अति पापिने, जिनवर सुगुरु समान ॥ जे जाणे ते जीव जिन, धर्म विमुख
वेजान ॥ १३७ ॥ व्याख्या - ते कुगुरु केवा ठे ? अजया-यत्न रहित ठे, एटले
पट जीवनि कायना बइ करवानेविपे जे तत्पर ठे; ते कारण माटेज अइ पावि
छा-अति पापिष्ठ ठे; एटले पाप कर्म बांधवानेविपे प्रधान ठे एटले मुख्य ठे एवा
जे कुगुरु ठे, तेने पण सुइ गुरु जिणवरिदतुल्लति-निर्मल गुरु गौतम गणधरा
दिकने सदृश अथवा घणुं थुं कहिये जिनवरिद तुल्य ठे, एव-ए प्रकारे इह-ज
गतनेविपे जो कोई मूढ पुरुष मन्नइ-मानेठे एटले जाणे ठे, सो-ते पुरुष सुइ

धम्मस्स--श्री वीतराग जापित श्रुत चारित्ररूप निर्मल जे धर्म, तेने विमुद्धो-विमु
ख जाणवो एटले अखला मुखवालो जाणवो. ॥ १३० ॥

अवतरणः-- धर्मने करतो थको पण धर्मथी विमुखपणुं केम कछु ? ए आशं
कानुं समाधान करतां कहे ठे - मूल.- जो तं वदसि पुक्कसि, वयण हीलेसि त
स्स रागेणं ॥ ता कह वदसि पुक्कसि, जणवाय ठिइपि न मुणेसि ॥ १३१ ॥ दोहा.-
वांदे पूजे जेहने, हीले तेनो वैण ॥ वांदे पूजे किम तदा, जन थिति जूये सैन
॥ १३१ ॥ व्याख्या - जो-जे जिनराजप्रते तं-तु वदसि-वांदे ठे, पुक्कसि-पूजे
ठे, अने पोताना वत्सूत्र जापी हीणाचार्य गुरुने रागेण-रागे करीने तस्स-ते वद
नीयथी तो जिनराजनुंज वली वयणं-आगमरूप वचन हीलेसि-तेनी तु हीलना करे
ठे, एटले निदा करेठे, रे मूढ, जिनराजनां वचनोनी हीलना करे ठे, ता-तो क
ह-केम जिनराजने वदसि-तु वांदेठे, पुक्कसि-तु पूजेठे, जणवाय ठिइपि-रे मूढ,
तु जनवादनी लोक व्यवहारनी स्थिति एटले मर्यादाने पण नमुणेसि- नथी जा
एतो, के जेने वांदिए तेनां वचन जो न मानिये तो वांदवुं तथा पूजवुं अर्थ
जाणवुं ए जावार्थे ठे. ॥ १३१ ॥

अवतरण -- लोकव्यवहारनी जे स्थिति ठे ते कहेठे -- मूल-- लोएवि इमं
नणियं, जो आराहिक्क सो न कुव्विक्का ॥ मन्निक्क तस्स वयणं, जइ इच्चसि इच्चि
यं कावं ॥ १३२ ॥ दोहाः-- कह जन जे आराधिए, न कोपाइये तेह ॥ मानी
जो तसु वेन जो, वडित तु वाठेह. ॥ १३२ ॥ व्याख्या -- लोएवि-लोकोत्तरनी
तो शी वात ! लोकोत्तर व्यवहारनेविपे पण इमं नणियं-एम कछु ठे, जो-जे देव
दानव राजादिक मोटा पुरुष आराहिक्क-आराधिए, पूजिये, सो-ते देव दानव
राजादिकने न कुव्विक्का-कुपित न करिये एटले तेने जे वातथी कोप चढे ते वात न
करिये तस्स-ते देव दानव राजादिकनुं वयण-वचन मानिये एटले प्रमाण क
रिये. इच्चियं कावं-इच्चित करवाने एटले पोताना मन वडित पूरण करवाने जइ-
जो इच्चसि-तुं इच्छेठे तो ए प्रकारे पुत्र मित्रादिकने लोक व्यवहारनेविपे लोक सी
खामण दीएठे, तो लोकोत्तर व्यवहारनी वात तो मोटी ठे ॥ १३२ ॥

अवतरण - एम नगवन् वचन सांजल्या ठतां पण धर्म करवाने दोष
कहीने ह्वे ल्याहां जे निश्चल पुरुष ठे तेनी स्तवना करतो ठतो कहेठे- मूल--
दूसम दंढे लोए, सुडरक सिद्धंमि ड्रक उदयम्मि ॥ धन्नाण जाण न चलइ, सम्म
त्त ताण पणमामि ॥ १३३ ॥ दोहा - छट उदय ड्रख प्रगट जन, दूसम दंढ ठ

तेय ॥ तसु प्रणष्टं जे धन्यनो, समकित गुण न चलेय ॥ १३३० ॥ व्याख्या:- दू
समदंभे-दूषमार्क एटले पांचमा, आरारूप दंभ एटले बल, मेधा, सुख संपत्ति, विद्या
शुच दीर्घांशु निरोगपणुं इत्यादि विसिष्ट वस्तुना नाशरूप दंभ, तेणे करीने दंभाय
ला एवा, वली सुडक सिद्धि-तोदण डुखे करीने सिद्ध एटले निष्पन्न अण्णा ए
टले नीपजेला एवा, वली डुखउदयमि-शरीरीने मानसी डुख अति कष्टनो ठे उ
दय जेने एवा, जे लोए-लोकतेने विपे तथा ते लोकने अए ठते जाणधन्नाए-जे जिन
मत जावित मतिवान धन्य पुण्यवाननुं सम्मत्तं-तख श्रद्धान सम्यक्त्व न चलइ-
नथी चालतुं, ताण-ते पुरुषोने पणमामि-मन वचन कायाए करी हुं नमस्कार
करुं वुं वली हुंमाअवसर्पिणीना प्रजावे नसम्यहने उदये प्रगटघो जे उपमा
आरानेविपे असंयत पूजा नामे दसमो आश्रय, तेणे करी प्राए थयुं जे लोकोनुं
विरूप रूप ते संगपट्टादिक बीजा शास्त्रोथी जाणवुं ॥ १३३ ॥

अवतरण:- अही कोई आशंका करेके, केटलाएक गुरुउने जोयां ठतां पण
विवेकी पुरुषोना मनमां रुचता नथी, अने केटलाएक नही दीठेला जिनवल्लनसू
रिनी पठे लोकोना मनमां रुचेठे ते सत्य ठे; पण अमे तमने पूठिए ठैए के तमे
कोई गुरुनी परिद्धा करीने निश्चे कस्यो अथवा जाण्यो ठे? तेने नेमीचंड प्रकरण
कर्ता त्रण गाथाए करीने कहेठे:- मूल:- नियमइ अणुसारेण, व्यवहार नयेण
समय सुद्धिए ॥ कालस्वित्तणुमाणेण, परिरिक्तं माण्डिय गुरु ॥ १३४ ॥ दोहा:-
समयसुद्धि व्यवहार नय, निजमतिने अनुसार ॥ काल क्षेत्र अनुमानथी, सुपरिद्धि
त गुरु धार ॥ १३४ ॥ व्याख्या:- नियमइ अणुसारेण-पोतानी स्वाभाविक बुद्धि
ना अनुसारे करीने पण अहं बुद्धिए करीने नही; व्यवहार नयेण-महाव्रत समि
ति गुप्ती प्रतिलेपणा स्वाध्याय विहारदिक साधुना जे व्यवहार तेणे करीने सम
यसुद्धिए-सिद्धांतनी बुद्धिए करीने कालस्वित्तणुमाणेण-संजम स्वप करता काल
क्षेत्रने अनुमाने करीने उपलक्षणथी इव्य जावने पण अनुमाने करीने घणां गा
म नगरादिकनेविपे खोलतां खोलतां कालने उचित जिनपतिसूरिगुरु में परिरिक्त-
परिख्या ठे, अ-च एटलो वली माण्ड-मान्य कसुं ठे अने सारीरीते जाणी लीधुं
ठे ॥ १३४ ॥ मूल.-तद्वि हु नियजडयाए, कम्म गुरु तस्स नेव वीससिमो ॥ धन्नाएक
यन्नाएणं, सुद्ध गुरु मिलइ पुत्रेण ॥ १३५ ॥ दोहा.-तो पण निज जमता करी, न
गुरु कर्म विश्वास ॥ पुण्ये धन्य कृताथेने, मिले सुगुरु गुणरास ॥ १३५ ॥ व्याख्या:-
जो पण एम ठे तद्वि-तोपण हुं-निश्चय हुंमा अवसर्पिणी कालादिकने जोणे

तादृशविशिष्ट बुद्धि नथी माटे नियज्जयाए-पोतासंबंधी जडपणानो वली कम्मगु
रुत्तस्त-प्रथम सुगुरु जोग न थवानी अपेक्षाए करीने कर्मना जारीपणानो नेव-न
थीज वीससिमो-अमे विश्वास करता, केमके, पुत्रेण-तादृश विशिष्ट पुत्र्येकरीने
धन्नाण-धन्य पुत्र्यवत प्राणीउने कयन्नाणं-जेणे अर्थ सिद्ध कखो ठे एटले जेणे
बोध बीजरूप अर्थ नीपजाव्यो ठे तेने सुद्ध गुरु-बाह्य अन्यंतर परिग्रह रहित
निर्मल गुरु मिलइ-मले ठे. ॥ १३५ ॥

अवतरण - वली कोई शिष्यादिक अथवा वादी वितर्क करे ठे के एमां तमा
रे कुं प्राप्ति थई? तेविपे कहेठे:- मूल.- अहञ्चं पुणो अउन्नो, ता जइ पत्तो अ
ह न पत्तो अ ॥ तह्वि दु सो मह सरण, संपइ जो जुग पहाण गुरु ॥ १३६ ॥
दोहा - वलिहुं अपुन्य तदा जदी, जाधो नवि जाधोय ॥ तेपिण ते मुज सरण अव,
जुग प्रधान गुरु जोय ॥ १३६ ॥ व्याख्या - पुणो-वली अहञ्चं अउन्नो-हुं अपु
न्य हुं एटले तादृश वसिष्ट पुत्र्येकरी रहित हुं ता-ते कारण माटे जइ-जो पत्तो-
पूर्वोक्त गुरु में पाम्यो, अह-अथवा न पत्तोअ-न पाम्यो, तह्वि-तोपण दु-निश्च संप
इ-संप्रति एटले वर्तमानकालनेविपे जो-जे जुगपहाणगुरु-जुगप्रधान गुरु ठे, सविज्ञ
गीतार्थ आचार्य ठे, उपलक्षणथी तेमनी निश्चाए जे उपाध्याय अथवा साधु ठे सो-ते
मह-अमारे सरणं-शरण आधारठे आत्मगुणवृद्धिने अर्थ विश्रामतुं गम ठे १३६

अवतरण - कोई आशंका करे के, एवी सुगुरुनी प्राप्ति थवाथी पण कुं थयुं?
एवो सशय दूर करवाने कहेठे:- मूल.- जिणधम्मं उन्नयं, अइसय नाणीहिं न
ज्जाए सम्मं ॥ तह्वि दु समय विईए, ववहार नएण नायवं ॥ १३७ ॥ दोहा -
सम्यक् जाणे केवली, जैनधर्म उन्नय ॥ तदपि जाणणा योग्य है, श्रुत व्यवहारे तेय
॥ १३७ ॥ व्याख्या - जिणधम्मं-श्रुत चारित्र लक्षण जिननापित्त धर्म ठे ते, उ
न्नयं-उ खे जाणवा योग्य ठे केमके, उत्सर्ग अपवाद निश्चय व्यवहारादिक शोक
डागमे नयोए करीने कहेलो ठे माटे जिनधर्म उ खे जाणवा योग्य ठे, अइसय
नाणीहिं-अवधिज्ञानी चौदपूर्वधर तथा दशपूर्वधरादि अतिशय ज्ञानीअने सम्मं-
सम्यक् प्रकारे जिननापित्त धर्म नज्जाए-जाणीए ठैए पण अनिपुण बुद्धिने गम्य
नथी, माटे जिनधर्म उ खे जाणवा योग्य कह्यो, एम निश्चयनये करीने ठे तह्वि-
तोपण दु-निश्चय समयविईए-सिद्धातनी स्थिति मर्यादाए करीने ववहार नएण-
सिद्धातोक्त साधु श्रावक सम्यक् दृष्टिना व्यवहारे एटले व्यवहार नयेकरीने जिनजा
पित्त धर्म नायवं-जाणवा योग्यठे, विधिपूर्वक यथाशक्ति आराधवा योग्य ठे. १३७

अवतरणः— कोई आशंका करे के, एम कहेलुं ठे ते केम मानवुं? तेने कहे ठे:— मूलः— जम्हा जेणहिं नणियं, सुय व्यवहार विसोहियं तस्स ॥ जायइ विसु ६ बोही, जिण आणाराहगत्ताओ ॥ १३८ ॥ दोहा— शोधित श्रुत व्यवहारनें, निर्मल समकित थाय ॥ जिण आणा राधन थकी, जे कारन जिनगाय ॥ १३८ ॥ व्याख्या— जम्हा—जे कारणमाटे जिणेहिं—जिन तीर्थकरोए नणियं—कह्युं ठे. सुय व्यवहार—श्रुत व्यवहारे करीने एटले सूत्र निर्युक्ति वृत्ति जाण्य चूर्णि ए पांचने श्रुत कहिये, ते श्रुतना व्यवहारे करीने विसोहियं तस्स—चारित्रनी विद्युद्धी करनार जे पुरुष, तेने विद्युद्ध बोही—विद्युद्धबोधी एटले अति निर्मल सम्यक्त्व जायइ—थाय. श्याथी? जिण आणा राह गत्ताओ—श्रुतव्यवहारे करीने चारित्रनी विद्युद्धि करवा रूप जिन आझानुं आराधकपणुं थवाथी. ॥ १३८ ॥

अवतरणः— कोई आशंका करे के, तमे कस्य जे सिद्धांतनी स्थितिए करीने अने व्यवहार नये करीने जिनधर्म जाणवा योग्य ठे; एवी रीते कहेवाथी जिन धर्म देखाडवावाला गुरु पण सिद्ध थाय ठे, तेम ठतां तेनेविषे शी शंका ठे? ते नो उत्तर कहेठे:— मूलः— जे जे दीसंति गुरु, समय परिक्काइ ते न पुज्जंति ॥ पुणमेगं सदहणं, डुप्पसहंतं जउं चरणं ॥ १३९ ॥ दोहा:— जे जे गुरु अब देखि ये, ते न मिले श्रुत न्याय ॥ पिण अद्दा इक ठे चरण, डुप्पसह अंत गवाय ॥ १३९ ॥ व्याख्या:— सांप्रतकाले जेजेगुरु—जे जे गुरु धर्माचार्य उपाध्याय साधु दीसंति—देखाय ठे, समय परिक्काइ—सिद्धांतनी परिक्काए करीने एटले सिद्धांत कथित व्यवहार नयनी विचारणाए करीने जे धर्माचार्य गुरु ठे ते नपुज्जंति—तेनथी पूराता एटले नथी मिलता परिक्काने नथी सहन करी शकता, श्याथी? सिद्धांत कथित अनुष्ठानने यथार्थपणे न करवाथी अही कोई शंका करे के, एम तो चारित्रनी नास्ति थई? त्यारे ग्रंथकर्ता कहेठे के, पुणमेगं सदहणं—वली अमारे एक जिनव चनवुं, अद्दान ठे. जउं जे कारणमाटे सिद्धांतमां कहुं ठे. डुप्पसहंतं—डुप्पसहथा चार्थ साधु अंतसुधी एटले डुप्पसह आचार्यसुधी चरणं—चारित्र वर्तने. ए अमारे एक अद्दान ठे. माटे अमे चारित्र मानिये ठेए, चारित्रनो निषेध करता नथी; पण श्रुत व्यवहारे करीने प्रवर्ततो देखीए तो कहिये के, कुगुरुने सुगुरु केम कहेवाय. १३९ ॥ अवतरण— जे अद्दान ठे ते हुं करवायोग्य ठे ते कहेठे:— मूलः— ता एगो जुग पवरो, मञ्जुमणोहि समयदिठीए ॥ सम्मं परिकियवो, मुत्तुण पवाहहं हज वोलं ॥ १४० ॥ दोहा:— तो मध्यस्थ मनेयि इक, युग प्रधान श्रुत, न्याय ॥ १४० ॥

रीते परिखवो, तजि प्रवाह हलवाय ॥ १४० ॥ व्याख्या - ता- ते कारणमाटे पवाह हलबोल- लोकप्रवाह संबंधी जे हलबोल विचार रहित जे कलकल तेने, सुतूण- मूकीने वली समयदिहीए- श्री आचारांग निसीथ व्यवहारादिक सिद्धां तनी दृष्टि करीने मञ्जुमणोहि- मध्यस्थ राग द्वेष कदाग्रह रहित जेथोनां मन ठे ते पुरुषोए एगो जुगपवरो- एक जुगप्रवर एटले सम्यक् ज्ञान क्रियाएकरी सहित एक जुग प्रधान आचार्य होय ते सम्म-सम्यक् प्रकारे परिक्खियवो-परखवो निश्चय करवो, पण आचार्यादिकना आचारे करि रहितने आचार्यादिक मानवु नही ॥ १४० ॥

अवतरण:- कोई आशंका करे के, प्रवाह हलबोलने मूकीने एम कसु, पण लोक प्रवाहनो हलबोल जो पोते निपुण होइये तो शुं करे? एतुं निवारण कर तां कहेठे.- मूल.- संपइ दसमधेरय, नामायरिएहिं जणिय जणमोहे ॥ सुह धम्मओ निक्कणवि, चलंति बहु जण पवाहाओ ॥ १४१ ॥ दोहा:- अथ दशम चरज नामगणि, जनित नीच जन कर्म ॥ लोक प्रवाहे निपुण पण, पडिआ त जि शुं धर्म ॥ १४१ ॥ व्याख्या:- संपइ-सांप्रत एटले वत्तमान दुषमा कालने विपे दसमधेरय- आरज परिग्रहमां आसक्त सदा ब्रह्मचारी असंयत थका संय त कहेवरावता तेओने जे पूजवुं तथा वदन नमस्कारादिक करवु, ते असंयत पूजा नामे दशमो आश्रयठे, वली नामायरिएहि-नाम मात्र आचार्य केवल जि गोपजीवि इव्यथकी ने जावथकी साधुनी क्रियाए करीने रहित दशमो आश्रय ने नामाचार्य ए बने जाणिय-जाणुं ठे अथवा उपजावुं ठे, जण-नीच पामर लोकोने उचित मोहे-मोह एटले अति राग तेने, एवा जे निक्कणवि-निपुण पण एटले धर्म कर्मनेविपे चतुर पण सुअधम्माउ-शुं शिव कव्याणकारी जिन जापित जे धर्म तेथकी चलंति-चलेठे, च्रष्ट थायठे, तो बीजा अतिपुण पुरुषोनी शी वा चाँ कैमके, निपुण पुरुष पण धर्मथकी चलेठे, बहु जण पवाहाउ-घणा लोको नो जे प्रवाह गतानुगतिक एटले विवेकरहित बोलवुं चालवुं प्रवर्तवुं, तेणे क रीने ते निपुण पुरुष पण जिन धर्मथकी चलेठे पडेठे माटे लोक प्रवाहने मूकी ने ठेठे रहेवु, च्रष्टाचार नामाचार्यनो पण परिचय न करवो जो जिनधर्म विधिमा र्गनी अजिलाष राख्यो होय तो. ए जाव ॥ १४१ ॥

अवतरण - एवी रीते जेथो लोक प्रवाहमां पडेला ठे तेओतुं दुष्टपणुं देखा इयुं, हवे जे जिनधर्मथी पडेलातुं आलंबन लिएठे तेनो दोष, अने जे नथी लेतां तेनो गुण बोलता वता कहेठे.- मूल - जाणिय मिद्धदिष्ठो, जे पढणा लंबणा

५ गिह्लंति ॥ जे पुण सम्मदिही, तेसि मणो चडण पयडीए ॥ १४३ ॥ दोहा:-
 पडना लंबन आचरे, मिथ्यादृष्टि तेय ॥ जे समदृष्टि तेहनो, मनचडते पगथेय ॥
 ॥ १४३ ॥ व्याख्या- जे-जे पुरुष पडणालंबणाई-पडेला एटले जिनजापित
 शुद्ध विधिमागी थकी ब्रष्ट थएला पासडादिकनी तथा तेउना आवक लोकोनी
 कुप्रवृत्तिं बहुमानरूप जे आलंबन तेने गिह्लंति--ग्रहण करेते एटले एनीपासे
 जगवतनो वेप ठे, जिनागम नणोठे नणावेठे; तथा संजलावेठे, माटे एने चैत्य
 वासादि कखाथी शुं बगडेठे? इत्यादिक पडेला पुरुषोनी कुप्रवृत्तिं बहुमानरूप
 जे आलंबन तेने जे पुरुष ग्रहण करेते, तेने मिह्वदिही-मिथ्यादृष्टि जाणिय्य-अ
 हो नव्य, तमे जाणो. पुण-वली जे-जे पुरुष सम्मदिही-सम्यकदृष्टि ठे, तेसिम
 णो-तेनुं मन चडणपयडीए-चडती पगथीए वत्ते एटले चडते चडते गुणस्थान
 मार्गे वत्ते, पण पापस्थाने वत्ते नही; कहु ठे के जेणे अमृत चारव्युं होय, तेने
 बाकस बुकसनी रुचि केम थाय? अपितु नहीज थाय. तेम जे सम्यक्त्व रसनो
 ज्ञाता पुरुष होय ते घणा कालथी सेवेनुं मिथ्यात्वादि पापरूप कुनोजन तेने निंदे
 अने त्याग करे, पूर्व कर्मना योगथी जो काई पापरूप कुनोजन सेवेठे तो पण
 नावथी ते सम्यक्त्वरूप अमृत नोजननेज वांछु ठे! अथवा करेठे, केमके, तेणे
 सम्यक्त्व अमृत प्रथम आस्वादेनुंज ठे; माटे पाप कुनोजनने केम वांछे? अपि
 तु नहीज वांछे रूडा आलंबन आदरे, पण खोटा आलंबन आदरे नही. एनुं
 सम्यक्त्ववाननुं लक्ष्ण होय ठे ए जाव ॥ १४३ ॥

अवतरण- हवे पडेला पासडादिक लोकोनुं बाहुव्यपणं जोईने सुमार्गे तत्पर
 पुरुषोनी समागम अति डुर्जन ठे, एम देखाडता ठता कहे ठे:- मूल- सवंपि
 जए सुजहं, सुवन्न रयणाइ वहु विहारं ॥ निञ्चंचिय मेलाव, सुमग्ग निरयाण ज
 इ डुजहं ॥ १४३ ॥ दोहा.- सुलज सकल पि कनकमणि, आदि वस्तु विस्तार
 मार्गे निपुणनो संग जग, अति डुर्जन अवधार ॥ १४३ ॥ व्याख्या- जए-जग
 तनेविषे सुवन्न रयणाइ वहुविहारं-सुवर्ण रत्नादिक वस्तुनो विस्तार सवंपि सुजहं
 अनंत वार पामवा माटे ते सर्व सुलज ठे, पण सुमग्ग निरयाण-सुमार्गेनिरतां
 पुरुषोनी एटले जिनजापित विधिमागीनेविषे जे तत्पर ते पुरुषोनी निञ्चंचिय-नि
 त्यमेव एटले निरतरज मेलाव-मिलाप एटले समागम ते अइडुलहं- अति
 डुर्जन ठे; केमके, ते सद्धर्मे प्राप्तिनुं कारण ठे माटे. ॥ १४३ ॥

अवतरण:- हवे मार्गेतत्पर पुरुषोनी समागम ठतां, पण जेने अनिमान उ

वे वे तेतुं स्वरूप कहे ठेः-- मूल -- अहिमाणविसोपसमञ्च यं च युवति देव गुरुणो य ॥ तेहि पि जत्रो माणो, हीही त पुव डच्चरिथं ॥ १४४ ॥ दोहा -- मानविषोप समाववा, शुद्ध देव गुरु धर्म ॥ ते सेवे पण मद थयो, हा ते पूर्व कु कर्म ॥ १४४ ॥ व्याख्या-- देवगुरुणोय-- अमार दोष रहित, षादश गुण सहित जे अरिहंत देव तेनी, तथा सप्तविश गुणालंकृत गुरु सुसाधु तेनी, युवति-स्तवनातथा उत्कीर्तना करवी, उपलक्षणार्थी अच्युतान नक्ति बहुमान वदन न मस्कारादिक करवां ते अस्मात् विसोपसोपञ्च यं च- जात्यादि अजिमानरूप विषने उपशमाववाने अर्थे ठे, च शब्द थकी मिथ्यात्वादि दोष उपशमाववाने अर्थे ठे, केम के, सुदेव सुगुरुनी स्तुति कर्त्याथी अजिनिवेश कदाग्रह अज्ञान अजिमान टले अने शुद्ध सम्यक्त्वनी प्राप्ति थाय. एम आगममां कहु ठे. तेहिपि-ते देव गुरुये करीने जत्रो- जो माणो-- मान अजिमान देव गुरुविषे थयो. केम थयो ते कहे ठे - आ चैत्य मारा पूर्वजोना ठे, एने मूकीने बीजा चैत्यमा उत्सवादिक करवाने केम जवाय? इत्यादिक देवविषे अजिमान; वली ए गुरु मारे अंगीकार करेले ठे, ए गीतार्थ क्रियावत गुणवत ठे. तेविना बीजा गुरुत्रो जले गुणवान होय तो पण तेनी ऊपर राग धरे नही, उलटुं मठर जाव आणो. इत्यादि गुरु विषे अजिमान थयो, ही ही-ए मोटी खेदनी वात ठे. तंपुवडच्चरियं-तेपूर्वजवतुं डुष्कर्म चरित ठे. एटले ते पोतानो दोष ठे एमां बीजा कोईनो दोष नथी ॥ १४४ ॥

अवतरण -- जेने खोटा अजिमानरूप धन ठे, ते सदैव असजुत पदार्थ ने माने ठे, तेने उपालंन सहित प्रगट दोष जणावीने निर्नल्ना करता ठता कहे ठे -- मूल -- जो जिणआयरणाए, लोत्रो न मिलेइ तस्त आयारे ॥ हा हा मूढ करिंतो, अप्पं कहु जणसि जिण पणयं ॥ १४५ ॥ दोहा.- जिन आचरण थकी जुदो, जे जण तसु आचार ॥ रे सठ करतो किम कहे, हुं जिन जगत उदार ॥ १४५ व्याख्या.- जोलोत्रो- जे पासञ्चादिक लोक ठे ते जिण आयरणाए-जिन नापित आचरणानी साथे नमिलेइ- नथी मलता, तस्त- ते पासञ्चादिक नो जे आयारे- निजमति कटिपत जे आचार ठे तेने करिंतो- अंगीकार करतो ठतो हा हा- मोटी खेदनी वात ठे. मूढ- हे मूर्ख, अप्पं- पोताने जिणपणयं- जिनने विषे सुगुरुने विषे नमस्कार करवावालो, स्नेह करवावालो कहु- केम जणसि- तु कहे ठे, जो जिननापित आचरणाने आचरतो होय तो तारुं कहु सजवे, माटे फुव बोलीने शासारु- फोकट आत्माने विटबना करेठे. ॥ १४५ ॥

अवतरणः— अही कोई वितर्क करे के, जिन आचरणा मूकीने कोई पासडा विकनी कहेली आचरणा अंगीकार करता हूँ, तेनो उत्तर कहेले:— मूलः— जं चिअ जोओ मन्नइ, तंचिअमन्नंति सयल जोआवि ॥ जं मन्नइ जिणनाहो, तंचिअ मन्नंति किवि विरला ॥ १४६ ॥ दोहाः— जाकूं मानै लोक तस, मानै लोक अनेक ॥ मानै जास जिनेंइ तसु, माने कोइक ठेक ॥ १४६ ॥ व्याख्याः— जोओ— पासडादिक जोऊ जंचिय- जेआचरणाने मन्नइ- मानेठे सयल जोआवि—ताहशवि वेक विकल सकल लोक पण तंचिअ—ते पासडादिकनी नापेली आचरणाने मन्नंति—मानेठे, जेम लीबडानो कीडो लीबडाने सारुं मानेठे, तेम, वली जिणनाहो—जिननाथ जं—जे आचरणाने मन्नइ—मानेठे, सम्यक् जाणेठे, तेम किवि विरला—केटलाए क विरला हलुकर्मी जीव तंचिअ—ते जिनजापित आचरणनेज मन्नंति—मानेठे, यथाशक्तियें पाले, आराधे ठे, जिनधर्म पालवु ते नदीना पूरनी सांवे जवा बरा बर ठे. माटे कोइक हलु कर्मी जीव जिनजापित धर्म आचरणने मानेठे किव हुणा एटले घणु कइयाथी थुं! ॥ १४६ ॥

अवतरणः— अही कोई वितर्क करे के, लोको प्रायेकरी लोकोतुंज कहेलुं मानेठे, जिनराजतुं कहेलुं मानता नथी, एवो तेओनो स्वभावज ठे; ते जले पण जिनराजतुं कहेलुं न मान्या ठतां अने लोकोतुं कहेलुं मान्या ठतां जे दोष थायठे ते कहे ठे— मूलः— साहंमि आउ अहिओ, बंधसुआइसु जाण अपुराओ ॥ तेसिं नहु सम्मत्तं, विन्नेयं समयनीईये ॥ १४७ ॥ दोहा— साधर्मीथी अधिक जस, परिजन ऊपर प्रेम ॥ तास न समकित्त मानियें, आगम नोती एम ॥ १४७ ॥ व्याख्याः—जाण—जेने साहंमिआउ—सम्यक्त्वादि गुणे करीने जे सरखा ते साधर्मी, कहि ये तेथीपण बंधसुआइसु—बंधव पुत्रादिकनेविषे आदि शब्दथी माता पिताचार्यादिक नेविषे अहिओ—अधिक अपुराओ—अपुराग स्नेह वर्ते ठे. तो तेसिं—तेने नहु—नही ज सम्मत्तं—सम्यक्त्व, होय ए वात समयनीईये—सिद्धांतनीतिएकरीने विन्नेयं—विशेषपण जाणवा योग्य ठे साधर्मीनी साथें कोई प्रकारनो कजह अथवा क्लेश करवो नही वली साधर्मी सीदातो होय तो तेने सहाय करवुं, केमके, शास्त्रमां कसु ठे के, संसारमां साधर्मीना जेवुं वीजुं कोई सगपण नथी. साधर्मीनी सेवा नक्ति वाञ्छलताए करीने सम्यक्त्व विशेष निर्मल थाय. माटे बंधु सुतादिक सर्व स्वजननो अनुराग ते करमबंधुं कारण ए दोष जाणी साधर्मीनेविषे अधिकतर धर्मानुराग निरतर. राखवो एजश्रेय गुण ठे. ॥ १४७ ॥

अवतरण— एवी रीते लोकाचारने माननारनो दोष प्रगट करीने हवे ते लोकाचार संबंधी निषेधनो उपदेश कहेवे.— मूल— जइ जाणिसि जिण नाहो, लोयायारा विपरकए नूओ ॥ ता त त मन्नंतो; कह मन्नसि लोअ आचार ॥ १४७ ॥
 दोहा— जिनपति लोकाचारथी, जो तु जाणे जिन्न ॥ तो किम लोकाचारने, तु माने प्रचु मन्न ॥ १४७ ॥ व्याख्या— जइ-जो जाणिसि-तु जाणेवे, जिणनाहो-जिननाथ एटले जिनवरेंड ठे ते लोआयारा-दर्शनघट पासबादिक तथा चतुर्दशीनी ब्राह्मण परित्राजक त्रिदंडी तापसादिक जे लोका, तेओना आचारयकी विपरकए नूओ-विपरकनूत ठे, एटले न्यारो ठे अथवा ते लोकोना आचारोनो जिननाथ विपरक नूत ठे एटले शत्रुरूप ठे एम जो हे नइ-तु जाणेवे, ता-तो त-तु त-ते जिननाथने मन्नंतो-मानतो अथवा जाणतो ठतो लोअआयार-लोका ना आचारने कह-केम मन्नसि-तु मानेवे ॥ १४७ ॥

अवतरण— तु लोकाचारने केम मानेवे? एम कह्यु तेनेज फरी दृढ करेवे; तथा जिनेइने मान्या थका पण जे मुग्ध लोको ठे ते बीजा देवोने मानेवे ते देखांडता ठता कहेवे.— मूल— जे मन्नेवि जिणिदं, पुणोवि पणमति इअर देवाण ॥ मिबुत्त सन्निवायग, गडाण ताण कोविज्जो ॥ १४९ ॥ दोहा— जिनवरने प्रणमी वली, जे प्रणमे अन्न देव ॥ सन्निपात मिथ्यात हत, तस कुण वैद इहेव ॥ १४९ ॥ व्याख्या— जे-जे मुग्ध तत्वना अजाण ठे, ते जिणिदं-जिनेइ देवने पण मन्नेवि मानेवे अने पुणोवि-वली पण इयरदेवाण-इतर जे जिनेइ देवथी बीजा हरि हर ब्रह्मादिक रागी देपी मिथ्यादृष्टि देव ठे तेने पणमति-प्रणमे ठे एटले पूजे ठे; ताण-ते मिबुत्तसन्निवायगगडाण-मिथ्यात्वरूप सन्निपात रोगे करि ग्रस्त थएला गलायला अथवा व्याप्त थएलानो कोविज्जो-वैद्य कोण थाय! अपितु तेनो कोई वैद्यज नथी केमके, जेने अमृत समान जिन धर्म पुरिस विषसमान मिथ्या धर्म जेवो थयो तेनो हितोपदेशक गुरु वेद्यराज छु उपाय करे ॥ १४९ ॥

अवतरण— हवे मिथ्यात्वरूप सन्निपात रोगेकरी ग्रस्त थएला छु करेवे ते कहेवे.— मूल— एगो अ गुरु एगो वि सावगो चेइआणि विवहाणि, ॥ तडय जे जिणददं, परुप्पर तं न विञ्चति ॥ १५० ॥ दोहा— गुरु एक वलि आइ इक, चैत्यं विविध चित्रेव ॥ तामे जो जिनइव्य ते, विए परस्पर नेव ॥ १५० ॥ व्याख्या— एगोअगुरु-एकज गुरु केमके लिंग आचार एक माटे एक गुरु, एगोवि सावगो-एक पण श्रावक कारणके सर्वना देवगुरु धर्म एक माटे श्रावक पण एक चेइआणि

विवहाणि- चैत्य देहरासर अथवा जिनप्रतिमा ते विविध अनेक ठे; तथापि जि
नेइ वेव सर्वे सरखा माटे चैत्य पण एकज; ए त्रणे एक एक थए थके पण त
उय- त्यां एटले ते श्रावकोनी पाशे जं- जे जिणदवं- जिन इव्य ठे; उपल
कृणथी ज्ञान इव्य साधारण इव्य ठे तं-ते इव्य परुप्परं-परस्पर एटले माहो
मांहे चैत्य ज्ञानादिक कार्य पडेठते न विचंति- नथी वेचता एटले नथी थाप
ता; ते लोनी सुखना लाजची गुरु निर्मल उपदेश तेने देता नथी; पण उलटुं
जेथी अहंकार ममकार पणु वधे तेवो उपदेश करे ठे. ए जाव ठे ॥ १५० ॥

अवतरण.- एम करता ठता ते गुरु आदिक ठे के नथी ? ते विपे कहे ठे:-
मूल:- ते न गुरु नो सद्धा, न पूइओ तोहि होइ जिणनाहो ॥ मूढाणं मोह विई,
सा नऊइ समय निउणोहि ॥ १५१ ॥ दोहा - ते गुरु नहि श्रावक नही, नहि प्रसु
पूजक तेय ॥ मोह यिती मूढोत्तणी, जाणी श्रुत निपुणोय ॥ १५१ ॥ व्याख्या:-
ते- ते नगुरु-तेगुरु नथी केम के, सुख दाह्णिताएं करीने जिनोक्त निर्मल उपदेश
नथी देता माटे तथा नो सद्धा-ते श्रावकपण नथी, केम के, चैत्यादि इव्य चैत्यादि का
र्य पफ्थाथी ममताने लीधे नथी वेंची आपता माटे ते श्रावकपण नही कहेवाय वली
तेहिं-तेणे जिणनाहो-जिननाथ पण नपूइओ होई-पूज्यो नथी एम ठे केमके
जे ममकारादिक क्लिष्टचित्तवाला यद्यपि पूजादिक करे तथापि तेने पूजादिक कर
वावाला न कहिये. माटे शिष्य कहेठे तो तेने शुं कहिये ? गुरु कहेठे मूढाणं-मू
खोनी मोहविई-मोहस्थिति कहिये सा-तेवात समय निउणोहि-सिद्धांतमां जे
निपुण पुरुषठे तेने नऊइ-जणाय ठे पण बीजा जाणता नथी- ॥ १५१ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामां कस्यु नथी ते गुरु तेजवात प्रगट करता ठता कहे
ठे:-मूल-सो न गुरु जुंग पवरो, जसस वयणंमि वट्टए नेओ- ॥ चिय नवण स
द्वगाणं, साहारण इवमाईणं ॥ १५२ ॥ दोहा.-चैत्य शुवन वलि श्राद्धजन,
साधारण इव्यादि ॥ तास जेद जसु वचनमें, तेगुरु ठे जगदादि ॥ १५२ ॥ व्या
ख्या.- जसस-जेगुरुना वयणंमि-वचने करीने एटले कुटिल उपदेशे करीने तथा
पोतासंबंधी चैत्यादि करावबुं ते तमने प्रधान ठे, एम साक्षात् उपदेश दीधाथी
चियनवण-चैत्यनवनोने विपे एटले जिन प्रासादोने विपेतथा सद्दगाणं-श्रावकोने
विपे वली साहारणद्व माईणं-साधारण इव्यादिकने विपे आदि शब्दथी ज्ञान
इव्यने विपे नेओ-नेट वट्टए-वर्त्ते ठे, एटले अहंकार ममकारनी बुद्धिएकरीने
पोता संबंधी चैत्य तथा श्रावकादिक थापीने माहोमांहे जे जगडा करावे ठे, जेद

पाहे ठे ते जुग पवरो जुग प्रधान गुरु-आचार्य न-नथी केम के, प्रथम जे. वि
शेषण कथं ते कुगुरुनुं ठे माटे ते जुगप्रधान गुरु न जाणवो ॥ १५२ ॥

अवतरणः-अही कोई वितर्क करे के, जेनां वचन थकी चैत्य जवनादिकोनो
जेद वर्तें ठे, ते जुग प्रवर गुरु न होय, एम जे कथु, ते तो तीर्थकरादिकवर्चें ते काल
नेविषे युक्त ठे, पण हमणा तो जेद विना कोई पण मर्यादा नहोय ! ए आशां
का दूर करवाने सांप्रतहमणा पण सिद्धांत कथित विधिनेविषे जे पुरुष नथी प्रवर्तता
तेओना दोष देखाडता ठता कहे ठे- मूल - संपद् पद्भुवयणेणवि, जाव न उ
ल्लसद् विद्दि विवेयत्तं ॥ ता निविड मोह मिच्च न गंठिया डुछ माहृप्पं ॥ १५३ ॥
दोहाः-प्रगटे न विधि विवेक अब, प्रभु वचने पण जाव ॥ ताव निवड मिथ्या
त्वनी, गंठितणो अनुचाव ॥ १५३ ॥ व्याख्याः-संपद्-संप्रति एटले वर्त्तमान का
लनेविषे पण पद्भु वयणेणवि-प्रभु जापित जे वचन, आगम ते सांनव्याथी जा
व-ज्या सुधी विद्दिविवेयत्तं-जिन इव्यादिकनुं जिनागम उक्त प्रकारे वधारवु, खर
चनुं, रक्षुण करवु, तथा इव्ये जावे पवित्र थईने आशातना टाली, अजिगम सा
चवी, जिनपूजा करवी, सुगुरु नक्ति करवी, तथा दोष रहित सामायक प्रतिक्रम
ण पोपध उपवास करवा, तथा निरतिचार सम्यक्त्व सहित सर्व व्रत पालवां, इ
त्यादिक विधिविवेक पणुं जेने न उल्लसद्-नथी उल्लासने पामतो, ता-ते कारण माटे
ए निविममोहमिच्चगंठिया डुछ माहृप्पं-निविम एटले अतिदृढ मोह मिथ्यात्वनी
गांठनुं कोई डुष्ट माहात्म्य ठे, एटले प्रचाव ठे, एम जाणवुं केमके ठती समर्थाईये
सिद्धांतोक्त विधिनेविषे न प्रवर्त्तवु ते प्रभुना वचननी आशातना ठे. ॥ १५३ ॥

अवतरणः- ते कारण माटे हवे प्रभुवचननी आशातनानुं डुष्टपणुं कथन क
रतां ठता कहेठे- मूल - बंधण मरण जयाइ, डहाइ तिरकाइ नेअ ड'रकाइ ॥ ड
रकाण डुह निहाण, पद्भुवयणा सायणा करण ॥ १५४ ॥ दोहा - बंधन मरण
जयादि डुख, नहि तीरुण डुख जाण ॥ जे अविनय प्रभु वचननो, ते डुख दोष
निधान ॥ १५४ ॥ व्याख्या - बंधन-दोरडादिके करी वांधवु, मरण-आयु अथ
वा प्राणनो नाश, जयाइ-इह लोकादिक सात जय इत्यादिक जे डुकाइ-डु.ख ठे
ते, तिरकाइ-तीरुण एटले आकरा डुकाइ-डु ख नेअ-नथीज थोडाकाल रहेठे
पण पद्भुवयणा सायणाकरण-प्रभुना वचननी आसातनानुं जे करवु, ते डु का
ण-जन्ममरणादिक डु खनुं दुहनिहाण-डु.ख निधान ठे; एना जेवु बीछुं कोई
सत्सारमां डु ख नथी ए जाव ॥ १५४ ॥

अवतरणः— एवी रीते आशातनाना करनार संबंधी अनंत दुःख कहां, हवे वर्त मानकालादि दोष थकी यथोक्त विधि करवाने असमर्थ एवो जे पोतानो आत्मा तेने निंदतां ठतां कहे ठेः— मूलः— पद्भुवयण विहिरहस्तं, याऊणं जाव दीसए अण्पा ॥ ता कह सुसावगत्तं, जं चिन्नं धीर पुरिसेहिं ॥ १५६ ॥ दोहाः—वीर वच न विधि सार लखि, जब निज आतम जोय ॥ तो कहते गृहि धर्मे जे, गृहो धीर पुरुपोय ॥ १५५ ॥ व्याख्याः— पद्भुवयण विहिरहस्तं—प्रभुना वचन सिद्धांत नो जे विधिनो सार तेने नाऊणं—जाणीने जाव—यावत् एटले ज्यासुंधी अमे अण्पा—पोतानो आत्मा दीसए—देखीए ठैए. ता—त्यारे एम विचार थाय ठे के, मारेविषे कह—क्यांथी सुसावगत्तं—सुश्रावकपणुं धीरपुरिसेहिं—कामदेव अरणक श्रावकादिक धीर पुरुपोए जं चिन्नं—जे आचखुं ते. ॥ १५५ ॥

अवतरणः— कोई वितर्क करेठे के, जो धीर पुरुपोए अंगीकार करेखुं श्रावक पणुं नथी तो शा कारणथी देवपूजादि अनुष्ठानविधिनेविषे पोताना आत्मा ए प्रकारे पर्यासीए ठैए एटले जोडिये ठैए? ए आशंकाए करीने कहेठेः— मूलः— जइवि दु उत्तम सावय, पयडीए चडण करण असमठो ॥ तहवि पद्भुवयण कर णे, मणोरहो मञ्ज हिययम्मि ॥ १५६ ॥ दोहाः— यदपि सुश्रावक सेहिए, चडण कडण असमर्थ ॥ तदपि मनोरथ मुजहिये. कबहू करुं तदर्थ ॥ १५६ ॥ व्याख्याः— जइवि—जोपण दु—निश्चे, उत्तम सावयपयडीए—पूर्वोक्त उत्तम श्रावकोनी पगथीए एटले श्रेणिए चडण करण असमठो—चडण करवाने एटले अरोहण करवाने अ समर्थ एवो हुं हुं तहवि—तथापि एटले तोपण पद्भुवयण करणे—प्रभुनापित वच न अंगीकार करवानेविषे एटले श्रीवीतराग कथित जे विधितुं करखुं तेनेविषे म णोरहो—मनोरथ मञ्जहिययम्मि—मारा हृदयमां वर्त्ते, एटले जोपण उत्तम श्राव कोनी पदवीने आरोहण करवाने हुं असमर्थ हुं तो पण प्रभुवचन अंगीकार क रवानो मनोरथ मारा हृदयमां वर्त्ते, अने पोतानी यथाशक्तिप्रमाणे आराधुं, तेमाटे सम्यक्त्व प्राप्ति योग्य कोईएक श्रावकना जेदमां हुं निश्चयतो श्रीवीत राग देव जाणे. ॥ १५६ ॥

अवतरणः— हवे बली ते जिनवचन अंगीकार करवाना मनोरथनी वांग कर ता ठतां कहेठे, जे कारण माटे प्रभुना वचन अंगीकार करवानो अमारा मनमां मनोरथ ठे — मूलः— ता पद्भु पणमिअ चलणे, इकंपडेमि परम जावेण ॥ बुह व यण रयण गहणे, अइ लोहामञ्ज दुऊ सया ॥ १५७ ॥ दोहाः— तो सुज जावे

प्रच्युतमत, चरणे जाचू एक ॥ होय सदा मुज तुम वचन, रतन लोच अतिरेक.
॥ १.५७ ॥ व्याख्या- ता-ते कारण माटेज पद्दु-हे प्रनो, श्रीवीतरागदेव, चर
णो-तमारा चरण जुगलने पणमिअ-प्रणाम करीने परम जावेण परम उत्कृष्ट
जावथी इक-एक वस्तु पडेमि-हुं प्रार्थुं तुं एटले मांगु तुं, ते एक वस्तु तुहवयण
रणण गहणे-तमारा वचनरूप ड ख दारिइ दौर्जाग्यादिक दूर करचाथी रत्ननीप
रेरत्न, तेतुं ग्रहण करवानेविपे अइलोहो-अतिलोच एटले अति प्रदपणुं मक्ष-अ
मारे हुक-होय सया-सदा ॥ १.५७ ॥

अवतरण:- कोई वितर्क करे के, एवीरीते शासारु इहा करवी पडे? पोतानी
मेलेंज जिन वचनरूप रत्ननुं ग्रहण करवानेविपे लोच अशे? ए आशंका करीने
कहेठे- मूल- इह मिहवास निक्किठ जावउंगलिअ गुरुवि वेआण ॥ अम्हाए
कह सुहाइ, संजाविहति सुमिणेवि ॥ १.५८ ॥ दोहा- मिथ्यावास सुमलिन
मन, गत विवेक हममाहि ॥ कहांथि सुख संजाविए, स्वपनविपे पण नाहि ॥ १.५८
व्याख्या- इह-ए पांचमां दूपम कालनेविपे मिहवास-मिथ्यात्वनी वासनाए अ
हाए करीने निक्किठ जावउ-निक्कीष्ट एटले अति मलिन जाव परिणाम थयो ते
थी गलिअ गुरुविवेआण- गलायो ठे एटले नाशने पाम्योठे तत्व अतत्व संबंधी
प्रथग जाव एटले न्यारा न्यारा जाव, जे मोटा विवेक विचार जेना एवा जे अ
म्हाए- अमे, तेने सुमिणेवि- स्वप्ननेविपे पण सुहाइ- जिनवचनरूप रत्न ग्रहण
करवु ते सुख हेतु माटे सुख ते कह-शा प्रकारे करीने संजाविहति-सजाविए
एटले विचारिए अथवा यापिए? केमके, मिथ्यात्वे करीने वासित ठे मति जेनी,
अने गयो ठे मोटो विवेक जेनो तेने तेतुं सुख क्यांथी थाय? ॥ १.५८ ॥

अवतरण-शीरीते क्यांथी होय तेरीत कहेठे-मूल-जं जीविअमितंपि दु, धरे
मि नामं च सावयाणपि ॥ तं पिपद्दु महा चुक, इह विसमे दूसमे काले ॥ १.५९ ॥
दोहा:- धंरुं जो जीवित मात्र पण, नाम श्राइनो सार ॥ तेपण अति अचिरज
प्रचुं, दूसम काल मजार ॥ १.५९ ॥ व्याख्या- इहविसमे दूसमेकाले-आ विषम
दूसम कालनेविपे जं-जो जीविअ मितंपि-देश संयमरूप जीवितमात्रने पण को
ईक प्रकारना जंगे करीने हु-प्रकटपणे सावयाणपि-सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रत
धारी श्रावकोनो च-वली नामं-नाम मात्रप्रते धरेमि-हुं धारण करुंबुं, तं पि-ते
पण पद्दु-हे प्रचु, हेनाथ महा चुक-मोटो आश्चर्य ठे, बीछु वधारे सु कहिये? ॥

अवतरण.- ए प्रकारे कालादिकना अनुसारे करीने पोताना स्वरूपने कहीने हवे

पोतानुं जन्म सफल करवाने अर्थे सुगुरुने विनती करता ठता कहेते - मूल:- परिजा विकण एवं, तद् सुगुरु करिऊ अम्ह सामिन् ॥ पद्दुसामग्गि सुजोगो; जद् सहलं होइ मणुअत्तं ॥ १६० ॥ दोहा:- इम विचार करि तिम सुगुरु, हमने करो सनाथा ॥ सुलन होय जिम नरपणुं शिव सामग्री साथ ॥ १६० ॥ व्याख्या:- एवं-दूषमा कालनेविपे जिन चापित धर्मनुं दुर्जनपणुं ठे ए प्रकारे परिजाविकण-परिजावीने एटले वीचारीने सुं गुरु-हे सुगुरु; हे शोचन आचार्य एटले हे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण संपन्न सुगुरु तद्-तेम अथवा ते प्रकार अम्हसामिन्-अमारा संबंधी स्वामीपणाने करिऊ-करो एटले ते प्रकारे अमारा ऊपर तमे स्वामीपणुं धारण करो. जद्-जेम अथवा जे प्रकारे पद्दुसामग्गिजोगो-प्रचुदर्शनादिकनी सामग्रीनो एटले प्रचुनाधि त धर्मसामग्रीनो सारो योग थाय, ते थएथके मणुअत्तं-मनुष्यपणुं सहलं- सफल होइ-थाय, केमके, संसारमां चार अंग जीवने पामवा दुर्जन ठे, तेमां प्रथम मनुष्य पणुं, बीछुं सिद्धांतनुं सांजजनुं, त्रीछुं सिद्धांतने सांजलीने जिन वचननी श्रद्धा करवी, श्रद्धा थया पठी तप संयमने विपे पराक्रम फोरववो; ए चार अंग दुर्जन ठे. तेमां प्रथम-मनुष्य पणुं दुर्जन कहु, पण ते मनुष्य पणुं सफल क्यारे थाय, ज्यारे श्रेष्ठत्रण अंगनी प्राप्ति थाय माटे हे सुगुरो अमारा ऊपर तमे स्वामीपणुं करो के जेम प्रचु चापित धर्म सामग्रीनो रूपो जोग थाय, ते थवाथी मनुष्यपणुं सफल थाय? ॥ १६० ॥

अवतरण -- हवे समाप्तिने अर्थे ग्रंथकार पोतानुं नाम कथन पूर्वक तथा ते ना अध्ययनादिकथो थता फलना कथन पूर्वक अने स्मरणनी उपादेयता प्रते ए टले तेनुं जे अंगोकारपणुं तेने कहे ठे.-- मूल - एव जंमारिअ ने, मि चदरइथा उ कइविगाहाउ ॥ विहि मग्गरया जंवा, पढंतु जाणंतु जतु सिवं ॥ १६१ ॥ दोहा नेमिचद जंमारिकुत्त, गाथा केइक एम ॥ विधि मग मग्न जविक जणो, जखो ज हो शिव हेमा ॥ १६१ ॥ पट्टि शतक प्राकृत थकी, दोधक किया सुनास ॥ दोध क शोधक बुद्धिजन, सेवक मोहन तास ॥ १६१ ॥ व्याख्या:- एवं-ए प्रकारे सऊ न जंमारीनो पुत्र अने जिनेश्वर सूरिनो पिता प्रसिद्ध एवो जे जंमारीअ नेमिचद-एटले जंमारिक गोत्री नेमिचद श्रावक तेणे रइथाउ-रचिउ जे कइवि-केटली गाहाउ-गाथा ? एकजो ने एकसर; ते गाथाउने विहिमग्गरया-श्री वीतराग चापित वि विमार्ग एटले मोहमार्गनेविपे रत एटले तत्पर एवा जे नवा-नव्य जीव ते पढंतु-सूत्र थकी जणो, जाणतु-अर्थे परिज्ञानेकरी जाणो; सूत्रार्थ वेहु सम्यक् प्र

कारे अन्त्यासीने सिवं-शिवप्रत्ये एटले निरुपड्व मोहने जाउं-पामो ए ग्रंथ न
 एषाथी तथा ग्रंथनो सम्यक् प्रकारे अर्थे जाण्वाथी निश्चल सम्यक्त्व थाय ठे, निश्च
 ल सम्यक्त्वथी ह्यायिक ज्ञान चारित्र थाय. ते ह्यायिक ज्ञान चारित्रेकरी अनुक्रमे वठि
 त अर्थनी सिद्धि थाय वली वठित अर्थे ठे ते नव्य जीवोने शिव प्राप्तिज जाणवी;
 बीजो कोई वठितार्थे नथी तथा शिव शब्द ग्रंथना अते अर्गीकार कखो ते मगल अ
 थवा कव्याएने अर्थे जाणवो. इति गाथार्थे ॥ १६१ ॥ इति श्रीषष्ठी शतक समाप्त

तपोरत्न श्री गुण सुंदर उपाध्यायकृत षष्ठी शतकनी टीका ते श्रीशान्ति
 सागरजी महाराजजीनी समीपे श्रीराजनगरमध्ये श्री गुरु बुद्धिविजय महाराज
 जीनो उपासक जे यद्गु गोत्री उंसवाल मोहनलाल, तेणे सांचली धारी विचारीने ते
 नो किंचित् नावार्थे ग्रहण करीने षष्ठी शतकनो अह्वरार्थे केवल नाषारूप बालाव
 बोध कखो; तेमां श्री वीतरागनां वचनथी जे कांई अधिक्कु उंडुं विपरीत लखाणुं
 होय, कांई प्रकारुं वत्सूत्र लखाई गयु होय, तथा कांई कानामात्रादि क्खु दीर्घनो
 फरक पदयो होय, तस्त मित्रामि डक्कनं एटले तेनु जे पाप मने जाग्युं होय, ते
 मिथ्या फोकट थाउं. वली स्यादाद श्री जिनमत निपुण परोपकार स्वभाववाला
 पुरुषोए मुज अल्पमति कपर अनुग्रह करीने आ षष्ठी शतकनो बालावबोध शोधी
 लेवो एज विनती ठे. ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्री षष्ठीशतक नामक ग्रंथ दो
 हा तथा बालावबोध सहित समाप्त.

॥-श्री वीरपरमात्मायनमः ॥

सकलपंक्ति चक्रचक्रवर्तिपंक्ति श्रीह्रमाविजयगणि शिष्यसुरख्यपंक्ति परषद
मिनीजालतिलक पंक्ति श्रीजिनविजयगणि गुरुन्योनमः सिद्धि बुद्धि विधाधिने
श्रीमत् गौतम स्वामिनेनमः

अथ श्री पंक्ति उत्तम विजयजीकृत संयमश्रेणीनुंस्तवन
अर्थसहित प्रारंभियेते.

श्रीवर्द्धमानंजिनंनला ॥ वर्द्धमानगुणास्पदं ॥

स्वोपज्ञसंयमश्रेणी ॥ स्तवस्यार्थोवितन्यते ॥ १ ॥

॥ ढाल पहेली प्रथम गोवालातणेनवेजी एदेशी ॥

केवल ज्ञान दिवाकरूजी ॥ सिद्ध बुद्ध सुखदाय ॥ आत्म सं
पद जोगवेजी ॥ वर्द्धमान जिनराय ॥ गुणोदधि शासन ना
यक वीर ॥ मेरू महिधर धीर ॥ गुणो ० ॥ शास ० ॥ १ ॥ एअंकाणी

अर्थ ॥ समस्त केवलज्ञानावरणी कर्मना ह्यथकी उपनुंजे केवलज्ञान तद्रूप
सूर्यते ह्यायकनावें सकलगुण निष्पन्नसिद्धते समस्त वस्तुस्वभावतुं बुद्धके ० जाण
ते उपकारीपणे सर्वसुखतुं दातारते स्यादादपणे परिणमित अनंतगुण पर्यायरू
प आत्मसंपदाने जोगवेते एहवो चोवीसमो तीर्थंकर सामान्य केवलीउमां राजा
सरिखो श्रीवर्द्धमानस्वामी गुणोनोसमुद् गुणरूप रत्ननी उत्पन्नितुं स्थानक वर्त्तमान
शासनतुं अधिपति श्रीवीरपरमेश्वरते वजी उपसर्ग परिसह आवेथके अकिगरह्या माटे
मेरूनीपरे धीरते ॥ १ ॥ एटले वदनात्मक स्तवनात्मक अने वस्तुनिर्देशात्मक ए त्रणप्र
कारना नमस्कारते तेमां स्तवनात्मक इष्टसमुचित नमस्कारकखो ॥ १ ॥

अनुक्रमिं संयम फरसतोजी ॥ पाम्यो ह्यायक जाव ॥

संयमश्रेणी फूलडेजी ॥ पूजुं पद निष्पाव ॥ गुण ॥ १ ॥

अर्थ ॥ अनुक्रमे उत्तरोत्तर प्रधान संयमस्थानक फरसतोथको यडुकं दशाश्रुत
स्कंधे.— 'तस्सपानंगवतस्स अनुत्तरेणानाणेण अनुत्तरेणंदसणेण अनुत्तरेणचरित्तेणं
अनुत्तरेणआलएण अनुत्तरेणविहारेण अनुत्तरेणवीरिएण अनुत्तरेणअक्कवेणं अनु
त्तरेणमद्वेण इत्यादिक मोहनीय कर्मनुं ; क्यकरी उत्कृष्ट संयमस्थानरूप ह्रीण
मोह गुणस्थानक पाम्यो एह्वो श्री वर्द्धमानस्वामी तेना पापरहित चरणकमल
ने संयम श्रेणीरूप नावफूलेकरीने पूजुंके० अर्चुं एवदनात्मक नमस्कार कखो॥ १

वाचक जशविजये रच्योजी ॥ सखेपे सक्काय ॥ विस्तारि
जिन गुण गावतांजी ॥ जीहा पावन थाय ॥ गुण ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ प्रथम संयमश्रेणीनुं सक्काय तिकूणबुद्धिवालाने गम्यथाय एतुंन्यायवा
दिश्रोनेविपे मुकुटमणि समान उपाध्याय श्री जशोविजय गणिये रच्युठे पण
तेनी रचना शङ्केपेकरीठे माटे विस्ताररुचीने अर्थ विस्तारे संयमस्थानक गर्जित
जिनेश्वरना गुण गावता जीन तथा जन्म पवित्रथाय उत्तमजीवने एवोज मनोर्थ
होयठे यडुकं चिरसंचिय पावपणासंणीए नवसयंसहस्समहणीए चोवीसजिनवि
णि गायकहा वोलंतुमेदीहा एटले मगल अजिथ्यादिककहां ॥ ३ ॥

वारकपाय खय उपशमेजी ॥ सरव विरति गुण ठाण ॥
तेना आदिम ठाणमांजी ॥ पर्यवतुं परिमाण ॥ गुण ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ ह्वे आद्यना वारकपायने क्योपशमे एटलेजे दलिक उदयआव्यां तेनुं
क्यकरी अनेजे उदयनथीआव्या तेने उपशमावे अने प्रदेशे उदयआव्याने वेवे एह्वी
अवस्थाये वर्त्तताथका अविरति देशविरतिप्रमुख वारकपायने अनावें उपतुंजे सर्ववि
रतिरूप ठोठो गुणस्थानक तेहना सर्वजघन्यमाजघन्य स्थानकमां एटले आदिमजे प्र
थम स्थानक तेमा निर्विजाग जाग एटले जेना केवलीनी बुद्धियेपण एकरवंना वे
अंसनथाय एवाजे चारित्रनापर्याय अथवा अंस तेनुं प्रमाण जे संख्या तेकहेठे॥४॥

सरवाकाश प्रदेशथीजी ॥ अनंत गुणा अविजाग ॥
वृहतकल्पना जाप्यमांजी ॥ जापे तुं महां जागा॥ गुण ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ लोकालोकना आकाशप्रदेश जेटलामे अनतेठे एटले अनंतानी गणना
अनंत प्रकारनीठे तेमा लोकालोकना आकाशप्रदेशनी गणनानुं जे अनंतुठे तेने
अनंतगुणो करिये एटला अविजाग ठागुणस्थानकना सर्वथी जघन्यमां जघन्य

स्थानक जे पहेलुं स्थानक तेमांठे एरीतें बृहत्कल्पनाजाप्यमां हे महाजाग्य म
हापूज्य तुं कहेठे यडुकं तेकत्तियापएसा सवागासस्तमग्गणा होई, तेतत्तियापएसा
अविजागत्तं अनंतगुणा. ॥ १ ॥ इति ॥

एरीतें सर्वविरतिगुणस्थानना सर्वथी जघन्यमां जघन्य पहेला संयमस्थानमां
एटला निर्विजागहोय ए निर्विजाग सर्वोत्कृष्ट विद्युः देशविरति गुणस्थानकना
निर्विजागथी समस्त जीव जेटले अनंतेठे तेटले अनंते गुणता जेटला अनंताथा
य तेटला जाणवा ग्रंथांतरे एमपण कहुठे जे उत्कृष्ट, देशविरति विद्युःस्थानक
ना अविजाग दशहजार असत्कल्पनायें कल्पियें पठी सर्वजीवतो अनंताठे तेनेप
ए असत्कल्पनायें एकशत प्रमाणकल्पिये पठीते परस्पर दशहजारने सोगुणाकरि
ये तेवारें दशलखाथाय एटला अविजाग सर्वविरतिना प्रथम संयमस्थानकमांठे. ॥५॥

जाग अनंते आदिथीजी ॥ बीजे ठाणे वृद्धि ॥ इम

अनंत जागुत्तरेजी ॥ थानकनि होय सिद्धि ॥ गुण ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ एपहेला संयमस्थानथकी बीजा संयमस्थानकमां अनंतमें जागें वृ
द्धिहोय एटले पहेला संयमस्थानकमां जेटला अविजागठे ते जेटलाचवदराजलो
कमां जीवठे ते सर्वजीवने सरखेनागें वहेंचोआपता एकजीवनेजागें जेटला संय
मना अविजागथावे तेटला अविजागनी पहेला संयमस्थानना अविजागकरतां
बीजा संयमस्थानमां वृद्धिथाय एवीरीते बीजा संयमस्थानथी वली त्रीजा संयम
स्थानमा-पण तेटलाज अविजागनी वृद्धिथाय तेम त्रीजाथी चोथामां यथोत्तर
अनंतजाग वृद्धिथाय तेमज आगलपण संयमस्थाननी निष्पत्तिथाय हवे एमवृ
द्धि करता करता सर्व केटला संयमस्थानके एक कंमकथाय तेकहेठे. ॥ ६ ॥

अंगुल जाग असंखमांजी ॥ जे आकाश प्रदेश ॥ तेता

थानक नीपजेजी ॥ कंमक तास निवेश ॥ गुण ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ एक अंगुलमात्र आकाशक्षेत्रना असंख्यातमां जागमां जेटला आकाश
प्रदेश ठे तेटला अनंतजाग वृद्धिना संयम स्थानक नीपजे के० नीपजाविये एटला
संयमना स्थानकनो समुदाय तेने आगम परिजापाये कंमकनी स्थापना कहिये
उक्तंच कर्मतिएवजन्नई अंगुलजागो असंखिज्जो. ॥ ७ ॥

बीजा कंडक ठाणमांजी ॥ आदि असंख्यांस जाण ॥

तदनंतरंत जागनाजी ॥ धानक कंमक माण ॥ गुण॥८॥

अर्थ ॥ हवे पूर्वेजे अनंतजागवृद्धिना कंमकतुं स्वरूपवताव्युं ते अनंतजाग वृद्धिकंमकनी स्थापना ने अनंतर बीजो असंख्यातजाग वृद्धिना कंमकनी स्थापना धाय ते आवीरीते जे पूर्वे अनंतजागवृद्धि कंमकना चर्मस्थानकमां जेटला अविजागठे तेथकी आ बीजा कंमकना आदिस्थानकमा असंख्यातमें जागें वृद्धिजाणवी.

एटले पहेला कंमकना चरमस्थानकमां जेटला अविजागठे ते असंख्याता लो काकाश प्रदेशने वहेची आपता एकप्रदेशने जागे जेटला अविजागथावे तेटला असंख्यातजागनाअंसनी बीजाकंमकना प्रथमस्थानकमा वृद्धिधाय तेने अनंतर वली अनंतजाग वृद्धिना स्थानक कंमक प्रमाणधाय ते केम असंख्यातजाग वृद्धिना प्रथमस्थानथी अनंतमो जागवधे एवु प्रथम स्थानक तेतुं अनंतमोना ग वृद्धिरूप बीजुं स्थानक एम यथोत्तर कंमकप्रमाण होय एम आगलपण पाठ ला स्थानथी आगला स्थानमां जागवृद्धि तथा गुणवृद्धि पोतानी बुद्धेजाणवी.॥८॥

इम नंत जाग वृद्धिनेजी ॥ कंमक कंमक मध्य ॥ ठाण

असंख्यांस वृद्धिनाजी ॥ कंमक माने लक्ष ॥ गुण ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ एम अनंतजाग वृद्धिना कंमक प्रमाणस्थानक अने असंख्यातजाग वृद्धितुं एकस्थानक एरीते अनंतजाग वृद्धि कंमक कंमकने विचालें असंख्यजागवृद्धितुं एकेक स्थानक करता असंख्यात जाग वृद्धिना स्थानक केटलाधाय ते कहेठे कंमकमानेलक्षके० कंमकप्रमाणेलाधा एटले एक कंमक प्रमाण थयां एटले पट्ट वृद्धिमाहे असंख्यजाग वृद्धिरूप बीजीवृद्धि पूरीथई ॥ ९ ॥

ते आगेनंत जागनाजी ॥ धानक कंमक मात ॥ तदनंतर

संख्य जागनुंजी ॥ धानक एक विख्यात ॥ गुण ॥ १० ॥

अर्थ ॥ ते असंख्यजागवृद्धि कंमकना चरम स्थानकने आगेके० आगल अनंतर अनंतजाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्रधाय एटले कंमक प्रमाण करिये तेवा रपठी संख्यातजागवृद्धितुं एकस्थानक प्रसिद्धहोय एटले पूर्वेपाश्चात्तयेला कंडक ना चरमस्थानकमां जेटला अविजागठे तेने उत्कृष्ट संख्यातपद् साथें जागवेतां एकनेजागें जेटलाथावे तेटलावधे एम आगलपण स्वबुद्धे जाणीलेवु ॥ १० ॥

ते ऊपर द्वय वृद्धिनाजी ॥ जेता ठाण अतीत ॥ ते कीधे
संख्यात्तागनुंजी ॥ बीज्युं ठाण पवित्त ॥ गु० ॥ ११ ॥

अर्थ:-हवेते संख्यातनाग वृद्धिना प्रथम स्थानकने ऊपर द्वयके० वे वृद्धिना
स्थानक जेटला अतिक्रम्याळे एटले पूर्वे अनंतनागवृद्धि अने असंख्यातनागवृ
द्धि एरीते एवेवृद्धिना जेटला स्थानक गयाळे ते सर्वने आ पहेला संख्यातनाग
वृद्धि नामा स्थानकने आगलकरिये ते करवापठी संख्यातनागवृद्धिनुं बीज्युं स्था
नक पवित्र संयम परिणामरूप आवे ॥ ११ ॥

इम वृद्धि द्वय अंतरेजी ॥ कंमक माने इठ ॥ असंस
ख्याते वृद्धिनाजी ॥ थानकजिनवर पुठ ॥ गु० ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ एजरीते आगलपण ते अनंतनागवृद्धि तथा असंख्यातनागवृद्धि ए
द्वयके० वे वे वृद्धिना स्थानकने विचमां एकेक संख्यातनाग वृद्धिनुं स्थानक कर
ता कंमक प्रमाणनीपजे हेईष्ट हे प्राणवद्वज ते संख्यातनाग वृद्धिना स्थानक हे
जिनवीर हे वीतराग तुमे फरस्या. ॥ १२ ॥

वलि पूरव द्वय वृद्धिनाजी ॥ थानक सरव करेह ॥ आग
ल गुण संख्यातनुंजी ॥ थानक एक धरेह ॥ गु० ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ संख्यातनागवृद्धि कंमकना चरमस्थानकने आगले पूर्वली वे - वृद्धिना
जेटला स्थानकगयाळे तेटला सर्वस्थानक करवा एटले करिये तेने आगल संख्या
तनागवृद्धिनुं कंमक पुरुंथयुं तेमाटे तेने ठेकाणे संख्यातगुणवृद्धिनुं - एकसंयम
स्थानकधरे एटले धरिये थापिये एटले पाठल अनंतनागवृद्धिनुं कंमक गुणुंते तेना
चरम स्थानकमां जेटला अविजागळे तेने उच्छ्रुष्ट संख्यात गुणाकरिये ते संख्यात
गुणा करतां जेटला अविजागयाय तेटला अविजाग प्रथम संख्यातगुणवृद्धिना
स्थानकमां वधे एरीते आगलपण स्वबुद्धे जाणवुं. ॥ १३ ॥

इम त्रिक वृद्धिने अंतरेजी ॥ गुण संख्यातना ठाण ॥ कंम
क माने नीपजेजी ॥ जाणे तुं वर नाण ॥ गु० ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ एम त्रिकवृद्धिने विचाले एटले पूर्वेजे अनंतनागवृद्धि असंख्यातनाग
वृद्धि संख्यातनागवृद्धि ए त्रण त्रण वृद्धिना सर्व स्थानकने विचाले एक एक
संख्यातगुणनुं स्थानक करिये एम करता संख्यातगुण वृद्धिना - स्थानक कंमक

प्रमाण नीपजे एटले पट्टुदि मांहे चोथी संख्यातगुणवृद्धि पूरीथई संयम स्थानक चारित्र परिणामरूप होवाने लीधे अरूपीठे तेमाटे हे सर्वज्ञ ते सर्वतु जाणेठे पुनरपि त्रिक वृद्धी तणाजी ॥ पूरी ध्यानक सर्व ॥ असंख्यात गुण वृद्धिनुंजी ॥ ध्यानक एक अर्गव ॥ गु० ॥ १५ ॥

अर्थ - संख्यातगुण वृद्धिकंमकना चरमास्थानकथी आगल वली त्रणवृद्धिना एटले अनंतजागवृद्धि असंख्यातजागवृद्धि अने संख्यातजागवृद्धि ए त्रणवृद्धिना स्थानक जेटला पूर्वे ग्यांठे ते सर्व संयमस्थानक पूरीने नीपजावीने ते पठी असंख्यातगुण वृद्धिनुं एक संयमस्थानक आवे माटे हे अर्गव पाश्चात एटले पूर्वे थयला अनंतर कंमक ना चरम संयमस्थानकमां जेटला अविजागठे तेने असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाणे गुणाकार करतां जेटला अविजागथाय तेटला अविजाग प्रथम असंख्यगुण वृद्धिना स्थानकमा वधे ॥ १५ ॥

चउरंतर चउरंतरेजी ॥ ध्यानक कंमक मेय ॥ असंख्यात गुण वृद्धिनाजी ॥ पंढित वीर्य वरेय ॥ गु० ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ तेवारपठी वली आगलपण चार चार वृद्धिने विचालें एकेक असंख्यातगुण वृद्धिनुं संयम स्थानक नीपजे एम नीपजावता कंमक मात्र थाय ए असंख्यात गुणवृद्धिना संयम स्थानक एटले असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानक पठी अनंतजागवृद्धि असंख्यजागवृद्धि संख्यातजागवृद्धि संख्यात गुणवृद्धि एवां चार वृद्धिना स्थानक कखापठी असंख्यगुणवृद्धिनुं बीजुं स्थानक आवे एरीते चार चार वृद्धिने विचालें एकेक असंख्यातगुण वृद्धिनुं स्थानक करतां कंमकमा त्रयाय एटले पट्टुदिमांहे असंख्यगुण वृद्धिरूप पांचमी वृद्धि पूरीथई ए सर्व संयमस्थानकरूप आत्मगुण ते हे वीर हे परमेश्वर तुमें पंढित वीर्यकरीने वखां पाम्या माटे तुमे वच पूज्य स्तुत्यठो तमारी स्तवना करतां एवां गुण पामिये ॥ १६ ॥ उपर वली चउ वृद्धिनाजी ॥ फरसे ध्यानक सार ॥ तद

नंतरनंत गुणनुंजी ॥ ध्यानक एक उदार ॥ गु० ॥ १७ ॥

अर्थ - हवेते असंख्यगुणवृद्धि कंमकना चरम स्थानकने उपर वली चारवृद्धिना स्थानक एटले अनंतजागवृद्धि तथा असंख्यजागवृद्धि अने संख्यातजागवृद्धि तथा संख्यातगुणवृद्धि ए चार वृद्धिना सर्व स्थानक फरसे हे सार हे जगत उत्कृष्ट प्रभु तेवार पठी वली आंतरारहित अनंतगुणवृद्धिनुं एक प्रथम स्थानक

महोदुं आवे एटले पाश्चात्य जे (पूर्वैथयला) अनंतर संयम स्थानकमां जेटला अ
विनागढे ते सर्व जीवोनी संख्यारूपजे अनंतोढे ते अनंता साथे अनंतगुणकरतां
जेटला अविनागथाय तेटला अविनाग अनंतगुणवृद्धिना प्रथम स्थानकमां वधे.

पंच पंच बुद्धी विचेंजी ॥ ठाण एक इक जोय ॥ इम

अनंत गुण बुद्धिनाजी ॥ कंमक माने होय ॥ गु० ॥ १८ ॥

अर्थः-- अनंतगुणवृद्धिना प्रथम स्थानक पढी अनंतर अनंतजागवृद्धि असंख्य
जागवृद्धि संख्यातजागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि एवां पांच वृद्धि
रूप समस्त संयम स्थानक उपजे तेवारपढी एक अनंतगुणवृद्धिनुं बीजु संयम स्था
नक आवे एरीते पांच पांच वृद्धिने विचमां एक एक अनंतगुणवृद्धिनुं स्थानक नीपजे
ते ज्ञान दृष्टिं जुठ एम करतां अनंतगुणवृद्धिना संयमस्थानक केटलाथाय ते
कहे ठे कंमक प्रमाणेहोय एटले अंगुलना असंख्यातमां जागमां जेटला आकाश
प्रदेशठे तेनाजेटला अनंतगुण वृद्धिना संयम स्थानक थाय ते कंमक थयुं ॥ १८

उपर वली पंच वृद्धिनाजी ॥ फरसे संयम ठाण ॥ प्रव

चन अनुसारें कह्युंजी ॥ पट थानक परिमाण ॥ गु० ॥ १९ ॥

अर्थः-- हवे अनंतगुणवृद्धिना चरम स्थानकने उपर वली मूलथकी पांचे वृ
द्धिना सर्व संयमस्थानक फरसे पण पांचवृद्धि पूरी कखापढी प्रसंगे आव्युंजे अ
नंतगुणवृद्धिनुं स्थानक ते न करवुं केमके पट स्थानक पूरुथयुं तेमाटे, एरीते पट
स्थानकना परिमाणनी परुपणा ते प्रवचनअनुसारेके० कल्पनाप्य तथा प्रवचन
सारोक्षरनी टीकाने अनुसारे कही ॥ १९ ॥

असंख्य लोकाकाशनाजी ॥ प्रदेश ने परिमाण ॥ इक पट

थानक ऊपरेंजी ॥ ऊठे वलि पट ठाण ॥ गु० ॥ २० ॥

अर्थः-- चक्रदराज प्रमाण एक लोकाकाशठे एहवा असंख्याता लोकाकाश
अलोकमां कल्पीयें तेना जेटला आकाश प्रदेशनुं समूहथाय तेटला प्रदेशने प्रमा
णे एक प्रथमनुं मूल पट स्थानक ने ऊपर ऊपर वली बीजा पट स्थानिक ऊपजे
एटले असंख्यातिवार ऊपरा ऊपर पट स्थानकथाय ऊक्तंच ठाणग अवसाणे,
अन्नं ठाणपं पुनो अन्नं; एव मसंखा लोगा, ठाणणां मुण्येयवा ॥ १ ॥ ॥ २० ॥

ए संयम गुण ठाणमांजी ॥ जे वरते मुनि सोय ॥ वंध

अपर नजना पणेजी ॥ जाप्यकल्पमां जोय ॥ गु० ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ ए संयमके० चारित्र गुणस्थानकमां एटले ठछागुणगणाना आद्यना स्थानकथी मांमीने यथाख्यात चारित्ररूप चरम स्थानकपर्यंत तेमाजे मुनिराज वर्तते ते मुनि वांदवायोग्यते पण वेशमात्रने वांदवानुं प्रयोजननथी कर्कच वे सोवि अप्यमाणो, असंजमपएसु वट्टमाणस्त ॥ किंपरि अन्तियवेसं, विसं न मा रेइ खळ्कतं ॥१॥ इति माटे अपरके० बीजा जे संयमश्रेणीथी बाह्य ते नजनार्ये वदनीक एटले कारणे वांदवायोग्य पण कारणविना वांदवायोग्यनही ए अर्थ वृहत्क ल्पनाप्यमा जोईजेवुं कर्कच संयम वाण तियाण, किइकम्मं वाहिराणइ यवं ॥ ११ ॥

इहां षटस्थानकना नामकहेते ? अनंतजागवृद्धि १ असंख्यजागवृद्धि २ संख्या तजागवृद्धि ४ संख्यातगुणवृद्धि ५ असंख्यातगुणवृद्धि ६ अनतगुणवृद्धि एमां जाग तथा गुण वृद्धिकही ते केवी संख्याये ठे ते जाणवाने आगमनी गाथाकहे ठे.- सब जिएहि अनंत, जागंच गुणं असंख लोगेहि ॥ जाणअसंखं संखं, संखि श्रेणं च जिष्ठेणं ॥ १ ॥ एनोअर्थ.- एपटवृद्धिरूप पट स्थानकनेनिषे जे अनत जागनुं स्थानक तथा अनंतगुणनुं स्थानक ए वे स्थानकंनी संख्या ते सर्व चऊद राजलोकमां जेटला जीवनी संख्याठे ते संख्याये जागतथा गुणनीवृद्धि करवी अने असंख्यजागवृद्धि तथा असंख्यगुणवृद्धि ए वे स्थानक ते असंख्यात लोकाकाश प्रदेश नी जेटली संख्याठे ते संख्याये जाग तथा गुणनीवृद्धिकरवी अने संख्यात जागवृद्धि तथा संख्यातगुणवृद्धि ए वे स्थानक ते उच्छ्रु संख्यातानी जेटली संख्याठे तेटली संख्याये जाग तथा गुणनी वृद्धिकरवी इतिचाव.

तथा जे संयमस्थानक अनतजागवृद्धिने पामे ते पाठला संयमस्थानकना जे टला अविजाग होय तेने समस्त जीवनी जेटली संख्याठे ते संख्याये जाग आप तां जेटला अविजाग आवे तावत्प्रमाण अनतजागे अधिक जाणवु अने जे संयमस्थानक असंख्यातजाग वृद्धिनेपामे ते पाठला संयमस्थानकना निर्विजाग जा ग जेटलाहोय तेने असंख्य लोकाकाश प्रदेशप्रमाणे जाग आपतां जेटला अविजाग जाणे तावत् प्रमाण असंख्येयजागे अधिकजाणवुं तथा जे संयमस्था नक संख्यातजाग वृद्धिने पामे ते पाठला संयमस्थानकना जेटला अविजागहोय तेने कच्छ्रु संख्याताये जाग हरता जे अविजाग जाणे तेटला संख्यातजागे अ धिक जाणवुं वली जे संयम स्थानक संख्यातगुण वृद्धिनेपामे ते पाठला संयम स्थानक ना जे निर्विजागजागठे तेने कच्छ्रु संख्यातगुणनी रातियेगुणता जे अ विजागथाय तावत्प्रमाण संख्यातगुणे अधिक जाणवु तथा जे संयमस्थानक असं

ख्यात गुणवृद्धिने पामे ते पाठला संयमस्थानना जे अविनागठे तेने असं
ख्यात लोकाकाशनाजे प्रदेशठे तद्गुणित करिये तावत् प्रमाण असंख्यातगुणो अ
धिक जाणवुं तथा जे संयमस्थानक अनंतगुणवृद्धिने पामेठे ते पाठला संयम
स्थानकना जेटला अविनागठे तेने समस्तजीवोनी अनंति संख्याये गुणतां जेटला
अविनाग थाय तावत्प्रमाण अनंतगुणो अधिक जाणवुं. इतिज्ञेयं. ॥ २१ ॥

पट ध्यानक संयम तणाजी ॥ कहेतां स्तवतां वीर ॥ ह्
माविजय जिन चक्तिथीजी ॥ उत्तम लहे नव तीर ॥ गु० ॥७५॥

अर्थ ॥ ए संयमना पटस्थानक कहेतां थकां तथा संयमश्रेणे गर्जित वीर प
रमेश्वरने स्तवतां तथा वली कृमागुणे करीने मोहवुं जेणे विजय कखोठे, अणुत्तरा
ए खंतिए इतिवचनात् एहवा जिनके० वीतराग जे श्रीवीरस्वामि तेनी चक्तिथी
उत्तमजीव होय ते नवके० संसारसमुद्रनो पारपामे सिद्धपरमेश्वरथाय एटले पं
मित श्री कृमाविजयगणि तत्शिष्य पंमितश्री जिनविजयगणि तेमनी चक्तिथी मु
नि उत्तमविजयजी संसारनो पारपामे एमपण जाणवुं ॥ २२ ॥

अवतरणः— पूर्वोक्त संयमस्थानक समजवाने सुगमथाय तेमाटे श्री वीरप्रभु
नी स्तवनाकरतां यंत्रनो बीजोढालकहेठे इति संबंध ॥

ढाल बीजो सुरतीमहीनानीदेशी.

वस्तु स्वभाव प्रकाशक जाशित लोगाळोग ॥ वीर जगत
गुरु भोगवे रत्नत्रयीनो भोग ॥ संयमना पट ध्यानिक सूक्ष्म
बुद्धि गम्य ॥ स्व पर विबोधन हेतें थापुं यंत्र सुरम्य ॥ २ ॥

अर्थ— सदसदादिक अनंतधर्मात्मक वस्तुस्वभाव तेनुं प्रकाशक तथा केवल
ज्ञानरूप आरसीमां जेने लोकाळोकुं स्वरूप नास्योठे एहवो श्रीवीरपरमेश्वर त्र
णजगतनो गुरु जावरत्नत्रयीनो आस्वाद अनुभवठे सम्यक्ज्ञान यथार्थविबोध स
म्यक्दर्शनं तत्वप्रतीति सम्यक्चारित्रं निजस्वरूप रमण स्थिरतारूप इति रत्नत्रयी
स्वरूपं संयमनी पटवृद्धिना स्थानक तीक्ष्ण बुद्धिये गम्यठे तेमाटे पोताने तथा
परने समजवाने अर्थे असत्कल्पनाये मनोहर यंत्रथापुनुं तिहां अनंत जागवृद्धि
ने स्थानके मीमां अने असंख्यातजागवृद्धि स्थानके एकडा संख्यातजागवृद्धि स्था
नके बगडा संख्यातगुणवृद्धि स्थानके त्रगडा असंख्यातगुण वृद्धिस्थानके चोगडा

अनंतगुण वृद्धिस्थानके पांचडा एम असत्कल्पनाये चारमीमांयें अनंतजागवृद्धि
कंमक चार एकडे असंख्यजागवृद्धि कंमक इत्यादिक संज्ञा जाणवी ॥ १ ॥

जाग अनंतह वृद्धिना ठाणवे कंमक सार ॥ वे यद्यपि ते अ
संख्य ठवुं तस विंडु चार ॥ असंख्य जाग वृद्धिनुं ध्यानक आ
गल एक ॥ तस ठामे ठवुं एको मन धरी अतिहि विवेक ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अनंतजागवृद्धिना स्थानक जलां कंमकमात्र अगुल असंख्यजागगत
आकाश प्रदेश प्रमाणठे एरीते जोपण ते अनंतजाग वृद्धिना स्थानक असंख्या
ताठे तोपण असत्कल्पनाये तेना चारविंडु स्थापुठुं एटले अनंतजागवृद्धिनुं कंम
क पुरुंथयुं तेथी आगल असंख्यातजागवृद्धिनुं स्थानक एक आवे तेने ठेकाणे
मनमा अत्यंत विवेक धरीने एकडो थापुठुं ते पूर्वोक्त स्थानकथी निन्न पाडवा
निमित्तें थापुठुं एम सर्वत्रजाणुं ॥ २ ॥

चउ चउ विंडु अतर इम होय एकाचार ॥ तदनंतर चउ विंडु
सघलां वीस उदार ॥ आगल जाग संख्यातह वृद्धिनो बीठ
जाण ॥ इम चउ विया ठवतां मीमां शत परिमाण ॥ ३ ॥
चउ वीआ वीस एका मीमा शत समुदाय ॥ जागनी वृद्धि मांहे
थयां हवे गुण वृद्धि कहाय ॥ संख्यात गुणनी वृद्धिमांतीठ
आदि उदार ॥ इम सवि मीमा अंका विच ठवि तिआ चार ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ वली आगल अनंतजाग वृद्धिना एक कंमक जेटला स्थानक थाय तेने
ठेकाणे चारविंडु थापीये आगल असंख्यजाग वृद्धिनुं एक स्थानकठे तेमाटे वली
एकडो थापीये एरीते चारचार विंडुने आतरे जेवारे चार एकडाथाय एटले असंख्य
जाग वृद्धिनुं कंमक पुरुंथयु तेवारपठी आतरा रहीत ठेडानुं अनंत जागवृद्धिनुं कं
मक आवे तेने ठेकाणे चारविंडुथापीये एटले सघला सरवाले चार एकडाने वीस
मिमांथया, ते पठी आगल संख्यातजाग वृद्धिनुं स्थानक एक आवे तेने ठामे वग
डानी थापना जाणीये एरीतें चार एकडा गर्जित वीसविंडु अनंतर संख्यातजा
ग वृद्धिनुं एक एक वगडो आणतां जेवारे चार वगडाआवे तेवारे संख्यातजागवृद्धि
नुं कंमक पुरुंथाय तेवारपठी वली ठेडे चार एकडा गर्जित वीस मीमाआवे एम सं
ख्यातजाग वृद्धिपर्यंत सर्व समुदाये मीडा (१००) एकडा (२०) वगडा (४)

एतावता संख्यात जागवृद्धिनुं कंमक एक असंख्यातजागवृद्धिना कंमक पांच अनंतजागवृद्धिना कंमक पचवीस एटला स्थानक असत्कल्पनायें जाग वृद्धिमांथया हवे गुणवृद्धिमांहे जे स्थानकथाय ते कहेठे हवे आगल संख्यातगुण वृद्धिनुं एक स्थानकआवे तेने ठेकाणे एक त्रगडो थापीये एटले संख्यातगुण वृद्धिमां प्रथम उत्तमस्थानकनो त्रगडोजाणवो एरीते वली पण पूर्वला चार बगडा वीस एकडा गर्जित शतमिंमा थापीने तेने अनंतर बीजो त्रगडोआवे एरीते जेवारे चार त्रगडा थाय तेवारें ते चार त्रगडे संख्यातगुण वृद्धिरूप कंमक पुरुंथयुं चोथा त्रगडाने अनंतर वली चार बगडा वीस एकडा अने शत मीडा थापीयें ॥ ३ ॥ ४ ॥

वीस बीआ शत एका पण सय विंछु मान ॥ असंख्यात गुण वृद्धिनो चोको धुरि मंमाण ॥ इम चउ चोका आणतां तिक वीस दिक शत जोय ॥ पण सय एकडा मींडा पंचवीससैं होय ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ इहां संख्यातगुण वृद्धिपर्यंत सर्वमली त्रगडा चार बगडा वीस अने एक डा शो तथा पांचसैं मींमा एटले संख्यातगुण वृद्धिनुं कंमक एक अने संख्यात जाग वृद्धिना कंमक पांच असंख्यातजाग वृद्धिना कंमक पचीस अनंतजाग वृद्धिना कंमक एकसो ने पचीस थाय तेवार पठी असंख्यातगुण वृद्धिरूप प्रथम स्थान कनो चोगडो मांमीये फरी चार त्रगडा वीस बगडा एकसो एकडा सहीत पांचसो मी मा गयेथके वली बीजो चोगडो मांमीयें ए परीपाटीये जेवारे चार चोगडाथाय एटले असंख्यात गुण वृद्धिनुं कंमक पुरुंथयुं वली चोथा चोगडाने अनंतर चार त्रगडा वीस बगडा एकसो एकडा अने पाचसैं मींमा थापीये तो सर्वमली चार चोगडा वीस त्रगडा एकसो बगडा पाचसे एकडा पचीसोमींमा थाय एटले असंख्यात गुण वृद्धिनुं कंमक एक संख्यात गुणवृद्धिना कंमक पांच संख्यात जागवृद्धिना कंमक पचीस असंख्यात जागवृद्धिना कंमक एकसोपचीस तथा अनंतजागवृद्धिना कंमक ठसोने पचीस थया ॥ ५ ॥

हवे अनंत गुण वृद्धि पदे ठेवि पंचक चंग ॥ पुनरपि पूरव रीतें मींडां अंक सुरंग ॥ तिवार पठी पंचक इम पंचक चउ जव थाय ॥ आगे पण पंचवीससैं मींमां अंक कराय ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवे अनंतगुण वृद्धिपदेके अनंतगुण वृद्धिरूप प्रथम स्थानकने ठे काणे एक पांचमोथापीये पुनरपि पूर्वलीरीते चार चोगडा वीस त्रगडा एकसो बग

डा पाचसो एकमा गर्जित पचवीससो मीमाथापीयें तेवारपठी बीजो पांचडो था पीयें एरीते अनुक्रमे जेवारे चार पांचडा थपाय तेवारे अनतगुण वृद्धिरूप कंमक पुंस्थाय वली आगलपण चोथा पांचडाने अनंतर चारचोगडा वीसत्रगमा एकसो वगमा पाचसो एकडाये युक्त पंचवीससो मीमांकरीये एटले एक पटस्थानक पुंस्थायुं.

पांचडा चोगडा त्रगडा वगडा एकडा विडु ॥ पट थानकनां

यंत्रनी संख्या कहे जिनचंडु ॥ चउ वीस सय पणसय पच

वीस सय सार ॥ अंका मीडा गणतां साढा वारहजार ॥ ७ ॥

अर्थ - हवे पटस्थानक मध्ये आक तथा मिंमानी संख्याआवी ते पश्चातुं पूर्विये कहियेते पांचडा चोगडा त्रगडा वगडा एकडा तथा विडु तेना समुदायरूप पटस्थानकना यंत्रनी संख्या ते श्री जिनचंडुके ० रूपजादिके कही तेरीते हे वीर परमेश्वर तमे फरसी ते आवीरीते चारपांचडा वीसचोगडा एकसोत्रगडा पाचसो वगडा पचवीसो एकडा अने साढावारहजारमिमा सरवालेथाय एटले अनंतगुण वृद्धिंतुं कंमक एक असंख्यातगुण वृद्धिना कंमकपाच संख्यातगुण वृद्धिना कंमक पंचवीस संख्यातजाग वृद्धिना कंमक एकसोपंचवीस असंख्यातजाग वृद्धिना कंमक ठसोनेपंचवीस अने अनतजागवृद्धिना कंमक त्रणहजार एकसोने पचवीस ए सर्वमली (३९०६) कंमक थयां ए सर्वयंत्रमाणे अस्तत्कटपनाये लख्युंते पण परमार्थरीते तो आगला ढालमा कहीसुं ॥ ७ ॥

सयम श्रेणिमा श्रेणि कृपक लहि सुकृ ध्यान ॥ घाती करमनो

कृयकरी पाम्यो पंचम ज्ञान ॥ प्रवचनसारनी वृत्तिमां यंत्रनी

उवणा दीउ ॥ कृमाविजय जिन वयणथी उत्तम चित्त पविउ ॥ ७ ॥

अर्थ -संयमश्रेणी आरोहता अनुक्रमे कृपकश्रेणीमां सुकृध्यान पामीने घाति यां चारकर्म कृयकरता यथाख्यात चारित्र केवलज्ञान केवलदर्शनरूप रत्नत्रयी पाम्या तदनुक्रमो यथा अप्रमत्तगुणगणे अनंतानुबधीनी चोकडी दर्शनमोह त्रिक एव सातप्रकृति कृयकरी अपूर्वकरण अनिवृत्ति गुणगणे चढ्या तिहां अनिवृत्ति ना प्रथमजागने अंते सोलप्रकृति खपावे तन्नाम थावरतिरिनरयाएव डुगथीणति मेगविगलसाहरति इति वली बीजाजागने अंते अप्रत्यारख्यानी चोकडी तथा प्रत्यारख्यानी चोकडी एव आठप्रकृति खपावे त्रीजेजागे नपुसकवेद खपावे चोये जागे स्त्रीवेद खपावे पाचमेंजागे हास्यठक खपावे ठेजागे पुरुषवेद खपावे सात

मैंजागें संज्वलननुं क्रोधखपावे आतमेजागें संज्वलननुमान खपावे अने नवमेंजागें संज्वलननी माया खपावे एरीते नवमें गुणठाणे बीजापायाथी वीसप्रकृति खपावे पठी दशमेगुणठाणे संज्वलननुं लोच खपावतो शुक्लध्याननुं प्रथक्त्व वितर्क संविचाररूप प्रथमपाद तडूप अन्लेकरी सकल मोहनीय जस्म शांतकरे पठी द्वीणमोह गुण ठाणे चढे ह्यायक चारित्रवतथाय तिहां एकत्व वितर्क अविचाररूप शुक्लध्याननुं बीजोपाठ अनुजवी द्विचरम समय निडाडुगखपावी चरमसमये ज्ञानावरणीपांच दर्शनावरणीचार अंतरायपांच एवं चउदप्रकृति ने ह्ये अनंत चतुष्टी विनूपित सिद्धवधु योग्यथाय इतिश्री सिद्धसेनद्विवाकर कृत प्रवचनसारोद्धारनी वृत्तिमां प टस्थानकना यंत्रनीस्थापनादीठी ते ह्येमायें उपलक्षित जे दशविधधर्म तेणेकरी विशेपे जयवता एवां जिनके० श्रुतकेवली अवधिजिन मनपर्यवजिन जे सुधर्मा स्वामी तेना वयणके० वर्त्तमान आगम तेथी उत्तम साधु साध्वीउने फरसनरूपे तथा उत्तम श्रावक श्राविकाने श्रद्धा मनोरथ रूपें संयमश्रेणी चित्तमांपेठी एटले पंढितश्री ह्येमाविजयगणि शिष्यरत्न पंढितश्री जिनविजयगणि ना वचनथी मुनि उत्तमविजयना चित्तमां यंत्रनीस्थापना पेठी एटले स्थिरपणोरही इति ए पण सोचवुं

अवतरणः— प्रथमढाले षटस्थानक परूपणाकीधी बीजाढालें तेनायंत्रनी स्थापनाकरतां स्यूलवुद्धिनेपण सुखेसमजाय तेमकखुं हवे एकांतरादिक मार्गणाये को ईपूठे तेने सुखे कहीसकियें तेरीते वीरप्रभुनी स्तवनाकरतां अधस्तन स्थान परूपणानो ढाल कहियेढे इति संबंध जाणवो ॥

ढाल त्रीजो एकवीसानी देशीनो.

आतम रामीरे, शिव विसरामी नित्यनमु ॥ प्रभुजी स्तवतारे पाप पोताना निगमु ॥ षटस्थानिकरे जे अह ठाण परूपणा ॥ सुणो सयणारे वयणा कल्पनी ज्ञाप्यना ॥ १ ॥ त्रूटकः— आदि असंख असं वृद्धिथी कहो ॥ जाग अनंत असं केटलां ॥ हेठथानिक एम पूठत ॥ कइयें कंमक जेतलां ॥ जाग संख्या तह गुण संख्याते ॥ असंख अनंतह गुण वली ॥ तस प्रथमथी कहे अथ अनंतर ॥ कंमक माने केवली ॥१॥ इत्यनंतरमार्गणा अर्थ ॥ शुद्ध निर्मल निकलंक आत्मस्वभाव रमणशील निरुपड्व्यस्थान द्वैत्रथी उर्ध लोकाग्रभावथी निरावरणावस्था तेनेविषे विसरामी एवां श्री वीरप्रभुने नित्य

सदा नमस्कारकरुं ए प्रचुने स्तवतां अनेकजवोपाजित पोतानाकखां खीरनीरनी
परे अनेदरह्या जे पापकर्म तेने निगमु के० गमावु प्रचोर्नमस्कार स्तुतिफल
मेतदेव संयम पट स्थानकनेविपे जे अनंतर एकांतरादिक अद्वाण परू पणाठेतेहे
सम्यकृष्टी उत्तमसङ्गनो तमे सांजलो ए वचन श्रीबृहत्कल्पना जाप्यनाठे ॥ १ ॥

हे उत्तमजीवो तमे कहोके असंख्यात जागवृद्धिना प्रथम संयम स्थानकथी
अनंतजाग वृद्धिना हेवला संयमस्थानक केटलांगया एम कोई पूठे तेने उत्तर जे
अनंतजाग वृद्धिना हेवलास्थानक एक कंमक जेटला गयाठे केमके अनंतजागवृद्धि
कंमकपूरंथयुं तेने अनंतरेज असंख्यातजाग वृद्धिनुं प्रथम स्थानक थयुंते तेमाटेज एम
केवुं तेमज संख्यातजाग वृद्धिना प्रथम संयम स्थानकथी असंख्यातजाग वृद्धिना हे
वला संयम स्थानक केटलागया तथा संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी सं
ख्यातजागवृद्धिना हेवला स्थानक तथा असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी
संख्यातगुण वृद्धिना हेवला स्थानक वली अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी
हेवला असंख्यातगुण वृद्धिना स्थानक केटला गयां ए रीते कोइ पूठे तेवारे सर्व
त्र हेवला अंतरा रहीत मार्गणाये कंमक प्रमाणे संयम स्थानक केवलीकहे थ
डुकं पंचसंयहे सवासिं बुद्धिण कंमक मेता अनंतरा बुद्धि ॥ इत्यनंतरमार्गणा ॥ २ ॥

एकांतररे मार्गणा सुणो सवि संतरे ॥ जाग संख्यातेरे मूल था
नकथी तंतरे ॥ हेठे थानिकरे जाग अनंतना जापीये ॥ एककं
मकरे कंमक वर्गते दापीये ॥ ३ ॥ त्रुटक ॥ दापीये गुण संख्या
तथी वली ॥ असंख अनंत गुणथी तथा ॥ पढम ठाणथी एक
अंतर ॥ कंमक वर्ग कंमक यथा ॥ इति एकांतर मार्गणा ॥ एक
अंतर मार्गणा कही ॥ सुणो द्वंतर मार्गणा ॥ संख्यात गुण
थी हेठथानक अनंत जागना सुजमना ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे एकांतर मार्गणा कहेठे ते हे सर्व संतजनो उत्तम पुरुषो तमे सां
जलो के एकांतरमार्गणाते सुं जे एकवृद्धि विचमां पडतीमूकीने पृष्ठाकरवी ते ए
कांतर मार्गणा कहेवाय ते आवीरीते जे संख्यातजाग वृद्धिना मूलके० प्रथम
स्थानकथी हेवला असंख्यातजाग वृद्धिनाजे स्थानकगयां तेनी पृष्ठानकरवी अने तेने
हेवला वलीजे अनंतजाग वृद्धिना स्थानकगयांते ते पूठवा एम कोईक एकांतरे पूठे ते

वारे एम कहियें जे एक कंमक अने कंमकवर्ग प्रमाण. जेमां हेवल असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्र गयांते तेमां एकेका असंख्यातजाग वृद्धि स्थानकने हेवल एकेक अनंतजाग वृद्धि कंमकगयुंते अने असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्रते माटे कंमक कंमक साथें गुणाकार करियें एटले कंमक वर्ग थाय तनुणोवर्ग इतिवचनात् अने असंख्यातजाग वृद्धि उपरे अनंतजाग वृद्धि एक कंमकगयुंते तेमाटे एकतो कंमकवर्ग अने तेना उपर वली एक कंमकप्रमाण एटला अनंतजाग वृद्धिना स्थानक गयांते एम कहेवुं. ॥ ३ ॥

तेमज वली संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेते संख्यातजाग वृद्धिना स्थानकगयां तेमूकीने असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक पूठवा तथा असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेवल संख्यातगुणवृद्धिना स्थानक गयां ते मूकीने संख्यातजाग वृद्धिना स्थानक पूठवा तेमज वली अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेवल असंख्यातगुण वृद्धिनाजे स्थानकगयां ते पडतामूकीने संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक एकांतर मार्गणाये केटला पामीयें एमकोई पूठे तेने एवुं उत्तर आपियें जे कंमकवर्ग अने उपर एक कंमक जेम पूर्वे कहांते तेम कहेवा इति एकांतर मार्गणा यडकं पंचसंग्रहे एगंतराउठुठी ॥ वगो कंमस्तकंमच इति एरीते एकातर मार्गणाकही हवे द्वंतर मार्गणा सांजलो जे बे वृद्धि वचमा मूकीने पूठीये ते द्वंतर मार्गणा कहियें ते आवीरीते के संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी अनंतजाग वृद्धिना स्थानक केटला गयां एमपूठवाथी हे गुणमना तेकहियेते. ॥४॥

कंडक घनरे, कंडक वर्ग छ, गुणो करो ॥ एक कंमकरे तस संख्या मनमां धरो ॥ छग अंतररे असंख्य अनंत गुणया ल ह्यां ॥ अध स्थानकरे पुरव परें जाणो कहां ॥ ५ ॥ इति द्विकां तरमार्गणा त्रूटकः- त्रिके अंतर कोई पूठे ॥ आदि असंख्य गुण वृद्धिथी ॥ हेठें जाग अनंत केरां ॥ ठाण कहो गुरु वय एथी ॥ कंडक वर्गनुं वर्ग कीजे ॥ कंडक घन त्रिक उपरें ॥ कंडक वर्ग त्रिक एक कंडक ॥ होए ते मनमां धरे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कंमक घन एक अने कंमक वर्ग बे तथा ते उपर एक कंमक एटला स्थानक पामीयें ए सर्व जेजा करतां केटली संख्याथाय ते मनमां धरोके धारणा

सदा नमस्कारकरुं ए प्रभुने स्तवता अनेकजवोपार्जित पोतानाकखां खीरनीरनी परे अजेदरहां जे पापकर्म तेने निगमु के० गमाबु प्रचोर्नमस्कार स्तुतिफल मेतदेव संयम पट स्थानकनेविपे जे अनंतर एकांतरादिक अह्वाण परू पणागेतेहे सम्यक्दृष्टी उत्तमसङ्गनो तमे सांजलो ए वचन श्रीबृहत्कल्पना जाप्यनाठे ॥ १ ॥

हे उत्तमजीवो तमे कहोके असंख्यात जागवृद्धिना प्रथम संयम स्थानकथी अनंतजाग वृद्धिना हेवला संयमस्थानक केटलांगयां एम कोई पूठे तेने उत्तर जे अनंतजाग वृद्धिना हेवलास्थानक एक कंमक जेटला गयाठे केमके अनंतजागवृद्धि कंमकपूरुंथयुं तेने अनंतरेज असंख्यजाग वृद्धिनुं प्रथम स्थानक थयुंठे तेमाटेज एम केवुं तेमज संख्यातजाग वृद्धिना प्रथम संयम स्थानकथी असंख्यजाग वृद्धिना हे वला संयम स्थानक केटलागया तथा संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी संख्यातजागवृद्धिना हेवला स्थानक तथा असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी संख्यातगुण वृद्धिना हेवला स्थानक वली अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेवला असंख्यातगुण वृद्धिना स्थानक केटला गयां ए रीते कोइ पूठे तेवारे सर्व त्र हेवला आंतरा रहीत मार्गणाये कंमक प्रमाणे संयम स्थानक केवलीकहे य डकं पंचसंग्रहे सदासिं बुद्धिण कंमक मेता अनंतरा बुद्धि ॥ इत्यनंतरमार्गणा ॥ २ ॥

एकांतररे मार्गणा सुणो सवि सतरे ॥ जाग संख्यातेरे मूल था नकथी तंतरे ॥ हेठे थानिकरे जाग अनंतना जापीये ॥ एककं मकरे कंमक वर्गते दापीये ॥ ३ ॥ त्रुटक ॥ दापीये गुण संख्या तथा वली ॥ असंख अनंत गुणथी तथा ॥ पढम ठाणथी एक अतर ॥ कंमक वर्ग कंमक यथा ॥ इति एकांतर मार्गणा ॥ एक अंतर मार्गणा कही ॥ सुणो द्यंतर मार्गणा ॥ संख्यात गुण थी हेठथानक अनंत जागना सुजमना ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे एकांतर मार्गणा कहेठे ते हे सर्व सतजनो उत्तम पुरुषो तमे सां जलो के एकांतरमार्गणाते सुं जे एकवृद्धि विचमा पडतीमूकीने पृष्ठाकरवी ते ए कांतर मार्गणा कहेवाय ते आवीरीते जे संख्यातजाग वृद्धिना मूलके० प्रथम स्थानकथी हेवला असंख्यातजाग वृद्धिनाजे स्थानकगया तेनी पृष्ठाकरवी अने तेने हेवला वलीजे अनंतजाग वृद्धिना स्थानकगयाठे ते पूठवा एम कोइक एकांतरे पूठे ते

वारे एम कहिये जे एक कंमक अने कंमकवर्ग प्रमाण. जेमां हेवल असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्र गयांते तेमां एकेका असंख्यातजाग वृद्धि स्थान कने हेवल एकेक अनंतजाग वृद्धि कंमकगयुंते अने असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्रते माटे कंमक कंमक साथे गुणाकार करिये एटले कंमक वर्ग थाय तजुणोवर्ग इतिवचनात् अने असंख्यातजाग वृद्धि उपरे अनंतजाग वृद्धि एक कंमकगयुंते तेमाटे एकतो कंमकवर्ग अने तेना उपर वली एक कंमकप्रमाण एटला अनंतजाग वृद्धिना स्थानक गयांते एम कहेवुं. ॥ ३ ॥

तेमज वली संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेवे संख्यातजाग वृद्धिना स्थानकगयां तेमूकीने असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक पूठवा तथा असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेवल संख्यातगुणवृद्धिना स्थानक गयां ते मूकीने संख्यातजाग वृद्धिना स्थानक पूठवा तेमज वली अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेवल असंख्यातगुण वृद्धिनाजे स्थानकगयां ते पढतामूकीने संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक एकांतर मार्गणायें केटला पामीयें एमकोई पूठे तेने एहुं उत्तर थापिये जे कंमकवर्ग अने उपर एक कंमक जेम पूर्वे कहांते तेम कहेवा इति एकांतर मार्गणा यदुक्तं पंचसंग्रहे एगंतरावबुद्धी ॥ वगो कंमस्तकंमच इति एरीते एकांतर मार्गणाकही हवे द्व्यंतर मार्गणा सांनलो जे वे वृद्धि वचमां मूकीने पूठीयें ते द्व्यंतर मार्गणा कहिये ते आचीरिते के संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थान कथी अनंतजाग वृद्धिना स्थानक केटला गयां एमपूठवाशी हे शुभमना तेकहियेते. ॥४॥

कंडक घनरे, कंडक वर्ग ड, गुणो करो ॥ एक कंमकरे तस संख्या मनमां धरो ॥ डग अंतररे असंख्य अनंत गुणयां ल ह्यां ॥ अध स्थानकरे परव परें जाणो कहां ॥ ५ ॥ इति द्विकां तरमार्गणा त्रूटकः- त्रिके अंतर कोई पूठे ॥ आदि असंख्य गुण वृद्धिथी ॥ हेठें जाग अनंत केरां ॥ ठाण कहो गुरु वयणथी ॥ कंडक वर्गनुं वर्ग कीजे ॥ कंडक घन त्रिक उपरें ॥ कंडक वर्ग त्रिक एक कंडक ॥ होए ते मनमां धरे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कंमक घन एक अने कंमक वर्ग वे तथा ते उपर एक कंमक एटला स्थानक पामीये ए सर्व जेजा करतां केटली संख्याथाय ते मनमां धरोके धारणा

करो तेज विवरिने कहेछे इहां पहेलांतो संख्यातगुण वृद्धिना प्रथमस्थानकथी हेवला संख्यातजाग वृद्धिना एकेक स्थानकने हेवला प्रत्येके एकेक कंमकाधिक कंमकवर्ग एटले एक कंमकवर्ग अने एक कंमक ते अनंतजाग वृद्धिना स्थानकनु, पामिये.

अने संख्यातजाग वृद्धि स्थानक कंमक प्रमाणठे माटे कंमकवर्ग जेवारे एक कंमक साथे गुणिये तेवारे कंमक घनथाय अने एक कंमकठे ते कंमक साथे गुणिये तेवारे कंमकवर्ग थाय अने संख्यातजाग वृद्धि स्थानकने हेवलें कंमकवर्ग अने एक कंमक, पामिये ए सर्व जेला करतां सूत्रोक्त प्रमाणथाय ।

एरीते आगलपण डुगअंतर मार्गणाये असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानक थी तथा अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी यथाक्रमे हेवली असंख्यातजाग वृद्धिना तथा संख्यातजाग वृद्धिना संयम स्थानक पूर्वे जेम कह्याठे तेमजाणो यडुक्त पंचसंग्रहे कंम कंमस्त घनो वग्गो डुगुणो डुगंतरा एउ॥६॥ इति त्रिकांतर मार्गणा

हवे त्रिकांतरमार्गणाये एटले त्रणवृद्धि विचमां मूकीने कोईपूठे के प्रथमजे असंख्यगुण वृद्धिनुं स्थानक तेथी हेवला अनंतजाग वृद्धिना स्थानक केटलाग या ते सुविहित गीतारथ गुरुना वचन जाण्याहोय तो कहो, एक कंमक वर्गवर्ग एटले जेम असत्कल्पनाये चारआंकने कंमकनी स्थापना करिये तेनोवर्ग करतां चारचोक सोलथाय वलोतेनो वर्ग करतां बशोने उपन्नथाय ते वर्गवर्ग कहिये एरीते असंख्यातनो समजवो केमके एक कंमकमा असंख्याता स्थानकठे माटे, हवे ए एकतो कंमक वर्ग वर्ग तथा तेनाउपर वली कंमक घन त्रण तथा वली कंमक वर्गत्रण अने वली उपर एक कंमक होय ते सर्वे उत्तम श्रद्धा सहीत मनमां राखे

ए संख्या शीरीते जाणीये तेरीत कहेछे प्रथम असंख्यगुण वृद्धिना स्थानक थी हेवलें संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक कंमकप्रमाण गयांठे तिहां एकेका स्थानकने हेवलें प्रत्येके अनंतजाग वृद्धिना स्थानक एक कंमकघन तथा कंमकवर्गवे तथा एक कंमक प्रमाण पामिये तेमाटे ए सर्वने कंमक गुणाकरिने सरवालो करीराखियें पठी संख्यातगुण वृद्धि कंमकने उपर एक कंमकघन कंमकवर्गवे अने एक कंमकठे ते पूर्वली रांसीमा प्रहेपीये तेवारे यथोक्त मानथाय यडुक्त पंचसंग्रहे कंमस्त वग्ग वग्गो घण वग्ग तिगुणिया कंम इति ॥ ६ ॥

ठही वृद्धिनारे पहेला ठाणथी हेवला ॥ बीय वृद्धिनारे स्थानक पूरव जेतलां ॥ इति त्रिकांतर मार्गणा, चउरंतरे अनंत गुणा

दिम ठाणथी ॥ हेठ ध्यानकरे जाग अनंत ना मानथी ॥ ७ ॥
 त्रूटक, परिमाणथी ते अष्ट कंडक ॥ वर्गवर्गा पट घना ॥
 चार कंडक वर्ग आगल ॥ एक कंडक सोजना ॥ इति चतुरं
 तर मार्गणा, पर्यवसाननी मार्गणा ते ॥ पट ध्यानिक पूरे करे ॥
 मूलथी संयम ठाण फरसी ॥ वीर विचू केवल वरे ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ एम ठठी अनंतगुण वृद्धिना पहेला स्थानकथी हेठलि बीजी वृद्धिना
 एटले असंख्यात जागवृद्धिना स्थानक पण पूर्वे जेटलां त्रिकांतर वृद्धिना अनंत
 र कट्यांठे तेटला जाणवा इति त्रिकांतर मार्गणा

हवे चतुरंतर मार्गणानेविषे अनंतगुण वृद्धिना आदिमके० प्रथम स्थानकथी
 हेठला स्थानक अनंतजाग वृद्धिना प्रमाणथी केटलाठे ॥ ७ ॥ तेपरिमाणथी
 आठ कंमकवर्गवर्गी तथा ठ कंमकधन तथा चार कंमकवर्ग तथा उपरें एक कंम
 क शोजन संयम परिणामरूपठे ए केवीरीते जाणीयें ते समजावेठे.

अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठलि असंख्यगुण वृद्धिना स्थानक कं
 मक प्रमाण गयांठे अने असंख्यगुणना एकेक स्थानकने हेठल अनंतजाग वृद्धि
 नां स्थानक कंमकवर्गवर्गीएक तथा कंमकधनत्रण अने कंमकवर्गत्रण वली कंमक
 एक प्रमाण पामिये तेमाटे ए सर्वने कंमकगुणा करिये जेथाय ते सरवाजो करी
 राखियें तथा असंख्यातगुण वृद्धिने उपरें कंमकवर्गवर्गीएक कंमकधनत्रण कंमक
 वर्गत्रण कंमकएक पामियेंठे ते पूर्वली रासीमां प्रहेपिये तेवारें यथोक्त मान थाय
 पडुक्त पंचसंग्रहे, अड कंम वगवग्गा, चत्तारि वग्गा ठ ग्यनाकंम ॥ चउ, अंतर
 बुद्धीए, हेठछाण परूवणाए ॥१॥ इति, कंमक संज्ञा चारतेने तजुणोवर्गी सोल वर्ग.
 कंमकगुणो धन चोसठ वर्गवर्गी बसो ठपन्न धनःकंमकगुणोपि बसो ठपन्न यथो
 चित स्थानके संख्याकरजो इति चतुरंतरमार्गणा.

हवे पर्यवसाननी मार्गणा कहेठे पर्यवसान जे ठेहडो तेनी मार्गणा ते पट
 स्थानक पूरेथये जाणवी ए मूलथीके० धुरथी संयमस्थान फरसीने जगततुं नायक
 जे श्रीवीरपरमेश्वर ते केवलज्ञानवखो ॥ ८ ॥

उपर मध्यथीरि संयम ध्यानिक जे नजे ॥ ते नियमारे हेठ न
 तरी पुनरपी सजे ॥ अंतर्मुदूर्त्तनीरि बुद्धी हानि ठाणमां ॥ होय

मुनिनेरे ज्ञानीदिखे ज्ञानमां ॥९॥ त्रूटक ॥ अण्वदुअ विचार
करतां अनंत गुणना थोडला ॥ तेहथी गुणह असंख्य के
रा ॥ कंकक वर्ग कंकक जलां ॥ पञ्चानुपूर्वीं बुद्धि उत्तर एहन्यायें
जावीये ॥ क्कमाविजय जिन चरण उत्तम जक्तिजावें पावीये ॥२०॥

अर्थ ॥ जे उपरना संयमस्थानक तथा वचमांना संयमस्थानक अनुक्रमे फर
से ते नियमा हेव उतरीने कालांतरे पुनरपीके० वली सजेके० सावधानथाय सं
यमश्रेणीपामे यडुकं अंतोमुदुत्त मिचंपि, फासियं दुळ्ळ जेहि संमचं ॥ तेसिंअवदु
पुग्गल, परियट्टो चेव ससारो ॥ १ ॥ जो एमठे तो संयम पाम्यानुं सुं कहेवुं इति
अतरमुदुत्त कालप्रमाणे अधस्तन संयमस्थान थकी उपरि स्तन संयमस्थानारो
हरूप वृद्धि तथा उपर स्तन स्थानथकी अधस्तन स्थानावरोहरूप हाणी मुनिने
थाय ते हे ज्ञानवान वीरपरमेश्वर तमे देखोठो यडुकं कल्पजाये गाथादयं ए
यं चरित्त सेटिं, पडिवळ्ळइ हेव कोइ उवरिवा ॥ जे हेवा पवमिळ्ळइ, सिशइ णिय
मां जहा नरहो ॥ १ मझेवा उवरिवा, नियमा गमणतु हेविमं छाण ॥ अंतो मु
दुत्त बुढी, हाणीवि तहेव नायवा ॥ २ ॥ इति ॥ ९ ॥

हवे अटपबहुलनो विचारकरतां अनंतगुण वृद्धिना संयमस्थानक सर्वथकी थो
डा जाणवा तेथकी असंख्यातगुण वृद्धिना संयमस्थानक कंककवर्ग अने एक कंकक
जेटलां एटले परमार्थे असंख्यातगुणा पश्चानु पुर्वीयें वृद्धि आगले आगले एरी
ते जाविये सर्वत्र अनंतर वृद्धिस्थानक असंख्यातगुणा इतिचाव क्कमानाविजय
एवा जिनके० वीरपरमेश्वर तेना चरणकमलनी उत्तमविधि युक्त जक्तिना महिमा
थकी संयमश्रेणी पामिये नवनिस्तार थइयें संसार समुद्वनो पारपामिये ॥ १० ॥

ढाल चोथो रागधन्याश्री कलसरूप

गायो गायोरे जलें वीर जगतगुरू गायो ॥ एआंकणीठि
संयमश्रेणी थानक पटविधठवणा यत्र बनायो ॥ अह
ठाण परुपण करतां ॥ मनुज जनम फल पायोरे ॥ जले ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ जगतनायुरु जगतनापुज्य एवां श्री महावीरप्रभु तेने जलेजावेकरी गा
यो स्तव्यो संयमश्रेणीना स्तवननी संग्रहगाथा कहेता (कहीने) कलस रचीयेठे प्रथम

ढाले संयमश्रेणीना षटस्थानपरूपणा बीजाढाले यंत्रस्थापना त्रीजाढाले अह्वा
ण परूपणा करतां मनुष्य जन्मतुं फल पाम्बुं ॥ १ ॥

शुद्ध निरंजन अलख अगोचर ॥ एहिज साध्य सुहायो ॥ झा
नक्रिया अवलंबी फरसो ॥ अनुभव सिद्धि उपायोरे ॥ जले ॥ १ ॥

अर्थ ॥ शुद्धनिरावरण निरंजन रागद्वेष अंजन रहित अलख लिपि अगोचर ते
जे स्वरूप चर्म चक्षुर्ये जणायनही एवो परमात्मा स्वरूपानंद विलासी परभाव उं
दासी तेहीज अमारो स्वरूप अमने साध्यपणे सुहायो एटले रुच्यो हे आत्मन्
हे जीव सम्यक्ज्ञान सम्यक्क्रिया अवलंबीने फरसो पामो जे स्वस्वरूपना विचारमां
मनविसरामपामे अने अपूर्व रसस्वादउपजे एवोजे अनुभव ते सिद्धितुं उपायठे
यडुक्तं नाणकिरियाहिंमुक्को इतिवचनात् ॥ १ ॥

श्रद्धा ज्ञान लह्याबि तोपण ॥ जोनवि जाय पमायो ॥
वंध्य तरु उपमते पामे ॥ संयमठाणजो नायोरे जले ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ संयमश्रेणीतुं महीमा कहियेठे जे सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान पाम्याठे
तोपण जो प्रमादस्थानक नजाय तो वांकीया फलरहीत वृद्धनी उपमापामे केम
के जोसंयमस्थानक न आब्योतो राजाश्रेणीक तथा सत्यकी विद्याधरनीपरे जाणवुं;

जम खर चंदन नारनो वाहक ॥ नारनो जागी कहायो ॥ ति
णिपरें ज्ञानी संयम हीनो ॥ सदगतीये नविजायोरे ॥ जले ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेम गर्दन वावनाचंदननो नारवहेतोयको नारनो जजनार कहेवाय
पण सुगंधनो जोगी न कहेवाय तेम ज्ञानीपुरुष चारित्रविना ज्ञाननो जोगीथाय
पण सदगतीजे मोहू तिहांजायनही यडुक्तं जहाखरो चंदन नारवाही ॥ नारस्त
जागी नहुचंदनस्त ॥ एवणुनाणी चरणेणहीणो नाणस्तजागी नहु सुगईए ॥ १ ॥

आश्रव त्यागें संवर परिणति ॥ अविरति सरव उगायो ॥ स्व
स्वरूपमां धिरता तेहिज ॥ संयम शुद्ध उहरायोरे ॥ जले ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ संयमतुं मूलस्वरूप कहियेठे पंचाश्रवने त्यागे पंचसंवर परणतिरूप
मनकरणानियमुज्ज्वीववहो ए वार अव्रतिने अनावें पोताना स्वरूपमां स्थिरता
रमण निश्चिंतानुभव तेहीज वीतरागें आगममां शुद्धसंयम उहरायो ॥ ५ ॥

अनुजव सुरतरु फलने काजे ॥ कीजे आत्म अमायो ॥ सन
मुखजावें जेह प्रवर्तन ॥ तेह निवर्त निदायोरे ॥ जलेण ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ अनुजवरूपजे कल्पवृक्ष तेतुंफलजे मोक्ष ते पामवाने अर्थे आत्मा मा
यारहीत करवो अथवा अनुजवसुखी जीवनमुक्तते मोक्षने सन्मुखजावें प्रभुमार्गा
नुसारी जे प्रवर्तन तेहिज निवर्तनतुं उपायते यडुकं निर्जित मद्मदनानां वाक्का
य मनो विकार रहितानां ॥ विनिवृत्त पराशानां मेहैव मोक्षसुविहितानां ॥ १ ॥ ६ ॥

ज्ञानक्रिया डुग चक्रे शोजित ॥ संयम रथ सुखदायो ॥ अनुजव
धोरी युत शिव नगरे ॥ जाता विघ्ननथायोरे ॥ जलेण ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ ज्ञान अने क्रियारूप वे चक्रके ० पडडा तेणेकरि शोजित एवो संयम
रूप रथ ते सुखदाईते अने अनुजवरूप धोरिये जोडयो तदारूढ आत्मा चिदानं
दने शिवनगरिये जातां निरावरणथातां विघ्न अंतराय कोईनथाय ॥ ७ ॥

रायसिद्धारथ वश विजुपण ॥ तिसलाराणीजायो ॥ अजअज
रामर सहेजानंदी ॥ ध्यान जुवनमां ध्यायोरे ॥ जलेण ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ उदितोदित राजा सिद्धार्थना वंशानो शोभावनारो शील सम्यक्त्व वेस
विरति एवी तिसलाराणीये जन्म्यो अपुनरातृत्तिये योनिनिर्गम एटले हवे सिद्धाव
स्था कहीते जन्मरहित जरामरण रहीत सहेज अकृतम स्वस्वरूपानंदी एवो वीर
परमात्मा तेने ध्यानरूप जाव धरमां ध्याव्यो चितव्यो ॥ ८ ॥

संवत नंद निधि मुनि चंडे ॥ देव दयाकर पायो ॥ प्रथम जिने
सर पारण दिवशे ॥ स्तवना कलश चढायोरे ॥ जलेण ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ नवनंद नवनिधि सातमुनि एकचड अंकानावामतो गतीतिवचनात् एटले
संवत् १४९९ नावरसमां देवदयानो करनार पाम्यो अथवा तेतुं सांसंनपाम्यो
जे दिवशे प्रथम जिनेश्वर श्री आदिनाथें वरसीतपनो पारणो- इक्षुरते श्रेयांसने
हार्थे कीधो ते दिवशें संयमश्रेणे गर्जित श्रीवीरप्रभुतुं स्तवनरूप प्रासादनेविषे क
लसचढाव्यो एटले संपूर्णकीधो ॥ ९ ॥

विजयदेवसूरीस पटोधर ॥ विजयसिंह सवायो ॥ सत्यशिष्याधर
कपूरविजयबुध ॥ कृमाविजय पुण्य पायोरे ॥ जलेण ॥ १० ॥

हवे गुरुपरंपरा लिखीयेँठे श्रीवीरस्वामिना पांचमां गणधर श्रीसुधर्मस्वामि पहे
ला पट्टोधरथया तिहांथी आठपाटलगे नियंत्रबिरुदधारी १ नवमेंपाटे सूरिमंत्र कोटी
वार जप्या माटे कोटीबिरुदधारी २ पन्नरमेंपाटे चंडसूरि चंडवत् घनसोम्यथया माटे
चङ्गहा कहेवाणा ३ सोलमेंपाटे सामंतनडाचार्य धणु निर्ममथया वनवासेरह्या
माटे वनवासी बिरुदधर्युं ४ ठत्रीलमेंपाटे सर्वदेवस्त्रिथया वडतळें आचार्यपद आ
प्युं अने तेना शिष्यजेथया ते वडसाखांनीपरे परिवारे वध्यां तेवली घणागुणे व
ध्या माटे वडगहाकहेवाणा ५ चुमाजीसमेंपाटे आंबिल वईमान तपकीधामाटे रा
णाजीयेँ तपाबिरुददीधो तिहांथी तपाकहेवाण ६ अनुक्रमे बासठमेंपाटे आदेयना
मधारी श्रीविजयदेवसूरि-तत्पटप्रनावक सचाइ विजयसिंहसूरि तेनी साची ग्रहणा
शिक्षा आसेवना शिष्याधारी अर्थात् पंमित सत्यविजयगणि गहनायकनी आज्ञा
मागी क्रिया उदारकीधो श्रीआनंदघनसाथें वनवासरह्या अनेक तपकीधा अनुक्र
मेंवृक्षावस्थाजाणीने अनिहलपुर पाटणमां रहेता धर्मोपदेशदेतां तेमना शिष्य पं
मित कपूरविजय अने पंमित कुशलविजय थयां तेमां श्रीकपूरविजयगणितो अरि
हंतप्रतिमा प्रतिष्ठादिक अनेक धर्मकार्यकारी प्रनावक थया देश नगर पुर पाटणे
विहार करता करतां रह्या तेमना शिष्य पंमित वृक्षविजयगणि तथा पंमित क्रमा
विजयगणि थया तेमां पंमित क्रमाविजयगणि तो देशनाआपवाना गुणेकरी अ
नेक नव्यजीवोने उपकारी पवित्र चरण कमल धारी थया ॥ १० ॥

सूरतमांहे सूरय मंमण ॥ श्रीजिन, विजय पसायो ॥ विजयद

यासूरिराजे जगपति ॥ उत्तमविजय मढ्हायोरे ॥ जलें ० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ श्रीसूरतवंदरे सूर्यमंमण पार्श्वनाथनी स्मृति प्रणति महिमायेँ तथा
पंमित श्रीक्रमाविजयगणि शिष्य रत्न संप्रति विद्यमान चिरंजीवी परमोपकारी पं
मितश्री जिनविजयगणियेँ उद्यमकरी मने प्रथम अन्त्यास कराव्यो ते जेम माता
पिता पुत्रने प्रथम पगमांरुवा तथा बोलवा शिखवे तेम गुर्वादिके मने उपकारकीधो ए
श्री तपागहधिराज नट्टारक श्रीविजयदयास्त्रिश्वरना राजमां जगत्पति जगत् परमे
श्वर श्रीवीरस्वामिने मुनि उत्तमविजये मढ्हायो गायो स्तवनागोचरकीधो ए स्तवन अ
मह्वरी गीतार्थ पुरुषो तमे सोधजो नणावजो नणता नणावतां संयमश्रेणीयेँ नू
पितथइ सहेजानंदपामजो ॥ ११ ॥

इतिश्री संयमश्रेणी गर्जित वीरविजो स्तवनं समाप्तं श्रीरस्तु.

॥ श्री जिनैश्याय नमः ॥

अथ श्री लोकनालघात्रिंशिका बालावबोध सहित-प्रारंभः

प्रथम बालावबोध कर्त्तव्यं मंगलाचरणः—

श्रीमदाप्तं प्रणम्यादौ, जगत स्थिति दर्शकं ॥

वस्ये लोक विचारस्य, वार्त्तिकं समयानु गम् ॥ २ ॥

व्याख्या— जगतनी स्थितिना देखाडनारा एटले जगतनी यथार्थ स्वरूप स्थितिना देखाडनारा श्रीवीतराग जगवानने प्रणाम करीने एटले नमस्कार करीने आ लोकना विचारतुं वार्त्तिक समयानुसारे एटले आगमोक्त प्रकारे हुं कहुं हुं ॥ १ ॥

जिण दंसणं विणजं, लोअं पूरंति जम्म मरणेहिं ॥

जमइ जिउणंत नवे, तस्स सरूवं किमवि बुहं ॥ २ ॥

व्याख्या— 'जिण'—जिन एटले श्रीतीर्थंकरदेव, तत्प्रणीत 'दंसण'—दर्शन एटले सम्यक्त्व, दर्शन अथवा तीर्थंकरतुं दर्शन ते मनोवचन तथा काय ए त्रिकरण नावे करी जे देखवुं ते ठे. 'विण'—ते विना 'जं'—जे 'जम्ममरणेहिं'—जन्म तथा मरणे करी 'लोअ'—लोक एटले सामान्यपणे चौदराज लोकने 'पूरंति'—पूरतो थको 'अणंत नवे'—अनंत नवप्रते 'जिथो जमइ'—जीव प्रमेठे, 'तस्स सरूवं'—ते लोकतुं स्वरूप, आकार, लांबी, पहोलाई तथा जाडाई 'किमवी'—काईक स्तोकात्त्र 'बुहं'—कहुं हुं ॥ १ ॥

अवतरण — अनंत प्रदेश अलोकाकाशनेविपे सामान्यपणे अल्पमात्र लोकनो आकार बखाणे ठे —

वइसाह ठाण ठिय पय, कडिह कर युग नरागिई लोगो ॥

उप्पत्ति नास धुअ गुण, धम्माइ उ दव पडिपुसो ॥ २ ॥

व्याख्या — 'वइसाह'—खाइथो तेना 'ठाण'—विलोववाना समयनेविपे 'ठिय'—स्थित एटले स्थाप्या ठे 'पय'—पद एटले वे चरण जेणे, बली विलोवता 'कडिह'—कटिस्थ एटले कटीनेविपे जे 'करयुग'—हस्थ युगल एवो जे 'नरागिई'—

नराकृति एटले मनुष्यना जेवो जेनो आकार ठे, एवो लोक ठे. तथा विलोववाना अधिकारमाटे नर शब्देकरी प्राये स्त्री जाणी जेवी. स्त्री ज्यारे ठास विलोवेठे, ल्यारे वे पग मोकला राखेठे अने कटिप्रदेशनेविषे यथा बंध संकीर्ण थाय तेनी पते लोक पण हेवल पद्मोलोठे तथा चढतो मध्य जागनेविषे संकीर्ण ठे. वली विलोव तां बन्ने हाथ कटि देशमां राख्यामां आवेठे; ल्यारे वे कोणीना वचला जागमां कटि प्रदेशथी हृदयसुधी चढतो विस्तार थायठे. अने मस्तक दिशी संकीर्ण ठे. तेम लोक पण मध्य जागथी ऊपर चढतां पांचमां देव लोकसुधी विस्तार पामे लो ठे. त्यांथी वली संकीर्ण थायठे. तेमाटे विलोवनारी स्त्रीना आकारनुं दृष्टांत कखुं ठे. हवे ए लोकमां कया कया पदार्थो ठे? ते कहेठे:—‘उत्पत्ति,’—उपजजुं, ‘नास’—नाशने पामजुं, ‘धुअ’—धुअ एटले निश्चलपणुं अथवा स्थिति ए ‘गुण, गुणो जेनेविषे ठे, एवा ‘धम्मइ’—धर्मास्तिकायादिक ‘उदव’—उ, इव्य, एटले पदा र्थ जेमां ‘पडिपुसो’—परिपूर्ण जखा ठे. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशा स्तिकाय पुज्जास्तिकाय जीवास्तिकाय तथा काल ए उ इव्य जाणवां ॥ २ ॥

अवतरण.—केटलाएक परदर्शनी एम कहेठे के; लोक ब्रह्माए उत्पन्न कखो ठे, विष्णु पालना करेठे, महादेव संहार करेठे, शेषनाग काठवो तथा काम धेनु धारण करी रखां ठे, एम कहेठे तेनुं निराकरण करेठे:—

केणवि न कउं न धउं, ऽणाहारो नहठिउं सयं सिद्धो ॥

अहमुहं महमल्लगं लघुं, तडुवरिं संपुटं सरिद्धो ॥ ३ ॥

व्याख्या:—‘केणवि’—कोईए पण; ‘नकउं’—आ लोक उत्पन्न कखो; नथी; ‘नधउं’ कोइए पण धखो नथी ‘अणाहारो’—निराधार ठे. सर्व पदार्थ लोकने आधारे ठे. ‘नहठिउं’—ए लोक नजजे आकाश तेनेविषे स्थित ठे, ‘सयंसिद्धो’—तेथी स्वयंसिद्ध ठे. ए लोकनो आकार प्रकारांतरे कहेठे:—‘अहमुहं’—अधमुख एटले ऊंधो कीधेलो जे मोटो ‘महमल्लगं’—महत मल्लक एटले मोटो सराव; ‘तडुवरिं’—तेनी ऊपर ‘लघु संपुटं’—न्हाना सरावनो संपुट कखो होय तेनी ‘सरिद्धो’—सदृश एटले तेना सरखो आ लोकनो आकार, ठे ॥ ३ ॥

पयतलि सग मक्षेगा, पण कुप्परि सिरतलेग रज्जु पिढु ॥

सो चउदस रज्जुचो, माघवइ तलाउजा सिद्धी ॥ ४ ॥

व्याख्या - 'पयतलि' - पदतले एटले पहेलां जे वैशाख स्थान स्थित मनुष्यने आकारे लोक कह्यो, ते पगना तलियाने ठेकाणे चारेदिशिए सात राज प्रमाण पो लो ठे; अने मध्य जाग जे पुरुषाकारनेविपे नानिनुं गम ठे, त्यांहां एक राज प्रमाण चारे दिशिए पो लो ठे बन्ने हाथनी कोणीना गमनेविपे पांच राज प्रमाण पो लो ठे; अने मस्तकने ठेकाणे एक राज प्रमाण पो लो ठे; वली ते लोक हेतली माघवती सातमो नरक पृथ्वीना तलाथी ऊपर यावत् सिद्ध शिलासुधो जोता चौद राज प्रमाण आ लोक ऊंचो ठे ॥ ४ ॥

अवतरण:- हवे पहोजाणनी स्थिति कहेते.-

सगरज्जु मघवइ तला, पएस हाणीय महियले एगा ॥

तो बुद्धि बंनजा पुण, पण हाणीजा सिवे एगा ॥ ५ ॥

व्याख्या:-माघवती जे सातमी नरक पृथ्वी, तेना तलाथी चारे दिशिनेविपे ए लोक सात राज प्रमाण पहोजो ठे; त्यांथी प्रदेशनी हानी करतां ऊपर तिर्यगलोकनी मही तलनेविपे आवे त्यारे चारे दिशिनेविपे एक राज प्रमाण विस्तार ठे त्यांथी वली ऊपर जातां वृद्धि थाय ठे, ते पांचमो ब्रह्म नामे देवलोक ठे त्यां चारे दिशाए पांच राज प्रमाण पहोजो ठे. त्यांथी वली प्रदेश घटता ठे ते ज्यां सिद्ध शिला ठे त्यां चारे दिशिए एक राज प्रमाण पहोजो ठे तथा हाणी वृद्धि जे ठे ते तो प्रदेश मात्र कही ठे. तो पूर्ण खांदुआ केम मांमिये ठैए? त्यां ए विशेष ठे - जे बन्नेपासे प्रदेशनी हाणी ठे तोपण ऊतरतां तथा चढतां बन्ने पासाना वे त्रिखूणा लई, अवला सवला जोडी खांदुआमां जेलीए त्यारे खांदुआं पूरां थाय एम सर्वत्र जाणुं. हवे विस्तारनो विवरो लावीए ठैए:- सातमी नरक पृथ्वी सात राज प्रमाण, ठठी साडा ठ राज प्रमाण, पांचमी ठ राज प्रमाण, चौथी पांच राज प्रमाण, त्री जी चार राज प्रमाण, बीजी अग्नीराज प्रमाण तथा पहेली घम्मा नरक पृथ्वी एक राज प्रमाण पहोजी ठे. चारे दिशिनेविपे ए विस्तार ठे ऊर्ध्वलोकनो विस्तार आगल कहीणुं ए मान लोकनाल बत्रीशीने अनुसारे कसु ठे. ग्रंथांतर नेविपे अन्यप्रकारेपण दीगामां आवेठे. निश्चयनी वाचातो ज्ञानी जाणे. ॥ ५ ॥

अ०:-हवे लोकनात्र मांमवानो उपाय कहेता प्रथम त्रस नाडोनो विचार कहेते.-

सगवन्न रेह तिरिअं, ठवसु पणुहुं च रज्जु चउअंसे ॥

इग रज्जु विठरा यय, चउइस रज्जुच तसनाडी ॥ ६ ॥

व्याख्या:—सत्तावन रेषा त्रींठी स्थापीये, वली पांच रेषा ऊनी मांदिए, एम करता ऊंचपणे चउ खूणा ठपन्न खंद थाय; त्रींठी सत्तावन्न रेषा ठे. तेमाटे तेना ठप्यन खंद थाय ठे. ऊनी पांच रेषा ठे. तेना त्रींठा चार खांहुआ थाय, चार खांहुए एक राज थाय, तथा ए त्रस नाडी पहोलाईए करी एक राज प्रमाण, अने जां व पणे चौदराज प्रमाण जाणवी. ॥ ६ ॥

अवतरण:— तथा लोकनो मध्य नाल ते त्रस नाडी तेमां वेंडियादिक त्रस जीव जन्ममरण पामे ठे, माटे त्रस नाडी कहेवाय ठे. ए त्रस नाडीनी बाहार जे लोकोनो विस्तार ठे, त्यां स्रक्क एकेडिय निगोद सर्वत्र व्यापी रहूं ठे. ते बाहारा नो विस्तार अधोलोकनेविपे कह्यो हवे ऊर्ध्वलोकनेविपे खांहुआनो विस्तारकहेठे:

उहुं तिरिअं चनुरो, डसु ठ हुसु अठ दसय इक्किके ॥
बारस दोसुं सोलस, दोसुं वीसाय चउसु पुढो ॥ ७ ॥

व्याख्या:—ऊर्ध्व लोकनी श्रेणीनेविपे प्रथम रत्नप्रना नरकपृथ्वी थकी ऊपर जे आठगावीश खांहुआनो श्रेणी ठे. तेमां लोकना मध्यथी ऊपर पहेली वे श्रेणीनेविपे चार चार खांहुआ त्रस नाडीनाज ठे. पण त्रस नाडीथी बाहार नथी. त्यार पठी वली तेथी ऊपर वे श्रेणीनेविपे ठ ठ खांहुआ ठे, एटले चार खांहुआ त्रस नाडीना अने एकेको बन्ने पासानो खांहुआो लेखवतां ठ खांहुआ थाय. त्यार पठी ऊपर एक श्रेणीनेविपे आठ खांहुआ ठे. ते बवे खांहुआ वे पाशे तेनां चार खांहुआ अने त्रस नाडीना चार खांहुआ ए आठ खांहुआ ठे. वली तेनी ऊपर एक श्रेणीनेविपे दश खांहुआ ठे. ते बन्ने पासे त्रण त्रण ठे, अने त्रसनाडीना चार मली दश थाय ठे त्यार पठी वे श्रेणीनेविपे बार बार खांहुआ ठे, त्यार पठी वे श्रेणीनेविपे शोल शोल खांहुआ ठे, तेमज चार श्रेणीनेविपे वीश वीश खांहुआ ठे. ते वधा पृथक् एटले जुजुआ ठे. ॥ ७ ॥

अवतरण:—एवी रीते ऊर्ध्व लोकनेविपे प्रवेशनी वृदिना खांहुआ कह्या, एटले आठगावीश श्रेणीमां चोद श्रेणी थई; हवे हानीना खांहुआ कहे ठे:—

पुणारवि सोलस दोसुं, बारस दोसुं च तिसु दस तिसुठ ॥
ठडसु डमुं चउ खहुअ, सवे चउरुत्तरा तिसया ॥ ८ ॥

व्याख्या.—वली पंदरमी तथा शोलमी ए वे श्रेणीनेविपे शोल शोल खांहुआ

ठे सत्तरमी तथा अठारमी ए बे श्रेणीनेविपे बार बार खाहुआ ठे. अगणीशमी, बीशमी तथा एकवीशमी ए त्रण पंक्तिनेविपे दश दश खाहुआ जाणवा. बावीशमी त्रैवीसमी तथा चोवीशमी ए त्रण पंक्तिनेविपे आठ आठ खाहुआ जाणवा. पचीशमी तथा ठवीशमी ए बे श्रेणीनेविपे ठ ठ खाहुआ ठे अने सत्यावीशमी तथा अठधावीशमी ए बे श्रेणीनेविपे चार चार खाहुआ त्रस माहेलाज ठे ॥ ७ ॥

अवतरण.—एवी रीते ऊर्ध्व लोकनी अठधावीश श्रेणीना खाहुआनुं मान कहुं ए प्रमाणे सर्व ऊर्ध्व लोकना खाहुआ त्रणसेने चार थाय ठे. वली पण कहेठे—

तयरीय लोअ मक्षा, चउ चउ ठाणेषु सत्त पुढवीसु ॥

चउर दस सोल वीसा, चउवीस ठवीस अडवीसा ॥ ७ ॥

व्याख्या—चौद राज प्रमाणनो मध्य एटले जे वज्जेनो प्रदेशठे, त्यांची अधोलो क प्रते ऊत्तरता सात नरक पृथ्वीनेविपे प्रत्येके प्रत्येके चार चार श्रेणीनेविपे क हे ठे ते केम ? अधो लोकनी अठधावीश श्रेणीमा पहेली नरक पृथ्वीनी चार श्रेणी नेविपे चार खाहुआ ठे. तेना शोल खाहुआ थाय ठे बीजी नरक पृथ्वीनेविपे चार श्रेणीए प्रत्येके प्रत्येके दश दश खाहुआ ठे तेने दश गुणा करतां चालीश खाहुआ थाय ठे. त्रीजी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमा प्रत्येके प्रत्येके शोल शोल खाहुआ ठे. तेना चोसठ थायठे, चौथी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमानी प्रत्येकमा वीश वीश खाहुआ ठे तेना एशी खाहुआ थायठे पांचमी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमा प्रत्येके चोवीश चोवीश खाहुआ ठे, तेना ठनु थायठे ठी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमा प्रत्येके ठवीश ठवीश खाहुआ ठे, तेना एकशोने चार थायठे सात मी नरक पृथ्वीनेविपे चार श्रेणीए प्रत्येकमा अठधावीश अठधावीश खाहुआ ठे ते ना एकशोने बार थाय ठे. एवी रीते शोल, चालीश, चोशठ, ऐशी, ठनु, एकशो ने चार तथा एक शें ने बार ॥ ७ ॥

अह पण सय वारुत्तर, खंडुअ सोलहिय अठसय सवे ॥

घम्माइ लोकमक्षं, जोयण अस्संख कोडीहि ॥ १० ॥

व्याख्या—अधोलोकना सर्व एकठा खाहुआ गणिए तो पांचशेने बार उपर थाय अने पूर्वे ऊर्ध्व लोकना त्रणसेने चार कहुआ तेने साथे मलावीये तेवारे सर्व मली आठशेने शोल खाहुआ थायठे. हवे लोकना मध्यनुं ठाम कहे ठे. घम्मा

नामनी प्रथम नरक पृथ्वीनेविषे असंख्यात योजननी कोडी मेरूना मूलनेविषे गो
स्तनाकार रुचकथी हेवज लोकनी मध्यनाग जाणवो. ॥ १० ॥

अवतरणः—हवे चौद राजनेविषे अधो लोक, तिर्यक् लोक तथा ऊर्ध्व लोक
मां कोण कोण रहेते ते कहे ठेः—

सग रज्जु जोयण सया, अठार सुण सगरज्जु माण इहं ॥

अह तिरिय उहु लोआ, निरय नर सुराइ जावुल्ला ॥ ११ ॥

व्याख्याः—लोकना मध्यथी आठमा राजनेविषे समजुतलथी नवज्ञे योजन कं
चो तथा नवज्ञे योजन हेवज ए अठारज्ञे योजन प्रमाण तिर्यग् लोक कहे
वाय ठे त्यारे ऊर्ध्व लोकना सात राज ठे ते अठारज्ञे योजन ऊर्ध्व लोकमां ग
एथाथी हेवजा सात राज ते अधो लोक कहेवाय; आठारज्ञे योजन रहित सातराज
प्रमाण ऊर्ध्व लोक कहेवाय ठे. हवे अधो लोकनेविषे नारकी प्रमुख, तिर्यक् लोक
नेविषे मनुष्यादिक, अने ऊर्ध्व लोकनेविषे देवता प्रमुख वज्ञेते. यद्यपि जवनपत्यादिक
देवता अधोलोकमां वज्ञेते तथापि नारकी घणा ठे, माटे तेज अधोलोके कह्याठे. १ ॥

अह लोय निरय असुरा, वंतर नर तिरिअ जोइस तरुग्गी ॥

दीवु दहि तिरिअ लोए, सुर सिद्धा उहु लोगम्मि ॥ १२ ॥

व्याख्या— पावली गाथानेविषे 'निरय नर सुराइ'—ए वाक्यमां आदि शब्द
आव्यो ठे माटे आदिशब्द निरयादि त्रणे शब्दोनी साथे जोडिये. त्यारे निरयादिक
नारको असुर देवता अधोलोकमां वज्ञेते. व्यंतर नर मनुष्यादिक तिर्यच ज्योतिपी,
तरु वनस्पतिकाय अग्निकाय ए असंख्याता द्वीप समुद्ररूप तिर्यक लोकमा वज्ञेते.
सुरादिक सुर देवता, सिद्ध कहिये मुक्त जीव ते सर्व ऊर्ध्व लोकमां रह्या ठे. ॥ १२ ॥

इक्कि रज्जु इक्कि, निरय सग पुढवि असुर पढमंतो ॥

तह वंतर तडुवरि नर, गिरिमाइ अ जोइसा गयणे ॥ १३ ॥

व्याख्याः— एकेक राज प्रमाण एकेक नरक पृथ्वी ठे. एटले साते नरके सात
राज थया. तथा पहेली नरक पृथ्वीमां असुर एटले जवन पति रहेते, तथा प्र
कारे व्यंतर पण पहेली नरक पृथ्वीमां रहेते. तथा प्रथम पृथ्वीनी ऊपर नर म
नुष्य अनेक नगर गिरि एटले मेरु पर्वतादिक पदार्थना समूह ठे. चंद्रमा, सूर्य, ग्रह,
नक्षत्र तथा तारा ए पांच प्रकारना ज्योतिपी गयणेके ० आकाशनेविषे रहेते. ॥ १३ ॥

ठसु खंमुगेसु अङ्गं, चउसु ङ्गं ठसु अ कप्प चत्तारी ॥
चउसु चऊ ससेसु अ, गेविञ्ज एत्तराय सिद्धंते ॥ १४ ॥

व्याख्या.— लोकना मध्यथी ऊपर ठ खांहुआना ऊपरला जागनेविपे सौधर्म ईशान ए नामना वे देवलोक ठे. एटले अही लोकना मध्यथी दोढ राज ऊंचा वे देवलोकठे वजी त्यांथी चार खांहुआ ऊपरना जागनेविपे सनत्कुमार तथा माहेंड नामना वे देवलोक ठे. त्यांथी ठ खाहुआमां अनुक्रमे ब्रह्म, लांतक, शुक्र तथा सह शार नामना चार देवलोक ठे त्यारपठी चार खाहुआनेविपे चार देवलोक आनत, प्राणत, आरण, तथा अच्युत नामना ठे बाकीना आठ खाहुआनेविपे नव ग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तर विमान ठे तेमां प्रथम चार खाहुआनेविपे नवग्रैवेयकठे ने उपरना चार खाहुआनेविपे पांच अनुत्तर विमानठे अंतखाहुआना ठेडानेविपे सिद्ध शिलाठे. अच्युतरण — एवीरीते ऊर्ध्व लोकनेविपे देवलोकनी स्थिति कही, तेविपे आग मनी साख कहेठे तथा चागमे —

सोहम्ममि दिवद्वा, आहुइजा य रज्जु माहिंदे ॥
चत्तारी सहसारे, पणञ्चुए सत्त लोगतंते ॥ १५ ॥

व्याख्या — लोकना मध्यथी सौधर्म देवलोक दोडराज ऊंचो ठे ; लोकना मध्यथी माहिंदे देवलोक अडीराज ऊंचो ठे, लोकना मध्यथी सहसार देवलोक चार राज ऊंचो ठे, लोकना मध्यथी अच्युत वारमो देवलोक पाचराज ऊंचो ठे; अने लोकना मध्यथी लोकांत सात राजऊंचो ठे. ॥ १५ ॥

सम्मत्त चरण रहिया, सब लोगं फुसे निरवसेसं ॥
सत्तय चउदस जाए, पंचय सुय देस विरईए ॥ १६ ॥

व्याख्या — सम्यक्त्व एटले देवनेविपे देवनी सहहणा, गुरुनेविपे गुरुनी सह हणा, दयामूल धर्मेनेविपे धर्मेनी सहहणा, चरण एटले पंचाश्रवथी विरमण, पांच इन्द्रियनो नियम, अनंतानुबंधिया क्रोध, मान, माया तथा लोचनो त्याग ; मनोदंम, वचन दंम. कायदंम, तेनी विरति एवा जे सयमना सत्तर चेद, तेणोकरी संयुक्त जे चारित्र तेणोकरि रहित एटले मिथ्यात्व कुगुरु, कुदेव, तथा कुधर्मना सहहनार अचिरति एवा जे संसारी जीव तेने सम्यक्त्व चरण रहित कहिये, एवा जीवो चौद राजलोक प्रते सूक्ष्म तथा बादर जीव योनिमा फरता थका निरविशेष

पणो फरसे एटले चौदराजमां तिलमात्र जूमि अण फरसी न मूके; श्रुतज्ञानी जे यति ठे ते लोकना मथ्यथी उंचे सात राज फरसे ठे; कारण के, श्रुत ज्ञानी ने उत्कृष्टी गति सर्वार्थ सिद्धि सुधी ठे एवं सिद्धांतमां कहुं ठे. ते सर्वार्थ सिद्धि लोकना मथ्यथी काई एक कणा सात राज ठे. ते स्तोकमात्र कणा होवा थो. सामान्य पणो पूराज गण्यामां आव्या ठे. “उठमञ्ज संजयाणं, उववाउ उ क्कोत्तउ अखवठे” एम कहुं ठे. ‘चउदस जागे पंचय, वली देशविरति बारव्रत ध र श्रावक ते चौद राजना चौद जागमांथी, पांच जाग ऊर्ध्व लोकना फरडो, केमके, श्रावकनी उत्कृष्टी गति अच्युत नामना बारमा देवलोकसुधी कही ठे ते बारमो देवलोक लोकना मथ्यथी पांच राज उंचो ठे. तेमाटे पांच राज कइया अवतरणः— हवे प्रथम सुचिरळ्हु, प्रतररळ्हु, धनरळ्हु, तेउना अनुक्रमे प्रमाण कहेतां प्रथम सातमी नरक पृथ्वीनी आविथी मांमीने सुचिरळ्हु कहेठे.—

अडवीसा ठवीसा, चउवीसा वीस सोल दस चउरो ॥ सुइ
रज्जु सत्त पुढविसु, चउ चउ नइआउ पयर घणा ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ सातमी नरक पृथ्वीनेविषे अठावीश सुचिरळ्हु ठे, ठवी नरक पृथ्वीने विषे ठवीश सुचिरळ्हु, पांचमी नरक पृथ्वीनेविषे चोवीश सुचिरळ्हु, चोथी नरक पृथ्वीनेविषे वीश सुचिरळ्हु, त्रीजी नरक पृथ्वीनेविषे शोल सुचिरळ्हु, बीजी नरक पृथ्वीनेविषे दश सुचिरळ्हु तथा पहेली नरक पृथ्वीनेविषे चार सुचिरळ्हु, जे चार खंडु आ श्रेणीबंधं, अने पद्दोलार्शेए एकज खंडुआ होय तेने सुचिरळ्हु कहिये. सात मी नरकपृथ्वी चार खंडुआ ऊंची ठे; अने अठावीश खंडुआ त्रीठी ओलीए ठे; ए माटे अठावीश सुचिराज जाणवा. एवी सर्वत्र जावना करवी. हवे ए साते न रकपृथ्वीना सुचिरळ्हुं मान जे एकडोने अठावीश थायठे ते चार जागे करीए तो प्रतर रळ्हुं मान मले वली ते प्रतर रळ्हुं आंक चारे जागे वेतां जे फलितांक थाय तेदला धनरळ्हु जाणवा. चार चार खंडुआ चारे दिशिए एटले अकेक राजजांबो तथा पद्दोलो अने पाराज जाडो होय ते प्रतररळ्हु कहेवाय ठे, तथा चार खंडुआ जाडापणो, जांबपणो तथा पोद्दोलपणो ते धनरळ्हु कहिये. पहेला प्रतर रळ्हुनेविषे शोल खंडुआ होय धनरळ्हुनेविषे चोशठ खंडुआ होय ते आगल कहेवाडो ॥ १७ ॥

अडवीस सयं बसयरि, अह उहुं चउ जुया इसय सवे ॥
सुइ रज्जु पयर रज्जु, दुतीसि गुण वीस इगवसा ॥ १८ ॥

व्याख्या:- अथो लोकनेविपे पांचशेने वार खांहुआ ठे; तेना चार जाग कर तां प्रत्येक जाग एकशेने अठवीशनी थाय तेतला सुचिरकु जाणवा. ऊर्ध्व लोक नेविपे त्रणशेने चार खांहुआ ठे तेना चार जाग करतां प्रत्येक जाग ठोतेरनी थाय, तेतला सुचिरकु जाणवा. ते अधोलोकना एकशेने अठवीश सुचिरकु, तथा ऊर्ध्व लोकना ठोतेर सुचिरकु, ए वन्ने एकवा करिये त्यारे वशेने चार सुचिरकु थाय अधोलोकना एकशेने अठवीश सुचिरकुने चार जाग दैये त्यारे वत्रीश प्रतररकु थाय, ऊर्ध्व लोकना ठोतेर सुचिरकुने चार जाग दैये तो अयोगणीश प्रतररकु थाय ॥ ११ ॥

अवतरण:- हवे धनरकुनुं मान कहेठे:-

घणरज्जु अठ द्विष्ठा, पणुण पणुहुं उने पण तेर ॥

घण पयर सूइ रज्जु, खंडुअ चउसठि सोल चउ ॥ ११ ॥

व्याख्या.- अधोलोकना वत्रीश प्रतररकु ठे, ते चार जागे देतां आठ थाय, माटे अधोलोकनेविपे आठ धनरकु जाणवा ऊर्ध्व लोकनेविपे अयोगणीश प्रतररकु ठे ते चार जागे देतां पोणा पांच धनरकु ठे ते उने कहेतां अध तथा ऊर्ध्व लोक ना एकवा करिये तो पोणा तेर धनरकु थाय हवे धन प्रतर तथा सुचिरकुनुं मान कहेठे- चोसठ खांहुआनी एक धनरकु थाय, शोल खांहुआनी एक प्रतररकु थाय, चार खांहुआनी एक सुचिरकु थाय ए सामान्य प्रकारे दृष्टांत मात्र चतुर स्र लोकनुं परिणाम देखाड्युं; पण लोकनुं स्वरूप वृत्ताकार मधकने आकारेठे, ते वृत्ताकारना खांहुआ यंत्रमां लखाय नही, माटे चौरस कद्यो ठे. ॥ ११ ॥

अवतरण.- हवे मन कल्पनाए रुत वृत्ताकार लोकनेविपे धनरकु, प्रतररकु, तथा सुचिरकुनुं मान कहेठे, तेमां प्रथम खांहुआनी संख्या केहेठे:-

सयवग्गु सिंगुणे पुण, बिसय गुणयाल हवंति घण रकु ॥

समू पणहत्तरि सयं, समू तिसठी अहुहु कमा ॥ १२ ॥

व्याख्या - पोताना वर्गथी खांहुआ गणीए ते आ प्रमाणे - सातमी माधव ती पृथ्वीनेविपे हेठली श्रेणी ए अठवीश खांहुआठे; तेने अठवीशना आंकथी गुणीए त्यारे सातशेने चोराशी खांहुआ एक श्रेणीमा थाय एवी चार श्रेणी ठे. तेथी सातशेने चोराशीने चारे गुणता त्रण हजार एकशेने वत्रीश खांहुआ था य. एम ठवी नरक पृथ्वीनेविपे हेठली श्रेणीए ठवीश खांहुआ ठे तेने ठवीश

थी गुणतां वज्ञेने ठोतेर थाय एवी चार श्रेणीं ठे. तेथी वज्ञेने ठोतरने चार
थी गुणतां वे हजार सातज्ञेने चार घनरङ्गनां खांदुआ थाय. पांचमी नरक पृ
थ्वीनेविपे हेवजनी श्रेणीए चोवीश खांदुआ ठे. तेने चोवीशथी गुणतां
पांचज्ञेने ठोतेर थाय एवी चार श्रेणी ठे तेथी पांचज्ञेने ठोतरने चा
रथी गुणतां वे हजार त्रणज्ञेने चार घनरङ्गना खांदुआ थाय. चौथी नर
क पृथ्वीनेविपे ठेली श्रेणीए वीश खांदुआ ठे तेने वीशथी गुणतां चारज्ञे थाय.
एवी चार श्रेणी ठे तेथी चारज्ञेने चारथी गुणतां शोलज्ञे घनरङ्गना खांदुआ
थाय. त्रीजी नरक पृथ्वीनेविपे ठेली श्रेणीए शोल खांदुआ ठे तेने शोलथी गुण
तां वज्ञेने ठपन थाय एवी चार श्रेणी ठे. तेथी वज्ञेने ठपनने चारे गुणतां ए
क हजारने चोवीश घनरङ्गना खांदुआ थाय बीजी नरक पृथ्वीनेविपे ठेली श्रे
णीए दश खांदुआ ठे. तेने दशे गुणतां एकशो थाय. एवी चार श्रेणी ठे तेथी
एकशोने चारे गुणतां चारशो खांदुआ थाय. अने पेजी नरकपृथ्वीनेविपे ठेली श्रे
णीए त्रस नाडीना चार खांदुआ ठे. तेने चारे गुणतां शोल थाय. एवी चार श्रे
णी ठे तेथी शोलने चारथी गुणतां चोशठ थाय त्यारे पहेली नरकपृथ्वीनेविपे
घनरङ्गना चोशठ खांदुआ जाणवा एवी रीते सात नरकपृथ्वीना खांदुआनो व
र्ग करी सर्व अंक एकठा करीए तो अग्यार हजार वज्ञेने वत्रीश अधोलोकनेविपे
घनरङ्गना खांदुआ थाय हवे कर्ध्वलोकनेविपे घनरङ्गना खांदुआनो विचार क
हेठे.—ऊपर लोकना मस्तकथी आदि लेवी. ऊपरनी श्रेणीए चार खांदुआ त्रस
नाडीना ठे. तेने चारे गुणतां शोल थाय. एवी वे श्रेणीं होवाथी शोलने वमणा
करतां वत्रीश घनरङ्गना खांदुआ थाय तेथी हेवजनी श्रेणीनेविपे ठ खांदुआ ठे.
तेने ठ गुणा करतां-ठत्रीश थाय. एवी वे श्रेणीं होवाथी ठत्रीशने वमणा करतां चो
तेर थाय. पठी आठने आठ गुणा करिये त्यारे चोशठ थाय. एवी त्रण श्रेणीं हो
वाथी चोशठने त्रण गुणा करतां एकशोने वाणु थाय त्यार पठी दशने
दश-गुणा करिये त्यारे एकशो थाय. एवी त्रण श्रेणीं होवाथी एकशोने त्र
णथी गुणतां त्रणज्ञे थाय पठी वारने वार गुणा करिये त्यारे एकशोने चुमाली
श थाय. एवी वे श्रेणीं होवाथी एकशोने चुमालीशने वमणा करतां वज्ञेने
अठथाशी थाय पठी शोलने शोलथी गुणतां वज्ञेने ठपन थाय. एवी वे श्रेणीं होवाथी
वज्ञेने ठपनने वमणा करतां पांचज्ञेने वार थाय पठी वीशने वीशथी
गुणतां चारज्ञे थाय. एवी चार श्रेणीं होवाथी चारज्ञेने चारथी गुणतां शोलज्ञे

थाय वली त्यांथी घटतां शोलने शोलथी गुणतां वज्ञेने उपन थाय. एवी वे श्रेणीओ होवाथी वज्ञेने उपनने वमणा करतांपांचज्ञेने वार थाय त्यांथी हेवज वारने वारे गुणतां एकशोने चुमालीश थाय एवी वे श्रेणीओ होवाथी एकशोने चुमालीशने वमणा करतां वज्ञेने अठाशी थाय त्यांथी हेवज दशने दशे गुणतां एकशो थाय एवी एकज श्रेणी होवाथी एकशोज गणवा. त्यांथी हेवज आठने आठे गुणतां चौशठ थाय एवी एकज श्रेणी होवाथी चौशठज गणवा त्यांथी हेवज ठने ठथी गुणतां ठत्रीश थाय एवी वे श्रेणीउ होवाथी ठत्रीशने वमणा करतां वो तेर थाय त्यांथी हेवजा चारने चारे गुणतां शोल थाय. एवी वे श्रेणीउ होवाथी शोलने वमणा करतां वत्रीश थाय. ए सर्व अंक एकठा करता उर्ध्वलोकनेविपे चार हजारने चौसठ घनरङ्गना खांफुआ थायठे. तेने पूर्वोक्त अधोलोकना अग्या हजार वशो वत्रीस खांफुआनी साथें एकठा गणतां पंदर हजार वशोने ठनु घनरङ्गना खांफुआ थाय एवीरीते पोताना वर्गनी साथे गणतां चौशठ खांफुए एक घनरङ्गना थाय ठे. माटे पंदर हजार वशोठनुने चौशठ जागे वेंचतां वशोने उगणचालीशनो जाग आवे त्यारे ए वृत्ताकार लोकनेविपे वज्ञेने उगणचालीश घनरङ्ग थाय ठे. हवे अधोलोकना तथा उर्ध्व लोकना घनरङ्गउ निन्न निन्न करी कहेठे - 'सडु प ए हत्तरियं' अधोलोकनेविपे एकशोने सामी पचोतेर घनरङ्ग थाय ठे 'सडुति सडुअ हडुडकमा' ऊर्ध्व लोकनेविपे साडी त्रेसठ घनरङ्ग थाय ठे अनुक्रमे ए मान जाणीलेवो ए वन्ने एकठा करिये त्यारे वशोने उगणचालीश घनरङ्ग थाय ॥३०॥

अवतरण:- हवे घनरङ्गना खांफुआना प्रतररङ्ग कहे ठे -

चउ गुणिय पथर रज्जु, सत्त डुरुत्तरय डुसय चउपसा ॥

अह उठ नव ठप्पसा, सवे चउ गुणिय सुड रङ्ग ॥३१॥

व्याख्या:- अधोलोकनेविपे एकशोने साडी पचोतेर घनराज ठे. तेने चारथी गुणतां सातशे ने वे अधोलोकनेविपे प्रतरराज थाय ऊर्ध्व लोकनेविपे साडी त्रेसठ घनराज ठे, तेने चारथी गुणतां वज्ञेने चोपन प्रतर राज थाय एम अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकना एकठा करिये त्यारे नवशे ने ठप्पन प्रतरराज थाय. ए सर्व प्रतर राजने चोगुणा करता जे अंक आवे ते सूचीरङ्गुं मान जाणवु. ॥ ३१ ॥

अवतरण.— हवे सूचीरञ्जुं मान गाथाए करी कहेढे:—

अडवीस सयदुत्तर, दस सोला अठतीस चोवीसा ॥

इय संवग्गिय लोए, तिह रञ्जु खंहुआ नैया ॥१७॥

व्याख्या:— अधोलोकनेविषे सातशे ने वे प्रतर रञ्जु ठे. तेने चोगुणा करतां वे हजार आठशें ने आठसूची रञ्जु थाय. ऊर्ध्वलोकनेविषे बडोने चोपन प्रतर रञ्जु ठे, तेने चोगुणा करतां एक हजारने शोल सूचीरञ्जु थाय. तथा अधोलोक अने ऊर्ध्व लोकना एकठा करता त्रण हजार आठशे अने चोवीस सूची रञ्जु थाय. पोता ना वर्गे गणित लोकनेविषे त्रिक रञ्जु कहिये एम धनरञ्जु तथा प्रतररञ्जु तथा सु चीरञ्जु ए त्रण राजना खांहुआनी संख्या जाणवी. ॥ १७ ॥ हवे वर्गना अंकथी गणतां जे खांहुआनी संख्या आवे ते संग्रह गाथामां कहेढे.—

एगार सहस्र डसया, वत्तीसा चउसहस्स चउसठी ॥ अ

ह उहुं सब पन्नर, सहस्स छुनि सय ठ ननुआ ॥ १३ ॥

व्याख्या:— अधो लोकनेविषे वर्गने अंकथी गणतां अग्यार हजार वशोने व त्रीश खांहुआ थाय ऊर्ध्व लोकनी श्रेणी वर्गना अंकथी गणतांचारहजार ने चोसठ खांहुआ थायतेवेहु एकठा करिये त्यारे पंदर हजार बडोने ने उपन्न थाय॥१३

अवतरण.— हवे वर्ग करवानो विधि गाथाए करी कहेढे:—

अड ठ चउवीस वीसा, सोल दस चऊ अहुहु चउठठा ॥

दस बार सोल वीसा, सरिसंक गुणाउ चउहि गुणे॥१४॥

व्याख्या:— अही वीस शब्द त्रण ठेकाणे जोडवो. ते आम:— अठावीश, ठवीश तथा चोवीश एम जाणवुं. तथा ए माघवती सातमी पृथ्वीथी आदि लईने जे आ ठवीशादिक अंक त्रीठी श्रेणीनेविषे आवे ते पोतपोतानेसरखे अंके गुणी ए अनेएक ठ करिये. पठी तेने चोगुणा करतां जे अक आवे ते खांहुआनी संख्या जाणवी ते आवी रीते.— सातमी नरक पृथ्वीने तलेथी अठावीशने अठावीसथी गुणतां सात शोने चोरासीथाय ठवीसने ठवीशथी गुणतां ठशेनेठोतर थाय; चोवीसने चोवी सथी गुणतां पांचशोने ठोतेर थाय वीशने वीशथी गुणतां चारशां थाय; शोलने शोलथी गुणतां बडोने ने उपन्न थाय; दशने दशथी गुणतां एकशो थाय; अने चारने

चारथी गुणतां शोल थाय, ए साते स्थलना अंकोने एकठा करिये ल्यारे वे हजार आ वशो ने आठ थाय, तेने चोगुणा करता अग्यार हजार बशो ने वत्रीस थाय ए अथो लो कना खांहु आ जाणवा हवे ऊर्ध्व लोकना खांहुआ कहेठे - चार, ठ, आठ, दश, बार, शोल तथा वीश ए अंकोने सरखा अकथी गुणवा, ते आधी रीते - चारने चार गुण कखाथी शोल थाय ठने ठथी गुणतां ठत्रीस थाय, आठने आठथी गुण ता चौसठ थाय, दशने दशथी गुणतां एक शो थाय. बारने बारथी गुणता एक शोने चुमालीस थाय, शोलने शोलथी गुणतां बशोने ठपन थाय, वीसने वीस थी गुणता चारशे थाय, ए सात स्थलोना अक एकठा कखाथी एक हजारने शोल थाय तेने चारथी गुणता चार हजार ने चौसठ ऊर्ध्व लोकना खांहुआनी संख्या थाय. पठी अधोलोकना तथाऊर्ध्व लोकना खांहुआ एकठा करिये ल्यारे पंदर हजार बशोने ठनु थाय. ॥ २४ ॥

अवतरण - वली प्रकारातरे वर्ग करवानो विधि गाथाए करी कहेठे:-

चउ अडवीसा षण्ण, षण्णपरसरिसंक गुणिय पिढुमिलिए ॥

सम दीह पिढुवेहा, उढुमहो खंढुआ नेआ ॥ २५ ॥

व्याख्या - लोकना मस्तकनेविषे ऊपरली त्रीठी श्रेणीए चार खांहुआ ठे सा तमी नरक पृथ्वीनी ठेली श्रेणी अठवीश खांहुआनी ठे एम चारथी आदिलइने ठेली ठपन्नमी श्रेणी अछावीस खांहुआनी ठे एटले पुरुषाकार लोकनेविषे त्रीठी ठपन प्रतरनी श्रेणी ठे आदि तथा अतनी श्रेणीउनुं ग्रहण कखा थी मध्यनी श्रेणीनुं पण ग्रहण थाय ठे, माटे ठपन श्रेणी ठे. जे श्रेणीनेविषे त्रीठी श्रेणीना जेटजा खांहुआ ठे, तेटजा अंकथी गुणीए, जेमके, सर्वथी ऊपर नी मस्तक श्रेणीनेविषे चार खांहुआ त्रीठा ठे ल्यारे चारने चारथी गुणतां शोलथाय एम ठपन श्रेणीउ सरखे आके गणी एकठी करिए ल्यारे पूर्वोक्त पंदर हजार ब शोने ठनु खांहुआनी संख्या थाय हवे खांहुआनुं परिमाण कहे ठे - लांबपणे, पोलाइए तथा जाडपणे कुनीनी पठे सरखा ठे एटले पोला, लांबा तथा जाडा पा राज प्रमाण ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोकना सर्व एवा खांहुआ जाणवा ॥३५॥

अवतरण - हवे वृत्ताकार लोक घन करवानो विधि कहेठे -

दाहिए पास इखंमा, उढु वामे ठविज्ज विवरीया ॥

नामी सहिय ति रङ्गु, पिढु जाया सत्त दीहुवे ॥ २६ ॥

व्याख्या.— ऊर्ध्व लोकनेविषे त्रस नाडीयकी दक्षिण बाजूए एटले जमणी बा
जुना बे खंम, ते आमः—ऊर्ध्व लोकनेविषे ज्यां कोणीनी जगो ठे, तेमध्यथी जोतां
वारमी श्रेणी ठे. ते वारमी श्रेणीथी बे खंम करिये एटले ऊपरला खंमनेविषे
शोल श्रेणीथ्यो रहे. एवी रीते दक्षिण बाजूना जे बे खंम ठे ते ऊर्ध्व लोकनेविषे
त्रस नाडीनी माबी बाजूनेविषे उलटा करी नाखीए. ते आमः— ऊपरना खंमनी
कूर्परनी जे दिशा, ते मस्तकनी तरफ करिये, अने हेठला खंमनी कूर्परनी जे दिशा
ते लोकना मध्य तरफ करिये. एटले ऊपरलो खंम ऊपरनी दिशाए तथा हेठलो
खंम हेठली दिशाए थापीए. त्रस नाडी सहित माबी बाजूए त्रीठा त्रण राज
थायठे ते आमः— त्रस नाडीथी बाह्यार कूर्परने ठेकाणे जमणी बाजूए आठ खां
हु आ त्रीठा ठे; तेना बे राज अने एक त्रस नाडीतुं राज, एम त्रण राज पोला
ईए थायठे; अने लावपणे तथा उंचपणे सात राज होयठे. ॥ २६ ॥

हिंघाठ वाम खंमे, दाहिए पासे ठविज्ज विवरीअं ॥

उवरिम ति रंजु खंम, वामे ठाणे अहो दिज्जा ॥ २७ ॥

व्याख्याः— अथो लोकनी त्रस नाडीथी जे माबी बाजूनो आखो खंम ठे, ते
विपरीत एटले अचलो अथवा उंधो हेठली त्रस नाडीनी जमणी बाजूनेविषे था
पीए. एटले अथोलोकनेविषे जमणी बाजूए त्रीठा चार राज, अने लांबपणे सा
त राज थया ते आ प्रमाणेः— त्रस नाडीथी जमणी बाजूमां आधोलोकनी हेठे
वार खांहुआ ठे; तेना त्रण राज; अने त्रस नाडीतुं एक राज, एम चार राज
थाय. पठी ऊर्ध्वलोकनो माबी बाजूनो त्रीठा त्रण राज लांबो सात राज प्रमा
ण खंम ठे. ते अथोलोकनी जे त्रस नाडी ठे तेनी माबी बाजूए दैए, एटले सर्व
त्र पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशिथ्योए तथा जाड पणे सातघनरंजु प्र
माण घन लोक थयो ॥ २७ ॥

इय संवट्टिय लोठ, बुद्धि कठ सत्त रंजु माण घणो ॥

सग रंजु अहिय हिंघा, गिण्हइ पासाइ पूरिज्जा ॥ २८ ॥

व्याख्याः— ए प्रकारे करी इय संवर्तित लोक वृत्ताकारे कीधो पण ते लोक
वृत्ताकारे; ते केवी रीतेकीधोः—बुद्धि करी, मन कल्पनाए करी सात राज प्रमाण
घन कीधो, तथा सात घनरंजु थता लांबपणे, पोलपणे तथा ऊंचपणे जे अधिक

खांडुउं थाय ते लईने हेवळ जे जगोए ओठु होय ते पासूं प्ररिये एवीरीते चोर स सात घनरळु प्रमाण लोक कखो पण चोरस नथी गोलाने आकारे लोक वृत्ताकार ठे. पण घनलोक वृत्ताकार लखाय नही तेमाटे चोरस कीधो ठे ॥२७॥

अवतरण.— हवे ए समघन लोकनेविपे घनरळु, प्रतररळु, सूचीरळु अने खांडुआनी संख्या कहे ठे -

घण रळु तिसय तेया, ल तेर वावत्तरीय पयर सूड ॥

चउपन्न डसी खंडुअ, सहसि गवीसा नवड पन्ना॥२८॥

व्याख्या - ए वृत्ताकार घनीकृत चोरस लोकनेविपे त्रणजेने तेतालीश घनरळु ठे एक हजार त्रणजेने बोतर प्रतर रळु ठे. पाच हजार चारजेने अठघाशी सूची रळु ठे खांडुआनी संख्या कहेठे - सातराज प्रमाण घनलोकना खांडुआ एकवीश हजार नवजे ने बावन जाणवा ॥ २८ ॥

अवतरण - हवे घनरळु, प्रतररळु, सूचिरळु अने घनलोकना खांडुआ आणवानी करणी गाथाए करी कहेठे.-

सगवग्गो सग चउ तिग, गुणिए उजयं अहुहु खंडु घणा ॥

ठनूसठ सिआलं, चउ गुणिए पयर सुड असा ॥ ३० ॥

व्याख्या - ए सातघनरळु प्रमाण समचोरस जे लोक ठे. ते सात सात वर्गधी गणिए ते सप्त वर्ग कहिये त्यारे सातने सातथी गुणिये, त्यारे उंगण पचास थाय एवी उंगणपचाश घनरळुनी सात श्रेणीठे. ते अंगणपचाशने सातथी गुणतां त्रणशोने तेतालीश घनरळुनी संख्या थाय. पठी घनरळुनो आंक त्रण वार चोगुणो करिये त्यारे अनुक्रमे अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकना प्रतररळु, सुचीरळु, तथा खांडुआनी संख्या मलेठे, ते आ प्रमाणे - त्रणशो तेताली घनरळुने चोगुणा करिये त्यारे एक हजार त्रणजेने बोतेर प्रतररळु थायठे ते प्रतररळुनो आंक चोगुणो करिये त्यारे पाच हजार चारजे ने अठघाशी सुचिरळु थाय तथा सुचिरळुनो चोगुणो आंक करता खांडुआनी संख्या एकवीश हजार नवसेने बावन थाय. हवे अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकनी छुदीछुदी घनरळु. सुचिरळु प्रतररळु तथा खांडुआनी संख्या कहेठे - अधोलोकनेविपे एक से ने ठनुं घनरळु ठे, अने ऊर्ध्व लोकनेविपे एक शो ने सुढतालीश घनरळु ठे, एने बली त्रण वार चोगुणा करता अनुक्रमे प्र

तररङ्गु, तथा सुचिरङ्गुना अंस एट्ठे खांहुअनो मान अधोलोक तथा ऊर्ध्वलो
कनेविपे निन्न निन्न मिली आवेठे. ॥ ३० ॥

अवतरण - अधो लोक तथा ऊर्ध्व लोकना खांहुअनो निन्न निन्न प्रमा
णनो संग्रह करी कहेठे:-

सग चुलसी पण अमसी, इग तीस ठतीस तिविस वावन्ना ॥

पण चुअल जुअा वारस, हस्स चण वइसय ६ हिअ्या ॥३१॥

व्याख्या:- अधोलोकनेविपे एक शो ने ठनु घनरङ्गु ठे ; तेने चोगुणा करिये
त्यारे सातज्ञे ने चोराशी अधोलोकनेविपे प्रतररङ्गु थाय. अने ऊर्ध्व लोकनेविपे
एक शो ने सुडतालीश घनरङ्गु ठे, तेने चोगुणा करिये त्यारे ऊर्ध्व लोकनेविपे
प्रतररङ्गु पांच शो ने अठ्याशी थाय. अने अधोलोकनेविपे त्रण हजार एक शो
ने ठत्रीश सुचिरङ्गु थाय. ऊर्ध्व लोकनेविपे वे हजार त्रण शो ने बावन सुचिर
ङ्गु ठे हवे खांहुअनी संख्या कहेठे.- अधोलोकनेविपे पण वार हजार
पांचशोने चुमालीस खांहुअठे ऊर्ध्व लोकनेविपे नवहजार चारसो ने
आठ खांहुअ ठे. अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकना एकठा खांहुअ करिये तो एक
वीश हजार नवशोने बावन पूर्वोक्त संख्या मळे. तथा अही त्रणज्ञे ने तेतालीश
राज कद्यां पण तेना खांहुअ नथी. मात्र वशोने उगण चालीशराजना खांहुअ ठे
तेथी एकशोने चार घनरङ्गु अधिक ठे. तेना खांहुअनो गम नथी. पण एक वि
शेष ठे, के ए घनलोक चोरस कखो ठे, अने लोक वृत्ताकार ठे त्यारे चारे दिशि
ना खूणा अधिक थाय, तोपण एवडो अंतर पडे नही पण ए चोरसनुं जे परि
माण कहुं ठे ते अंतरंग वृत्ताकार लोकनुं मान धरीने कहुं ठे. माटे खुणानो ना
ग अधिक थाय नही पठी प्रकारांतरनी वात तो ज्ञानी जाणे. पण पूर्वोक्त वर्ग
ना आंक गणतां पंदर हजार वशोने ठनु खांहुअ थाय तेने चौशठ जाग देतां
घनराज थाय. अधिक खांहुअ नथी त्यारे त्रणशोने तेतालीश राज केम थाय
ते गीताये विचारी लेहुं, अस्ख्यात योजननो एक राज थायठे. अथवा सहस्र चार
लोहनो गोलो कोईएक महर्दिक देवतापोतानी शक्ति करी तेने नीचे नारवी दिये. त्या
रे ते गोलो ठ मास, ठ दिवस, ठ पहोर ; ठ घडी अने ठ पल जेटला काले
नीचे आवीने पडे. तेठलो एक राज थाय. ए चारे दिशिउनेविपे राजनुं प्रमाण
थाय ते जाणुं. ॥ ३१ ॥

इय पयर लिहिय वगिय, संवट्टिय लोग सार मुवलप्र ॥
सुअ धम्म कित्तिअं तह, जय ह जहा नमह न इह निसं ॥३१॥

व्याख्या - ए प्रकारे करी जे उपन प्रतर, ते प्रकारे लिखित वली संवर्गित एटले वर्गने आंके गणित लोक तेनो सार तत्व ज्ञानविचार यथार्थ पणे लोकस्वरूप सद गुरुथी पामीने ते प्रकारे यत्न एटले उद्यम करवो पूर्वे जे प्रकारे चौद राज लोक तुं प्रमाण कह्यु, ते लोकमा अनंत जन्ममरण पामता यका वारंवार अर्थपणे मां भ्रमो, एवो तीर्थकर सकल जीव हितकर पारग परमेश्वरनो नव्य जीवने उ पदेश ठे लोकनो सार केवो ठे - ते श्रुतधर्म एटले जे सिद्धांत मार्गमां ज्ञानना वजे करी ज्ञानवान तीर्थकरे कहेलुं ठे ॥ ३१ ॥

श्रीमदाप्तोक्त विधिना, लोकनालस्य वार्त्तिकं ॥ धिमित्र
धनराजस्य, गंगारख्य तनुजाकृते ॥ १ ॥ श्रीमत्सहज रत्ने
न, व्याख्यात मुदयाविधिना ॥ असंगत यङ्कतं, दिशो
य धीधनैर्नृशं ॥ १ ॥ युग्मम् ॥

इतिश्री लोकनाल घात्रिंशिका बालावबोध

समाप्ता

श्री कलीकुंभ पार्श्वनाथायनम.

अथ

श्री सम्यक्त्व विचार गर्भित श्री महावीरजिनस्तवन.
बालावबोध सहित प्रारंभ.

मंगलाचरण

प्रणम्य परमानंद, दायकं जिननाथकं ॥ वर्द्धमान चिदानंदं, वर्द्धमान जिधा
धरं ॥ १ ॥ श्रीसम्यक्त्वस्तवस्यास्य, वर्द्धस्य लोकनापया ॥ बालानामवबोधाय
बालाबोधं तनोम्यहं ॥ २ ॥

बोधा.— प्रणमी पद जिनवरतणा ॥ जे जगने अनुकूल ॥ जास पसायें में
लक्ष्य ॥ समकित रयण अमूल ॥ १ ॥ ते जिम वीरें उपदिश्यु ॥ परखद मज्जि थ
नूप ॥ तिम हुं वर्षणवसुं हवे ॥ समकित सुख स्वरूप ॥ २ ॥

अर्थ.— श्री देवाधिदेवना चरणकमल नमीने जेना चरणकमल सकल जीवने
हितकारीठे अनुकूलठे जे श्रीवीरपरमात्माना चरणकमलने प्रसाठे में पण अमु
लक सम्यक्त्वरत्न पाम्युं ॥ १ ॥ ते सम्यक्त्व जेम श्रीमहावीरे बार परपदामां प्र
कास्युं तेम हुं सम्यक्त्वतुं स्वरूप महारीबुद्धिप्रमाणे वर्षणवीत ॥ २ ॥

ढाल पेहेलो एठिमीकिहां राखी एदेशी टीका.

इगविध डुविध त्रिविध चडविधवलि ॥ पणविध दशविधजाणो ॥ ए समकि
त शिवतरुनुं बीजक ॥ संप्रति परे मन आणोरे ॥ प्राणी समकित शुध आरा
धो ॥ जेम शिवमारग साधोरे ॥ प्राणी० ॥ सम० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ इगविध
तुज आणा रुची डुविहा ॥ इव्य नावथी कहिये ॥ निश्रयने व्यवहारे अथवा ॥
समकित डुविध सद्व्ये रे ॥ प्रा० ॥ २ ॥ सद्वहणा स्त्री तुज आगम ॥ परमा
एथ नवीजाणे ॥ समकित इव्यथकी तस कहिये ॥ नावथी तत्व वखाणोरे ॥ प्रा०
॥ ३ ॥ मिथ्यापुज्जण शुद्धनु वेदन ॥ समकित इव्य कहावे ॥ नावथि तत्व रु
चिपण तिमहिज ॥ तत्व रुची परिजावेरे ॥ प्रा० ॥ ४ ॥ पुज्जणरूपी अरूपी थ
पुज्जण ॥ ए पण द्विविध तु देखे ॥ द्वायोपशमिक वेदक पुज्जण ॥ शेष अपुज्जण
लेखेरे ॥ प्रा० ॥ ५ ॥ निश्रय समकित शुज, आतमनो ॥ ज्ञानादिक परिणाम ॥

अथवा आतम समकित कहिये ॥ गुण गुणी नेद न ठामरे ॥ प्रा० ॥ ६ ॥ मि
थ्या दृष्टीतणी संस्तवना ॥ त्यागादिक व्यवहार ॥ वलिय निसर्गापर अधिगमथी ॥
विदुंजेदे निरधाररे प्रा० ॥ ७ ॥ जिम कोई मारग नूलो पंथी ॥ नमतो मारग
आवे ॥ कोइक उपदेशादिक योगे ॥ कोइक थाग न पावेरे ॥ प्रा० ॥ ८ ॥ ज्वर प
ण सहेजे औपध योगे, जाये एक न जाय ॥ मारग ज्वर दृष्टांते समकित ॥ इ
णि परे द्विविधे आयेरे ॥ प्रा० ॥ ९ ॥ जाती समरण प्रमुख थकीजे ॥ तास नि
सर्गे विचारो ॥ गुरुउपदेशादिक थी आथ्युं ॥ ते अधिगम चित्तधारोरे ॥ प्रा० ॥ १० ॥
कारक रोचक दीपकजेदे ॥ त्रिविधे पण ए जाप्युं ॥ अथवा उपशम ह्यायोपशमि
क ॥ ह्याधिक जेदे दारव्युरे ॥ प्रा० ॥ ११ ॥ ते जिमनाप्यु ते तिमकीधुं ॥ ते का
रक तस खास ॥ तुज धर्मोपरि रुचिथी रोचक ॥ नहि, किरिया, अच्यासरे ॥ प्रा०
॥ १२ ॥ मिथ्या दृष्टि थको पण पोते ॥ धर्मकथादिक सारे ॥ दीपक परे परने दी
पावे ॥ ते दीपक उपचारेरे ॥ प्रा० ॥ १३ ॥ ते समकित जिम फरस्यु जीवे ॥
तिम तुज आगल दाखु ॥ तुज आगम नय न्याय शुधोदधि ॥ परमारथ रस चा
खुरे ॥ प्राणी समकित सुख अराधो ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ एकप्रकारनुं वेप्रकारनुं त्रणप्रकारनुं चारप्रकारनुं पांचप्रकारनुं अथवा
दशप्रकारनुं सम्यक्त्वजाणनुं ए सम्यक्त्व मोक्षरूपदृष्टनुं बीजनूतजाणनुं संप्रतिरा
जानीपरे मनमांघितवधुं यजुं - एगविह् डविह् तिविह्, चउहा पंचविह् दसवि
ह् सम्म ॥ मुक तरुबीयनूर्य, संपइ रायाव धारिळा ॥ १ ॥

एकविधते ताहरी आज्ञारुचिरूप वेप्रकारनुं सम्यक्त्वते एकइथ्य सम्यक्त्व बीजुं ना
वसम्यक्त्व अथवा निश्चैसम्यक्त्व अने व्यवहारसम्यक्त्व एपण वेप्रकार कहिये ॥ १ ॥

तेमांजे तमेवसच्चैनिस्संकजजिणेहिं पवेश्यं इत्यादिकसद्वहणासुधीहोय पण ए प
रमार्थे कांईनजाणे जीवाजीवादि स्वरूपपण नसमजे तेने इव्यसम्यक्त्व कहिये
जावेण सद्वहतो अयाण माणेवि सम्मत्तमितिवचनात् तथा तमेवसच्चै इत्यादि
क सद्वहणासुधीहोय अने नवतत्त्वादिकना जेदानुजेदपण परमार्थे समजे तेने ना
वसम्यक्त्व कहिये जीवाइनवपयथ्ये, जोजाणइ तस्तहोइसम्मत्तमिति वचनात् ॥

अथवा रूपी इव्यसम्यक्त्व अने अरूपी नावसम्यक्त्व एप्रकारेपण वेजेदथाय
तेज विवरीनेकहेते मिथ्यात्वना शुद्धपुजलनुंवेदन एटले मिथ्यात्वना त्रणपुजकथा
ठे तेमा जे सुद्ध पुजनुंवेदनु तेने इव्यसम्यक्त्व कहिये अने नावथी तत्वरुचिहोय
तेने नावसम्यक्त्व कहिये ते उपशम ह्यायिकादिक जाणनु ॥ ४ ॥

अथवावली बीजेप्रकारे सम्यक्त्वतुं द्विविधपणु देखाडेठे रूपी अने अरूपी ए वे चेदेजे सम्यक्त्वठे ते आवीरीतेजे एक ह्यायोपशम अने बीजुंवेठक ए वे सम्यक्त्वरूपी पुण्डलरूपठे माटेएने रूपी कहिये अने शेष जे ह्यायक, उपशम अने साखादन ए त्रण सम्यक्त्व पुज्जलरूपनथी माटे एने अरूपी कहिये यडुक्तं विचारपं चासिकायां धम्माधम्मा गासा, जीवाकालोय खाडंमचेव ॥ सासायण उवसमियं, अपुग्गलाई तुएयाई ॥ १ ॥ ऊराणिय वेउविय, आहारग तेयस कुणी मसो ॥ उस्तासंनिस्तासंक्मण कम्माणिठायतमो ॥ २ ॥ वग्गणअणंतआयव, मिस्सकंधो अचिन्त महखंधो ॥ वेयग खाउवसमं, ऊज्जोय पुग्गलसुएणियं ॥ ३ ॥ ए द्विविध पणुपण राह्णात् केवलज्ञाने हे जगवत्तुं देखेठे ॥ ५ ॥

हवे निश्चेसम्यक्त्व अने व्यवहारसम्यक्त्व ए वे देखाडेठे निश्चयथी निश्चनेयें ज्ञानादिमय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्मानो गुणपरिणाम तेहिज सम्यक्त्वकहिये अथवा ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्मानो परिणाम ते आत्मारूपजठे तेमाटे आत्माज सम्यक्त्व कहिये इहां गुणगुणीनो अनेदोषचार लहिये गुणते ज्ञान दर्शन चारित्रादिक अने गुणीते आत्मा ए वे एकेकथी जूदानथी तेमाटे ए वे ने माहोमांहे चेदनथी अनेदरूपजठे यतः आत्मैव ज्ञानदर्शन चारित्राएथवा यते. यत्तदात्मकएवैप शरीरमधितिष्ठति ॥ ६ ॥

बीजुं व्यवहार सम्यक्त्वते जे मिथ्यादृष्टिसंघाते परिचयप्रमुख ठांने अथवा देवगुरुनी नक्तिप्रमुख साचवे व्यवहारथी सम्यक्त्वना दूषणटाले अने सम्यक्त्वना जूषणआदरे इत्यादिक लक्षणेकरी व्यवहारथी सम्यक्त्वधारि कहिये जेमाटे गुणस्थान क्रमारोहमां कछुंठे. देवेगुरौच संवेच, सन्नक्तिशासनोन्नति ॥ अन्नतोपि करोत्येव, स्थितिस्तूर्ये गुणालये ॥ १ ॥

अथवा निसर्ग अने अधिगम ए वेचेदपण सम्यक्त्वना कहिये ते देखाडेठे: जे म कोइकपुरुष मार्गथीजूलो कोइना उपदेशविना स्वयंभमतो पोतानीमेलेज पोते मार्गप्रतेपामें एटले पोतानीमेले मार्गेश्रावे अने कोइकतो जूलोथको परनाउपदेश थी एटले बीजोकोई मार्गदेखाने तेवारे मार्गेश्रावे अने कोइकतो मूलथी मार्गपामेज नही एमज जूलोफरे अथवा ज्वरनेदृष्टांते जावतुं जेम कोइकने ताप आ वतोहोय ते पण कोइकतो पोतानीमेले परीपाकेजजाय अने कोइक आंषादिक ने संयोगें जाय तथा कोइकज्वरतो जायजनही ए दृष्टांते सम्यक्त्वपण कोइकजी वतो जातिस्मरणादिके पोतानीमेलेजपामे अने कोइकजीव गुरुनाउपदेशथी पामे

तथा कोष्कपामेजनही इहांतो मिथ्यात्वरूपज्वरभे ते कोष्कने गुरुउपदेशे अथवा सहेजेमटीजाय अने कोष्क अन्नव्यादिकने मटेजनही अने जल वस्त्र कोष्क वृष्टांत त्रणभे ते पुजत्रयनेविपे जावसे इहा मार्ग तथा ज्वर ए वेदष्टांतनो प्रस्तावभे माटे वेज कहा ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

हवे सम्यक्त्वना त्रण जेद कहेते तेमां एक कारक बीजुं रोचक त्रीजुं दीपक अथवा एक द्वायक बीजुं उपशमिक त्रीजुं द्वायोपशमिक ॥ ११ ॥

हवे एना लक्षण कहेते हे जगवन् हे वीतराग ते जेम कस्युं तेमज करवु एटले ताहरी आज्ञाप्रमाणे चालवुं तेने कारक सम्यक्त्व कहिये अने करनार ते पण कारकसम्यक्त्ववत थयो तेनेपण कारक सम्यक्त्व कहिये आधाराधेयानेदोष चारं अने रोचक सम्यक्त्व तेतो ताहारा धर्मउपर ताहारा शासनउपर रुचीमात्रतुं कर नार एटले धर्मउपर रुचीमात्र होय पण आचरी शकेनही तेमाटे रोचक कहिये ॥ १२ ॥

त्रीजुं दीपकसम्यक्त्वते पोते मिथ्यादृष्टी अथवा अन्नव्य अंगारमर्दकादिकनी परे धर्मकथायेकरी अथवा मातृस्थानानुष्ठानातिसयेकरी कोष्क प्रकारें जिनोक्त तत्व परने टीपावे वीतरागना वचन परनेप्रकाशे तेथी कोष्क सम्यक्त्व पामे टीप कनीपरें पोतानीपासे अंधकार अने परने प्रकाशस्थानीय सम्यक्त्व पमाडे तेमाटे दीपक सम्यक्त्व कहिये एतुं अपरनाम व्यजक सम्यक्त्वपण कहिये ते मिथ्यादृष्टीनेपण परिणाम परिणमन ते उपचारथी कारणनेविपे कार्यनाउपचारथी सम्यक्त्व कहिये यदुक्तं यथायथा चाचरणं जिनोदित, तथा तथा यत्र सतिप्रवर्तते ॥ तदंगसम्यक्त्वमिदं प्रचकृते, तथा विशुद्धेःखलुकारकंजिना ॥ १ ॥ विहितानुष्ठानं प्रतिजावविशुद्धे रतीवद्विमलाया ॥ प्ररोचयतीतिरुत्वा रोचकमिदमाह सम्यक्त्वं ॥ २ ॥ स्वयंमिथ्यादृष्टिस्तदपिचजनधर्मकथयामुहु सम्यग्मार्गे नयतिचहित चैववदति ॥ तदुक्तं सम्यक्त्वं ह्युपचरितवृत्त्या जिनमते तथा धर्मादीनाप्रकटनतया व्यंजक मिति ॥ ३ ॥ पुनरप्युक्तं- विहियाणुष्ठाण पुण, कारगमिहरोयगतु सदहणं ॥ मिह्विहीदीवइ, जततोदीवगंतु ॥ ४ ॥ इति

ते सम्यक्त्व जेम जीवे फरस्युं अनुनय्युं पाम्युं तेम तमारा आगल वीनवुं तुं ते ताहारा आगमने अनुसारे एटले ताहारा आगमना नयजे नैगमादिकने न्याय शास्त्र समत्यादिक तद्रूपजे सुधोदधि एटले अमृतसमुद् तेनु परमार्थजे तद्दहस्य तेह्जिरसने चाखु अनुनवु एटले तहारा आगमनुं परमार्थ लेइने तेने अनुसारे कहीसुं ॥ १४ ॥ ए पहेलो ढालनु अर्थ पुरो थयुं.

ढाल बीजो देवतुज सिद्धांत मीमोएदेशी

वीरजिणोसर साहिव सुणजो ॥ निजसेवक अरदासरे ॥ दीन दयाकर ठाकुर
 आपो ॥ तुल्लचरणे मुज वासरे ॥ वी० ॥ १ ॥ लोकाकाशि रद्यो अविनाशी ॥
 नाव अनादि अनंतरे ॥ ए नव चक्र तणा डुख बहुला ॥ नोगवियां जगवंतरे ॥
 वी० ॥ २ ॥ सूद्धनिगोद वस्योहुं स्वामी ॥ अनादि वणस्तऽ नामरे ॥ तिहांमे
 कीध अनंता पुज्ज ॥ परावर्त्तविण स्वामिरे ॥ वी० ॥ ३ ॥ अख्यवहाररासें इम व
 सिउं ॥ काल अनंतो जोगेरे ॥ कर्मपरिणाम नृपति आदेशे ॥ तादश नव्यता यो
 गेरे ॥ वी० ॥ ४ ॥ तिहांएकण सासोसासमें कीधां ॥ नवसतरे जाजेरारे ॥ ए ड
 ख तुजविण कुणतोमावे ॥ स्वामी मुज नवफेरारे ॥ वी० ॥ ५ ॥ व्यवहाररासी
 लऽ उतकर्पे ॥ काल अनंत अनंतोरे ॥ थुल निगोदने पृथवी पाणी ॥ तेज अनि
 ल त्रस जंतोरे ॥ वी० ॥ ६ ॥ तिहांपण दु वसिउं तुमपाखें ॥ मिथ्यामतनेजोरे
 रे ॥ हरिहरदेवकरीमें मान्या ॥ तुं न चढयो मनमोरेरे ॥ वी० ॥ ७ ॥ तेण में जेद
 न जेदन ताडन ॥ नूष तृपा गुरु नाररे ॥ गर्जवासने जन्म जरा डुख ॥ जोगवि
 यांनिरधाररे ॥ वी० ॥ ८ ॥ इम चउगऽ नवना डुख फरसी ॥ वारअनंती अना
 षीरे ॥ पालादृष्टांते इगपुज्ज ॥ परावर्त्तस्थिति आणीरे ॥ वी० ॥ ९ ॥ नव्यपण
 दिक ने परिपाके ॥ गिरितरि डुपल न्यायेरे ॥ अख्यवसाय विज्ञोपकरणजे ॥ अना
 जोगथी आयरे ॥ वी० ॥ १० ॥ ते त्रिविधे नारखु तिहां पहेलुं ॥ यथाप्रवृत्त व
 ली बीजुरे ॥ करण अपूरव नामे कहीये ॥ अनिवृत्त करण ते त्रीजुरे ॥ वी० ॥
 ॥ ११ ॥ यथाप्रवृत्तकरणे आयुविण ॥ सात करम करी खीणरे ॥ कोमा कोमी
 सायर इगपलनो ॥ असंख्यनाग तिणे हीणरे ॥ वी० ॥ १२ ॥ इहां कर्कस निवि
 म गुपिलजिम ग्रंथी ॥ जेदन डुकर कामरे ॥ कर्मपरिणाम जनित घन जीवनो ॥
 रागदेष परिणामरे ॥ वी० ॥ १३ ॥ ते ग्रंथी नवीजेटी जीवे ॥ पहेलि इणे संसार
 रे ॥ वार अनंति अचन्यपण आवे ॥ ग्रंथीलगें निरधाररे ॥ वी० ॥ १४ ॥ नव्य
 अचन्य रहे तिहा ग्रंथी ॥ संख्य असंख्योकालरे ॥ अरिहंताविकनी कृद्धिदेखी ॥
 संयमने उजमालरे ॥ वी० ॥ १५ ॥ तिहां लहे श्रुत समायक ड्ये ॥ सेप ला
 न नही तासरे ॥ तिहांथी ग्रैव्यकेपणजीवे ॥ पण नहि शिवपुर वासरे ॥ वी०
 ॥ १६ ॥ कोइक नव्य महातम तेहमा ॥ जेहनेनवनो पाररे ॥ निशित कुगर धारें
 जिम ततपिण ॥ जेदे बल मनोहाररे ॥ वी० ॥ १७ ॥ करण अपूरव परमविशु
 धे ॥ तिमते ग्रंथी आयरे ॥ जेदीने अंतर सूदूरतमां ॥ अनिवृत्तिकरणे जायरे ॥

वी० ॥ १० ॥ मिथ्यामोह तणीस्थिति तेहनु ॥ अंतरमुहूरत एकोरे ॥ उदय कृ
 ण उपरे उलघी ॥ ते समरथ सुविवेकोरे ॥ वी० ॥ १९ ॥ अनिवृत्ति करण विज्ञे
 पे अंतर ॥ मुहूरतकाल अनूपोरे ॥ अंतरकरण करे तिहा वेद्यजे ॥ दलिक अज्ञाव
 सरूपोरे ॥ वी० ॥ २० ॥ जिमवनद्वदग्धे घन उखर ॥ पामी ताम उल्हायरे ॥ तिम
 मिथ्या वेदन वनदव सम ॥ अंतरकरणे थायरे ॥ वी० ॥ २१ ॥ अंतरकरण करे
 मिथ्यातनी ॥ थितिद्युग कहे जिन न्यानेरे ॥ अंतरकरण थकी थिति हेठी ॥ पहे
 ली मुहूरत मानेरे ॥ वी० ॥ २२ ॥ तेहथी उपरली थिति बीजी ॥ तिहां प्रथम
 स्थिति जाणोरे ॥ मिथ्यादलीकनु वेदन तेहथी ॥ मिथ्यादृष्टी वखाणोरे ॥ वी०
 ॥ २३ ॥ अंतरमुहूरत ते थितिनाज्ञे ॥ नही मिठादल वेदोरे ॥ अंतरकरणतो प्र
 थम समय तिहा ॥ लहे उपशम निरवेदोरे ॥ वी० ॥ २४ ॥ परमानंद मगन होइ चटजि
 मा ॥ जीती कटक अजोपरे ॥ न्यायवत हरपेजिम गाढे ॥ न्याय धनागम पेखरे ॥ वी० ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ हवे बीजाढालनी प्रथमगाथातो सुगमठे माटे बीजीगाथाथी अर्थ क
 हेठे - इहां सदैवलोकाकाश प्रतिष्ठित अनादि अपर्यवसित नवचक्राख्य पुरोदर
 वर्त्ति तेमाहे वर्त्तता एवा पूर्वे सर्वप्राणी अनादिवनस्पतिमां सूक्ष्मनिगोद परपर्याय
 माहे अनन्ता पुञ्जपरावर्त्तलगे जीव रह्यो साथे एकश्वासोश्वासमा सतरनव जाजेरा
 करे जन्ममरणादिक वेदनाना समूहने अनुनवे तथाविध जव्यप्राणी पण अनंतो
 काल अव्यवहाररासीमारही कर्मपरिणाम राजानी आज्ञाथी तथाविध जव्यपणाने
 नियोगेकरी व्यवहाररासीमाहे प्रवेसकरे.

व्यवहाररासीते कोनेकहिये जे बादरनिगोद पृथ्वी पाणी तेज वायु प्रत्येकवन
 स्पति अने त्रस तेमापण अनंतानत कालसुधीरहे एप्रमाणे सकलडुःखपादप बी
 जनूत जे मिथ्यात्व तेणेकरी एटला काललगें चारगतिनुं सत्सार संबंधी वेदन जे
 दन-तामन नृपातृपादिसहन गुरुचाराक्रमण गर्नवशन जन्म जरा रोग शोकइष्टवियो
 ग अनिष्टसयोग इपां विपाद मरणादिक दारुणडु ख प्राये अनतिवार अनुनवीने
 पालाने दृष्टाते पालुते धान्यनरवानुं नाजनविशेषजाणवु ते जेम कोइकपुरुष ते
 पालामां थोडुथोडु धान्यनाखे अने गणुघणुकाढे ते धान्य केटलेककाले खुटे तेम
 कर्मधान्यरूप पालामाहे जीव अनाजोगथी थोमा कर्मवांधे एटले थोडुंघाले अने
 घणाकर्मनिर्जरे एटलेघणुंकाढे एरीते तेहलो एक पुञ्जपरावर्त्त जेणे नवस्थिति
 आणीराखीठे एवुकोईक चारगति संबंधीजीव ते कथमपि महताकष्टे तथा जव्य
 त्व परिपाकता वशयकी गिरिसरिडुपल घोळना कटप पर्वत नदी पथर घोळना स

मान अनाज्ञो निर्बन्धित एतुं यथाप्रवर्तिकरण करणंपरिणामोत्रेतिवचनात् एहदुं
अव्यवसायविशेषरूप तेणेकरिने एक आयुवर्द्धीने सर्वज्ञानावरणादिक सातेकर्म ते
नी पद्योपमासंख्येयजागे न्यून एककोटीसागरोपमनी स्थितिठे जेहनी एहवांकरे
ते सर्वकर्मनी उत्कृष्ट स्थितिकेटलीठे के जेमांथी बीजीन्यूनकरे ते गाथायेंकरीकहे
ठे मोहे कोडाकोडी, सत्तरिवीसंचनामगोयाण ॥ तीसयराणि चउहं, तिचीसयराणि
आऊस्स ॥ १ ॥ अत्रांतरे जीवने कर्मपरिणामजनित घन रागद्वेषपरिणामरूप क
र्कश निविडचिरप्ररूढ गुपिल वल्कग्रंथीनीपरे दुर्नेद अनिन्नपूर्वगांठीहोय

तडुक्तं घस्सए घोलण जोगा, जीवेणजयाह्विक्क कम्मविई ॥ खविया सवासा
गर, कोडाकोडी पमुत्तूणं ॥ १ ॥ तडवियथोवमित्ते, खविये डडंतरंमि जीवस्स. ह
वइदु अनिन्नपुट्ठो, गंठीएव जिणाविति ॥ २ ॥ गंठित्तिसुडुप्पेउ, ककडघणरूढगूढ
गंठिव जीवस्स कम्मजणितं, घणरागदोस परिणामो ॥ ३ ॥

ए गांठ सुधी अजव्यपण यथाप्रवर्तिकरणेकरे कर्मस्वपावी अनंतिवारआवे प
एगांठने जेदेनही यडुक्तं प्रवचनसारोदारे करणं अहापवत्तं, अपुवमनियट्टिमेव न
वाणं ॥ इयरेसिं पढमंचिय, नसुइकरणांति परिणामो ॥ १ ॥

ग्रंथीदेशेवर्त्ततो नव्य अथवा अनव्य तिहां संख्यात अथवा असंख्यातोकाल
रहे तिहारह्योयको इव्यश्रुत निन्न दशपूर्वलगं अनव्यनणे ते तीर्थिकरनी इदिवे
खी अथवा स्वर्गसुखादिकनो अर्थिकको जेवारे दीहाजियें तेवारे पूर्वजणे तेमाटे
ज निन्न दशपूर्वातश्रुत ते मिथ्याश्रुतपणहोय मिथ्यात्वेंग्रह्यामाटे मिथ्याश्रुत कहे
वाय अने जेने चउदपूर्व अथवा संपूर्ण दशपूर्वश्रुतहोय तेने, नियमा सम्यक्त्व
होय-पण काइकउणा दशपूर्वधरादिकनेविषे सम्यक्त्विनी नजना जाणवी यडुक्तं
कल्पनाथे चउदस दसय अनिन्ने, नियमा सम्मत्त सेसए जयणा ॥ इति तिहांथी
इव्यसंयमपाली जैननीक्रियानेबले नवग्रैव्यकेपणजाय पण मिथ्याहृष्टीमाटे संसा
रनो पारपामेनही यडुक्तं आवश्यककटीकायां अनव्यस्यापि कम्यचित् यथाप्रवर्तिक
रणतो ग्रंथिमासाद्याहंदादि विनूतिदर्शनतः प्रयोजनांतरतोवा प्रवर्त्तमानस्य श्रुत
सामायिक लानोभवति नज्ञेपलानइति

एम यथाप्रवर्तिकरणेकरिने ग्रंथीलगे नव्यपणआवे अने अजवपणआवे पण
अपूर्वकरणादिकतो नव्यनेजहोय अपूर्वकरणे तो पथिक पिपीलिकयोर्ज्ञात यथा,
जह इह तिन्निमणूसा, जतमविपहं सहावगमणेण ॥ वेला इकंमनिया, तुरंति
पताय दोचोरा ॥ १ ॥ दडुमग्ग तडडे, तडेगोमासउं पडिनिंयत्तो, ॥ बीउंगहिउं तंइउं,

समस्कृतो पुरंपत्तो ॥ २ ॥ अडवी नवो मणूसा, जीवाकम्महिइ तहोदीहो, गंठी
 यजयछण ॥ राग दोसाय दो चोरा ॥ ३ ॥ नग्गोविइ परिबुद्धी, गहिउं पुण गंठि
 उं गउं तइउं ॥ सम्मत्त पुरंपव, जोइक्का तिन्नि करणाइ ॥ ४ ॥ खिइ सानावियंग
 मणं, थाणूसरण तउं समुप्पयणं ॥ ठाणंठाणुत्तिरेवा, ऊहरण वा मुअंगीण ॥ ५ ॥
 खिइगमणं पिव पढम थाणुं सरणच करण मपुवं ॥ उप्पयणपिवतत्तो, जीवाणं
 करण मनियट्ठि ॥ ५ ॥ ठाणुव गंठिदेसो, गंठिय सत्तस्त तउ वछाण ॥ ऊपरण
 पिवतत्तो, पुणोविकम्महिइविबुद्धी ॥ ७ ॥

एम ए वे दृष्टाते त्रणकरण जाववां एकआयुक्कर्मवर्जिने बीजा सातकर्मनी
 क्लृष्टी स्थिति खपावी बाकी एककोडाकोडी सागरोपमते पढ्योपमने असंख्या-
 तमेंनागें न्यून सातेकर्मनी स्थिति प्रत्येके आणी राखी

हवे कोइक महात्मा समासन्न परमनिवृत्ति सुख समुद्धसित, प्रचुरडर्निवार
 वीषेप्रसर तीक्ष्ण कुठारधारानीपरे अपूर्वकरणरूप आत्मानां परमुत्तमविद्युदे यथोक्त
 स्वरूप ग्रंथीनोजेदकरीने मिथ्यात्वमोहनीय कर्मस्थितितु अंतरमुद्धुत्त उदयद्वणथी
 उपरे अतिक्रमिने अनिवृत्तिकरण संज्ञितविद्युदि विशेषकरीने अंतरमुद्धुत्तकाल-
 प्रमाण वेद्यदलिका जावरूप अंतरकरणकरे इहा यथाप्रवृत्तिकरण अपूर्वकरण
 अनिवृत्तिकरण नो अनुक्रम आवीरीतेजाणवु तेकहेठे यथा जागंठी तापढम,
 गंठीसमइउउं नवेवीथं ॥ अनियट्ठीकरण पुण, सम्मत्त पुररकडेणवे ॥ १ ॥ गंठिस
 म इउउत्ति ॥ ग्रंथि समतिक्रामत निदानस्येत्यर्थे सम्मत्तपुररकडेति सम्यक्त्व पुर
 स्कृतं येनतस्मिन् आसन्नसम्यक्त्वे एवजीवे अनिवृत्तिकरण नवतीत्यर्थः ।

एटले जे करणेकरी गिरिसरि जलवेगालोद्धमान पापाणनीपरे धंघेता घोलनादि
 केकरीने एकआयुक्कर्मवर्जि शेष सातेकर्मनी काइकउणी एक कोडाकोडी सागरोप
 मनी स्थितिकरतो ग्रंथीदेशलगेआवे ते यथाप्रवृत्तिकरणकहिये अने जे अथ्यवसा
 ये अप्राप्तपूर्वके घन रागदेष परिणतिरूप ग्रंथीने जेदवामामे ते अपूर्वकरण क
 हियें वली पूर्वप्राप्तययाजे अथ्यवसाय तेने, अनिवर्तके एवां अथ्यवसाय विशेषे
 ग्रंथीजेदकरीने सम्यक्त्वपामे ते अनिवृत्तिकरण कहिये हवे अंतरकरण करतिये
 लाये मिथ्यात्व मोहनीयकर्मनी वे स्थितिकरे एक अंतरकरणथी हेवली प्रथम
 स्थिति अंतरमुद्धुत्तप्रमाण बीजा तेथी उपरली बाकीरहेली पढ्योपमासंख्येयज्ञान
 न्यून कोडाकोडी सागरोपमरूप स्थितिजाणवी

तेमा प्रथम स्थितिनेविषे मिथ्यात्वदलिक वेदनथी ए जीवने मिथ्यादृष्टीज.क

द्विये अंतरमुद्धूने वनी ते स्थितिगयेथके अंतरकरणानो प्रथम समय तिहांज सम्यक्त्वपामे मिथ्यात्वदलिक वेदनना अजावथीजेम वनमां दवलागोहोय ते जेवारे उखरचूमिपामे तेवारे पोतानीमेजे उव्हाइजाय तेम मिथ्यात्व वेदनरूप वनदव तेपण अंतरकरणरूप उखरचूमिपामिने उव्हाइजाय तेवारे तेने उपशमसम्यक्त्वनो लाज थाय.

उक्तंच ऊसरदेसंदडि, द्वियं च विद्वाइ वणदवोपप्य॥ इयमिह्वस्ताणुदए, उवसमसम्मंलहइजीवो ॥ १ ॥ टीका ॥ ग्रंथिजेदोहि मनोविधातपरिश्रमादिजिडुंखसाध्योवर्त्तते तदाहि सजीवः कर्मरिपुमध्यगतस्तं ग्रंथिप्राप्यातीव परिश्राम्यति प्रनूतकर्मारितिसैन्यांतकृत्वेन संजातखेदत्वात् संग्रामगिरसीवडुळ्ळयापाकृतानेक शत्रुनरनरेंडनटवत्॥ यडुकं सम्यक्त्वस्तवे॥सोतडरणे सुहमो, व वैरिजयजणियपरमआणंदो ॥ सम्मत लहइ जिड, सामन्नेण तुह पसाया ॥ १ ॥ टीका ॥ सजीवस्तत्रानिवृत्तिकरणेकृते अंतरे हेनाथ तवप्रसादात् तवसाह्यात् सामान्यतो नतुक्कायिकादिवद्विशिष्टतया सम्यक्त्वं उपशमिकारख्यं लजतेजीव. कइवेत्याह रणे सुहमोवेत्ति वैरिजयेन जनितोयः परमानंदस्तरणे सुनटइव॥तथाहि रणेनटो वैरिजयादानं दमश्रुते तथैव रागदेष कर्मस्थित्यादि वैरिजयात्परमानंद कल्पंसम्यक्त्व लजते जीव तडुकं पावति खवेजणं, कम्माइ अहापवत्त करणेण ॥ उवलनाएण कहमवि, अनिन्न पुवि तउगंठि ॥ १ ॥ तगिरिवरवजेनुं अपुवकरणुगवळ्ळ धाराए ॥ अंतोमुदुत्तकालं ॥ गंतुअनियट्टिकरणंमि ॥ २ ॥ पइसमयंसुअंतो, खविउंकम्माइ तड बहुआइं ॥ मिह्वत्तंमिउइसुं खीणेणुइयंमि उवसंते ॥३॥ संसारगिम्हत्तविउं, तत्तो गोसीत्तचदणरसोव ॥ अइपरम निवुइ कर, तस्संते लहइसम्मत्तं ॥ ४ ॥ अतएव जव्याना मिथ्यात्वस्यानादिसातत्व ॥ तडुकं मिह्वत्तमजवाणं, तमणाइ मणंतयं मुपोयवं ॥ ज्वाणंतमणाइ, सपक्कवसियंतु सम्मत्ते॥ए बीजाढालनी सोलमीगाथाथी मांमीने चोवीसमी गाथासुधी नवगाथानो अर्थकह्यो बीजाढालनोअर्थ पूरो थयो.

॥ ढाल त्रीजो सहीरेसमाणी एदेशी. ॥

॥ इणीपरें तुजथी समकित फरस्थुं ॥ जेहथी जवजल तरस्थुरे ॥ धनधन तुम सेवा ॥ एथी मन वठीत फल लेवा ॥ तेकरवा मुज हेवारे ॥ ४० ॥ १ ॥ तिहांकोइ देश विरति तसत्तरसी ॥ सर्व विरतिलहे हरिसीरे ॥ ४० ॥ मिह्वामयण कोटर वा सरिखुं ॥ उपशम ओपथपरखुरे ॥ ४० ॥ २ ॥ जल वस्त्रादिकनेट्टांते ॥ तुज आगम कहेखातेरे ॥ ४० ॥ मिथ्यापुंजकरेत्रणसोधी ॥ उपशमकरीणुनवोधीरे ॥ ४० ॥ ३ ॥ शुद्धने अर्द्ध विद्युद्धते बीजो ॥ अविद्युद्धे मतरिजोरे ॥ ४० ॥ उपशमथी

पडिउंमनवामे ॥ द्वायोपशमिक पामेरे ॥ ४० ॥ ४ ॥ मिश्र तथा मिथ्यात्वने फर
 से ॥ करममतीइम हरसेरे ॥ ४० ॥ वीजुंद्वायोपशमिक कहिये, उपशमपरिपणल
 हियेरे ॥ ४० ॥ ५ ॥ मिद्धापुंजकरीत्रिण निरणे ॥ कोई अपूरवकरणेरे ॥ ४० ॥ शुद्धपुज
 तिहावेदतोज्ञानी जिनवचनामृतपानीरे ॥ ४० ॥ ६ ॥ उपशमपाम्याविण तुजना
 मे ॥ द्वायोपशमिकपामेरे ॥ ४० ॥ यथाप्रवृत्तिकरणत्रयक्रमथी ॥ अंतरकरणेतुज
 थीरे ॥ ४० ॥ ७ ॥ जेजहेउपशम नवजल तरवा ॥ तसत्रणपुजन करवारे ॥ ४०
 थ्यालंबन अजहंती ईयल, जिमसंगण नमूकेरे ॥ ४० ॥ ८ ॥ मिश्रपुंज अणलानी
 उपशमे ॥ तिममिथ्याते हूकेरे ॥ ४० ॥ उपशमसमकितथीतिणिपडिउं ॥ जइ मि
 थ्या गुण अडिउंरे ॥ ४० ॥ ९ ॥ इम सिद्धांतीनिज मत खोले ॥ कल्पनाप्यपण
 वोलेरे ॥ ४० ॥ ते त्रणपुजनुंसंक्रमनापुं ॥ जिनवयणेमनराखुरे ॥ ४० ॥ १० ॥ मिथ्या
 दलिकथीपुजल खिची ॥ समकितदृष्टीविचीरे ॥ ४० ॥ सकरमावे समकित मीसे ॥
 शुनपरिणामे हिंसेरे ॥ ४० ॥ ११ ॥ समकितदृष्टी मीस आकर्षी ॥ समकितमा
 हेहर्पीरे ॥ ४० ॥ संकरमावे मिथ्यादृष्टी ॥ मिथ्यामांगुणदृष्टीरे ॥ ४० ॥ १२ ॥ सम
 कित पुंजज मिथ्यामाहे ॥ पण मीसे नवि चाहेरे ॥ ४० ॥ मिद्धाखीण नहीठे जे
 हने ॥ ते त्रण पुंजठे तेहनेरे ॥ ४० ॥ १३ ॥ मिद्धाखीण थये दोय पुंजी ॥ मी
 स खये एक पुंजीरे ॥ ४० ॥ द्वायक समकित पुजल नाणे ॥ जिन आगम इम ना
 सेरे ॥ ४० ॥ १४ ॥ सोधित मयण कोइवा थाने ॥ समकित पुजल मानेरे ॥ ४० ॥
 तेहने विरुध तैलादिक पाणे ॥ शुद्धपणु तस नासेरे ॥ ४० ॥ १५ ॥ तिमज कु
 शास्त्र कुतीर्थिकसंगे ॥ तस किरिया मन रगेरे ॥ ४० ॥ मिथ्या, मिश्रित समकित
 जाये ॥ ततरुण मिथ्या आवरे ॥ ४० ॥ १६ ॥ समकितथी पडिउंजो पाहुं ॥
 वली समकितलहे आहुंरे ॥ ४० ॥ ते त्रण पुज करे तिहां फेरी ॥ मिद्ध अपूर
 विवेरीरे ॥ ४० ॥ १७ ॥ अनिवृत्तिकरण बले ते रसीउं ॥ समकित पुजे वसोउंरे ॥
 ४० ॥ समकित परेजिहां विरतिनेपावे ॥ आद्यकरण वे आवेरे ॥ ४० ॥ करण अपू
 रव कालने आगे ॥ विरतिलही तिहां जागेरे ॥ ४० ॥ १८ ॥ अंतर सुंदुरतमा
 तस लाधे ॥ निज परिणामे वाधेरे ॥ ४० ॥ उंचो नियम नही तिहां कोई ॥ दृ
 ष्टि द्वाणी सम होईरे ॥ ४० ॥ १९ ॥ अनाजोग परिणामनी हाणे ॥ गइ विरति
 नवी जाणेरे ॥ ४० ॥ अकृत करण थको ते प्राणी ॥ फिरी लहे विरति सुहा
 णीरे ॥ ४० ॥ २० ॥ आजोगे जे विरतिथी खलिया ॥ तिमज मिथ्यागुणे वसिया
 रे ॥ ४० ॥ अंतरसुंदुरतमा लहे आठी ॥ जवन्य थकी फिरी पाठीरे ॥ ४० ॥ २१ ॥ उत्कर्षे व

हुकालें जापी ॥ आद्य करणठे सांखीरे ॥ ४० ॥ इणीपरे कर्मप्रकृति वृत्तिमांहे ॥ तिहां जोजो उच्चाहेरे ॥ ४० ॥ ३२ ॥ कोइ विराधित समकेत फेरी ॥ ते लहे मिथ्या वेरोरे ॥ ४० ॥ ठवीनरक लगे ते जाय ॥ समय मते कहेवायरे ॥ ४० ॥ ३३ ॥ आक बंधविना ऊच्चाहे ॥ फिरी समकित अवगाहेरे ॥ ४० ॥ वैमानिकविण आउ न बांधे ॥ कर्म मती मत सांधेरे ॥ ४० ॥ ३४ ॥ समकित पतित कहे मतबांधे ॥ उत्कृष्टी स्थिती बांधेरे ॥ ४० ॥ जिन्न ग्रंथिने आगम न्याने ॥ स्थिति उत्कर्ष न मानेरे ॥ ४० ॥ ३५ ॥ इणीपरें जेद मतांतर जाणे ॥ पण संदेह न आणेरे ॥ ४० ॥ निःशंकित तुज वयण आराधे ॥ न्यायें तस गुण बांधेरे ॥ ४० ॥ ३६ ॥

अर्थ.— हवे त्रीजाढालनो अर्थ कहेठे हवे प्रथम सम्यक्त्व पामतां कोइक जीव सम्यक्त्वनी सार्थेंज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुं पामे ॥ उक्तंच शतकवृहजूषीं ॥ उवसम सम्मद्दिष्टी, अंतरकरणेविठं कोइ ॥ देसविरयंपिलनइ, कोइपमत्ताप मत्तजावपि सासाणोनकिपिलजेइति पठी ते ओषधसमान उपशम सम्यक्त्वे करी ने कोइक जल वस्त्रने दृष्टाते मिथ्यात्व मोहनीयकर्म सोधीने त्रण प्रकारेकरे ते कहेठे ? शुद्धपुंज १ अर्द्धविशुद्धपुंज २ अविशुद्धपुंज

ते त्रण पुजमांथी जेवारे शुद्ध पुंजनो उदय होय तेवारे शुद्धमिथ्यात्व पुजल वेदनथी ह्यायोपशम सम्यक्त्व कहिये तेतुं लक्षण कहेठे जेम कोइवा धोयाथकां केटलाक मयणारहित थाय अने केटलाक जिगारेक मयणावालारहे अने केटलाक तो मयणासहीतज रहे अथवा पाणीपण केटलुक स्वप्न निर्मल थाय अने केटलुक निर्मल तथा मेलुं रहे तथा केटलुकतो मेलुजरहे तेमज वस्त्रपण धोयाथकां कोइक निर्मलज थाय कोइक अर्द्ध मलीन रहे अने कोइकतो आसु मलीनजरहे.

ए पूर्वोक्त दृष्टांते त्रण पुजपण ठे तेमां जेवारे शुद्धपुंजतुं उदय होय तेवारे तेना उदयना वश्यकी जीवने विशुद्ध अरिहंतना तत्वनी श्रद्धाहोय तेथी ते जीव ह्यायोपशमिक सम्यक्त्व पामे अने जेवारें वली अर्द्धविशुद्ध पुंजनो उदय होय तेवारे ते उदयनावश्यकी जीवने अर्द्धविशुद्ध अरिहंतनापीततुं तत्व श्रद्धान होय तेवारे एजीव सम्यक् मिथ्यादृष्टी एटले मिश्रदृष्टीवत कहिये अने जेवारें अशुद्धपुंजनो उदय होय तेवारे जीवने मिथ्यादृष्टीज कहियें तेवारे ते उदयनावश्यकी वीतरागना शासनउपरें सर्वथा रुची नज होय.

यथाप्रवृत्तिकरणादिकरणत्रय अनुक्रमे अंतरकरणे उपशम सम्यक्त्वपामे त्रणपुंज तोजीव सर्वथा नजकरे तेमाटे उपशम सम्यक्त्वथी पन्धो अवश्यमिथ्यात्वेज जाय.

हवे कर्मग्रंथिकतुं मतकहेठे कर्मग्रंथवाला एममानेठे के अनादि मिथ्यादृष्टीजीव सम्यक्त्वलानकाले यथाप्रवर्त्यादिक करणत्रय पूर्वक अंतरकरणकरे तिहां उपशम सम्यक्त्वपामे तिहात्रणपुंज अवश्यकरे तेकारणमाटेज उपशमथी पड्योजीव ह्यायोपशमिकसम्यक्त्वपामे अथवा मिश्रपुंजेजाय अथवा मिथ्यात्वेजाय एचारगाथानो अर्थवे.

हवे पांचमीगाथाथी मामीने नवमीगाथासुधी वली सिद्धातिकतुंमत कहेठे कोई अनादि मिथ्यादृष्टी तथाविधसामग्रीना सजावे अपूर्वकरणेकरी त्रणपुंजकरे पठी शुद्धपुंजना पुज्जनेवेदतो जीव उपशम सम्यक्त्व पाम्याविना प्रथमथीज ह्यायोपशमिक सम्यक्त्वपामे अने बीजा घणाजीवतो यथाप्रवर्त्यादिक करणत्रय अनुक्रमे अंतरकरणे उपशम सम्यक्त्वपामे माटे त्रणपुजतो जीव सर्वथानजकरे उपशमथी पड्यो अवश्यमिथ्यात्वेज जाय ॥ यदुक्तं कटपचाप्ये ॥ आलंबण मलहताजह सघाण न मुंचएइलिया ॥ एव अकयतिपुजो, मिहंविद्य उवसमीएई ॥ १ ॥ जेम गात्रसमुद्धितकरेथके इलिकाजे गामरते बीजास्थानकरूप आलवनने अणपामति पोतातुं स्वस्थाननमूके गात्रसंकोची तेजस्थानके रहे तेम उपशम सम्यक्दृष्टी उपशम सम्यक्त्वथीपड्यो त्रणपुजकखानथी माटेमिश्रपुज अने शुद्धपुजलेक्षण स्थानातर अणपामतो वलीतेहीज मिथ्यात्वपुजे आवे एसिद्धातिकतुं मत कहु ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

हवेपुंजत्रयनुसक्रमण कहेठे कटपचाप्यमा एमकह्युठे के सम्यक्दृष्टीजीव मिथ्यात्वदलिकथकी पुज्जआकर्षि प्रवर्द्धमान परिणामथको सम्यक्त्वपुंजमाहे अथवा मिश्रपुजमाहे सक्रमावे अने मिश्रपुज्जने सम्यक्दृष्टी सम्यक्त्व पुंजमाहे सक्रमावे अने मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वपुंजमा सक्रमावे तथा सम्यक्त्वपुज्ज पण मिथ्यात्वमांहेज सक्रमावे पण मिश्रमानसंक्रमावे यदुक्त मिह्वन्तासकती अविरुद्धा होइ सम्म मीसेसु ॥ मीसाउवादोसुं, सम्मामिह्वन उणमीस ॥ १ ॥ जेनो मिथ्यात्वक्यपाम्युंनथी ते सम्यक्दृष्टी नियमा त्रिपुजीजहोय अने मिथ्यात्वक्रीणथयेथके द्विपुजीजहोय अने मिथ्यात्व तथा मिश्रवेक्रीणथयेठते एकपुजीजहोय अने सम्यक्त्वपुज क्यकरेथके रूपक एटले त्रणपुज्जनोह्य कखाथका ह्याधिक सम्यक्त्व वत होय ॥ यदुक्तं कटपचाप्ये मिह्वत्तेमिअखीणे, तीपुजीसम्मदिच्छिणोनियमा ॥ स्वीण मिठ मिह्वत्तेडुएगपुजीवखवगोवा ॥ १ ॥ जे सम्यक्त्वपुज्ज ते सोधित मदनकोइ वा समानजाणवा तथा जेम सोधेला कोइवा विरुधतैलादिके नाव्याथका फरीपाठा मयणाजाथाय तेम सम्यक्त्वपुज्जने विरुधतैलादिक समान कुतीर्थसंसर्ग कुशास्त्रश्रवणादिक मिथ्यात्वेकरी वासीतकखाथका ततक्षण मिथ्यात्वियाय

वलीते सम्यक्त्वथी पडवडियो फरी सम्यक्त्वपामे तेवारे. शीरीते पामे तेकहे ठे प्रथम पडवडिया केटलाहोय अने ते केइगतिमांलाचे ते कहेठे.

अजविय चउठणते, पंचमए दंसणाइ परिवडिया ॥ सेसाउलिदिमाइ, अछम एतंमि तेवीसं ॥ १ ॥ मतांतरेण्येव ॥ अजविय चउठणंते, पंचमिसमाइ परिचडी सिद्धा ॥ सेसाअछमणंते, पङ्कथूलवणाइ वावीस ॥ २ ॥ चत्तारिय वाराउ, चउदस पुढीकरेइआहारं ॥ संसारंमिवसंतो, एगजवे डुन्नि वाराउ ॥ ३ ॥ तिठयररिदिदंस ए, सुद्धमपयड्ढावगाहणाहेउं ॥ संसयवुठेयठं, गमणजिणपायमूलंमि ॥ ४ ॥ समउंजहन्नमंतर, उक्कोसेणहवति ठम्मासा ॥ आहारसरीराणं, उक्कोसेणं नवसह स्सा ॥ ५ ॥ जंनरए असुराई, पुढवाइसु सयल विगल तिरिएसु ॥ वतर जोइविमाणे, सुपत्तेयइमेअसंखिज्जा ॥ ६ ॥ सियसखसियमसंखा, मणुएसु अणतया वणेनवर ॥ परिवडिअगया आहा, रग्गविलप्रंति इह समए ॥ ७ ॥

जेवारेपण सम्यक्त्वथी पडयो फरीपाडुं सम्यक्त्वपामे तेवारें पण अपूर्वकरणेकरी पुजत्रणकरीने अनिवृत्तिकरणेकरी सम्यक्त्व पुंजेजाय एटले द्वायोपशम सम्यक्त्व पामे इहां कोई पूजेजे अपूर्वकरण तो पूर्वे केवारेपण एवो परिणाम न आव्योहोय अने प्रथम नवोआवे तेने कहिये करणंपरिणामविशेष इतिवचनात् अने अ पूर्वकरणतो ग्रंथीनेवेआव्योहोतो तेहीज वली परिणामे फरी आव्यो तेवारे अपूर्वपणु केमयुं ? तेने उचरकहेठे अपूर्वमिवापूर्वस्तोक वारमेवलाजादितिवृद्धाः अपूर्व नीपरे अपूर्व थोमावारज पाम्या माटे. फरीअपूर्वकहिये जेम कोइक पदार्थ पुत्र ध नरत्तादिक पूर्वेथोहुंपाम्याहोय ते फरीपामे तोपण तेने अपूर्व करीजमाने तेम अ पूर्वकरणरूप परिणामपण जीवने थोमीवारज आव्योठे तेमाटे तेपण अपूर्वज कहिये ए सिद्धांतुं मतजाणवु

हवे सम्यक्त्वपाम्यानीपरे जेवारे कोइजीव देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुपामे तेवारेपण यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण ए वे करणकरे पण अनिवृत्तिकरण करेनही अपूर्वकरणनो अंतरमुदूर्तरूप काल समाप्तिने अनंतर समयेज देश विरति सर्वविरति पडिवज्या, पढी अनतर अंतरमुदूर्तलगे ते जीवने अवश्य प्रवर्द्धमान परिणामहोय पढी अंतरमुदूर्त उपरांत नियमनही कोइप्रवर्द्धमान परिणामिथकोजरहे अने कोइ स्वभावस्थजरहे तथा कोइ हीनपरिणामिपणथाय तेवली अनानागे कोइक परिणामनी द्वाणीथकी देशविरति अथवा सर्वविरति थकी पडया ते अरुतकरणा एवतांलचंतेकेण यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण कस्यावि

नाज वली देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुपामे अने जेजीव आचोगेकरी पड्या अने अचोगेकरीनेज मिथ्यात्वेगया ते जघन्यथी अंतरमुहूर्ते अने उत्कर्षथी घणे काले यथोक्त करणपूर्वकज एटले पूर्वोक्त बन्नेकरणोकरिनेज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणु वली फरीथोपामे एतु कर्मप्रकृतिनी वृत्तिमा कसुठे ए दशमीगाथाथी मांमीने बावीसमी गाथासुधी तेरगाथातुं अर्थजेलो कसु ॥ २१ ॥

हवे सिद्धान्तुंमत अने कर्मग्रंथनुंमत निन्ननिन्नकहेठे तेमा प्रथम सिद्धान्तिक नामतेतो विराधित सम्यक्त्वी सम्यक्त्वथी पड्यो फरी सम्यक्त्व पाम्योथकोपण कोइक ठवीनरकसुधीजाय अने कर्मग्रंथिकनामतेतो ठते सम्यक्त्वे वेमानिकविना वीजातेकाणानुं आयुबांधेजनही यदुक्तं सम्मत्तंमिउलदे, विमाणवळं न बंधए आ उ ॥ अहवन्न समत्त जहो, अहवन बंधाउ उणुव्वि ॥ १ ॥ वली कर्मग्रंथिकनेम तेतो सम्यक्त्वपामीने पड्यो तेजीव उत्कृष्टस्थितिनी कर्मप्रकृतिबाधे तथा सिद्धान्तिक मतेतो निन्नग्रंथीवालाने उत्कृष्टीस्थितिनो बंधजनहोय

यदुक्तं सिद्धान्तिक मतेहि विराधित सम्यक्त्वे गृहीतेनापि सम्यक्त्वेन पट्ट ए थिवीयावतुकोप्युत्पद्यते अने कर्मग्रंथीकमतेतो वैमानिकेन्योन्यन्ननोत्पद्यते तेनगृहीतेनेत्युक्तं प्रवचनसारोदारवृत्तौ अवाप्तसम्यक्त्वश्रुतत्परित्यागे ॥ कर्मग्रंथिकमतेतो उत्कृष्टस्थिती कर्मप्रकृतीर्बध्नाति सिद्धान्तिकानिप्रायतस्तुनिन्नग्रंथेरुत्कृष्टः स्थितिबंध एवनस्यादित्यादिनेद मतातरे जाणे पण हवताणेनही जे जेम वीतरागनी आझाहोय तेम प्रमाणकरे पण संदेहनआणे तेजीव ताहरी आझानु आराधक जाणवोए त्रेवीसथीमामी ठवीसमीगाथासुधी त्रीजाढालनो अर्थपूरोथयो.

॥ ढालचोथो विनयवहोसुखकार अथवा सालिनइ जोगीरहो एदेशीठे ॥

॥ दर्शन मोह विनाशथीजी ॥ जेनिर्मल गुणगण ॥ ते समकित उंवे कसुजी ॥ ते नवियण हित आणरे ॥ जिन जी तुज आणासुंरंग ॥ मुज नगमे मिथ्यासंगरे ॥ जि० ॥ १ ॥ ए आकणी ॥ मिह्ना दरसन मोहनीजी ॥ उपशमि उपशमजाण ॥ धुरग्रंथी जेदे कसुजी ॥ उपशमश्रेणी प्रमाणरे ॥ जि० ॥ २ ॥ नाश उदीरण मिष्ठनोजी ॥ अनुदीरण समगम ॥ क्यउपशमथी उपजेजी ॥ क्योपशमिका नाम रे ॥ जि० ॥ ३ ॥ त्रिविधि मोह विनासथीजी ॥ त्रीजुहायिकनाम ॥ क्यकश्रेणी च ढतांहुएजी ॥ जेहथी शिवपुर गमरे ॥ जि० ॥ ४ ॥ विपाक प्रदेशें वेदुंजी ॥ दिविध उदय विष्कज ॥ उपशमतु तेहने कहेजी ॥ आगममा थिरथंजरे ॥ जि० ॥ ५ ॥ नाश विपाकोदय थकी जी ॥ वेदन तेहंरुंरे नाम ॥ उपशमि ते नवि संनवेजी ॥

ह्यायोपशमिक ठामरे ॥ जि० ॥ ६ ॥ मिह्वा पुज्ज वेदवाजी ॥ शु६ अशु६ तिहां दो
य ॥ विपाक प्रदेशोदय थकीजी ॥ अनुक्रमे समजी जोयरे ॥ जि० ॥ ७ ॥ अण चउ
डुग मिह्वा तणाजी ॥ पुंज खपावीरे होय ॥ शु६पुंज खपतां तिहांजी ॥ अंतिम पु
ज्ज होयरे ॥ जि० ॥ ८ ॥ तस वेदन तेहने कहुंजी ॥ वेदक चौथुरे नाम ॥ उपश
म वमतां पांचमुंजी ॥ सासादन गुण धामरे ॥ जि० ॥ ९ ॥ अंतरमुहूरत एकनी
जी ॥ उपशम स्थिति उवेष ॥ उत्कर्षे पट आवली जी ॥ जघन्य समय होय शेपरे
॥ जि० ॥ १० ॥ अशु६पुंज जावा तणीजी ॥ इह्वाये तिहां तासा ॥ अण कसाय उदये
दुयेजी ॥ जेह्थी उपशम नाशरे ॥ जि० ॥ ११ ॥ उपशमथी पमतांयकाजी ॥ न ग
यो मिह्वारे जाव ॥ तावत सासादन कहुंजी ॥ उपशम स्वाद सहावरे ॥ जि०
॥ १२ ॥ अंतरमुहूरत कालनीजी ॥ उपशम स्थिति गुणखाण ॥ सासादन पट आ
वलीजी ॥ वेदक समय प्रमाणरे ॥ जि० ॥ १३ ॥ स्थिति सागर तेत्रीसनीजी ॥ सा
धिक ह्यायक जाण ॥ वमणी स्थिति एह्थी कहीजी ॥ ह्यायोपशमिक ठाणरे ॥
जि० ॥ १४ ॥ उपशम सासादन कहुंजी ॥ आनव वेलारे पंच ॥ वेदक एक वेला
दुयेजी ॥ तिमहिज ह्यायक संचरे ॥ जि० ॥ १५ ॥ वार असंख उत्कर्षथीजी ॥ ह्यायो
पशमिक होय ॥ हवे तस गुण ठाणा कहुंजी ॥ सांजलजो सहु कोयरे ॥ जि० ॥ १६ ॥
उपशम अडगुण ठाणमांजी, अविरत गुण पदरेख ॥ ह्याइक गुण ठाणे सवेजी ॥
आदिम त्रणविणशेपरे ॥ जि० ॥ १७ ॥ अविरति गुणठाणा थकीजी ॥ जावत स
त्तम ठाण ॥ एक वेदक बीज्ज इहांजी ॥ ह्यायोपशमिक जाणरे ॥ जि० ॥ १८ ॥ सा
सादन सासादनेजी ॥ जापे अंग उवग ॥ न्याये शिवसुख ते लहेजी ॥ जशतुज आ
ण अजंगरे ॥ जि० ॥ १९ ॥

अर्थ.— हवे चोथा ढालनो अर्थकहेठे तेमां प्रथम वारगाथालगें उपशमादिक
पांच सम्यक्त्वतुं स्वरूपकहेठे दर्शनमोहनीयना विनाशथकी जे आत्माने निर्मल
गुणस्थानक उपजे ते निर्मल सम्यक्त्व कहियें ते उपशमादिक पांचप्रकारतुंठे.

हवे उपशमसम्यक्त्व ते कोने कहिये ते उलखावेठे उदीरणामिथ्यात्वनो ह्यथ
थाथी अने अनुदीरणा मिथ्यात्वनो उपशमथाथी एटले विपाकप्रदेश वेदनरूप
द्विविधें उदयने विष्कंजणो करीने नीपतुं ते उपशम सम्यक्त्व कहीये.

उदीर्णस्य मिथ्यात्वस्य ह्येसत्यनुदीर्णस्य उपशमेविपाकप्रदेशवेदनरूपस्य
द्विविधस्याप्युदयस्य विष्कंजणेन निर्वृत्तिं, उपशमिकं तदोपशमिकं सम्यक्त्वं द्वि

सम्यक्त्वविचारगर्भित महावीरजिनस्तवन

ग्रंथिजेदसंनव उपशमश्रेणि संनवच ग्रंथिजेदसंनवप्रसिद्धं उपशमश्रेणिसंनव
स्यक्त्व श्रीजिनजङ्गणप्रणितगाथाजिरेव विजाव्यते.

उपशमसम्यक्त्व वे प्रकारनुंठे एकग्रंथिजेदउपनुं वीजुंउपशमश्रेणीथी उपनुं तेमां
थीजेदनुं स्वरूपतो वीजाढालमां कहुंठे अने प्रसिद्धपणठे अने उपशमश्रेणीथी
पनुंजे सम्यक्त्व तेनुं स्वरूपतो श्रीजिनजङ्गण कृत गाथायेज जावियेठे.

यडुक्तं उवसामग सेढीए, पढवठं अण्णमत्तविरउत्ति ॥ पडुवसाणे सोवा होइ
मत्तोअविरउवा ॥ १ ॥ अन्नेजणति अविरय, देसपमत्तापमत्तविरयाणं ॥ अन्नय
पडिवडुइ, दंसण समयंमि अनियट्ठी ॥ २ ॥ संजलणाईण समो ॥ जुत्तो सं
णे अणोदउंजेउ ॥ तेपुवंचिय समिया ॥ नणुसम्मत्ताइ लानंमि ॥ ३ ॥ आचार्या
तिसखउंवसमोत्ति, समो दुणा जणइ कोविसेसोत्तिं, नणुखीणमि उइन्ने ॥
सोवसमे खउंवसमो ॥ ४ ॥ सोचेव तणूवसमो ॥ उइए खीणमि सेसए समिए ॥ सु
मोदय यामीसे ॥ नतूव समिए विसेसोयं ॥ ५ ॥ वेएइ संत कम्म ॥ खउंवसम्मे
नाणुजावसो ॥ उवसंत कसाउं पुण वे एइन संतकम्मपि ॥ ६ ॥ संजोअणा
याण ॥ नणुदउं सजयस्स पमिसिद्धो ॥ सच्चमिह सोणुजाव ॥ पडुच्च न पएस
म्मत्तु ॥ ७ ॥ नणियं च सुए जीवो ॥ वेएइ नवाणुजाव कम्मंतु ॥ ज पुण पएस
म्म ॥ नियमा वेएइ त सव्वं ॥ ८ ॥ नाणुदियं निज्जरए ॥ नासंत मुदेइ ज त
व्वसम्मं ॥ सव्वंपएसकम्मं ॥ वेएउं मुच्चए सव्वो ॥ ९ ॥ किहदसणाइ घाउं ॥ न
तोइ सजोअणाइ वेयउं ॥ मदाणु जावयाए ॥ जहाणु जावपि विकहंवि ॥ १० ॥
नच्च मुइन्नंपि जहा ॥ सयल चऊ जाणियो तदावरण ॥ नविघाय मंदयाए ॥
एस कम्म तहा तेयं ॥ ११ ॥

हवे द्वायोपशमिकनुं स्वरूप कहेठे उदीरण मिथ्यात्वमोहनीयने विपाकोदयेक
ने वेदितपणामाटे द्वायकरेथके अने अनुदीरण मिथ्यात्व मोहनीयने उपशमावे
प्रके ए द्वाय अने उपशमरूप ते द्वायोपशम सम्यक्त्व कहिये इहां पूर्वपद्दकरीने
वर्चक पूठेठे के कहोजी द्वायोपशमिक अने उपशमिक सम्यक्त्वनो शो विगोपप
एठे केमके उदीरण मिथ्यात्वनोद्दय अने अनुदीरण मिथ्यात्वनो उपशम ए तो
वेहुनेविपे समानठे तेमठता वेहुना जूदाजूदा नाम केम कहाठे एकनाम केम के
हेतानथी एम पूठनारने उत्तर कहेठे सानजो द्वायोपशम सम्यक्त्वनेविपे शुद्धमि
थ्यात्वपुंजना पुज्ज विपाकोदये वेदीये ठे अने अशुद्धमिथ्यात्व पुज्जना पुज्ज प्रदे

शोदय वेदीयेते अने उपशमसम्यक्त्वनेविज्ञोतो वली सर्वथा कांश्येपण नथीवेदता एटलुं विज्ञोपपणुं उपशम अने द्वायोपशमनुं जाणवुं.

यडुक्तं:- आसि खउवसमोसिंसमोदुणा जणइ कोविसेसोसिं; तणु खीणंमि उइन्ने ॥ सेसोवसमे खउवसमो ॥ १ ॥ सोचेवनणूवसमो ॥ उइए खीणंमि सेसएसमि ए॥ सुहुमोदय यामीसे ॥ नतूव समिए विसेसोय ॥ २ ॥ वेएइ संतकम्मं खउवसम्मं सु नाणु जावंसो ॥ उवसंत कसाउं पुण ॥ वेएइन संतकम्मंपि ॥ ३ ॥ इत्याद्युक्त मस्ति.

हवे द्वायक सम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेहे सम्यक्त्व मिश्र अने मिथ्यात्वपुंजरूप त्रिविध दर्शनमोहनीयनुं निःशेष कृयलक्षण द्वायक सम्यक्त्वकहिये ते द्वायकसम्यक्त्व रूपकश्रेणीपडिवजतानेहोय यडुक्तं ॥ खीणो दंसण मोहे, तिविहंमि विचव नि आण नूयंमि ॥ तिप्पञ्चवायमतुलं, सम्मत्तं खाइयं होइ ॥ १ ॥ ते द्वायकसम्यक्त्व रूपकश्रेणीने विपे आवीरीतेहोय ते कहेहे

यडुक्तं ॥ पढम कसाये समयं, खवेइ अंतो सुहुत्त मित्तेणं ॥ तनुच्चिय मिहत्तं, त उअ मीसं तउसासं ॥ १ ॥ बइउं पडिवन्नो, पढम कसाय स्कए जइ मरिजा ॥ तो मिहत्तोदयउ, विणङ्क जुज्जो न खीणंमि ॥ २ ॥ तंमिम उज्जाइ दिव, तप्परिणामो असत्तए खीणो ॥ उवरय परिणामो पुण, पड्ढा नाणा मई गइउं ॥ ३ ॥ खीणमि दंसणतिए, किहोइ तउति दंसणाईउं ॥ जन्नइ सम्मदिठी, समत्त खए क उं सम्मं ॥ ४ ॥ निहलिय मयण कुदव, रूव मिहत्त मेव सम्मत्तं ॥ खीणं न उ जोजावो, सइहणा जरकणो तस्त ॥ ५ ॥ सो तस्त विमुद्धयरो, जायइ, सम्मत्त पुग्गल रकयउं ॥ दिठिइ सएह सुइ, प्प पमल विगमे मणूसस्त ॥ ६ ॥ जह सुइ जजाणुगयं, दठुं सुइ जजरकए सुतर ॥ सम्मत्त सुइ पुग्गल, परिस्कए दंसणं एव ॥ ७ ॥ तमिअ तइय चउहे, नवमि सिञ्चंति खइय सम्मत्ते ॥ सुर निरय जुगलि सुगई, इमंतुजिणकालिय नराण ॥ ८ ॥ पडिवचीए अवरिय, देस पमत्तापमत्तविरयाणं ॥ अन्नयरो पडिवज्जइ, सुक्कजाणोव गयचित्तो ॥ ९ ॥ इति द्वायक सम्यक्त्व स्वरूप

हवे वेदकसम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेहे वेदकसम्यक्त्वते रूपकश्रेणी पडिवर्जनारने होय चारअनंतानुबंधीया कपाय तथा मिथ्यात्व अने मिश्र ए बे पुंज खपावेथके अने सम्यक्त्वपुज खपावतोहोय एटले सम्यक्त्वपुजना ठेलापुजल खपाववाने उज मालथयो ते सम्यक्त्वनापुंजनुं वेदनकाल तेना चरमसमयनेविपे चरमपुजलनुं वेदनुं तेनुंनाम वेदक सम्यक्त्व कहिये, जेम सूक्कालोचना खंम वेदनथी सूक्कसंपराय कहिये तेम जाणवुं. यडुक्तं सम्मत्त चरम पुग्गल, अणुनवणावेयगंबिति इति वचनात्

हवे सास्वादन सम्यक्त्वतुं स्वरूपकहेत्रे पूर्वोक्त परमनिश्चयान् जान समानजे उ
पशम सम्यक्त्व तेनो अंतरमुद्दूर्नजे काल ते कालमांथी उत्कृष्टथी जेय न श्राव
लिका प्रमाण काल गह्यो होय अने जघन्यथी एकसमय अविशेषद्वयो तेयारं अ
शुद्धपुजे जावानी इष्टायें कोइकने महा विनीपिकोऽज्ञान कल्प अनतानुबधियानो
उदयहोय ते अनंतानुबंधीने उदयें सम्यक्त्व वमतो गुलवमननीपरं अथवा मा
जपतननीपरं सम्यक्त्वने आस्वादे यातेथके सास्वादन सम्यक्त्वहोय एतले उपश
मसम्यक्त्ववत उपशमथी पन्तोथको जिह्वासुधी हजी मिथ्यात्वगुणगणो नथी
पाम्यो तिहांजगें सास्वादन सम्यक्त्व कहिये तहुकं उपसम सम्मत्ताउं, चयउं मि
ष्टं अपाय माणस्त ॥ सासायण सम्मत्तं, तपतरालं मित्रा वज्रिया ॥ १ ॥ एगीते चोथाडा
लनी वारगाथासुधी पाच सम्यक्त्वतुं स्वरूपकए हवे वजी कांइकतेनोजविशेष कहेत्रे.

सम्यक्त्व ते सुं कहिये जे मिथ्यात्व विकारतुं अणउपजावनारो एहयो कोइ
अतिशुद्ध अथवगायविशेष आत्मानुं परिणमन तेनेज सम्यक्त्व कहियें तेनाजे
द द्वायक वेदक उपशमिक सास्वादन द्वायोपशमिक जेदव्याख्यान गाथायेंकहेत्रे
खीणो दंसण मोहे, तिविहमि विखाडयं नवेसम्म ॥ वेयग मिह सवोडय, चरमि
द्वय पुगल ग्गासं ॥ १ ॥ उवसम सेडि गयस्तउ, होई उवसामियंतु सम्मत्तं ॥
जोवा अकयतिपुजो, अ खविय मिहो लहइमम्मं ॥ २ ॥ उवसम सम्मत्ताउं, चय
उमिष्टं अपाव माणस्त ॥ सासायण सम्मत्तं, तपं तगलं मित्रा वज्रिया ॥ ३ ॥
मिष्टंज मुष्टं, तंखीणं अणुडयं च उवसंतं ॥ मीतीनायपरिणय, वेइळं तंखउव
सम ॥ ४ ॥ इत्यादि वारगाथाउंनो अर्थे कह्यो.

हवे ए पाच सम्यक्त्वनी स्थिति कालमानादिक कहेत्रे तेमां उपशमसम्यक्त्व
नो अंतरमुद्दूर्न स्थितिकालत्रे सास्वादनतुं उत्कृष्टो न श्रावलिकानुं अथवा जघन्य
थी एक समयकालत्रे वेदकनो एक समय द्वायकसम्यक्त्वनो साधिक तेत्रीस सा
गरोपमकाल द्वायोपशम सम्यक्त्वतुं साधिक गशवसागरोपमतुं काल जाणु.

एक सास्वादन सम्यक्त्व अने बीजुं उपशमसम्यक्त्व ए वे उत्कृष्टा पांचवार
आवे तथा वेदक अने द्वायिक ए वे सम्यक्त्व एकवारज आवे अने द्वायोपशम
सम्यक्त्व असख्यातिवार आवे यहुकं अंतमुद्दुत्तो वसमो, ठवलि सासाण वेयगो
समउं ॥ साहिय तिन्नी सायर, खड्डं इगुणो खउवसमो ॥ १ ॥ उक्कोसं सासाय
ण, उवसमिया द्धुति पंचवाराउं ॥ वेयग खड्डाडकति, असंखवारा खउवसमो २
हवे प्रसंगागत काइ विशेषता कहेत्रे सामायक चार प्रकारतुंवे सम्यक्त्व सा

मायक श्रुतसामायक देशविरतिसामायक अने सर्वविरतिसामायक तेमां जे सम्यक्साचोनावते सम्यक्त्वसामायक श्रुतसिद्धांतनुं नणवुंते श्रुतसामायिक देशयकी विरमवुं ते देशविरतिसामायक सर्वयकी विरमवुं ते सर्वविरतिसामायक एरीते चार सामायक ठे तेमां सम्यक्त्वसामायक श्रुतसामायक देशविरतिसामायक एत्रणने उत्कृष्ट आकर्षण एटले जे प्रथमपणे मूक्यानुं ग्रहण ते एकजवमां सहस्रष्टयक्त्व एटले वेहजारथी मांमीने नवहजारशुधी होय अने सर्वविरतिने शतष्टयक्त्व एटले बशोथी मांमीने नवसोसुधी होय ए उत्कृष्टथी कहु, ने जघन्यथी एकज आकर्षण सर्वने होय ए एकजवयाश्रथी कहुं. यडक्तं तिह्लं सहस्र पुहुचं, सयपुहुचं होइविरईए ॥ एगजवे आगरिस्ता, एवइया हुंति नायवा ॥ १ ॥

हवे नानानव आश्री आकर्षण कहेठे:-ए उपरना त्रणसामायकने सर्वजवनेविषे उत्कृष्टा असंख्याता सहस्र ष्टयक्त्व आकर्षण आय अने सर्व विरति सामायकने सर्व जवमां सहस्र ष्टयक्त्व आकर्षण होय ए सर्वजव आश्री कहु. यडक्तं तिह्लं सहस्र मसंखा, सहस्र पुहुचं होइ विरईए ॥ नाएजवे आगरिस्ता, एवइयाहुंति नायवा ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

हवे ए पांचसम्यक्त्वने गुणगणकहेठे बीजे सास्वादन गुणगणे सास्वादन सम्यक्त्वहोय अने चोथाथीमांमीने अग्यारमां गुणगणालगे आठगुणगणा उपशम सम्यक्त्वने होय अने चोथाथीमांमीनी चउठमांलगें इग्यारगुणगणा ह्यायक सम्यक्त्वनेहोय अने चोथाथीमांमीनी सातमांगुणगणालगे चारगुणगणा वेढक अने ह्यायोपशमसम्यक्त्वनेहोय यडक्तं बीयगुणे सासाणो, तुरियाइसु अठिगार चउचउसु ॥ उवसमग खइग वेयग, खाउवसमा कमाहुंति ॥ १ ॥

हवे चउठगुणगणानोअर्थ लेशमात्र गाथायेज कहीवेखाडेठे गाहा ॥ जीवाइ पयडेसु, जिणोव इठेसु जा असदहणा ॥ सदहणावि य मिह्ता, विवरीय परूवणा जाय ॥ १ ॥ संसय करणं जपिअ, जतेसु अणायरो पयडेसु, तं पंचविहं मिहं, तद्विधिमिह्विधीअ ॥१॥ उवसम अइइ विउ, मिह्व पमत्तो तमेयगं तुमणो ॥ सम्मं, आसायंतो, सासायण सो मुपोयवो ॥ ३ ॥ जह गुम दहीणिवि समा, इ नाव सहियाणि हुंति मीसाणि ॥ जुंजं तस्सतहोनय, दिधीउमीस दिधीउ ॥ ४ ॥ तिविहेविहुत्सम्मत्ते, येवावि नविरइजस्स कम्मवसा; सो अविरउ तिनन्नइ देसे पुण देसविरईउ ॥ ५ ॥ विगहा कसाय निद्धा, सदाइरउ जवे पमत्तुत्ति ॥ पंच समिउत्ति गुत्तो, अ पमत्त जई मुपोयवो ॥ ६ ॥ अप्पुवं अप्पुवं, जहुत्तरं जोकरेइ विकंमं ॥ रसकंमं म

ग्धायं, सोहोइ अणुव करणुत्ति ॥ ७ ॥ विनिवटंति विसुद्धि, सम्मग दइछवि जंमि
अन्नन्नं ॥ तत्तोनियट्टिवाण, विवरीय मठवि अनियट्टी ॥ ८ ॥ शूलाण लोह खंमा
ण वेअगो वाघरो मुण्येयवो ॥ सुद्धुमाण होइसुद्धुमो, उवसंतेहिं तु उवसंतो ॥ ९ ॥
खीणमि मोहणिल्ले, खीण कसाठ सजोगि जोगिति ॥ होइ पउत्तो अतउ, अपम
त्तो होइहु अजोगी ॥ १० ॥ अविरय सासण मिञ्जा, परजविया नउण सेस गु
णवाणा ॥ मिञ्जस्स तिन्नि जंगा, ठावलियं होइ सासाण ॥ ११ ॥ तिचीसयर च
उठं, पुवाण कोडि ऊण तेरसम ॥ जहु पंचकर चरिमं, अंतमुहू सेसगुण गाणा
॥ १२ ॥ ए चोथाढालनो १७-१८-१९-ए त्रण गाथानो अर्थ कह्यो.

॥ ढाल पाचमो शांतिसुधारस कुंममा तुरमे सुनिवर एवेशी ॥

धन धन शासन ताहरुं ॥ माहरुं जिहांमन लीनरे ॥ कूण पण तसविण न
विरहे ॥ जिमजल जर विण मीनरे ॥ धन० ॥ १ ॥ देशविरति दरशणथकी ॥ प
जिय, पुहुत्तमां जाणिरे ॥ अनुक्रमे चरणश्रेणीविहुं ॥ संख्यसाधर गुण खाणिरे ॥
धन० ॥ २ ॥ तेहिज जवेंहुए तेहने ॥ जेहनेसत्तगखीणरे ॥ चउतियजव उत्कर्ष
थी ॥ पुव्वव-दाउने पीणरे ॥ धन० ॥ ३ ॥ व-दासु सुर नरगनुं ॥ तेहने तियजव
तंतरे ॥ आठ असंख्यनर तिरितणु ॥ तसपण चउजवे अंतरे ॥ धन० ॥ ४ ॥ स
मकित स्थितिहोए ओगथी ॥ अंतरमूहूरत एकरे ॥ साहिय खउवसमासिरी ॥
सायर ठासठि ठेकरे ॥ धन० ॥ ५ ॥ इग अथवा बहु आसरी ॥ दरसणनो उप
योगरे ॥ जघन्य उत्कृष्ट थकी कह्यो ॥ अंतरमूहूरत जोगरे ॥ धन० ॥ ६ ॥ दरस
णलब्धि शुज सुरजता ॥ क्योपशमादिक रूपरे ॥ अंतरमूहूरत माननी ॥ जघ
न्यथी कहेजिनचूपरे ॥ धन० ॥ ७ ॥ ठासठ सायर सविमली ॥ नरजव हिय उ
त्कृष्टरे ॥ तेहथी ठई जो नविदिए ॥ समकित रयणने ष्ट्टरे ॥ धन० ॥ ८ ॥
ते निश्चय शिवपदजहे ॥ ए एकजीवने योगरे ॥ जीवनानाश्रित सर्वदा ॥ दरस
णनो उपयोगरे ॥ धन० ॥ ९ ॥ अंतरमूहूरत एकनुं ॥ जघन्य अंतरमन आणरे ॥
अर्द्ध पुऊज परावर्त्तनुं ॥ तस उत्कृष्ट परिमाणरे ॥ धन० ॥ १० ॥ जीव नानाश्रि
त नवि होए ॥ समकित अंतर लेशरे ॥ तत्र आवश्यक वृत्तिमां ॥ ए अधिकार
विशेषरे ॥ धन० ॥ ११ ॥ दशविध सहज उपवेशथी ॥ उपशम प्रमुख जे पं
चरे ॥ अहव निसग्ग रुइ जेदथी ॥ दशविध तस परपंचरे ॥ धन० ॥ १२ ॥ नि
सग्गुवएस आणारुइ ॥ सुत्त वीथरुइ अनिरामरे ॥ अनिगमा जोग किरियारुई ॥
सखेव धम्म रुइ नामरे ॥ धन० ॥ १३ ॥ गुरुउपवेशविण सहेजथी ॥ जिनवय

एो परतीतरे ॥ जेहने तेहने जाणजो ॥ प्रथम निसर्ग रुचि रीतरे ॥ धन० ॥ १४ ॥
 तेसवि गुरुउपदेशथी ॥ सहहे जे जण आपरे ॥ ते उपदेशरुचि नर कह्यो ॥ इम
 तुज आगम थापरे ॥ धन० ॥ १५ ॥ कारण प्रमुख अजाणतो ॥ मुज जिन आ
 णज खेमरे ॥ तइय आणारुचि तुंकहे ॥ माप तूपादिक जेमरे ॥ धन० ॥ १६ ॥
 सूत्र नणतो समकितलहे ॥ प्रसन्न प्रसन्न परिणामरे ॥ गोविद वाचकनीपरे ॥ सु
 त्तरुई तसनामरे ॥ धन० ॥ १७ ॥ देशरुई खउवसमथी ॥ सबरुई विस्तारिरे ॥
 उदकमां तेलविडुपरे ॥ वीयरुइ जवतारिरे ॥ धन० ॥ १८ ॥ अजिगमरुई सुअना
 णने ॥ अरथथकी अवगाहेरे ॥ अंगपइन्न प्रमुखजे ॥ शास्त्र सबेनिरवाहेरे ॥ धन० ॥
 ॥ १९ ॥ इव्यना जाव जाण्वाजिणे ॥ सर्व प्रमाणे असेसरे ॥ सर्वनयेतिम तसक
 ह्युं ॥ विडार रुई अकलेशरे ॥ धन० ॥ २० ॥ दंशणनाण चारित वली ॥ तिमतिन
 यो त्तमकामरे ॥ सुमति गुपतिकिरियारुचे ॥ तेकिरिया रुइनामरे ॥ धन० ॥ २१ ॥
 आगम कोविद नवीहुए ॥ कुमय कुट्टिहीवि जुत्तरे ॥ संखेवरुई तेहने कहुं ॥ जि
 मचिलानिय पुत्तरे ॥ धन० ॥ २२ ॥ धम्म अधम्म प्रमुख दव ॥ चरण सुय ध
 म्मना जेदरे ॥ जेजिन जापित सहहे ॥ तेधम्मरुई निरवेदरे ॥ धन० ॥ २३ ॥
 एदशविध दरशण कहु, उत्तराध्ययनमजाररे ॥ अथ्ययने ते अडवीसमें ॥ न्याय
 सागर सुखकाररे ॥ धन० ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ हवे पांचमा ढालनो अर्थ कहेठे जेटली कर्मस्थिति ठते पूर्वे
 सम्यक्त्वपणुं पाम्योठे तेमाहेथी पव्योपम पृथक्त्व लक्षण स्थितिनारखंन ख
 पावेथके श्रावकपणुं देशविरतिपणुंपामे तेवारपठी ते कर्मस्थितिमांथीपण संख्यात
 सागरोपम कर्मस्थितिरखंन खपावेथके चारित्र उदय आवे तेवारपठी पण वली
 संख्यात सागरोपम स्थितिरखंन खपावेथके उपशमश्रेणी पडिवजे वली तेवारपठी
 पण संख्यातसागरोपम खपावेथके कूपकश्रेणी थाय. तडुकं सम्मत्तंमि उलडे, प
 लिय पुहत्तेण सावगो दुड्ढा ॥ चरणोव सम खयाणं, सायर संखंतराहुंति ॥ १ ॥

हवे कांइरु लेशमात्र श्रेणीस्वरूपकहेठे पूर्वनोजाण पूर्वगतश्रुतनो धरनार अ
 प्रमत्तगुणतुंधणी आद्यनात्रण संघयणमाहेला संघयणनोधणी तेहुक्कध्यानना चारपा
 याठे तेनांनाम कहेठे पृथक्त्ववितर्कविचार एकत्व वितर्क विचार सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति स
 मुद्धिनक्रियानिवृत्ति तेमाहेला पृथक्त्ववितर्कविचार नामेप्रथमपायो ध्यातोउपशमश्रे
 णी पडिवजे. यडुकं पूर्वज्ञ सुद्धिमान युक्तोह्याथै. संहननैस्त्रिनि. ॥संथ्यायन्नाय हुक्का
 शंसांश्रेणि श्रयतिक्रमात् ॥१॥ अन्यनेमतेतो अविरतादिकपण श्रेणी ध्यारंनकठे.

वली तैवारपठी अप्रमत्तांतगुणगणे अनंतानुबंधीनी चोकडी अने त्रणमोहनी य ए सातप्रकृति उपशमावी एकसंज्वलनतुं लोचवर्द्धि बाकी मोहनीयकर्मनी जे वीत्तप्रकृतिरही ते आठमे अपूर्वकरण तथा नवमं अनिर्वृत्तिवादादर गुणगणे उपशमा वे पठी सूक्ष्मसंपरायने विषे लोचतुं अणुअणुकरीने उपशातमोहनेविषे तेहिज लोचने उपशमावे तडुक्तं अपूर्वादि द्वयैकैक, गुणेषु शमक. क्रमात् ॥ करोति विश ते शान्तिं लोचाणुत्वच तडुक्तं ॥ १ ॥

तिहां प्रथम संघयणवालोतो उपशमश्रेणी अपरिस्माप्ते एटले श्रेणीपूरीकखा विना मरेतो पंचानुत्तरविमानेजाय अने जो पुष्ट आउषावालोहोय तेवली उपशा तमोहजगे मोहनीय उपशमावे तिहां उपशमसम्यक्त्वहोय अने उपशमनाव चा रित्रहोय ए वे उपशमनावना होय ए उपशमिक अवश्यपडे.

तडुक्तं शातदृग् वृत्तमोहत्वादन्नौपशमिकाजिधे ॥ स्यातां सम्यक्त्वचारि त्रे नावश्रौपशमात्मक ॥ १ ॥ पततिचाय मवश्यं ॥ यत्त ॥ वृत्तमोहोदयं प्रा प्योपशमीच्यवते तत. ॥ अधःकृतमलंतोयं पुनर्मांलिन्यमश्नुते ॥ २ ॥ अपिच ॥ सुअ केवलि आहारग, उज्जुमइ उवसतगाविदुपमाया ॥ हिंसति नव मणत, त यणंतरमेव चउगइया ॥ ३ ॥

इहां शिष्यपूठेठे स्वामी उपशमिकने तेहिजनेवे मोहहोय किवानहोय तेवारे गुरुकहेठेके होयपणखरुं तेकेमके सातजव अवशोपायुहोय एवो कोइ उपशमिक खंमश्रेणी करीनेज पाठोवले ते सातमेगुणगणेआवीने वली रूपकश्रेणीपडिवजे ते शातलवमा ह्रीणमोहीयइ अंतगडकेवलीथाय पण एटलोविशोपजे एकवारज उप शमश्रेणी पडिवज्योहोय ते रूपकश्रेणीपामे अने रूपकश्रेणीपण पदिवजे पण जे वे वखत उपशमश्रेणी पदिवज्योहोय तेने तेहिजनेवे रूपकश्रेणी नथाय

तडुक्त जीवोद्दु इक्ष जम्ममि, इक्षसि उवसामगो ॥खर्येपि कुक्का नोकुक्का ॥ दो वारे उवसामगो ॥ १ ॥ उवसमसेणि चउकं, जायइ जीवस्त आजव नूण ॥ ता पुण दो एगजवे, खवग स्तेणी पुणो एगा ॥ २ ॥ उक्तंच सप्ततिका चूर्णौ ॥ जोदो वारे उवसम, सेठिंपदिवज्जइ तस्त नियमात्तम्मि नवे, खवगसेठि नडिजो इक्षसिं उवसमसेठि पदिवज्जइ तस्त खवगसेठि विदुक्कति

ए कार्मग्रंथिकनो अजिप्रायठे अने आगमनो अजिप्रायतो आवीरीतेठे जे एक नवनेविषे एकजश्रेणी पडिवजे. यडुक्तं कटपनाथे ॥ एव अप्यरि वडिए, सम्मत्ते देव मणुअळ्ळाम्मेसु ॥ अन्नयर सेठिवज्ज, एगजवेणच सदाइ ॥ १ ॥ सदाइ के० सर्व

देशविरत्यादिकहोय. अन्यत्राप्युक्तं ॥ मोहोपशमएकस्मिन् नवे द्विःस्यादसंतत. ॥
यस्मिन् नवे उपशमः ह्योमोहस्य तत्रतु ॥ १ ॥

इहां शिष्य षूठे कहोस्वामी संयतने अनंतानुबंधियातुं उदय निषेधोठे तो तेनुउपशम केवीरीते घटमानथाय ए संसयदूरकरो गुरु कहेठे हे माहानुजावतेतो अनुजागकर्म अंगीकारकरीने निषेधोठे पण प्रदेशकर्मआश्रीने निषेधोनथी तेमाटे प्रदेश कर्मोदयतुं इहां उपशम जाणवो तेवारे फरी शिष्यबोव्यो जोतमे संयतने प्रदेशकर्मोदयनो उपशमकखो तो अनंतानुबंधियाना उदयथी दर्शननोविघात के म नथीथतु तेवारे गुरुकहेठे एना प्रदेशकर्मना मंद अनुभवपणामाटे तेम कोडकने अनुजागकर्मनो अनुभवपण अत्यंत विघात न करे जेम संपूर्ण मत्यादिक चतुर ज्ञानीने मत्यादि ज्ञानावरणोदय अत्यंत विघात नथी करतु इत्यादिक दृष्टांते दर्शननो विघात न थाय

तथाचान्यथायि परमगुरुणाः— जीवेणंजंते सयंकंमं कम्मवेएइ गोयमा अडेगइयं वेएइ अडेगइयं नोवेएइ सेकेण्ठेणंपुह्वा गोयमा डुविहे पन्नत्ते तजहा पएसकम्ममेय अणुजागकम्ममेय तिडणंजं पएस कम्म ते नियमा वेएइ तिडणं जं अणुजागकम्मं तं अडेगइयं वेएइ अडेगइयंनोवेएइ इत्यादि हवे वली विशेषथी कांडक उपशमथे एतुंज स्वरूप ग्रंथांतरथी कहेठे त्यां प्रथमथी अनंतानुबंधीनी उपशमना कहियेठें.

अविरति सम्यक्त्वदृष्टी देशविरती प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेजो अन्यतमअन्यतमयो गनेविपे वर्त्ततो तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्कलेश्या मांहे अन्यतमलेश्या सहीत साका रोपयोगे उपयुक्त सागरोपम कोडाकोडीमांहे स्थितिसत्कर्माकरणकालथी पूर्वे पण अंतरमूहुर्त्तकाललगें अवदायमान चित्तसंतति एवो अवतिष्ठेतिम अवतिष्ठतोथको वली परावर्त्तमान प्रकृतिप्रते शुचजवांधे पण अशुचनबांधे वलीजे अशुच प्रकृति नुरस चउठाण्युंहोय तेने बे गाण्युकरे अने जे शुचप्रकृतिनुरस बे गाण्युहोय तेने च उगाण्युकरे वली स्थितिवंधनेविपे पण पूर्णपूर्णथयेथके अन्यस्थितिवंधप्रते पूर्वपूर्वस्थितिवंधनी अपेहाये पत्योपमासंख्येयनाग हीणोकरे.

ए प्रकारे करणकालथीपूर्वे अंतरमूहुर्त्तकाललगे रहिने तेवारपढी अनुक्रमे त्रण करणप्रत्येके अंतरमूहुर्त्तना तेप्रते करे ते आवीरीते जेम यथाप्रवृत्तिकरण अपूर्व करण अनिवृत्तिकरण वली चोथो उपशांतकाल तिहां यथाप्रवृत्तिकरणनेविपे प्रवेशकरतो प्रतिसमये अनंतगुणवृद्धि विशुद्धेप्रवेशकरे वली तिहांपण पूर्वोक्त शु-६

प्रकृतिबंधादिकजकरे पण वली स्थितिघात रसघात गुणश्रेणी गुणसंक्रमण प्र तेनकरे केमके ते प्रतिसमय योग्य विद्युद्धि नथी

वली नानाजीवनी अपेक्षाये असंख्येय लोकाकाशप्रदेशमान अध्ववसाय स्था नकहोय वली ठगण वडियाहोय वीजुं वली प्रथमसमयनी अपेक्षाये बीजासम यनेविपे अध्ववसायस्थानिक विशेषाधिकहोय तिहांथीपण त्रीजासमयनेविपे वि शेषाधिकहोय ए प्रकारे जिहालगे यथाप्रवृत्तिकरणतुं चरमसमयथाय तिहांलगे केवुं एम अपूर्वकरणेविपे पण जाणवु एटलामाटेज ए अध्ववसायस्थानक स्था पतांथकां विपम चतुरस्र क्षेत्रप्रते आस्रणेव्यापे तेनी स्थापना

- १२०००००००००००१६. इहां कल्पनाये वे पुरुष समकालें करण पडिवज्या
- १००००००००००१५. विवद्धिये तिहा एक सर्वजघन्य विशोधि श्रेणी पडि
- ०००००००००००१४. वज्यो अने बीजो सर्वोत्कृष्टविशोधि श्रेणी पडिव
- ६०००००००००१३. ज्यो तिहा पहेलाजीवने प्रथम समयनेविपे जघन्य
- ४००००००००१२. विद्युद्धि सर्वथी अल्प जाणवी तिहांथी बीजासमयने
- ३००००००००११. विपे जघन्यविशोधि अनंतगुणी तिहांथी त्रीजा समयने
- २०००००००१०. विपे जघन्यविशोधि अनंतगुणी ए प्रकारे त्यालगे कहेवु जि
- १००००००१००००९. हालगे यथाप्रवृत्तिकरणा कालनो संख्यातमोजाग गयोहोय

तेवारपठी संख्येयनाग गयेथके चरमसमयनी जघन्यविद्युद्धिना समीपथकी प्रथम समयनेविपे बीजाजीवनी उत्कृष्टीविद्युद्धि अनंतगुणी तेवारपठीपण जेमाटे जघ न्यविद्युद्धि स्थानकथी निवर्त्यो तेवारपठी उपरलु जघन्यविद्युद्धिस्थानक अनंतगु णो तेवार पठी द्वितीय समयनेविपे उत्कृष्टी विद्युद्धि अनंतगुणी तेथी ऊपलुंज घन्यविद्युद्धि स्थानक अनंतगुणुं तिहांथी तृतीय समयनेविपे उत्कृष्टविद्युद्धि अनंत गुणी ए प्रकारे ऊपरतुं वली हेगलु एकेकु विद्युद्धिस्थानक अनंतगुणपणे वे जीव ने तिहांलगे जाणवु जिहालगे यथाप्रवृत्तिकरणा चरमसमयनेविपे जघन्यविद्यु द्धि स्थानक तेथी शेष उत्कृष्टा जे विद्युद्धिस्थानक अनुकरह्यावे ते निरतर अन तवृद्धे तिहांलगे जाणवा जिहांलगे चरमसमयनेविपे उत्कृष्ट विद्युद्धिस्थानक ए यथाप्रवृत्तिकरण कसु

हवे अपूर्वकरण कहियेठे त्या अपूर्वकरणेविपे प्रतिसमये असंख्येय लोकाकाश प्रदेशप्रमाण अध्ववसाय स्थानकहोय प्रतिसमयवली ठगणवजियाहोय तिहांप्रथम समयनेविपे जघन्यविद्युद्धि सर्वथीथोडी तेवली यथाप्रवृत्तिकरणा चरमसत्क उत्क

पृथिव्युद्दि स्थानकथी अनंतगुणी तिहांथी प्रथमसमयनेविपेज जघन्यविद्युद्दि अनंतगुणी तिहांथीपण तेहिज प्रथम समयने विपेज उत्कृष्टविद्युद्दि अनंतगुणी

ल्यांथी पण बीजासमयनेविपे जघन्यविद्युद्दि अनंतगुणी ल्यांथीपण तेहिज बीजासमयनेविपे उत्कृष्टविद्युद्दि अनंतगुणी ल्यांथीपण वली त्रीजासमयनेविपे जघन्यविद्युद्दि अनंतगुणी ए प्रकारे जघन्य अने उत्कृष्टविद्युद्दिस्थानक अनंतगुणत्वे ल्यालगेजाणवा ज्यालगे अपूर्वकरणना चरमसमयनेविपे जघन्यथी उत्कृष्टविद्युद्दि अनंतगुणी. स्थापनाचेयं एअपूर्वकरणेविपे प्रवेशकरतोजीव स्थितिघात रस २५००००००००२५ घात गुणश्रेणी गुणसंक्रम अने अन्यस्थितिवंध प्रते २३००००००००२४ समकालें आरंभे ल्यांस्थितिघात कहेतांठतां कर्मना अग्नि २१०००००००२१ मजागथकी उत्कृष्टथी प्रचूतसागरोपम शतपृथक्त्व मात्र अ १७००००००२० ने जघन्यथी पद्योपमसंख्येयजागमात्र स्थितिसंक्रमनादलिकप्रते १७०००००१७ खंमे वली हेवलीजे स्थिति खंमासे नही तिहांप्रक्षेपे अंतरमुहूर्त कालें उकरे (खंडे) पूर्वोक्तप्रकारेज वली निक्षेपे ए प्रकारे अपूर्वकरणना कालनेविपे घणास्थितिसंक्रम सहस्रव्यतिक्रमं तेमठतापण अपूर्वकरणना प्रथमसमयने विपे जे स्थिति सत्कर्महतु ते तेनाज चरमसमयनेविपे संख्येयगुणहीनथयु ए स्थितिघातकबु.

हवे रसघात कहेठे अशुजप्रकृतिनाजे अनुजाग सत्कर्म तेना अनंतमजाग प्रते मूकीने शेषअनुजागनु अंतरमुहूर्तकालमां विनासकरे खपावीनाखे ल्यांथी वली पण ते पूर्वे मूक्यो जे अनंत जाग तेनो पण अनंत जाग मूकीने शेष अनुजाग प्रते अंतरमुहूर्त काले खपाडे. एरीते अनेक सहस्र अनुजाग खंम ते एकस्थितिसंक्रमनेविपे व्यतिक्रमे उलंघेतेस्थितिसंक्रमनेसहस्रेअपूर्वकरणपरिसमाप्ति थायएरसघातकबु

हवे गुणश्रेणी कहेठे अंतरमुहूर्तस्थितिनी उपरलीजे स्थितिवर्तेठे तेमांथी दलिकलेइने उदयावलिकानी ऊपरली स्थितिमां प्रतिसमये असंख्यातगुणपणे निक्षेपे तद्यथा प्रथम समयनेविपे स्तोक बीजासमयनेविपे असंख्यातगुणु त्रीजा समयनेविपे असंख्यातगुणु एप्रकारे ल्यालगेजाणवुं ज्यालगे अंतरमुहूर्तनो ठेलो समय आवे ते अंतरमुहूर्त अपूर्वकरण अने अनितृक्तिकरणना कालथकी किंचित्मात्र अधिकजाणवु ए प्रथमसमयनेविपे लीधांजे दलिक तेनो निक्षेपविधि एप्रकारें ठे के द्वितीयादी समयग्रहीत दलिकनो पण निक्षेप कहेतो बीजुं गुणश्रेणी रचनाने अर्थे प्रथम समयनेविपे जे दलिक ग्रहीये तेथोहुं तेथीपण बीजा समयनेविपे असंख्यातगुणु तेथीपण त्रीजा समयनेविपे असंख्यातगुणु एप्रकारे ल्यालगे जाणवुं

ज्यालग्ने गुणश्रेणी करवानुं चरमसमय आवे त्यांलग्ने, अपूर्वकरणना समयनेविपे वली अनिवृत्तिकरणना समयनेविपे अनुभवताने अनुक्रमे ह्यपामतां गुणश्रेणी दलिक निक्षेपथाकते वेहुयेवली ऊपर वधेनही ए गुणस्थान कस्यु.

हवे गुणसक्रम कहेते अपूर्वकरणना प्रथम समयनेविपे अनंतानुबंधियादिक अशु नप्रकृतिना जे दलिक परप्रकृतिनेविपे संक्रमावे ते स्तोक तेवार पठी बीजा समयनेविपे परप्रकृतिमां असंख्यातगुणु संक्रमावे त्यांशीपण त्रीजासमयनेविपे असंख्यातगुणु संक्रमावे ए प्रकारें त्यांलग्नेकहेवु ज्यांलग्ने ठेहेलो समयआवे, तिम अन्यस्थितिवंध कहेता अपूर्वकरणना प्रथमसमयनेविपे अन्यज अपूर्वस्थितिवंध आरजिये स्थिति बंध अने स्थितिघात ए वे समकाले जे पुराथाय ते अन्यस्थितिवंध जाणवु ए प्रकारे पांच पदार्थे अपूर्वकरणमां होय प्रवर्त्ते ए अपूर्वकरण कस्यु

हवे अनिवृत्तिकरण कहियेते जेमा प्रवेश करनार सर्व तुल्यकालना भणीनुं ए कज अथ्यवसायस्थानिक होय ते आधीरीते के अनिवृत्तिकरणना प्रथमसमयेजे वर्त्ते अने जे वर्या अनेजे वर्त्ते तेसर्वेनु एकजरूप अथ्यवसायस्थानिक होय तेमज बीजा समयनेविपेपण जे वर्या वर्त्ते अने वर्त्ते तेपण सर्वेनु एकजरूप अथ्यवसाय स्थानिकहोय पण एटलोविशेषजे प्रथम समयजावी विशोधिस्थानकनी अपेक्षाये बीजा समयमा अनंतगुणहोय ए प्रकारे त्यांलग्ने कहेवुं ज्यांलग्ने अनिवृत्तिकरणना चरमसमयआवे एटला माटेज ए करणनेविपे पेटा तुल्यकालनाधणी जेप्राणी ते संबंधी अथ्यवसाय स्थानिकने परस्पर निवृत्ति अने व्यावृत्तिनथी तेमा टेज एनु अनिवृत्तिकरण एवु नाम कहिये

वली ए करणनेविपे जेटलासमय तेटला अथ्यवसाय स्थानिकहोय पहेला जे अथ्यवसायस्थानिकथी आगला अथ्यवसायस्थानिक अनंतगुणवृद्धेहोय ए मुक्ताव लीने स्थाने स्थापवा इहापणप्रथमसमयथी आरंजीने पूर्वोक्त पाचपदार्थे समकाले प्रवर्त्ते ए करणनाकालना असंख्याताजाग गयेथके एकजागथाकतेथके अनंतानुबंधियानेहेतुं आवलीकामात्रमूकीने अंतरमूहुर्त्तप्रमाण अंतरकरणप्रतें अनिनवस्थिति बंधा-क्षासमान अंतरमूहुर्त्तप्रमाण कालेकरे

वली अंतरकरण सत्कदलिक उत्कीर्यमाण बंधा-क्षानी परप्रकृतिमां प्रहेपे प्रथमस्थितिगतदलिक आवलिकामात्र वेचमान परप्रकृतिमाहे स्तवुक संक्रमावे अंतर करणकरेथके द्वितीयसमयनेविपे अनंतानुबंधीयानी उपरली स्थितिनुंदलिक उप शमाववाने अर्थे आरजे

ते आवीरीते प्रथमसमये स्लोक उपशमावे तेषी द्वितीयसमये असंख्यातशुणु वली तृतीयसमये असंख्यातशुणु एम ज्यालगे अंतरमूहुत्तनुंकाल त्यालगेकहेवुं एटलेकाले सर्व अनंतानुबंधिया उपशम्या उपशमिताते शुंकहिये जेमरेणुनु निकर एटले समूहते पाणीनाविड्युआना समूहे सिंच्यो घणादिके कूटयो निस्पंदहोय ते म कर्मरेणुनुं समूहपण विशोधिरूप सलिलप्रवाहे सिंचिने अनिवृत्तिकरणरूप घणथी कूटयोथको संक्रमण उदय उदीरणा निधत्त निकाचना एटला कारणोने अयो ग्यथाय एप्रकारे केटलाक अचार्योना मते अनंतानुबंधीयानी उपशमनाकही

वली बीजातो एमपणकहेउ के अनंतानुबंधीयानी उपशमनानहोय पण विसं योजना एटले रूपणाहोय ते आवीरीते इहां श्रेणी अपणडिवज्यापण अविरति तथा विरति चारेगतीवालावेवा ते आम - जेम नारकी तथा देवताते अविरतिस सम्यक्कृष्टी अने तिर्यच तथा मनुष्यतेमां अविरति सम्यक्कृष्टी तथा देशविरतिसम्य कृष्टी अथवा सर्वविरति ते अनंतानु बंधियानी विसंयोजनाने अर्थे यथा प्रव ल्यादिक त्रणकरणकरेते करणीनी वक्तव्यता सर्व पाठलकह्याप्रमाणे जाणवी पण इहा एटलो विशेषजे अनिवृत्तिकरणमां प्रवेश कखोथको अंतरकरण करेनही. उ कंच कर्मप्रकृती॥चउगइया पङ्कता, तिन्निविसंजोयणे विसंजोयं ॥ तिकरणहितीहि सहिया, नंतरकरणं उव समोवा ॥ १ ॥ एनी अद्दरगमनिका चारगतीना नारकी तिर्यच मनुष्य देवता सर्व पर्याप्तियेअपर्याप्ता एवां अविरति देशविरति अने सर्वविर ति ए त्रणेमां अविरति सम्यक्कृष्टी तो चारेगतीना तथा देशविरति तिर्यच अथवा मनुष्य अने सर्वविरति तो मनुष्यज संयोजनना अनंतानुबंधीयाप्रते विसंयोजे एटले विनाशे ते यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति वादरेसहितथको विना से पण इहां एटलो विशेषजे एक अंतरकरण न कहेवुं अथवा उपशम न कहेवो एटले उपशम अनंतानुबंधियानो न होय पण कर्मप्रकृति अनिहित स्वरूपे उद्वज ना संक्रमणे करीने हेतु आवलिकामात्र प्रते मूकीने उपर निरविशेष अनंतानुब धियानु विनाशकरे अने आवलिकामात्रतो स्तिबुकसंक्रमे करीने वेद्यमान प्रकृतिने संक्रमावे एटले अनंतानुबंधियानी विसंयोजनाकही

हवे दर्शनत्रिकनी उपशमना कहियेउे तेमां मिथ्यात्वनी उपशमना मिथ्याट्ट ष्टीनेहोय सम्यक्त्वनी तथा मिश्रनी उपशमना वेदक सम्यक्कृष्टिनेजहोय, तेमां मिथ्याट्टीने मिथ्यात्वनी उपशमना प्रथम सम्यक्त्व उपजावतानेहोय ते आवी रीते.- जे संज्ञीसर्वपर्याप्तिये पर्याप्तो करणकालथीपूर्वपण अंतरमुहूर्त्तकालसुधि प्र

तिसमये अनंतगुणवृद्धिविद्युद्दीए प्रवर्द्धमान अजव्यसिद्धिक विद्युद्धिनी अपेक्षार्थे अनंतगुण विद्युद्धिसहीत मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान अने विचंगज्ञान एमाहेलो अ न्यतम साकारोपयोग तेनो उपयोगी अन्यतम योगनेविपे वर्त्तमान जघन्यपरिणामे तेजोलेश्यानेविपे मध्यमपरिणामे अने पद्मलेश्यानेविपे उत्कृष्टपरिणामे शुक्कले श्यानेविपे वर्त्ततो मिथ्यादृष्टी चारेगतीमाहेलो नारकी तिर्यच मनुष्य अथवा देवता सागरोपमकोडाकोडीमांहे जेने कर्मस्थितिनी सत्ताठे तेने मिथ्यात्वनी उपशमना प्रथमसम्यक्त्वउपजावतां होय इत्यादिक पूर्वोक्त त्यांलगेंकहेवुं ज्यालगे यथाप्रवृत्ति करण अने अपूर्वकरण परिपूर्णहोय त्यांलगे, पण इहा एटलोविशेष जे अपूर्व करणमां गुणसक्रम न केवो तोसुंकेवो स्थितिघात, रसघात स्थितिबंध गुण श्रेणी एटलावानाज केवा गुणश्रेणीनी रचनापण उदय समयथी आरजोने जाणवी तेवारपठी अनिवृत्तिकरणनेविपे पण एमजकहेवुं अनिवृत्तिकरणकालनां संख्याताजाग गयेथके अने एक संख्यातमजाग अवशेषरहेथके अंतरमूढुत्तमात्र हे तुंमूकीने मिथ्यात्वतुं अंतरकरण अंतरमूढुत्तमात्र प्रमाण प्रथम स्थितिथी कांइक समधिक अथवान्यून अजिनवस्थिति बंधादासमान अंतरमूढुत्तकालेकरे अंतरकरणसत्क वली दलिकप्रते उकेरीने प्रथमस्थिति अने द्वितीयस्थितिमा प्रहेपे प्रथमस्थितिनेविपे प्रवर्त्ततो उदीरणाप्रयोगेकरीने जे प्रथमस्थितिगत दलिकठे तेने स माकार्पिने उदयनेविपे प्रहेपे ते उदीरणा अने वलीजे द्वितीयस्थितिना पासाथी उदीरणाप्रयोगेज दलिकाकार्पिने उदयनेविपे प्रहेपेए उदीरणापण पूर्वसरिये विशेषप्र तिपत्तिनेअर्थे आगालइत्युच्यते एवुकहिचे

उदय उदीरणायेकरीने प्रथमस्थितिप्रते अनुजवतो त्यांलगेंगयो ज्यांलगे आव लिका अथविशेषरहेठे तेरहेथके आगलव्यवहेदीये तेवारपठी केवलउदीरणाज प्र वत्ते तेपणत्यांलगे ज्यांलगे शेष आवलिकानहोय अने आवलिकाशेषहोय तेवारे उदीरणापण निवत्ते तेवारपठी केवल उदयआवलिकामात्र अनुजवे आवलिकामा त्रना चरमसमयनेविपे वली द्वितीयस्थितिगत दलिकप्रते अनुजागजेदेकरीने स म्यक्त्व मिश्र मिथ्यात्व ए त्रणप्रकारेकरे

उक्तं कर्मप्रकृतित्थौ ॥ चरमसमय मिह्वदिहीतेकाले उवसमसम्मदिहीहोहीइ ताहेविश्वविइ तिहाणुनागंकरेइ तंजहा सम्मत्तसम्मामिह्वत मिह्वत्तं चेति स्थापना एएए तिवारपठी अनंतरसमयनेविपे मिथ्यात्वनाउदयना अनावथी उपशमिक सम्यक्त्व पामे

उक्तं च कर्मप्रकृतौ मिह्नुदयेखीणो, जहए सम्मत्त मोवसमियंसो ॥ लंजेण ज
 स्स लज्जइ, आयद्विय मज्जइ पुवंज ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं जात्यंधस्ययथापुंसश्चहु
 र्वाग्नेशुनोदये ॥ सदृशं तथैवास्य, सम्यक्त्वेसतिजायते, ॥ १ ॥ आनंदो जायतेऽत्यंतं
 सात्त्विकोस्य महात्मनः ॥ स दद्याध्यपगमेय दद्याधितस्य सद्यैपधात् ॥ २ ॥ ए प्रथ
 म सम्यक्त्वमुं लान मिथ्यात्वना सर्वोपशमनयकी थाय उक्तच सम्मत्तपढमलंजो,
 सवोवसमाइति ए सम्यक्त्व पडिवजतो कोइकतो देशविरतिसहित पडिवजे अने
 कोइक सर्वविरति सहित पडिवजे.

उक्तं च पंचसंग्रहे ॥ सम्मत्तेषां समगं, सवदेसंच कोविपडिवज्जे ॥ बृहच्चतक बृह
 च्चूर्णावप्युक्तं उवसम सम्मदिठी, अंतरकरणो विउ कोइ ॥ देसविरइं पिलहेइ,
 कोइ पमत्ता पमत्त जावपि ॥ १ ॥ ससाणो पुणनकिपिलहेइति तेमाटे देशविरति
 प्रमत्त अप्रमत्त संयतनेविषेपण मिथ्यात्व उपशांतलाने.

हवे वेदकसम्यक्त्वदृष्टीनेविषे त्रण दर्शनमोहनीयनो उपशमना विधिकहियें
 ठे इहां वेदक सम्यक्त्वदृष्टीजीव संयमनेविषे प्रवर्त्ततोथको अंतरमूदुर्त्तमात्रकालें
 दर्शनत्रिकउपशमावे ते उपशमावत्ताने वली करणत्रिकादिकनी विधि जेम कर्म प्र
 कृतिनीटीकामां कहीठे तेमज जाणवी

एम उपशांतदर्शनमोहनीयत्रिक चारित्रमोहनीयने उपशमाववा वांठतो वली
 पण यथाप्रवृत्त्यादिक त्रणकरणेकरी उपशमावे ते करणनुस्वरूप पूर्वनीपरेंजाणवुं
 पण केवल इहा यथाप्रवृत्तिकरण ते प्रमत्तगुणगणे जाणवुं तेमज अपूर्वकरण
 अपूर्वगुणगणे अने अनिवृत्तिकरण अनिवृत्तिवादरगुणगणे तथा सूक्ष्मसंपरायगु
 णगणे जाणवुं इहा पण स्थितिघातादिक पूर्वनीपरें प्रवर्त्ते पण एटलोविशेष जे
 इहा सर्व अगुणप्रकृति अवध्यमाननो गुणसंक्रम प्रवर्त्ते एम कहेवुं अपूर्वकरणका
 लनो संख्यातमोनाग गयेथके निडाप्रचलाना बंधनो व्यवहेद होय तेवारपठी
 प्रनूत स्थितिरंभ सहस्र गयेथके अपूर्वकरण कालना संख्याताजाग गया होय
 एक अवशेष रह्योहोय वली इहा अतराले देवगति देवानुपूर्वी पंचेंडियजाति वै
 क्रियशरीर वैक्रियांगोपाग अहारक शरीर अहारकांगोपाग तेजस कार्मण समचतु
 रस्र वणेंचतुष्क अयुरुजधु उपघात पराघात उद्वास त्रस वादर पर्याप्त प्रत्येक
 प्रशस्तविद्यायोगति स्थिर गुण सुनग सुस्वर आदेय निर्माण तीर्थकर असंझी ए
 त्रीत्तप्रकृतिवुं बंध व्यवहेद थाय.

तेवार पठी स्थितिरेवम पृथक्त्व गयेथके अपूर्वकरण कालना चरमतमयनेविषे

हास्य रति नय जुगुप्सानो बंधव्यवहेद थाय हास्य रति अरति शोक नय जुगुप्सानो उदय होय सर्वकर्मना देशोपशमना निधत्त निकाचनाकरणानो व्यवहेदहोय.

त्याथी अनंतर समयनेविपे अनितृत्तिकरणमा प्रवेश करे त्यापण स्थितिघाता दिक पूर्वनीपरेकरे तेवारपठी अनितृत्तिकरणकालना संख्यातानाग गयेथके दर्शन सप्तकविना शेष मोहनीयनी एकवीसप्रकृतितुं अंतरकरण करे त्यां चार संज्वलन माहेलो अन्यतमवेद्यमान संज्वलननो अने त्रण वेदमाहेलो अन्यतमवेद्यमान वेदनी पहेली स्थिति स्वोदय कालप्रमाण ए बे काडतां शेष एकादश कपाय अने आठ नोकपायनी आवलिकामात्र पोताना उदयकाल प्रमाण वली चारसज्वलना अने त्रण वेदठे तेमा स्त्रीवेद नपुंसकवेदनो उदयकाल सर्वस्तोक स्वस्थाने वली मा होमाहेतुव्य तेथी पुरुषवेदनो सख्येयगुणो तेथी संज्वलनना क्रोधनो विशेषाधिक तेथी सज्वलनना माननो विशेषाधिक तेथी सज्वलननी मायानो विशेषाधिक तेथी संज्वलनना लोचनुं विशेषाधिक एम इहा अनितृत्तिकरणनेविपे घणु कहेवु ठे ते अंथगौरवना जयथी नथी कहेता केवल विशेषार्थे कर्मप्रकृतिनी टीकाजोवी

वली अंतरकरण करीने तेवारपठी नपुंसक वेदने अंतरमुहूर्तमात्रमा उपशमा वे तेवारपठी अंतरमुहूर्तमात्रे स्त्रीवेदने उपशमावे तेवारपठी अंतरमुहूर्तमात्रे हा स्याद्विपद्क उपशमावे ते समयनेविपे पुरुषवेदनो बंध उदय उदीरणानो व्यवहेद थाय तेवारपठी समयऊण आवलिकाद्ये पुरुषवेदने उपशमावे तेवारपठी सम काले अंतरमुहूर्तमात्रे अप्रत्याख्याना वरण प्रत्याख्यानावरण ए बे क्रोधने उपशमावे तेवारपठी तडुपशातेवली ते समयेज संज्वलनना क्रोधना उदय उदीरणानो व्यवहेद होय पठी समयऊण आवलिकादिके संज्वलननाक्रोधने उपशमावे तेवार पठी अंतरमुहूर्तमात्रे अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणनुं मान समकाले उप शमावे ते उपशमेथके वलीते समयेज संज्वलनना मानना बंध उदय उदीरणा नो व्यवहेदहोय तेवारपठीवली समयऊण आवलिकादिके संज्वलनामानने उ पशमावे तेवारपठी समकाले अंतरमूहूर्तमात्रे अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बे मायाने उपशमावे तडुपशातेवली ते समयेज संज्वलननी मायानो बंध उदय उदीरणानो व्यवहेदहोय तेवारपठीवली समयऊण आवलिका दिके संज्वलननीमायाने उपशमावे तेवारपठी समकाले अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्याना वरण ए बे लोचने उपशमावे ते समयेज संज्वलनना लोचनो बंध उदय उदीरणानो व्यवहेद थाय तेवारपठी संज्वलना लोचने उपशमावतो

तेना त्रण जाग करे तेमांथी वे जागने समकाले उपशमावे त्रीजा जागना संख्या तारखंम करे तेपण जूदे जूदे कालनेदे उपशमावे वली संख्याता खंमना किट्टीएतुं अपरनाम ठे तेना चरमखंमना असंख्याता खंमकरी सूक्ष्मकिट्टीएतुं अपरनामकरे तेवारपठी समय समयनेविषे एकेको खंमकरे ते उपशमावे इहांवली दर्शनस सक उपशमेथके निवृत्तिवादर एतुंनामकहिये त्यांथी ऊंचु अनिवृत्तिवादरकहिये ते ज्यालगे लोचनो असंख्येय अंतिम चरमखंमआवे त्यांलगे कहिये. ए अठावीसनेदे निन्नमोहनीयनी उपशमनाकही.

हवे गाधानोअर्थे विवरियेठे इहां वन्रेश्रेणीना स्वरूपमां प्रथम उपशमश्रेणीतुं स्वरूपकहेठे उपशमश्रेणीतुं प्रारंजक अप्रमत्तसंयमीज होय अने बीजातो एमकहे ठेके अविरति देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो गमेतेहोय अने श्रेणीपरिस माप्ते पण श्रेणीथी पडे तेवारे वली पाठो अविरति देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो अन्यतम गमेते होय. ते पहेलो समकाले अनंतानुबंधिया क्रोध मान माया लोचने उपशमावे तेवारपठी मिथ्यात्व तथा सम्यक्मिथ्यात्व अने सम्यक् दर्शन ए त्रण समकाले उपशमावे तेवारपठी अनुदीर्णे पण नपुंसकवेद उपशमावे तेमां जो पुरुष प्रारंजक होय तो प्रथम नपुंसकवेद पठी स्त्रीवेद पठी हास्यपट्क उपशमावीने पठी पुरुष वेद उपशमावे.

अने जो स्त्री प्रारंजिका होय तो प्रथम नपुंसकवेद पठी पुरुषवेद पठी हास्यादि पट्क पठी स्त्रीवेद उपशमावे अने जो नपुंसक प्रारंजक होय प्रथम ए अनुदीर्णे पण स्त्रीवेद उपशमावे पठी पुरुषवेद पठी हास्यादि पट्क तेवारपठी नपुंसकवेद उपशमावे पठी वे क्रोध एकांतरित संज्वलन विशेष क्रोधांतरित सदृशतुल्य उपशमावे.

एटले एनो ए अर्थेठे जे अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए वे क्रोध क्रोध पणे सरखा समकालें उपशमावे तेवारपठी एकलो संज्वलननोक्रोध उपशमावे पठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बेमान शमकालें उपशमावे पठी संज्वल ननुंमान उपशमावे पठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए वे मायाने सम काले उपशमावे पठी संज्वलनीमाया उपशमावे पठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्या ख्यानावरण ए वे लोच समकाले उपशमावे तेवारपठी संज्वलननुं लोच उपश मावे इहां उपशमश्रेणीनी स्थापनाकरवी.

इहां चर्चकपूठेठे के कहोजी संज्वलनादिकने उपशमघटेठे पण अनंतानुबंधिया ने तो सम्यक्त्व प्राप्तिथई त्यांज उपशमाव्याठे तो इहांअनंतानुबंधियातुं उ

पशम केम घटमानथाय हवे गुरु उत्तरकहेठे दर्शनपनिवजतां ल्याअनंतानुबंधिया
 नो कृयोपशमहतो अने इहांतो उपशमठे तेमाटे विरोधनथी वली शिष्यबोळ्यो कृ
 योपशम अने उपशममा शोविशेषठे गुरुकहेठे ज्यां कृयोपशमठे ल्यांतो उदीरणानु
 कृय अने अनुदीरणानु विपाकानुनवनी अपेक्षाये उपशमठे अने वली प्रदेशानुन
 वधीतो उदयठेज अने उपशमनेविपेत्तो प्रदेशानुनवपणनथी. यदाहपीपूपपाथोधि-
 वेएइसंतकम्मं, खउंवसमिए ङ्गानुजावसो ॥ उवसंत कसाउं पुण, वेएइ नसत
 कम्मपि ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं उवसंत कम्मज, नतउं कमेइ नवेइ उदएवी ॥ नय
 गमयई परमग्गइ, नचेवउंकडुएततु ॥ १ ॥ एगाथानो लेशमात्रअर्थ कहेठे सर्वोप
 शमेजे उपसम्युं ते मोहनीयकर्मठे बीजाकर्मने सर्वोपशमनथी सत्त्वोवसमो मोहस्स
 चेवेति वचनात् तेनुं अपकर्षण पण नथाय.

एटले मोहनीयकर्म अपवर्त्तनाकरणेकरीने स्थितिरसेकरी हीनपण कोइ करीश
 केनही अपिशब्दने निजकमपणामाटे उदयेपण ते दिये एटले ते वेदेपणनही उ
 पलक्षणथी उदयने अविनाजावो उदीरणाने विपेपण नदीये एपणजाणवु

वली बध्यमान सजातीय परप्रकृतिप्रते संक्रमणकरणेकरीने नगमें संक्रमावे प
 णनही वली तेकर्मउपशमाव्युंयकु उत्कर्षपणनही एटले उ वर्त्तनाकरणेकरीने स्थि
 तिरसेकरी वधारेपणनही निधत्ति निकाचन तो पूर्वं अपूर्वकरणकालेज निवृत्तिठे
 तेमाटे इहां उपशांतपणे तेनु निपेध नकरीये इहा शिष्यपूठेठे कहोजी संयतने अ
 नंतानुबंधियानुं उदय निपेधोठे तो तेनुं उपशम केवीरीते घटमानथाय? तेवारे गु
 रुकहेठे के तेतो निश्रे अनुजागकर्म अगीकारकरीने तेनुं उदयनिपेधोठे पण प्रदेश
 कर्मआश्रीने अनंतानुबंधियानुं उदय निपेधोनथी तथा चान्यधायि परमगुरुणा जीवे
 णजते सयंकमं कम्म वेएइ गोयमा इत्यादिक पाठपूर्वं एज तवनमां कहीगया ठैये

तेमाटे इहा प्रदेशकर्मानुनवना उदयनो उपशमजाणवो तेवारे वली शिष्यबो
 ल्यो जो एमसंयतने अनतानुबंधियानो उदयहोय तो तेथी दर्शननो विघातकेमन
 थाय गुरुकहेठे प्रदेशकर्मनुं मद अनुनवठे तेथी दर्शननो विघातनथाय तेम कोइ
 कने अनुजागकर्मानुनवेपण अत्यंत विघात नकरे जेम सपूर्ण मल्यादि चतुर्ज्ञानी
 ने मल्यादि ज्ञानावरणोदय विघातनथी करता तेम जाणवो तेवारपठी सूक्ष्मलो
 ज चरम किट्टिनो उपशम थयेथके सज्वलननो लोच उपशांतथाय. यडुके अणदं
 स नपुत्ति डीवेय डुकंच पुरिस वेयंच ॥ दोदोएगं तरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ
 ॥ १ ॥ ते समयेज ज्ञानावरण पंचक दर्शनावरण चतुष्क अंतराय पचक यश

कीर्त्ति उच्चैर्गोत्र एतली प्रकृतीनोबंध व्यवहृदथाय तेथी अन्तर समयनेविषे ए उपशांत कपाय गुण होय ते जवन्थी एकसमयमात्र अने उत्कर्षथी अंतरमूढुर्त्तकाल लगे. तेथी ऊर्ध्व नियमा ए उपशामक अवश्यपडे, तेपडवुं वे प्रकारेठे एक नवने ह्ये बीजुं कालनेह्ये त्यांनवह्य मरतानेहोय अने कालह्य उपशांतनो काल पूर्णथये होय जे कालह्ये पडेतेतो जेम चढयो तेमजपडे ज्यांज्यां बंधउदय उदी रणा व्यवहृत्तठे त्यांत्यांपडतोयको तेपाठा आरजीये एतलालगेपडतो थको क्यां लगेपडे ज्यांलगे प्रमत्तसंयतगुणगणोठे त्यांलगेपडे वली कोइकतो तेथीपण हेव ला वे गुणगणोजाय अने कोइक सास्त्रादन नावपणपामे.

वली जे नवह्येपडे ते प्रथमसमयेज सर्व बंधनादिक करणप्रवर्त्तावे ते करणना ना मकहेठे बंधन संक्रमण उर्दतना अपवर्त्तना उदीरणा उपशमना निधत्ति निकाचना.

हवे ए बंधनादिक आठेना अर्थे कहेठे कर्मपुज्जलने जीवना प्रवेशसाथे अ मिलोह पिंरुनीपरे अन्योन्य मजवुं ते बंधन कहिये वली प्रकृति स्थिति अनुजाग प्रदेशने अन्यकर्मरूपपणे रह्याठे तेने अन्यकर्मरूपे व्यवस्थापन करवुं ते संक्रमण कहिये. तथा जे स्थिति अने अनुजागनुं वधारवुं ते उर्दतना कहिये अने स्थिति तथा अनुजागनुं घटाडवुं ते अपवर्त्तना कहिये तथा जे कर्म पुज्जने अकालप्राप्त ने उदयावलिकानेविषे प्रवेश न करवु ते उदीरणा कहिये वली कर्मपुज्जलने उदी रणा निधत्ति निकाचना करणने अयोग्यपणे व्यवस्थापवुं ते उपशमना कहिये तथा उर्दतना अपवर्त्तना ए वे करण मूकीने बीजाकरणने अयोग्यपणे व्यव स्थापवु ते निधत्ति कहिये समस्त कर्मने अयोग्यपणे व्यवस्थापन करवु ते निका चनाकहिये एटले आवकरण माहेलो कोइ करण न लागे ते निकाचनाकहिये.

यदुक्तं कर्मप्रकृतिवृत्तौ॥बंधण संक्रमणु वृद्धणाय अपवट्टणा उदीरणया ॥ उव सामणा निहत्ति, निकायणा चित्ति करणाइं ॥ १ ॥ तत्रबंधोनामकर्म पुज्जानां जीवप्रदेशे. सहवन्हास्पिंरुवदन्योन्यानुगम. १ संक्रम प्रकृतिस्थित्यनुजागप्रदे शाना अन्यकर्मरूपतयास्थितानामन्यकर्मरूपेण व्यवस्थापन २ स्थित्यनुजाग योर्बृहत्करण मुर्दतना ३ तयोरेव न्हस्वीकरणमपवर्तना ४ कर्मपुज्जलानामका लप्राप्तानामुदयावलिकाया प्रवेशनमुदीरणा ५ कर्मपुज्जलानामुदीरणानिधत्तिकका चनाकरणायोग्यत्वेनव्यवस्थापनमुपशमना ६ उर्दतनाऽपवर्तनावर्द्धोपकरणा योग्यत्वेन व्यवस्थापनं निधत्ति ७ समस्तकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापनंनि काचना ८ इति करणाष्टकस्वरूपं प्रकृतिवृत्तिगत स्थानांगवृत्तावपि संक्रमण

स्वरूपं त्वेव यांप्रकृति बध्नाति जीवस्तदनुजावेन प्रकृत्यंतरस्थं दलिकं वीर्यविशेषे
 ए यत्परिणमयति ससंक्रम. तत्रप्रकृतिसंक्रम' सामान्यलक्षणावगम्यः मूलप्रकृती
 ना मुत्तरप्रकृतीनां वास्थितेर्यद्भुत्कर्षणमपकर्षण वा प्रकृत्यंतरस्थितौवा नयनं
 सस्थितिसंक्रम अनुजागसंक्रमोप्येव मेव यत्कर्मैड्यमन्य प्रकृति स्वजावेन
 परिणामेन परिणम्यते सप्रदेशसंक्रम कर्मणि कर्मांतरानुप्रवेश. संक्रम करणात्
 उक्तंच मूलप्रकृत्यनिष्ठा संक्रमयति गुणतउतरा प्रकृती' ॥ नचात्मा मूर्तत्वादध्यव
 सायप्रयोगेण ? तथा मतांतर ॥ मोक्षोण आउअंखलु, दंसणमोहंचरीत्तमोहंच ॥
 सेसाण पयडीण, उत्तरविहिसंकमोणणित् ॥ २ ॥

उत्कृष्टी एक नवनेविपे वेवार उपशमश्रेणी पडिवजे तेने नियमा ते नवने
 विपे कूपकश्रेणी न होय अने जे एकवार उपशमश्रेणी पडिवजे तेने कूपकश्रेणी
 पण होय उक्तंच सप्ततिकाचूणौ जोदोवारे उवसम, सेडिपडिवज्जई तसानियमा॥तंमि
 नवेखवग,स्से डीनञ्जिजोइक्कस्तिं॥ ? ॥ उवसम सेडिपडिवज्जइ, तस्सखवगसेडिडुज्जत्ति॥

ए कर्मग्रंथीनो अजिप्राय कह्यो अने सिद्धांतानिप्रायेतो एकनवमां एकजश्रेणी
 पडिवजे. उक्तंच कल्पाध्ययने॥ एव अप्पडिवडिए, सम्मत्ते देव मणुअ जम्मसुरा ॥
 अन्नयर सेडिवज्ज, एगनवेपांच सत्ताइ ॥ ? ॥ इहा सत्ताइके० सर्व सम्यक्त्व देश
 विरत्यादिक अन्यत्राप्युक्तं मोहोपशम एकस्मिन् नवेदि. स्यादसंतत. ॥ यस्मि
 न् नवेतूपशम. ह्योमोहस्य तत्रनश्ति उपशमश्रेणि.

हवे कूपकश्रेणीतुं स्वरूपकहेडे इहां कूपकश्रेणीतुं पडिवजणहार मनुष्य आव
 वर्षधी उपरनो अविरत देशधिरत प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो कोइ अन्यतम अत्यंत
 त विद्युदपरिणामि उत्तम संघयणवालो पूर्वनोजाण अप्रमत्त शुक्कथ्यानोपगते पण
 पडिवजे अने बीजातो धर्मथ्यानोपगतेंज पडिवजे एमकहेडे पडिवजवानुं अनुक्रम
 कहेडे अविरति देशविरति प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत ए माहेलोकोइ अन्यतम
 प्रथम अंतरमूढुत्तं अनंतानुबंधियानी चोकडी समकाले खपावे तेनो अनंतमजा
 ग मिथ्यात्वमांसक्रेपीने तेवारपठी मिथ्यात्व तदंशेसंघातेज समकाले खपावे जेस
 अतिसंचृत दावानल निशें अर्द्धदग्धे इधणातरपामिने वेउनेवालेडे तेरीते ए कूपक,
 पण तीव्रशुनपरिणाम पणाथी सावशेष अन्यत्र प्रक्रेपीने खपावे एमज वली स
 म्यक्त्व मिथ्यात्व, पण खपावे तेवारपठी एजअनुक्रमे सम्यक्त्वनेपण खपावे वली
 सम्यक्त्वनो चरमस्थितिरवम उत्कीर्णयके ए कूपककृतकरण एवु कहिये एकृतक
 रणादाननेविपे वर्त्ततो कोइक कालपण करीने चारगतिमाहे अन्यतमगतिये उपजे.

वली लेख्यानेविपे पण पूर्वे शुक्कलेख्यानेविपे हतो अने ह्मणा अन्यतम ले
ख्यानेविपेजाय तेमाटे प्रस्थापक मनुष्य अने निष्ठापक चारेगतिनेविपेहोय. उक्तंच
पठवयगोय मणुस्तो, निष्ठवगो चउसुधिगईसु, इहांजो बद्धायु रूपकश्रेणीप्रते आ
रंजे तो अनंतानुबंधियाना ह्यथी अनंतरमरण संभवतो व्युपरमैविरमे तेवारप
ठी कदाचित् मिथ्यात्वनाउदयथी वली अनंतानुबंधियाने उपविषे पाठा आरंजे
केमकेअनंतानुबंधिनु बीजजे मिथ्यात्व ते ह्ज्जी विनाश पाशुं नथी माटे अने जेणे
मिथ्यादर्शन ह्यकसुंते ते उपविषेनही अनंतानुबंधिया फरीपाठा प्रारंजेनही एट
ले अनंतानु बंधियानु बंधकरेनही केमके मिथ्यात्वरूप बीज नथी तेमाटे

वली ह्णीणसप्तक तो अप्रतिपतित परिणाम माटे अवश्यदेवतामां उप
जे अने प्रतिपतित परिणामतो वली नानापरिणाम संजवे तेमाटे जेवो परिणाम
होय तेवी चारेगतिमाहेली अन्यतमगति उपजे. उक्तंच बद्धाक पडिवन्नो, पढम क
सायस्कए जइमरिक्का ॥ तोमिह्नतोदयउ, विणिह्न नूउन खीणमि ॥१॥ तंमिमकजाइ
दिवं, तप्परिणामोय सत्तए खीणे ॥ उवरय परिणामोपुण, पड्वानाणा मईगइव ॥२॥
बद्धायुपण जो तिवारेकालनकरे तोपण सप्तकह्णीण थयो थको नियमारहे पणव
ली चारित्रमोहनीय खपाववाने यत्न नकरे उक्तंच बद्धाक पडिवन्नो, नियमा खीणं
मि सत्तएताइत्ति. इहां कोइपूठेजे मिथ्यादर्शनादिकनो ह्यथयो तेवारे ए रूपकने
सम्यक्त्व रहीत कहियें किंवा सम्यक्त्वसहीत कहिये ल्यारेगुरुबोव्या सम्यक्दृष्टीज
कहियें फरी परबोव्यो जे कहोजी सम्यक्दर्शननो परिह्यथयो तो सम्यक्दृष्टीपणुं
क्याथीहोय फरी गुरुकहेठे मयणालाटाली चोखाकख्या एवाजे कोइवा ते समान
अपनीत मिथ्यात्वनाव एवा मिथ्यात्वना पुजल तेहिज सम्यक्दर्शन कहिये तेने प
रिह्येवली तत्वश्रदान लक्षण परिणाम पद्मयोनथी तेमाटे साहसु श्लक्षणात्रप
टल टलवाथी चहुदर्शननीपरे विच्छिदितरहोय.

यदाह नाप्यसुधांशोधिः ॥ खीणमिदंसणतिए, किहोइ तउनिदंसणाईए ॥ नन्नइ
सम्मदिठी, सम्मत्तखए कउ सम्मं ॥ १ ॥ तिबिलीय मयण कुदव, रूवंमिह्नत्तमेव
सम्मत्तं ॥ खीण तउजोनावो, सदहणा लक्कणोत्तस्स ॥ २ ॥ यदिवा ॥ जह सुद्ध
जलाणुगयं, इद्धं सुद्धं जलक्कएसुतरं ॥ सम्मत्त सुद्ध पुग्गल, परिक्कए दंसणं ए
व ॥ ३ ॥ तम्मिय तइय चउठे, नवमि सिस्सेंति खइय सम्मत्ते ॥ सुरनर छुगली सु
गई, इमंनु जिण कालिय नराणं ॥ ४ ॥

ए प्रकारे ह्णीणसप्तकीनेविपे सम्यक्त्व पाभियें जोवली अवद्धायु रूपकश्रेणीने

आरजे तोसप्तकक्षीणथये नियमा अनुपरत परिणामज चारित्रमोहनीय खपाववाने यत्नप्रते आरजे. उक्तंच चाप्यकृता ॥ इयरो अणुवरउच्चिय, सयजिसमापेति तिहांजे सकलश्रेणीप्रतेकरे तेवा कृपकने निजनिज जवनेविपे सुरायु नरकायु तिर्यग्गायु ए त्रण आउपाव्यवठेद्याजहोय उक्तंच ॥ सुरनरय तिरिय आउ, नियय जवे सव्वजी वाणमिति एहिज कहेठे देवायु नारकायु तिर्यगायु लक्षणेजे आयुत्रय ते कृपक स्वल्प सम्यक्दर्शन अवशेषठे एह्वोज अप्रत्याख्यानावरण अने प्रत्याख्यानावरण कपायरूप आठप्रकृति ते समकालें खपाववाने अर्थे आरजे ए प्रकृति अर्द्धख पावेषकेज अंतराले नामकर्मनी तेरप्रकृति अने त्रण दर्शनावरणनी मली सोलप्र कृति खपावे तेना नाम कहेठे एकेडियजाति, वेइडियजाति, तेंडियजाति, चउरिंदि यजाति, स्थानार्द्धिकत्रिक ते निडानिडा, प्रचलाप्रचला, स्थिणद्धीए, स्थानार्द्धिरूप, उद्योतनाम तिर्यक्द्विक, नरकद्विक, थावरनाम, सूक्ष्मनाम, साधारण नाम, आ तप नाम, तेवारपठी आठ कपायतुं जेटलुं अवशेष रहु होय ते खपावे ए सर्व अंतरमूहुर्त्तमात्रे खपावे ए सूत्रादेश जाणवो.

वली बीजा एमकहेठेके प्रथम सोलप्रकृतिज खपाववानेअर्थे आरजे केवल अर्पांतराले आठकपायने खपावे पठी सोलप्रकृतिखपावे पठी नपुसकवेद पठी स्त्री वेद पठी हास्यादिपट्क पठी पुरुषवेदना त्रणखमकरे तेमांवेखम समकालेखपावे अने त्रीजोखम तो संज्वलनना क्रोधमाहेअर्क्षे एक्रम पुरुषप्रतिपत्ति होयतेवारेजाणवो.

अने स्त्रीप्रारंजिकाहोय तो प्रथम नपुसकवेदकखपावे पठी पुरुषवेद पठी हा स्यादिपट्क पठी स्त्रीवेदखपावे अने जेवारे नंपुसक प्रारंजकहोय तेवारे ए कृपक अनुदीर्णपण प्रथम स्त्रीवेदखपावे पठी पुरुषवेद पठी हास्यादिपट्क पठी नपुसक वेद खपावे तेवारपठी संज्वलनना क्रोध मान माया लोच लक्षण प्रत्येके अंतर मूहुर्त्तमात्र कालें पूर्वोत्तरीते खपावे श्रेणी परिसमाप्ति कालपण अंतरमूहुर्त्तनोज ठे अंतरमूहुर्त्तना अस्ख्याताजेदठे त्या लोचना चरमखंमना संख्याताखम करी ने पृथक् कालजेवेकरी तेने खपावे वली तेनो चरमखंम तेना अस्ख्याताखंमक रे तेपण समयसमय एकेको खंमखपावे

इहां क्षीण दर्शन सप्तक निवृत्तिवादर कहिये त्यांथी उंचो अनिवृत्तिवादर ज्यालगे चरमलोचखंमने खपावे त्या लगे जाणवो त्याथी उर्ध्ववली असंख्येय खं मप्रते खपावतो स्वप्नसपराय कहिये ते ज्यालगे चरमलोचनो अणुठ क्षयथाय त्यालगेजाणवो, त्यांथी ऊर्ध्वतो यथाख्यात चारित्रियो कहिये तेवली महत्प्रतरण

परिश्रान्तनीपरे मोहसमुद्रप्रतेतरीने विसामोलिये त्यारपठी उद्गस्थवीतरागगुणस्था
नक आवे तेना द्विचरम समयनेविपे निडा तथा प्रचला ए वे खपावे पठी
चरमसमयनेविपे पांच अंतराय पांच ज्ञानावरणीय चार दर्शनावरणीय खपावे तेने
ह्मये निम्भूलोभेदे केवलज्ञानीथाय केवलज्ञानपामे यदाहु श्रीमदाराध्यपादा चरमे
नाणावरणं, पंचविहं दंसणं चउवियपं॥पंचविह मंतरायं, खवइत्ता केवली होइ॥१॥

एटले एम कद्युजे अविरत्यादिक गुण माहेलो गमेते प्रथम संघयणी सुविद्युद
परिणामवत रूपकश्रेणीप्रते चढ्यो गुणगणाने अनुक्रमे अनंतानुबंधियादिकप्रते
उक्तप्रकारे करीने खपावतो ज्यालगे ह्णीणमोहना चरमसमयनेविपे विप्रपंचक
ज्ञानावरण पंचक दर्शनावरण चतुष्क खपावीने सर्व संख्याये ज्ञानावरण पंचक
दर्शनावरण नवक मोहनीयनी अछावीस आउपानी त्रण नामकर्मनी तेर अंतरा
यपंचक ए प्रमाणे त्रेसठ प्रकृति खपावीने केवली थाय ते नगवान नवस्थकेवल
लोकालोक सर्व सर्वात्माये अविकल विमल केवलज्ञानेदेखे, पणएबुं क्यारेथयुं नथी
अने आतुपणनथी तथा आसेपणनही जे नगवान् नदेखे, यदाहु श्रीमदाराध्यपादाः
संनिन्नं पासंतो, लोगमलोगंच सव्वउं सव्वं॥ तं नडिजं नपासइ, नूयं सव्वं नविस्संचा॥१॥

ए प्रकारे सयोगी केवली थयो त्यां जघन्यथी अंतरमूदुर्त्त अने उत्कृष्टो देशे
कणा पूर्वकोमीलगे विहरीने अयोगी केवली गुणगणुंचढी तेनाद्विचरम समयने
विपे बहुतेर अने चरमसमयनेविपे तेर एम पच्यासी प्रकृती खपावीने शिव अचल
अरुज अक्षय अव्याबाध अमदानंद रत्नसार पामे. यडुक्तं कर्मग्रंथे शतकांते॥ अ
णमिह मीस सम्म, त आउ इग विगल थीण तिगुजोयं ॥ तिरि नरय आवरडुगं
साहारायव अडनपुढी ॥ १ ॥ उग पुंसं सजलणा, दोनिहा विग्घवरण खय ना
णी ॥ देविद सूरि लहियं, सधगमिणं आय सरणछा ॥२॥ इति रूपकश्रेणीसमाप्त

हवे ह्मायक सम्यक्त्वनुं स्वरूप कहेढे चार अनंतानुबंधिया अने त्रण मोहनी
य एसात प्रकृतिह्मयकरीने जेणे ह्मायक सम्यक्त्व पाम्युं तेणे जो सम्यक्त्वपाम्या
पूर्वे देवायु अथवा नरकायु बांध्युं होय तो त्रणनवे मोहे जाय अने जो मनुष्य
अथवा तिर्यचनुं आयुबांध्युं होय तो चार नवे मोहे जाय केमके मनुष्य तथा ति
र्यचनुं आयु बांध्युं होय तो नियमा असंख्याता आयुपावाला युगलियानुंज
बांध्युं होय पण संख्याताआउपा वाला मनुष्य अथवा तिर्यचनुं जेणे आयु बांध्युं
होय तेतो सर्वथा ह्मायिक सम्यक्त्व तेजवे पामेज नही.

युगलियानानवपठी देवतानो नव तेपठी मनुष्यनो नव पामीनेसीजे एरीते स

सम्यक्त्वपाम्याना नव सहीत चारनव करे अने जेणे कोइपण गतिनुं हजी आउ पुंवांधुं न होय अने क्हायक सम्यक्त्वपामे तो ते जीव तेजनेवे कूपकश्रेणी पूरी करी ने सिद्ध थाय. उक्तंच पंचसंग्रहादौ तस्य चउद्धे तम्मिय, नवमि सिद्धंति दं सणे खीणे ॥ जंदेव नर अस्संवा, उ चरम देहेसु ते हुंति ॥ १ ॥ ए त्रीजी अने चोथी गाथानो अर्थ ठे

एक जीवनी अपेक्षाये अथवा नानाजीवनी अपेक्षाये सम्यक्त्वोपयोग जघन्यथी अने उत्कृष्टथी अंतरमुहूर्तज होय अने क्हायोपशमरूप सम्यक्त्व लब्धितो एक जीवने जघन्य अंतरमुहूर्त अने उत्कृष्टी गणश सागरोपम मनुष्यचवे अधिक होय ते उपरांत सम्यक्त्वथी पमेनही तो नियमासीजे ए एकजीव आश्रीने कहु अने नानाजीवआश्रीतो क्हायोपशम सम्यक्त्व सदासर्वदा होय. यडुक्तं दोवारे विजया इसु, गयस्ततिन्नञ्चुए अहव ताइ ॥ अइरेग नरचवियं, नाणा जीवाण सब्बा ॥ १ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ एटली गाथाउंनो अर्थ ठे.

हवे सम्यक्त्वनुं अतरते सम्यक्त्वथीपमीने पाहुं फरी सम्यक्त्वपामे तो केटले काले पामे इत्यादिक स्वरूप कहेठे ते अंतर जघन्यथी तो अंतर मुहूर्तठे एटले कोइकजीव सम्यक्त्व गयापठी वली पाहुं तदावरणना क्हायोपशमथी अंतरमुहूर्त मात्रेज सम्यक्त्व पामे अने उत्कृष्टथी आशातना प्रचुरने अर्द्धपुञ्जपरावर्त्तनुं अंतर पडे उक्तंच तिष्ठयर पवयणसुअं, आयरियं गणहर महद्दीअं ॥ आसायंतो बहुसो, अणंत ससारिउंहोइ ॥ १ ॥ इहा काइकन्यून अर्द्धपुञ्ज परावर्त्तरूपअनंतससारजाणवो.

हवे ते पुञ्जपरावर्त्त केतलेकालेहोय तेनुं स्वरूप कहेठे अनति अवसर्पिणी उत्सर्पिणीए एक पुञ्जपरावर्त्तहोय तेवा पुञ्ज परावर्त्त अनंता अतीतथया अ ने अनंता अनागतथसे हवे ए पुञ्जपरावर्त्त इव्य क्षेत्र काल नाव जेदे चारप्रकारे थाय तेवली एकेको सूक्ष्म अने वादर एवे प्रकारे करता आठप्रकार थायते कहेठे तेमां प्रथम इव्यथी सूक्ष्म अने वादर एवे जेदकहेठे औदारिकपणे वैक्रियपणे तेजसपणे जापापणे सासोश्वासपणे मनपणे कार्मणपणे ए सातपणे सर्वचतुर्द सरङ्गु गत परमाणुउप्रते आत्मा फरसे तेवारे इव्यथी वादर पुञ्जपरावर्त्त थाय यडुक्तं स्तोत्रादौ औदारिक वैक्रिय ते, जस नाषाप्राणचित्तकर्मतया ॥ सर्वाणुपरि एतेमै, स्थूलोक्षूत पुञ्जावर्त्त ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं नाषोच्छ्वासमनस्तेज, कर्मौदारिकवैक्रिया ॥ स्पृष्टायत्पुञ्जा मुक्ता, इव्यत सैष वादर. ॥ १ ॥

ए औदारिकादिक सात माहेथी एकेक औदारिक शरीरादिकपणे प्रत्येके सर्वचतु

द्वैत रङ्गगत परमाणुप्रते जीवफरसीने अनुक्रमेभूके तेवारे इव्यथी सूक्ष्म पुञ्ज परावर्त्तथाय एटले चउदराजलोकमाहेला सर्वपरमाणु पुञ्जने औदारिकशरीरपणे परिणमावे पढीवली तेमज सर्वपरमाणुपुञ्ज वैक्रियशरीरपणे परिणमावे एमज तेजस शरीरपणे जापापणे सासोश्वासपणे मनपणे कार्म्येणशरीरपणे प्रत्येके अ नुक्रमे आत्मापरिणमावे तेवारे इव्यथी सूक्ष्मपुञ्ज परावर्त्तथाय अने केटलाएक आचार्यने मत्तंतो ए सातमाहेला औदारिक वैक्रिय तेजस ने कार्म्येण ए चारशरीर माहेलुं गमेते एकशरीरपणे सर्वपुञ्ज परमाणुआ प्रते आत्मा अनुक्रमे फरसीने भूके पणइहां व्युत्क्रमे फरस्याते लेखामां गणायनही जे अनुक्रमे फरस्यातेज परमा पुआ लेखामांगणाय तेवारे इव्यथी सूक्ष्मपुञ्जपरावर्त्तथाय यडुकं तत्सप्तकैककेनच, समस्त परमाणु परिणतेर्यस्य, संसारे संसरतः सूक्ष्मोमेजिनतदावर्त्त ॥१॥ मतांतरेतु सूक्ष्मस्त्वेकेन कायेन स्पृष्टासर्वेपि पुञ्जला. येनुक्रमेण मुक्तास्तेगण्यंते व्युत्क्रमेणतुः॥१॥

हवे क्षेत्रथी सूक्ष्म अने वादर ए वे प्रकारनो पुञ्ज परावर्त्त कहेते जेटला लो काकाशना प्रवेश ठे तेटला सर्व आकाशप्रदेशें जीवमरणपामे एटलासर्व मरणेक रीने जीव क्रमोत्क्रमे जेम तेमकरीने फरसे एटले जेटला लोकाकाशनाप्रदेशे तेटला सर्वआकाशप्रदेश जेम तेम मरणेकरी फरसे तेवारे क्षेत्रथी स्थूल पुञ्ज परावर्त्तथाय अने जेवारें एक आकाशप्रदेशनेविपे जीवमरीने तदनंतर बीजा आकाशप्रदेश नेविपे मरे तेवारे ते मरणाश्रित आकाशप्रदेश लेखामांगणाय पण तृतीयादिक आकाशप्रदेशेमरे ते आकाशप्रदेश लेखामांगणायनही जोडना पासेना आकाश प्रदेशेमरे तेहिज आकाशप्रदेश लेखामांगणाय एम अनुक्रमें सर्वलोकाकाशना प्र देश मरणेकरीने फरसे तेटलेकाले क्षेत्रथी सूक्ष्मपुञ्ज परावर्त्तथाय यडुकं लोका काशप्रदेशाये त्रियमाणेन जतुना ॥ क्रमोत्क्रमेण संस्पृष्टा., सस्थूल क्षेत्रतोचवेत् ॥ ॥१॥ मृत्वाक्षेत्रेयदैकत्र, त्रियतेतदनंतरं॥ क्रमेणजीव. सर्वत्र, क्षेत्रेसूक्ष्मः सउच्यते १

हवे कालथी सूक्ष्म अने वादर पुञ्जपरावर्त्त कहेते जेटला उत्सर्पिणीनेविपे समयहोय तेटला समय क्रमे अने उत्क्रमेअनुक्रमे अने अननुक्रमे जीव मरणेक रीने व्यापे फरसे तेवारे कालथी स्थूलपुञ्ज परावर्त्त थाय.

अने ते उत्सर्पिणीने पहिले समयेमरीने वली बीजी उत्सर्पिणीनावीजे सम ये मरे तेवारे ते समयलेखामांगणाय पण बीजी उत्सर्पिणीने त्रीजे अथवा प हेलेसमये मरे ते लेखामां गणाय नही वलीत्रीजी उत्सर्पिणीने त्रीजेसमयेमरे तो तेसमये लेखामा गणाय पण पहिले बीजे चोथे प्रमुख समयामारे तेलेखामां

नावे एरीते जेटला एक उत्सर्पिणीना समयहोय तेटलासर्व समय अनुक्रमे मरणो करीने फरसे तेवारे तेटले कालें कालथी सूक्ष्मपुञ्ज परावर्त्तथाय यद्भक्तं यावत् उ त्सर्पिण्यास्यु , समयास्तान् स्वमृत्युना ॥ क्रमोत्क्रमेणव्याप्नोति, तस्थूल कालतो जवेत् ॥ १ ॥ प्रथमे समये मृतोत्सर्पिण्यास्तदनंतर ॥ द्वियते यदि सर्वत्र, क्रमा त्सूक्ष्म सकालत. ॥ २ ॥

हवे नावथी सूक्ष्म अने बादर पुञ्जपरावर्त्त कहेते इहां जगतमां एक समयने विपे जे पृथ्वीकायादिकनाजीव सूक्ष्म अग्नीकायमा ऊपजेते ते जीव केटलाऊप जेते असंख्येय लोकाकाशप्रदेश रासीप्रमाण ऊपजेते एटले अलोकमांहे चऊदरा जलोकना जेवा असंख्याता लोक कटपीयें ते असंख्याता चऊदराजलोकना जेट ला आकाशप्रदेशथाय तेटलाजीव एकसमयनेविपे पृथ्वीकायादिकमांथीचवीने सूक्ष्म अग्नीकायनेविपे ऊपजेते ते जे पृथिव्यादिकथी अने बादर अग्नीकायथी चवीने एकसमयनेविपे सूक्ष्म अग्नीकायपणे ऊपजेते ते जेवा पण जे सूक्ष्मअग्नीकायप णे पूर्वेऊपनाठे वली तेहिजमरीने सूक्ष्मअग्नीकायपणे ऊपजेते ते जेवानही केम के ते तो पूर्वेज सूक्ष्मअग्नीकायपणे रह्याठे ते केटलाठे एकसमयनेविपे जे सूक्ष्म अग्नीकायनाजीव ऊपजेते तेथी असंख्यातगुणा पूर्वे ऊपना सूक्ष्मअग्नीकायना जी वठे तेकेमके एक सूक्ष्मअग्नीकायनोजीव ऊपनोथको अंतरमूढूर्त्तसुधी जीवेते अ ने अंतरमूढूर्त्तमा जेटला समयठे ते समयसमयमा प्रत्येके पूर्वोक्त असंख्येयलोका काशप्रदेशप्रमाण सूक्ष्म अग्नीकायपणे जीवो ऊपजेते तेमाटे एकसमयमां सूक्ष्मअग्नि कायना जे जीवऊपजेते तेथी एजकायनेविपे पूर्वे ऊपजेलाजीव असंख्यातगुणाठे.

एटले एकसमयनेविपे ऊपना ते तथा अंतरमूढूर्त्तमांहे जे पूर्वे ऊपनाठे तेसर्व जेलाकरीये तेनीजे संख्याथाय ते सर्वसंख्याथी तेजजीवोनी कायस्थिति एटले तेहि ज कायनेविपे मरीने अवतरतु तेरूप कायस्थिति असंख्यातगुणीठे केमके एकेक सूक्ष्म अग्नीकायनाजीवनी असंख्येय उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काय स्थि ति कहीठे माटे वलीते कायस्थितिथीपण संयमस्थानक अने अनुजागबंधस्थान क प्रत्येके असंख्यातगुणाठे एटले कायस्थितिथी संयमस्थानक असंख्यातगुणा अने अनुजागबंधस्थानकपण असंख्यातगुणाठे अने ए वे माहोमांहे तो मुख्यठे एटले जेटला संयमस्थानक तेटलाज अनुजागबंध स्थानकठे अने कायस्थितिनी परे असंख्याता स्थितिवंधठे अने एकेक स्थितिवंधनेविपे असंख्याता अनुजागबंध स्थानकठे तेनोज स्वरूप कहेते

अनुनागबंध स्थानकते कोनेकहियें जे एक कपायिक अथ्यवसायेंकरीने ग्रह्याजे कर्मपुजल तेतुं विवहित एकसमय बंध रस समुदाय परिमाण तेने अनुनागबंध स्थानककहिये ते अनुनागबंधस्थानक केटलाठे तो के चऊदराजलोक जे वो एकलोकाकाश तेवा असंख्याता लोकाकाश अलोकमां कवपीये तेना जेटलाप्रदेशठे तेना जेटलाठे ते अनुनागबंधस्थानकना निष्पाटक एटले नीपजावनार जे कपायोदयरूप अथ्यवसाय विशेष ते पण अनुनागबंध स्थानक कहिये तेपण ते टलाजठे जेटलेकाले क्रमोत्क्रमे करीने सर्व अनुनागबंधाथ्यवसायनेविपे वर्त्ततोथ को जीव मूउ होय तेवारें तेटलेकाले बादर जाव पुजलपरावर्त्तथाय.

कोइकजीव सर्वजघन्य कपायोदयरूप अथ्यवसाय स्थानकनेविपे मरणपाम्यो तेवारपठीजो तेहिजजीव अनंताकालपठी पण ते प्रथम स्थानकथकी अनंतरबीजा अथ्यवसाय स्थानकनेविपे वर्त्ततोथको मरणनेपामे ते मरणने लेखामांगणियें पण बीजा उत्क्रमजावी अनंतामरण पण लेखामां न आवे एरीते अनुक्रमे सर्व अनुनाग बंधाथ्यवसाय स्थानक जेटलेकाले मरणेकरीने फरसे तेटले कालें सूक्ष्म जाव पुजल परावर्त्त कहिये इहां क्षेत्रथकी सूक्ष्म पुजलपरावर्त्त मार्गणानेविपे लेखुं ने बीजा पुजलपरावर्त्ततो परुपणा मात्रे.

यडुक्तः— एक समयंमि लोए, सुदुमगणिजिआउ जे उपविसंति ॥ तेहुंति असंखलोग, पएस तुद्धा असंखिज्जा ॥ १ ॥ ततो असंख गुणिया, अगणिकायाउ ते ति कायतिई ॥ ततो संयम अणुना, ग बंधघाणाण संखाणि ॥ २ ॥ ताणिमंतरेण जया, पुछाणि कमुक्कमेण सवाणि ॥ जावमि बायरोसो, सुदुमो अकमेण बोधवो ॥ ३ ॥ अन्यत्राप्युक्तं ॥ जावेथ समये जीवाः पृथ्वीकायपुरस्तरा. ॥ सूक्ष्मेषु तेजः कायेषु यावत् प्रविशंतिहि ॥ १ ॥ इहते स्युरसंख्येय लोक प्रदेशतुल्यकाः ॥ असंख्यातास्त त पूर्वोत्पन्ना कायस्थितिस्तत ॥ तत.स्थानान्यसंख्यानि संयमाथ्यवसाययो. ॥ तानिष्टप्रेथदाजीव. किलगह्वन जवातरे ॥ ३ ॥ बादरोव्युत्क्रमेणायं ज्ञेयः सूक्ष्मक्रमेणतु ॥ अत्रक्षेत्र परावर्त्तणा धिकार परैर्नतु. ॥ ४ ॥

ए प्रकारे सम्यक्त्वरहित थको एणेजीवे अथ्यवहार रासीमांहे एवां पुजलपरावर्त्त अनंताकथा तेहिजजीव महताकष्टे व्यवहाररासीपाम्यो त्या व्यवहारराशीमां पण केटलाक कालसुधीरहेवे माटे हवे इहां प्रसंगे कायस्थितिनुं काइक स्वरूपकहेवे.

तिर्यचनी गति असन्निया एकेई वनस्पति अने नपुसक एटला मांहे एक आवलिकाने असंख्यातमेंजागें जेटलासमयहोय तेटला पुजलपरावर्त्त उत्कृष्टोरहे एक

आवलिकाना पण असंख्यातासमय अने आवलिकाना असंख्याताजागनापण अ
संख्याता समय जाणवा कारणके असंख्यातुं असंख्याते जेदेठे

हवे व्यवहाररासीमां आव्यापणीपण सूक्ष्मपणे केटलो कालरहे ते कहेठे ष
ष्ठी अप तेज वाउ अने वनस्पति ए पाच सूक्ष्ममां सामान्यपणे असंख्याता
लोकाकाश प्रदेशप्रमाण उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणी काललगे रहे एकसूक्ष्ममां
रहे तोपण एटलोज काल अने पांचसूक्ष्ममांरहे तोपण एटलोज कालजाणवो

हवेवादरमां सामान्यपणे रहेतो केटलो कालरहे तेकहेठे वादरमां अने वादरवनस्प
तिमां अशुलने असंख्यातमेनागे जेटलाप्रदेशहोय तेटलीउत्सर्पिणी अवसर्पिणीका
ललगेरहे अनेवादरनिगोदमा अडीपुज्ज परावर्त्तरहे अनेष्व्थीकाय अपकायतेउकाय
वाउकाय प्रत्येक वनस्पतिकाय अने निगोदमां सितेर कोमाकोमी सागरोपम लगेरहे.

हवे विगलेंडी अने सामान्यपणे पर्याप्तोवादर एकेडी एमां केटलोकालरहे ते
कहेठे बेंडी तेंडी चोरेडीमां संख्यातावरस सहस्रसुधीरहे अने सामान्यपणे पर्याप्तोवा
दर एकेडी माटी पाणी वायरो प्रत्येक वनस्पति मांपण सख्यातावरस सहस्र सुधिरहे

हवे वादरपर्याप्ता अग्रिकाय अने विगलेंदी तेनो कार्शक विशेषकहेठे वादर
अग्रिकायनी नवस्थिति उत्कृष्टीतो त्रणअहोरात्री अने कायस्थिति उत्कृष्टीतो
निरतर सर्वनवकाल संकलनाये संख्याता दिवसनी जाणवी अने वेडेंडीमांहे नव
स्थिति वारवर्षनी अने कायस्थिति सर्वनव काल संकलनाये सख्याता वरस होय
अने तेंडीमांहे उगणपचासदिवश नवस्थिति ते एकनवनो उत्कृष्टो आउपानोकाळ
ठे अने कायस्थिति सर्वनवसंकलनाये संख्यातादिवशनी ठे वली चउरंडीमा उत्कृ
ष्टी ठ महीनानी नवस्थिति एकनवआयुरूपठे अने कायस्थिति तो संख्याता मही
नानी ठे अने त्रस मांहेतो वे सहस्रसागरोपम संख्यातेवरसे अधिक कायस्थितिठे

हवे पचेडीतुं सामान्य विशेषपणे कायस्थितिंतुं स्वरूपकहेठे पंचेडीमाहे पंचे
डीपणेजीवरहेतो उत्कृष्ट एकहजार सागरोपम जाजेरुरहे अने देव तथा नारकी
मां नवस्थिति अने कायस्थिति तेपण तेंत्रीससागरोपमज जाणवा सन्नीया अने
पुरुषवेदमाहे वज्ञे सागरोपमथी मांमीने नवज्ञे सागरोपम जाजेरानी कायस्थिति
ठे सन्नीया तिर्घच सन्नीया मनुष्यमाहे त्रणत्रण पल्योपम सातपूर्वकोडी सहित
कायस्थितिहोय अने स्त्रीवेदमांहे एकशोदशपटयोपम अने पूर्वकोमी षष्ठकृत्वं अ
धिक एटली कायस्थितिहोय तथा स्त्रीवेद अने नपुसकवेदमा जघन्यतो एकसम
य ते उपशमभेणीवालाने होय अने शोपवीजाथाकताने जघन्यकाल अंतरमूहुर्त्त

अपर्याप्ताने जघन्य अने उत्कृष्टो पण अंतर मुहूर्त्तकाल पर्याप्ता सूक्ष्म अने बादर
अनंत कायने जघन्य अने उत्कृष्टो अंतरमूहूर्त्तकाल काल जाणवो.

यदुक्तं कायस्थिति विचारस्तोत्रे अब्रवहारियमक्षे, नमिऊण अणंत पुग्गल
परट्टे ॥ कहविवहाररासिं, संपत्तानाहत्तविय ॥ १ ॥ ऊक्कोसंततिरियगइ, असं
न्नि एगिदिवण नपुंसेसु ॥ नमिउं आवलि असंखि, नागसमपुग्गल परट्टी ॥ २ ॥
सामन्नं सुहमत्ते, उस्तप्पिणितं असंखलोगसमा ॥ नमिउं तहपिहुसुहमे, पुढविज
जजलण पवणवणे ॥ ३ ॥ उहेण वायरत्ते, तह वायरवणस्सईसुताउं पुणो ॥ अंगु
लअसंखनागो, दोसमुपरट्टयनिगोए ॥ ४ ॥ वायरपुढविजलजलण, पवणं पत्तेय
वणनिगोएसु ॥ सत्तरिं कोडाकोडी, अयराणनाह नमिउंहं ॥ ५ ॥ संखिऊवास स
हसे, वितिचउरिदीसुउंहउंअतहा ॥ पऊत्त वाय रेगिंदिनूजलानिल परित्तेसु ॥ ६ ॥
वायरपङ्गिगविति चउ, रिदिसुसंखदिणवास? उमासा; संखिऊवास अहिया, तसे
सुदोसागरसहस्से ॥ ७ ॥ अयरसहस्संअहियं, पणिंदिसुतितीसअयरसुरनिरए ॥
सन्निमुतहपुरिसेसु, अयरसयपुहुत्तमप्रहियं ॥ ८ ॥ सन्नितिरिनरेसु पुढो, पद्धतिगं
सत्त पुढ कोडिजुअं ॥ दसहिय पलिय सयं, थी सु पुवकोडि पुहुत्तछुअं ॥ ९ ॥ इ
डि नपुसे समउं, जहत्तो अंतो मुहुत्तसेसेसु ॥ अपऊ सुक्कोसंपिय, पऊ सुहम पू
ल अणतेवि ॥ १० ॥ ए कायस्थितिकही

हवे प्रसंगागत नवसंबंध परस्परे नवगणनारूप कहेउं:-परनवतुं अने तेनवतुं
उत्कृष्ट अने जघन्य आयुने नेदेकरी चारजांगाथाय तेकेवीरीतेके ज्यां अवतरे त्यां
उत्कृष्ट अने परनवतुंपण उत्कृष्ट, ज्यां अवतरे त्यां जघन्य अने परनवतुंपण ज
घन्य, ज्यां अवतरे त्यां उत्कृष्ट अने परनवतुं जघन्य, ज्यां अवतरे त्यां जघन्य
अने परनवतु उत्कृष्ट, ए चारजांगाजीवने नवगणनाये जाणवा.

सन्निउंमनुष्य अने सन्निउंतिर्यच उ नरकमां उत्कृष्टो एकांतरित आठ नवसुधि
जाय; सन्निउं मनुष्य अने सन्निउं तिर्यच ते नवनपति व्यंतर ज्योतपी अने आ
ठमां देवलोकसुधी आठनव एकांतरित उत्कृष्टोजाय अने जघन्यतो वे नवजाण
वा; तिर्यच सातमीनरके सातवारजाय अने पूरण आठपे पांचवारजाय, अने ज
घन्यतो त्रणनवथाय, नवत्रैवेयक अने आनंत प्राणत आरण तथा अच्युत ए चा
रेदेवलोकां लगे सातनवहोय, चारअनुत्तरमां पांचनवहोय, जघन्यतो त्रणनव
होय, अनेसर्वाथैलिडे जघन्य अने उत्कृष्ट त्रणनवहोय, सातमीष्टध्वीये वेनवजघ
न्य, अने उत्कृष्टपण वे नवजहोय, इहा सर्वत्र पर्याप्ता मनुष्यजाणवा.

युगलिया तिर्यंच तथा मनुष्य ते जवनपति व्यंतर ज्योतपी अने वे देवलोकना देवतामांजाय, पण इहां उत्कृष्ट अने जघन्यवेजजवहोय, असंनिउं पर्याप्तोतिर्यंच ते प्रथमनरके अने जवनपति तथा व्यंतरमां उत्कृष्ट तथा जघन्य वेजजवहोय.

आठदेवलोकना देवता अने ठ नरकनानारकी ते पर्याप्ताअपर्याप्ता सन्निआ तिर्यंच तथा मनुष्यमां उत्कृष्टा आठजवकरे, सातमि नरकना नारकी तिर्यंचमा ठ जवकरे अने पूरण आठपे चारजवकरे, नवग्रैवेयकना देवता अने नवमाथी बार मांदेवलोकमुधीना चार देवलोकना देवता पर्याप्ता सन्निआ मनुष्यमां ठ जवकरे.

चार अनुत्तर विमानना देवता मनुष्यमा चारजवकरे अने जघन्यथी वे जवकरे, तथा सर्वार्थसिद्धिना देवताने जघन्य अने उत्कृष्ट वेज जवहोय, जवनपति व्यंतर ज्योतपी अने वे देवलोकना देवताने माटी पाणी प्रत्येक वनस्पतिमा जघन्य अने उत्कृष्ट वे जवहोय. असंख्याता आठपावाला युगलिया तिर्यंच अने मनुष्यमाहे संनिउं असंनिउं तिर्यंच अने सन्निउं मनुष्य मिथ परस्पर वे जवजाणवा

माटी पाणी वायु अने अग्नि एना जीव वनस्पति पृथ्व्यादिकमाहे मिथ परस्परें असंख्यातो कालरहे, अने पृथ्व्यादिकजीव वनस्पतिमाहे असंख्यातो कालरहे अने वनस्पतिना जीव वनस्पतिमाहे अनंतो कालरहे, विगलेंडीना जीव पाचपृथ्व्यादिकमाहे संख्यातो कालरहे पांच पृथ्व्यादिकना जीव विगलेंडियमा संख्यातो काल रहे, विगलेंडीना जीव विगलेंडीमाहे संख्यातो कालरहे, उत्कृष्टआठपे त्रिणांगे आठ जवजाणवा, जघन्यतो सधले वे जवजाणवा.

संनिआ असंनिआ तिर्यंच तथा मनुष्यने विगलेंडीअने पांच पृथ्व्यादिकमा आठजवथाय, मनुष्य अने तिर्यंचमाहे विगलेंडीअने पृथ्व्यादिकना जीव आठजवथावे, ए चिहुं नागें जाणवा, वली वायु अने अग्नीमा मनुष्यने उत्कृष्ट अने जघन्य तो वेज जवहोय, एरीते परजव अने ते जवना आयुनो संबंध तेनी बंधस्थिति चिहुं नागे जघन्य अने उत्कृष्ट अनुक्रमे कही

उक्तंच तत्रैव कायस्थिति विचार स्तोत्रे - परजव तप्रवथाऊ, लहु गुरु चउजंगि सन्निरतिरिउं ॥ नरयठगे उक्कोसं, इकंतर जमइ अचनवे ॥ १ ॥ जवणवणजोड कप्प, ष गेविइय अडनवाउ डु जहन्ना, सगसत्तमीइतिरिउं, पण पुसासु यतिजहन्ना ॥ २ ॥ गेविक्काणय चउगे, सग पणणुत्तर चउक्तिजहन्ना ॥ पक्का तरोति सर्वचे डुहाडुजवत मतमाइ पुणो ॥ ३ ॥ डुजुगलिय तिरियमणुआ ॥ डुनवा जवणजोड कप्पडुगे ॥ रयणप्पह जवणवणे, डुह डुनव असन्नि पजतिरिउं ॥ ४ ॥ पज स

न्नि तिरिनरेसुय, सहसारांता सुराय वनिरया ॥ अडनव सत्तम निरया, तिरिये ठ
नव चक्रपुष्पा ॥ ५ ॥ पज सन्निररे ठ नवा, गेविक्काणय चउक्कदेवाय ॥ चउणुत्त
रे चउ नवा ॥ डुजहन्न डुहावि सब्बा ॥६॥ नूजल वणे सु डुनवा, डुहावि जवं
एवण जोइस डुकप्पा ॥ उमियाउतिरि नरेतह, मिय सन्नियरति सन्निररा ॥ ७ ॥
नूजल पवग्गि मिहवणा, चुवाइ सुवणेसु अचवाइ ॥ पूरंति असंख नवि, वेवणीणसु,
अणंतजवे. ॥८॥ पण पुढवाइ सुविगला, विगलेसु अ नवाइ विगलि संखजवे ॥ यु
रु आउति जंगेपुण, जवठ सब्ब जहन्ना ॥ ९ ॥ मिहसंन्नियर तिरिनरा, विगलउ
वाइ सुयनर तिरिसुए ए ॥ अमनवा चउजंगे, डुह पवणग्गिसु नराडु नवा ॥ १० ॥
परतप्रावाउ माणा, इह पउसंवेह कणबंधठिई ॥ किन्तिय विन्नविउमलं, चउजंगे ज
हनुको सकमा ॥ ११ ॥ ए दशमीगाथानो अर्थठे नानाजीवनी अपेक्काये अंतर
नहोय इत्यादिक आवश्यकवृत्तिमां कहुठे ए इग्यारमी गाथानो अर्थ ठे.

अथवा एहिज सम्यक्त्व अनेकविध कहियें यदाहुः एगविह डुविह तिविहं,
चउहा पंचविह दसविहं सम्म ॥ दक्का इकारगाइ, उवसम नेएहिं वासम्मं ॥१॥
एगविहं सम्मरुई, निसग्ग ह्मिगमेहिं तं जवे डुविहं ॥ तिविहं तखइगाइ, अहवावि
डुकार गाईयं ॥ २ ॥ खइयाइ सासणजुअं, चउहा वेयग जुअं तुंपंचविहं ॥ तंमिह
वरम पुग्गल, वेयणाउ दसविहंएवं ॥ ३ ॥

अथवा उत्तराध्ययनना अठावीसमां अध्ययनमां ए पण दशप्रकार कहाठे नि
सग्गुवेएसरुई, आणरुई सुत्त वीयरुइ मेव ॥ अजिगम विञ्जाररुई, किरिया संखेव
धम्मरुई ॥ १ ॥ नूअड्ढेणा ह्मिगया, जीवाजीवाय पुसु पावच ॥ सहसमुइ आसव
संव, रोय परोएइ उनिसग्गो ॥ २ ॥ जोविणडिठेनावे, चउविहे सहहाइ सयमेव ॥
एमे अन्न न हन्तिअ, ननिसग्गरुइत्ति नायवो ॥ ३ ॥ ए ए चेवहुनावे, उवइठेजो
परेण सहहई ॥ ठउमठे एजिणेण व, उवएसरुइत्ति नायवो ॥ ४ ॥ रागो दोसो
मोहो, अन्नाण जस्स अवगयंहोई ॥ आणाए रोयंतो, सोखल्लु आणारुईनाम ॥५॥
जोसुत्तमहिङ्कंतो, सुएण उंगाहईउ सम्मतं ॥ अंगेण बाहिरेणव, सोसुत्त रुइत्ति ना
यवो ॥ ६ ॥ एणेण अणेगाई, पयाइ जो पसरैइ उसम्मतं ॥ उदएवतिह्वविदु, सो
वीयरुइत्ति नायवो ॥ ७ ॥ सोहोइ अजिगमरुई, सुअनाणं जेण अउउदिठं ॥ इका
रस अंगाई ॥ पइन्नगं दिठिवाउअ ॥ ८ ॥ दवाण सब्बजावा ॥ सब्बपमाणोहिंजस्स
उवलक्षा ॥ सवाहि नयविहीहि, विञ्जाररुइत्ति नायवो ॥ ९ ॥ दंसण नाण चरित्ते,
तवविणए सब्बसमिइ गुत्तीसु ॥ जोकिरिया जावरुई, सोखल्लु किरिया रुईनाम

युगलिया तिर्यंच तथा मनुष्य ते जवनपति व्यंतर ज्योतषी अने वे देवलोकना देवतामांजाय, पण इहां उत्कृष्ट अने जघन्यवेजनवहोय, असंनित्तो पर्याप्तोतिर्यंच ते प्रथमनरके अने जवनपति तथा व्यंतरमां उत्कृष्ट तथा जघन्य वेजनवहोय

आठवेवलोकना देवता अने ठ नरकनानारकी ते पर्याप्ता अर्प्याप्ता सन्नित्था तिर्यंच तथा मनुष्यमा उत्कृष्टा आठजवकरे, सातमि नरकना नारकी तिर्यंचमां ठ जवकरे अने पूरण आठपे चारजवकरे, नवग्रैवेयकना देवता अने नवमांथी वार मांदेवलोकसुधीना चार देवलोकना देवता पर्याप्ता संनित्थिया मनुष्यमां ठ जवकरे.

चार अनुत्तर विमानना देवता मनुष्यमा चारजवकरे अने जघन्यथी वे जवकरे, तथा सर्वाथिसिद्धिना देवताने जघन्य अने उत्कृष्ट बेज नवहोय, जवनपति व्यंतर ज्योतषी अने वे देवलोकना देवताने माटी पाणी प्रत्येक वनस्पतिमा जघन्य अने उत्कृष्ट वे जवहोय असंख्याता आठपावाला युगलिया तिर्यंच अने मनुष्यमाहें संनित्त अंसंनित्त तिर्यंच अने सन्नित्त मनुष्य मिथ परस्परें वे जवजाणवा

माटी पाणी वायु अने अग्नि एना जीव वनस्पति पृथ्व्यादिकमांहे मिथ परस्परें असंख्यातो कालरहे, अने पृथ्व्यादिकजीव वनस्पतिमांहे असंख्यातो कालरहे अने वनस्पतिना जीव वनस्पतिमाहे अनंतो कालरहे, विगलेंडीना जीव पांचपृथ्व्यादिकमांहे संख्यातो कालरहे पांच पृथ्व्यादिकना जीव विगलेंडियमा संख्यातो काल रहे, विगलेंडीना जीव विगलेंडीमांहे संख्यातो कालरहे, उत्कृष्टआठपे त्रिजागे आठ जवजाणवा, जघन्यतो सघले वे जवजाणवा.

संनित्थिया असंनित्थिया तिर्यंच तथा मनुष्यने विगलेंडीअने पांच पृथ्व्यादिकमां आठजव जाय, मनुष्य अने तिर्यंचमाहे विगलेंडीअने पृथ्व्यादिकना जीव आठजवआवे, ए चिहुं जागे जाणवा, वली वायु अने अग्नीमां मनुष्यने उत्कृष्ट अने जघन्य तो बेज नवहोय, एरीते परजव अने ते जवना आयुनो संबंध तेनी बंधस्थिति चिहुंजागे जघन्य अने उत्कृष्ट अनुक्रमे कही

उक्कंच तत्रैव कायस्थिति विचार स्तोत्रे - परजव तपत्रव्याज, लहु गुरु चउजंगि सन्नित्तरतिरिउं ॥ नरयत्तगे उक्कोसं, इक्कंतर नमइ अठनवे ॥ १ ॥ जवणवणजोइ कप्प, ४ गेविइय अडनवाउ इ जहन्ना, सगसत्तमीइतिरिउं, पण पुष्पासु यतिजहन्ना ॥ २ ॥ गेविक्काणय चउगे, सग पणणुत्तर चउक्कित्तजहन्ना ॥ पक्क तरोति सवठे इहाइजवत मतमाइ पुणो ॥ ३ ॥ इजुगलिय तिरियमणुआ ॥ इजवा जवणजोइ कप्पडुगे ॥ रयणप्पह जवणवणे, इह इजव असन्नि पजतिरिउं ॥ ४ ॥ पज स

त्रि तिरिनरेसुय, सहसारांता सुराय च्चनिरया ॥ अडनव सत्तम निरया, तिरिये ठ
 नव चकपुसा ॥ ५ ॥ पज सन्निररे ठ नवा, गेविक्काणय चउक्कदेवाय ॥ चउणुत्त
 रे चउ नवा ॥ डुजहन्न ड्हावि सव्वा ॥ ६ ॥ नूजल वणे सु डुनवा, ड्हावि नव
 णवण जोइस डुकप्पा ॥ उमियाउतिरि नरेतह, मिय सन्नियरति सन्निररा ॥ ७ ॥
 नूजल पवग्गि मिहवणा, चुवाइ सुवणेसु अचवाइ ॥ पूरति असंख नवि, वेवणीणसु,
 अणंतनवे. ॥ ८ ॥ पण पुढवाइ सुविगला, विगलेसु अ नवाइ विगलि संखनवे ॥ गु
 रु आउति जंगेपुण, नवठ सव्वा जहन्ना ॥ ९ ॥ मिहसंन्नियर तिरिनरा, विगलउ
 वाइ सुयनर तिरिसुए ए ॥ अरुनवा चउजंगे, ड्हा पवणग्गिसु नराड नवा ॥ १० ॥
 परतप्रवाउ माणा, इह पउसंवेह कणबंधतिई ॥ कित्तिय विन्नविउमलं, चउजंगे ज
 हनुको सकमा ॥ ११ ॥ ए दशमीगाथानो अर्थेठे नानाजीवनी अपेक्षाये अंतर
 नहोय इत्यादिक आवरयकवृत्तिमां कहुंठे ए इग्यारमी गाथानो अर्थे ठे.

अथवा एहिज सम्यक्त्व अनेकविध कहिये यदाहु. एगविह डुविह तिविहं,
 चउहा पंचविह दसविहं सम्म ॥ दक्का इकारगाइ, उवसम जेएहिं वासम्मं ॥ १ ॥
 एगविहं सम्मरुई, निसग्ग हिग्गेहिं तं नवे डुविहं ॥ तिविहं तखइगाइ, अहवावि
 डुकार गाईयं ॥ २ ॥ खइयाइ सासणसुअं, चउहा वेयग सुअं तुपंचविहं ॥ तमिह
 वरम पुगल, वेणणउ दसविहंएव ॥ ३ ॥

अथवा उत्तराध्ययनना अठावीसमां अध्ययनमां ए पण दशप्रकार कह्याठे नि
 सग्गुवेएसरुई, आणरुई सुत्त वीयरुइ मेव ॥ अजिगम विञ्जाररुई, किरिया संखेव
 धम्मरुई ॥ १ ॥ नूअण्णैणा हिग्गया, जीवाजीवाय पुसु पावंच ॥ सहसमुइ आसव
 संव, रोय परोएइ उनिसग्गो ॥ २ ॥ जोविणडिठेजावे, चउद्विहे सहहाइ सयमेव ॥
 एमे अन्न न हत्तिअ, सनिसग्गरुइत्ति नायवो ॥ ३ ॥ ए ए चेवडुजावे, उवइठेजो
 परेण सहइई ॥ ठउमठे एजिपोण व, उवएसरुइत्ति नायवो ॥ ४ ॥ रागो दोसो
 मोहो, अन्नाणं जस्त अवगयंहोई ॥ आणाए रोयंतो, सोखलु आणारुईनाम ॥ ५ ॥
 जोसुत्तमहिक्कंतो, सुएण उंगाहईउ सम्मतं ॥ अंगेण बाहिरेणव, सोसुत्त रुइत्ति ना
 यवो ॥ ६ ॥ एणेण अणेगाई, पयाइ जो पसरेइ उसम्मतं ॥ उदएवतिह्वविदू, सो
 वीयरुइत्ति नायवो ॥ ७ ॥ सोहोइ अनिगमरुई, सुअनाणं जेण अडउदिठं ॥ इका
 रस्त अंगाई ॥ पइन्नगं दिठिवाउअ ॥ ८ ॥ दवाण सव्वजावा ॥ सव्वपमाणेहिंजस्त
 उवलधा ॥ सव्वाहि नयविहीहि, विञ्जाररुइत्ति नायवो ॥ ९ ॥ दंसण नाण चरित्ते,
 तवविणए सव्वसमिइ गुत्तीसु ॥ जोकिरिया जावरुई, सोखलु किरिया रुईनाम

॥१०॥ अणनिग्गहिय कुदिष्ठी, संखेरुइत्ति होइनायवो, अविसार उपवयणे, अण तिग्गहियो अ सेसेसु ॥११॥ जो अणिकायधम्मो, सुअखलुचरित्त धम्मच; सदहइ जिणानिहियं, सोधम्म रुइत्ति नायवो ॥ ११ ॥ हवे ए गाथानो विपमार्थं जेशमात्र कहेते नूअणत्ति सङ्गताअमीअर्थाइ सङ्गतार्थत्वे न सहसमत्याजातिस्मृति प्रति जादिरूपया सङ्गूत ए अर्थं जाणवाने प्रथम सप्तजंगीनुं स्वरूप कहेते

सिआ अण्णि सिआ नण्णि, अण्णि नण्णि सिआ पुणो ॥ सिआ चेव अवत्तवो, छु गंविहिनिसेहउ ॥ १ ॥ सिआ अण्णि अवत्तवो, चेवविहिनिसेवउ ॥ सिआ अण्णिसिआणण्णि, अवत्तवो सिआ तहा ॥१॥ सप्तजंगी जिणुदिष्ठा, सबजावेसुसम्मया हवे एनो अर्थं कहेते.— सकल पदार्थं पोतपोताना रूपे इव्य क्षेत्र काल अने जावेकरी ठता ठे जेम घट पोताने रूपे इव्यथकी माटीनो अथवा सोना रूपा त्राबा प्रमुखनो ठे, क्षेत्रथकी राजनगरनो उपनोठे कालथकी शीतकालनो उपनोठे जावथी स्यामरूपेठे एरीते सर्व इव्यपदार्थं इव्य क्षेत्र काल जावथी पोतपोताने रूपे ठताठे ते स्यादस्तिजलरूप सप्तजंगीनो प्रथमजेद जाणवो.

अने सकलपदार्थं पररूपे इव्य क्षेत्र काल अने जावथी नथी जेम घटते वख रूपेनथी इव्यथी जलरूपेनथी क्षेत्रथी स्तंजतीर्थनो उपनोनथी कालथी उष्णकाल नो उपनोनथी जावथी रक्तरूपेनथी एम सर्वपदार्थं पररूपे इव्य क्षेत्र काल अने जावथी नथी, ए स्यात्नास्तिजलरूप सप्तजंगीनो बीजो जेदजाणवो

सकल पदार्थं अनुक्रमे विचारता स्वइव्य क्षेत्र काल जावेठताठे, अने परइव्य क्षेत्र काल जावे अठताजठे, जेम घट स्वइव्य क्षेत्र कालजावे पूर्वोत्तरीते ठतोठे अने परइव्यादिके अठतोठे एमसर्वपदार्थं जाविये, ते स्यादस्ति स्यान्नास्ति जलरूप सप्तजंगीनो त्रीजो जेदजाणवो

तथावली सर्वपदार्थं स्वइव्यादिकेठता अने परइव्यादिके अठताठे पण ते ए केकाले विधिनिपेध वचने ठतो अठतो कही सकीयेनही, केमके एवो कोइशब्दन थी जे ठता अठता जलरूप वे गुणने बोले, ए युगपद्विधिनिपेधथी अवक्तव्यजलरूप सप्तजंगीनो चोथोजेद जाणवो

तथा सर्वपदार्थं स्वइव्यादिकेठता पण पर्यायथी अठता माटे समकाले विधि निपेध कल्पनायें अवक्तव्यठे जेम सुवर्णमयमेरु इव्यरूपे सास्वतो अने पर्यायरूपे असास्वतो पण एकेकाले सास्वतो असास्वतो कही सकिये नही. ए स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सप्तजंगीनो पाचमोजेद जाणवो.

सर्वपदार्थ परड्व्यादिकेनथी पण स्वरूपे ठतापणायी एकेकाले निषेध विधि कल्पनाये अवक्तव्यजठे जेम सेलमी गोल खांड एने परस्परें यद्यपि जिनपणुंजठे, अने माधुर्यपणानो अंतरपणठे, अने सेलडीपणे ऐक्यठे, पण जिन अनिन एकेकही सकीयेनही, ए स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सप्तजंगीनो ठठोचेद जाणवो.

सर्वपदार्थ स्वड्व्यादिकेठताठे अने परड्व्यादिके अठताठे पण समकाले विधि निषेध कल्पनाये अवक्तव्यजठे, जेम घट स्वड्व्यादिके पोतानेरूपेठे अने पटादिकनी अपेहायेनथी, माटे एक समयेसडूप अने अणकहेवायोग्यपणेठे एम एकपदार्थनेविषे स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव लक्षण सप्तजंगीनो सातमोचेद जाणवो.

एकपदार्थनेविषे ए कल्पना केमघटे ? त्यांद्दष्टांतः—जेम कोर्कने दूधनोनियमठे ते दूधविना दधिप्रसुख सर्वजातनो गोरसलिये, अने जेने दहिनो नियम ठे ते दहि विना सकल गोरस लिये. अने जेने गोरसनोनियमठे तेने दुधदहीप्रसुख समस्तगोरसकल्पेनही, तेमजे पूर्वे एकचेद स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यमेव लक्षण देखाडया तेने संकलितरूप सातमाचेदनो अंतर जाणवो एमए सप्तजंगी श्रीजिनेंइदेवे उपदेशी ते सर्वपदार्थनेविषे सम्मतठे ते सप्तजंग्यादि जेने सम्यक्प्रकारेरुचे, जे जेमकहुं ते तेम सदहे, सहसम्मत्या जातिस्मरणदिके स्वप्रतिजायेकरिने रुचे ते निसर्ग रुचि सम्यक्त्वकहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

धर्मास्तिकायादिक पटड्व्यना समस्तजाव एकत्व पृथक्त्वादिक अशेष पर्यायरूप ने प्रत्यक्षादिकप्रमाणे जेनो जिहांव्यापार तिहां तेजप्रमाणे प्रतीति प्रसिद्ध जेणे पान्याठे, अनेवली सर्वनयविधियें नैगमादिकचेदे ड्व्यनासर्वजाव जाण्वाठे ते विस्ताररुचि प्रसुखने धर्म धर्मीना अनेद उपचारे विस्ताररुचि सम्यक्त्व कहिये.

हवे कांईक प्रमाण अने नयनी विशेषता कहेठे.—त्यांप्रथम प्रमाण एटलेसुं? ते कहेठेः—प्रमाणुंकरण ते प्रमाणकहिये जे 'यथार्थानुभव प्रमा' यथार्थज्ञान ते प्रमा कहिये ते प्रमाणुं करण अतिशयितकारण ते प्रमाणकहिये ते जैनमते एकप्रत्यक्ष अने बीजो परोक्ष ए वे प्रमाणठे. अने नास्तिकमति एकप्रत्यक्षप्रमाणजमाने तथा सुगत बोध कणाद अने वैशेषिक प्रत्यक्ष ने अनुमान ए वे प्रमाणमाने पारमार्थ साख्य, प्रत्यक्ष अनुमानने शब्द ए त्रणप्रमाणमाने. अक्षपादनैयायिक प्रत्यक्ष अनुमान उपमान अने शब्द ए चारप्रमाणमाने. प्रजाकर, प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति ए पांच प्रमाणमाने. नट्ट, प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति अने अनाव ए ठ प्रमाणमाने यडुकें रत्नाकरावतारिकायां चार्वाकोथ्यकमेकं सु

गतकणञ्जौ सानुमानंसशाब्दं, तद्वैतंपारमार्थं. सहितं सुपमयात्त्रयं विद्वपाद.॥
अर्थापत्त्या प्रचारु द्वदतिचनिखिलंमन्यतेनष्ट एतत्साजावदे प्रमाणे जिनपति स
मये स्पष्टतो स्पष्टश्च ॥ १ ॥

वली जैनमते प्रमाणं लक्षणकहेते:-सम्यग्ज्ञानं प्रमाणतद्विधा प्रत्यक्षेतरने
दात् अवधिमन पर्यायादावेक देशप्रत्यक्षौ केवलसकलप्रत्यक्षं मतिश्रुतेपरोक्षे वली
त्रीञ्च प्रमाणं लक्षणांतरकहेते.-सकलवस्तुसाधकं प्रमाण प्रतीयते परिचिद्यते व
स्तुत्वं जैनज्ञानेत्प्रमाणं तद्विधा सविकल्पेतरनेदात् सविकल्पं मानसं तच्चतुर्वि
धं मतिश्रुतावधिमन. पर्यायरूपं निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानमिति प्रमाण
स्यव्युत्पत्ति प्रमाणेन संग्रहीतार्थैकांशोनय श्रुतविकल्पोविज्ञानुरनिप्रायोवानय. ना
नास्वनावन्यो व्यावृत्तैकस्मिन् स्वजावे वस्तुनयति प्राप्नोतीतिवानय

ते नयना सातजेदहे.-नैगम संग्रह व्यवहार ऋक्षुसूत्र शब्द समनिरूढ एवजुत
समस्तपदार्थे ते सामान्य विशेषोनय धर्मरूपते तेमां सामान्यते घटत्वादिक प्रमुख
जात्यादिरूपते, अने विशेषते सुवर्णमयघट मृन्मयघट एमव्यक्त्यादिरूपते इत्यादि
क नैगमनय वस्तुने उच्यतात्म सामान्यविशेषरूप मानेते जेमाटे सामान्यते विशेष
विनाहोय अने विशेषते सामान्यविना नहोय

संग्रहनय तो वस्तुने सामान्यरूपज मानेते केमके सामान्यथकी व्यतिरिक्त
कोइ विशेष नथी आकाशनाफूलनीपरे वनस्पतिविना कोई निंब आम्नादिकनथी
देखाता अने जे देखायते ते सर्व वनस्पतिरूपते, जेम हस्ताद्यंतर्जाची अंगुली प्रमु
ख हस्तादिकथी दूरनथी हस्तादिरूपजते

व्यवहारनयतो पदार्थने विशेषात्मकज विशेषरूपज मानेते, विशेषथकी निन्न
कोइ सामान्यनथी खरविषाणनीपरे दृष्टांतदेखाडेते -कोइकहसेजे वनस्पतिसेवीहो
य तेवारें निंबाआदिक नामलीयाविना सुं लइशकिये! अपितु काइनज लइशकाय
अने नामलीयुं तेवारे तो विशेषजथयो व्रणपिम्पपादलेपादिक लोकप्रयोजन त्या
पण विशेषनोज उपयोगते नामलेइने कहेते के अमुक औपधकरो तेवारेज ते
औपधकाय पण मात्र औपधकरो एमकेवाथी, औपधकोइ करतोनथी तेणेकरी
विशेषथीकाइ सामान्यजुडनथी सर्व विशेषरूपजते.

ऋक्षुसूत्रनयतो अतीत अनागत वस्तु नमाने, केवल वर्तमान स्वकीयहोय तेज
माने, अतीत अनागत अने परकीय वस्तुये कार्यसिद्धिनथाय, अठतु आकाश कम
ल तेनीपरे जाणीलेतु अने नाम स्थापना इव्य ने जाव ए चारनिक्षेपाते. तेमाहे

जो जावनिहेपोमाने, बीजा त्रणनिहेपा नमाने, तेमज आगला आगला नयपण नमाने तेपण एक जावनिहेपोज माने.

शब्दनयेती अनेक पर्यायैकरी एकज अर्थमाने. जेम कुंन कलश घटादिक अने क शब्द घटव्यक्तिरूप एक अर्थबोलेढे.

समनिरूढनयतो पर्यायजेदथी जिन जिन अर्थमानेढे. कुंन कलश घट एनो छुदोछुदो अर्थढे. अने घटपटादिकनीपरें जो पर्यायजेदे पण वस्तुनो जेदनहोय तो कुंन अने घटनोपण पर्यायांतर नहोय.

एव नूतनयतो एक पर्यायानिधेय वस्तुपण स्वकीय कार्य करतुं होय तो माने जो कार्य अणकरतुं पण वस्तुमानिये तो घटनेविपे पटनो व्यपदेश केम न थाय.

ए सातेनय यथोत्तर विद्युदढे ते एकेकाना शो शो जेदढे एम सातनयना सातसो जेद थाय. एव नूत अने समनिरूढ ए वे नयोनो शब्द नयमां अंतर्जाव थाय त्यारे पांच नयना पाचशे जेद थाय. ते इव्यास्तिक तथा पर्यायास्तिक ए वे नयमां सर्व नयेनो अंतरजाव थायढे एटले प्रथमना चारनय इव्यास्तिकमां आवे अने पाठला त्रणनय पर्यायास्तिकमा आवे.

यदुक्तं श्री अनुयोगद्वारसूत्रेः-नयसरूपं सेकित नयेनये सत्तमूलनया पन्नता एो गमे संगहे ववहारे उक्लूसूए सदे समनिरूढे एवचूते तद्वएगेहि माणो, हि मिण इतिगमस्त नीरुत्ती ॥ सेसाणंपि नयाण लखमिणमो सुणेहवोडं ? संगहिय पिं नियडं संगहवघणं समासउंबिति; वन्नइ विणिडियडं, ववहारो सवद्वेसु २ पञ्चुप्य नंगणही, उक्लूसूउंनय विहिमुणोयवो ॥ इडई विसेसित्तं, पञ्चुप्यन्नं नयो सवो ॥३॥ वडउ संकमणं, होइ अचडंनये समनिरूढे ॥ वजण अड तडनयं, एवं नूएविसे सेइ ॥४॥ नायंमि गिण्हयवे, अगिण्हयवंमि चेव अडंमि ॥जइव मेव मेवइ, इनो उवएलोसोनउं नाम ॥ ५ ॥ सवेसिंपि नयाण, बहुविहदत्तव संनि सामित्ता ॥ तं सव नय विसुडं, जं चरणगुण ङिउंसाहू ॥६॥ एगं निडं निरवय, व मक्कियं सव गंच सामन्नं ॥ निस्तामन्नताउं, नडिविसेसो खपुप्फंच ॥ ? ॥ नेगंनिडं मणिववि, सावयव सक्कियंच निन्नगयं ॥ तुडत्ता तुडत्तण, सवि संसंतं समासन्नं ॥१॥१०॥

ज्ञान दर्शन चारित्र तप समित्यादिक क्रियाजे सम्यक्त्वने बले रुचे ते क्रिया रुचि सम्यक्त्व कहिये ए एकवीसमीगाथानो अर्थढे.

अनजिगुहीत अनंगीरुत कुट्टी सौगतादिक मतरूपढे जेणेवली अविशारदः प्रव चने प्रवचनानजिज्ञोपि एटले प्रवचननेविपे माह्योनथी अने शाक्यादिक प्रवचननेविपे

चिलातीपुत्रनीपरे अनागृही के० आग्रह रहितठे ते संक्षेपथी तत्वज्ञावतोथको तेने संक्षेपरुचि सम्यक्त्व कहिये.

कुमत ते कोने कहिये क्रियावादी अक्रियावादी अज्ञानवादी विनयवादी प्रसु खतुं जे मत तेने कुमत कहिये परपारखंमानि सर्वज्ञप्रणीत पारखंमव्यतिरिक्तानि तेषांउघतस्त्रीणिशतानि त्रिपष्टशधिकानि नवतु

यदुक्तं आवादयक बृहद्ब्रह्मैतत्—असीइसयकिरियाणं अकिरियाणंचहोइ चुलसीइ, अ
 न्नाणिअसत्तधि, वेणइयाणचवत्तीसं ॥१॥ अस्याव्याख्या असीइ सयंकिरियाणति अ
 शील्युत्तर शतंक्रियावादिनां तत्रनकर्त्तारं विनाक्रियासञ्चति तामात्म समवाधिनी वदं
 तिये तञ्जीलाश्रते क्रियावादीनालेपुनरात्माद्यस्तित्व प्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेना
 शील्यधिक शतसंज्ञाविधेया जीवाजीवाश्रव बंधसंवर निर्झरा पुण्य अणुण्य मोक्षा
 रव्या नवपदार्थान् विरचय्य परिपाटयाजीव पदार्थस्याध ? परपरजेदावुपन्यसनी
 यौतयोरधोनित्य ? अनित्य (१) जेदौतयोरप्यध काले ? श्वरा १ त्म ३ नियति ४
 स्वभाव ५ जेदाः पंचन्यसनीया पुनश्चेडं विकटपा कर्त्तव्या अस्तिजीव स्वत नित्य
 कालतइत्येकोविकल्प विकल्पार्थश्चायं विद्यतेखलुअयं आत्मास्वेन रूपेण नित्यश्च
 कालवादिन उक्ते नैवानिलापेनद्वितीयोविकल्प ईश्वरकारिणिन तृतीयोविकल्प
 आत्मवादिन पुरुषएवेदं सर्वमित्यादि नियतिवादिन श्रुत्योविकल्प स्वभाववादि
 नः एवस्वतइत्यइत्यजतालव्या पंचविकल्पा परतइत्यइत्यजताइत्यनेनापि पंचैव
 जन्यन्ते नित्यत्वाइपरित्याग परित्यागेन चैतेदशविकल्पा एव अनित्यत्वेनापि दशैवएते
 विशति जीवपदार्थेनलव्या अजीवादिस्वप्नष्टसुएवमेव प्रतिपद विशतिविकल्पाना
 मतो विशतिर्नवगुणशतमशीत्युत्तर क्रियावादिनामिति अकिरियाणचहोइचुलसीइ
 ति अक्रियावादिना नवति चतुरशीतिजेदाइति नहिकस्यचिदवस्थितम्य पदार्थस्य
 क्रियासमस्ति तज्जावे एवावस्थितेरजावादित्येववादिनो अक्रियावादिनस्तथा चा
 हुरेके कृणिकाः सर्वसंस्कारा अस्थितानांकुत क्रियाचूतिर्येषा क्रियासैवकारक सैव
 वोच्यते इत्यादि एतेचात्मादि नास्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन चतुरशीतिर्व
 कव्या एतेषा पुण्यापुण्यवर्द्धित पदार्थे सप्तकान्यसत्तथैवजीवस्याध स्वपरविकल्पने
 दद्वयोपन्यास अस्तत्वादात्मनो नित्यानित्यत्वजेदौनस्त कालादीनांतुपंचाना षष्ठीय
 दृष्टान्यस्यतेपश्चाद्विकल्पानिलाप नास्तिजीव स्वत इत्येकोविकल्प एवमीश्वरादि
 निरपियदृष्टावसाने सर्वैश्वर्यविकल्पा तथा नास्तिजीव परतः कालतइतिपडेवविक
 ल्पा एकत्रद्वादशएवमजीवादिष्वपिपट्सुप्रतिपद द्वादशविकल्पा एकत्र सप्तद्वाद

श गुणाश्रतुरशीतिर्विकल्पा नास्तिकानामिति अन्नाणिअसत्तच्छिति अज्ञानिकानां स
सप्तपटिर्नदाइति तत्र कृत्स्नं ज्ञानमज्ञानं तदेषामस्तीत्यज्ञानिका. नन्वेवलघुत्वात्प्र
क्रमस्यप्राग्वद्बुद्धीहिणा ज्वितव्यं ततश्चज्ञानाइतिस्यातूनैपदोपः ज्ञानांतरमेवाज्ञा
नंमिथ्यादर्शनसहचरितत्वात् ततश्चजातिशब्दत्वात् गौरस्वरवदरएथमित्यादिवऽद
ज्ञानिकत्वमिति अथवाऽज्ञानेनचरति तत्प्रयोजना वा अज्ञानिका. असंचित्यकृत
बंधवैकल्पादिप्रतिजहृणा अमुनोपायेन सप्तपटिर्ज्ञातव्या तत्रजीवादिनवपदार्थान्
पूर्ववथ्यवस्थाप्यपर्य्यतेचोत्पत्तिमुपन्यस्याथ. सप्तसदादय उपन्यसनीया सत्व? म
सत्त्वं १ सद् असत्त्वं ३ अवाच्यत्वं ४ सद्वाच्यत्वं ५ असद्वाच्यत्वं ६ सदसद्वाच्य
त्व ७ प्रमितिनैकैकस्यजीवादेः सप्तविकल्पाः एतेन नवसप्तकास्त्रिपटि. उत्पत्तेश्चत्वा
र एव विकल्पास्तेष्वसत्त्व ? असत्त्व १ सदसत्त्व ३ अवाच्यत्वं ४ चेतित्रिपटि
र्मध्येद्विधा सप्तपटिर्नवति कोजानातिजीव. सन्नित्येकोविकल्प. ज्ञातेनवाकि एवमस
दादयोपिवाच्याः उत्पत्तिरपि किसतोअसत्. सदसतो अवाच्यस्येति कोजानात्येतन्नक
श्चिदपीत्यनिप्रायः वेणुश्याणंच वचीसंति वैनयिकानां द्वात्रिंशद्भेदा विनयेनचरति
विनयो वा प्रयोजनमेवामिति वैनयिका एतेच अनवधृतलिगाचारशास्त्राविनय
प्रतिपत्तिजहृणा अमुनोपायेन द्वात्रिंशद्वगंतव्या सुरनृपति ज्ञातियति स्थविरा
धममातृपितृणां प्रत्येकं कायेन वाचामनसादानेनच देशकालोत्पन्नेन कालेन विनय.
कार्यइत्येतेचत्वारोचेदा सुरादिष्वपुसुस्थानेषु एकत्र मीलिताद्वात्रिंशदिति सर्वसं
ख्यापुनरेतेपां त्रीणिशतानित्रिपष्ट्यधिकानि ज्वति.

अन्यत्रापिउक्तं.—आस्तिकमतमात्माद्या नित्यानित्यात्मकानवपदार्थाः कालनि
यतिस्वचावेश्वरात्मकृतिन. स्वपरसस्थाः १ कालयदृष्टानियतीश्वरस्वचावात्मतश्चतुर
शीतिः नास्तिकवादिगणमतं नसंति सप्तस्वपरसंस्था. २ अज्ञानिकवादिमतं नदञ्जी
वादिन् सदाद्विसप्तविधान्, चावोत्पत्ति सदसद द्वैतावाच्यांश्चकोवेति ३ वैनयिमतं विन
यश्चेतो वाक्कायदानत. कार्य. सुरनृपतियति ज्ञातिस्थविराधममातृपितृपुसदा ४ ए
तेपां प्रशंसानकार्या पुण्यनाज एतेषु लब्धमेनिर्जन्मेत्यादिलक्षणा एतेषामिथ्या
दृष्टित्वात् ए बावीसमी गाथानोअर्थते.

अस्तिकायतेसुं कहिये अस्तयः प्रदेशा संति अस्येत्यस्तिकाय. धर्मास्तिकाय अधर्मा
स्तिकाय आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय पुञ्जास्तिकाय ए पांचनेअस्तिकाय कहिये.

धर्मोगत्युपपट्टंजादिस्तंश्रुत धर्मं चवा सामायिकादिधर्मरुचिधर्मेषु पर्याय
ज्येष्ठधर्मो वा श्रुतधर्मादीरुचिरस्येतिरुत्वा ए दशप्रकारसुं सम्यक्त्व मोक्षतरुं वी

जन्तुते सप्रतिराजानेविपेजाणु बुद्धकं एगविह् डविह् तिविहं, चउहा पंचविह्
दसविह् सम्म ॥ मुक्क तरु बीय चूअं, संपश्रायावधारिळा ॥ १ ॥ सर्व एग
थानो अर्थ विवखोते.

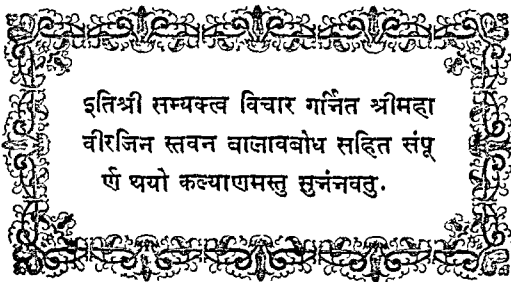
हवे शिष्यबोव्यो स्वामी एक प्रकारनुं सम्यक्त्व संप्रतिराजाने घटेते अथवा वे
प्रकारनुं संजवठे पण त्रण प्रकारनुं घटमान नथी केमके पहेजातो उपशम सम्य
क्त्वनो संप्रतिराजानेविपे संदेहते, ते उपदेश प्रथमतो ग्रंथीनेदे होय अथवा उप
शमश्रेणीयेंहोय त्या प्रथमतो तेना जाजानो संदेहते एटले तेवरवते संप्रतिराजाये
ग्रंथिनेदकरी उपशमसम्यक्त्व पास्युं होय एवा निश्चयनुं संदेहते अने बीजुं उपश
मश्रेणीये उपशम सम्यक्त्व होय ते उपशमश्रेणीतो तेकाले विद्भेद पामीठे अने
ह्वायोपशम सम्यक्त्वज संजवठे परिशेपानुमानेकरीने कारकादिचेद थकीपण त्रि
विधपणु इहां संजवतो नथी आद्यचेद वयनो संजवठे पण कारक रोचकनो संजव
ठते पण मिथ्यात्व सठलित दीपकारव्य तृतीयचेदना असंजवठे अने चारप्रकारनुं
पण सम्यक्त्व सर्वथा नघटे तेतो उपशम ह्वायोपशम ह्वायिक अने चोखुं सास्वा
दनमांहे जेलिये तेवारे चारचेदथाय ते उपशमसम्यक्त्वथकी पडताथका अनंता
नुबंधियाने उदयठता मिथ्यात्वप्रतें जावावाठतो एवाजीवने सास्वादन सम्यक्त्वनुं
धारणहसे तेतो अनंतानुबंधियानो उदय तेणे कवलितपणामाटे कजुपपणुठे अने
पांचप्रकारनुं सम्यक्त्वपण संप्रतिराजानेविपे नघटे केमके वेदकसम्यक्त्वना अ
जावथी एटले वेदकतो ह्वायकपामति वेजाये ह्वायोपशमनो चरमपुजल आसवेदता
ने होय तेतो संप्रतिराजानेविपे संजवियेनही वजी ह्वायिकसम्यक्त्वनी प्राप्तिनाअ
जावथी ए दशविध निसर्गरुच्यादिक पण सर्व तिहा संप्रतिराजानेविपे घटतानथी
सर्वचेद एकस्थले संजवेनही तेमठता एटला प्रकारना सम्यक्त्वनुंधारण संप्रतिराजा
ना दृष्टाते तमे केमकहु एम शिष्यपुठुं

हवे गुरु उत्तरकहेते केसम्यक्त्वतो सप्रति राजानीपरे निश्चलधरबु ते वजी
शास्त्रनीते परूप्पमाण परूपितोथको एकादिचेदेहोय इत्येवमेवयोज्य एनो अर्थ
एमजकरवो तथाच सर्वनिरवद्यमिति जेम सर्व समंजसहोय एगविहे इत्यादिक
सम्यक्त्वचेद गाथावृत्तिनो ए सर्व अर्थजाणवो उत्तराध्ययनमापण अछावीसमें अ
ध्ययने दशप्रकारनुं सम्यक्त्वकहुठे निसर्गबुवएसरुईत्यादि ए तेवीसमी तथा चोवी
समी गाथानो अर्थते.

वेदहयाङ्गिड १७७४ मितेवर्षे राजादिनगरस्थेन ॥ विबुधोत्तमाब्धि शिष्ट्युना न्या
यादिजलधिना नाम्ना ॥ १ ॥ सम्यक्त्वस्तवनस्या ऽस्यलोकजापानिव-क्ष्वंधस्य ॥ स्व
परेपाम् स्मृतिहेतो, रकारि बालावबोधोयं ॥ २ ॥ युग्मं ॥ शास्त्रविरुद्धं किंचि उपयुक्तं
बुद्धिमाद्यतो मयका ॥ तत्संशोधयं विबुधैरुपकारपरं मेहामतिनिः ॥ ३ ॥

ढालठणे माइ धन्नसुपनतुदेशी.

जहजलपणपोते सिच्युकाठनबोले ॥ तससंगतिलोहुं तेहनेपणतसतोले ॥ तेम
हुं गुणहीणो तोपण दास तुमारो ॥ अथगुणउवेपी प्रभुजी पारवतारो ॥ १ ॥ तुं
गुणमणि दरिउं उद्धरिउं जगजेणे ॥ मुजकाइनताखो तुज संगतिनही तेणे ॥ अज
गो तर्हिबिलगो तुमुज दिलथीदेव ॥ अविचलपदआपो ॥ ढीजतणीसीटेव ॥ २ ॥ न
हीतो मुजदावे नहीमूळुंकरुंसोर ॥ जालीदिलनीतर घालीकरसुंजोर ॥ जासोकिम
दीधा, विणशिवसुखजिनराज ॥ सहजे जो वेशो तो रदेशे तुमलाज ॥ ३ ॥ अविन
यमुजखमजो हुंहुं मूढअयाण ॥ करतानविआवे वीनतडोजिनजाण ॥ बालक
जेमबोले कालोगहिजाबोल ॥ ते मातपितामन, लागे, अमृततोल ॥ ४ ॥ इणपरे
प्रभुस्तविउं समकितलेशविचारे ॥ आगमअनुसारे मुज्जमतने अनुहारे ॥ संव
तरुतुरसमुनि चइसंवत्सरजाणी ॥ १७६६ ॥ जादरवेमासे सीतपंचमीगुणखाणि ॥
॥ ५ ॥ श्रीतपगह्वनायक श्रीविजयरत्नसूरिद ॥ सुरगुरुजश आगलें करजोडेमतिमंद ॥
तसराजेपंमित उच्चमसागरसीत ॥ कहेन्यायसागर प्रभु पुरोसंघजगीत ॥ ६ ॥



इति श्री सम्यक्त्व विचार गर्भित श्रीमहा
वीरजिन स्तवन बालावबोध सहित संपू
र्णं थयो कल्याणमस्तु सुजंनवतु.

॥ श्री तीर्थनायकाय नमः ॥

॥ अथ श्रीषड्व्यस्वरूप प्रारण्यते ॥

ठ ष्व्यमां पहेलु जीवष्व्य ठे तेमां चेतना पदार्थ ठे अही चेतना ते उप योग कहिये तेउपयोग वे प्रकारनो ठे.—एक साकार ने बीजो निराकार तेमां सा कार ते ज्ञान अने निराकार ते दर्शन जाणवुं ए ज्ञान तथा दर्शननो विचार जूजु वो ठे, ते आगल कहेवाशे, त्यांथी जाणी लेवो ते जीव वे प्रकारना ठे—एक सिद्ध अने बीजा ससारी तेमा जे अष्ट कर्म रहित थया ठे ते सिद्ध जाणवा. तेना पदर जेद ठे ते आप्रमाणे —

(१) तीर्थकर विद्यमान ठतां जे संसारने तरीने मुक्तिने पाम्या ठे ते चतुर्विध सद्य अथवा प्रवचनवक्ता प्रथम गणधरादिक जाणवा यदुक्तं सिद्धांते — “ तिष्ठं जंते तिष्ठं तिष्ठं करे तिष्ठं गोयमा, अरहा ताव नियमा तिष्ठंकरे तिष्ठंपुणो वा उवणो समण संघो पढम गणहरोवा ” एवी रीते तीर्थसिद्ध जाणवा

(२) जे तीर्थ कपनाविना तथा तीर्थनो विभेद थया पढी मुक्तिने पाम्या ठे, ते मरुदेवी प्रनृति, श्रीचंद्र प्रभु तथा श्रीसुविधिनाथ स्वामीना मध्य समयने विपे धर्म विभेद थयो ठता केटलाएके जातिस्मरणथी दीक्षा जीधी ने सिद्ध थया ते अतीर्थ सिद्ध जाणवा (३) जे अष्ट महाप्रातिहार्य चोत्रीस अतिशय पात्रीस वाणीगुणे, तीर्थकर पद जोगवीने सिद्ध थया ते श्रीरूपन देव नगवान प्रमुख सर्व तीर्थकर सिद्ध जाणवा (४) जे तीर्थकर पद पाम्याविना सिद्धा वस्थाने पाम्या ते सामान्य केवली अतीर्थकर सिद्ध जाणवा. (५) जातिस्मरणादिके बोध पामी मोहे गया ते स्वयंबुद्धि सिद्ध जाणवा. (६) जे कोई बाह्य प्रत्यय देखीने ते निमित्ते बोधने पामीने मुक्त थया ते प्रत्येकबुद्ध सिद्ध जाणवा.

आशंका—त्यारे स्वयंबुद्ध अने प्रत्येकबुद्धमा विशेषता कुं ठे ?

उत्तर—ज्ञानि, श्रुति, लिंग तथा उपधि ए चार प्रकारना जेद ठे. स्वयंबुद्ध ते जोविस्मरणे करी अथवा अथधि ज्ञाने करी बाह्य प्रत्यय दीगविना बोधने पाम्या ठे, ते जेम तीर्थकर तथा अतीर्थकरमा व्यतिरेकपणुं ठे ते अधिकार अही पण जाणी लेवो तीर्थकर साक्षात त्रीजे गमे कहा ठे माटे, अने प्रत्येकबुद्ध तो बाह्यकरण वृपन तथा इध्वजादिक देखीने बोध पाम्या ठे, पण ते नियमे एकाकी

विचरे ठे ए प्रथम प्रत्येक बोधिजेद ठे. अने स्वयंबुद्धने पूर्वाधीत श्रुत होय तो तेने देवता लिंग आपे, अथवा गुरुनी समीपे जईने लिंग धारण करेठे. लिंग ते साधु वेष रजोहरणादिक जाणवा तथा ते जो एकाकी विचरवाने समर्थ होय तो एकाकी विचरे ठे, नही तो गहमांज विचरे ठे अने जो पूर्वाधीत श्रुत न होय तो अवश्य गुरुनी पाशे जईने वेष ग्रहण करे; अने तेनी साथे विचरे ए नियम ठे. अने प्रत्येकबुद्ध तो पूर्वजन्वाधीत श्रुतज्ञानीज होय ठे, ते जघन्यथी अग्यार अंग तथा उल्कृष्टथी कांईक न्यून दश पूर्व जणेलो जाणवो. एने लिंग देवता दिण ठे; अथवा लिंगरहित पण होयठे. एम श्रुति तथा लिंग ए वे जेद मली त्रण जेद थया. अने स्वयंबुद्धने पात्रादिक दशविध उपधि होयठे एम कह्यु ठे, ने प्रत्येकबुद्धने तो जघन्यथी वे प्रकारनोज उपधि कह्यो ठे; तथा उल्कृष्टथी नव प्रकारनो उपधि पण कह्यो ठे. ए वस्त्रविना पण उपधिना जेद जाणवा.

(७) जे बुद्ध एटले आचार्यना कहेला उपदेशथी बोधने पामीने दीक्षा लई अनुक्रमे मोक्षने पामे ते बुद्धबोधित सिद्ध जाणवा.

(८) जे स्त्रीनुं लिंग अथवा चिन्ह ठतां मुक्तिलक्ष्मिवस्त्रा ठे ते स्त्रीलिंग सिद्ध ते लिंग त्रण प्रकारनुं ठे.—एक जेने फुंफमदाहनी पठे पुरुपनी अजिजापा होय, बीजुं शरीर निर्वृत्ति नितंब तथा स्तनजागादिक जेने होय, अने त्रीजुं नैप प्यते तिलक, तंबोल, नेत्रांजन, वस्त्र, हार, डोर अने नूपुरादि लक्षण बाह्यरुत शृंगाररूप होय ठे. ए त्रण लिंग ठे तेमानुं अत्र शरीरनिर्वृत्ति लक्षण लिंग ग्रहण करनुं ते ठतां चारित्रनी प्राप्ति थईने जे केवलावस्था पामीने मोक्षेजाय ते स्त्रीलिंग सिद्ध कहेवाय ठे. आगंका — वेदनी वर्जना शास्त्रा करी ठे ?

उत्तर— वेद ठतां यथाख्यात चारित्र तथा केवल ज्ञाननी प्राप्ति थती नथी. माटे तेनो नवमे गुणगणे अज्ञाव थाय तोज ऊपरलां गुणगणाप्रत्ये आरोह थई शकेठे अने ल्यार पठी सर्व धातिक कर्मोनो क्षय करेठे माटे वेद लक्षण लिंग वर्ज्य ठे. अने शृंगार लक्षण पण कांई प्रधान नथी केमके, शोले शृंगार सजीने सिंहासन ऊपर वेठेली ठतां शुज ध्याने जावना जावती थकी स्त्री केवल ज्ञान पामेठे. तेम शृंगार रहित थई थकी पूर्वोक्त अवस्थाए करीने पण केवल ज्ञान पामेठे. माटे शृंगार मोक्षनो रोधक नथी शरीरनो आकार तो विशेषेकरी रोधक होयज नही; केमके, ज्यां सुधी मनुष्य गतिनेविषे मनुष्यनुं आयुष्य होय ठे, त्यां सुधीज ए चिन्ह होयठे.

आशंका'— (दिगंबर) स्त्रीने मोहनी प्राप्ति यतीज नथी, केमके, मोहू यतुं ते चारित्रने आधीन ठे, ते चारित्र स्त्रीने उदय आवे नही केमके, स्त्रीने सर्वथा पुरुषविना रहेवाई शकातु नथी स्त्रीना अंगोपाग सर्वथा पुरुषने अजिनवकारीठे, तेथी ते ऊधामां रखाई शकातां नथी, अने ते टांकवाने अर्थे वस्त्र धारण करवा पडेठे वस्त्र राख्वाथी परिग्रह थायठे, अने परिग्रहवाला मनुष्यने मूर्तानो सज व होयठे ज्यांसुधी जेने मूर्ता ठे त्यांसुधी तेने संयमनी प्राप्ति यती नथी, माटे स्त्रीने चारित्रनी प्राप्ति न थाय, अने चारित्रविना मोहनी प्राप्ति ते केम थाय ? वली संसारमां सर्वोत्कृष्ट पदवीनी प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट अथ्यवसायथी थायठे, एवात दिगंबर तथा श्वेतांबर बधाने सम्मत ठे. ते सर्वोत्कृष्ट पद वे प्रकारतुं ठे— एक सर्वोत्कृष्ट पद ड खतुं स्थानिक ठे ने बीजुं सर्वोत्कृष्ट पद सुखतुं स्थानिक ठे ते मां सर्वोत्कृष्ट ड खतुं पद सातमी नरक पृथ्वीनी प्राप्ति ठे, अने सर्वोत्कृष्ट सुख ते मोहू पदनी प्राप्ति ठे तेमा सप्तम नरक पृथ्वीनेविपे स्त्रीतुं गमन थई शके नही एम सिद्धांतोमां कहु ठे, ज्यारे एतुं पाप उपार्जित वीर्य स्त्रीने होतु नथी ल्यारे मोहूपदतुं उपार्जन करवा जेतुं मनोवीर्य ते स्त्रीने क्यांथी होय ! माटे स्त्रीने मोहनी संजव नथी वली स्त्रीए पूर्व नवातरनेविपे माया मोहनीयकर्मतुं उपार्जन कखुं होयठे के जेथी स्त्रीवेद मलेठे, माटे स्त्री मायावीज होयठे ते कारण माटे ते स्वानावे कुटिलज होयठे एवा न्याये करीने स्त्रीने चारित्रनी प्राप्ति थाय नही वली साधु तो वनवासी होयठे, ज्या घणा मनुष्यादिकनो संघट्ट होय, त्या साधु रहे नही. केमके, त्या ज्ञान तथा ध्याननो व्याघात थायठे अने स्त्रीथी तो एकाकी रहेवा तु नथी ज्या वसति होय त्यांज रहेवाई शकायठे. केमके, स्त्रीने एकाकी विचरतां तेना शीतमा विघ्न पडेठे, घणामा रहेता प्रतिबंध नमेठे, अने राग देपमां पडेठे, माटे स्त्रीने चारित्र पण नही ने ते चारित्रना अनावे मोहू ते क्यांथीज होय !

उत्तर — (श्वेतांबरी) स्त्रीने वस्त्रनो परिग्रह कहेवो नही. जेनी ऊपर मूर्ता होयठे ते परिग्रह कहेवायठे, मूर्ताविना परिग्रह कहेवायनही युत. “मुष्ठा परि गहो वुत्तो” एम श्रीसिद्धांतमा कहुठे ते कारण माटेज भरतचक्रवर्ति, पदखं मनो चोक्का, घोसठ हजार अंतेउरी सहित दर्पण सदनमा वेठो ठतां तथा सर्व अलंकारेकरी अलंकृत ठतां केवलज्ञान पाम्यो ठे केमके, ते वस्तुथकी मूर्ताथी रहित हतो ते माटे जीवनेमोटो परिग्रह तो ममत्वजाव ठे. अने जे ममत्व ना वथकी रहित ठे तेने तो धनधान्यादि संपत्ति पण बाध करी शकती नथी जो ए

म न मानिये तो संसारनेविषे सर्व दरिद्री मनुष्योने केवल ज्ञाननी प्राप्ति थईने मोहूनो प्रसंग आवडो. केमके, तेनी पात्रो कोई समये पण एक कोडीमात्रनो प रिग्रह होतो नथी. तेम ठतां तेवा प्राणीउतो संसारमां घणा रजडता दीठामां आवे ठे, पण तेउनी पात्रो मूर्खरूप मोटो परिग्रह होयठे; माटे तेउने छुज दशा प्रगट थती नथी. वली श्रीवीतरागे वे कल्प कह्याठे:—एक जिन कल्पने बीजो स्थ विर कल्प. तेमां जिनकल्पनो स्त्रीने संजव नथी, परंतु स्थविर कल्पनो संजव ठे.

पूर्वपद्ममां कथुं ठेके, उत्कृष्ट पदनुं वाधक मनोबल ठे, ते स्त्रीने होतुं नथी मा टे जेम स्त्री सातमे नरकेजती नथी तेम ते मोहूनेविषे पण न जई शके! ए थु कि पण समीचीन नथी, एवो पण कांइ नियम नथी. केमके, केटलाएक पुरुषा विकने क्षेत्र खेडवानुं सामर्थ्य होयठे पण शस्त्रान्यास करवानुं सामर्थ्य नथी हो तुं तेथी थुं थयुं! कोईने कोईएक कर्मनी फुरणा न थयाथी थुं बीजां कर्मोनी फु रणानो पण अचाव समजवो के? एम ठतां जो हठकरी वेशशो तो बीजी घणी वातोमां विरोध आवडो. जेमके वधुमां वधुपाप उपार्जिने छुजपरिसर्पनीचे बीजी नरक पृथ्वी सुधीज जायठे अने पट्टीउं त्रीजी नरकपृथ्वी सुधी जायठे. अने वधारेमां वधारे पुण्य उपार्जिने ऊपर ते वने जातिवाला प्राणीउं सहस्रार देवलोकसुधी जा यठे. इहां मनोबल तो वनेतुं सरखुं ठे. ल्यारे अधोगमन थोडुं अने ऊर्ध्व गमन थणुं केम थायठे! माटे एवो नियम न कहेवो एवी रीते स्त्रीजातिनो पण एवो स्वजा वज ठे के उत्कृष्ट पाप उपार्जन करे तो ठवी नरकपृथ्वी सुधीज जाय; परंतु उ त्कृष्ट संवरनी प्राप्ति थयाथी मोहूनी प्राप्ति तो थायज.

वली पूर्वपद्ममां कथुं के, स्त्रीने मायामोहनीय कर्मनी अधिकताने लीधे चा रित्र उदय आवे नही; ए वात थद्यपि सत्य ठे, तथापि स्त्रीने मोहनीयकर्मनो उपशम तथा ह्य होयठे; एनो कोईनाथी अनंगीकार थाय नही. अने सर्वथा स्त्रीने मोहनीयकर्मनो ह्य अथवा उपशम थतोज नथी एतुं तो तमाराथी पण केवासे नही केमके, अनंतानुबंधी कपायनो उपशम अथवा ह्य थाय त्या रेज सन्धक्त्वनी प्राप्ति थायठे. अने अप्रत्याख्यानीय कपायनो उपशम अथवा ह्य थाय ल्यारेजदेशविरतिपणुं प्राप्त थायठे. एम तो तमे पण अंगीकार करोडो ल्यारे स्त्रीमां सर्व विरतिपणुं केम मानता नथी! तथा गोमठसारनी गाथामां स्त्रीने मोहू कह्योठे.— “अन्याला पुंवेया, इत्थीवेचाय हुंति चालींता; वीसन पुंसग वेया, समए एगेण सिंझंति.” एवो पाठ तमारा सिंझांतोमां पण दीठामां

आवेते तेमज कर्मग्रंथ, तथा गुणस्थान क्रमारोहो विचार करतां प्रसिद्धपणे स्त्रीने मोहूनो संजव थायते जेमके, नवमा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानकसुधी त्र ए वेदनो उदय होयते त्यां ठासठ प्रकृतिउ उदयने पामे ठे. पठी सूक्ष्म संपराय दशमा गुणस्थानकमा पण ठासठ प्रकृतिउंनोज उदय होयते, एमां त्रण वेद तथा संज्वलननो क्रोध मान ने माया ए ठ प्रकृतिउ होती नथी एवीरीते उदया धिकारमा कछु ठे ए ऊपरथी जाणवुं जोश्ये के जो सर्वविरति चारित्र स्त्रीने न होय तो नवमा गुणस्थानकसुधी केम पद्दोची शके, माटे स्त्रीने सर्वविरतिपणुं मानवुज जोइए ठे ए विपे सारीरीते विचार करी जोजो

वली पूर्व पद्दमां कछु के, स्त्रीने एकाकी विचरवानो अधिकार नथी, केम के एकाकी विचखाथी तेना शीलमां विघ्न पद्दवानो संजव थाय अने जो पंचनी साथे विचरे तो ममत्वनाव थाय. ए उक्ति पण विचाररहित ठे, केम के एकाकी विचरता पण जो मन शुद्ध होय तो काई पण शीलनो जंग थतो नथी. स्त्रीउने विपे तो एवु धैर्य होयते के तेने देवो पण मोलायमान करी शकता नथी तेम पंचनेविपे विचरतां ममत्व पण संजवे नही, केमके जो तेना मनमा वीतरागाव स्था होय तो संसारमा जीवने जे सरागपणुं बंधननो हेतु ठे ते जो उपशमने पाम्यो तो पठी तेने वन तथा घर बन्ने सरखा ठे ए काई जीवने बंधनना हेतु थता नथी बंध ते एक रागादि लक्षण अशुद्ध उपयोग ठे इत्यादिक विचार करतां तथा श्रीवीतरागनी आज्ञा जोता तो स्त्रीने मोहू थायते माटे एवा हवनो त्याग करवो उचित ठे एवीरीते स्त्री सिद्ध जाणिये

(९) जे पुरुषना लिंगवडे सिद्धस्थाने पद्दोचे ठे ते पुरुषलिंग सिद्ध ते लिंग पण पूर्वनी पठे त्रण प्रकारना ठे - वेद, शृंगार ने आकार तेमां वेद त्याग कर वा योग्य ठे केम के, वेद ठता निश्चेकरी मोहूनी प्राप्ति थायज नही शृंगार त तां कचित् मुक्ति थायते ने कचित् नथी पण थती. तथापि शृंगार अग्रधानज ठे अने आकार ठतां मोहू थाय ठे माटे ते पुरुष लिंग सिद्ध कहिये

(१०) जे नपुंसक लिंगे सिद्धत्व पामे ठे ते नपुंसक सिद्ध; ते लिंग पण पूर्वोक्त रीते त्रण प्रकारना ठे - वेद, शृंगार ने आकार तेमा वेद अने शृंगार वे त्याग करवायोग्य ठे अने आकारनेविपे मोहू थायते माटे ते ग्रहण करवा योग्य ठे ते आकार पण त्रण प्रकारनो ठे - एक इडिय ठेदी, एटले वृषणादिक जंग करेला, बीजा इडिय अवयवसहित एटले वात्यावस्थानेविपे कामादिक कु

चेष्टायें करी इन्द्रियनुं मूलथकी बल गमावीने नपुंसक थया होय ते. अने त्रीजा जे जन्मथीज नपुंसक थया होय ते ए त्रणेने लोको नपुंसक कहेते परंतु पर माथें जोतां पहेला वे ने नपुंसकपणुं नथी. केमके, तेउनेविपे पुरुष वेदजो अजि लाष होयते, जोगने अर्थे स्त्रीनी इहा करे ते, परतु पुरुषनी इहा करता नथी पण शुं करे के तेउनां अवयव सावचेत होतां नथी. तेथी योनि जोग न थाय. एउं नपुंसक पणाने बीजा कुचेष्टाथी पाम्या ठे, माटे पुरुषवेद ठे, नपुंसक वेद नथी नपुंसक वेद तो जे जन्म जात होयते तेनेज कहिये ते नपुंसकने पुरुष तथा स्त्री ए बन्नेने जोगववानी अजिलाषा थायते, माटे तेज वास्तविक नपुंसक कहेवाय. अत्रवृ-६ आचार्य एम कहेते के, जे स्वजावे जन्मजात नपुंसक होय ते ने चारित्र आवे नही, ल्यारे तेने मोह पदनी प्राप्ति ते केम थाय । माटे कृत्रिम नपुंसक लेवो. अने नवीन आचार्य एम कहेते के, जे कृत्रिम होय ते नपुंसक न कहेवाय. जेने नपुंसक वेद उदयागत होय तेनेज नपुंसक कहिये. कृत्रिमने तो पुरुष वेद उदयागत होयते, तेथी तेने तो पुरुषवेदज कहिये. एतुं विवेचन करी लेवुं. एया नपुंसकलिंगे जे मोह थया ते नपुंसक सि-६ कहेवाय ठे

(११) जे रजोहरण तथा मुखवस्त्रिका प्रमुख ठतां कैवलय पद पामे ते स्वलिंग सि-६कहेवायते. (१२) जे तापसादिक प्रमुख बीजा चिन्हवान ठतां लोकांत स्थित थयाते ते अन्य लिंग सि-६ जाणवा. (१३) जे जरत प्रनृति गृहस्थ वेप धारी ठतां लोकना मस्तकनेविपे स्थित थएला ठे ते गृहि लिंगी सि-६ जाणिये. (१४) जे एक समयनेविपे एकलोज सर्वोत्कृष्ट सुखना धामने पाम्यो होय ते एकाकी सि-६ ठे. (१५) अने जे एक समयनेविपे अनेक जीवो सि-६त्व पाम्या होय ते अनेक सि-६ कहेवाय ठे. वली जे सि-६ावस्था पाम्या वझे बीजा कोई समय थई गयो न होय किंतु तेज समयते ते अन्तर सि-६ कहिये; अने जेने सि-६ावस्था पाम्याने समयथी उपरांत काल थई गयो होय ते परंपर सि-६ क हिये. इत्यादिक सि-६ जीवोना जेद ठे.

हवे बीजा संसारी जीवोविपे आम समजवुं:-ते संसारी जीव वे प्रकारनाठे:- एक स्यावर बीजा त्रस तेमां स्यावर पांच प्रकारना ठे:-पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउ काय वाउकाय ने वनस्पतिकाय. ए पांचेना वली सूक्ष्म अने बादर ए वेवे जेद ठे. अ ने त्रस जीवो चार प्रकारना ठे:-वेंडिय, तेंडिय, चउरिंडियने पंचेडिय तेमां पचेडिय चार प्रकारना ठे:-देव, मनुष्य, नारक ने तिर्यच. एबधा जीवोविपे सविस्तर जीववि

ચારાદિ પ્રકરણોમાંથી જાણીલેલું. એ જીવ અનંત છે, તેમાં ચેતન ગુણ છે. તથા નારકાદિ પર્યાય છે જે ગુણવત તથા પર્યાયવત હોય તેને ડ્વ્ય કહિયે. ગુણ પર્યાય ડ્વ્ય મિતિ વચનાત્ એવી રીતે જીવ ડ્વ્ય જાણવું
અજીવ ડ્વ્યવિષે વિચાર.

અજીવ ડ્વ્ય પાંચ પ્રકારનું છે.— ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુજ્જાસ્તિકાય ને કાલ તેમાં જે ગતિપર્યાય ને જનનારા જીવ તથા પુજ્જાલોને સહાયકારી હોય તે ધર્માસ્તિકાય જ્યાં જ્યાં ધર્મ ડ્વ્ય છે ત્યાં ત્યાં જીવ તથા પુજ્જાલોની ગતિ યાય છે. જેમ કે, અલોકનેવિષે એ ડ્વ્ય નહીં હોવાથી ત્યાં તેઓની ગતિ થતી નથી. એ વિષે દૃષ્ટાંત — જેમ મત્સ્યની ગતિને સહાયકારી જલ છે. એટલે જ્યાં જ્યાં જલ હોય ત્યાં ત્યાં મત્સ્યની ગતિ થઈ શકે છે, તે મત્સ્ય જ્યારે જલથી વાહાર સ્થાનનેવિષે આવે ત્યારે તેની ગતિ થઈ શકતી નથી. જેમકે, ત્યાં જલ સહાયકારી નથી માટે તેમ ધર્માસ્તિકાય, પણ જીવ તથા પુજ્જાલોની ગતિને સહાયકારી છે. એ ધર્મ ડ્વ્ય યદ્યપિ એકજ છે તથાપિ નયના જેવેકરી એના ત્રણ પ્રકાર છે — સંગ્રહ નયેકરી, વ્યવહાર નયેકરી તથા ક્ષુદ્રાસૂત્ર નયેકરી તેમાં વ્યવહાર નયે કરી ધર્માસ્તિકાય ડ્વ્ય અસંખ્યાત પ્રવેશાત્મક ધર્માસ્તિકાય એક છે તેમ વ્યવહાર નયેકરી પોતાની બુદ્ધિ કરી પરિકલ્પિત તે ધર્માસ્તિકાયના વેનાગ, ત્રણ નાગ, ચાર નાગ ડ્વ્યાદિ ઘણા વેશ છે અને ક્ષુદ્રાસૂત્ર નયે કરી અસંખ્યાત પ્રવેશના પ્રત્યેક પ્રવેશને ધર્માસ્તિકાય કહિયે, એટલે સ્વંધ, વેશ તથા પ્રવેશ એને ધર્માસ્તિકાય કહિયે. એનો ગતિ લક્ષણ ગુણ છે; અને અચુરુલબ્ધ લક્ષણ પર્યાય છે.

અધર્માસ્તિકાય તે સ્થિતિના પર્યાયને જનનારા જીવ અને પુજ્જાલોને સહાયકારી જાણવું જ્યાં જ્યાં અધર્માસ્તિકાય હોય છે, ત્યાં ત્યાં જીવ તથા પુજ્જાલોની સ્થિતિ થઈ શકે છે. જેમ કે, અલોકનેવિષે એ ડ્વ્ય નહીં હોવાને લીધે જીવ તથા પુજ્જાલોની સ્થિતિ થઈ શકતી નથી એવિષે દૃષ્ટાંત — સ્થિતિના પર્યાયને સેવન કરનારો જે પથિક, તેને ઠાયા સહકારી છે. એટલે આ સંસારમાં વેશાટન કરતાં માર્ગનેવિષે થકિત થઈ પીડાને પામેલો જે જીવ, તે જ્યાં વૃદ્ધની સારી ઠાયા હોય છે, તે સ્થાને વિશ્રામ કરીને સાતાને પામે છે. તેમ જ્યાં અધર્માસ્તિકાય ડ્વ્ય છે, ત્યાં જીવો વિશ્રામને પામી રહ્યા છે. એ ડ્વ્ય પણ પૂર્વોક્ત રીતે નયના જેવે ત્રણ પ્રકારનું છે — તેમાં સંગ્રહ નયેકરી અસરવ્ય પ્રવેશ સ્વરૂપ એક સ્વંધ છે, વ્યવહાર નયના માટે એ ડ્વ્યનો એકજ સ્વંધ ઠતાં તેના બુદ્ધિ પરિકલ્પિત દિનાગ તથા ત્રિનાગ પ્રમુખ

घणा जेद थायठे. अने ऋजुसूत्र नये करी एना जेटला प्रदेश ठे ते प्रत्येक अधर्मा स्तिकाय कहेवायठे. एनो स्थिति लक्षण गुण ठे, अने अगुरु लघु लक्षणपर्याय ठे.

आकाशास्तिकाय ते जीवादिक पांच इव्यनुं नाजन जाणवुं केम के, ए इव्य नेविपे पोतपोताना स्वरूपे सकल इव्यो व्यापी रह्यांठे. ते वे प्रकारनुं ठे.—एक लोकाकाश ने बीजो अलोकाकाश तेमां चौद राज उद्धित लोक कहेवायठे. ते अनिय त प्रमाण पद्दोजो ठे. परंतु धन करिये तो जांवां तथा पद्दोजो देशौन सप्त रज्जु प्र माण समान थायठे. अने अलोक अनंतो ठे. ने ते गोलकाकार ठे. समस्त पदा र्थो लोकनेविपे होय ठे, माटे अलोक शून्य ठे. एना पण पूर्वनीपठे त्रण जेद था यठे— तेमां संग्रह नयेकरी अनंत प्रदेशात्मक लोकाजोक प्रमाण एक खंध ठे; व्यवहार नयेकरी बुद्धिपरिकल्पित वे नाग, त्रण नाग तथाचतुर्नागादिक अनेक प्रदेश ठे; अने ऋजुसूत्र नयेकरी ते प्रत्येक प्रदेशरूप जाणवुं. एम एना पण खंध, देश तथा प्रदेश ए त्रण जेद थया. एनो अवकाश लक्षण गुण ठे, अगुरुलघु पर्याय ठे.

काल ते नव जीर्णोपादक जाणवो. ए सकल पुज्जलनेनिपे नवीनता तथा जी र्णता होयठे तेनो सहकारी कारण ठे.

आशंका:— नवीनता तथा जीर्णता थवी एतो पुदगलनो स्वभावज ठे, तेमां कालनुं शुं काम ठे ? पुदगलो पोतानी मेलेज नवीन पर्यायोने धारण करेठे, तेम ज जीर्ण पर्यायोनुं पण नजे ठे. केम के, पुदगल अने जीव ए बन्ने परिणामी इव्य ठे; एवुं श्री जगवाने कष्टु ठे. जे पूर्वावस्थानो विनाश अने उत्तर अय स्थानु उत्पादन तेने परिणाम कहेठे. एटले पर्यायनो उत्पाद तथा विनाश था यठे; परंतु इव्यथी उत्पाद तथा विनाश कहेवाय नही. एवी रीते पुज्जलनेविपे परिणामपणुं होवाथी स्वयं उत्पाद तथा विनाशरूप नवीनता तथा जीर्णता प र्यायने पामी रह्या ठे. कांई इव्यनो सवर्था नाश तथा उत्पाद थतो नथी त्यारे काल इव्यनी अधिक कल्पना ते शासारु करवी जोये ?

उत्तर— यद्यपि नवीनता तथा जीर्णता जे पुदगलना पर्याय ठे ते पुदगलने विपेज ठे. तथापि त्यां निमित्त कारण काल इव्य ठे. केमके, नियते करी होय ठे. परंतु अनियत पणे कही होतुं नथी जेमके, चपक, अशोक तथा सहकार प्रमुख वनस्पतिनेविपे कुसुम संपदा, काले थाय ठे, महा हिमकण मिश्रित शी तल पवन काले थायठे; मेघवृष्टि, धनगर्जित, तथा विद्युत् जात्कारादिक कालेकरी थाय ठे; तेमज ऋतुविजाग, बाल कुमार तथा यौवनावस्था, तथा पलित गमादि

क पण काले करी थायठे इत्यादिक व्यवस्थानेविषे काल सहकारी ठे अने जो काल निमित्त कारण न होय तो सर्व वस्तु व्यवस्था रहित थई जाय जेमके, व संत ऋतु आख्या विनाज चपक, अशोक तथा सहकार प्रमुख वनस्पतिनेविषे फल फूल आवे, ऋतुठ आगल पाठल थई जाय; बाव्यावस्थानेविषे जरा थाय, जराव स्थामा बाव्यावस्था थाय, यौवनावस्था प्राप्त थयाविना बालिकाज गर्जे धारण करे, इत्यादिक अव्यवस्था, कालड्व्य नही मान्याथी थई जाय एटले वधुं विपरी तज थयां करे पण तेम तो काईज थतु नथी, तेथी काल निमित्त कारणठे. केमके सर्व पोतपोतानी कालमर्यादाएकरी थायठे. माटे पुढगलतानेविषे नवजीर्णतानो आपादक काल ठे ते काल एक प्रवेशी समय लक्षण ठे ते समय पण जे वर्त्त मान वर्त्तेठे ते लेवो. केमके, अतीत समयनो विनाश ठे अने अनागत समयनो उत्पाद थयो नथी. ते वर्त्तमान समय पण अनंतो ठे जेटला पुञ्ज ड्व्यना पर्याय ठे ते प्रत्येकनेविषे एकेक वर्त्तमान समय ठे तेमाटे यद्यपि एक ठे तथापि अनतनेविषे लागेलो होवाथी अनतो कहेवाय ठे.

आशंका- (अन्यतीर्थां) एक ठता अनंतनी साथे केम लागेठे ?

उत्तर - जेम तमे सत्ताने एक मानता ठता ते अनेक ड्व्यपर्यायनेविषे रहेल मानो ठो! तेम ए पण मानी लेवुं जेने तमे सत्ता कहोठो तेने अमे वर्त्तमान समय कहिये ठैये मात्र नामनो फेर ठे.

आशंका.-समयतो एक ठे अने पूर्वापर कोटी विनिर्मुक्त ठे त्यारे आवलिकादि व्यवहार केम थरो ? तेतो असंख्यात समय मलेठे, त्यारे एक आवलिका थायठे

उत्तर - अही वे नय ठे - एक निश्चय ने बीजो व्यवहार निश्चय ते परमा र्थनी साथे मलेठे अने व्यवहार ते लौकिकविषे होयठे तेमां निश्चय नये करी तो एक समय लक्षणकाल ठे, अने व्यवहार नयेकरी आवलिकानी कटपना ठे. ते असन्नूत कटपनाएकरी कहिये ठैये:- असंख्यात समय मले त्यारे एक आवलि का थायठे, तेवी एक कोडी सडसठ लाख सितोतेर हजार वशेने शोल आवलि का थाय त्यारे एक मुहूर्त्त थाय थथा समयावली मु० ए सर्व व्यवहारे करीनेज कहेवायठे. परतु परमार्थे जोतां तो सर्व कटपना ठे ए समय लक्षण काल पि सतालीश लाख योजन प्रमाण समय क्षेत्रनेविषे ठे, पण बाहार नथी. ते पर मार्थे जाणीलेजो. ज्या आदित्य गतिठे, त्याज काल व्यवहार ठे. ए अधिकार विवाह प्रकृति सूत्रनी वृत्तिमा श्रीअनयदेवस्वरिए कह्योठे. यत. "आदित्य ग

ते स इयंजकत्वात्, कालनुं व्यंजक आदित्यगमन ते ज्ञापकं ठे. अने बाह्यारना ही पनेविपे आदित्यनुं गमन नथी; त्यां स्थिर ठे आशंका— काल तो मात्र मनुष्य क्षेत्रनेविपेज ठे, तेथी बाह्यार नथी एवुं तमारा कहेवा ऊपरथी थयुं त्यारे बाह्यारना हीपोनेविपे तथा स्वर्ग नरकनेविपे कालनी केम खबर पने? उत्तर:— मनुष्य क्षेत्रनी अपेक्षाए करीनेज त्यां कालनो व्यवहार कहेवाय ठे अत्र समय ते इव्य जाणुं; इव्य परावर्त्तन लक्षण गुण जाणवो, अने अगुरु लघु पर्याय जाणवो.

एविपे दिगंबरि आम मानेठे.— “लोकाकाशनेविपे जेटला आकाश प्रदेश ठे, तेनेविपे एकेक कालनो अणु ठे. एटले असंख्यात कालना अणु ठे. एवु श्री ने मीचइ सिद्धांतिए इव्य संग्रहमां कहुं ठे यतः लोआगास पएसे, इकेके जे ठि याहु इक्किक्का; रयणाणं रासीमिव, कालाणु असंख द्वाणि. तेवा असंख्यात कालाणुनुं संमेलन थाय त्यारे एक समय कहेवायठे. समय ते पर्याय ठे ते अणु पण सूर्यमंडलत्रिमिलक्षण निमित्त कारण पामीने एकतामलेठे त्यारे समय नीप जेठे. जेम चक्रमि निमित्त कारणनी जोगवाई पामीने मृत्पिंदनो घडो नीपजे ठे. तेवी रीते एपण जाणी लेवुं ”

एने श्वेतांबर दूपण दियेठे:— एम जो मानिये तो ठठो अस्तिकाय थरो केम के, जेने खंध, देश तथा प्रदेश होय तेने अस्तिकाय कहेठे. अही समय ते खंध द्विजाग कल्पनारूप देश तथा कालाणु ते प्रदेश ठरेठे. एम मान्याथी विपरीतता थरो. अने अस्तिकाय तो पांचज ठे. अने कालने तो श्वेतांबर तथा दिगंबर को इपण अस्तिकाय कहेता नथी

पुद्गल इव्य जे वस्तु पूर्ण तथा गलन धर्मयुक्त होय ते जाणुं— एटले कोइ एक खंधनेविपे पुद्गल पूराता होयठे, अने कोइएक खंधनेविपे गलन एटले वीख राईजता होयठे. एवुं कालादि कारण पामीने थायठे एवो पुजलोनी स्वभावज होयठे, तेना चार जेद ठे:—खंध, देश प्रदेश ने परमाणु तेमा प्रथम खंधना अनंत प्रकार-ठे.— वे प्रदेश एकठा थयाथी द्विप्रदेशी खंध, त्रण प्रदेशो मळ्याथी त्रिप्रदेशी खंध, एम यावतु संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी तथा अनंत प्रदेशी खंध जाणी. लेवा-तेमज देश पण द्विजाग तथा त्रिजाग लक्षण जाणी लेवो.

आशंका—खंधमा गणा परमाणु आवी मले ठे माटे त्यां देश व्यवहार संजवे ठे. केम के, तेना जेटला देश करिए तेटला थई शकेठे जेम के, काईएक खंध अर्थो अर्थ करिये तेने, वे देश कहिये; एम त्रण विजाग कळ्याथी त्रण-देश थाय, ते

यावत् चार, पांच, संख्यात असंख्यात तथा अनंत सुखी अर्थशकेते, एवी रीते जे वडो मोटो खंध होय तेना अनुसारे देशनी कल्पना अर्थ शके ते. परंतु मात्र वे प्रदेशांत ज खंध होय तेनेविषे देशविजाग केम अर्थ शके ? केम के, तेमां तो मात्र वे परमाणुतुंज मेलन होय ते तेने ज्यारे वे प्रदेशोनी कल्पना थाय त्यारे खंध परिणामनेविषे देश तथा प्रदेश ए बनेनो व्यवहार सिद्ध होवाथी तेमां देश कीयोने प्रदेश कीयो समजवो ?

उत्तर—देश अने प्रदेशमां काई सर्वथा जेव नथी केम के, खंधनेविषे द्विजाग त्रिजागादिक अवयव ते, तेने देश कहेते. ते देश पण वे प्रकारनो ते—एक सांश ते, बीजा निरांश ते. एटले जे सांश ते तेने पण देश कहिये ने जे निरांश ते तेने पण देश कहिये तेम निरांशने प्रदेश पण कहे ते प्रकृत जे देश तेने प्रदेश कहिये, एटले जेमां बीजा कोई अश मले नही तेने प्रदेश कहेवो ए माटे वे प्रदेशी आ खंधनेविषे देश पण वे कहिये, ने प्रदेश पण वे कहिये एटले जे वे प्रदेश ते तेनेज वे देश कहिये. वे प्रदेशी खंधनेविषे साश देश न थाय, कि तु निरांश देश ज थायते तथा त्रण प्रदेशी खंधनेविषे एक वे प्रदेशीत खंध ते देश थाय, वी जो एक प्रदेशीयो थाय परमाणु अर्धो अर्ध न थाय केमके, श्रीवीतराग देवे परमाणुने अज्ञेय तथा अनेद्य कह्यो ते माटे त्या जे वे प्रदेशीत देश कह्यो ते साश जाणवो, अने जे एक प्रदेशीत देश ते निरांश जाणवो. एम सर्व ठामे खंधनेविषे विचारी लेतुं जेटला खंधना जे अवयवते ते देश कहा ने तेज प्रदेश कहिये प्रदेश ते निःप्रदेशीय अवयव जाणवा अने सप्रदेशी अवयवने देश कहेते ने ज्या सप्रदेशी अवयवनो संभव नहोय त्या निःप्रदेशीय अवयवने पण देशज कहेते ते वे प्रदेशीया खंधनेविषे प्रतिष्पणे जाणवो. तथा एक देश प्रदेश लक्ष ए व्यवहार ते ज्यारे खंधरूपे परिणाम्यो होय त्यारे तेने परमाणु पुंज कहिये. तथा जे खंधपणे परिणामने पाम्या नथी ने प्रत्येके प्रत्येके एकाकी रह्या ते तेने परमाणु कहिये अही प्रसंगथी कालनी स्थिति मर्यादा लिखिये ठेये.—एक परमाणु बीजा परमाणुनीसाथे न मलीने खंधजावने न पाम्यो होय कितु एकाकीज रह्यो होय, तेनो जघन्यथी एक समय काल ने उत्कृष्टथी असंख्यातो काल जाणवो. त्यार पठी वली खंधरूप परिणामने पामेते. एम एक परमाणु आश्री समजतुं पण सर्व परमाणु आश्रीतो अनंतो काल जाणवो एतुं कोइ समये पण जाणवो नही, जे समये सर्व परमाणुयो खंधपणे परिणामने पामेला होय, ज्यारे जोई

छुं त्यारे लोकनेविपे अनंतानंत परमाणु बूटा दीगिमां आवेठे. अने जे एकाकी खंध रहेठे तेनी स्थिति जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी असंख्यात कालनी होय ठे. पुञ्जसंयोगनी स्थिति उत्कृष्टी असंख्यात कालथी अधिक होय नही. ए पण एक काल आश्री जाणवुं सर्व काल आश्रीतो सर्व कालनुं अवस्थान जाणवुं. केमके एवो कोई पण काल होतो नथी के जे काले सर्व लोक खंधथी शून्य होय. एम विचारी जेवुं एकालनी स्थिति कही हवे कालनी मर्यादा आम ठे— परमाणु, एकाकी जावनी त्याग करीने अन्य परमाणु द्यणुक त्रिअणुकादि साथे मलीने खंध जावने पाम्या ठे, ते पाठा पूर्वना परमाणु जावने पामे एटले एका की थाय तेमां जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी असंख्यातो काल जाणवो.

आशंका.— अनंत प्रदेशीया खंधनेविपे जे संयुक्त परमाणुठे ते असंख्यात कालसुधी उत्कृष्टपणे ते खंधनेविपे रहेठे. ते खंधनो ज्यारे जंग थायठे त्यारे ते मांथी लघु खंध निष्पन्न थायठे. तेमां पण ते परमाणुठे असंख्यात कालसुधी रहेठे. एवी रीते एक खंधना अनंत खंध थई शकेठे. ते प्रत्येक खंधमां असंख्यात कालसुधी परमाणुनी स्थिति होवाथी अनुक्रमे अनंत कालनो संभव थायठे, त्या र पठी ते एकाकी पणाने पामेठे. एवी रीते अनंत कालनो अंतर पण संभवेठे. त्यारे असंख्यात कालनोज अंतर केम कहोठो? उत्तर—अरे जाई, जो एटला का लसुधी पुञ्जनी संयोग रहेतो होय तो एम संभवे पण पुञ्जनी संयोग तो असंख्यात कालसुधीज रहेठे तदनंतर वियोग थई जायठे.

आशंका.— परमाणु खंधनी साथे मजेलेठे ते खंधविनाश पामेतो असंख्यात काल उपरांत विनाश पामेठे एटलेज ए सूत्र चरितार्थ थयो. पण ते विवक्षित परमाणुनुं आश्रयिन्त खंधनो वियोग थये ते परमाणुने सुं ते माटे एमके, परमाणुनो खंधने विपे अथवा अन्यपरमाणुनी साथे संयोग थयोठे तेनो पाठो वियोग पण असंख्याते काले थायठे. उपरांत रहे नही.

आशंका. एकाकी परमाणु पणे करी केवी रीते वियोग कहोठो ?

उत्तर.— सूत्रना प्रमाणे करी कहिये ठैए एटले श्री व्याख्यात प्रज्ञप्ति प्रमुख सूत्रनेविपे कहेलुं ठे के परमाणु वली परमाणु पणे नजे तो पाठो उत्कृष्ट असंख्या ते काले नजे तेमज जे वे; परमाणुआ मलीने खंध थयो ठतां तेनो विध्वंस थया पठी; फरी ते वनेनो संयोग जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी अनंत काले थायठे. लोकनेविपे अनंत परमाणुठे, अनंत द्यणुक खंध ठे; एम ज्यणुक, चतुर

एक, संख्याताणुक, असंख्याताणुक अने अनंताणुक, एटली जातिना खंध ठे ते सर्व अनंत अनंत प्रत्येके प्रत्येके ठे. तेनी साथे प्रत्येके प्रत्येके उत्कृष्ट काल स्थितिये जो मिले, तो तेनो वियोग घतां पण अनंत काल थाय ल्यारे पठी फरी ने विस्वसा परिणामे, ते पुज्जल सयोग थाय, माटे अनंत काल कह्यो ठे.

हवे वली प्रसंगथी क्षेत्रस्थिति लखिये लैये -परमाणु एक आकाशना प्रदेशने रोकेठे पण बीजा प्रदेशने रोकी शके नही, एटले जेवढो आकाश प्रदेश ठे तेव नो परमाणु ठे, परंतु आटली विशेषता ठे के, आकाशना प्रदेश अमूर्तिक ठे ने परमाणु मूर्तिक ठे माटे वे प्रदेशमा पण समावेश थाय, त्रण प्रदेशमां पण समावेश थाय एम यावत् सरख्यात तथा असंख्यात प्रदेशमां पण तेउनो समावेश थई शकेठे, ते खंध पण असंख्यात प्रदेशी तथा अनंत प्रदेशी जाणवा, वे प्रदेशी खंध जघन्यथी एक प्रदेशमा समाई सके, अने उत्कृष्टथी बेज प्रदेशने रोकेठे, तेमज त्रिप्रदेशी उत्कृष्टथी त्रण प्रदेश रोकेठे, ए प्रमाणे जे खंध जेटला प्रदेशनो होय ते तेटलाज आकाशना प्रदेशने उत्कृष्टथी रोकेठे, तथा जघन्यथी सर्व नेविपे एकज प्रदेश कहेवो, तथा अनंत प्रदेशी खंध उत्कृष्ट पण असंख्यात प्रदेशने रोकी शकेठे पण अनंतने रोके नही केम के, लोकाकाशना अनंत प्रदेश ठेज नही

आशका - एक आकाश प्रदेशमा अनंत प्रदेशीआ खंधनो समावेश केम थाय

उत्तर - आकाशनेविपे अवगाह गुणठे, तेणेकरी ज्या एक पुज्जल ठे त्याज अनंत पुज्जलनो समावेश थई शकेठे जेम एक प्रदीप प्रज्ञानेविपे अनेक प्रदीप प्रज्ञानो समावेश थई जायठे, तथा जेम एक पारद कर्पनेविपे सुवर्ण शत कर्प समाई जायठे एवो पुज्जलनो धर्म ठे माटे एक आकाशना प्रदेशमा अनंतपरमाणु, अनंत अणुक, अनंत त्र्यणुक अनंत संख्याताणुक अनंत असंख्याताणुक तथा अनंत अनंताणुक खंध ठे, ते पोतपोताना स्वजावे करी रह्या ठे

आशंका - समय लोकनेविपे एक खंधनी अवगाहना केम थाय ?

उत्तर - खंध इव्यनो विचित्र स्वभाव ठे, कोई तो लोकनो संख्यातमो जाग अवगाही रहेठे, कोई लोकनो असख्यातमो जाग अवगाहीने रहेठे, अने कोईक तो समय लोकने अवगाहे ठे, ते पण वली असंख्य प्रदेशीं तथा अनंत प्रदेशीं खंध जाणवो, केमके संख्यात प्रदेशीं कोई असंख्यात प्रदेशने रोकी शके नही एम श्री प्रज्ञापना सूत्रमा कस्यु ठे, कोईएक अनंत प्रदेशीं खंध एक समयमा स कल लोकने अवगाही रहेठे, ते केवल समुदातनी पठे जाणी लेवु, ते आ प्रमा

एोः—कोई एक अचित्त महाखंध विश्रसा परिणामेकरी पहेला समये असंख्याता योजन विस्तार सहित दंन करी बीजा समये कपाट करे, त्रीजा समये थाणु करे चोथा समये प्रतर पूरण करे, ते करीने समस्त लोकमां व्यापी रहे; पठी पांचमा समये प्रतर संहरे, ठगा समये थानक जाजे, सातमा समये कपाट जाजे; आठमा समये दंन संहरीने खंन खंन थाय, एमा चोथा एक समय कह्यो, ते सकल लोकने विपे व्यापी रहेवाविपे जाणवुं, एनुं वर्णन श्रीविशेषावश्यकमां पण विशेषे करेलुंठे.

अशंका.—(बौद्ध मतानुसारी) एक आकाश प्रदेशनेविपे रहेला एक परमाणुने बीजा ठ प्रदेशनी फरसना होय ठे जे समये पूर्व दिशाने फरसे ठे तेजस्वरूपे पश्चिम दिशाने फरसतो नथी तेथी अपर स्वरूपे फरसे ठे एवुं जणायठे के मके, जो तेज स्वरूपे फरसे तो पट् दिग्संबंध संजवे नही. अने पट् दिग्संबंध तो लोक प्रसिद्ध ठे जेम के, आ पश्चिम दिग्संबंध, आ पूर्व दिग्संबंध, तथा आ उत्तर दिग्संबंध प्रमुख ठ ए दिग्संबंध निन्न निन्न कहेवा अन्यथा पट् दिग् फरसना केम कहेवाई शकाशे? अने परमाणु तो निरश ठे, माटे एक अंशनेविपे ठ संबंध निन्ननिन्न केम थाय? ए कारण माटे परमाणुने सांश कहेवुं जोये. ल्यारेज निन्ननिन्न स्वरूपे पट् दिशाओंनी फरसना घटमान थजे.

उत्तर.—(जैनी) परमाणु तो निरंशज ठे. सांश कहेवायज नही परंतु पुजल परमाणुनेविपे अचिंत्य परिणाम शक्ति होवाथी तेणेकरी नैरतर्पणो ठ दिशानीसाथे रह्योठे. अने ठ दिशाओंनी फरसना करे ठे पण अंशेकरी फरसना न समजवी (वली बौद्धने कांईक विशेषे पठेठे) तमे केम ज्ञानना संताननेविपे एकज कृणने कारण कार्यजाव संबंध मानोठो? पूर्व ज्ञान जनक जे कृण ते पण निरंश ठे तेम ठतां तेमां वे अंशनी कल्पना करोठो, जे अंशे करी कारणसंबंध ठे, तेज अंशेकरी कार्यसंबंध नथी, अने जे अंशेकरी कार्यसंबंध ठे तेज अंशेकरी कारण संबंध नथी. ए तमारी युक्तिये तमाराज गलामा फासी थावे ठे माटे एम मानवुं जोये ठे के, कृणतो निरश ठे पण वस्तु व्यावर्तनेकरी कार्यकरण जाव संबंधनी कल्पना थई शके ठे एम परमाणुनेविपे पण विचार करीलेवो.

हवे वली प्रसंगथी क्लेशवगाहनी स्थिति लखीये ठैएः—जे आकाश प्रदेशनेविपे जे पुजलपड्डव्य रक्षु ठे ते एक प्रदेशावगाढ, संख्य प्रदेशावगाढ, अथवा असंख्य प्रदेशावगाढ जघन्यथी एक समयसुधी रहे, ने ल्यार पठी एक प्रदेशावगाढ ते द्विप्रवेशावगाढ थायठे, अने द्विप्रदेशावगाढ ते त्रिप्रदेशावगाढ थायठे ते उत्कृष्टथी तो अ

संख्यात काल पठी थाय परंतु अनंत कालसुधी एकावगाढपणे रहने नही; एवो एनो स्व नावज ठे हवे अवगाहनुं अतर लखिये ठैए.—जे परमाणु ए करीने जे आकाशनी प्रदेश अवगाहित यएलो होय तेज ठेकाणे जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी अ संख्यात कालसुधी रहेठे. त्यार पठी वली बीजा प्रदेशनी अवगाहना करेठे. एम फरतो फरतो फरि तेज आकाश प्रदेशनेविपे उत्कृष्टथी असंख्यात काले आवीजाय ठे. केमके, आकाशना असंख्यात प्रदेशज ठे

आशंका:— मूल प्रदेशनो त्याग करी बीजा असंख्यात आकाश प्रदेशीय अ नंतवार फरसीने पठी पाठो आवीने मूलनो प्रदेश फरसतां अनतकालनुं अंतर संजवेठे तेम ठतां असंख्यात कालनुंज अंतर कहेवानुं कारणुं ?

उत्तर— पुञ्जनो एवो स्वनावज होयठे के, ते असंख्यात कालसुधी फरीने पाठो तेज आकाश प्रदेशनी अवगाहना करेठे.

हवे पुञ्जना गुण कहिये ठैए:— जेणेकरी वस्तु, अलंकृत एटले शोनायमान दीगामां आवे तेने वर्ण कहेठे. तेना पांच प्रकार ठे—रुस, नील, श्वेत, पीतने रक्त ए वधा पुञ्जने विपे होयठे. अही कोईक नैयायिक ठगो विचित्र वर्ण पण मानेठे. ते पांच वर्णोना संयोगथी उपजे ठे तेने सर्वथा निन्नज कहेठे, पण ते निन्न नथी गंध वे ठे—एक सुगंध बीजो दुर्गंध. अत्र कोई त्रीजो विचित्र गंध पण माने ठे ते पण संयोगथी उत्पन्न थायठे परंतु निन्न नथी

रस पांच ठे— तिक्त, कटुक, कपाय, आम्ल तथा मधुर कोईक लवणने ठगो रस कहेठे परंतु तेनो मधुर रसनेविपे अतरनाव ठे ते आ प्रमाणे—सर्व नोजन तैयार कखुंठतां तेमा यद्यपि बीजा सर्व डव्योनुं मेलन होय ठे तथापि जो एक लवणनुं प्रक्षेपण कखु न होय तो ते नोजन मधुर लागतुं नथी एटला माटे लवणने पण मधुरज कहेठुं

स्पर्श आवठे:— कर्कश, मृदु, गुरु लघु, उष्ण, शीत, स्निग्ध ने रूक्ष. ए आवठ फरस पुञ्जनेविपे होयठे एम सर्व मली वीश गुण पुञ्जना जाणवा तेउंमाना पाच गुण एक परमाणुनेविपे मली आवेठे ते आवी रीते—पांच वर्णोमानो ग मे ते एक वर्ण, पांच रसमानो गमे ते एक रस, वे गंधमानो गमे ते एक गंध, अने आवठ फरसमाना चार फरस नथी होता, ते आ—कर्कश, मृदु, गुरु ने लघु ए चार स्पर्श सुक्ष्म परमाणुनेविपे न होय अने शीत, उष्ण, स्निग्धने रूक्ष ए चार रसां पण विरोधी वे गुण एक प्रदेशनेविपे न होय जेम के, शीतनो विरोधी उष्ण

गुण ठे तथा स्निग्धनो विरोधी रुद्ध गुण ठे. ते माटे अविरोधि वे गुण होय शीत स्निग्ध अथवा शीत तथा रुद्ध अथवा उष्ण स्निग्ध अथवा उष्ण ने रुद्ध, एम विपरीत पण पण थई शकेठे. माटे परमाणु एक अंश ठे तेमां अविरोधी वे फरस लेवा. एवी रीते पांच गुण एक परमाणुनेविपे जाणवा वे प्रदेशीआ खंधनेविपे उत्कृष्टधी दश गुण होयठे. केमके, तेमां निन्न निन्न वे व र्ण, वे रस, वे गंध तथा चार अविरोधी स्पर्श ते वे वे जूदा जूदा प्रदेशनेविपे होय ए दशगुण वे परमाणुना जाणवा. एम त्रिप्रदेशी खंधनेविपे उत्कृष्टधी वार गुण होयठे, ते आ प्रमाणे.—एक वर्णने एक रस एवे गुण द्विप्रदेशी खंधना कर तां एमां अधिक होय ठे. केमके त्रण प्रदेश होवाथी गंध तो प्राये बेज ठे, अने फरसतो सूक्ष्म परिणामे चारज होयठे. तथा चार प्रदेशीआ खंधनेविपे उत्कृष्टधी चौदगुण होयठे. तेमां चार वर्ण चार रस ने बाकीनासर्व पूर्वोक्त रीते जाणवा. पंच प्रदेशीआ खंधनेविपे पांच वर्ण, पांच रस, वे गंध, तथा चार फरस ए शोल गु ण होयठे. एम संख्यात प्रदेशीआ खंध, असंख्यात प्रदेशीआ खंध तथा अनंत प्रदेशीआ खंध जेटली वारसुधी सूक्ष्म परिणाम पण परिणाम्यो होय ठे त्यांसुधी तेआनेविपे उत्कृष्टधी शोल गुण होयठे. अने जघन्यथी तो पूर्व जे पांच गुण परमाणुनेविपे कहेला ठे तेटलाज अनंत प्रदेशीया खंधनेविपे पण होय ठे.

हवे बादर परिणाम कहियेठैएः—बादर परिणामनेविपे जघन्य तो सात गुण होय ठेः—गुरु, कर्कश, अथवा मृदु, लघु, ए वे स्पर्श अविरोधी लेवा, अने पाच गुण मूल गा लेवा अने उत्कृष्टधी तो वीश गुण होयठे हवे एना पर्याय कहिये ठैएः—पर्याय ते एक गुण कृष्ण तेम एक गुण नीलादिक पण जाणवा जेम के, एक परमाणुमां सर्व जघन्य पण कृष्ण वर्ण होय तो ते एक गुण कालो कहिये पढी वली तेथी बमणी कालाश ते द्विगुण कृष्ण कहिये एम यावत संख्यात गुणो, कालो असं ख्यात गुणो कालो तथा अनंत गुणो कृष्ण वर्ण होयठे; एप्रमाणे सर्व पर्यायो जाणवा. एम नील तथा पीतादिकनेविपे पण एजरीते जाणी लेवुं.

आशंकाः—गुण अने पर्यायनेविपे जेद गुं ठे? जे गुण कहा तेने पर्याय कहोठो.

उत्तर.— गुण तथा पर्यायनेविपे कांईक जेदठे. “सह जाविनो गुणाः क्रमना विनः पर्यायाः” जे सद्वैव सहवर्ची ठे एटले वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श, ते गु ण जाणवा ए सामान्यपण मूर्त्तिमंत इव्यथी एक देश निन्न न होय माटे गु ण कहेवायठे, अने जे अनुक्रमे होय ते सदा सहजावी न होय तेने पर्याय क

हिये जेम के, एक गुण कालत्वादिक ते द्विगुण कालत्वादिक अवस्थाथकी निवर्त्तने ठे, तथा द्विगुण कालत्वादिक त्रिगुण कालत्वादिक अवस्थाथकी निवर्त्तनने पामे ठे एम पूर्व पूर्व पर्यायतुं निवर्त्तन एटले नाश अने उत्तर उत्तर पर्यायोनों आवि नावि एटले उत्पत्ति थायठे तेने पर्याय कहिये ए प्रमाणे एक गुण रस तथा द्विगुण रसादिक, तेमज एक गुण गंध तथा द्विगुण गंधादिक, वली एक गुण कर्कश तथा द्विगुण कर्कशादिक, अने स्पर्शना पर्याय पण जाणी लेवा.

हवे पुञ्ज संस्थान कहेठे—गोल संस्थान ते मोदकवत्, वर्तुल संस्थान ते वल यवत्, लंब संस्थान ते दंभवत्, अश संस्थान ते शृंघाटकवत्, चतुरस्र संस्थान ते अयोधनवत्, जाणी लेवां ॥ इति जीवादि पट् ड्यस्वरूपं क्षेत्रं ॥

अथ ड्य लक्षण कथ्यते—अनुपुप् वृत्तम् प्रणम्य परमात्मान, कर्मक्षेत्रवि वर्जितम् ॥ ड्याणा लक्षणं वक्ष्ये, जैनेडमतदीप्तिदं ॥ १ ॥

जे वस्तु कालत्रयनेविपे वर्त्ते ठे तेने सत् कहिये ने तेज ड्य जाणतुं. ते सत् शब्दतुं लक्षण आबु ठे—“उत्पादव्ययज्ञैव्ययुक्तं हि सत्” जे वस्तु पर्यायनी अपेक्षाए कथंचित उपजे ठे, वली कथंचित जघन्यथी समयांतरे तथा उत्कृष्टथी अस्ख्याता काल पठी ते वस्तु पर्यायनी अपेक्षाए विनाशने पामे ठे, अने तेज वस्तु ड्यथी क्यारे पण उत्पन्न न थाय, तेम विनाश पण पामे नही किंतु सदा सर्वदा कायम होय तेने सत् कहेठे तडुकं श्रीमतिचडै “ध्रौव्योत्पादव्ययोपेतं, ड्यं कालत्रये स्थितम्, ड्यतस्तत्र सत्व हि, जन्मनाशौ च पर्यायात्.” तत्र दृष्टात जेम एक जीव ड्यनेविपे नारक पर्यायनो विनाश होय, अने नर पर्यायनो उत्पाद होय पण जीव ड्य तेज ठे तेनो मूलथी उत्पाद तथा विनाश होतो नथी सदा सर्वदा साश्वत ठे तथा पुञ्ज ड्यनेविपे मृत्पिंम, स्यास, कोश, कुशूल, शिवक, उत्र, घट तथा कपाल प्रमुख पर्यायोनों उत्पाद तथा विनाश थायठे, ते कालादिकनी जोगवाई पामीने थायठे. ते आ प्रमाणे—प्रथम पुञ्ज परमाणु विस्त्रसा परिणामेकरी मृडुआकारे परिणामने पामेठे, तेनो कुंनकारना योगथी मृत्पिंम थायठे, त्यार पठी ज्यारे चक्रनी उपर चडेठे त्यारे ते चक्रमि निमित्त कारणनी योगताथी स्यास परिणामने पामेठे, पठी हस्त प्रक्षेपादिक लक्षण तथा पुरुष व्यापार लक्षण निमित्त कारणनी योगताथी कोश परिणामने जजेठे, पठी तेज कुशूल तथा शिवक परिणामे थायठे ते उत्रक ज्यारे पृथु, बुध, कंडु, तथा ग्रीवक परिणामने पेमेठे त्यारे घट कहेवाय ठे. तथा ते

वली घटनोदन मुजरायजिघात यकी कपाल परिणामने पामे ठे, त्यारे कपाल माला कहेवायठे. एटले पूर्व पूर्व पर्यायोनी विनाश यतो जायठे ने उत्तरोत्तर प र्यायोनी उत्पाद यतो जायठे पण पुञ्ज इव्य सदा साश्वतज ठे. जो ते सत्ता पुञ्जादिक इव्यनी न मानिये तो उत्पाद तथा विनाश निरर्थक थाय. जो वस्तु थी कांई ठेज नही तो उत्पत्ति शानी थाय? अने जेनी उत्पत्ति यती नथी तेनी विनाश पण यतो नथी, यथा पद्मव्य. जे विनाश थायठे तेज उत्पन्न थाय ठे; अने जेनी विनाश न थाय तेनी उत्पत्ति पण न थाय माटे उत्पाद, विना श तथा सत्ता ए एकज ठे. तथोक्तं श्रीमतिचडै. "उत्पाद. केवलो नास्ति, विना शोपि न केवलः, कितु सत्तासमाक्रांतो नापि सत्ता च तौविना, १ यदुत्पन्नं च तन्न ष्टं यन्नष्टं तच्च जन्मयुक्, यच्च वस्तु नचोत्पन्नं, दृष्टं नष्टं कदापिन. २ कालादिपंच सामग्री, प्राप्य इव्येषु पर्ययाः; उत्पद्यंते विपद्यंते, जलकल्लोलवक्त्रले ३ "

आशंका--तमे जे पूर्व पूर्व पर्यायनी विनाश मानो ठो तेविनाशनुं अपर नाम अजाव ठे, माटे ते सर्वथा प्रकारे जावथी निन्न ठे, किवा अजिन्नठे जो सर्वथा जावथी निन्न मानिये तो अस्तु स्वजाव थाय, अस्तु स्वजावनी सिद्धता थयाथी कोई कार्यनी सिद्धि थरो नही, तथोक्तं श्रीमतिचडै.--तुङ्गरूपोहि यो जावः सकथं कार्यसाधकः; अदारिङ् नवेद्विश्वं, सचेद्यदि फलेग्रहिः १ तथा जावनेज सर्वथा अजाव कहेसो, तो जावनी प्रतीतिनी लोप थरो, अने तेम थयाथी सर्व जगत् शून्य वररो. त्यारे तमे अजाव ते शाने कहोठो ?

उत्तर--जावथकी कथंचित् निन्न अजाव होयठे, जे सर्वथा निन्न कहे वाय नही. अने सर्वथा अजिन्नपण न कहेवाय ते कथंचित् निन्न कहिये ते आवी रीतेठे -समस्त वस्तुउनेविषे वे अंश होयठे --एक सदंश ने बीजो असदंश तेमा पर्यायनी अपेहाये थतीत तथा अनागत पर्यायने असदंश कहेठे, ने वर्तमान पर्यायने सदंश कहे ठे. ए सदंश जावरूप कहेवायठे.अने असदंश अजावरूप कहेवाय ठे. अजावतुं लक्षण न्याय शास्त्रमां आवी रीते कथुं ठे--इव्यपर्यायोन्यायत्मानाव इति" एटले जे अजाव ते पण इव्य अने पर्यायथी निन्न नथी जे जाव स्वजाव तेअजावठे. तेना चार प्रकार ठे--प्रागअजाव, प्रध्वसानाव, अत्यतानाव ने अन्यान्यानाव. तेमां प्रथम प्रगजावतुं लक्षण आ प्रमाणे.--यन्निवृत्तावेवकार्यस्यउत्पत्ति. सोस्यप्रागजाव. जे पर्यायनेविषे. विनाशोकरीने, अवश्य अपरपर्यायनी उत्पत्ति थाय ठे ते उत्पद्यमान उत्तर पर्यायथी पूर्वे जे विनाशी पर्याय ठे तेने प्रागजाव कहेवो. अत्र दृष्टांत.--

જેમ ક્ષીરના વિનાશથી દધિનો ઉત્પાદ થાય છે. માટે દૂધનેવિષે દહીનો પ્રાગજાવ કહેવાય. જેનો પૂર્વે અજાવ હોય તેને પ્રાગજાવ કહે છે. જ્યાંસુધી દધિરૂપ પર્યાય થયું નથી ત્યાંસુધી તેનો ક્ષીરનેવિષે પ્રાગજાવ છે એમ મૃત્પિંમને ઘટનો તથા તંતુપુંજને પટનો પણ પ્રાગજાવ સંબંધ જાણી લેવો હવે પ્રધ્વસાજાવનું લક્ષણ આ પ્રમાણે.—યદ્વત્પત્તૌ કાર્યસ્યાવશ્યં વિપ્રત્તિપત્તિ સોસ્થપ્રધ્વસા જાવ. જે પર્યાય ઉત્પન્ન થયાથી જે પર્યાયોનો અવશ્ય કરી વિનાશ થાય છે, તે વિનાશી પૂર્વે પર્યાયથી ઉત્તર પર્યાયનેવિષે પ્રધ્વસાજાવ કહે છે અત્ર દૃષ્ટાંત. જેમ દૂધના વિનાશથી અવશ્યે કરી દધિજ હોય છે તેથી દહીનેવિષે દૂધનો પ્રધ્વસાજાવ કહેવાય તેમ મૃત્પિંમના વિનાશથી અવશ્યે કરી ઘટ, તથા તંતુપુંજના વિનાશથી અવશ્યે કરી પટની ઉત્પત્તિ હોય છે, તો તે ઘટને તથા પટને પ્રધ્વસાજાવ કહે છે એટલે જે પૂર્વપૂર્વે પર્યાય હોય તેનેવિષે પ્રાગજાવ કહે છે, ને ઉત્તર ઉત્તર પર્યાય હોય તેનેવિષે પ્રધ્વસાજાવ કહે છે. એમ વલી દધિથી તક્રનો ઉત્પાદ હોવાથી દધિને પ્રાગજાવ કહેવાય, અને તક્રને પ્રધ્વસાજાવ કહેવાય એટલે પૂર્વે ક્ષીરરૂપ પર્યાયની અપેક્ષાકરી દધિને પ્રધ્વસાજાવ કહે છે અને ઉત્તર તક્રરૂપ પર્યાયની અપેક્ષાકરી દધિને પ્રાગજાવ કહે છે

આશંકા— એક વસ્તુનેવિષે બે ધર્મ કેમ સંજવે ?

ઉત્તર — વસ્તુ, અનંત ધર્માત્મક હોય છે જેમ કે, એક પુરુષનેવિષે વ્રાત, નર્તુ પુત્ર, પૌત્ર, તથા દૌહિત્ર પ્રમુખ ઘણા ધર્મો હોય છે એટલે પુત્રની અપેક્ષા પિતા કહેવાય છે, નાઈની અપેક્ષા વ્રાતા કહેવાય છે, સ્ત્રીની અપેક્ષા નર્તી કહેવાય છે, માતાની અપેક્ષા પુત્ર કહેવાય છે; પુત્રના પુત્રની અપેક્ષા પૌત્ર કહેવાય છે અને પુત્રીના પુત્રની અપેક્ષા કરી દૌહિત્ર કહેવાય છે, પરતુ પુરુષ એકજ હોય છે તેમ અત્ર પણ જાણવું હવે અન્યોઽન્યાજાવનું લક્ષણ આ પ્રમાણે.—સ્વરૂપાંતરાન્યરૂપ વ્યાવૃત્તિરિતરેતરાજાવ । તત્ર દૃષ્ટાંત — જેમ ગાય ને અશ્વ એ બે પદાર્થો છે; તે મા ગાયના સ્વરૂપની નાસ્તિ અશ્વનેવિષે છે, ને અશ્વના સ્વરૂપની નાસ્તિ ગાયનેવિષે છે એમ અન્યોન્ય એટલે પરસ્પરનેવિષે એકેકનો જે અજાવ છે તે અન્યોઽન્યાજાવ જાણવો એના ચાર નામ છે.—અન્યોઽન્યાજાવ, ઈતરેતરાજાવ; પરસ્પરાજાવ તથા અન્યાપોહ જાવ હવે અત્યંતાજાવનું લક્ષણ આ પ્રમાણે.—કાલત્રયાપે ક્ષણીયતાદાત્મ્યપરિણામનિવૃત્તિરત્યંતાજાવ એટલે વસ્તુનેવિષે તાદાત્મિકપણે જે પરિણામનો ત્રણ કાલનેવિષે અજાવ, તેને અત્યંતાજાવ કહિયે. તત્ર દૃષ્ટાંત—જેમ એક ચેતન આત્મતત્ત્વ છે તે ક્યારે પણ અચેતન થયો નથી; થતો નથી

ने अज्ञे पण नही एमज जड धर्मवाला पुज्जनेविषे क्यारे पण वस्तुत्वे चेतनपणुं संजवे नही, एटले तादात्म्य जाव थाय नही; संयोगी जावे तो ए पुज्ज अनंतिवार चे तन थया ठे; थायठे, ने अज्ञे, माटे चेतन वस्तुनेविषे तादात्मिक जावे अचेतनवस्तुनो अत्यंतानावठे. तथा अचेतनवस्तुनेविषे तादात्मिकजावे चेतनवस्तुनो अत्यंतानावठे.

आशंकाः—घट तथा पटनेविषे अत्यंतानाव मानचामां छुं हरकत ठे? केमके, घट ते पटात्मा नथी ने पट ते घटात्मा नथी.

उत्तरः—ए तारुं कहेवुं यद्यपि सत्य ठे. तथापि एवुं त्रणे कालनेविषे संजवे नही. केमके घटाकारे परिणामने पामेला जे पुज्ज डव्य ते कोई समये पटाकार परिणामने पामेठे, अने पट पुज्जो घटाकारे परिणामे ठे, माटे तेनेविषे अत्यंतानाव कहेवाय नही कितु अन्योऽन्यानाव कहिये. एना संग्रहना श्लोक कहेठे—हीरे दध्यादि यत्रास्ति प्रागजावः स उच्यते; नास्तिता पयसोदग्नि प्रध्वंसा जावलक्षणं. १ गवि योश्चाद्यजावश्च, सोन्योन्यानाव उच्यते, शशशृंगादिरूपेणात्यंतानावस्तु जण्यते. २ नचावस्तुत एवस्युर्जेंदास्ते नास्य वस्तुनि ॥ इति जैनमतेजावो, जावि नोवस्तुरूपकः ३ एटले श्रीजैनमतेनेविषे जाव स्वजाव अजाव कह्यो अने नैयायिक, वैशेषिक तथा मीमांसकादिक दर्शननेविषे अजाव ते जावथी जिन पदार्थ माने ठे; ते मिथ्यावादि जाणवा चार्वाक मती तो अजाव पदार्थने मानताज नथी; तेअने पण अनिष्टनी प्राप्ति ठे तथोक्तं अकलकाचार्यैः—कार्यडव्यमनादि स्यात्. प्रागजावस्य निन्दहे ॥ प्रध्वसस्येच कार्यस्य, प्रोच्यते नित्यतां व्रजेत् ॥ १ ॥ एक रूपं जवेद्विध, मन्यापोहव्यतिक्रमे ॥ जवेऽनि स्वधर्मस्याऽत्यंतानावप्रलापने ॥ १ ॥ एनो अर्थ श्री समंतजड स्वामीए अष्ट सहस्री टीकामां आवी रीते कखो ठे.—ते माटे अहो चार्वाक, जो तुं प्रागजाव मानशे नही, तो कार्य डव्यनी अनादि अज्ञे अने घट पटादिक जे कार्य डव्यठे, तेनी आदि तो बाल गोपाल सर्वने विदित ठे, १ जो प्रध्वंसा जाव नही मानशे; तो कार्य डव्यनो विनाश संजवशे नही सर्व डव्य नित्य वरशे ने कार्य डव्यनो विनाश तो सकल लोकमां प्रसिद्ध ठे, २ जो अन्यापोह नही मानशे तो समस्त वस्तुजनुं एक रूप वरशे, अने वस्तु तो सर्व जिन जिन स्वजावेज दीगामां आवे ठे, ३ जो अत्यंतानाव नही मानशे तो कोई स्वधर्म सिद्ध अज्ञे नही, चेतन जे आत्मा ते कोई समय अचेतन थई जज्ञे ने जे जडात्मक पुज्ज ते कोई समय सर्वथा चेतनात्मक थई जवानो संजव अज्ञे ते एम तो कोई काले थायज नही. ४ माटे सर्वत्रैव अजाव मानवो. ते पण वली अजाव स्वजाव मानवो;

पण जे तुह्मस्वजाव मानवु ते पण अनिष्ट ठे श्री चितामणि शास्त्रनेविषे पूर्व प
 द्हीए कसु ठे के, दृष्टस्तावदयं घटोनच पतन् दृष्ट स्तथा मुजरो दृष्टा कर्परसह
 तिः परमितो जावोन दृष्टोपरः स्वाधीना कलशस्य केवलमियं दृष्टा कपालावली ते
 नाजाव इति श्रुति क निहिता किचात्र तत्कारणम् ' अहो नैयायको, प्रथम नूत
 लनेविषे जे घट दीगो, ते ऊपर मोगर पात दीगो, ल्यार पठी खापरां दिठां, पण
 एटलाथी बीजो अजाव कोई दीगो न कहेवाय, तेम उता तु कहिश के, मे घटने
 विषे अजाव दीगो ते फूगो ठे तेनी तो कपालावली दीगी कहेवाय, पण अजाव दीगो
 कहेवाय नही माटे अजाव एवी स्तुति ते कई रहेठे । ते मानवानुं गुं कारण ठे
 माटे कपालावलीनेज अजाव कहिये के जेथी सकल वात सुधरे ॥ इति इव्यलक्षण
 हवे नय स्वरूप कहेठे. तेमां नेगम नय अंशग्राही ठे ए वस्तुना अंशने संपू
 र्ण वस्तुज मानेठे जेमके, सूक्ष्म निगोदिया जीवमां अहरना अनतमा जाग जेट
 लुं ज्ञान, उता तेने सिद्ध समान माने ठे । अने तेरमा तथा चौदमां गुणस्थानने
 विषे वर्त्तता सिद्ध मनुष्योने कर्मनो एक अश उतां संसारी कहेठे.

संग्रह नयवने सत्तानुं ग्रहण थायठे सर्व जीव सरखा ठे. सत्ता गुण घटे नही
 व्यवहारनये करी जीव अने पुद्गलना जेद कहेवायठे.—जेमके, जीवना वे
 जेद.—सिद्धने संसारी तेमां संसारीना वेजेद—अयोगी ने सयोगी सयोगीना वे
 जेद — उद्भस्थने केवली उद्भस्थना वे जेद — क्लीणमोहने उपशांत मोह, उपशांत
 मोहना वे जेद — अकपाई अने सकपाई सकपाईना वे जेद — सूक्ष्मसकपाई ने वाद
 र सकपाई वादर सकपाईना वे जेद—अनिवृत्ति वादर ने निवृत्ति वादर निवृ
 त्ति वादरना वे जेद — श्रेणी प्रतिपन्न ने श्रेणी अप्रतिपन्न श्रेणी अप्रतिपन्नना वे
 जेद — अप्रमत्त ने प्रमत्त, प्रमत्तना वे जेद—सर्व विरति ने देशविरति, देशविरतिना
 वे जेद — विरति ने अविरति अविरतिना वे जेद—सम्यक्त्वोने मिथ्यात्वो मिथ्या
 त्वोना वे जेद नव्यने अनव्य नव्यना वे जेद.—ग्रंथि जेदीने अग्रंथि अजेदी ग्रंथी
 जेदीना वे जेद.—परिच ससारीने अपरिच ससारी एम् पुजलना पण बवे जेद थाय
 ठे ते आ प्रमाणे — अणु ने स्कंध तेमा स्कंधना वे जेद — सूक्ष्म स्कंध ने वादर
 स्कंध. ए बन्नेना वली बवे जेद ठे—सचित्त स्वंध ने अचित्त स्वंध ए बन्नेना पण बवे
 जेद ठे—जीवगृहीत ने अजीवगृहीत एवी रीते अनेक जेदोनुं विवेचन करी लेवु
 जे वने वर्त्तमान काले वर्त्तमान जावनुं ग्रहण थाय ते ऋजुसूत्र नय जाणवु
 जेम के, साधुपणो वर्त्त ते साधु कहेवायठे, अने जे साधु उता पण ग्रहीपणो व

संतो होय तेने गृही कहेते. जे अक्षररूप नाम मुखे कहे ते शब्द नय जाणवो. जे गुणनी उपमाने ग्रहण करे नही, पण गुण सहित अर्थांतरनी ग्रहण थती वस्तुने वस्तु पणे कहेवी ते समनिरूढ नय कहेवायते. जेम के, केवल ज्ञानादि गुण प्राप्त थयाथी सिद्ध कहेवो, अने जे गुणपर्याय सहित संपूर्ण अवस्था प्राप्त वस्तुने वस्तु कहेवी. जेम सिद्ध स्थानिक प्राप्त जीवने सिद्ध कहेवो ते एवचूतनय जाणवो एम तद्दृश्यने सातेनय पोताना उपयोगथी लगामवा

हवे चार निक्षेपा कहेते.—वस्तुना नाम मात्रनो अंगीकार ते नामनिक्षेपो. एटले निर्गुण तथा गुणसहित वस्तुनी विचारणा न करवी. अने जेवस्तुने आकार पणे अंगीकार करवी ते स्थापना निक्षेपो; उपयोगविना वस्तुनुं संपूर्ण ग्रहण करवुं ते दृश्यनिक्षेपो अने गुणसहित वस्तु प्रमाण करवी निर्गुण वस्तुनुं ग्रहण करवुं नही ते जाव निक्षेपो इत्यादिक प्रकारे समस्त नय जंग, प्रमाण निक्षेप परक्षेप सहित, शुद्ध चेतन परमानंदमयी, महानंदी, ज्ञान ज्ञायक, सकल कर्मोपाधि रहित लोकालोक वेत्ता, स्वज्ञानादि गुण समूह कर्ता, अनंत अविगम अक्षय अव्यय, ध्रुव, महारसी, सर्व दर्शी, गुणवान, मोक्ष कारण, मोक्ष महाज्ञान ज्ञायक, ध्यान ध्याता ध्येय, एक एकल ज्ञानगम्य, स्वल्पबुद्धिने अगोचर ते; एवो माहुरो परमात्मा मुक्तने ध्येय, उपादेय, मोक्षनो बीज ते, बीजो जे सर्वपर वस्तुनो संयोगते, ते माहुराथी न्यारो हेय रूप संस्कार ते; संबंधते, पण माहुरो नथी एवीरीते मोक्षार्थी सम्यक्त्वजीवे ध्यावुं.

हवे मोक्ष प्राप्तितुं क्रम लखे तेः—सरुज कर्म कृत्य लक्षण मोक्ष ते ते मोक्षने अर्थे चार अघाती कर्म खपाववां. ते चार अघाती कर्म शाथी खपाववा ? केवल ज्ञानादि चार गुणोथी खपाववां ते केवल ज्ञानादि गुण शाथी उपजेते ? घन घाती कर्म खपाववाथी उपजे ते ते घाती कर्म शाथी खपाववां ? यथाख्यात चारित्रथी खपाववां, यथाख्यात चारित्र शाथी थाय ? लोच मोहनीयना कृत्यथी थाय लोचमोहनीय शाथी खपाय ? सूक्ष्मसंपरायचारित्रथी सूक्ष्मसंपराय चारित्रनुं कारण कोण ते ? त्रण संज्वलनननो कृत्य. त्रण संज्वलना खपाववानुं कारण कोण ते ? अपूर्व करण परिणाम. अपूर्व करण परिणामनुं कारण कोण ? दर्शन मोहनीयनो कृत्य, एम दर्शन मोहनीय खपाववानुं कारण सर्व विरति ते सर्व विरतिनुं कारण प्रत्याख्यानीय चार कपायोनुं खपवुं ते, प्रत्याख्यान खपवानुं कारण देश विरति ते; देशविरतिनुं कारण अप्रत्याख्यानीय चार कपायनुं खपवुं ते, अप्रत्याख्यानीय कृत्य थवानुं कारण सम्यक्त्व ते, सम्यक्त्वनी कारणोत्पत्ति सात प्रकृतिउना कृत्यथी

थायते, अथवा ह्योपशमथी थायते सात प्रकृतिउना ह्यादिकुं कारण अपूर्व करण ठे; अपूर्व करणनु कारण मुहूर्त्स्थिति ह्य ठे, मुहूर्त्स्थिति ह्यनुं कारण यथा प्रवृत्ति करण ठे; यथा प्रवृत्ति करणनुं कारण सात कर्मस्थिति घात ठे, सात कर्म स्थिति घातनुं कारण मद कषायता ठे, मंद कषायतानुं कारण आत्मवीर्य गुण ना पर्याय गर्जित विशुद्धता नामे पर्याय ठे, एवा अनुक्रमे कर्म ह्यथी गुण प्रकाश ने गुण प्रकाशथी कर्म ह्य ठे, ते कारण माटे ज्ञाता प्राणीये गुण प्रकाशनो उद्यम करवो जोइये ते उद्यम श्रुतज्ञानथी थाय ठे, हेयोपादेयनी परिह्वाने श्रुत ज्ञान कहेठे. ते श्रुतज्ञानना वे जेद ठे.— एक शुद्ध श्रुतज्ञान ने बीजुं अशुद्ध श्रुत ज्ञान तेमां शुद्ध श्रुतज्ञानना वे जेद ठे —स्वरूप श्रुतज्ञान ने पररूप श्रुतज्ञान वली अशुद्ध श्रुतज्ञानना पण वे जेद ठे — शुभ अने अशुभ एवीरीते जीवाऽजीवादि पट्ट पदार्थो सदाकाल शाश्वता पोतपोताना गुणपर्यायेकरी वर्त्तेठे. इति मोक्षप्राप्तिस्वरूपं

अथ आत्मप्राप्ति विधि लिख्यते—जे कारण माटे आत्मस्वरूप प्राप्तिविना कदा काले पण मोक्ष प्राप्ति शती नथी जेम कोई पुरुष नगर नाम स्वरूप जाणतो होय तो अन्यने पूढीने ते नगर प्रत्ये पहोचे ठे तेम आ जीवने मुकावनार सम्यक् ज्ञान ठे. उक्तं च — “ विरया सावज्जातं, कसाय हीणा महद्वय धरावि, सम्म दिष्टी विहीणा, कयावि मुक्तं न पावति.” सर्व सावद्यथी विरम्या होय, कषाय क्रोधादिक रहित होय, पंच महाव्रतरूप बाह्य चारित्रेकरी सहित होय, तो पण सम्यक्दृष्टि रहित थका कदा काले पण मोक्ष पामे नही गाथा.—“ नय जंग पमाणे हिं, जो अण्णा साय वाय नावेण, जाणइ मोक्क सरूव, सम्मदिष्टीय सो ऐउ ” ते जीव सम्यक्दृष्टि जाणवो के जे, पोतानो आत्मा मोक्षस्वरूप मोक्षमयी परमा नदमयी अचल अविनाशी अनत अनादि अबंध स्याद्वाद नावे, जाणे माने स इहे अनुनवे, ते सम्यक्दृष्टि कहिये ते सात नयेकरी जाणे. तेना मूल वे स्व ज्ञाव ठे — एक इव्य स्वज्ञाव ने बीजो पर्याय स्वज्ञाव तेमां इव्य स्वज्ञाव कोने क हिये? जे गुण अने पर्यायनो आश्रय होय तेने इव्य कहिये ते इव्य वे प्रकार तुं ठे.— एक साधारण ने बीजुं असाधारण तेमां अस्तित्वं, वस्तुत्वं, इव्यत्वं प्रमेयत्वं, तथा अयुरुजघुत्व ए सामान्य एटले साधारण गुण ठे; अने बीजा असाधारण गुण ते धर्मास्तिकायने गति चालण गुण, अधर्मास्तिकायने स्थिति गुण, आकाशा स्तिकायने अवगाहगुण, कालमां परावर्त्तनाना गुण, पुज्ज इव्यनेविपे वर्ण, गंध, रस ने स्पर्श गुण; जीव इव्यनो चेतना लक्षण ज्ञान गुण, दर्शनगुण चारित्रगुण ने

वीर्यगुण ए असाधारण गुण तथा साधारण गुण ते अमूर्त्यादिक पर्यायना वे चेद
 ठे:- एक स्वभाव पर्याय ते अशुरुलघु विकाररूप ठे तेना षट्गुणी वृद्धि हाणिमय वार
 चेद ठे. ए वारे पर्याय ठे ए इव्यने समान ठे. अने बीजो चेद जे विभाव पर्याय ते
 पुज्ज इव्यने तथा जीव इव्यनेज ठे. तथा शुद्ध इव्यार्थिक नये करी आपणो
 आत्मा सिद्ध समान अष्ट गुणधारी ठे. पर्यायनये स्वभावपर्यायिकरी सदासिद्धसमान
 ठे, अने शांत पर्याये करी अज्ञान संबंध संसारी ठे नैगम नयेकरी अल्पग्राही ठे.
 जेम आठ प्रदेशे करी सर्व जीव सिद्ध ठे, संग्रह नये करी सत्ताग्राही ठे सर्व जीव
 सिद्ध स्वरूप ठे. व्यवहार नयेकरी चेद विचंजना कारी जे जीवना बवे चेद ठे:- एक
 सिद्ध बीजो संसारी संसारिना वे चेद:- एक सयोगी बीजो अयोगी. सयोगीना
 वे चेद:- एक ठदस्थ बीजो केवली ठदस्थना वे चेद:- एक कूपक बीजो उप
 शामक, इत्यादि तथा कृजुसूत्र नयेकरी तेजीव जे परिणामे परिणमतो वर्त्ते, तेसमये
 तेजीव तेवोज कहिए यथा ममतामयी परवस्तुमानतो चेतन अज्ञानी कहिये. सम
 तामयी सिद्ध समान. पोतापोतानां आत्माने ध्यावे तेसमये ते सिद्ध कहिये. शब्द
 नयेकरी नामादि सिद्धने पण सिद्ध कहिये. समजिरूढ नयेकरी ते पर्यायने ग्रहे एटले
 सिद्ध पर्यायवत् सिद्ध कहिये. एवंजुत नयेकरी जे संपूर्ण गुण पर्यायने ग्रहे एटले
 पोतानी क्रिया करतो अचल ते लीजोये यथा सिद्ध स्थानिक प्राप्त जीवने सिद्ध
 कहिये. एम सर्व वस्तुनेविषे सात नय जाणवा. नय ते जे इव्य अनेक धर्म वचने
 करी सात जंग स्यादस्ति, स्वइव्य क्षेत्र जावत्वेन यथा स्वइव्य चेतन गुण अनंत ठे,
 स्वक्षेत्र ते चरम शरीर त्रिनागन्यून अथवा असंख्यात प्रदेश समान चेतनत्व, स्वकाल
 ते उत्पाद व्ययस्वरूप, अशुरुलघु पर्यायनो परिणमन, स्वभाव ते ज्ञान दर्शन चारित्र
 वीर्य, इति एगुणेकरी जीवइव्य ठतोठे स्यान्नास्ति परइव्य क्षेत्र काल जावत्वेन परइव्य
 अचेतना, परक्षेत्र पांचेइव्य पोतपोतानी अवगाहनासमान जडतारूप, परकाल ते
 पोतानो अशुरुलघु पर्याय, परभाव ते, पोतपोतानो विशेषगुण; एवीरीते पर इव्या
 दि गुणं चेतननेविषे नथी ए कारण माटे नास्ति ठे. अने स्यादस्ति नास्ति ए वज्जे
 नाव एक समये ठे. स्यादवक्तव्यते आ कारणमाटे ठे.-कोईपण समये एकांत वच
 नेकरी कहाँ जाय नही केमके, वचन ते असंख्यात समयात्मक ठे. अने आत्म
 इव्य एक समयमां अनंत गुण पर्यायमयी ठे, अने स्यादस्ति अवक्तव्यं स्यादनेकां
 तपणे अस्ति, तेहुं अवक्तव्यपणुंठे एमज स्यादनास्ति अवक्तव्यं. तथा-स्यादस्तिनास्ति
 युगपत् अवक्तव्यं ते स्यादादपणे अस्ति नास्ति समय काल एक समये वचन

अगोचर ठे. एम अनेक धर्मात्मक आत्मा स्याद्वाद जावेकरी जाणो. ते स्याद्वाद ना आठ पद्द ठे:-नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, वक्तव्य तथा अवक्तव्य. पोताना चेतना गुणोकरि आत्मा नित्य ठे, अगुरुलघु पर्यायेकरी आत्मा अनित्य ठे; एमइव्यथी नित्यानित्यठे, ह्यायक गुणोकरि आत्मा एकठे; असंख्यात प्रदेशपणेकरि आत्मा अनेकपणे ठे, एम इव्यपणे एकानेक ठे. स्वइव्य पर्यायेकरी आत्मा सत् ठतो ठे, परइव्य पर्यायेकरी आत्मा असत् अठतो ठे, एम वस्तु स्वरूपे सत् असत् ठे, इव्यपणे वक्तव्यठे एक समये एकगो कथन योग्य नथी माटे आत्मा अवक्तव्य ठे, एम ए परकीय अपेक्षाए स्याद्वाद होय; अने स्वअपेक्षाएकरी चेतन ता नित्यठे, अगुरुलघु पर्याये अनित्यठे चेतना एकठे. असंख्यात प्रदेश अनेकठे. नित्यत्वमां नित्यत्व सत् ठे, अनित्यत्व असत् ठे. अनित्यत्वमां अनित्यत्व सत् ठे अने नित्यत्व असत् ठे एकत्वमा एकत्व सत् ठे अने अनेकत्व असत् ठे. अनेकत्वमां अनेकत्व सत् ठे, ने एकत्व असत् ठे नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, एम निन्न वचन व्यक्त ठे. एक समये अव्यक्त ठे एम वस्तु स्वरूप एक समये नित्या नित्यठे तेज समये एकठे ने तेज समये अनेकठे एम सत् ने असत् ठे तेम व्यक्त ने अव्यक्त ठे ए आठ पद्द एक पद्दमा एक समये रह्या ठे एवीरीते स्याद्वादपणे ठ इव्यने जाणी, अने ठ इव्यथी चेतन लक्षण जीव इव्य पोतानो ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्यमयी अविनाशी ठे अनत परमानंदमयी एवो पोतानो आत्मा उपादेयकरी ध्यावो एप्रकारे आत्मानुं मोक्ष कारण मोक्षमयी सर्वदे स्याद्वादपणे पोताना आत्माने जाणो मानेतेज सम्यक्त्वी कहेवाय तेविना मिथ्यात्वी कहेवाय.

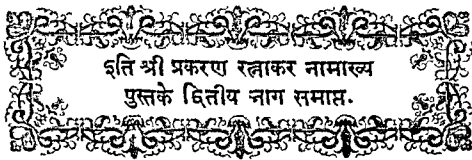
हवे सम्यक्त्वीने आठ गुण उपजेठे ते कहेठे - प्रथम नि शंक गुण ते जेने शंका, जय तथा शोक होय नही तेने जाणवो; एटले ज्ञाताने आलोकनो जय थाय नही केमके, ते सम्यक्त्वी सुख, दु खनेतो, पुन्य तथा पापनुं फल जाणोठे. ते आत्माने पुन्य तथा पापथी चिन्नकरी व्यावेठे माटे आ लोक तथा परलोकनो ज्ञाताने जय नथी तथा ज्ञाताने वेदनानुं जय पण व्यापे नही ते वेदना जय कर्म गुण ठे अने मारो आत्मा तो ज्ञानमयी ठे, वली ज्ञाता, पोताना आत्माने अमर तथा अविनाशी करी ध्यावे ठे माटे तेने मरण जय होतो नथी वली ज्ञाता, पोताना आत्माने अह्य अनत गुणी जाणोठे माटे तेने चोरजय नथी ज्ञाता पोताना आत्माने अज्ञानतारूप दु खनो ठोडवनार एवो पोतानो शरणचूत माने ठे माटे तेने अशरण जय नथी. ज्ञाता पोताना आत्माने सदा परमानंदमयी

मानेते माटे तेने अकस्मात् नय नथी. एवी रीते ज्ञाता पोताना आत्माने इ मय जाणीने सदा काल निर्णय रहेते. सम्यक्त्वीनो बीजो निःकंख गुण. ते एटले वांठा नही ते जाणवो वर्तमान सुखमां मय थाय नही, दुःखमां वि पात करे नही. अनागत कालना सुखनी इहा करे नही; दुःखथी मरे न ज्ञाता ज्ञानमयी पोताना आत्माने सिद्ध समान ध्यावतो अवांठक ठे. सम्यक् नो बीजो अङ्गुगुण ते अङ्गुनथी ग्लानथी गुणाऽङ्गुन सर्वने ते कर्म गुण जाणे पोतानो आत्मा सदा ज्ञानानंदमयी ठे माटे ते क्यारे पण पुजलथी डगंठा नही. सम्यक्त्वीनो चोथो अमूढदृष्टि गुण ते पर वस्तु तथा परपरिणतिमां मू य नही; सर्व स्वस्वभाव तथा परभावने निन्न निन्न करी जाणे. सम्यक्त्वी पांचमो उववूह गुण ते पोतानो वीर्य ठतां अवगणना करे नही. एटले जे एक आत्मस्वरूप शुद्ध इव्यार्थिक नयकरी त्रिगुणमयी ठे; तेने तेवोज ओलरं तेमां रमी रहे तेने ज्ञाता कहिये सम्यक्त्वीनो ठवो थिरीकरण गुण ते पोता आत्माने पोताना गुणे करी स्थिर करे वली ते सदा काल परपरिणतिनी चाह करे नही सम्यक्त्वीनो सातमो वात्सल्य गुण ते पोताना साहमी मोहना साध तथा ज्ञानादिगुणवत तेउनी वात्सल्यता एटले पोषण करवुं; ते ज्ञानगुण जाणव तेज आत्मा एम देखी स्यादादपणे करी, आचरवो. ए वात्सल्य गुण कह हवे सम्यक्त्वीनो आठमो प्रभावना गुण ते बाह्य पणे तथा अंतरपणे पोता आत्माने प्रभावना करवी ए आठ गुण जाणवा.

हवे सम्यक्त्वी सोहं बीज पोतानो आत्मा ध्यावे तेनो अर्थ लखिये ठैएः--
तीत, अनागत ने वर्तमान एत्रण काल; आदि मध्य ने अंत एत्रण अवस्था, स्व मृत्यु पाताल ए त्रण लोक, उत्पादव्यय ने ध्रुव एत्रणपरिणाम तेने एक समय जाणोते, एम ठ एडव्यना अनंत गुण पर्यायने जाणे एवो अनंत ज्ञानमयी सोहं सदा काल चेतन लक्षण सोहं, अनाकार उपयोगमयी दर्शन अनंत वत सोहं समस्त परभाव, पर परिणति, परिणामनरूप परित्यागमयी स्वस्वभाव गुणनेवि थिरतावत अनंत चारित्रमयी सोहं; अरूपी निर्मल गुणवंत लोकांलोक ना मान सोहं, सकल कर्म कृत्य कारण अनंत वीर्यमयी सोहं; सदा काल बाध पीडा रहित परमानंदमयी सोहं; लोकांलोक जाण स्वअवगाहना संबध सोहं पङ्गुणवृद्धि ज्ञानि परिणामी अशुरुलघुत्व शक्तिमयी सोहं, एक, अनेक, निल अनित्य, सिद्ध, बुद्ध, अजर, अविनाशी, अयोगी, अजोगी, अलेशी, अबंधी. ६

वेदी, अचेदी, सकर्ता, अनाहारक, अशरीरी, अनादि, अनंत, अवक्तव्य, अपर
 र एवो परमात्मा परमानंदमयी शिव शंकर जगवान् अवाची अतींद्रिय सोढ
 ध्यान ध्याता ध्येयमयी, ज्ञान, ज्ञाता ज्ञेयमयी, सोढं, एवो दुं परमात्मा परम ज्योति
 परम शक्ति पंच परमेष्ठी परम पूज्य तुं, एआत्मा इव्यनयेकरी अनंत दर्शनमय
 ठे; शुद्ध संग्रह नयेकरी सिद्ध स्वरूपी ठे पंचाचारतुं निधान होवाची आचार्यठे,
 स्याद्वादस्वरूपमयी तेणेकरी उपाध्याय ठे, मोहमार्ग साधक तेणेकरी साधुठे, एवो
 परमात्मा ध्येय उपादेयरूप मुक्तने संसारमां शरण ठे. एतुं जे आत्मस्वरूपने जा
 एतु तेने ज्ञान कहेठे एवी आत्मस्वरूपनी प्रतिविपे जे प्रतीति करची तेने दर्शन
 कहेठे एवा आत्मस्वरूपनेविपे रमण करतुं तेने चारित्र कहेठे एम ए त्रण मोह
 ना मार्ग ठे बीजो सर्व आज्ञानतामयी दोष ठे इति आत्म प्राप्तिविधि.

हवे ए नयने प्रमाण कहिये किंवा अप्रमाण कहिये? प्रमाण ते यथार्थतुं कहे
 वायठे ने अप्रमाण ते अयथार्थतुं कहेवाय ठे एम कोई पुठे, तेनो आवो उत्तर
 देवो यत - "नाऽप्रमाणं प्रमाणं वा, प्रमाणाशस्तथैव हि, नाऽसमुद्रः समुद्रोवा,
 समुद्राशो यथैव हि." अही नय ठे ते प्रमाणनो अंश ठे जे प्रमाण पण नही
 ने अप्रमाण पण नही तेने प्रमाणांश कहिये. कथंचित् प्रमाणने पण कहेठे. ते
 माटे जेम समुद्रमाथी जल पुसली नरिये तेटला जलने समुद्र न कहेवाय पुंत्त
 ली नर जलने समुद्रांश कहिये तेम नयने पण प्रमाणांश कहिये तथा सम
 स्तांश जेनेविपे रह्याठे, तेने प्रमाण कहिये प्रमाण अने नये करी सकलवस्तुतुं
 अधिगमठे. ए तत्वार्थ सूत्रमां ठे. इति चार्चिक वस्तु पद्मव्य नयादि विचार संपूर्ण.



इति श्री प्रकरण रत्नाकर नामाख्य
 पुस्तके द्वितीय जाग समाप्त.

